चरित्र कोश

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

चरित्र-कोश

उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी
पुस्तकालय
ग्रन्थ आ० सं० 3383
संस्कृत भवनम् लखनऊ

८२०.३
चतु।डा।च

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली

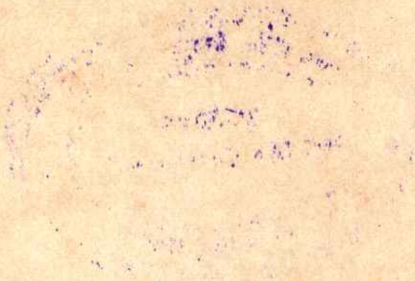

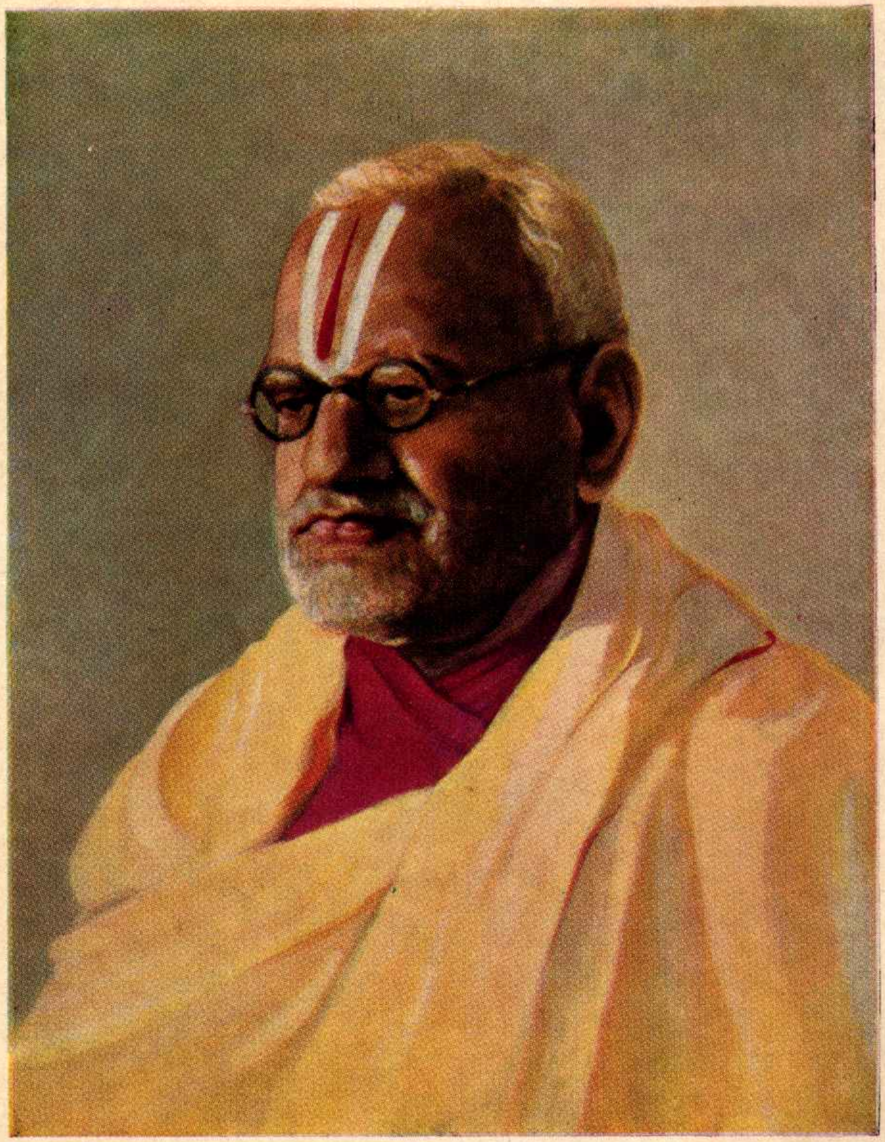

पण्डित चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

चरित्रकोश

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

संपादक
श्रीनारायण चतुर्वेदी

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२

शाखाएं :
चौड़ा रास्ता, जयपुर
३४, नेताजी सुभाष मार्ग, इलाहाबाद-३

मूल्य : २००.००

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२ द्वारा प्रकाशित /
प्रथम संस्करण १९८३ / इस संपादित पुस्तक का सर्वाधिकार : श्रीनारायण चतुर्वेदी /
सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, मौजपुर, दिल्ली-११००५३ में मुद्रित। [216-9-11-683/1N]

CHARITRA-KOSH Edited by Shrinarayan Chaturvedi
Price : 200.00

सम्पादक का वक्तव्य

मेरे पूज्य पिताजी स्वर्गीय पं० चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा हिंदी के अपने समय के प्रतिष्ठित लेखक थे। उन्होंने किशोरों और वयस्कों के लिए अनेक पुस्तकें लिखीं। अनेक महत्त्वपूर्ण जीवनचरित्र लिखे। महाभारत और वाल्मीकि रामायण के अनुवाद किए। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने अपने जीवन में सवा सौ से अधिक पुस्तकों का प्रणयन किया। हिंदी, संस्कृत और अंग्रेजी में उनकी समान गति थी। अपने जीवन के आरंभ ही में वे महामना मालवीयजी और 'हिंदी प्रदीप' के संपादक पंडित बालकृष्ण भट्ट के संपर्क में आए। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन से उनका परिचय तब हुआ जब वे (राजर्षि) विद्यार्थी थे। हिंदी साहित्य सम्मेलन की स्थापना में उन्होंने राजर्षि के साथ बहुत दिनों तक उल्लेखनीय सहयोग किया। वे वर्षों उसके प्रबंध मंत्री भी रहे। उन्होंने 'श्रीराघवेन्द्र' नामक मासिक पत्र तथा कई अन्य पत्रों का संपादन भी किया। वे पुराने ढंग के विद्याव्यसनी थे।

उन्होंने हिंदी का पहला आधुनिक कोश 'शब्दार्थ-पारिजात' तैयार किया था। उसके पहले 'गौरी कोश' आदि पुरानी चाल के दो-एक कोश हिंदी में थे। 'शब्दार्थ-पारिजात' बहुत चला। उसके अनेक संस्करण छपे। उन्होंने भिन्न-भिन्न लोगों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए कई और हिंदी कोश तैयार किए जो लोकप्रिय हुए। फिर उन्होंने संस्कृत का एक कोश तैयार किया जो आज भी बहुत लोकप्रिय है। उन्होंने 'ब्रजभाषा साहित्य कोश' की रचना की जो अब लगभग चालीस वर्ष बाद के० एम० मुंशी हिंदी और भाषाविज्ञान पीठ, आगरा तथा उ० प्र० हिंदी संस्थान के सहयोग से प्रकाशित हो रहा है।

कोशों का काम करते और महाभारत तथा रामायण का अनुवाद करते समय उन्हें अनुभव हुआ कि वेदों, पुराणों और इतिहास में आए हुए अनेक ऋषियों, महापुरुषों, राजाओं, कवियों, नदियों, पर्वतों, ग्रंथों आदि का परिचय सरलता से नहीं मिलता। धीरे-धीरे उन्होंने एक ऐसे कोश की आवश्यकता का अनुभव किया जिसमें वैदिक काल से लेकर उन्नीसवीं सदी तक के महापुरुषों का परिचय हो। हिंदी में ऐसा चरित्रकोश (बायोग्राफिकल डिक्शनरी) उपलब्ध न था। अतएव उन्होंने 'चरिताम्बुधिकोश' के नाम से ऐसा एक कोश तैयार किया। उसमें मुगल और अंग्रेजी राज्यकाल के ऐतिहासिक पुरुषों का परिचय नहीं था। जब कोश तैयार हो गया तब कुछ मित्रों ने उनसे उनका परिचय भी सम्मिलित करने का आग्रह किया। कोश तैयार हो गया था। इन कई सौ महापुरुषों को उक्त चरित्रकोश में यथास्थान लगाना कठिन कार्य था। अतएव उन्होंने बाद में अंग्रेजी वर्णमाला के अनुसार उन्हें तैयार कर कोश के अंत में लगा दिया। 'चरिताम्बुधिकोश' प्रायः ३० वर्षों से अलभ्य था। बहुतसे मित्र बार-बार उसके पुनर्मुद्रण का आग्रह करते थे। आग्रह करने पर भी मूल प्रकाशक उसे प्रकाशित न कर सके।

किंतु जब मैं इसे छपने को देने लगा तब मैंने उसका पुनरीक्षण करना आवश्यक समझा। मैंने देखा कि उसमें अनेक नाम छूट गए हैं। अतएव मैंने अधिक महत्त्वपूर्ण कुछ नाम जोड़कर उनका संक्षिप्त परिचय जोड़ दिया है। हिंदी चरित्र-कोश में, जो वैदिक, पौराणिक और हिंदू इतिहासकाल के नामों का परिचय देने के लिए लिखा गया है, मध्य-कालीन राजपुरुषों का (जो अधिकतर मुसलमान और अंग्रेज थे)—मुस्लिम या अंग्रेजी काल के विदेशी नामधारी लोगों का—परिचय देना असंगत लगा। मध्य और ब्रिटिशकाल के महापुरुषों का चरित्रकोश एक अलग और स्वतंत्र कार्य है। अतएव मैंने 'चरिताम्बुधिकोश' के उस भाग को निकाल देना उचित समझा। एक कारण और था। वह भाग बहुत अपूर्ण है। उस युग के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों का परिचय देने के लिए एक बहुत बड़े स्वतंत्र कोश की आवश्यकता है। यदि मेरे स्वास्थ्य ने साथ दिया तो मैं वैसा कोश तैयार करने का प्रयास करूंगा। अतएव इसका प्रथम खंड ही संपादित कर छापा जा रहा है।

मुझे नहीं मालूम कि पूज्य पिताजी के इस कोश के पहले किसी भारतीय भाषा में ऐसा कोई चरित्रकोश (बायाग्राफिकल कोश) प्रकाशित हुआ था। किंतु यह निर्विवाद है कि यह हिंदी में अपने ढंग का पहला कोश है। इसलिए इसका ऐतिहासिक महत्त्व है और आज भी यह किसी हिंदी लेखक का एकमात्र ऐसा प्रयास है। इसकी उपयोगिता आज भी वैसी है जैसी पचास वर्ष पूर्व थी।

मैंने पूज्य पिताजी के लिखे परिचयों को ज्यों का त्यों रहने दिया है। मैंने केवल सौ-पचास नाम और जोड़ दिए हैं जो मेरी समझ से इस कोश में होने चाहिए थे तथा कुछ सामान्य आवश्यक परिवर्तन भी कर दिये हैं।

इसमें उन्नीसवीं शती तक के कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण हिंदी कवियों और लेखकों के परिचय भी दे दिए गए हैं।

पूज्य पिताजी की भूमिका के कुछ अंश जो आज अप्रासंगिक हैं, निकाल दिये गये हैं। शेष भूमिका यथावत् दे दी गयी है। आशा है कि हिंदी-प्रेमी जनता इस कोश को उपयोगी पाएगी और इसका समुचित उपयोग कर लाभ उठाएगी।

श्रीमती राजीलीला रामकुमार (नवलकिशोर) ने कृपा कर इस बात के लिए अपनी सहमति दे दी कि मैं चरित्रपुराण कोश के इस खंड को संपादित कर स्वतंत्र पुस्तक के रूप में छपवा लूं। उनकी इस कृपा के लिए मैं उनका अत्यंत आभारी हूं। मैं श्री कन्हैयालाल जी मलिक का आभार प्रकट करता हूं कि उन्होंने कृपा कर इस कोश को हिंदी-भाषी जनता के लिए पुनः उपलब्ध कर दिया है।

श्रीनारायण चतुर्वेदी
संपादक

हमारा आरंभिक वक्तव्य

यस्माच्च येन च यथा च यदा च यच्च, यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म ।
तस्माच्च तेन च तथा च तदा च तच्च, तावच्च तत्र च विधातृवशादुपैति ।।

जिन दिनों मैं 'हिंदी-शब्दार्थ-पारिजात' का संकलन कर रहा था, उन दिनों मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि हिंदी भाषा में भी यदि 'बीटन्स डिक्शनरी ऑव यूनिवर्सल इन्फर्मेशन' के ढंग पर एक कोश हो जाए, तो हिंदी पढ़नेवालों को हिंदी भाषा के अध्ययन में अनेक अंशों में पर्याप्त सहायता प्राप्त हो सकती है। यह इच्छा उत्पन्न हुई और सौभाग्यवश जीती-जागती बनी रही। संयोगवश मुझे एक बार लखनऊ जाना पड़ा और वहां के प्रसिद्ध मुंशी नवलकिशोर प्रेस के स्वर्गवासी अध्यक्ष रायबहादुर मुंशी प्रयागनारायण भार्गव से भेंट हुई। यद्यपि मुंशीजी हिंदी भाषा की जानकारी नहीं रखते थे, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि आपके मन में हिंदी का प्रेम अन्य हिंदी-प्रेमियों की अपेक्षा कम था। हिंदी प्रेम की प्रेरणा से ही प्रेरित हो आपने मुझसे कोई ग्रंथ लिखने का अनुरोध किया और जब मैंने अपनी इच्छा एक चरित्रकोश लिखने के विषय में प्रकट की, तब आपने मेरे प्रस्ताव का अनुमोदन कर एक ऐसे कोश को तैयार करने की अनुमति तुरंत दे दी। इस प्रकार मन में छिपी हुई कई वर्ष की मेरी इच्छा को कार्यरूप में परिणत होने का सुअवसर अनायास ही प्राप्त हो गया।

जिस समय यह कार्य आरंभ किया गया, उस समय अनुभव द्वारा मालूम हुआ कि यह कार्य जितना सहज समझ रखा था, उतना सहज नहीं है। फिर जिस उठान से कार्य आरंभ किया गया था, यदि उसी उठान पर यह कार्य रखा जाता तो यह ग्रंथ कम से कम १००० पृष्ठों के सात-आठ भागों में पूर्ण होता। साथ ही, पुस्तक के छपने और प्रकाशन करने में कई वर्ष लगते और मूल्य भी अधिक हो जाता। अत: मुझे आरंभ किए हुए क्रम को बदलना पड़ा। साथ ही यहां यह कह देना भी आवश्यक है कि यह महत्त्व का कार्य यदि मुझसे किसी अधिक योग्य व्यक्ति ने किया होता तो बहुत संभव था कि यह कार्य कहीं अधिक अच्छा होता। क्योंकि एक कवि का कथन है :

तुङ्गात्मनां तुङ्गतरा: समर्था मनोरथान् पूरयितुं न अल्पा: ।
धाराधरा एव धराधराणां निदाघदाहं शमितुं न नद्य: ।।

तथापि जब इस ओर किसी भी हिंदी भाषा के महारथी का ध्यान जाते न देखा, तब यह समझकर कि पूरा काम न हो तो न सही, उसका ठाठ ही खड़ा कर दिया जाए, जिससे आगे चलकर विद्वान् लोग इस ठाठ को सजाकर इसे एक सुरम्य भवन का रूप प्रदान करने की कृपा करें। अत: एक चरित्र-कोश का यह ठाठ मात्र है। अगर हिंदी भाषा के किसी महारथी का ध्यान इस ठाठ को देख इसकी ओर आकर्षित हो गया तो आशा है, इस विषय का एक अच्छा ग्रंथ हिंदी साहित्य में बन सकेगा। किंतु जब तक इस विषय पर हिंदी भाषा में एक

भी ग्रंथ नहीं है तब तक मेरे इस कोश को उस अभाव का पूरक समझ, लोगों को संतोष करना पड़ेगा।

इस ग्रंथ के संकलन में किन-किन ग्रंथों से मसाला लिया गया है, उनकी नामावली अन्यत्र प्रकाशित कर दी गयी है। साथ ही यह भी कह देना आवश्यक है कि इसमें सब श्रेणी के और सब जाति के विशिष्ट व्यक्तियों के विषय में, जितना पुस्तकों द्वारा अवगत हो सका है, लिखा गया है। अत: यह नहीं कहा जा सकता कि जितना इस ग्रंथ में किसी व्यक्ति-विशेष अथवा स्थान-विशेष अथवा ग्रंथ-विशेष के विषय में लिखा गया है, उससे अधिक उस विषय में लिखा नहीं जा सकता। अवश्य ही इस ग्रंथ में संगृहीत अधिकांश विषय ऐसे हैं जिनके विषय में बहुत कुछ लिखा जा सकता है, किंतु विस्तारभय से वैसा किया जाना उचित नहीं समझा गया। किसी-किसी विषय को विस्तार से लिखने की इच्छा रहते हुए भी, आवश्यक जानकारी का कोई साधन न रहने से, उस विषय को विवश हो अति संक्षिप्त रूप से लिखकर संतोष करना पड़ा है।

यद्यपि इस ग्रंथ के नाम के अनुसार इस ग्रंथ में केवल विशिष्ट व्यक्तियों के चरित्रों ही का संग्रह होना चाहिए था, तथापि यह समझकर कि उन स्थानों और उन ग्रंथों का वर्णन (जिनसे कई-एक व्यक्तियों के जीवन से संबंध है) ग्रंथ में न रहने से, ग्रंथ में एक बड़ी त्रुटि रह जाएगी, विशिष्ट स्थानों और विशिष्ट ग्रंथों का भी वर्णन दे दिया गया है। जो विषय जिस ग्रंथ से चुना गया है, उस ग्रंथ का नाम भी उस विषय के नीचे दे दिया गया है। प्रमाद-वश कुछ स्थलों पर इस नियम के पालन में शिथिलता भी हुई है, जिसके लिए मैं क्षमा का प्रार्थी हूं। जहां तक हुआ है, संग्रहकर्ता ने किसी विषय में भी अपना व्यक्तिगत मत प्रकट करने का आग्रह नहीं किया और दूसरे विद्वानों के मत उनके नामों के सहित ही प्रकाशित कर दिए गए हैं। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक अथवा साहित्य-संबंधी विषयों में किसी मत-विशेष का पक्षपात तिल-भर नहीं किया गया। ग्रंथ सर्वोपयोगी बने, इस ओर संग्रहकर्ता का ध्यान विशेषरूप से आकृष्ट रहा है।

मूल ग्रंथ में नाम नागरी वर्णमाला के अक्षरक्रम से संग्रह किये गए हैं। इस ग्रंथ में २५५० के ऊपर नामों का परिचय दिया गया है। इसमें ऐसे अनेक नाम छूट गए हैं जिनका होना आवश्यक था किंतु उनके विषय में किसी छपे ग्रंथ में कुछ वर्णन न रहने के कारण, उन नामों को जानबूझकर छोड़ देना पड़ा है और कुछ नाम ऐसे भी हैं जिनके बारे में ग्रंथ लिखे जाने के बाद मुझे बहुत कुछ वृत्तांत मिला और वे नाम मैंने अगले संस्करण में सम्मिलित करने के लिए टीप रखे हैं।

अंत में निवेदन है कि यह ग्रंथ अपने विषय का हिंदी भाषा में प्रथम है और इस विषय में मेरा यह प्रथम ही प्रयास है। मनुष्य स्वभाव-सुलभ भ्रांति के वशवर्त्ती हो, इस ग्रंथ में अनेक प्रकार की त्रुटियों का रह जाना कोई अनहोनी बात नहीं—किंतु उनका न रहना ही आश्चर्य की बात होगी। अत: सहृदय पाठकों और समालोचकों को इस ग्रंथ का अवलोकन करते समय इस बात को भूलना न चाहिए :

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहिता
मित्रेऽवंचकता गुरौ विनयिता चित्तेऽतिगम्भीरता।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेऽतिविज्ञानिता
रूपे सुन्दरता हरौ भजनिता सत्स्वेव संदृश्यते॥

—चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

अ

अ—भगवान् विष्णु, व्यापक होने के कारण विष्णु को अकार कहते हैं। गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है कि 'अक्षराणामकारोऽस्मि, अर्थात् अक्षरों में मैं अकार हूं। वर्णमाला में ऐसा कोई अक्षर नहीं है जिसमें अकार किसी रूप में न पाया जाता हो।

अंशपायन—'पद्मपुराण' (सृ० ३४) के अनुसार पुष्कर क्षेत्र के यज्ञ में अध्वर्यु-गुणों का उन्नायक।

अंशुमती—(१) ऋग्वेद में इसका तीन बार उल्लेख हुआ है। इसके तट पर शक्तिशाली कृष्ण नामक असुर रहता था, जो कि इन्द्र का घोर शत्रु था। 'बृहद्देवता' (६।११०) में उसे कुरुक्षेत्र में और 'रामायण' (२।५५।६) में यमुना के निकट बताया गया है।

(२) एक नदी का नाम, जिसका उल्लेख ऋग्वेद में है, और जिसके तट पर दस्युराज कृष्ण को राजा ऋगवान ने पराजित किया था। सुव्रत मुनि की स्त्री का नाम।

अंशुमान्—सूर्यवंशी राजा सगर का पौत्र और असमंजस का पुत्र। एक समय राजा सगर ने अश्वमेध नामक यज्ञ करने के लिए घोड़ा छोड़ा था, उस घोड़े को ढूंढने के लिए उनके साठ हजार पुत्र गए थे। इन्द्र ने चालाकी कर के कपिल मुनि के पास घोड़ा बांध दिया था। सगर के पुत्र ढूंढ़ते-ढूंढ़ते पाताल पहुंचे। चोर समझकर उन लोगों ने कपिल मुनि का अपमान किया, इसी से वे मुनि के क्रोधाग्नि में पड़कर भस्म हो गए। सगर ने अपने पुत्रों के आने में विलंब देखकर, अपने पौत्र अंशुमान् को उन्हें ढूंढ़ने के लिए भेजा। पितामह की आज्ञा से अंशुमान् पाताल पहुंचे, और स्तुति से मुनि को प्रसन्न कर वे घोड़ा ले आए और अपने पितृव्यों का उद्धार किस प्रकार होगा, इसकी भी शिक्षा उन्होंने गरुड़ से ग्रहण की। (हरिवंश)

अकथ—'पद्मपुराण' (पा० ११७) के अनुसार मंगण का पुत्र; उत्कट शिवभक्त। एक बार इसके घर में आग लग जाने से आधा शिवलिंग जल गया, जिसके पश्चात्ताप में उसने अपना अर्धांग जलाने के लिए उसे अग्निसात् किया। इसी समय शिव ने प्रसन्न होकर इसे दर्शन दिया।

अकम्पन्—(१) रावण के एक सेनापति का नाम। लङ्का के युद्ध में यह महावीर हनुमान् के हाथ मारा गया था। इसके दो और भाई थे, जिनके नाम प्रहस्त और धूम्राक्ष थे। यह लङ्कापति रावण का मामा था। इसके पिता का नाम सुमाली और माता का नाम केतुमाली था। रावण की माता केकसी इसकी बहिन थी और इसकी दूसरी बहिन का नाम कुम्भीनसी था।

(वाल्मीकीय रामायण)

(२) बहुत पुराना राजा। इसके पुत्र का नाम हरि था। हरि महाबली योद्धा था। एक समय शत्रुओं ने चढ़ाई की, दोनों ओर के योद्धा लड़ने लगे। राजा अकम्पन को शत्रुओं ने पकड़ लिया। इनकी सेना में हाहाकार मच गया। सेना तितर-बितर होने लगी। अपनी सेना की और पिता की ऐसी दशा देखकर, हरि ने बड़े साहस और धैर्यपूर्वक शत्रु-सेना का सामना किया। उसने अपनी वीरता और कौशल से अपने पिता को छुड़ा लिया। (महाभारत)

अकाली—अमर, धर्म के लिए प्राणों को तुच्छ समझने वाले वे सिक्ख योद्धा, जो अपने को गुरु गोविंदसिंह की स्थापित सेना के योद्धा बतलाते हैं। इन लोगों का बाना काला रहता था और ये हाथ में फौलाद का कड़ा पहनते थे। ये वैरागी होते थे, किंतु युद्धविद्या में निपुण होना अपना कर्तव्य समझते थे। असल में इन्होंने ही अमर-

सर को मुसलमानों के आक्रमण से बचाया। पीछे से ये इतने उजड्ड हो गए कि महाराज रणजीतसिंह को अकालियों के उत्पातों से प्रजा को बचाने के लिए केवल चिंतित ही नहीं होना पड़ा; बल्कि बहुत सा धन भी व्यय करना पड़ा।

अकूती—यह स्वायम्भुव मनु की दूसरी कन्या थी और इसकी माता का नाम शतरूपा था। अकूती बड़ी रूपवती और गुणवती थी। इसका विवाह रुचि के साथ हुआ था। यज्ञ और दक्षिणा इसी की यमज संतान थे, जो पीछे से विवाह कर पति-पत्नी बन गए। इन्हीं से द्वादश यमों की उत्पत्ति हुई।

अकृतव्रण—प्रसिद्ध क्षत्रिय-नाशकारी परशुराम का अनुचर। यह बड़ा वीर था और परशुराम के प्रिय शिष्यों में से था। महेन्द्र पर्वत पर इसका वासस्थान था। युधिष्ठिर के वनवास के समय इससे उसकी भेंट हुई थी और युधिष्ठिर से इसने परशुराम के गुणों का वर्णन किया। (महाभारत)

अक्रूर—ये श्रीकृष्ण के चाचा थे, लोक में ऐसी प्रसिद्धि है। इनके पिता का नाम स्वफल्क और माता का नाम गान्दिनी था। इनका दूसरा नाम गान्दिनीसुत भी है। इन्हीं की सम्मति से सत्यभामा के पिता सत्राजित् को मारकर, शतधन्वा ने स्यमन्तकमणि ले ली थी। जब श्रीकृष्ण उसे मारने लगे, तब उसने स्यमन्तकमणि अक्रूर को देकर, भागने की चेष्टा की थी; परंतु वह भाग न सका। श्रीकृष्ण ने उसे पकड़कर मार डाला। स्यमन्तकमणि का यह गुण था कि जिसके पास वह रहती उसे प्रतिदिन सुवर्णराशि प्राप्त होती, और उस देश में अनावृष्टि नहीं होती थी। इसी मणि के प्रभाव से अक्रूर सर्वदा याग-उत्सव आदि में बहुत-सा धन व्यय किया करते थे। एक समय किसी कारणवश अक्रूर द्वारका से बाहर गए। उनके जाते ही द्वारका में वृष्टि होना बंद हो गया, जिससे अनेक मनुष्य मर गए। अक्रूर मथुरा में कंस के यहां रहते थे। श्रीकृष्ण और बलराम को मारने के लिए कंस ने यज्ञ करने का ढोंग रचा था और उनको मथुरा लाने के लिए उसने अक्रूर को वृंदावन भेजा था। यदुवंशी अक्रूर ने कंस के अत्याचारों से यादवों को बचाने के लिए, उसके षड्यंत्र की सभी बातें श्रीकृष्ण से कह दीं और कंस को मारने के लिए उनसे अनुरोध किया। श्रीकृष्ण अक्रूर के साथ मथुरा गए और वहां उन्होंने कंस को मार डाला। (श्रीमद्भागवत)

अक्रोधन—अयुतानायि तथा भासा का पुत्र। देवातिथि का पिता। 'भविष्यपुराण' में उसके पिता का नाम अयुतायु उल्लिखित है। इसने १०,५०० वर्षों तक राज्य किया।

अक्ष—कश्मीर के एक राजा का नाम, ये द्वितीय नर के पुत्र थे। इन्होंने अक्षबाल नामक एक शिवमंदिर बनवाया था और साठ वर्ष तक कश्मीर का शासन किया था। (राजतरङ्गिणी)

अक्षपाद—प्रसिद्ध न्यायदर्शन-कर्ता ऋषि। इनका दूसरा नाम गौतम था। न्यायदर्शन इन्हीं ने बनाया था। इस कारण न्यायदर्शन को अक्षपाददर्शन भी कहते हैं। आर्षदर्शन सूत्रों में लिखे गए हैं। न्यायदर्शन भी सूत्रों में लिखा गया है। इस कारण न्यायदर्शन के निर्माण का भी वही समय मानना पड़ेगा जो अन्यान्य दर्शनों का है। अध्यापक मैक्समूलर कहते हैं कि ख्री० ई० ६०० से ई० २०० पर्यन्त सूत्रों का समय है। इससे न्यायदर्शनकार भी उसी समय के हैं, यह अवश्य मानना पड़ेगा। न्याय-दर्शन में ५२८ सूत्र हैं, ये सूत्र पांच अध्यायों में विभक्त हैं। प्रत्येक अध्याय में दो आह्निक हैं। इससे महर्षि अक्षपाद ने इस दर्शन को दस दिन में बनाया था यह बात मालूम होती है। इस दर्शन में ईश्वर और परलोक की सत्ता मानी जाती है, दुःखों का आत्यंतिक समूल नाश ही मुक्ति है—मुक्ति की यही परिभाषा इस दर्शन में मानी जाती है। मुक्ति प्राप्त करना ही इस दर्शन का उद्देश्य है। शरीर और इंद्रियों के संबंध रहने पर दुःखों का समूल नाश नहीं हो सकता, अतएव आत्मा को शरीर और इंद्रियों से पृथक् करना पड़ेगा। आत्मा की इस अवस्था ही का नाम मुक्ति है। न्यायदर्शन की मुक्ति को बहुत लोग जड़मुक्ति समझते हैं, परंतु ऐसा है नहीं। इनके मत से मुक्ति सुखस्वरूप है। दुःखाभाव ही सुख है, जिस प्रकार अंधकार का अभाव प्रकाश। इस दर्शन के मत से परमात्मा जगत् के निमित्त कारण माने जाते हैं। इस दर्शन में सोलह पदार्थ माने गए हैं; जिनके तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस मुक्ति की प्राप्ति होती है। इस दर्शन को आन्वीक्षिकी भी कहते है। 'अन्वीक्षा' का अर्थ है सुनी बातों की आलोचना। यह दर्शन अन्वीक्षासंयुक्त है, इसी कारण इस दर्शन को आन्वीक्षिकी कहते हैं। इस दर्शन की आलोचना से तर्कशक्ति बढ़ती है, अतएव इसे तर्कशास्त्र भी कहते हैं। इसमें चार प्रमाण माने जाते हैं; यथा प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शाब्द।

अक्षमौजवत—ऋग्वेद (१०/३४) का सूक्त-द्रष्टा।

अक्षयकुमार—रावण का छोटा लड़का। यह मेघनाद से छोटा था। मन्दोदरी के गर्भ से इसका जन्म हुआ था। सीता का पता लगाने के लिए हनुमान् जब लङ्का गए और वहां जाकर जब उन्होंने रावण के प्रमोदवन का नाश करना प्रारंभ किया, तब अक्षयकुमार को रावण ने हनुमान् का सामना करने के लिए भेजा था। उसी युद्ध में हनुमान् ने उसको मार डाला था।

(वाल्मीकीय रामायण)

अक्षयसिंह—जैसलमेर के राजा। इनके पितामह का नाम जसवन्तसिंह और पिता का नाम जगत्सिंह था। जगत्-सिंह ने आत्महत्या कर ली थी। इनके पितामह जसवन्त-सिंह भी इनकी छोटी अवस्था ही में परलोकवासी हुए। जसवन्तसिंह के मरने के बाद अक्षयसिंह का राज्याभिषेक हुआ तो सही, परंतु उनको अनाथ बालक समझकर उनके चाचा तेजसिंह ने राज्य को अपने हाथ में कर लिया। अक्षयसिंह और जोरावरसिंह प्राण बचाने के लिए दिल्ली भाग गए। वहां जाकर इन लोगों ने अपने पितामह के छोटे भाई हरिसिंह की शरण ली, उन दिनों हरीसिंह दिल्ली के बादशाह के यहां राजकार्य करते थे। हरिसिंह अपने पोतों को राज्य दिलाने की चिंता में जैसलमेर गए। उन दिनों वहां 'ल्हासा' नामक एक प्रकार का खेल होता था। हरिसिंह ने सोचा था कि जब महाराज इस खेल में प्रवृत्त होंगे, उस समय उन पर आक्रमण करने से कार्य सिद्ध होगा। परंतु उनका सोचा ठीक न निकला। उनका आक्रमण निष्फल तो नहीं हुआ, परंतु सफल भी नहीं हुआ। तेजसिंह घायल हो गया, कुछ दिनों के बाद उसी आघात से उसकी मृत्यु हुई। उसके बाद तेजसिंह का तीन वर्ष का पुत्र सवाईसिंह जैसलमेर की गद्दी पर बैठा। अक्षयसिंह उचित समय जानकर बड़े-बड़े सरदारों को मिलाकर, जैसलमेर पर चढ़ गए। सवाईसिंह की जीवन-लीला समाप्त हुई और अक्षयसिंह राजगद्दी पर बैठे। इन्होंने ४० वर्ष तक राज किया था। इनकी मृत्यु संवत् १८१८ (सन् १७६२) में हुई थी।

(टाड्स राजस्थान)

अक्षर अनन्य—इतिहासकारों ने इनका जन्म १७१० वि० (१६५३ ई०) निर्धारित किया है। ये आरंभ से ही साधु प्रकृति के व्यक्ति थे। कुछ दिनों ये सेनुहरा (दतिया) के राजा पृथ्वीचन्द के दीवान रहे। इनकी गणना हिंदी के संत कवियों में की जाती है; किंतु संतों की संपूर्णता उनमें नहीं दिखाई देती। वे वैष्णव देवताओं के प्रति आस्थावान् थे और कर्मकांड के प्रति भी उनका विश्वास था। इनकी रचनाओं में अद्वैत वेदांत के सिद्धांतों का सुगमता एवं सरलता से उद्घाटन हुआ है। इनकी रचनाओं के नाम हैं—'ज्ञानयोग', 'विज्ञान-योग', 'ध्यानयोग', 'विवेकदीपिका', 'ब्रह्मज्ञान' और 'अनन्यप्रकाश' आदि।

अगस्त्य—महर्षि मित्रावरुण के पुत्र। इनका पहला नाम मान था। परंतु विन्ध्य पर्वत का अहंकार चूर करने पर अगस्त्य नाम से इनकी प्रसिद्धि हुई। महर्षि वरुण आदित्य के यज्ञ में निमंत्रित होकर गए थे। वहां उर्वशी को देखकर उनका वीर्यपात हुआ। वीर्य का जो भाग कुंभ में पड़ा उससे अगस्त्य और जो स्थल में पड़ा उससे वशिष्ठ उत्पन्न हुए। अगस्त्य का आकार परि-मित था, इस कारण उनका नाम मान पड़ा था। इस ऋषि का महान् तपोबल था। कालकेय नामक असुर-गण वृत्रासुर-वध के पश्चात् देवताओं के भय से समुद्र में छिपकर प्राणरक्षा करते थे और रात्रि को निकल-कर मुनियों को मारते तथा उनके तपोवन नष्टभ्रष्ट कर देते थे। इनके अत्याचारों से रक्षा पाने के लिए मुनियों ने पर्वत की गुहाओं में शरण ली, इससे यज्ञकर्म लुप्त हो गए। देवताओं के अनुरोध से महर्षि अगस्त्य ने समुद्र-पान किया। इससे कालकेय भाग तो सके नहीं और देवताओं ने उन्हें मार डाला। अभिमान से विन्ध्य पर्वत ने सूर्य का मार्ग रोक लिया, देवताओं के कहने से अगस्त्य विन्ध्य पर्वत के पास गए। विन्ध्य ने अपने गुरु को आते देख प्रणाम किया। मुनि ने कहा, जब तक मैं न लौटूं तब तक तुम ऐसे ही रहो। यह कहकर अगस्त्य दक्षिण दिशा में चले गए और तब से फिर न लौटे।

एक दिन अगस्त्य ने अपने पितरों को एक गढ़े में लटकते और कष्ट भोगते देखा। अगस्त्य के पुत्र उत्पन्न होने पर उनका यह कष्ट दूर होगा, पितरों की इस आज्ञा को सुनकर उन्होंने विवाह करने का निश्चय किया। परंतु उपयुक्त कन्या के अभाव से उन्होंने एक स्त्री की सृष्टि की। ऋषि की आज्ञा से विदर्भराज ने उस कन्या के पालन-पोषण का भार ग्रहण किया। विदर्भराज ने उस कन्या का नाम लोपा मुद्रा रखा। लोपामुद्रा के वयस्का होने पर अगस्त्य ने विदर्भराज से प्रार्थना की। विदर्भराज का लोपामुद्रा ने अगस्त्य से विवाह कर दिया। एक समय लोपामुद्रा ने पति से आभूषण पहनने की प्रार्थना की, अगस्त्य धन ढूंढ़ने के

लिए निकले। वे कई राजाओं के पास गए परंतु उनके आय-व्यय का हिसाब देखकर उन्होंने उनसे लेना स्वीकार नहीं किया। पुनः अगस्त्य प्रह्लाद के बंशज इल्वल के निकट गए। इल्वल का छोटा भाई वातापि ब्राह्मणों से चिढ़ा हुआ था। वे दोनों भाई बड़े मायावी थे। वातापि भेड़ा बन जाता था और उसका मांस ब्राह्मणो को दिया जाता। जब ब्राह्मण उस मांस को खा जाते, तब इल्वल अपने भाई वातापि को पुकारता और वह झट ब्राह्मण का पेट फाड़कर निकल आता। अगस्त्य से भी उन लोगों ने यही चाल चली। उसने अपने भाई को पुकारा। उस समय अगस्त्य ने कहा—'उसको तो मैंने पचा यिया।' इससे इल्वल डर गया और अगस्त्य को उसने बहुत धन दिया। अगस्त्य भी घर लौट आए और लोपामुद्रा को गहने बनवा दिए।

रामचन्द्र वनवास के समय अगस्त्य-आश्रम में गए थे। मुनि ने उनको धनु, अक्षय तूणीर और खड्ग दिए थे। अगस्त्य को नहुष ने इन्द्रत्व पाकर अपनी पालकी ढोने के लिए लगाया और उनके लात मारी। इससे अगस्त्य को क्रोध आया और उन्होंने शाप दिया, 'तुम दस हजार वर्ष तक सांप की योनि में पड़े रहो।'

(महाभारत)

अगस्त्य आश्रम—महाकाव्यों एवं पुराणों में इस आश्रम का उल्लेख हुआ है। इन उल्लेखों से इस आश्रम की महत्ता सिद्ध होती है। यहां पर बलराम स्वयं आए थे और इसे मनु ने तपस्या के लिए चुना था। 'अगस्त्य संहिता' के रचयिता महर्षि अगस्त्य दक्षिण भारत में आर्य सभ्यता के संस्थापक थे। उनका आश्रम आध्यात्मिक शक्ति का स्रोत माना जाता था। उन्होंने अनेक राक्षसों का बध कर वनवासियों के कष्टों का निवारण किया था। सीता तथा लक्ष्मण सहित श्रीराम उनके पवित्र आश्रम में आए थे। उन्होंने राम को अपने दिव्यास्त्र भेंट किए थे। इस आश्रम से लगभग सात मील दूर पंचवटी में राम, सीता, लक्ष्मण रहा करते थे। इस आश्रम की वर्तमान स्थिति के संबंध में विद्वान् एकमत नहीं हैं। कुछ के मत में वह नासिक के पूर्व अकोह्ला में स्थित था। कुछ ने अगस्तपुरी और कुछ ने मलयकूट पर्वत पर स्थित श्री खंडादि या चंदनादि से उसको समीकृत किया है।

अगस्त्याश्रम—इगतपुरी। नासिक के आगे बंबई के समीप एक नगर है।

अग्नि—ऋग्वेद के सभी मंडलों में प्रायः इस देवता की उपासना लिखी है। ऋग्वेद में लिखा है कि ये परमात्मा के मुख से उत्पन्न हुए थे। कहीं-कहीं यह भी लिखा मिलता है कि ये धर्म के औरस और वसुभार्या के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। किसी-किसी पुराण में यह भी लिखा है कि ये कश्यप के औरस और अदिति के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ये एक दिक्पाल हैं, दक्षिण और पूर्व का कोण इनके रहने का स्थान है। शक्ति और अक्षसूत्र इनके अस्त्र हैं, छाग इनका वाहन है। किंतु कहीं-कहीं इनका वाहन मेढ़ा भी पाया जाता है। इनकी स्त्री का नाम स्वाहा है जो काश्यप की कन्या है।

अग्निय—'पद्मपुराण' (उत्तरखंड) के अनुसार ब्राह्मण-वंशीय। पिता का नाम वेदनिधि। एक बार इन पर प्रमोदिनी, सुशीला, स्रग्चरा आदि गंधर्व कन्याएं मोहित हो गई थीं। उन्होंने अग्निय से विवाह करने के लिए कहा। किंतु ब्रह्मचारी अग्निय ने उसे अस्वीकार कर दिया। गंधर्व कन्याओं के शाप से अग्निय पिशाच योनि में जा गिरे। उनके पिता ने लोमश मुनि की प्रार्थना से उनको शापमुक्त किया। लोमश मुनि की आज्ञा से अग्निय ने उक्त गंधर्व कन्याओं से विवाह कर लिया और अलकापुरी में रहने लगा।

अग्निपुराण—अग्नि ने इसके द्वारा मुनि वशिष्ठ को ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश दिया, इस कारण इसका नाम अग्नि-पुराण पड़ा। मुनि वशिष्ठ ने व्यास को और व्यास ने सूत को और सूत ने नैमिषारण्य में ऋषियों को यह पुराण सुनाया। इसकी कई प्रतियां इकट्ठी की गईं तो उनमें परस्पर भेद पाया गया। किसी में चौदह सौ, किसी में पंद्रह सौ और किसी में सोलह सौ तक श्लोकों की संख्या मिली। इस पुराण के आरंभिक अध्यायों में अवतारों का वर्णन है। श्रीराम और श्रीकृष्ण का चरित क्रमशः श्री रामायण और श्री महाभारत से मिलता है। अन्य अध्यायों में धार्मिक अनुष्ठानों का विधान लिखा गया है। विशेषकर शिव की उपासना का विधान है। अन्य अध्यायों में पृथिवी, नक्षत्र तथा राजाओं के कर्तव्यों का वैसा ही वर्णन है जैसा विष्णु-पुराण में पाया जाता है। (विष्णुपुराण)

अग्निबाहु—ये प्रियव्रत और काम्य के दस प्रसिद्ध पुत्रों में से एक थे। ये साहस और शारीरिक बल के लिए प्रसिद्ध थे। विष्णुपुराण में इनके विषय में लिखा है कि इनको अपने पूर्वजन्म के कर्मों की स्मृति बनी हुई थी। इसी से राज्य मिलने पर भी इन्होंने उसका परित्याग

किया और निष्काम ईश्वरोपासना अपना सारा जीवन व्यतीत किया। (विष्णुपुराण)

अग्निवर्च—पौराणिक सूत के एक शिष्य का नाम, जो पीछे से प्रसिद्ध पुराणाचार्य हुए हैं।

अग्निवर्ण—सूर्यवंशीय राजा सुदर्शन का पुत्र थे। ये इंद्रिय-परायण विलासी राजा थे। सुदर्शन राज्य का भार जब इनको देकर और वानप्रस्थ ग्रहण कर नैमिषारण्य को चले गए, तब इनके जाने के बाद, अग्निवर्ण की विलासिता और भी बढ़ गई। प्रजा को इनका दर्शन दुर्लभ हो गया। मंत्रियों को राज्यभार देकर ये सर्वदा अंतःपुर में ही रहते थे। अंत में यक्ष्मारोग से पीड़ित होकर अकाल ही में इन्होंने अपनी लीला समेट ली। (रघुवंश)

अग्निवेश्मन्—गोत्र-प्रवर्तक एक ऋषि जो वैदिक काल में विद्यमान था।

अग्निवेश्य—(१) ये अग्नि के पुत्र थे और धनुर्विद्या में बड़े निपुण थे। द्रोणाचार्य के पिता भरद्वाज से इन्होंने धनुर्विद्या सीखी थी। गुरु भरद्वाज ने संतुष्ट होकर इन्हें एक आग्नेयास्त्र दिया था। प्रसिद्ध कुरु-पांडव के गुरु द्रोणाचार्य ने इन्हीं से धनुर्विद्या की शिक्षा पाई थी। अग्निवेश्य ने गुरु-दत्त आग्नेयास्त्र गुरुपुत्र और निज शिष्य द्रोण को दे दिया था।

(२) एक आधुनिक पंडित जिन्होंने वैद्यक का एक निदान बनाया था और चरक का प्रतिसंस्कार भी किया था।

अग्निशर्मन्—एक क्रोधी प्राचीन ऋषि। ये अपने क्रोध के लिए प्रसिद्ध हैं। बड़े क्रोधी की तुलना इन्हीं से की जाती है।

अग्निष्टोम—चाक्षुष मनु के एक पुत्र का नाम। वैदिक यज्ञ का नाम, जो कि ब्रह्म के पूर्व दिशा वाले मुंह से गायत्री और ऋग्वेद के साथ उत्पन्न हुआ। (विष्णुपुराण)

अग्निष्वात—एक पितृगण। 'कालिका पुराण' के अनुसार संध्या से उत्पन्न ब्रह्मा के मानसपुत्र। इनकी संख्या चौंसठ हजार है। 'महाभारत' तथा 'हरिवंश पुराण' के अनुसार काश्यपपुत्र तथा देवों के वंदनीय। 'भागवत' के अनुसार इनकी पत्नी का नाम स्वधा था।

अग्निष्वाता—ये एक प्रकार के पितृगण हैं जो पितृलोक में रहते हैं। इस लोक में वे गृहस्थ जाते हैं जो अग्निहोत्र नहीं करते। (विष्णुपुराण)

अग्नीन्ध्र—ये अग्निबाहु के एक भाई थे। अपने पिता के कहने से जम्बुद्वीप के राजा बने थे। इनके नौ बेटे हुए, जिनकी कथा पुराणों में पाई जाती है। (विष्णुपुराण)

अग्नेयी—अग्निशर्मन की स्त्री का नाम। यह ध्रुववंश की थी। इसके छः पुत्र उत्पन्न हुए जिनके नाम हैं—अङ्ग, सुमनस, क्रत, स्वांती, अङ्गिरा और शिव।

अग्रदास—इतिहासकारों ने इनका जन्म १५५६ ई० के लगभग निर्धारित किया है। ये 'भक्तमाल' के रचयिता नाभादास के गुरु थे। नाभादास ने इन्हें सदाचारस्रोत एवं भगवत्सेवानुरागी कहा है। पयोहारी कृष्णदास इनके गुरु थे। ये राम के अनन्य भक्त थे। प्रियादास ने लिखा है कि एक बार जब ये आमेर के राजा मानसिंह से मिलने के लिए गए तो एकाएक इनके मन में भक्तिभाव का उदय हुआ और ये एक वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न हो गए। नाभादास भी उनके साथ ही तन्मय थे। जब पर्याप्त बिलंब हो गया तो मानसिंह स्वयं उनकी खोज में निकले। उन्होंने जब दोनों गुरु-शिष्य को इस प्रकार ध्यानमग्न देखा तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। इनकी भक्ति मधुर भाव की थी। जानकीवल्लभ के अनन्य भक्त होने के कारण इन्हें जानकी का अंगसहचरी कहा जाता था। इन्हें चन्द्रसखी का अवतार भी माना जाता है। बारहों मास ये रास रचाया करते थे। रैवासा (राजस्थान) इनका मुख्य आवास था। यहीं पर इन्होंने 'ललीलाल' (राम) का मंदिर बनवाया था। रास के लिए इन्होंने अनेक मंडलियों की भी स्थापना की। रामभक्ति शाखा के कवियों में माधुर्यभाव की उपासना के प्रवर्तक के रूप में अग्रदास का विशेष महत्व है। इनके बाद इनके सैकड़ों अनुयायियों ने इनकी भक्ति-भावना का प्रवर्तन् किया। इनके प्रमुख ग्रंथों के नाम हैं—'ध्यानमंजरी', 'कुण्डलियां' (हितोपदेश उयषाखां बावनी), 'श्रृंगाररससागर' और 'अष्टयाम'। इनका अंतिम ग्रंथ संस्कृत में रचित है।

अघासुर—दानव बकासुर का यह छोटा भाई था। इसकी बड़ी बहिन का नाम पूतना है। पूतना के मारे जाने पर, कंस ने कृष्ण को मारने के लिए इसे भेजा था। जब श्रीकृष्ण गोप-बालकों के साथ गौएं चरा रहे थे, तब अघासुर अजगर बनकर वहां बैठा था। इसके नीचे का ओठ भूमि में और ऊपर का ओठ आकाश में लगा हुआ था। गोप बालक और गौ-बछड़े सभी उसके पेट में बिना जाने चले गए। यह देखकर, श्रीकृष्ण भी चले गए और उसके पेट में जाकर अपना शरीर फैलाया,

जिससे अघासुर का पेट फट गया और वह भी मर गया। पुनः श्रीकृष्ण गोपबालक और गौ-बछड़ों के साथ निकल आए। (श्रीमद्भागवत)

अघोर—शिव का दूसरा नाम, अघोरपंथी या अघोरी नामक एक शैवसंप्रदाय है। इनके उपासनीय अघोर हैं। घृणायोग्य पदार्थों से प्रेम करना ही इनका उद्देश्य है, कच्चा मांस आदि खाना इनका आचार है।

अङ्ग—बलिराज का क्षेत्रज पुत्र। अङ्ग का राज्य भी इन्हीं के नाम से परिचित होता है। जन्मांध महर्षि दीर्घतमा के औरस और महारानी सुदेष्णा के गर्भ से पांच पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनके नाम ये हैं—अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड्र और सूक्ष। गंगा और सरयू का संगम स्थान अङ्ग देश कहा जाता है। जिस स्थान पर आज गंगा के उत्तर छपरा जिला और दक्षिण आरा जिला है, रामायण के समय में वहां (आरा) बीहड़ जंगल था। इसी वन में ताड़का नाम की राक्षसी अपने परिवार के साथ रहती थी। महाभारत में इसी को अङ्गदेश लिखा है। दुर्योधन ने कर्ण को इसी देश का राजा बनाया था, अङ्ग का जन्म-विवरण महाभारत में इस प्रकार लिखा है—उतथ्यकुमार वेदज्ञ महर्षि दीर्घतमा ने प्रद्वेषी नाम की एक रूपवती ब्राह्मण कन्या को ब्याहा था। प्रद्वेषी के गर्भ से गौतम आदि कई एक पुत्र उत्पन्न हुए। अंधे पति और पुत्रों के पालन में असमर्थ होने के कारण उसने उधर से मुंह मोड़ लिया। उसी समय से दीर्घतमा ने नियम बनाया कि 'अब से स्त्रियों को पति की अधीनता में रहना पड़ेगा। जीवित या मृत पति के प्रति यदि कोई स्त्री अवज्ञा करेगी, तो उसे पतित होना पड़ेगा। ऐश्वर्य-भोग करने का अधिकार विधवाओं को नहीं रहेगा।' पति के वाक्यों से क्रुद्ध होकर प्रद्वेषी ने अपने पुत्रों को आदेश किया कि इन्हें गंगा में छोड़ दो। क्रूर और मूर्ख पुत्रों ने अपने पिता को बांधकर गंगा में छोड़ दिया। दीर्घतमा बहते-बहते बलिराज की राजधानी के पास पहुंचे, भाग्य से बलिराज गंगास्नान करने गए थे। ऋषि को उन्होंने निकलवाया और उनकी सब बातें सुनीं। उनकी सब बातें सुनकर बलिराज बड़े आदर से उनको अपने घर ले आए। महारानी सुदेष्णा के कोई संतान नहीं थी। राजा ने अपनी रानी से धर्मकार्यों में कुशल पुत्र उत्पन्न करने की उनसे प्रार्थना की। ऋषि ने स्वीकार किया, बलि ने भी अपनी रानी को महर्षि के पास जाने की आज्ञा दी। ऋषि को अंधा और बूढ़ा देख रानी स्वयं तो उनके पास नहीं गई, किंतु अपनी दासी को उनके पास भेज दिया। दासी के गर्भ से काक्षीवत् आदि ग्यारह पुत्र ऋषि ने उत्पन्न किए। लड़कों के बड़े होने पर बलि उन्हें अपना पुत्र समझ उनकी शिक्षा का प्रबंध करने लगे। उस समय मुनि ने कहा कि महाराज, ये आपके पुत्र नहीं हैं। ये महारानी की दासी के पुत्र हैं। यह सुनकर राजा ने रानी को मुनि के पास जाने के लिए बाध्य किया। महर्षि ने सुदेष्णा के गर्भ से पांच पुत्र उत्पन्न किए, जिनका नाम ऊपर लिखा है। महर्षि ने सुदेष्णा से कहा कि तुम्हारे पुत्रों का राज्य भी उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध होगा। (महाभारत, आ० प०)

अङ्गद—वानरराज बालि का पुत्र। बालि को मारकर रामचन्द्र ने उसके छोटे भाई सुग्रीव को राजगद्दी पर बैठाया, अङ्गद युवराज बनाए गए। अङ्गद की माता का नाम तारा था। सुग्रीव की सेना के साथ लङ्का में जाकर इन्होंने अपनी वीरता का परिचय दिया था। एक दिन युद्ध में अङ्गद ने इन्द्रजीत को हराया था। (रामायण)

अङ्गद गुरु—ये गुरु नानक के शिष्य थे और उनके पश्चात् उनकी गद्दी पर बैठे थे। ये जाति के पंजाबी खत्री थे। इनके पिता का नाम फेरूमल और माता का नाम केशभराई था। फीरोजपुर में संवत् १५६१ में इनका जन्म हुआ था। इनके दो पुत्र और दो कन्याएं थीं। ये पहले कुलप्रथा के अनुसार वैष्णवी देवी के उपासक थे, घटनावश गुरु नानक से इनकी भेंट हुई और ये सिख धर्म में दीक्षित हो गए। संवत् १६०६ में इनका शरीर-पात हुआ। मरते समय इनकी उम्र ४५ वर्ष की थी।

अङ्गनलाल—हिंदी के कवि। इनका उपनाम रसाल है। ये बिलग्राम जिला हरदोई के रहने वाले थे, इनका जन्म सन् १८२३ में हुआ था।

अङ्गराज—अङ्गदेश का अधिपति कर्ण। अङ्गदेश गंगा और सरयू के संगम-तीर पर है, जो इस समय आरा जिला कहा जाता है। किसी-किसी का कहना है कि वैद्यनाथ से लेकर उड़ीसा-भुवनेश्वर तक अङ्गदेश है। मैं समझता हूं कि भागलपुर का जिला अङ्गदेश है। कर्ण की राजधानी भागलपुर ही में थी। दुर्योधन ने कर्ण को अङ्गदेश का राजा बनाया था।

अङ्गा—सरयू और गंगा के बीच का देश। भागलपुर जिला।

अङ्गार—आरब्ध, आरछत्, शरछत्, अङ्गारसेतु तथा

अरुद्ध आदि इनके अनेक नाम उपलब्ध हैं। 'महाभारत' (शां०प० २९।८१) के अनुसार राजा मान्धाता के साथ इनका घोर युद्ध हुआ था, जो कि दस मास तक चलता रहा।

अङ्गारपर्ण—एक गंधर्व। वनवास के समय सोमाश्रयन स्थान से जब पांडव गंगा-पार उतरने लगे, तब उनकी इस गंधर्व से भेंट हुई थी। उस समय गंधर्व भी गंगा में स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा करता था। इसने उनको वहां आने के लिए मना किया। अर्जुन से इसका विवाद हो गया। बातों ही बातों में बात बढ़ गई। दोनों ओर से बाणवर्षा होने लगी। अर्जुन के बाणों से वह गंधर्व अचेत होकर गिर पड़ा। अर्जुन उसें घसीटकर अपने भाइयों के पास लाए और उसकी स्त्री की प्रार्थना से संतुष्ट होकर युधिष्ठिर ने उसे छुड़वा दिया।

अङ्गिरा—(१) ब्रह्मा का मानस पुत्र। इसके दो पुत्र थे : उतथ्य और बृहस्पति। बृहस्पति छोटे थे। अङ्गिरा एक बड़े तेजस्वी ब्राह्मण थे। इनका तेज अग्नि से भी बढ़ गया। इनके तेज से भयभीत होकर, अग्नि जल में छिप गए थे। अग्नि अङ्गिरा के तेज से अत्यंत भीत और ग्लानियुक्त हुए थे, परंतु अपनी ऐसी दशा का कारण जान नहीं सकते थे। उस समय वे यही सोचते थे कि क्या ब्रह्मा ने संसार के लिए दूसरे अग्नि की सृष्टि की है; क्योंकि बहुत दिनों तक तपस्या करने से मेरा अग्नित्व नष्ट हो गया है। इस समय क्या करना चाहिए, किस प्रकार पुनः मुझे अग्नित्व मिलेगा। अग्नि इसी प्रकार की और अनेक चिंता कर रहे थे कि उसी समय महर्षि अङ्गिरा वहां उपस्थित हुए और बोले, 'भगवन्! आप शीघ्र ही अपना तेज प्रकाशित कर लोक का कल्याण करें। अंधकार दूर करने के लिए ही विधाता ने आपकी सृष्टि की है। अतएव आप अपने अधिकार का उपभोग करें।' अग्नि ने कहा, 'हमारा तेज इस समय नष्ट हो गया है, इस समय आप ही ने अग्नित्व प्राप्त कर लिया है। अब संसार आप ही को अग्नि मानेगा, हमको कोई पहचान भी नहीं सकता। अतएव मैं अब अपना अधिकार छोड़ता हूं। पहले अग्नि आप ही बनें और मैं दूसरा अग्नि बनूंगा।' इसके उत्तर में अङ्गिरा ने कहा, 'मैं आपका अधिकार लेना नहीं चाहता। अपने अधिकार का आप ही उपभोग करें और हविष्य को वहन कर संसार के लिए स्वर्ग का मार्ग साफ करें और कृपा कर हमको एक पुत्र दें।' अग्नि ने प्रसन्नतापूर्वक अपने तेज को ग्रहण किया और महर्षि अङ्गिरा को पुत्र उत्पन्न होने के लिए वर प्रदान किया। अग्नि के वर से उत्पन्न पुत्र का नाम अङ्गिरा ने बृहस्पति रखा। (महाभारत, वन प०)

(२) ये एक धर्मशास्त्रप्रवर्तक ऋषि थे, इनके बनाए धर्मशास्त्र का नाम 'अङ्गिरा संहिता' है। ये सप्त ऋषियों के अंतर्गत ऋषि हैं।

अचल—(१) कौरव शकुनि का भाई। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उपस्थित। वह एकरथ था और महाभारत युद्ध में अर्जुन के द्वारा मारा गया।

(२) 'वायुपुराण' के अनुसार वसुदेव तथा मदिरा का पुत्र।

(३) 'मत्स्यपुराण' के अनुसार महीनेम का पुत्र।

अच्छोदा—पुराणों में इसे बर्हिषद तथा अग्निस्वात पितरों को मानस-कन्या बताया गाया है। 'ब्रह्माण्ड पुराण' (३।१०।५४-६४) के अनुसार इसने अज्ञानतावश अमावसु पितर को वरण किया था, जिससे कि यह योगभ्रष्ट हुई और द्वापर में अमावसु की कन्या हुई। आगे चलकर यह सत्यवती नाम से प्रसिद्ध हुई। इसी के नाम से अच्छोदा सरोवर नामकरण हुआ।

अज—अयोध्या के सूर्यवंशी राजा। ये महाराज रघु के पुत्र थे। विदर्भराज की कन्या इन्दुमती ने स्वयंवर-प्रथा के अनुसार अज को अपना पति बनाया था। विवाह के पश्चात् अज इन्दुमती को लेकर जा रहे थे। स्वयंवर-सभा में विफलमनोरथ राजाओं ने मार्ग में बलपूर्वक अज से इन्दुमती को छीनना चाहा। दोनों दलों में युद्ध होने लगा। अज सम्मोहक नामक अस्त्र से राजाओं को अचेत कर इन्दुमती-सहित अयोध्या पहुंचे। पुत्र के विजय की बात सुनकर राजा रघु ने अपने पुत्र और पुत्रवधू का आदर के साथ स्वागत किया। अज के वयस्क होने पर रघु ने उनको राज्य भार देकर वानप्रस्थ ले लिया। इदुमती के गर्भ से राजा दशरथ का जन्म हुआ था, दशरथ की बाल्यावस्था ही में इन्दुमती का परलोक-वास हो गया। राजा अज ने दशरथ के योग्य होने तक, राज्यशासन किया था; परंतु पुनः विवाह नहीं किया था। दशरथ के वयस्क होने पर राजा अज राज्यभार उनको देकर, गंगा सरयू के किनारे चले गए और वहां उन्होंने अनशन व्रत करके देह-त्याग किया। (रघुवंश)

एकपाद—अग्नि, अभिधेय। एकादश रूपों में परिगणित। दुर्गाचार्य ने 'निरुक्त' (१२।२९) की टीका में इसको

'सूर्य' के अर्थ में ग्रहण किया है।

अजक—(१) पुरुरवा के वंशज एक राजा। इनके पिता का नाम सुमन्त और पितामह का नाम जह्नु था।

(२) मगध देश के एक राजा का नाम। ये राजा प्रद्योत के वंशज थे।

अजगन—महादेव का धनुष, जो राजा पृथु के जन्म के समय अकाश से गिरा था। इसके साथ दैवी बाण और एक राजछत्र भी गिरा था।

अजन्ता—बौद्ध चित्रकला की समृद्ध एवं प्रभावशाली परंपरा भित्तिचित्रों के रूप में प्रकाश में आई जिसका प्रमुख केंद्र अजन्ता था। अजन्ता में कुल मिलाकर २९ गुफाएं हैं जो कि चैत्य तथा विहार—दो वर्गों में विभाजित की गई हैं। ९,१०,१९ और २६ संख्यक चार चैत्य गुफाएं और शेष विहार गुफाएं हैं। चैत्य गुफाएं प्रार्थना-आराधना की दृष्टि से और विहार गुफाएं निवास तथा अध्ययन करने की दृष्टि से सीमित की गई प्रतीत होती हैं। उक्त २९ गुफाओं में केवल १,२,९,१०, १६ और १७ संख्यक ६ गुफाएं ही अब तक सुरक्षित रह गई हैं, शेष नष्ट हो गईं।

अजन्ता की इन गुफाओं में अनेक युगों की संस्कृति और कला के इतिहास का समन्वय हुआ है। इस दृष्टि से सातवाहन, कुषाण, गुप्त और वाकाटक आदि अनेक राजवंशों के समय ३०० ई० पूर्व से ७०० ई० तक उनका निर्माण, जीर्णोद्धार एवं पुन: संस्कार होता गया। वहां के चित्रों में जो अनेकता के दर्शन होते हैं उसका कारण भी यही है कि अनेक शैलियों के कलाकारों का उनके निर्माण में योगदान रहा। वहां लगभग बीस प्रकार के विभिन्न युगों का सम्मिश्रण बताया गया है। किंतु उनमें प्रधानता गुप्त शैली की है। इतिहासकारों एवं कलाविदों का अभिमत है कि ९वीं तथा १०वीं गुफाओं के निर्माण में शुंगों तथा सातवाहनों का योगदान रहा। १,२, १६ तथा १७वीं गुफाओं का निर्माण वाकाटक नरेश हरिषेण (४७५-५००ई०) के सचिव वाराहदेव के समय हुआ। इसी प्रकार १,१६ और १७वीं गुफाओं के पुनरुद्धार में गुप्त सम्राटों का योगदान रहा। इन गुफाओं में सम्प्रति जो कलाथाती जीवित है वह प्राय: गुप्तयुगीन है।

अजन्ता का यह कलातीर्थ आज विश्व के कलायात्रियों की जिज्ञासा का प्रमुख आकर्षण बना हुआ है। उसकी महानता तथा गरिमा के कारण विश्व के कलाप्रेमियों ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है और उसमें सन्निहित सार्वभौम मानवता के दर्शन किए हैं।

अजमध—(१) ये सुहोत्र के पुत्र थे, और अनेक वैदिक ऋचाएं इनके द्वारा प्रादुर्भूत हुईं।

(२) युधिष्ठिर की एक उपाधि।

(३) चन्द्रवंशीय २६वां राजा।

अजमीड—राजा हस्तिन के पुत्र। इन्हीं राजा ने वह प्रसिद्ध हस्तिनापुर बसाया था, जो गंगा की बाढ़ से नष्ट हो गया। गंगा के उतरने पर जब उस नगर की खोज की गई तब वर्तमान दिल्ली से ६० मील पूर्व की ओर इसका खंडहर मिला।

अजमुख—दक्षप्रजापति का दूसरा नाम। इन्होंने अपने जामाता शिव का अपमान करने के लिए एक यज्ञ किया था, जिसमें शिव और सती के अतिरिक्त सभी निमंत्रित हुए थे। जब पिता के यज्ञ का समाचार सती ने सुना तब वे किसी प्रकार पति की आज्ञा लेकर पिता के यज्ञ में उपस्थित हुईं; परंतु वहां जाकर पिता के मुख से अपने पति की उन्हें निंदा सुननी पड़ी। इससे उनको बड़ा कष्ट हुआ। उनका कष्ट यहां तक बढ़ा कि यज्ञकुंड में गिरकर उन्होंने वहीं अपना शरीर छोड़ दिया। इससे क्रुद्ध होकर महादेवजी ने वीरभद्र की सृष्टि की। वीरभद्र ने दक्ष का यज्ञ नष्टभ्रष्ट कर डाला। महादेव जी ने दक्ष का सिर काटकर अलग कर दिया। फिर दक्ष की स्त्री की स्तुति से प्रसन्न होकर महादेव जी ने ब्रह्मा से कहा कि दक्ष के शरीर से बकरे का मूंड़ जोड़ दो। ब्रह्मा ने वैसा ही किया। तब से दक्ष प्रजापति की अजमुख नाम से प्रसिद्धि हुई।

अजयगढ़—इसका समीकरण उत्तर प्रदेश के बांदा जिले से किया गया है।

अजवेश (प्राचीन)—हिंदी के कवि। इनका जन्म सन् १५१३ में हुआ था। कहा जाता है, ये बांधवेश वीरभानुसिंह की राजसभा के राजकवि थे और उस समय इनका बहुत आदर था। (भारतीय प्रचलित साहित्य)

अजया—कर्दम मुनि के पुत्रगण। ये वैश्यों के पितृगण हैं।

अजयसिंह—चित्तौड़ के महाराणा। ये राणा लक्ष्मणसिंह के पुत्र थे। अलाउद्दीन की उद्दंडता से चित्तौड़ की स्वर्गीय शोभा और रणबांकुरे सिसोदिया क्षत्रियों के नाश होने पर, एकमात्र अवशिष्ट कुमार अजयसिंह मेवाड़ की राजगद्दी पर बैठे। महाराणा अजयसिंह के राज्यभार लेने के समय मेवाड़ की दशा विलक्षण थी। मेवाड़ की पुरानी शोभा एवं संपत्ति कुछ भी नहीं रह गई थी। किंतु ऐसी अवस्था में भी राजपूत कुल का स्वच्छ

गौरव, वीरता, आत्माभिमान और धर्मप्रेम का अंकुर वर्तमान था। इसी कारण अजय हताश नहीं हुए। उन्होंने अपने कुल का गौरव बढ़ाने के लिए प्राणपण से चेष्टा की और वे अपने उद्योग में सफल भी हुए थे। इनका जन्म १३वीं शताब्दी में हुआ था।

अजातशत्रु—(१) युधिष्ठिर का दूसरा नाम, क्योंकि वे किसी को अपना शत्रु नहीं समझते थे।

(२) उपनिषद्वर्णित एक राजा का नाम। इस राजा की राजधानी वाराणसी में थी। ये वेदशास्त्र में बड़े निपुण थे। इनको ब्रह्मज्ञान की शिक्षा देने के लिए महर्षि गार्ग्य गए थे। राजा अजातशत्रु ने महर्षि गार्ग्य का बड़े आदर के साथ स्वागत किया और तत्त्वज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने के लिए, एक हजार गौओं को पारितोषिक में देना चाहा, परंतु शास्त्रों में अजातशत्रु की इतनी निपुणता थी कि गार्ग्य उनको उपदेश तो क्या देते, वे स्वयं उनसे अनेक विषयों का उपदेश लेकर वहां से लौटे।

(३) मगध के एक प्राचीन राजा। इनके पिता का नाम राजा बिम्बिसार था। राजा अजातशत्रु का ४८५ खी० के पूर्व मगध में शासन था, ५३० खी० के पूर्व मगध के राज्यासन पर बिम्बिसार बैठे थे।

अजामिल—एक दुराचारी ब्राह्मण का नाम। यह पहले साधु था, परंतु पीछे संगदोष से यह बेजोड़ दुराचारी बन गया। रखनी के गर्भ से इसके दस पुत्र हुए थे, जिनमें एक का नाम नारायण था, वह इसका प्रिय पुत्र था, मरते समय इसने अपने पुत्र नारायण को पुकारा। इसको लेने के लिए यमदूत और विष्णुदूत दोनों पहुंचे, दोनों में तर्क-वितर्क होने लगा। यमदूत कहते थे कि इसको अपने पापों का फल भोगना पड़ेगा। विष्णुदूत कहते थे कि इसने 'नारायण' का नाम स्मरण किया है, अतएव हम लोग इसको वैकुंठ ले जाएंगे। लोग कहते हैं कि विष्णुदूत ही इसे वैकुंठ ले गए। परंतु श्रीमद्-भागवत में लिखा है कि यमदूत और विष्णुदूत की बातें सुनकर अजामिल को ज्ञान हो आया, उसने सोचा कि यदि अन्य अभिप्राय से भी नारायण का नाम-स्मरण करने का यह फल है तो भक्तिपूर्वक भगवत्सेवा का कितना अच्छा फल होगा। यही सोचकर वह हरिद्वार चला गया और अनन्य चित्त से भगवान् की उपासना करने लगा। अंत में विष्णुदूत उसे वैकुंठ ले गए।

अजित—राठौर वीर राजा यशवन्तसिंह का पुत्र, महाराजा यशवन्तसिंह के स्वर्ग सिधारने पर उनकी सभी रानियां उनके साथ जलने को उद्यत हुईं। उनमें दो रानियां गर्भवती थीं। लोगों के बहुत समझाने पर उन दोनों गर्भवती रानियों ने प्रसव तक जीना उचित समझा। यथासमय उन दोनों में एक रानी के पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम अजित रखा गया। पुत्र के कुछ बड़ा होने पर, राठौर वीर राजकुमार तथा राजपरिवार के और लोगों को साथ ले, अपने देश की ओर चले। परंतु औरंगज़ेब से यह बात देखी नहीं गई। राठौरों से कुमार अजित को छीन लेने का वह प्रयत्न करने लगा। उसने राठौर सरदारों को मारवाड़ का राज्य देने का लोभ दिखाया। राठौरों की राजभक्ति का उसे ज्ञान नहीं था। उसे यह मालूम नहीं था कि भारत-वासी इंद्रपुरी के समान ऐश्वर्यशाली नगर का अधि-कार देकर राजा का अपकार करना नहीं चाहते। इसी से उसने सामान्य लोभ दिखाकर राठौरों को अपने वश में करना चाहा था। अतएव राठौरों का कोरा उत्तर पाकर, उसे बड़ा क्रोध हुआ। उसने उसी समय अपनी सेना को राठौरों का वध करने की आज्ञा दी। यह समय राठौरों के लिए बड़ा ही भयंकर था, उन लोगों ने उस समय बड़ी धीरता और विचार से काम लिया। राजकुमार अजित को राठौर वीर दुर्गादास ने मिठाइयों के टोकरे में रखकर एक विश्वासी मनुष्य के यहां भेज दिया। अब वे निश्चिंत हुए और अपनी तेज तलवारों का प्रभाव यवन सेना को दिखलाने लगे। जिस प्रभुभक्त वीर ने कुमार अजित की रक्षा का भार ले रखा था, वह खीची वंश का एक सरदार था, उसका नाम मुकुन्द था। जिस समय दुर्गादास दक्षिण में लड़ने को गए थे, उस समय अन्य सरदारों ने मुकुन्द के यहां दूत भेजा कि अब हमें अपने राजकुमार का दर्शन करा दो। पहले तो उसने दुर्गादास के आ जाने तक ठहरने के लिए उनसे अनुरोध किया, परंतु उनकी अधीरता देखकर उसने राजकुमार को सरदारों से मिला दिया। दुर्गादास की महानुभावता से कुमार अजित राजगद्दी पर बैठे। अजितसिंह का ब्याह राणा के चाचा की लड़की से हुआ था। इन्होंने मुसलमानों से बड़ी लड़ाइयां लड़ीं। कई बार इन्हें मारवाड़ की राजगद्दी छोड़कर भागना भी पड़ा था, परंतु पुनः वे मारवाड़ का सिंहासन पा गए। सांभर के युद्ध में इनकी विजय हुई थी। बीकानेर पर भी इन्होंने चढ़ाई की थी। अजित ने राजा जयसिंह को अजमेर के सिंहासन पर बैठाने का उद्योग किया था। वृद्धावस्था में इन्होंने

कुरुक्षेत्र आदि की तीर्थयात्रा की थी ।

(टाड्स राजस्थान)

अजितापीड—कश्मीर के राजा । इन्होंने चिप्पट जयापीड के अनंतर ३६ वर्षों तक कश्मीर का राज्य किया था । पुनः यस्म आदिकों ने इन्हें राज्यच्युत कर दिया । (राजतरङ्गिणी)

अजीगर्त—'ऐतरेय ब्राह्मण' में इनका नाम पाया जाता है । इनके तीन लड़के थे—शुनःशेप, शुनःपुच्छ और शुनोलाङ्गूल । ये लड़कों के साथ वन में रहा करते थे । इन्होंने ही अपने एक पुत्र को यज्ञ में बलि देने के लिए बेचा था । (ऐतरेय ब्राह्मण)

अजीगर्त सौयविस—'ऐतरेय ब्राह्मण' (७/१५/५७) के अनुसार भृगु कुलोत्पन्न ब्राह्मण । इनके तीन पुत्र हुए, जिनके नाम थे शुनःशेप, शुनःपुच्छ और शुनोलाङ्गूल । इन्होंने अपने पुत्र शुनःशेप को वरुणदेव को बलि देने के लिए हरिश्चन्द्र के हाथ बेच दिया था ।

अजीतसिंह—बूंदी के राजा । ये उम्मेदसिंह के पुत्र थे । जब उम्मेदसिंह सांसारिक झगड़ों से निवृत्त होकर बदरीनाथ की ओर तीर्थयात्रा के लिए चले गए, तब अजीतसिंह अपने पिता का अंत्येष्टि संस्कार करके राज्यारूढ़ हुए । राज्यारूढ़ होने के पश्चात् कुछ समय बीत गया । बीलहठा नामक एक गांव में आम के वृक्ष थे, और उनके फल बहुत मीठे होते थे । बूंदी के रावराजा ने उन वृक्षों को अपने राज्य में मिला लेने के लिए वहां एक किला बनवा दिया और उसकी रक्षा के लिए कुछ सेना भेज दी । राणा को ये समाचार विदित हुए । वे अपनी सेना और सरदारों को अपने साथ लेकर वहां गए और वहां उन्होंने रावराजा को अपने डेरे में बुलवाया । अजीतसिंह आए और उन्होंने आकर ऐसी नम्रतापूर्वक उनसे बात की कि राणा का क्रोध बिलकुल शांत हो गया । दोनों में प्रेम भाव स्थापित हुआ । अजीतसिंह ने राणा को अपने यहां गौरी उत्सव में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रण दिया । उन्होंने भी सहर्ष स्वीकार किया । उसी समय सूअर का शिकार खेलने की भी ठहरी थी । उम्मेदसिंह उस समय बदरीनाथ से लौटे आ रहे थे । उन्होंने अजीतसिंह को कहला भेजा कि तुम राणा के साथ शिकार में सम्मिलित न होओ, नहीं तो अमंगल होगा, परंतु अजीतसिंह ने पिता की आज्ञा न मानी । उन्होंने पिता को उत्तर भेजा कि—'मैं कायर पुरुषों के समान आचरण कभी नहीं कर सकता ।' दोनों शिकार खेलने चले, परंतु अजीतसिंह का भाव राणा की ओर से बदला हुआ था । क्योंकि राणा के मंत्री ने उनको कुछ अपमानजक बातें कही थीं । शिकार खेलने के अनंतर राणा ने अजीत को बिदा किया । वह भी कुछ दूर तक चले आए । एकाएक उनको अपने अपमान की बात स्मरण हो आई । वह लौटकर राणा के पास गए । राणा ने इन्हें आते देख हंसकर पुनः बिदा कर दिया । अबकी बार यह थोड़ी दूर लौट तो आए, परंतु शीघ्र ही घूमकर इन्होंने राणा के एक भाला मारा । इस भाले से आहत होकर राणा का काम तमाम हो गया । अजीत अपने घर लौट आए । दो ही महीने के भीतर अजीत का भी परलोकवास हो गया । क्योंकि इन पर एक सती का शाप पड़ा था । कहते हैं कि बम्बाबादा की सती रानी ने प्रज्वलित चिता में जलते समय दोनों राजकुलों को शाप दिया था । सती ने कहा था कि वासंती उत्सव होने के पहले, यदि राव और राणा मिलेगे तो अवश्य ही दोनों की मृत्यु होगी । उसी शाप से दोनों को प्राण खोने पड़े :

(टाड्स राजस्थान)

अजुधन—कनिंघम के अनुसार यह नगर वर्तमान सतलुज नदी से १० मील दूर तथा देवालपुर के २८ मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित है ।

अजैकपाल—'भविष्यपुराण' (प्रति० ४।११) के अनुसार शंकर का वरद पुत्र । इनका एक पैर मनुष्य का तथा एक पैर बकरे का था । ये अत्यंत प्रभावशाली थे । बचपन में एक बार जब यमदूत इन्हें लेने के लिए आए तो इन्होंने उन पर भी विजय प्राप्त कर ली थी । इस कारण इनका एक नाम मृत्युंजय भी पड़ा ।

अञ्जन पर्वत—पंजाब की सुलेमान पर्वतमाला को ही अंजनागिरि कहा गया है । यह पर्वतमाला पश्चिमोत्तर सीमांत प्रदेश तथा पंजाब को बलूचिस्तान से विभाजित करती है ।

अञ्जना—रामायण के प्रसिद्ध वानरेंद्र हनुमान् की माता । इनके पति का नाम कपिराज केशरी था । हनुमान् केशरी के क्षेत्रज पुत्र थे । वायु के औरस और अञ्जना के गर्भ से हनुमान् उत्पन्न हुए थे । (रामायण)

अञ्जसी—इस नदी का ऋग्वेद में उल्लेख हुआ है; किंतु यह किस क्षेत्र में बहती थी, इस संबंध में कुछ पता नहीं चलता । इसके साथ कुलिश और वीर पत्नी नामक नदियों का भी उल्लेख हुआ है ।

अणीमाण्डव्य—ये एक सत्यवादी जितेंद्रिय, तपस्वी, मौनी

और धार्मिक ब्राह्मण थे। एक समय ये मौनी ब्राह्मण अपने आश्रम के बाहर किसी वृक्ष की छाया में योगाभ्यास कर रहे थे। उसी समय चोरों का एक झुंड इनके आश्रम में जाकर छिप गया। उन चोरों का पीछा करने वाला राजदल वहां आया और महर्षि से चोरों का पता पूछने लगा, परंतु अणीमाण्डव्य मौनी थे; इस कारण उन्होंने कुछ भी उत्तर न दिया। इतने में चोरी की वस्तु वहां ही छोड़कर चोर भी भाग गए। उन लोगों ने चोरी की वस्तु वहां देखकर महर्षि को भी चोरों के साथ पकड़ लिया और उन्हें राजा के सामने उपस्थित किया। नगरपाल आदि से सब बातें सुनकर चोरों के साथ राजा ने महर्षि का भी वध किए जाने की आज्ञा दी। राजपुरुषों ने राजा की आज्ञा से माण्डव्य को शूली पर लटका दिया। ध्यानमग्न मौनी मुनि अपनी इस विपत्ति का कुछ भी कारण नहीं जानते थे, परंतु शूलविद्ध होकर भी बिना खाए-पिए बहुत दिनों तक जीवित रहे। राजा को इसकी खबर मिली, वे स्वयं वहां आए और मुनि को शूली से उन्होंने उतरवाया। राजा ने शूली निकलवाने की बड़ी चेष्टा की, परंतु वह न निकल सकी। तब राजा ने उसे यों ही छोड़कर इधर-उधर की रस्सियां कटवा दीं। माण्डव्य उसी प्रकार शूली से विद्ध होकर भी अनेक तीर्थों की यात्रा करते रहे। तभी से उनका नाम अणीमाण्डव्य पड़ा। एक समय इन्होंने यमराज के पास जाकर पूछा था कि मेरी ऐसी दशा क्यों हुई ? यमराज ने उत्तर दिया, 'आपने एक पतंगे की पूंछ में एक बार लकड़ी घुसेड़ी थी। इसी कारण आपको यह कष्ट हो रहा है।' मुनि ने कहा, 'आपने मुझे छोटे से अपराध के कारण गुरुतर दंड दिया है, इस कारण आपको शूद्र-योनि में जन्म लेना पड़ेगा।' (महाभारत)

अणुह—इनका अपर नाम नीच भी है। इनके पिता का नाम राजा पार या विभ्राज था। इनकी पत्नी का नाम कृत्वी या कीर्तिमती था, जो कि शुक्राचार्य की कन्या थीं। इनके ब्रह्मदत्त आदि सौ पुत्र हुए।

अण्ड—ययाति के पुत्र। ये पुरु से छोटे थे, ययाति ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अणु को अपना राज्य दिया था और पुरु ने अणु को राजप्रतिनिधि बनाकर दक्षिण दिशा का शासन करने के लिए भेजा था। (महाभारत)

अतिकाय—लङ्केश्वर रावण का पुत्र। ब्रह्मा ने इस पर प्रसन्न होकर इसे एक कवच दिया था। इस कवच के प्रभाव से वह देवताओं का भी अवध्य हो गया था। इसका लक्ष्मण के साथ घोर युद्ध हुआ था, और उसी युद्ध में यह मारा भी गया था। (रामायण)

अतिथि—कुश का पुत्र और रामचन्द्र का पौत्र। इसके राज्यकाल की किसी विशेष घटना का कहीं पता नहीं चलता।

अतिधन्वन्—ये मशक के शिष्य थे और 'वंश ब्राह्मण' के अनुसार इनके शिष्य का नाम उदर शाण्डिल्य था। 'छान्दोग्य उपनिषद्' (१।९।३) के अनुसार इन्होंने उदर शाण्डिल्य को उद्गीथ की उपासना का ज्ञान दिया था।

अत्यराति जानन्तपि—ब्राह्मण ग्रंथों में इन्हें पृथ्वी का विजेता कहा गया है। वासिष्ठ सात्यहव्य ने इनका ऐंद्र महाभिषेक किया था। उन्होंने जब इनसे पौरोहित्य की दक्षिणा मांगी तो इन्होंने उत्तर कुरुओं को विजित करने के उपरांत दक्षिणा रूप में पृथ्वी का स्वामित्व प्रदान करने के लिए कहा और उन्हें अपना सेनापति बनाने का वचन दिया। इस पर पुरोहित सात्यहव्य ने कहा कि 'यह सर्वथा धोखा है, क्योंकि कोई भी मनुष्य उत्तर कुरुओं पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता। इस अविश्वास के फलस्वरूप सात्यहव्य ने उसे बलहीन कर दिया और शिवि के पुत्र असिमतपन शुष्मिण शैव्य के द्वारा उसका वध करा दिया। 'ऐतरेय ब्राह्मण' (८।२३) की इस कथा में क्षत्रिय का ब्राह्मण के प्रति द्वेषभाव का कुपरिणाम बताया गया है।

अत्रि—ब्रह्मा के मानस पुत्र। ये सप्तर्षियों में से एक हैं। कर्दम प्रजापति की कन्या अनसूया इनकी स्त्री थी। महर्षि दुर्वासा और चन्द्रमा इनके पुत्र थे। मनुस्मृति में लिखा है कि मनु से दस प्रजापति उत्पन्न हुए थे, जिनमें से अत्रि एक हैं। ये धर्मशास्त्रप्रवर्त्तक थे। इनके बनाए धर्मशास्त्र का नाम 'अत्रिसंहिता' है।

अथर्ववेद—चौथे वेद का नाम। यह ब्रह्मा के उत्तरीय मुंह से उत्पन्न हुआ था। सुमन्त ने इस वेद को अपने शिष्य कबन्ध को पढ़ाया था। इसका अधिकतर संकलन वेदव्यास ने किया है। इसके पांच कल्प हैं। इसमें अनुष्ठान विधान का वर्णन है। यह प्रधानतः नौ भागों में विभक्त है। पहले अथर्ववेद की बहुत-सी शाखाएं थीं। परंतु इस समय एक शौनक शाखा के अतिरिक्त दूसरी संख्या नहीं पाई जाती। 'चरणव्यूह' के मत से अथर्ववेद के बारह हजार तीन सौ मंत्र थे, परंतु इस समय पांच हजार आठ सौ तीस मंत्र हैं। अथर्ववेद के ब्राह्मण का नाम 'गोपथ ब्राह्मण' है। इस समय अथर्ववेद बीस कांडों में विभक्त है। अथर्ववेद का संकलन करने

वालों के विषय में तीन मत प्रचलित हैं, किसी-किसी के मत से अथर्व और अङ्गिरा ऋषि के वंशज इसके संकलन कर्ता हैं। कोई भृगुवंशियों को अथर्ववेद का संकलनकर्ता मानते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि यज्ञ करने के समय अथर्व ऋषि ने अथर्ववेद का संकलन किया था।

अथर्वा—(१) ब्रह्मा के ज्येष्ठ पुत्र। ब्रह्मा ने अथर्वा को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया था। इन्हीं ने सब से पहले अग्नि की सृष्टि की थी और यज्ञ का प्रचार किया था। पहले गद्य, पद्य और रीति सभी प्रकार के वेद-मंत्र मिले हुए थे। उस समय वेदों का नाम त्रयी था। प्रत्यक्ष फलप्रद शत्रु-मारण उच्चाटन आदि यज्ञ के उपयोगी विषयों को इन्होंने पृथक किया था। उस समय से वेद के दो भाग हुए। बड़े भाग का नाम त्रयी और छोटे भाग का नाम अथर्ववेद हुआ। महर्षि कृष्णद्वैपायन ने इस त्रयीवेद को भी रचना के अनुसार तीन भागों में विभक्त किया; जिनका नाम ऋक्, यजुः और साम पड़ा।

(२) एक जाति का नाम, इस जाति के नेता अथर्वा थे, और अथर्वा ही का वंशज उस जाति का नेता होता था। पारसी जाति में यह प्रथा आज तक प्रचलित है।

अदिति—महर्षि कश्यप की पत्नी। ये दक्ष प्रजापति की कन्या थीं। वामन अवतार में विष्णु ने इन्हीं के गर्भ से जन्म ग्रहण किया था। ये देवताओं की माता थीं। नरकासुर के मारने पर श्री कृष्ण को जो दो कुंडल मिले थे, उन्हें श्रीकृष्ण ने अदिति को समर्पित किया था। पारिजात को लेकर श्रीकृष्ण और इन्द्र में जो कलह उत्पन्न हुआ था उसका निपटारा अदिति ने किया था। ब्राह्मण ग्रंथों में अदिति को विष्णु की स्त्री लिखा है।

अदीन—सहदेव के पुत्र थे। देवासुर-संग्राम में इनकी प्रसिद्ध हुई।

अद्भुत—नवें मन्वंतर का इन्द्र।

अद्रिका—व्यास की माता। इसी का दूसरा नाम मत्स्य-गन्धा या योजनगन्धा था, जिससे व्यासदेव पराशर मुनि के औरस से उत्पन्न हुए थे।

अदृश्यन्ती—(१) महर्षि वशिष्ठ के ज्येष्ठ पुत्र शक्रि की स्त्री इसी के गर्भ से प्रसिद्ध महर्षि पराशर का जन्म हुआ था। (महाभारत)

(२) चित्रमुख ब्राह्मण की कन्या। 'महाभारत' (अनु० ५३।१७) के अनुसार इसका पिता पहले वैश्य था और फिर तप द्वारा ब्राह्मण हो गया।

अद्वैत—वेदांत का एक सिद्धांत (देखिए, शङ्कराचार्य)।

अधर्म—ब्रह्मा के पृष्ठदेश से इसकी उत्पत्ति हुई थी। इसके वामभाग से दरिद्रा उत्पन्न हुई थी और इसने उसी से ब्याह किया था।

अधिरथ—अङ्गदेश के रहने वाले एक क्षत्रिय। ये यद्यपि क्षत्रिय जाति के थे, तथापि ये जीविका के लिए सूत (रथवाह) का काम करते थे। इनकी स्त्री का नाम राधा था। एक समय ये दोनों पति-पत्नी स्नान करने के लिए गंगा के तट पर गए हुए थे। वहां इन लोगों ने एक काठ का संदूक बहते देखा। पति पत्नी ने विचार कर उस संदूक को निकालना स्थिर किया। बड़े परिश्रम से उसे गंगा की धारा से निकालकर, ये उसे अपने घर ले आए। संदूक तोड़कर देखा गया, तो उसमें सुंदर और सुलक्षण कुंडल कवच सहित एक बालक मिला। इन दोनों ने बड़े प्रेम से उस बालक का लालन-पालन किया। उसका नाम इन लोगों ने वसुषेण रखा था। यही बालक वयस्क होने पर कर्ण नाम से एक प्रसिद्ध वीर हुआ था। (महाभारत)

अधिराज—दतिया के राजा दन्तवक्र को दिग्विजय-यात्रा के समय सहदेव ने मारा था।

अधिसामकृष्ण—विभिन्न पुराणों में इस नाम को अधिसोम-कृष्ण या असीमकृष्ण के रूप में लिखा गया है। पुराणों की वंशावली में इन्हें भविष्यकालीन राजा कहा गया है। 'मत्स्यपुराण' में इन्हें शतानीक का पुत्र कहा गया है। 'वायुपुराण' (९९।२७१) के अनुसार हस्तिनापुर के बह जाने के बाद उन्होंने कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया। इनका वंश-क्रम इस प्रकार है—शतानीक-अश्वमेधदत्त-अधिसामकृष्ण।

अधोर—'पद्मपुराण' (पाता० १११) में इन्हें एक राजा तथा शिव का परम भक्त लिखा गया है। इन्होंने एक बार किसी निरपराध स्त्री को मृत्यु-दंड दिया तथा एक शिव मंदिर को जलाया। इन दो दुष्कृत्यों के फलस्वरूप इनका अपर जन्म पिशाच योनि में हुआ। इनके मुख से अग्निज्वाला धधकती रही। शंकर के अनुग्रह से इनको पिशाच योनि से मुक्ति मिली और शिवगणों में स्थान प्राप्त हुआ।

अनग्नि—पितरों में परिगणित। इनकी पत्नी का नाम स्वधा था, जो कि दक्ष प्रजापति की कन्या थी। इनको दो कन्याएं हुईं, जिनके नाम थे—वयुना और

धारिणी (भाग०४।१।६२; पद्म सृ०६)।

अनङ्ग—कामदेव का दूसरा नाम। पुराने समय में तारकासुर के अत्याचार से पीड़ित होकर देवता ब्रह्मा की शरण में गए। ब्रह्मा बोले, 'महादेव के औरस से कार्त्तिकेय जब उत्पन्न होंगे तब वे ही देवसेनापति होकर तारकासुर का विनाश कर सकते हैं। महादेव को पुत्र उत्पन्न करने में प्रवृत्त कराने की इच्छा से कामदेव को साथ लेकर देवता हिमालय पर गए। उस समय महादेव हिमालय पर योगमग्न थे। पार्वती को आगे रखकर कामदेव ने महादेव पर पुष्पबाण छोड़ा। उससे महादेव का चित्त चंचल हुआ। इसका कारण जानने के लिए उन्होंने नेत्र खोले, तो सामने कामदेव को बैठे देखा। कामदेव ही को उन्होंने अपने योग-भंग का कारण समझा। उनकी आंखों से अग्नि की चिनगारियां निकलने लगीं। उसी में पड़कर कामदेव भी भस्म हो गया। उसी समय से मदन का नाम अनङ्ग हुआ। शिव की क्रोधाग्नि में भस्म होने पर कामदेव कृष्ण के औरस से उत्पन्न हुए, उनका नाम प्रद्युम्न पड़ा था और मदन की स्त्री रति भी पति से मिलने की इच्छा से मायावती रूप से उत्पन्न हुई थी।

अनङ्गभीम—उड़ीसा के एक प्राचीन राजा का नाम। कहते हैं कि पुरी का वर्तमान जगन्नाथ का मंदिर इन्हीं का बनवाया हुआ है। सन् १७६७ में इनका राज्याभिषेक हुआ था। अनेक पुण्यकार्य करके इन्होंने प्रसिद्धि प्राप्त की थी। इन्होंने ६० देवमंदिर ४० कुएं और १५२ पत्थर के घाट बनवाए थे और सौ से अधिक ग्राम इन्होंने ब्राह्मणों को दान में दिए थे।

अनङ्गापीड—ये काश्मीर के राजा थे। इनके पिता का नाम संग्रामपीड था। उस समय के उच्च राज-कर्मचारियों ने अजितपीड को राज्यच्युत करके अनङ्गापीड को कश्मीर का राजा बनाया था। उत्पल का पुत्र सुखवर्मा इनके सहायक यस्म आदिकों की प्रधानता से भीतर ही भीतर जलता रहता था। अतएव इनके राज्यलोभ से सुखवर्मा को बड़ा दुःख हुआ। अनङ्गापीड के राज्याभिषेक के तीन वर्ष बाद उत्पल मारा गया। सुखवर्मा ने षड्यंत्र रचकर अनङ्गापीड को राज्य से उतार दिया। इन्होंने केवल तीन वर्ष राज्य किया था। (राजतरङ्गिणी)

अनन्त—(१) नागराज। इनका दूसरा नाम शेष, वासुकी, गोनस आदि है। ये महर्षि कश्यप के औरस और कद्रु के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। वयस्क होने पर इन्होंने जटा-वल्कल धारण कर बदरिकाश्रम आदि तीर्थों में तपस्या की। इनकी तपस्या से संतुष्ट होकर ब्रह्मा ने इन्हें वर दिया और ब्रह्मा ने सानुरोध प्रार्थना की कि 'भूमि को अपने सिर पर इस प्रकार धारण करो जिससे यह विचलित न हो सके!' अनन्त ने ब्रह्मा की आज्ञा मान ली। (हरिवंश)

(२) हिंदी के एक कवि। ये सन् १६३५ में उत्पन्न हुए थे। इनका रचा 'अनन्तानन्द' नामक एक ग्रंथ है; जिसकी रचना प्रेमियों की बातों को लेकर की गई है।

अनन्तदेव—काश्मीर के राजा। ये हरिराज के पुत्र थे, पिता की मृत्यु के अनंतर ये काश्मीर के राजसिंहासन पर बैठे थे। इनकी छोटी अवस्था ही में इनका पितृ-वियोग हुआ था, अतएव पिता के न रहने से जो राजपुत्रों में दोष पाए जाते हैं उन दोषों से अनन्तदेव भी बचे नहीं थे। खर्च करने में इनका हाथ खुला हुआ था। चाटुकारों की इनके यहां कमी नहीं थी। शाहितनय, रुद्रपाल आदि उनके अत्यंत प्रिय हो गए थे। उन्हें राजकोष से अधिक वेतन दिया जाता था, तो भी वे अधिक धन पाने की इच्छा से सर्वदा अपनी दरिद्रता ही दिखाया करते थे। अनन्तदेव स्वयं विलासी थे और उनका अपने चाटुकारों पर बड़ा विश्वास था, अतएव वे राज्य में मनमाने कार्य करते थे। रुद्रपाल डाकुओं की रक्षा किया करता था। अतः डाकु उसे अपना आश्रयदाता समझते थे। राजा का रुद्रपाल अत्यंय प्रिय था। इसका कारण यह है कि जालन्धर के राजा इन्दुचन्द की छोटी कन्या और उसकी छोटी साली सूर्यमती का ब्याह राजा से करा दिया गया था। सूर्यमती एक सुंदरी स्त्री थी। जिस प्रकार कर्ण के परामर्श से दुर्योधन अन्यायी हो गया था उसी प्रकार रुद्रपाल के परामर्श से राजा अनन्तदेव भी दुर्नीति-परायण हो गए थे।

राजा की ऐसी दशा देखकर कप्पन के राजा ने उनके राज्य पर चढ़ाई की। अनन्तदेव की सेना भी उसके पक्ष में मिल गई थी। परंतु एकांक और घुड़-सवारों ने इनका पक्ष नहीं छोड़ा था। काश्मीर राज्य ने उनका सामना किया। दोनों ओर से घोर युद्ध होने लगा। अनन्तदेव ने बड़ी वीरता और बुद्धिमानी से कप्पनराज त्रिभुवन के भालों को बचाकर उन पर तलवार का वार किया। त्रिभुवन बख्तर पहने हुए था, इस कारण उसका सिर तो नहीं कट सका, परंतु

वह रुधिर उगलने लगा, मानो वह अपना प्रताप उगल रहा था। उस समय तक अनन्तदेव प्रौढ़ नहीं हुए थे। बालक का पराक्रम देख त्रिभुवन भयभीत होकर भाग गया। इस विजय से प्रसन्न होकर अनन्तदेव ने बहुत दान किया। कहते हैं कि अनन्तदेव की मुट्ठी इस युद्ध में इस प्रकार बंध गई थी कि तीन दिनों तक नहीं खुली।

राज्य का कोषाध्यक्ष ब्रह्मराज रुद्रपाल की प्रधानता से डाह रखता था। इनको नीचा दिखाने की इच्छा से दरदराज अचलमङ्गल और सात म्लेच्छ राजाओं को काश्मीर पर वह चढ़ा ले आया। दरदराज के साथ विशाल डामरों की सेना आई थी। जब वे क्षीरपृष्ठ नामक गांव में आए, तब पराक्रमी रुद्रपाल ने उनकी सेना का सामना किया। उस दिन दोनों ओर से यह निश्चित हुआ कि कल से युद्ध होगा। परंतु पुनः किसी कारणवश, उसी दिन युद्ध प्रारंभ हो गया। दोनों ओर के वीर कट-कटकर गिरने लगे। देखते-देखते दरदराज का भी अंत हो गया। म्लेच्छ राजाओं में से कितने ही मारे गए और कितने ही कैद कर लिये गए। इस प्रकार राजा अनन्तदेव ने इस युद्ध में भी विजय प्राप्त की। इस युद्ध के समाप्त होने के दो महीने के भीतर ही रुद्रपाल भी लूता रोग से पीड़ित होकर मृत्यु मुख में पतित हुआ। इसी प्रकार और भी शाहिपुत्र एक-एक करके मर गए।

अनन्तदेव का स्वभाव पुनः परिवर्तित हुआ। वह सूर्यमती के साथ रहने लगा। सूर्यमती के प्रति उसका अनुराग बहुत बढ़ गया। यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि वह स्त्री के वशीभूत हो गया। सूर्यमती ने अपने पुत्र कलश को राजगद्दी देने का उनसे अनुरोध किया। राजा उसके कहने को टाल भी नहीं सके। यद्यपि अनन्तदेव को ऐसा करने से मंत्रियों ने रोका था तथापि सूर्यमती की आज्ञा का लंघन वे न कर सके। काश्मीर के राज्यासन पर कलश का अभिषेक हुआ। अनन्तदेव का राज्य संबंध छूट गया। एक दिन अनन्तदेव के गले में हाथ डालकर कलश ने कहा कि जब इतने बड़े-बड़े राजा मेरे सामने हाथ जोड़कर खड़े रहते हैं और मुझे देव कहते हैं, तब आपको भी वैसा ही करना उचित है। इससे अनन्तदेव को क्रोध आया। यह देखकर कलश कुछ हंसा और बोला, 'जब आपके हाथ में कुछ भी शक्ति नहीं है तब आपका क्रोध करना व्यर्थ और हानिकारी है। राजमंत्री को जब इसकी खबर लगी तब उन्होंने एक कौशल रचा। एक दिन कलश को अनन्तदेव के समीप ले जाकर राजमंत्री कहने लगे, 'महाराज, आपने वृद्धावस्था में राज के झंझटों से पीछा छुड़ाकर अच्छा काम नहीं किया। क्योंकि हमारे नये महाराज का यह तरुण वय खेलने-कूदने और सुख लूटने के लिए है, सो आपने इनके सिर पर राज्य का भार देकर इनका सुख छीन लिया। इस बात का कलश के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा। इसी प्रकार अन्य कौशलों से भी मंत्री ने पुनः अनन्तदेव को राज्यासन पर बैठाया। अनन्तदेव पुनः राज्य पालन करने लगे। इधर कलश भी बड़ा हुआ। साथ-साथ उसकी दुश्चरित्रता भी बढ़ती गई। पिता-पुत्र के बीच का कलह कभी शांत होता था, कभी बढ़ता था। दो-तीन बार अनन्तदेव को राज्य छोड़कर भागना भी पड़ा था। अंत में इनकी स्त्री ने भी इनका साथ छोड़ दिया। इन्हीं सब कारणों से अनंतदेव ने आत्महत्या कर ली। इन्होंने ५३ वर्ष ४ महीने ७ दिन राज्य किया था।

अनन्दसिंह—ये अहवानदी, जिला सुलतानपुर के रहने वाले थे और सन् १८७३ में वर्तमान थे।

अनन्य—हिंदी के कवि थे। सन् १७३३ में ये जन्मे थे। इनके रचे वेदांत संबंधी पद प्रायः पाए जाते हैं। और इनके बहुत से पद चेतावनी के भी पाए जाते हैं।

अनन्य अलि—इनका जन्म १९४० वि० (१९८३ ई०) के लगभग हुआ था। इनका परिवार-नाम भगवानदास था। इन्होंने स्वयं ही लिखा है कि राधा जी ने प्रसन्न होकर मुझे अनन्य अलि नया नाम दिया। ये वैश्य जाति में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता राधावल्लभीय थे, इसलिए श्रीकृष्ण-भक्ति का वातावरण उन्हें बाल्यकाल से प्राप्त हुआ। संभवतः ये बुंदेलखंड के निवासी थे। बीस वर्ष की अवस्था में इन्होंने घरबार छोड़कर वैराग्य धारण कर लिया था और वृंदावन चले आए थे। इन्होंने लगभग ८० ग्रंथों की रचना की जो कि अनन्य अलि की वाणी के नाम से संकलित हैं। 'लीला स्वप्नप्रकाश सूधी बात' नामक गद्यवार्ता के कारण इनका नाम प्रसिद्ध हुआ। अपने तेरह स्वप्नों का वर्णन इन्होंने गद्य में किया है, जो कि अत्यंत हृदयग्राही हैं। इनकी वाणी में प्रसाद तथा माधुर्य का अपूर्व संयोग हुआ है। काव्य-रस की दृष्टि से उनका विशेष महत्व है। इन्होंने 'स्वप्न' प्रसंग में जिस गद्य का प्रयोग किया है, हिंदी में गद्य साहित्य की दृष्टि से उसका ऐति-

हासिक महत्व है। इन्होंने सिद्धांत नित्यविहार, वृंदावन वर्णन, विविध लीला-वर्णन, नखशिख-वर्णन और राधा-कृष्ण रूप-वर्णन पर अत्यंत हृदयग्राही रचनाओं की सृष्टि की है।

अनन्यदास– हिंदी कवि। ये गोंडा के अंतर्गत चाकेदेवा के रहने वाले थे और सन् ११४८ में उत्पन्न हुए थे। ये 'अनन्ययोग' नामक ग्रंथ के रचयिता हैं।

अनपान—इसका अपान हार नहीं था। इसीलिए इन्हें ऐसा नाम दिया गया। 'वायुपुराण' में इन्हें दधिवाहन का पुत्र कहा गया है।

अनमित्र—(१) इनके पिता का नाम नृपति निघ्न था।

(२) वृष्णि के दो पुत्रों का नाम।

(३) शिवि राजा का पुत्र, जो कि बड़ा पराक्रमी था। 'भागवत' में इसे युधाजित् का पुत्र कहा गया है।

अनरण्य—अयोध्या के राजा। जिस समय रावण दिग्विजय करने निकला था उस समय ये अयोध्या में राज्य करते थे। अन्यान्य राजाओं के समान रावण अयोध्या पहुंचा, और अनरण्य से लड़ने के लिए या पराजय स्वीकार करने के लिए कहा। इक्ष्वाकुवंशी राजा अनरण्य की सेना लड़ने को तैयार हुई। उनकी सेना में १० हजार हाथी, १ लाख घोड़े, और हजारों रथ तथा अगणित पैदल थे। दोनों ओर की सेनाओं में युद्ध प्रारंभ हुआ। अनरण्य की सेना कुछ देर तक तो वीरता के साथ लड़ती रही, परंतु मनुष्य-भक्षी राक्षसों का तेज उससे नहीं सहा गया। अपनी सेना की विकलता और नाश देखकर अनरण्य क्रोधपूर्वक गरजकर रावण की ओर आगे बढ़े। इन्होंने रणकुशलता और वीरता दिखाई। रावण के पराक्रमी प्रहस्त आदि सेनापति रणभूमि में नहीं ठहर सके। इन्होंने रावण के सिर में अनेक बाण मारे; परंतु वे बाण रावण का कुछ बिगाड़ नहीं सके। इनका साहस और अधिक बढ़ते देख रावण ने एक चपत जमाया, जिससे ये रथ से गिर पड़े। अंत में रावण को दशरथपुत्र रामचन्द्रजी के द्वारा मारे जाने का शाप देकर ये परलोक सिधारे।

(रामायण)

अनल—(१) धर्म और वसु से उत्पन्न पुत्र। अष्ट वसुओं में परिगणित। इनके चार पुत्रों के नाम थे—कुमार (कार्त्तिकेय), शाख, निशाख और नैगमेय। 'ब्रह्माण्ड पुराण' (३।३।२१-२६), 'महाभारत' (आ०प० ६७) और 'विष्णुपुराण' (१।१५) में इन्हें वर्तमान मन्वंतर में आग्नेय दिशा का स्वामी माना गया है।

(२) विभीषण के अमात्यों में से एक।

(३) गरुड़ का पुत्र (मह० पु० ६६।६)।

अनला—(१) रोहिणी की दो कन्याओं में से दूसरी। इनकी कन्या का नाम शुकी था।

(२) 'रामायण' (उ०कां०६१।१६) में इन्हें माल्यवान् राक्षस द्वारा सुंदरी नामक स्त्री से उत्पन्न कन्या कहा गया है। इनका विवाह विश्वावसु राक्षस से हुआ था। इनकी कन्या का नाम कुम्भीनसी था।

अनवरखां—इनका जन्म सन् १७२३ में हुआ था। ये हिंदी के कवि थे। इन्होंने 'बिहारी की सतसई' की टीका बनाई थी, जिसका नाम 'अनवर-चंद्रिका' है।

अनस्वन्—'महाभारत' (आ० प० ९०।४२) के अनुसार विदूरथ का पुत्र। इनकी माता का नाम सम्प्रिया था, जो कि मगधवंशीया थीं। इनकी पत्नी का नाम अमृता और इनके पुत्र का नाम परीक्षित था।

अनसूया—(१) अत्रि मुनि की पत्नी और दक्ष प्रजापति की कन्या थी। दक्षप्रजापति के औरस और प्रसूति के गर्भ से इसका जन्म हुआ था।

(२) महाकवि कालिदास ने अपने 'शकुन्तला' नाटक में भी एक अनसूया को नाटक की पात्री बनाया है। वह शकुन्तला की सखी थी।

अनाथदास—इनका जन्म सन् १६५६ में हुआ था। इनकी रचना शांत रस-प्रधान होती थी। इनका बनाया एक ग्रंथ है, जिसका नाम है 'विचारमाला' ये हिन्दी के कवि थे।

अनाधृष्टि—(१) 'महाभारत'(आ०प० ८६।१०) के अनुसार रौद्राश्व का पुत्र। इनकी पत्नी कोई अप्सरा थी।

(२) शूर राजा का पुत्र।

(३) श्रीकृष्ण का भक्त, यादववंशीय, जिसका उल्लेख 'महाभारत' (आदि प०, सभा प०, उद्योग प०) के अनेक स्थलों पर हुआ है।

अनायुषा—यह एक राक्षसी थी। 'ब्रह्माण्डपुराण' (३।६।३१-३७) के अनुसार इसके अनेक पुत्रों के नाम थे—अरुरु, बल, विज्वर, वृत्र तथा वृष।

अनितभा—इसका अस्तित्व ऋग्वेद-कालीन है। संभवत: यह सिंधु की कोई पश्चिमी सहायक नदी थी।

अनिरुद्ध—श्रीकृष्ण के पौत्र और प्रद्युम्न के पुत्र। इन्होंने दैत्यराज बाण की कन्या ऊषा को ब्याहा था। पार्वती के वर से ऊषा ने इनको स्वप्न ही में अपना पति बना लिया था और द्वारका से अनिरुद्ध को ले आने के लिए

अपनी सखी चित्रलेखा को भेजा था। द्वारका पहुंचकर चित्रलेखा अनिरुद्ध को लेने का उपाय सोच रही थी। उसी समय नारद मुनि वहां पहुंच गए। नारद की सम्मति के अनुसार चित्रलेखा श्रीकृष्ण के अंत:पुर में गई और उसने नारद की बताई तामसी विद्या के प्रभाव से सबको मोहित कर और अनिरुद्ध को लेकर प्रस्थान किया। मार्ग में उसने सब बातें अनिरुद्ध से कह सुनाईं और उसके साथ ही साथ बाण की राजधानी शोणितपुर में पहुंचकर, वह अपनी सखी ऊषा के मकान में उपस्थित हुई। ऊषा ने अनिरुद्ध से गंधर्व विवाह कर लिया। इसकी खबर जब बाण को लगी, तब उसने अनिरुद्ध को पकड़ने के लिए सेना भेजी। अनिरुद्ध वीर थे। उन्होंने बाण की सेना को मार गिराया। इससे बाण का क्रोध और बढ़ गया। वह स्वयं अनिरुद्ध को पकड़ने के लिए आया। अनिरुद्ध ने भी उसका सामना किया और वे बहुत देर तक लड़ते रहे। परंतु अंत में मायायुद्ध में उसने अनिरुद्ध को बांध लिया। अनिरुद्ध की दशा का समाचार द्वारका में पहुंचा। श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न आदि वीरों ने बाण की राजधानी शोणितपुर को घेर लिया और भयंकर युद्ध में बाण को पराजित कर, अनिरुद्ध और ऊषा को साथ ले कर वे द्वारका लौट आए।

(हरिवंश)

अनिष्टकर्मन्—'ब्रह्माण्डपुराण' में इन्हें पटुमानपुत्र और 'भागवत' में अष्टमानपुत्र कहा गया हैं। 'विष्णुपुराण' में 'उरिष्टकर्मन्' पाठ है।

अनीकविदारण—'महाभारत' (वन प० २४६।१२) के अनुसार जयद्रथ का भाई।

अनीह—'भागवत' के अनुसार देवानीकपुत्र। इन्हें अहीनरादि नामांतर से भी कहा गया है।

अनु—शर्मिष्ठा के गर्भ से उत्पन्न नहुष-पुत्र राजा ययाति का पुत्र। (देखिए, अणु)

अनुकृष्ण—यजुर्वेद शाखा का एक ब्रह्मचारी।

अनुग्रह—भौत्य मनु का एक पुत्र।

अनुतंस—'भविष्यपुराण' के अनुसार समातंस का पुत्र।

अनुतापन—कश्यप और दनु का पुत्र।

अनुनैन कवि—हिंदी का एक कवि, जिसका जन्म सन् १६५६ ई० में हुआ था। इसका 'नखसिख' नामक ग्रंथ अच्छा बताया जाता है।

अनुभूति—यजुर्वेद शाखा का एक ब्रह्मचारी।

अनुमति—अङ्गिरा की चार लड़कियों में से एक लड़की। 'विष्णुपुराण' में लिखा है कि ये चारों लड़कियां चंद्रमा की चार कलाएं थीं। उस दिन की अधिष्ठात्री देवी, जबकि चंद्रमा तीसरी और चौथी कला में पहुंचता है।

अनुमत्—(१) चाक्षुष के आद्य देवगणों में से एक।
(२) तुषितवर्गीय देवगणों में परिगणित।

अनुम्लोचा—एक अप्सरा का नाम। 'भागवत' (१२।११) के अनुसार भाद्र मास में इसका निवास आदित्य के साथ रहता है।

अनुयामिन्—'महाभारत' (आ० प० ६८) के अनुसार धृतराष्ट्र का पुत्र। भीमसेन ने इसका वध किया था (महा० द्रो० १५८)।

अनुरथ—'विष्णुपुराण' में इनके पिता का नाम कुरुवंश उल्लिखित है।

अनुराधा—दक्ष प्रजापति से असिक्नी में उत्पन्न कन्या; सोमपत्नी।

अनुवक्तृ सत्य सात्यकीर्त—'जैमिनि उपनिषद् ब्राह्मण' (१।५।४) में उल्लिखित एक आचार्य।

अनुविंद—ये अवन्ति के राजा थे। इन्होंने महाभारत के युद्ध में दुर्योधन की ओर से लड़ाई लड़ी थी। इनके बड़े भाई का नाम बिन्द था। इन दोनों ने अर्जुन से बड़ी लड़ाई की थी। अंत में दोनों अर्जुन के हाथ से मारे गए।

अनुव्रत—'मत्स्यपुराण' में इनके पिता का नाम क्षेम उल्लिखित है।

अनुशाल्व—'जैमिनि अश्वमेध पुराण' (१२-१४) के अनुसार शौमपति शाल्व राजा का भाई। इसके भाई का श्रीकृष्ण ने वध किया था। इसलिए श्रीकृष्ण से इनका परम बैर था। श्रीकृष्ण से यह बदला लेना चाहता था। पाण्डवों के अश्वमेध में सम्मिलित होने के लिए श्रीकृष्ण सपरिवार हस्तिनापुर आए हुए थे। उपयुक्त समय जानकर यह अपने सुगार नामक सेनापति के संरक्षण में विशाल सेना के साथ चुपचाप हस्तिनापुर के निकट टिक गया। जिस समय कृष्ण अश्वमेध का अश्व देखना चाहते थे, अनुशाल्व ने उसे चुरा कर भगा लिया। भीमसेन ने सेना के साथ इसका पीछा किया। प्रद्युम्न और वृषकेतु के साथ अनुशाल्व का भयंकर संग्राम हुआ। प्रद्युम्न तो पराजित हो गया, किंतु वृषकेतु ने उसे पकड़ लिया। मृत्युभय के कारण उसने श्रीकृष्ण से मित्रता कर ली और अश्वमेध में अपने सहयोग का वचन देकर अपनी

राजधानी को लौट गया।

अनुशिख—'पंचशिख ब्राह्मण' (२५।१५) के अनुसार सर्पसत्र का प्रपौत्र।

अनुह्लाद—हिरण्यकशिपु का छोटा पुत्र, बुद्धिमान् प्रह्लाद का छोटा भाई। (विष्णुपुराण)

अनूचना—'महाभारत' (आ० ११४।१५) के अनुसार कश्यप ऋषि द्वारा प्राधा में उत्पन्न अप्सरा।

अनूदर—धृतराष्ट्र का पुत्र।

अनूपदास—हिंदी के कवि। इनका जन्म १७४४ ई० में हुआ था। ये शांत रस के उपासक कवि थे। इनके बनाए शांत रस के अनेक दोहे और कवित्त पाए जाते हैं।

अनूपसिंह—बीकानेर के महाराज। ये महाराज करणसिंह के छोटे पुत्र थे। दिल्ली के बादशाह की ओर से रणभूमि में लड़कर करणसिंह तीन बड़े लड़कों सहित अपने प्राण समर्पण कर चुके थे। करणसिंह के तीसरे पुत्र मोहनसिंह के जीवन के वियोगांत नाटक का अभिनय फरिस्ता ने दक्षिण के इतिहास में रुलाने वाली भाषा में लिखा है। उस वर्णन से क्षत्रिय जाति की कर्त्तव्य-पालन की दृढ़ता और सम्मान-रक्षा की ओर झुकाव का अच्छा पता लगता है।

राजा करणसिंह का स्वर्गवास होने पर उनके छोटे पुत्र अनूपसिंह १६७४ ई० में बीकानेर के सिंहासन पर बैठे। महाराज अनूपसिंह वीर और साहसी राजा थे। बादशाह ने पांच हजार घोड़ों का मनसब देकर, इन्हें सम्मानित किया था और औरंगाबाद तथा बीजापुर के शासन का भार भी बादशाह की ओर से इन्हीं को दिया गया। अनूपसिंह अपने कार्य को योग्यतापूर्वक संपादन कर, बादशाह के दरबार में एक प्रभावशाली व्यक्ति हो गए थे। जिस समय काबुल के अफगानों ने दिल्ली के बादशाह के विरुद्ध विद्रोह मचा रखा था, उस विद्रोह का दमन करने के लिए अनूपसिंह ही को बादशाह ने भेजा था। ये और इनकी सेना अपने कार्य में सफल हुई थी। वहां से विद्रोह शांत कर ये अपने राज्य में लौट आए। और भी अनेक युद्धों में इन्होंने प्रसिद्धि-पूर्वक विजय प्राप्त की थी। राजा अनूपसिंह दक्षिण में बादशाही सेना के साथ गए थे। वहां उनसे और सेनापति से कुछ मनोमालिन्य हो गया, जिससे वे लौट आए और कुछ दिनों के बाद उनका स्वर्गवास हो गया। (टाड्स राजस्थान)

अनूहवत्—'वायुपुराण' (६१।११६-१७) की एक कथा में बताया गया है कि इस क्षत्रिय ने तप द्वारा ब्रह्मत्व एवं ऋषित्व का स्थान प्राप्त किया।

अनेनस्—(१) 'भागवत' (९।१७।१-२) के अनुसार ये आयु राजा के पांच पुत्रों में से कनिष्ठ थे। 'महाभारत' (आ० ७०।२३) में इनकी माता का नाम स्वमनिवी उल्लिखित है। इनके पुत्र का नाम प्रतिक्षम था। 'हरिवंश' (१।२९।१-५) तथा 'ब्रह्मपुराण' (११।२७-३१) में इनकी वंशतालिका उल्लिखित है।

(२) 'महाभारत' (वन प० १९३।२) में इन्हें पृथुपुत्र, 'भागवत' में पुरंजयपुत्र और मतांतर से ककुस्थपुत्र लिखा गया है। 'विष्णुपुराण' में इनको क्षेमारिपुत्र कहा गया है। इनके पुत्र का नाम मीनरथ था।

अनेहहि—अङ्गिरा वंश का एक गोत्रकार।

अनोवैन—'ब्रह्माण्ड पुराण' में इन्हें व्यास की साम शाखा की शिष्यपरंपरा में लौगाक्षि का शिष्य बताया गया है।

अनौपम्या—बाणासुर की पत्नी।

अन्तक—सुज्येष्ठ का पुत्र।

अन्तरिक्ष—(१) 'भागवत' (५।४।९-१२; ११।३।३-१६) के अनेक स्थलों में इनका वर्णन हुआ है। वहां इन्हें ऋषभदेव का पुत्र तथा नौ तत्त्वज्ञानियों में से एक तत्त्वज्ञानी बताया गया है। इन्होंने महाराजा जनक को ब्रह्मोपदेश किया था। ये बड़े भगवद्भक्त थे।

(२) 'मत्स्यपुराण' में इन्हें किन्नराश्वपुत्र, 'विष्णुपुराण' तथा 'वायुपुराण' में किन्नरपुत्र और 'भागवत' में पुष्करपुत्र कहा गया है।

(३) मुरा के सात पुत्रों में से द्वितीय, जिसका श्रीकृष्ण द्वारा वध हुआ था।

(४) 'व्यास' पदवीधारी।

(५) आद्य देवताओं में परिगणित।

(६) 'भविष्यपुराण' के अनुसार केशीनर का पुत्र।

अन्तर्धान—राजा पृथु के पुत्रों में से एक। स्वयं को अंतर्हित करने की शक्ति अर्जित करने के कारण निजिताश्व को इस नाम से कहा गया।

अन्तर्वेदी—गंगा-यमुना तथा प्रयाग एवं हरिद्वार के मध्य स्थित देश।

अन्तिक—'मत्स्यपुराण' के मत से यदु का पुत्र।

अन्तिदेव—'मत्स्यपुराण' के अनुसार गुरुधि-पुत्र।

अन्तिनार—(१) विभिन्न पुराणों में इनका अनेक रूप से उल्लेख हुआ है। 'अग्निपुराण' (२७८।३-५) में

इन्हें मद्राश्व का पुत्र कहा गया है और इनके तंसुरोध, प्रतिरथ तथा पुरस्ता नामक तीन पुत्र बताए गए हैं। 'ब्रह्मपुराण' (१३।५१-५३) में इन्हें ऋचेयू का पुत्र कहा गया है और इनके वसुरोध, प्रतिरोध तथा सुबाहु नामक तीन पुत्रों का उल्लेख हुआ है। 'हरिवंश पुराण' (१।३२।१-३) में इनके पिता का नाम ऋचेयु तथा माता का नाम तक्षकन्या ज्वलना बताया गया है। इनसे तंसु, प्रतिरथ तथा सुबाहु नामक पुत्र और गौरी नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। 'महाभारत' (आ० प० ८६।११) में इन्हें अनाधृष्टि का पुत्र कहा गया है और इनसे तंसु, महान्, अतिरथ तथा दुहचु नामक चार पुत्रों को उत्पन्न हुआ बताया गया है। 'गरुड़पुराण' (१४०।१-२) में इन्हें ऋतेयूपुत्र और इनके पुत्र का नाम प्रतिरथ उल्लिखित है। 'महाभारत' (आ० प० ६०।१२ में कहा) गया है कि इनके पिता ऋक्ष और माता तक्षकन्या ज्वलन्ती थी। इन्होंने सरस्वती के तट पर द्वादशवर्षीय सम को संपन्न किया था। सम की समाप्ति पर सरस्वती प्रकट हुई और उसने इनसे विवाह करने का अनुरोध किया। इन दोनों से तन्तु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

(२) इनके पिता का नाम कम्बलबर्हिष था और पुत्र का नाम तमोत्रा।

अन्त—ये विशाल के पिता थे जो बाद में नारायण के अवतार हुए हैं।

अन्त्य—भृगु ऋषि का पुत्र। देवगण में परिगणित।

अन्त्यायन—भृगु ऋषि का पुत्र।

अन्दाल—दक्षिण की इस आलवार महिला संत का जन्म ७७० वि० में हुआ था। ये बड़े भक्तिभाव से भगवान् की लीलाओं को गाया करती थीं। जब ये वयस्क हुईं तो इन्होंने श्रीरंगनाथ के साथ विवाह कर लिया। ये स्वयं माला धारण कर फिर भगवान् को उस माला को अर्पित करती थीं। कहा जाता है कि एक बार जब ये भजन में तल्लीन थीं, तो इनके शरीर से एक ज्योति का आविर्भाव हुआ, जो कि धीरे-धीरे श्रीरंगाथ में विलीन हो गई। इनके विवाहोत्सव की पुण्य स्मृति आज भी दक्षिण के मंदिरों में प्रतिवर्ष मनाई जाती है। इन्होंने अपना सर्वस्व भगवान् को समर्पित कर दिया था।

अन्ध—अयोध्या में सरयूतीर पर रहने वाले वैश्य जाति के मुनि विशेष। ये शूद्रकन्या को ब्याहकर, उसी के साथ वन में एक कुटी बनाकर रहते थे। एक समय अयोध्या के महाराज दशरथ वन में शिकार खेलने गए थे। उसी समय अन्ध मुनि का केवल एकमात्र पुत्र जल भर रहा था। दशरथ ने हस्ति के भ्रम से शब्दभेदी बाण के द्वारा उसे मार डाला था। बाणविद्ध पुत्र को देख, अन्धमुनि ने अग्नि में जलकर अपने प्राण छोड़ दिए थे। मृत्यु के पूर्व मुनि ने अपने पुत्र को मारने वाले को शाप दिया था कि "मेरे समान तुमको भी पुत्रशोक ही से प्राण-त्याग करना पड़ेगा।" अन्धमुनि का यह शाप सफल हुआ था।

(रघुवंश)

अन्धक—(१) क्रोष्टा का नाती और युधाजित् का पुत्र। यह प्रसिद्ध अन्धक वृष्णिवंश का पूर्व पुरुष था। 'वृष्णि का नाती, गांधिनी से श्वफल्क का पुत्र, सात्वत का पुत्र, भीम का पुत्र और रेवत का पिता। (हरिवंश)

(२) नहुष का पुत्र जो क्रोष्टा का पूर्वपुरुष था। यह 'लिङ्गपुराण' में लिखा है। 'कूर्मपुराण' में अन्धक को अंश का पुत्र और सात्वत का पिता लिखा है, किंतु 'विष्णुपुराण' में अन्धक को सात्वत का पुत्र बतलाया गया है और यही ठीक भी मालूम पड़ता है। क्योंकि 'हरिवंश' भी इस कथन की पुष्टि करता है। 'पद्मपुराण' में अन्धक नाम के एक मुनि का भी उल्लेख पाया जाता है।

(३) दैत्य-विशेष, कश्यप के औरस और दिति के गर्भ से यह उत्पन्न हुआ था। देवताओं ने जब दिति के समस्त पुत्रों को मार डाला, तब दिति ने देवों से अवध्य एक पुत्र होने की प्रार्थना की। कश्यप ने स्वीकार किया, और यथासमय दिति के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस पुत्र के हज़ार बाहु, हज़ार सिर और दो हज़ार नेत्र थे। यह यद्यपि अंधा नहीं था तथापि मार्ग में अंधों के समान झूम-झूमकर चलता था। इस कारण इसकी प्रसिद्धि अन्धक नाम से हुई थी। यह दैत्य बड़ा बलवान् और अत्याचारी था। इसने त्रिलोक के प्राणियों को कष्ट देना प्रारंभ किया। अंत में महादेव ने मन्दर पर्वत पर जाकर इसका वध किया था। (हरिवंश) और जगह अन्धकासुर के मारे जाने का वृत्तांत दूसरे रूप में लिखा मिलता है।

(४) एक राजा, एक, देश जिसे आज तैलङ्ग कहते हैं। तैलङ्ग की भाषा।

अन्ध्र—'ऐतरेय ब्राह्मण' (७।१८) के अनुसार आचारच्युत होने के कारण अन्ध्र लोग आर्य श्रेणी से अलग हो गए थे। दक्षिण भारत का वर्तमान आन्ध्र संभवतः अन्ध्र जनों का ही जनपद था।

अपदेव—भारतीय दार्शनिक पंडित। ये पूर्व मीमांसा के पंडित थे। इन्होंने मीमांसा दर्शन का एक ग्रंथ लिखा है जिसका नाम है 'मीमांसा न्याय प्रकाश'।

अपरदारका—नारद मुनि ने तपस्या करके इसे दूसरे ब्रह्मांड के पश्चिमी द्वार पर स्थापित किया था। 'स्कन्दपुराण' (१।२।५३) में कहा गया है कि चैत्र कृष्ण नवमी तिथि को बलि देकर जो इस देवता की पूजा करेंगे वे पापमुक्त होकर इच्छित कामनाओं को प्राप्त करेंगे।

अपराजित—(१) 'भागवत' (१०।६१) के अनुसार लक्ष्मणा से उत्पन्न कृष्ण का पुत्र।

(२) 'महा भारत' (मौ० ८४।२१) के अनुसार धृतराष्ट्र का पुत्र, जिसका वध भीम ने किया था।

(३) एकादश युद्धों में परिगणित।

(४) कश्यप तथा कद्रु का पुत्र।

(५) 'महाभारत' (आ० ६८) के अनुसार कालेय-वंशीय क्षत्रिय।

अपरान्ता—कोंकन और मालाबार देश।

अपर्णा—'ब्रह्माण्ड पुराण' (३१।१०।१-२१) और 'हरिवंश पुराण' (१।१८।१५-२०) के अनुसार हिमालय द्वारा मैना अप्सरा से उत्पन्न ज्येष्ठ कन्या। उसने शंकर की प्राप्ति के लिए पत्ते खाकर तपस्या की किंतु उसमें पत्तों (पर्णो) को भी त्याग दिया। तदनंतर उसे पति रूप में शिव की प्राप्ति हुई। उसे उमा नाम से कहा गया। उसके दत्तक पुत्र का नाम उशनस् था।

अपांनपात्—ऋग्वेदोक्त (२।३५) एक देवता, जो पानी में भी प्रकाशित होता है। इसीलिए अग्नि को अपांनपात् कहा गया।

अपाला—यह अत्रि ऋषि की कन्या और परम ब्रह्मज्ञानी थी। इसके शरीरपर कुष्ठ हो जाने के कारण इसे पति ने त्याग दिया था। तदनंतर इसने पितृगृह में रहकर इन्द्र की तपस्या की। इन्द्र की संतुष्टि के लिए एक बार वह नदी तट पर सोम लाने गई। मार्ग में लौटते हुए उसने जिज्ञासावश सोम को चबा डाला। चबाते हुए सोम से जो आवाज हुई उसे सुनकर इन्द्र वहां उपस्थित हुआ। अपाला ने सोम उसे अर्पित कर दिया। इन्द्र प्रसन्न हुआ और उसने उसके पिता का गंजापन दूर किया। उसकी खेती उर्वरा बनाई, अर्थात् उसके गुह्यभाग में बाल उगाए और उसका कुष्ठ दूर कर दिया, ऋग्वेद के एक सूक्त (८।९१) में इस कथा का उल्लेख हुआ है।

अप्रतिरथ—चन्द्रवंशी राजा। इनके दो और भाई थे जिनके नाम तेसु और ध्रुव थे। अप्रतिरथ के पुत्र का नाम कण्व था। (विष्णुपुराण)

अप्सरा—कल्प के प्रारंभ में देवताओं ने जिन देवांगनाओं की सृष्टि की थी, वे अप्सरा कही जाती हैं। किसी-किसी पुराण में अप्सराओं को कश्यप मुनि की कन्या बताया है। इनके दो भेद हैं: लौकिक और दैविक। लौकिक ३ हैं और दैविक १० हैं। जब पृथ्वी पर कोई अच्छा काम करता है तब दैवी अप्सराएं आकर विघ्न डालती हैं।

अबदुलजलील—बिलग्राम, ज़िला हरदोई में १६८२ ई० में ये जन्मे। ये असल में औरंगज़ेब के दरबारी कवि थे और अरबी तथा फ़ारसी में कविता करते थे। परंतु बाद में इन्होंने हिंदी पढ़ी और उसमें इनकी प्रसिद्ध हुई।

अबदुल रहिमान—ये दिल्ली के रहने वाले थे और १६८१ ई० में उत्पन्न हुए थे। ये मुअज़्ज़मशाह और बहादुरशाह के दरबारी थे और इन्होंने 'यमक शतक' रचा है।

अबदुल रहीम—इनका प्रसिद्ध नाम अबदुररहीम खानखाना था, और लोग इन्हें 'खानखाना' भी कहा करते थे। ये बैरामखां के लड़के थे और १९५६ ई० में जन्मे थे। ये केवल अरबी, फ़ारसी, तुर्की आदि भाषाओं ही के विद्वान् न थे, अपितु संस्कृत और ब्रजभाषा में भी इनकी अच्छी गति थी। कविता में ये अपना नाम 'रहीम' डालते थे। शिवसिंह ने लिखा है कि ये केवल कवियों के आश्रयदाता ही नहीं थे; बल्कि स्वयं एक मर्मज्ञ कवि थे। इनके बनाए श्लोक बड़े गंभीर और सरस होते थे। इनके बनाए कवित्त और दोहों में बुद्धिमानी की बातें भरी हुई हैं। इनकी रचनाओं में इनके नीति के दोहे बड़े प्रसिद्ध हैं।

अबुलफ़ैज—इनका फ़ैजी था और १५४७ ई० में ये जन्मे थे। ये शेख मुबारक के प्रसिद्ध पुत्र अबुलफ़ज़ल के भाई और अकबर के मित्र थे। ये संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे और इनके बनाए अनेक दोहरे हैं।

अभय—(१) 'विष्णुपुराण' में लिखा है कि धर्म के कई लड़के उत्पन्न हुए। उन लड़कों में एक का नाम अभय पड़ा। अभय का अर्थ निर्भीक है। इसका अर्थ यह है कि धर्म का आश्रय करने वालों को भय नहीं होता।

(२) धृतराष्ट्र का पुत्र, जिसका भीम ने वध किया था। (महाभारत, दो० १०२।९६)

अभयसिंह—मारवाड़ के राजा। ये महाराज अजितसिंह के पुत्र थे और महाराज यशवन्तसिंह के पौत्र थे। ये साहसी-पराक्रमी योद्धा तो अवश्य थे, परंतु पितृ-हत्यारूपी भयंकर दोष ने इनके सब गुणों पर कालिमा लगा दी थी, इनके वीर पिता अजितसिंह सर्वदा युद्धों में इनको अपने साथ रखा करते थे जिससे इनकी अभिज्ञता बढ़े। दिल्ली के बादशाह का निमंत्रण पाकर अजितसिंह दिल्ली जाने लगे, तब उन्होंने जोधपुर की रक्षा करने के लिए, अभयसिंह को वहां भेज दिया था। १७७८ ई० में मुगल सम्राट् ने अजमेर पर फिर अपना अधिकार जमाने की इच्छा से मुज़फ्फरखां के सेनापतित्व में एक सेना भेजी। इसका समाचार पाकर अजित ने अपने वीर और साहसी पुत्र अभयसिंह को उनका सामना करने के लिए भेजा। कुमार के साथ मारवाड़ के आठ सामंत और तीस हजार घुड़-सवार सेना थी। आमेर में राठौर और यवनसेना की मुठभेड़ हुई। मुज़फ्फरखां राठौर वीरों की संहार मूर्ति देखकर बिना समय आए ही भाग गया, अभयसिंह के पराक्रम से यवनसेना भस्म हो गई। इससे उनका उत्साह और भी बढ़ गया। वे अनेक स्थानों में जाकर युद्ध में विजयी हुए। तदनंतर इन्होंने नरुकापति की एक कन्या को ब्याह लिया था। इसके बाद अभयसिंह ने सांभर में रहकर वहां के किले को अभेद्य बनाया। इसी वर्ष अजमेर से आकर अपने पुत्र अभयसिंह से अजितसिंह मिले। इससे यवनसेना में एक प्रकार का आतंक जम गया। मुहम्मदशाह यद्यपि इस अशांति के समय भारत का राजमुकट छोड़कर मक्का जाना चाहता था, तथापि नाहरखां की हत्या का बदला लेना वह नहीं भूल सकता था। इसी कारण बड़ी धूमधाम से अजमेर पर उसने चढ़ाई की। श्रावण के महीने में उस सेना ने तारागढ़ पर चढ़ाई की। इस कारण अजितसिंह उस किले की रक्षा का भार अभयसिंह को देकर, स्वयं सेना लेकर चले। दोनों ओर से लड़ाई प्रारंभ हुई, परंतु जयसिंह की सलाह से अजितसिंह ने बादशाह से संधि कर ली। यवनों ने संधि की रक्षा करने के लिए हाथ में कुरान लेकर शपथ ली, इसके बाद अभयसिंह जयसिंह के साथ बादशाह के डेरे में गए। बादशाह ने कहा कि ये यदि मेरी अधीनता स्वीकार करेंगे तो इसके प्रमाणस्वरूप मेरे दरबार में इनको आना पड़ेगा। यद्यपि जयसिंह इसके साक्षी हो गए थे, तथापि निर्भीक अभयसिंह ने तलवार उठा कर कहा कि यह हमारे जीवन का साक्षी है। अभयसिंह बादशाह के दरबार में गए। उन्होंने सोचा था कि जिस प्रकार अजितसिंह का सम्मान होता है उसी प्रकार हमारा भी सम्मान होगा। यही सोचकर वे सब अमीर-उमरावों को छोड़कर आगे बढ़े, यहां तक कि बादशाह के सिंहासन की पहली सीढ़ी पर उन्होंने ज्यों ही पैर रखा कि एक सरदार ने रोका। बस अभयसिंह ने झट तलवार निकाल ली, सम्राट् मुहम्मद-शाह बड़ी विपत्ति में फंसा, परंतु उसने बड़ी बुद्धिमानी से अपने गले की एक माला निकालकर अभयसिंह को पहना दी। इसी से उस समय एक बड़े परिवर्तन का कांड निपट गया।

अभयसिंह यद्यपि वीर योद्धा थे तथापि पिता की हत्या के दोष से कलंकित होना और इसी प्रकार का एक और दोष उनकी पराधीनता के कारण हुए। यद्यपि अभयसिंह ने पिता अजितसिंह की अपने हाथों हत्या नहीं की थी, तथापि इस कार्य में उनका भी लगाव था, इसमें संदेह नहीं। इनका दूसरा दोष अन्याय और प्रभुभक्ति चलाने की इच्छा थी। सम्राट् मुहम्मदशाह ने इनका राज्याभिषेक कराया, सम्मान-सूचक अनेक प्रकार के उपहार भी बादशाह ने इनको दिए थे, अजित ने मारवाड़ के आकाश में जिस स्वाधीनता के सूर्य को चमकाया था, वह अभय के कुकृत्य से आच्छादित हो गया।

अभयसिंह दिल्ली गए, बादशाह ने इनका बड़ा आदर किया, इनको सामंतों में सब से बड़ा पद और सम्मान प्रदान किया। इसी समय दक्षिण का सरबुलन्दखां विद्रोही हो गया था। शाहज़ादे जंगली को दमन करने के लिए बादशाह ने सरबुलन्दखां को सेनापति बनाकर भेजा था; परन्तु वहां जाकर उसने अपने विद्रोहियों से संधि कर ली। इसकी खबर बादशाह के दरबार में पहुंची, सभी अमीर-उमराव बैठे थे, परंतु किसी ने सर-बुलन्दखां का दमन करने का भार नहीं लिया। बादशाह चिंता में डूब गए। बादशाह की ऐसी दशा देखकर अभयसिंह ने हाथ में तलवार लेकर कहा, जगत् के सम्राट्! आप चिंता न कीजिए, मैं सरबुलन्दखां को आपके अधीन कर दूंगा, नहीं तो उसका सिर आपको उपहार में दूंगा।" बादशाह से अत्यंत सम्मानित होकर अभयसिंह जोधपुर आए और यहां से अपने

छोटे भाई बख्तसिंह तथा राठौर सेना को लेकर वे सरबुलन्दखां की ओर बढ़े, वहां जाकर इन्होंने उससे संधि करने को कहलाया था, परंतु उसका ध्यान उधर नहीं गया। फिर लड़ाई प्रारंभ हुई। सरबुलन्द-खां घायल होकर भाग गया। उसकी सेना छिन्न-भिन्न हो गई। अभयसिंह विजयी हुए। वहां से बहुत से रत्न आदि एकत्रित कर, ये अपनी राजधानी में लौट आए। मालूम पड़ता है वहां से लौटकर ये दिल्ली के बादशाह के पास नहीं गए; क्योंकि उस समय उसके शासन का दीप टिमटिमा रहा था। यहां आने पर इनके भाई बख्तसिंह की वीरता से भय हुआ था; परंतु उसका ये कोई उपाय नहीं कर सके। आमेरपति के साथ इसी प्रकार इनकी कभी संधि और कभी युद्ध चलता रहा। इनका परलोक-वास संवत् १८०६ या १७५० ई० में हुआ।

(टाड्स राजस्थान)

अभिजित्—(१) चन्द्रवंशीय प्राचीन राजा। ये राजा पुरु के पुत्र थे, इनके पुत्र का नाम आहुक और कन्या का नाम आहुकी था। इन्हीं आहुक के पुत्र देवक थे।

(हरिवंश)

(२) राजा नल का पुत्र। इसके पुत्र का नाम पुनर्वसु था।

अभिनवगुप्त—ये एक प्रसिद्ध आलंकारिक संस्कृत के विद्वान थे। ये शैव मत के थे। क्योंकि इनके बनाए ग्रंथों में से शैवदर्शन का एक ग्रंथ है; इनका निवास-स्थान काश्मीर में था और काव्यप्रकाशकार मम्मटभट्ट के ये गुरु थे। यह बात 'काव्यप्रकाश' का रसनिरूपण प्रकरण पढ़ने से झलकती है। काव्यप्रकाशकार ने रस-विषय में अन्य विद्वानों का मत उद्धृत करके एकवचन का प्रयोग किया है और इनका स्मरण आदरपूर्वक किया है, इसी कारण यह अनुमान किया जाता है। परंतु यह कारण प्रबल न नहीं मालूम पड़ता है। इनके बनाए ग्रंथ ये हैं, 'भैरवस्तोत्र', 'प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी' 'वहतीवृत्ति',' तन्त्रालोक', 'बोधपञ्चक' और 'लोचन'। 'लोचन' आनन्दवर्धनकृत प्रसिद्ध ध्वनि-ग्रंथ' धन्वालोक' की टीका है, इस ग्रंथ में अभिनव गुप्त अपने गुरु 'काव्यकौतुक' रचयिता भट्ट का उल्लेख करते हैं, यह कवि अनुमानतः ९९३ ई० से १०१५ ई० के बीच में थे।

अभिभू—'महाभारत' के अनुसार काश्यपपुत्र। द्रौपदी-स्वयंवर में उपस्थित। महाभारत-युद्ध में पाण्डव पक्षीय। इसका वध वसुदानपुत्र ने किया था।

अभिभूत—'वायुपुराण' के अनुसार वसुदेव तथा रोहिणी से उत्पन्न पुत्र।

अभिमन्यु—(१) अर्जुन का पुत्र और श्रीकृष्ण का भानजा। यह सुभद्रा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। कुरुक्षेत्र के युद्ध में कौरवों के प्रधान-प्रधान वीर सामने के युद्ध में जब इस सोलह वर्ष के वीर बालक से हार गए तब वीरता के नाम पर धब्बा लगाने वाले सात अधर्मी कुलांगारों ने मिलकर अधर्म युद्ध से इस वीर बालक को मारा। मत्स्यदेश के राजा विराट की कन्या से इसका विवाह हुआ था। अभिमन्यु की मृत्यु के समय उत्तरा गर्भवती थी। उनके मरने के पश्चात् राजा परीक्षित् का जन्म हुआ था। महाभारत के युद्ध में पाण्डवों के समस्त लड़के मारे गए थे; केवल परीक्षित् ही से इनका वंश चला। अभिमन्यु का मारा जाना महाभारत-युद्ध का एक कलंक है। अर्जुन नारायणी सेना के साथ युद्ध में लगे हुए थे। अभिमन्यु द्रोणाचार्य का बनाया व्यूह भेद-कर भीतर गया। व्यूह के द्वार-रक्षक जयद्रथ को परा-जित कर कोई भी पाण्डव पक्ष का वीर अभिमन्यु की सहायता करने के लिए उसके पास नहीं जा सका। अभिमन्यु ने अपनी वीरता से बहुतों को धराशायी कर दिया। अंत में नीचों ने अन्याय से इन्हें मार डाला।

(महाभारत)

(२) काश्मीर के राजा। ये खृष्टाब्द के प्रायः दो हजार वर्ष पूर्व काश्मीर का शासन करते थे। इनके समय में बौद्ध धर्म की अत्यंत प्रबलता थी। काश्मीर में इनका बसाया एक गांव है जिसका नाम अभिमन्युपुर है।

(महाभारत)

अभिमन्युगुप्त—कश्मीर के राजा। इनके पिता का नाम क्षेमगुप्त था। पिता के मरने के अनंतर अभि-मन्युगुप्त काश्मीर राज्य के राजा हुए। ये उस समय बालक थे, इस कारण इनकी माता ही ने राज्यशासन का भार अपने हाथ में लिया। वह बड़ी दुराचारिणी थी रोज नये-नये पुरुष बुलाती थी। अभिमन्यु के राज्यकाल में नगेश्वर के बाजार में आग लग गई। राजमाता का स्वभाव अत्यंत कर्कश और निर्दय था। इस कारण कर्मचारी उनसे अप्रसन्न रहा करते थे। महारानी में सबसे बड़ा दोष यह था कि वह कान की सुनी बातों पर विश्वास कर लेती थी। विवेक से काम लेने की रीति उसे मालूम नहीं थी। इसी कारण उसके प्रबंध के समय लड़ाई-झगड़ों की चर्चा खूब रही। इन

बातों को देखकर, अभिमन्युगुप्त को बड़ा दुःख होता था, परंतु वह बेचारा करता ही क्या। अंत में मारे चिंता के उसको क्षय की बीमारी हो गई और उसी बीमारी से काश्मीर का एक विद्वान राजा चल बसा। १३ वर्ष १० महीने इसने काश्मीर का शासन किया था। (राजत०ष०त०)

अभिरथ—'विष्णुपुराण' के अनुसार केतुमान् का पुत्र।

अभीर—भारतवर्ष के उत्तर पश्चिम प्रांत में रहने वाली जाति। 'महाभारत', 'रामायण' और 'विष्णुपुराण' में इनकी चर्चा पाई जाती है। परंतु इनका कोई शृंखलित इतिहास नहीं मिलता।

अभूतरजस—एक देवगण का नाम, जो पांचवें मन्वंतर में थे।

अभ्यग्नि ऐतशायन्—ऐतश-पुत्र होने के कारण इनका ऐसा नामकरण हुआ। 'ऐतरेय ब्राह्मण' (६/३३) तथा 'सांख्यायन ब्राह्मण' (३०।१५) में इनके संबंध में उल्लेख हुआ है। एक बार इन्होंने अपने पिता ऐतश द्वारा उच्चरित मंत्रपाठ को अश्लील समझकर उनका मुंह बंद कर दिया था, जिससे क्रुद्ध होकर उन्होंने ऐतशायन् के उत्तर कुल को पापी होने का शाप दे दिया। तब से सब लोग इन्हें तथा इनकी संतान को पापी समझने लगे। इनका और्वकुल में जन्म हुआ था। और्व और भृगु संभवतः एक ही कुल या एक ही कुल की दो शाखाएं थीं।

अभ्यावर्तिन् चायमान—ऋग्वेद (६/२७/७; ६/२७/८) में अनेक स्थलों पर इनका उल्लेख हुआ है। पार्थव नाम से भी इनका उल्लेख हुआ है। वहां कहा गया है कि इन्होंने देवासुर संग्राम में इन्द्र के नेतृत्व में वृचिवत् पर विजय प्राप्त की थी। इनके कहने पर इन्द्र ने तुर्वश को विजित किया। संभवतः देववात संजय और ये एक ही थे।

अमर—(वलेचा) यह एक तेजस्वी राजपूत था। जिस समय अकबर का प्रतापसूर्य भारत के मध्य गगन में चमक रहा था, उस समय यह अपनी तेजस्विता के बल पर दक्षिण में नर्मदा के तीर पर स्वाधीनतापूर्वक वास करता था। इसका दमन करने तथा इसकी स्वाधीनता नष्ट करने के लिए राठौरराज शूरसिंह को अकबर बादशाह ने भेजा था। शूरसिंह के साथ अगणित सेना थी। इस अगणित सेना का सामना अमर वलेचा ने पांच हजार सिपाहियों को साथ लेकर स्वाधीनया की रक्षा के लिए बड़े उत्साह से किया, बड़ी-बड़ी तीन लड़ाइयां हुई। पहली दो लड़ाइयों में तो हार-जीत का पता न लगा, परंतु अंतिम युद्ध में अमर ने सुख से अपने प्राण देकर अपनी स्वाधीनता की रक्षा की।

अमरकण्टक—विभिन्न ग्रंथकारों ने इसको आम्रकूट, सोमपर्वत या सुरथाद्रि आदि नामों से कहा है। पुराणों में इसकी पवित्रता का उल्लेख किया गया है। सम्प्रति यह हिन्दुओं के तीर्थ के रूप में विश्रुत है। इसे रीवां के पास मकोल पर्वत माला का अंग बताया गया है।

अमरनाथ—हिन्दुओं का पवित्र तीर्थस्थान इस्लामाबाद से लगभग ६० मील भैरवघाटी पर्वतमाला में स्थित शिव का प्रसिद्ध मंदिर।

अमरसिंह—(१) संस्कृत में 'नाम लिङ्गानुशासन' नामक जो कोश है उसी का दूसरा नाम 'अमरकोश' है, उसके कर्ता ये ही अमरसिंह हैं। ये उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से एक रत्न थे। अमरसिंह को इनका बनाया 'अमरकोश' ही अमर किए हुए है। कोई इनको बौद्ध और कोई-कोई जैनी कहते हैं। पाश्चात्य पंडितों का अनुमान है कि गया का बौद्ध मंदिर इन्हीं का बनवाया हुआ है। यदि इस अनुमान को ठीक मान लिया जाए तो इनको खृष्टीय पांचवीं शताब्दी का माना जा सकता है। क्योंकि कनिंघम आदि पुरातत्त्ववेत्ता पंडित गया के बौद्ध मंदिर बनने का समय पांचवीं शताब्दी बताते हैं। एक श्लोक में इनका नाम अमरु कवि आया है। अतएव इनमें और अमरु कवि में उतना ही अंतर होना स्वाभाविक है जितना कालिदास और भारवि में था।

(२) जैसलमेर के राजा। ये रावल सबलसिंह के पुत्र थे। पिता का परलोकवास होने पर इन्होंने बलच्चों के साथ युद्ध किया था, और ये उस युद्ध में विजयी हुए थे। उसी समय इनका राज्याभिषेक भी हुआ था। अमरसिंह ने राजसिंहासन पर बैठकर अपनी कन्या का विवाह करने के लिए प्रजा से द्रव्य की सहायता मांगी। रावल के इस कार्य से राजमंत्री अप्रसन्न हुआ और उसने राजा के इस कार्य में बाधा डाली। इस कारण राजा ने राजमंत्री को मरवा डाला। कुछ दिनों के बाद चन्ना राजपूतों ने अत्याचार करना प्रारंभ किया, तब रावल अमरसिंह ने सेना लेकर उन पर आक्रमण किया, और उनको ऐसा दबाया कि उनके सच्चरित्र होने का यश अमरसिंह ही को प्राप्त

हुआ। जैसलमेर और बीकानेर के सामंतों में आपसी विरोध हो गया था। उसी विरोध से प्रेरित होकर दोनों ओर के वीर रणभूमि में आकर खड़े हो गए। इस युद्ध में जैसलमेर के सामंतों की विजय हुई, इससे रावल अमरसिंह को बड़ा आनंद हुआ। इसकी खबर बीकानेर के राजा अनूपसिंह को मिली। उस समय वे बादशाह की ओर से दक्षिण भेजे गए थे। उन्होंने अपने मंत्री को एक पत्र भेजा कि सब राठौर जो रण में जा सकते हों, शीघ्र ही जैसलमेर पर धावा बोल दें। यहां राठौर बड़े उत्साह से युद्ध के लिये तैयार होने लगे। रावल ने भी राठौरों के युद्ध के लिए तैयार होने का समाचार सुना। अमरसिंह बड़े कुशल थे, उन्होंने सोचा कि इस समय उत्साहित राठौरों का सामना करना उचित नहीं है। यह सोचकर उन्होंने राठौरों के सीमा पर के गांवों पर आक्रमण करना प्रारंभ कर दिया। इसी प्रकार कुशलता से रावलजी इस युद्ध में भी विजयी हुए। रावल अमरसिंह बड़ी वीरता से लड़कर, १७०२ ई० में परलोकवासी हुए।

(३) उदयपुर के महाराणा। ये महाराणा प्रताप के बड़े पुत्र थे। उनके बाद ये ही मेवाड़ की गद्दी पर बैठे थे। इन्होंने राणा प्रतापसिंह के साथ रहकर, उद्देश्य साधन की अच्छी शिक्षा पाई थी। परंतु इनके विषय में आशंका कर महाराणा प्रताप के प्राण नहीं निकलते थे; वह आशंका ठीक निकली। अमरसिंह सुखार्थी हो गए। उन्होंने रहने के लिए महल आदि बनवाना प्रारंभ कर दिया। जिस पवित्र स्थान पर रहकर महाराणा प्रताप स्वर्गीय स्वाधीनता का अनुष्ठान करते थे, वहां अब 'अमर महल' बनाए जाने लगे।

दिल्ली में जहांगीर बादशाह था, भारत भर के राजा उसकी अधीनता में थे, 'परंतु एक सिसोदिया सरदार हमारे अधीन नहीं, इतना दर्प!' यह सोचकर बादशाह ने मेवाड़ पर सेना भेजी। इधर अमरसिंह की सुखेच्छा बढ़ गई थी, बादशाही सेना के आने का समाचार पाकर ये बड़ी विपत् में पड़े। इनकी ऐसी कापुरुषता देखकर शालूम्बा सरदार ने बहुत समझाया। आखिर थे तो महाराणा प्रताप ही के पुत्र। वीरता की ज्वाला निकल पड़ी। अट्ठारह युद्धों में इन्होंने विजय पाई थी। (टाड्स राजस्थान)

(४) जोधपुराधीश महाराज शूरसिंह के ये पुत्र और गजसिंह के पौत्र थे। १६३४ ई० में ये वर्तमान थे; इन्होंने एक दिन ६ कवीश्वरों को ६ लाख रुपये दे डाले थे। ये कवियों का बड़ा आदर करते थे। पिता ने इन्हें अपने राज्य से किसी कारणवश निकाल दिया था। तब ये शाहजहां के दरबार के दरबारी हुए। परन्तु किसी कारणवश शाहजहां से अप्रसन्न होकर इन्होंने उसको मारने की चेष्टा की थी, परंतु सैनिकों ने पकड़कर इनको मार डाला।

(५) गोर्खा सेनापति। इन्होंने १८१४ ई० में नैपाल के युद्ध में अंग्रेज सेनापति आक्टरलोनी के नाकों दम कर दिया था। विलासपुर के राजा ने जब अंग्रेज सेनापति की सहायता की तब ये नैपाल की राजधानी काठमाण्डू चले गए और युद्ध भी समाप्त हो गया।

(६) उदयपुर के महाराणा, ये जयसिंह के पुत्र थे। जयसिंह के स्वर्गवासी होने पर उनका बड़ा पुत्र दूसरा अमरसिंह १७०० ई० में मेवाड़ का अधीश्वर हुआ। जयसिंह के अनेक गुण अमरसिंह में वर्तमान थे। ये वीर और उदाराशय थे। पिता के साथ इनके भीतरी झगड़े से इनकी बड़ी हानि हुई थी। उस झगड़े ने इनको निर्बल बना दिया था, यदि उस समय इनमें कुछ भी बल होता तो मेवाड़ का गया हुआ गौरव इनके अधीन हो जाता। राजसिंहासन पर बैठने के कुछ दिनों के बाद इन्होंने दिल्ली के बादशाह आलमशाह से संधि कर ली थी, इनका अंतिम समय लड़ाई-झगड़ों में बीता। (टाड्स राजस्थान)

अमरावती—(१) इन्द्र की राजधानी, इसे विश्वकर्मा ने बनाया था, यह ४० मील ऊंची है और आठ सौ मील के घिराव में बसी हुई है। इसमें हीरे के खंभे हैं, तथा सिंहासन सुवर्ण के बने रखे हैं। इसके चारों ओर सुंदर रमणीय उपवन हैं, तथा जलस्रोत बह रहे हैं और वहां सर्वदा बाजे बजते रहते हैं।

(२) कृष्णा नदी के तीर पर यह नगरी थी। इस समय यह उजड़ गई है। अभी भी प्राचीन बौद्ध समय की कारीगरी के चिह्न यहां पाए जाते हैं। सर वाल्टर इलियट और मि० फरग्यूसन ने यहां पर पुरातत्त्व-संबंधी बहुत सी वस्तुओं का अनुसंधान किया है। जहां पर पुरातन स्मृति-चिह्न मिले, वह एक टीला एक सौ पचास फुट ऊंचा था, खोदते-खोदते अब वहां पर एक तालाब बन गया है।

(३) इसका पुराना नाम धान्यकट या धान्यकटक (धान्य का नगर) था। सम्प्रति वह एक कस्बे के रूप में स्थित है, जहां कि अमरेश्वर भगवान का मंदिर है।

बुद्ध ने यहां पूर्व जन्म धारण किया था। यहां पर आन्ध्रभृत्य शासकों ने बुद्ध की स्मृति में एक स्तूप निर्मित कराया था, जो कि आज भी भग्नावस्था में वर्तमान है। यह स्तूप बेजवाड़ा से लगभग १८ मील पश्चिम में कृष्णा जिले में स्थित है।

अमरु कवि—इनका रचित 'अमरुशतक' नामक शृंगार रस का एक ग्रंथ देखने में आता है। इसके श्लोक सरस और मनोहर हैं। अमरु कवि के विषय में एक कथानक प्रसिद्ध है कि जब श्री शङ्कराचार्य काश्मीर गए, तब वहां वालों ने इन्हें संन्यासी समझ इनसे शृंगार रस की कविता बनाने के लिए कहा। तब वे योगशक्ति द्वारा अमरु नामक राजा के शरीर में पैठे और उन्होंने 'अमरुशतक' बनाया। यदि शङ्कराचार्य और अमरु कवि दोनों एक भी न माने जाएं, तो भी अमरु कवि उनके समकालीन अवश्य ही रहे होंगे। 'आर्यविद्या सुधाकर' के अनुसार शङ्कराचार्य का समय ७८८ ई० से ८२० ई० तक प्रमाणित होता है। के० टी० तैलङ्ग का मत है कि शङ्कराचार्य ५९० ई० में वर्तमान थे, अतएव अमरु कवि भी खृष्टीय सातवीं और आठवीं शती के बीच किसी समय काश्मीर में हुए होंगे। पं० ईश्वरचंद्र विद्यासागर लिखते हैं कि संस्कृत के खंडकाव्यों में 'अमरुशतक' ही सर्वोत्तम है। इसकी रचना से इसका प्राचीनत्व मालूम होता है। 'काव्यप्रकाश', 'कुवलयानन्द' आदि अलंकार ग्रंथों में 'अमरुशतक' के श्लोक उद्धृत पाए जाते हैं।

अमरेश—(१) भारद्वाज गोत्रीय। प्रातिशाख्यकार। 'वर्ण-रत्न प्रदीपिका' नामक शिक्षा ग्रंथ के रचयिता।

(२) हिन्दी के एक कवि, इनका जन्म १५७८ ई० में बतलाया जाता है। ये बड़े मार्मिक कवि हो गए हैं।

अमला—वैवस्तव मन्वंतर में अत्रि ऋषि की कन्या; ब्रह्मनिष्ठा।

मावसु—(१) विभिन्न पुराणों में इनका तथा इनकी वंशावली का उल्लेख हुआ है। इनके पिता का नाम पुरुरवसु था। कान्यकुब्ज इनका मूल निवास था। कान्यकुब्ज के इस राजवंश के लगभग पंद्रह उत्तराधिकारियों का उल्लेख हुआ है, जिनमें काशम, गाधि, विश्वामित्र तथा मधुछन्दस् आदि का नाम प्रमुख है। अजमीढ नामक एक राजा भी इसी वंश में हुआ। इसके अंतिम वंशज नाम का नय था। विश्वामित्र के द्वारा ब्राह्मण वंश वरण किए जाने के कारण यह क्षत्रिय वंश समाप्त हो गया था।

(२) पितर अभिधेय, जो कि अत्यंत रूपवान् था और जिस पर अच्छोदा नामक पितरों की मानसकन्या मोहित हो गई थी, किंतु जिसकी प्रार्थना को उसने अस्वीकार कर दिया था। यह पितर कन्या योग-भ्रष्ट होकर जन्मांतर में वसु की कन्या मत्स्यी और फिर सत्यवती के नाम से विश्रुत हुई।

(देखिए, अच्छोदा)

अमिताभ—सावर्णि मन्वंतर का एक देवता।

अमितौजस्—'महाभारत' (उ०१६८/१०) में उल्लिखित पाण्डव पक्ष का 'महारथी'।

अमियजित्—'भगवत' के अनुसार इनके पिता का नाम राजा सुतप्त था। 'वायुपुराण' के अनुसार सुवर्णपुत्र और 'भवष्यिपुराण' के अनुसार सुवर्णांगपुत्र।

(२) 'स्कन्दपुराण' (४/२/८२-८३) में उल्लिखित एक राजा। इनके राज्य में सर्वत्र फैले शिव मंदिरों को देखकर एक बार नारद इनके पास आए और बोले, "चम्पकावती नामक नगर में मलयगन्धिनी नाम की एक गन्धर्वकन्या रहती है। कंकालकेतु नामक राक्षस उसका अपहरण करना चाहता है। इस राक्षस से उसकी जो रक्षा करेगा उसके साथ वह विवाह करेगी। इसलिए तुम उसकी रक्षा करो।"

अमीर खुसरो—इनका जन्म ६५२ हि० (१२५४ ई०) को उत्तर प्रदेश के एटा जिले के पटियाली कस्बे में हुआ था। इनके पिता का नाम सैफुद्दीन और इनकी माता भारतीय मुसलमान महिला थी। यद्यपि उनके पिता का देहावसान इनकी सात वर्ष की अवस्था में ही हो गया था; किंतु इनकी शिक्षा निरंतर आगे बढ़ती रही। बीस वर्ष की अवस्था से ही ये कविता लिखने लग गए थे। उनका जीवन राज्याश्रय में बीता; किंतु राजनीतिक जंजाल से ये सर्वथा पृथक् रहे। गुलाम, खिलजी और तुगलक आदि सभी अफगान बादशाहों से इन्हें समुचित सम्मान और आदर मिला। इन्हें राजकवि की उपाधियां भी प्रदान की गईं।

इनके गुरु शेख निजामुद्दीन औलिया थे, जो कि अपने समय के प्रसिद्ध सूफी संत थे। आठ वर्ष की अवस्था में ही ये उनके शिष्य हो गए थे। अपनी मसनवियों में खुसरो ने अपने गुरु को सर्वप्रथम स्मरण किया है। मुख्यतः ये फ़ारसी के कवि थे और इनकी गणना महाकवि फ़िरदौसी तथा शेख सादि

आदि फारस के महाकवियों में की जाती है। उनकी लोकप्रियता का कारण हिन्दी रचनाएं हैं। हिन्दी या हिन्दवी में काव्य-रचना करने वाले कवियों में खुसरो का स्थान प्रथम है। हिन्दवी पर उन्हें गर्व था। उनकी रचनाएं परंपरा से मौलिक रूप में प्राप्त होती आई हैं और इस दृष्टि से उनके समीक्षकों का विश्वास है कि आज वे जिस रूप में उपलब्ध हैं, उनमें भाषा का परिष्कार है। इनकी मसनवियां, मुकरियां और पहेलियां हिन्दी साहित्य की सहेजनीय थाती हैं। इस महान् संत का निधन १३२५ ई० को हुआ।

अमूर्तरयस—'मत्स्यपुराण' के अनुसार इनके पिता का नाम अग्निनार था। 'विष्णुपुराण' के अनुसार कुशपुत्र। 'भागवत' के अनुसार इनका अपर नाम मूर्तरय तथा 'विष्णुपुराण, के अनुसार अमूर्तरथ था। 'महाभारत' में इन्हें क्षत्रिय वंशीय गय राजा का पिता कहा गया है और इनका अधूर्तरजस् नामांतर दिया हुआ है।

अमृत—(१) हव्नजिव्ह के सात पुत्रों में से एक।
(२) अंगिरस गोत्र का मंत्रकार।
(३) अमिताभ देवगण में परिगणित।

अमोघ—(१) अग्नि नामधेय। बृहस्पति तथा तारा से उत्पन्न स्वाहा देवी का पुत्र।
(२) कार्तिकेय नामधेय।

अमोघवर्ष—काञ्ची के एक जैन राजा का नाम। इन्होंने ईसा की नवीं सदी के अंत में राज्य किया था, इनके गुरु का नाम जिनसेनाचार्य था। कहा जाता है कि इसी अमोघवर्ष के राजत्व काल में जिनसेनाचार्य ने जैनियों के मुख्य पुराणों की रचना की।

अमोघा—शान्तनु ऋषि की पत्नी। 'पद्मपुराण' (सृ० ५५) में कहा गया है कि एक समय ब्रह्मदेव ऋषि शान्तनु के आश्रम में गया। उसकी अनुपस्थिति में अमोघा ने ब्रह्मदेव की पूजा की। अमोघा के सौंदर्य पर विमोहित होकर ब्रह्मदेव का वीर्यपतन हो गया और वह लज्जित होकर वहां से चला गया। शान्तनु ऋषि ने आश्रम में आकर ब्रह्मदेव का वीर्य देखा। वह अमोघ वीर्य नष्ट न होने पावे, इस उद्देश्य से शान्तनु ने अमोघा को उसे धारण करने का निर्देश दिया। किंतु वह उस तेजस्वी वीर्य को गर्भ में धारण न कर सकी और उसने उसे युगन्धर पर्वत के जलाशय में डाल दिया। उससे लोहित नामक तेजस्वी तीर्थाधिपति का प्रादुर्भाव हुआ। विष्णु ने अपने क्षत्रियवध के पातक को इसी तीर्थ में स्नान करके विमोचित कर दिया था।

अम्बरीष—एक प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा। अयोध्या इनकी राजधानी थी। इनके पिता का नाम नाभाग था, अमित पराक्रमी राजा अम्बरीष ने अकेले १० लाख राजाओं के साथ युद्ध किया था, और समस्त पृथ्वी पर अपना आधिपत्य फैलाया था। इन्होंने अनेक यज्ञ भी किए थे। इन्हीं पुण्यों के प्रभाव से इनको स्वर्ग प्राप्त हुआ था। (महाभारत)

महाराज अम्बरीष अत्यंत विष्णुभक्त थे। राज्यभार मंत्रियों को देकर उन्होंने बहुत दिनों तक विष्णु भगवान् की आराधना की। भगवान् विष्णु उनकी भक्ति की परीक्षा और वर देने के लिए इन्द्र का रूप धारण कर उनके समीप उपस्थित हुए। परंतु विष्णुभक्त अम्बरीष ने इन्द्र से कोई भी वर नहीं मांगा और वे बोले, "मैं न तो आपको प्रसन्न करने के लिए तपस्या करता हूं और न मैं आपका दिया हुआ वर ही चाहता हूं। आप अपने स्थान को जाइए। मेरे प्रभु नारायण हैं और उन्हीं को मैं नमस्कार करता हूं।" इससे विष्णु प्रसन्न हुए और अपने रूप में उनके सामने प्रकट हुए। (लिङ्गपुराण)

महाराज अम्बरीष की अत्यंत सुंदरी एक कन्या थी जिसका नाम सुंदरी था। यह कन्या विवाह के योग्य हो गई थी। एक समय देवर्षि नारद और पर्वत किसी कार्यवश अम्बरीष के यहां आए थे, उन दोनों ने अम्बरीष की कन्या से विवाह करने की अपनी-अपनी अभिलाषा प्रकट की। अम्बरीष बोले, "आप दोनों महामुनि हैं, कन्या का अर्पण करना हमारे वश की बात नहीं है, अतएव आप लोग और किसी दिन आवें, कन्या जिसके वरमाला डाल दे, वही उससे ब्याह कर ले।" नारद ने अम्बरीष को विष्णुभक्त जानकर और विष्णु के समीप जाकर सब बातें कहीं, और पर्वत का मुख बानर के समान बनाने के लिए भी कहा। विष्णु ने नारद की प्रार्थना स्वीकृत की, परंतु पर्वत को इस विषय में कुछ कहने के लिए मना किया, थोड़ी देर के बाद पर्वत भी विष्णु भगवान् के समीप पहुंचे और उन्होंने भी नारद के समान ही विनती की। विष्णु ने इनकी भी बातें मान लीं, और कह दिया कि इस विषय में नारद से कुछ न कहना। समय आ पहुंचा, दोनों मुनि विवाह की इच्छा से अम्बरीष के यहां पहुंचे, अम्बरीष ने अपनी कन्या से कहा कि तुम जाकर इनमें से पति वरण कर लो। श्रीमती अम्बरीष की आज्ञा से वरमाला लेकर उनके सामने गईं, श्रीमती स्वयं राधा

थीं। उन्होंने श्रीकृष्ण से ब्याह करने के लिए तपस्या करके, अम्बरीष के यहां जन्म ग्रहण किया था। श्रीमती मुनियों के पास जाकर अत्यंत डर गईं, अम्बरीष के कारण पूछने पर श्रीमती बोलीं, "यहां न तो नारद हैं और न पर्वत ही हैं, दो आदमी देखे तो जाते हैं परंतु उनका मुंह वानरों का सा है।" यह सुनकर राजा को अत्यंत विस्मय हुआ। उन दोनों के बीच एक तीसरा सुंदर पुरुष बैठा था। श्रीमती ने उसी को वरमाला पहना दी। वरमाला पहनाने पर श्रीमती अदृश्य हो गईं, ये तीसरे पुरुष साक्षात् भगवान् थे, भगवान् ने साक्षात् श्रीमती को अंतर्धान कर दिया। इससे दोनों मुनियों को बड़ा क्रोध हुआ। वे कहने लगे, "अम्बरीष ने माया रचकर हम लोगों को धोखा दिया अतएव अम्बरीष, तुम अंधकार से घिर जाओगे, तुम अपने शरीर को भी नहीं देख सकोगे।" अम्बरीष की रक्षा करने के लिए विष्णु का सुदर्शन-चक्र उपस्थित हुआ। विष्णुचक्र अंधकार को दूर कर मुनियों के पीछे दौड़ा। मुनि चारों ओर घूमते फिरे परंतु विष्णु-चक्र से रक्षा पाने का कोई उपाय उन्हें नहीं सूझा। अंत में विष्णु के समीप उपस्थित होकर, उन्होंने क्षमा प्रार्थना की, तब विष्णु ने सुदर्शन को निवृत्त किया। उन दोनों मुनियों ने प्रतिज्ञा की कि अब लोग हम कभी विवाह नहीं करेंगे। (लिङ्गपुराण)

अम्बर्य—दक्षिण के गौतमी-तट पर अवस्थित दण्डक देश का राजा, जिसका नृसिंह ने वध किया था। (देखिए, नरसिंह)

अम्बलट्ढिका—यह बौद्ध स्थल राजगृह के निकट था। वहां पर मौर्य बिम्बिसार का उद्यानगृह था। बौद्धाचार्य बुद्धघोप ने इस राजोद्यान के द्वार पर आम्रकुंज का उल्लेख किया है। वस्तुतः यह स्थान राजगृह और नालंदा के बीच में एक विश्राम-स्थल के रूप में विद्यमान था।

अम्बष्ट—(१) कौरवपक्षीय क्षत्रिय। अभिमन्यु के साथ उसका संग्राम हुआ था और अर्जुन के द्वारा यह मारा गया।

(२) पाण्डव पक्षीय क्षत्रिय। इसके पुत्र का लक्ष्मण ने वध किया था।

(३) कंस के कुवलयापीड नामक हाथी का महावत।

अम्बष्ठ देश—अम्बष्ठ देश चेनाव घाटी में स्थित था। पुराणों में अम्बष्ठों की बहुविध चर्चा हुई है।

अम्बा—काशिराज की ज्येष्ठा कन्या। यह दूसरे जन्म में शिखंडी का रूप धारण करके, भीष्मपितामह के वध का कारण हुई थी। इसको भीष्मपितामह काशी से हरकर ले आए थे। अम्बा ने भीष्म से ही ब्याह करना चाहा था, परंतु भीष्म ने स्वीकार नहीं किया, इसी कारण उसने तपस्या करके शिखंडी का रूप धारण किया था।

अम्बायवीया—सत्यलोक की एक अप्सरा।

अम्बालिका—काशिराज की छोटी कन्या। ये विचित्रवीर्य की स्त्री थी और पांडु की माता थीं। पांडु की मृत्यु के बाद ये अपनी सास सत्यवती के साथ वन में गईं, और उन्होंने कठोर तपस्या कर प्राण त्याग किया।

अम्बिका—काशिराज की मझली कन्या, ये विचित्रवीर्य की स्त्री और धृतराष्ट्र की माता थीं। ये भी पांडु की मृत्यु के पश्चात् सत्यवती के साथ वन में गई थीं और वहां तपस्या के द्वारा प्राण त्याग किया था।

अम्बिकादत्त व्यास—इनके पूर्वज राजपूताने के रहने वाले थे; किंतु इनके पितामह पंडित राजाराम काशी में आ बसे थे। इनके पिता का नाम पं० दुर्गादत्तजी था। और वे स्वयं कवि थे, पं० अम्बिकादत्तजी का जन्म सं० १८१५ में हुआ था। ये बाबू हरिश्चन्द्र के समकालीन थे। इनकी कविता बड़ी अच्छी होती थी। विद्वानों ने इन्हें 'घटिकाशतक' 'भारतरत्न' आदि की उपाधियां दी थीं। इनका उपनाम 'सुकवि' था। इनका संपादित 'पीयूषप्रवाह' हिंदी का एक अच्छा मासिक पत्र था। ये हरेक रस की कविता बड़ी आसानी से बना सकते थे। ये 'साहित्याचार्य' की परीक्षा में उत्तीर्ण थे। इनका रचा 'विहारीविहार' अनूठा ग्रंथ है। ये संस्कृत के जैसे कवि थे वैसे ही हिंदी के भी। इनके बनाए संस्कृत और हिंदी के सब मिलाकर ७८ ग्रंथ हैं। इनमें कई एक अधूरे भी हैं। ये १९०० ई० में परलोकवासी हुए।

अम्बुज—हिंदी के कवि। इनका जन्म १८१८ ई० में हुआ था। इनकी नखशिख-वर्णन की कविता रोचक कही जाती है।

अम्बुधारा—'भागवत' (८।१३) के अनुसार सावर्णि मन्वंतर में ऋषभ अवतार की जननी।

अम्बुबीच—'महाभारत' (आ० १९६।१७-२२) के अनुसार मगध के राजगृह का एक राजा। इसके पंगुपन का लाभ उठाकर इसका प्रधान सेनापति महाकर्णि इसके

राज्य को हड़पना चाहता था; किंतु उसमें वह सफल न हो सका।

अय—(१) वशिष्ठ ऋषि का पुत्र और स्वारोचिष मन्वंतर का प्रजापति।

(२) अगस्त्यगोत्रीय मंत्रकार।

(३) तुषित देवगणों में परिगणित।

(४) यजुर्वेदी ब्रह्मवर्चसी।

अयस्थूण—'शतपथ ब्राह्मण' (११।४।२।१७) के अनुसार शौल्वायन का गृहपति। उसी ने विशिष्ट यज्ञ-कर्म का निर्देश दिया था।

अयास्य आङ्गिरस—आङ्गिरस द्वारा स्वराज में उत्पन्न पुत्र। उसके पुत्र का नाम मितव। ऋग्वेद (६।४४-४६; १०।६७-६८) का सूक्तद्रष्टा। आभूति त्वाष्ट्र का शिष्य। धर्मकृत्यों में इनके अभिमत की प्रामाणिकता को सर्वत्र मान्य समझा गया है। राजसूय यज्ञ तथा शायति के मानव यज्ञ में उद्गाता।

अयुताजित्—'भागवत' के अनुसार सात्वत का पुत्र। अजमानस की द्वितीय पत्नी द्वारा उत्पन्न तीन पुत्रों में से कनिष्ठ।

अयुतानायिन्—'महाभारत' (६०।१६) के अनुसार महाभौम द्वारा सुयज्ञा में उत्पन्न पुत्र। उनकी पत्नी का नाम भासा और पुत्र का नाम अक्रोधन था।

अयुतायु—(१) 'भागवत' (६।६) के अनुसार सिंधुद्वीप का पुत्र।

(२) 'विष्णुपुराण' के अनुसार आरावी का पुत्र।

(३) 'भविष्यपुराण' के अनुसार अर्णव का पुत्र, जिसने एक हजार वर्षों तक राज्य किया था।

(४) 'विष्णुपुराण' के अनुसार श्रुतवान् का पुत्र।

(५) 'भागवत' तथा 'वायुपुराण' आदि के अनुसार श्रुतश्रवस् का पुत्र।

अयोध्या—भारतवर्ष की पुरानी राजधानी, सूर्यवंशियों की राजधानी बहुत दिनों तक अयोध्या रही है। सूर्यवंश के आदि राजा इक्ष्वाकु ने इसे अपनी राजधानी बनाया था। जब तक आर्यों का प्रतापसर्य भारत के आकाश में चमकता रहा तब तक अयोध्या की उपमा इन्द्र की अमरावती से दी जाती थी, परंतु आज उस अयोध्या का पता नहीं, प्राचीन अयोध्या जहां थी, वहां आज उजड़े खंडहर पड़े हुए हैं।

अयोध्यानाथ—काश्मीरी पंडित, इनके पिता का नाम पंडित केदारनाथ था। इनका जन्म १८४० ई० में आगरे में हुआ था। इनके पिता पंडित केदारनाथ जी स्वयं विद्वान्, धनाढ्य और प्रतिभाशाली थे। ये झज्झर के नवाब के मंत्री थे। मंत्री-पद को छोड़कर आपने स्वयं एक बैंक स्थापित किया था।

पं० केदारनाथ जी ने अपने पुत्र पं० अयोध्यानाथ जी को इस उत्तमता से फारसी और अरबी पढ़ाई कि ये थोड़े ही दिनों में उक्त भाषाओं में प्रवीण हो गए। बड़े-बड़े मौलवी इनकी प्रवीणता से चकित होते थे। कुरानशरीफ के गूढ़ तत्त्व और मुसलमानों के क्रूर कानून समझने में तो पंडितजी ऐसे प्रवीण थे कि उनका सामना करने वाले का मिलना कठिन था। इन भाषाओं में आपने अपने पिता से शिक्षा पाई थी। अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आप आगरा कालेज में भर्ती कराए गए। कालेज में आप अपने सहपाठियों में सबसे पहले गिने जाते थे। कालेज में कोई ऐसा सर्वोत्तम पारितोषिक न था, जिसे आपने न पाया हो। इनकी छात्रावस्था में परीक्षार्थियों को पदवियां प्रदान करने की प्रथा प्रचलित नहीं हुई थी। जब कलकत्ता विश्वविद्यालय स्थापित हुआ तब आपने एफ० ए० परीक्षा पास की।

एफ०ए० पास कर चुकने पर उनके पिता की यह इच्छा थी कि पं० अयोध्यानाथ उनके बैंक का काम करें, परंतु पंडितजी का मन उस कार्य में नहीं लगा। इनका मन वकालत की परीक्षा देने का था। पिता ने भी अपने होनहार पुत्र की इच्छा को रोकना उचित नहीं समझा। निदान १८६२ ई० में आप वकालत की परीक्षा में सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुए। उस समय के संयुक्त प्रांत (उ० प्र०) का हाईकोर्ट आगरे में था, आप वहीं वकालत करने लगे। केवल दो-तीन बार की बहस ही से जज साहब केवल आपको पहचानने ही नहीं लगे; अपितु मानने भी लगे। थोड़े ही दिनों में ये वकीलों के मुखिया बन गए। १८६८ ई० में आगरे से उठकर हाईकोर्ट प्रयाग में गया, पंडितजी भी प्रयाग गए। वहां भी इनकी वकालत धड़ाके से चलने लगी। इलाहाबाद आने के थोड़े ही दिनों के बाद पंडित जी के पिता का स्वर्गवास हुआ। इनके पिता के पास पूरी संपत्ति थी, आप उसके अधिकारी हुए। पिता की संपत्ति को अटूट रखने की आपकी इच्छा हुई। अत: आपने उसका उत्तम प्रबंध कर दिया। इस बीच में आप प्रयाग कालेज में कानून के अध्यापक नियुक्त हुए। इस नियुक्ति का यही कारण था कि इनके जैसा प्रयाग में कानून जानने वाला दूसरा

कोई नहीं था। इनको कानून की किताबें कंठस्थ थीं।

पंडित अयोध्यानाथ जी स्वाधीनचेता थे। १८८१ ई० में इलाहाबाद हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस राबर्ट स्टुपर साहब ने गवर्नमेंट को पंडित जी के हाईकोर्ट में जज नियुक्त करने के लिए लिखा। परंतु पंडितजी ने जवाब दिया कि मैं स्वाधीन रहना चाहता हूं। आप अंग्रेजी में एक दैनिक पत्र भी निकालते थे। इस पत्र का नाम था Indian Herald। अंग्रेज लोगों की दृष्टि इस पत्र पर बड़ी कड़ी पड़ने लगी। उस समय भी 'पायोनियर' की खूब चलती थी, उसकी शान में किसी पत्र को निकालना और वैसा ही चला लेना, सहज काम न था। परंतु पंडितजी ने अपने पत्र को चलाकर, कार्य करने की सामर्थ्य दिखा दी। इस पत्र के चलाने में पंडितजी ने विपुल धन और परिश्रम लगाया।

१८८७ ई० में इस प्रांत में छोटे लाट की व्यवस्थापिका सभा स्थापित हुई। सर्वप्रथम उसके सदस्य पंडितजी ही चुने गए। इस सभा में रहकर, आपने अपने कर्त्तव्य का ऐसी योग्यता से संपादन किया कि प्रजा ने दूसरी बार भी आप ही को अपना प्रतिनिधि चुना। युक्त प्रांतवासियों को जितनी ऊंची पदवियां मिल सकती हैं, आपको वे सब मिली थीं। आप प्रयाग विश्वविद्यालय के सिंडिकेट के सदस्य भी थे। म्युनिसिपेलिटी का प्रबंध भी आपके हाथ में था। इलाहाबाद की स्वास्थ्योन्नति का प्रधान कारण पंडित अयोध्यानाथ जी ही थे। पंडित जी की जैसी विशाल बुद्धि थी, वैसा ही शरीर भी विशाल था। विद्या, बुद्धि, मान, विचार जो कुछ था सब में विशालता वर्तमान थी। देशसेवा में भी आप खूब बढ़े-चढ़े थे। आप धन की सहायता देने में बड़े-बड़े राजाओं को भी मात करते थे और परिश्रम करने में आप बड़े-बड़े परिश्रमी पुरुषों के कान काटते थे। इनके शारीरिक परिश्रम को देख इनके साथ वाले आश्चर्य करते थे। किसी परोपकार के काम में जब ये हाथ डालते, तब उसे बिना पूरा किए नहीं छोड़ते थे।

पंडितजी दबंग थे, न्याय के पूर्ण पक्षपाती और अन्याय के पूर्ण विरोधी थे। आपके दबंगपने की बहुत सी आख्यायिकाएं प्रयाग में प्रचलित हैं। आप नेशनल कांग्रेस के सच्चे सहायक थे। किसी निर्बल पर अन्याय होते देख अथवा सुनकर, इनका मन-प्राण विचलित हो जाता था। आगरे के ईसाइयों ने एक बार एक मेहतर को ईसाई बनाया और ईसाई करके उसे अपने स्कूल में उच्च जाति के हिंदू लड़कों के साथ बिठला कर पढ़ाना चाहा। इस पर हिंदू लड़कों ने स्कूल जाना बंद कर दिया। धनहीन हिंदू बालकों की इस विपत्ति का समाचार सुनकर पंडितजी का मन द्रवीभूत हुआ। आपने अपने धन से आगरे में एक स्कूल खोल दिया, असहाय हिंदू लड़के सुखपूर्वक पढ़ने लगे। इस स्कूल का इतना आदर हुआ कि वह कालेज हो गया। पंडित जी ने उसका नाम 'विक्टोरिया स्कूल' रखा था।

अयोध्याप्रसाद वाजपेयी—ये संतानपुरवा जिला रायबरेली के रहने वाले थे और १८८३ ई० में विद्यमान थे। ये हिंदी और संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। इनके रचे तीन ग्रंथ प्रसिद्ध हैं: 'छंदानंद', 'साहित्य सुधासागर' और 'राम कवितावली'। ये अयोध्या के महंत रघुनाथदास जी के और चंदापुर के राजा जगमोहनसिंह के साथ प्रायः रहा करते थे। ये कविता में अपना नाम 'औध' लिखा करते थे।

अयोमुखी—'रामायण' (अर० ६९) के अनुसार एक राक्षसी। सीता की खोज करते समय मातंगाश्रम में इसने लक्ष्मण से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। किंतु लक्ष्मण ने उसकी शूर्पणखा की तरह दुर्दशा करके भगा दिया।

अरजा—'रामायण' (उत्तर ९१) तथा 'पद्मपुराण' (सृ० ७५) के अनुसार उशनस् शुक्र की कन्या। दण्ड राजा ने इसके कौमार्य को भंग कर दिया था। अपने पिता के निर्देशानुसार वह दण्डकारण्य में भार्गवाश्रम के निकट सरोवर में स्नान करने के उपरांत निष्पाप हुई थी।

अरण्य—(१) मनु रैवत का पुत्र।

(२) 'पद्मपुराण' (सृ० ६५) के अनुसार हिरण्याक्ष का अनुगामी, जिसका वध कार्तिकेय ने किया था।

अरविन्द—'भविष्यपुराण' के अनुसार चित्ररथ का पुत्र।

अराचीन—'महाभारत' (आ० ९०।१७-१८) के अनुसार जयत्सेन का सुषुवा में उत्पन्न पुत्र। इनकी पत्नी का नाम मर्यादा तथा पुत्र का नाम अरिह था।

अरिष्ट—वृषभाकृति असुर विशेष, कृष्ण का वध करने के लिए कंस ने इसको व्रज में भेजा था। इसका भयंकर शरीर तथा नाद सुन कर ब्रज के गोप-गोपीगण डर गए थे। डर कर पशुओं ने भी गोकुल छोड़ दिया था अंत में श्रीकृष्ण ने इसे मार डाला था।

(श्रीमद्भागवत)

अरिष्टनेमि—प्रजापति विशेष, इन्होंने दक्ष प्रजापति की चार कन्याओं से विवाह किया था।

अरुगवत्—विदूरथ और सम्प्रिया का पुत्र और परीक्षित का पिता। इनकी पत्नी का नाम अमृता था।

अरुण—गरुड़ के जेठे भाई। महर्षि कश्यप और विनता से इनका जन्म हुआ था। विनता ने दो अंडे और उनकी सपत्नी कद्रू ने हजार अंडे उत्पन्न किए थे। कद्रू के प्रसूत अंडों में से एक अंडा फूट गया और उसमें से एक सर्प निकला। यह देख विनता बहुत लज्जित हुई और उसने भी एक अंडा फोड़ा, फोड़ने पर देखा कि उसमें के गर्भ का आधा अंग तो पुष्ट हुआ है और आधा अंग अभी अपुष्ट है। उस सद्यःप्रसूत ने अपनी माता को शाप दिया, "सपत्नी की स्पर्द्धा से तुमने जो यह दुष्कर्म किया है, इस कारण ५० वर्ष तक तुमको उसकी दासी बनकर रहना पड़ेगा।" पुनः अरुण बोले, "इस दूसरे अंडे में जो पुत्र है यदि इसको असमय में नहीं फोड़ोगी, तो इसी के द्वारा तुम्हारा दासत्व छूट जाएगा।" यह कहकर अरुण आकाश मार्ग में जाकर सूर्य के सारथि बन गए। इनकी स्त्री का नाम श्येनी था। सम्पति और जटायु नाम के इनके दो पुत्र थे।
(महाभारत आ०प०)

अरुण औपवेशि—'बृहदारण्यक उपनिषद' (६।५।३) के अनुसार इनके गुरु का नाम उपवेशी गौतम और शिष्य का का नाम उद्दालक था। अग्न्याधान के समय सत्य पालन संबंधी इनकी आख्यायिका को विभिन्न ब्राह्मण ग्रंथों ने उद्धृत किया है। ये आचार्य अश्वपति के समकालीन थे।

अरुणा–'महाभारत' के अनुसार कश्यप तथा प्राधी की पुत्री।

अरुन्धती—महर्षि वशिष्ठ की स्त्री प्रजापति कर्दम मुनि की कन्या। वशिष्ठ के साथ इनको भी सप्त ऋषियों में स्थान मिला है। कहते हैं कि जिनका मरण-समय समीप आ जाता है वे अरुन्धती को नहीं देख सकते।

अरैल—गंगा-यमुना के संगम के निकट यमुना के दाहिने पार्श्व में स्थित एक प्राचीन महत्व का गांव। जो आज भी वर्तमान है।

अर्क—(१) पूरुज का पुत्र।

(२) 'रामायण' में उद्धृत रामसेना का एक वानर,

(३) 'भागवत' में उद्धृत आठ वसुओं में से एक।

अर्चनानस आत्रेय—ऋग्वेद (५-६३ आदि) का सूक्तद्रष्टा मित्रावरुणों ने इनकी सहायता की थी। अथर्ववेद (१८-३-१५) में श्यावाश्व के साथ उल्लिखित; श्यावाश्व का पिता।

अर्चि—(१)'भागवत'(४-१५-५) के अनुसार राजा वेन द्वारा देहमंथन से मिथुन उत्पन्न हुआ—स्त्री रूप अर्चि और पुरुष रूप पृथु राजा। बाद में दोनों पति-पत्नी बने। लक्ष्मी का अवतार।

(२) ऋषि कृशाश्व का पत्नी और ऋषि धूमकेश की माता।

(३) सावर्णि मन्वंतर के एक देवता।

अर्चिष्मति—बृहस्पति तथा शुभा की सप्तकन्याओं में से एक।

अर्जव—'ब्रह्माण्ड पुराण' के अनुसार व्यास की ऋक्-शिष्य परंपरा में बास्कलि भरद्वाज के शिष्य।

अर्जुन—(१) पाण्डु के क्षेत्रज पुत्र। देवराज इन्द्र के औरस और कुन्ती के गर्भ से ये उत्पन्न हुए थे। ये तीसरे पाण्डव थे। इनके समान धनुर्विद्या के पंडित उस समय कम ही लोग थे। ये द्रोणाचार्य के प्रिय शिष्य थे। महाभारत के युद्ध में स्वयं श्रीकृष्ण इनके सारथि बने थे। अर्जुन ने द्रुपद राजा के यहां द्रोपदी के स्वयंवर में जा कर मत्स्यवेध किया और द्रोपदी को ले आए। इन्होंने श्रीकृष्ण की सहायता से खाण्डव वन जला कर अग्नि को परितृप्त किया था। वनवास के समय अर्जुन ने इन्द्रकील पर्वत पर महादेव की आराधना की थी, महादेव ने प्रसन्न होकर इनको पाशुपत अस्त्र दिया था। ये अस्त्रशिक्षा प्राप्त करने के लिए इन्द्र के पास स्वर्ग में गए थे। वहां एक दिन उर्वशी मदनातुर होकर इनके समीप गई, और इनसे अपनी अभिलाषा प्रकट की। अर्जुन ने उर्वशी की प्रार्थना अस्वीकार की, इससे क्रुद्ध होकर उसने अर्जुन को शाप दिया, "तुम नपुंसक होकर स्त्रियों के बीच नाचोगे" विराट के यहां रहने के समय यह शाप अर्जुन के लिए वर के समान सिद्ध हुआ था। उन्होंने बृहन्नला अपना नाम रखा और छिपकर अपने अज्ञातवास एक वर्ष का समय विराट की राजधानी में बिताया। अर्जुन की तीन स्त्रियां थीं : द्रौपदी, सुभद्रा, और चित्राङ्गदा। इनको छोड़कर कौरव्य नामक नाग की कन्या उलूपी को भी इन्होंने ब्याहा था। द्रौपदी के गर्भ से उत्पन्न अर्जुन का पुत्र महाभारत के अन्तिम दिन अश्वत्थामा द्वारा मारा गया। सुभद्रा के गर्भ से उत्पन्न अर्जुन का सोलह वर्ष का पुत्र अभिमन्यु उसी युद्ध में सप्तरथियों द्वारा अन्याय से मारा गया था। तीसरी स्त्री उलूपी के गर्भ से कोई संतान नहीं उत्पन्न हुई थी। इनकी चौथी पत्नी चित्राङ्गदा मनि-

पुर के राजा चित्रभानु की कन्या थी। इसके गर्भ से बभ्रूवाहन नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। नाना का परलोकवास होने के पश्चात बभ्रूवाहन मनीपुर के राजा हुए थे। अर्जुन के एक पुत्र का नाम इरावान था। यह इरावत नाग की विधवा कन्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। (महाभारत)

अर्जुनक—'महाभारत' (अनु०१) की कथा में कहा गया है कि एक बार गौतमी नामक ब्राह्मणी सर्पदंश से मृत पुत्र के शोक में डूबी हुई थी। अर्जुनक ने उस सर्प को पकड़ लिया: किंतु उसका बध करने से पूर्व अर्जुनक ने उससे कारण पूछा। सर्प ने उसका कारण कम धीनता बताया, अत: इसने सर्प को मुक्त कर दिया।

अर्जुनपाल—'भागवत' (९।२४।४४) के अनुसार शमीक-सुदामिनी का पुत्र और वसुदेव का अनुज।

अर्जुन राव—कोटा राज्य के राजा। इनका विवाह कोटा राज्य के भावी मंत्री जालिमसिंह झाला के पूर्वपुरुष माधोसिंह की बहिन के साथ हुआ था। चार वर्ष तक अर्जुन राव कोटा का राज्य करके परलोकवासी हुए थे।

अर्थ—'भागवत' (४।१।५१) के अनुसार धर्म तथा बुद्धि द्वारा स्वायम्भुव मन्वंतर में उत्पन्न पुत्र।

अर्थसिद्धि—'भागवत' (६।६।३) के अनुसार धर्म तथा साध्या से उत्पन्न पुत्र।

अर्धनारीनटेश्वर—'स्कन्दपुराण' (१।२।३-२१) की एक कथा के अनुसार ब्रह्मा ने प्रजा की सृष्टि के लिए प्रयत्न किया, जिसके फलस्वरूप शंकर प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने शरीर से अर्धनारीनटेश्वर को उत्पन्न किया। उधर तपस्यारत पार्वती ने दुर्गा को महिषासुर-बध करने का आदेश दिया। तदनंतर शंकर तपस्यारत पार्वती के पास अरुणाचल पर गए। उन्होंने प्रसन्न होकर पार्वती को अपने वामांग पर धारण किया। परम प्रणय के कारण पार्वती, शंकर के वामांग में समन्वित हो गईं। ऐसी स्थिति में शिव का शरीर आधा पुरुष और आधा नारी का बन गया। इसी कारण उन्हें अर्धनारीनटेश्वर कहा गया।

अर्बुद—(१) ऋग्वैदिक असुर-द्वय, जिनका कि इंद्र ने वज्रप्रहार से बध किया था।

(२) आरावली पर्वत माला का आबू पहाड़ ही अर्बुद नाम से कहा गया है। यह साभ्रमती नदी का उद्गम है। यहां पर ऋषि वशिष्ठ का आश्रम तथा देवी का मंदिर है। इस कारण इसका धार्मिक महत्व है।

अर्यमन—(१) कश्यप तथा अदिति से उत्पन्न द्वादशादित्यों तथा पितृगणों में से एक मित्रावरुणों के साथ उल्लिखित वैशाख मास में प्रकाशित ३०० किरणों से युक्त।

(२) धर्म तथा मुहूर्ता से उत्पन्न पुत्र।

अर्वावसु—पुराणों में इन्हें रैक्य ऋषि का पुत्र कहा गया है। पुत्र प्राप्ति के लिए उन्होंने सूर्य की उपासना की, जिससे कि उन्हें पुत्र तथा ऐश्वर्य का लाभ हुआ।

अलक—'मेघदूत' के अनुसार हिमालय पर्वत पर के एक नगर का नाम, जिसे भाग्यवानों का नगर भी कहते हैं। यहां के वासी स्त्री-पुरुष दोनों बहुत सुंदर होते हैं।

अलकनन्दा—गङ्गा की चार प्रधान धाराओं में से एक धारा, जिसको शिव ने अपनी जटाओं में सौ वर्षों तक रखा था। इसी ने सागर के पुत्रों का उद्धार किया था।

अलकप्प—इसका संबंध वेठदीप के राजा वेठदीपक से बताया जाता है, जो कि मसर तथा वैशाली के मध्य में था। यह बुलियों के गणतंत्र के अंतर्गत था। बुलियों ने यहां बुद्ध अवशेषों पर एक स्कूल का निर्माण कराया था।

अलक्ष्मी—लक्ष्मी की बड़ी बहिन। ये भी लक्ष्मी के समान समुद्र-मंथन से उत्पन्न हुई थीं। 'लिङ्गपुराण' में लिखा है कि भगवान् विष्णु ने अलक्ष्मी की सृष्टि करके पुन: लक्ष्मी की सृष्टि की, अतएव अलक्ष्मी को ज्येष्ठा कहते हैं। अमृत निकालने के समय सबसे पहले विष उत्पन्न हुआ, उसके बाद अलक्ष्मी और तदनंतर लक्ष्मी उत्पन्न हुई थीं। लक्ष्मी को विष्णु ने ग्रहण किया, परंतु अलक्ष्मी को लेना किसी देवता ने स्वीकार नहीं किया, अतएव दु:सह नामक ब्राह्मण के गले ये मढ़ दी गईं, यद्यपि अलक्ष्मी का विवाह दु:सह के साथ हुआ था, तथापि यह केवल उन्हीं के पास रहना उचित नहीं समझती थी, इससे मुनि बड़े दु:खी रहा करते थे। एक समय महामुनि मार्कण्डेय उनके पास गए। दु:सह मार्कण्डेय मुनि से कहने लगे, "यह मेरी स्त्री मेरे पास रहना पसंद नहीं करती, ऐसी स्त्री को लेकर में क्या करूंगा? आप इस विषय में मुझे उपदेश दें।" मार्कण्डेय मुनि बोले, "तुम्हारी यह स्त्री अमंगल और अकीर्तिकारिणी है अर्थात् अलक्ष्मी है। जिन स्थानों में विष्णुभक्त अथवा शिवभक्त रहते हों, वहां तुम इसको साथ लेकर न जाना। जो वर्ण शिव या विष्णु का नाम सर्वदा उच्चारण करते हों, उनके नगर, घर, उपवन आदि में तुम अलक्ष्मी के साथ कभी नहीं जाना। जो ब्राह्मण वेद पढ़ते हों, संध्यावंदन आदि नित्यकर्म करते हों, उनकी ओर तुम देखना भी नहीं, जिनके यहां हवन-

देवार्चन आदि होते हों, वहां तुम अपनी स्त्री के साथ नहीं जाना। जहां देवता, अतिथि, गौ आदि की पूजा नहीं होती हो, जो स्थान मंगल उत्सव आदि से शून्य हो, वहीं तुम अपनी स्त्री के साथ जाना।" ऐसा कहकर मार्कण्डेय मुनि अंतर्हित हुए। उन्हीं के कहने के अनुसार दुःसह अपनी स्त्री के साथ उन-उन स्थानों में घूमते थे। एक दिन दुःसह ने अपनी स्त्री ज्येष्ठा से कहा, "तब तक तुम इस तालाब वाले आश्रम में रहो, जब तक मैं पाताल में जाकर रहने का स्थान ढूंढ़ लूं।" यह कहकर दुःसह पाताल गए; परंतु फिर न लौटे। एक दिन ज्येष्ठा ने कहीं विष्णु को देख लिया। वह बोली, "मेरे पति ने मुझको छोड़ दिया है, अब अपने भरण-पोषण के लिए धन कहां से पाऊं।" विष्णु बोले, "जो मेरी और शिव की निंदा करें उनका धन तुम ले लेना, जो लोग मुझे छोड़कर शिव की उपासना करेंगे अथवा शिव को छोड़ मेरी उपासना करेंगे, उनकी संपत्ति तुम्हारी संपत्ति कही जाएगी।" अलक्ष्मी को इस प्रकार समझाकर विष्णु और लक्ष्मी दोनों ने इसलिए रुद्र मंत्र का जप किया कि अलक्ष्मी का दृष्टि-दोष दूर हो जाए। (लिङ्गपुराण)

अलम्बल—जटासुर का पुत्र। पांडवों ने जटासुर को मार डाला था। इस कारण उसका पुत्र अलम्बल उनसे द्वेष रखता था। दुर्योधन की आज्ञा से इस असुर ने कुरुक्षेत्र में घटोत्कच से युद्ध किया था। बहुत देर तक युद्ध होने के पश्चात् घटोत्कच ने माया से इसे परास्त किया और इसका सिर भी काट दिया।

(महाभारत)

अलम्बूषा—अप्सरा विशेष। कश्यप के औरस और प्रधी के गर्भ से यह उत्पन्न हुई थी। राजा तृणबिन्दु के साथ इसका विवाह हुआ था। इसके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम विशालराज था।

अलर्क—(१) सत्ययुग में दंश नामक असुर भृगु मुनि के शाप से इसी कीट के रूप में परिणत हुआ था और परशुराम के द्वारा मारे जाने पर इसकी मुक्ति हुई थी। यह कीट शूकर के समान था, इसके आठ पैर थे। दांत तीक्ष्ण और शरीर बालों से आच्छादित था। एक समय परशुराम थककर अपने शिष्य कर्ण के अंक में सिर रखकर सोए थे, उसी समय मांस-लोलुप अलर्क कीट कर्ण की जांघ का मांस काटने लगा, महावीर कर्ण गुरु की निद्रा भंग न हो इस कारण चुपचाप उसके काटने की व्यथा सहते रहे। जब कर्ण की जांघ से निकला हुआ रुधिर परशुराम के शरीर में लगा, तब परशुराम की निद्रा खुल गई, उठकर परशुराम ने रुधिर निकलने का कारण पूछा। कर्ण की बातें सुनकर उन्होंने कीट की ओर लाल-लाल आंखें करके देखा, जिससे वह कीट मर गया। पुनः असुर मूर्ति धारण कर परशुराम को प्रणाम कर वह बोला, "भृगुवंशावतंस, आपका कल्याण हो, आपके अनुग्रह से मैं मुक्त हुआ, सतयुग में मैं असुर नामक दैत्य था। आपके पूर्व पितामह भृगु से मेरी अवस्था कम नहीं थी। मैंने बलपूर्वक उनकी स्त्री का हरण किया था। इस कारण उन्होंने मुझे शाप दिया, "श्लेष्मा, मूत्रभोजी कीट हो जाओ।" पुनः मेरी प्रार्थना से संतुष्ट होकर वे बोले, "मेरे वंश में उत्पन्न राम के द्वारा तुम्हारी मुक्ति होगी" उन्हीं महर्षि के शाप से मेरी यह दुर्गति हुई थी; आज आपके प्रताप से मैंने मुक्ति पाई, यह कहकर वह असुर अपने स्थान को चला गया। (महाभारत)

(२) राजा कुवलयाश्व का पुत्र। इनका जन्म मदालसा के गर्भ से हुआ था। इनकी माता मदालसा अति विदुषी और सर्वशास्त्रार्थदर्शिनी स्त्री थी। पुत्र अलर्क को मदालसा ने धर्मतत्त्व बतला दिए थे। कुवलयाश्व ने पुत्र को राज्य का भार सौंपकर स्त्री के साथ वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया। राजा अलर्क ने दुष्टों पर शासन और शिष्टों का पालन करते हुए बहुत दिनों तक राज्य का प्रबंध किया। इनके साथ काशिराज सुबाहु का युद्ध हुआ, काशिराज ने सेना के साथ इनको घेर लिया। शत्रु से आक्रांत हो कर बहुत दिनों तक ये नगर ही में घिरे रहे। तत्त्व-दर्शी राजा अलर्क ने राज्य के निकट असंख्य प्राणियों की हत्या करने को पाप समझकर उन्होंने काशिराज को राज्य दे देने की इच्छा की। परंतु काशिराज अलर्क से शिक्षा ग्रहण कर और युद्ध से निवृत्त होकर अपनी राजधानी को लौट गए। बहुत दिनों तक राज्य कर के अलर्क ने वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया।

(मार्कण्डेय पुराण)

अलसन्द—यवनदेश का एक प्रमुख नगर। गाहगर ने इसे सिकंदर द्वारा स्थापित एलेक्ज़ेंड्रिया नामक नगर से समीकृत किया है।

अलायुध—राक्षस विशेष, भीम के द्वारा इसकी जाति के बक और किर्मीर तथा मित्र हिडिम्ब मारे गए थे। बदला चुकाने की इच्छा से यह राक्षस महाभारत के

युद्ध में बहुत सेना लेकर दुर्योधन से मिला था और घोर युद्ध करके भीम के पुत्र घटोत्कच द्वारा मारा गया। (महाभारत, द्रोण०)

अवधूतेश्वर—शंकर का रूपांतर। एक समय इन्द्र और बृहस्पति कैलास पर शंकर के दर्शन हेतु मार्ग में जा रहे थे। उनकी परीक्षा के लिए शंकर ने भयंकर दिगंबर रूप धारण कर मार्ग को अवरुद्ध कर दिया। उसको हटाने के लिए इन्द्र ने वज्र प्रहार करना चाहा, किंतु शंकर के तीसरे नेत्र से क्रोधाग्नि भभक पड़ी। बृहस्पति की प्रार्थना पर शंकर शांत हुए।

अवधेश—ये बुन्देलखंड चरखारी के राजा रतनसिंह के दरबारी कवि थे और जाति के ब्राह्मण थे। १८४० ई० में ये विद्यमान थे। इनकी रची कविताएं रोचक होती थीं। परंतु इस समय इनका कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता।

अवन्तिवर्मा—काश्मीर के राजा। ये सुखवर्मा के पुत्र थे। इनके राज्यारूढ़ होने के पहले काश्मीर का राज-सिंहासन विपद-संकुल था, एक राजा उतारे जाते, और उस स्थान पर दूसरे अपना अभिषेक करवाते थे। इनके पहले उत्पलापीड काश्मीर के सिंहासन पर बैठा था। वहां के वृद्ध और अनुभवशील मंत्री ने अवन्तिवर्मा को राज्य-प्रबंध करने में सर्वथा उपयुक्त समझकर उत्पलापीड को राज्यच्युत कर दिया और अवन्तिवर्मा का काश्मीर के सिंहासन पर अभिषेक हुआ।

अवन्तिवर्मा राज्य पाकर पहले विपद में पड़ गए। इनकी राज्यप्राप्ति से ईर्ष्या करने वाले ऊधम मचाने लगे, अतएव इन्हें युद्ध और कौशल का आश्रय लेकर इन क्षुद्र शत्रुओं को दमन करना पड़ा था। सो सब इन्होंने अपने विद्वान् और अनुभवी मंत्रियों की सहायता से संपादित किया। अपने राज्य का इन्होंने उत्तम प्रबंध भी कर लिया।

काश्मीर में विद्या-चर्चा भी लुप्त हो गई थी। बुद्धिमान् मंत्री शूर ने नाना स्थानों से सम्मानपूर्वक पंडितों को बुलाया। अवन्तिवर्मा के राज्यकाल में मुक्ता कण, शिवस्वामी, आनन्दवर्द्धन और रत्नाकर आदि पंडित काश्मीर में थे। अवन्तिवर्मा यद्यपि वैष्णव थे, तथापि इनके मंत्री शूर के शैव होने के कारण ये भी शैवों ही के समान रहते थे। इन्होंने अपने नाम से काश्मीर में अवन्तीपुर नामक एक नगर बनाया था। कल्लट भट्ट आदि प्रसिद्ध विद्वान् इन्हीं के समय में काश्मीर की शोभा बढ़ा रहे थे। इन्होंने २७ वर्ष २ महीने १८ दिन राज्य किया था। (राजतरङ्गिणी)

अवन्ती—(१) एक देश का नाम। एक नगर, जिसका दूसरा नाम विशाला है। क्षिप्रा नदी के किनारे उज्जैन नाम से इस समय इसकी प्रसिद्धि है। यही प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य की राजधानी है। नर्मदा नदी के उत्तर और पश्चिम भाग में यह अवस्थित है। महाभारत के समय में इस देश का विस्तार दक्षिण की ओर नर्मदा तक और पश्चिम की ओर माही नदी तक था।

(२) उज्जैन का नाम है। किसी समय अवन्ती नाम का राज्य था जिसकी राजधानी उज्जैन थी। अब अवन्ती से केवल उज्जैन नगरी ही का बोध होता है।

(३) पुराणों तथा अन्य संस्कृत ग्रंथों में इसे अवन्तिका नाम से भी कहा गया है। विभिन्न शासकों से संबद्ध अभिलेखों में भी इसका वर्णन हुआ है। इसकी राजधानी उज्जयिनी थी। 'महाभारत' (वन० ३।८६) में इसे पुण्यसलिला नर्मदा नदी के तट पर बताया गया है। अवन्ती जन प्राचीन शक्तिशाली कबीलों के क्षत्रिय थे। भारत युद्ध में बिन्द और अनुबिन्द नामक दो अवन्ति राजाओं ने दुर्योधन की सेना का नेतृत्व किया था। कुरु-सेना के साथ मिलकर अवन्ति-जनों ने बड़ा ही पौरुष दिखाया था। 'मत्स्य-पुराण' में अवन्तिराज कार्तवीर्य अर्जुन का वर्णन हुआ है। अवन्तिकों और यदुओं के पारस्परिक विवाह संबंध थे। अवन्तिदेश का उल्लेख जम्बूद्वीप के षोडश जनपदों में किया गया है। यहां के निवासी शूर-वीर और समृद्धशाली थे। अवन्ती एक समय बौद्ध धर्म का महान् केन्द्र था। बौद्धों के निकाय ग्रंथों से ज्ञात होता है कि उज्जयिनी के राजा चंड पज्जोत (प्रद्योत) के पुरोहित महाकच्चायन ने बुद्ध से बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण की थी और तदनंतर राजा का भी धर्म-परिवर्तन किया था। चंडप्रद्योत, अजातशत्रु तथा बुद्ध के समकालीन थे। इस महान् विद्वान् राज-पुरोहित ने अपनी जन्मभूमि में धर्म-प्रचार की महती सफलता प्राप्त की थी। महावीर स्वामी भी अवन्ती की राजधानी उज्जयिनी गए थे और वहां के श्मशान के निकट उन्होंने कुछ समय तक तपस्या की थी मौर्यों के समय उज्जयिनी मगध के अंतर्गत थी। उज्जैन के विख्यात राजा विक्रमादित्य ने शकों का

उन्मूलन करके भारत के विशाल भू-भाग पर अधिकार किया था। महाकवि कालिदास उसी के आश्रित था। लगभग ७वीं शती में अवन्ती को मालवा कहा जाने लगा था। वहां के पामार वंश का इतिहास में गौरव के साथ उल्लेख हुआ है। अवन्ती व्यापार और विद्या का भी भारत प्रसिद्ध केंद्र था। चीनी यात्री ह्वेनत्सांग (७वीं शती) यहां आया था। प्राचीन अवन्तिदेश के अंतर्गत आधुनिक मालवा, निमाड़ तथा आस-पास के भाग सम्मिलित थे। यह दो भागों में विभक्त थी। उत्तरी भाग की राजधानी उज्जयिनी और दक्षिणी भाग की राजधानी माहिष्मती थी।

अविक्षित्—(१) इसने सौ अश्वमेध यज्ञ किए थे। स्वयंवरों से इसने हेमधर्मकन्या वरा, सुदेवकन्या गौरी आदि अनेक पत्नियां प्राप्त की थीं। विशाल की कन्या वैशालिनी को प्राप्त करने के लिए इसने अन्य राजाओं को परास्त किया। उन राजाओं ने मिलकर इसका पीछा किया और उसको पराजित कर बंदी बना लिया। तदनंतर इसके पिता करंधम ने सब राजाओं को जीतकर इसका उद्धार किया। इसका पुत्र मरुत्त हुआ। सर्पों ने जब अनेक ऋषियों को मार डाला तो मरुत्त ने उनका संहार करना प्रारंभ किया। तब अविक्षित् ने जाकर पुत्र को शांत किया और सर्पों को अभय दिया। सर्पों ने भी मृत ऋषियों को पुनर्जीवित कर दिया। (महाभारत)

(२) कुरु एवं वाहिनी से उत्पन्न पुत्र। अश्ववान् तथा अभिष्वत नामांतर से अभिहित। परीक्षित, शवलाश्व, अभिराज, विराज, शल्मल, उच्चैःश्रवस, मद्रकार और जितारि आदि आठ पुत्रों का पिता।

अविध्य—लंकाबारी एक राक्षस। त्रिजटा के द्वारा यह सीता को राम का समाचार भेजता था। इसने रावण को सीता लौटाने का सद्परामर्श दिया था।

अशोक—(१) विख्यात मौर्य सम्राट, ये बिंदुसार के पुत्र और चंद्रगुप्त के पौत्र थे। बिंदुसार के मरने पर राज्य के लिए उनके पुत्रों में विरोध हुआ। प्रतिद्वंद्वियों को पराजित करके २५ वर्ष की अवस्था में अशोक सिंहासनारूढ़ हुए।

अशोक का दूसरा नाम प्रियदर्शी था। राज्याभिषेक के आठवें वर्ष में इन्होंने कलिङ्ग देश को जीता। इस युद्ध में प्रायः डेढ़ लाख सेना बंदी और एक लाख सेना हत हुई थी। अशोक राज्य पाने के समय हिंदू थे और समय-समय पर उन्होंने बौद्धों को पीड़ा पहुंचाई थी। कहते हैं कि इन्हीं की आज्ञा से बोधगया का बोधिद्रुम काटा गया था और कपिलवस्तु के समीप वाले युद्ध के ८ स्मारक स्तंभों में से सात को इन्होंने तुड़वा दिया था। अशोक २६४ खृष्टाब्द के पूर्व पटना में सिंहासन पर बैठे थे और राज्य पाने के सातवें वर्ष उन्होंने बौद्ध धर्म ग्रहण किया था। अशोक ने १४ वर्ष के मध्य ही में भारत के दस भागों पर अपना अधिकार जमा लिया था। उनके पहले के किसी राजा ने अपने राज्य का इतना विस्तार नहीं किया था। इनका राज्य उत्तर में हिमालय पर्वत के समीपस्थ तराई प्रदेश तक, दक्षिण में गोदावरी नदी, पूर्व में ब्रह्मपुत्र और पश्चिम में अरब सागर तक फैला था। इतने बड़े राज्य को इन्होंने कई भागों में बांट दिया था, उन प्रदेशों के एक-एक शासक नियत थे। उज्जयिनी और तक्षशिला प्रदेश का शासन एक राजकुमार के हाथ में था। इन्होंने अनेक स्थानों में कुएं और धर्मशालाएं बनवाई थीं। अनेक स्थानों में धर्ममंदिर और विहार भी इन्होंने बनवाए थे, इसी कारण इनका राज्य आज भी विहार कहा जाता है। कहा जाता है कि ये ६० हजार बौद्धों का भरण-पोषण कर उनके द्वारा बौद्ध धर्म का प्रचार करवाते थे। समस्त संसार को बौद्ध बना देना ये अपने जीवन का प्रधान कार्य समझते थे। इनके समय में बौद्ध महासभा का द्वितीय अधिवेशन हुआ था। ये पत्थरों में धर्माज्ञा खुदवाकर अपने राज्य में उसको फैलाते थे। २३३ खृष्टाब्द के पूर्व तक इन्होंने राज्य करके मानव लीला समाप्त की थी।

(२) काश्मीर के राजा, शकुनि का प्रपौत्र और शचीनर के पितृव्य के ये पुत्र थे। शचीनर के मरने पर ये कश्मीर के सिंहासन पर बैठे थे, ये धार्मिक और सत्यवादी थे। इन्होंने बौद्ध धर्म ग्रहण किया था। इन्होंने वितस्ता पर्वत पर बहुत से बौद्ध मठ बनवाए थे। इनके बनवाए बौद्ध मंदिर इतने ऊंचे थे कि इनका शिखर नहीं दीख पड़ता था। इन्होंने ९६ लाख सुंदर गृहों से सुशोभित श्रीनगरी नाम का एक नगर बसाया था। अशोकेश्वर नामक एक महल भी इन्होंने अपने नाम से बनाया था। जब इनके देश पर म्लेच्छों ने चढ़ाई की तब दूसरा उपाय न देखकर ये उनको जीतने के लिए महादेव की आराधना करने लगे। महादेव के वर से इनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसका नाम जलौक था।

अशोकासुंदरी— पार्वती की पुत्री, जिसका विवाह नहुष से हुआ था।

अशोकाराम—अशोक द्वारा राजधानी पाटलिपुत्र में निर्मित यह एक बौद्धपीठ था। यहीं पर अशोक द्वारा आयोजित तीसरी बौद्ध संगीति का अधिवेशन संपन्न हुआ था। स्थविर नागसेन इस बौद्धपीठ के अधिष्ठता थे। धम्परक्खित से पिटकों का अध्ययन किया था। अशोक के संरक्षण में बौद्ध धर्म तथा आचार-विचारों के संबंध में जो नयी नीतियां निर्धारित हुईं और बौद्ध साहित्य का जो नवनिर्माण हुआ, इस अशोकाराम का उसमें अधिकतर योगदान रहा। यहां विद्वान एवं विचारक भिक्षु निवास करते थे।

अश्मक—(१) सूर्यवंशी राजा अयोध्या के राजा कल्माष-पाद की स्त्री के गर्भ और महर्षि वशिष्ठ के औरस से ये उत्पन्न हुए थे।

(२) ट्रावनकोर या भिवांकोडू का पुराना नाम।

अश्मक (अस्तक) देश—इसे गोदावरी नदी के तट पर पत्तिट्ठान के दक्षिण में बताया गया है। कुरुक्षेत्र युद्ध में अश्मक जन पांडव पक्ष से लड़े थे।

अश्वकेतु—महाभारत का एक वीर योद्धा। यह दुर्योधन की ओर से लड़ता था और अभिमन्यु के हाथ से यह मारा गया था।

अश्वग्रीव—राजा चित्रक का पुत्र।

अश्वतीर्थ—कान्यकुब्ज देश के समीप एक तीर्थ विशेष। यहां पर ऋचीक नाम के ऋषि ने एक सहस्र श्यामकर्ण घोड़े वरुण से पाए थे।

अश्वत्थामा—प्रसिद्ध कौरव-पांडव-गुरु द्रोणाचार्य का पुत्र। द्रोणाचार्य ने अपने पिता की आज्ञा से शरद्वान की कन्या कृपी से विवाह किया था। कृपी के गर्भ से द्रोणाचार्य के अश्वत्थामा नामक एक पुत्र हुआ था। इस पुत्र ने उत्पन्न होते ही उच्चैःश्रवा नामक घोड़े के समान शब्द किया था, ध्वनि होने के पश्चात् देव-वाणी हुई कि इस पुत्र ने जन्म लेते ही घोड़े के समान गंभीर शब्द से दिशाओं को प्रतिध्वनित कर दिया, इस कारण इसका नाम अश्वत्थामा होगा। अश्वत्थामा ने पिता से धनुर्विद्या सीखी थी, कुरुक्षेत्र युद्ध के अंतिम दिन अश्वत्थामा भग्नोरु दुर्योधन को देखने गया था, और उसके सामने पांडवों का विनाश करने की प्रतिज्ञा कर आया था। दुर्योधन को उसी अवस्था में छोड़कर कृपाचार्य और कृतवर्मा के साथ अश्वत्थामा मध्य रात्रि में पांडवों के शिविर में घुस गया। वहां जाकर धृष्टद्युम्न, शिखंडी, द्रौपदी के पांच पुत्र तथा पांडव पक्ष के बचे हुए अन्यान्य वीरों का भी वध कर, इसने अपने ब्राह्मणपने का परिचय दिया था। पंच पांडव श्रीकृष्ण और सात्यकि उस समय वहां नहीं थे, इसी कारण वे बच गए। अपने पुत्रों के वध से द्रौपदी विलाप करने लगी, भीम अश्वत्थामा को मारने के लिए दौड़े, श्रीकृष्ण ने सोचा कि अब तो अनर्थ होना चाहता है, क्योंकि अश्वत्थामा को अमर होने का वर दिया गया है। अतएव अर्जुन को साथ लेकर वे भी गए। भीम और अर्जुन के अस्त्रों से रक्षा पाने के लिए अश्वत्थामा ने ऐशिकास्त्र का प्रयोग किया था। इस अस्त्र को नष्ट करने के लिए अर्जुन ने ब्रह्मशिर नामक अस्त्र चलाया। महर्षि व्यास और नारद ने दोनों को अपने-अपने अस्त्र खींच लेने की आज्ञा दी। अर्जुन तो ब्रह्मचारी थे, उन्होंने अपना तो अस्त्र खींच लिया, परंतु अश्वत्थामा अपना अस्त्र नहीं खींच सका, क्योंकि वह ब्रह्मचारी नहीं था। अंत में अर्जुन उसे पकड़कर ले आए और उसका वध करना ही चाहते थे कि द्रौपदी ने निषेध किया। पुनः श्री कृष्ण की सम्मति से उसके सिर की मणि काटकर अर्जुन ने उसे छोड़ दिया। (महाभारत)

अश्वपति—(१) केकय देश के राजा थे, महाराज दशरथ की रानी कैकेयी के पिता।

(२) सावित्री के पिता।

अश्वमेध—एक प्रकार का यज्ञ। इस यज्ञ में धार्मिक और राजकीय दोनों भाव मिले हुए हैं। विजयी राजा इस यज्ञ को करते थे। जो अश्वमेध यज्ञ करना चाहते थे, वे एक घोड़ा छोड़ते थे। घोड़े के मस्तक पर एक पत्र लटका दिया जाता था, उस पत्र पर राजा का नाम, प्रताप आदि लिखे जाते थे। जो उस राजा का प्रताप अर्थात् अधीनता स्वीकार करते थे, वे उसको नहीं पकड़ते थे, परंतु जिन्हें अधीनता स्वीकार नहीं होती वे लड़ने के लिए तैयार हो जाते। उस घोड़े की रक्षा करने के लिए, राजपरिवार के वीर जाते थे। उस घोड़े के चारों ओर से लौट आने पर बड़ा आनंद मनाया जाता था। अंत में उसी घोड़े के मांस से हवन आदि किया जाता था।

अश्वल—'बृहदारण्यकोपनिषद्' (३।१।२, १०) के अनुसार वैदेह जनक द्वारा संपादित यज्ञ के होता। इस यज्ञ में याज्ञवल्क्य से इन्होंने कुछ प्रश्न किए थे।

अश्वलायन—ये एक प्राचीन प्रसिद्ध ग्रंथकार हैं जो कि अनुमान से ईसा के ३५० वर्ष पूर्व विद्यमान थे। ये शौनक के शिष्य थे और कात्यायन के पूर्वज। कल्पसूत्र के लेखकों में एक ये भी हैं। इन कल्पसूत्रों में यज्ञ आदि के अनुष्ठान का वर्णन किया है, जिनके करने की आज्ञा वेदों में दी गई है। ये गृह्यसूत्र के भी कर्ता हैं। गृह्यसूत्रों में संस्कार आदि के विधान का निरूपण किया गया है।

अश्वसेन—तक्षत का पुत्र। खण्डव दाह के समय तक्षत कहीं बाहर गया था, उसके पुत्र अश्वसेन ने अपनी रक्षा के लिए बहुत चेष्टा की, किंतु अर्जुन के बाणों से रुद्ध होने के कारण उसके सभी प्रयत्न निष्फल हुए। उसकी माता अपने पुत्र की रक्षा के लिए दौड़ी। अश्वसेन का सिर और पूंछ जल गई थी। नागपत्नी पुत्र की रक्षा करने जाकर स्वयं मृत हुई, अर्जुन ने तीक्ष्ण बाण से उसका सिर काट दिया। देवराज इंद्र ने यह देखा तो वातवर्षण से अर्जुन को अचेत कर दिया, इसी समय भागकर अर्जुन ने अपने प्राणों की रक्षा की। मातृहंता अर्जुन को मारने के लिए कुरुक्षेत्र के युद्ध में अश्वसेन कर्ण का बाण बना था, कर्ण ने इस बाण को छोड़ा। इस बात को जानकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सावधान कर दिया, अर्जुन ने सिर नीचा कर लिया। सर्पबाण अर्जुन के किरीट को छेदकर निकल गया। अश्वसेन ने विफल मनोरथ-होकर कर्ण के समीप जाकर अपना परिचय बताया और अपने को बाण में लगाने की उनसे प्रार्थना की। कर्ण वीर था, उसने एक बाण को दो बार चलाने में अपनी असहमति प्रकट की, इस कारण वह स्वयं अर्जुन की ओर दौड़ा और मारा गया। (महाभारत)

अश्विनी—दक्षप्रजापति की कन्या और चंद्रमा की स्त्री। इस नक्षत्र का आकार अश्वमुख के समान है, इसी कारण इसका नाम अश्विनी है। आश्विन मास की पूर्णमासी तिथि को इसी नक्षत्र में चन्द्रमा रहते हैं। इसी कारण उक्त महीने का नाम आश्विन पड़ा है।

अश्विनीकुमार—अश्वरूपी सूर्य के औरस और वडवा रूपधारिणी संज्ञा के गर्भ से इन स्वर्ग के यमज वैद्यों की उत्पत्ति हुई थी। कहा जाता है कि सूर्य का तेज न सह सकने के कारण सूर्य की स्त्री संज्ञा ने अपने समान एक स्त्री को बनाकर सूर्य के पास रख दिया और वह स्वयं अपने पिता त्वष्टा के घर चली गई त्वष्टा ने अपने पति के साथ दुर्व्यवहार करने के कारण पुत्री संज्ञा को बहुत डांटा और पुनः पति के पास जाने के लिए उनसे अनुरोध किया। पुत्री ने पिता के कहने पर ध्यान न देकर अश्विनी का रूप धारण किया और उत्तर कुरु वर्ष की ओर वह चली गई। यह जानकर सूर्य अश्वरूप धारण करके अपनी स्त्री के साथ रहने लगे, इसी समय अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए थे। ये दोनों साथ रहते हैं, और स्वर्ग के वैद्य कहे जाते हैं। पहले इनको देवता यज्ञों में भाग नहीं देते थे, परंतु महर्षि च्यवन का औषधोपचार द्वारा वृद्धत्व दूर करने पर च्यवन ने इन्हें भी यज्ञभाग में सम्मिलित करने का देवताओं से अनुरोध किया, तब से स्वर्ग के इन वैद्यों को भी यज्ञ का भाग मिलने लगा। (हरिवंश)

ऋग्वेद में भी यह उपाख्यान इसी प्रकार लिखा गया है, परंतु वहां सूर्य की पुत्री का नाम सरण्यू लिखा मिलता है।

अश्विनीसुत—सुतपस् भारद्वाज का पुत्र। एक बार सुतपस् की पत्नी तीर्थयात्रा कर रही थी कि सूर्यदेव ने उससे बलात्कार कर दिया। उसने जिस पुत्र को जन्म दिया, उसे ही अश्विनीसुत कहा गया। वे दोनों जब घर आए तो पत्नी ने सारा वृत्तांत सुतपस् को बता दिया। सुतपस् ने दोनों का परित्याग कर दिया; फिर उन्हें शाप दिया। किंतु अंत में दोनों ने सूर्य की स्तुति की और उन्हें प्रसन्न कर शापमुक्त हुए।

अष्टक—महाराज ययाति के दौहित्र। महर्षि विश्वामित्र के औरस और ययाति की कन्या माधवी के गर्भ से इनका जन्म हुआ था। ये एक पुण्यवान् राजा थे। नहुष पुत्र ययाति ने अपने पुत्र पुरु को राज्य देकर वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया। अनंतर ब्राह्मणों के साथ कुछ दिनों तक वास कर ये परलोकवासी हुए। एक दिन देवराज इन्द्र ने उनसे पूछा, "तुम किस तपस्या के बल से स्वर्ग आए हो?" ययाति बोले, "देवराज, देवता-मनुष्य, गंधर्व और महर्षियों में भी किसी ने आज तक मेरे समान तपस्या नहीं की थी।" देवराज बोले, "तुमने दूसरे का तपःप्रभाव न जानकर जो सबका अपमान किया है इस कारण तुम इसी समय नष्टपुण्य होकर स्वर्ग से निकल जाओ।" ययाति बोले, "यदि इनका तिरस्कार करने से मुझे स्वर्गलोक से जाना ही होगा तो आप ऐसी व्यवस्था कर दें कि मैं यहां से गिराए जाने पर भी सज्जनों के साथ रह सकूं।" देवराज ने कहा, "तुम सज्जनों के साथ ही रहोगे, परंतु सावधान, फिर इस

प्रकार किसी का अपमान मत करना" इस प्रकार वे इन्द्र की आज्ञा से स्वर्ग से गिरा दिए गए। आकाश मार्ग में अपने दौहित्र अष्टक, उसके साथी प्रतर्द्दन हर्यश्व के पुत्र वसुमान और उशीनर शिवि से इनकी भेंट हुई। इनके साथ परिचय होने पर अष्टक बोले, "महाराज, स्वर्ग या अंतरिक्ष में जो कोई मेरा स्थान हो वह मैंने आपको दिया।" प्रतर्द्दन ने कहा, "महाराज, आप ज्ञानी हैं, अतएव अंतरिक्ष या स्वर्ग में मेरे लिए, कोई स्थान रक्षित हो वह मैंने आपको दिया।" वसुमान् बोले, "महाराज, स्वर्ग या अंतरिक्ष में मेरे लिए जो कोई स्थान हो उसका अधिकार मैंने आपको दिया, यदि आप दान लेना उचित नहीं समझते हों, तो मुझसे तृण द्वारा खरीद लीजिए।" शिवि ने भी इसी प्रकार कहा। ययाति बोले, "मैं तुम लोगों को छोड़कर एकाकी स्वर्ग में रहना नहीं चाहता, हम सब लोगों ने अपने कर्म-फल से स्वर्ग जीत लिया है; अतएव हम सब साथ ही मिलकर चलें।" इसी प्रकार महाराज ययाति, अष्टक प्रतर्द्दन, वसुमान् और शिवि को साथ लेकर पुनः स्वर्ग में गए। (महाभारत)

अष्टावक्र—महर्षि असित के पुत्र देवल, रम्भा के शाप से कृष्णवर्ण और वक्रांग हो गए, तब उनका नाम अष्टावक्र हुआ। कहते हैं कि मुनिश्रेष्ठ देवल बहुत वर्षों तक गन्धमादन पर्वत पर तपस्या करते थे। एक दिन दैववश स्वर्गीय अप्सरा रम्भा मुनिवर को कामदेव के समान सुंदर देखकर उनके समीप उपभोग करने की इच्छा से गई। महर्षि के बहुत समझाने पर भी रम्भा अपने विचार से नहीं डिगी, और अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर उनसे प्रार्थना करने लगी। देवल बहुत क्रुद्ध हुए और वे पूर्ववत् ध्यान लगाकर बैठ गए, तब इसे रम्भा ने अपमान समझकर, देवल को शाप दिया, "हे वक्रविप्र! तुम्हारा सीधा और सुंदर शरीर वक्र और काला हो जाएगा, तुम रूप-यौवन-हीन होकर अतीव निंदित रूप धारण करोगे और अनेक वर्षों का अर्जित तुम्हारा तप नष्ट हो जाएगा" यह कह रम्भा वहां से चली गई। मुनिश्रेष्ठ देवल ने पहले के समान भगवान् के चरणारविंद को अपने सामने नहीं देखा, इससे वे बहुत व्यथित हुए और अपने शरीर को पूर्व पुण्यविवर्जित देखकर अग्निकुंड में अपने प्राण विसर्जन करने के लिए उद्यत हुए। तब भगवान् का वहां आविर्भाव हुआ। अनेक प्रकार के उपदेशों से उनको भगवान् ने शांत किया और इनके आठों अंग वक्र देखकर भगवान् ने इनका नाम अष्टावक्र रखा।

(ब्रह्मवैवर्त पुराण)

महाभारत में अष्टावक्र की कथा इस प्रकार लिखी है। महर्षि उद्दालक ने अपने शिष्य कहोड़ को अपनी कन्या सुजाता ब्याह दी थी। सुजाता के गर्भवती होने पर उनके गर्भस्थ बालक ने समस्त वेदों का ज्ञान प्राप्त किया था। एक दिन शिष्यों के साथ वेदपाठ करते हुए अपने पिता का भ्रम देखकर गर्भस्थ बालक ने कहा, "मैंने आपके प्रसाद से गर्भ ही में चारों वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और उसी प्राप्तज्ञान के द्वारा मैं देखता हूं कि आप वेदपाठ अशुद्ध कर रहे हैं।" महर्षि कहोड़ ने अपने शिष्यों के सामने इस प्रकार अपमानित होकर गर्भस्थ बालक को शाप दिया, "तुमने गर्भ में रहकर ही मेरी निंदा की, इस कारण तुम्हाहा शरीर वक्र हो जाएगा।" गर्भस्थ बालक यथासमय उत्पन्न हुआ, उसका अष्टावक्र नाम रखा गया। कहोड़ दरिद्र थे। अतएव गर्भवती सुजाता के कहने से धन के लिए कहोड़ जनकराज के निकट गए। परंतु वहां सभापंडित बंदी के द्वारा परास्त होने से ये जल में डुबो दिए गए। महर्षि उद्दालक ने अपनी कन्या सुजाता को अष्टावक्र से कहोड़ की बातें न कहने के लिए अनुरोध किया था। अष्टावक्र उद्दालक को अपना पिता और मामा श्वेतकेतु को भाई समझते थे। अष्टावक्र और श्वेतकेतु दोनों समान वय के थे। एक दिन अष्टावक्र को पिता की गोद में बैठे देख श्वेतकेतु ने कहा कि यह तुम्हारे पिता की गोद नहीं है। अष्टावक्र दौड़े-दौड़े माता के समीप गए और उनसे अनेक प्रश्न करने लगे। इनके पूछने से तंग होकर सुजाता ने कहोड़ संबंधी बातें अपने पुत्र से कह दीं। पिता की दुर्गति सुनकर अष्टावक्र ने अपने पिता का उद्धार करने का संकल्प किया। वे अपने मामा श्वेतकेतु को जनक के यज्ञ में उत्तम भोजन मिलने का लोभ दिखाकर अपने साथ लेकर मिथिला में जनकराज के यहां उपस्थित हुए। उनको बालक देखकर पहरे वाले ने यज्ञमंडप में जाने नहीं दिया। उसी समय जनकराज भी वहां उपस्थित हुए। अष्टावक्र ने अपना अभिप्राय निवेदन किया। यह बालक सभापंडित को जीतने आया है। यह देखकर जनक को बड़ा आश्चर्य हुआ, और वे ज्ञान की परीक्षा लेने के लिए अष्टावक्र से अनेक प्रश्न करने लगे। जब उन्होंने देखा कि यह मेरे प्रश्नों का यथार्थ उत्तर देता है; तब उन्होंने सभा में जाने की अनुमति दी और जाकर स्वयं

मध्यस्थ बने। शास्त्रार्थ में सभापंडित बंदी परास्त हुआ, जल में उसके डुबाए हुए सभी पंडित निकाले गए और उनके स्थान में बंदी डुबा दिया गया। अष्टावक्र अपने पिता कहोड़ सहित प्रभूत धन लेकर घर लौट आए। पुनः पिता की आज्ञा से अष्टावक्र ने समाङ्गा नामक नदी में स्नान किया, जिसके फल से अष्टावक्र का शरीर सुंदर हो गया। अष्टावक्र और जनक में जो उत्तर-प्रत्युत्तर हुए थे वे 'अष्टावक्र संहिता' के नाम से प्रसिद्ध हैं। (महाभारत, वन०)

असमञ्जस—सूर्यवंशी राजा सागर के ज्येष्ठ पुत्र। असमञ्जस अत्यंत प्रजापीड़क राजा थे, इस कारण सागर ने इनको अपनी राजधानी से निकाल दिया था। इनकी माता का नाम केशिनी था, इनका अंशुमान् नामक एक प्रसिद्ध पुत्र था।

असमाति राथप्रौष्ठ—राथप्रौष्ठ कुल का ऐक्ष्वाक राजा। ऋग्वेद तथा ब्राह्मण ग्रंथों के उल्लेखानुसार एक बार इस राजा का अपने दो गौपायन उपाध्यायों से विवाद हो गया और राजा ने बंदी बना दिया। किरात और आकलि नामक असुर पुरोहितों के कहने पर राजा ने एक को तो छोड़ दिया; किंतु गौपायन सुबन्धु को मरवा डाला। तदनंतर उसके भाइयों ने उसको पुनर्जीवित किया।

असिकनी—दक्ष की स्त्री वीरणा की कन्या।

असिकनी नदी—चन्द्रभागा अथवा चनाब नदी जो पंजाब में है।

असित—सूर्यवंशी राजा ध्रुवसंधि के ये पुत्र थे। रामायण में लिखा है कि ये बड़े युद्धप्रिय और क्रोधी थे। इसी से इनके बहुत से शत्रु हो गए थे। हैहय तालजंघों ने इन पर आक्रमण किया, बहुत दिनों तक लड़ाई होती रही। अंत में असित पराजित होकर दो स्त्रियों के साथ हिमालय पर भाग गए। (रामायण)

असित धान्वन—ब्रह्मण-ग्रंथों और सूत्र ग्रंथों के अनुसार यह वेदकालीन राजा असुरविद्या का अधिष्ठाता था। असित धान्व भी इसका अपर नाम उल्लिलिखित है।

असितमृग—'ऐतरेय ब्राह्मण' (७।२७) के अनुसार एक बार महाराज जनमेजय द्वारा यज्ञ में आमंत्रित न करने के कारण इन काश्यपगोत्रीय पुरोहित ने राजनियुक्त यज्ञ-अधिष्ठाता भूतवारि ब्राह्मण को पृथक् कर दिया और स्वयं वहां अधिष्ठित हुए। इनके अनेक पुत्र थे।

अस्कन्दगिरि—ये बांदा के रहने वाले थे और १८५६ ई० में विद्यमान थे। ये नायिका भेद की कविता बनाने में पटु थे। इनका बनाया 'अस्कन्द विनोद' ग्रंथ प्रसिद्ध है।

आस्ति अस्ती—जरासन्ध की दो कन्याएं हुईं, जिनके नाम थे अस्ति और प्राप्ति। अस्ति श्रेष्ठ थी। उनका विवाह कंस से हुआ था। 'भागवत' तथा 'महाभारत' के अनुसार श्रीकृष्ण ने जब कंस का वध किया तो वे दोनों अपने पितृगृह में चली आई थीं।

अस्पैसियन देश—सिकन्दर के समय पश्चिमी भारत का लघु राज्य। सिकन्दर के आक्रमण का प्रतिरोध करने वाले लोगों में अस्पैसियन या अश्वक अथवा अश्मक जनों का प्रमुख स्थान था।

अहंयाति—इनके पिता का नाम शर्याति या संपाति, माता का नाम वरांगी और पत्नी का नाम भानुमती था। सार्वभौम इनका पुत्र था।

अहमद—मुसलमान हिंदी कवि। इनका जन्म १६१३ ई० में हुआ था। ये सूफी संप्रदाय के बतलाएं जाते हैं। परंतु इनकी रचनाओं से मालूम पड़ता है कि ये वैष्णव थे। इनके बनाए दोहे और सोरठे बहुत पाए जाते हैं।

अहल्या—महर्षि गौतम की स्त्री। इनके पिता का नाम वृद्धाश्व था। ये अत्यंत रूपवती थीं। देवराज इन्द्र ने गौतम का रूप धरकर इनका धर्म नष्ट करना चाहा था। गौतम के शाप से इन्द्र नपुंसक हो गए थे, परंतु देवताओं ने बड़े परिश्रम से मेष का पुरुषत्व लेकर इन्द्र को प्रदान किया, तभी से इन्द्र का एक नाम मेष-वृषण हुआ। गौतम ने अहल्या को भी शाप दिया। गौतम के शाप से अहल्या निराहार केवल वायु के आधार पर रहने लगी, सर्वदा वह पश्चात्ताप करती रहती थी, उसका शरीर भस्म से पूर्ण था, और वह समस्त प्राणियों से अदृश्य हो गई।

'वातभक्षा निराहारा तपन्ती भस्मशायिनी।
अदृश्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन्वसिष्यासि॥'
(रामायण)

पुनः अहल्या के प्रार्थना करने पर गौतम प्रसन्न होकर बोले, "हमारा शाप व्यर्थ नहीं हो सकता, किंतु विष्णुरूपी रामचन्द्र जब इस आश्रम में आवेंगे, तब तुम उनके चरण वंदन कर, मुक्त हो सकोगी।" विश्वामित्र के साथ जब रामचन्द्र आए, तब उन लोगों ने भी अहल्या को तपस्विनी के रूप में देखा था। राम और लक्ष्मण दोनों भाइयों ने अहल्या को प्रणाम किया था और अहल्या ने भी अपने पति गौतम का वचन स्मरण करके रामचन्द्रजी का चरण वंदन किया था।

'रागवौ तु तदा तस्याः पादौ जगृहतुर्मुदा ।
स्मरन्ती गौतमवचः प्रतिजग्राह सा हितौ ।।'
(रामायण)

पुराण में लिखा है कि गौतम के शाप से अहल्या पत्थर हो गई थी और इन्द्र के शरीर में अनंत भग के चिह्न हो गए थे । कुमारिल भट्ट के मत से अहल्या और इन्द्र विषयक उपाख्यान केवल रूपक है । अहल्या शब्द का अर्थ रात्रि है, और इन्द्र शब्द का अर्थ है सूर्य । दिन में सूर्योदय होने से रात्रि नष्ट होती है, इसी घटना को लेकर उक्त उपाख्यान कल्पित हुआ है ।

अहल्याबाई—मालव देश के अंतर्गत, एक छोटे गांव में १७३५ ई० में इन्होंने जन्म ग्रहण किया था । मल्हारराव होल्कर के इकलौते पुत्र कुन्दराव के साथ छोटी अवस्था ही में इनका विवाह हुआ था । इनके एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई । पुत्र का नाम मल्हारराव और कन्या का नाम मुक्ताबाई था । अहल्याबाई की १९ वर्ष की अवस्था में इनके पति कुन्दराव किसी शत्रु के दुर्ग अवरोध करने के लिए जाकर वहां ही मारे गए । पति के जीवनकाल में अहल्याबाई राज्य संबंधी किसी भी काम में हाथ नहीं डालती थीं । वे हिंदू स्त्रियों के समान सदा अंतःपुर में रहकर संतानों का लालन-पालन किया करती थीं । उनकी ३० वर्ष की अवस्था में उनके श्वसुर मल्हारराव का परलोकवास हुआ । इनके बाद अहल्याबाई के पुत्र मल्हारराव का राज्यसिंहासन पर अभिषेक हुआ । किंतु कुछ महीने के बाद ही मल्हारराव का भी परलोकवास हो गया । पुत्र के मरने पर राज्य का समस्त भार अहल्याबाई के सिर पड़ा । राज्य का भार ग्रहण करने पर ये सभी के सामने आने-जाने लगीं । वे सूर्योदय के पहले ही स्नान आदि समाप्त कर अपने हाथों से ब्राह्मण को भोजन कराती थीं और तदनंतर स्वयं कुछ आहार करके रानी के वेश में राजसभा में जाती थीं । मंत्री और सभासदों के साथ संध्या तक वे राजकार्य करती थीं । तदनंतर सायंकालिक कृत्य समाप्त करके रात्रि में भी दरबार करती थीं । राजपुरोहित गङ्गाधर यशवन्त की इच्छा थी कि अहल्याबाई एक दत्तक पुत्र ले लें, और स्वयं उसका मंत्री बनकर राज्य शासन करें । इसी अपने उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए गङ्गाधर ने कई बार षड्यंत्र भी रचा, परंतु अहल्याबाई की तीक्ष्ण बुद्धि से उसके सब यत्न व्यर्थ हो गए । अंत में महारानी अहल्याबाई ने राजपुरोहित के अपराध क्षमा करके, उन्हें अपना मंत्री बनाया और तुकाजी होल्कर नामक एक बुद्धिमान् व्यक्ति को सेनापति बनाया । होल्कर वंश के आश्रित सामंतों के प्रति इनका व्यवहार दयायुक्त था । पहले इन्दौर एक सामान्य छोटा सा गांव था, परंतु अहल्याबाई ने राज्यभार लेकर उस स्थान को एक समृद्धिशाली नगर बना दिया, वे दानशीला, अतिथि-परायणा और देव-द्विज-भक्ति-परायणा थीं । भारतवर्ष के प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों में अहल्याबाई की कीर्ति आज भी वर्तमान है । महीशूर और मालवा प्रदेश में उनके बनाए अनेक देवमंदिर, धर्मशाला और कूप आदि आज भी वर्तमान हैं । गया में उनके बनाए अनेक देवालय वर्तमान हैं । गया में उनके बनवाए विष्णुपद मंदिर की कारीगरी देखते ही बनती है ।

अहल्याबाई की निर्भीकता देखकर आश्चर्यान्वित होना पड़ता है । उनके सेनापति तुकाजी होल्कर, जयपुर के राजा के पास कर लेने के लिए गए । किंतु माधोजी सिंधिया के सेनापति जिड़वा दादा के बहकाने से जयपुरराज देय धन देने में विलंब करने लगे । इधर जिड़वा दादा ने तुकाजी पर सहसा आक्रमण कर दिया । अकस्मात् आक्रमण से तुकाजी पराजित हुए । उन्होंने एक दुर्ग में छिपकर अहल्याबाई से सहायता मांगी । अहल्याबाई ने १५ हज़ार सैनिक भेज दिए । फिर युद्ध हुआ और इस युद्ध में पराजित होकर जिड़वा दादा ने तुकाजी से क्षमा मांगी और यह युद्ध भी समाप्त हुआ । अहल्याबाई ने दान-ध्यान-तप-परायणा होकर ३० वर्ष तक बड़े सुख से राज्य का प्रबंध किया था । मृत्यु के कुछ दिन पहले एक दुःखद घटना हो गई थी । उनकी कन्या मुक्ताबाई विधवा हो गई, और माता का कहना न मानकर उसने अपने पति का साथ दिया । इस घटना से अहल्याबाई का हृदय टूट गया । अपनी कन्या की चिता पर उन्होंने स्मारक-स्वरूप एक मठ बनवा दिया था । इस घटना के कुछ ही दिनों के बाद अहल्याबाई अपने नश्वर शरीर और चिरस्थायी यश को पृथ्वी पर छोड़कर परलोकवासिनी हुईं ।

अहिक्षेत्र—पाञ्चाल देश के उत्तरी भाग की यह राजधानी था ।

अहिच्छत्र—अहिच्छत्र, उत्तर पाञ्चाल देश जिसे दोणाचार्य ने पाण्डवों की सहायता से द्रुपद से छीना था । इसकी राजधानी रामनगर (रुहेलखण्ड) थी ।

अहिरावण (-महिरावण)—रावण के दो मित्र ; पाताल-वासी। रावण के निर्देश पर ये सुवेल पर्वत पर राम को मारने के लिए गए। वहां शिलाखंड पर सोए राम-लक्ष्मण को ये पाताल की ओर उड़ा ले चले। हनुमान ने इनका पीछा किया। उन्हें कपोत-कपोती के वार्तालाप से ज्ञात हुआ कि राम-लक्ष्मण को देवी के समक्ष बलि देने को लाया जा रहा है। वे देवी के मंदिर की ओर चल पड़े। रास्ते में संयोगवश उनकी अपने पुत्र मकरध्वज से भेंट हो गई। दोनों कामाक्षी देवी के मंदिर में जाकर बैठ गए। मंदिर के भीतर से देवी का स्वर निकालकर हनुमान ने कहा कि पूजा झरोखे से की जाय। उसी झरोखे से राम-लक्ष्मण को भी छोड़ा गया। तदनंतर परस्पर युद्ध हुआ। किंतु दोनों राक्षस रक्तबीज होने के कारण मारे न जा सके। तब हनुमान ने अहिरावण की पत्नी का आश्रय लिया। संयोगवश वह भी एक नागकन्या थी, जिसको बलात् चुराकर लाया गया था। और जो उनसे असंतुष्ट थी उसने कहा कि वह दोनों असुर-बंधुओं को मारने का उपाय बता सकती है; किंतु राम को उसके साथ विवाह करना पड़ेगा। इस बात को हनुमान ने स्वीकार कर लिया; किंतु साथ ही यह भी कहा कि यदि राम के भार से तुम्हारा मयंक नहीं टूटेगा तो वे तुमसे विवाह कर लेंगे। नागकन्या ने उपाय बताया कि इनका प्राण भ्रमरों में है। तीनों ने वैसा ही किया। एक भ्रमर प्राणदान के लिए हनुमान के पास आया। हनुमान ने उसे अभय करके उसे यह संदेश दिया कि वह जाकर अहिरावण की पत्नी नागकन्या का मयंक खोखला कर दे। उसने वैसा ही किया। राम समस्त राक्षसों का बध करके नागकन्या के पास गए। उनके हाथ लगाने से ही मयंक टूट गया। तब राम ने उसे उसके तीसरे जन्म में पत्नी बनाने का आश्वासन दिया।

अहिर्बुध्न्य—(१) अंतरिक्ष का स्थानीय देवता।
(२) गार्हस्थन्य अग्नि का नाम।
(३) सदों में परिगणित।
(४) इसने सुदर्शन चक्र की सिद्धि से राक्षसों का नाश किया।

आ

आकूति—(१) स्वायम्भुव मनु द्वारा शतरूपा में उत्पन्न कन्या; रुचि ऋषि की पत्नी।
(२) राजा पृथुषेण की पत्नी।
(३) व्युष्टपुत्र सर्वतेजस की पत्नी और यक्षुर्मनु की माता।

आकृति—'महाभारत' के अनुसार गरुड़विद्याविद् एक आचार्य। यह दक्षिण दिशा का राजा था और युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय सहदेव ने इस पर विजय प्राप्त की थी।

आगम—एक प्रकार के दैवी वचनों की व्याख्या, तंत्रशास्त्र, शिवप्रोक्त तंत्रविद्या।

आगस्त्य—ऋग्वेदकालीन अगस्त्य नामक महर्षि के पुत्र।

आङ्गिरस—(१) अङ्गिरस कुल में उत्पन्न। आङ्गिरस द्वारा रथीतर की पत्नी से उत्पन्न ब्रह्म-क्षत्र-संतति को आङ्गिरस कहा गया (भाग० ९।६।३)। अथर्व वेद के प्रवर्तक। एक बार इस कुल के ऋषियों ने यज्ञ का अनुष्ठान किया। उसके लिए एक सफेद गाय रखी गई। किंतु अवर्षण से हरी घास न मिलने के कारण यज्ञावशिष्ट से ही उसका निर्वाह होने लगा। गाय की इस दशा से आङ्गिरस को कष्ट हुआ। उन्होंने उसके लिए भरपूर चारे की व्यवस्था की।
(२) भौत्य मनु का पुत्र।
(३) शुनक का नामांतर, जिसने बभ्रु तथा सैन्धवायन को अथर्व वेद का ज्ञान दिया था।

आचार्य—धर्मोपदेष्टा गुरु, वेदाध्यापक।
"उपनीय तु यः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम्।
संकल्पं सरहस्यञ्च तमाचार्यः प्रचक्षते॥" (मनुस्मृति)

आजम—मुसलमान हिंदी कवि। ये १८०८ ई० में जन्मे। ये अन्य कवियों के मित्र थे और स्वयं कविता भी रचा करते थे। इनकी सर्वोत्तम कविता 'नख-सिख' और 'षड्ऋतु-वर्णन' है।

आज्यप—महर्षि प्रलह के वंशज। एक यज्ञ में बकरी के दूध से बना घी (आज्य) खा लेने के कारण इनका

ऐसा नामकरण हुआ। इनका निवास कर्दम प्रजापति का लोक है। नहुष की पत्नी विराजा इनकी कन्या थी। वैश्यों के सम्पूज्य।

आडि—(१) अन्धकासुर का पुत्र। शंकर ने इनके पिता का बध किया था। अतः शंकर से बदला लेने के लिए इन्होंने ब्रह्मदेव की उपासना की और उनसे यह वर प्राप्त किया कि रूपातंरित अवस्था में ही उनकी मृत्यु होगी। तदनंतर ये कैलास पहुंचे और सूर्य रूप धारण कर शंकर के आवास में प्रविष्ट हुए। फिर पार्वती का रूप धारण कर शंकर के सम्मुख प्रकट हुए। किंतु शंकर इस कपट को जान गए और उन्होंने रूपातंरित व्याडि का बध कर दिया।

(२) महर्षि विश्वामित्र द्वारा हरिश्चंद्र को पीड़ित किए जाने के कारण महर्षि वशिष्ठ ने उन्हें पक्षी योनि में परिणत होने का शाप दिया। विश्वामित्र ने भी वशिष्ठ को यही शाप दिया। दोनों पक्षी योनि में उत्पन्न हुए और आडि तथा बक के नाम से कहे गए। इस जन्म में भी उनका संघर्ष ही होता रहा। अंत में ब्रह्माजी ने उनका विवाद मिटाया। आडि बक का युद्ध देवासुर-संग्राम का भी अंग है।

आत्मदेव—तुंगभद्रा के तट पर कोहल ग्राम निवासी एक ब्राह्मण। यह भूमिहीन था। एक बार किसी वापिका तट पर इन्हें एक सिद्ध ने पुत्र प्राप्ति के वरदान-स्वरूप एक फल दिया और उसे अपनी स्त्री को खिलाने का निर्देश दिया। स्त्री ने अपनी बहिन के कहने पर वह फल एक गाय को खिला दिया और पति से असत्य भाषण कर दिया। बहिन ने उसके गर्भवती होने का षड्यंत्र रचाया। वह स्वयं गर्भवती थी और उसने अपनी बहिन को अपना पुत्र दे देने के लिए राजी कर लिया था। पुत्र उत्पन्न हुआ। उसे आत्मज जानकर आत्मदेव ने उसका नाम धुंधकारी रखा। इसी समय गाय का भी प्रसव हुआ। उसका नाम गोकर्ण रखा गया। 'पद्मपुराण' (३/१९६) के अनुसार कुवृंत्त धुंधकारी को गोकर्ण—ईश्वरभक्ति का उपदेश देकर मोक्षत्व प्राप्त किया।

आत्रेय—(१) तैत्तिरीयों के अचार्यतर्पण में परिगणित; तैस्तिदीप संहिता में इनके मत का उल्लेख हुआ है। इन्हें 'आत्रेयी संहिता' तथा 'आत्रेयी शिक्षा' नामक ग्रंथों का रचयिता बताया जाता है। आयुर्वेदशास्त्र में धन्वतंरि से पूर्व आत्रेय हुए हैं।

(२) एक राजा, जिसके तीन पुत्रों के नाम थे: एकत, छित और भित।

(३) वामदेव के शिष्य।

(४) हंस रूप में विचरण करने वाले एक ऋषि।

आत्रेयी—यह अत्रि ऋषि की कन्या थी, जिसका विवाह अग्नि के पुत्र अंगिरा से हुआ था। इसके तीन भाइयों के नाम थे: दत्त, दुर्वास और सोम। अग्निपुत्र होने के कारण इसका पति तेजस्वी स्वभाव का था। अग्नि ने आत्रेयी को जलरूप बनाकर पति को शांत करने का निर्देश दिया। उसने परुष्णी नदी बनकर अपने पति को जल द्वारा स्नान करवाया।

आदम—यहूदियों तथा मुसलमानों के मतानुसार सृष्टि-कर्ता; उनका विश्वास है कि ईश्वर ने सर्वप्रथम आदम और तदनंतर बीबी हव्वा को उत्पन्न किया। इन्हीं दोनों के द्वारा संसार की उत्पत्ति हुई। आदम की संतान होने के कारण मनुष्य को आदमी कहा गया।

आदित्य—सबसे प्राचीन देवताओं में इनकी गणना है। प्रति संक्रांति को बदलने वाली सूर्य की कला को आदित्य कहते हैं। ये अदिति के पुत्र थे। पहले इनकी संख्या आठ या नौ थी, परंतु बाद में संस्कृत साहित्य में इनकी १२ संख्या मानी जाने लगी। चाक्षुष मन्वंतर में इनका नाम त्वष्टा था। किंतु वैवस्वत मन्वंतर में वे आदित्य कहलाए।

आदि ब्रह्मपुराण—जिसमें दस हजार श्लोक हैं।

आदिवराह—एक अवतार, जिसका एक श्वेतवराह भी नामांतर है। उसने वर्तमान कलि कल्पारंभ में हिरण्याक्ष दैत्य का बध किया था।

आदिशूर—बङ्ग के सेन राजाओं में से प्रथम राजा। इनका असली नाम शूरसेन या वीरसेन था। इनकी राजधानी वीरनगर में थी, बंगाल के विक्रमपुर परगने के अंतर्गत रामपाल नामक स्थान में इन्होंने अपनी दूसरी राजधानी बनवाई थी। आदिसूर दशम शताब्दी के अंत में बंगाल का शासन करते थे। उस समय बङ्ग देश में बौद्ध धर्म का अत्यंत विस्तार था, अतएव वहां उस समय याज्ञिक ब्राह्मणों का मिलना असंभव हो गया था। राजा आदिशूर पुत्रेष्टि याग कराना चाहते थे। इसी कारण इन्होंने कन्नौज से पांच वेदज्ञ ब्राह्मण बुलवाए थे। इसके विषय में बंगाल के मिश्र ग्रंथों में लिखा मिलता है—

'भट्टनारायणो दक्षो वेदगर्भोऽथ छान्दडः,
अथ श्रीहर्षनामा च कान्यकुब्जात् समागताः।

शाण्डिल्यगोत्रजः श्रेष्ठो भट्टनारायणः कविः,
दक्षोऽथ काश्यपश्रेष्ठो वारस्यश्रेष्ठोऽथ छान्दडः ।
भरद्वाजकुलश्रेष्ठः श्रीहर्षो हर्षवर्द्धनः,
वेदगर्भोऽथ सावर्णो यथावेद इति स्मृतः ॥'

इन्हीं पांच ब्राह्मणों से बंगाल के प्रसिद्ध ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई है ।

आनन्द— (१) 'वायुपुराण' (२१। २६; २३।४६ के अनुसार गालव्य कुल का एक ब्राह्मण, जिसने नयी वर्णाश्रम पद्धति का प्रचलन किया था। इसके मानस पुत्र का नाम विराट था, जिसने १३२ वर्ष तक राज्य किया ।

(२) मेधातिथि के सात पुत्रों में से एक ।

आनन्दगिरि—विख्यात दार्शनिक पंडित । ये शङ्कराचार्य के शिष्य थे । ये खृष्टीय नवीं शताब्दी में उत्पन्न हुए थे । इन्होंने अनेक ग्रंथ बनाए हैं, जिनमें 'शङ्कराचार्य का दिग्विजय' प्रसिद्ध है । इसमें स्वामी शङ्कराचार्य का जीवन-चरित लिखा गया है । शङ्कराचार्य के शारीरिक भाष्य की इन्होंने टीका भी लिखी है । इसके अतिरिक्त उपनिषदों का भाष्य और श्रीमद्भगवदगीता की टीका इनकी बनाई इस समय मिलती है ।

आनन्दघन—ये दिल्ली के वासी थे, और १७३९ ई० में वर्तमान थे । 'साहित्यभूषण' के मतानुसार ये कायस्थ थे, और मुहम्मदशाह के मुंशी थे। ये मरने के पूर्व वृन्दावन चले गए थे । नादिरशाह ने जब मथुरा पर चढ़ाई की, तब ये मारे गए । इनका बनाया 'सुजन-सागर' ग्रंथ प्रसिद्ध है। इनका उपनाम 'घन आनन्द' है ।

आनन्दवर्द्धन—ये कबि कश्मीर-निवासी और प्रसिद्ध अलंकार-शास्त्रज्ञ थे । इनके रचे मुख्य ग्रंथ ये हैं। 'काव्यालोक', 'ध्वन्यालोक' और 'सहृदयालोक' । ये कश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा के सभापंडित थे। कल्हण ने 'राजतरङ्गिणी' में लिखा है—

'मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः।'

अवन्तिवर्मा का समय सन् ८५५ से ८८४ तक माना गया है । अतएव इनका भी वही समय मानना उचित है। आलंकारिक कल्वट और रुद्रट इनके समसामयिक थे ।

आनर्त—इन्हीं के नाम से आनर्त देश (गुजरात) का नामकरण हुआ। इनके पिता का नाम शर्याति और पुत्र का नाम रेवत था ।

आपया— ऋग्वेद तथा महाभारत में इस नदी का उल्लेख हुआ है । कुछ विद्वानों ने इसे अस्थिपुर महेश्वरदेव के पास बहने वाली बरसाती नदी कहा है और कुछ विद्वानों के मत से ओघवती का ही अपर नाम आपया है ।

आपव वशिष्ठ—वशिष्ठ कुलोत्पन्न, वरुणपुत्रा इनका आश्रम हिमालय में मेरु पर्वत पर था । अष्ट वसुओं द्वारा इनकी सुरभि कामधेनु का अपहरण करने के कारण शापवश इन्हें मर्त्यलोक में जन्म धारण करना पड़ा था ।

आपस्तम्ब—प्रसिद्ध ग्रंथकार महर्षि । इनका धर्मसूत्र बहुत प्रसिद्ध है । पाश्चात्य पंडितों का मत है कि इनका धर्मसूत्र दक्षिण भारत के आन्ध्र राजाओं के अभ्युदय काल में बना था । कृष्णा नदी के तीर पर इस समय जहां अमरावती नगरी वर्तमान है; उसी के समीप आन्ध्र राजाओं की पहले राजधानी थी । वहीं आपस्तम्ब का जन्म हुआ था । खृष्ट के जन्म से तीन सदी पहले आपस्तम्ब का जन्म हुआ था । आपस्तम्ब के ग्रंथों में 'वेदांग', 'वेदांत' और 'पूर्व मीमांसा' का उल्लेख पाया जाता है अतएव इन ग्रंथों के परवर्ती आपस्तम्ब का होना निश्चित होता है । संस्कृत ग्रंथों में आपस्तम्ब नाम से अनेक ऋषियों का पता चलता है । एक आपस्तम्ब सूत्रकार थे, एक आपस्तम्ब स्मृतिकार भी थे और यजुर्वेद में भी आपस्तम्ब का नाम पाया जाता है, अतएव ये सभी आपस्तम्ब एक ही नहीं हो सकते । मैं तो समझता हूं कि पहले आपस्तम्ब के वंशज अन्य आपस्तम्ब होंगे । क्योंकि भारत में पहले यह रीति थी कि कुलप्रवर्तक का नाम वंशधर अपने नाम के साथ लगाते थे । अभी भी यह रीति कहीं-कहीं प्रचलित है । वैदिक समय के आपस्तम्ब और आन्ध्र राजाओं के राजधानी-स्थित आपस्तम्ब दोनों एक ही व्यक्ति कभी हो नहीं सकते । आपस्तम्ब के बनाए ग्रंथों में 'आपस्तम्ब-संहिता' प्रसिद्ध है । इसमें तीन जातियों के प्रायश्चित्तों का निर्णय किया गया है । यह संहिता किन आपस्तम्ब की बनाई हुई है यह लिखना कठिन है। कारण कि संस्कृत साहित्य में अनेक आपस्तम्बों के नाम पाए जाते हैं । तथापि विचार की सहायता से इतना कहा जा सकता है कि सूत्रकाल के पश्चात् इसका निर्माण हुआ है । 'आपस्तम्ब-संहिता' में प्रधानतः प्रायश्चित्त की व्याख्या की गई है । इस संहिता के मत से क्षमा ही सर्वश्रेष्ठ गुण है। केवल एक क्षमता ही से ऐहिक तथा पारलौकिक कल्याण होता है ।

आपिशलि—पाणिनि के पूर्ववर्ती एक वैयाकरण, इन्होंने 'आपिशलि व्याकरण' की रचना की थी, जिसका उल्लेख काशिकाकार (७।३।९५) तथा कैयट (५।१।२१) ने किया है। इस नाम से भृगुकुल के भी एक महर्षि हुए।

आभीर—देश विशेष। पुराणों में इस देश की स्थिति उत्तर की ओर मानी गई है। परंतु महाभारत और रामायण पश्चिम में इसकी स्थिति बतलाते हैं।

आभीरदेश (अबिरिया)—आभीर या अबिरिया पर पश्चिमी क्षत्रपों या शकों का शासन रहा है। यहां के शासक महाक्षत्रप ईश्वरदत्त या ईश्वरसेन ने तीसरी शती ई० में सातवाहनों से संघर्ष किया था और महाराष्ट्र के कुछ भागों पर अधिकार किय था। प्रयाग स्तम्भ के समुद्रगुप्त के अभिलेख में आभीर देश का वर्णन एक गणराज्य के रूप में हुआ है, जो कि गुप्तों को कर देता था और अर्ध-स्वतंत्र था। टालेमी ने इसे इंडो-सीथिया कहा है। आभीरों की गणना शूद्रों में की गई है। वायुपुराण (४५।१२६) में उन्हें 'दक्षिणापथवासिनः' कहा गया है। कुछ विद्वानों ने मध्य प्रदेश की पार्वती और बेतवा नदियों के बीच अहिरबाड़ा से आभीरदेश को समीकृत किया है।

आम—(१) धृतराष्ट्र के ज्येष्ठ पुत्र, जिनके नाम से 'आमवर्ण' का प्रचलन हुआ।

(२) कृष्ण तथा सत्यभामा से उत्पन्न पुत्र।

(३) कान्यकुब्ज देश का एक बौद्ध धर्मानुयायी राज्य, जिसकी राजधानी धर्मारण्य में थी। श्रीराम ने हनुमान के द्वारा इसे पुनः वैदिक धर्म में दीक्षित कराया था।

आयु—चन्द्रवंशी राजा। ये महाराज पुरूरवा के ज्येष्ठ पुत्र थे। बाहु नामक राजा की कन्या से इनका विवाह हुआ था। उसके गर्भ से आयु के पांच पुत्र हुए थे। (विष्णुपुराण)

आयोदधौम्य—एक विख्यात प्राचीन ऋषि इनके प्रसिद्ध शिष्य तीन थे, जिनका नाम उपमन्यु, आरुणि और वेद था। (महाभारत, आ०प०)

आरुणि—महर्षि आयोदधौम्य के शिष्य। ये पान्चाल देश में रहते थे। एक दिन महर्षि ने आरुणि को बुलाकर खेत का बांध बांधने के लिए कहा। आरुणि गुरु की आज्ञा पाकर खेत में गए, परंतु अनेक कष्ट उठाने पर भी जब वे बांध नहीं बांध सके, तब वे स्वयं वहां सो गए, जिससे खेत से जल निकलना बंद हो गया। थोड़ी देर के बाद महर्षि ने आरुणि के लिए अपने अन्य शिष्यों से पूछा कि वह कहां गया? शिष्यों ने कहा, "आपने उसे खेत में बांध बांधने के लिए भेजा था, वहां से अभी तक वह नहीं लौटा।" यह सुन गुरु शिष्यों के साथ खेत पर गए, और वहां आरुणि को न देखकर वे उसे पुकारने लगे। वहां से निकलकर आरुणि गुरु के समीप उपस्थित हुए। गुरु के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा, "खेत से जल निकलना जब किसी प्रकार बंद नहीं हुआ; तब हम वहीं सो गए थे। आपकी पुकार सुनकर अभी वहां से निकलकर हम आ रहे हैं।" गुरु प्रसन्न होकर बोले, "आज से तुम्हारा उद्दालक नाम प्रसिद्ध होगा और मेरी आज्ञापालन करने के कारण संपूर्ण कल्याण तुम्हें प्राप्त होगा। समस्त वेद का ज्ञान तुम्हें प्रतिभात हो जाएगा।" अनंतर आरुणि गुरु की आज्ञा से अपने इष्ट स्थान को गए। (महाभारत, आ०प०)

आरुषी—मनुष की पुत्री। च्यवन ऋषि की पत्नी और उर्व ऋषि की माता।

आर्जिकीया—इसका अस्तित्व ऋग्वेदकालीन है। इसका उद्‌गम ऋजीक पर्वत था। ऋजुगामी होने के कारण इसका ऐसा नामकरण हुआ। यास्क ने इसे विपाश (व्यास) नाम से कहा है।

आर्यक—'महाभारत' (आ०प० ११६) के अनुसार कद्रू का पुत्र। इनकी पुत्री मारीषा यदुवंशीय राजा सूर की पत्नी थी। उसके एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम पृथा (कुन्ती था)। इस प्रकार भीम की माता आर्यक की दौहित्री भी सिद्ध होती है। एक बार भीम को दुर्योधन आदि ने विष खिलाकर नदी में डुबो दिया। आर्यक ने वहां से भीम का उद्धार किया और उसे अमृतदान करके दस सहस्र नागों का बल प्रदान कर हस्तिनापुर पहुंचाया।

आर्यक्षेमीश्वर—संस्कृत के कवि। इनका बनाया 'चण्डकौशिक' नाम का नाटक प्रसिद्ध है। इस नाटक का नामोल्लेख 'साहित्यदर्पण' के अतिरिक्त और किसी अलंकार ग्रंथ में नहीं पाया जाता। अतएव इनका समय १४वीं सदी के कुछ ही पूर्व माना जा सकता है। 'चण्डकौशिक' की प्रस्तावना में लिखा है कि राजा महीपाल की आज्ञा से इसका अभिनय किया जाता है। और नाटक के अंत में कवि ने अपने को राजा कार्त्तिकेय का सभासद बतलाया है। बंगाल के पालवंशियों में से एक का नाम महीपाल लिखा मिलता

है, जिसके पिता का नाम विग्रहपाल (दूसरा) और पुत्र का नैपाल था। संभव है, कार्त्तिकेय इसी महीपाल का वंशज हो। महीपाल देव का समय १०२६-१०४० ई० तक है। अतएव आर्यक्षेमीश्वर का समय भी इसी के लगभग मानना चाहिए।

आर्यभट्ट—विख्यात भारतीय ज्योतिर्विद् पंडित। इन्होंने एक ज्योतिष का ग्रंथ बनाया है, जिसका नाम 'आर्यसिद्धान्त' है। ये कुसुमपुर नामक स्थान में ४७५ ई० में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने एक बीजगणित भी बनाया है। सौर केंद्रिक मत को इन्होंने भी पुष्ट किया है। इन्होंने अपने 'आर्यसिद्धान्त' नामक ग्रंथ में लिखा है—

'अनुलोगतिनौंस्थ: पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्,
अचलानितानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम्।'

साधारण दृष्टि से देखा जाता है कि सूर्य अथवा राशिचक्र पूर्व की ओर से पश्चिम की ओर जा रहे हैं। ऐसा आभास क्यों होता है? इसका कारण आर्यभट्ट बतलाते हैं कि अनुलोम गति अर्थात् नदी की धारा के साथ चलने वाले जिस प्रकार नदी तीरस्थ वृक्ष आदिकों को अपने विपरीतगामी समझते हैं उसी प्रकार लंका में अर्थात् विषवद्वृत्त प्रदेश में अचल नक्षत्र आदि भी गमनशील मालूम पड़ते हैं। पूर्वाभिमुख पृथ्वी के घूमने के कारण अचल राशिचक्र पश्चिमाभिमुख जा रहे हैं ऐसा मालूम पड़ता है। लंका का विषवद्वृत्त नाम इसलिए लिया गया है कि वह पृथ्वी का मध्य स्थान है, वहां से राशिचक्र समान भाव से देखे जाते हैं।

आर्यराज—काश्मीर के एक राजा का नाम। ये पहले काश्मीर के राजा गयेन्द्र के मंत्री थे; परंतु पीछे घटनाचक्र से ये राजा हो गए। इनके विषय में कांश्मीर के इतिहास 'राजतरङ्गिणी' में एक अद्भुत कथा लिखी है—

सन्धिमती राजा गयेन्द्र के मंत्री थे। स्वार्थियों ने राजा को समझा दिया कि यह बड़ा बुद्धिमान् है। समय पाकर यह राज्य पर अपना अधिकार जमा लेगा। उनकी बातों में आकर राजा ने सन्धिमती को निकाल दिया। तब वह अपने घर में रहने लगा और अहर्निश शिवपूजन में बिताया करता था। इसी बीच में सारे नगर में यह बात फैल गई कि सन्धिमति राजा बनने का प्रयत्न कर रहा है। राजा ने यह सुनते ही उसे तुरंत कैद कर लिया। आज उसे दस वर्ष कैदी बने हो गए, अब राजा का भी अंत समय आ गया, राजा मृत्युशय्या पर पड़े हुए हैं, परंतु हृदय से मत्सरता की ज्वाला निकल रही है। अंत में सन्धिमति का बध करा देना ही उन्होंने निश्चित किया। इधर राजा भी कालवश हुए और उधर सन्धिमति को भी बधिकों ने मार डाला। सन्धिमति के गुरु का नाम था ईशान। वह सबेरे अपने शिष्य की अंतिम क्रिया करने के लिए वहां गए। उन्होंने चिता बनाई, शव रखने के समय ईशान ने उसकी ललाट लिपि पढ़ी। उसमें लिखा था—"यावज्जीवन दरिद्रता, दस वर्ष का राजदंड, उद्बंधन मृत्यु और राज्य प्राप्ति।" इसे पढ़ उनको बड़ा आश्चर्य हुआ, वे सोचने लगे कि तीन घटनाएं तो सत्य निकली हैं, परंतु चौथी घटना कैसे सत्य निकलेगी? अंत में विधि के विचित्र विधान पर भरोसा रखकर उन्होंने उस शव को वहीं छोड़ दिया और यत्नपूर्वक वे उसकी रक्षा करने लगे। दो प्रहर रात बीतने पर योगिनीमण्डल वहां उपस्थित हुआ और उस शव को बीच में रखकर, उसके कटे अंगों को पहले उन लोगों ने जोड़ दिया और उसके पश्चात योगबल से उसकी आत्मा का आवाहन कर, उसे जीवित कर दिया और उसका नाम आर्यराज रखा। बड़ी प्रसन्नता से ईशान अपने शिष्य को ले आए। नगरवासियों ने बड़े आदर से उनका अभिषेक कर उन्हें अपना राजा बनाया। ये राजा होने पर सभी से सद्व्यवहार किया करते थे। इनका विशेष काल शिवपूजन ही में बीतता था। इन्होंने ४७ बर्षों तक राज्य किया था। अंत में जब इन्हें मालूम हुआ। कि प्रजा मुझसे अप्रसन्न है क्योंकि मेरा अधिक समय पूजा ही में जाता है; तब इन्होंने स्वयं राज्य छोड़ दिया। (राजतरङ्गिणी, वृप्त०)

आर्ष्टिषेण—राजर्षि विशेष। वनवास के समय पांडव इनके आश्रम पर गए थे। (महाभारत, व०प०)

आलम— १७०० ई० में इनका जन्म हुआ था। ये पहले सनाढ्य ब्राह्मण थे, परंतु एक रंगरेजिन के प्रेम में फंसकर ये मुसलमान हो गए थे। यह मुअज़्ज़मशाह की नौकरी करते थे। इनकी कविता बड़ी सुंदर हुआ करती थी।

आलवार—श्रीवैष्णव संप्रदाय के बारह नेता। ये भिन्न-भिन्न समय में और भिन्न-भिन्न गांव में उत्पन्न हुए और भिन्न-भिन्न काल में रहे। इन लोगों को श्रीवैष्णव लोग भगवान् के आयुधों के अवतार मानते हैं। इनके नाम ये हैं—पोयालवार, पुत्थालवार,

पेयालवार, तिरुमल पेयालवार, नमालबार कुलशेख-रालवार, पिरीआलवार, तिरुपनालवार, तिरूमङ्ग-आलवार, टोण्डामालवार, यम्प्रेमानार, आर्यपतिराज या रामानुजाचार्य, कुरुआलवार।

आश्मरथ्य—आश्मरथ कुल में उत्पन्न। सूत्रग्रंथों में इन्हें एक आचार्य के रूप में उद्धृत किया गया है।

आश्वलायन—महाराष्ट्र में प्रसिद्ध आश्वलायन बौद्ध शाखा के प्रवर्तक। इनके नाम से तीन ग्रंथ उपलब्ध हैं: 'आश्वलायन गृह्यसूत्र', 'आश्वलायन श्रौतसूत्र' और 'आश्वलायन' स्मृति। इन्होंने अपने गुरु शौनक को अपने ग्रंथ में नमन किया है। शौनक ने स्वयं सूत्रग्रंथ की रचना की थी; किंतु वह उपलब्ध नहीं है। इनके गृह्य तथा श्रौत पर लिखे गए दोनों सूत्र-ग्रंथ मान्य एवं प्रचलित हैं। इनके श्रौतसूत्र में अनेक परवर्ती आचार्यों का भी उल्लेख हुआ है। इन दोनों ग्रंथों की भाषा का तुलनात्मक अध्ययन करके कुछ विद्वानों का अभिमत है कि उनका गृह्यसूत्र उनके किसी शिष्य ने लिखकर उनके नाम से प्रचलित कर दिया। अथर्ववेद के 'कैवल्योपनिषद्' के रचयिता भी संभवतः यही थे।

आसंग—ऋग्वेदकालीन एक सूक्तद्रष्टा राजा (ऋग्वेद, ८।१।३१-३४)। संभवतः यह यदुवंशीय (यद्वा) था। इसकी पत्नी का नाम शश्वती था। भाष्यकार शायणाचार्य के उल्लेखानुसार इनका पुरुषत्व नष्ट हो गया था। ऋषि मेधातिथि ने उसको पुनः प्राप्त कराया।

आसुरायण—(१) उपनिषदों तथा 'ब्रह्मांड पुराण' के मतांतर से त्रैवणी, आसुरी या पाराशर्य कौथुम का शिष्य।

(२) काश्यपगोत्रोत्पन्न एक ऋषि।

(३) विश्वामित्र ऋषि का पुत्र।

आसुरि—'बृहदारण्यकोपनिषद्' में एक स्थान पर इन्हें भारद्वाज का शिष्य तथा औपजंघ का गुरु बताया गया है और दूसरे स्थान पर याज्ञवल्क्य का शिष्य तथा आसुरायण का शिष्य। यज्ञानुष्ठान में इनके मत की प्रामाणिकता को स्वीकार किया गया है। व्यास की यजु:शाखा में इन्हें मध्यदेशीय कहा गया है। युधिष्ठिर के स्वरूप में ये उपस्थित थे। 'महाभारत' में इन्हें सांख्यशास्त्र के प्रवर्तक महर्षि कपिल का शिष्य और तंचशाखा का गुरु कहा गया है। वैदिक वाङ्मय में इनके अस्तित्व एवं महत्त्व का पर्याप्त वर्णन हुआ है।

आस्तीक—जरत्कारु मुनि के पुत्र, इनकी माता का भी नाम जरत्कारु था। इनकी माता सर्पराज वासुकी की बहिन थीं। आस्तीक ने पितृकुल और मातृकुल को जलने से बचाया था। पाण्डुकुलोद्भव राजा जनमेजय ने सर्पसत्र यज्ञ किया था। उस यज्ञ में सर्पों की आहुति दी जाती थी। आस्तीक ने अपने मामा तथा भाई आदि की उस विपत्ति से रक्षा की थी। (महाभारत)

आहुक—प्राचीन समय में मृत्तिकावत् नगरी में जो राज-वंश रहता था। उसका भोज नाम था। इसी भोजवंश में अभिजित् नामक एक राजा उत्पन्न हुए थे। राजा अभिजित के यमज संतान हुई, जिसमें एक पुत्र और एक कन्या थी। पुत्र का नाम आहुक और कन्या का नाम आहुकी था। महाराज आहुक भोजवंशी राजाओं में ऐश्वर्यशाली और प्रतापी राजा थे। भोजगण इनकी आज्ञा मानते थे। आहुक ने अपनी भगिनी का विवाह अवन्तिनाथ के साथ किया था। आहुक की स्त्री का नाम था काश्य। इसके गर्भ से देवक और उग्रसेन नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। (हरिवंश)

आह्वेय—वैदिक आचार्य शुचि इनके पिता का नाम था। तथा माता का नाम आहृति था। सामान्यतः सिद्धांत के अनुसार स्वाध्याय गांव से बाहर आने का विधान है; किंतु इन्होंने वैकल्पिक रूप से उसे ग्रामांतर में करने का विधान किया है।

इ

इंशा अल्ला खां—इनके पिता का नाम मीर माशा अल्ला खां था। इनका जन्म मुर्शिदाबाद में हुआ था। हिंदी साहित्य के इतिहास में इंशा अल्ला खां को खड़ी बोली गद्य के निर्माताओं में गिना जाता है। इन्होंने बंगाल,

दिल्ली और लखनऊ तक अनेक नवाबों तथा वजीरों का आश्रय प्राप्त किया। इंशा साहब मूलतः उर्दू-फारसी के नामी शायर थे। इन्होंने 'उर्दू गज़लों का दीवान' 'दीवाने रेख्ती', 'कसायद उर्दू-फारसी', 'फारसी मसनवी', 'दीवाने फारसी', 'मसनवी बेनुक्त', 'मसनवी शिकारनामा' और 'दरयाये लताफ़त' आदि अनेक कृतियों की रचना कर उर्दू-फारसी के इतिहास में अपना प्रतिष्ठित स्थान बनाया।

हिन्दी खड़ी बोली गद्य के क्षेत्र में इन्होंने 'रानी केतकी की कहानी' ('उदयभान चरित') की रचना की। इनकी इस एकमात्र कृत्रि ने इन्हें हिंदी साहित्य में अमर बना दिया। इसमें उन्होंने ब्रजभाषा, अवधी और संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है और अपनी इस प्रतिज्ञा को निभाया है कि है कि उसमें "हिंदी छुट और किसी बोली का पुट नहीं है।" अपनी चटपटी, मनोरंजक और मुहावरेदार भाषा-प्रयोग के लिए उनकी बड़ी सराहना की गई है। यद्यपि उनकी गद्य शैली आधुनिक हिंदी के विकास-क्रम को ध्वनित करने में समर्थ नहीं हैं, तथापि उनके हिंदवी लेखन के नवीन प्रयोग को इतिहास में विशिष्ट स्थान दिया गया है। 1817 ई० में इनका निधन हुआ।

इक्षुमती—उत्तर प्रदेश के उत्तरी भाग में बहने वाली काली नदी का नाम।

इक्ष्वाकु— (१) वैवस्वत मनु के पुत्र। ये सूर्यवंश के प्रथम राजा हैं। इन्होंने अयोध्या में कोसल राज्य के नाम से राज्य-स्थापन किया। इनके सौ पुत्र हुए थे। ये रामचन्द्र के पूर्वपुरुषों में से हैं। मनु की छींक से ये उत्पन्न हुए थे। इक्ष्वाकु के सौ पुत्रों में से विकुक्षि, निमि और दण्ड—ये तीन श्रेष्ठ थे। उनके शकुनि आदि पचास पुत्र उत्तरापथ के राजा हुए थे और अन्य अड़तालीस पुत्र दक्षिण के राजा हुए। (विष्णुपुराण)

(२) वाराणसी के राजा, इनके पिता का नाम सुबन्धु था। ये इक्षुदण्ड फोड़कर उत्पन्न हुए थे, इस कारण इनका नाम इक्ष्वाकु था।

इच्छाराम—ये पंचरुआ जिला बाराबंकी के रहने वाले थे और १६५८ ई० में विद्यमान थे। ये बड़े सुकवि थे और इनकी रचनाएं पवित्र होती थीं। इनका बनाया वेदांतसंबंधी एक ग्रंथ है, जिसका नाम है 'ब्रह्म-विलास'।

इडा—वैवस्वत मनु की कन्या। वैवस्वत मनु, प्रजा-सृष्टि करने की इच्छा से यज्ञ के लिए लाए हुए जल में घृत, नवनीत और आमीक्षा डाले हुए थे। इसी जल में से एक वर्ष के बाद इडा नाम की एक कन्या बुध को ब्याही गई थी। इसी के गर्भ से पुरूरवा नामक बुध का एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। (शतपथ ब्राह्मण)

इतिहास—पुरावृत्त। किसी देश के सामाजिक, धार्मिक और नैतिक आदि वृत्तांतों का संग्रह शास्त्र। भारतीय इतिहास के कर्ता महर्षि वेदव्यास हैं। महाभारत इतिहास है, जिसके कर्ता व्यास ही हैं। 'राजतरङ्गिणी' आदि इतिहास ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

इद्वत्सर—तीसरे युग का नाम।

इध्मजिह्वा—यह लक्षद्वीप का स्वामी तथा धार्मिक और उदार चरित था। इसके पिता का नाम प्रियव्रत और माता का नाम बर्हिष्मती था। इसके शिव, यवस, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृक और अभय नामक सात पुत्र हुए। इन्हें इसने अपने द्वीप के सात भाग करके वितरित कर दिया था।

इन्दीवराक्ष—यह एक गंधर्व था। इसके पिता का नाम नल था। इसके गुरु का नाम ब्रह्ममित्र था। अपने गुरु से छिपे तौर पर इसने आयुर्वेद विद्या का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इस पर गुरु ने अप्रसन्न होकर इसे शाप दिया कि वह अपनी ही संतानों को खाने दौड़ेगा। शापवश वह अपनी कन्या मनोरमा को खाने दौड़ा। किंतु स्वरोचि ने उसे मार डाला। इससे शापमुक्त होकर उसने पुनः स्वस्थ शरीर धारण किया और ब्रह्ममित्र से आयुर्वेद विद्या का अध्ययन किया। इस विद्या को उसने स्वरोचि को प्रदान किया।

इन्दु—(१) राजा विश्वाश्व का पुत्र; इन्हें आन्ध्र चन्द्र तथा आर्द्र नामों से भी कहा गया है। इनके पुत्र का नाम युवनाश्व था।

(२) सुवर्णजट प्रदेश का निवासी काश्यप गोत्रीय जिसने ब्रह्मपद को प्राप्त किया था।

इन्दुमती—विदर्भराज की कन्या। इन्होंने स्वयंवर सभा में अन्यान्य राजाओं की उपेक्षा करके अयोध्या के राजा रघु के पुत्र अज को अपना पति बनाया था। इससे अन्य राजाओं ने ईर्ष्यावश अयोध्या को लौटते अज पर आक्रमण किया। अज सम्मोहन अस्त्र से उन राजाओं को अचेत कर अयोध्या में आकर राज्य करने लगे। इन्होंने अपने राज्यकाल में प्रजा के साथ बहुत ही सद्व्यवहार किया था। इन्दुमती के गर्भ से अज को दशरथ नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। एक समय

अज इन्दुमती के साथ बगीचे में घूम रहे थे, उसी समय आकाश मार्ग से जाते हुए नारद की वीणा से पारिजात कुसुम की माला इन्दुमती के शरीर पर गिरी। उस माला के देखने से इन्दुमती ने प्राण त्याग किया और अप्सरा मूर्ति धारण करके वह स्वर्ग को चली गई।

पहले तृणबिन्दु नामक ऋषि की कठोर तपस्या से भीत होकर, इन्द्र ने हरिणी नामक अप्सरा को उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिए भेजा था। अप्सरा हरिणी उनकी तपस्या में विघ्न डालने जाकर स्वयं इनके क्रोध में पड़ गई। मुनि ने मानुषी होने के लिए इसे शापित किया। पुनः हरिणी के अनुनय-विनय करने पर प्रसन्न होकर महर्षि बोले, "स्वर्गीय पुष्प के देखने से तुम्हारी मुक्ति होगी।" वही हरिणी महर्षि के शाप से विदर्भराज के यहां उत्पन्न हुई थी और पारिजात पुष्प को देखने से पुनः स्वर्ग चली गई। (रघुवंश)

इन्द्र—(१) वेदोक्त देवता। भारतवर्षीय आर्य ऋषिगण जिन देवताओं की उपासना करते थे उनमें एक इन्द्र भी थे। ऋग्वेद में लिखा है कि इनकी माता ने इन्हें बहुत दिनों तक अपने गर्भ में धारण किया था। जन्म लेने के पश्चात् इन्होंने अपने पिता को पैर पकड़कर मार डाला था।

(२) पौराणिक देवता ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर से इनकी पदमर्यादा नीची है। अन्यान्य देवताओं पर इनका अधिकार है। इस कारण इनको देवराज भी कहते हैं। पुलोमा नामक दानव की कन्या शची को इन्होंने ब्याहा था। तीसरा पाण्डव अर्जुन इनके औरस और कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। महर्षि काश्यप के औरस और अदिति के गर्भ से इन्द्र उत्पन्न हुए थे। वृत्रासुर को मारने के लिए दधीचि मुनि की अस्थि से देवशिल्पी विश्कर्मा ने इन्द्र का वज्र बना दिया था। समुद्र मंथन में इन को ऐरावत हाथी, उच्चैः श्रवा घोड़ा और पारिजात वृक्ष मिले थे। (महाभारत)

इनके आवासगृह का नाम वैजयन्त और पुत्र का नाम जयन्त था। रावण के पुत्र मेघनाद ने युद्ध में इन्हें पराजित कर दिया था। एक समय सुन्द और उपसुन्द नामक दानवों ने स्वर्गराज्य पर आक्रमण किया, उनको मारने के लिए ब्रह्मा के आदेश से अपूर्व सुंदरी एक स्त्री विश्वकर्मा ने बनाई। उसका नाम तिलोत्तमा था। तिलोत्तमा के कारण वे दोनों आपस में लड़कर मर गए। ये गौतम की स्त्री अहल्या का सतीत्व नाश करने के लिए गए थे, और स्वयं अंडहीन हुए।

(ब्रह्मवैवर्त पुराण)

इन्द्रकील—विष्णुपुराण में एक पहाड़ का नाम इन्द्रकील लिखा है। इसी पर्वत पर अर्जुन ने तपस्या की थी, और अर्जुन से किरातरूपी महादेव का यहीं युद्ध हुआ था। आज के प्रचलित पहाड़ों में से कौनसा इन्द्रकील पहाड़ है इसका पता नहीं चलता।

इन्द्रजानु—राम की ग्यारह करोड़ वानर सेना का सेनापति।

इन्द्रजित्—लंकेश्वर रावण का पुत्र। इसका दूसरा नाम मेघनाद था। देवराज इन्द्र को परास्त करके मेघनाद ने इन्द्रजित् नाम पाया था।

इन्द्रद्युम्न—(१) ये कृतयुग में उत्पन्न हुए थे। एक समय इस राजा ने विष्णुपूजा करने की इच्छा की, परंतु कहां जाकर ये विष्णु की आराधना करें, इस बात की चिंता करने लगे। समस्त तीर्थस्थानों का इन्हें स्मरण हुआ; परंतु किसी भी स्थान को इन्होंने पसंद नहीं किया। अंत में ये पुरुषोत्तम क्षेत्र में आए, और वहां आकर इन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया और यज्ञ के अंत में ब्राह्मणों को भूमि दान में दी। वहीं पुरुषोत्तम क्षेत्र में इन्होंने एक विष्णुमंदिर बनवाया था। इस मंदिर में किसकी मूर्ति स्थापित की जाएगी यह सोचते-सोचते इन्द्रद्युम्न निद्रित हो गए। विष्णु स्वप्न में दर्शन देकर बोले, "तुम मेरी सनातनी मूर्ति की प्रतिष्ठा करो, आज प्रातःकाल समुद्र के किनारे जाने से तुम्हें एक काष्ठ-खंड मिलेगा। उस काष्ठ को अपने हाथों से काटकर उसी की मूर्ति बनवाना।" विष्णु की आज्ञा से इन्द्रद्युम्न समुद्र के किनारे गए और अपने हाथ से उस लकड़ी को काटने लगे। उसी समय विष्णु और विश्वकर्मा ब्राह्मण-रूप धारण कर वहां उपस्थित हुए। ब्राह्मण रूपी विष्णु के लकड़ी काटने का कारण पूछने पर राजा ने उत्तर दिया। ब्राह्मण रूपी विष्णु ने कहा, "आपका उद्देश्य बहुत अच्छा है। परंतु आप इस कठिन काम को कर सकेंगे कि नहीं इसमें संदेह है। मेरे साथ विश्वकर्मा के समान एक शिल्पी है, यदि आप कहें तो ये प्रतिमूर्ति बना सकते हैं।" इन्द्रद्युम्न ने उनका कहना मान लिया, और कृष्ण, बलराम तथा सुभद्रा की मूर्ति बनाने के लिए शिल्पी से कहा, विश्वकर्मा रूपी शिल्पी ने सभी मूर्तियां बना दी। (नारदपुराण)

(२) महाभारत के वनपर्व में भी एक इन्द्रद्युम्न का नाम मिलता है। ये मार्कण्डेय मुनि से भी प्राचीन थे। पुण्य नष्ट होने के कारण ये स्वर्ग से गिरा दिए गए थे और पुनः स्वर्ग नहीं जा सके।

इन्द्रनाथ—परंपरागत अनुश्रुति है कि विष्णु के चक्र से कट-कर सती का दाहिना हाथ इस पहाड़ी पर गिरा था। यहां पर गीताकुंड के समीप शिव का एक मंदिर है। इस मंदिर तक चढ़कर पूर्वजन्म के कष्टों का निवारण हो जाता है। संप्रति इसकी तीर्थ रूप में प्रसिद्धि है। यह स्थान अब बंगला देश के चटगांव जिले में स्थित है।

इन्द्रप्रमति—ये महर्षि पैल के शिष्य थे और ऋग्वेद संहिता के पढ़ाने वाले थे। ऋक्संहिता इन्होंने अपने पुत्र माण्डूक्य को पढ़ाई थी, और क्रमशः इनके शिष्यों ने इसका विस्तार किया।

इन्द्रप्रस्थ—पाण्डवों का नगर जो कि आधुनिक दिल्ली और कुतुब के बीच में अवस्थित है। भारत में जिस समय राजा युधिष्ठिर का शासन था, उस समय के इन्द्रप्रस्थ का विशद रूप से वर्णन लिखा है। जब पाण्डव राज्य छोड़ हिमालय पर गलने के लिए गए, उस समय महाराज युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर का राज्य अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित् को और इन्द्रप्रस्थ का राज्य धृतराष्ट्र के एकमात्र बचे हुए पुत्र युयुत्सु को दिया था।

इन्द्रलोक—इन्द्र और क्षत्रियों की निवासभूमि का नाम अमरावती या स्वर्ग है और इसी को इन्द्रलोक भी कहते हैं। ब्रह्मा के पुत्र देवताओं के राजमिस्त्री विश्वकर्मा ने इसे बनाया। यहां की नृत्यशाला इतनी लंबी-चौड़ी है कि उसमें तेंतीस करोड़ देवता और अड़तालीस हज़ार ऋषि तथा उनके अनेक अनुचर भी एक-साथ बैठ सकते हैं।

इन्द्रवर्मा—ये मालव देश के राजा थे। महाभारत युद्ध में इन्होंने कौरव-पक्ष से युद्ध किया था। इनके हाथी का नाम अश्वत्थामा था जो कि युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ।

इन्द्रसावर्णी—भागवत के अनुसार चौदहवें मन्वंतर के मनु।

इन्द्रसिंह—खण्डेला प्रांत के एक भाग के अधीश्वर। ये फतेसिंह के पुत्र और धीरसिंह के पौत्र थे। उन दिनों खण्डेला प्रदेश दो भागों में बंटा हुआ था। एक भाग के अधीश्वर इन्द्रसिंह थे और दूसरे भाग के अधीश्वर वृन्दावनदास। तात्कालिक आमेरराज माधवसिंह की सहायता से वृन्दावनदास ने इन्द्रसिंह पर आक्रमण किया परंतु इन्द्रसिंह ने बुद्धि और पराक्रम पर भरोसा रख अनेक कष्ट सहन कर अंत में संपूर्ण खण्डेला राज्य पर अपना आधिपत्य जमाया। (टाड्स राजस्थान)

इन्द्रसेन—महाराज युधिष्ठिर का सारथि। जब महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयों और द्रौपदी के साथ एक वर्ष अज्ञातवास करने के लिए राजा विराट् के यहां जाने लगे, तब उन्होंने अपने सारथि इन्द्रसेन को खाली रथ द्वारका को ले जाने की आज्ञा दी थी।

(महाभारत, वि० पं०)

इन्द्रसेना—(१) 'महभारत' (व०न०प०५३।१०) के अनुसार नल-दमयन्ती की कन्या।

(२) पांचालवंशीय ब्रह्मिस्ट मुद्गल राजा की पाली और वन्ध्यश्व की माता।

(३) ऊपर नाम ब्राभ्रवी; नरिष्यन्त की पत्नी तथा दम की माता, जो कि पति की मृत्यु के बाद सती हो गई थी।

इन्द्राणी—इन्द्र की स्त्री। इनका दूसरा नाम शची है। इन्द्र के साथ इन्हीं का इन्द्रत्व पद पर अभिषेक किया जाता है। ये सदा कुमारी कही जाती हैं, एक इन्द्र का राज्य बदलने पर दूसरे इन्द्र के साथ पुनः इन्हीं का अभिषेक होता है। इन्द्राणी कभी स्वयं पुत्र उत्पन्न नहीं करतीं, तो भी उनके एक पुत्र हुआ, जो कि गौ से उत्पन्न हुआ था। क्योंकि उन्होंने पुत्र के लिए ईश्वर की बहुत सी आराधना की थी। जब चित्रपुत्र गौ के पेट से उत्पन्न हुआ, तब इन्द्राणी की छातियों में दूध भर आया। जिससे कि वे उस नवजात बालक को पाल-पोस सकें।

ऋग्वेद में एक वक्ता कहते हैं, "मैंने सुना है कि सारी स्त्रियों में इन्द्राणी ही भाग्यवती हैं, क्योंकि उनके पति वृद्धावस्था को प्राप्त होकर कभी नहीं मरेंगे।" ऐतरेय ब्राह्मण में इन्द्र की स्त्री का नाम प्रासहा लिखा है। शतपथ ब्राह्मण कहता है कि इन्द्राणी इन्द्र की सबसे प्रिय महिषी है और उसके सिर पर अनेक प्रकार की बनी टोपी लगी है।

इन्द्रियात्मा—विष्णु का नाम।

इब्राहीम—इनका उपनाम रसखान था और ये पिहानी ज़िला हरदोई के रहने वाले मुसलमान थे। इनका

जन्म १५७३ ई० में हुआ था। मुसलमान होने पर भी ये वैष्णव धर्म के अनुयायी हो वृन्दावन में जा बसे थे। इनका नाम भक्तमाल में भी पाया जाता है। इनकी रची कविता बड़ी मधुर होती है। इनके एक शिष्य कानाम कादिरबख्श था।

इभूशा—उस वराह का नाम, जिसके अंग से प्रजापति ने जन्म लिया था। उन्होंने पृथ्वी को उठाया और बढ़ाया।

इरावती—(१) भागवत में लिखा हुआ है कि ये रुद्र की स्त्री थीं।

(२) इस नदी का उद्‌गम हिमालय की इरा झील है। इसे आजकल राखी नाम से कहा जाता है। छम्ब से लाहौर होते हुए यह नदी चेनाब चन्द्रभागा में मिल जाती है।

इरावान—तृतीय पाण्डव अर्जुन का पुत्र। अर्जुन के औरस और ऐरावत नाग की विधवा कन्या के गर्भ से इसकी उत्पत्ति हुई थी। पक्षिराज गरुड़ ने जब ऐरावत के जामाता को मार डाला तब नागराज ने अपनी दुःखिनी विधवा कन्या अर्जुन को समर्पित कर दी। अर्जुन ने भी कामवशवर्तिनी उस स्त्री को ग्रहण कर लिया। उसी के गर्भ से अर्जुन को एक पुत्र हुआ था जिसका नाम था इरावान। कुरुक्षेत्र के युद्ध में इसने पाण्डवों की ओर से युद्ध किया था और कौरव सेना के बहुत से सैनिकों का विनाश किया था, परंतु अंत में उसी युद्ध में दुर्योधन के पक्षीय आर्य श्रृङ्ग नामक राक्षस द्वारा यह मारा गया। (महाभारत भी० प०)

इलराज—प्राचीन राजा ये कर्द्दम प्रजापति के पुत्र थे। ये वाह्लीक देश पर राज्य करते थे। उस समय वाह्लीकराज का प्रताप देश-विदेश में फैला हुआ था। एक समय वह राजा सेना के साथ वन में गया, वहां उसने अनेक हरिण आदि मारे, परंतु वह मृगया से तृप्त नहीं हुआ। वन में घूम-घूमकर वह शिकार करने लगा। अकस्मात् वह कुमार वन में चला गया, उस वन में चाहे जो जाए वह अवश्य स्त्री हो जाएगा, यह उस वन का स्वभाव था। वहां जाकर इलराज अपने को तथा अपनी समस्त सेना को स्त्री देख बड़े चकित हुए। उन्होंने शिव की बड़ी स्तुति की परंतु जब शिव ने कहा कि स्त्रीत्व दूर करने के अतिरिक्त और जो वर मांगो वही दूं, तब हताश हो और शिव की स्तुति करना छोड़, ये पार्वती की स्तुति करने लगे। पार्वती के वर से ये एक महीना पुरुष और एक महीना स्त्री रहा करते थे। (रामायण)

इलविला—यक्षराज कुबेर की माता और विश्रवा मुनि की पत्नी। कुबेर इलविला के पुत्र हैं, इस कारण कुबेर का नाम ऐलविल भी प्रसिद्ध है।

इलवृत—(१) अग्नीध्र के नौ पुत्रों में से एक पुत्र, ये जम्बूद्वीप के राजा थे।

(२) मेरु पर्वत का मध्यप्रदेश जिसे इलावृत कहते हैं।

इला—(१)—'देवी भागवत' के अनुसार मनु वैवस्वत की कन्या; मित्रावरुणों के अंशदान से उत्पन्न होने के कारण इसे सुद्युम्न कहा गया। बुध से इसका पुरूरवत् नामक पुत्र हुआ।

(२) वायुपुत्री, जिसका विवाह उत्तानपाद से हुआ था। इससे उत्कल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

(३) दक्ष प्रजापति तथा असिकनी की कन्या; कश्यप की पत्नी।

इलिन—'महाभारत' (आ० प० ६०।२८; ८९।१५) के अनुसार क्षत्रिय वंशज त्रस्नु या तंसु का पुत्र इसके दुष्यंत, शूर आदि पांच पुत्र हुए। मतांतर से अमूर्तरय का पुत्र तथा माता का नाम मालिन्दी और पत्नी का नाम रथन्तरा।

इलोरा—औरंगाबाद प्रांत में दौलताबाद के पास के एक नगर का नाम। इसी नगर में बस्ती से एक मील पूर्व की ओर एक पहाड़ है जिसको काटकर मंदिर बनाया गया है। बीचोबीच में जो मंदिर है उसका नाम कैलास है। इसका शिखर ८०-९० फुट ऊंचा है और मंदिर के जगमोहन में सोलह खंभे हैं। यहां और भी गुफाएं हैं जिनमें बौद्ध और जैन मूर्तियां आकीर्ण हैं।

इल्लम्मा—दक्षिणी भारत में एक ग्रामदेवता का नाम। असल में ये रेणुका हैं जो जमदग्नि की स्त्री और परशुराम की माता थीं। इल्लम्मा की मूर्ति बैठी हुई है। उसका रंग लाल और चेहरा दमकता हुआ है। चार बांहें हैं। जब किसी को सांप काट खाता है अथवा भल्लाट किसी विपद् में होता है तो इल्लम्मा की स्तुति और मनौती करता है।

इल्वल—यह प्रसिद्ध राक्षस था और ह्लाद का पुत्र था। इसकी शूरता पुराणों में अनेक स्थानों में वर्णित हुई है। इसका एक चचेरा भाई था जिसका नाम विप्रचित्त

था । यह भी प्रसिद्ध दानवों में से एक था ।

(देखिए, अगस्त्य)

इबिलाक—अंध राजाओं का एक राजा, यह लम्बोदर का पुत्र था ।

इषीक—'महाभारत' (११०।२३) के अनुसार इसने शिखण्डी को संगीतविद्याविद् गन्धर्वाचार्य तुम्बरु की उपासना कराके पुरुषत्वपूर्ण करा दिया था ।

इसिगलिपिस्स (ऋषिगिरि)—इस पहाड़ी का 'महाभारत' और विभिन्न बौद्धग्रंथों में प्रचुर उल्लेख हुआ है । इसके नाम पर 'इसिगिलिसुत्त' नाम से एक पृथक् सुत्त का निर्माण हुआ है । इस सुत्त में लिखा है कि यह पवित्र पहाड़ी अतीत के पांच सौ प्रत्येक बुद्ध की आवासभूमि रही । वे इस पहाड़ी में प्रविष्ट हुए और फिर बाहर निकलते हुए नहीं देखे गए । इस पहाड़ी के पार्श्व में 'कालशिला' नामक एक पहाड़ी थी । राजगृह भी वृद्धावस्था में इस कालशिला पर आए थे । बुद्ध भी वहां आए थे । विद्वानों का अभिमत है कि संन्यासी गुरुओं (संन्यासियों) का निगरण (देहत्याग) की भूमि होने के कारण इसका ऐसा नामकरण हुआ ।

ई

ईश—हिंदी के कवि । इनका जन्म १७३६ ई० में हुआ था । ये श्रृंगार और शांतरस की बढ़िया कविता बनाते थे ।

ईशान—(१) 'स्कन्दपुराण' (२।४।१।३३) के अनुसार एक संन्यासी, जिसने शंकर की उपासना करके उन्हें प्रसन्न किया था ।

(२) देव-हिरण्याक्ष-युद्ध में वायु ने इसका वध किया ।

ईश्वर—हिंदी के एक कवि का नाम । इनका जन्म १६७३ ई० में हुआ था । ये औरङ्गजेब के दरबारियों में थे और इनकी रचना बड़ी रोचक होती थी ।

ईश्वरसिंह—जयपुर के महाराज जयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र । जयसिंह के परलोक चले जाने पर १७४७ ई० में ये जयपुर की गद्दी पर बैठे । गद्दी पर बैठने के कुछ ही दिनों के बाद ये दुर्रानियों के साथ युद्ध करने के लिए सतलज नदी के किनारे गए थे, उस युद्ध में इन्होंने बड़ी भीरुता दिखाई । सेनापति कमरुद्दीनखां के मारे जाने पर ये युद्ध से भाग आए । कहते हैं कि युद्ध से भागना राजनीतिक चाल थी । परंतु इनके युद्ध से भाग आने पर, इनकी रानियां इन पर बहुत अप्रसन्न हुई थीं । कुछ दिनों तक राज्य करने के पश्चात् इनकी नपुंसकता के कारण राज्यलक्ष्मी इन पर अप्रसन्न हो गई । सामंतों ने इनको राज्य से हटाकर इनके छोटे भाई माधवसिंह को राज्य देने का षड्यंत्र रचा । माधवसिंह जयसिंह के छोटे पुत्र थे । महाराणा संग्रामसिंह की पुत्री से इनका जन्म हुआ था । पिता और नाना के दिए राज्य का ये शासन कर रहे थे । जयपुर के सामंतों ने जगतसिंह महाराणा (माधवसिंह के मामा) को पत्र लिखा । वहां की स्थिति जानकर जगतसिंह ने एक पत्र ईश्वरीसिंह के पास भेजा । जिसमें इन्होंने लिखा था "आप गद्दी से अपना संबंध छोड़ दें, इस राज्य का अधिकारी माधवसिंह है ।" महाराणा का सामना करने में अपने को असमर्थ देखकर, इन्होंने महाराष्ट्र-नेता अयाजी से सन्धि कर ली । राणा ने जब अपनी सेना लेकर इन पर चढ़ाई की, तब ईश्वरसिंह अयाजी की सहायता से इस युद्ध में विजयी हुए । इस युद्ध में हारने से राणा को बड़ा कष्ट हुआ । उन्होंने अपनी सेना को क्षीणबल जानकर होलकर से संधि कर ली । संधि इस शर्त पर हुई थी कि ४६ लाख रुपये होलकर को तब दिए जाएंगे जब वे सेना की सहायता से माधवसिंह को जयपुर की गद्दी पर बैठा देंगे । ईश्वरसिंह ने अपने को इस विपत्ति से उबारने का कोई उचित उपाय न देखकर आत्महत्या कर ली ।

(टाड्स राजस्थान)

ईश्वरीप्रसाद त्रिपाठी—ये वीरनगर जि० सीतापुर के रहने वाले थे, और १८८३ ई० में विद्यमान थे। इन्होंने वाल्मीकि रामायण का पद्य में अनेक छंदों में भाषानुवाद रचा है और उसका नाम 'रामविलास' है।

ईसा—एक महीने का नाम। यह महीना पहले होता था। अब इस महीने का पता नहीं है। 'विष्णुपुराण' और रामायण में लिखा है कि ईसा उस महीने का नाम है जिसमें सूर्य दक्षिणायन रहता है।

उ

उक्थ्य—(१) सामवेद का एक भाग, जो ब्रह्मा के दक्षिण मुख से उत्पन्न हुआ था।

(२) कुशवंशी छालराजा का युवराज।

उख—तैत्तिरीयों के पितृगण में परिगणित एक आचार्य एवं शाखा प्रवर्तक।

उग्र—शिवजी की वायुमूर्ति। शिव की आठ मूर्तियां हैं: क्षितिमूर्ति सर्व, जलमूर्ति भव, तेजमूर्ति रुद्र, वायुमूर्ति उग्र, व्योममूर्ति भीम, यजमान-मूर्ति पशुपति, चन्द्रमूर्ति महादेव और सूर्यमूर्ति ईशान।

उग्रचण्डा—भगवती की मूर्ति विशेष। इनकी अठारह भुजाएं हैं। आश्विन मास की कृष्णा नवमी के दिन हिंदुओं के घर-घर इनकी पूजा होती है। सती ने इसी मूर्ति से अपने पिता दक्ष का यज्ञ ध्वंस किया था। आषाढ़ मास की पूर्णिमा को दक्ष ने बारह वर्ष का यज्ञ प्रारंभ किया था। इस यज्ञ में दक्ष ने अपने जामाता शिव और तनया सती को निमंत्रण नहीं दिया था। तथापि सती किसी प्रकार अपने पति का आदेश ले कर पिता के यज्ञ में उपस्थित हुईं। सती के सामने ही दक्ष ने शिव की निंदा की। सती पति की निंदा सहन न कर सकीं, उन्होंने अपने प्राण वहीं छोड़ दिए। इसका समाचार शिव के पास पहुंचा, शिवजी अपने अनुचरों के साथ वहां उपस्थित हुए। सती ने उग्रचण्डा का रूप धारण करके और शिव के अनुचरों की सहायता पाकर, दक्ष के यज्ञ का विनाश किया। (कालिकापुराण)

उग्रजीत, उग्रम्पश्या—स्वर्ग की दो अप्सराएं। अथर्ववेद के एक मंत्र में इन दोनों से प्रार्थना की गई है कि तुम जुआ खेलने के पापों से मुझे बचाओ।

उग्रतप—'पद्मपुराण' (पा०७२) के अनुसार एक ऋषि। एक बार इन्होंने गोपियों के साथ लीलामग्न श्रीकृष्ण का ध्यान किया और उसके फलस्वरूप सुनन्द नामक गोप की कन्या में जन्म धारण किया और श्रीकृष्ण की सेवा भक्ति की।

उग्रतारा—भगवती की मूर्ति-विशेष। इनका दूसरा नाम मातङ्गी है। शुम्भ-निशुम्भ के उत्पात से पीड़ित होकर देवतागण हिमालय के समीपस्थ मातङ्ग मुनि के आश्रम में उपस्थित हुए और वहां वे भगवती की आराधना करने लगे। भगवती मातङ्ग मुनि की स्त्री का रूप धारण करके देवताओं के सामने उपस्थित हुईं और देवताओं की स्तुति से प्रसन्न उनके शरीर से एक दिव्य तेज निकला जो शीघ्र ही दिव्यमूर्ति के रूप में परिणत हुआ। वह मूर्ति चतुर्भुज कृष्णवर्णा और अस्थिमालाधारिणी थी। ऋषि इस मूर्ति को उग्रतारा कहने लगे। मातङ्गी के शरीर से उत्पन्न होने के कारण इनका दूसरा नाम मातङ्गी पड़ा।

उग्रदेव—पितृ-विशेष ऋग्वेद की एक ऋचा में इनके नाम का उल्लेख हुआ है।

उग्रश्रवा—एक मुनि का नाम। ये नैमिषारण्य में रहते थे, शौनक के यज्ञ में आए हुए महर्षियों को इन्होंने जनमेजय के भाइयों की कथा सुनाई थी। (महाभारत)

उग्रसेन—(१) यदुवंशीय राजा आहुक के पुत्र और कंस के पिता। आहुक की काश्या नामक महिषी के गर्भ से देवक और उग्रसेन नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। उग्रसेन के नौ पुत्र और पांच कन्याएं थीं। पुत्रों में सब से बड़ा कंस था। कंस उग्रसेन का क्षेत्रज पुत्र था।

अपने ससुर जरासन्ध की सहायता से कंस ने अपने पिता उग्रसेन को राज्य से हटाकर कैद कर लिया था, और वह स्वयं राजा हो गया था। (हरिवंश)

(२) परीक्षित वंशीय, जनमेजय का भाई, अश्वमेध करके जो पापमुक्त हुआ था।

(३) धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में से एक।

उग्रायुध—कौरव-राजकुमार। यह महाराजा कृत का पुत्र था। यह वीर और साहसी था, क्षत्रियों की नीप नामक शाखा का इसी ने विनाश किया था। भीष्म-पितामह ने इसे मार डाला था, क्योंकि उनके पिता शान्तनु की विधवा स्त्री से बलात्कारपूर्वक इसने अपना ब्याह करना चाहा था।

उच्चल—काश्मीर के राजा। हर्षदेव के अनंतर ये काश्मीर राज्य के सिंहासन पर बैठे थे। इनके राज्यारोहण के समय काश्मीर राज्य की दशा विचित्र थी। उच्च कर्मचारियों के परस्पर द्वेषानल से राज्य दिनों-दिन हानि उठा रहा था। अतएव एकाएक ऐसे राज्य का प्रबंध करना कठिन जानकर उच्चल एक बार तो घबड़ा गए, परंतु धीरे-धीरे किसी को उच्चपद देकर एक को दूसरे के द्वारा अपमानित कराकर, किसी से किसी को लड़ाकर इन्होंने राज्य को अपने अधिकार में कर लिया। इन्होंने १० वर्ष ४ महीना १ दिन काश्मीर का राज्य किया था। (राजतरङ्गिणी)

उच्चैःश्रवा—देवराज इन्द्र के घोड़े का नाम। यह समुद्र-मंथन से निकला था और इन्द्र को दिया गया। यह श्वेत वर्ण का था, तथा इसके कान लंबे थे। इसकी कीर्ति चारों ओर फैली थी, इससे भी इसे उच्चैःश्रवा कहते हैं। (महाभारत)

उज्जयन्त—गुजरात काठियावाड़ के जूनागढ़ के समीप के गिरनार पर्वत का दूसरा नाम।

उज्जयिनी (उज्जैन)—इस ऐतिहासिक महत्त्व की प्राचीन नगरी का उल्लेख संस्कृत के विभिन्न ग्रंथों तथा उपलब्ध शिलालेखों में व्यापकता से हुआ है। किसी अच्युतगामी व्यक्ति द्वारा उसका निर्माण हुआ था। बौद्ध ग्रंथों से यह भी ज्ञात होता है कि वहां का ब्राह्मण राजा विभिन्न विधर्मी साहित्य का निष्णात विद्वान् था; किंतु बौद्ध धर्म में उसका विश्वास नहीं था। मगध-नरेश बिम्बिसार का उज्जयिनी की एक नगरवधू पदुमावती से एक पुत्र हुआ था। यहां के राजा चण्डप्रद्योत का पुरोहित महाकच्चायन वेदों का विश्रुत विद्वान था। महावीर स्वामी ने भी यहां तप किया था। यहां के प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य के आश्रय में महाकवि कालिदास रहे थे। किसी समय उज्जयिनी व्यापार और विद्या की भारत-विश्रुत नगरी थी। यहां के उतखननों से महत्त्वपूर्ण पुरातत्त्व सामग्री उपलब्ध हुई है। यहां का महाकाल महेश्वर का मंदर भारत के द्वादश शिवलिंगों में से एक है। यह प्राचीन उज्जयिनी संप्रति उज्जैन के नाम से वर्तमान है। (बि० चक लाहा:उज्जयिनी इन एँश्येंट इंडिया)।

उज्जानक— काश्मीर के पश्चिम सिंधु नदी के तट का एक पवित्र क्षेत्र विशेष।

उञ्छवृत्ति—भिक्षा-वृत्ति से उदरपूर्ति करने वाला एक ब्राह्मण। एक बार भिक्षा-वृत्ति से वह एक सेर सत्तू लाया। उसमें से अग्नि तथा ब्राह्मण का अंश हानि करके इसने अपने पुत्रों में विभाजित कर दिया। अपने अंश को ज्यों ही वह ग्रहण करने जा रहा था ब्राह्मण रूप में यम ने आकर उसे मांग लिया। स्वयं भूखा रह गया। यह देखकर यमधर्म प्रसन्न होकर इसे सपरिवार स्वर्ग ले गया। इस ब्राह्मण के सत्तू के जो अंश भूमि पर छूट गए थे। उनमें जाकर एक नेवला लोटने-पोटने लगा। उसके शरीर में जहां-जहां उन सत्तू-कणों का स्पर्श हुआ, वहां-वहां वह सुवर्णमय हो गया। 'महाभारत' (शां० प० ३४१-३५३) में इस पुरातन कथा को भीष्म ने युधिष्ठिर को सुनाया। इस कथा में उञ्छवृत्ति के महत्त्व को बताया गया है।

उडा—उदयपुर का महाराणा। जनसाधारण इसको राणा उडा हत्यारा कहते हैं, क्योंकि इसने अपने पिता की हत्या की थी। मेवाड़ के प्रसिद्ध राणा कुम्भा इसके पिता थे। इस दुष्टाशय पुत्र ने अपने पिता का दीर्घ जीवन न सहकर, राज्य पाने की इच्छा से १४६९ ई० में पिता की हत्या करके इतिहास को काला बनाया। "पुत्रादपि धनभाजां भीतिः"—इस वाक्य को इसने सत्य कर दिखाया। राज्य पाकर उसने देखा कि जो लोग उसे राज्य पाने के कार्य में सहायता देते थे, वे सभी राज्यलोभी हैं। उस मूर्ख ने सामंतों को राज्यभाग न देकर दिल्ली के बादशाह को कन्या देना ही उचित समझा। इस प्रकार इसने अपने कलंकित जीवन को कलंकमय कर दिया। परंतु इतना करने पर भी इसने राज्य का सुख न पाया। जिस दिन इसने दिल्ली के बादशाह को कन्या दी उसी दिन वज्र के गिरने से यह मर गया। (टाड्स राजस्थान)

उतथ्य—इसके पिता का नाम आङ्गिरस और माता का नाम स्वराज् या श्रद्धा था। इसकी पत्नी का नाम ममता था। देवों के पुरोहित बृहस्पति इसके छोटे भाई थे। एक बार गर्भवती ममता से संभोग-इच्छुक बृहस्पति ने विफल होने के कारण ममता के गर्भस्थ शिशु को अन्धा होने का शाप दे दिया। इस रूप में वह दीर्घतमा औतथ्य कहा गया। उतथ्य की दूसरी पत्नी सोमकन्या भद्रा का वरुणदेव ने अपहरण किया जिससे क्रोधित होकर इसने समुद्र को शोषित कर मरुस्थल बना दिया। अंत में वरुण ने उतथ्य को भद्रा लौटा दी। महाभारत (शां०प० ९१) में 'उतथ्य-गीता' इसके क्षात्रधर्म विषयक विचार हैं, जिनको इसने मान्धाता के समक्ष व्यक्त किया था। इसने परशुरामद्वारा क्षत्रियोन्मूलन के बाद उनकी पुनः प्रतिष्ठा की थी। इसके पुत्र का नाम शारद्वत् था।

उत्कर्ष—काश्मीर के राजा। कलश के अनंतर ये राज्यासन पर बैठे थे। इन्होंने केवल २२ दिन ही राज्य किया था। (राजतरङ्गिणी)

उत्कल—सद्युम्न राजा के पुत्र का नाम, इन्होंने अपने नाम से एक प्रदेश बसाया था जिसे अब उड़ीसा कहते हैं।

उत्कल—कलिङ्ग देश के उत्तर का देश जो आजकल उड़ीसा प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध है।

उतङ्क—महर्षि वेद के शिष्य। महर्षि आयोदधौम्य के तीन विख्यात शिष्य थे—आरुणि, उपमन्यु और वेद। उपाध्याय की आज्ञा से वेद ने गृहस्थाश्रम ग्रहण किया। कुछ दिनों के बाद राजा जनमेजय तथा पौष्य नामक एक राजा, दोनों ने वेद को अपना गुरु बनाया। एक समय वेद किसी कार्यवश कहीं अन्यत्र गए, और जाते समय उन्होंने समस्त गृहभार उतङ्क को संभाला दिया। एक दिन उतङ्क के चरित्र की परीक्षा करने के लिए एक उपाध्याय की स्त्री ने कहा, "तुम्हारी गुरुपत्नी ऋतुमती हुई हैं, इस समय तुम्हारे गुरु जी भी यहां नहीं हैं अतएव गुरुपत्नी का ऋतु निष्फल न हो, इसका प्रबंध तुम्हें करना पड़ेगा।" उतङ्क ने यह अनुचित प्रबंध करने से अपनी असहमति प्रकट की। घर लौट आने पर महर्षि वेद ने अपनी स्त्रियों से ये बातें सुनीं, और वे प्रसन्न होकर बोले, "वत्स उतङ्क, तुम्हारे समस्त मनोरथ पूर्ण होंगे। अब तुम गृहस्थाश्रम में प्रवेश करो।" उतङ्क ने जब गुरुदक्षिणा देने की इच्छा प्रकट की तब गुरु ने कहा, वत्स! इस विषय में तुम अपनी गुरुपत्नी से पूछो, जो वे कहें सो ले आना। अनंतर उतङ्क ने गुरुपत्नी के समीप जाकर अपनी इच्छा प्रकाशित की, गुरुपत्नी बोलीं, "आगामी चतुर्थी के दिन व्रत के उपलक्ष्य में निमंत्रित प्रतिष्ठित मनुष्यों को हम परोसकर भोजन करावेंगी, अतएव उस समय मुझे एक कुंडल की आवश्यकता पड़ेगी, इसके लिए यदि जोड़ी के पौष्य राजा की महिषी का कुंडल तुम ला सको तो अवश्य ही तुम्हारा कल्याण होगा। यह सुनकर उतङ्क वहां से चले। मार्ग में उन्होंने एक बड़े वृषभ पर चढ़े हुए मनुष्य को देखा। उस पुरुष ने कहा, "उतङ्क, तुम इस बैल का गोबर खा जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा, तुम्हारे गुरु ने भी इसे खाया था।" यह सुनकर उतङ्क ने गोबर खा लिया, और वे आचमन करते-करते महाराज पौष्य के समीप उपस्थित हुए। उतङ्क ने अपने आने का कारण महाराज को बतलाया। महाराज ने उतङ्क को अंतःपुर में महारानी के पास भेज दिया। उतङ्क भीतर जाकर महारानी को न देख सके, अतएव वह बाहर आकर राजा को इस चालाकी के लिए भला-बुरा कहने लगे। राजा ने कहा, "मालूम होता है आप अशुद्ध हैं क्योंकि अशुद्ध मनुष्य मेरी स्त्री को नहीं देख सकता" अपने अशुद्ध होने का दूसरा कारण न देखकर, मार्ग में चलते-चलते आचमन करने की बात उन्होंने कही। राजा ने कहा, "हां, अवश्य ही आप अशुद्ध हैं।" अतः उतङ्क पुनः आचमन करके अंतःपुर में गए। तब उन्होंने राजमहिषी को देखा। उनके आने का कारण जानकर, राजमहिषी ने अपने कुंडल उतारकर महर्षि को दे दिए, और चलते समय रानी ने कहा कि इनको बड़ी सावधानी से ले जाइएगा, क्योंकि तक्षक सर्प सर्वदा इनको हरण करने का अवसर देखा करता है। महर्षि उतङ्क कुंडल लेकर वहां से चले, मार्ग में उन्होंने एक नंगे संन्यासी को देखा। वह संन्यासी रह-रहकर अदृश्य हो जाता था। महर्षि उतङ्क रानी के दिए हुए कुंडलों को भूमि पर रखकर एक सरोवर में स्नान करने लगे। इसी समय वह नंगा संन्यासी धीरे-धीरे आया और कुंडल लेकर चलता बना। उतङ्क भी स्नान-संध्या आदि करके, उसके पीछे दौड़े। उनके समीप पहुंचने के पहल ही वह नंगा संन्यासी तक्षक रूप धारण कर, पाताल चला गया। उतङ्क भी इसके पीछे जाने के लिए अपनी

लाठी से भूमि खोदने लगे। परंतु वे सफलमनोरथ नहीं हुए। ब्राह्मण का कष्ट देखकर इन्द्र ने वज्र को सहायता देने के लिए कहा। वज्र की सहायता से उन्होंने अपने जाने का मार्ग बनाया, और नागलोक में जाकर उपस्थित हुए। वहां जाकर ये नागों की स्तुति करने लगे, परंतु उसका कुछ फल नहीं हुआ। तब ये चिंतित होकर इधर-उधर देखने लगे। उन्होंने सामने देखा कि दो स्त्रियां कपड़े बिन रही हैं। उसके सूत श्वेत और काले हैं। बारह आरा-युक्त एक चक्र है जिसे छः लड़के घूमा रहे हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने एक अन्य मनुष्य और एक घोड़ा देखा। उतङ्क की स्तुति से प्रसन्न होकर उस पुरुष ने उनसे पूछा, "क्या मैं तुम्हारा कुछ उपकार कर सकता हूं?" उतङ्क ने अपना अभिप्राय कहा। उस पुरुष ने एक युक्ति बतलाई जिससे नागलोक में आग लग गई, धांय-धांय करके आग सर्वग्रास करने को प्रस्तुत हुई। तब तक्षक ने डरकर कुंडल उतङ्क को दे दिए। उतङ्क सोचने लगे, आज ही इन कुंडलों की आवश्यकता है और मैं इतनी दूर हूं। उस पुरुष ने इनको चिंतित देखकर कहा, "तुम इस घोड़े पर चढ़ो, अभी वहां पहुंच जाओगे।" उतङ्क ने गुरुपत्नी को कुंडल दे दिए। गुरु ने उतङ्क से विलंब का कारण पूछा। उन्होंने सब बातें बतला दीं। तब गुरु कहने लगे, "तुमने जिन दो स्त्रियों को देखा है वे जीवात्मा और परमात्मा थे, द्वादश आरायुक्त चक्र संवत्सर हैं, शुक्ल और कृष्ण वर्ण के सूत्र दिन-रात हैं, वे छः लड़के छः ऋतु हैं। वह पुरुष इन्द्र और अश्व अग्नि थे। जिस वृष का गोबर तुमने खाया है वह नागराज ऐरावत हैं और वह गोबर अमृत है। (महाभारत, आ० प०)

उत्तम—राजा उत्तानपाद के पुत्र। स्वायम्भुव मनु के दो पुत्र थे, प्रियव्रत और उत्तानपाद। उत्तादपाद की दो महारानियां थीं, सुनीति और सुरुचि। सुनीति के गर्भ से ध्रुव और राजा की प्रियतमा सुरुचि के गर्भ से उत्तम उत्पन्न हुए थे। ध्रुव अपनी विमाता के द्वारा तिरस्कृत होकर वन चले गए थे और कठोर तपस्या द्वारा जगत् में धन्य हुए थे। उत्तम छोटी उमर में बिन ब्याहे एक दिन शिकार खेलने वन में गए। वहां एक यक्ष ने उन्हें पकड़कर मार दिया। उत्तम की माता भी पुत्र को ढूंढ़ने के लिए वन में गई और वहां वह भी मर गई। (विष्णुपुराण)

उत्तमौजा—पाञ्चाल राजपुत्र। इसके दूसरे भाई का नाम युधामन्यु था। महाभारत के युद्ध में इन्होंने बड़ा पराक्रम दिखाया था। जिस दिन द्रोणाचार्य ने जयद्रथ की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की थी, और अर्जुन ने उसे मारने की, उस दिन ये दोनों भाई अर्जुन के पृष्ठ-रक्षक बने थे। ये दोनों उस दिन दुर्योधन से बड़ी वीरता से लड़े थे। (महाभारत, द्रो० प०)

उत्तर—मत्स्य देश के राजा विराट् का पुत्र। विराट् राजा के साले और सेनापति की मृत्यु का समाचार सुनकर, राजा दुर्योधन ने विराट्राज के दक्षिण गोगृह पर आक्रमण करने के लिए सेना सहित सुशर्मा को वहां भेजा था, और उत्तर गोगृह पर आक्रमण करने के लिए स्वयं भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि महारथियों के साथ वे गए थे। जब सुशर्मा दक्षिण गोगृह पर आक्रमण करके बलपूर्वक गौओं का हरण कर रहा था, तब स्वयं विराट् ने उसका सामना किया, परंतु वे पराजित होकर उसके द्वारा बंदी हुए। युधिष्ठिर आदि अज्ञातवास में विराट् के यहां ही वर्तमान थे। अवधि पूर्ण होने के कुछ ही दिन बाकी रह गए थे। युधिष्ठिर ने देखा कि हमारे आश्रयदाता बंदी हो गए, इस कारण उनका उद्धार करने के लिए उन्होंने भीम को भेजा। भीम ने जाकर सुशर्मा को परास्त किया और विराट् तथा गौओं का उद्धार किया। सुशर्मा के परास्त होने की बात सुनकर दुर्योधन ने भीष्म व द्रोण के साथ विराट् के उत्तर गोगृह पर आक्रमण किया। विराट् ने अपने पुत्र उत्तर को उनका सामना करने के लिए भेजा। बृहन्नला नामक क्लीव रूपधारी अर्जुन उनके सारथी बने। कुरुसेना को अधिक सेना देखकर उत्तर डर गया और वह भागना चाहता ही था कि अर्जुन ने अपना परिचय देकर उसे आश्वस्त किया। अर्जुन स्वयं रथी बने और उत्तर को उन्होंने सारथि बनाया। अर्जुन युद्ध में कुरुसेना को ध्वस्त कर भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि महारथियों के साथ दुर्योधन को परास्त कर और गायों का उद्धार कर जयध्वनि के साथ विराट्नगर में उपस्थित हुए। इसी दिन पाण्डवों के आज्ञातवास की अवधि समाप्त हुई थी, उत्तर ने विराट के साथ अर्जुन का परिचय करा दिया, अनंतर युधिष्ठिर आदि से भी विराट् का परिचय हुआ। राजभवन में आनंदोत्सव होने लगा। अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के साथ विराट्राज की कन्या उत्तरा ब्याह दी गई। (महाभारत, वि०प०)

उत्तर कुरु—(१) वर्ष या देश। जो शृंगी नामक पर्वत

माल.से उस पार और मेरुपर्वत के उत्तर में है।

(२) उत्तर हिमालय में बस जाने के कारण कुरुओं की एक शाखा उत्तर कुरु के नाम से विख्यात हुई। उनके देश को 'देवक्षेत्र' कहा गया है। 'गोपथ ब्राह्मण' (१।३।६) में उत्तर कुरुओं की विद्या, बुद्धि और पवित्रता की प्रशंसा की गई है।

उत्तरा—मत्स्यराज विराट् की कन्या, और अर्जुन पुत्र अभिमन्यु की स्त्री। इनके बड़े भाई का नाम उत्तर था। पाण्डवों ने विराट्नगर में अज्ञातवास किया था। बृहन्नला नामधारी अर्जुन ने उत्तरा को संगीत-नाट्य आदि कलाओं की शिक्षा दी थी। युधिष्ठिर आदि के साथ विराट का परिचय होने पर विराट ने अपनी कन्या का विवाह अर्जुनपुत्र अभिमन्यु से कर दिया। महाभारत के युद्ध में अभिमन्यु की मृत्यु के समय ये गर्भवती थीं। इस युद्ध के अंत में अर्जुन ने अश्वत्थामा के सिर की मणि काट ली। इससे क्रुद्ध होकर अश्वत्थामा ने अर्जुन का वंशलोप करने की इच्छा से उत्तरा के गर्भ पर इषिकस्त्र का प्रयोग किया, जिससे गर्भस्थ बालक परीक्षित् मृतक होकर उत्पन्न हुए। तदनंतर श्रीकृष्ण ने संजीवनी मंत्र के प्रभाव से परीक्षित को जीवित किया। (महाभारत)

उत्तानपाद—स्वायम्भुव मनु के पुत्र। इनकी माता का नाम शतरूपा था। इनके छोटे भाई का नाम प्रियव्रत था। राजा उत्तानपाद की दो महारानियां थीं : सुनीति और सुरुचि। राजा सुरुचि को अधिक चाहते थे। सुनीति के गर्भ से विख्यात ध्रुव और सुरुचि के गर्भ से उत्तम उत्पन्न हुए थे। (विष्णु पुराण)

उत्पलाक्ष—काश्मीर के राजा। ये राजा सिद्ध के पुत्र थे, इनकी आंखें बड़ी सुंदर थीं। इस कारण इनका नाम उत्पलाक्ष प्रसिद्ध हुआ। इनके राजत्वकाल में कोई विशेष ऐतिहासिक घटना नहीं घटी, क्योंकि ये राजा सिद्ध (महात्मा) के पुत्र थे, इनसे विरोध करने वाले नष्ट हो जाएंगे, इनके विषय में ऐसी प्रसिद्धि थी। इनके पुत्र का नाम हिरण्याक्ष था। ३० वर्ष ६ महीने इन्होंने काश्मीर का राज्य किया था। (राजतरङ्गिणी)

उत्पलापीड—ये काश्मीर के राजा अजितापीड के पुत्र थे, सुखवर्मा ने अनङ्गापीड को राज्यच्युत करके उत्पलापीड को राजा बनाया था। इस समय से पुनः उत्पलवंशियों का अधिकार काश्मीर में फैलने लगा। तदनंतर शूर नामक मंत्री ने उत्पलापीड को राज्यच्युत कर दिया। इन्होंने तीस वर्ष काश्मीर का शासन किया था। (राजतरङ्गिणी)

उदकसेन—हस्तिनापुर के राजा। इनके पिता का नाम विष्वक्सेन था।

उदंक शौल्वायन—यह विदेह देश का निवासी और बृहद्रथ जनक का समकालीन था। बृहदारण्यकोपनिषद् (४।१।३) और तैत्तिरीय संहिता (७।५।४।२) में इसके अभिमतों का उल्लेख हुआ है।

उदयगिरि—अपने भव्य गुफा मंदिरों के कारण उदयगिरि का नाम प्रसिद्ध है। यहां पर उत्खनन में बीस गुफाएं प्राप्त हुई हैं और उनमें बारह अभिलेख मिले हैं। स्थापत्य और मूर्तिकला की दृष्टि से इन गुफाओं का विशेष महत्त्व है। इन गुफाओं में विष्णु के विभिन्न अवतारों और महिषमर्दिनी तथा गणेश की मूर्तियां उत्कीर्णित हैं। लगभग डेढ़ मील लंबी यह पहाड़ी भिलसा (मध्य प्रदेश) स्टेशन से लगभग चार मील पश्चिमोत्तर में स्थित है।

उदयन=शतानीक के पुत्र। ये पुरु के वंश के थे।

उदयनाचार्य—ये प्रसिद्ध नैयायिक पंडित थे। मिथिला के निवासी थे। इनका शास्त्रार्थ नैषध-चरित के रचयिता श्रीहर्ष के पिता के साथ हुआ था। श्रीहर्ष का समय ११६३ ई० से ११७७ ई० के लगभग माना जाता है। अतः उदयन का समय उसके कुछ थोड़ा पहले मानना असंगत न होगा। इनके बनाए ग्रंथ ये हैं : 'किरणावली', 'न्यायकुसुमाञ्जलि', 'आत्मतत्त्वविवेक', 'न्यायपरिशिष्ट', 'न्यायवर्तिकतात्पर्यपरिशुद्धि'। नैयायिक श्रीधर ने उदयन की 'किरणावली' देखकर ९९१ ई० में प्रशस्तपादभाष्य पर 'न्यायकंदली' नाम की टीका लिखी है। अतएव इससे लोगों अनुमान है कि उदयनाचार्य ९९१ ई० के पूर्व रहे होंगे। उदयनाचार्य ने बौद्ध धर्म को ऐसा धक्का पहुंचाया कि फिर उसका विशेष प्रचार इस देश में न हो सका। यदि श्रीहर्ष के पिता के साथ उदयनाचार्य के शास्त्रार्थ की बात सच हो तो उनका समय न्यायकंदलीकार के पूर्व कभी नहीं हो सकता।

उदयनाथ त्रिवेदी कवीन्द्र—ये वानपुरा दुआब के वासी थे, और १७२० ई० में विद्यमान थे। पं० कालिदास त्रिवेदी ('हज़ारा' के रचयिता) के पुत्र और पिता के समान प्रसिद्ध कवि थे। ये अमेठी के राजा हिम्मतसिंह के दरबारी कवि थे। इनका उप नाम 'उदयनाथ' था। बाद में राजा ने इन्हें 'कवीन्द्र' उपाधि

दी थी, तब से ये अपना उपनाम 'कवीन्द्र' लिखने लगे थे। यह उपाधि इन्हें 'रसचंद्रोदय' या 'रति-विनोद' या 'चंद्रोदय' या 'रसचंद्रिका' नामक ग्रंथ बनाने के उपलक्ष्य में मिली। यह भाषा-साहित्य संबंधी ग्रंथ है। १७४७ ई० में यह रचा गया था।

उदयसिंह—(१) मेवाड़ के प्रसिद्ध महाराणा चित्तौड़ में इनकी राजधानी थी। ये राणा सांगा के कनिष्ठ पुत्र थे। महाराणा सांगा के मृत्यु की पश्चात् उनके दो पुत्र राणारत्न और राणा विक्रमजित् क्रमशः चित्तौड़ के राजा हुए। विक्रमजित् के व्यवहार से असंतुष्ट होकर मंत्रियों ने उनको राज्यच्युत करके वनवीरसिंह नामक एक व्यक्ति को चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठाया। उस समय राणा सांगा के कनिष्ठ पुत्र उदयसिंह की अवस्था ६ वर्ष की थी। मंत्रियों की इच्छा थी कि वयस्क होने पर वनवीर के स्थान पर राणा सांगा के पुत्र उदय को बैठाया जाय। मंत्रियों का यह अभिप्राय वनवीर को मालूम हो गया। एक दिन तलवार लेकर वह महल में गया और उनकी धात्री पन्ना से वह उदयसिंह को पूछने लगा। पन्ना ने वनवीर के षड्यंत्र की बातें सुन रखी थीं और उदयसिंह को एक विश्वस्त नापित के हाथ वहां से हटा दिया था, और उदयसिंह के स्थान पर अपने बेटे को रख दिया था। जब वनवीर ने पन्ना से उदयसिंह को पूछा, उस ममय उसने संकेत कर अपने पुत्र को बतला दिया। वनवीर ने उस लड़के को काट डाला। इस अलौकिक स्वार्थत्याग और अलौकिक प्रभुभक्ति के कारण सिसोदिया राजवंश के साथ पन्ना का नाम चिरस्मरणीय हो गया। धाय पन्ना राजमहल से निकलकर निर्धारित स्थान पर उस नापित से जा मिली। उदयसिंह को लेकर पन्ना सभी सरदारों के पास आश्रय के लिए गई, परंतु वनवीर के भय से किसी ने भी आश्रय देना स्वीकार नहीं किया, तब पन्ना अरायली पहाड़ को लांघकर कमलभीर के सामंत राजा आशाशाह के आश्रय में उदयसिंह को रखकर निश्चित हुई। शाहजी जैनी थे, उन्होंने दोनों की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की। शाहजी उदयसिंह को अपना भानजा कहकर पालन करने लगे। कुछ दिनों बाद यह खबर चारों ओर फैल गई। मेवाड़ के सभी सामंत धाय पन्ना और नापित को साथ लेकर कमलभीर पहुंचे। उदयसिंह महाराणा सांगा के पुत्र थे इसमें सो किसी को संदेह था ही नहीं। मंत्रियों की एक सभा हुई। उन्होंने उदयसिंह को अपना राणा माना, तथा वनवीर को धन-संपत्ति छीनकर मेवाड़ से निकाल दिया। वनवीर वहां से निकल कर दक्षिण चला गया। १५४२ ई० में उदयसिंह का बड़े समारोह के साथ चित्तौड़ के सिंहासन पर अभिषेक हुआ। उदयसिंह के राज्यकाल में दिल्ली के बादशाह अकबर ने मेवाड़ पर चढ़ाई की। पहले तो उदयसिंह लड़े, पर बाद में चित्तौड़ छोड़कर भाग गए। अरावली पर्वत के बीच में उन्होंने वर्तमान उदयपुर बसाया और उसी को अपनी राजधानी बनाया। तब से उदयपुर मेवाड़ की राजधानी हुआ। १५७२ ई० में उदयसिंह का परलोक-वास हुआ। इन्हीं के पुत्र प्रसिद्ध महाराणा प्रतापसिंह थे। (टाड्स राजस्थान)

(२) राठौर राजा, ये मालदेव के मध्यम पुत्र थे, मालदेव ने अपने मध्यम पुत्र उदयसिंह को मारवाड़ का राजा बनाया था। इन्होंने अकबर की अधीनता स्वीकार की थी, मालदेव ने अपने जीवन में जो प्रताप का प्रकाश फैलाया था, उदयसिंह ने उसे बुझा दिया। राजपूताने में कहा जाता है कि उदयसिंह नाम वाले राजा स्वाधीनता बेचने वाले होते हैं। (टाड्स राजस्थान)

उदयिन—देवकी के गर्भ से उत्पन्न वासुदेव के पुत्र।

उदरधि—पुष्टि के पुत्र और ध्रुव के पौत्र।

उद्वसु—मिथिला के एक राजा का नाम, जो जनक के पुत्र थे।

उद्गातृ—वह पुरोहित, जो यज्ञीय बलिदान कर्म में वेद मंत्र पढ़ता है।

उद्गीथ—भारतवर्ष के एक राजा का नाम ये। भव के पुत्र थे।

उद्दालक—प्राचीन आर्य ऋषि। इनका नाम आरुणि था। गुरु आयोद्धौम्य के आशीर्वाद से इनका नाम उद्दालक हुआ था। इनके पुत्र का नाम श्वेतकेतु था। श्वेतकेतु ब्रह्मविद्या में बड़े निपुण ने। इन्होंने अनेक नये-नये सामाजिक नियम बनाये हैं। (महाभारत)

उद्दालिन—शुक्ल यजुर्वेद के पंद्रह आचार्यों में से एक।

उद्धव—श्रीकृष्ण के भक्त और उनके मित्र। महाभारत युद्ध के अंत में एक दिन ब्रह्मा आदि श्रीकृष्ण को वैकुंठ ले जाने के लिए आए थे। उद्धव ने भी श्रीकृष्ण के साथ वैकुंठ जाने की अपनी इच्छा प्रकट की। श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा से कहा, "आपने जो कहा है, उसके लिए मैंने पहले ही से प्रबंध कर रखा है। मैंने आपके सभी काम करके पृथ्वी का भार उतार दिया है। आज पृथ्वी पर पापियों की संख्या नहीं है। परंतु बलवान

यदुकुल का बिना विनाश किए, मेरे जाने से, ये लोग पुनः संसार में ऊधम मचावेंगे। और ब्राह्मण शाप से बहुत शीघ्र ही इस वंश के नाश होने की भी संभावना है। अतएव आप लोग जाएं, मैं भी यदुकुल का नाश करके शीघ्र ही आता हूं। 'उद्धव की प्रार्थना के उत्तर में उन्होंने तत्त्वज्ञान, बद्ध औन मुक्तजीव, साधु लक्षण और मुक्त लक्षण का उपदेश देकर कहा, "हे उद्धव! तुम अभी बदरिकाश्रम नामक हमारे आश्रम में जाओ, वहां जाकर वल्कल वस्त्र पहनकर फल मूल के आहार से अपनी जीविका निर्वाह करो। तदनंतर अलकनन्दा के दर्शन करने से तुम्हारे पाप छूट जाएंगे। तब तुम अनन्य भक्तियोग से मुक्ति-लाभ करके मेरे पास आओगे। इतना उपदेश सुनकर उद्धव ने श्रीकृष्ण की प्रदक्षिणा की और भगवान का ध्यान करते-करते वे बदरिकाश्रम पहुंचे। (श्रीमद्भागवत)

उद्यत—मगध के एक राजा का नाम, जो दर्भक के पुत्र थे।

उन्नति—पुराण में एक रूपक इस नाम से लिखा है। जिसमें इसे दक्षप्रजापति की कन्या होना लिखा है, जिसका ब्याह धर्म से किया गया था।

उन्मत्तावन्ती– काश्मीर का एक राजा। यह पार्थ का पुत्र था। यह बड़ा ही चरित्रभ्रष्ट और अधम प्रकृति का राजा था। इसके साथी इसे काठ का उल्लू समझते थे। अतएव वे नाच-गाकर तथा अन्य बीभत्स अभिनय उसे दिखाया करते थे। उसका एक साथी नंगा नाचा करता था, अतएव वह राजा का सबसे अधिक प्रिय था। इसने अपने पिता, माता और छोटे-छोटे बच्चों को मरवा डाला था। अंत में क्षयरोग से इसकी मृत्यु हुई। दो वर्ष, सात महीने, एक दिन इसने काश्मीर का राज्य किया था। (राजतरङ्गिणी)

उपकोसल कामलायन—सत्यकाम जाबाल का शिष्य अध्ययन के बारह वर्ष व्यतीत होने पर भी सत्यकाम ने इसका समावर्तन नहीं किया और इसे स्वगृह जाने की अनुमति नहीं दी। सत्यकाम की स्त्री ने इसकी गुरुभक्ति और अग्निसेवा का वर्णन करते हुए पति से इसे ब्रह्मज्ञान देने का आग्रह किया। किंतु सत्यकाम ने उस पर ध्यान नहीं दिया और यात्रा के लिए चले गए। इधर उपकोसल ने अन्न त्याग दिया। तब अग्नि ने स्वयं प्रकट होकर इसे ब्रह्मज्ञान दिया। उसके आगे का ज्ञान सत्यकाम ने दिया।

उपगु—मिथिला के एक राजा का नाम थे। सत्यार्थी के पुत्र थे।

उपदानवी—दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री, और हिरण्याक्ष की पत्नी।

उपदेव—अक्रूर के पुत्र का नाम, और देवक के पुत्र का नाम।

उपनन्द, उपनिधि—ये वसुदेव के पुत्र थे और उनकी स्त्री मदिरा और भद्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

उपनिषत्—उन संस्कृत ग्रंथों का नाम जिनका वेदों से बहुत निकट संबंध है। उपनिषत् शब्द का धात्वर्थ यह है कि समीप गमन, अर्थात् जिसके द्वारा ब्रह्म का सामीप्य प्राप्त हो, आत्मा की उपलब्धि हो वही उपनिषत् है। आरण्यक भाग में जो ब्रह्मतत्त्व सूत्र रूप से लिखे गए हैं उपनिषदों में उन्हीं का विशद विवरण है। इसी कारण ऋषियों ने उपनिषदों का वेदांत या वेद का शिरोभाग कहा है। ईश्वर का सामीप्य प्राप्त कराना ही उपनिषदों का उद्देश्य है। जो संसार में निमग्न हैं, जिनका चित्त ब्रह्म की ओर कभी नहीं जाता उनको ब्रह्म-साक्षात्कार करने का उपदेश उपनिषत् से प्राप्त होता है। जीवात्मा और परमात्मा का अभेद-भाव उपनिषदों ने ही बतलाया है। प्रवृत्ति और निवृत्ति ये ही धर्मसाधन के दो अंग हैं। इहलौकिक तथा पारलौकिक सुखसाधन की इच्छा से जो साधन किया जाता है वह प्रवृत्ति धर्म का अंग है और जिसके द्वारा संसार का मायामोह छोड़कर परमात्मा में लीन होते हैं वह निवृत्ति अंग है। उपनिषत् में इस धर्म के दोनों अंगों का वर्णन है। उपनिषत् की संख्या कहीं एक सौ आठ लिखी मिलती है, कहीं-कहीं दो सौ पैंतीस उपनिषदों का पता चलता है। विद्यारण्य स्वामी के मत से १२ ही उपनिषत् प्रधान हैं। कुछ लोग ६२ उपनिषदों की प्रधानता स्वीकार करते हैं। पहले उपनिषत् के नाम से बड़े अनर्थ हुए हैं, अधिक क्या कहा जाए, जो कोई अपना मत चलाना चाहता था वही एक उपनिषत् गढ़ डालता था। इसमें प्रमाण 'अल्लोपनिषत्' है। बादशाह अकबर के समय मुसलमान धर्म की प्रधानता बतलाने के लिए 'अल्लोपनिषत्' की रचना की गई थी। 'मात्रेखूवत् तवारीख' में अल्लोपनिषत् के विषय में लिखा है, "हिजरी ९८३, १५७५ ई० में सम्राट् अकबर ने बदौनि नामक एक मुसलमान को अथर्ववेद का अनुवाद करने की आज्ञा दी थी। क्योंकि बादशाह ने किसी से सुना था कि अथर्ववेद के अनेक उपदेश इसलाम धर्म के अनुकूल हैं। बदौनी अथर्ववेद का अर्थ नहीं समझ सके इस कारण बादशाह ने फ़ैजी और

इब्राहीम को अनुवाद करने का भार सौंपा। परंतु वे भी क्या कर सकते थे। उसी समय भावन नामक एक दक्षिणी ब्राह्मण मुसलमान हो गया था। जिसकी सहायता से अथर्ववेद का पारसी में अनुवाद होने लगा शेख भावन जैसा बतला दिया करता था। बदौनी और इब्राहीम वैसा ही अनुवाद भी करते थे। उसी अनुवाद के समय कुरान के अल्लाह शब्द के समान वेद में शब्द देखकर शेख भावन ने उसके रूपांतर की रचना की। उस समय शेखजी की चालाकी न समझकर बहुतों ने यह जान लिया था कि वेदों में अल्लाह की बातें लिखी गई हैं। वेद के जिन मंत्रों के द्वारा भावन ने अपना उद्देश्य सिद्ध किया था वे मंत्र ये हैं। "आदलाबुकमेककम्, अलाबुकनिखातम्" इनके समान भावन ने ये मंत्र बनाए थे—

"आदल्लाबुकमेककम्, अल्लांबुकम्"। इसी के बाद 'आलोपनिषत्' बनाया गया था। आलोपनिषत् के अंत में लिखा है, "इल्लाकबर इल्लाकबर इल्लल्लेति इल्लल्ला: इल्ला इल्लाला अनादिस्वरूपा अथर्वणी शाखां हूं ह्रीं जनान् पशून् सिद्धान् जलचरान् अदृष्टं कुरु कुरु फट्"। अकबर बादशाह तक का नाम उपनिषदों में पाया जाता है, इससे बढ़कर आश्चर्य और दु:ख का विषय क्या होगा! और इससे अधिक शास्त्रों की दुर्दशा भी क्या हो सकती है! बड़े दु:ख के साथ लिखना पड़ता है कि अभी भी उपनिषदों का गढ़ा जाना बंद नहीं हुआ है। बीच-बीच में 'नानकोपनिषत्' जैसे उपनिशत् दिखाई पड़ ही जाते हैं।

उपनिषदों में ब्रह्मतत्त्वनिरूपण करने के प्रसंग से जो विषय आलोचित हुए हैं वे प्रधानत: चार ही हैं: (१) आत्मा की व्यापकता, (२) आत्मा का देहांतर ग्रहण, (३) सृष्टितत्त्व और, (४) प्रलय रहस्य। यथाक्रम हम इन विषयों का संक्षिप्त विवरण लिखते हैं।

(१) उपनिषत् का यह मत है—परमात्मा सब भूतों में समान रूप से विद्यमान है। संसार की प्रत्येक वस्तु में इनकी अबाधित सत्ता वर्तमान है। 'एकमेवाद्वितीयम्' या एकेश्वरवाद से जो भाव समझा जाता है वह उपनिषदों ही का है। इस समय एकेवर से यही अर्थ समझा जाता है, "एकमात्र परमात्मा ही जगत् के कर्ता हैं और संसार उनका बनाया पदार्थ है।" परंतु उपनिषत् के एकेश्वर का यह अर्थ नहीं है। उपनिषत् कहता है कि ईश्वर एक अवश्य है, परमात्मा अद्वितीय हैं, परंतु सृष्टि पदार्थ उनसे भिन्न नहीं हैं अर्थात् परमात्मा अभिन्न रूप से इस जगत् से मिले हुए हैं। यह विश्व उनका प्रकाश-रूप है। यह तत्त्व अनेक उपमा और उदाहरणों से उपनिषत् में समझाया गया है। छान्दोग्य, केन और ईश उपनिषदों के एक-दो स्थानों का मर्म नीचे उद्धृत किया जाता है, जिससे आत्मा की व्यापकता स्पष्ट मालूम होगी। छान्दोग्योपनिषत् के तीसरे प्रपाठक के १४वें खंड में लिखा है "सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत" अर्थात् यह संसार ही ब्रह्म है, इस परिदृश्यमान विश्व के ब्रह्म ही आदि, अंत और प्राणभूत हैं, यह समझकर मनुष्य उसकी उपासना करें। इसके बाद लिखा है, "वह प्राणमय, मनोमय और ज्योतिर्मय हैं वह सर्वकाम, सर्वगंध और सर्वरस हैं। वह सत्य-संकल्प आकाशात्मा और सबमें विराजमान हैं। जिस प्रकार वह एक ओर अणोरणीयान् हैं उसी प्रकार दूसरी ओर महतो महीयान् हैं। वह समस्त कार्यों को कराना है और उसकी इच्छा से समस्त कार्य हो रहे हैं। वही समस्त के मूलभूत हैं। परब्रह्म का व्यापक भाव उपमा द्वारा किस प्रकार समझाया गया है, यह भी हम लोग छान्दोग्योपनिषत् के छठे प्रपाठक के नवम खंड में देख पाते हैं। ऋषि उद्दालक अपने पुत्र श्वेतकेतु को परमात्मा का विषय समझाते हैं। वत्स, मधुमक्षिका समूह वृक्षों पर से मधु एकत्रित करके मधुचक्र बनाती हैं। उस मधुचक्र में अनेक वृक्षों के अनेक पुष्पों के रस एकत्रित हुए हैं। किस वृक्ष का या पुष्प का रस उस चक्र में कहां है? इसका निर्णय नहीं किया जा सकता। प्राणिसमूह की भी यही अवस्था है। प्राणी भी जब परमात्मा में विलीन होता है, तब वह अपना पृथक् अस्तित्व अनुभव नहीं करता। और भी देखो, ये नदियां, कोई तो पर्वत की ओर जा रही हैं, कोई पश्चिमाभिमुख जा रही हैं, परंतु वे सभी सागर में जाकर सम्मिलित होती हैं। उनकी उत्पत्ति भी सागर ही से होती है, सागर से उत्पन्न वाष्पों ही से नदियां पुष्ट होती हैं, तथापि क्या कोई कह सकता है कि अमुक नदी सागर के किस भाग में वर्तमान थी? नहीं, इसी प्रकार प्राणियों को भी जानना। वे भी परमात्मा ही से उत्पन्न हुए हैं सही, परंतु वे जानते नहीं कि वे कहां से आए हैं। इस विषय को खूब समझाने के लिए मुनि ने फिर कहा, "पुत्र, इस लवणखंड को जल में रख दो, कल सवेरे पुनः इस विषय पर बातचीत होगी। पुत्र श्वेतकेतु ने पिता की आज्ञा का

पालन किया। दूसरे, प्रातःकाल ही महर्षि उद्दालक पुत्र से कहने लगे, "कल राते को जल में जो लवणखंड तुमने रखा था उसे ले आओ।" पुत्र ने देखा—जल में लवणखंड का चिह्न भी नहीं है, सभी गल गया है। पिता ने कहा, "ठीक ऊपर से थोड़ा जल लेकर देखो तो उसका स्वाद कैसा है ?" पुत्र ने कहा, "नमकीन। पुनः पिता ने कहा, "बीच से तो जल निकाल चखो।" पुनः पुत्र ने कहा, "नमकीन।" पिता ने फिर कहा "नीचे का जल तो चखो।" फिर वही उत्तर मिला, "नमकीन।"जल फेंक दो, जो मैं कहता हूं उसे समझो। पुत्र एकाग्रचित्त होकर पिता का आदेश सुनने लगा। पिता कहने लगे, "परमात्मा भी इसी प्रकार का है। जल में लवण की विद्यमानता जिस प्रकार अदृश्य रूप से मानी जा सकती है, उसी प्रकार परमात्मा भी इस विश्व में अदृश्यभाव से वर्तमान हैं। छान्दोग्योपनिषत् का यही अभिप्राय है। ईश और केन उपनिषदों में यह विषय कैसा वर्णित है, सो भी देख लीजिए। केन उपनिषत् में पहले ही प्रश्न किया गया है कि मन किसकी प्रेरणा से कार्य करता है ? किसकी आज्ञा से प्राणवायु गमनागमन कर रहा है ? किसकी इच्छा से हम लोग बात करते हैं। चक्षु अथवा कर्ण ही को कौन देवता परिचालित करता है ? इसका उत्तर वहां भी दिया गया है :

"श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्,
वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।
यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते,
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्,
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्,
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदयुपासते।
यत्प्राणेन न प्रणिति येन प्राणः प्रणीयते,
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।"

अर्थात् जो कानों के भी कान हैं, मन के भी मन हैं, वाक्यों के भी वाक्य हैं, प्राणों के भी जो प्राण हैं और नेत्रों के भी जो नेत्र हैं वे ही समस्त कर्म करते और कराते हैं। जिनको वचन द्वारा नहीं कह सकते, परंतु जिनसे वाक्य उत्पन्न होते हैं। मन के द्वारा उनकी चिंता नहीं हो सकती, किंतु मन ही उनके द्वारा चिंतित होता है। नेत्रों के द्वारा जिनको देख नहीं सकते, परंतु जिनसे आंखें देखती हैं। कानों के द्वारा जिनकी उपलब्धि नहीं होती, परंतु कर्ण उन्हीं के द्वारा परिचालित होते हैं। प्राणवायु जिनका अस्तित्व नहीं जान सकता, परंतु उनके द्वारा प्राणवायु प्रभावित होता है। वही ब्रह्म हैं, उन्हीं को ब्रह्म समझो, उनको छोड़ अन्य की उपासना मंगलकारिणी नहीं है। वही आनंद है। उस आनंद का उपभोग करने वाले का आनंद कैसा अनुपम है इसका निरूपण ईशोपनिषत् इस प्रकार करता है ;

"यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति,
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।
यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः,
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।"

जो परमात्मा में सब भूतों को देखते हैं और सब भूतों में परमात्मा को देखते हैं, वे कदापि उनसे विमुख नहीं होते; जिसने एक बार समझ लिया है कि स्रष्टा और सृष्टिपदार्थ में कुछ भेद नहीं है, परमात्मा ही सब भूतों में, सब अवस्थाओं में वर्तमान है, उसको न तो कुछ कष्ट है और न दुःख है। आत्मा की व्यापकता इसी प्रकार उपनिषदों में विशद रूप से वर्णित है। देहांतर-ग्रहण की बातें बृहदारण्यक उपनिषद् के चौथे अध्याय में लिखी हैं, जिसका मर्म इस प्रकार है : "जिस प्रकार तृणजलौका शनैः-शनैः एक तृण के किनारे पहुंचकर दूसरे तृण की ओर जाती है, तदनंतर दूसरे तृण को पकड़कर पहले तृण को छोड़ देती है, उसी प्रकार आत्मा की भी गति है। आत्मा भी एक शरीर को छोड़कर इसी प्रकार दूसरा शरीर धारण करता है। और सुवर्णकार जिस प्रकार पुराने सुवर्णखंडों को साफ कर उसके मुलम्मे से नयी-नयी और सुंदर वस्तुएं बनाता है, आत्मा भी उसी प्रकार एक शरीर छोड़कर दूसरा नया शरीर धारण करता है। कामना के अनुसार ही यह देहांतर-ग्रहण होता है। परंतु जो कामनाशून्य हैं अथवा जिनकी कामना का विषय केवल परमात्मा ही हैं उनको अन्यत्र कहीं भटकना नहीं पड़ता है। उनका ब्रह्मभूत आत्मा ब्रह्म ही में लीन होता है। जिस प्रकार सर्प केंचुल छोड़कर सुदर रूप धारण करता है और यथास्थान चला जाता है उसी प्रकार आत्मा भी परमात्मा में लीन हो जाता है।" आत्मा के देहांतर-ग्रहण या परमात्मा में लीन होने के विषय में उपनिषत् का मत है—"ज्ञान और कर्म के अनुसार

आत्मा को दूसरे स्थान में जाना पड़ता है। संसार में जो जैसा कर्म करेंगे उनके आत्मा की भी वैसी ही गति होगी।" छान्दोग्योपनिषत् अष्टम प्रपाठक प्रथम खंड के छठे सूत्र में यही बात बतलाई गई है जिसका अर्थ यह है कि पृथ्वी में मनुष्य कर्म द्वारा जो प्राप्त करता है, वह सब विनाशी है। याग-यज्ञ आदि के द्वारा जो कुछ प्राप्त किया जाता है उसका भी दूसरे जन्म में नाश हो जाता है। जो परमात्मा को नहीं पहचानते, अथवा आत्मतत्त्व प्राप्त करने में असमर्थ होकर काम्य कर्मों का अनुष्ठान करके इस लोक से विदा होते हैं उन्हें पुनः इस लोक में लौटना पड़ता है। कर्मभोग शेष रहने के कारण कभी उनका आत्मा स्वाधीन नहीं होता। उपनिषदों में इसी प्रकार आत्मा का देहांतरवाद या पुनर्जन्मवाद वर्णित है। सृष्टितत्त्व के विषय में उपनिषदों में अनेक मत देखे जाते हैं। एक स्थान पर लिखा है—"पहले कुछ भी नहीं था, एक अंडा उत्पन्न हुआ, उस अंडे के दो टुकड़े कर दिए गए। एक भाग से चांदी की पृथ्वी और दूसरे भाग से सुवर्ण का आकाश उत्पन्न हुआ।" दूसरे स्थान पर लिखा मिलता है—'प्रथम एकमात्र परब्रह्म ही विराजमान थे। उनके अतिरिक्त और किसी का अस्तित्व नहीं था, लय या मृत्यु के विषय में उपनिषत् का एक ही मत है। उपनिषत् कहते हैं कि जिसने आत्मा और परमात्मा का अभेद ज्ञान प्राप्त किया है, जिसने सब प्राणियों में परमात्मा का दर्शन प्राप्त किया है और परमात्मा में सब प्राणियों को देखा है, जो स्पृहा, आकांक्षा, पाप, संशय, कलंक आदि से रहित हैं, वे ही पाप को पराजित कर सकते हैं परंतु उन्हें पाप छू भी नहीं सकता, वे पाप को भस्म कर सकते हैं परंतु पाप उनका कुछ भी नहीं कर सकता, वे परब्रह्म के स्वरूप में लीन हो जाते हैं।" सांसारिक सुख-दु:ख उन्हें नहीं सताते, कठोपनिषत् में नचिकेता और यमराज के कथोपकथन रूप में इसका विशद रूप से विवरण किया गया है। नचिकेता के प्रश्न के उत्तर में यम ने कहा था, "जिसने परमात्मा का स्वरूप-तत्त्व जान लिया है वह मृत्यु के अधीन नहीं है क्योंकि वह जानता है कि आत्मा न तो कभी मरता है और न वह जन्मता ही है। यद्यपि शरीर का नाश हो जाता है; तथापि आत्मा का नाश नहीं होता। अतएव उपनिषत् का यही सिद्धांत हुआ कि विश्व का न तो आदि है और न अंत है, परब्रह्म ही अनादि काल से इस संसार के रूप में विराजमान हैं।"

उपनिषत् के विषय में पाश्चात्य पंडितों का मत यह है—"जिस समय वैदिक याग-यज्ञ आदि से सर्वसाधारण का मन कर्मकांड की ओर झुका हुआ था, कर्मकांड को छोड़कर अन्य विषयों की ओर साधारण मनुष्य मनोयोग देना अनुचित समझते थे, उस समय कितने ही लोकहितैषी महर्षियों का हृदय संशयित हो रहा था। वे सोचते थे—कर्म क्या है? वह किया ही क्यों जाता है? इसी विचार के साथ उनके हृदय में एक नवीन दार्शनिक विचार का अंकुर उत्पन्न हुआ। वे सोचने लगे, विश्व क्या है? परब्रह्म क्या है? आत्मा और परमात्मा में क्या संबंध है? इसी विचार से उपनिषदों की सृष्टि हुई है। उपनिषदों ने मनुष्यों के मंतव्य मार्ग का निर्देश किया है, उपनिषदों ने ही मनुष्यों को चिंता करना सिखाया है। उपनिषदों ने मनुष्यों की विवेकशक्ति को प्रकाशित किया है। कर्मकांड की असारता बताकर, उपनिषदों ने मानव समाज में ज्ञान का प्रचार किया है। अंधविश्वासी के समान मनुष्य कर्मपथ पर न दौड़े, इसके लिए उपनिषदों ने ज्ञानप्रकाश करके मनुष्यों को सन्मार्ग बता दिया है, समस्त दर्शनशास्त्रों के मूलभूत उपनिषत् ही हैं।" पाश्चात्य पंडितों का उपनषित् के विषय में यही मत है। इसके साथ-साथ हम लोगों को सहमत होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि कर्मकांड और ज्ञानकांड इनका मूल वेद ही है। हो सकता है कि उपनिषदों में एक प्रकार का अंकुर हो, यह भी हो सकता है कि उपनिषदों में ज्ञानबीज अंकुरित हुआ हो, परंतु उपनिषत् वेदों का विरोध करेगा इसकी आशा कभी नहीं की जा सकती। उपनिषत् वेदों के एक अंग की व्याख्यामात्र है। जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् सोपेनहार उपनिषदों के विषय में कहते हैं, "पृथ्वी में उपनिषदों के समान उच्च भावपूर्ण शांतिप्रद ग्रंथ दूसरे नहीं हैं, उपनिषत् हमारे जीवन के अवलंबन हैं।"

ये उपनिषत्समूह किस समय में रचित हुए थे इसका पता नहीं चलता, इसी कारण इनकी रचना का कालनिरूपण करने में अनेक प्रकार के मत उपलब्ध होते हैं। पाश्चात्य पंडितों का मत है कि ईसा के जन्म के ग्यारह सौ वर्ष पहले उपनिषत् बनाए गए थे। परंतु महाभारत युद्ध के बहुत पहले उपनिषत् वर्तमान थे। इसके अनेक प्रमाण हैं। (भारतवर्षीय इतिहास)

उपपुराण—महर्षि वेदव्यास से भिन्न ऋषियों के बनाए

पुराण। इनकी संख्या अठारह है और कहीं-कहीं इनकी संख्या और अधिक पाई जाती है। वेदोक्त धर्म-कर्मों को दृष्टांत और उपदेश द्वारा सर्वसाधारण को समझाना ही इनका उद्देश्य है। इनमें समय-समय के आचार-व्यवहार तथा क्रियाकलाप का भी वर्णन है। अठारह उपपुराण ये हैं : सनत्कुमारोक्त आद्य, नारसिंह, कुमारोक्त स्कन्द, नान्दीशभाषित शिवधर्म, दुर्वासा, नारदीय, कापिल, वामन, उशना, ब्रह्माण्ड, वारुण, कालिका, माहेश्वर, शाम्ब, सौर, पराशर, मारीर और भार्गव। किसी-किसी ग्रंथ में वायवीय, नान्दीकेश्वर, पाद्म, देवी और भास्कर ये पांच पुराण उपपुराणों ही में गिने गए हैं। पंडित लोग कहते हैं कि कल्पभेद के अनुसार किसी कल्प में जो पुराण कहा जाता है वही दूसरे कल्प में उपपुराण समझा जाने लगता है।

उपमद्‌गु—एक राजकुमार। ये राजा श्वफल्क के पुत्र थे। गान्धिनी के गर्भ से इनका जन्म हुआ था।

उपमन्यु—महर्षि आयोदधौम्य के शिष्य। ये अत्यंत गुरु-भक्त थे। एक दिन इनके उपाध्याय ने सावधानी से गौ चराने के लिए इन्हें वन में भेजा। उपमन्यु दिन भर गौ चराकर संध्या को गुरु के समीप जाकर उपस्थित होते थे। उपमन्यु को हृष्ट-पुष्ट देखकर, एक दिन गुरु ने पूछा, "तुम क्या खाते हो?" उपमन्यु ने कहा, "भिक्षा से जो अन्न प्राप्त होता है वही खाकर मैं रहता हूं।" गुरु ने कहा, "बिना मेरी आज्ञा के तुम को ऐसा करना उचित नहीं हैं।' भक्त शिष्य ने जो कुछ भिक्षा मिली थी सभी गुरु को समर्पित करदी। तदनंतर उसको मोटा ताजा देखकर गुरु ने उसके आहार के लिए पूछा। उपमन्यु ने उत्तर दिया, "पहली भिक्षा गुरुजी को अर्पण करता हूं और दूसरी भिक्षा स्वयं खाता हूं।" गुरुजी महाराज ने इसको भी अनुचित बतलाया। गुरुजी ने कहा, "ऐसा करने से भिक्षा देने वालों को कष्ट पहुंचने की संभावना है।" पुनः कुछ दिन बीतने के बाद गुरुजी ने उपमन्यु से उस के आहार के विषय में पूछा। उसने कहा, "बछड़े जब दूध पी लेते हैं, तब उनके मुख में जो दूध का फेन लगा रहता है उसी से मैं अपना निर्वाह कर लेता हूं।" गुरुजी बोले, "तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं है क्योंकि शांत स्वभाव बछड़े तुम्हारे प्रेम से अपने भोजन से अधिक भाग तुम्हारे लिए छोड़ देते होंगे, जिससे उनको कष्ट होने की संभावना है।" इस प्रकार गुरुजी के परिणामदर्शी हृदय ने प्रिय शिष्य के भोजन के सभी मार्ग बंद कर दिए। उपमन्यु गौचारण करने वन में गया, भूख की ज्वाला उससे न सही गई, उसने अकवन (आक) के पत्ते खा लिये, जिससे वह शीघ्र ही अंधा होकर वन में चारों ओर घूमने लगा। अकस्मात् बिचारा अंधा उपमन्यु एक कुएं में गिर गया। रात्रि हो गई, परंतु उपमन्यु अभी तक नहीं आया, पहले तो वह अभी तक आ जाया करता था। चिंतित गुरु ने एक शिष्य से कहा, "उपमन्यु को सभी प्रकार से भोजन का मैंने निषेध कर दिया इसी कारण क्रोध से वह अभी तक यहां नहीं आया अतएव चलो, हम लोग उसे ढूंढ़ लावें। शिष्यों को साथ लेकर महर्षि आयोदधौम्य वन में गए और वहां उपमन्यु को पुकारने लगे। उन्पमन्यु ने कुएं में से गुरु को उत्तर दिया और अपने कुएं में गिरने का हाल भी बता दिया, स्वर्ग-वैद्य अश्विनीकुमारों की स्तुति करने के लिए गुरु ने उसे उपदेश दिया। उपमन्यु के स्वप्न से अश्विनीकुमारद्वय प्रसन्न हुए। उन्होंने एक औषध खाने के लिए दी। परंतु बिना गुरु की आज्ञा उपमन्यु ने औषध खाने की अपनी असहमति प्रकट की। अश्विनीकुमारों ने उसकी गुरुभक्ति से प्रसन्न होकर उसे वर दिया, "तुम्हारे दांत सुवर्ण के हों, तुम नेत्रवान् हो!" स्वर्गवैद्यों के प्रभाव से उपमन्यु के नेत्र खुल गए। गुरुआयोदधौम्य ने वर दिया, "समस्त वेद और समस्त धर्मशास्त्र तुमको स्मरण हो जाएं।" पुनः उपमन्यु गुरु की आज्ञा से अपने गृह लौट आए। (महाभारत)

उपरिचर—चंद्रवंशी राजा। ये च्यवन के पौत्र और कृतक के पुत्र थे। उपरिचर सुधनु के वंश में उत्पन्न हुए थे। ये चेदिप्रदेश के अधिपति थे। ये उस समय सम्राट कहे जाते थे। इनके पांच पुत्र थे : प्रत्यग्र, कुशाम्ब, बृहद्रथ, मावेल्ल और मत्स्य। उपरिचर ने अपने पांचों पुत्रों में अपना राज्य बांट दिया था। बृहद्रथ को मगध देश का राजा बनाया था, मत्स्य (यदु) को मत्स्यदेश दिया था। इन पांच पुत्रों से पांच राजवंश उत्पन्न हुए थे। बृहद्रथ के दो पुत्र थे जिनमें जरासंध उनके बाद राजा हुआ था। महाभारत में लिखा है कि ये बड़े मृगयाप्रेमी थे, परंतु बाद में इनका स्वभाव बदल गया। जीव हिंसा छोड़कर ये तपस्या करने लगे। इनकी कठोर तपस्या देखकर देवों को भय हुआ, वे सोचने लगे, कहीं यह इन्द्रपद न ले ले। इसी चिंता से देवता उपरिचर के समीप आए, और कह-सुनकर उनको तपस्या से निवृत्त किया। इन्द्र ने एक माला

और लाठी इनको दी थी। (महाभारत)

उपवर्ष—पाटलिपुत्र (पटना)-निवासी शंकरस्वामी का पुत्र और प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनी का सहाध्यायी। इसने 'मीमांसासूत्र पर वृत्ति लिखी थी, जिसको शबर और शंकराचार्य ने उद्धृत किया है। कुछ विद्वानों ने बौद्धायन से इसको अभिन्न माना है; किंतु यह इतिहास-सम्मत नहीं है।

उपसुन्द—दैत्य-विशेश। इसके बड़े भाई का नाम सुन्द था, ये दोनों निकुम्भ नामक दैत्य के बेटे थे। महासुर हिरण्यकशिपु के वंश में निकुम्भ का जन्म हुआ था। सुन्द और उपसुन्द दोनों भाई त्रिलोक जीतने की इच्छा से विन्ध्याचल पर्वत पर कठोर तपस्या करते थे। प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने वर दिया था, त्रिलोक में तुम लोगों को कोई भी नहीं मार सकेगा यदि तुम आपस में लड़कर एक दूसरे को नहीं मारोगे, तो कोई दूसरा तुमको नहीं मार सकता। यह वर पाकर वे अत्याचार करने लगे। ब्राह्मणों का यज्ञ विध्वंस करना ही उन दोनों ने ठान लिया। उनके अत्याचारों से पीड़ित होकर ब्राह्मणों ने शाप दिया सही, परंतु ब्रह्मा के वर के सामने उनके शाप से हो क्या सकता था! इन दोनों ने इन्द्र पर भी आक्रमण किया था। अनेक रूप धारण कर वे तपस्वियों का वध करने लगे, जिससे देवकार्य और पितृकार्य लुप्त हो गए। अनंतर देवता, ऋषि आदि मि ़कर ब्रह्मा के समीप गए और सुन्द-उपसुन्द के अत्याचारों से बचाने के लिए प्रार्थना करने लगे। ब्रह्मा की आज्ञा से विश्वकर्मा ने तिलोत्तमा नामक एक सुंदरी रमणी की सृष्टि की। ब्रह्मा ने तिलोत्तमा को सुन्द-उपसुन्द के समीप भेजा। तिलोत्तमा के रूप पर मुग्ध होकर सुन्द और उपसुन्द दोनों में कलह प्रारंभ हुआ और परस्पर के आघात से दोनों मर गए। (महाभारत)

उमा—महादेव की पत्नी पार्वती। ये हिमालयराज की कन्या हैं। मेनका के गर्भ से इनका जन्म हुआ था। पिछले जन्म में ये प्रजापति दक्ष की कन्या थीं, दक्ष के मुंह से पति-निंदा सुनकर इन्होंने शरीर त्यागकर हिमालय के यहां जन्म ग्रहण किया था और तपस्या द्वारा महादेव को प्राप्त करने की चेष्टा की थी। पार्वती की कठोर तपस्या देखकर इनकी माता मेनका ने 'उ, मा' अर्थात् अधिक कठोर तपस्या मत करो, कहकर निषेध किया था तभी से इनका नाम उमा पड़ा है। यह कालिदास की उक्ति है, मालूम नहीं इसमें सत्य का भाग कितना है।

"उमेति मात्रा तपसो निषिद्धा,
पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम"
(कुमारसम्भव)

उमापति त्रिपाठी—ये अयोध्या के रहने वाले ब्राह्मण थे। १८७४ ई० में इनकी मृत्यु हुई। इनका उपनाम 'कोविद' था। संस्कृत में इनके बनाए कई एक प्रसिद्ध ग्रंथ हैं और अवधी भाषा में इनकी रची 'दोहावली' 'रत्नावली आदि पुस्तकें हैं।

उमापति धर—संकृत के कवि। गीतगोविन्दकार जयदेव ने इनका अपने प्रसिद्ध 'गीतगोविन्द' में सादर उल्लेख किया है, इससे ऐसा विदित होता है कि ये जयदेव के समकालीन थे। जयदेव बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के समकालीन थे यह बात निश्चित हो चुकी है। राजा लक्ष्मणसेन का समय ११११ ई० माना गया है अतएव खृष्टीय १२वीं शताब्दी के आरंभ और मध्य में संभवतः कवि उमापति धर विद्यमान रहे होंगे। श्रीमद्भागवत की भावार्थदीपिका टीका पर जो वैष्णवतोषिणी टीका लिखी गई है, उसमें लिखा है—

"श्रीजयदेवसहचरेण महाराजलक्ष्मणसेनमन्त्रिवरेणोमापतिधरेण।"

इससे भी विदित होता है कि उमापति धर नामक कवि बंगाल के सेनवंशीय राजा बल्लालसेन के मंत्री थे। इन्हीं लक्ष्मणसेन ने १११९ ई० में लक्ष्मणसेन संवत् चलाया था।

यद्यपि इनका रचा कोई स्वतंत्र ग्रंथ सुनने में नहीं आया, यद्यपि इनके रचे और शिला पर खुदे ३६ श्लोक एशियाटिक सोसाइटी में रखे हुए हैं।

उमेद—ये १७९६ ई० में जन्मे, और शाहजहांपुर के पास के रहने वाले थे। इनका बनाया 'नखशिख-वर्णन' प्रसिद्ध है।

उमेदसिंह—(१) बूंदी के राजा। ये राव बुधसिंह के बड़े पुत्र थे। इनके छोटे भाई का नाम दीपसिंह था। इनके पिता का परलोकवास होने पर जयसिंह की सम्मति से उदयपुर के महाराणा ने इनके राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। इन असहाय बालकों ने कहीं आश्रय न पाकर एक जंगल में जाकर शरण ली। कुछ ही दिनों के बाद कोटे में दुर्जनशाल का अभिषेक हुआ। दुर्जनशाल एक उदार दयालु राजा थे, उन्होंने इन दोनों अनाथ बालकों को आश्रय दिया, और वे इसकी भी चेष्टा करने लगे कि इन्हें इनका राज्य भी प्राप्त हो जाय। १७४४ ई० में इनके स्वाभाविक

शत्रु जयसिंह मर गया । आमेर के राज्यसिंहासन पर ईश्वरीसिंह बैठे । उमेदसिंह सुयोग समझकर सेना एकत्रित करने लगे । हाड़ा का दलबदल आकर इनसे मिलने लगा । कोटा के राजा ने जब देखा कि १३ वर्ष का एक वीर बालक वीर क्षत्रिय के समान रणशय्या सजा रहा है तब उन्होंने भी सहायता देने को अपनी सेना भेज दी । ईश्वरीसिंह ने इसकी खबर पाकर अपनी सेना भेज दी । दोनों की सेना में लड़ाई हुई । ईश्वरीसिंह की सेना लौट गई । इससे ईश्वरीसिंह बहुत मर्माहत हुए, उन्होंने एक बड़ी सेना भेजी । हाड़ा की भी सेना एकत्रित हुई । हाड़ाओं ने बड़ी वीरता प्रदर्शित की, तीन बार इन हाड़ा वीरों ने विजय पाई, परंतु इनकी सेना क्षत-विक्षत हो गई थी, तथापि ये लोग लड़ते रहे, अंत में उमेदसिंह की घोड़ी के गोली लगी । अन्यान्य सामंतों के अनुरोध से उमेदसिंह युद्धभूमि चले गए । इस घटना से दुखी होकर बूंदी राज्य के सामंत इन्द्रगढ़ के अधिप के पास गए, परंतु इस नीच से आदर-सत्कार की तो आशा कौन करता, उसने उमेदसिंह को उसी समय इन्द्रगढ़ से चले जाने के लिए कहा । तदनंतर वे करवान गए । इतना कष्ट उठाने पर भी उमेदसिंह का धैर्य नहीं छूटा, उन्होंने पुनः सेना एकत्रित की । अबकी बार उमेदसिंह का श्रम सफल हुआ, उन्होंने बूंदी पर अधिकार कर लिया । (टाड्स राजस्थान)

उरगापुरी—दक्षिण भारत के समुद्रतटवर्ती एक बंदरगाह का नाम जो आजकल तंजौर जिले में नीगापट्टम के नाम से प्रसिद्ध है । यह स्थान किसी समय पाण्य देश की राजधानी था ।

उरुक्रम—द्वादशादित्यों में से अन्यतम, विष्णु तथा विक्रम इसके नामांतर हैं । इसकी पत्नी का नाम कीर्ति और इसके पुत्र का नाम बृहच्छलोक था । कुछ पुराणों में इसका उदय चैत्र और कुछ में कार्तिक बताया गया है ।

उरुबेला—यह बौद्ध तीर्थ बुद्ध को अतिप्रिय था । वह मगध के अंतर्गत था । बोधगया में संबोधि प्राप्त करने के बाद बुद्ध अजपाल वटवृक्ष के नीचे उरुबेला में रहे थे । इसित्तन से पुनः वे वहां आए थे और वहां उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों को दीक्षित किया था । बुद्ध के समय यह स्थान अत्यंत रमणीय था, जिसका उल्लेख 'महावस्तु' (२।१४१) में किया गया है । विद्वानों ने प्राचीन उरुबेला को आधुनिक बोधगया के समीप उरेल गांव से समीकृत किया है ।

ऊर्मिला—एक गन्धर्वी; सोमदा की जननी ।

उर्व—'महाभारत' (अनु०५६) में च्यवन ऋषि की वंशा तालिका में उर्व नामक एक तेजस्वी पुरुष का वर्णन हुआ है जिससे अग्नि की उत्पत्ति हुई । उसका पुत्र ऋचीक हुआ । ऋचीक की पत्नी गाधि की कन्या सत्यवती थी जिससे विश्वामित्र का जन्म हुआ । अयोध्या के राजा बाहुपुत्र सगर हैहय तालजंघ द्वारा राजच्युत होने के कारण उर्व भार्गव ने उसको संरक्षण दिया । उर्व इतना शक्तिशाली था कि ऋषि, देवता और दानव उसके अनुयायी थे ।

उर्वशी—विख्यात स्वर्गवेश्या । इसका जन्म नारायण के ऊरू से हुआ था । एक समय यह इन्द्र की सभा में नाच रही थी, पुरूरवा भी वहां बैठे थे । उनके ऊपर मोहित होने से उर्वशी का ताल भंग हुआ । इस कारण देवराज ने उर्वशी को कुछ दिनों तक मर्त्यलोक में रहने का शाप दिया । 'हरिवंश' में लिखा है कि ब्रह्मा के शाप से उर्वशी ने मनुष्ययोनि में जन्म ग्रहण किया था । शाप पाकर उर्वशी यशस्वी राजा पुरूरवा की पत्नी बनकर मर्त्यलोक में रहने लगी । उर्वशी ने कहा, "महाराज, जब तक मैं आपको नग्न नहीं देखूंगी, और जब तक मेरी इच्छा के विरुद्ध तुम मुझसे संगम नहीं करोगे और जब तक मेरे ये दोनों मेष यहां से नहीं चले जाएंगे, तब तक मैं आपकी स्त्री बनकर रहूंगी ।" पुरूरवा ने इन शर्तों को स्वीकार किया । उर्वशी के गर्भ से नौ पुत्र उत्पन्न हुए थे । बहुत वर्ष बीतने से उर्वशी के बिना गंधर्वों को बड़ा कष्ट होने लगा । उन लोगों ने विश्वावसु नामक गंधर्व को उर्वशी का मेष हरण करने के लिए नियुक्त किया । रात को विश्वावसु मेषों को चुराकर लिये जाता था, उस समय उर्वशी ने पुरूरवा को उठाया, पुरूरवा तब नंगे थे, वे अचकचाकर वैसे ही विश्वावसु गंधर्व के पीछे दौड़े । अवसर जानकर गंधर्वों ने राजभवन के चारों ओर प्रकाश फैला दिया । उर्वशी राजा को नंगा देखकर उसी समय शापमुक्त हो गई तथा स्वर्ग को चली गई । (हरिवंश)

उलूक—(१) ये महाभारत युद्ध के कुछ पहले कौरवों के दूत बनकर युधिष्ठिर के समीप गए थे । शकुनि की सम्मति से दुर्योधन ने पाण्डव पक्षीय कृष्ण-युधिष्ठर आदि को युद्ध के लिए इनके द्वारा बुलवाया था । उलूक ने दुर्योधन का अभिप्राय युधिष्ठिर से कह दिया था । महाभारत युद्ध के अट्ठारहवें दिन ये सहदेव के द्वारा

मारे गए। सहदेव ने भाले से इनका सिर काट लिया था। (महाभारत)

(२) वैशेषिक दर्शनकार का दूसरा नाम, इनका असली नाम उलूक था। अतएव इनका दर्शन 'औलूक्य दर्शन' कहा जाता है। इनका जन्म काश्यप वंश में हुआ था। अतएव इनको काश्यप भी कहते हैं। ये विशेष नामक एक अतिरिक्त पदार्थ मानते हैं, इस कारण इन्हें वैशेषिक भी कहते हैं। कहा जाता है कि ये महर्षि बहुत ही पुराने हैं। इनका बनाया दर्शन, 'सांख्यदर्शन' से भी प्राचीन है।'

उलूकी—उलूकों की माता जिससे उलूक उत्पन्न हुए थे।

उलूपी—ऐरावत कुल में उत्पन्न कौरव्य नामक नाग की कन्या। युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन को बारह वर्ष वन में रहना पड़ा था। इसी वनवास के समय अर्जुन गङ्गाद्वार गए और वहां ही आश्रम बनाकर रहने लगे। एक दिन तर्पण करने के लिए, गङ्गा-स्नान करके अर्जुन लौटे आ रहे थे, उसी समय उलूपी वहाँ आई और अर्जुन को पाताल में ले जाकर अपनी अभिलाषा उसने प्रकट की। अर्जुन बोले, "मैं अपने बड़े भाई की आज्ञा के अनुसार ब्रह्मचर्य अवलंबन करके रहता हूं। अतएव मैं स्वाधीन नहीं हूं। तुम्हारी अभिलाषा पूरी करने की मेरी इच्छा है, परंतु जिससे धर्महानि न हो और तुम्हारी इच्छा भी पूर्ण हो, इसके लिए कुछ उपाय सोचो।" उलूपी बोली, "तुम्हारे ब्रह्मचर्य ग्रहण करने का कारण हमें मालूम है। तुम लोगों ने प्रतिज्ञा की थी कि जब तुममें से कोई द्रौपदी के पास रहे उस समय दूसरा वहां नहीं जा सकेगा, यदि चला जाए, तो उसे बारह वर्ष तक वनवास करना पड़ेगा। अब स्वयं सोचकर देखो कि द्रौपदी के लिए तुम लोग कठोर नियम में बंधे हुए थे, अतएव मेरी अभिलाषा पूर्ण करने से, तुम्हें धर्म-भ्रष्ट नहीं होना पड़ेगा और यदि तुम मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं करोगे, तो मैं प्राण-त्याग करूंगी; इससे तुम्हें हत्या का पाप भी लगेगा ही।" इतना सुनकर अर्जुन ने उसकी इच्छा पूर्ण की और उस दिन वहां ही रहकर, वे दूसरे दिन उलूपी के साथ गङ्गाद्वार में लौट आए। उलूपी अर्जुन को वहां पहुंचाकर अपने घर लौट गई। (महाभारत)

उल्मुक—बलभद्र के पुत्र। ये रेवती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ये दो भाई थे। इनके बड़े भाई का नाम निशठ था।

उल्वण—तीसरे मन्वंतर के सप्त ऋषियों में से एक ऋषि। ये वशिष्ठ के पुत्र थे।

उवट—वेदभाष्यकर्त्ता, संस्कृत के प्रसिद्ध पंडित। ये काश्मीर के रहने वाले थे। व्याकरण महाभाष्य के टीकाकार कैयट, औयट या उवट काव्यप्रकाशकार मम्मट के छोटे भाई थे। इनके पिता का नाम जैयट था। उवट ने वाजसनेयी संहिता के भाष्य में लिखा है, "ऋष्यादांश्च पुरस्कृत्य अवन्त्यामुवटो वसन्। मन्त्र-भाष्यमिदं चक्रे भोजे राष्ट्र प्रशासति।"

इससे स्पष्ट है कि उवट अवन्ती में राजा भोज के राज्यकाल में विद्यमान थे। किंतु ये अपने पिता का नाम वज्रट बतलाते हैं, और मम्मट के पिता का नाम जैयट था। इससे संदेह होता है। क्योंकि मम्मट ने भोजरचित 'सरस्वतीकण्ठाभरण' के श्लोक अपने 'काव्यप्रकाश' में उद्धृत किए हैं। इससे मम्मट का भोज के बाद उत्पन्न होना सिद्ध होता है, इस अवस्था में भोज के समकालीन उवट को मम्मट का छोटा भाई कैसे मान सकते हैं। संभव है, उवट भोज के सम-कालीन हों और ये मम्मट के सहोदर भाई न हों, अथवा यह भी हो सकता है कि मम्मट से ये छोटे ही हों 'सरस्वतीकण्ठाभरण'। उस समय तक बन गया होगा, जब मम्मट 'काव्यप्रकाश' बनाते थे। भोज के यहां रहने से उवट के द्वारा 'सरस्वतीकण्ठाभरण' का पता लगना भी मम्मट को आसान था। भोज का समय ९९६ ई० से ११५३ ई० तक माना गया है अतएव उवट का भी यही समय मानना उचित है।

उशंगु—इस ऋषि ने वृद्धावस्था में पृथूदकतीर्थ में शरीर त्यागकर वैकुंठलोक प्राप्त किया। इससे अंतिम आश्रम में तपकर आर्ष्टिषेण, विश्वामित्र और देवापि आदि ने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया। बलराम भी वहीं तीर्थयात्रा के निमित्त गया था।

उशना—दैत्यपुरोहित। ये भृगु के पुत्र थे। ये द्वापर के व्यास थे। कोई-कोई इन्हीं को वाल्मीकि भी कहते हैं।

उशीनर—चन्द्रवंशीय विख्यात राजा। महाराज ययाति की कन्या माधवी के गर्भ से राजा उशीनर के एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम शिबि था। जहां यमुना नदी की जला और उपजला नामक दो शाखाएं हैं वहीं राजा उशीनर ने यज्ञ किया था, उस यज्ञ से इनकी श्रेष्ठता इन्द्र से भी बढ़ गई थी। इनके धर्म की परीक्षा लेने के लिए, बाज़ पक्षी का रूप धारण

कर इन्द्र, और कपोत-रूप धारण कर अग्नि उनकी सभा में गए। कपोत बाज़ के भय से डरकर उशीनर की गोद में गिरा और उसने उनकी शरण चाही। कपोत के पीछे-पीछे बाज भी वहां उपस्थित हुआ, और उसने उशीनर से कहा, "महाराज, सभी आपको धर्मात्मा जानते हैं, मुझ भूखे को हटाकर मेरे भक्ष्य कपोत को आश्रय देना आपके लिए अनुचित और अधर्म का कार्य होगा।" राजा बोले, "मैंने भीत और शरणागत को आश्रय दिया है, इससे हम को अधर्म नहीं होगा। प्रत्युत धर्म ही होगा, और यदि हम इसको तुम्हारे लिए छोड़ देंगे, तो हमारे इस कार्य की सभी निंदा करेंगे। शरणागत का त्याग ब्राह्मण और गौ की हत्या के तुल्य पाप होता है।" बाज़ बोला, "महाराज, सभी प्राणी आहार करने के लिए उत्पन्न होते हैं, वे आहार ही से बढ़ते और जीवन धारण करते हैं। आज यदि आप मुझे आहार नहीं करने देंगे, तो इससे मेरे प्राण निकल जाएंगे, और मेरे न रहने से मेरे पुत्र-कलत्र आदि भी आहार न मिलने के कारण मर जाएंगे। अतएव आप एक प्राणी की रक्षा करके अनेक प्राणियों की हत्या करना चाहते हैं, इससे आपको अधर्म ही होगा। जो धर्मकार्य एक दूसरे धर्मकार्य का विघातक होता है वह धर्म नहीं है। उसको अपधर्म कहते हैं। जो धर्म किसी का विरोधी नहीं, वही प्राकृत धर्म है।" राजा बोले, "तुम एक धर्मज्ञ के समान बातें कर रहे हो, तुम्हारी बातें सुनकर मालूम होता है कि तुम धर्म के तत्त्व अच्छी तरह जानते हो। तब भी तुम शरणागत को छोड़ने के लिए कहते हो इसी का हमें आश्चर्य है। इस कपोत को छोड़कर अन्य भी तो बहुत-सी तुम्हारे भोजन की वस्तुएं हैं। उनमें से जो तुम चाहो वही मैं देने को तैयार हूं।" बाज़ बोला, "मुझे अन्य भोजनों की आवश्यकता नहीं है।" राजा बोले, "कपोत को छोड़कर और जो तुम मांगो वही मैं देने को तैयार हूं। जिस उपाय से तुम इस कपोत को छोड़ सकते हो वह मुझे बताओ, वह मैं करने को तैयार हूं।" बाज़ बोला, "यदि कपोत पर आपकी इतनी ममता है, तो आप कपोत के बराबर अपने शरीर का मांस दें, इससे मुझे प्रसन्नता होगी।" राजा ने मान लिया और कहा, "मैं अभी अपने शरीर से कपोत के बराबर मांस निकालकर देता हूं।" यह कह कर श्रद्धा-धर्मपरायण राजा अपने शरीर से मांस निकाल कपोत के बराबर तौलने लगे, मांस काट-काट कर राजा तुला पर रखने लगे, परंतु कपोत के बराबर नहीं हुआ, जब राजा ने देखा कि शरीर में अब मांस नहीं रहा, तब वे स्वयं तुला पर चढ़ गए। राजा के तुला पर चढ़ते ही आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी, बाज़ और कपोत ने अपना असली रूप ग्रहण किया। इन दोनों ने राजा को संबोधन करके कहा, "हम लोग आपकी धर्मपरीक्षा के लिए आए थे।" पुनः उन दोनों ने राजा को आशीर्वाद देकर कहा, "संसार में आपकी कीर्ति चिरस्थायिनी होगी।" और वे स्वर्ग को चले गए। राजा ने और भी अनेक धर्मकार्य करके यथासमय स्वर्गारोहण किया। (महाभारत, आ० प०)

उषस्ति चाक्रायण—'छान्दोग्य उपनिषद, (१।१०।१।१) में कहा गया है कि एक बार कुरु देश में अकाल पड़ने के कारण अपनी पत्नी सहित यह ब्राह्मण घर से निकल पड़ा। रास्ते में इसने एक महावत से होले मांगे। होले देने के बाद महावत ने पानी पीने को दिया; किंतु इसने उच्छिष्ट होने के कारण उसको नहीं पिया। इसने कहा कि जीवनरक्षा के लिए होले खाना आवश्यक था। पानी तो अन्यत्र भी पिया जा सकता है। तदनंतर यह एक यज्ञ में सम्मिलित हुआ। वहां राजा ने इसे प्रस्तोता बनाया और दक्षिणा दी।

उसमान—इनका स्थान हिंदी के सूफी प्रेमाख्यानक कवियों की कोटि में उल्लेखनीय है। इनकी एकमात्र कृति 'चित्रावली' से इनके जीवन सबंधी जानकारी के जो सूत्र उपलब्ध होते हैं उनके अनुसार ये गाजीपुर निवासी थे। इनके पिता का नाम शेखहुसेन था। इनके चार भाई थे, जो कि विद्वान्, शीलवान और साधक थे। इन्होंने अपनी उक्त कृति की रचना शाह जहांगीर के शासनकाल (१६०५—१६२७ ई०) में की थी। इन्होंने जहांगीर के शासन के संबंध में भी अनेक प्रकार की जानकारी दी है।

अपने ग्राम का नाम उसमान ने बाबा हाजी बताया है, जो कि चिश्ती संप्रदाय के थे। यह चिश्ती संप्रदाय अपनी धार्मिक उदारता के कारण लोकप्रिय हो गया था। हिंदू और मुसलमान, दोनों की उसमें समान श्रद्धा थी। इस संप्रदाय के सूफी संतों ने अपनी वाणियों द्वारा सामाजिक सदभाव का स्थापना में अपना महत्व-पूर्ण योगदान दिया।

उसमान का स्थान जायसी के बाद निर्धारित किया गया है। वे जायसी की भांति यद्यपि सूफी साधक नहीं थे, तथापि सूफी मत के अनुयायी थे। अपने यश को

अमर बनाने के उदेश्य से उन्होंने 'चित्रावली' की रचना की थी। वे उदार, विनयी भी और सद्‌गुण-संपन्न थे। उनकी इस कृति से उनके काव्य-कौशल और पांडित्य का सहज ही में पता चलता है। देश-काल की तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण करने में भी उन्होंने सफलता अर्जित की है।

ऊ

ऊधो—हिन्दी कवि। इनका जन्म सन् १७९६ में हुआ था, ये श्रृंगाररस की राग-रागिनियां रचा करते थे।

ऊरु—चाक्षुष मनु के दस पुत्रों में से एक पुत्र। चाक्षुष मनु की पत्नी नड्‌वला के गर्भ से दस पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनमें ऊरु भी एक थे।

ऊर्ज—(१) सप्तर्षियों के अंतर्गत एक ऋषि। ये द्वितीय मन्वंतर में थे।

(२) चन्द्रवंशी एक राजा। ये बृहद्रथ के वंश में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम सत्यहित था। ये मगध के राजा थे। प्रसिद्ध मगधराज जरासन्ध इन्हीं का पौत्र था। (हरिवंश)

ऊर्जवहा—मिथिला के एक राजा। ये महाराजा शुचि के पुत्र थे।

ऊर्जस्वती—(१) यह दक्षप्रजापति की कन्या थी। धर्म से इसका विवाह हुआ था।

(२) राजा प्रियव्रत की कन्या का नाम।

ऊर्जा—दक्ष प्रजापति की पुत्री, स्वायम्भुव मन्वंतर में यह वशिष्ठ की पत्नी बनी और इस चित्रकेतु, सुरोचि, विरजामित्र, उल्वण, वसुमृत्, यान और द्यु‌मान नामक सात पुत्रों को जन्म दिया। अन्य पुराणों में आठ पुत्र और बताए गए हैं (ब्रह्माण्ड० २।१२।३९-४३)।

ऊर्णा—(१) स्वायम्भुव मन्वंतर में यह प्रजापति मारीचि की पत्नी थी।

(२) भागवत के अनुसार चित्ररथ राजा की पत्नी, जिससे सम्राज् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

ऊर्ध्वकेतु—(१) सनद्वाज जनक का पुत्र और अज का पिता।

(२) कश्यप तथा सुरभि का पुत्र।

ऊर्ध्वदृष्टि—ब्रह्माण्ड पुराण (३।७।२०५) के अनुसार प्रलह तथा श्वेता का पुत्र। इसके पांच पुत्र तथा पांच कन्याएं उत्पन्न हुए।

ऊर्ध्वबाहु—रैवत मन्वंतर के सप्त ऋषियों में परिगणित।

ऊर्मिला—सीरध्वज जनक की औरसजात कन्या। यह लक्ष्मण को ब्याही गई थी।

ऊषा—दैत्यराज बाण की कन्या। इसने अनिरुद्ध से ब्याह किया था। (देखिए, अनिरुद्ध)

ऋ

ऋक्ष—(१) भृगु के वंशज और चौबीसवें द्वापर के व्यास। कोई-कोई इन्हें वाल्मीकि भी कहते हैं।

(२) अजमीढ के पुत्र।

(३) कुरुवंशज अक्रोधन के पुत्र।

(४) गोंडवाना पर्वतमाला का नाम।

ऋक्षरजस्—मेरु पर्वत पर ध्यानमग्न ब्रह्मा की आंखों से गिरी अश्रुधारा से उत्पन्न एक वानर। एक बार वह पानी पीने तालाब पर गया। उसमें अपने प्रतिबिंब

को प्रतिस्पर्धी समझ कर यह तालाब में जा कूदा। जब बाहर निकला तो उसने अपने को स्त्री रूप में पाया। उसके इस रूप पर इन्द्र और सूर्य विमोहित हो गए। उत्कट काम भावना के कारण इन्द्र का वीर्यपात हो गया जो उसके सिर पर पड़ा। इसी प्रकार कामातुर सूर्य का वीर्यपात उसके गले पर हुआ। शिर पर (केसों) के वीर्य से बाली तथा गले (ग्रीवा) के वीर्य से सुग्रीव उत्पन्न हुआ। रात बीत जाने के बाद वानर ने अपना पूर्व रूप पुनः प्राप्त कर लिया। अपने दोनों पुत्रों को लेकर वह ब्रह्माजी के पास गया और उन्हें सारा वृत्तांत सुनाया। ब्रह्मा ने उसे धैर्य दिया और अपने दूत के द्वारा किष्किन्धा नगरी पहुंचा कर उसका राज्याभिषेक कराया। इस नगरी में वानरों का प्राणाय था जो कि चातुर्वण्य व्यवस्था के अनुयायी थे। ऋक्षरजस् की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकार बाली को मिला (रामायण, उत्तरकाण्ड)।

ऋक्षवान्—विन्ध्य पर्वतमाला का पूर्वीय भाग।

ऋक्षश्रृंग—दीर्घतपस् का कनिष्ठ पुत्र। चित्रसेन के बाण से उसकी मृत्यु हो गई, जिसके पश्चाताप से समस्त परिवार ने देह त्याग किया। केवल दीर्घतपस् ही जीवित रहा। उसने अपने मूल पारिवारिकों की अस्थियों को शूलभेद तीर्थ में विसर्जित किया, जिससे उनको स्वर्ग प्राप्ति हुई।

ऋग्वेद—चार वेदों के अंतर्गत एक वेद का नाम। आधुनिक पंडितों के मत से ऋग्वेद ही प्रथम वेद है। इसके दस मंडल हैं। उन दस मंडलों में पचासी अनुवाक हैं। इन अनुवाकों में एक हजार अट्ठाईस सूक्त हैं। ऋग्वेद के प्रथम मंडल में, चौबीस, द्वितीय मंडल में चार, तृतीय और चतुर्थ मंडल में पांच-पांच करके दस पंचम, षष्ठ और सप्तम मंडल में छः-छः कर के अट्ठारह, अष्टम मंडल में दस, नवम मंडल में सात और दशम मंडल में बारह अनुवाक हैं। एक मंडल में सूक्त इस प्रकार हैं: प्रथम मंडल में १९१, द्वितीय में ४३, तृतीय में ६२, चतुर्थ में ५८, पंचम में ८७, षष्ठ में ७५, सप्तम में १०४, अष्टम में १०३, नवम में ११४, और दशम में १९१ सूक्त हैं। इसी प्रकार ऋग्वेद के श्लोक पाद शब्द यहां तक कि अकारान्त और नकारान्त हलन्त आदि शब्द भी गिन डाले गए हैं। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि महर्षि वेदव्यास ने वेदों का विभाग करके अपने शिष्य पैल को ऋग्वेद प्रदान किया था। पैल ने ऋग्वेद को दो भागों में विभक्त करके अपने शिष्य इन्द्रप्रमिति और वास्कलि को दिया था। वास्कलि ने अपनी पढ़ी संहिता को चार भागों में बांटा था और उन चार भागों को अपने चार शिष्यों को दे दिया था, इन्द्रप्रमिति ने अपनी पढ़ी संहिता को अपने पुत्र माण्डुकेय को पढ़ाया। माण्डुकेय ने उस संहिता को अपने पुत्र शाकल्य और शिष्य वेदमित्र तथा सौभरि को पढ़ाया। शाकल्य ने और पांच संहिताओं का संकलन किया, और मुद्रल, गालव, वात्स्य, शालीय और शिशिर नामक पांच शिष्यों में इसका प्रचार किया। इसी प्रकार ऋग्वेद अनेक शाखाओं में विभक्त हुआ। शौनक मुनि ने अपने चरण-व्यूह नामक ग्रंथ में लिखा है, ऋग्वेद में आठ भेद या स्थान हैं। उनके नाम ये हैं: चर्चा, श्रावक-चर्चक, श्रवणीय, पार, क्रमपाठ क्रमजटा, क्रमरथ, क्रमशट और क्रमदण्ड। ऋग्वेद की पांच शाखाएं हैं। आश्वलायनी, साङ्ख्यायनी, शाकल्या, वास्कला और माण्डुका। इसी प्रकार उसके मंडल, अध्याय, सूक्त आदि का भी विवरण वहां दिया गया है। चरणव्यूह के मत से ऋग्वेद के अनेक अध्याय इस समय प्राप्त नहीं होते। यद्यपि चरणव्यूह में ऋग्वेद की पांच शाखाओं ही का उल्लेख पाया जाता है, तथापि अन्यान्य पुस्तकों से ऋग्वेद की २१ शाखाएं होने का पता लगता है। हो सकता है कि प्रधान-प्रधान शाखाएं पांच ही हों, और अन्यान्य उपशाखाएं हों। किंतु इस समय उन पांच शाखाओं का भी पता नहीं चलता। इस समय शाकल ही की शाखाएं प्रचलित हैं। आज इसका पता लगाना बड़ा कठिन हो गया है कि प्रथम में ऋग्वेद का क्या आकार था, बीच में परिवर्तन होने पर उसका आकार कैसा हुआ और इस समय आकार कैसा है। यज्ञ की नियमावली और क्रिया प्रणाली का विवरण देकर, ऋग्वेद की दो शाखाएं प्रणीत हुई थीं। वे ब्राह्मण नाम से प्रसिद्ध हैं। एक का नाम ऐतरेय और दूसरी का नाम कौषीतकी या सांख्यायन है। ऐतरेय ऋषि ने ऐतरेय ब्राह्मण का, और कुषीतक ऋषि ने कौषीतक ब्राह्मण का संकलन किया था।

अधिकांश आधुनिक पंडितों का मत है कि वैदिक युग नामक एक समय था, उसी समय वैदिक सूक्त बनाए गए हैं। उसी समय सुदास, यदु, तुर्वस आदि ऋग्वेदोक्त राजा वर्तमान थे, उसी समय आर्य और अनार्यों में युद्ध हुआ था और उसी समय यज्ञों की सृष्टि

हुई तथा उसी समय से वैदिक ऋचाएं बनाई जाने लगीं। परंतु शास्त्रों की आलोचना या स्वतंत्र विचार करने से वैदिक युग का कहीं पता नहीं चलता। एक मन्वंतर में कितने वेदव्यास उत्पन्न हुए हैं, कितनी बार वेदों का संकलन हुआ है, कितने इन्द्र, उपेन्द्र, सुदास, यदु, तुर्वसु आदि उत्पन्न और विलीन हुए, इसका पता लगाना बड़ा कठिन है। वेदव्यास ने वेद का विभाग या संकलन किया, इसका तात्पर्य यही है कि वेदव्यास के पहले देव-उपासना के जो मंत्र जहां प्रचलित थे, उन मंत्रों का वेदव्यास ने संग्रह-मात्र किया था। ऋग्वेद के ऋषियों में अगस्त्य और अत्रि का नाम पाया जाता है और विश्वामित्र तथा दिवोदास का भी नाम पाया जाता है। वैवस्वत मनु, विवस्वान्, आदित्य, प्रजापति, भर्ग, सोम प्रभृति भी मंत्रद्रष्टा माने ही जाते हैं और प्रतर्दन, परुच्छद, शुनःशेफ, देवरात अष्टक आदि भी मंत्रद्रष्टा ही हैं। प्रथमोक्त ऋषि और शेषोक्त ऋषियों में बहुत काल का व्यवधान है। ये एक समय के नहीं हैं। अधिक क्या कहा जाय, इनमें बहुत से ऋषि दूसरे मन्वंतर में उत्पन्न हुए थे। फिर अब वैदिक युग किसको कहा जाय। वेदव्यास के बहुत पहले के युग को वैदिक युग कैसे कहें? (भारतवर्षीय इतिहास)

ऋच—एक राजकुमार। ये पुरुवंशज सुनीत के वंशज थे।

ऋचा—ऋग्वेद के मंत्र, जो दीक्षित होता के द्वारा यज्ञों में पढ़े जाते हैं।

ऋचीक—और्व नामक विख्यात ऋषि के पुत्र। इनकी स्त्री का नाम सत्यवती था। इसी सत्यवती के गर्भ से ऋचीक के तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनके नाम ये हैं: जमदग्नि, शुनःशेफ और शुनःपुच्छ। क्षत्रियों का नाश करने के लिए इन्होंने बड़ी चेष्टा से समग्र धनुर्वेद का अध्ययन किया था। ऋचीक ने अपने वंश की रक्षा के लिए महाराज कुशिक के पुत्र गाधिराज की कन्या को ब्याहा था। किसी वंशज के उत्पन्न न होने के कारण गाधिराज की पत्नी बहुत चिंतित रहा करती थीं। ऋचीक ने अपनी स्त्री तथा अपने ससुर की स्त्री को पुत्र उत्पन्न होने के लिए ब्राह्म और क्षात्र नामक दो चरु प्रस्तुत किए थे। गाधिराज की स्त्री ने उत्तम पुत्र उत्पन्न होने की इच्छा से अपनी कन्या की सम्मति लेकर ब्राह्म चरु खा लिया और उनकी कन्या ऋचीक की स्त्री ने क्षात्र चरु खा लिया था। पीछे जब ऋचीक की स्त्री को क्षात्र चरु का प्रभाव मालूम हुआ, तब उन्होंने अपने पति से प्रार्थना की कि हमारे पुत्र में क्षत्रियोचित गुण न होकर पौत्र में हों। इसी चरु के प्रभाव से ऋचीक की स्त्री ने जमदग्नि नामक एक तेजस्वी पुत्र जना था। जमदग्नि के पुत्र परशुराम थे। अपनी पितामही के वर के अनुसार राम ने क्षात्र धर्म का अवलंबन कर समग्र धनुर्वेद का अध्ययन किया था। जामाता के चरु के प्रभाव से गाधिराज की स्त्री ने ब्रह्मतेजयुक्त विश्वामित्र नामक पुत्र उत्पन्न किया था और बाद में विश्वामित्र ने कठोर तपस्या द्वारा ब्राह्मणत्व लाभ किया था। (महाभारत, अनु० प०)

ऋचीय—पुरुवंशज रौद्रश्व के पुत्रों में से एक।

ऋजिस्वान्—एक राजा का नाम। इनका उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है। ये इन्द्र के मित्र थे। और इन्होंने दस्यु कृष्ण को अंशुमती नदी के तीर पर जीता था।

ऋजुदेश—देवकी के गर्भ से उत्पन्न वसुदेव के एक पुत्र का नाम।

ऋजस्व—यह नाम ऋग्वेद में एक पुरुष का मिलता है। इसके निष्ठुर पिता ने इसे अंधा कर दिया था क्योंकि इसने एक सौ एक भेड़ियों को मारकर एक मादा भेड़िया को खाने को दे दिया था। तब उस कृतज्ञा मादा भेड़िये ने अश्विनी कुमारों की प्रार्थना कर उसे आंखें दिलाई थीं।

ऋण—अट्ठारहवें द्वापर के व्यास।

ऋणञ्चय—ऋग्वेदकालीन मंत्रद्रस्टा राजा। इसने बभ्रु नामक एक सूक्तकार को चार हजार गायें दान में दी थीं (ऋग्वेद ५।३०।१२,१४)।

ऋत—(१) सत्य, (२) धर्म के पुत्र का नाम, दक्ष की एक पुत्री के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी, (३) मिथिला के एक राजा का नाम, जो विजय के पुत्र थे।

ऋतधामा—मत्स्यपुराण की गणना के अनुसार तेरहवें मन्वंतर के मनु।

ऋतध्वज—(१) भागवत में लिखी गणना के अनुसार एकादश रुद्रों में से एक रुद्र।

(२) प्रतर्दन राजा की एक उपाधि, जिसका अर्थ 'सत्य की ध्वजा वाला' है। राजा प्रतर्दन सत्य के अत्यंत पक्षपाती थे।

ऋतम्भर—'पद्मपुराण' (पाता० २८) के अनुसार इस राजर्षि ने गाय की परम सेवा करके सत्यवान् नामक

पुत्र प्राप्त किया था।

ऋतु—बारहवें मन्वंतर के मनु।

ऋतुजित्—मिथिला के अज्ञात नामक एक राजा के पुत्र का नाम।

ऋतुधामन—बारहवें मन्वंतर के इन्द्र का नाम।

ऋतुपर्ण—इक्ष्वाकुवंशोद्भव प्रसिद्ध राजा। ऋतुपर्ण की राजधानी अयोध्या में थी और ये अयुताश्व के पुत्र थे। कलि के कोप से राज्यभ्रष्ट होकर राजा नल ने इन्हीं के यहां अश्वाध्यक्ष का काम कर अपने दुर्दिन काटे थे। ऋतुपर्ण के यहां अपना असली नाम छिपा कर नल ने बाहुक नाम बताया था। बाहुक को राजा ऋतुपर्ण मासिक १० हजार रुपये देते थे। बाहुक राजा ऋतुपर्ण को अश्वविद्या की शिक्षा देते थे, और उनसे स्वयं जूए की शिक्षा ग्रहण करते थे। द्यूतशिक्षा में निपुणता प्राप्त करने से राजा नल के शरीर से कलि निकलकर भाग गया। जिस प्रकार द्यूतविद्या में ऋतुपूर्ण निपुण थे उसी प्रकार अश्वविद्या में नल थे। अतएव परस्पर ये दोनों बहुत ही शीघ्र दोनों शिक्षणीय विद्याओं में निपुण हो गए। नल के राजच्युत होने पर विदर्भराज ने उनकी विपत्ति की खबर पाकर जामाता और कन्या को ढूंढ़ने के लिए चारों ओर दूत भेजे थे। उनके भेजे हुए दूतों में से सुदेव नामक ब्राह्मण ने चेदिराज के राजभवन में राजकन्या सुनन्दा की दासी के रूप में दमयन्ती को देखा। दमयन्ती का परिचय पा कर चेदिराज ने अपनी कन्या के समान दमयन्ती को राजा भीम के समीप भेज दिया। दमयन्ती ने भी पिता के घर जाकर, नल को ढूंढ़ने के लिए दूत भेजे। उनमें से एक ने आकर समाचार दिया कि अयोध्या में राजा ऋतुपर्ण के यहां नल अश्वाध्यक्ष के काम पर नियुक्त हैं। दमयन्ती ने पिता से छिपकर माता की सम्मति से, दमयन्ती के पुन: स्वयंवर होने की बात राजा ऋतुपर्ण को लिखकर भेज दी और उस स्वयंवर में ऋतुपर्ण को आने के लिए निमंत्रण भी भेजा। ऋतुपर्ण अश्वाध्यक्ष बाहुक की सहायता से बहुत शीघ्र विदर्भराज भवन में उपस्थित हुए। विदर्भराज भीम ने ऋतुपर्ण का यथोचित सत्कार किया। विदर्भराज भीम दमयन्ती के पुन: स्वयंवर अथवा ऋतुपर्ण को निमंत्रण भेजने की कुछ भी बात नहीं जानते थे। ऋतुपर्ण स्वयंवर का कुछ भी सामान न देखकर, विस्मित और चिंतित हुए। भीम ने राजा ऋतुपर्ण से उनके आने का कारण पूछा, ऋतुपर्ण ने अपने मन के असली भाव को छिपा कर कहा कि आपसे भेंट करने ही को मैं आया हूं। इस उत्तर से भीम का चित्त संतुष्ट नहीं हुआ तथापि ऋतुपर्ण के रहने, भोजन आदि के प्रबन्ध में वे लग गए। उधर दमयन्ती ने केशिनी नामक दासी के द्वारा नल को भीतर बुलवाया। उसी समय राजा नल का भीम और ऋतुपर्ण के साथ परिचय हुआ। राजभवन में अनंद की तरंगें उठने लगीं। ऋतुपर्ण अपने राज्य को लौट आए। राजा नल भी अपनी स्त्री दमयंती को साथ लेकर अपने राज्य में गए और वहां अपने राज्य पर प्रतिष्ठित हुए। (महाभारत)

ऋतेय—पुरुवंशी राजा रौद्रश्व के दस पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र का नाम।

ऋभु—(१) एक प्राचीन वैदिक देवता। इनकी अब पूजा नहीं होती।

(२) ब्रह्मा की नवीं या कौमार सृष्टि में से एक। ब्रह्मा ने इनसे सृष्टि करने के लिए कहा था परंतु इन्होंने सृष्टि नहीं की, अतएव इनकी कुमार संज्ञा है। ये ब्रह्मा के पुत्र होने के कारण पवित्र और सच्चरित्र थे और इनको सत्य ज्ञान प्राप्त था। पुलस्त्य-पुत्र निदाघ इनके शिष्य थे और ऋभु ने इनको सत्य ज्ञान का उपदेश दिया था। पुलस्त्य का आश्रम देविका नदी के तट पर बसे हुए वीरनगर नामक नगर में था और निदाघ भी वहीं नदी के समीप एक उपवन में रहते थे। जब एक हजार वर्ष बीत गए, तब ऋभु पुलस्त्य से मिलने के लिए वीर नगर गए और वहां पर उन्होंने अपने शिष्य को अद्वैत सिद्धांत का तत्त्व समझाया। एक हजार वर्ष के बाद फिर ऋभु अपने शिष्य के पास गए और उन्होंने अपने शिष्य को ईश्वरीय ज्ञान का उपदेश दिया।

ऋभुगण—(१) सुधन्वा के पुत्रों का नाम, जो अपनी कारीगरी के कारण प्रसिद्ध हुए और उनका देवताओं ने सम्मान किया। कहते हैं इन्होंने इन्द्र के साथ रथ और घोड़े बनाए थे और अपने पिता को वृद्ध से युवा किया था। यह भी कहा जाता है कि इनके बनाए कुछ कल्पित मंत्र भी हैं। ये मनुष्य होकर अपनी बुद्धिमत्ता से देवता हो गए थे।

(२) छठे मन्वंतर के देवताओं की एक श्रेणि।

ऋषभ—(१) इनके पिता का नाम राजा नाभि था और इनकी माता का नाम महारानी मेरु था। ऋषभ के सौ लड़के हुए जिनमें सबसे बड़े का नाम भरत था।

ऋषभ ने निरपेक्ष होकर, बुद्धिमत्ता और न्यायपूर्वक राज्य किया और अनेक प्रसिद्ध यज्ञ किए। लिखा है, इन्होंने राज्य अपने पुत्र भरत को देकर वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया, और कठिन तपस्या से अपने शरीर को सुखा दिया, यहां तक कि मुंह में कंकड़ी रखकर ये मर गए। विल्सन साहब कहते हैं कि इन्होंने मुख में कंकड़ी इस कारण रखी कि वे कुछ खाएं नहीं। श्रीमद्‌भागवत में भी इससे मिलती-जुलती कथा लिखी हुई है और यह भी लिखा है कि ऋषभदेव ने भारतवर्ष के पश्चिमी भाग में जैन धर्म का प्रचार किया। प्रचलित जैन धर्म में ऋषभ देव उनके प्रथम तीर्थंकर कहे जाते हैं।

(२) दूसरे मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक।

(३) राजा कुशाग्र के पुत्र।

(४) मेरु के उत्तर वाले एक पर्वत का नाम।

(५) लंका पर आक्रमण करने वाली रामचन्द्र की सेना के एक सेनापति का नाम। इन्द्रजीत ने इनको अपनी माया से बड़ा तंग किया था, यहां तक कि रण-क्षेत्र में इनको वह मृतक दशा में छोड़ गया। अंत में हनुमान्‌जी की ऋषभ पर्वत से लाई हुई संजीवनी बूटी से यह पुनः जीवित हुए।

(६) कैलास के शिखर पर के एक सुनहले पर्वत का नाम। जिस पर चार बूटियां उत्पन्न होती हैं। जिनके प्रभाव से मरा हुआ जी जाता है।

(७) पाण्डव देश के एक पर्वत का नाम जहां महाराज युधिष्ठिर तीर्थयात्रार्थ गए थे। यह पर्वत दक्षिण भारत के मदुरा नगर में अलगिरी नाम से प्रसिद्ध है।

ऋषि—(१) बड़े विद्वान्। सात ऋषि हैं जो प्रजापति के समान समझे जाते हैं। एक ऋषि आदित्य गन्धर्व और अप्सरा प्रतिमास सूर्य के साथ रहते हैं। विणुपुराण में तीन प्रकार के ऋषि लिखे हैं: राजर्षि, देवर्षि और ब्रह्मर्षि। राजर्षि जैसे जनक, देवर्षि जैसे नारद और ब्रह्मर्षि जैसे वशिष्ठ। (ऋष् धातु का अर्थ देखना है।)

ऋषिकस—मनुष्यों की एक जाति। रामायण में लिखा है कि यह जाति भारत के पश्चिम एवं दक्षिण प्रांत में रहती है, इसी जाति से अर्जुन ने ८ घोड़े लिये थे।

ऋषिक—उत्तर दिशा में काम्भोज देश के समीप का देश अर्थात् रूस देश।

ऋषिका—(१) एक नदी का नाम जो महेन्द्र पर्वत से निकलकर गञ्जम के पास समुद्र में गिरती है।

ऋषिकुल्या—कलिङ्ग देश की एक नदी का नाम। यह नदी गञ्जम ज़िले में होकर बहती है और महेन्द्र पर्वत से निकलती है।

ऋष्यमूक (ऋष्यमुख)—(१) दक्षिण के एक पर्वत का नाम, यहीं पर पम्पासर था। यहीं पर मतङ्ग मुनि का आश्रम था। सुग्रीव इसके राजा थे और अनेक वानर भी यहां ही रहा करते थे। रामचन्द्र ने वनवास के समय इसी पर्वत पर चौमासा बिताया था।

(२) मद्रास क्षेत्र के अनांगुडी स्थान से आठ मील दूरी पर और तुंगभद्रा नदी के तट पर जो पहाड़ है, वह ऋष्यमूक कहलाता है।

(3) —इसका संबंध 'रामायण' से है। इसी पर्वत पर हनुमान और सुग्रीव राम से मिले थे। अनांगुडी से आठ मील तुंगभद्रा नदी के तट पर स्थित इस पर्वत को पार्जिटर ने अहमदनगर के आगे कल्याणी तक विस्तृत बताया है।

ऋष्यशृङ्ग—तपःप्रभाव-संपन्न एक ऋषि। महाराज दशरथ से कन्या शान्ता इनको ब्याही गई थी। इन्होंने महाराज दशरथ से पुत्रेष्टि-यज्ञ कराया था जिस के प्रभाव से राम आदि चार पुत्र दशरथ के हुए थे। ये महर्षि विभाण्डक के पुत्र थे। एक दिन स्वर्गीय अप्सरा उर्वशी को देखकर महर्षि विभाण्डक का जल में वीर्यपात हुआ, उन्हीं के आश्रम में रहने वाली एक मृगी ने उस वीर्य को जल के साथ पी लिया था। इससे उस मृगी के गर्भ रहा और उस गर्भ से यथासमय एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह मृगी शापभ्रष्ट देवकन्या थी हरिणी के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण उस बालक के सींग भी थे। उसी बालक का नाम ऋष्यशृङ्ग था। ये आश्रम में रह कर पिता ही के द्वारा लालित-पालित हुए थे। वे अपने पिता को छोड़ और किसी को जानते भी नहीं थे। उन्होंने मुख्य और गौण दोनों प्रकार के ब्रह्मचर्य का पालन किया था। एक समय अङ्गदेश के राजा रोमपाद के राज्य में अवर्षण हुआ, उन्होंने अपने राज्य के ब्राह्मणों को बुलाकर इस विषय में उनसे सम्मति मांगी। ब्राह्मणों ने बताया कि ऋष्यशृङ्ग मुनि को बुला कर यज्ञ कराने से, अवर्षण दूर हो जाएगा। परंतु ऋष्यशृङ्ग का बुलाना कुछ सहज काम नहीं है। तब राजा ने वेश्याओं को भेजकर उनके हावभाव से मुग्ध कराकर, ऋष्यशृङ्ग को बुलवाना निश्चित किया। यथासमय वेश्याएं भेजी गईं। उस समय आश्रम में विभाण्डक मुनि नहीं थे, अतएव अच्छे-अच्छे फल-लड्डू खिला एवं आलिंगन आदि के द्वारा ऋष्य-

शृङ्ग को वेश्याओं ने प्रसन्न किया। विभाण्डक मुनि के आने के डर से वेश्याओं ने आश्रम-परित्याग किया। ऋष्यशृङ्ग का मन इधर चंचल हुआ। वे वेश्याओं की बातें सोचा करते थे। उन्होंने पहले जहां वेश्याओं को देखा था, दूसरे दिन भी वे वहां गए, और उनको वहां देखकर बड़े प्रसन्न हुए। वेश्याओं ने अपने साथ चलने के लिए ऋष्यशृङ्ग को कहा। ऋष्यशृङ्ग बड़ी प्रसन्नता से चलने को तैयार हुए और निश्चित समय पर चलकर वे अङ्गदेश में राजा रोमपाद के समीप पहुंचे। ऋष्यशृङ्ग के अङ्गदेश में उपस्थित होते ही वृष्टि होने लगी। इधर विभाण्डक मुनि अपने योगबल से सब बातें जानकर मारे क्रोध के अधीर हो गए और वे स्वयं अङ्गदेश में उपस्थित हुए। उस समय राजा रोमपाद ने विभाण्डक मुनि के क्रोध से बचने के लिए अपने मित्र अयोध्या के राजा दशरथ की कन्या शान्ता ऋष्यशृङ्ग मुनि को ब्याह दी। दशरथ से शान्ता को राजा रोमपाद ने पोष्यपुत्री रूप से ग्रहण किया था, विभाण्डक मुनि के आते ही नगरवासियों ने शोर मचाया कि इस राज्य के राजा ऋष्यशृङ्ग हैं। विभाण्डक मुनि पुत्र और पुत्रवधू को देखकर अपने आश्रम को लौट गए।

(रामायण)

ऋष्यशृङ्ग आश्रम—'महाभारत' (वन० अ० ११०,१११) के अनुसार यह आश्रम कुशी (कौशिक) नदी के निकट और चम्पा से २४ मील की दूरी पर स्थित था। इस आश्रम के निकट एक ऋषिकुंड सरोवर था, जिसमें ठंडे और गरम जल के स्रोत थे। उसी की उत्तर दिशा में ऋषि ऋष्यशृङ्ग और उनके पिता विभाण्डक उपासना किया करते थे। इस तपोवन में तपस्यारत युवक ऋषि को तपस्या-च्युत करने के लिए अङ्ग नरेश लोमपाद ने वेश्याओं को भेजा था। भागलपुर से २८ मील पश्चिम और बरियापुर से चार मील दक्षिण-पश्चिम में वर्तमान ऋषिकुंड ही पुरातन ऋष्यशृङ्ग आश्रम था।

ए

एकचक्रा—(१) एक प्रसिद्ध दानव। दनु और कश्यप से इसकी उत्पत्ति हुई थी।

(२) एक नगर का नाम जिसमें भीम, उनकी माता और उनके भाई व्यास के कहने से जाकर रहे थे। वहां पर बहुत दिनों तक एक ब्राह्मण के घर में ये लोग रहे। यह वही नगरी है जहां पर भीम ने मनुष्यभक्षी बक राक्षस को मारा था।

एकजटा—लंका की अशोकवाटिका में सीता की देख-रेख के लिए नियुक्त एक राक्षसी।

एकदन्त—एक दांत वाला; गणेश की उपाधि है।

एकद्यू नौधस – ऋग्वेद का सूक्तस्रष्टा; नोधापुत्र।

एकनाथ (भागवती)—इन वैष्णव कवि जा जन्म १५८३ ई० के लगभग हुआ था। बाल्यकाल में ही माता-पिता के निधन हो जाने के कारण इनका पालन-पोषण इनके पितामह चक्रपाणि द्वारा हुआ। बाल्यकाल से ही इनकी प्रवृत्ति धर्म की ओर उन्मुख थी। युवावस्था में ये पैठणा गए और भागवत भजनीकों में सम्मिलित हो गए। ये संस्कृत, हिंदी और मराठी, तीनों भाषाओं के पूर्ण विद्वान् थे। हिंदी साहित्य और मराठी साहित्य, दोनों में इन्हें भागवत संप्रदाय का प्रतिष्ठित संत तथा कवि माना जाता है। इन्होंने संत ज्ञानेश्वर की परंपरा को उजागर किया और वैष्णव समाज में पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त की। 'एकनाथी भागवत' इनकी अत्यंत लोकप्रिय कृति है, जिसकी रचना १५७०-१५८० ई० के बीच हुई थी। इस कृति को इन्होंने काशी में पूर्ण किया। इनकी अन्य रचनाओं के नाम हैं 'स्वान्तः सुख', 'चतुःश्लोकी भागवत टीका', 'हस्तामलक', 'आनन्दलहरी', 'भावार्थ रामायण' और 'रुक्मिणी स्वयम्वर'।

इस कर्मयोगी ने साहित्य के क्षेत्र में जो यश अर्जित किया, वैसी ही लोक-भक्ति धर्मपराणय जनता के द्वारा प्राप्त थी। दक्षिण भारत के इस तुसलीदास ने अपनी वाणी द्वारा भारतीय जनता को धर्म की ओर उत्प्रेरित करने में पूरी सफलता प्राप्त की। १५९९ ई० में इस

महान् संत का निधन हुआ।

एकपर्णा—एकपाटला—हिमालयराज की स्त्री मैना की दो लड़कियों के नाम। इन दोनों ने इतनी कठिन तपस्या की कि वैसी तपस्या आज तक किसी ने नहीं की। इनकी तपस्या से स्थावर जंगम हिलने लगे गए थे। एक दिन-रात में वह एक पत्ता खाकर रहती थी, इसी कारण उसका नाम एकपर्णा पड़ा और दूसरी पाटल पुष्प खाकर रहती थी, इस कारण उसका नाम एकपाटला पड़ा। एकपर्णा का ब्याह योगीश्वर असित देवल से हुआ था और एकपाटला का ब्याह जैगीषव्य मुनि से हुआ था।

एकपाद—कश्यप ऋषि द्वारा कद्रू में उत्पन्न पुत्र।

एकलव्य—निषादराज हिरण्यधनु के पुत्र और द्रोणाचार्य के शिष्य। एक समय पाण्डव और कौरवगुरु द्रोणाचार्य के आदेश से अहेर खेलने वन में गए थे। अहेर ढूंढ़ने के लिए ये वन में इधर-उधर घूमते थे। उसी समय एक कुत्ता एकलव्य को काला कंबल ओढ़े देख चिल्ला रहा था। एकलव्य ने उस कुत्ते के मुख में सात बाण मारकर उसका बोलना बंद कर दिया था। वह कुत्ता पाण्डवों के समीप आया, उसे देखकर वे बाण मारने वाले की प्रशंसा करने लगे। अनंतर बाण चलाने वाले को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते पाण्डव एकलव्य के पास पहुंचे, और वह द्रोणाचार्य का शिष्य है उससे यह सुनकर, उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। पाण्डव लौट कर राजधानी में आए। अर्जुन ने विनीत भाव से गुरु द्रोणाचार्य से जाकर पूछा, "गुरो! आपने तो प्रतिज्ञा की थी कि मुझसे बढ़कर दूसरा कोई शिष्य नहीं होगा, परंतु आपने तो एक भील को ऐसे हथकंडे सिखाये कि उसका स्वल्प भी आपकी शिक्षा से मुझे नहीं आया। द्रोणाचार्य ने बहुत सोचा; परंतु एकलव्य की कुछ भी बात उन्हें स्मरण नहीं आई। द्रोणाचार्य अर्जुन को साथ लेकर एकलव्य के यहां उपस्थित हुए। गुरु को आते हुए देखकर, एकलव्य ने प्रणाम किया। फिर द्रोणाचार्य के पूछने पर उसने कहा कि आपने मुझे म्लेच्छ जाति समझकर तिरस्कारपूर्वक धनुर्विद्या की शिक्षा देने का निषेध किया था। इससे मुझे बड़ा कष्ट हुआ और यहां आकर मैंने आपकी मृत्तिका की मूर्ति बनाई तथा उसी को अपना गुरु मानकर विधि से मैं अस्त्रविद्या सीखने लगा। यह सुन द्रोणाचार्य बोले, "वीर! यदि तुम सचमुच, हमारे शिष्य हो तो मुझे गुरुदक्षिणा दो।" एकलव्य प्रसन्न होकर गुरुदक्षिणा देने को प्रस्तुत हुआ। द्रोणाचार्य बोले,—"तुम अपने दाहिने हाथ का अंगूठा काटकर मुझे गुरुदक्षिणा में दे दो।" एकलव्य ने वैसा ही किया। द्रोणाचार्य भी अपने घर लौट आए। तदनंतर दूसरी अंगुली के द्वारा एकलव्य ने बाण चलाकर देखा तो उसे विदित हुआ कि उसके बाण की गति पहले की अपेक्षा इस समय घट गई है। द्रोणाचार्य ने इस प्रकार हृदय की कठोरता, क्रूरता तथा अन्याय दिखाकर अपने शिष्य अर्जुन की श्रेष्ठता संपादित की थी। (महाभारत)

एकविंशा—ऋचाओं के एक संग्रह का नाम, जो ब्रह्मा के उत्तरीय मुख से उत्पन्न हुआ था।

एकवीर—बाजीरूप विष्णु द्वारा बड़वारूप लक्ष्मी से उत्पन्न होने के कारण इसे हैहय भी कहा गया है, जो कि यदुवंशीय राजा हैहय से भिन्न था। इसकी दो पत्नियों के नाम थे एकावली और यशोमती। इसकी उपास्या देवी का नाम एकवीरा था।

एकादशाह—मृतकक्रिया। परिवार के किसी के मरने पर दस दिन तक लोग अशौच मानते हैं, और ग्यारहवें दिन शुद्ध होते हैं। वर्णभेद से मृतक शौच की अवधि में तारतम्य है।

एकाष्टका—प्रजापति की कन्या, जो कि अपनी घोर तपस्या के कारण क्षोम और इन्द्र की माता बनी। पुस्तकों में लिखा है कि इन्द्र काश्यप और दाक्षायणी के पुत्र हैं।

एकोद्दिष्ट—मासिक श्राद्ध। यह एक ही व्यक्ति के उद्देश्य से किया जाता है। मृत व्यक्ति का या तो एकोद्दिष्ट (मासिक श्राद्ध) अथवा क्षयाह श्राद्ध किया जाता है।

एतश—ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी के अनुसार सूक्तद्रष्टा; जिसका वहां वातरशन नाम से कहा गया है। इन्हें एक बार अग्निविषयक मंत्रों की रचना की प्रेरणा हुई और इन्होंने अपने अभ्यग्नि नामक पुत्र से मंत्रपाठ में बाधा उत्पन्न न करने के लिए कहा, किंतु उसने पिता को पागल हुआ जानकर उनके मुख पर हाथ रखकर उन्हें मंत्रोच्चारण न करने के लिए वारित किया। पिता ने क्रोधित होकर उसे कुष्ठ हो जाने का शाप दे दिया। अथर्ववेद में भी 'ऐतशप्रलाप' से संबद्ध मंत्र हैं सूर्य से हुए युद्ध में इसे इन्द्र ने बचाया था (ऋग्वेद ८।१।१८)।

एलापत्र— एक बलिष्ठ सर्प, इसके अनेक फन हैं। यह कद्रू का पुत्र था।

एलीफैण्टा—बम्बई बंदरगाह से छः मील पूर्व की ओर लगभग पांच मील की परिधि में एलीफैण्टा की कला-

थाती अवस्थित है। इन गुफाओं को लावा पत्थर की चट्टानों को काट-छांटकर उभारा गया है। चट्टानों से ही स्तंभ, छत तथा भित्तियां बनाई गई हैं और उन पर विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियां उत्कीर्णित की गई हैं। इस रूप में ये गुफाएं भारतीय कला की उदात्तता और भारतीय शिल्पियों के असाधारण साहस तथा कौशल की सूचक हैं। इन गुफाओं के निर्माण में इस क्षेत्र के पल्लव (३००-१००० ई०) और चालुक्य (६००-१२०० ई०) राजवंशों का योगदान रहा है। लगभग ७वीं, ८वीं शती में यहां की अधिकतर गुफाओं का निर्माण हुआ।

इन गुफाओं के द्वारा भारत की तत्कालीन धार्मिक एवं वैचारिक स्थिति का पता चलता है। वे परंपरागत ब्राह्मण धर्म की उन्नतावस्था की सूचना देती हैं और भारत की अध्यात्म विचार-दृष्टि को अभिव्यक्त करती हैं। गुप्तों के शासन-काल में कला के माध्यम से जो धार्मिक तथा वैचारिक अभ्युदय हुआ और सारे देश को सांस्कृतिक एकता में आबद्ध करने का सराहनीय यत्न हुआ, एलीफैण्टा की ये गुफाएं उसी स्वर्णिम इतिहास की उद्भावना करती हैं। उनके द्वारा उत्तर तथा दक्षिण की सांस्कृतिक एकता स्थापित हुई। विद्वानों का अभिमत है कि उनमें दक्षिण की प्रज्ञा और उत्तर भारत की आत्मा की विदग्धता तथा परिष्कृति का ऐक्य निहित है। वहां की उत्कृष्ट प्रतिक्रियाएं विशेष रूप से आर्यावर्त और दक्षिणापथ की आध्यात्मिक तथा कलात्मक परंपराओं के समन्वय की प्रतीक हैं।

एलीफैण्टा की महेश्वर-प्रधान मूर्तियों से विदित होता है कि उनके संरक्षक शिवोपासक थे। महेश्वर की इतनी विशाल और सुंदर मूर्तियां भारत में कहीं भी नहीं बनी हैं। भगवान शंकर की इन मूर्तियों का विशेश महत्व है। वह अपनी परम शिल्प-संरचना की दृष्टि से ही नहीं भावविचार की दृष्टि से भी सराहनीय है। उसमें आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक त्रिविध रूपों की समदर्शितापूर्ण अभिव्यंजना हुई हैं। उसमें सृष्टि, स्थिति और लय की तीन रुचियां एकसाथ ध्वनित हुई हैं। इस रूप में वह वेदमयी का भी रूपान्तर हैं। इस त्रिमूर्ति में भारतीय संस्कृति का सनातन स्वरूप और सार्वभौम समन्वय दर्शित हुआ है। भारतीय कला तथा संस्कृति की वाहिका बन कर सुदूर एशिया के भूखंड की कला पर उसका प्रभाव व्याप्त है।

इस भाव्य एवं विशाल कलाकेंद्र को १६वीं शती में पुर्तगालियों ने सैनिक आवास बनाकर उसको अपार क्षति पहुंचाई। उसके बाद अंग्रेजों ने भी उसको सैनिक अड्डा बनाए (रखा)। संप्रति यह कलाकेंद्र सरकारी संरक्षण में है।

ऐ

ऐक्ष्वाक—यह शब्द ऋग्वेद, ब्राह्मण ग्रंथों और मैत्र्युपनिषद् में अनेक व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। किंतु सामान्यतः उसका प्रयोग इक्ष्वाकु वंशजों के लिए हुआ है।

ऐक्ष्वाकी—भूमन्यु के पुत्र सुहोम की पत्नी। इसके तीन पुत्रों के नाम थे – अजमीढ़, सुमीढ़ और पुरुमीढ़।

ऐतरेय आरण्यक—वेद के ब्राह्मण भाग का उपसंहार। सायणाचार्य कहते हैं कि याग आदि करने के लिए जिस प्रकार गृहस्थों को ब्राह्मण भाग की आवश्यकता है उसी प्रकार वानप्रस्थों के लिए आरण्यक भाग की आवश्यकता है। ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए किन-किन आचारों का पालन करना आवश्यक है, ब्रह्म क्या है, आदि विषय आरण्यक में लिखे गए हैं। महर्षि मनु कहते हैं कि वेदाध्ययन समाप्त करके आरण्यक का अध्ययन करना चाहिए। याज्ञवल्क्य कहते हैं कि जो योगाभ्यास करना चाहें उन्हें आरण्यक और हमारा बनाया योगशास्त्र पढ़ना चाहिए। प्रत्येक ब्राह्मण का एक आरण्यक भी है। ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण का उपसंहार भाग ऐतरेय आरण्यक है। ऐतरेय आरण्यक में ऋग्वेद के प्रत्येक ऋषि का परिचय दिया गया है

और ऋग्वेद के पद-पदांश, शब्द-शब्दांश आदि की संख्या इसमें लिखी गई है।

ऐतरेय ब्राह्मण—वेदों के उपसंहार भाग को ब्राह्मण कहते हैं। वैदिक मंत्रों का किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए प्रधानतः ब्राह्मणों में इसी का विवरण पाया जाता है। कर्मकांड के उपदेश के व्याज से ब्राह्मणों में अन्यान्य बातें भी लिखी गई हैं। प्रसंगवश ब्राह्मणों में सृष्टितत्व का भी वर्णन किया गया है। अनेक पौराणिक कथाओं का मूल ब्राह्मणों में पाया जाता है। बलिदान प्रथा का भी ब्राह्मणों से परिचय मिलता है। यह ऋग्वेद का ब्राह्मण है। (देखिए, ऋग्वेद)

ऐरावत—देवराज इन्द्र के हाथी का नाम, समुद्र मंथन के समय यह समुद्र से निकला था।

ऐषावीर—सायणाचार्य के मतानुसार एषवीर वंशजों को ऐषावीर कहा गया, जो कि अशुद्ध ढंग से यज्ञ कार्य संपादित करते थे और जिन्हें ब्राह्मणों को निम्न श्रेणी में परिगणित किया जाता था। (शतपथ ब्राह्मण)।

ओ

ओघरथ—'महाभारत' के अनुसार यह ओघ राजा का पुत्र था और इसके पुत्र का नाम नृग था।

ओघवत्—इसके पिता का नाम प्रतीक तथा पुत्र का नाम ओघरथ और इसकी कन्या का नाम ओघवती था। (महाभारत)

ओङ्कार—शिव का एक अवतार; मान्यता में लिट लिंग रूप में और पृथ्वी पर प्रणव रूप में विद्यमान है।

ओजस्—वैशाख में अर्यमा सूर्य के साथ विचरण करने वाला यक्ष। (भागवत)

औ

औडलोमि—एक तत्वज्ञानी आचार्य, 'ब्रह्मसूत्र' के अनेक स्थलों पर जिनके मत का उल्लेख हुआ है।

औत्तम मनु—उत्तानपाद का पौत्र तथा उत्तम का पुत्र; बभ्रुकन्या बाभ्रव्या से उत्पन्न; उत्तमभज होने के कारण उसे औतम या औत्तमी कहा गया है। 'भागवत' के अनुसार प्रियव्रत का पुत्र। यह तृतीय मन्वंतर का मनु था।

औदुम्बर—पठानकोट क्षेत्र में अवस्थित एक देश।

औदुम्बरा—कच्छ देश का नाम। इसकी प्राचीन राजधानी का नाम कोटेश्वर या कच्छेश्वर कहा जाता है।

औद्दालकि—श्वेतकेतु का पैतृक नाम; असुरविन्द तथा कसुरुविन्द नामों से उल्लिखित; नचिकेता के लिए भी यह नाम प्रयुक्त हुआ है।

औपमन्यव—(१) अनेक आचार्यों का इस नाम से उल्लेख हुआ है। 'निरुक्त' में एक वैयाकरण के रूप में इसका मत उद्धृत किया गया है। उपमन्यु के वंशज। (२) वशिष्ठ गोत्र का एक ऋषि।

और्णवाभ—कौण्डिन्य का शिष्य; 'निरुक्त' में एक वैयाकरण के रूप में उल्लिखित; ऐतिहासिकों में परिगणित। (निरुक्त)

और्व—एक विख्यात प्राचीन आर्य ऋषि। ये पहले भृगुवंशी क्षत्रियों के यजमान थे, परंतु किसी कारण से इन पुरोहित यजमानों में विरोध हो गया। क्षत्रियों

का अत्याचार यहां तक बढ़ा कि वे भृगुवंशीय स्त्रियों का गर्भ-छेदन करके गर्भस्थ बालकों का नाश करने लगे। इस समय एक भृगुवंशीय स्त्री अपने गर्भ की रक्षा के लिए किसी पर्वत में छिपकर रहा करती थी। वहां भी इन शत्रुओं ने इस स्त्री का पीछा किया। गर्भ-भार से मंदगमना वह स्त्री आत्मरक्षा के लिए दौड़ी। दौड़ने से उसकी जंघाओं को फोड़कर अग्नि के समान तेजस्वी पुत्र निःसृत हुआ। ऊरू से निकलने के कारण इस पुत्र का नाम और्व पड़ा था। और्व मारे क्रोध के संपूर्ण पृथ्वी-मंडल को भस्म करने के लिए उद्यत हुए, परंतु उनके पुरखाओं ने आकर उनको रोका। और्व ने अपने पूर्वपुरुषों के कहने से पृथ्वी को भस्म करने का विचार छोड़ दिया और अपने क्रोध को समुद्र में डाल दिया। इसी कारण बड़वानल को औवनिल भी कहते हैं। (महाभारत)

औलूक्य--वैशेषिक दर्शन का नामांतर। वैशेषिक दर्शनकार का नाम उलूक था। इसी कारण उनका बनाया दर्शन औलूक्य दर्शन के नाम से प्रसिद्ध है। (देखिए उलूक)।

औशन—ऋषिविशेश। ये दैत्यगुरु प्रसिद्ध शुक्राचार्य के पिता थे। शुक्राचार्य का दूसरा नाम उशना था। भृगु वंशी औशन ने ऋषिमंडली के सम्मुख जिन शास्त्र-तत्त्वों का वर्णन किया था, उनके पुत्र उशना ने उन्ही तत्त्वों का संग्रह करके 'उशनःसंहिता' नामक एक संहिता बनाई थी जो आज भी प्रसिद्ध है।

क

कंकतीय—समग्रंथों में उल्लिखित कंकटी वंश का ब्राह्मण।

कंका—उग्रसेन की कन्या, कंस की बहिन और आनक की पत्नी।

कंस—भोजवंशीय नृपविशेष। ये मथुरा के राजा उग्रसेन के क्षेत्रज पुत्र थे और मगधराज जरासन्ध के जामाता थे। इन्होंने जरासन्ध की अस्ति और प्राप्ति नामक दो कन्याओं का पाणिग्रहण किया था। दानवराज द्रुमिल के औरस और उग्रसेन की पत्नी के गर्भ से कंस की उत्पत्ति हुई थी। अपने ससुर जरासन्ध की सहायता से कंस अपने पिता को राज्यच्युत करके स्वयं राजा बना था। इससे पिता-माता-बांधव आदि सभी अप्रसन्न रहा करते थे। इससे अपने चाचा की कन्या देवकी को वसुदेव के साथ ब्याहा था। विवाह के समय में देववाणी हुई कि इसके आठवें गर्भ से उत्पन्न पुत्र तुमको (कंस) को मारेगा, इस कारण कंस ने वसुदेव और देवकी को कैद कर लिया। कारागार में इनके जो लड़के होते थे कंस उनको मरवा दिया करता था। वसुदेव भादों की कृष्ण अष्टमी की आधी रात को देवकी के आठवें गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण को छिपकर गोकुल में गोपराज नन्द के यहां रख आए और उसी रात्रि को नंद की स्त्री यशोदा के गर्भ से एक पुत्री उत्पन्न हुई थी, वह कन्या योगमाया थी। उस रात्रि को योगमाया की माया से गोकुल में सभी अचेतन पड़े थे। इस कारण वसुदेव को मनचाहा काम करने का अवसर मिल गया। श्रीकृष्ण को वहां रखकर तथा कन्या को लेकर वसुदेव मथुरा लौट आए। इधर कंस को मालूम हुआ कि देवकी के आठवें गर्भ से कन्या उत्पन्न हुई है। उसने कन्या को पत्थर पर पटककर मार डालने की आज्ञा दी। पत्थर पर पटकते ही कन्या आकाश में उड़ गई और वहां से वह बोली, "दुर्बल! तुमको मारने वाला अन्यत्र उत्पन्न हो गया।" यह सुनकर कंस ने वसुदेव और देवकी को छोड़ दिया और श्रीकृष्ण का पता लगाने के लिए चारों ओर अपने दूत भेजे। उन दूतों को श्रीकृष्ण ने मार डाला। अंत में कंस ने धनुर्यज्ञ का स्वांग रचकर श्रीकृष्ण को मथुरा बुलवाया था, परंतु कंस की सब चालाकियां पोली निकलीं और कंस श्रीकृष्ण के हाथों मारा गया। (हरिवंश)

कंसा, कंसावती—उग्रसेन की कन्या।

कंसारी—याज्ञवल्क्य की भगिनी। बृहस्पति के शापवश इसे याज्ञवल्क्य के वीर्य से पिप्पलाडनामक पुत्र की

प्राप्ति हुई थी।

ककुत्स्थ—सूर्यवंशीय विख्यात राजा। मनु के पुत्र इक्ष्वाकु, इक्ष्वाकु के पुत्र शशाद और उनके पुत्र पुरञ्जय थे। ये ही पुरञ्जय ककुत्स्थ नाम से संसार में प्रसिद्ध हुए। पहले देवता और दानवों का भयंकर युद्ध हुआ था। उस युद्ध में परास्त देवों ने पुरञ्जय की सहायता मांगी। पुरञ्जय ने कहा कि यदि देवराज इन्द्र हमारा वाहन बनें तो हम दैत्यों के साथ संग्राम कर सकते हैं। इन्द्र ने पहले वाहन बनने के प्रस्ताव को अनुचित समझकर निषेध किया था, परंतु विष्णु के कहने से पुनः उन्होंने स्वीकार किया। इन्द्र एक बड़े भारी वृषभ का रूप धारण कर उपस्थित हुए। पुरञ्जय वृषरूपधारी इन्द्र के ककुद पर बैठकर दैत्यों के साथ युद्ध करने लगे। घोर युद्ध होने के पश्चात दैत्य परास्त हुए। बहुत से दैत्य मारे गए, और बहुत से भाग कर पाताल चले गए। वृष के ककुद पर बैठने के कारण पुरञ्जय का नाम ककुत्स्थ पड़ा। इनके वंशज काकुत्स्थ कहे जाते हैं। (श्रीमद्भागवत)

ककुद—दक्षप्रजापति की कन्या का नाम जो धर्म के साथ ब्याही गई थी।

ककुद्मी—रैवत का नाम। ये ब्रह्मलोक में यह पूछने गए थे कि उनकी लड़की के योग्य वर कहां मिलेगा।

ककुभ—ओड़िसा के एक पर्वत का नाम।

कक्षेप—पुरु वंशज रौद्रश्व के पुत्र का नाम।

कक्षसेन (१) वशिष्ठ का धन-रक्षक असित पर्वतवासी एक महर्षि।

(२) युधिष्ठिर की राजसभा का एक क्षत्रिय।

(३) जनमेजय का पुत्र।

(४) चंद्रवंशी राजा परीक्षित् के आठ पुत्रों में से एक पुत्र का नाम। यह सबसे बड़े थे।

कक्षवित्—दीर्घतमा और उशिज् का पुत्र। इसे औशिज भी कहा गया है। पज्रकुलीय होने के कारण इसे पज्र या पज्रिय भी कहा गया है। इसकी पत्नी का नाम वृचया था। तपस्या द्वारा तह क्षत्रिय से ब्राह्मण बना और उत्तम लोक को प्राप्त हुआ। ऋग्वेद का सूक्तद्रष्टा होने के कारण इसकी प्राचीनता निर्विवाद सिद्ध होती है। इसकी कन्या का नाम घोषा था। (ऋग्वेद)

कक्षेयु—पुरुवंशी राजा रौद्राश्व के पुत्र का नाम। रौद्राश्व के पांच पुत्र थे। उनमें यह मध्यम थे।

कङ्क—(१) उग्रसेन के एक पुत्र का नाम।

(२) अज्ञातवास के समय पाण्डवों ने अपने-अपने नाम बदलकर विराटनगर में आश्रय लिया था। उस समय युधिष्ठिर का नाम कङ्क रखा गया था। कङ्क विराट के सभासद थे।

कच—पहले संसार पर आधिपत्य-विस्तार करने के लिए देवता और असुरों युद्ध हुआ था। युद्ध में जो असुर मारे जाते, उनको दैत्यगुरु शुक्राचार्य संजीवनी मंत्र के द्वारा जीवित कर लिया करते थे। जीवन प्राप्त करके दैत्य पुनः देवों से लड़ने लग जाते थे। परंतु जो देवता मारे जाते थे वे जीवित नहीं होते थे। इस कारण मृतसंजीवनी विद्या प्राप्त करने के लिए देवताओं ने बृहस्पति के पुत्र कच को दैत्यगुरु शुक्राचार्य के समीप भेजा। कच शुक्राचार्य के शिष्य हुए और बहुत शीघ्र गुरु-पुत्री देवयानी से उनका बंधुत्व हो गया। कच का उद्देश्य जानकर दैत्यों ने उन्हें मार दिया। परंतु देवयानी के कहने से शुक्राचार्य ने कच को जीवित कर दिया। कुछ दिन बीतने पर दैत्यों ने पुनः कच का वध किया, देवयानी के अनुरोध से शुक्राचार्य ने अबकी बार भी कच को जीवत कर दिया। एक दिन देवयानी ने कच को फूल ले आने के लिए भेजा। मार्ग में दैत्यों ने मिलकर कच को मारकर, भस्म कर दिया और भस्म को मांस में मिलाकर शुक्राचार्य को पिला दिया। कच के आने में विलंब होते देख देवयानी पिता के पास जाकर कच के लिए रोने लगी। शुक्राचार्य बोले, "अवश्य ही कच को दैत्यों ने मार डाला होगा, मैं दो बार कच को जिला चुका हूं। अब उसको जिलाना भी व्यर्थ है क्योंकि अवसर पाकर दैत्य उसे मार ही डालेंगे, अतएव कच की बातों को व्यर्थ सोचकर, तुम्हें दुःख उठाना उचित नहीं है। परंतु शुक्राचार्य के समझाने का कुछ फल न हुआ। अंत में पुत्री के बहुत कहने पर, शुक्राचार्य संजीवनी मंत्र के बल से कच को बुलाने लगे। उनके पेट से कच ने उत्तर दिया। शुक्राचार्य ने उससे, अपने पेट में जाने का कारण पूछा। वह कहने लगा, "आपकी दया से मेरी स्मृति-शक्ति बलवती हो गई है। इसी कारण मुझे पहले की बातें स्मरण हैं और मैं अपने पूर्व जन्म की तपस्या के क्षीण न होने के कारण इस कष्ट को भी सह रहा हूं। असुरों ने मुझको जला दिया है और उस भस्म को मदिरा में मिलाकर, आपको पिला दिया है।" शुक्र बोले, "देवयानी! अब तो कच के प्राण नहीं बच सकते, क्योंकि वह मेरे पेट में चला गया है। यदि उसकी रक्षा की जाय तो मैं मर जाउंगा।" देव-

यानी बोली, "किंतु कच के मरने पर मैं भी मर जाऊंगी, और आपके न रहने से भी मेरी वही दशा होगी। इस समय आप जो अच्छा समझें वही करें।" शुक्राचार्य कुछ देर तक सोचते रहे, अंत में उन्होंने कहा, "कच! देवयानी तुमसे अत्यंत स्नेह रखती है। इस कारण मैं तुमको संजीवनी विद्या का उपदेश करूंगा। जिस समय तुम मेरे शरीर से निकलोगे उस समय अवश्य ही मेरा प्राणवियोग होगा। अतएव मैं अनुरोध करता हूं कि तुम अवश्य ही मेरे उदर से निकलकर, मुझे जीवित कर देना। सावधान, इस धर्म के प्रतिपालन करने से विमुख न होना।" कच ने गुरु की आज्ञा मानने की प्रतिज्ञा की। संजीवनी विद्या प्राप्त कर कच गुरु के उदर से निकले और पुन: उन्होंने अपने गुरु को भी जीवित कर दिया। कच ने बहुत दिनों तक शुक्राचार्य के निकट अध्ययन किया। तदनंतर गुरु की आज्ञा पाकर, वे स्वर्ग जाने को उद्यत हुए। उस समय देवयानी ने कहा, "तुम्हारा विद्याध्ययन समाप्त हुआ, इस समय तुम शास्त्रानुसार मेरा पाणिग्रहण करो, मैं तुम पर अनुरक्त हूं।" कच बोले, "शुभे! तुम हमारी गुरुकन्या हो, अतएव माननीया हो। मैं तुमसे किसी प्रकार विवाह नहीं कर सकता।" इसी प्रकार दोनों में तर्क-वितर्क होता रहा। जब कच किसी प्रकार विवाह करने के लिए प्रस्तुत नहीं हुए तब देवयानी ने शाप दिया, "मैं निरपराधा हूं, तो भी तुम मुझे अस्वीकृत करते हो, अतएव तुम्हारी यह विद्या फलवती नहीं होगी।" कच बोले, "मैं किसी दोष के कारण तुम्हें वरण करना नहीं चाहता सो तो नहीं है, किंतु तुम मेरी गुरु-पुत्री हो, इस कारण मैं तुमको स्वीकृत करना नहीं चाहता। अतएव मैं शाप के योग्य नहीं हूं। तुम्हारा शाप काम के कारण है; अतएव वह शाप मुझ पर फलवान् नहीं होगा। तुमको मैं भी देता हूं कि तुम्हारा मनोरथ सिद्ध नहीं होगा, कोई ब्राह्मण-कुमार तुमसे विवाह नहीं करेगा, तुम ब्राह्मण से अतिरिक्त अन्य किसी जाति की स्त्री होगी। तुम मुझे जो शाप देती हो मैं उसे स्वीकार करता हूं। मेरी विद्या फलवती न हो, न सही; परंतु जिसको मैं विद्या पढ़ाऊंगा उसको तो यह विद्या फलवती अवश्य होगी।" तदनंतर स्वर्ग में जाकर देवताओं को मृतसंजीवनी विद्या उन्होंने सिखाई। इन्द्र आदि देवताओं ने कच को आशीर्वाद दिया। (महाभारत)

कच्चायण—पालिभाषा में कात्यायन को कच्चायण कहते हैं। पालि और संस्कृत दोनों भाषाओं में कौन पहले की है इस विषय में कच्चायण का मत है कि पालिभाषा पहले की है, पालिभाषा ही से अन्य भाषाओं की उत्पत्ति हुई है। वही मूल भाषा है।

कच्छ—दक्षिण का एक जनपद। चीन के यात्री हुएनत्सङ्ग ने कच्छ को 'ओतिएन पोचिलो' कहा है। इस चीनी उच्चारण से कनिंघम ने शुद्ध शब्द औदुम्बर निकाला है। कच्छ देश का औदुम्बर नाम क्यों हुआ इस विषय में अध्यापक लोशन कहते हैं कि कच्छ के अधिवासियों को पहले औदुम्बर कहते थे, इसी कारण हुएनत्सङ्ग ने उस देश को भी औदुम्बर कहा है। प्लिनि के ग्रंथ में भी यही नाम देखा जाता है, परंतु इस समय कच्छ देश में इस नाम का कोई चिह्न नहीं देखा जाता है। हुएनत्सङ्ग ने कच्छ की परिधि आठ सौ तेंतीस मील लिखी है। उस समय का कच्छ देश आबू पहाड़ के समीप उमारकोट तक फैला था। हुएनत्सङ्ग ने अपने उच्चारण में कच्छ देश की राजधानी का नाम लिखा है, 'कियेशि, शीफालो'। सिंधु देश की राजधानी से दो सौ सरसठ मील दक्षिण जाने पर चीन परिव्राजक हुएनत्सङ्ग को यह राजधानी मिली थी। उस राजधानी की परिधि पांच मील थी। हुएनत्सङ्ग ने कच्छ की राजधानी का जो नाम लिखा है उसका शुद्ध रूप अध्यापक लोशन 'कच्छेश्वर' बतलाते हैं। कनिंघम कहते हैं कि उसका नाम 'कोटीश्वर' है। कच्छ के पश्चिम प्रांत में जो कोटीश्वर नामक तीर्थस्थान है, उसी का चीन परिव्राजक ने वैसा उच्चारण किया है। कोटीश्वर नगर के मध्य में एक शिवनगर विद्यमान है। कनिंघम कहते हैं, इसी कारण उस नगर का नाम कोटीश्वर है। चीन परिव्राजक ने कच्छ देश को निम्न और आर्द्र देश बतलाया है। जिस समय चीन यात्री यहां आया था, उस समय कच्छ देश मालवराज की अधीनता में था। खृष्टीय १६वीं शती में कच्छ देश पर मुसलमानों का अधिकार हुआ। (भारतवर्षीय इतिहास)

कच्छप—विश्वामित्र के लड़कों में से एक।

कच्छा—खेड़ा जो गुजरात के अहमदाबाद और खंबे के बीच में है।

कजङ्ग—एक जंगली जाति। पुराणों में भी इस जाति का उल्लेख हुआ है। परंतु ठीक पता नहीं मिलता कि किस जाति को कजङ्ग कहते हैं।

कटदेश—यहां के राजा का नाम, जिसे अर्जुन ने दिग्विजय

यात्रा के समय परास्त किया था, सुना था यह बर्दवान ज़िले के कटवा का नामांतर है।

कठ—कृष्ण यजुर्वेद की शाखा के प्रवर्तक; कठों का मूल पश्चिम-उत्तर भारत, पंजाब से सिंधु तक फैला हुआ था। उनका अस्तित्व वहां सिकन्दर के समय (४०० ई० पूर्व) तक बना रहा। ये 'कठ परिशिष्ट', 'कठ ब्राह्मण', 'कठ संहिता', 'कठवल्युपनिषद' और 'कंठसूत्र' आदि अनेक ग्रंथों के रचयिता थे।

कणवक—यदु पुत्र क्रोष्टु के वंशज शूर के पुत्र का नाम।

कणाद—प्रसिद्ध प्राचीन आर्य ऋषि। इन्होंने षड् दर्शन के अंतर्गत एक दर्शन बनाया है जिसका नाम वैशेषिक दर्शन है। बहुतों का विश्वास है कि वैशेषिक दर्शन सांख्य दर्शन से पहले का बना हुआ है। इसका असली नाम उलूक था। इन्होंने तण्डुल-कणों का आहार करके देवता की आराधना की थी और उसी आराधना के फल से इन्होंने वैशेषिक दर्शन बनाया था। तण्लडु-कणों का आहार करके आराधना करने के कारण इनका नाम कणाद पड़ा था। इनको 'कणभुज', 'कणभक्ष' भी कहते हैं। दर्शन में परमाणु-वाद का प्रचार इन्होंने किया है।

कणिकमुनि—एक महर्षि का नाम। ये राजनीति के बड़े विज्ञाता थे और अध्यात्मशास्त्र के भी पंडित थे। पाण्डवों का उत्कर्ष देखकर, धृतराष्ट्र को बड़ी चिंता हुई। उन्होंने इन्हीं कणिक मुनि को बुलाकर उपदेश ग्रहण किया था। (महाभारत, आ० प०)

कण्डु—ऋषिविशेष। ये कण्ड मुनि के पुत्र थे। एक समय इनकी कठोर तपस्या से भीत होकर देवराज इन्द्र ने प्रम्लोचा नाम की अप्सरा को मुनि की तपस्या में विघ्न डालने के लिए भेजा। प्रम्लोचा के रूप पर मुग्ध होकर मुनि ने बहुत दिन उसके साथ बिताए। एक दिन इनको अकस्मात् अपनी अधोगति का ज्ञान हुआ, उस वेश्या को छोड़कर ये पुरुषोत्तम क्षेत्र गए, और वहां जाकर इन्होंने मुक्ति पाई। (विष्णुपुराण)

कण्व—(१) रौद्राश्ववंशी अजमीढ़ के पुत्र का नाम।

(२) तपःप्रभाव-संपन्न प्राचीन ऋषि। ये अप्सरा मेनका की छोटी कन्या शकुंतला के पालक पिता थे, इनका आश्रम मालिनी नदी के तीर पर था। एक समय देवराज इंद्र ने महर्षि विश्वामित्र की कठोर तपस्या से डरकर मेनका को ऋषि की तपस्या में विघ्न डालने को भेजा था। मेनका ने अपना काम किया और एक कन्या उत्पन्न करके मालिनी नदी के तीर पर उस कन्या को रख कर, स्वर्ग को चली गई। उसी समय महर्षि कण्व स्नान करने के लिए मालिनी के तीर पर गए थे। वे वहां से उस कन्या को आश्रम में उठा लाए और उसका लालन-पालन किया। इस कन्या की शकुंत-पक्षियों ने रक्षा की थी, इस कारण इसका नाम शकुंतला रखा गया था। (महाभारत)

कण्वाश्रम—रुहेलखंड का वह स्थान जहां आजकल बिज-नौर की बस्ती है।

कति—महर्षि विश्वामित्र के पुत्र का नाम। ये महर्षि विश्वामित्र के औरस और शालावती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इन्हीं से कात्यायन वंश चला है।

कदम्ब—एक वृक्ष का नाम, जो मंदर पर्वत पर है।

कद्रू—दक्षप्रजापति की कन्या और महर्षि कश्यप की स्त्री। ये नागमाता कही जाती हैं, क्योंकि इनके गर्भ से हजार नाग उत्पन्न हुए हैं। (महाभारत)

कनक—यदुवंशी राजा। हैहयवंशी दुर्दम के पुत्र थे, इनके चार पुत्र थे—कृतवीर्य, कृतौजा, कृतवर्मा और कृताग्नि।

कनकध्वज—धृतराष्ट्र का पुत्र, जिसका वध भीम ने किया था। (महाभारत)

कनकसेन—मेवाड़ में सिसोदियों का अधिकार प्रतिष्ठित करने वाले पहला राजा। ये भारत के उत्तर प्रांत लोहकोट से ई० १४४ में सौराष्ट्र प्रांत में आए थे। उस समय सौराष्ट्र देश में पंवारवंशियों का राज्य था। कनकसेन युद्ध द्वारा उस राजा को हराकर स्वयं सौराष्ट्र के राजासन पर बैठे। इन्होंने अपने नाम से वीरनगर नामक एक नगर भी बसाया है। (टाड्स राजस्थान)

कनखल—(१) हरिद्वार से दो मील पूर्व के एक ग्राम का नाम।

(२) एक गांव का नाम जिसका उल्लेख लिङ्ग-पुराण में किया गया है। इसी स्थान पर दक्ष ने यज्ञ किया था।

कनिष्क—शकजातीय प्रसिद्ध राजा। राजा कनिष्क ७८ ई० में पुरुषपुर (पेशावर) की गद्दी पर बैठे थे। इनके सिंहासनारोहण के समय से शक नामक संवत्सर का प्रचार हुआ था। उस समय भारत में शक जाति का इतना दबदबा था कि उनका चलाया संवत् आज भी चल रहा है। राजा कनिष्क बौद्ध धर्म के प्रधान प्रचा-

रक थे। इन्होंने भारत तथा अन्यान्य देशों में भी धर्मप्रचारक भेजकर बौद्ध धर्म का प्रचार करवाया था। कनिष्क के राज्यकाल के विषय में ऐतिहासिकों में परस्पर खूब मतभेद है। कनिष्क के पश्चात् हविष्क या हुष्क राजा हुए थे। (भारतवर्षीय इतिहास)

कनिष्ठ—देवताओं का गण विशेष, जो चौदहवें मन्वंतर में वर्तमान था।

कनौज—प्राजीन राज्य। त्रेतायुग से इस राज्य का पता चलता है। कान्यकुब्ज, कान्यकुब्ज, कन्याकुब्ज, गाधिपुर, कौश, कुशस्थल, आदि नाम पुराणों में देखे जाते हैं। रामायण में लिखा है, कुश के पुत्र कुशनाभ ने इस नगर को बसाया था, उस समय इनका नाम महोदय था। कुशनाभ के नामानुसार महोदय को कौश, कुशनाभ या कुशस्थल भी कहते थे। अंत में इस नगरी का नाम कान्यकुब्ज हुआ। कुशनाभ की मृत्यु के अनंतर इस नगर के राजा गाधि हुए। उन्होंने इसका नाम गाधिपुर रखा। इसके कान्यकब्ज नाम के संबंध में रामायण में लिखा है, वहां महर्षि वशिष्ठ रामचन्द्र से कहते हैं कि धर्मात्मा राजर्षि कुशनाभ ने धृताची वेश्या के गर्भ से एक सौ सुंदरी कन्याएं उत्पन्न की थीं। एक समय वे कन्याएं वर्षा ऋतु में प्रमोदवन में आमोद-प्रमोद करती थीं। उन कन्याओं को देख वायु ने उनसे विवाह करना चाहा, उसने कहा, "तुम लोग मनुष्यत्व छोड़कर मेरी भार्या हो जाओ। तुम लोग देवता होकर अक्षीण यौवन प्राप्त करोगी।" कन्याओं ने वायु को उत्तर दिया, देव "श्रेष्ठ, आपका प्रभाव हम सब लोग जानते हैं। आप सभी के भीतर विराजमान हैं, और सबके अंतर की बातें जानते हैं। तब आप क्यों हम लोगों को अपमानित करते हैं। हम लोग स्वाधीन नही हैं, पिता कुशनाभ हमारे देवता हैं, वे जिनको देंगे वही हमारा पति होगा। यह सुनकर वायु को बड़ा क्रोध उपजा। उन्होंने उन कन्याओं को कुब्जा बना दिया। वे दुःखिनी होकर घर लौट आईं। कन्याओं से उनके कुब्जा होने की सब बातें राजा ने सुनीं। राजा सोचने लगे कि अब इनका विवाह कर देना चाहिए। अंत में काम्पिल्य नगर के राजा ब्रह्मदत्त को राजा ने सौ कन्याएं ब्याह दीं। ब्याह होने पर वे कन्याएं पहले जैसी सुंदरी हो गईं। इसी कारण उस नगर का भी नाम कान्यकुब्ज हो गया था, जिसे अब कनौज कहते हैं।

कान्यकुब्ज प्रतिष्ठाता कुशनाभ किस वंश के तथा किसके पुत्र थे रामायण में इसका कुछ भी पता नहीं है। रामायण में रामचंद्रात्मज कुश के पुत्र का कुशनाभ नाम नहीं मिलता। रामायण तथा अन्यान्य पुराणों में भी सूर्यवंशी कुश के पुत्र का नाम अतिथि लिखा है। चंद्रवंशी राजा पुरूरवा के वंश में दशम पुरुष कुश नामक एक राजा थे, इनके चार पुत्रों में से एक का नाम कुशनाभ था। संभव है कि ये ही कुशपुत्र कुशनाभ कन्नौजप्रतिष्ठाता हैं। परंतु पुराणों में इनके पुत्र का कहीं पता नहीं चलता। गाधि कुशिक के पुत्र थे, कुशनाभ के नहीं, परंतु यह संभव हो सकता है कि कुशनाभ ने अपने भाई कुशिक के पुत्र गाधि को दत्तक ग्रहण किया हो, जिसका उल्लेख पुराणों में केवल पुत्र ही कह के किया गया हो। चंद्रवंशियों के बाद गुप्तवंशियों का यहां राज्य रहा।

(भारतवर्षीय इतिहास)

कन्दर्प—कामदेव का नामांतर। ये देवताओं के अनुरोध से महादेव का ध्यान भंग करने के लिए गए थे। महादेव ने इनको अपनी नेत्राग्नि से भस्म कर दिया। महादेव की नेत्राग्नि में जलने पर इनका नाम अनङ्ग हुआ। दूसरे जन्म में इनकी प्रद्युम्न नाम से प्रसिद्धि हुई। श्रीकृष्ण के औरस और रुक्मिणी के गर्भ से प्रद्युम्न उत्पन्न हुए थे। जन्म के सातवें दिन शम्बर दैत्य इनको हर ले गया। वह श्रीकृष्ण का प्रबल शत्रु था। शम्बर की स्त्री मायावती निःसंतान थी अतएव उसी को संतुष्ट करने के लिए शम्बर ने श्रीकृष्णपुत्र प्रद्युम्न को हर लिया था। कन्दर्प की स्त्री रति ही का जन्मांतर में मायावती नाम पड़ा था। प्रद्युम्न को देखकर मायावती को अपने पूर्वजन्म की बातें स्मरण हो आईं। उन्होंने स्वामी का पुत्ररूप से पालन करना अनुचित समझकर अपनी दासी के ऊपर प्रद्युम्न के लालन-पालन का भार डाल दिया। प्रद्युम्न के वयस्क होने पर मायावती ने उनके पूर्वजन्म की बातें उन्हें स्मरण कराईं, और शम्बर को मारने के लिए प्रोत्साहित किया। मायावती की सम्मति से प्रद्युम्न ने युद्ध में शंबर का वध किया, और मायावती को साथ लेकर रुक्मिणी के यहां उपस्थित हुए। (हरिवंश)

कन्दली—महामुनि और्व की कन्या। ये जानु से उत्पन्न हुई थीं। प्रसिद्ध क्रोधी महर्षि दुर्वासा के साथ इनका परिणय हुआ था। महर्षि दुर्वासा ब्रह्मा के पौत्र और अत्रिमुनि के पुत्र थे। महर्षि दुर्वासा शङ्कर के अंश से उत्पन्न हुए थे। कन्दली असामान्य रूपवती थीं।

परंतु इनमें कलहप्रियत्व एक बड़ा भारी दोष था। एक समय महर्षि दुर्वासा तिलोत्तमा और बलिराज पुत्र साहसिक का प्रेमालाप देखकर कामवश होकर उदासीन बैठे थे। उसी समय और्वपति प्राथिनी कन्या को साथ लिये वहां पहुंचे और कन्या का अभिप्राय उनसे कह सुनाया। दुर्वासा ने विधिपूर्वक कन्दली से ब्याह किया। और्व ने दुर्वासा से कहा कि तुम इसके एक सौ अपराध क्षमा करना, दुर्वासा ने इसे स्वीकार किया। कलहप्रिया स्त्री के साथ पति का विवाद प्रारंभ हुआ। पत्नी के सौ से भी अधिक कटु वाक्य दुर्वासा ने सहे। अंत में दुर्वासा ने उसे शाप दिया, "तुम जल जाओ।" उस समय विष्णु भगवान् ब्राह्मण का रूप धरकर वहां उपस्थित हुए और उन्होंने दुर्वासा को तपस्या करने की सम्मति दी। कन्दली दग्ध हो गई, पुन: जन्मांतर में वह दूसरे की स्त्री नहीं हुई। कहते हैं कि उसका दूसरा जन्म कन्दली वृक्ष के रूप में हुआ था। कन्या की विपत्ति का हाल ध्यान से जानकर महर्षि और्व दुर्वासा के समीप गए, और उन्होंने दुर्वासा को शाप दिया। तुमने सामान्य अपराध से मेरी कन्या को भस्म कर डाला अतएव इस अपराध से तुमको पराभव प्राप्त करना पड़ेगा। और्व के शाप से दुर्वासा को अम्बरीष के यहां पराभव प्राप्त करना पड़ा। (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

कन्यकागुण—एक जंगली जाति, पुराणों में इस जाति का उल्लेख पाया जाता है।

कन्यातीर्थ—ट्रावनकोर राज्य के अंतर्गत कन्याकुमारी नामक प्रसिद्ध स्थान।

कपालभरण—शुचि नामक ब्राह्मण द्वारा त्रिवक्रमन्या सुशीला से उत्पन्न पुत्र, जिसका वध इंद्र ने किया था। उसके बाद उसका पुत्र दुर्मेधस गद्दी पर बैठा।

कपालमोचन—ताम्रलिप्त का दूसरा नाम। ताम्रलिप्त एक पवित्र तीर्थ है, पुराणों में इसके 'कपालमोचन' नाम पड़ने का कारण यह लिखा है : "दक्ष के नाश करने से महादेव को ब्रह्महत्या का पाप लगा। दक्ष का कपाल महादेव के हाथ में सट गया था, वह किसी प्रकार छूटता ही नहीं था। दूसरा उपाय न देखकर महादेव देवों की शरण गए। उनकी सहायता से तीर्थ-भ्रमण करते फिरे, परंतु दक्ष का मस्तक उनके हाथ से नहीं छूटा; तब शिव हिमालय पर कठोर तपस्या करने लगे, तपस्या से संतुष्ट होकर विष्णु उपस्थित हुए, और उन्होंने ताम्रलिप्त में जाने के लिए कहा। महादेव ताम्रलिप्त में गए, और वहां वर्गभीमा और विष्णु नारायण के मध्यवर्ती जलाशय में महादेव ने स्नान किया। वहां दक्ष का कपाल शिव के हाथ से छूट गया" इसी कारण ताम्रलिप्त का नाम कपालमोचन पड़ा।

कपालिका—देवी विशेष। आनन्दगिरिकृत 'शङ्करदिग्विजय' में लिखा है कि इसके सर्वांग शरीर में भस्म लगा हुआ है, कंठ में रुद्राक्ष माला और कटिदेश में बाघाम्बर लिपटा हुआ है। बाल खुले हैं, बायें हाथ में खोपड़ी का खप्पर और दाहिने में घंटा है जिसे बजाकर ये चिल्लाती हैं—'हो शम्भु, हो शङ्कर!'

कपाली—'विष्णुपुराण' के अनुसार एकादश रुद्रों में से एक का नाम।

कपि—एक राजा। ये राजा उरुक्षय के पुत्र थे और बाद में ब्राह्मण हो गए।

कपिल—विख्यात सिद्धर्षि। ये कर्दम प्रजापति के औरस और देवहूति के गर्भ से उत्पन्न हुए थे, ये भगवान् का पांचवां अवतार माने जाते हैं। सांख्य दर्शन में प्रधानत: ज्ञान का वर्णन किया गया है अतएव इस दर्शन में ईश्वर का कुछ विशेष उल्लेख नहीं पाया जाता। इस कारण कुछ लोग सांख्य दर्शन को निरीश्वर दर्शन कहते हैं। इस दर्शन के मत से वस्तु-मात्र ही सत् है। त्रिविध दु:खों को निवृत्त करना ही इस दर्शन का उद्देश्य है। सांख्य के मत से आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक भेद से दु:ख तीन प्रकार के हैं। इनकी अत्यंत निवृत्ति करने के लिए सांख्य ज्ञान का उपदेश देता है। सांख्य मत से दु:खों की दो अवस्थाएं होती हैं—एक स्थूल और दूसरी सूक्ष्म। मनुष्य-चेष्टा से जिन दु:खों का प्रतीकार किया जा सके उसे स्थूल दु:ख कहते हैं। यथा—क्षुधा रोग आदि की निवृत्ति आहार और औषध सेवन से हो जाती है। परंतु इन लौकिक उपायों से जो दु:खनिवृत्ति होती है उसे आत्यंतिक दु:खनिवृत्ति नहीं कह सकते क्योंकि इन दु:खों के पुन: उत्पन्न होने की संभावना है। अतएव यह मानना पड़ेगा कि लौकिक उपायों से आत्यंतिक दु:खनिवृत्ति नहीं हो सकती। वैदिक यज्ञ आदि से स्वर्ग की प्राप्ति अवश्य होती है इसमें संदेह नहीं परंतु वह सुख अचिरस्थायी और कर्मानुसारी है। याज्ञिकों का जीवहिंसा आदि का परिणाम कभी सुखमय नहीं हो सकता। मानसिक दु:ख को सूक्ष्म दु:ख कहते हैं इसकी निवृत्ति लौकिक उपायों से किसी प्रकार हो ही

नहीं सकती, इसका उपाय सांख्य दर्शन बतलाता है। इस दुःख से छुटकारा पाने के लिए एकमात्र उपाय विवेकलाभ ही है। यही सांख्य दर्शन का मत है।

महर्षि कपिल के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् में महर्षि कपिल को ब्रह्मा का मानस पुत्र लिखा है। श्रीमद्भगवद्गीता से एक कपिल नामक सिद्धर्षि का पता चलता है—'सिद्धानां कपिलो मुनिः'। रामायण में लिखा है कि महर्षि कपिल के शाप से सगर राजा के साठ हजार पुत्र जल गए। महाभारत में कपिल का धर्मतत्त्व-विवरण-संबंधी एक उपाख्यान ही वर्तमान है। शिवसंहिता में योगिश्रेष्ठ कपिल का वर्णन है। बौद्ध ग्रंथों में लिखा है—'इक्ष्वाकुवंशीय राजा विराधक ने अपनी दूसरी रानी के कहने से पहली रानी के चार लड़कों को राज्य से निकाल दिया था। वे कुमार पांच सगी बहिनों को साथ ले कर कपिल मुनि के आश्रम में गए। वही कपिल मुनि बाद में गौतम बुद्ध हुए थे और इन्हीं के नामानुसार बुद्धदेव की जन्मभूमि का कपिलवस्तु नाम पड़ा था। इनके अतिरिक्त वितथ पुत्र कपिल और वसुदेव पुत्र कपिल आदि का भी परिचय मिलता है। भागवत के मत से सांख्य दर्शन-प्रणेता कपिल के पिता का नाम कर्दम और माता का नाम देवहूति था।

(भारतवर्षीय इतिहास)

कपिलवस्तु—एक नगर का नाम, जहां गौतम बुद्ध ने जन्म ग्रहण किया था। बौद्ध युग से पहले कपिलवस्तु का कुछ भी परिचय नहीं मिलता। प्रायः बुद्धदेव के सिद्धि प्राप्त करने के समय से इस नगर की प्रसिद्धि हुई है अनेकों का ऐसा ही विश्वास है। तो भी इसका इतना परिचय तो अवश्य मिलता है कि पहले यह नगर शाक्यवंशीय राजाओं के अधिकार में था। शाक्यरामचन्द्र के पुत्र कुश के वंशधर हैं। बौद्ध ग्रंथों के पाठ से जाना जाता है कि शाक्यसिंह बौद्ध के समय में कपिलवस्तु में असंख्य लोग वास करते थे। अच्छे-अच्छे मकान, बगीचों, बाजारों आदि से नगर सुशोभित था। यह नगर सुंदरता और संपदा की खान था। चीन परिव्राजक फाहियान और हुएनत्सङ्ग ने जब इस नगर को देखा था उस समय भी इस नगर की सुंदरता बिलकुल नष्ट नहीं हुई थी। हुएनत्सङ्ग ने इस नगर की परिधि ६६७ मील बतलाई है। गङ्गा और गण्डक का मध्यवर्ती समस्त देश उस समय कपिल के अंतर्गत समझा जाता था। कहा जाता है कि सूर्यवंशी गौतम के किसी वंशधर ने रोहिणी नदी के तीर पर कपिलवस्तु नामक नगर बसाया था। गौतम सूर्यवंश की किस शाखा के हैं इसका पता लगाना इस समय कठिन हो गया है। पुरातत्त्वान्वेषी कहते हैं कि इस समय जो स्थान नगर नाम से पुकारा जाता है वही पहले कपिलवस्तु था। हुएनत्सङ्ग श्रावस्ती से कपिलवस्तु में आया था, उसने लिखा है कि श्रावस्ती से कपिलवस्तु ८३ मील की दूरी पर है। फाहियान के वर्णन से इसमें कुछ अंतर पड़ता है। इन्होंने कपिलवस्तु को श्रावस्ती से १३ योजन की दूरी पर बताया है। चीन के परिव्राजकों के इन वर्णनों से कपिलवस्तु और क्रकूचण्डा के जन्मस्थान के अंतर के विषय में एक विलक्षण असामंजस्य घटता है। हुएनत्सङ्ग पहले कपिल का दर्शन कर क्रकुचण्डा का जन्मस्थान देखने गया था। इन दोनों में एक मील का व्यवधान था। क्रकुचण्डा का जन्मस्थान ककूया नाम से प्रसिद्ध है। नगर नामक स्थान से वह ९ मील है। पंडितों का कहना है कि ककूया और कपिलवस्तु दोनों एक ही हैं। नगर नामक स्थान चण्डताल नदी के पूर्वी किनारे बसा हुआ है और इस नगर के दूसरी ओर राप्ती नदी की एक शाखा बहती है। पश्चिम की ओर सिद्ध नामक नदी वहां एक भील में गिरती है। कहते हैं, इसी नदी के तीर पर कपिलमुनि का सिद्धाश्रम था इसी कारण इस नदी का नाम भी सिद्ध पड़ा है। कनिंघम कहते हैं कि हो सकता है रोहिणी नदी वही राप्ती की शाखा हो, जिसे कोहाना भी कहते हैं। इस समय नगर के छः मील पूर्व यह नदी बहती है। (भारतवर्षीय इतिहास)

कपिला—दक्षप्रजापति की कन्या का नाम।

कपिलाश्व – सूर्यवंशी कुवलयाश्व के तीन पुत्रों में एक का नाम। ये सबसे छोटे थे। इन्हीं कपिलाश्व के पिता कुवलयाश्व का दूसरा नाम धुंधुमार भी था।

कपिशा—एक नदी का नाम। इसी नदी के तीर पर प्राचीन गंधर्वराज्य स्थित था। कहा जाता है कि मध्ययुग का गांधार और इस समय का कंधार ही पुराना गंधर्व राज्य है। (भारतवर्षीय इतिहास)

कपिष्ठल—कृष्ण यजुर्वेद की कपिष्ठल शाखा का प्रवर्तक ऋषि, जिन्होंने 'कपिष्ठल संहिता, का निर्माण किया था।

कपोतरोमा—(१) अंधकवंशी विलोम के पुत्र का नाम। (२) शिव के पुत्र का नाम।

कबन्ध—राक्षस विशेष। यह राक्षस ऋषियों को पीड़ित

किया करता था। स्थूलशिरा नामक एक ऋषि ने शाप देकर इसे कुत्सित राक्षस बना दिया, परंतु जब इसने अनुनय किया तब प्रसन्न होकर महर्षि ने कहा कि श्री रामचंद्र जी के द्वारा तुम्हारी बांहें काटी जाने पर तुम मुक्त हो जाओगे। यह काश्यप-पत्नी दनु के गर्भ से उत्पन्न हुआ था और ब्रह्मा ने इसे दीर्घायु होने का वर दिया था। ब्रह्मा के वर से गर्वित होकर यह सदा इंद्र का अपमान किया करता था, इस कारण इंद्र ने वज्राघात से इसके उरु, मुख और मस्तक तोड़ दिए। राक्षस बोला, ब्रह्मा के बल से मैं दीर्घायु हुआ हूं परंतु इस समय आपके वज्राघात से भग्नशिर और भग्नमुख होकर किस प्रकार जी सकता हूं ! ब्रह्मा के वचन को तो व्यर्थ नहीं होना चाहिए। तब देवराज इंद्र ने इसकी दोनों भुजाओं को योजन परिमित दीर्घ बना दिया और इसके पेट के भीतर तीक्ष्ण दांतयुक्त मुंह बना दिया। तब से यह दंडकारण्य में रहने लगा और सिंह-व्याघ्र आदि को हाथों से पकड़कर खाने लगा। जिस समय रामचंद्र दंडकारण्य में आए, उस समय उनके द्वारा छिन्नबाहु होकर कबंध शापमुक्त हुआ था। (रामायण, अरण्यकांड)

कबीर—ये कबीरपंथी संप्रदाय के प्रवर्तक थे। काशी के समीप किसी छोटे-से ग्राम में कबीरदास का जन्म पंद्रहवीं शताब्दी में हुआ था। इनके जन्म के विषय में यह प्रवाद प्रचलित है कि एक धार्मिक विधवा ब्राह्मण बालिका किसी साधु की परिचर्या किया करती थी। साधु ने प्रसन्न होकर ब्राह्मणी को आशीर्वाद दिया कि "तुम पुत्रवती हो !" आशीर्वाद सुनकर ब्राह्मणी डरी और बोली, "महात्मन्, यदि मेरे अब पुत्र हुआ तो समाज में मेरी निंदा होगी।" साधु बोला, "जो बात मैं कह चुका हूं अन्यथा नहीं हो सकती परंतु समाज में तुम निष्कलंक समझी जाओगी और लोग तुममें श्रद्धा करेंगे।" यथासमय उस ब्राह्मणी के एक पुत्र हुआ, लोक-लाज से डरकर उस ब्राह्मणी ने सद्योजात पुत्र को एक तालाब के किनारे रख दिया। प्रातःकाल ईलू नामक एक मुसलमान जुलाहा आया, उसने उस लड़के को उठा लिया। उसके कोई संतान नहीं थी। अतएव वह अत्यंत प्रेम से उसका पालन-पोषण करने लगा।

कबीर ने अपने बड़े-बूढ़ों के साथ स्वजातीय व्यवसाय की बड़ी उन्नति की। कबीर के पुत्र का नाम कमाल था, यह कबीर का औरसजात पुत्र नहीं था। इसके विषय में एक जनश्रुति प्रचलित है। कहते हैं, वह एक दिन काशी में गंगा किनारे होकर जा रहे थे। इतने में उन्हें शृगालों का चीत्कार सुनाई पड़ा। कबीर ने शृगालों की बातें समझ लीं। शृगाल कह रहे थे, "गंगा में बहता हुआ यह मुर्दा यदि किनारे आ लगे तो हम लोग इसके मांस से तृप्त होंगे।" कबीर ने शृगालों का अभिप्राय जानकर मुर्दे को किनारे लगा दिया। मुर्दे को किनारे पर लगाते ही मछलियों ने कहा, "हमारे मुख का ग्रास छीनना क्या अन्याय नहीं है ?" इस झगड़े को देख कबीर ने उस मुर्दे को जीवित कर देने का निश्चय किया। कबीर ने मुर्दे को जिलाया और उसका नाम कमाल रखकर उसे पुत्रवत् मानने लगे।

कबीर के मन में बहुत ही छोटी अवस्था में धर्म और भक्ति-भाव उत्पन्न हो गया था। व्यवसाय द्वारा जो वे कमाते उसमें से घर का खर्च चलाने के बाद जो बचता उसे वे दीन-दुखियों में बांट दिया करते थे। उस समय रामानंद स्वामी विद्यमान थे। कबीर इनके पास दीक्षा लेने को गए परंतु उन्होंने सुना कि रामानंद ब्राह्मण के अलावा किसीको दीक्षा नहीं देते, तब वे अत्यंत हतोत्साह हुए। उन्होंने सोचा कि बिना कौशल रचे इनसे काम निकालना कठिन है। यह सोचकर कबीर गंगा के किनारे मुर्दा बनकर पड़ गए। स्वामी रामानंद भी उसी घाट पर स्नान करने जाया करते थे। दैवयोग से उस दिन बदली भी थी और अंधेरा छाया हुआ था। पास की वस्तु भी दिखलाई नहीं पड़ती थी। यथासमय रामानंद स्वामी जब स्नान करके लौटने लगे तब उनका पैर कबीर पर पड़ा। मुर्दा समझकर रामानंद स्वामी कहने लगे—'राम कह, राम कह।' कबीर ने इस प्रकार मूल मंत्र की दीक्षा पाई और सिर मुंडाकर तिलक-माला धारण की और 'कबीरदास' हो गए। इसपर उनकी माता ने उस समय के दिल्ली के बादशाह सिकंदर लोदी के दरबार में फरियाद की। परंतु कबीर के धर्मभाव और युक्तियुक्त वचन से परास्त होकर बादशाह ने कबीर को छोड़ दिया। ये सन् १४०० ई० में वर्तमान थे। कहा जाता है कि ये तीन सौ वर्ष तक जीते रहे। इनके बनाए ग्रंथ हैं—१. सुखनिधान, २. गोरखनाथ की गोष्ठी, ३. कबीरपांजी, ४. बलख की रमायनी, ५. रामानंद की गोष्ठी, ६. आनंदरामसागर, ७. शब्दावली, ८. मंगल,

९. वसंत, १०. होली, ११. रेखता, १२. झूलना, १३. बसरा, १४. हिंडोला, १५. बारहमासा, १६. चांचर, १७. चौंतीस, १८. अलिफनामा, १९. रमाइनी, २०. साखी, २१. बीजक। इनके अतिरिक्त 'अगमवाणी' नामक एक और भी पुस्तक है। (आदर्श महात्मागण)

कबीरपंथी—कबीर का चलाया धर्मसंप्रदाय। रामानंद के शिष्यों में कबीरदास प्रधान थे। इन्होंने जो धर्मपंथ चलाया है उसका नाम कबीरपंथी है। कबीरपंथी संप्रदाय में अन्य देवताओं से विष्णु को प्रधान आसन दिया जाता है। रामानंदी वैष्णवों से इनके आचार-व्यवहार में बहुत ही अंतर है तथापि रामानंदी वैष्णवों के साथ इनकी सहानुभूति रहती है। इनमें देव-देवी की पूजा निषिद्ध है। इनमें न तो पूजा करने का मंत्र ही माना जाता है और न प्रणाम करने की रीति। यह पंथ अदृश्य कबीर की पूजा करता है। कीर्तन ही इनकी उपासना है। गृहस्थ कबीरपंथी देवी-देवताओं की पूजा करते हैं परंतु संन्यासी पूजा से बरी कर दिए जाते हैं। कबीर के मुख्य १२ शिष्य इस संप्रदाय के प्रचारक समझे जाते हैं। कबीरपंथी संप्रदाय की अनेक शाखाएं हैं। इनके टेसकबिरी, दानकबिरी, मंगल-कबिरी आदि नाम हैं।

करतोया—यह उस नदी का नाम है जो बंगाल के रंगपुर दीनाजपुर आदि नगरों में होकर बहती है और किसी समय बंगाल और कामरूप देश की सीमा समझी जाती थी।

करीषकाः (कारुष)—महाभारत में यहां के राजा का नाम दंतवक्र बतलाया गया है। बिहार प्रांत के अंतर्गत शाहाबाद जिले का पूर्वीय भाग।

कर्णाटकाः—दक्षिण भारत का एक प्रदेश, जो बंबई और मद्रास के मध्य में है।

कलिङ्गाः—पहले यह नाम आंध्रप्रदेश का था। यहां के श्रुतायु, शक्रदेव, सत्यदेव, सत्यकेतुमान आदि को भीमसेन ने मारा था। यह उस प्रदेश का नाम है, जो उड़ीसा की वैतरणी नदी के दक्षिण तट पर और कृष्णा नदी के उत्तरी तट पर राजमहंद्री विजगापट्टन और गंजाम जिले तक चला गया है। उस समय इसकी राजधानी का नाम राजपुर था और यहां का राजा चिन्नाङ्गद दुर्योधन का ससुर था।

कल्याणवर्मा—ये एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। इनका बनाया 'सारावली' नामक ज्योतिष का एक ग्रंथ है जिससे विदित होता है कि ये वराह मिहिर के बाद उत्पन्न हुए थे। ये देवग्राम निवासी बघेल क्षत्रिय थे। ब्रह्मगुप्त के ग्रंथ में इनका नाम मिलने से ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये उनके समकालीन या कुछ पूर्व-कालीन थे। पं० सुधाकर द्विवेदी सन् ५७८ ई० इनका समय मानते हैं।

कल्याणी—महाराष्ट्र देश की राजधानी। चालुक्य-वंशियों की यह प्राचीन राजधानी है। इस नगरी के पश्चिम किनारे में कैलास नामक नदी बहती है।

कल्हण—ये कश्मीर-निवासी थे और जयसिंह के समय में जीवित थे। इन्होंने कश्मीर का इतिहास संस्कृत में लिखा है जिसका नाम 'राजतरंगिणी' है। उसमें एक स्थान पर कल्हण ने लिखा है :

लौकिकेऽब्दे चतुर्विंशे शककालस्य साम्प्रतम्।
सप्तत्यधिकं यातं सहस्रं परिवत्सरा॥

इससे इनका समय स्पष्ट ही विदित होता है। बहुत लोग कहते हैं कि भारतवर्ष में शृंखलाबद्ध प्राचीन इतिहास यदि कोई विश्वास-योग्य है तो वह कल्हण-रचित 'राजतरंगिणी' ही है।

कवश—प्राचीन ऋषि। इन्होंने वेदों के कई सूक्तों की रचना की है। कहते हैं, ये शूद्र थे।

कवि—(१) चाक्षुष मनु के एक पुत्र का नाम।

(२) भागवत के अनुसार प्रियव्रत के एक लड़के का नाम।

(३) ऊरुक्षय नामक एक क्षत्रियपुत्र का नाम, जो बाद में ब्राह्मण हो गया था।

(४) शुक्राचार्य का नाम।

कवि 'केशरी'—इनके ठीक नाम-धाम का कुछ पता नहीं है। ये 'केशरी' उपाधि से प्रसिद्ध हैं। इन्होंने तोटक छंद में 'हरिकेलिकलावती' शीर्षक कृष्णलीला-विषयक एक ग्रंथ बनाया है। यह ग्रंथ छपा है।

कवि चन्द्र—द्वितीय कवि कर्णपूर के पुत्र का नाम। इन्होंने रत्नावली नामक एक वैद्यक ग्रंथ की रचना की थी। इसके अतिरिक्त 'रामचंद्र चंपू' नामक एक और भी ग्रंथ इनका बनाया है।

कवि कर्णपूर—(१) इनका नाम परमानंद दास था। चैतन्य महाप्रभु इनको पुरीदास कहते थे। ये शिवानंद सेन के पुत्र थे और १४४६ शक में इनका जन्म हुआ था। नदिया जिले के कचड़ा पाड़ा नामक गांव में अभी भी इनके वंशज विद्यमान हैं। अपनी कवित्व-शक्ति से इन्होंने 'कवि कर्णपूर' की उपाधि पाई थी। इनके

बनाए ये ग्रंथ पाए जाते हैं—'आर्यशतक', 'चैतन्य-चरितामृत', 'चैतन्यचंद्रोदय नाटक', 'आनंद वृंदावन-चंपू', 'कृष्णलीलोद्देश दीपिका', 'गौरगणोद्देशदीपिका', और 'अलंकारकौस्तुभ'।

(२) वैद्यविशारद विद्याविनोद दत्त के ये पुत्र थे। १५०० शक में ये वर्तमान थे।

कविरथ—'भागवत' में इसे चित्ररथ का पुत्र बताया गया है। विभिन्न पुराणों में इसके शुचिद्रव, शुचिद्रथ और शुचिरथ आदि नामांतर दिए गए हैं।

कविराज—ये प्रसिद्ध कवि संस्कृत के 'राघव पांडवीय' नामक श्लेषमय काव्य के रचयिता हैं। इनकी गणना सुबंधु और बाणभट्ट के साथ की जाती है। 'राघव पांडवीय' में इन्होंने अपने को जयंतपुर (जो अब असम में है) के राजा कामदेव का सभासद बतलाया है। कामदेव सन् ११८१ ई० में वर्तमान था।

कविराज कवि—हिंदी के एक कवि का नाम। इनका जन्म सन् १८२४ ई० में हुआ था। ये एक साधारण कवि थे। ये कविराज कंपिला के सुखदेव मिश्र से भिन्न हैं। यद्यपि ये भी अपनी कविताओं में कविराज नाम लिखते थे, परंतु यह उनकी उपाधि थी, नाम नहीं।

कविराम—हिंदी के एक कवि का नाम। इनका जन्म सन् १८२४ ई० में हुआ था। इनकी कविता सरस और सरल हुआ करती थी। विशेषत: नीति संबंधी इनकी कविता बड़ी सुंदर, रोचक और उपदेशप्रद होती थी।

कवीन्द्र—ये नरवर बुंदेलखंड के रहने वाले ब्राह्मण थे और सन् १७९७ ई० में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम सखीसुख था और इनके बनाए ग्रंथ का नाम 'रसद्वीप' है।

कव्यवाह—पितरों को समर्पित किए जाने वाले अन्न (कव्य) को पितरों तक पहुंचाने वाले को कव्यवाह (अन्नवाहक) कहा गया। ब्रह्मा की मानसपुत्री सन्ध्या के सौंदर्य पर मोहित होने वाले आदमियों के अंगों से निकले स्वेद-बिन्दुओं से इसकी उत्पत्ति हुई। नारद मुनि को इसने नरक लोक का ज्ञान दिया। (देवी भागवत)

कश—राजा सुहोत्र के पुत्र का नाम। ये सुहोत्र पुरूरवा के पुत्र आयु के वंशज थे। कश काशी के राजा थे।

कश्य—एक राजकुमार का नाम। ये सेनजित् के पुत्र थे।

कश्यप—विख्यात प्रजापति ऋषि। ये ब्रह्मा के पौत्र और मरीचि के मानस-पुत्र थे। किसीके मत से, मरीचि के औरस एवं कला नाम की उनकी स्त्री के गर्भ से इनकी उत्पत्ति मानी जाती है। महर्षि कश्यप की सात स्त्रियां थीं। दिति से दैत्य, अदिति से आदित्य (देवता), विनता से पक्षी, कद्रु से सर्प, सुरभि से गौ महिष आदि, सरमा से कुक्कुर आदि और दनु से दानव उत्पन्न हुए। (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

मार्कण्डेयपुराण और हरिवंश में लिखा है कि कश्यप की १३ स्त्रियां थीं, जिनके नाम ये थे—दिति, अदिति, दनु, विनता, खसा, कद्रू, मुनि, क्रोधा, अरिष्टा, इरा, ताम्रा, इला और प्रधा। आर्ष रामायण के आदिकांड में कश्यप की वंशावली इस प्रकार दी गई है।

कश्यायता—दक्ष की कन्या की संतान, जिसका विवाह एक ऋषि से हुआ था।

कसुचंद्य—ऋग्वेदकालीन एक अति उदार राजा। इसने ब्रह्मातिथि काण्व को सौ ऊंट, दस हजार गायें तथा दस राजा सेवा के लिए दिए थे। इसकी दानप्राप्ति के बाद गृहीता को अन्य दाता की अपेक्षा नहीं रह जाती थी। (ऋग्वेद ८।५।३७-३९)

कसेरु—भारत के नौ वर्षों में से एक वर्ष का नाम।

कहोड—महर्षि उद्दालक के शिष्य का नाम। ये प्रसिद्ध ऋषि अष्टावक्र के पिता थे।

का—दक्षप्रजापति का दूसरा नाम। मूत्रस्थान और मल-स्थान के देवता।

काकभुशुण्डी—विष्णु के अवतार; अपने पूर्वजन्म में ये ब्राह्मण थे; किंतु लोमश मुनि के शापवश काक योनि में जा गिरे। ये राम के परम भक्त थे। कहा जाता है कि एक बार बालक राम के हाथ से ये पुए का टुकड़ा लेकर भाग गए थे। गरुड से इनका विरोध था। एक बार गरुड ने इनका पीछा किया और इनको घायल कर दिया। तब राम ने इनकी रक्षा की थी। इन्होंने रामकथा का प्रवचन किया था, जिसको सुनने के लिए शंकर ने हंस का रूप धारण किया था। (रामचरितमानस)

काकमुख—एक प्राचीन जाति। पहले एक जाति के लोगों को चिढ़ाने के लिए उनका नाम काकमुख लोगों ने रख दिया था।

काकवर्ण—मगध के राजाओं के एक राजा का नाम। इन्होंने ३६ वर्ष तक राज्य किया था। ये शिशुनाग के पुत्र थे।

काकस—प्राचीन जाति का नाम। यह जाति जहां से सिंधु-नद निकला है वहीं सिंधुनद के तट पर रहती थी।

काकुत्स्थ—(देखो ककुत्स्थ)

काञ्चन—पुरूरवा के वंशज भीम के पुत्र का नाम।

काञ्चनप्रभ—अमावसू के पौत्र और भीम के पुत्र का नाम।

कांजीवरम्—भारतीय साहित्य में कांची या कांचीपुर को धर्म, ज्ञान तथा कला का केंद्र कहा गया है। यहां कामाक्षी का विख्यात मंदिर है। कैलासनाथ मंदिर की अर्धनारीश्वर प्रतिमा का भी विशेष महत्त्व है। देव-मंदिरों में विष्णु के मंदिरों की अधिकता है। इन मंदिरों की वास्तुकला की भूरि सराहना की गई है।

काण्डायन—शांखायन के साथ उल्लिखित एक वैयाकरण।

काण्वायन—पुरुकुल से उद्भूत एक ब्राह्मणकुल; अंगिराकुल का एक गोत्रकार।

कात्यायन—(१) विख्यात धर्मशास्त्रकार। ये विश्वामित्र-वंश में उत्पन्न हुए थे। इनके बनाए कात्यायन श्रौत-सूत्र और कात्यायन गृह्यसूत्र का पंडित-समाज में विशेष आदर है। गृह्यसूत्र में ब्राह्मणों के दशविध संस्कार और वास्तु क्रिया आदि का विवरण दिया गया है।

(२) विख्यात स्मृतिशास्त्रकार। ये महर्षि गोभिल के पुत्र थे और इनके बनाए स्मृतिग्रंथ का नाम कर्म-प्रदीप है।

(३) प्रसिद्ध वैयाकरण। इनका दूसरा नाम वररुचि भी था। ये वररुचि राजा विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में के वररुचि से भिन्न थे। कात्यायन वैदिक मुनि हैं और पाणिनि के समकालीन हैं। इनके रचित ग्रंथों के नाम वाजीसूत्र, क्रमप्रदीप, प्राकृत व्याकरण और पाणिनीय व्याकरण पर वार्त्तिक हैं। कथा-सरित्सागर में लिखा है कि कात्यायन बचपन ही से अति अद्भुत बुद्धिमान् थे। वे नाट्यशाला में किसी नाटक का खेल देखते तो उसे अपनी माता के निकट आकर समग्र आद्योपांत कह दे सकते थे और जनेऊ होने के पहले ही व्याडी आदि मुनियों से सुने प्राति-शाख्य को कण्ठाग्र कह जा सकते थे। ये वर्षमुनि के शिष्य थे और वेद-वेदाङ्ग में इतने निपुण थे कि पाणिनि भी इनकी समानता नहीं कर सके। इनसे स्पर्द्धा करके पाणिनि ने महादेव की आराधना की और फिर इन्हें जीता। ये राजा नंद के मंत्री थे। राजा नंद पाटलीपुत्र के राजा चंद्रगुप्त के पिता हैं। चंद्रगुप्त का राज्यकाल सन् ई० के पूर्व चौथी शताब्दी में निश्चित हुआ है। इसके अनुसार खृष्टीय चौथी शताब्दी या उसके भी कुछ पूर्व कात्यायन का समय माना जा सकता है। रमेशचंद्रदत्त कहते हैं कि पाणिनि का समय खृष्टीय सदी से ८०० वर्ष पूर्व है और वे अनुमान करते हैं कि कात्यायन पाणिनि के समकालीन होने के कारण नवीं सदी में रहे होंगे। डा० भांडारकर कात्यायन का समय खृष्टीय सन् से पूर्व चौथी सदी के पूर्वार्द्ध में मानते हैं। कात्यायन का जन्म कौशाम्बी में हुआ था। इनके पिता का नाम सोमदत्त था। वेद की सर्वानुक्रमणी भी इन्हीं कात्यायन मुनि की बनाई हुई है। महाराज नंद के समकालीन और मंत्री मानने से कात्यायन मुनि का समय खृष्ट के पूर्व ३१५ वर्ष से (जब चंद्रगुप्त राज्य पर बैठा था) भी पहले स्थिर होता है।

कात्यायनसंहिता—इस संहिता के उनतीस अध्याय हैं। इसमें पांच सौ से अधिक श्लोक हैं। इसमें कितने ही स्थानों पर गद्य भी लिखे गए हैं। गृह्यसूत्रकार गोभिल ने जिन कर्मों का विवरण दिया है, उन्हीं कर्मों के कठिन भाग का विवरण कात्यायन मुनि ने अपनी संहिता में किया है। श्रद्धा और सदाचार का वर्णन इसमें कई अध्यायों में किया गया है। इस संहिता में गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, धृति, पुष्टि, तुष्टि और आत्मदेवता मातृगण तथा गणेश की पूजा का विधान है। सकल कर्मों में गणेश और मातृकागण की पूजा करने की आज्ञा है। चित्र प्रतिमा और पट की पूजा करने की विधि लिखी है। तर्पण श्राद्ध पिण्ड और अशौच आदि का भी इस संहिता में विधान है। ज्येष्ठ की वर्तमानता में कनिष्ठ का ब्याह किस प्रकार करना चाहिए। कात्यायन नामक अनेक ऋषियों का पता मिलता है। परंतु संहिताकार कात्यायन महर्षि गोभिल के पुत्र थे। (भारतवर्षीय इतिहास)

कात्यायनी—भगवती की मूर्ति-विशेष। महर्षि कात्यायन ने सब से पहले इस मूर्ति की पूजा की थी। इसी कारण इनका नाम कात्यायनी पड़ा। सौ वर्ष के युद्ध के अनंतर महिषासुर ने देवताओं को राज्यभ्रष्ट कर दिया, देवता लोग ब्रह्मा को आगे करके शिव और विष्णु के समीप उपस्थित हुए। हरिहर ब्रह्मा के मुख से देवताओं की विपत्ति का हाल सुन अत्यंत क्रुद्ध हुए। तीनों देवों के मुखमंडल से एक तेज निर्गत हुआ। उस तेज ने एक स्त्री की मूर्ति धारण की। उस भयंकर स्त्री को देवताओं ने अपने-अपने अस्त्र दिए। महिषासुर अपनी सेना और सेनापति के साथ देवी से युद्ध करके मारा गया। यह सिंहवाहिनी कात्यायनी आश्विन कृष्ण चतुर्दशी को उत्पन्न हुई थी और उसी महीने की शुक्ल सप्तमी, अष्टमी और नवमी को

कात्यायन की पूजा लेकर इस देवी ने दशमी को महिषासुर का वध किया था। यह देवीमूर्ति दशभुज है। महिषासुर रम्भासुर का पुत्र था। अपने ही वर के प्रभाव से महादेव तीन बार रम्भासुर के पुत्र-रूप से उत्पन्न हुए थे। तीनों बार भगवती ने मूर्ति धारण कर महिषासुर का नाश किया था। महिषासुर अत्यंत मायावी था। उसने एक समय कात्यायन के एक शिष्य को मनोहर स्त्री मूर्ति धारण करके बिठलाना चाहा था, हिमालयवासी कात्यायन यह जानकर अत्यंत क्रुद्ध हुए और उन्होंने उसे शाप दिया कि तुमने स्त्री का रूप धरकर हमारे शिष्य की तपस्या में विघ्न डालने की चेष्टा की, अतः स्त्री ही के द्वारा तुम्हारी मृत्यु होगी। इसी शाप से महिषासुर भगवती के हाथ से मारा गया। (मार्कण्डेयपुराण)

कादम्बरी—बाणभट्टनिर्मित ग्रंथ-विशेष। इस ग्रंथ की नायिका का नाम कादम्बरी है, जो चित्ररथ नामक गंधर्वराज की कन्या थी।

कान्यकुब्ज—काली नदी या इक्षुमती तथा गंगा के संगम पर यह राज्य बताया जाता है। वर्तमान में कन्नौज एक नगर है। यह राजा गाधि की राजधानी थी। (कनौज भी देखें)

कान्हेरी—गुफा मंदिरों के इतिहास में कान्हेरी का हीनयानी चैत्य मंदिर अपनी प्राचीनता की दृष्टि से उल्लेखनीय है। यह स्थान बम्बई से लगभग २५ मील दूर सालसेट द्वीप में अवस्थित है। एलोरा की भांति यह चैत्य भी ठोस चट्टान को काटकर बनाया गया है। इसका निर्माण आंध्र सातवाहनों (यक्षश्री सातकर्णि के शासनकाल, लगभग दूसरी शती ई० में हुआ। इसकी शिल्पविधा का कार्ले के शिल्प की परंपरा में निर्धारण किया गया है।

कान्हेरी के गुफामंदिर की दीवारों पर उकेरी गई बुद्ध तथा बोधिसत्त्वों की मूर्तियां अपनी भव्यता के कारण दर्शनीय हैं। उसके स्तंभ भी मूर्तियों से अलंकृत हैं। यह महाचैत्य ८६ फुट लंबा, ४० फुट चौड़ा और ५० फुट ऊंचा है। इसपर २४ स्तंभ बने हुए हैं। उसके द्वारों, खिड़कियों और मेहराबों में वास्तुकला की प्राचीन परंपरा पुनरुज्जीवित दिखाई देती है।

कापालिक—शाक्त संप्रदाय की एक शाखा। पुस्तकों के देखने से करारी नामक एक शाक्त संप्रदाय की एक शाखा का पता चलता है। इसी करारी संप्रदाय को अघोरघंट या कापालिक भी कहते हैं। कहते हैं कि सात-आठ सौ वर्ष पूर्व काली, चामुंडा, छिन्नमस्ता आदि देवियों के सामने ये नरबलि दिया करते थे। शंकरदिग्विजय में लिखा है कि कापालिक उच्छिष्ट गणपति या हैडिंब संप्रदाय के अंतर्गत हैं। इस समय कापालिकों का बड़ा अपवाद संसार में फैला है। इसमें संदेह नहीं कि भारत के बुरे दिनों में इस संप्रदाय के भी कतिपय मनुष्य उच्छृंखलता और व्यभिचार दोषग्रस्त हो गए थे, परंतु उनके उद्देश्य आदि को बिना जाने कभी वे बुरे नहीं कहे जा सकते। यद्यपि बलिदान आदि की निंदित प्रथा इस संप्रदाय में इस समय पाई जाती है, जो सचमुच इनके अधःपात की सूचक है; तथापि इनके ग्रंथ देखने से स्पष्ट मालूम होता है कि पार्थिव शरीर का बलिदान करने की आज्ञा इनके ग्रंथों में नहीं है। किंतु काम, क्रोध आदि रिपुओं के बलिदान का ही उपदेश है।

कापिलेय—(१) कुम्भ द्वारा कपिला से उत्पन्न पुत्र (मातृपरक नाम)।

(२) विश्वामित्र का पुत्र। एक बार विश्वामित्र ने शुनःशेप की मृत्यु से रक्षा की थी और इस पुनर्ज्जीवितावस्था में उसे गोद ले लिया था। तदनंतर अजीगर्त अपने पुत्र शुनःशेप को मांगने के लिए विश्वामित्र के पास आया। विश्वामित्र ने उसे देने से इन्कार कर दिया और उसकी गणना अपने पुत्र कापिलेय तथा वाभ्रव में की।

कापेय—कापेयी शाखा से संबद्ध; कपिगोत्र होने के कारण शौनक ऋषि को इस गोत्रनाम से अभिहित किया गया है। (२) एक ऋषि, जिसने राजा चित्ररथ का द्वि-रात्र यज्ञ करके उसे संपन्न बना दिया था।

कापोत—एक मुनि-विशेष; काकुत्थ उर्वशी की कन्या चित्रांगदा इसकी पत्नी थी। इसके दो पुत्रों के नाम तुम्बुरु तथा सुवर्चस् था। अपने इन दोनों पुत्रों को इसने कुबेर से धन लाकर दिया था।

काप्य—कुमारहार्यरत का शिष्य; इसके शिष्य का नाम शांडिल्य था। पैल, पतंचल और पुरुकुत्स आदि अनेक व्यक्तियों का यह पैतृक नाम था।

काबन्धि—कबन्ध का वंशज : अथर्वन् शाखा से संबद्ध : राजा मान्धाता के यज्ञ में उपस्थित होकर इसने कुछ प्रश्न किए थे। एक बार जलोद्भव अश्व से वेद भयभीत हो गए थे। तब इसने उस अश्व को शांत किया। (गोपथ ब्राह्मण)

कामदेव—प्रेम के देवता। ये कृष्ण या विष्णु के औरस

और लक्ष्मी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । जो उस समय माया या रुक्मिणी कही जाती थी । दूसरी जगह ऐसा लिखा मिलता है कि ये ब्रह्मा से स्त्री के रूप में उत्पन्न हुए हैं । इनके रूप के विषय में लिखा है कि ये सर्वदा युवावस्था में रहते हैं, अपनी माता के साथ कभी-कभी घूमने जाते और उनसे बातें भी करते हैं । ये कभी-कभी तोतों पर सवार होकर चांदनी में घूमने भी निकलते हैं । इनकी ध्वजा पर मछली का चिह्न है, और ध्वजा के कपड़े की ज़मीन लाल है । (देखो अनङ्ग)

कामन्द—इस ब्रह्मर्षि से एक बार राजा आंगरिष्ट ने धर्म-अर्थ-काम-विषयक प्रश्न किए थे, जिसका इसने युक्ति-युक्त उत्तर दिया था । (महाभारत)

कामन्दक—इनका बनाया कामन्दकीय नीतिसार नामक एक ग्रंथ है । इसमें इन्होंने चाणक्य का नामोल्लेख किया है । इससे निश्चय होता है कि ये चाणक्य की अपेक्षा अर्वाचीन हैं । यह चाणक्य वही हैं जिन्होंने मगध के राजा नन्द का विनाश कर चन्द्रगुप्त को उनके सिंहासन पर बैठाया । चाणक्य का समय खृष्ट ई० से ३१५ वर्ष पूर्व निश्चित हुआ है । अतएव कामन्दक का समय उनसे कुछ वर्ष पश्चात् माना जाना उचित है, क्योंकि कामन्दक प्राचीन ग्रंथकार समझे जाते हैं ।

कामबाला—अनेक फणधारी सर्पों का राजा । ये कलियुग की संतान थे ।

कामरूप—एक प्राचीन विस्तृत जनपद का नाम । वर्तमान असम, कूचबिहार, जलपाईगुडी और रंगपुर आदि कामरूप राज्य के अंतर्गत थे । तंत्रों में लिखा है कि करतोया नदी से लेकर दिक्करवासिनी* पर्यन्त कामरूप देश विस्तृत था । इसकी उत्तर सीमा में कंजगिरि, पश्चिम में करतोया नदी, पूर्व में दिक्षु नदी और दक्षिण में ब्रह्मपुत्र या लाक्षा नदी का संगम स्थल है । शास्त्रों में लिखा है कि कामरूप त्रिकोणाकार है । इसकी लंबाई एक सौ योजन और चौड़ाई तीस योजन है । कामरूप राज्य के अधीन नौ लाख ग्राम विद्यमान थे । किस समय में किस राजा ने कामरूपनगर की प्रतिष्ठा की इस विषय का कुछ भी विवरण नहीं पाया जाता । चीन परिव्राजक हुएनत्साङ्ग ने कामरूप के विषय में लिखा है । प्रबल प्रतापशाली कामरूप राज्य की सीमा दो हज़ार मील है । कामरूप के उप-जाऊ खेत में नारिकेल, धान्य, यव आदि अधिकता से उत्पन्न होते हैं । इस राज्य में नदी सरोवर की अधिकता के कारण कभी भी जल-कष्ट वहां के वासियों को नहीं सहना पड़ता । नातिशीतोष्ण अनुकूल जलवायु के कारण वहां के साधु-सदाचारी निवासी प्रसन्नता से रहते थे । वहां के रहने वाले छोटे और काले होते थे । वे सब कर्तव्यपरायण होते थे, बौद्ध धर्म में उनकी श्रद्धा नहीं थी । अनेक हिन्दू देव-देवियों के मन्दिरों में बलिदान करते थे । उस समय तक यहां एक भी बौद्ध मठ या सङ्घाराम नहीं था । उस समय भास्कर वर्मा वहां के राजा थे । ये ब्राह्मण जाति के थे । इन्हीं भास्कर वर्मा ने हर्षवर्द्धन के साथ परिव्राजक का परिचय कराया था । चीनी परिव्राजक की बातों से अनुमान किया जाता है कि ब्रह्मपुत्र या लौहित्यनद का परिसा वर्तमान असम, कूचविहार और भूतान कामरूप के अंत-र्गत थे । पंडित कहते हैं कि ब्रह्मपुत्र के दक्षिण तीरस्थ गोहाटी नामक नगर में कामरूप की राजधानी थी । हुएनत्साङ्ग के लिखने के अनुसार खृष्टीय सातवीं सदी में भी गोहाटी कामरूप की राजधानी थी ऐसा समझा जाता है । आज कामरूप की वह दीर्घता नहीं है, इस समय कामरूप असम के एक जिले का नाम है । उत्तर में भूतान, दक्षिण में खसिया गिरिश्रेणी, पश्चिम में गोवाल पाडा और पूर्व में नगवां, इस समय कामरूप की यही सीमा है ।

पुरातन ग्रंथों को देखने से कामरूप राज्य में अनेक तीर्थों का पता चलता है । तंत्रों में लिखा है कि विस्तृत कामरूप राज्य में सिद्धपीठ, महापीठ, ब्रह्म-पीठ, विष्णुपीठ, रुद्रपीठ प्रभृति अनेक पीठ हैं । इनके अतिरिक्त अन्य पीठों का भी परिचय मिलता है । उनमें सौमारपीठ, श्रीपीठ, रत्नपीठ और कामपीठ आदि प्रधान पीठ हैं । दिक्करा नदी और भैरवा नदी के मध्य का स्थान सौभारपीठ कहा जाता है । तंत्र-शास्त्रों में लिखा है कि इसके उत्तर में मानसरोवर, पूर्व में सौशीलारण्य, दक्षिण में ब्रह्मयूप और पश्चिम में स्वर्ण नदी वर्तमान हैं । रत्नपीठ का वर्तमान नाम कूचविहार है । स्वर्णकोषी नदी से लेकर रूपिका नदी तक यह पीठ विस्तृत है । भैरवी और रूपटी नदी के मध्य में स्वर्णपीठ वर्तमान है । इन पीठों में कामाख्या पीठ या कामपीठ सबसे प्रधान है । कामपीठ के थोड़ी

* दिक्कर शब्द का अर्थ महादेव है । महादेव के साथ जो वास करती हैं उन्हींको दिक्करवासिनी कहते हैं । पुरातन तत्त्वविद् कहते हैं कि मानसरोवर के पास दिक्करवासिनी का मंदिर है ।

दूर पर उग्रपीठ और ब्रह्मपीठ वर्तमान हैं। (भारतवर्षीय इतिहास)

कामली— परशुराम की माता। इनका दूसरा नाम रेणुका था। ये इक्ष्वाकुवंशी रेणु नामक राजा की कन्या थीं। महर्षि जमदग्नि के साथ इनका ब्याह हुआ था। पिता की आज्ञा से परशुराम ने अपनी माता का सिर काट लिया था। (हरिवंश)

कामाक्षी—कामरूप देश के कामपीठस्थ देवता का नाम। कहते हैं कि सबसे पहले कामरूप राज्य में नरकासुर ने कामाक्षी देवी का मंदिर बनवाया था। इस विषय में एक किंवदंती प्रसिद्ध है। कहते हैं कि मदोद्धत्त नरकासुर ने एक समय कामाक्षी देवी से विवाह करने की इच्छा की। उस समय देवी का मंदिर नहीं बना था। देवी ने कहा कि यदि तुम एक रात में हमारा मंदिर, मार्ग और तालाब बनवा दोगे तो मैं तुमसे ब्याह कर लूंगी। नरकासुर ने विश्वकर्मा को बुलाकर उनके द्वारा मंदिर बनवाना प्रारंभ किया। रात्रि बीतने के पहले समस्त कार्य प्रायः समाप्त हो जाएगा यह देख महामाया ने अनेक कुक्कुट बनाए। कुक्कुटों ने रात्रिसमाप्ति की सूचना दी। तब देवी ने नरकासुर से कहा कि तुमने हमारा कहना पूरा नहीं किया अतएव मैं तुमसे विवाह करने को प्रस्तुत नहीं हूं। इससे नरकासुर ने अत्यंत क्रुद्ध होकर कुक्कुटों का वध कर डाला। इस समय कामाक्षी देवी का जो मंदिर वर्तमान है वह नरकासुर का ही बनाया है।

सन् १५६४ ई० में कालापहाड़ ने कामाक्षी देवी का मंदिर नष्ट कर दिया था। उस समय नरनारायण वहां के राजा थे; इन्हींसे कूचविहार के राजवंश का अभ्युदय हुआ है। (भारतवर्षीय इतिहास)

कामाख्या—इस तीर्थस्थान का वर्णन पुराणों में हुआ है। एक बार विष्णु ने शक्ति का शरीर छिन्न-भिन्न कर दिया था। उनकी विच्छिन्न जननेन्द्रियां जिस स्थान पर गिरीं वहीं कामाख्या तीर्थ के रूप में प्रचलित हुआ। इसी स्मृति में यहां पर शिव-पत्नी शक्ति का मंदिर स्थित है। इसकी पूजा-पद्धति तांत्रिक है। मध्ययुगीन भारत में अनेक वर्षों तक यह शाक्तपीठ समस्त कामरूप का प्रमुख केंद्र था। यहां की महामाया देवी समस्त मानवीय इच्छाओं को पूर्ण करने वाली बताई जाती है। कामरूप की राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर का स्थापक स्थानीय आदीवासीवंश का नरक नामक कोई शासक था, जोकि महामाया कामाख्या का परम उपासक था। वह महाभारत-युगीन था। इस मत के अनुयायी योगिनीतंत्र के उपासक हैं, जो स्त्री को अपना आध्यात्मिक मार्गदर्शक मानकर मुक्ति की इच्छा रखते हैं। यह कामाख्या देवी का मंदिर असम स्थित गोहाटी के समीप एक नीलाचल पहाड़ी पर स्थित है। भारत की बहुसंख्यक जनता का आज भी उसमें विश्वास है।

कामोदा—पुराणों के अनुसार क्षीरसागर से उत्पन्न कामोदा, रमा, वरा (ज्येष्ठा) तथा वारुणी नामक चार कन्याएं। प्रथम तीन विष्णु की पत्नी बनीं और चौथी दैत्यों को गई। जब यह आनंद-विह्वल होकर हंसती थी तो इसकी आंखों से उद्गीरित अश्रु गंगा में कमल पुष्प बनकर उत्पन्न होते थे। इसे तुलसी भी कहा गया है।

काम्पिल्य—(१) यह दक्षिण पांचाल की राजधानी का नगर है। अब भी कम्पिला के नाम से प्रसिद्ध है और फर्रुखाबाद जिले का एक कस्बा है। द्रौपदी का जन्म यहीं हुआ था।

(२) हर्यश्व के पुत्र काम्पिल्य के नामानुसार इस नगर की स्थापना हुई है। बदायूं और फर्रुखाबाद के बीच में गंगा नदी के तीर पर यह नगरी विद्यमान थी। द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न की राजधानी इसी नगरी में थी। बाद में यह नगर कन्नौज के अंतर्गत मिला लिया गया। इस समय यह नगरी फर्रुखाबाद के अंतर्गत कायमगंज तहसील के अधीन है।

काम्भोजाः—यह देश निषध पर्वत के दक्षिण में बतलाया जाता है। यहां अर्जुन राजसूय यज्ञ के अवसर पर दिग्विजय करने गए थे। वर्तमान में इस देश की स्थिति, अफगानिस्तान, जो अश्वस्थान का अपभ्रंश है, बतलाई जाती है। वहां घोड़े अधिक होते हैं। मसल भी है "क्या काबुल में घोड़े ही घोड़े होते हैं, गधे नहीं होते ?" काम्भोज ही से 'काबुल' की उत्पत्ति जान पड़ती है।

काम्यक—एक विस्तृत वन, जो सरस्वती के तीर पर है। दूसरे वनवास के समय पांडवों ने यहां वास किया था।

काम्या—स्वायंभुव मुनि की कन्या का नाम।

कायव्य—निषादराज, वनस्थ दस्युओं का अधिपति; परम शूर और परम धार्मिक; इसके दस्युकर्म के आदर्श थे कि किसी ब्राह्मण का अपहरण न किया जाए; बालकों तथा स्त्रियों को भयभीत न किया जाए;

शस्त्रहीन तथा डर से भागे हुए को न मारा जाए; ब्रह्मद्रोही का वध किया जाए; इस प्रकार सदाचार के आचरण से दस्युओं को भी परमगति प्राप्त हो जाती है। (महाभारत)

कारुष—वैवस्वत मनु के पौत्र और राजा करुष के पुत्र। (करीषका भी देखें)

कार्तवीर्य—नर्मदा नदी के तीरस्थ हैहय राज्य के अधिपति। राजा हैहय के नामानुसार उनके राज्य का भी हैहय नाम पड़ा था। कार्तवीर्य का दूसरा नाम था हैहय। इसे लोग अर्जुन भी कहते हैं। महिष्मती नगरी में इनकी राजधानी थी। एक समय लंकेश्वर रावण स्वर्णमय शिवलिंग की पूजा करता था। वहां से आध योजन की दूरी पर सहस्रबाहु कार्तवीर्य स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा करता था। कार्तवीर्य ने सहस्रबाहु द्वारा नर्मदा की धारा को रोक दिया। नर्मदा की धारा उलटी बहने लगी, उसी में रावण की पूजा-सामग्री भी बह गई। इसका कारण ढूंढ़ने के लिए रावण ने अपने मंत्री शुक और सारण को भेजा। मंत्रियों ने कीर्तवीर्य के जलक्रीडा का वृत्तांत आकर कह सुनाया। रावण उसको दंड देने के लिए वहां शीघ्र ही उपस्थित हुआ परंतु त्रिलोकविजयी रावण कार्तवीर्य के द्वारा परास्त होकर उसका बंदी हुआ। रावण के पितामह महर्षि पुलस्त्य ने अपने पौत्र के पराभव की बातें सुनीं। महर्षि पुलस्त्य ने कार्तवीर्य के समीप आकर रावण को छोड़ने की प्रार्थना की। कार्तवीर्य ने उनके कहने से रावण को छोड़ दिया। दोनों अपने-अपने स्थान को चले गए।

(रामायण, उत्तरकांड)

ब्रह्मवैवर्तपुराण में लिखा है—एक समय सेना सहित भूख-प्यास से व्याकुल होकर कार्तवीर्य जमदग्नि ऋषि के आश्रम के समीप ठहरे थे। जमदग्नि ने राजयोग्य भोजनादि से उनका सत्कार किया। जमदग्नि के पास कपिला नामक एक कामधेनु थी। इसी गौ के प्रभाव से जमदग्नि ने राजा का सत्कार किया था। उस गौ के गुणों को सुनकर कार्तवीर्य ने ऋषि से गौ मांगी, जमदग्नि ने उसको देना अस्वीकार किया। राजा ने बलपूर्वक गौ को ले जाना चाहा परंतु ऋषि की दैवी शक्ति से उत्पन्न सेनाओं से परास्त होकर वह लौट गए। तदनंतर अनेक सेना लेकर कार्तवीर्य ने जमदग्नि के आश्रम पर चढ़ाई की, जमदग्नि ने भी यथाशक्ति उनको रोका, परंतु अंत में वे मारे गए। कपिला युद्धक्षेत्र से ब्रह्मलोक को चली गई। पहले विष्णु ने ब्रह्मा को यह गौ दी थी, ब्रह्मा ने भृगुमुनि को और भृगुमुनि ने जमदग्नि को दी थी। जमदग्नि की मृत्यु के समय उनके पुत्र परशुराम आश्रम में नहीं थे। आश्रम में आकर उन्होंने पितृ-वध का वृत्तांत अपनी माता रेणुका से सुना। परशुराम ने प्रतिज्ञा की—कार्तवीर्य के साथ इस पृथिवी को इक्कीस बार क्षत्रिय-शून्य कर दूंगा। परशुराम और कार्तवीर्य में युद्ध हुआ, कार्तवीर्य मारा गया।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

कार्त्तिकेय—महादेव के पुत्र का नाम। चंद्रमा की स्त्री कृत्तिका के दूध से इनका पालन हुआ था। इस कारण इस देवता का नाम कार्त्तिकेय पड़ा है। ये देव-सेनापत हैं। तारकासुर का वध करने के लिए इनका जन्म हुआ था। इन्होंने देवसेना को परिचालित करके तारकासुर को परास्त करके उसका बध किया था। तारकासुर का वध करके ये तारकारि नाम से प्रसिद्ध हुए। इनकी स्त्री का नाम देवसेना है। देवसेना ब्रह्मा की कन्या है। इसी देवसेना को षष्ठी देवी कहा जाता है। पुराणों में कार्त्तिकेय का जन्मविवरण इस प्रकार लिखा है। हिमालयराज ने अपनी कन्या पार्वती को शिव के साथ ब्याहा था। पार्वती शिववीर्य धारण नहीं कर सकी अतएव पृथिवी, अग्नि और क्रमशः कृत्तियों ने उस वीर्य को धारण किया। उसीसे कार्तवीर्य उत्पन्न हुए। (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

कार्ले—महाराष्ट्र के पूना जिले में कार्ले की भव्य गुफाएं अवस्थित हैं। कार्ले या कार्ला नामक गांव के कारण इन गुफाओं का ऐसा नामकरण हुआ। उनकी लंबाई १२४ फुट ३ इंच, चौड़ाई ४६ फुट ६ इंच और ऊंचाई ४० फुट है। वृहद् गुफा के भीतरी प्रकोष्ठ की चौड़ाई २५ फुट ७ इंच है। उसका बाहरी अलिंद ५२ फुट १५ इंच है। उसके चारों ओर ३७ स्तंभ निर्मित हैं।

हीनयानी बौद्धों द्वारा निर्मित चैत्य गुफाओं में कार्ले की गुफा का विशिष्ट स्थान माना जाता है। उसकी निर्माणशैली भी अपने ढंग की है। उसकी प्रदक्षिणा के स्तंभ झुके न होकर लंबायमान हैं और द्वार की जाली काष्ठ की न होकर प्रस्तर की बनी है। चैत्यों की प्राचीन विशुद्ध शैली के उसमें दर्शन होते हैं।

वास्तुकला और मूर्तिकला के क्षेत्र में कार्ले की गुफाओं का अपना विशेष महत्त्व है। उनके स्तंभ

अपनी कलात्मकता के लिए दर्शनीय हैं। उनके शीर्ष भाग युगल गज-मस्तकों से अलंकृत हैं और प्रत्येक पर मिथुन प्रतीक कोरे गए हैं। उसकी दीवार पर उरेहे गए हाथी विशेष रूप से दर्शनीय हैं।

संप्रति प्राप्त होने वाली गुफाओं में ऐतिहासिक दृष्टि से कार्ले की गुफाओं का विशेष महत्त्व है। यहां की एक गुफा में कुछ अभिलेख प्राप्त हुए हैं। एक अभिलेख अहरात नरेश नहपान के दामाद उसवदात्त का उपलब्ध हुआ है। नासिक, जुन्नर और नहपान की गुफाओं से प्राप्त उसवदात्त के अभिलेखों में उसका समय ४० तथा ४२ वर्ष दिया गया है। यह शक सम्वत् ही हो सकता है, जिसके अनुसार उनकी तिथि १२० ई० के लगभग ठहरती है। किंतु बर्गेस आदि विद्वानों ने उसकी लिपि का अध्ययन कर उसका समय इससे प्राचीन बताया है। इसी गुफा से प्राप्त एक अन्य अभिलेख में भूतपाल तथा अग्निमित्र का उल्लेख हुआ है। पुराणों की वंशावली के अनुसार अग्निमित्र शुंगवंश का द्वितीय शासक था, जिसका स्थितिकाल १४८-१४० ई० पूर्व था। इसी प्रकार भूतपाल को शुंगवंश का अंतिम शासक बताया गया है, जिसका स्थितिकाल ७० ई० पूर्व था। इस आधार पर कार्ले की गुफाएं ई० पूर्व की सिद्ध होती हैं।

काष्णीजिनि—प्राचीन धर्मशास्त्रकार आचार्य; इनके द्वारा रचित काष्णीजिनिस्मृति का तथा उसके संदर्भों का परवर्ती स्मृतिकारों ने पर्याप्त रूप से उल्लेख किया है।

काल—(१) भागवत के अनुसार ग्यारह रुद्रों में से एक का नाम।

(२) वसुध्रुव के पुत्र का नाम।

कालकञ्ज—अंतरिक्ष स्थित एक असुर। इसने स्वर्गप्राप्ति के लिए अग्निचयन अनुष्ठान किया था। तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।१।२) में एक रोचक कथा दी गई है, जिसमें इन्द्र द्वारा इसके पराभव का उल्लेख किया गया है।

कालकवृक्षीय—इस ऋषि के पास त्रिकालदर्शी एक पक्षी था। एक बार यह ऋषि कोशलदेशाधिपति क्षेमदर्शी के यहां गया। वहां राजा ने इस पक्षी से अपने तथा अपने मंत्रियों के संबंध में प्रश्न किया। पक्षी ने एक मंत्री के दुर्गुणों का वर्णन करने के बाद अन्य मंत्रियों के विषय में कल बताने के लिए कहा। इसी बीच रात को किसीने पक्षी को मार डाला। राजा सब बातें समझ गया। इस ऋषि की सहायता से राजा ने अपने सब दुर्गुणी मंत्रियों को उपयुक्त दंड दिया। इस ऋषि की आज्ञा से विदेहपति ने क्षेमदर्शी को अपना प्रधान नियुक्त किया। (महाभारत)

कालका—वैश्वानर दानव की कन्या और कश्यप या मारीच ऋषि की पत्नी; इसके कालेय या कालकंज नामक असंख्य पुत्र उत्पन्न हुए थे।

कालकेय—कालकेय नामक दानवगण। इनको कालकञ्ज भी कहते हैं। ये वृत्रासुर के अनुचर थे। इन्द्र ने जब वृत्रासुर का वध किया, तब कालकेयगण प्राण बचाने के लिए समुद्र में छिप गए थे और रात को निकलकर आश्रमवासी ऋषियों को मारा करते थे। एक दिन उन लोगों ने वशिष्ठाश्रम में जाकर १९७ ब्राह्मणों को मार डाला। वे तपस्वियों का इस प्रकार उत्पीडन करने लगे जिससे यज्ञ आदि क्रियाएं लुप्त हो गईं। इन्द्रादि देवता इससे रक्षा पाने की इच्छा से वैकुंठ में भगवान के निकट गए। नारायण के परामर्श से ऋषिगण अगस्त्य के समीप गए और उनसे समुद्रपान करने के लिए उन लोगों ने अनुरोध किया। अगस्त्य ने समुद्रपान किया और देवताओं ने अनायास ही कालकेयों को मार डाला। (महाभारत)

बहुतों का अनुमान है कि कालकेय अनार्य और जलदस्यु थे। आर्यों के भय से वे स्थल छोड़कर जल ही में रहा करते थे और चोरी से अपनी जीविका चलाते थे।

कालञ्जर—पुराणों के अनुसार एक पर्वत का नाम जो सुमेरु से उत्तर की ओर है।

कालनेमि—(१) प्रसिद्ध दानव। पहले देवासुर-संग्राम में इसने वरुण, कुबेर आदि लोकपालों को जीता था। अंत में विष्णु से युद्ध हुआ और उस युद्ध में यह मारा गया।

(२) राक्षस विशेष। यह विष्णु के भय से रावण के नाना सुमाली के साथ लंका से पाताल चला गया और वहीं रहने लगा।

कालपुरुष—इनका दूसरा नाम यम है। ये ब्रह्मा के पौत्र और सूर्य के पुत्र थे। ये तपस्वी के वेष में अयोध्यापति रामचन्द्र के समीप उपस्थित हुए थे और एकांत में जाकर अपनी मूर्ति धारण कर रामचन्द्र को वैकुंठ चलने के लिए ब्रह्मा का आदेश सुनाया। जिस समय कालपुरुष रामचन्द्र से बात करते थे, उस समय औरों का वहां आना निषेध किया गया था। यदि कोई चला जाए तो रामचन्द्र उसको त्याग देंगे यह भी

ठहराव हुआ था । लक्ष्मण द्वार की रक्षा में नियुक्त थे । उस समय दुर्वासा महर्षि रामदर्शन के लिए उपस्थित हुए । लक्ष्मण दुर्वासा के शाप से डरकर राम के निकट गए, और उन्होंने दुर्वासा के आने की बात कही । कालपुरुष के साथ किए हुए ठहराव के अनुसार रामचन्द्र ने अपने प्रिय भ्राता लक्ष्मण का त्याग किया । कालपुरुष का स्वरूप भयंकर है । इनके ६ मुख, १२ बाहु, २४ आंखें और ६ पैर थे । ये कृष्णवर्ण हैं और लाल वर्ण के कपड़े पहनते हैं।

(रामायण)

कालपृष्ठ—कश्यप प्रजापति द्वारा दिति में उत्पन्न एक दैत्य; इसने शंकर की तपस्या करके यह वर प्राप्त किया था कि जिसके सिर पर भी यह हाथ रख देगा, वह भस्म हो जाएगा । इसका प्रथम प्रयोग यह शंकर पर करने को उद्यत हुआ; किंतु विष्णु ने मोहिनी रूप धारण कर इसका हाथ इसके ही सिर पर रखा दिया, जिससे कि यह स्वयं ही भस्म हो गया ।

कालभीति—इसके पिता का नाम मांटी था । शिवभक्त मांटी ने सौ वर्षों तक शिव की तपस्या करके पुत्ररूप में इसे प्राप्त किया था । किंतु माता के गर्भ में पूरा समय व्यतीत करने के बाद भी जब यह बाहर नहीं निकला तो पिता ने उसका कारण पूछा । तब इसने कालमार्ग नामक असुर का भय बताया । यह शिव के पास गया । शिव ने इसे धर्मज्ञान तथा वैराग्य का उपदेश करने के लिए कहा । तब गर्भ बाहर आया । यह भी परम शिवभक्त हुआ और काल पर विजय प्राप्त करने वाला महाकाल के नाम से विख्यात हुआ ।

कालभैरव—शिव के अंश से उत्पन्न और उनके अनुचर ब्रह्मतत्त्व; ज्ञानहीन ब्रह्मा का पांचवां मस्तक काटने के लिए इनकी उत्पत्ति हुई थी । काशी में पापियों को दंड देना इनका काम है ।

कालयवन—अतिशय पराक्रमी यवनपति । ये महर्षि गार्ग्य के अंश से उत्पन्न हुए हैं । जरासंध और उसके पक्ष के राजाओं ने कालयवन को कृष्ण के विरुद्ध मथुरा पर आक्रमण करने के लिए भड़काया था । ये महर्षि गार्ग्य के औरस और गोपाली नाम की गोपीवेशधारिणी अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । यादवों की सभा में गार्ग्य को नपुंसक कहकर हंसी की गई । इसपर यादवों ने भी ठहाका मारा । गार्ग्य को इससे बड़ा क्रोध हुआ । वे पुत्रकामना से बारह वर्षों तक लौहचूर्ण खाकर कठोर तपस्या द्वारा महादेव की आराधना करने लगे । महादेव के वर से अंधक और वृष्णि वंशियों को निग्रह करने वाला गार्ग्य को कालयवन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । कालयवन का बाल्यावस्था में अपुत्रक यवनराज ने पालन किया था और यवनराज के मरने पर यही उनके अधिकारी हुए थे । कालयवन बहुत ही शीघ्र पराक्रमी राजाओं में गिना जाने लगा । जरासंध के साथ कालयवन की चढ़ाई की बात सुनकर यादव घबड़ा गए । वे श्रीकृष्ण के परामर्श से मथुरा छोड़कर द्वारका चले गए । श्रीकृष्ण और कालयवन में युद्ध होने लगा । श्रीकृष्ण युद्धक्षेत्र से भागकर हिमालय की गुहा में—जहां मांधाता के पुत्र मुचकुंद निद्रित थे, चले गए, और चुपचाप उनकी खाट के नीचे छिप गए । कालयवन भी श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे वहां उपस्थित हुआ । कालयवन निद्रित मुचकुंद को कृष्ण समझकर पैर से मारकर उठाने लगा । मुचकुंद उठे और उन्होंने ज्यों ही कालयवन की ओर दृष्टि की, त्यों ही वह भस्म हो गया ।

(विष्णुपुराण)

कालयावी—एक प्राचीन महर्षि का नाम । ये महर्षि वास्कलि के शिष्य थे और ऋग्वेद के अध्यापक ।

कालसूत्र—एक नरक का नाम । विष्णुपुराण में जो नगरों की सूची दी गई है उसमें कालसूत्र का भी नाम आया है । यह यमपुरी में एक उपपुरी है जिसमें पापियों को कष्ट देने के लिए बड़े-बड़े यंत्र संगृहीत हुए हैं ।

काला—दक्षप्रजापति की एक कन्या का नाम ।

कालापहाड़—बंगाल के सूबेदार सुलेमानसूर का यह सेनापति था । यह एक ब्राह्मण का पुत्र था, और इसका नाम निरंजनदेव था । इसके छोटे भाई का नाम प्रभात था । निरंजन हरदेव विद्यारत्न के पास संस्कृत अध्ययन करता था । इन्हीं विद्यारत्न जी की यथार्थ सुंदर सुंदरी नामक एक कन्या थी.। एक दिन उसी गांव में देवीजी के मंदिर के पास गोवध करना चाहता था, निरंजन भी उस समय वहीं उपस्थित था । उसने काजी को मारा-पीटा । इस कारण वह पकड़ा गया और राजधानी में लाकर कैद कर लिया गया । निरंजनदेव उच्चकुलसंभूत था और रूपवान् था । वह कारागार में यवनस्पृष्ट भोजन नहीं करता था, इसी कारण वह बीमार पड़ गया । उसी कारागार के समीप सुलेमान के भाई ताजखां का महल था । ताजखां की पुत्री का नाम नज़ीरन था । वह बड़े दयालु

स्वभाव की थी। उससे निरंजन का दुख नहीं देखा गया। वह ब्राह्मण का बनाया भोजन छिपकर भिजवाती थी और छिपकर स्वयं भी जाकर उनकी सेवाशुश्रूषा करती थी। वह निरंजन के गुणों पर मोहित हो गई और उसको यवन होने के लिए उसने बाध्य किया। निरंजन ने भी अपने छुटकारे का उपाय न देखकर मुसलमान होना स्वीकार किया। निरंजन का नाम कालापहाड़ हो गया। नजीरन के प्रभाव से कालापहाड़ सेनापति हो गया। सेनापति होकर हिंदू और हिंदू धर्म का नाश करना ही उसने अपना कर्त्तव्य स्थिर किया। कामाक्षी देवी का मंदिर उसने तोड़ दिया था। उड़ीसा पर उसने चढ़ाई की और वहां के राजा को उसने बंदी कर लिया। अब जगन्नाथजी की बारी आई। कालापहाड़ ने जगन्नाथ पर चढ़ाई की। वहां के राजा का सेनापति प्रभात नामक लड़ने लगा। प्रभात बंदी हुआ। तब हलायुध मिश्र, जो हरदेव विद्यारत्न के संबंधी थे, लड़ने लगे। इन्होंने कालापहाड़ को तलवार से आहत किया। उस दिन रात्रि होने के कारण युद्ध बंद हुआ। प्रभात कैदी है, एक सुंदरी नाम की स्त्री भी उसी के साथ कारागार में बंद है, यह सुंदरी उन्हीं हरदेव न्यायरत्न की कन्या है जिन्होंने कालापहाड़ को पढ़ाया था। यह जानकर प्रातःकाल कालापहाड़ सेनापति के सामने प्रभात को उपस्थित किया गया। सेनापति उसके वध किए जाने की आज्ञा देने वाले ही थे कि उन्होंने पहले उसका परिचय पूछा। परिचय पूछने पर कालापहाड़ को मालूम हुआ कि यह तो मेरा भाई ही है। उसने प्रभात को छोड़ दिया। कालापहाड़ तलवार के आघात से व्याकुल था। वह मरने के पहले अपना धन अपने भाई को दे गया।

कालिका—वैश्वानर की एक कन्या का नाम। यह महर्षि कश्यप को ब्याही गई थी, और इसीसे दानवों की एक शाखा की उत्पत्ति हुई थी।

कालिकापुराण—इस पुराण में देवीमहात्म्य वर्णित है और वह उपपुराण देवीभागवत के अंतर्गत समझा जाता है। देवी भागवत का पांचवां स्कंध कालिकापुराण कहा जाता है। महिषासुर और शुम्भ-निशुम्भ का वध तथा सुरथ-समाधि-वृत्तांत कालिकापुराण के अंतर्गत हैं। इसके कर्त्ता व्यासदेव हैं। कालिकापुराण उपपुराण माना जाता है।

कालिकावर्त—कनिंहम साहब का अनुमान है कि वृंदावन का प्राचीन नाम कालिकावर्त था। यमुनातीरवर्ती कदंब वृक्ष पर कालिय नामक एक सर्प रहता था। उसके रहने के कारण यमुनाजल भी विषाक्त हो गया था। श्रीकृष्ण ने कालिय दमन किया था, उसी सर्प के नामानुसार इस स्थान का नाम कालिकावर्त पड़ा है। ग्रीक ऐतिहासिकों ने वृंदावन का नाम नहीं लिया है। एटियान के इतिहास में 'क्लिसोबोरास' नामक स्थान का उल्लेख है। पाश्चात्य पंडित इसी स्थान को वृन्दावन कहते हैं।

कालिञ्जर (दुर्ग)—प्रसिद्ध महोबा राज्य के एक दुर्ग का नाम। यह किला बुंदेलखंड में है। यह दुर्ग महोबा के राजाओं के अधिकार में था। एक समय गुलाम कुतुबुद्दीन ने महोबा पर चढ़ाई की। उस समय परमर्दी नामक एक राजा वहां राज्य करते थे। कुतुबुद्दीन के आक्रमण के समय परमर्दी ने बड़ी दृढ़ता से कालिञ्जर की रक्षा की, परन्तु अंत में जब उन्होंने सफलता की आशा नहीं देखी, तब दासराज को आत्मसमर्पण करके संधिस्थापन का प्रस्ताव करना चाहा। इससे रुष्ट होकर मंत्री ने उन्हें मार डाला और वह स्वयं लड़ने लगा। मंत्री ने कुछ दिनों तक दुर्ग की रक्षा की, परंतु अंत में वह मारा गया और दुर्ग पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। परमर्दी की मृत्यु होने के उपरांत उनके पुत्र वीरवर्मा और पौत्र भोजवर्मा ने महोबा पर राज्य किया था। सन् १५४५ ई० में शेरशाह ने कालिंजर पर आक्रमण किया। उस समय चंदेल वंश के अंतिम राजा किरातसिंह महोबा के राजा थे। उन्होंने प्राणपण से कालिंजर दुर्ग की रक्षा करनी चाही, परंतु वे शेरशाह को रोक नहीं सके। इस युद्ध में किरातसिंह मारे गए और दुर्ग पर शेरसिंह का अधिकार हो गया। कालिंजर एक प्रसिद्ध तीर्थ है। रामायण, महाभारत, हरिवंश आदि पुराणों में कालिंजर का उल्लेख है। पद्मपुराण में लिखा है कि कालिंजर शैवों का तीर्थ है। फिरिश्ता में लिखा है कि केदारनाथ ने खृष्टीय ७वीं सदी में कालिंजर की स्थापना की। बाद में कालिंजर-राज ने मुसलमानों के साथ युद्ध में बड़ी प्रसिद्धि पाई थी। कुतुबुद्दीन ने कालिंजर के शिव-मंदिर के पास मस्जिद बनवा दी थी।

(भारतवर्षीय इतिहास)

कालिदास—संस्कृत के विख्यात महाकवि। इनके विषय में अनेक मत प्रचलित हैं —

(१) कतिपय विद्वान् कहते हैं कि कालिदास ७वीं

सदी में उत्पन्न हुए थे। परंतु ७वीं सदी के पहले के पुलाकेशिका शिलालेख और तंत्रवार्तिक आदि ग्रंथों में जब कालिदास के बनाए श्लोक पाए जाते हैं तब ये सप्तम शताब्दी के कैसे माने जा सकते हैं!

(२) दूसरे पक्ष का कहना है कि कालिदास वराहमिहिर के समकालीन थे, क्योंकि दोनों विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से थे। परन्तु नवरत्न में जिनके नाम आए हैं उनके समय में विशेष अंतर आने से नवरत्न की कल्पना पर कभी विश्वास नहीं किया जा सकता है।

(३) तीसरा पक्ष कहता है कि मातृगुप्ताचार्य का ही दूसरा नाम कालिदास था। मातृगुप्ताचार्य छठी सदी में उत्पन्न हुए थे, इससे कालिदास का भी वही समय है। किंतु यह मत इस कारण दुर्बल है कि कालिदास और मातृगुप्त ये दोनों एक ही के नाम हैं इसका कोई प्रमाण नहीं और कालिदास का जहां नाम गिनाया है उसमें गुप्त का पता नहीं—

'रघुकारः कालिदासो मेघारुद्रश्च कोटिजित्'।

कालिदास के ये ही नाम पाए जाते हैं।

(४) अन्य पक्षवाले कहते हैं कि दिङ्नागाचार्य कालिदास के प्रतिद्वंद्वी थे। इसी बात को कालिदास ने मेघदूत में प्रकारांतर से कहा है, "दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान्"। इससे कालिदास को दिङ्नाग के समकालीन मानना ही पड़ेगा। दिङ्नागाचार्य ६ठी सदी में थे अतएव कालिदास का भी वही समय निश्चित होता है। परंतु दिङ्नागाचार्य ६ठी सदी में थे इसका कोई प्रमाण नहीं। प्रत्युत खृष्ट सदी से पूर्व के भट्टाचार्य ने दिङ्नाग का मत उद्धृत करके यह बात प्रमाणित कर दी है कि वह ६ठी सदी के नहीं थे।

इसी प्रकार अनेक मत कालिदास के समयनिरूपण के विषय में आजकल प्रचलित हैं।

कालिदास शकप्रवर्तक विक्रमादित्य के सभापंडित थे, यह बात प्रसिद्ध है। अतएव विक्रम के समय-निर्णय होने से कालिदास का भी समय-निर्णय हो जाएगा। राजा विक्रम इस देश में अनेक हुए हैं। चीन परिव्राजक हुएनत्सांग ने भी ६ठी सदी के विक्रम का उल्लेख किया है, परंतु वे शकप्रवर्तक नहीं थे। डा० पीटर्सन ने जो मंदसोर का शिलालेख प्रकाशित किया है, जिसे डॉ० ब्यूलट ने भी माना है, उसमें यह स्पष्ट ही पाया जाता है कि शकप्रवर्तक विक्रमदेव खृष्ट वर्ष के पहले हुए हैं। इस बात को प्रो० फ्लीट भी मानते हैं। जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी के परलोकवास के ४७० वर्ष के अनंतर विक्रम उत्पन्न हुए थे। विक्रमादित्य शालिवाहन से भी प्राचीन हैं। शालिवाहन खृष्टीय प्रथम सदी में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने विक्रम का शक नर्मदा के दक्षिण तीर पर मिटाकर अपना शक चलाया था। रामकूट नामक महल विक्रमादित्य ने ही शरावती में बनवाया था। वह महल खृष्टीय वर्ष से ५७ वर्ष पहले बनवाया गया था। इस बात को ऐतिहासिक मानते हैं। इन्हीं विक्रम की सभा में कालिदास थे। रघुवंश आदि के बनाने वाले कालिदास इनसे भी प्राचीन हैं। क्योंकि प्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल भट्ट ने अपने विश्वविख्यात तंत्रवार्ति नामक ग्रंथ में कालिदास का श्लोक उद्धृत किया है। कुमारिल भट्ट शंकराचार्य के समकालीन थे, इस बात को सभी जानते हैं। शंकराचार्य युधिष्ठिर की सत्ताईसवीं सदी में वर्तमान थे, अतएव कालिदास को उनसे भी प्राचीन मानना उचित और प्रमाणसिद्ध है।

कालिदास कितने हुए हैं, इसका पता लगाना एक कठिन काम है। भोजप्रबंध, प्रबंध-चिंतामणि आदि ग्रंथों से जाना जाता है कि भोज के समय में भी एक कालिदास वर्तमान थे। संस्कृत साहित्य में कालिदास शब्द एक प्रकार की उपाधि के समान समझा जाता है। क्योंकि जिनका असल नाम दूसरा था, उन्होंने भी अपने नाम में अभिनव कालिदास आदि शब्द जोड़ लिए थे। नवसाहसांक-रचयिता अपने को अभिनव कालिदास लिखते थे। किसी हस्तलिखित नवसाहसांक की पुस्तक में केवल कालिदास ही का नाम लिखा मिलता है।

कालिदास त्रिवेदी—बनपुरा के निवासी; १६९२ ई० में विद्यमान; पुत्र का नाम उदयभान कवीन्द्र, और पौत्र का नाम दूलह। त्रिपदा नदी के तटवासी जंबू नगर के किसी जालिम जोगाजीत नामक राजा के लिए इन्होंने 'वधू विनोद' नामक नायिका-भेद ग्रंथ लिखा था। इनके अन्य ग्रंथों के नाम हैं—'जंजीराबंद' स्फुट काव्य, 'कालिदास हजारा' (संकलन)। इनका यह ग्रंथ भक्तिकालीन अनेक अज्ञात कवियों की जानकारी के लिए अतीव उपयोगी सिद्ध हुआ है। इनका 'वधू विनोद' संस्कृत के काव्यशास्त्री भानुदत्त की 'रसमंजरी' पर आधारित है।

कालिन्दी—सूर्य की कन्या। इसका दूसरा नाम यमुना है।

कालिय—(१) सर्पराज। गरुड के भय से ये नागराज समुद्र छोड़कर ब्रज के समीप एक बड़े तालाब में रहते थे। एक समय श्रीकृष्ण ने घूमते-घूमते इस ह्रद को देखा। सर्पराज के भय से उस सरोवर के समीप का स्थान जनशून्य हो गया था। उस सरोवर के दोनों तट शैवाल आदि से छिपे हुए थे। उस सरोवर से कालिय को हटाने का संकल्प श्रीकृष्ण ने किया और तदनुसार वे उसमें कूद पड़े। कालिय ने श्रीकृष्ण को पकड़ लिया, और उसके अनुचर श्रीकृष्ण को काटने लगे, इससे ब्रजवासी दुखित हुए, नन्द और यशोदा रोने लगे, परंतु श्रीकृष्ण तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने धीरता से कालिय का फन ऊपर उठाया और उसपर नाचने लगे। कालिय त्राहि-त्राहि करने लगा और रक्त उगलने लगा। कालिय ने अपने छुटकारे का कोई उपाय न देख श्रीकृष्ण से प्राणभिक्षा मांगी। श्रीकृष्ण बोले—इस सरोवर में मैं तुमको रहने नहीं दूंगा, तुम अपने परिवार के साथ चले जाओ, वहां यदि तुमको गरुड का भय है तो तुम गरुड को मेरा पदचिह्न दिखाना, इससे तुम्हारी रक्षा हो जाएगी। सौभरि मुनि के शाप से गरुड कालिय-ह्रद में नहीं आ सकते थे, इस कारण कालिय यहां रहने आया था। (हरिवंश)

(२) काद्रवेय कुल में इसका जन्म हुआ था। यह पन्नग जाति का नाग था। इसके पांच मुख थे। इसका निवास रमणक द्वीप में था। गरुडराज से अपनी रक्षा हेतु यह प्रति पूर्णमासी तिथि को उसका आहार पहुंचा देता था। एक बार उसे वह स्वयं ही खा गया, जिससे क्रुद्ध होकर गरुडराज इसपर आ झपटा। यह यमुना में जा गिरा। गरुड शापवश वहां न जा सका। कालिय ने यमुना को विषमय कर दिया, जिससे कि अनेक गोपों तथा गायों की मृत्यु होने लगी। इस अनर्थकारी को मारने के उद्देश्य से श्रीकृष्ण ने यमुना में छलांग लगाई। श्रीकृष्ण ने कालिय को रमणक द्वीप की ओर चले जाने को कहा और उसे यह आश्वासन दिया कि गरुडराज उसको त्रस्त न करेगा। (भागवत)

काली—दस महाविद्या के अंतर्गत प्रथम महाविद्या। शक्ति के उपासक लोग इनको आद्याशक्ति कहते और उपासना करते हैं। कालिकापुराण में इनके रूप के विषय में लिखा है कि इनके चार हाथ हैं, दाहिने हाथों में खट्वांग और चन्द्रहास, और वामहस्तद्वय में ढाल और पाश हैं। नरमुंड की माला इनका भूषण है। व्याघ्रचर्म इनका वस्त्र है। मस्तकशून्य शव इनका वाहन है। (कालिकापुराण)

कालीनाग—इस नागराज ने गरुड के भय से त्रस्त होकर ब्रजभूमि में जाकर अपना निवास बना लिया था, जिसके नाम से यमुना तट पर कालीदह नामक स्थान की प्रसिद्धि है। एक बार बाल्यकाल में श्रीकृष्ण खेलते-खेलते उस दह में गिर पड़े थे जिसमें कालीनाग रहता था। इससे नन्द-यशोदा और सारे ब्रजवासी बड़े चिंतित हुए, किंतु कृष्ण ने कालीनाग को वश में कर लिया था और वे उसके सिर पर खड़े हो कर नृत्य करते हुए पानी से बाहर निकले। कृष्ण ने उसे फिर रमणक द्वीप में रहने की आज्ञा दी थी और कृष्ण-पदचिह्नांकित देखकर गरुड ने उसे क्षमा कर दिया था।

कावेरी—कुरुगदेश से निकलकर यह नदी भारत के दक्षिण प्रदेश में बहती हुई बंगाल की खाड़ी में मिलती है।

काशिराज—ये काश के पुत्र थे और काशी के राजा थे। इनके तीन कन्याएं थीं, जिनके क्रमशः अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका नाम थे। काशीराज ने इन तीनों कन्याओं को स्वयंवर द्वारा विवाहित करना निश्चित किया। इसके लिए उन्होंने स्वयंवरसभा एकत्रित की। उसी समय भीष्मपितामह सत्यवती के कहने से अपने सौतेले भाई विचित्रवीर्य के लिए कन्या ढूंढने निकले थे। उन्होंने बलात्कार से तीनों कन्याओं का हरण कर लिया। अन्यान्य राजाओं ने भीष्म से युद्ध किया, परंतु सब परास्त हो गए। ज्येष्ठा अम्बा ने भीष्म से कहा कि मैंने शाल्वराज को वर लिया है और उन्होंने भी मेरी प्रार्थना की है, यह सुन भीष्म ने उसे जाने के लिए अनुमति दे दी। अम्बिका और अम्बालिका का विवाह विचित्रवीर्य के साथ यथासमय हो गया। (महाभारत)

काशी—काशी राज्य एक प्रसिद्ध और ऐश्वर्यशाली राज्य था। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, रामायण, महाभारत आदि में काशी और काशिराजाओं का उल्लेख किया गया है। मंत्रद्रष्टा ऋषियों की श्रेणी के गृत्समद आदि काशी के राजाओं का भी नाम मिलता है। शतपथ-ब्राह्मण में अनेक बार काशी के नाम का उल्लेख किया गया है। बृहदारण्यक में लिखा है कि "दृप्त बालाकिर्हा नूचानो गार्ग्य आस, होवाचाजातशत्रुं काश्यं ब्रह्मते ब्रवाणीति। स होवाचाजातशत्रुः सहस्र-

मेतस्यां वाचि दद्मो जनको जनक इति जना धावन्तीति।" इससे मालूम पड़ता है कि जनक का विद्यानुराग सुनकर जनसमुदाय काशी छोड़ मिथिला की ओर चला जाता है। इसी कारण काशिराज अजातशत्रु गार्ग्य से अपना क्षोभ प्रकाशित करते हैं। दशरथ के समय काशीनरेश कोशलराज के अधीन थे। दशरथ के अश्वमेध यज्ञ में काशीनरेश निमंत्रित होकर गए थे। वनवास से लौटकर आने पर रामचंद्र के राज्याभिषेक के समय काशिराज प्रतर्द्दन निमंत्रित होकर अयोध्या गए थे। रामायण में लिखा है कि विदा के समय रामचंद्र ने काशिराज का आलिंगन करके कहा था—आपने युद्ध में सहायता पहुंचाने के लिए भरत के साथ उद्योग करके मेरा बड़ा उपकार किया है। इस समय आप काशी पधारें। इससे रामचंद्र और काशीनरेश में मित्रता का परिचय मिलता है। महाभारत के आदिपर्व से पांडव और काशिराज में परस्पर शत्रुता का परिचय मिलता है। क्योंकि भीष्म ने काशिराज की कन्याओं का हरण किया था। इस कारण इन दोनों राज्यों में परस्पर-विरोध हो गया था।

रामायण में लिखा है कि प्रतिष्ठाननगर एक काशी राज्य की सीमा थी। मत्स्यपुराण में लिखा है कि यह काशी राज्य के पूर्व और पश्चिम की ओर दो योजन और दक्षिण-पश्चिम की ओर आधा योजन विस्तृत था। वाराणसी एक समृद्धिशाली नगर था, यह बात वामनपुराण आदि को देखने से स्पष्ट मालूम होती है। काशी का दूसरा नाम वाराणसी है। असि और वरणा नदी से वेष्टित होने के कारण काशी को वाराणसी कहते हैं। बौद्धों के समय काशी में भी बौद्धधर्म का प्रभाव फैला था। सम्प्रति काशी के तीन मील उत्तर की ओर एक बौद्धस्तूप वर्तमान है।

(भारतवर्षीय इतिहास)

काशीनाथ खत्री—इनका जन्म आगरा में १८४९ ई० को हुआ था और निधन १८९१ ई० में सिरसा (हलाबाद) में हुआ। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन्हें साहित्यकारों की सामान्य श्रेणी में रखा है। इनकी पांच कृतियों का अब तक पता चला है, जिनमें से तीन नाटक या रूपक और दो चरित्रविषयक हैं। उनके नाम हैं—'बालविधवा संताप नाटक', 'ग्राम पाठशाला' और 'निकृष्ट नौकरी नाटक', तीन ऐतिहासिक रूपक, 'भारतवर्ष की विख्यात स्त्रियों के चरित्र' और 'यूरोपियन धर्मशीला स्त्रियों के चरित्र'। इनकी साहित्यिक ख्याति अनुवादक के रूप में रही। इन्होंने अंग्रेजी से हिंदी में अनेक अनुवाद किए। इनका ब्लैकी कृत 'सेल्फ कल्चर' का अनुवाद 'नीत्युपदेश' के नाम से विशेष ख्यातिप्राप्त है। शेक्सपियर के नाटकों का भी इन्होंने अनुवाद किया। इस प्रकार हिंदी साहित्य के इतिहास में एक मौलिक लेखक की अपेक्षा एक अनुवादक के रूप में इनकी रचनाएं अत्यंत प्रेरणाप्रद हैं।

काशीराम—इनका जन्म १६६८ ई० में हुआ। ये औरंगजेब के सूबेदार निजामतखां के आरक्षित कवि थे। खोज विवरणों से इनकी तीन रचनाओं का पता लगा है, जिनके नाम हैं—'कनकमंजरी', 'परशुराम संवाद' और 'कवित्त काशीराज' (शिवसिंहसरोज)।

काश्मीर— भारत के इतिहास में काश्मीर राज्य बहुत दिनों से प्रसिद्ध है। प्रजापति कश्यप ने इस नगर की प्रतिष्ठा की थी। वैवस्वत मन्वंतर के प्रारंभ ही में इस राज्य की स्थापना हुई थी। काश्मीर के इतिहास राजतरंगिणी नामक ग्रंथ में कल्हण मिश्र ने काश्मीर की उत्पत्ति और माहात्म्य के विषय में लिखा है, पूर्व काल में कल्प के आरंभ ही से छः मन्वंतर पर्यन्त हिमालय की गर्भभूमि जलमग्न थी। अनंतर वैवस्वत मन्वंतर में प्रजापति कश्यप ने त्रिदेवों की प्रेरणा से इस काश्मीरमंडल का निर्माण किया है। काश्मीर अत्यंत पवित्र स्थान है। नागों के मतानुसार नील महेश्वर इसके रक्षक हैं। अलका के समान शंख पद्म आदि नागगण यहां रहते हैं। यहीं से सूर्य और चंद्र वंश के आदि राजाओं की उत्पत्ति हुई है। इस राज्य का नाम 'कश्यपभीर' था, क्योंकि कश्यप ने इसकी स्थापना की थी। कश्यपभीर शब्द का अपभ्रंश ही काश्मीर या कश्मीर शब्द है। यद्यपि अति प्राचीन ग्रंथों में काश्मीर का नाम पाया जाता है, तथापि महाभारत के पूर्ववर्ती रामायण आदि ग्रंथों में इसका उल्लेख नहीं है। इससे ऐसा अनुमान करने का प्रधान अवसर मिलता है कि उस समय काश्मीर राज्य कतिपय राज्यों में बंट गया था और उन्हीं राज्यों के नाम से परिचित भी होता था। एक समय काश्मीर राज्य तक्षक के राज्य के अंतर्गत हो गया था जिसका प्रमाण भी मिलता है। महाभारत में लिखा है "काश्मीरेष्वेव नागस्य भवनं तक्षकस्य च।" इससे मालूम पड़ता है कि किसी समय काश्मीर का नाम तक्षभवन या तक्षशिला

था । चीन संन्यासी हुएनत्सांग ने भी अपनी यात्रा के विवरण में काश्मीर नाम कहीं नहीं लिखा । किसी समय शारदापीठ या सरस्वतीपीठ नाम से काश्मीर परिचित होता है ।

महाभारत और हरिवंश के अनेक स्थानों में काश्मीर राज्य के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है । महाभारत के वनपर्व में काश्मीर के प्रसिद्ध तीर्थ वितस्ता नदी का उल्लेख हुआ है । वही तीर्थ तक्षक नाग का वासस्थान था । उस तीर्थ में स्नान करने से वाजपेय यज्ञ का फल और पापों की शांति होती है । जम्बू नामक एक तीर्थ भी उस समय काश्मीर में था, इसका भी परिचय मिलता है । जम्बूतीर्थ के विषय में लिखा है—देवऋषि और पितृगणसेवित जम्बू के मार्ग से जाने से अश्वमेध यज्ञ का फल होता है । वहां पांच दिन रहने से मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है । उसकी दुर्गति कभी नहीं होती । युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में अर्जुन दिग्विजय करने के लिए काश्मीर गए थे, उस समय काश्मीरराज ने उनकी अधीनता स्वीकार की थी । मगधराज जरासंध ने जिस समय मथुरा पर आक्रमण किया था, उस समय काश्मीरराज गोनर्द ने उसका साथ दिया था । काश्मीर के इतिहास राजतरंगिणी में लिखा है कि काश्मीरराज गोनर्द ने जरासंध के साथ मिलकर मथुरा पर आक्रमण किया था और वह बलदेव के हाथ मारा गया । चीन संन्यासी हुएनत्सांग ने जिस समय काश्मीर देखा था, उस समय वहां हिंदू और बौद्ध दोनों बसते थे । उस समय वहां एक सौ संघाराम तथा उसमें ५ हजार बौद्ध भिक्षु रहते थे । काश्मीरी लोग बड़े सुंदर होते हैं, यह देश फलपुष्पसंपन्न है, जलवायु शीतल है, चीनी संन्यासी का काश्मीर के विषय में यही मत है ।

(भारतवर्षीय इतिहास)

काश्यप—विष-विद्या-निपुण एक ब्राह्मण का नाम । अभिमन्युपुत्र परीक्षित् मृगया के लिए एक समय वन में गए थे । शमीक नामक एक मौनी मुनि से राजा ने पूछा कि क्या इधर से कोई मृग गया है । मुनि मौनी थे इससे उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, परंतु राजा को तो यह बात मालूम ही नहीं थी । अतएव उन्होंने क्रोध करके एक मरा हुआ सांप मुनि के गले में डाल दिया और हस्तिनापुर लौट आए । शमीक के छोटे लड़के ने जब राजा का यह अत्याचार सुना, तब उसने राजा को शाप दिया कि आज के सातवें दिन सांप के काटने से राजा की मृत्यु होगी । शमीक ने अपने पुत्र को शाप देने के लिए डांटा सही, परंतु शाप का प्रत्याहार उन्होंने नहीं किया । इस संवाद को सुनकर राजा ने भी अपनी रक्षा की व्यवस्था की । विषवैद्य काश्यप भी राजा की चिकित्सा करने के लिए राजधानी की ओर चले । मार्ग में ब्राह्मण वेशधारी तक्षक से इनकी भेंट हुई, काश्यप का अभिप्राय सुनकर तक्षक ने उसकी परीक्षा लेनी चाही । तक्षक ने एक वृक्ष को काटा, काटते ही वह सूख गया; परंतु काश्यप ने अपनी विद्या से उसे जीवित कर दिया । काश्यप की विद्वत्ता देखकर तक्षक ने उसे बहुत धन दिया । धन लेकर ब्राह्मण देवता लौट आए । (महाभारत)

किम्पुरुषः—हिमालय पर्वत के उत्तरभाग का नाम ।

किराताः—टिपराहिल और कम्मिला (जो बांगला देश में हैं) ।

किर्मीर—बक नामक राक्षस का भाई । वनवास के समय पांडव काम्यक वन में आए । उस समय काम्यक वन नरघाती राक्षसों से पूर्ण था । किर्मीर नामक भयंकर राक्षस ने उनका मार्ग रोका, भीम आगे बढ़े, और उस राक्षस से भयानक मल्लयुद्ध करने लगे । बहुत देर तक युद्ध होने के अनंतर किर्मीर मारा गया ।

(महाभारत)

किशोर—इनका पूरा नाम जुगलकिशोर था । इनके पिता का नाम बालकृष्ण और पितामह का नाम निहचलराम था । ये युगल बादशाह मुहम्मदशाह (१७०९-१७४८ ई०) के आश्रित कवि थे । दरबार में इनका बड़ा सम्मान था और इनकी उच्च प्रतिभा के कारण इन्हें राजा की उपाधि से विभूषित किया गया था । इनके लिखे हुए चार ग्रंथ अब तक प्राप्त हुए हैं, जिनके नाम हैं—'अलंकारनिधि', 'किशोरसंग्रह', 'कवित्त संग्रह' और 'फुटकर कवित्त' । इनकी अंतिम रचना एक संकलन है, जिसमें समकालीन कवियों की कविताओं का संग्रह किया गया है ।

किशोरसिंह (महाराव)—(१) कोटा के एक राजा का नाम । ये महाराव उमेदसिंह के पुत्र थे । उमेदसिंह के समय में कोटाराज्य में भयंकर विप्लव हो गया था । प्रधानमंत्री जालिमसिंह ही कोटे के कर्ताधर्ता, सर्वस्व बन बैठे थे । यहां तक कि अंग्रेजी सरकार ने भी उन्हें वंशपरंपरागत कोटे की दीवानी के लिए स्वीकृति दे दी थी । कर्नल टाड साहब लिखते हैं कि सरकार का यह काम अत्यंत अनुचित नहीं है । जो हो, किशोर-

सिंह अनेक प्रकार की विघ्न-बाधाओं को अतिक्रम कर सन् १८२० ई० के अगस्त की १७ तारीख को राजगद्दी पर बैठे।

(२) यह कोटे के राजा माधोसिंह के पांच पुत्रों में से सबसे छोटे थे। इन पांचों भाइयों ने बादशाह शाहजहां के अधिकारों की रक्षा के लिए औरंगजेब के विरुद्ध तलवार उठाई थी। बड़े चार भाइयों ने तो प्राण देकर अपने प्रण की रक्षा की, परंतु किशोरसिंह उस युद्ध में भयानक घायल हुए। चिकित्सा से नीरोग होने पर इन्होंने दक्षिण के युद्ध में बड़ी सुख्याति पाई थी। माधोसिंह की मृत्यु होने पर उनके चौथे पुत्र कनीराम कोटे के राजा हुए। थोड़े ही दिनों में कनीराम का परलोकवास होने पर वहां के सामंतों ने उनके पुत्र प्रेमसिंह का राज्यासन पर अभिषेक किया। छः महीने राज्य करने के बाद इनकी योग्यता का परिचय मिल गया, सामंत और प्रजाओं ने मिलकर इनको राज्य से उतारकर किशोरसिंह को राजा बनाया। राजा होने पर ये औरंगज़ेब की सेना के साथ अपनी सेना लेकर मरहठों से युद्ध करने के लिए दक्षिण गए थे। उस युद्ध में इनकी वीरता की प्रशंसा सभी ने की थी। ये सन् १७४२ ई० में अरकाटगढ़ किले पर अधिकार करने के समय मारे गए।
(टाड्स राजस्थान)

किशोरसूर—सन् १७०४ ई० में इनका जन्म हुआ था। ये शृङ्गार रस के कवि थे और छप्पय छंद ही में ये कविता करते थे।

किष्किन्धा—बालि और सुग्रीव की राजधानी। यह स्थान मद्रास हाते के बिलारी जिले के हम्पी ग्राम के समीप, तुंगभद्रा नदी के उत्तरी तट पर बतलाया जाता है।

कीचक—मत्स्य देशाधिपति विराट का साला और उन्हीं का प्रधान सेनापति। इसकी वीरता से सभी डरते थे। यहां तक कि पराक्रमशाली कौरवराज भी कीचक के भय से मत्स्यदेश पर आक्रमण नहीं करते थे। इसकी मृत्यु होने पर कुरुराज दुर्योधन ने विराट के गोगृह पर आक्रमण किया था।

एक वर्ष के अज्ञातवास का समय बिताने के लिए पांडव रूप और नाम बदलकर विराट के यहां रहते थे। द्रौपदी दासी बनकर और भीम रसोइया बनकर विराट के अंतःपुर में रहते थे। दुर्बुद्धि कीचक द्रौपदी के रूप पर मुग्ध हो गया और उसने अपना दुष्ट अभिप्राय प्रकट किया। द्रौपदी ने उसे झिटक दिया। इससे वह द्रौपदी पर बिगड़ा। द्रौपदी अपनी रक्षा के लिए भागकर सभा में गई, उसके पीछे-पीछे जाकर कीचक ने सबके सामने द्रौपदी को लातों से मारा। द्रौपदी ने कीचक के किए अपमान की बातें भीम से कहीं और उससे बदला चुकाने के लिए भीम को उत्तेजित भी किया। भीम के परामर्श से द्रौपदी ने कीचक को संकेतस्थान में रात को आने के लिए कहा। कीचक प्रसन्न होकर वहां उपस्थित हुआ। स्त्री के कपड़े पहनकर भीम वहां सोए थे, उन्होंने कीचक को पशु की मौत मार डाला।
(महाभारत)

कीर्तिमत्—(१) नृगपुत्र, जिसने बैशाख मास माहात्म्य का तपार्जन करके यमलोक को निर्जन बनाया था।

(२) राजा उत्तानपाद तथा सुनृता का पुत्र और ध्रुव का भाई।

(३) वासुदेव-देवकी का पुत्र, जिसका वध कंस ने किया था। कृष्ण का भाई।

कीर्तिमुख—'पद्मपुराण' के अनुसार एक शिवगण; इसके तीन मुख, तीन पैर, तीन पूंछें और सात हाथ थे। शंकर ने इसे प्रेत रखने के लिए कहा था और उसके इस साहस के कारण शंकर ने उसे वरदान दिया था।

कुकर्दम—पिंडारक क्षेत्र का एक राजा; अपने दुष्कर्मों तथा पापाचरणों के कारण यह प्रेतयोनि में जा गिरा। फिर इसने कहोड़ ऋषि का शिष्यत्व प्राप्त किया और तब ऋषि के द्वारा उसका उद्धार हुआ।

कुक्कुटाराम—यह बौद्धाराम प्राचीन पाटलिपुत्र में था। बुद्ध के समय यहां भद्र नामक एक भिक्षु रहता था, जिसका बुद्ध के प्रमुख शिष्य आनंद से वार्तालाप हुआ था। आचार्य बुद्धघोष के अनुसार इसका निर्माण किसी कुक्कुटसेट्ठी ने कराया था। हुएनत्सांग ने अशोक को इसका निर्माता कहा है। कौशाम्बी के कुक्कुटाराम से यह भिन्न था।

कुचैल—सांदीपनी आश्रम में कृष्ण का सहाध्यायी ब्राह्मण मित्र तथा कृष्णभक्त। दरिद्रता से त्रस्त होकर एक बार इसकी पत्नी ने इसे कृष्ण के पास जाने के लिए कहा। भेंट के लिए जाते समय पत्नी ने चार मूठ चिवड़ा बांधकर इन्हें दे दिया। द्वारका में श्रीकृष्ण ने इसका परम आदर-सत्कार किया। कृष्ण ने भाभी के दिए हुए चावलों की पोटली स्वयं निकाली और उसमें से एक मूंठ मुंह में रखकर खाने लगे। दूसरे दिन वह द्वारका से लौट आया। किंतु जिस दरिद्रताहरण के हेतु पत्नी ने उसे द्वारका भेजा था, उसके

संबंध में उसने कृष्ण से कुछ भी न कहा। किंतु घर आकर उसने देखा कि वह वैभवसंपन्न हो गया है। 'भागवत' (१०।८०।७) में कही गई यह कथा लोकप्रचलित सुदामा की कथा पर चरितार्थ होती है।

कुण्डिन—विदर्भ देश की राजधानी, जहां का प्रसिद्ध राजा भीष्मक था। यह स्थान बरार प्रांत में अमरावती नगर से चालीस मील पूर्व की ओर है।

कुण्डिनपुर—वर्तमान बरार प्रदेश को प्राचीनकाल में विदर्भराज्य कहते थे। पुराणों में लिखा है कि विदर्भराज्य की राजधानी कुंडिनपुर में थी, जहां के राजा भीष्मक थे। यहीं श्रीकृष्ण की महिषी रुक्मिणी उत्पन्न हुई थी। इस नगर के अवस्थान के विषय में कुछ लोगों का विश्वास है कि पश्चिमोत्तर प्रदेश के अंतर्गत जिला बुलंदशहर की अनूपशहर तहसील का अहीर नामक नगर ही पहले कुंडिनपुर या कुंडननगर के नाम से प्रसिद्ध था। दूसरा दल कहता है कि अयोध्या के अंतर्गत खैरीगढ़ जिले के पास एक कुंडिनपुर वर्तमान है, वही पहले समय का कुंडिनपुर है। असम में भी एक कुंडिनपुर है। उसके विषय में भी यही कहा जाता है। परंतु विष्णुपुराण आदि देखने से इन युक्तियों की असारता स्पष्ट ही मालूम पड़ती है।

कुतबन—हिंदी साहित्य के इतिहास में मुल्ला दाउद के बाद कुतबन दूसरे सूफी कवि हुए। उनका स्थितिकाल १५वीं श० ई० के अंत या १६वीं श० ई० के आरंभ में माना गया है। उनकी एकमात्र रचना 'मृगावती' से ज्ञात होता है कि उसका निर्माण उन्होंने जौनपुर के शासक हुसेनशाह के शासनकाल १५०३ ई० में किया था। वे शेख बुदन के शिष्य थे। शेख बुदन अपने समय के प्रसिद्ध सूफी संतों में थे। उन्होंने धर्म की समन्वयात्मक भावना का प्रचार किया था और धार्मिक उदारता के पक्ष को उजागर किया था। उनके इसी धार्मिक औदार्य तथा समन्वयात्मक दृष्टिकोण के कारण कहा जाता है कि सिकंदर ने उन्हें मरवा डाला था।

अपनी इस प्रेमाख्यानक रचना 'मृगावती' को उन्होंने परंपरागत कथा को लेकर किया था। काव्यरूढ़ियों एवं कथा-रूढ़ियों की दृष्टि से उन्होंने भारतीय परंपरा का पालन किया है। दोहा, चौपाई, सोरठा और अरिल्ल आदि विभिन्न छंदों का प्रयोग करके कुतबन ने अपनी इस कृति को अधिकाधिक हृदयग्राही बनाने का प्रयत्न किया है। उसकी भाषा अवधी है। हिंदी के सूफी कवियों के लिए 'मृगावती' एक प्रेरणाप्रद रचना सिद्ध हुई। (हिंदी साहित्य का इतिहास)

कुत्स—ऋग्वेदयुगीन किसी रुरु नामक राजर्षि का पुत्र। इन्द्र का यह परम भक्त था। इन्द्र ने इसके लिए शुष्ण नामक असुर का वध किया था। इन्द्र का यह परम मित्र था। एक बार यह इन्द्र के पास बैठा हुआ था कि शची वहां आईं और उन्होंने कुत्स का परिचय पूछा। तब इन्हें इन्द्र ने आर्जुनेय कहा। इससे पता चलता है कि इनकी माता का नाम अर्जुनी था।

२. चक्षुर्मनु तथा नड़बला का पुत्र।

३. भृगुकुल का गोत्रकार।

४. राम की राज्यसभा का एक ऋषि।

५. अंगिराकुल का गोत्रकार तथा मंत्रद्रष्टा ऋषि।

कुन्तयः—कुंती के जन्मस्थान का नाम। यह मालवा में अश्व नदी के तट पर बसा हुआ था।

कुन्तल—यह एक ऐतिहासिक महत्त्व का नगर था। पृथ्वी देवी के बालों (कुन्तल) के सदृश होने के कारण संभवतः इसका नामकरण हुआ। प्राचीनकाल में यहां पर नन्दवंश के राजा राज्य करते थे। बाद में मराठों तथा चालुक्यों का भी इसपर शासन रहा। गुप्तों तथा वाकाटकों का भी इस नगर से संबंध रहा है। आधुनिक गोंदलोई से कुन्तल का समीकरण किया गया है।

कुन्तलाः—मद्रास हाते के बिलारी जिले के कुछ भाग जिसमें 'कुरुगोड़' है।

कुन्ददन्त—इसकी दंतपंक्ति कुंदकलिकाओं के समान होने के कारण ही संभवतः इसको इस नाम से कहा गया। यह ब्राह्मण विदेह देशवासी था। आत्मज्ञान की अभिलाषा से इसने गृहत्याग किया। जंगल में कदंब वृक्ष से इसने अपनी ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा प्रकट की। उसने इसे अयोध्या जाने के लिए कहा। तदनुसार वह अयोध्या आया और रामभक्त बन गया। महर्षि वशिष्ठ से इसे आत्मज्ञान प्राप्त हुआ। (योगवाशिष्ठ)

कुमारदास—संस्कृत के एक कवि का नाम। ये सिंहलद्वीप के राजा थे। ये कविता में कालिदास के समकक्ष थे। इनका बनाया 'जानकीहरण' नामक एक काव्य है, जो पहले छपा था, परंतु आज उसका मिलना दुर्लभ हो गया है। ये कालिदास के समकालीन थे। कहते हैं, कालिदास और कुमारदास में मित्रता थी; इन्हींकी मित्रता से आकृष्ट होकर कालिदास सिंहलद्वीप गए थे। राजशेखर का एक श्लोक इस बात को

बतलाता है कि कालिदास और कुमारदास की रचना समकक्ष की होती थी।

जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति।
कविः कुमारदासो वा रावणो वा यदि क्षमौ॥

कुमारपाल—ये अनहल के राजा थे और सन् ११५० ई० में विद्यमान थे। १२वीं शताब्दी के अंत में अज्ञातनामा एक कवि थे, जिन्होंने 'कुमारपाल-चरित्र' नामक एक ऐतिहासिक ग्रंथ बनाया। यह ग्रंथ पद्यमय है। इसमें ब्रह्मा से लेकर राजा कुमारपाल तक बौद्ध राजाओं की वंशावली का वर्णन है। कुमारपाल-चरित्र की हस्तलिपि रायल एशियाटिक सोसाइटी में विद्यमान है।

कुमारमणि भट्ट—ये वत्सगोत्रीय तैलंग ब्राह्मण थे। संस्कृत 'गाथासप्तशती' के रचयिता गोवर्द्धनाचार्य के ये वंशज थे। इनके पिता का नाम हरिवल्लभ भट्ट था। ये बड़े विद्वान थे। इनकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर सागर जिले में गढ़मंडल राज्य (मध्यप्रदेश) की रानी दुर्गावती ने उन्हें वनेस तथा धर्मसी नामक दो गांव पुरस्कार में दिए थे, जो कि आज भी इनके वंशजों के पास हैं। इतिहासकारों ने कुमारमणि भट्ट का जन्म १७४६ ई० में निर्धारित किया है। इनका मूल निवास गोकुल (ब्रज) था, किंतु इन्होंने अपना अधिकतर समय दतिया दरबार में व्यतीत किया। ये संस्कृत और हिंदी, दोनों भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे।

इनकी लिखी हुई तीन कृतियों का पता लगा है, जिनमें से दो प्राप्त हुई हैं। इनकी रचनाओं के नाम हैं—'सूक्ति-संग्रह', 'सप्तशती' (संस्कृत, अप्राप्य) और 'रसिक रसाल'। इनका अंतिम ग्रंथ 'काव्य-प्रकाश' की कोटि का प्रसिद्ध काव्यशास्त्रीय ग्रंथ है। मिश्रबंधुओं ने इन्हें पद्माकर की कोटि में रखा है।

कुमारिका—राजा भरत की पौत्री और सिंहलेश्वर शतश्रृंग की कन्या का नाम। राजा शतश्रृंग के इंद्रद्वीप आदि आठ पुत्र और कुमारिका नाम की एक कन्या थी। कुमारिका का मुख बकरी के मुख के समान था।

कहते हैं एक समय एक बकरी पानी पीने के लिए सागर के समीप गई, परंतु एक लता में अटकने से उसका शरीरत्याग हो गया। उसका शरीर सागरजल में पतित हुआ था और मुख लता में ही अटका था। सागर के माहात्म्य से यह बकरी सिंहलराज के घर में उत्पन्न हुई। सिंहलराज की कन्या का शरीर सुंदर अवश्य था परंतु मुख का आकार बकरी के समान था। अपुत्र सिंहलेश्वर को कन्या उत्पन्न हुई है, इस बात को सुनकर सभी प्रसन्न हुए, परंतु उसका मुख देखने से लोगों की प्रसन्नता विषाद के रूप में परिणत हुई। इधर कन्या भी युवती हुई। उसने जब अपना मुख दर्पण में देखा तब उसे अपने पूर्वजन्म की बातें स्मरण हो आईं। वह राजा की आज्ञा लेकर उस स्थान पर आई जहां बकरी का मुख लता में अटका था और उस मुख को उसने सागरजल में फेंक दिया। इससे उसका मुख भी मनुष्यों के मुख के समान हो गया। राजकन्या ने वहीं रहकर शिव की आराधना की। वर देने के लिए शिव वहां उपस्थित हुए। वहां शिव के सर्वदा रहने के लिए उसने प्रार्थना की, शिव ने स्वीकार किया। राजकुमारी ने वहां मंदिर बनवाकर शिवलिंग की स्थापना की। उस शिवलिंग का नाम बर्करेश्वर है। स्वस्तिक नामक एक नागराज मिट्टी छेदकर कुमारिका को देखने आए थे, इससे उस मंदिर के पास एक कूप बन गया और वह गंगाजल से पूर्ण भी हो गया। कुमारिका का ब्याह महाकाल से हुआ था। (स्कंदपुराण)

कुमारिल भट्ट—विख्यात दार्शनिक पंडित और वेदों के भाष्यकार। ये प्रसिद्ध मीमांसक दक्षिण देश में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने मीमांसा के कई ग्रंथ बनाए हैं। शवर स्वामी के भाष्य पर इन्होंने एक टीका लिखी है, जिसका नाम है 'तंत्रवार्तिक'। इनके बनाए दूसरे ग्रंथ का नाम 'मीमांसावार्तिक' है। जिस समय ये उत्पन्न हुए थे उस समय भारत में बौद्धधर्म का बड़ा प्राबल्य था। बालक कुमारिल ने वैदिकधर्म का उद्धार करने का संकल्प किया। कुमारिल ने बौद्धों को ही अपना गुरु बनाया। बौद्धों से विद्या पढ़कर इन्होंने उन्हींका खंडन करना प्रारंभ किया। कुमारिल ने युक्ति और तर्क से बौद्धों के ग्रंथों को मनुष्यकृत अतएव अप्रमाण बताया और वेदों को अपौरुषेय अतएव प्रामाण्य सिद्ध किया। इन्होंने वेदों की पांडित्यपूर्ण व्याख्या लिखी है। बौद्धों ने कुमारिल के साथ शास्त्रार्थ में वैदिक देवताओं के चरित्रदोष का उल्लेख करके उपहास किया। कुमारिल ने युक्तियों से उसका समर्थन किया। बौद्धों ने कहा कि ब्रह्मा ने निज कन्यागमन किया था और देवराज इंद्र ने गुरु-पत्नी-गमन। कुमारिल ने उत्तर दिया, तुम लोग इसका अर्थ नहीं समझते। प्रजापालन करने वाले सूर्य को प्रजापति कहते हैं।

ब्रह्मा सूर्य का नामांतर है। इसका प्रमाण शास्त्रों में वर्तमान है। अरुणोदय के समय ऊषा की उत्पत्ति होती है, इस कारण ऊषा को सूर्य की स्त्री बतलाया गया है। ऊषा के साथ सूर्य का तेज संयुक्त होता है, इसी घटना को लेकर स्त्री-पुरुष की कल्पना की गई है। इंद्र के गुरु-पत्नी-गमन के संबंध में कुमारिल ने कहा—तेजोमय सविता को ऐश्वर्ययुक्त होने के कारण इंद्र कहते हैं। अहल्या का अर्थ है रात्रि। क्योंकि वह—अहनि= दिन में, लीयते= नष्ट होती है। उसी अहल्या रात्रि को सूर्य-इंद्र जीर्ण करते हैं अतएवं उनका नाम अहल्याजार प्रसिद्ध हुआ है। इसी प्रकार अनेक युक्तियों से कुमारिल भट्ट ने बौद्धों को परास्त किया। ये महात्मा शंकराचार्य के समकालीन थे। इन्होंने अपने बौद्ध गुरुओं को परास्त किया था। इस गुरु के अपमानरूप अपराध का प्रायश्चित्त करने के लिए ये प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झांसी) में आए और तुषाग्नि से अपने शरीर को भस्म करने की इच्छा से तुषाग्नि में बैठे। उसी समय शंकराचार्य वहां उपस्थित हुए। शंकराचार्य ने इनसे वैदिक धर्म के उद्धार करने के विषय में अनेक उपदेश ग्रहण किए और उन्होंने इनसे अनुरोध किया कि आप मेरे काम में सहायता दें। यह बात शंकरदिग्विजय के इस श्लोक से स्पष्ट मालूम पड़ती है—

इत्यूचिवांसमथ भट्टकुमारिलं त-
मीषद्विकस्वरमुखाम्बुजमाह मौनी।
श्रुत्यर्थकर्मविमुखान् सुगतान् निहन्तुं
जातं गुहं भुवि भवन्तमहं नु जाने॥

कुमारिल भट्ट ने शंकराचार्य को कहा कि आप माहिष्मती नगरी में मंडन मिश्र के पास जाकर और शास्त्रार्थ कर उनको अपना शिष्य बनाइए। उनसे आपको धर्मोद्धार करने में सहायता मिलेगी। तदनंतर कुमारिल भट्ट जल गए। ये कार्त्तिकेय के अवतार समझे जाते हैं। मीमांसाशास्त्र में गुरुमत और प्रभाकरमत ये दो प्रसिद्ध मत हैं। कुमारिल का ही मत गुरुमत कहा जाता है।

पाश्चात्य विद्वानों ने इनका समय ६ठी सदी बतलाया है। परंतु शंकराचार्य के समकालीन का समय ६ठी सदी कैसे हो सकता है! शृंगेरीपीठ के सुधन्वा ताम्रशासन से मालूम होता है कि युधिष्ठिर के पीछे सत्ताइसवीं सदी में शंकराचार्य ने उस मठ की स्थापना की। अतएव कुमारिल भट्ट का भी वही समय मानना उचित है।

कुमुद्वती—कुश की दो पत्नियों में से एक। कुश की पत्नी चंपका का कोई पुत्र न था। इसका एक पुत्र हुआ, जिसका नाम अतिथि था। कुश के बाद वही सूर्यवंश का उत्तराधिकारी बना। एक बार जलक्रीड़ा करते समय कुश के हस्ताभूषण सरयू में गिर गए थे, जिन्हें कुमुद नाग की बहन कुमुद्वती चुराकर नागलोक में ले गई। आभूषण न मिलने के कारण क्रोधित कुश ने जब सरयू को सोखने के लिए धनुष-बाण उठाया तो कुमुद नाग आभूषणों तथा अपनी बहिन सहित कुश के समक्ष उपस्थित हुआ और उसने आभूषणों सहित कुमुद्वती को भी कुश को समर्पित कर दिया।

कुम्भ—(राणा) ये मेवाड़ के महाराणा थे। इनके पिता का नाम मुकुल था। राणा मुकुल को कुचक्रियों ने मार डाला था। मुकुल के मरने के बाद उनके पुत्र कुंभ सन् १४१९ ई० में मेवाड़ के राजा हुए। इनके समय में मेवाड़ एक समृद्धिशाली राज्य था। इन्होंने अपने पराक्रम से मेवाड़ राज्य की सीमा दृषद्वती नदी तक फैला दी थी। ये शत्रु के प्रति भी दया करते थे। इनकी सेना में अत्याचार करना निषिद्ध था। उस समय गुजरात और मालव, ये दोनों राज्य बड़े पराक्रमी हो गए थे। मालवराज महमूद ने गुजरात के राजा से संधि करके और दोनों सेनाओं को लेकर मेवाड़ पर आक्रमण किया। कुंभ ने उसका सामना किया। कुंभ ने इस युद्ध में महमूद को परास्त और कैद कर लिया। कैदी महमूद के प्रति राणा कुंभ ने दयायुक्त व्यवहार किया और मित्र के समान उपहार देकर उसे छोड़ दिया। महमूद छः महीने तक मेवाड़ में कैद था। कुछ दिनों के बाद, जिस समय दिल्ली का बादशाह कुंभ से लड़ने आया, उस समय महमूद ने राणा का पक्ष ग्रहण किया था। ये संस्कृत के बड़े विद्वान् और कवि थे। जयदेवकृत प्रसिद्ध 'गीतगोविंद' की इन्होंने संस्कृत में एक टीका लिखी है। चित्तौड़ में इन्होंने एक स्तूप बनवाया था, जो आज भी इनकी कीर्तिगाथा का गान कर रहा है। प्रसिद्ध भक्त मीराबाई इन्हींकी स्त्री थी। ५० वर्ष राज्य करने के अनंतर महाराणा कुंभ अपने पुत्र हत्यारे उडा के द्वारा मारे गए।

कुम्भकर्ण—रावण का कनिष्ठ सहोदर भाई। विश्रवा मुनि के औरस और सुमाली राक्षस की कन्या केकसी के गर्भ से यह उत्पन्न हुआ था। इसने कठोर तपस्या

द्वारा ब्रह्मा को संतुष्ट किया था। ब्रह्मा वर देने के लिए उपस्थित हुए। देवताओं ने ब्रह्मा से कहा कि बिना वर पाए ही यह राक्षस इतना अत्याचार करता है, वर पाने पर इसकी क्या गति होगी! ब्रह्मा ने सरस्वती को स्मरण किया और कहा, तुम कुम्भकर्ण के मुंह से देवताओं के अनुकूल वचन निकालो। कुम्भकर्ण ने वर मांगा, मैं बहुत दिनों तक सो सकूं, और छः महीने पर एक दिन भोजन करने के लिए उठूं। वर मांगने के समय कुम्भकर्ण अचेत हो गया। सचेत होने पर वह कहने लगा, मैंने क्या वर मांगा! परंतु अब हो ही क्या सकता था। (रामायण)

कुम्भकोणम्—इसकी गणना दक्षिण भारत के प्राचीनतम नगरों में है। किसी समय यह शिक्षा का महान् केंद्र था। इसका नामकरण कुम्भेश्वर भगवान् के नाम से पड़ा। यहां कुम्भेश्वर के अतिरिक्त सारंगपाणि, नागेश्वर और रामस्वामी के विशाल एवं कलापूर्ण भव्य मंदिर हैं।

कुम्भनदास—ये ब्रज के रहने वाले हिंदी के कवि थे और सन् १५५० ई० में वर्तमान थे। ये वल्लभाचार्य के शिष्य थे। ये अष्टछाप के कवियों में से हैं।

कुम्भनिकुम्भ—कुम्भकर्ण के वृत्रज्वाला से उत्पन्न दो पुत्र, जो कि अत्यंत पराक्रमी और बलवान् थे। रामसेना के साथ इनका भयंकर युद्ध हुआ था। सुग्रीव द्वारा कुम्भ और हनुमान द्वारा निकुम्भ का वध हुआ। (रामायण)

कुम्भा—इसका अस्तित्व ऋग्वैदिककालीन है। सिंधु नदी की यह सहायक नदी हिंदुकुश के दक्षिण में है। यूनानी इसे 'कोफेन' नाम से कहते हैं। यह वर्तमान काबुल नदी है, जो कि अटक के कुछ मील उत्तर दिशा में सिंधु में मिल जाती है।

कुम्भीनसी—(१) लंकेश्वर रावण की मौसी का नाम। यह रावण की माता केकसी की छोटी बहिन थी। एक समय रावण दिग्विजय करने के लिए बाहर गया हुआ था, उस समय मधु नामक दैत्य ने कुम्भीनसी को हर लिया। इसका संवाद सुनकर रावण मधु को दंड देने के लिए मधुवन गया। परंतु कुम्भीनसी के कहने से दोनों में मित्रता हो गई। कुम्भीनसी के गर्भ से लवणासुर का जन्म हुआ था जिसे शत्रुघ्न ने मारा था। (रामायण)

(२) गंधर्वराज अंगारपर्ण की पत्नी का नाम। अंगारपर्ण का दूसरा नाम चित्ररथ था। पांडवों के वनवास के समय में चित्ररथ को अर्जुन ने कैद कर लिया था एक समय रात्रि को भयानक जंगल को लांघकर पांडव गंगा के किनारे उपस्थित हुए। गंधर्व चित्ररथ उस समय स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा कर रहा था। पांडवों के आने से उसकी जलक्रीड़ा में विघ्न उपस्थित हुआ, इस कारण वह युद्ध करने को प्रस्तुत हुआ। अर्जुन और चित्ररथ दोनों लड़ने लगे। अर्जुन ने उसे परास्त करके कैद कर लिया। कुम्भीनसी की प्रार्थना से प्रसन्न होकर युधिष्ठिर ने चित्ररथ को छुड़वा दिया। इसके उपलक्ष्य में चित्ररथ ने अर्जुन को मायायुद्ध सिखाया। चित्ररथ ने पराजित होकर अपना चित्रवर्ण का रथ जला दिया और अपना नाम दग्धरथ प्रसिद्ध किया। (महाभारत)

कुरु—भरतवंशी महाराज संवरण के पुत्र का नाम। महिषी तपती के गर्भ से ये उत्पन्न हुए थे। ये एक धर्मात्मा राजा थे। कुरुजांगल नामक स्थान में बहुत दिनों तक इन्होंने कठोर तपस्या की थी। इनका वंश भी इन्हींके नामानुसार कुरु नाम से प्रसिद्ध है।

कुरुक्षेत्र—तीर्थविशेष। यह बहुत ही प्राचीन तीर्थ है। शतपथब्राह्मण तथा उपनिषदों में भी इसका उल्लेख किया गया है। महाभारत या अन्य पुराणों में लिखा है कि कुरु ने कुरुक्षेत्र का कर्षण किया। महाभारत शल्यपर्व के ५३वें अध्याय में यह विषय लिखा है। ऋषिगण बलराम से कहते हैं—राम! यह सामंतपंचक प्रजापति की सनातनी उत्तर वेदी के नाम से प्रसिद्ध स्थल है। पहले यहां देवताओं के प्रधान-प्रधान यज्ञ हो चुके हैं। महानुभाव राजर्षि कुरु ने बहुत दिनों तक इस स्थान का कर्षण किया था। इसी कारण इसको कुरुक्षेत्र कहते हैं। कुरुक्षेत्र की सीमा के विषय में महाभारत में लिखा है कि दृषद्वती नदी के उत्तर और सरस्वती नदी के दक्षिण कुरुक्षेत्र है। तरंतुक, अरंतुक, रामह्रद, सकल और मचक्रुक स्थान के समीप का स्थान कुरुक्षेत्र कहा जाता है। इस तीर्थ का परिमाण बारह योजन है। इसमें ३६५ तीर्थ विद्यमान हैं।

कुरुक्षेत्र—हरियाणा प्रदेश का एक नगर।

कुरुजाङ्गल—इसके विषय में अनेक मत प्रचलित हैं। कोई कहते हैं कि कुरुक्षेत्र जंगल से पूर्ण था। कुरु ने उस जंगल को कटवाकर साफ करवा दिया था, इसी कारण उसका नाम कुरुजांगल पड़ा। किसी के मत से कुरुक्षेत्र के आस-पास के स्थानों को कुरुजांगल कहते हैं। रामायण में लिखा है हस्तिनापुर और

पांचाल के पश्चिम की ओर का स्थान कुरुजांगल कहा जाता है। राजर्षि कुरु के नामानुसार यह नाम प्रसिद्ध है। महाभारत के आदिपर्व में लिखा है कि कुरुक्षेत्र और कुरुजांगल ये दोनों स्थान एक ही हैं। वहां लिखा है कि महातपी कुरु की तपस्या से कुरुजांगल पवित्र हुआ और उन्हींके नामानुसार कुरुक्षेत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कुरुजाङ्गला:—कुरुदेश के पश्चिम में जो बड़ा भारी जंगल था उसको कुरुजांगला: कहते थे। यह कौरवों की राजधानी हस्तिनापुर से उत्तर-पश्चिम की ओर तथा दिल्ली ,से उत्तर-पूर्व की ओर स्थित था। अब इसका नामोनिशान तक नहीं है। गंगा द्वारा यह बहा दिया गया है।

कुलपति मिश्र—ये आगरा निवासी थे। इनके पिता का नाम परशुराम मिश्र था। महाकवि बिहारी इनके मामा और केशवराय इनके नाना थे। ये महाकवि भूषण के समकालीन १७वीं शती ई० में हुए। संस्कृत और हिंदी दोनों भाषाओं पर इनका समान अधिकार था। मिश्र बंधुओं ने इन्हें 'भूषणकालीन परमोत्तम' कवियों की कोटि में रखा है और इनके आचार्यत्व तथा पांडित्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

हिंदी साहित्य के काव्यशास्त्रीय आयामों में कुलपति मिश्र का प्रतिष्ठित स्थान है। इस दृष्टि से इनका स्थान चिंतामणि, मतिराम, देव, श्रीपति और भिखारीदास के समकक्ष है। ये रसवादी आचार्य थे। इनकी रचनाओं का विशेष महत्त्व इनकी सरल, सुगम शैली के कारण है। इनकी इस रचना शैली को परवर्ती कवियों एवं आचार्यों ने भी ग्रहण किया है।

कुलपति मिश्र की जिन रचनाओं को इतिहासकारों ने निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है, उनके नाम हैं —'रसरहस्य', 'द्रोणपर्व', 'युक्तितरंगिणी', 'नखशिख' और 'संग्रामसार'। इनके अतिरिक्त 'दुर्गाभक्तिचन्द्रिका' और 'गुणरसरहस्य' को भी इनकी रचनाएं माना गया है। उनका 'रसरहस्य' मम्मट के 'काव्यप्रकाश' की कोटि का प्रौढ़ काव्य-शास्त्रीय ग्रंथ है। इन्होंने अपनी इन रचनाओं को १६६७-१६८६ ई० के बीच लिखा।

कुलिन्दराज—एक राजा। यह महाभारत के युद्ध में पांडवों की ओर थे। इन्होंने अपने युद्धकौशल से कुरुपक्ष को तंग कर दिया था। इनके दो भाई और थे जिनमें से एक का नाम विखर्द्दी था। इन तीनों भाइयों ने महाभारत के युद्ध में वीरतापूर्वक युद्ध किया था।

कुलिन्दा—कुरुक्षेत्र के उत्तरवाला, देश जहां अब सहारनपुर जिला है।

कुलिशी—इसका अस्तित्व ऋग्वेदकालीन है। वहां उसे वाह्लीक प्रदेश की नदी बताया गया है।

कुवलयाश्व—(१) महाराज श्रावस्त के पौत्र और बृहदश्व के पुत्र का नाम। इनके पितामह श्रावस्त ने श्रावस्ती नाम की नगरी बसाई थी। कुवलयाश्व ने महर्षि उत्तंक की आज्ञा से धुंधु नामक राक्षस को मारा था। अतएव ये धुंधुमार नाम से भी प्रसिद्ध हैं।
(श्रीमद्भागवत)

(२) शत्रुजित् नामक राजा के पुत्र का नाम। इनका दूसरा नाम ऋतध्वज था। इनके घोड़े का नाम कुवलय था। इस कारण ये कुवलयाश्व नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। एक समय पातालकेतु नामक दानव का अनुसरण करते हुए कुवलयाश्व पातालपुर में उपस्थित हुए थे और वहां उन्होंने गंधर्वराज विश्वावसु की कन्या मदालसा को ब्याहा था। उन्होंने मदालसा से पातालकेतु का पता जानकर उसका वध किया। तदनंतर कुवलयाश्व अपने घर लौट आए। पातालकेतु का छोटा भाई तालकेतु कुवलयाश्व से बदला चुकाने के लिए राजधानी के निकट तापस वेष में जाकर रहने लगा। एक समय राजकुमार कुवलयाश्व उसके आश्रम में गए। तापसवेशधारी तालकेतु ने राजकुमार से पगड़ी मांगी, राजकुमार ने दे दी। वह पगड़ी लेकर और आश्रम की रक्षा का भार राजकुमार को देकर राजधानी में चला गया और राजकुमार की पगड़ी राजा के हाथ में देकर उसने राजकुमार की मृत्यु की बात कही। पति की मृत्यु सुनकर मदालसा ने उसी समय प्राणत्याग किया। जब राजकुमार घर आए तब उन्हें मदालसा की मृत्यु से बड़ा कष्ट हुआ और उन्होंने प्रतिज्ञा की—'मैं अब दूसरा विवाह नहीं करूंगा।' जन्मांतर में मदालसा से मिलने के लिए राजकुमार प्रार्थना करने लगे। मदालसा ने पाताल में नागराज के वंश में जन्म ग्रहण किया। इन्हीं नागराज के पुत्रों से कुवलयाश्व की बड़ी प्रीति थी। घटनावश कुवलयाश्व नागलोक में उपस्थित हुए और वहां विरहिणी मदालसा से मिलकर प्रसन्न हुए।
(मार्कण्डेयपुराण)

कुवलयादित्य—काश्मीर के एक राजा का नाम। ये ललितादित्य के पुत्र थे। ललितादित्य के परलोक सिधारने

पर काश्मीर के राज्य पर कुवलयादित्य का अभिषेक हुआ। १ वर्ष १५ दिन तक इन्होंने राज्य करके राज्य त्याग दिया और वन में जाकर तपस्या करने लगे। (राजतरंगिणी)

कुल्लूक भट्ट—मनुसंहिता के विख्यात टीकाकार। इनकी बनाई मनुस्मृति की टीका का नाम 'मन्वर्थमुक्तावली' है। इनके पिता का नाम दिवाकर भट्ट था। ये गौड़-देश के नंदनग्राम में रहते थे और वारेंद्र श्रेणि के शांडिल्यगोत्री ब्राह्मण थे। इन्होंने काशी में संस्कृत का अध्ययन किया था और वहां ही मनुस्मृति की टीका भी लिखी थी। खृ० १३वीं सदी के मध्य में ये उत्पन्न हुए थे। इनके बड़े भाई का नाम पुरुषोत्तम वेदांतवागीश था। ताहिरपुर के रायवंशी राजा इन्हीं-के वंशज हैं। कुल्लूक भट्ट ने गोविंदराज के भाष्य के अनुसार मनु की टीका लिखी है और कहीं-कहीं उनके मत का खंडन भी किया है।

कुश—अयोध्याधिपति महाराज रामचंद्र के ज्येष्ठ पुत्र। ये सीता के गर्भ से महर्षि वाल्मीकि के तपोवन में उत्पन्न हुए थे। कुश और उनके छोटे भाई लव ने रामचंद्र की सभा में वाल्मीकिरचित रामायण का पाठ कर लोगों को मुग्ध किया था। रामचंद्र ने इन्हें कुशावती नगरी का अधिकार दिया था। रामचंद्र के बैकुंठ जाने पर अयोध्या की शोभा नष्ट हो गई, इसी कारण अयोध्या की अधिष्ठात्री देवी कुशावती नगरी में रात को कुश के शयनगृह में उपस्थित हुई थी और अयोध्या की दुर्दशा की बात सुनाकर पैतृक राज्य अयोध्या में जाने के लिए कहा था। देवी के कहने से कुश कुशावती छोड़ अयोध्या चले आए। (रघुवंश)

कुशध्वज—ये मिथिला के राजा ह्रस्वरोमा के पुत्र और रामायण-प्रसिद्ध सीता के चाचा थे। सीता के पिता का नाम था सीरध्वज जनक। कुशध्वज उनके छोटे भाई थे। इनकी दो कन्याएं थीं। ज्येष्ठा मांडवी का ब्याह भरत से और कनिष्ठा श्रुतकीर्ति का ब्याह शत्रुघ्न से हुआ था। सीरध्वज ने राजा सुधन्वा को जीतकर उनका सांकाश्य नामक राज्य अपने छोटे भाई कुशध्वज को दे दिया था। इनके पूर्वपुरुष निमि और मिथि थे। (रामायण)

कुशनाभ—महाराज कुश का पुत्र। प्राचीन काल में ब्रह्मा के पुत्र पराक्रमी कुश नामक प्रजापति उत्पन्न हुए थे। महाराज कुश के चार पुत्र थे—कुशाम्ब, कुशनाभ, अमूर्तरज, और वसु। कुशनाभ महोदय नगर में राज्य करते थे। (देखो कन्नौज)

कुशपुर—एक प्राचीन नगर का नाम। हुएनत्सांग के लिखने से मालूम होता है कि वे कौशाम्बी से कुशपुर गए थे। चीन परिव्राजक ने उस नगर का नाम लिखा है 'किया-शे-पू-लो।' बहुत लोग अनुमान करते हैं कि यह काशीपुर है परंतु हिंदू समाज में यह नगर कुश-पुर या कुशभवनपुर नाम से प्रसिद्ध है। इस नगर की स्थापना के विषय में कई प्रकार की किंवदंतियां प्रचलित हैं। कोई कहते हैं रामचंद्र जी के पुत्र कुश ने इस नगर की प्रतिष्ठा की थी। किसी का मत है कि यह कुशनाभ की राजधानी थी। इसी प्रकार इस विषय में मतभेद है। परंतु चीनयात्री हुएनत्सांग लिखते हैं कि कौशाम्बी से उत्तर की ओर ११७ मील चलने के बाद उन्हें कुशपुर मिला था। अयोध्या से २८-३० मील की दूरी पर वह नगर था। इन प्रमाणों के बल पर गोमती नदी के तीर पर सुलतानपुर के पास कुश-पुर होना प्रतीत होता है अथवा उसीके भग्नांश पर सुलतानपुर की नींव दी गई हो।

कुशस्थली—द्वारका, जो काठियावाड़ में है।

कुशस्थली या कुशावती—दक्षिण कोशल की राजधानी का नाम। इसकी किस समय और किस प्रकार स्थापना हुई, इस विषय में पुराणों में बहुत कुछ लिखा है। शर्याति के परम धार्मिक आनर्त नामक एक पुत्र था। आनर्त का पुत्र रेवत कुशस्थली में रहता था, रेवत के पुत्र भी इसी पुरी में रहते थे। विष्णुपुराण में लिखा है कि पुण्यजन नामक राक्षस ने इस नगरी को नष्ट कर दिया था। मत्स्यपुराण में लिखा है कि कुकुक्षि के पूर्वपुरुष आनर्त इस देश के अधिपति थे। उनकी राजधानी का नाम कुशस्थली था। कुशराज्य कुशस्थली और कुशावती कुशस्थली दोनों एक हैं या भिन्न, इस बात का निर्णय करना कठिन है। रामायण में कुशस्थली का नाम नहीं मिलता। वहां केवल कुशावती ही का उल्लेख पाया जाता है।

कुशाग्र—'भागवत' के अनुसार उपरिचर वसु का पौत्र तथा वृहद्रथ का पुत्र; जरासंध का अनुज; इसके पुत्र का नाम ऋषभ था।

कुशाम्ब—अपर नाम कुशाम्बु; पिता का नाम कुश या कुशिक और पुत्र का नाम गाधि; इसे कौशाम्बी का स्थापक कहा गया है।

(२) उपरिचर वसु का पुत्र, जिसे मणिवाहन नामांतर से भी कहा गया है। यह चेदि देश का

स्वामी था ।

कुशिक—गाधिराज के पिता का नाम । गाधिराज विश्वामित्र के तपोबल से ब्राह्मण हो गए थे । एक समय प्रसिद्ध च्यवन मुनि ने ध्यान से जाना कि कुशिकवंश के संयोग से हमारे वंश में क्षत्रियत्व संक्रांत होगा, इसको अनुचित जानकर उन्होंने कुशिकवंश का नाश करने का संकल्प किया । परंतु उनकी सब चेष्टाएं व्यर्थ हुईं । च्यवनवंशी ऋचीक मुनि ने गाधिराज की कन्या को ब्याह लिया । इसी विवाह से जमदग्नि उत्पन्न हुए और जमदग्नि के पुत्र परशुराम हुए । (महाभारत)

कुशीनगर—इस नगर में बुद्धदेव का निर्वाण हुआ था, इस कारण बौद्धों के लिए यह महान् तीर्थ है । कुशीनगर के विषय में प्रो० विल्सन कहते हैं कि सम्प्रति कशरई नामक नगर ही पुरातन प्रसिद्ध कुशीनगर है । लोगों ने इस मत का समर्थन भी किया है । गोरखपुर से ३५ मील पूर्व की ओर इस नगर का चिह्न पाया जाता है । प्राचीन कुशीनगर के अतिशय समृद्धिशाली होने का अनुमान उसके भग्नांश से भी किया जाता है ।

कुशीनारा—इस नगर में सम्राट् अशोक ने स्तूप निर्मित कराया था । बुद्ध ने यहीं पर महापरिनिर्वाण प्राप्त किया था । कनिंघम ने गोरखपुर जिले के पूर्व में स्थित वर्तमान कसया से कुशीनारा का समीकरण किया है । मल्लों की यह राजधानी थी और उन्होंने तथागत के पार्थिव अवशेषों की स्मृति में एक स्तूप निर्मित कराया था । उनका एक संघाराम भी था ।

कुशीबल—'पद्मपुराण' (उ० १७८) की एक कथा में कहा गया है कि भावशर्मा नामक एक ब्राह्मण का अत्यधिक ताड़ी-सेवन के कारण ताड़ वृक्ष में जन्म हुआ । इसी प्रकार आजीवन कुछ भी दान न करने के कारण कुशीबल नामक ब्राह्मण मरने के बाद ब्रह्मराक्षस बना और सपरिवार उसी ताड़ वृक्ष पर निवास करने लगा । उन दोनों का 'गीता' के आठवें अध्याय का पाठ करने से उद्धार हुआ ।

कुशीलव—'रामायण' में राम के पुत्र कुश और लव के लिए कुशीलव का प्रयोग हुआ है । वाल्मीकि ने जानबूझकर ऐसा किया था, जिससे कि उनके बारे में किसी को कुछ पता न चले । वाल्मीकि मुनि ने स्वयं भी उनसे कहा था कि वे किसी को अपना नाम न बताएं ।

कुशेशय—काश्मीर के राजा । इनके पिता का नाम लव था । इन्होंने एक अग्रहार ब्राह्मण को दान दिया था ।

कूर्म—विष्णु का द्वितीय अवतार । समुद्रमंथन के समय भगवान् ने कूर्मरूप धारण किया था ।

कूर्मपुराण—कूर्मरूपधारी भगवान् ने इसका वर्णन पहले किया था । नारद ने उसी तत्त्व को सूतजी से कहा था और सूत जी ने अन्यान्य महर्षियों से । ब्राह्मी, भागवती, सौरी और वैष्णवी इन चार संहिताओं में यह पुराण पहले विभक्त था; परंतु आज ब्रह्मसंहिता के अतिरिक्त दूसरी संहिता नहीं पाई जाती है । इस समय ब्रह्मसंहिता को ही हम लोग कूर्मपुराण कहते हैं । सृष्टिवंशानुवर्तन, दक्षयज्ञ, वामनावतार, कृष्णचरित्र आदि इस पुराण में वर्णित हैं । दानधर्म माहात्म्य, नित्यकर्म, अशौच-विचार आदि विषय इसीके अंतर्गत हैं । इस पुराण में ईश्वरगीता और व्यासगीता नामक दो अध्यायों में विनियोग और ब्रह्मचारी का धर्म बतलाया गया है । शिव-दुर्गा का माहात्म्य वर्णन करना ही इस पुराण का मुख्य उद्देश्य है । इस पुराण के मत से वायुपुराण और शिवपुराण दोनों ही महापुराण हैं । कूर्मपुराण में देवी का सहस्र-नामस्तव है ।

कूर्मी—एक जाति विशेष जो किसानी करती है ।

कृत—सन्नति का पुत्र; व्यास की साम शिष्य-परंपरा में हिरण्यनाभ कौसल्य का शिष्य; इसने साम संहिता का चतुर्विंशतिधा विभाग किया था, जिन्हें प्राच्य साम कहा जाता है । (हरिवंश)

२. राजा जय का पुत्र और हर्यवन का पिता ।

३. वसुदेव-रोहिणी का पुत्र ।

४. मणिवर तथा देवजनी का गुह्यक पुत्र ।

कृतवर्मा—यदुवंशी राजा कनक के पुत्र । कनक के चार पुत्र थे । उनके नाम ये थे—कृतवीर्य, कृतौजा, कृतवर्मा और कृताग्नि ।

कृतवीर्य—राजा धनक का ज्येष्ठ पुत्र और कार्तवीर्यार्जुन या सहस्रार्जुन का पिता; संकट चतुर्थी व्रत के फलस्वरूप इसे ऐसा पराक्रमी पुत्र प्राप्त हुआ था ।

कृत्तिवास—बंगाल के विख्यात कवि । इन्होंने बंगला भाषा में 'रामायण' की रचना की थी । खृष्ट की १४वीं सदी में ये उत्पन्न हुए थे । इन्होंने वाल्मीकीय रामायण का अवलंबन करके अपने काव्य की रचना की है । परंतु वाल्मीकि-रामायण की कथा से इनके काव्य में अनेक भेद पाए जाते हैं ।

कृपाचार्य—प्रसिद्ध गौतम ऋषि के पुत्र । कहते हैं कि सरकंडे पर फेंके हुए गौतम के वीर्य से इनका जन्म

हुआ था। कृपाचार्य धनुर्विद्या में पारंगत थे और दुर्योधन आदि को इस विद्या की शिक्षा भी देते थे। कुरुक्षेत्र के युद्ध में इन्होंने कौरवों के पक्ष से युद्ध भी किया था। अन्यान्य पुराणों में इनका जन्म-विवरण इस प्रकार मिलता है—धनुर्विद्या के आचार्य तपस्वी शरद्वान् शिशु अपने पुत्र और कन्या को वन में छोड़ आए। दैवयोग से राजा शांतनु उसी वन में शिकार खेलने गए और इस अनाथ बालक और बालिका को अपने घर ले आए। इनकी कृपा से बच्चों की पालना हुई। इस कारण पुत्र का नाम कृप और कन्या का नाम कृपी हुआ। कुछ दिनों के बाद शरद्वान् ने अपना परिचय देकर पुत्र को अस्त्रशस्त्र की शिक्षा दी।

कृपानिवास—इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें एक कल्पित व्यक्ति माना है। किंतु इधर इनके संबंध में जो भी नई खोजें हुई हैं, तदनुसार ये रामभक्ति-शाखा के रसिक संप्रदाय के आचार्य एवं कवि थे। ये दक्षिण भारतीय थे और इनका जन्म १७५० ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम सीतानिवास और माता का नाम गुणशीला था। भगवान् श्रीरंगम् के ये परम उपासक थे। इनके दीक्षागुरु रामानुजीय वैष्णव संत आनंदविलास थे। भक्ति की भावधारा में निमग्न होकर इन्होंने घर-बार छोड़ दिया था और ये चारों धामों की पैदल यात्रा करके अग्रदास के आचार्यपीठ रेवसा (जयपुर) गए। वहां से अयोध्या तथा उज्जैन रहने के बाद अंत में ये चित्रकूट में जा बसे। साकेतवास करते हुए इनका जीवनांत हुआ।

युगलप्रिया के अनुसार इन्होंने लगभग एक लाख से अधिक स्फुट छंदों की रचना की थी, जिनमें से संप्रति कुछ ही उपलब्ध हैं। इनकी ये उपलब्ध रचनाएं कवित्व की दृष्टि से और सैद्धांतिक प्रतिपादन की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। कुछ पद अत्यंत भावप्रवण एवं सरस हैं।

कृपाराम—इनके संबंध में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। इनकी एकमात्र रचना प्राप्त हुई है, जिसका नाम 'हिततरंगिणी' है। इसकी पुष्पिका में इसका रचनाकाल १५४१ वि० है। अतः निर्विवाद रूप से इनका स्थितिकाल १६वीं शती में निर्धारित किया जा सकता है। इसका विषय नायिकाभेद-निरूपण है। इस दृष्टि से 'हिततरंगिणी' हिंदी साहित्य की प्रथम उपलब्ध काव्यशास्त्रीय कृति और कृपाराम प्रथम काव्यशास्त्रीय आचार्य सिद्ध होते हैं। इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस रचना को अत्यंत सरस, भावपूर्ण और परिमार्जित कहा है।

कृपी—द्रोणाचार्य की स्त्री और अश्वत्थामा की माता। यह कृपाचार्य की भगिनी थी। (देखें कृपाचार्य)

कृश—एक ऋषि; यह शरीर से अत्यंत कृश था। अतः इसका ऐसा नामकरण हुआ। इसने अपना सारा जीवन तपस्या में बिताया। वीरद्युम्न के पुत्र भूरिद्युम्न को इसने अपने तपोबल से जीवनदान किया था।

कृशाश्व—प्रजापति एवं यजुर्वेद शाखा से संबद्ध ऋषि; दक्ष प्राचेतस ने अपनी साठ कन्याओं में से अर्चि और धिषणा को इन्हें दिया था। अर्चि से धूम्रकेश और धिषणा से वेदशिरस्, देवल, वयुन तथा मनु नामक चार पुत्र हुए। इनकी दो कन्याएं भी थीं, जिनके नाम जया और प्रभा थे। इनकी माता का नाम स्पष्ट नहीं है।

(२) राजा सहदेव का पुत्र और सोमदत्त का पिता।

(३) पाणिनि व्याकरण में कुछ विशिष्ट सूत्रों का निर्माता।

कृष्ण—(१) वसुदेव के पुत्र। ये देवकी के गर्भ और वसुदेव के औरस से मथुरा में उत्पन्न हुए थे। ये भगवान् विष्णु के पूर्ण अवतार थे। स्वयं भगवान् विष्णु देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। देवकी के छः लड़के मारे जाने पर भगवान् विष्णु की कला देवकी के गर्भ में प्रविष्ट हुई। विष्णु ने योगमाया को कहा, देवि, तुम ब्रज में जाओ। वहां नन्द के घर में वसुदेव की स्त्री रोहिणी है। न केवल रोहिणी किंतु अन्यान्य अनेक वसुदेव की स्त्रियां कंस के भय से छिप-लुककर दिन बिता रही हैं। तुम जाकर देवकी का गर्भ रोहिणी के गर्भ में स्थापित करो। वह गर्भ नष्ट नहीं होगा, क्योंकि वह हमारा अंश है। तदनंतर हम पूर्ण रूप से देवकी के गर्भ से उत्पन्न होंगे और तुम भी नंद की स्त्री यशोदा के गर्भ से जन्म ग्रहण करना। वसुदेव और देवकी को कंस ने कैद कर रखा था। देवकी कंस की भगिनी थी। इस संबंध से कंस कृष्ण का मामा हुआ। मगधराज जरासंध कंस का श्वशुर था। उसने अपने श्वशुर की सहायता से पिता उग्रसेन को राज्य से निकालकर मथुरा का राज्य अपने हाथ में कर रखा था। कंस ने देवकी को वसुदेव से ब्याहा था। विवाह के समय देववाणी हुई कि देवकी

का आठवां गर्भ कंस का वध करेगा। इस देववाणी को सुनकर कंस ने देवकी और वसुदेव को कैद कर लिया। कारागार में जितने वसुदेव के लड़के होते गए, कंस ने सभी को मार डाला। आठवें गर्भ से भाद्रकृष्ण अष्टमी की आधी रात को श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए। उस समय वसुदेव श्रीकृष्ण को लेकर नंद के घर गए। उसी रात्रि को यशोदा के गर्भ से एक कन्या उत्पन्न हुई थी। वसुदेव श्रीकृष्ण को वहां रखकर और कन्या को लेकर मथुरा लौट आए।

प्रभात होते ही कंस को यह संवाद मिला कि देवकी के कन्या उत्पन्न हुई है। उसने कन्या को मारने की आज्ञा दी। ज्योंही वह पत्थर पर पटकी गयी, त्योंही वह ऊपर चली गई, लोग देखते ही रहे। उस कन्या ने कहा, "दुर्बुद्धि कंस ! तुमको मारने वाला उत्पन्न हो गया।" अपने मारने वाले का उत्पन्न होना सुनकर कंस ने देवकी और वसुदेव को कैद रखा जाना निष्फल समझा और शीघ्र ही उन्हें छोड़ दिया। श्रीकृष्ण गोकुल में लालित-पालित होकर दिन-दिन बढ़ने लगे। श्रीकृष्ण विष्णु भगवान के अष्टम अवतार हैं। इनका जीवन तीन भागों में बांटा जा सकता है—१. ब्रजलीला, २. मथुरालीला और ३. द्वारकालीला। १. ब्रजलीला में श्रीकृष्ण की अलौकिक शक्तियों का परिचय मिलता है। यमलार्जुनवेषधारी दो सिद्धपुरुषों की मुक्ति, कंस की भेजी पूतना राक्षसी तथा बक, अघ, अरिष्ट आदि राक्षसों का विनाश, कालियनाग का दमन और निर्वासन, राधा आदि सौ गोपियों के साथ रास-क्रीडा करना आदि बातें उनकी अलौकिक शक्ति के प्रमाण और समर्थक हैं। वृषभानुनंदिनी प्रेममयी राधिका श्रीकृष्ण पर अनुरक्त हुईं। राधिका का विवाह एक क्लीब से हुआ था अतएव शास्त्रानुसार इनका विवाह नहीं हुआ था। यद्यपि राधा परकीया थीं तथापि परस्त्री नहीं थीं। भागवत में राधा का नाम कहीं नहीं मिलता। २. मथुरालीला—जब अनेक छल-बल कर के भी कंस श्रीकृष्ण का वध नहीं करवा सका, तब उसने श्रीकृष्ण और बलराम को मथुरा ले आने के लिए अक्रूर को भेजा। अक्रूर ने कंस के अत्याचारों से यादवों की रक्षा करने के लिए श्रीकृष्ण से कंस की गुप्त मंत्रणा प्रकाशित कर दी और कंस को मारने के लिए श्रीकृष्ण को उत्तेजित भी किया। श्रीकृष्ण और बलराम अक्रूर के साथ मथुरा में आए। कंस ने श्रीकृष्ण को मरवा डालने के लिए पहलवान बुलवाए थे और कुवलयापीड नामक मदमत्त हाथी सिंहद्वार पर खड़ा करवा दिया था। श्रीकृष्ण ने मथुरा की सड़क पर जाती हुई कंस की चन्दनवाहिनी कुब्जा को अंग-दोष से मुक्त किया और पहलवान तथा कुवलयापीड को मारकर कंस की सभा में उपस्थित हुए। कंस ने श्रीकृष्ण पर वार किया, परंतु वह स्वयं मारा गया। उग्रसेन चाहते थे कि श्रीकृष्ण मथुरा के राजा हों, परंतु श्रीकृष्ण ने समझा-बुझाकर उग्रसेन को ही मथुरा का राजा बनाया, तदनंतर अवंतीनगर में जाकर वेदज्ञ ब्राह्मण सांदीपनी से शास्त्राध्ययन करने लगे। पंचजन नामक दैत्य आचार्य सांदीपनी के पुत्र को एक दिन हर ले गया। श्रीकृष्ण ने उसको मारकर गुरुपुत्र का उद्धार किया। पंचजन दैत्य को मारने से श्रीकृष्ण को पांचजन्य नामक शंख मिला था। ३. द्वारकालीला—विदर्भराज भीष्मक की कन्या रुक्मिणी श्रीकृष्ण को अपना पति बनाना चाहती थी, और उसने अपना अभिप्राय दूत द्वारा श्रीकृष्ण को जतलाया। श्रीकृष्ण के साथ रुक्मिणी के ब्याह का प्रस्ताव राजा भीष्मक से किया गया, परंतु उन्होंने अपने पुत्र की सम्मति से वह प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया। तब श्रीकृष्ण बलराम आदि को लेकर स्वयं स्वयंवर-सभा में उपस्थित हुए और वहां से रुक्मिणी को हर कर ले चले। रुक्मी ने जाकर उनको रोका, दोनों में युद्ध होने लगा। रुक्मिणी के कहने से संकटापन्न रुक्मी को श्रीकृष्ण ने छोड़ दिया। शिशुपाल ने भी रुक्मिणी के लिए युद्ध किया था परंतु वह हार गया। रुक्मिणी के गर्भ से श्रीकृष्ण को प्रद्युम्न, चारुदेष्ण आदि दस पुत्र और चारुमती नाम की एक कन्या हुई थी। इनके अतिरिक्त जाम्बवती, सुशीला, सत्यभामा और लक्ष्मणा नामक चार और प्रधान महिषियां तथा १६ हजार अप्रधान स्त्रियां थीं। प्रद्युम्न का विवाह रुक्मी की कन्या शुभांगी से हुआ था। श्रीकृष्ण पांडवों के पक्षपाती थे। अर्जुन उनके मित्र थे। श्रीकृष्ण के कहने से युधिष्ठिर ने इंद्रप्रस्थ में राजसूय यज्ञ किया था। इसके पहले श्रीकृष्ण, भीम-अर्जुन को साथ लेकर मगधराज जरासंध की राजधानी में गए थे वहां उन्होंने भीम के द्वारा जरासंध को मरवा डाला था।

नरकासुर नामक एक पृथिवी का पुत्र था। उसकी राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर में थी। इंद्र के कहने से

श्रीकृष्ण ने देवशत्रु नरकासुर का विनाश किया और उसकी १६ हजार स्त्रियां तथा धनरत्न आदि लेकर वे द्वारका लौट आए। पुत्र का वध होने पर पृथिवी ने श्रीकृष्ण से कहा कि आप ही ने मुझे पुत्र दिया था और आप ही ने ले लिया। महाराज ! आपके अभिप्राय क्या किसीसे जाने जा सकते हैं ? यह कहकर पृथिवी ने श्रीकृष्ण को दो कुंडल दिए। ये कुंडल देवमाता अदिति को देने के लिए सत्यभामा को साथ लेकर श्रीकृष्ण स्वर्ग गए। श्रीकृष्ण को देखकर अदिति बहुत प्रसन्न हुई और आदर के साथ उन्होंने कुंडल ले लिए। स्वर्ग से लौटते समय सत्यभामा ने देववृक्ष पारिजात को देखा। द्वारका आकर सत्यभामा ने एक व्रत करने का संकल्प किया। इस व्रत के अनुष्ठान करने के लिए सत्यभामा ने पारिजात वृक्ष के लिए याचना की। श्रीकृष्ण ने एक वर्ष के लिए इन्द्र से पारिजात वृक्ष मांगा, नारद दूत बनकर गए, परंतु इन्द्र ने पारिजात देना अस्वीकार किया।

तब श्रीकृष्ण ने बलपूर्वक पारिजात ले आने के लिए गरुड को भेजा, गरुड ने युद्ध में इंद्र आदि देवों को परास्त कर दिया और पारिजात लाकर सत्यभामा को अर्पण किया। व्रत का समय बीतने पर श्रीकृष्ण ने कल्पवृक्ष को लौटा दिया।

अग्निदेव को तृप्त करने के लिए श्रीकृष्ण ने खांडव वन जलाने में अर्जुन की सहायता की थी। इससे प्रसन्न होकर अग्निदेव ने श्रीकृष्ण को सुदर्शन चक्र और कौमोदकी गदा दी थी। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण ही की प्रधान पूजा की गई। इससे अप्रसन्न होकर चेदिराज शिशुपाल ने श्रीकृष्ण की बड़ी निंदा की। श्रीकृष्ण ने भी सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट दिया। महाभारत के युद्ध में अर्जुन और दुर्योधन दोनों श्रीकृष्ण को अपने पक्ष में ले आने की चेष्टा करते थे। श्रीकृष्ण ने अर्जुन का पक्ष स्वयं ग्रहण करने की प्रतिज्ञा की और नारायणी नामक सेना दुर्योधन को दी, इस सेना से दुर्योधन को बड़ी सहायता मिली थी।

रैवतक पर्वत पर रहने के समय श्रीकृष्ण की सम्मति से अर्जुन ने उनकी बहिन सुभद्रा का हरण किया था। श्रीकृष्ण ही ने अर्जुन को उत्साहित करके महाभारत का युद्ध करवाया था। यदुवंश के नाश होने के अनंतर श्रीकृष्ण वन चले गए और वहां एकांत में बैठकर ध्यानमग्न थे, उसी समय जरा नामक एक व्याध ने मृग समझकर उन्हें विषाक्त बाण से मार डाला। (महाभारत)

(२) प्राचीन समय के एक दस्यु का नाम, यह प्रसिद्ध दस्युओं में से है। ऋग्वेद में लिखा है कि कुषव, अयु और कृष्ण नामक तीन प्रसिद्ध दस्यु थे। कृष्ण अंशुमती नदी के तीर पर रहता था। इसके दल में दस हजार डाकू सर्वदा वर्तमान रहते थे। इसके अत्याचार से प्रजा जब बहुत पीड़ित हुई तब इंद्र ने इसे मार डाला। (ऋग्वेद, ७म मंडल, ९६ सूक्त)

कृष्णचैतन्य—इनका जन्म सन् १४८५ ई० में बंगाल के नवद्वीप (नदिया) में हुआ था। इनके पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र था। जगन्नाथ मिश्र को बहुत लोग पुरंदर भी कहते थे। इनकी माता का नाम शचीदेवी था। कृष्णचैतन्य का नाम निमाई था। गंगादास नामक एक वैयाकरण ब्राह्मण की शाला में ये व्याकरण पढ़ते थे। थोड़े ही दिनों में ये व्याकरण के असाधारण विद्वान् हो गए। बारह वर्ष की अवस्था में इनके पिता परलोकवासी हुए। पिता के वियोग से इनको बड़ा कष्ट हुआ, परंतु महापुरुष कृष्णचैतन्य इससे विचलित नहीं हुए। उन्होंने अधिक मनोयोग से पढ़ना प्रारंभ किया। व्याकरण की शिक्षा समाप्त होने पर कृष्णचैतन्य वासुदेव सार्वभौम के निकट न्यायशास्त्र का अध्ययन करने लगे। पिता की मृत्यु के तीन वर्ष बाद निमाई का विवाह नवद्वीप निवासी वल्लभाचार्य की कन्या लक्ष्मीदेवी से हुआ। इन्होंने बहुत दिनों तक विद्यार्थियों को पढ़ाया। न्यायदर्शन की एक टीका भी इन्होंने बनाई थी, परंतु वह टीका नष्ट हो गई। इन्होंने एक संप्रदाय भी चलाया है, जिसे लोग गौड़िया संप्रदाय कहते हैं। इनका संप्रदाय माध्व संप्रदाय के अंतर्गत है। चैतन्यदेव एक समय घर से निकल गए और तब से उनका पता नहीं लगा। इनके धर्म-सिद्धांत और कुछ उपदेश नीचे लिखे जाते हैं :

(१) इष्टदेव के प्रति अतिशय प्रेम और अनुराग उत्पन्न कराने का नाम भक्ति है। तन, मन और वाणी से भगवान का अनुगत होना ही भक्ति है।

(२) भक्ति की तीन अवस्थाएं हैं : १. साधन-भक्ति, २. भाव-भक्ति, ३. प्रेम-भक्ति।

(३) इस संसार में मनुष्य-जन्म अत्यंत दुर्लभ है। चौरासी लाख योनि घूमने पर मष्नुय-योनि प्राप्त

होती है। मनुष्यत्व पाकर जिन्होंने भगवान के चरणों में अनुराग लगाया है, वे धन्य हैं।

(४) अहैतुकी भक्ति के द्वारा ही भगवान की प्राप्ति हो सकती है।

(५) नास्तिक दाम्भिक आदि का संग करना, कुशिष्य और कुमित्र का ग्रहण, वैष्णवों से वार्तालाप अथवा सद्व्यवहार में त्रुटि करना, आलस्य करना, शोक में विमूढ़ होना, निंदित संस्कारों को नहीं छोड़ना, परनिंदा, जीवहिंसा और कलह करना, परस्त्रीगमन करना, सेवा में मन न देना, अहंकार करना, भगवान की महिमा एवं प्रशंसा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ऐसा समझना, हरिनाम का अनुचित स्थान और समय में स्मरण करना, भगवान की निंदा सुनना या उसे अच्छा समझना—ये बातें धर्मनाशक गुरुतर अपराध हैं।

(६) पहले विश्वास, पुनः साधुसंग, अर्चना, विघ्ननिवृत्ति, निष्ठारुचि और भाव, तदनंतर प्रेमोदय होता है।

(७) केवल भगवान की ही उपासना करो, परंतु दूसरे की उपासना-प्रणाली की निंदा न करो। बाहरी भेदों को देख तर्क करना निंदित है।

(८) शुद्ध प्रेम ही धर्म कहा जाता है, कृष्ण-प्रेम ही शुद्ध प्रेम है। उसी प्रेम का दूसरा नाम भक्ति है।

(९) भक्ति की उन्नति करना ही कृष्ण-साधकों का परम कर्तव्य है।

(१०) सेवा में प्रीति रखना, रसिकों के साथ मधुर भागवत का रसास्वाद और नामसंकीर्तन—इनमें जिसकी जब रुचि हो तभी उसकी आलोचना करनी चाहिए।

(११) रस का अर्थ है आनंद। आनंद दो प्रकार का है—जडानंद और चिदानंद। शुद्ध आनंद चिदानंद अथवा चित् रस है और सांसारिक सुख जडानंद या जडरस है। परमानंद ही विकृत होकर दांपत्य, प्रणय, अपत्य-स्नेह, सखा आदि का रूप धारण करता है।

(१२) सब जाति के मनुष्य प्रेमभक्ति के अधिकारी हैं। क्या हिंदू क्या म्लेच्छ, सभी प्रेमभक्ति के अधिकारी हैं। परमेश्वर का बिना प्रेमभक्ति से भजन किए कोई भी उनसे साक्षात्कार नहीं कर सकता। परमात्मा रस या भाव विशेष के वशीभूत है। वह रस या भाव पांच प्रकार का है—शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर। मधुर का दूसरा नाम कांता है। उपासना का पूर्ण विकास होने पर इन भावों का परिचय मिलता है। मधुर या कांताभाव सबसे श्रेष्ठ है। जिस प्रकार सती स्त्री अपने पति को आत्मसमर्पण करती है उसी प्रकार भक्त को भी भगवान के चरणों में आत्मसमर्पण करना लाभदायक है; क्योंकि इसमें अन्यान्य भाव तो अनायास ही आ जाते हैं। इसी से कांताभाव सबसे श्रेष्ठ भाव कहा जाता है।

(१३) पहले साधनभक्ति तदनन्तर भावभक्ति और पुनः प्रेमभक्ति है। भाव ही का दूसरा नाम रति है। परंतु वह केवल चिन्मय अवस्था ही में हो सकती है।

(१४) केवल कृष्ण कृपा ही से रति की उत्पत्ति होती है परंतु उसकी शिक्षा देना कठिन है। साधुसंग ही से रति पुष्ट होती है, स्वेदकंप आदि रति के लक्षण हैं।

(१५) रति के कुछ भेद हैं—भागवती रति, छाया-रति, जडरति, और कपटरति। भागवती रति की प्रथम अवस्था का नाम छायारति है। मद्यप, वेश्यासक्त आदि के जो लक्षण हैं वे जडरति के लक्षण हैं। दिखावटी प्रेम को कपटरति कहते हैं।

(१६) कोई-कोई वैष्णव वैष्णवधर्म ही को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, परंतु वे यथार्थ में वैष्णव नहीं है। कोई वैष्णव-चिह्न धारण करते हैं, किंतु वे भी यथार्थ वैष्णव नहीं कहे जा सकते हैं। किसी ने वैष्णव वंश में जन्म ही लिया है, ये सब केवल वैष्णव के समान अवश्य हैं, परंतु वैष्णव नहीं हैं। केवल भक्त ही के साथ रसालाप करना, औरों के साथ नहीं।

(१७) हरिनाम श्रवण करने ही से पाप नष्ट और शरीर पवित्र होता है। जिस स्थान पर किसी प्रकार की आशंका न हो, वहां बार-बार हरिनाम का उच्चारण करना चाहिए। इससे क्रमशः शरीर पवित्र होगा, मन भगवान की ओर लगेगा। उस समय सभी मित्र हो जाएंगे, किसी प्रकार की चिंता शेष नहीं रह जाएगी।

(१८) अंतःकरण को शुद्ध करने का नाम शम है। बाह्य इंद्रियों को वश में करने का नाम दम है। दुःख आदि सहन करने के लिए उपयुक्त बनने का नाम तितिक्षा है और समस्त नाशशील वस्तु को अवस्तु समझने का नाम वैराग्य है।

(१९) तितिक्षा और वैराग्य वैष्णव संन्यासियों का प्रधान धर्म है।

(२०) श्रद्धा, साधुसंग, भजन और निवृत्ति आदि के द्वारा जब भागवती रति उत्पन्न होती है, तब वैष्णव हृदय में एक धर्म उत्पन्न होता है जिसका नाम विरक्ति है। उस समय वैष्णव लोग कौपीन धारण करते हैं और भिक्षा से निर्वाह करते हैं, यही वैष्णवों का वेष है। यह वेष भी दो प्रकार का होता है: भाव से विरक्ति होने पर किसी साधु से वेष ग्रहण करना अथवा स्वयं वैसा वेष ग्रहण करके विचरण करना।

(२१) जब तक घर नहीं छोड़ा जाए तब तक कामना और उसके फल को दुःखद जानकर प्रेमपूर्वक भगवान का भजन करो, यही वैष्णव गृहस्थों का लक्षण है।

(२२) जब वेष ग्रहण करके विचरण करना है तब समस्त आश्रमों को छोड़कर विधि से अतीत परमहंस वैष्णव आश्रम ग्रहण करो और विचरो।

(२३) शीतलता जल का धर्म है, अग्नि का धर्म ताप है, पशु का धर्म हिंसा है और मनुष्य का धर्म शुद्ध प्रेम है।

(२४) संसाररूपी सांप ने जिनको काट खाया है उनकी रक्षा का मंत्र वैष्णवमंत्र कृष्ण नाम के अतिरिक्त दूसरा नहीं है।

(२५) त्रेता और द्वापर में ध्यान और यज्ञ के द्वारा ब्रह्मलाभ होता था, परंतु कलि में नामसंकीर्तन के द्वारा ही परमात्मा प्राप्त होता है।

(२६) जिनके मुख में 'हरि' ये दो अक्षर वर्तमान हैं उनको किसी तीर्थ से प्रयोजन क्या है?

(२७) अनेक शास्त्रों की आलोचना तथा विद्वानों के विचार से यही निश्चित हुआ है कि नारायण का नित्य ध्यान करना आवश्यक है।

(२८) ध्यान से जैसा पाप-शोधन होता है वैसा और किसीसे नहीं होता है। हरिनाम-रूप अग्नि ही पुनर्जन्म पापों को नष्ट करती है।

(२९) गृह-मध्य-स्थित अग्नि जिस प्रकार मंद-मंद वायु से बलवान होकर समस्त गृह को भस्म कर देती है उसी प्रकार चित्तस्थित विष्णु भी समस्त पापों को नष्ट कर देते हैं।

(३०) इस संसार में सभी को अपने कर्मों के अनुसार फल भोगने पड़ते हैं। किंतु जिस प्रकार सिद्ध धान्य में अंकुर उत्पन्न नहीं होता उसी प्रकार वैष्णवों को भी कर्मफल में लिप्त नहीं होना पड़ता है क्योंकि भक्तवत्सल भगवान भक्तों के कर्मफल को पहले ही से नष्ट कर देते हैं।

कृष्णचैतन्य देव के ये ही संक्षिप्त उपदेश और सिद्धांत हैं।

कृष्णदास – (१) इनका मूल निवास मीरजापुर था; किंतु ये एक भक्त के रूप में वृंदावन में जा बसे थे। इन्हें निंबार्क संप्रदाय का अनुयायी बताया जाता है। हिंदी के कृष्णभक्त कवियों में इन्हें माधुर्य भक्ति का श्रेष्ठ कवि माना जाता है। इनकी एकमात्र कृति 'माधुर्यलहरी' उपलब्ध है, जिसकी पुष्पिका में उसका रचनाकाल १८५२-५३ वि० (१७९५-९६ ई०) दिया गया है। अतः इनका स्थितिकाल १८वीं शती में निर्धारित किया जा सकता है। इनकी इस रचना से ज्ञात होता है कि इन्हें संस्कृत तथा हिंदी, दोनों भाषाओं का पूर्ण ज्ञान था। उनकी इस ललितलहरी में राधा-कृष्ण की नित्य विहारसंबंधी लीलाओं का सरस वर्णन हुआ है। ब्रजभूमि पर आज भी व्यापक रूप में आयोजित होने वाली रासलीला में 'माधुर्य लहरी' के पद गाए जाते हैं। इनके द्वारा वृंदावन में निर्मित 'मीरजापुर वाली कुंज' आज भी वर्तमान है।

(२) हिंदी के कृष्ण-भक्ति साहित्य में इनकी रचनाएं अत्यंत लोकप्रिय रहती आई हैं। अपनी रचनाओं की दृष्टि से ही नहीं, अपने जीवन-चरित की दृष्टि से भी इनका व्यक्तित्व अत्यंत प्रेरणाप्रद तथा अनुकरणीय रहा है। इनका जन्म गुजरात के एक कुनबी (शूद्र) परिवार में १४९५ ई० को हुआ था। पुष्टिमार्गीय बल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक बल्लभाचार्य से इन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी। आचार्य इनकी प्रतिभा से प्रभावित हुए। उन्होंने इन्हें मथुरा श्रीनाथजी के मंदिर का भेंटिया और फिर अधिकारी नियुक्त किया। इस पद पर रहते हुए मंदिर तथा वैष्णव जनता पर उनका प्रभाव इतना गहरा हो गया था कि उन्होंने गोसाइं बिट्ठलनाथजी से सेवा का अधिकार छीनकर उसके भतीजे पुरुषोत्तमजी को दे दिया था। उनके इस कृत्य से असंतुष्ट होकर महाराज बीरबल ने इन्हें बंदीगृह में डाल दिया था। किंतु बिट्ठलनाथ जी के अनशन करने के कारण बीरबल ने इन्हें मुक्त कर दिया। गोसाईं जी की इस उदारता से प्रभावित होकर कृष्णदास उनके परम भक्त हो गए थे और अपने पदों में उन्होंने गोसाईंजी की प्रशंसा की।

इनके संबंध में कहा जाता है कि एक बार रुग्णावस्था में प्यास लग जाने के कारण इन्होंने विमार्गी वैष्णव ब्राह्मण वैष्णवों के घर का पानी न पीकर किसी पुष्टिमार्गीय भंगी के घर के जल से प्यास बुझाई थी। यह भी कहा जाता है कि कूप-निर्माण के लिए प्राप्त धन-राशि में से इन्होंने कुछ अंश छिपा लिया था, जिसके पश्चात्ताप से ये उसी कूप में गिरकर मर गए और प्रेत बन गए। गोसाईं जी ने कूप पूरा किया और कृष्णदास का प्रेत-योनि से उद्धार किया।

ये अत्यंत संगठनकर्ता थे और इस रूप में इन्होंने पुष्टिमार्गीय वैष्णवों की स्थिति को अत्यंत सुदृढ़ बना लिया था। इनका पद-साहित्य अत्यंत ललित, रस-भाव-समन्वित और लोकप्रिय था। अष्टछाप के कवियों में उन्हें चतुर्थ स्थान दिया गया है। उनके पदों का प्रभाव उनकी परवर्ती परंपरा पर व्यापक रूप से लक्षित हुआ। १५७५-८१ ई० के बीच इनका देहावसान माना जाता है।

(डॉ० दीनदयाल गुप्त—अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय)

कृष्णद्वैपायन—(व्यास) सत्यवती के कानीन पुत्र। सत्यवती दासराज वसुपालित की कन्या थी। यमुना के किसी द्वीप में मल्लाहों ने एक मछली पकड़ी थी, उसी मछली के पेट से सत्यवती निकली। शरीर में मछली की गंध रहने के कारण इसका नाम मत्स्यगंधा पड़ा। एक दिन मल्लाहों ने नाव खेने के लिए मत्स्यगंधा को नियुक्त किया। संयोगवश उसी द्वीप में जाने के लिए महर्षि पराशर उसी नाव पर सवार हुए। मत्स्यगंधा के रूप पर मोहित होकर महर्षि ने नदी के बीच ही में उससे अपनी अभिलाषा प्रकट की। पहले तो मत्स्यगंधा ने स्वीकार नहीं किया; परंतु महर्षि ने जब अपनी तपस्या के प्रभाव से चारों ओर अंधकार फैला दिया, तब उसने स्वीकार कर लिया। मत्स्यगंधा गर्भवती हो गई। मत्स्यगंधा, द्वीप में गर्भ प्रसव करके अपने घर लौट आई। महर्षि के प्रभाव से उसका कन्यापन भी नष्ट नहीं हुआ। बालक का द्वीप में जन्म हुआ, इस कारण वह द्वैपायन कहे जाते हैं। इनका नाम था कृष्णद्वैपायन। कृष्णद्वैपायन माता की अनुमति से शास्त्राध्ययन और तपस्या करने के लिए बन को चले गए। शास्त्राध्ययन करने पर कृष्णद्वैपायन ने वेदों का विभाग किया था। इस कार्य को करने में उन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ा था। वेद विभाग करने पर इनकी प्रसिद्धि वेदव्यास के नाम से हुई। वेदव्यास के पहले गद्य, पद्य और गीति तीनों प्रकार के वेदमंत्र मिले हुए थे। उस समय वेदों का नाम त्रयी था। इसी त्रयी में से अंगिरा वंश के महर्षि अथर्वा ने प्रत्यक्ष फलप्रद शत्रुमारण आदि प्रयोगों को एकत्रित करके, अपने नाम से प्रकाशित किया। तब से वेद के दो भाग हुए। बड़े भाग का नाम त्रयी पड़ा और छोटे भाग का नाम अथर्वसंहिता पड़ा। कृष्णद्वैपायन ने उसी त्रयी को रचना के अनुसार ऋक् यजुः और साम नाम से प्रसिद्ध किया, तब से वेद चार भागों में विभक्त होकर प्रसिद्ध हुआ। कृष्णद्वैपायन ने अष्टादश पुराणों की भी रचना की थी। इन पुराणों के अतिरिक्त सृष्टि के आदि से लेकर कौरव-पांडव युद्ध तक का इतिहास भी इन्होंने रचा है। उस ग्रंथ का नाम महाभारत है (देखो महाभारत)। इस ग्रंथ की रचना उन्होंने तीन वर्षों में की थी। प्रसिद्ध ज्ञानी शुकदेव इन्हींके पुत्र थे। वेदांतदर्शन के सूत्र इन्होंने बनाए हैं, जिनके ऊपर अनेक आचार्यों ने अनेक प्रकार के भाष्य बनाए हैं।

कृष्ण मिश्र—संस्कृत के एक विद्वान् और कवि का नाम। प्रसिद्ध प्रबोधचंद्रोदय नाटक के कर्ता ये ही हैं। उसी नाटक से विदित होता है कि चंदेल राजा कीर्तिवर्मा के ये सभासद् थे। राजा कीर्तिवर्मा ने चेदि के राजा कर्ण को युद्ध में हराया था। काशी में राजा कर्णदेव का नाम कई एक ताम्रपत्रों पर खुदा मिलता है। इनका समय सन् १०४२ ई० मिलता है। हेमचन्द्र और विल्हण के ग्रंथों से यह मालूम होता है कि अन्यान्य राजाओं ने भी इसे परास्त किया था। कर्णदेव को पराजित करनेवाले राजा कीर्तिवर्मदेव सन् १०५० ई० से ११९६ ई० तक वर्तमान थे। अतएव उनके सभासद् कृष्ण मिश्र का भी यही समय माना जाना उचित है।

कृष्णराम—बूंदी के एक राजमंत्री का नाम। ये महाराव रामसिंह के समय में थे। ये बड़े ही स्वामिभक्त और सुचरित्र कर्मचारी थे। १८३० ई० में ये षड्यंत्रकारियों के हाथों मारे गए। (टॉड्स, राजस्थान)

कृष्णवेणा/कृष्णवेणी/कृष्णा—दक्षिण भारत की कृष्णा नदी का नाम।

कृष्ण हारीत (कृत्स्न हारीत)—वाग्देवी की उपासना के उपदेष्टा आचार्य; कलात्मक प्रजा के स्रष्टा; तत्त्ववेत्ता।

केकय—एक प्राचीन राज्य का नाम। रामायण में लिखा है कि केकय राज्य की राजधानी का नाम गिरिव्रज अथवा राजगृह था। राजगृह मगध के राजगृह से भिन्न है, इसमें कुछ संदेह नहीं। परंतु वह राजगृह था कहां, आज उसकी किस नाम से प्रसिद्धि है, इन बातों का जानना इस समय कष्टसाध्य हो गया है। रामायण के अयोध्याकांड में केकय राज्य का उल्लेख हुआ है और वहां से कुछ पता लगाया जा सकता है। महाराज दशरथ की रानी केकय देश की थी, भरत अपने ननिहाल गए हुए थे। भरत को ले आने के लिए जो अयोध्या से दूत भेजे गए थे और भरत जी वहां से लौटे हैं, उनके मार्ग का रामायण में उल्लेख किया गया है। केकय राज्य में जाने के लिए राजदूत अयोध्या से पश्चिम की ओर प्रस्थित हुए। वे अपर ताल और प्रलंब नामक जनपद के बीच में बहने वाली मालिनी नदी के तीर से होकर निकले, हस्तिनापुर में जाकर उन्होंने गंगा को पार किया। तदनंतर वे पांचाल देश को लांघकर कुरु-जांगल देश के मध्य से जाने लगे। वहां से शरदंड नाम की नदी पारकर, वे कुलिंग नामक पुरी में गए। इसी प्रकार इक्षुमती नदी को पार करके और वाल्हीक देश के बीच से होकर वे सुदामा पर्वत पर उपस्थित हुए। तदनंतर विपाशा शाल्मली आदि नदियों को पारकर वे गिरिव्रज में उपस्थित हुए। रामायण में ननिहाल से भरत के लौटने के समय का जो उनके मार्ग का विवरण लिखा है, वह इससे नहीं मिलता। इसलिए मालूम पड़ता है कि या तो भरत दूसरे मार्ग से आए अथवा अयोध्या से केकय राज्य समीप था। परंतु वह कौन देश है इसके उत्तर में कनिंहम साहब कहते हैं—वितस्ता नदी के उस पार स्थित जलालपुर और उसके समीप का स्थान प्राचीन केकय राज्य है। अकबर के समय में उस प्राचीन नगरी का नाम जलालपुर पड़ा। जलालपुर के समीपस्थ गिर्जाक नाम की गिरिश्रेणी, गिरिव्रज नगर का शेष चिह्न मालूम पड़ती है। रामायण के गिरिव्रज ही का नामांतर गिर्जाक हो गया है, ऐसा मानना भी अनुचित न होगा। जलालपुर पंजाब में झेलम जिले के अंतर्गत और वितस्ता नदी के दक्षिण तीर पर बसा है। उसके समीप के स्थान केकय राज्य के अंतर्गत थे। अनेक पश्चिमी विद्वान् इसी प्रकार का अपना मत प्रकाशित करते हैं। किसी-किसीका मत है कि काश्मीर के प्रांत-विशेष ही का नाम केकय है। महाभारत आदि ग्रंथों में कश्मीर राज्य का उल्लेख पाया जाता है, परंतु रामायण में काश्मीर का नाम तक नहीं मिलता, अतएव संभव है रामायण के समय में काश्मीर केकय के नाम से प्रसिद्ध हो। काश्मीर के इतिहास राजतरंगिणी में राजपुरी नामक एक नगर का उल्लेख है। बहुतों का विश्वास है कि रामायण वर्णित राजगृह और यह राजपुरी दोनों एक ही हैं। परंतु काश्मीर को केकय राज्य मान लेने में केकय और अयोध्या के मार्ग में वाल्हीक का आना एक प्रकार से असंभव कहा जा सकता है परंतु पुराने भारत में जिस जाति के लोग जिस स्थान पर बस जाते थे, वह स्थान उन्हींके नाम से प्रसिद्ध हो जाता था। अतएव संभव है कि काश्मीर और अयोध्या के मार्ग में कुछ वाल्हीक जाति के लोगों की बस्ती रही हो। गार्ग्य के वर्णन में भी यही बात पाई जाती है।

केकयाः—पंजाब प्रांत के उस भूखंड का नाम जो वहां व्यास और सतलुज नदियों के बीच में है। भरत की माता कैकेयी यहीं की थी।

केकयी—(देखो कैकेयी)।

केकसी—सुमाली और केतुमाली की एक कन्या का नाम। सुमाली बहुत दिनों से अपने कुटुंब के साथ पाताल में रहा करता था। कुबेर[1] के ऐश्वर्य से ईर्ष्या करके सुमाली ने अपनी कन्या केकसी को महर्षि विश्रवा के पास इसलिए भेजा कि कुबेर के समान वीर्यवान् पुत्र इसके गर्भ से उत्पन्न हो। महर्षि विश्रवा के औरस और इसी केकसी के गर्भ से रावण आदि घोर अत्याचारी राक्षस उत्पन्न हुए थे।

केतु—नवग्रहों में से एक ग्रह। इसके रथ को लाख के रंग के आठ घोड़े खींचते हैं। पौराणिक मतानुसार ये प्रति संक्रांति को सूर्य को आक्रमण करता है।

पुराणांतर में लिखा है कि यह एक दानव था, इसकी माता का नाम सिंहिका था। कहते हैं समुद्र-मंथन के अनंतर देवता अमृत पाने के लिये एक पंक्ति में बैठे थे। दानव केतु भी एक देवता का रूप धारण कर, उनकी पंक्ति में जा बैठा। उसी पंक्ति में चंद्रमा और सूर्य भी बैठे थे। उन दोनों ने केतु को पहचानकर अन्य देवताओं के निकट उसका रहस्य खोल दिया। तब भगवान् विष्णु ने चक्र से उसका सिर काट डाला।

१. 'कुवेर' और 'कुबेर' दोनों प्रकार से इस शब्द की अक्सर योजना की जाती है।

परंतु अमृत उसके गले के नीचे उतर चुका था, इस कारण सिर कटने पर भी वह न मरा। उसके कटे मस्तक का नाम राहू और मस्तकरहित दूसरे धड़ का नाम केतु पड़ा। ग्रहण के समय राहु उसी क्रोध का बदला चुकाने के लिए चंद्र और सूर्य का ग्रास करता है। हिंदू ज्योतिष में ये ग्रह माने जाते हैं। किंतु इनकी गणना पापग्रहों में है। विंशोतरी गणना के अनुसार केतु की दशा का फल सात वर्ष तक रहता है। केतु की दशा के पहले बुध और उसके पश्चात् शुक्र की दशा आती है। पाश्चात्य ज्योतिष के अनुसार ये ग्रह नहीं माने जाते हैं।

केतुमत्—(१) एक लोकपाल का नाम। ये रजस के पुत्र थे। ये पश्चिम दिशा के अधिपति हैं।

(२) राजा धन्वंतरी के पुत्र का नाम केतुमत् था।

केतुमती—सुमाली राक्षस की स्त्री का नाम।

केतुमाला—(१) अग्नीन्ध्र राजा के एक पुत्र का नाम। ये गंधमादन के अधिपति थे।

(२) एक वर्ष का नाम।

केदार कवि—ये भाट जाति के कवि थे। सन् ११५० ई० में ये विद्यमान थे। शिवसिंह के शिवसरोज में लिखा है कि ये अलाउद्दीन गौरी के दरबार में विद्यमान थे; किंतु इनका बनाया कोई ग्रंथ नहीं मिलता। यदि मिलता, तो वह सबसे प्राचीन हिंदी भाषा के पद्य की बानगी होती।

केरल—एक राज्यविशेष। पहले के मालवार, कन्नडा और कोंकण आदि देश प्राचीन केरल राज्य के अंतर्गत समझे जाते थे। इस देश की उत्पत्ति, पुराणों में इस प्रकार लिखी है—परशुराम ने इस देश को समुद्र से निकाला था और उन्हींने इस देश में ब्राह्मणों को भी बसाया था। आधुनिक ऐतिहासिक कहते हैं कि पहली या दूसरी सदी में उत्तर केरल के एक राजकुमार ने हिंदुस्तान से ब्राह्मणों को बुलाकर वहां बसाया था। मालवार अथवा कन्नडा के ब्राह्मण उत्तर भारत के ब्राह्मणों के साथ अपने संबंध का परिचय बतलाते हैं। एक समय केरल देश ब्राह्मणों के अधीन था। ब्राह्मण ही वहां के राजा थे। इस राज्य को ब्राह्मणों ने चौंसठ भागों में बांटा था और साधारण प्रजातंत्र-शासन-प्रणाली के अनुसार वहां का राज्य शासित होता था। ब्राह्मण ही इसके शासक थे तथापि हर तीसरे वर्ष नये शासक निर्वाचित किए जाते थे। वह निर्वाचित शासक चार सदस्यों के मतानुसार शासन करते थे, आवश्यकता के अनुसार शासकगण युद्धकार्य का भार एक सरकार को सौंप दिया करते थे। पांडयवंशी राजाओं ने अनेक बार केरलराज की सहायता की थी। कोंकण प्रदेश कभी-कभी केरल देश के अंतर्गत समझा जाता था और कभी-कभी वह उससे पृथक् भी हो गया है। खृष्टीय नवम शताब्दी में केरल राज्य नष्ट हो गया था। उस समय केरल राज्य का दक्षिण भाग, मालवार प्रदेश, वहां के राजपुत्र का विरोध करने लगा। राजपुत्र ने मुसलमान धर्म ग्रहण किया था इससे प्रजा विद्रोही हो गई थी। उस विद्रोह के फल से मालवार प्रदेश छोटे-छोटे अनेक राज्यों में बंट गया। उस समय के विच्छिन्न केरल राज्य में जेमोरिन वंश के एक राजा राज्य करते थे। इन्हीं जेमोरिन वंश के राजा के यहां पुर्तगाल देश का नाविक वास्को-डि-गामा ठहरा था। पंद्रहवीं सदी में केरल राज्य की जो अवस्था हुई थी उसका पता जेमोरिन वंश के इतिहास से मिलता है। केरल के उत्तर भाग कन्नडा का १२वीं सदी तक अस्तित्व सुरक्षित था। अंत में यह विजयनगर के राज्य में मिला दिया गया था। केरल का कुछ भाग बाद में ट्रावनकोर के राज्य में मिला लिया गया था। उस समय केरल का कुछ भाग चेरा नाम से प्रसिद्ध था। आजकल पुनःसंगठित राज्य केरल कर्नाटक राज्य के दक्षिण में अरब सागर के तट पर स्थित भारत गणराज्य का एक प्रदेश है। (भारतवर्षीय इतिहास)

केलनजी—जयसलमेर के प्रतिष्ठाता यदुवंशी जयसल राव के एक पुत्र का नाम। केलनजी उनके ज्येष्ठ पुत्र थे। अतएव जयसल की मृत्यु होने के पीछे केलनजी ही का राज्याभिषेक हुआ। परंतु इनके राज्याभिषेक से राजमंत्री बहुत असंतुष्ट हुआ। और उसीने षड्यंत्र रचकर केलनजी को राज्य से अलग कर दिया। पीछे से वहां रहकर केलनजी किसी प्रकार का विद्रोह न करें, यह सोचकर उसने उनको वहां से निकाल दिया। केलनजी ११वीं सदी में थे। उनके बाद उनके छोटे भाई को राज्य मिला। (टाड्स, राजस्थान)

केवल—नर नामक एक राजा के एक लड़के का नाम।

केवलराम—इनका होना सन् १५७५ ई० में प्रमाणित होता है। इनका नाम भक्तमाल में दिया हुआ है। ये कृष्णदास पयहारी के शिष्य थे।

केशरी—राजवंश विशेष। इस वंश के लोग उड़ीसा के राजा थे। केशरीवंश के राजत्वकाल से उड़ीसा का धारावाहिक इतिहास प्राप्त होता है। इसके पहिले राजा का नाम ययाति केशरी था।

केशव—भगवान विष्णु का नामांतर। 'केश' शब्द का अर्थ 'सूर्य की किरण' समझा जाता है। महाभारत में लिखा है।

अंशवो ये प्रकाशन्ते मम ते केशसंज्ञिताः।
सर्वज्ञाः केशवं तस्मात् प्राहुर्माम् द्विजसत्तमाः॥

केशवचन्द्रसेन—बंगाल के नवविधान (ब्राह्मो) समाज के प्रसिद्ध प्रतिष्ठाता। इनका जन्म कलकत्ता में हुआ था। इनके पिता का नाम प्यारीमोहन था। सन् १८३८ ई० में इनका जन्म हुआ था। इनकी ११ वर्ष की अवस्था में इनके पिता स्वर्गवासी हुए। ये पढ़ने के लिए हिंदू विद्यालय में भर्ती हुए थे। परंतु किसी कारणवश इनको अपना अध्ययन शीघ्र ही समाप्त करना पड़ा। तदनंतर इन्होंने एक पादरी के साथ मिलकर ब्रिटिश इंडिया सोसाइटी नाम से एक सभा स्थापित की। उसी समय ब्राह्मसमाज के नेता देवेन्द्र-नाथ ठाकुर के साथ इनका परिचय हुआ और केशव-चंद्र ब्राह्मसमाज के एक सदस्य हुए। इसी समय से दोनों मिलकर काम करने लगे। इन दोनों ने अपने प्रयत्न से ब्राह्म विद्यालय की स्थापना की। केशवचंद्र देवेंद्रनाथ के साथ कुछ दिनों तक धर्म-प्रचार के लिए घूमते रहे, तदनंतर गोस्वामी विजयकृष्ण के साथ ये धर्म-प्रचार करते रहे। इन्होंने ब्राह्म-विवाह संबंधी कानून को नियमबद्ध करने के लिए आंदोलन किया। १८७२ ई० में कानून भी बन गया। इनकी कन्या का विवाह कूचविहार के राजा से हुआ था। इस विवाह में ब्राह्मसमाज के विरोधी कतिपय ठहराव इन्होंने किए थे। इस कारण ब्राह्मसमाजी इनसे अलग हो गए। तब इन्हींने 'नवविधान' नामक एक पंथ चलाया और कुछ साथियों को लेकर ये जब तक जीते रहे तब तक उसकी उन्नति करते रहे। १८८४ ई० में बहुमूत्ररोग से पीड़ित होकर परलोकवासी हुए।

केशवदास—ये काश्मीर के रहने वाले थे और सन् १५४१ ई० में विद्यमान थे। ये हिंदी के कवि थे। कविता के कारण इनकी प्रसिद्धि चारों तरफ फैल गई। प्रसिद्ध होने पर ये ब्रज में आकर रहने लगे। वहां इन्होंने कृष्णचैतन्य से शास्त्रार्थ भी किया था, परंतु शास्त्रार्थ में ये हार गए।

केशवदास सनाढ्य मिसर—ये बुंदेलखंड के रहने वाले हिंदी के एक कवि थे और सन् १५८० ई० में विद्यमान थे। इनका पहले का वासस्थान टिहरी में था। एक समय ओरछा के राजा मधुकरशाह से इनका परिचय हुआ। राजा ने इनका बड़ा सम्मान किया और राजा मधुकरशाह के पुत्र इंद्रजीत ने २१ गांव इन्हें दिए। तब से ये सकुटुंब ओरछे ही में रहने लगे। सब से पहले इन्हींने हिंदी भाषा में कविता के दश अंगों का वर्णन 'कविप्रिया' नामक ग्रंथ में किया है। इनका सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ 'विज्ञानगीता' है। इस ग्रंथ को इन्होंने मधुकरशाह के नाम से बनाया है। इसके पश्चात् इन्होंने परवीनराय पातर के लिए कविप्रिया की रचना की। अनंतर इन्होंने 'रामचंद्रिका' नामक ग्रंथ इंद्रजीत के नाम से लिखा। इन्होंने 'रसिकप्रिया' और 'राम अलंकृत मंजरी' नामक दो और भी ग्रंथ बनाए हैं।

जब अकबर ने इंद्रजीत पर आज्ञाभंग करने के अपराध में १० लाख रुपये जुर्माना किए, क्योंकि बुलाने पर भी परवीनराय पातर उनके दरबार में उपस्थित न हुए थे, तब केशवदास जाकर चुपचाप वीरवर से मिले और उन्होंने एक कवित्त पढ़ा; जिस का अंतिम पद यह था—'दियो करतारो दुहूं करतारी' इस कवित्त को सुनकर वीरवर प्रसन्न हुए और जुर्माना माफ करा दिया।

केशव भारती—ये एक संन्यासी थे। कृष्णचैतन्य ने इन्हींसे दीक्षा ली थी।

केशवाचार्य—श्री संप्रदाय के आचार्य श्री रामानुजाचार्य के पिता का नाम।

केशिध्वज—ये कीर्तिध्वज के प्रसिद्ध पुत्र थे। इनके चचेरे भाई का नाम खांडिक्य था। वे धार्मिक अनुष्ठानों के लिये और केशिध्वज ज्ञान-संबंधी आविष्कारों के लिए प्रसिद्ध थे। अतएव दोनों में विवाद हुआ और वह विवाद यहां तक बढ़ा कि केशिध्वज ने खांडिक्य को अपने राज्य से निकाल दिया। पीछे से एक ऐसा समय आया कि केशिध्वज को किसी महत्वपूर्ण विषय के संबंध में परामर्श करने की आवश्यकता पड़ी। इसके लिए वे बहुत चिंतित हुए। तब मंत्रियों ने कहा कि इसकी मीमांसा आपके शत्रु खांडिक्य के अतिरिक्त दूसरा कर नहीं सकता, तब केशिध्वज खांडिक्य से मिले और उनकी कठिनाई दूर हुई। उन्होंने खांडिक्य को पुरस्कार देने की इच्छा से पूछा कि आप कृपा कर बतलाएं कि

इसके लिए मैं आपको क्या दूं, जिससे मैं आपके ऋण से उऋण होऊं। इसपर खांडिक्य के मित्रों ने सम्मति दी कि तुम अपने हाथ से निकला राज्य मांगो। इसपर खांडिक्य ने केशिध्वज को संबोधन करके कहा कि यदि आप हमको पारमार्थिक ज्ञान, जोकि जीवसंबंधी सिद्धांत से संबंध रखता है, बतला दें, तो आप हमारे ऋण से उऋण हो जाएं। हमको यह बतलाइए कि जीव की उन्नति किन कर्मों से होती है। तब केशिध्वज ने यथार्थ अज्ञान की व्याख्या की और योग के लाभ बताए। (विष्णुपुराण)

केशिनी—यह विदर्भराज की कन्या थी। इसका विवाह राजा सगर से हुआ था। सगर के औरस और केशिनी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था।

केशिन् दार्म्य (दाल्म्य)—उच्चैःश्रवस् कौपयेय की बहिन का पुत्र; पांचाल देश का राजा; सामद्रष्टा; अपने मातुल उच्चैःश्रवस् की मृत्यु के बाद यह विकल होकर वन में भटकने लगा था। तब उच्चैःश्रवस् उसे धूम्ररूप में मिला। ज्योंही यह उसके गले मिलने लगा, त्योंही वह दूर हो गया।

केशी—कश्यप प्रजापति का दनु से उत्पन्न पुत्र। इसने प्रजापति की देवसेना तथा दैत्यसेना नामक दो कन्याओं का अपहरण किया। दैत्यसेना पर इसने अधिकार कर लिया, किंतु देवसेना उसका विरोध करने लगी। उसने रक्षा के लिए आवाज लगाई। इंद्र उपस्थित हुआ और उसने केशिन् से युद्ध करके देवसेना की रक्षा की। कुछ दिन बाद इस दैत्य ने चित्रलेखा तथा उर्वशी अप्सराओं का अपहरण किया। तब पुरूरवा ने उनका उद्धार किया।

(२) कंस का एक अनुचर। एक दानव ने कंस की आज्ञा से एक बड़े घोड़े का रूप धारण करके वृंदावन में ब्रजवासियों को कष्ट देना प्रारंभ किया। यह दानव दुलत्तियों से गौओं और ग्वालों का वध करके उनका मांस खाता था। जब श्रीकृष्ण उसके सामने गए, तब वह उनपर वेग से टूट पड़ा। परंतु श्रीकृष्ण ने उसके पिछले पैर पकड़कर उसे खूब घुमाया और ४०० हाथ की दूरी पर फेंक दिया। कुछ देर तक तो वह दानव मूर्च्छित पड़ा रहा, पुनः सचेत होने पर वह उनसे लड़ने को गया। उस समय श्रीकृष्ण ने उसके मुंह में हाथ घुसेड़कर, मार डाला। (श्रीमद्भागवत)

केहर—भाटी जाति के एक प्रधान नेता। भाटी जाति के इतिहास में इनका नाम बहुत प्रसिद्ध है। इनके पांच पुत्र थे। ये पांचों बड़े वीर और योद्धा थे। अनेक राजपूत राजाओं के राज्य इन्होंने छीन लिए थे। इसी कारण धोखे में केहर मार डाले गए थे। ये प्रसिद्ध खलीफा वीदल के समकालीन थे।

कैकय—(देखो केकय)।

कैकसी—(देखो केकसी)।

कैकेयी—अयोध्याधिपति महाराज दशरथ की महिषी और भरत की माता। यह केकयदेश के राजा की राजकन्या थी। केकयराज्य विपाशा और शतद्रू के मध्य में बाल्हीक नामक जनपद के दक्षिण की ओर है। (देखो केकय) कैकेयी युवती और सुंदरी थी, अतएव महाराज दशरथ उसके सर्वथा अनुगत हो गए थे। एक समय राजा को प्रसन्न करके कैकेयी ने उनसे दो वर देने की प्रतिज्ञा करा ली थी। महाराज ने वृद्धावस्था में अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देना चाहा। अभिषेक की तैयारियां होने लगीं। इस समय कैकेयी ने वे दोनों वर मांगे। एक वर से राम को चतुर्दश वर्ष का वनवास और दूसरे वर से भरत को राज्य। इससे राजभवन में कोलाहल होने लगा। एक क्षण में ही अयोध्या का आनंद शोक के रूप में बदल गया। महाराज दशरथ अचेत होकर गिर पड़े। श्रीरामचंद्र को भी इसकी खबर लगी। श्रीरामचंद्र पिता को सत्यपाश से मुक्त करने के लिए, उनकी आज्ञा के बिना ही, वन जाने के लिए प्रस्तुत हुए। लक्ष्मण और सीता ने उनका साथ दिया। भरत उस समय अपने मामा के यहां थे। उनको ले आने के लिए दूत केकय राज्य भेजे गए। भरत ने आकर देखा कि श्रीराम अयोध्या में नहीं हैं और उन्हींके वियोग में दशरथ की मृत्यु हुई है। भरत ने अपनी माता कैकेयी का बड़ा तिरस्कार किया, और वे शीघ्र ही राम को लौटा लाने के लिए चले। परंतु राम नहीं लौटे। उन्होंने समझा-बुझाकर भरत को ही लौटा दिया। रामचंद्र जब वन से लौटकर आए, तब कैकेयी अपने कर्म के लिए बहुत लज्जित हुई थी।

कैटभ—पुराने समय में ब्रह्मा ने दो असुरों की सृष्टि की थी। ये दोनों असुर पहले योगनिद्रामग्न भगवान् विष्णु के कर्णमूल से उत्पन्न हुए थे। उत्पन्न होने के समय ये अचेत न थे। इससे ब्रह्मा ने इनके शरीर में प्राणों का संचार किया। इनके जीवित होने पर ब्रह्मा ने जब इनके शरीर को स्पर्श किया तब एक का

शरीर कोमल था, अतएव उसका नाम मधु और दूसरे का शरीर कड़ा था, इस कारण उसका नाम कैटभ रखा। ये दोनों अपने शारीरिक बल के घमंड से एकार्णव सागर में घूमने लगे। इनके भय से ब्रह्मा ने विष्णु के नाभिकमल में अपना वासस्थान बना लिया। बहुत दिनों के बाद इन दोनों ने ब्रह्मा को देखकर उनसे लड़ना प्रारंभ किया। तब ब्रह्मा ने इनसे त्राण पाने के लिए, विष्णु को जगाया। निद्रा से उठकर विष्णु युद्ध करने लगे। बहुत दिनों तक युद्ध होने पर भी, कैटभ क्लांत न हुआ। अनंतर इन असुरों ने विष्णु से कहा, हम तुम्हारी युद्धकला से प्रसन्न हैं, तुम वर मांगो। विष्णु ने कहा—

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ।
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मया ॥

यदि तुम प्रसन्न हो, तो तुम दोनों मेरे हाथों मारे जाओ, मैं यही वर मांगता हूं। अनंतर विष्णु ने उनका वध किया। (हरिवंश)

कैयट—(१) ये 'महाभाष्यप्रदीप' के रचयिता थे। सुना जाता है कि ये काव्यप्रकाशकार मम्मट के छोटे भाई थे और उबट भी इनके छोटे भाई थे (देखो उबट)। महाभाष्यप्रदीप में लिखा है 'कैयटो जैयटात्मजः' अर्थात् कैयट जैयट के पुत्र थे। ये ही जैयट मम्मट के पिता थे। जैयट, कैयट, उबट, वज्रट, उद्भट, रुद्रट, धम्मट, मम्मट, कल्लट, भल्लट, विल्हण, कल्हण आदि नाम उस समय काश्मीरियों के ही रखे जाते थे। इससे इनका काश्मीरी होना प्रमाणित होता है। इनके विषय में काश्मीर में जो कथानक प्रचलित है उसका उल्लेख 'सुभाषितावली' की भूमिका में पीटर्सन साहब ने किया है। कैयट ने बड़े परिश्रम से महाभाष्य पढ़ा था, उनका अभ्यास महाभाष्य में इतना बढ़ गया था कि वे विद्यार्थियों को समग्र महाभाष्य कंठाग्र ही पढ़ा सकते थे। वररुचि ने महाभाष्य के जिन कठिन स्थलों को न समझने के कारण छोड़ दिया था, वे स्थल भी कैयट को स्पष्ट हो गए थे। कहा जाता है कि जब कृष्ण भट्ट दक्षिण देश से इनका दर्शन करने आए, तब कैयट कुल्हाड़ी से लकड़ी चीर रहे थे और विद्यार्थियों को पढ़ाते जाते थे। इससे भट्ट जी को बड़ा आश्चर्य हुआ। कृष्ण भट्ट ने काश्मीर के राजा से कैयट को दक्षिणा में अन्न, धन आदि दिलाना चाहा, परंतु कैयट ने राजधन लेने से इनकार कर दिया। कैयट काश्मीर छोड़ काशी चले आए। वहां के पंडितों को उन्होंने शास्त्रार्थ में हराया। कैयट ने 'महाभाष्यप्रदीप' की रचना काशी में ही की थी। कैयट पामपुर के निवासी थे। यदि पूर्वोक्त कथानक सत्य है तो कैयट अजितापीड से पीछे हुए हैं क्योंकि अजितापीड ने पामपुर को बसाया। ये सन् ८४४ ई० से ८४६ ई० तक काश्मीर के राजा रहे हैं। कुछ लोगों का मत है कि कैयट १३वीं सदी से पहले के नहीं हैं और सायण माधव के पूर्व के किसी लेखक ने इनके विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। परंतु जब ये उबट और मम्मट के भाई थे, तब इनका समय ग्यारहवीं सदी मानना ही उचित जान पड़ता है।

(२) संस्कृत के एक विद्वान् का नाम। यह नाम के अनुसार काश्मीरी माने जा सकते हैं। इन्होंने सन् ९७७ ई० में आनंदवर्द्धन रचित 'देवीशतक' की टीका लिखी है। इनके पिता का नाम चंद्रादित्य और पितामह का नाम वल्लभदेव था। ये कवि राजा भीमगुप्त के समय में जीवित थे। इनके बनाए और किसी ग्रंथ का पता नहीं चलता।

कैलास—मेरु के एक पहाड़ का नाम, जोकि हिमालय के ऊपर है। मेरु का नाम प्रायः पुराणों में पाया जाता है। पुराणों में इसका विस्तार कई योजन का बतलाया गया है। यह मेरु से पश्चिम की ओर है। पुराणों में लिखा है कि यह चांदी का पहाड़ है और शिव का आवास-स्थान है। कैलास पर्वतमाला, लद्दाख पर्वतमाला के समानांतर है। उसके अंतर्गत अनेक शिखर-समूह सम्मिलित हैं। मानसरोवर से वह २५ मील उत्तर में स्थित है। यह गढ़वाल क्षेत्र-अंतर्गत है। बद्रिकाश्रम उसीमें अवस्थित है।

कैलास मन्दिर—इलोरा गुहा के मंदिरों में से एक मंदिर का नाम। यह मंदिर सुंदरता और शिल्पनिपुणता में अनुपम है। पुराणवर्णित देव-देवियों की मूर्तियां इसमें खोदी गई हैं। इस मंदिर के सामने एक बरांडा है। बरांडा के बाद एक विशाल मंडप है। यह मंडप १४० फुट लंबा और ६० फुट चौड़ा है। इस मंडप में बड़े-बड़े खंभे हैं और ऊपर छत है। उसके एक ओर बहुत बड़ा बरांडा है और उसकी बगल में एक मंडप है। इस मंडप की लंबाई २५० फुट और चौड़ाई १५० फुट है। इसीके बीच पत्थर का बना प्रधान मंदिर है। इसके पत्थरों पर खुदाई का काम है। मंदिर की ऊंचाई प्रायः सौ फुट होगी। मंदिर के बाहर और भीतर अनेक मूर्तियां खुदी हैं। मंदिर

चौकोने चार खंभों पर स्थित है। खंभे पत्थर के बने चार हाथियों पर बनाए गए हैं। इस मंदिर की सुंदरता देखकर बहुत लोग इसे रंगमहल कहते हैं। (भारतवर्षीय इतिहास)

कैसवराम—इनके जन्म आदि के सन्-संवत् का पता नहीं चलता। इनका नाम 'शिवसिंहसरोज' में आया है। ये प्रसिद्ध 'भ्रमरगीत' के रचयिता बतलाए जाते हैं। परंतु प्रसिद्धि यह है कि 'भ्रमरगीत' के यथार्थ में रचयिता कवि कृष्णदास थे।

कैसिका—विदर्भ देश के राजा के पुत्र का नाम।

कोङ्कण—प्राचीन एक राज्य का नाम। प्राचीन केरल राज्य के अंशविशेष को कोंकण कहते हैं। (देखो केरल)

कोङ्कणपुर- कोंकणपुर का ही दूसरा नाम कोंकण है। कोंकण की प्राचीन राजधानी अन्नगुंडी में थी। तुंगभद्रा के उत्तर तीर पर इस नगरी के ध्वंसचिह्न अभी भी पाए जाते हैं। दक्षिण तीर पर विजयनगर नामक नगर के बस जाने से इस समय अन्नगुंडी खंडहर हो रही है। सातवीं सदी में चालुक्यवंशी महाराष्ट्रों का प्रभाव कोंकण में फैला हुआ था। डा० हेमिल्टन कहते हैं कि कोंकण देश के अधिवासी अपने देश को कोंकन कहते हैं। दक्षिणभारत से सिंधु नदी के मुहाने की ओर जाने पर मार्ग में कोकंद नाम की एक जाति का उल्लेख प्लिजी साहब ने किया है। क्या वे ही कोंकण के आदिम अधिवासी हैं? इस प्रकार की शंका कुछ लोग करते हैं। कोंकण के आदिम अधिवासियों के विषय में हुएनत्सांग ने लिखा है—वे काले रंग के और क्रोधी होते हैं, परंतु उनका विद्या में अनुराग होता है। (भारतवर्षीय इतिहास)

कोचरश—'पद्मपुराण' की एक कथा के अनुसार यह एक राजा था। इसकी पत्नी का नाम सुप्रज्ञा था। एक बार जब सुप्रज्ञा एकादशी के दिन विष्णु का जागरण कर रही थी तो वहां शौरी नामक एक ब्राह्मण उपस्थित हुआ। ब्राह्मण राजा-रानी की भक्ति पर बड़ा प्रसन्न हुआ। रानी ने उसे अपने पूर्वजन्म का वृत्तांत सुनाते हुए कहा कि वह जन्मांतर में एक वेश्या थी और उसका पति एक शूद्र था। उस जन्म में संयोगवश दोनों एकादशी के दिन बीमार पड़े और उपवास तथा जागरण हो गया। कदाचित् रोग-मुक्ति के लिए देवता का नाम भी मुंह से निकल गया। उसके परिणामस्वरूप इस जन्म में हमने राजा-रानी का स्वरूप पाया। ब्राह्मण ने उन्हें एकादशी व्रत की कथा सुनायी और कालांतर में तीनों बैकुंठ धाम को प्राप्त हुए।

कोटितीर्थ—इस नाम के तीर्थ जिला बांदा में कालिंजर में, गोकर्ण में और मथुरा में हैं।

कोणार्क—कोणार्क उड़ीसा प्रदेश के पुरी जिले के जगन्नाथपुरी से इक्कीस मील उत्तर-पूर्व दिशा में समुद्रतट पर अवस्थित है। कोणार्क सूर्य मंदिर के लिए प्रसिद्ध है। इस मंदिर की रचना रथ-रूप में की गयी है, जिसमें ६ फुट ८ इंच व्यास के चौबीस विशाल पहिये बनाए गए हैं। उन्हें सप्त अश्वों द्वारा खींचते हुए दिखाया गया है। यह रथ विश्व-रूप चक्र का प्रतीक है और इसके द्वारा सृष्टि की नित्य संचरणक्रिया का भान व्यक्त किया गया है। इसका निर्माण गंगराजा नरसिंहदेव प्रथम (१२३८-६४ ई०) ने किया था। यह विशाल मंदिर ८६४ × ५४० चौकोर प्राकार से घिरा हुआ है। उसका मुख पूर्व की ओर है। मंदिर के तीन प्रधान अंग हैं—देउल (गर्भगृह), जगमोहन (मंडप) और नाटमंडप। नाटमंडप का शिखर भाग ध्वस्त हो चुका है।

कोणार्क के सूर्य मंदिर में भारतीय स्थापत्य का चरमोन्नत रूप दर्शित है। उसकी वास्तुकला और मूर्तिकला की भव्यता दर्शनीय है। उसका नाटमंडप नाना प्रकार के अलंकरणों तथा मूर्तियों से सुशोभित है। उसके सोपान-मार्ग के दोनों ओर गज-शार्दूलों की विशाल तथा भयावह मूर्तियां बनी हुई हैं। वास्तुकला तथा मूर्ति-निर्माण की दृष्टि से देउल तथा जगमोहन का विशेष महत्त्व है। मंदिर के ये दोनों अंग एक ही जगती पर टिके हैं। जगती के नीचे गजरथ बना हुआ है, जिस पर विभिन्न मुद्राओं से युक्त हाथियों के सजीव लगने वाले दृश्य अंकित हैं। उसकी जगती पर विभिन्न देवी-देवताओं, गंधर्व, किन्नर, नाग, विद्याधर और अप्सराओं की भव्य मूर्तियां उत्कीर्णित हैं। इनके अतिरिक्त कामासक्त स्त्री-पुरुषों की विभिन्न भाव-भंगिमाओं से युक्त आकृतियां भी अत्यंत आकर्षक एवं सुंदर हैं।

गर्भगृह (देउल) के तीनों अंगों में गहरे देवकोष्ठ बने हुए हैं, जिनमें भगवान सूर्यदेव की अलौकिक दीप्तियुक्त पुरुषाकार मूर्तियां सुशोभित हैं। जगमोहन का प्रवेशद्वार नाना प्रकार के अलंकरणों से सुशोभित है। यह भी तीन तलों में विभक्त है, जिसपर सैनिक, आखेट, शोभा-यात्रा, नृत्यगान तथा पूजा-पाठ आदि

अनेक विषयों से संबद्ध दृश्य अंकित हैं। उनमें स्थापित स्त्री-मूर्तियों की शोभा-सज्जा विशेष रूप से दर्शनीय है। वे बांसुरी, शहनाई, ढोल, मृदंग, झांझ और मंजीरा बजाती हुई विभिन्न आकर्षक मुद्राओं में दर्शक को अपनी सजीवता का आभास दिलाती हुई प्रतीत होती हैं। इन रची मूर्तियों से सुशोभित जगमोहन का शिखर न केवल वास्तुकला की सर्वांगीण शास्त्रीय सुघरता का द्योतन करता है, अपितु कलात्मक सौंदर्य की दृष्टि से भी अपनी विशिष्टता को प्रकट करता है।

कोण्डानी—कोंडानी की गुफा थाना जिले में अवस्थित है। इसका निर्माण मृज की गुफा के आधार पर हुआ है। यह गुफा अधिकतर नष्ट हो चुकी है। उसकी लंबाई ६६ फुट, चौड़ाई २६ फुट और ऊंचाई लगभग २८॥ फुट है। भीतर के स्तूप का आधार व्यास ९ फुट है। उसके द्वारों की बनावट में काष्ठ का अधिक उपयोग हुआ है, जिसकी समानता मृज की गुफा से है। दोनों की गजपृष्ठाकार छतों और गवाक्षों से भी समानता है। कोंडानी की इस गुफा के बायें पार्श्व में एक भग्न मूर्ति है। इस गुफा को बर्गेस आदि विद्वानों ने बहुत प्राचीन बताया है। उसमें ब्राह्मी लिपि का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है, जिससे पता चलता है कि गुफा का निर्माण कृष्ण (कन्ह) के शिष्य बालक ने किया था (बर्गेस केव टेम्पुल्स ऑफ वेस्टर्न इंडिया)।

कोलासुर—एक दैत्य; एक बार कोहड़ का पिता तपस्यारत था कि कोलासुर उसको यातना पहुंचाने लगा। कोहड़ ने उसका वध कर दिया। (पद्मपुराण)

कोलाहल—मालवा और बुंदेलखंड को अलग करनेवाली एक पर्वतमाला का नाम, जो चंदेरी के पास है।

कोशल—पुराणवर्णित प्राचीनतम एक गौरवशाली राज्य। कोशल राज्य की राजधानी अयोध्या नगरी में थी। यह राज्य अत्यंत प्राचीन है। इस राज्य का उल्लेख वेदों के ब्राह्मणों में पाया जाता है। शतपथब्राह्मण के कोशलराज्य की सीमा इस प्रकार लिखी है। सदानीरा के एक तट पर कोशल राज्य और दूसरे तट पर विदेह राज्य है। कोशल राज्य इक्ष्वाकुवंशियों के अधिकार में था। इक्ष्वाकु से रामचंद्र पर्यन्त इनकी राजधानी अयोध्या ही में थी। रामचंद्र के महाप्रस्थान के पश्चात् अयोध्या नगरी की शोभा नष्ट हो गई थी। रामायण में लिखा है कि कोशल राज्य को दो भागों में बांटकर रामचंद्र ने अपने दोनों पुत्रों को दे दिया। कुश के राज्य का नाम कोशल पड़ा। और लव के राज्य का नाम उत्तरकोशल पड़ा। तब इन दोनों ने अपनी-अपनी राजधानी भी पृथक् कर ली। कुश की राजधानी का नाम कुशावती या कुशस्थली था, और लव की राजधानी का नाम श्रावस्ती था। इसी प्रकार अन्य राजपुत्रों ने अपनी-अपनी राजधानी पृथक् बना ली, इसीसे अयोध्या जनशून्य हो गयी। पुनः इसी वंश में ऋषभ नामक एक राजा उत्पन्न हुए और उन्होंने अयोध्या का पुनः उद्धार किया। (भारतवर्षीय इतिहास)

कौटिल्य—ये एक इतिहासप्रसिद्ध महापुरुष थे। जिस समय ग्रीक देश का अलेक्जेंडर भारतवर्ष में आया था उस समय यहां कौटिल्य वर्तमान थे। कौटिल्य का दूसरा नाम चाणक्य था। उन्हींकी कूटनीति से नंदवंश का नाश और चंद्रगुप्त का मगध के राज्यासन पर अभिषेक हुआ था। मेगास्थनीज ने लिखा है कि चाणक्य और चंद्रगुप्त के समय में भारत में खानों की बड़ी अधिकता थी। कौटिल्य ने प्राचीन ग्रंथों का सारसंग्रह करके अर्थशास्त्र नामक एक ग्रंथ लिखा है। इस ग्रंथ में खान और खनिज पदार्थों के विशद विवरण लिखे हैं। अर्थशास्त्र में लिखा है कि खानों से राजा का कर वसूल होता था। खानें राजाओं की आमदनी का एक द्वार थीं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से प्राचीन राज्य-व्यवस्था संबंधी बहुतसी नयी बातें मालूम होती हैं। यह ग्रंथ आर्यों की व्यावहारिक अभिज्ञता का पूर्ण प्रमाण है।

कौण्डिन्य—हिरण्यकेशी शाखा से संबद्ध एक वृत्तिकार; इसकी वृत्ति उपलब्ध नहीं है।

२. एक वैयाकरण।

३. शाण्डिल्य का शिष्य और कौशिक का गुरु।

४. ऋंडिन कुलोत्पन्न एक ब्रह्मर्षि; स्थावर (थेडर) निवासी; पत्नी का नाम आश्रमा; यह युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ में उपस्थित था।

५. एक ऋषि, जिनका आश्रम हस्तिमती एवं साभ्रमती नदियों के संगम पर स्थित था। एक बार अतिवृष्टि के कारण इसके आश्रम में पानी भर आया था। इसलिए इसने नदी को शाप देकर सुखा दिया और स्वयं विष्णुलोक को प्रस्थान किया।

कौत्स—एक वैयाकरण एवं भाषाशास्त्री; इनके वेदविरोधी मत का यास्क ने 'निरुक्त' (१।१५) में खंडन

किया है।

२. विश्वामित्र के शिष्य; गुरुदक्षिणा न लेने के बावजूद इसने रघु से चौदह करोड़ मुहरें प्राप्त कर उन्हें विश्वामित्र को दिया था। 'रघुवंश' (सर्ग ५) में कालिदास ने ठीक यही कथा वरतंतु के शिष्य कौत्स की दी है।

३. एक ब्रह्मर्षि; भृगुवंशीय राजा भगीरथ ने इन्हें अपनी कन्या हंसी को प्रदान किया था।

कौथुमी—सामवेद की एक शाखा का नाम। इस वेद की अनेक शाखाएं थीं परंतु आज केवल दो ही शाखाएं उपलब्ध होती हैं। एक का नाम कौथुमी और दूसरी का नाम रण्यायन है। कौथुम मुनि द्वितीय शाखा के प्रवर्तक हैं।

कौरव—चंद्रवंशी राजा कुरु के वंशज। धृतराष्ट्र के एक सौ पुत्र 'कौरव' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

कौशकी—यह गंगा की सहायक नदियों में से बहुत बड़ी सहायक नदी है और इसका गंगा के साथ संगम बंगाल में हुआ है और वह स्थान कौशिकी तीर्थ के नाम से अब तक प्रसिद्ध है। यह विश्वामित्र की भगिनी नदी होकर बही है।

कौशल्या—अयोध्या के राजा दशरथ की प्रधान महारानी। यह रामचंद्र की माता और दक्षिण कौशल-राज की कन्या थीं। इसीसे इनका नाम कौशल्या पड़ा था। रामचंद्र के अश्वमेध यज्ञ समाप्त होने पर, इनकी मृत्यु हुई। (रामायण)

कौशाम्बी—एक प्राचीन नगरी। यह प्रयाग के पास है। समय-समय पर प्रतापी राजाओं ने इस नगरी को अपनी राजधानी बनाया है। इस नगरी का कभी कौशाम्बी और कभी कौशाम्बी मंडल नाम था। इस समय की कोसम नगरी को ही बहुत लोग प्राचीन कौशाम्बी समझते हैं। रामायण में इस नगर का उल्लेख किया गया है। महर्षि विश्वामित्र के साथ रामचंद्र और लक्ष्मण मिथिला जा रहे थे। विश्वामित्र ने उनसे पार्श्वस्थ नगरों का वर्णन किया है। विश्वामित्र कहते हैं—कुश नामक एक ब्रह्मपुत्र थे। उन्होंने अपनी सुलक्षणा स्त्री के गर्भ से कुशाम्ब, कुशनाभ आदि चार पुत्र उत्पन्न किए। इन चारों ने एक-एक नगर बसाया था, कुशाम्ब ने कुशाम्बी नगरी बसाई थी। पुरूरवा के बाद दसवीं पीढ़ी में कुशाम्बु नामक एक राजा हुए थे। उन्हीं कुशाम्बु ने कौशाम्बी नगरी बसाई थी—अनेक पुराणों में यह बात लिखी है। विष्णुपुराण में लिखा है कि हस्तिनापुर जब गंगा में डूब गया तो कुरुवंशियों ने अपनी राजधानी कौशाम्बी को बनाया। उस समय कौशाम्बी की शोभा अवर्णनीय थी। कालिदास के मेघदूत में लिखा है कि कौशाम्बी के उदयन नामक एक भाग्यवान राजा थे। बौद्ध ग्रंथों से भी कौशाम्बीराज उदयन का पता चलता है। महावंश नामक बौद्ध धर्म ग्रंथ पंचम शताब्दी में बना है। उसमें लिखा है कि महानुभाव वैशाली से भागकर कौशाम्बी नगरी में बौद्ध पुरोहितों की सभा में गया। ललितविस्तर नामक एक बौद्ध धर्मग्रंथ का ७० या ७६ ई० में चीनी भाषा में अनुवाद हुआ था। अतः वह ग्रंथ खृष्टीय शताब्दी के पहले प्रचलित था। उस ग्रंथ में शतानीक के पुत्र कौशाम्बीराज उदयन की जन्मतिथि लिखी है। जिस दिन बुद्धदेव उत्पन्न हुए थे, उसी दिन उदयन भी हुए थे। लंका में मिले हुए ग्रंथों में लिखा है कि भारतवर्ष के उन्तीस प्रधान नगरों में से कौशाम्बी भी है। कौशाम्बी के राजा उदयनवत्स का नाम तिब्बतियों में प्रसिद्ध है। रत्नावली नाटक में कौशाम्बी के राजा का नाम वत्स लिखा मिलता है। बुद्धदेव ने बुद्धत्व-लाभ करने के पश्चात् अपने बौद्धजीवन का छठा और नवां वर्ष कौशाम्बी नगरी में बिताया था। हुएनत्सांग ने लिखा है कि कौशाम्बी में चंदननिर्मित बुद्ध की मूर्ति वर्तमान है, जिसका दर्शन भी उन्होंने किया था। बुद्धदेव के जीवन-काल में ही राजा उदयन ने उसे बनाया था। वह मूर्ति राजमहल की एक पिटारी में रखी हुई थी।

आज कौशाम्बी में प्राचीनत्व कुछ भी नहीं है। अब न तो वह बुद्ध की मूर्ति ही है और न मंदिर ही। आज प्रयाग से तीस मील उत्तर-पश्चिम की ओर यमुना के किनारे कोसम नाम्नी एक नगरी है। वही नगरी प्राचीन कौशाम्बी नगरी समझी जाती है। कोसम में सम्राट् अकबर का बनाया हुआ एक पत्थर का खंभा है, उससे भी यही बात प्रमाणित होती है।

कौशिक—महर्षि विश्वामित्र का नामांतर। ये महाराज कुशिक के वंशज थे, अतएव इनको कौशिक कहते हैं। उनके पिता का नाम गाधिराज है।

कौषीतकी—ऋग्वेद की एक शाखा का नाम। इस शाखा को ऋग्वेद का ब्राह्मण भी कहा जाता है। इसका दूसरा नाम सांख्यायन है। इसके कर्ता का नाम कुषीतक ऋषि है।

क्रतु—ब्रह्मा के मानस पुत्र का नाम। ये धर्मशास्त्रकारों में से एक हैं। इनकी स्त्री का नाम सन्नीति था, बालखिल्य मुनिगण इन्हींके पुत्र थे।

क्रथकैशिका—किसी समय यह विदर्भ देश की राजधानी थी। यह बरार में है।

क्रमु—इसका अस्तित्व ऋग्वेदकालीन है। इसे आजकल कुर्रम नाम से जाना जाता है, जो इसारवेल के निकट सिंधु के पश्चिम तट में मिल जाती है।

क्रोधवश—कश्यप द्वारा क्रोधवशा से उत्पन्न पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र। इनका यही मातृपरक नाम वंश-परंपरा से प्रवर्तित होता रहा। एक बार कुबेर ने इस वंश के लोगों को सौगंधिक नामक सरोवर की रक्षा के लिए नियत किया। इस बीच भीम कमल लेने के लिए सरोवर पर आया; किंतु इन्होंने कुबेर की अनुमति के बिना उसे फूल नहीं लेने दिया। इस कारण भीम का इनसे युद्ध हुआ और अनेक क्रोधवशों को उसने मार डाला। (महाभारत)

क्रोधा—प्रजापति दक्ष की कन्या और महर्षि कश्यप की भार्या।

क्रौञ्चद्वीप—एक द्वीप का नाम। प्रियव्रत ने पृथिवी को सात भागों में विभक्त किया था, उनमें से एक का नाम क्रौञ्चद्वीप था। क्रौञ्चद्वीप के राजा भव्य थे।

क्रौष्टुकि—एक वैयाकरण एवं भाषाविद् आचार्य। यास्क ने 'निरुक्त' (२।८) में इनके मत का उल्लेख किया है।

क्षत्र—सूर्यवंशी एक राजा का नाम। ये वैवस्वत मनु के पौत्र और राजा धृष्ट के पुत्र थे।

क्षत्रधर्मा—चंद्रवंशी एक राजा। इनके पिता का नाम संहूति था।

क्षत्रवृद्ध—चंद्रवंशी राजा पुरूरवा के पौत्र और आयु के पुत्र।

क्षत्रश्री—ऋग्वेद-वर्णित एक राजा। इसके विषय में ऋग्वेद में लिखा है कि ये राजा प्रतर्द्दन के पुत्र थे।

क्षपणक—महाराजा विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से एक। क्षपणक बौद्ध या जैन संन्यासियों को कहते हैं, अतएव इस नाम से बहुत लोगों का अनुमान है कि ये भी बौद्ध या जैन रहे होंगे। इनके बनाए किसी ग्रंथ का पता नहीं लगता। परंतु काव्य-संग्रह में इनका बनाया हुआ एक श्लोक उद्धृत किया गया है—

नीतिर्भूमिभुजां नतिर्गुणवतां ह्रीरंगनानां रति-
र्दम्पत्योः शिशवो गृहस्य, कविता बुद्धेः प्रसादो गिराम्।
लावण्यं वपुषः श्रुतिः सुमनसां शान्तिर्द्विजस्य क्षमा,
शक्तस्य द्रविणं गृहाश्रमवतां शीलं सतां मण्डनम्॥

अर्थात् राजाओं की नीति, गुणियों की नम्रता, स्त्रियों की लज्जा, दंपती का प्रेम, घर के बाल-बच्चे बुद्धि की कविता, वचन की मधुरता, देह की सुंदरता, सज्जनों का यश, ब्राह्मणों की शांति, सामर्थ्यवान् की क्षमा, गृहस्थों का धन-वैभव और सज्जनों का शील भूषण है। इस एक ही श्लोक से क्षपणक की कवित्व-शक्ति का परिचय भली भांति मिल जाता है। इनके काल के विषय में विक्रम का सभासद् होना ही अधिक प्रमाण है।

क्षितिनन्द—काश्मीर के एक राजा। ये मिहल कुल के राजा बक के पुत्र थे। क्षितिनंद ने तीस वर्षों तक काश्मीर का राज्य किया था। इनके समय में राजकीय व्यवस्था में कुछ विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। (राजतरंगिणी)

क्षिप्रा (शिप्रा)—इस नदी का उद्गम पश्चिमी हिमालय की शिप्रा झील से बताया गया है। ग्वालियर से आगे चलकर यह चंबल (चर्मण्वती) नदी में मिलती है और दक्षिण समुद्र में जाकर विलयित होती है। पुराणों में इसका वर्णन हुआ है। कालिदास ने 'मेघदूत' में इसका सुंदर काव्यमय एवं भौगोलिक वर्णन किया है।

क्षीरस्वामी—ये काश्मीर के राजा जयापीड के राज्यकाल में विद्यमान थे। जयापीड का राज्यकाल, राजतरंगिणी के अनुसार, ७०० शाके अर्थात् सन् ७७९ ई० से लेकर सन् ८१३ ई० तक था। राजतरंगिणी से मालूम होता है कि क्षीरस्वामी जयापीड के गुरु थे। इन्होंने अमरकोष की एक टीका लिखी है और धातुपाठ तथा पाणिनि व्याकरण से संबंध रखने वाले कईएक सूत्र लिखे हैं। कुट्टनीमत काव्य के रचयिता दामोदर गुप्त और अलंकार-शास्त्र-प्रणेता भट्टोद्भट उनके समकालीन थे।

क्षुप—आदिराजा। रामायण के उत्तरकांड में और महाभारत के अश्वमेधपर्व में क्षुप नामक एक राजा का उल्लेख हुआ है। रामायण में लिखा है कि ये ही पृथिवी के आदिराजा थे। सृष्टि के आदिकाल सत्ययुग में मनुष्यों का कोई राजा नहीं था, अतएव मनुष्य ब्रह्मा की शरण गए। ब्रह्मा के आदेश से देवताओं के अंश से क्षुप राजा उत्पन्न हुए। इक्ष्वाकु का जन्म-विवरण जिस प्रकार लिखा गया है, क्षुप का भी जन्मवृत्तांत

उसी प्रकार लिखा गया है। महाभारत अश्वमेधपर्व के चौथे अध्याय में जो लिखा है उससे क्षुप इक्ष्वाकु के पूर्वपुरुष माने जा सकते हैं। युधिष्ठिर ने व्यासजी से राजर्षि भरुत का विवरण पूछा था। उत्तर में व्यास-देव कहते हैं—"तात ! सत्ययुग में प्रजापालक दंड-धर राजा थे, उनके पुत्र प्रसंधि, प्रसंधि के पुत्र क्षुप और क्षुप के पुत्र इक्ष्वाकु हुए ।" अन्य पुराणों में इक्ष्वाकु को मनु का पुत्र बतलाया है। विष्णुपुराण में नेदिष्ट के वंश की ग्यारहवीं पीढ़ी में क्षुप नामक एक राजा का पता मिलता है, परंतु वह क्षुप, मनु के पुत्र नहीं हैं।

क्षेत्रसिंह—ये प्रतापी महाराणा हमीरसिंह के बड़े पुत्र थे। मेवाड़ी भाषा में इनका नाम खेतसिंह है। राणा हमीर के परलोकवासी होने पर क्षेत्रसिंह उस बड़े राज्य के अधीश्वर हुए। सन् १३६५ ई० में ये चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठे थे। राज्यारोहण के कुछ ही समय के बाद क्षेत्रसिंह अपने वीर पिता के वीर पुत्र, साहसी पिता के साहसी पुत्र और जयी पिता के जयी पुत्र हो गए। इन्होंने अजमेर, 'जहाजपुर', मंडल-गढ़ और समस्त चम्पन को जीतकर अपने विशाल राज्य में मिला लिया। वकरौल नामक स्थान में दिल्ली के बादशाह हुमायूं के साथ इनकी लड़ाई हुई। इस लड़ाई में क्षेत्रसिंह की जीत हुई। परंतु इस जीत के बाद ही न मालूम किस कारण से बनोदा के सर-दार ने गुप्तभाव से क्षेत्रसिंह को मार डाला।

क्षेमकरण—ये संवत् १८३५ में उत्पन्न हुए और संवत् १९१८ में मरे। ये संस्कृत और हिंदी के विद्वान् थे। इनकी बनाई 'रामगीतामाला' नाम की पुस्तक प्रसिद्ध है।

क्षेमगुप्त—काश्मीर के एक राजा का नाम। इनके पिता का नाम पर्वगुप्त था। पर्वगुप्त के स्वर्गारोहण करने के अनंतर क्षेमगुप्त काश्मीर के राज्यासन पर अभि-षिक्त हुए। ये मद्यप और अहंकारी युवक थे। ये स्वभाव से उद्दंड और दुर्जनों के साथ रहने के कारण कुवृत्त भी हो गए थे। मद्यपान, रमणी-सेवा, द्यूत आदि में क्षेमगुप्त सर्वदा चूर रहते थे, और धूर्त इनका धन चुराया करते थे। मनस्वी लोग इनके पास तक जाना अनुचित समझते थे क्योंकि ये सज्जनों को गाली दिया करते थे। खुशामदी लोगों का ही वहां पूर्ण अधिकार था। क्षेमगुप्त दानी थे। इन्होंने अपने नाम को स्थिर रखने के लिए क्षेमगुप्तेश्वर नामक शिव की स्थापना की थी। लाहौर के राजा सिंहराज की कन्या दिद्दा से क्षेमगुप्त का विवाह हुआ था। दिद्दा पर क्षेमगुप्त अत्यंत आसक्त थे। अतएव उसने दिद्दाक्षेम नाम से अपनी प्रसिद्धि की।

शृगाल का शिकार करना क्षेमगुप्त को बहुत प्रिय था। वह सर्वदा किरात, डोम और कुत्तों को साथ लेकर शृगालों का शिकार किया करते थे। एक दिन किसी शृगाली के मुख से अग्निज्वाला निकलती देख उनको बड़ा भय हुआ था। अंत में लूता रोग से इन-की मृत्यु हुई। (राजतरंगिणी)

क्षेमदर्शिन—उत्तर कोसल देश का एक राजा; 'महाभारत' (शा० १०५-१०७) के एक संदर्भ में भीष्म पितामह द्वारा राजधर्म का निरूपण करते हुए कहा गया है कि यह राजा एक बार अपनी दुर्बलता के कारण राज्य-भ्रष्ट होकर कालकवृक्षीय ऋषि के पास गया। ऋषि ने इसे कपटनीति एवं राजनीति का उपदेश दिया। किंतु इसकी धर्मप्रवृत्ति को देखकर ऋषि ने विदेह जनक से इसकी मित्रता करा दी। जनक ने एक विजेता की भांति उसका सत्कार किया और उसे स्थान दिया।

क्षेमधर्मन्—काकवर्ण का पुत्र ; मतांतर से क्षेमवर्मन्।

क्षेमधूर्ति—(१) ये कुलूत के राजा थे। महाभारत के युद्ध में इन्होंने दुर्योधन का पक्ष ग्रहण किया था। ये गदायुद्ध में बड़े प्रवीण थे। इन्होंने भीमसेन के साथ युद्ध किया था और उनकी गदा से मारे गए थे। (महाभारत)

(२) क्रोधवश वंश का एक राक्षस, साल्व का सचिव तथा सेनापति; भारत-युद्ध में यह कौरव पक्ष से लड़ा था। बृहत्क्षम ने इसका वध किया।

क्षेमा—एक बौद्धसंन्यासिनी। कोशलराज प्रसेनजित् ने इनसे अनेक धार्मिक प्रश्न पूछे थे। उस समय इनकी बहुत प्रसिद्धि थी। ये एक ज्ञानगौरवशालिनी विदुषी थीं।

क्षेमेन्द्र—ये काश्मीर निवासी एक प्रसिद्ध कवि थे। डॉ० पीटर्सन साहब लिखते हैं कि सन् १०५० ई० में राजा अनंतदेव के राज्यकाल में क्षेमेंद्र ने 'समयमातृका' नामक ग्रंथ बनाया। परंतु डा० व्यूलर साहब का कहना है कि क्षेमेंद्र का विद्या-संबंधी जीवन सन् १०२५ ई० से १०७५ ई० तक रहा होगा। इन बातों से क्षेमेंद्र का समय ११वीं शती निश्चित होता है। इनके बनाए अनेक ग्रंथ हैं, जिनमें कई एक प्रसिद्ध और आदरणीय हैं। उनमें से 'औचित्यविचारचर्चा',

'कलाविलास', 'दर्पदलन', 'कविकंठाभरण', 'चर्तुवर्ग-संग्रह', 'चारुचर्या', 'बृहत्कथामंजरी', 'समयमातृका', 'सुवृत्ततिलक' और 'दशावतारचरित' बहुत प्रसिद्ध हैं।

इनके बनाए ग्रंथों को देखने से मालूम पड़ता है कि ये विलक्षण कवि और बड़े व्यवहार-कुशल थे। इनके ग्रंथों में कायस्थ और मुसलमानों की बड़ी निंदा है। 'समयमातृका' नामक ग्रंथ का विषय दामोदर गुप्त विरचित 'कुट्टनीमत' के समान है। 'अवदानकल्पलता' नामक ग्रंथ में इन्होंने बौद्ध महापुरुषों की जीवनी और उससे शिक्षा लिखी हैं। यह ग्रंथ एशियाटिक सोसाइटी से मुद्रित हो गया है। क्षेमेंद्र पहले शैव थे, परंतु बाद में एक वैष्णव संन्यासी का साथ होने के कारण वे वैष्णव हो गए। बहुत लोगों का यह भी कहना है कि वे वैष्णवता से मुंह मोड़कर बौद्ध हो गए थे।

ख

खगम—तपोबलसंपन्न एक ब्राह्मणकुमार। इनके शाप से इनके मित्र सहस्रपाद सर्प हो गए थे। इन्होंने अपने मित्र से कहा कि रुरु मुनि के दर्शन करने से तुम शापमुक्त हो जाओगे। (महाभारत)

खगेन्द्र—काश्मीर के एक राजा। इनके पिता का नाम कुशेशय था। कुशेशय की मृत्यु होने पर इनका काश्मीर के राज्य पर अभिषेक हुआ था। इन्होंने सरवागि और खोनमुख नामक दो प्रधान अग्रहार बनवाकर ब्राह्मणों को दान कर दिए थे।

खजुराहो—मध्यप्रदेश के छतरपुर नगर से २५ मील उत्तर-पूर्व में खजुराहो की अपार कला-संपत्ति सुरक्षित है। खजुराहो को चंदेल राजाओं की राजधानी होने का सौभाग्य प्राप्त रहा। खजुराहो के चारों ओर खेतों में फैली गिट्टियों और छोटे-छोटे टीलों को देखकर ज्ञात होता है कि इस सुदूर तक फैले हुए उसके क्षेत्र में कोई विशाल नगर था और उसका अस्तित्व कई सौ वर्षों तक बना रहा। खजुराहो के कला-मंदिरों का निर्माण १०वीं शती ई० के मध्य से १२वीं शती ई० के अंत तक होता रहा। इनके निर्माण का एकमात्र श्रेय चंदेलवंशीय शासकों को रहा है।

प्रचलित परंपराओं के अनुसार खजुराहो के मंदिरों की संख्या ८५ बताई जाती है, किंतु संप्रति वहां केवल २५ मंदिर ही किसी प्रकार सुरक्षित रह सके हैं। उनमें भी अनेक भग्नावशेष मात्र हैं। खजुराहो के ये मंदिर भारतीय कला-परंपरा के चरम विकास के परिचायक हैं। वे अपने निर्माता कलाकारों की कालजयी अमर साधना के प्रतीक हैं। उनमें विभिन्न धर्म-समुदायों का समन्वय हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन भारत में प्रचलित शैव, शाक्त, वैष्णव और जैन धर्मों के अनुयायी कलाकारों ने अपनी कला-साधना को वहां मूर्तिमान कर दिया था। इन कलाकृतियों की अपनी विशेषता इस बात में है कि उनमें सर्वथा विरोधी भाव-विचारों के दर्शन होते हैं। उनमें एक ओर तो गंभीर आध्यात्मिकता और दूसरी ओर उत्कट लौकिकता की सूक्ष्म दृष्टि निहित है। एक ओर तो वहां ब्रह्मा, विष्णु, गणेश, शिव के विभिन्न रूप, अष्ट दिक्पाल, पार्श्वनाथ, आदिनाथ, पार्वती और जगदम्बा आदि विभिन्न देवी-देवताओं तथा अवतारी महापुरुषों की छवियां देखने को मिलती हैं, वहीं दूसरी ओर चौंसठ योगिनियों, मिथुनों, अप्सराओं तथा नायक-नायिकाओं की उत्कट बासनायुक्त आकृतियों के दर्शन होते हैं। सात्त्विक भावों और रजस् मनोविकारों की समूची सर्वथा विपरीत दशाओं का समन्वय करके समष्टिगत मानवता को किसी निश्चित स्थिति पर पहुंचाने के लिए खजुराहो के महान् कलाकारों का लक्ष्य ऊपर से देखने में जितना ही पृथुल प्रतीत होता है, उसका विश्लेषण करने पर वह उतना ही सूक्ष्म दृष्टिगत होता है।

खजुराहो के मंदिरों का मूर्तिशिल्प समस्त भारत के उपलब्ध मूर्तिशिल्प में अपनी समता का स्वयं ही

उपमान है। इसी प्रकार उनका स्थापत्य भी सर्वथा अनुपम है।

खट्वाङ्ग—सूर्यवंशी एक राजा। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि खट्वांग के पुत्र दीर्घबाहु थे।

खड्गधर—'पद्मपुराण' में उल्लिखित सौराष्ट्र देश का एक राजा; एक ब्राह्मण ने इसके मदमत्त हाथी का मद 'गीता' के सोलहवें अध्याय के पारायण से निकाला था।

खड्गबाहु—'पद्मपुराण' में वर्णित एक राजा; एक बार इसके पुत्र का सेनापति दुःशासन हाथी से गिरकर मर गया था। जन्मांतर में वह हाथी ही बना। इस हाथी को सिंहल देश के एक राजा ने राजा खड्गबाहु को भेंट किया, खड्गबाहु ने उसे एक कवि को और कवि ने मालवदेश के किसी राजा को प्रदान कर दिया।

खड्गसेन—ये जाति के कायस्थ और ग्वालियर के रहने वाले थे। इनका जन्म सन् १६०३ ई० में हुआ था। इनकी दो कविताएं अर्थात् दानलीला और दीपमालिकाचरित्र प्रसिद्ध हैं।

खण्डगिरि-उदयगिरि—खंडगिरि (भग्न पहाड़ी) के नाम से उदयगिरि, नीलगिरि और खंडगिरि नामक तीन पहाड़ियों का बोध होता है। उदयगिरि में चौवालीस, खंडगिरि में उन्नीस और नीलगिरि में तीन गुफाएं हैं। उदयगिरि की हाथीगुफा में खारवेल का महत्त्वपूर्ण अभिलेख प्राप्त हुआ है। खंडगिरि की पहाड़ी भुवनेश्वर (उड़ीसा, पुरी जिला) से तीन मील पश्चिमोत्तर खुर्दा तहसील में स्थित है।

खण्डन कवि—ये बुंदेलखंड के वासी थे और इनका जन्म सन् १८२७ ई० में हुआ था। इन्होंने नायक-नायिका-भेद पर एक अच्छा ग्रंथ रचा था। वह ग्रंथ झांसी में इस समय भी किसीके पास विद्यमान है।

खनक—एक निपुण शिल्पी; विदुर का मित्र; पांडवों को मारने के लिए पुरोचन से दुर्योधन ने लाक्षागृह बनाया था। पांडव उसमें रहने लग गए थे। एक बार विदुर ने अपनी अंगूठी को देकर उसे संदेशवाहक बनाकर युधिष्ठिर के पास भेजा। युधिष्ठिर ने उससे पांडवों को लाक्षागृह से मुक्त करने के लिए कहा। उसने लाक्षागृह के बीच से एक सुरंग तैयार की।

(महाभारत)

खना—विख्यात ज्योतिःशास्त्रपंडिता महिला। ये विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से एक मिहिर की स्त्री थीं, नवरत्न सभा के एक दूसरे रत्न वररुचि के भी पुत्र का नाम मिहिर था, परंतु खना के पति मिहिर उससे भिन्न हैं। ये मिहिर वराह के पुत्र थे। अतएव खना के पति वराहमिहिर नाम से प्रसिद्ध हैं। विक्रमादित्य के राज्यकाल में वराह भी एक प्रसिद्ध ज्योतिषी समझे जाते थे। कहते हैं कि मिहिर का जन्म होने पर वराह ने गणना करके विचारा कि मिहिर की आयु बहुत कम है। यह इकलौता पुत्र मेरी आंखों के सामने ही मर जाए, इस कष्ट को मैं कैसे सहूंगा! यह सोचकर वराह ने उस पुत्र को आंखों के सामने से हटा देने का विचार किया। वराह ने उस पुत्र को एक पात्र में रखकर एक नदी में छोड़ दिया। वह लड़का बहते-बहते लंका गया। वहां के वासियों ने समुद्र से उस लड़के को निकालकर, उसका लालन-पालन किया। वहां ही खना के साथ मिहिर का ब्याह हुआ। लंकावासियों से खना और मिहिर ने ज्योतिष विद्या की शिक्षा पाई थी। खना और मिहिर जब लंका से लौटकर आ रहे थे तब मार्ग में उसी समय उत्पन्न एक बछड़े की जन्मकुंडली की गणना करने में अपनी भूल समझकर, ज्योतिष के ग्रंथों को उन्होंने समुद्र में डुबो दिया। परंतु गणना ठीक थी यह बात खना ने उन्हें समझा दी। तब बहुत परिश्रम करके खना ने मिहिर के ज्योतिष ग्रंथों को समुद्र से निकाला। परंतु पातालगणना की पुस्तक नहीं मिल सकी। क्योंकि वह पुस्तक समुद्र में डूब चुकी थी। इससे पातालगणना विषयक पुस्तक संसार से उठ गई। मिहिर खना के साथ विक्रमादित्य की राजधानी उज्जयिनी में उपस्थित हुए। कुछ दिनों के बाद वराह के साथ इनका परिचय हुआ। वराह पुत्र और पुत्रवधू को अपने घर ले आए। अपने स्वामी की आयुगणना में जो वराह ने भूल की थी वह खना ने अपने ससुर को समझा दी। थोड़े ही दिनों में खना की विद्वत्ता की प्रसिद्धि हो गई। एक दिन विक्रमादित्य ने वराह को आकाश के नक्षत्र गिनने के लिए कहा। वे आकाश के नक्षत्रों को न गिन सकने के कारण बहुत चिंतित थे। खना ने उनको चिंतित देख, उसका कारण समझकर बिना परिश्रम ही नक्षत्रों की गणना कर दी। विक्रमादित्य ने खना की विद्वत्ता वराह से सुनी। विक्रमादित्य ने विदुषी खना को एक सभा में पुरस्कृत करने की इच्छा से उसको राज्यसभा में लाने के लिए वराह को आज्ञा दी। पुत्रवधू को राजसभा में ले जाना

अपमानजनक समझकर वराह ने अपने पुत्र मिहिर को खना की जीभ काटने की आज्ञा दी। जब मिहिर पिता की आज्ञा मानने के लिए उद्यत न हुए तब खना ने कहा कि अब मेरी आयु शेष हो चुकी है, अतएव आपका जीभ काटना किसी प्रकार हानिकारी नहीं होगा। जीभ काटी जाने पर खना मर गई। एक आग्रही वृद्ध ने अज्ञान और हठवश भारत के एक रत्न को नष्ट कर डाला।

खनित्र—राजा प्रमति का पुत्र तथा चाक्षुष का पिता; मतांतर से प्रजनि का पुत्र और क्षुप का पिता। (मार्कंण्डेयपुराण)

खनिनेत्र—कुछ पुराणकारों ने तो इसके पिता का नाम दम्भ और कुछ ने निंतिश बताया है। इसी प्रकार इनके पुत्र का नाम किसीके मत से करंधम और किसीके मत से अतिभूति था। अपनी दुष्ट प्रकृति के कारण इसने अपने चौदह भाइयों को अधिकारच्युत करके स्वयं राज्यपद प्राप्त किया, किंतु प्रजा ने असंतुष्ट होकर उसे राज्यच्युत कर दिया। इसके बाद इसका पुत्र सुवर्चा गद्दी पर बैठा। वह भी राज्यभार को वहन न कर तपस्या करने चला गया। उसके बाद उसका पुत्र बलाश्व उत्तराधिकारी बना।

खर—शूर्पणखा का एक भाई। सुमाली राक्षस की कन्या राखा विश्रवा मुनि को ब्याही गई थी। राखा के गर्भ से खर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। खर १४ हजार राक्षसी सेना लेकर रावण के अधिकृत जनस्थान की रक्षा करता था। राम के वनवास के समय दुराचारिणी शूर्पणखा के कान-नाक काट लिए गए थे। इस कारण खर ने १४ राक्षसों को राम के विरुद्ध भेजा, परंतु वे सब राक्षस मारे गए, तदनंतर खर के सेनापति दूषण और त्रिशिरा ने चौदह हजार राक्षसों की एक सेना लेकर राम पर आक्रमण किया। परंतु अंत में वह मारा गया। अकंपन इनके मारे जाने की खबर लंका ले गया था। (रामायण)

खरदूषण—लंकानिवासी एक राक्षस; लंकापति रावण तथा शूर्पणखा का भाई; विश्वावसु मुनि इसके पिता और सुमाली राक्षस की कन्या इसकी माता थी। लक्ष्मण ने जब शूर्पणखा के नाक-कान काट दिए थे तो क्रोधाभिभूत होकर यह राम-लक्ष्मण से युद्ध करने के लिए आया था। राम ने इसका वध किया। अपने अग्रज की ही भांति यह भी महान् विद्वान् था।

खलीफा—इस्लाम धर्म के अनुसार पैगम्बर मोहम्मद साहब के बाद धर्म-संरक्षण का अधिकार परंपरा से जिन प्रतिभावान् व्यक्तियों को दिया गया, उन्हें खलीफा कहा जाता था। इस्लाम धर्मानुयायियों में धर्मानुशासक के रूप में अबूबक्र, उमर, उसमान गनी और अली आदि खलीफाओं का नाम विश्रुत है।

खश—उत्तरभारतीय एक पार्वत्यप्रदेशवासियों का नाम।

खशा—दक्ष प्रजापति द्वारा असिक्नी में उत्पन्न कन्या; इसका विवाह प्रजापति कश्यप के साथ हुआ था। इससे यक्षों की उत्पत्ति हुई।

खाण्डववन—एक प्राचीन वन का नाम। पुराणों में लिखा है कि राजा श्वेतकि के यज्ञ में घृत की अक्षय्य धारा पान करने से अग्नि को अजीर्ण हो गया था। उसे पचाने के लिए अग्नि ने अर्जुन की सहायता से खांडववन को जलाया। खांडवदाह के समय इंद्र ने विरोध भी किया था क्योंकि उस वन में तक्षक का पुत्र रहता था। उसी को सहायता देने की इच्छा से इंद्र ने उसका विरोध किया था।

खाण्डिक्य—मिथिला के राजा मृतध्वज के पुत्र का नाम।

खुमान—ये बुंदेलखंडी थे और चरखारी में रहा करते थे। इनका जन्म सन् १६८३ ई० में हुआ था। ये जन्मान्ध थे और इन्हें कुछ भी शिक्षा नहीं मिली थी। दैवयोग से एक दिन एक महात्मा इनके घर पर आए और चार महीने तक वे टिके रहे। जब वे चरखारी से विदा हुए, तब वहां के अनेक प्रतिष्ठित और विद्वद्जन उन्हें पहुंचाने के लिए नगर की सीमा तक गए। और सब तो महात्माजी को नगर की सीमा तक पहुंचाकर लौट आए, परंतु खुमान नहीं लौटा। वह चलता ही चला गया। जब महात्मा ने बार-बार उससे लौटने के लिए कहा, तब खुमान ने कहा—महाराज! मैं घर जाकर क्या करूंगा, मैं अंधा हूं, अनपढ़ हूं, मैं घर के किसी काम के योग्य नहीं हूं। मैं धोबी के उस गधे के समान हूं जो न घर का है और न घाट का। यह सुन महात्मा प्रसन्न हुए और खुमान की जिह्वा पर उन्होंने सरस्वती मंत्र लिख दिया और कहा कि तुम एक पद्य मेरे कमंडलु के वर्णन में बनाओ। यह सुनते ही खुमान ने तुरंत पच्चीस पद्य बना डाले और गुरु महाराज के चरणों की धूलि अपने सिर पर चढ़ाकर लौट गए। तब से वे संस्कृत और हिन्दी में कविता रचने लगे।

एक बार वे ग्वालियर के सिंधिया महाराज के दरबार में गए। महाराज ने उन्हें रात-भर में एक

संस्कृत का ग्रंथ बनाने की आज्ञा दी, इसपर रात-भर में खुमान ने ७०० श्लोक बनाए।

इनमें ईश्वरप्रदत्त प्रतिभा थी और इनके बनाए सर्वोत्कृष्ट दो ग्रंथ हैं। 'लछमनशतक' और 'हनुमान-नखसिख'। संभवतः यह वे ही खुमान कवि हैं जिन्होंने हिंदी में अमरकोष का पद्यमय अनुवाद किया था।

खुमानसिंह—खुमान राउत गुहलौत चित्तौड़ के राजा थे, और सन् ८३० ई० में विद्यमान थे। इन्हींके स्मरणार्थ 'खुमान रायसा' की रचना की गई थी। यह मेवाड़ का सबसे प्राचीन इतिहास है और नवीं शताब्दी में बनाया गया था; किंतु राणा प्रताप के समय में फिर इसका संशोधन हुआ और इसमें अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ आक्रमण और महाराणा प्रताप तथा अकबर के युद्ध के समय तक का वृत्तांत जोड़ा गया।

खूबचंद कवि—इनके समय का पता नहीं चलता। शिवसिंह ने अपने सरोज में इनका नामोल्लेख किया है और लिखा है कि ईडर नरेश राजा गंभीरशाह की प्रशंसा में इन्होंने पद्य रचे थे।

खेम कवि—ये ब्रजवासी थे और इनका जन्म सन् १५७३ ई० में हुआ था। इनका बनाया एक नायिकाभेद पर ग्रंथ पाया जाता है। जान पड़ता है कि छेम का दूसरा नाम खेम था।

ख्याति—महर्षि भृगु की पत्नी और प्रजापति दक्ष की कन्या। इनके गर्भ से धातृ-विधातृ दो पुत्र और लक्ष्मी नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई थी।

ग

गङ्ग कवि—इनका जन्म संवत् १५८५ में हुआ था और ये इकनौर जिला इटावा के रहने वाले थे। एक बार राजा वीरवर ने प्रसन्न होकर इन्हें एक लाख रुपये पुरस्कार में दिए थे। ये अकबर के दरबारी थे और अकबर, खानाखाना आदि से इन्हें प्रायः पुरस्कार मिला करते थे।

गङ्गा—भारत की पुण्यसलिला एक प्रसिद्ध नदी। प्राचीन काल से ही इस नदी की महिमा ऋषियों ने गाई है। वाल्मीकिरामायण में लिखा है कि गिरिराज हिमालय की दो कन्याएं थीं। एक का नाम गंगा और दूसरी का नाम उमा था। सुमेरु की कन्या मेनका से हिमालय का ब्याह हुआ था। उसी मेनका के गर्भ से हिमालय की कन्या गंगा उत्पन्न हुई थी। देवता लोगों ने किसी विशेष कार्य के लिए हिमालय से भिक्षा में गंगा को मांगा। गंगा में महादेव का वीर्य डाला गया। परंतु उसके धारण करने में असमर्थ होकर गंगा ने उस महादेव के वीर्य को हिमालय के समीपस्थ एक शर-वन में फेंक दिया। इससे देवता और ऋषि चिंतित हुए। उन लोगों ने महादेव के वीर्य की रक्षा करने के लिए छः कृत्तिकाओं को वहां भेजा। इन्हीं लोगों ने उसकी रक्षा की और कुमार कार्त्तिकेय उत्पन्न हुए। गंगा अपना गर्भ निकालकर, ब्रह्मा के कमंडलु में रहने लगीं। पुनः सगरवंशियों ने अपने पूर्वपुरुषों के उद्धार के लिए अनेक वर्षों तक तपस्या की, जिससे कि गंगा पाताल में आएं, वे अपने कार्य में सफल भी हुए थे। सगरवंशीय राजा भगीरथ ने गंगा को लाकर अपने साठ हजार पुत्रों का उद्धार किया था।

गंगा का दूसरा नाम विष्णुपदी है। ध्रुव नक्षत्र स्थान को पौराणिक विष्णु का तृतीय पद कहते हैं। वहीं मेघ एकत्रित होते हैं और वृष्टि करते हैं। वृष्टि ही से गंगा की उत्पत्ति होती है, इस कारण गंगा को विष्णुपदी कहते हैं।

गंगा का एक और नाम जाह्नवी है। भगीरथ जिस समय गंगा को मर्त्यलोक में ले आ रहे थे, उस समय जह्नु मुनि का आश्रम गंगा की धार में डूब गया। जह्नु एक यज्ञ करने का प्रबंध कर रहे थे। गंगा का जल आने से यज्ञ की सामग्री नष्ट हो गई। क्रुद्ध होकर मुनि ने योगबल से गंगा को पी लिया। पुनः भगीरथ द्वारा स्तुति करने पर उन्होंने कर्णरंध्र से गंगा को निकाल दिया। तबसे गंगा का नाम

जाह्नवी या जुह्नुकन्या पड़ा।

गङ्गादास—'छंदोमंजरी' नामक छंद का एक ग्रंथ इन्हीं कवि गंगादास का बनाया हुआ है। ग्रंथ के प्रारंभ और अंत में कवि ने अपना कुछ परिचय दिया है। प्रारंभ का श्लोक यह है—

देवं प्रणम्य गोपालं वैद्यगोपालदासजः।
संतोषातनयश्छन्दो गङ्गादासस्तनोत्यदः॥

अर्थात् मैं देवगोपाल को प्रणाम करके इस छंदोग्रंथ की रचना करता हूं। मेरे पिता का नाम वैद्य गोपालदास है, और माता का नाम संतोषा है। अंत का श्लोक यह है—

सर्गैः षोडशभिः समुज्ज्वलपदैर्नव्यार्थभव्याशयै-
र्येनाकारि तदच्युतस्य चरितं काव्यं कबिप्रीतिदम्।
कंसारेः शतकं दिनेशशतकद्वन्द्वं च तस्यास्त्वसौ
गङ्गादासकबेः श्रुतौ कुतुकिनां सच्छन्दसां मञ्जरी॥

अर्थात् गंगादास कवि ने कवियों को प्रसन्न करने वाले अच्युतचरित नामक सोलह सर्ग वाले काव्य को बनाया, जिसमें बहुत-से ललित पद तथा नवीन अर्थ और मनोहर आशय भरे हुए हैं। उसी कवि ने कंसारि भगवान् कृष्णचंद्र की बाललीला का जिसमें वर्णन है और सूर्यवर्णनात्मक सूर्यशतक भी, सौ-सौ श्लोकों के दो शतक बनाए; उसी कवि की प्रतिभा की यह 'छंदोमञ्जरी' सुनने वालों के कर्णों को तृप्तिदायक होवे। उपर्युक्त श्लोकों से इस ग्रंथ के कर्ता के माता-पिता और अन्य ग्रंथों के नाम बिदित होते हैं। ये वैद्यवंश में उत्पन्न हुए थे। यद्यपि ये महाकवि नहीं थे, तथापि भाग्यवान् इतने थे कि इनका रचित 'छंदोमञ्जरी' छोटा-सा ग्रंथ भारतवर्ष-भर में प्रचलित है। सुनने में आता है कि इनके पिता गोपालदास वैद्य ने 'पारिजातहरण' नाम का एक नाटक बनाया है।

गंगादास ने अपनी 'छंदोमञ्जरी' में 'अनर्घ्यराघव' नाटक का एक श्लोक और 'गीतगोविंद' का श्लोक उद्धृत किया है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि अनर्घ्यराघवप्रणेता मुरारि मिश्र और जयदेव से ये प्राचीन नहीं हैं। परंतु इनके समय का कुछ ठीक पता नहीं चलता। किसी-किसीके मत में खृ० १२वीं शताब्दी मुरारि का समय माना गया है, जयदेव का भी १२वीं सदी का पूर्वभाग समय है, अतएव गंगादास १२वीं सदी के पहले के नहीं हैं। इतने ही से इनके समय-निरूपण करने से संतोष करना पड़ता है।

गङ्गाद्वार—हरिद्वार का दूसरा नाम (देखो मायापुर)

गङ्गाधर—(१) इन्होंने बिहारी की सतसई पर एक टीका लिखी है। यह टीका कुंडलिया और दोहों में है और उसका नाम उपसतसैया है। ये कहां उत्पन्न हुए थे और कब थे—इन बातों का पता नहीं। इनका नाम शिवसिंहसरोज में पाया जाता है।

(२) एक प्रसिद्ध धर्मशास्त्र के पंडित। इन्होंने संस्कृत के अनेक ग्रंथ बनाए हैं; जिनमें प्रधान ये हैं—'कात्यायनसूत्रटीका', 'आधानपद्धति', 'पाकयज्ञ-पद्धति', 'प्रयोगपद्धति', 'स्मार्तपदार्थसंग्रहपद्धति' और 'संस्कारपद्धति'।

(३) इस कवि के रचित श्लोक गोविंदपुर के एक शिलालेख में मिले हैं। उस शिलालेख में मिति शाके १४५६ अर्थात् सन् ११३७ ई० की दी है। इससे ऐसा मालूम पड़ता है कि ये कवि उसी समय विद्यमान थे। लेख में यह कवि अपनी वंशावली भी कुछ लिखता है जिससे विदित होता है कि उसके प्रपितामह का नाम दामोदर, पितामह का नाम चक्रपाणि, पिता का नाम मनोरथ, चाचा का नाम दशरथ और भाइयों का नाम महीधर तथा पुरुषोत्तम था। 'एपिग्राफिया इंडिका' में इस लेख के संबंध में लिखा है कि श्रीधरदास विरचित 'सदुक्तिकर्णामृत' सन् १२०५ ई० में रचा गया।

विल्हण के विक्रमांक देवचरित में भी एक गंगाधर कवि का नाम मिलता है। जान नहीं पड़ता कि ये गोविंदपुर के शिलालेख वाले गंगाधर हैं या और कोई। 'काव्यसंग्रह' में गंगाधर कवि विरचित 'मणि-कर्णिकाष्टक' छपा है। न जाने यह गंगाधर इनमें से कौन से हैं।

गङ्गापति—ये सन् १७१८ ई० में वर्तमान थे। इनका बनाया 'विज्ञान-विलास' एक ग्रंथ है, जिसे इन्होंने संवत् १७७५ में लिखा था। यह दार्शनिक ग्रंथ है और गुरु-शिष्य के परस्पर प्रश्नोत्तर के रूप में लिखा गया है।

गङ्गाप्रसाद—(देखो गंग कवि)

गच्छ—(१) विष्णुपुराणोक्त एक मनुष्य।

(२) बौद्धों का मठ, जिसमें यतिसमूह शास्त्रचिंता किया करते हैं।

गज—ये जैसलमेर के एक यदुवंशी राजा थे। इनके पिता का नाम रज है। राजकुमार गज के यौवन में पदा-

र्पण करते ही पूर्व देश के राजा यदुभानु ने अपनी कन्या से विवाह करने के लिए नारियल भेजा। जिस समय राजमहल में राजकुमार के विवाह की धूम पड़ी थी, उसी समय यह समाचार आया कि खुरासान का फरीदशाह चार लाख घुड़सवार सेना लेकर आ रहा है, उसके भय से प्रजा इधर-उधर भाग रही है। राजा ने ठीक बात जानने के लिए दूत भेजा और वे स्वयं भी युद्ध का उद्योग करने लगे। राजा भी अपनी सेना लेकर हरियू नामक स्थान पर जा पहुंचे। दोनों ओर से घमासान युद्ध होने लगा। इस युद्ध में यवन सेना न ठहर सकी, तीस हजार सैनिक मारे गए। फरीदशाह की हार हुई। राजकुमार गज भी विवाह करके इस युद्ध में सम्मिलित हुआ था। पुनः बची-खुची सेना लेकर यवनों ने चढ़ाई की, यद्यपि इस बार भी जीत हिंदुओं की ही हुई, परंतु राजा रज अब की बार मारे गए।

पुनः रूम के सुल्तान से यवनों ने अपना धर्म-प्रचार करने के मिष सहायता मांगी। इधर राजा गज भी मंत्रियों को बुलाकर उनका सामना करने के लिए परामर्श करने लगे। उस समय तक उस देश में कोई ऐसा किला नहीं था जिसमें कुछ सैनिक रहकर एक बड़ी भारी सेना का सामना कर सकें, इसीलिए राजा गज ने उत्तर ओर वाले पहाड़ पर एक किला बनवाया, जिसका नाम गजनी पड़ा। जिस समय किला बनकर तैयार हुआ, उसी समय संवाद आया कि रूम और खुरासान के दोनों अधीश्वर सेना लेकर लड़ने के लिए समीप आ गए हैं। दूतों ने कहा—

रूमीपति खुरसानपति, हय पय पाखड पाय।
चिंता तेरे चित्त लगि, सुनियो यदुपतिराय॥

राजा गज को देवी ने स्वप्न में आदेश दिया था कि, इस युद्ध में तुम जीतोगे, ज्योतिषियों ने शुभ मुहूर्त बता दिए थे। राजा गज ने अपनी विजययात्रा की। अभी युद्ध भी प्रारंभ नहीं हुआ था तब एक खबर मिली कि खुरासान का अधीश्वर मर गया। इससे रूमी सुल्तान घबड़ाया तो अवश्य, परंतु वह अपने उद्देश्य से विचलित नहीं हुआ। दोनों ओर की स्वामीभक्त सेना लड़ने लगी। अंत में बिजय राजा गज की ही हुई। युधिष्ठिर के ३००८ संवत् बीतने पर गर्जसिंह का गजनी के सिंहासन पर अभिषेक हुआ। पुनः गर्जसिंह ने काश्मीरराज राजा कंदर्पकेलि को अपने यहां बुला भेजा, परंतु उसने साफ कह दिया कि बिना युद्ध किए मैं आने वाला नहीं। इस कारण गर्जसिंह ने काश्मीर पर चढ़ाई की। काश्मीरराज ने हारकर उनकी अधीनता स्वीकार की। कंदर्पकेलि की कन्या से राजा गज ने विवाह किया था, जिसके गर्भ से शालिबाहन उत्पन्न हुए। इस राजकुमार की जब १२ वर्ष की अवस्था थी तब संवाद आया कि मुसलमानों की एक बड़ी सेना लड़ने के लिए आ रही है। गर्जसिंह भी तैयार हुए, परंतु देवी ने इन्हें स्वप्न में आदेश दिया कि तुम राजकुमार को पूर्व के देशों में भेज दो। अब की बार तुम्हारा राज्य छिन जाएगा और इस युद्ध में तुम भी मारे जाओगे। तुम्हारे वंशज मुसलमान बनकर, तुम्हारे इस राज्य का उद्धार कर सकते हैं। दोनों ओर से युद्ध हुआ। खुरसान के अधीश्वर और गज दोनों ही इस युद्ध में मारे गए। **(टाड्स राजस्थान)**

गजकर्ण—एक यक्ष; महिषासुर का पुत्र। इसने शंकर की तपस्या करके उन्हें प्रसन्न किया था और उनके त्रिशूल से हत होकर अमरता प्राप्त की। इसकी इच्छा से शंकर ने इसके चर्म (कृत्ति) को धारण कर 'कृत्तिवासस्' नाम प्राप्त किया था। इस असुर को काशी में मोक्षत्व प्राप्त हुआ था। इसीलिए काशीस्थ शिवलिंग को कृत्तिवासेश्वर भी कहा जाता है। **(शिवपुराण)**

गर्जसिंह—(१) बीकानेर के एक राजा। जोरावरसिंह के बाद ये बीकानेर के राज्यासन पर बैठे। इनके शासनकाल में अनेक घटनाएं हुई थीं। महाराज गर्जसिंह, यथार्थ में एक वीर राठौर थे। इन्होंने इकतालीस वर्ष तक राज्य किया और अपने राज्य की सीमा बढ़ाई। इन्होंने भाटिया तथा भावलपुर के मुसलमानों के साथ अनेक युद्ध किए थे और ये सभी में विजयी हुए थे। महाराज गर्जसिंह ने भाटियों से राजासर, कालिया, रानियार, सत्यसर, वून्निपुरा, युतालाई और दूसरे भी कितने ही छोटे-मोटे प्रदेश अपने राज्य की सीमा में मिला लिए थे। इन्होंने भावलपुर के खां के साथ युद्ध करके अनूपगढ़ नामक किला हस्तगत कर लिया था। राजा गर्जसिंह के सोलह पुत्र थे, जिनमें छः विवाहित रानियों से उत्पन्न हुए थे। **(टाड्स राजस्थान)**

(२) ये जैसलमेर के राजा थे। ये अपने पिता मानसिंह (काना) के तीसरे पुत्र थे। जिस समय ये जैसलमेर के राजसिंहासन पर बैठे थे उस समय राज्य की विलक्षण दशा थी। मेहता सलीमसिंह ने विष-

प्रयोग से कितने ही राजकुमारों को मरवा डाला था, कितनों को देशनिकाला दिलवाया था।

(३) जोधपुर के एक राजा का नाम। ये महाराज शूरसिंह के पुत्र थे। पिता की मृत्यु के उपरांत उनके ज्येष्ठ पुत्र गर्जसिंह सन् १६२० ई० में सिंहासन पर बैठे। गर्जसिंह का जन्म लाहौर में हुआ था। पिता की मृत्यु के समय वे बुरहानपुर में थे। उसी समय दाराबखां बादशाह का प्रतिनिधि बनकर गजसिंह के खेमे में गया और उनके मस्तक पर मुकुट, ललाट में राजतिलक और कमर में तलवार लटकाई। मारवाड़ राज्य के अतिरिक्त बादशाह ने और भी उन्हें जागीर दी। और उसी समय इस होनहार वीर राजा को दक्षिण की सूबेदारी भी मिली और उनकी सेना के घोड़ों को न दागने की आज्ञा देकर बादशाह ने एक और बड़े भारी अपमान से गजसिंह की रक्षा की। गर्जसिंह सुंदर, गुणी और सुचतुर वीर थे। सूबेदारी पाने पर उनके वे गुण एक-एक करके प्रकाशित होने लगे। बड़े-बड़े प्रांतों को जीत कर इन्होंने बादशाह के राज्य को बढ़ाया। राठौरराज की वीरता का परिचय पाकर बादशाह ने उन्हें 'दलथंभन' की उपाधि दी।

इसी समय बादशाह जहांगीर के पुत्र खुर्रम और परवेज में राज्य के लिए मनोमालिन्य उपस्थित हुआ था। खुर्रम ने गर्जसिंह से अपने कार्य में सहायता मांगी, परंतु गर्जसिंह ने साफ इनकार कर दिया। इससे दुःखी होकर खुर्रम ने गर्जसिंह को विषप्रयोग से मरवा डालने की इच्छा से मंत्री गोविंदसिंह को फांसा, परंतु उनसे भी निराश होकर एक गुप्त हत्यारे से गोविंदसिंह को उसने मरवा डाला। अंत में खुर्रम ने परवेज का किसी प्रकार वध करके राज्य के कंटक जहांगीर को भी उड़ाना चाहा। भारत का बादशाह संकट में पड़ा। उसने राजाओं को सहायता के लिए निमंत्रण भेजा, जहांगीर की सेना तथा अन्य राजाओं की सेना के सेनापति आमेर के राजा बनाए गए। इसे गर्जसिंह ने अपना अपमान समझा और अपना झंडा नीचे करके युद्ध से हट गए। वे जानते थे कि मैं यहीं बैठकर युद्ध का फलाफल देख लूंगा। परंतु भीमसिंह ने उन्हें बैठने नहीं दिया। भीमसिंह ने एक ऐसा खराब पत्र भेजा जिससे बादशाह के किए अपमान को भूलकर इन्होंने बादशाह की ओर से युद्ध करना ही उचित समझा। यदि भीमसिंह पत्र द्वारा गर्जसिंह का मन न बदलते तो उसी दिन खुर्रम भारत का बादशाह हो जाता, परंतु भावी प्रबल है। भीमसिंह मारे गए, खुर्रमसिंह की सेना तितर-बितर हो गई, खुर्रम भाग गया। दिल्ली के बादशाह का संकट दूर हुआ। खुर्रम का मान मथा गया, विद्रोह शांत हुआ।

इसके बाद गर्जसिंह का सम्मान बहुत अधिक बढ़ गया, परंतु दुःख है कि इस सम्मान को वे बहुत दिनों तक भोग नहीं सके। सन् १६३८ ई० में वे मारे गए। राजसिंह के दो पुत्र थे यशवंतसिंह और अमरसिंह। (टाड्स राजस्थान)

(४) हिंदी के एक कवि का नाम। ये ही गजसिंह-विलास के रचयिता हैं। इनके समय के विषय में कुछ भी ठीक नहीं कहा जा सकता। शिवसिंह ने अपने सरोज में इनका नाम लिखा है।

गजायुर्वेद—गज-चिकित्सा विषयक शास्त्र। इस समय इस विषय का प्राचीन ग्रंथ प्रायः अब तक सुनने में नहीं आया है। परंतु पुराने समय में इस विषय के ग्रंथ थे, इसका पता लगता है। अग्नि, गरुड आदि पुराणों से इसका विशेष पता पाया जाता है। धन्वंतरि के अतिरिक्त अन्य महर्षियों ने भी इस विषय के ग्रंथ बनाए थे। अग्निपुराण में लिखा है कि पालकाप्य नामक मुनि ने गजायुर्वेद-विषयक ग्रंथ बनाए थे। पालकाप्य ने इस शास्त्र का उपदेश लोमपाद को दिया था और लोमपाद ने धन्वंतरि को। धन्वंतरि ने उसीके अनुसार ग्रंथ बनाया था।

गणेश—पार्वती के पुत्र। पार्वती से शिव का विवाह होने पर पार्वती के बहुत दिनों तक पुत्र नहीं हुआ। अनंतर महादेव ने पार्वती को पुण्यक व्रत करने के लिए आदेश दिया। पुण्यक व्रत से विष्णु प्रसन्न हुए। उन्होंने वर दिया। पार्वती के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। नवजात पुत्र को देखने के लिए ऋषि, देव एवं गंधर्व आदि उपस्थित हुए, उन्हींमें शनि भी आए थे, पार्वती ने अपने शिशु पुत्र को देखने के लिए शनि से कहा, परंतु शनि ने कहा कि मैं जो इस लड़के को नहीं देखता, इसमें कारण है। मेरी स्त्री ने मुझे शाप दिया है कि तुम जिसको देखोगे वह मर जाएगा। परंतु तो भी पार्वती ने नहीं माना। शनि ने ज्यों ही उधर दृष्टि की कि नवजात शिशु का सिर कट गया। पार्वती रोने लगीं, विष्णु के पास इसकी खबर भेजी गई। विष्णु वहां से चले, मार्ग में एक

हाथी सोया था। उसका मस्तक काट विष्णु ले आए और उस बालक के धड़ में उसे जोड़कर उसे जीवित किया। हस्तिमुख जानकर कोई इसका तिरस्कार न करे, इस अभिप्राय से देवताओं ने प्रतिज्ञा की कि बिना गणेश की पूजा किए, हम लोग पूजा ग्रहण नहीं करेंगे। तभी से गणेश की पूजा पहले की जाती है। (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

गणेश उपपुराण—एक प्रकार का उपासना ग्रंथ। इसमें गणेश की प्रार्थना, उपासना और महत्त्व आदि की बातें लिखी हैं। यह प्रसिद्ध अष्टादश उपपुराणों में नहीं है। संभव है, किसी गाणपत्य ने इसकी रचना की हो।

गणेश दैवज्ञ—इस नाम के दो ज्योतिर्वेत्ताओं का परिचय मिलता है। उनमें एक ने 'ग्रहलाघव' नामक ग्रंथ और दूसरे ने 'जातकालंकार' नामक ज्योतिष का ग्रंथ बनाया था। पहले गणेश दैवज्ञ के पिता का नाम केशव दैवज्ञ था। ये नंदीग्राम में रहते थे और कौशिक गोत्री ब्राह्मण थे। दूसरे गणेश दैवज्ञ के पिता का नाम गोपाल दैवज्ञ था। ये भारद्वाजगोत्री ब्राह्मण थे। ये गुजरात के सूर्यपुर नामक नगर में रहते थे। सन् १५२० ई० में 'ग्रहलाघव' नामक ग्रंथ लिखा था।

गण्डकी—एक नदी का नाम। जो अवध होती हुई पटना के पास गंगा में मिलती है।

गण्डूष—चंद्रवंशी देवमीढूष के कई पुत्रों में से एक पुत्र का नाम।

गति—दवहूति की एक कन्या का नाम। इसका विवाह पुलक से हुआ था।

गद—वसुदेव के कई पुत्रों में से एक पुत्र का नाम।

गदाधर भट्टाचार्य—नवद्वीप के विख्यात नैयायिक पंडित, ये वारेंद्रश्रेणी के ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम जीवाचार्य था। पावना जिले के लक्ष्मीचापडा नामक ग्राम में ये रहते थे। मिथिला से न्यायशास्त्र का अध्ययन समाप्त कर के ये नवद्वीप आए और वहां इन्होंने पाठशाला पढ़ाना प्रारंभ किया। उस समय नवद्वीप के प्रसिद्ध नैयायिक जगदीश तर्कालंकार जीवित थे। ये एक बुद्धिमान और कल्पक विद्वान् थे। बहुत ही शीघ्र इनकी प्रसिद्धि हो गई। गदाधर के समय में मिथिला ही विद्यापीठ थी। वहां दूर-दूर से पढ़ने के लिए विद्यार्थी जाया करते थे, परंतु नवद्वीप में गदाधर भट्टाचार्य की पाठशाला खुल जाने से अब विद्यार्थी पढ़ने के लिए वहीं जाने लगे। मैथिल पंडित पाठ पढ़ाकर विद्यार्थियों को ग्रंथ नहीं देते थे, परंतु गदाधर भट्ट ने जो ग्रंथ पढ़े थे वे सभी उनको कंठस्थ थे, अतएव मैथिल पंडितों ने भी ग्रंथ न देना निरर्थक समझकर इनकी पढ़ी पुस्तकें इन्हें दे दीं। इन्होंने इतने ग्रंथ लिखे थे—'ब्रह्मनिर्णय' (वेदांत), 'कुसुमाञ्जलिव्याख्या', 'मुक्तावली टीका', 'तत्त्वचिंतामणिदीधिति' और 'तत्त्वचिंतामणिदीधिति की गदाधरी नाम की व्याख्या'। 'गदाधरी' नवीन न्याय का अपूर्व ग्रंथ है। इस ग्रंथ से न्याय और गदाधर भट्टाचार्य दोनों का गौरव है। हरिराम तर्कवागीश से इन्होंने विद्याध्ययन किया था।

गदावसान क्षेत्र—मथुरा के अंतर्गत एक तीर्थ। श्रीकृष्ण का वध करने के लिए जरासंध ने निन्यानवे बार गदा फेंकी थी। अंत में वह गदा जिस स्थान पर गिरी, उस स्थान का नाम पड़ा 'गदावसानक्षेत्र'।

गन्धमादन—(१) रुद्र हिमालय का अंश विशेष जो बदरिकाश्रम से उत्तरपूर्व की ओर कुछ ही हटकर आरंभ होता है।

(२) एक पर्वत का नाम, जो मेरु के दक्षिण में है, और इसके पास ही एक वन है, जिसका नाम भी गंधमादन है।

(३) रामचंद्र की सेना के एक सेनापति का नाम। ये इंद्रजीत के अस्त्र से घायल होकर मूर्छित हुए थे। हनुमान के संजीवन बूटी ले आने पर ये जीवित हुए। यद्यपि यह एक पराक्रमी बंदर बताए जाते हैं, तथापि ये धनपति कुबेर के पुत्र थे।

गन्धमोजवा—एक प्राचीन राजकुमार। ये श्वफल्क के पुत्र थे और उनकी स्त्री गान्दिनी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

गन्धर्व—रामायण में लिखा है कि भरत ने गंधर्व देश को दो भागों में बांटकर और उन दो भागों में तक्षशिला और पुष्कलावती नाम की दो राजधानी बनाकर उनको अपने दोनों पुत्रों को दे डाला। जिस समय भारतवर्ष नौ भागों में विभक्त था, उस समय उत्तर पश्चिम सीमांत देशों को गंधर्व देश कहते थे। वर्तमान अफगानिस्तान और पारस का कुछ भाग गंधर्व देश ही के अंतर्गत समझा जाता था। पंडितों का कहना है कि मध्ययुग में जिस देश का नाम गान्धार था (आज कल जिसको कान्धार कहते हैं), वही पहले का गंधर्व देश है। तक्षशिला के प्रसंग में रामायण में लिखा है कि भरत के मामा केकयराज युधाजित् ने अपने पुरो-

हित अंगिरापुत्र गार्ग्य को कुछ भेंट के साथ रामचंद्र के समीप भेजा था। गार्ग्य ने भेंट देकर रामचंद्र जी से कहा, महाराज, आपके मामा ने जो संवाद भेजा है है उसे सुनिए। सिंधु नदी के दोनों तीर पर गंधर्व देश है, वहां तीन कोटि युद्धविद्याविशारद महाबल शैलूषतनय गंधर्व रहते हैं। सो महाराज, उस देश को जीतकर वहां का शासन करो।—इससे स्पष्ट है कि पंजाब, सीमांत प्रदेश, अफगानिस्तान और पारस का कुछ भाग गंधर्व देश कहा जाता था।

गन्धर्व जाति—प्राचीन भारत की एक प्राचीन जाति। इस जाति के लोग गाने-बजाने में बड़े निपुण होते थे। विष्णुपुराण में लिखा है कि गान करते-करते उत्पन्न होने के कारण इस जाति के लोग गंधर्व कहलाए। महाभारत में लिखा है कि गंधर्वजाति के लोग उत्तर के रहने वाले हैं। रामायण में भी गंधर्वजाति का उल्लेख हुआ है। गंधर्वों ने एक समय पाताल में जाकर वहां के अधिवासियों को जीता था। कुछ लोग कहते हैं कि गंधर्व गांधार प्रदेश के वासी थे।

गन्धर्व नगर—गंधर्वों के रहने का स्थान, (देखो गंधर्व) महाभारत में लिखा है कि गंधर्व नगर पर अर्जुन ने एक बार आक्रमण किया था और वहां के आदि-वासियों को जीत लिया था।

गन्धर्वलोक—एक लोक का नाम, जो पृथ्वी से ऊपर है।

गन्धर्वविवाह—एक प्रकार का विवाह। इस विवाह में अन्य विवाहों की अपेक्षा नियम सरल हैं, स्त्री-पुरुष की प्रसन्नता ही से यह विवाह हो जाता है। वीर क्षत्रियों में इस प्रकार का विवाह पहले प्रचलित था।

गन्धर्वसेना—'स्कंदपुराण' के अनुसार, कैलास पर्वत पर स्वयंप्रभा नगरी में निवास करने वाले धनवाहन की गंधर्व कन्या। इसे कुष्ठ हो गया था, जिससे कि यह सोम बृत के प्रभाव से मुक्त हुई।

गन्धवती—राजा उपरिचर की कन्या। इनका ही नाम सत्यवती था। इन्हींके गर्भ से कृष्णद्वैपायन का जन्म हुआ था। गंधवती को योजनागंधा या मत्स्यगंधा भी कहते हैं। गंधवती का जन्म-विवरण अलौकिक घटना-पूर्ण है।

गन्धहस्ति—एक बौद्धस्तूप। चीनी संन्यासी हुएनत्संग ने लिखा है कि बोधगया से कुछ चलकर निरंजना नाम की एक नदी मिलती है। उस नदी को पार करके, थोड़ी ही दूर पर, यह स्तूप मिलता है। कहा जाता है कि बोधगया के दक्षिण-पूर्व की ओर लीलाजन नदी के तीर पर इस स्तूप का भग्नांश अब भी मिलता है।

गभस्तिमान्—भारतवर्ष के नौ विभागों में से एक विभाग का नाम। गभस्तिमान् शब्द का अर्थ है सूर्य। संभव है जिस देश में सूर्य की किरणें प्रखर रूप धारण करती हों वही देश गभस्तिमान् के नाम से परिचित हो। पहले समय में गभस्तिमान् प्रदेश एशिया महादेश के मंगोलिया, तिब्बत, श्याम और रूस का कुछ भाग समझा जाता था।

गभीषण—वर्तमान काशीपुर का प्राचीन नाम।

गय—(१) एक धर्मपरायण सत्कर्मी राजा। इनके पिता का नाम अमूर्तराज। उन्होंने सौ वर्ष तक यज्ञ का अन्न खाया था। अग्नि के वर से इन्होंने बेदपाठ का अधिकार पाया था। इन्होंने समस्त शत्रुओं का नाश करके जगत् में अपना अधिकार फैलाया था। ये प्रतिदिन प्रातःकाल एक लाख साठ हजार गौएं, दस हजार घोड़े और एक लाख निष्क (रुपया) दान करते थे। इन्होंने एक बहुत बड़े यज्ञ का अनुष्ठान किया था, जिसकी वेदि ३६ योजन लंबी और ३० योजन चौड़ी थी। यह वेदी सोने की बनी थी। इस यज्ञ से संसार में इनकी प्रसिद्धि हो गयी। (महाभारत)

(२) एक विख्यात असुर। इसीके नामानुसार हिंदुओं के पवित्र तीर्थ का नाम गया पड़ा है। इसी तीर्थस्थान में पितरों को पिंडदान करने के लिए हिंदू जाते हैं। इस क्षेत्र का परिमाण पांच कोस का है और गयाशिर नामक स्थान का परिमाण एक कोस का है। गय नामक असुर बृहत्काय था और असीम विष्णु-भक्त था। वह स्वभाव ही से धार्मिक था। वह कोलाहल नामक पर्वत पर विष्णु से वर मांगने की इच्छा से कठोर तपस्या करता था। उसकी तपस्या से डरकर देवों ने ब्रह्मा को अपना मुखिया बनाया और इन्हें साथ लेकर वे विष्णु के निकट गए। विष्णु भी सब देवताओं को साथ लेकर गयासुर को वर देने के लिए कोलाहल पर्वत पर गए। गय ने वर मांगा। विष्णु वर देकर देवताओं के साथ अपने स्थान को गए। विष्णु के वर से गय का शरीर पवित्र हो गया। लोग उसके दर्शन से बैकुंठ जाने लगे। नगर शून्य हो गए। यमराज को बैठे-बैठे दिन बिताना भारी पड़ा, सभी लोग गयासुर के शरीर का दर्शन करते और स्वर्ग चले जाते थे। यमराज विष्णु

के समीप गए और जाकर अपने निठल्ले बैठने का कारण बताया। अनंतर वहीं देवताओं की एक सभा हुई और उसमें यह निश्चित हुआ कि किसी उपाय से गय को अचल करना चाहिए, नहीं तो यह घूम-घूमकर संसार को वैकुंठ भेज देगा। इसीके अनुसार देवता गय के पास गए और उससे उसका शरीर भिक्षा में लिया। उसी शरीर को उन्होंने यज्ञ-स्थान बनाया और उसके शरीर को एक पत्थर की चट्टान से दबा दिया, परंतु तो भी वह असुर अचल नहीं हो सका। अंत में स्वयं विष्णु उस शिला पर विराजमान हुए, इससे गय नामक असुर निश्चल हो गया। उसने इनकी चालाकी समझकर कहा—"आप लोगों ने हमको निश्चल करने के लिए इतना कष्ट क्यों उठाया? यदि ऐसी ही बात थी तो मुझसे आप लोग कह देते, तो मैं स्वयं निश्चल हो जाता।" इससे देवता लोगों ने उसपर प्रसन्न होकर उसे वर देना चाहा। उसने यही वर मांगा कि सूर्य-चंद्र जब तक रहें तब तक आप लोग इसी पत्थर पर बैठे रहें। (वायुपुराण)

गयाक्षेत्र—हिंदुओं का एक प्राचीन और पवित्र तीर्थ। रामायण, महाभारत, याज्ञवल्क्य, वायुपुराण आदि ग्रंथों में गयाक्षेत्र का उल्लेख किया गया है। अतएव गयाक्षेत्र की प्राचीनता निर्विवाद सिद्ध है। इस क्षेत्र की उत्पत्ति के विषय में अनेक प्रकार के मत देखे जाते हैं। महाभारत में लिखा है—इस स्थान पर चंद्रवंशी अमूर्तरज के पुत्र गय ने यज्ञ किया था और दक्षिणा में बहुत अन्न-धन आदि दिए थे, इस कारण इसका नाम 'गया' पड़ा। हरिवंश में लिखा है कि प्रजापति मनु ने यहां पुत्रकामना से यज्ञ किया था। उसी यज्ञ में मित्रावरुण के अंश से ईडा नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। मित्र और वरुण के वर से वही फिर सुद्युम्न नामक प्रसिद्ध मनु के वंशधर हुए। उत्कल, गय और विनताश्व उन्हींके सहयोगी थे। गय के अधीन गयापुरी थी। वायुपुराण में एक अन्य प्रकार ही से लिखा है [देखो गय (२)] जिस समय मगधदेश में बौद्धों का प्रभाव था, उस समय गयाक्षेत्र ध्वस्त-विध्वस्त हो गया। अशोक के समय में गया में अनेक बौद्धमठ स्थापित हुए थे। पुनः हिंदुओं के अभ्युदयकाल में बौद्धों के मठ संघाराम विहारस्तूप आदि सभी नष्ट कर दिए गए। गया में अनेक तीर्थ विद्यमान हैं। फल्गुतीर्थ, नागकूट, गृध्रकूट, पांडुशिला, स्वर्गद्वार, धर्मशिला प्रभृति प्रसिद्ध तीर्थ हैं।

गर—उशीनर के पांच लड़कों में से एक का नाम।

गरुड—पक्षिराज। विष्णु का वाहन। प्रजापति ऋषि कश्यप के औरस और विनता के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी। इनके ज्येष्ठ भाई अरुण विकलांग होने के कारण सूर्य के सारथी बन गए। अपनी सौतेली माता के दासत्व से अपनी माता को मुक्त करने के लिए गरुड स्वर्ग से अमृत ले आए थे। माता की आज्ञा से स्वर्ग जाते हुए गरुड को मार्ग में भूख लगी। क्षुधा दूर करने के लिए ये अपने पिता कश्यप के पास गए और उनसे खाने के लिए मांगा। कश्यप ने उनको खाने के लिए लड़ते हुए एक बड़े गज और कच्छप को बतला दिया। ये गज और कच्छप पहले विभावसु और सुप्रतीक नामक तपोबल-संपन्न सहोदर भाई थे। बड़ा भाई विभावसु अत्यंत क्रोधी था और छोटा सुप्रतीक मृदु स्वभाव का था। सुप्रतीक ने अपने बड़े भाई से पैतृक संपत्ति बांट देने के लिए कहा। इससे क्रुद्ध होकर उसने उसे गज होने के लिए शाप दिया, तब छोटे ने भी बड़े को शाप दिया कि तुम कच्छप हो जाओ, तभी से गज-कच्छप-रूपी दोनों भाई एक-दूसरे का विनाश करने के लिए युद्ध कर रहे थे। पिता की आज्ञा पाकर गरुड ने उन दोनों को पकड़ लिया और पास ही के एक वट-वृक्ष की शाखा पर उन्हें खाने की इच्छा से वे बैठे। परंतु वट की यह शाखा टूट गयी। इस समय गरुड ने देखा कि उसमें बहुतसे ऋषि उलटे लटके हैं और तप कर रहे हैं। उसके पृथिवी पर गिरने से ऋषि आहत होंगे और उन्हें शाप देंगे। गरुड ने यह सोचा और उस शाखा को लिए हुए पिता के पास इस संकट से उद्धार पाने की इच्छा से गए। कश्यप के कहने से ऋषि शाखा छोड़कर अन्यत्र चले गए। गरुड ने सुमेरु पर जाकर और निश्चिंत होकर खूब भोजन किया। प्रचुर आहार से संतुष्ट होकर वे अमृत लाने के लिए स्वर्ग की ओर चले। वहां जाकर युद्ध में देवों को परास्त करके वे अमृत ले आए और अपनी माता को दासत्व से छुड़ाया। (महाभारत)

गरुडपुराण—यह पूर्व खंड और उत्तर खंड दो खंडों में विभक्त है। सृष्टि प्रकरण से लेकर प्रजापति की उत्पत्ति, सूर्यपूजा, विष्णुपूजा, लक्ष्मीपूजा, शिवपूजा, पादुका-पूजा, गोपालपूजा, हयग्रीवपूजा, दुर्गापूजा आदि पूजा-पद्धति, दीक्षाविधि, प्रायश्चित्तविधि, तर्पणविधि, संध्याविधि, श्राद्धविधि, स्नानविधि और नाना प्रकार

के व्रत-माहात्म्य, व्रतोत्पत्तिकथन, रत्नपरीक्षा, गृहधर्म, यतिधर्म, गयाकृत्य, सूर्यवंश, चंद्रवंश, जनमेजयवंश, रामायण, हरिवंश और भारतकथन, आयुर्वेदप्रकरण में रोगनिदान, विष्णुध्यान, नारायणध्यान, नृसिंहस्तव, व्याकरणनियम, छंदःशास्त्र, अधिक कहां तक कहा जाए, स्त्रीवशीकरण, मशकवारण तक इस पुराण में लिखा है। नरकवर्णन, प्रेतवर्णन, सपिंडीकरण की विधि आदि विधियां भी इस पुराण में लिखी हैं। गरुडपुराण में २१ अवतार लिखे गए हैं। भागवत में लिखा है कि गरुडपुराण में १९ हजार श्लोक हैं, परंतु इसके प्रथम अध्याय में लिखा है—

अष्टौ श्लोकसहस्राणि तथा चाष्टौ शतानि च।
पुराणं गारुडं व्यासः पुराऽसौ मेऽब्रवीदिमम्॥

अर्थात् गरुडपुराण में आठ हजार आठ सौ श्लोक हैं। इस पुराण में तंत्रों के मंत्र और ओषधियों का विवरण अधिकता से पाया जाता है। रत्नपरीक्षा के प्रसंग में लिखा है कि हिमालय, मातंग पर्वत, सुराष्ट्र, पुंड्र, कलिंग, कोशल, वेण्वातट और सौवीर देश—इन आठ स्थानों में उत्तम हीरे उपलब्ध होते हैं। हिमगिरि के हीरे कुछ लाल वर्ण के और सौवीर देश के कुछ नीलिमा लिए होते हैं। सुराष्ट्र देश का हीरा तांबे के रंग का, कलिंग देश का सोने के समान, कोशल देश का कुछ पीलापन लिए, पुंड्रक देश का कुछ श्याम वर्ण पर, मतंग पर्वत का थोड़ा पीलापन लिए हुए होता है। किसी क्षार से हीरे पर लकीर खींचकर उसकी परीक्षा की विधि भी इस ग्रंथ में लिखी है। पृथिवी में जितने रत्न, लौह या धातु वर्तमान हैं, उन सबपर हीरे का निशान हो सकता है; परंतु हीरे पर किसी वस्तु से निशान नहीं हो सकता। रत्नों की गुरुता ही उनकी अच्छाई का कारण है। परंतु हीरा जितना ही हलका होगा उतना ही उसका अधिक मूल्य होगा। इसी प्रकार मोतियों के विषय में भी, उनकी उत्पत्ति और मूल्य के तारतम्य के विषय में भी, लिखा है। सूर्य-प्रमाण-संस्थान, ज्योतिःसार, लग्नमान, प्रश्नगणना आदि विषय भी इस पुराण में उल्लिखित हैं। नीतिसार, राजधर्म आदि पर भी कुछ-कुछ विवेचन इस ग्रंथ में किया गया है। इसके अनेक श्लोक हितोपदेश आदि ग्रंथों में देखे जाते हैं।

गर्ग—(१) प्राचीन प्रसिद्ध ज्योतिर्वेत्ता। ये यदुवंशियों के कुलगुरु थे। इनके पुत्र का नाम गार्ग्य और कन्या का नाम गार्गी था। इन्होंने शेष जी को प्रसन्न करके नक्षत्रविद्या और शुभाशुभ-ज्ञान की शिक्षा पाई थी। ये हिंदुओं में सबसे पुराने ज्योतिष के आचार्य हैं। बेंटले साहब के मतानुसार, इनकी संहिता ईसा के ५०० वर्ष पूर्व बनाई गई थी। भागवत के मतानुसार बलराम और कृष्ण का नामकरण-संस्कार गर्ग मुनि ने किया था। और वसुदेव ने इन्हें इसी काम के लिए गोकुल भेजा था।

(२) ये वास्कलि के शिष्य और ऋग्वेद के उपदेष्टा थे।

(३) इस नाम के एक ब्राह्मण भी हुए हैं, जो बारह वर्ष तक लोहचूर्ण-भक्षण करके और कठिन तपस्या करके, वीर कालयवन के पिता हुए थे।

(४) इस नाम के एक वैयाकरण पंडित भी हुए थे।

गर्गभूमि—राजा अलर्क के एक पुत्र का नाम।

गवय—यह रामसेना का एक वानर था। राम ने अश्वमेध यज्ञ के समय शत्रुघ्न के संरक्षण में जिस अश्व को छोड़ा था, उसके साथ इस वानर को भी भेजा गया था।

गागाराव—जोधपुर के एक राजा का नाम। ये वीर सूजा के पौत्र थे। सूजा के मरने पर, सन् १५१६ ई० में गागा का राज्याभिषेक हुआ। गागा के राज्यासन पर बैठते ही उनका सेरवाजी उनको गद्दी से उतारने का प्रयत्न करने लगा। राठौरों के पुराने शत्रु दौलतखां ने सेरवाजी से सहायता मांगी। दौलतखां ने बंदर बांट करके राठौर राज्य को बांट देना चाहा, परंतु तेजस्वी गागा ने इसे स्वीकार नहीं किया। युद्ध ही से फैसला करना उन्होंने उत्तम समझा। युद्ध में सेरवाजी मारा गया। दौलतखां भी घायल और अपमानित होकर लौट गया। उसी समय बाबर की सर्वग्रासी नीति का प्रचार हुआ था। स्वदेशरक्षा करने के निमित्त राणा संग्रामसिंह की अध्यक्षता में राजपूतों की एक बड़ी सेना तैयार हुई थी। वीर गागा ने भी उसमें योग दिया था। इनकी सेना के सेनापति थे इनके पौत्र रायमल्ल। रायमल्ल बड़ी वीरता से लड़कर इस युद्ध में काम आए। पौत्र के मरने से गागा बहुत ही शोकसंतप्त हुए। उस युद्ध के चार वर्ष के बाद गागा का शरीरपात हुआ।

(टॉड्स, राजस्थान)

गाणपत्य—गणेश का उपासक संप्रदाय। इस संप्रदाय के

लोग गणेश ही को परब्रह्म मानकर पूजते हैं।

गाण्डीव—अर्जुन के एक धनुष का नाम। यह धनुष अग्नि से इन्हें मिला था। खांडव-दाह के समय अर्जुन ने सहायता देकर अग्नि का अजीर्ण रोग मिटाया था। इससे प्रसन्न होकर अग्नि ने अर्जुन को गांडीव नामक धनुष दिया था। यह धनुष अर्जुन को बड़ा प्रिय था। अर्जुन की प्रतिज्ञा थी कि जो गांडीव की निंदा करेगा उसका मैं वध करूंगा।

गाधि—चंद्रवंशी महाराज कुशिक के पुत्र। गाधिराज प्रसिद्ध महर्षि विश्वामित्र के पिता थे। देवराज इंद्र ने महाराज कुशिक की स्त्री पौरकुत्सी के गर्भ से गाधिराज के रूप में जन्म ग्रहण किया था। महर्षि भृगु के पुत्र ऋचिक ने गाधिकन्या सत्यवती को ब्याहा था। सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि मुनि उत्पन्न हुए थे। (हरिवंशपुराण)

गाधिपुर—(देखो कनौज)

गान्दिनी—(१) अक्रूर की माता और यदुवंशी श्वफल्क की स्त्री। इसी कारण अक्रूर का नाम गांदिनीसुत पड़ा है। गांदिनी काशीराज की कन्या थीं। ये प्रतिदिन ब्राह्मणों को गोदान किया करतीं, इस कारण इनका नाम पड़ा है गांदिनी। ये माता के गर्भ में बहुत दिनों तक रही थीं, इस कारण इनके पिता चिंतित हुए थे। उस समय गर्भ की बालिका ने कहा कि यदि प्रतिदिन एक गोदान करने की तुम लोग व्यवस्था करो तो मैं बाहर निकल आऊं। पिता के स्वीकार करने पर कन्या ने जन्म ग्रहण किया। अक्रूर के अतिरिक्त इसके गर्भ से १३ और पुत्र और सुंदरी नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई थी। (हरिवंशपुराण)

(२) भागवत के अनुसार, काशिराज की कन्या, यदुवंशीय राजा श्वफल्क की पत्नी। अक्रूर इसीसे उत्पन्न हुआ था। यह अनेक वर्षों तक माता के गर्भ में ही स्थित रही। पिता ने इसका कारण पूछा। उसने बताया कि यदि उसे सतत गोदान की अनुमति दी जाएगी, तभी वह जन्म धारण करेगी। पिता के स्वीकार करने पर उसने जन्म लिया। (वायुपुराण)

गांधर्ववेद—सामवेद के एक उपवेद का नाम। इसमें गीत, वाद्य, नृत्य आदि की बातें लिखी हैं। इस समय यह वेद लुप्त हो गया है। इस वेद के प्रवर्तक महामुनि भरत हैं। महर्षि वाल्मीकि के समय में महामुनि भरत संगीतशास्त्र के प्रधान अध्यापक थे। गांधर्ववेद के भरत मुनि और वाल्मीकि के समसामयिक भरत मुनि—दोनों भिन्न हैं या एक, इसका निर्णय करना कठिन है। यद्यपि गांधर्ववेद का इस समय पाना कठिन है तथापि उसके अनुसार बने हुए अनेक ग्रंथ अभी भी वर्तमान हैं। सोमेश्वर, भरत, हनुमंत, और कल्लिनाथ—ये गांधर्ववेद के प्रधान आचार्य हैं।

गान्धार—प्राचीन देश-विशेष। सिंधु नद का तीरवर्ती देश, जिसको इस समय कांधार कहते हैं, उसीका मध्ययुग में गांधार नाम था। इस देश का प्राचीन नाम गांधर्वदेश है।

गान्धारा—यह देश काबुल नदी के किनारे कुनार और सिंधु के बीच में है। इसकी राजधानी का नाम पुरुषपुर (जिसे अब पेशावर कहते हैं) था।

गान्धारी—(१) राजा क्रोष्टु की स्त्री और अनमित्र की माता। मृत्तिकावती नगरी में रहने वाले राजा भोज कहे जाते थे। इसी भोजवंशी राजा क्रोष्टु की गांधारी और माद्री दो स्त्रियां थीं। गांधारी के गर्भ से महाबली अनमित्र उत्पन्न हुए थे। (हरिवंशपुराण)

(२) कुरुवंशी प्रसिद्ध राजा धृतराष्ट्र की स्त्री। ये गांधारराज सुबल की कन्या, और दुर्योधन की माता थीं। इनके छोटे भाई का नाम सौबल या शकुनी था। गांधारी ने शिव की आराधना कर सौ पुत्र उत्पन्न करने का वर पाया था। इस समाचार को पाकर भीष्म ने अपने भाई के पुत्र धृतराष्ट्र के विवाह के लिए वहां दूत भेजा। सुबल ने वर को अंधा जान कर भी केवल कुल-मर्यादा के विचार से अपनी कन्या गांधारी उन्हें दे दी। गांधारी ने भी अपने भावी पति के अंधे होने की खबर पाकर अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली। विवाह हो जाने पर भी गांधारी ने आंखों की पट्टी नहीं खोली। इससे उनके पतिव्रता होने का पूर्ण परिचय मिलता है। वे अत्यंत धार्मिका थीं। वे अपने पुत्रों को पांडवों के साथ मित्रता रखने का उपदेश सर्वदा दिया करती थीं। परंतु ऐश्वर्य-मदोन्मत्त उनके पुत्र उन उपदेशों को सुनते भी नहीं थे। कुरुक्षेत्र के युद्ध में अपने सौ पुत्रों का मृत शरीर देखकर इन्होंने पांडवों के मंत्री श्रीकृष्ण को कहा था—यदि तुम चाहते तो अवश्य ही यह कौरव-पांडवों का युद्ध रुक जाता, परंतु तुमने ऐसा न होने दिया। अतः आज मैं तुमको शाप देती हूं। मैंने पतिसेवा से जो कुछ पुण्य-संचय किया है उसके प्रभाव से मैं तुमको शाप देती हूं कि तुमने जिस प्रकार कौरव और पांडवों का विनाश होते देखा है, उसी प्रकार तुम्हारे

बांधव भी तुम्हारे ही द्वारा नष्ट होंगे और ज्ञाति-पुत्र-हीन तथा वनचारी होकर तुम बुरी तरह मारे जाओगे। गांधारी का यह शाप सफल हुआ था। युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के समय दस दिनों तक हस्तिनापुर में रहकर गांधारी ने अपने मृत पुत्रों की अंतिम क्रिया की थी। तदनंतर कार्तिक पूर्णिमा को अपने पति के साथ वे वन में गयीं। संजय भी इनके साथ गए थे। एक बार वेदव्यास उनके आश्रम में गए। इनके प्रभाव से धृतराष्ट्र और गांधारी को कुरुक्षेत्र के युद्ध में मृत द्रोण, भीष्म आदि के दर्शन हुए थे। वे सब वीरव्यास के तपःप्रभाव से जल में से उत्पन्न हुए थे। युद्ध में मृत, अपने पुत्रों को देखकर गांधारी को बड़ा आनंद प्राप्त हुआ था। तदनंतर छः मास बीतने पर एक दिन उस वन में दावानल जल उठा। धृतराष्ट्र, कुंती और गांधारी न खाने के कारण दुर्बल हो गए थे, इस कारण भागकर वे अपने को न बचा सके और जलकर मर गए। संजय ने किसी प्रकार भागकर आत्मरक्षा की थी।

गायत्री—वेदमाता। ये गाने वालों का त्राण करती हैं, इस कारण इनका नाम पड़ा गायत्री। पद्मपुराण में लिखा है कि ये ब्रह्मा की स्त्री हैं। ब्रह्मा की पहली स्त्री का नाम था सावित्री। एक समय ब्रह्मा ने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया था। यज्ञ में स्त्री का होना आवश्यक है। इस कारण सावित्री को ले आने के लिए ब्रह्मा ने इंद्र को भेजा। इंद्र ने ब्रह्मा की आज्ञा सावित्री से कही। सावित्री ने कहा, इस समय लक्ष्मी आदि मेरी सखियां यहां वर्तमान नहीं हैं, उनके आने पर मैं आऊंगी। इंद्र से यह बात सुनकर ब्रह्मा ने दूसरी स्त्री ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की। इंद्र मर्त्यलोक में आए और एक ग्वालिन को लेकर ब्रह्मा के निकट उपस्थित हुए। ब्रह्मा ने उससे गंधर्व विवाह किया। उसका नाम था गायत्री। इनके दो हाथों में से एक हाथ में मृगश्रृंग और दूसरे में पद्म है। इनके पहनने का कपड़ा लाल रंग का है। इनके गले में मुक्ताहार, कानों में कुंडल और मस्तक पर मुकुट है। वेद में लिखा है—एक बार बृहस्पति ने लात मारकर गायत्री का माथा फोड़ दिया था। परंतु गायत्री की मृत्यु नहीं हुई। इनके मस्तक से वषट्कार देवों की उत्पत्ति हुई। बहुत लोग इस घटना को रूपक समझते हैं। गायत्री हिंदूधर्म का बीजमंत्र है। चार्वाक ने गायत्री के विनाश करने की बहुत चेष्टा की थी, परंतु वह सफल नहीं हुए।

गार्गी—वैदिक समय की एक पंडिता ऋषिपुत्री। इसके पिता का नाम गर्ग मुनि था। यह अत्यंत बुद्धिमती स्त्री थी। कहते हैं कि मिथिला के जनकराज की सभा में आकर इसने पंडितों के सामने याज्ञवल्क्य के साथ वेदांतशास्त्र-विषयक आलाप किया था।

गार्ग्य—यादवों के कुलगुरु और गर्ग मुनि के पुत्र। ये किसी कारणवश एक समय यादवों से रुष्ट हो गए थे। अतएव इन्होंने लोहचूर्ण खाकर बारह वर्ष तक तपस्या की, जिससे यादवों को विनाश करने वाला पुत्र उत्पन्न हो। महादेव ने तपस्या से प्रसन्न होकर उन्हें वर दिया था। इन्हींके औरस और गोपाली नामक अप्सरा के गर्भ से यादवों का शत्रु कालयवन उत्पन्न हुआ था।

गालव—(१) महर्षि विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

(२) महर्षि विश्वामित्र का प्रिय शिष्य। इसपर प्रसन्न होकर महर्षि ने इसे घर जाने की आज्ञा दी। गालव ने गुरुदक्षिणा देनी चाही। परंतु विश्वामित्र ने कहा, मैं तुम्हारी भक्ति से ही प्रसन्न हूं, अब तुम्हें गुरुदक्षिणा देने की आवश्यकता नहीं है। परंतु शिष्य ने गुरुदक्षिणा देने के लिए बहुत आग्रह किया, तब गुरु ने आठ सौ घोड़े मांगे। विष्णु की आराधना से उनका वाहन पक्षिराज गरुड वहां उपस्थित हुआ। गरुड के साथ उनका पहले से ही परिचय था। गरुड के कहने से उनकी पीठ पर चढ़कर गालव ययाति के पास पहुंचा और उसने राजा ययाति से आठ सौ घोड़े मांगे, राजा ने कहा—इस समय अनेक यज्ञ करने से मेरा कोश खाली हो गया है, और मेरे यहां वैसे घोड़े भी नहीं हैं। परंतु राजा ने दूसरे उपाय से गालव का मनोरथ पूर्ण करने के लिए वचन दिया और राजा ययाति ने अपनी कन्या माधवी गालव को सौंपकर कहा—इस कन्या को किसी योग्य व्यक्ति को देकर आप आठ सौ घोड़े ले सकते हैं। इस कन्या से यदि आप चाहें तो राज्य ले सकते हैं। क्योंकि इस सुंदरी कन्या को बहुत लोग चाहेंगे। माधवी को लेकर गालव पुत्रार्थी राजा हर्यश्व के निकट उपस्थित हुए। हर्यश्व ने दो सौ घोड़े दिए और माधवी से एक पुत्र उत्पन्न करके उसे लौटा देने के लिए कहा। गालव ने चतुर्थांश गुरुदक्षिणा गुरु को दे दी। हर्यश्व को माधवी के गर्भ से वसुमना नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। गालव वहां गए। राजा ने पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार

पुत्र को रखकर माधवी को लौटा दिया।

गालव माधवी को लेकर काशिराज दिवोदास के पास गए। दिवोदास ने भी दो सौ घोड़े दिए और एक पुत्र होने तक माधवी को रखना स्वीकृत किया। यथा-समय माधवी के गर्भ से प्रतर्द्दन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। दिवोदास ने प्रतर्द्दन को रखकर माधवी को लौटा दिया। इस प्रकार गुरुदक्षिणा का आधा भाग गुरु को दे दिया।

पुनः गालव माधवी को लेकर राजा उशीनर के निकट उपस्थित हुए। उशीनर ने भी दो सौ घोड़े दिए, और एक पुत्र उत्पन्न होने तक माधवी को रखना अंगीकार किया। माधवी के गर्भ से उशीनर के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम शिवी पड़ा। राजा उशीनर ने पुत्र को रखकर माधवी को लौटा दिया।

अब भी गुरुदक्षिणा का एक हिस्सा बाकी है। गालव बाकी गुरुदक्षिणा पूरी करने के लिए माधवी को कहां ले जाए वह यही सोच रहा था कि उसी समय गरुड वहां उपस्थित हुए और उन्होंने कहा कि अब वैसे दो सौ घोड़े कहीं नहीं मिल सकते। अतएव गरुड के परामर्श से गालव ने दो सौ घोड़ों के बदले माधवी ही को गुरु के चरणों में अर्पण किया। विश्वामित्र ने कहा कि दक्षिणा पूर्ण हुई। माधवी के गर्भ से विश्वामित्र को भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम था अष्टक।

अष्टक के उत्पन्न होने के बाद विश्वामित्र के समीप जाकर उन्होंने माधवी को मांगा। पूर्व संज्ञा के अनुसार विश्वामित्र ने गालव को माधवी दे दी। गालव माधवी को लेकर ययाति के पास पहुंचे और माधवी उन्होंने ययाति को सौंप दी। ययाति चाहते थे कि स्वयंवर विधि से माधवी का विवाह कर दें, परंतु उसने विवाह करना अस्वीकार किया। उसने वन में रहकर अपना जीवन बिताना उचित समझा।

(महाभारत)

गिरनार—(गिरनयर) गिरनार या गिरिनगर अथवा ऊर्जयंत पर्वत के रूप में इसका वर्णन हुआ है। महा-क्षमय रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से विदित होता है, अशोक के समय सुराष्ट्र के शासक यवनराज तुषास्फ की गिरिनार राजधानी थी। गुजरात के निकट गिर-नार या रैवतक पहाड़ी को जैन तीर्थंकर नेमिनाथ का जन्म-स्थल माना जाता है। इस रूप में इसे जैनों के तीर्थ-स्थल के रूप में प्रसिद्धि है। यहां पर नेमिनाथ और पार्श्वनाथ के मंदिर हैं। इनका निर्माण क्रमशः गुर्जरनरेश जयसिंहदेव और तेजपाल ने किया था। यहां की महत्ता दत्तात्रेय ऋषि के आश्रम से भी है। जैन तीर्थंकर अरिष्टनेमी का यह निर्वाणस्थल उल्लि-खित है। प्रसिद्ध वैष्णव संत चैतन्य महाप्रभु भी यहां गए थे। यह तीर्थस्थल संप्रति गुजरात के कठियावाड़ क्षेत्र में स्थित है।

गिरिका—कोलाहल पर्वत की शुक्तिमती नदी से जो जुड़वा संतानें हुईं, जिनमें से एक का नाम गिरिका था। उसे शुक्तिमती ने राजा उपरिचर बसु को दिया, जिसके साथ कि उसने विवाह किया। उससे उपरि-चर वसु को बृहद्रथ तथा अन्य छह पुत्र और काली (मत्स्य गांधिनी) नामक कन्या उत्पन्न हुई।

(महाभारत)

गिरिधर कविराय—इन राजकवि का जन्म सन् १७१३ ई० में हुआ था और ये दुआब के रहने वाले थे। इनकी नीति की कुंडलियां प्रसिद्ध हैं।

गिरिधर जी—एक शेखावत राजा का नाम। इनके पिता का नाम रायसाल था, इनके सात पुत्र थे। मरने के पहले रायसाल ने अपने राज्य को सात भागों में बांटकर अपने सातों लड़कों को दे दिया था। ज्येष्ठ पुत्र गिरिधर जी को खंडेला और रेवासा मिला था। गिरिधर जी साहसी और वीर थे। इनके इन्हीं गुणों पर प्रसन्न होकर दिल्ली के राजा ने इन्हें 'खंडेला के राजा' की उपाधि दी थी। गिरिधर जी के समय मेवाती जाति के डाकुओं का जोर बहुत बढ़ा हुआ था, दिल्ली के बादशाह बहुत यत्न करने पर भी उनका कुछ नहीं कर सके थे। अंत में उन डाकुओं को पकड़ने या मारने का भार गिरिधर जी को दिया गया। गिरिधर जी ने सोचा कि यदि बड़ी सेना ले-कर मैं जाऊंगा तो अवश्य ही डाकू भाग जाएंगे, इस-लिए गिरिधर जी छोटी-सी सेना लेकर पर्वत-पर्वत घूमने लगे। एक दिन डाकुराज से उनका सामना हो गया। घमासान लड़ाई हुई। डाकूपति उस लड़ाई में मारा गया। इसके थोड़े ही दिनों के बाद यमुना में स्नान करने के समय एक मुसलमान ने मार उन्हें डाला।

(टाड्स राजस्थान)

गिरिधारी भाट—ये मऊरानीपुर जिला झांसी के रहने वाले थे और सन् १८८३ ई० में विद्यमान थे।

गिरिव्रज—(१) मगध देश की राजधानी। यह बिहार में

राजगिर के नाम से अब प्रसिद्ध है ।

(२) मगध राज्य की प्राचीन राजधानी का नाम कुशागड़पुर या कुशाग्रपुर था । बाद में उसका नाम गिरिव्रज या राजगृह पड़ा । रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों में कुशागड़पुर का नाम कहीं नहीं देखा जाता है, किंतु राजगृह या गिरिव्रज का नाम देखा जाता है । रामायण में केकय राज्य की राजधानी का नाम गिरिव्रज लिखा है । रामायण में गिरिव्रज का जो पता लिखा है उससे पता लगता है कि रामायण का गिरिव्रज और मगध की राजधानी गिरिव्रज दोनों भिन्न-भिन्न हैं । महाभारत में मगध की राजधानी का नाम गिरिव्रज लिखा है । इससे रामायण का गिरिव्रज महाभारत का गिरिव्रज दोनों भिन्न-भिन्न प्रमाणित होते हैं । महाभारत में लिखा है कि जरासंध को मारने की इच्छा से कृष्ण, अर्जुन और भीमसेन कुरुदेश से प्रस्थान करके कुरुजांगल होते हुए पद्मसरोवर के समीप पहुंचे । तदनंतर कालकूट अतिक्रम करके गंडकी, सदानीरा, शर्करावर्त आदि नदियों को पार करके चले । सरयू पार करके उत्तर कोशल देखते हुए मिथिला, माला और चर्मण्वती नदी को पार करके वे आगे बढ़े । तदनंतर गंगा और शोण पारकर वे तीनों वीर कुशांब देश के वक्षस्थलस्वरूप मगध राज्य की सीमा में पहुंचे । पुनः कुछ चलकर जल और गोधन तथा मनोहर वृक्षपूर्ण गोरथ नामक पर्वत लांघकर उन तीन महावीरों ने मगधराज की पुरी को देखा । महाभारत के सभापर्व में गिरिव्रज नगर का जो विवरण लिखा है उससे विदित होता है कि जरासंध के राज्यकाल में यह स्थान अनेक पशु, सुंदर जल तथा मनोहर अटारियों से सुशोभित और उपद्रव-शून्य था ।

गीतविद्याधर—'पद्मपुराण' (सृ० ४६) के अनुसार एक गंधर्व । इसके गायन से तंग आकर पुलस्त्य ने इसे सूअर बन जाने का अभिशाप दिया । किंतु इसके अनुरोध पर पुनः अगस्त्य ने उश्शाप दिया कि इक्ष्वाकु द्वारा मारे जाने पर पुनः गंधर्व योनि प्राप्त करेगा । ऋषि का शाप सत्य सिद्ध हुआ ।

गुणकेशी—मातलि तथा सुधर्मा की कन्या । बहुत प्रयत्न करने पर भी जब इसके लिए वर प्राप्त न हुआ तो अंत में चिकुर नामक नाग के पुत्र सुमुख ने इसे पसंद किया । किंतु उसका गरुड से वैर था । मातलि के अनुरोध पर इंद्र ने सुमुख को अमृत पिलाकर अमरत्व प्रदान किया और विष्णु के कहने पर गरुड ने अपने वैर-भाव को विस्मृत किया । तब गुणकेशी का विवाह सुमुख से हुआ ।

गुणसिन्धु—ये बुंदेलखंडी थे और सन् १८२७ ई० में उत्पन्न हुए थे । शृंगार रस की कविता बनाने में ये बड़े निपुण थे ।

गुणाढ्य—'कथासरित्सागर' में इस कवि का उल्लेख किया गया है । इसके रचित ग्रंथ का नाम बृहत्कथा है, जिसे लोग 'बड़ाह कथा' भी कहते हैं । कथासरित्सागर से इन्हें कात्यायन और व्याड़ी के समकालीन बताया गया है । कात्यायन के समय सन् ई० के प्रारंभ होने के ३१५ वर्ष पूर्व माना जाता है । अतएव गुणाढ्य का भी वही समय माना जाना उचित है । पुरुष-परीक्षा में विक्रमादित्य से बड़ाह नामक एक राजा से भेंट लिखी है । यदि इसी बड़ाह की कथा गुणाढ्य ने लिखी हो तो संभव है, वे विक्रमादित्य के नवरत्न वाले वररुचि के समय में रहे हों ।

जगद्धर के लिखने से जान पड़ता है कि गुणाढ्य ने महादेव जी से बड़ाह राजा की कथा सुनकर बृहत्कथा नामक ग्रंथ बड़ाह के वर्णन में लिखा । यदि यह बात सच है तो गुणाढ्य को खृष्टीय छठी सदी का मानना पड़ेगा । परंतु इससे और कथासरित्सागर के लेख से बड़ा भेद पड़ता है । यह संभव हो सकता है कि वररुचि के लिए कात्यायन नाम लिखा हो, परंतु व्याड़ी के नाम में भूल नहीं हो सकती । इससे यही निर्णय ठीक होगा कि गुणाढ्य सन् ई० से ३१५ वर्ष पूर्व वाले कात्यायन के ही समसामयिक हैं और बृहत्कथा के—जिसे लोग भूल से 'बड़ाह कथा' कहते हैं—रचयिता हैं ।

गुणाढ्य कवि के प्राचीन होने में कुछ भी संदेह नहीं । गोवर्द्धनाचार्य ने अपने 'आर्यासप्तशती' नामक ग्रंथ में कवियों की गणना में वाल्मीकि और व्यास के नाम के उपरांत इन्हींका नाम-निर्देश किया है—

अतिदीर्घजीविदोषाद् व्यासेन यशोऽपहारितं हन्त,
कैर्नोच्येत गुणाढ्य स एव जन्मान्तरापन्नः ।

पैशाची भाषा में सात लाख श्लोकों में बृहत्कथा नामक ग्रंथ इन्होंने लिखा था । यह बात इनके एक प्रतिद्वंद्वी के श्लोक से मालूम होती है जिसने द्वेष से इनके ग्रंथ की निंदा की थी—

प्रमाणं सप्त लक्षाणि पैशाचं नीरसं वचः ।
शोणितेनाक्षरन्यासो धिक् पिशाचकथामिमाम् ॥

बृहत्कथा के अधिकांश भाग को गुणाढ्य ने स्वयं जला दिया था। जो कुछ उसके भाग शेष थे उसको सोमदेव और क्षेमेन्द्र ने कथासरित्सागर और बृहत्कथामंजरी नामक ग्रंथ में लिखा है।

गुमानजी मिसिर—ये सौरी जिला हरदोई के रहने वाले थे और सन् १७४० ई० में विद्यमान थे। ये दिल्ली के मोहम्मदशाह के दरबारी थे। परंतु बाद में ये अली अकबरखां मोहम्मदी के सहवर्ती हुए। अली अकबर स्वयं एक उत्तम श्रेणी का कवि था और 'निधान', 'प्रेमनाथ' आदि कई-एक कवियों को अपने पास रखता था। गुमानजी ने 'कलानिधि' नाम का एक ग्रंथ रचा। इस ग्रंथ में श्रीहर्ष के 'नैषध-चरित्र' के प्रत्येक श्लोक की प्रतिपद टीका लिखी है। इन्होंने नैषध के बारहवें सर्ग के पंचनली पर सलिल नाम की टीका की है। 'पंचनली' नैषध के कठिन भागों में से है।

गुमानसिंह—कोटा राज्य के महाराव। सन् १७६६ ई० में गुमानसिंह अपने पिता के सिंहासन पर विराजे। गुमानसिंह एक तेजस्वी वीर राजा थे। जिस समय ये कोटा के सिंहासन पर विराजे, उस समय जालिमसिंह की प्रभुता बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। गुमानसिंह को उस प्रभुता से संदेह हुआ, अतएव उन्होंने जालिमसिंह की जागीर छीनकर अपने यहां से उनको निकाल दिया। जालिमसिंह कुछ दिनों तक तो मेवाड़ के महाराणा के पास थे और उन्हें महाराणा ने 'राजराणा' की उपाधि दी थी। पुनः मरहठों के लगातार आक्रमण जिस समय कोटा राज्य पर हो रहे थे, उस समय जालिमसिंह मेवाड़ से कोटा आए। यद्यपि गुमानसिंह का क्रोध अब भी ठंडा नहीं हुआ था; तथापि समय पर कोटा राज्य की भलाई करते हुए, जालिमसिंह को देखकर, गुमानसिंह को उनका पहला अधिकार देना ही पड़ा। इस घटना के कुछ दिनों बाद महाराव गुमानसिंह बीमार पड़े और कुछ काल तक रोगयंत्रणा सहकर, दश वर्ष के बालक उमेदसिंह और कोटा राज्य को जालिमसिंह के ऊपर छोड़कर, चल बसे। (टाड्स राजस्थान)

गुमानी कवि—इनका नाम लोकरत्नपंथ था। इनके पिता इनको प्यार से गुमानी कहकर पुकारते थे। इसी कारण इनका यही नाम प्रसिद्ध हो गया। ये कुलीन महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। इनका जन्म संवत् १८४७ में हुआ था। इनके पिता का नाम निधि और माता का नाम देवमंजरी था। संस्कृत, हिंदी, उर्दू, कुमाऊंनी और नेपाली भाषा के ये कवि थे। इन्होंने लोकोक्तियों का संग्रह कर बहुत सुंदर उपदेशात्मक श्लोक बनाए हैं, जो काव्यमाला में मुद्रित हैं। इस कवि का संवत् १९०३ में शरीरांत हुआ।

गुरु—देवाचार्य बृहस्पति। मरीचि प्रजापति की कन्या सुरूपा और अंगिरस इनके माता-पिता थे। विचक्षण बौद्धिक क्षमता और वेद-वेदांग-पारंगत होने के कारण इन्हें देवगुरु का सम्मानजनक पद प्राप्त हुआ।

(२) 'भागवत' के अनुसार संस्कृति का पुत्र। मतांतर से इन्हें गुरुधि, रुचिरधि तथा गुरुवीर्य आदि नामों से अभिहित किया गया है।

गुरु अर्जुनदेव—सिक्खों के पांचवें गुरु। इनके पिता का नाम गुरु रामदास और माता का नाम भानी था। इनका जन्म गोइंदवाल में वैशाख बदी ७, १६२० वि० (१५६३ ई०) को हुआ था। उनकी दो पत्नियों के नाम थे रामदेवी और गंगादेवी। छठे गुरु हरिगोविंद का जन्म गंगादेवी से हुआ था। गुरु अर्जुनदेव महान् निर्माता और संगठनकर्ता थे। उन्होंने अनेक नये नगर बसाए और गुरुद्वारों का निर्माण किया। उनके कार्यकाल में सिक्ख धर्म की बड़ी उन्नति हुई और सिक्खानुयायियों की संख्या-वृद्धि हुई। उनके समय सिक्खों के एकमात्र धर्म-ग्रंथ 'गुरु ग्रंथ साहब' का संकलन-कार्य पूर्ण हुआ। जहांगीर के साथ उनका मतभेद हो गया था। जहांगीर ने उनपर दो लाख रुपये का दंड किया था, जिसको उन्होंने नहीं दिया और बदले में कठोर कारावास की यातनाएं सहीं। इन यातनाओं से उनका अंत हो गया। रावी नदी में उनका संस्कार हुआ और उनकी स्मृति में 'डेहरा साहब' नामक गुरुद्वारे का निर्माण किया गया। 'गुरु-ग्रंथ साहब' में संकलित गुरु अर्जुनदेव की सर्वाधिक वाणियां हैं, जो भक्ति, वैराग्य और ज्ञान से परिपूर्ण हैं। (हिंदी साहित्य कोश, भाग २)

गुरुदत्तसिंह—राजा गुरुदत्तसिंह का छाप नाम भूपति कवि था और ये अमेठी के राजा थे। ये सन् १७२० ई० में विद्यमान थे।

गुरुदत्त सुकुल—ये मकरंदपुर जिला कानपुर के रहने वाले थे और सन् १८०७ ई० में पैदा हुए थे। इनके देवकीनंदन और शिवनाथ दो भाई और थे, और ये तीनों भाई अच्छे कवि थे। इनका बनाया 'पच्छीविलास' उत्तम ग्रंथ है।

गुरु गोविंदसिंह—सिक्खों के दशम गुरु। इनके पिता का

नाम तेगबहादुर था। ये सन् १६६२ ई० में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने सिक्ख धर्म में बहुत-से परिवर्तन किए और खालसा संप्रदाय स्थापित किया। तभी से इनके अनुगामी 'खालसा' अर्थात् पवित्र कहे जाते हैं। सन् १६७५ ई० में ये गुरु बनाए गए और उसी समय इन्होंने सिक्खों के धर्म ग्रंथ 'ग्रंथसाहब' का प्रणयन किया। सिक्ख लोग इस ग्रंथ की पूजा करते हैं। समस्त सिक्ख जाति को एक जाति बनाने के लिए ही खालसा संप्रदाय की स्थापना हुई थी। धर्म की अन्य बातें नानक के उपदेशानुसार इस संप्रदाय में मानी जाती हैं। सन् १७०७ ई० में ये दक्षिण गोदावरी नदी के तीर पर एक गुप्त हत्यारे के हाथों मारे गए। इनके समाधि-स्थान पर सिक्ख मंदिर बना हुआ है। ये बड़े निर्लोभ थे।

गुरदीन पाण्डे—इनका जन्म सन् १८३४ ई० में हुआ था। इनका बनाया 'वाकमनोहर पिंगल' उत्तम ग्रंथ है। इसमें षट्ऋतु और नखसिख वर्णन भी है।

गुरदीनराय बन्दीजन—ये पोतिया जिला सीतापुर के रहने वाले थे और सन् १८८३ ई० में जीवित थे। ये ईशान नगर जिला खीरी के राजा रणजीतसिंह के दरबारी थे।

गुलाबसिंह—इनका जन्म सन् १७८९ ई० में हुआ था और ये पंजाबी थे। इन्होंने वेदांत-संबंधी कई-एक ग्रंथ रचे हैं। इनके बनाए प्रसिद्ध ग्रंथ ये हैं—'रामायण', 'चंद्रप्रबोध', 'मोक्षपंथ', 'भंवरसागर'।

गुलाम नबी—बिलग्राम जिला हरदोई के निवासी सय्यद गुलाम नबी का छाप नाम रसलीन था। इनका रचा 'अंगदर्पण' पढ़ने योग्य काव्य है। इनका बनाया दूसरा ग्रंथ 'रसप्रबोध' है। इनके समय का पता नहीं।

गुलाल—इनका जन्म सन् १८१८ ई० में हुआ था। इन्होंने पशुचिकित्सा-संबंधी एक ग्रंथ बनाया है जिसका नाम 'शालिहोत्र' है।

गुहक—(१) एक अनार्य राजा। अयोध्या राज्य के समीप इस अनार्य राजा का राज्य था। श्रृंगवेरपुर में इसकी राजधानी थी। महाराज दशरथ के साथ इस राजा की बड़ी गहरी मित्रता थी। रामचंद्र भी इसका बड़ा आदर करते थे। बनवास के समय रामचंद्र इसी की सहायता से गंगा पार हुए थे। (रामायण)

(२) कलिंग और महेंद्र के एक राजा का नाम। बिहार और उड़ीसा के कुछ भागों को कलिंग देश कहा जाता था।

गूदर—एक प्रकार के फकीर। इनके पास एक खप्पर रहता है। उसमें ये सदा आग रखा करते हैं और जहां भीख मिलती है, वहां धूप जला दिया करते हैं। ये भीख नहीं मांगते किंतु 'अलख' कहा करते हैं जिसका अर्थ है अदृश्य।

गृत्स—एक बार इस असुर ने अपने मित्र भृगु की पत्नी का अपहरण किया। महर्षि ने इसे अलर्क नामक कृमि में जन्म धारण करने का शाप दिया। एक बार इस तीक्ष्णद्रष्ट कृमि ने कर्ण की शय्या पर सो रहे परशुराम को काट डाला। उससे उनकी निद्रा भंग हुई और उनकी दृष्टि इस कृमि पर पड़ी, जिससे वह शाप-मुक्त हुआ।

गृत्समद—वेदों, ब्राह्मणग्रंथों और पुराणों में इस नाम का विविधार्थ में व्यापक रूप से उल्लेख हुआ है। 'ऋग्सर्वानुक्रमणी' में इसे आंगिरस-कुलोत्पन्न सुनहोत्र का पुत्र बताया गया है। तदनंतर ये भृगुवंशीय हो गया था। 'ऐतरेय आरण्यक' में 'गृत्स' का अर्थ 'प्राण' और 'मद' का अर्थ 'अपान' किया गया है, जिससे कि यह प्राणायाम का अधिष्ठान सिद्ध होता है। इसे ऋग्वेद का भी मंत्रद्रष्टा कहा गया है। ऋग्वेद के अनेक स्थलों पर इंद्र तथा गृत्समद द्वारा एक-दूसरे के रूप धारण करने का बहुविध उल्लेख हुआ है। एक बार मनुपुत्र वरिष्ठ ने इंद्र के सहस्रवर्षीय सत्र में गृत्समद द्वारा अशुद्ध सामगायन होने के कारण इन्हें शाप दिया; किंतु शंकर की मध्यस्थता के कारण शाप का उपशमन हो गया।

(२) एक ऋषि; वीतहव्य का पुत्र और सुचेतस् का पिता।

(३) इंद्र द्वारा मुकुंदा से उत्पन्न पुत्र; मुकुंदा रुक्मांगद की पत्नी थी। एक बार पति की अनुपस्थिति में वह कामासक्त हुई। इंद्र ने रुक्मांगद का रूप धारण कर उससे संभोग किया। उससे जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसे ही गृत्समद कहा गया। जब वह बड़ा हुआ तो एक अपराजेय विद्वान् के रूप में विख्यात हुआ। एक बार मगध नरेश के यहां किसी श्राद्धकार्य में सम्मिलित होने के लिए वसिष्ठ आदि ऋषि एकत्र हुए। गृत्समद भी वहां था। अत्रि ऋषि ने उससे कहा कि वह रक्त से पावन नहीं है। इस तरह उपहास किया। वह माता के पास लौट आया और उसने माता से वह बात कही। मुकुंदा ने सारी बात बता दी। उसने अपनी माता को कंटक वृक्ष बन जाने का शाप दिया।

इसपर माता ने भी उसे शाप दिया कि उसे दैत्य-पुत्र उत्पन्न होगा। स्वयं को ब्राह्मणत्व प्राप्त करने के लिए इसने गणपति का अनुष्ठान किया। तब उसकी जन्म-शुद्धि हुई।

गृध्रकूट पर्वत (गृध्रगुहाकूट)—यह उन पांच पहाड़ियों में से एक है, जो राजगृह से गिरिव्रज तक फैली हुई हैं। इसका ऐसा नामकरण या तो इसके गृद्धाकार के कारण हुआ अथवा इसके शिखर पर चीलों के बैठने के कारण इसको इस नाम से कहा गया। इस पर्वत का बौद्ध-साहित्य में व्यापक वर्णन हुआ है। यहां की एक गुफा में बुद्ध और दूसरी गुफा में आनंद कुछ समय तक समाधिस्थ हुए थे। ध्यानस्थ आनंद को कामदेव ने विशाल गृद्ध के रूप में भयभीत कर दिया था। बुद्ध ने शिला पर दरार कर अपने हाथ को आनंद के कंधे पर रखकर उसे भयमुक्त किया था। फाह्यान ने पक्षी के पदचिह्नों और शिला की दरार को स्वयं देखा था। इस आधार पर इसका 'गृध्रगृहाकूट' नामकरण हुआ। यह पर्वत अनेक ऋषि-मुनियों द्वारा सेवित रहा है। यह पर्वत प्राचीन गया के निकट था। यहां पर एक शिवलिंग तथा गुफा है। यहां पर तीर्थयात्री अपने पितरों को तर्पण करते हैं और प्रेतात्माओं की स्वर्ग-प्राप्ति के लिए पिंडदान देते हैं।

गृध्रिका—कश्यप की कन्या और तमरा की स्त्री। ये गीधों की माता थीं।

गृहपति—शाण्डिल्यगोत्रीय एक ऋषि; इनके पिता का नाम विश्वानर और माता का नाम शुचिष्मती था। विश्वानर मुनि को कोई संतान नहीं थी। अपनी पत्नी के कहने पर ये काशी गए और वहां इन्होंने वीरेश्वर की तपस्या की। इनकी तपस्या से प्रसन्न होकर वीरेश्वर ने इन्हें दर्शन दिए और पुत्रप्राप्ति का वरदान दिया। तत्पश्चात् गृहपति का जन्म हुआ। एक बार नारद ने गृहपति को बताया कि उसे अग्निभय है। उसने शंकर की तपस्या की। शंकर ने प्रसन्न होकर उसके भय का निवारण किया। उसके द्वारा काशी में स्थापित शिवलिंग को अग्नीश्वर कहा गया।

गोकर्ण—(१) काश्मीर के एक राजा का नाम। ये गोपादित्य के पुत्र थे। इन्होंने गोकर्णेश्वर शिव की स्थापना की थी। इन्होंने ५७ वर्ष ११ महीने राज्य कर परलोकयात्रा की थी।

(२) यह स्थान बहुत प्राचीन और पवित्र है। राजा भगीरथ यहीं तपस्या करते थे।

(३) एक क्षेत्र है जो गोआ से ३० मील उत्तरी कनारा में है।

गोकुल—एक कस्बे का नाम। यहीं कृष्ण और बलराम भेजे गए थे जिससे कि वे कंस के कोप से बच जाएं।

गोकुलनाथ गोस्वामी—गोसाईं विट्ठलनाथ के सात पुत्रों में से चतुर्थ; इनका जन्म १६०८ वि० को हुआ था। ये पुष्टि संप्रदाय के प्रबल प्रचारक थे। इन्होंने 'भड़ूची पंत' के नाम से एक नये सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की। इनके ओजस्वी एवं विद्वत्तापूर्ण भाषणों का जनता पर बड़ा प्रभाव था। इन्होंने पुरातन भक्त-चरित्रों का व्याख्यान किया था। हरिराम द्वारा लिपिबद्ध 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' और 'दो सौ वैष्णवों की वार्ता' के व्याख्यानकर्ता यही थे। वैष्णव साहित्य में इन्हें वार्ताकार का अनन्य स्थान प्राप्त है। इनकी ये वार्ताएं काव्य की दृष्टि से कम, किंतु ऐतिहासिक तथा धार्मिक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। १६९७ विक्रमी में इनका निधन हुआ।

(प्रभुदयाल मीतल—अष्टछाप)

गोकुलनाथ बन्दीजन—ये बनारस के रहने वाले थे और सन् १८२० ई० में विद्यमान थे। ये बनारस के रघुनाथ कवि के पुत्र थे। चौरागांव में (जो काशी की पंचक्रोशी के अंतर्गत है) इनका घर था। इनकी बनाई चेतचंद्रिका को, जिसमें चेतसिंह के कुटुंब का इतिहास है, कवि लोग प्रामाणिक मानते हैं। इनका दूसरा ग्रंथ 'गोविंदसुखदविहार' है। बनारस के राजा उदितनारायण की प्रेरणा से महाभारत का भाषांतर भी इन्हींके तत्त्वावधान में हुआ था। इस भाषा महाभारत का नाम महाभारतदर्पण है, और इसके क्रोड़-पत्र का नाम हरिवंशदर्पण है। ये कलकत्ते में सन् १८२९ ई० में छपे थे।

गोकुलप्रसाद—ये जाति के कायस्थ थे और बलरामपुर जिला गोंडा के निवासी थे। इन्होंने बलरामपुर के राजा दिग्विजयसिंह के स्मरणार्थ दिग्विजयभूषण नामक एक ग्रंथ लिखा। इन्होंने 'अष्टयाम', 'चित्र-कलाधर', 'दूतीदर्पण' तथा और भी कई ग्रंथ रचे हैं। अपनी कविता में ये अपना नाम 'ब्रैज' रखते थे। सन् १८८३ ई० में ये विद्यमान थे।

गोतम—(देखो अक्षपाद)

गोदावरी—(१) पुराणों में बहुचर्चित दक्षिण भारत की प्रमुख नदी। इस कमलमांडल नदी-तट पर मृग विचरण करते थे। हंस-चक्रवाक-सेवित इस पुण्यतपा नदी में

राम, सीता, लक्ष्मण ने स्नान किया था। इसीके तट पर पंचवटी स्थित थी। यह नदी कवियो की भी प्रेरणा-स्रोत रही है।

(२) एक नदी का नाम। पुराणों में इस नदी का उल्लेख है।

गोधर—काश्मीर के एक राजा का नाम। ये अन्य वंश के थे तथा धार्मिक और उदार स्वभाव के थे। इन्होंने हस्तिशाला नामक अग्रहार ब्राह्मणों को दान में दिए थे। इनके पुत्र का नाम सुवण था। (राजतरंगिणी)

गोनर्द—(१) काश्मीर के एक राजा। ये काश्मीर के प्रथम ऐतिहासिक राजा थे। राजतरंगिणी में लिखा है कि ये प्रतापी राजा थे। गंगा से कैलास पर्यंत इनके शासन में था। मगधराज जरासंध से इनकी मैत्री थी। अतएव गोनर्द ने भी बड़ी सेना लेकर जरासंध के साथ मथुरा पर आक्रमण किया था। गोनर्द की सेना यमुना के किनारे पड़ी थी। उनकी वीरता देख यादवों को स्तंभित और हताश होना पड़ा था। यादवों की सेना भागना ही चाहती थी कि बलभद्र वहां जा पहुंचे। बलभद्र और गोनर्द का परस्पर युद्ध होने लगा। दोनों ओर के वीर उत्सुकता से अपने-अपने स्वामियों की विजय की प्रत्याशा कर रहे थे। अंत में काश्मीरराज गोनर्द मारे गए। (राजतरंगिणी)

(२) काश्मीर के एक दूसरे राजा। ये द्वितीय गोनर्द के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये प्रथम गोनर्द के पौत्र थे। इनके पिता दामोदर, गांधारराज के यहां स्वयंवर में कृष्ण के हाथ मारे गए थे। इनके पिता के मरने पर इनकी माता ही काश्मीर का शासन करती थीं। गोनर्द के बड़े होने पर ये काश्मीर के राजा हुए। यद्यपि ये अल्प अवस्था के थे, तथापि इन्होंने किसी प्रकार की चंचलता प्रदर्शित नहीं की। कौरवों और पांडवों के युद्ध में भी ये योग देने के लिए गए थे। (राजरंगिणी)

(३) ये तृतीय गोनर्द के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके पहले काश्मीर राज्य की अवस्था शोच्य हो गई थी। कहते हैं, बौद्धों के अत्याचार से देवता लोग अप्रसन्न हो गए और हिम बरसाने लगे। तृतीय गोनर्द ने सदाचार का प्रचार करके देवताओं को प्रसन्न किया। राजतरंगिणी में लिखा है कि इन्होंने काश्मीर राज्य का पुनः स्थापन किया। जिस प्रकार रघुवंशियों के आदिपुरुष रघु समझे जाते हैं, उसी प्रकार तृतीय गोनर्द, गोनर्दवंशियों के आदिपुरुष हैं। इन्होंने ३५ वर्ष तक काश्मीर का राज्य किया था। (राजतरंगिणी)

गोप—अहीरों की एक पुरानी जाति। ये लोग पहले गोकुल में रहते थे और पीछे से वृंदावन गए। बौद्धों के पहले इस जाति का बड़ा प्रभाव था; यह एक बलवती जाति समझी जाती थी।

गोपराष्ट्र—गोपों के रहने के स्थान का नाम। दक्षिणी कोंकण देश को पहले गोपराष्ट्र कहते थे।

गोपा—(१) इनका जन्म सन् १५३३ ई० में हुआ था। इनके बनाए 'रामभूषण' और 'अलंकारचंद्रिका' दो ग्रंथ पाए जाते हैं।

(२) सिद्धार्थ बुद्धदेव की पत्नी का नाम। राजा शुद्धोदन ने अपने पुत्र सिद्धार्थ का संसार से विराग देखकर कपिलवस्तु के समीपस्थ कलिराज्य के अधीश्वर की कन्या गोपा से उनका ब्याह कर दिया। गोपा के गर्भ से एक पुत्र होने पर सिद्धार्थ ने घर छोड़ दिया। गोपा बुद्धिमती और विदुषी स्त्री थी। उन्होंने अपने पति के हृदय पर अपना अधिकार जमा लिया था। गोपा के गुणों पर मुग्ध होकर सिद्धार्थ संसार में आसक्त हो रहे थे। गोपा परदे को बहुत बुरा समझती थी। वह कहा करती थी कि जिनको लज्जा नहीं है, जिनको आत्मसम्मान का विचार नहीं है, जो अपनी इंद्रियों को अपने वश में नहीं रख सकतीं, उनके लिए हजार परदा करना भी व्यर्थ है और जिनका पति ही प्राण है, जिन्होंने इंद्रियों को वश में रखना सीखा है, वे जहां जाएं, इसमें हानि ही क्या है ? जो अपनी रक्षा करना जानती हैं, वे सर्वदा सुरक्षित और जो आत्मरक्षा करना नहीं जानतीं, वे चाहे कितनी ही रक्षा में रखी जाएं तथापि अरक्षिता हैं। सिद्धार्थ ने देखा कि मैं धीरे-धीरे संसार में लिप्त होता जा रहा हूं, इसको छोड़ना चाहिए; परंतु किस प्रकार छोड़ें, यही सोचा करते थे। उसी समय गोपा के एक पुत्र हुआ। इस समय को अपने संसार छोड़ने का उपयुक्त समय जानकर वे धीरे से निकल पड़े। (बुद्धचरित)

गोपादित्य—काश्मीर के एक राजा। इनके पिता का नाम था अक्ष। पिता की मृत्यु के अनंतर गोपादित्य काश्मीर के राजा हुए। ये वर्णाश्रम धर्म के बड़े प्रेमी थे। इन्होंने अपने राज्यकाल में सत्ययुग का आविर्भाव किया था। इन्होंने कितने ही अग्रहार बनवाए थे और लहसुन खाने वाले ब्राह्मणों को अपने राज्य से निकलवा दिया था। सदाचारी ब्राह्मणों को बुलवाकर

अपने राज्य में रखा था। वे पशुहिंसा से घृणा करते थे, इस कारण यज्ञ न करने पर भी लोग उन्हें आदर्श राजा कहते थे। इन्होंने ६० वर्ष, ६ दिन राज्य किया था। (राजतरंगिणी)

गोपाल—ये जाति के कायस्थ थे और बांधोगढ़ बघेलखंड के रहने वाले थे। ये सन् १८३० ई० में विद्यमान थे। महाराज विश्वनाथसिंह रीवांधीश्वर के ये दीवान थे। इनकी बनाई 'गोपालपचीसी' इनकी रचनाओं में मुख्य समझी जाती है।

गोपालचन्द्र साह—इनके दो उपनाम थे। गिरिधर बनारसी और गिरिधरदास। इनका जन्म सन् १८३२ ई० में हुआ था। ये भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के पिता थे। इनके दो ग्रंथ—'दशावतार' और 'भारतीभूषण' प्रसिद्ध हैं।

गोपाल बन्दीजन—ये बुंदेलखंडी थे और सन् १८४० ई० में विद्यमान थे। चरखारी नरेश के ये दरबारी थे।

गोपालराम—इन्होंने कुछ पद्य नरेंद्रलाल साह और आदिलखां की प्रशंसा में बनाए थे। इनके समय का पता नहीं है।

गोपाललाल—इनका जन्म सन् १७६५ ई० में हुआ था। इनकी शांतिरस-संबंधी कविता अच्छी बतलाई जाती है।

गोपालसिंह—हिंदी के एक कवि का नाम। इनका वासस्थान ब्रज में था। इन्होंने एक ग्रंथ बनाया था, जिसका नाम है 'तुलसीशब्दार्थ-प्रकाश'। इसमें इन्होंने अष्टछाप का वर्णन किया है। ये जाति के क्षत्रिय थे। इनका धार्मिक मत वल्लभाचार्य का संप्रदाय था।

गोपाली—एक अप्सरा का नाम। यह गार्ग्य मुनि की स्त्री थी। इसीके गर्भ से कालयवन उत्पन्न हुआ था।

गोपीचन्द—इतिहासकारों का अभिमत है कि बंगाल के राजा गोविंदचंद ही सिद्ध गोपीचंद थे। 'वर्ण रत्नाकर' की सिद्ध सूची में उन्हें ७१वें स्थान पर रखा गया है। 'गोविंदचंदेरगान' में भी उनका गोपीचंद के नाम से उल्लेख हुआ है। इस दृष्टि से गोपीचंद को दक्षिण के राजेंद्रचोल का समकालीन, ११वीं शती ई० का, निर्धारित किया गया है।

इनकी माता का नाम मैनावती था, जिनके सदुपदेश से प्रभावित होकर इन्होंने अपनी उदयनी तथा पद्मिनी नामक दो रानियों का तथा राज्य का परित्याग कर वैराग्य धारण कर लिया था। सिद्ध चर्पटीनाथ इनके गुरुभाई थे। गोपीचंद ने अपने पदों में गोरखनाथ को अपना गुरु और चर्पटीनाथ को गुरुभाई माना है। आचार्य हजारीप्रसाद का अभिमत है कि गोपीचंद जालंधरपाद के शिष्य कानपा द्वारा सिद्ध संप्रदाय में दीक्षित हुए थे। उन्होंने गुरु-परंपरा के रूप में जालंधरपाद का भी उल्लेख किया है। यही गोपीचंद राजा भरथरी के नाम से लोक-विश्रुत है, जिनकी कथा पूर्वी भारत से लेकर उत्तरी भारत की जनवाणी में आज भी ऐतिहासिक वृत्त के रूप में प्रचलित है।

गोपीनाथ बन्दीजन—ये बनारसी थे और सन् १८२० ई० में विद्यमान थे। काशीनरेश उदितनारायण की प्रेरणा से 'महाभारत दर्पण' जब बनाया गया, तब उसके बनाने में अधिक भाग इन्हींका था। यहां तक कि इनके जीवन का अधिक समय इसी काम में व्यतीत हुआ। इस काम से जब इन्हें अवकाश मिलता था, तब ये छोटी-छोटी फुटकल कविताएं बनाया करते थे।

गोभानु—ये राजा वह्नि के पुत्र और तुर्वसु के पौत्र थे। पीढ़ियों के बाद इनका वंश लोप हो गया, क्योंकि ययाति ने शाप दिया था। (हरिवंश)

गोभिल—प्राचीन ऋषि। इन्होंने सामवेदियों का कर्मकांड विषयक ग्रंथ लिखा था जिसका नाम गोभिलसूत्र है। इन्होंने अपने गृह्यसूत्र में जिन विषयों का विवरण दिया है वे ही विषय कात्यायन संहिता में लिखे गए हैं।

गोमती—एक नदी का नाम। ऋग्वेद में भी इस नदी का नाम आया है। ऋग्वेद के एक सूत्र में रथरीति का वर्णन है। वे गोमती के तीर पर रहते थे। पर्वतों के समीप उन्होंने अपने रहने का स्थान बनवाया था। दिवोदास के राज्यकाल में क्षेमक नामक राक्षस के उपद्रव से काशी जनशून्य हो गई। वहां के वासी काशी छोड़कर अन्यत्र जाकर रहने लगे। यहां तक कि काशीराज दिवोदास ने भी काशी छोड़ दी। गोमती नदी के तीर पर उन्होंने अपनी राजधानी बनवाई थी। अन्यान्य पुराणों में भी प्रसंगानुसार गोमती का नाम आया है। संप्रति यह नदी कुमाऊं में बहती है। यह बागेश्वर (अल्मोड़ा) में सरयू नदी में मिल जाती है। इसके तट पर बैजनाथ का प्रसिद्ध मंदिर है।

गोमतीपुत्र—एक आंध्र देश के राजा का नाम। जो शिवस्वाती का पुत्र था और जिसने २१ वर्ष तक राज्य किया था।

गोमन्त—(१) एक पर्वत का नाम। यह दक्षिण देश में है। जिस प्रदेश का नाम आजकल गोआ कहा जाता है, उसे पहले कोंकण कहते थे। यह पर्वत भी उसी प्रदेश में है।

(२) द्वारका के समीप वाले पहाड़ का नाम।

गोरक्षनाथ अथवा गोरखनाथ—विख्यात सिद्धपुरुष और धर्ममत प्रवर्तक। १६वीं शताब्दी में उत्तर-पश्चिम प्रदेश में इन साधु का प्रादुर्भाव हुआ था। ये कबीर के समकालीन थे। इनके कितने ही शिष्य थे। इनके शिष्य इन्हें गुरु गोरखनाथ कहते थे। ये स्वयं योगी थे, और इनका सिद्धांत था कि संसार में योगी ही सबसे श्रेष्ठ हैं। सभी जाति के मनुष्य इनके मत में दीक्षित हो सकते हैं। इनके अनुयायियों को कान फड़वाना पड़ता है। अतएव उन्हें बहुत लोग 'कनफटा जोगी' भी कहते हैं। इनके चेलों ने समय-समय पर राजाओं की सेनाओं में भर्ती होकर भयानक युद्ध भी किए हैं। काशी के भैरवनाथ के मंदिर में ये ही पुरोहित हैं। गोरखपुर के गोरक्षनाथ महादेव का मंदिर इस संप्रदाय का प्रधान मठ माना जाता है।

गोरा-बादल—गोरा और बादल मध्ययुगीन हिंदी साहित्य में वीरता के ज्वलंत प्रतीक हैं। आधुनिक इतिहासकारों एवं समीक्षकों का अभिमत है कि गोरा और बादल वस्तुतः दो व्यक्ति नहीं थे, अपितु राजपूतों के गोर (गोरा) वंश से उत्पन्न बादल को बाद में दो व्यक्ति माना गया। इसी परंपरागत अनुश्रुति के आधार पर जायसी ने अपने 'पद्मावत' में एक ही ऐतिहासिक व्यक्ति का दो व्यक्तियों के रूप में वर्णन किया। जायसी के अनुसार, ये दो राजपूत रावत चित्तौड़गढ़ के राजा रतनसिंह की दो भुजाएं थीं; किंतु उन्हें यह पसंद नहीं था कि राजा रतनसेन सुल्तान अल्लाउद्दीन का विश्वास करें। इसी मतभेद के कारण ये दोनों राजा से अलग हो गए थे। किंतु एक दिन अल्लाउद्दीन ने रतनसिंह को बंदी बना लिया। तब रानी पद्मावती इनकी सहायता के लिए आई। इन्होंने धैर्यपूर्वक उसकी बातों को सुना और अपनी बहादुरी से रतनसेन को बंदीगृह से छुड़ा लाए। गोरा इस लड़ाई में वीरगति को प्राप्त हुआ। दुर्ग की रक्षा के लिए रतसेन ने प्राण त्याग दिए और उसके साथ उसकी दोनों रानियां सती हुईं। गढ़ की रक्षा में बादल भी आत्मोत्सर्ग करता है।

गोलोक—यह सब लोकों से ऊपर है, यहीं कृष्ण भगवान रहते हैं। यह लोक अक्षय्य लोक है। अन्य लोकों के नष्ट होने पर भी यह लोक नष्ट नहीं होता।

गोवर्द्धन—एक पर्वत और तीर्थ। यह वृंदावन के समीप है। कृष्ण ने इसे उठाकर इंद्र के कोप से ब्रजवासियों की रक्षा की थी। यह पर्वत वृंदावन से १८ मील पूर्व की ओर स्थित है।

गोवर्द्धनाचार्य—ये कवि गीतगोविंदकार जयदेव तथा उमापतिधर आदि के समकालीन थे। गीतगोविंद में जयदेव ने इनका उल्लेख करके इनकी बड़ाई की है। उन्होंने लिखा है कि शृंगार रस की कविता लिखने में ये बड़े निपुण थे। इनका बनाया 'आर्यासप्तशती' नामक एक ग्रंथ है। यद्यपि नाम से तो विदित होता है कि इस ग्रंथ में ७०० श्लोक होंगे, परंतु काव्यसंग्रह में जो ग्रंथ छपा है उसमें ७३१ श्लोक हैं। गोवर्द्धनाचार्य ने निज रचित ग्रंथ में अपने पिता का नाम नीलांबर लिखा है। इनके ग्रंथ में वाल्मीकि, व्यास, बृहत्कथा के रचयिता गुणाढ्य, कालिदास, भवभूति, बाण आदि के नामोल्लेख मिलते हैं और ये सब कवि उमापतिधर से प्राचीन भी हैं। अतएव उमापतिधर के सामयिक होने से इनका समय १२वीं शताब्दी का आरंभ अथवा मध्यभाग सिद्ध होता है।

राढ देश में मल्लभूमि की राजधानी विष्णुपुर है। वहां के राजा के आश्रित मुरारि कवि शाके ११०० अर्थात् सन् ११७८ ई० के पूर्व विद्यमान थे। उन्होंने अपने को गोवर्द्धन भट्ट का पुत्र बताया है। कौन जाने ये गोवर्द्धन आर्यासप्तशती के रचयिता ही हों। गोवर्द्धनाचार्य ने अपने शिष्यों में से एक का नाम उदयन लिखा है। ये प्रसिद्ध नैयायिक उदयनाचार्य ही हैं या और कोई, सो स्पष्ट नहीं जाना जाता।

गोविन्द ठक्कुर—चंद्रदत्त मैथिलकृत संस्कृत भाषांतर वाली भक्तमाला में गोविंद ठक्कुर को 'काव्यप्रदीप' का रचयिता बताया है और यह भी लिखा है कि गोविंद ठक्कुर मम्मट भट्ट से भेंट करने गए और उनको दाढ़ी-मूंछ बनाए तथा जूता पहने देख उन्हें आश्चर्य हुआ कि ये मुसलमान के वेश में क्यों रहते हैं। यदि भक्तमाला की बातें सत्य हों तो मम्मट भट्ट के समकालीन गोविंद ठक्कुर भी १२वीं सदी के अंतिम या १३वीं सदी के प्रारंभकाल में माने जा सकते हैं। 'काव्य-प्रकाश' के टीकाकार कमलाकर भट्ट (जिसने 'शूद्रकमलाकर' नामक ग्रंथ रचा है) अपने ग्रंथ में 'काव्यप्रदीप' का नाम लिखते हैं। इस कारण गोविंद

ठक्कुर उसके पूर्व ही किसी समय में रहे होंगे—ऐसा निश्चय होता है। गोविंद ठक्कुर के एक चचेरे भाई की पांचवीं पीढ़ी में नरसिंह ठक्कुर हुए, जिन्होंने 'काव्यप्रकाश' पर टीका लिखी है और जिसका निर्णीत समय १६६८ ई० है। प्रत्येक पीढ़ी को लगभग ३० वर्ष का समय देकर यदि लेखा लगावें, तो गोविंद ठक्कुर का समय किसी प्रकार १६वीं सदी के प्रारंभ या १५वीं सदी के अंतिम भाग से पूर्व नहीं पड़ सकता। 'काव्यमाला' में मुद्रित 'काव्यप्रदीप' की भूमिका में इनका वंशवृक्ष दिया है और इन्हें मिथिला का निवासी भी बताया है; परंतु इनका निश्चित समय नहीं लिखा, केवल इतना ही अनुमान करके छोड़ दिया है कि गोविंद ठक्कुर १६वीं शताब्दी के अंतिम भाग से पीछे के कभी नहीं हो सकते।

गोविंददास——(१) हिंदी के एक कवि। इनका वासस्थान ब्रज में था। सन् १५६७ ई० में ये वर्तमान थे। वल्लभाचार्य के मतानुयायी अष्टछाप के कवियों में इनकी भी गणना है। वल्लभाचार्य जी के पुत्र और उनके संप्रदाय के प्रवर्तक बिट्ठलनाथ जी के ये शिष्य थे।

(२) गोविंददास मारवाड़ राज्य के एक मंत्री का नाम था। ये राजा गजसिंह के मंत्री थे। शाहजादे खुर्रम ने जब गजसिंह से अपने कार्य की सिद्धि के लिए सहायता मांगी तब गजसिंह ने उसकी प्रार्थना अस्वीकार की, इससे चिढ़कर खुर्रम इसका प्रयत्न करने लगा, जिससे गजसिंह मारे जाएं। उसने इस दुष्कृत्य के करने के लिए गोविंददास से सहायता मांगी। परंतु उसे निराश होना पड़ा। अतएव खुर्रम ने हत्यारे किशनसिंह के द्वारा गोविंददास को मरवा डाला। ये भाटी सरदार थे और जोधपुर के सामंत सरदारों में से थे। (टाड्स राजस्थान)

गोविंदराम—हाड़ावती ग्रंथ के रचयिता गोविंदराम राजपूताने के रहने वाले थे। हाड़ावती में हाड़ावंश का इतिहास है।

गोविंद स्वामी—अष्टछाप के कवियों में गोसाईं विट्ठलनाथ के प्रथम शिष्य। भरतपुर के एक गांव में इनका जन्म १५०५ ई० के लगभग हुआ था। १५३५ ई० में इन्होंने गोसाईं जी से दीक्षा ग्रहण की। जाति के ये सनाढ्य ब्राह्मण थे। गृहस्थ जीवन त्यागकर इन्होंने वैराग्य वरण किया। गोसाईं जी का शिष्यत्व ग्रहण करने से पूर्व ही ये प्रसिद्ध भजनीक हो गए थे और गोसाईं जी तक उनकी प्रसिद्धि पहुंच चुकी थी। एक बार उन्होंने गोकुल में यमुना घाट पर गोसाईं जी को संध्योपासन करते हुए देखा। उन्हें गोसाईं जी के इस कर्मकांड-विश्वास पर आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपनी शंका प्रकट की और गोसाईं जी ने कर्म, भक्ति और ज्ञान का समाधान करते हुए उनको प्रभावित किया, जिससे कि वे उनके शिष्य बन गए। वे गोविंद स्वामी से गोविंददास हो गए और उन्हींके साथ उनके समस्त सेवक विट्ठलनाथ जी के सेवक बन गए। उनकी सखा-भाव की भक्ति से वैष्णव समाज बड़ा प्रभावित था। वे गानविद्या के इतने प्रकांड विद्वान् थे कि तानसेन उनसे संगीत सीखने आए थे। उन्होंने सहस्रों पदों की रचना की, किंतु संप्रति केवल दो सौ बावन पद ही उपलब्ध हैं। गोवर्धन की गुफा में प्रवेश कर १५८५ ई० में वे गोलोकवासी हुए।

गोहिल—गिल्होट वंश के आदिपुरुष। ये सूर्यवंशी राजा शिलादित्य के पुत्र थे। इनका जन्म-वृत्तांत अतिशय करुणाजनक है। शिलादित्य वल्लभीपुर के राजा थे। जब वल्लभीपुर का पतन हुआ, शिलादित्य मारे गए। उस समय शिलादित्य की अन्यान्य रानियां उनके साथ सती हो गईं परंतु पुष्कलावती नामक रानी जीती रही, क्योंकि वह गर्भवती थी। पुष्कलावती परमार वंश की राजकन्या थी। इसने गर्भरक्षा के लिए भागकर अपने प्राण बचाए, मालिया नामक एक पर्वत की गुफा में जाकर यह रहने लगी। यथासमय उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस पुत्र को वीरनगर-निवासिनी कमलावती नाम की ब्राह्मणी को सौंपकर रानी पुष्कलावती ने अपने पति का अनुगमन किया। गुहा में जन्म हुआ था, इस कारण उस लड़के का नाम गोहिल पड़ा। यह भीलों का राजा हुआ।

(टाड्स राजस्थान)

गौड़ देश—(१) प्राचीन साहित्य में इसके महत्त्व का व्यापक वर्णन हुआ है। गुड़ एवं राब का प्रसिद्ध केंद्र होने के कारण कुछ लोगों के मत से इसको गौड़ कहा गया। हिंदुओं और मुसलमानों की यह राजधानी रही है। गुप्तराजाओं, सेनराजाओं, पालराजाओं और मुसलमान बादशाहों ने इसको अपनी राजधानी बनाया। बल्लालसेन ने वहां पर एक किला बनाया था, जिसके ध्वंसावशेष शाहदुल्लापुर में प्राप्त होते हैं। उसने सागरदीघि नामक तालाब का भी निर्माण किया था। यहां पर गौडेश्वरी, जहुरवासिनी और

शिव के मंदिर है। मुस्लिम सल्तनत के स्मारक जान जानमियां की मस्जिद, फीरोज मीनार, हवेली खास, सोमा मस्जिद, लोटन मस्जिद और कदम रसूल मस्जिद आदि के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इस ऐतिहासिक नगरी से अनेक राजाओं तथा राजवंशों का संबंध रहा है और इसके प्रमाण बहुसंख्यक अभिलेखों तथा ताम्रपत्रों में सुरक्षित हैं। प्राचीन गौड़देश के ध्वंसावशेष वर्तमान माल्दह नगर के दस मील दक्षिण-पश्चिम में और कालिंदी नदी के समीप प्राप्त हुए हैं। वर्तमान गौड़ के निकट रामकेलि नामक प्राचीन स्थान में चैतन्य महाप्रभु गए थे।

(२) प्राचीन समय में कोशल प्रदेश--जिसकी राजधानी अयोध्या थी—दो भागों में बंटा था। उनके उत्तरकोशल और दक्षिणकोशल नाम थे। पुनः उत्तर-कोशल में भी दो विभाग थे। एक का नाम था गौड और दूसरे का नाम था कोशल। रापती नदी के दक्षिण तीरस्थ प्रदेश को गौड देश कहते हैं। इसी गौड देश में श्रावस्ती नगरी विद्यमान है। श्रावस्ती नगरी का ध्वंसावशेष गोंडा नगर है।

बंग देश के प्रांतविशेष का भी नाम गौड देश था।

गौडपादाचार्य—प्रसिद्ध शंकराचार्य के गुरु। इन्होंने अद्वैत सिद्धांत प्रतिपादक एक ग्रंथ लिखा है। 'मांडूक्योपनिषत्कारिका' इस ग्रंथ का नाम है। इनकी कारिका आर्यावृत्त में है और वे मनोहर हैं।

गौतम—बुद्धदेव का दूसरा नाम। कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन के ये पुत्र थे। इनका पहला नाम सिद्धार्थ था। ये अपनी माता के ४५ वर्ष की अवस्था में उत्पन्न हुए थे और इनके जन्म के सात दिन के बाद इनकी माता मायादेवी मर चुकी थी। मायादेवी के मर जाने पर राजा शुद्धोदन ने पुनः विवाह किया था। इस स्त्री का नाम था गौतमी। सिद्धार्थ के पालने-पोसने का भार गौतमी पर रखा गया था। गौतमी ने इनका पालन किया था, इसी कारण इन को लोग गौतम बुद्ध कहते हैं। इनकी स्त्री का नाम था गोपा (देखो गोपा)। गौतम बुद्ध ने ४५ वर्ष धर्म-प्रचार किया था। अस्सी वर्ष की अवस्था में सन् ५३५ ई० के पूर्व कुशीनर नगर में उनका शरीरांत हुआ था। पेट की किसी बीमारी से इस बड़े धर्म-प्रचारक और असीम विरागी को संसार से नाता तोड़ना पड़ा। इन्होंने जो धर्ममत चलाया था, इनकी जीवित अवस्था में उसका विज्ञान लिपिबद्ध नहीं हुआ था। इनके शिष्य ही बुद्धदेव के उपदेशों को स्मरण रखते थे। तदनन्तर वे उपदेश लिपिबद्ध किए गए। बुद्ध के समय में भारत में अनेक अभिनव विचारों का सूत्रपात हो गया था। शिक्षा का द्वार एक प्रकार से उन्मुक्त हो गया था। बौद्ध धर्म के संन्यासी हरिद्रा के रंगे वस्त्र पहनते हैं। इस धर्म की चार शाखाएं हैं।

गौतम आश्रम—'रामायण' (आदि० ४८/१५-१६) में इस आश्रम का विशेष उल्लेख हुआ है। देवताओं द्वारा समर्पित इस पवित्र स्थल पर महर्षि गौतम ने अहल्या के साथ रहकर कई वर्षों तक तपस्या की थी। महर्षि के शापवश अहल्या पाषाण बन गई थी और महर्षि दुःखित होकर हिमालय पर चले गए थे। सीता स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिए जनकपुर जाते समय राम इस आश्रम में आए थे और उन्होंने अहल्या का उद्धार किया था। यह आश्रम जनकपुर के समीप था। कुछ लोगों ने वर्तमान गोंडा से उसका समीकरण किया है।

गौरी शंकर—नेपाल-तिब्बत सीमा पर अवस्थित यह हिम-शिखर विश्व का सर्वोच्च पर्वतशिखर माना जाता है। इसकी ऊंचाई २९,००२ फुट है। यह विविध नामों से कहा जाता है। माउंट एवरेस्ट के नाम से उसकी अधिक प्रसिद्धि है। १९५३ ई० में हिलेरी और तेनजिंग इस शिखर पर पहुंचे थे।

ग्वाल—ये कवि मथुरा के रहने वाले थे और सन् १८१५ ई० में विद्यमान थे। इनमें साहित्य-संबंधी योग्यता उच्च श्रेणी की थी। इनके बनाए ग्रंथ ये हैं: (१) 'साहित्यभूषण', (२) 'साहित्यदर्पण', (३) भक्तिभाव', (४) श्रृंगारदोहा', (५) 'श्रृंगारकवित्त', (६) 'नखसिख', (७) 'गोपीपचीसी', (८) 'जमुनालहरी'। ये देवीदत्त और पद्माकर के प्रतिद्वंद्वी थे।

घ

घटकर्पर—महाराज विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में एक घटकर्पर भी थे। इन्होंने २२ श्लोक का एक काव्य बनाया है, जिसमें यमकों की विशेषता है। सुनते हैं जब इन्होंने प्रतिज्ञा की कि यदि कोई दूसरा कवि यमक में मुझे जीत ले तो मैं उसके यहां पानी भरूं। तब कविशिरोमणि कालिदास ने 'नलोदय' काव्य बनाकर यमक में इन्हें परास्त किया। 'काव्य-संग्रह' में 'घटकर्पर' काव्य और 'नलोदय' दोनों छपे हैं। इन ग्रंथों को देखने से इतना तो अवश्य मालूम पड़ता है कि घटकर्पर कालिदास की तरह कठिन और गूढ़ कूट से भरा यमक लिखने नहीं बैठे थे। इनका बनाया 'नीतिसार' नामक एक और ग्रंथ भी है, जिसके देखने से इनकी कवित्व-शक्ति भली भांति प्रकट होती है। विक्रमादित्य के सभासद् होने से, समय भी खृष्टीय छठी सदी निश्चित होता है।

बहुत लोग कहते हैं कि 'राक्षस' काव्य भी इन्हींका बनाया है। 'राक्षस' काव्य में २२ श्लोक हैं। इसमें अधिक कूट और यमक हैं। इस कारण इसका नाम राक्षस काव्य पड़ा है।

घटोत्कच—द्वितीय पांडव भीम के पुत्र का नाम। हिडंबा राक्षसी के गर्भ से यह जन्मा था। महाभारत के युद्ध में यह पांडवों की ओर से लड़ा था। रात्रि को इसने कर्ण के साथ बड़ी भीषण लड़ाई की थी। बहुत कौरव योद्धाओं का इसने वध किया था। द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा आदि वीर कौरव सेना का नाश देखकर, चिंतित हो गए थे। अंत में कर्ण ने इन्द्र से जो शक्ति पाकर अर्जुन का वध करने के लिए रख छोड़ी थी, उसीसे कौरव सेना की रक्षा के लिए घटोत्कच को मारा। यह देख श्रीकृष्ण बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा—अब कर्ण को बिना परिश्रम ही अर्जुन मार सकते हैं। अब से हम लोग कर्ण को मरा हुआ ही समझते हैं। (महाभारत)

घण्ट—'स्कंदपुराण' (१-२-७) की एक कथा में कहा गया है कि इस वसिष्ठ कुलोत्पन्न ब्राह्मण ने सौ वर्ष तक बिल्वदल दान से शंकर की अर्चना की। शंकर के प्रसन्न होने पर इसने देवल ऋषि की पौत्री को पत्नी-रूप में वरण करने की इच्छा प्रकट की। किंतु इसकी कुरूपता के कारण कन्या ने इसे वरण करना स्वीकार नहीं किया। इसपर घंट ने उसका अपहरण कर लिया और गंधर्व विवाह कर उसे अपनी पत्नी बना लिया। देवल ऋषि ने पहले तो इसे निशाचर होने का शाप दिया; किंतु बाद में उलूक होने तथा इंद्र-धुम्न की सहायता करने पर मुक्त होने का उश्शाप दिया।

घण्टाकर्ण—(१) शिव के एक अनुचर का नाम। यह मंगल का पुत्र था और मेधा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। इसका दूसरा नाम घंटेश्वर था। यह शाप द्वारा मनुष्य के रूप में उज्जयिनी नगरी में उत्पन्न हुआ था। उसकी इच्छा थी कि विक्रमादित्य की सभा के नवरत्न पंडितों को परास्त करूं। इसके लिए वह शिव की आराधना करने लगा। प्रसन्न होकर महा-देव वर देने के लिए उपस्थित हुए। उसकी प्रार्थना सुनकर महादेव बोले—कालिदास को छोड़ और सबको तुम परास्त कर सकोगे। घंटाकर्ण ने कालिदास को भी पराजय करने की इच्छा प्रकट की; परंतु शिव ने वैसा वर नहीं दिया। इससे अप्रसन्न होकर घंटा-कर्ण ने प्रतिज्ञा की कि अब से शिव का नाम न लूंगा, परंतु वह तो भी शिव का भक्त था। वह उज्जयिनी के पंडितों को जीतने के लिए चल पड़ा। उज्जयिनी के पंडितों को घंटाकर्ण की सब बातें मालूम हो चुकी थीं। शास्त्रार्थ में कालिदास के अतिरिक्त सब पंडित परास्त हो गए। अंत में कालिदास के साथ शास्त्रार्थ प्रारंभ हुआ। कालिदास ने कहा कि यदि बड़े छंदों में घंटाकर्ण शिव की स्तुति बना दे तो मैं अपनी परा-जय मान लूं। कालिदास ने सोचा था कि जो मनुष्य शिव का नाम नहीं उच्चारण करता, वह शिव की स्तुति क्यों बनाने लगा, अतएव वह स्वयं परास्त हो जाएगा। परंतु घंटाकर्ण अचल शिवभक्त था। वह विशेष कारणों से शिव का नाम नहीं लेता था। घंटा-कर्ण ने शिवनाम के बिना ही, बड़े छंदों में शिव की

स्तुति बनाकर, विक्रमादित्य और उनके सभा-पंडितों को विस्मित कर दिया। घंटाकर्ण शाप से मुक्त हो गया। उसकी अचला भक्ति से शिवजी प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे अपना अनुचर बना लिया।

(२) हरिवंश में भी एक घंटाकर्ण का उल्लेख हुआ है। यह विष्णु का द्वेषी था। विष्णु का नाम किसी प्रकार सुनायी न पड़े इसलिए यह अपने कानों में घंटे लटकाए रखता था। इसी कारण इसका नाम घंटाकर्ण हुआ था। श्रीकृष्ण द्वारका की रक्षा का भार यदुवंशियों पर छोड़कर शिव से पुत्र-प्राप्ति का वर पाने के लिए बदरिकाश्रम जा रहे थे। उस समय घंटाकर्ण नामक पिशाच उनका साथी हो गया। घंटाकर्ण ने महादेव से मुक्ति की प्रार्थना की। महादेव ने उसे बदरिकाश्रम जाकर नारायण के आश्रम में विष्णु की आराधना करने के लिए कहा। घंटाकर्ण का वहीं विष्णु से साक्षात्कार हो गया। उसने श्रीकृष्ण की स्तुति की। उससे प्रसन्न होकर भगवान कृष्ण ने उसे मुक्ति दी। (हरिवंश)

घनश्याम सुकुल—ये असनी जिला फतहपुर के रहने वाले थे और इनका जन्म सन् १५७८ ई० में हुआ था। ये रीवां नरेश के दरबारी थे।

घनानन्द—रीतिकालीन कवि घनानंद के संबंध में किवदंतियों पर आधारित बिखरी हुई सामग्री उपलब्ध होती है। रघुराजसिंह जू देव के 'भक्तमाल' और राधाचरण गोस्वामी के 'छप्पय' में इसी प्रकार की सामग्री का संकलन किया गया है। इतिहासकारों ने इनके जन्मकाल को १६५८ से १७८९ ई० की बिभिन्न तिथियों में निर्धारित किया है। ये जाति के कायस्थ और बहादुरशाह मीर के मुंशी थे। इनका जन्म बुलंदशहर जिले में हुआ था। जीवन से विरक्त होकर ये मथुरा-वृंदावन चले आए थे। कहा जाता है कि वेश्या सुजान से इनका घनिष्ठ प्रेम-संबंध था। मुहम्मदशाह के दरबार में रहते हुए इस दरबारी नर्तकी से उनका प्रेम हो गया था। उसीके प्रेम में कवि ने स्वयं को सर्मपित कर दिया था और उसीमें इन्होंने भगवान के विभिन्न रूपों के दर्शन किए। उसीको लक्ष्य करके इन्होंने कृष्णभक्ति संबंधी पदों की रचना की। इनकी भक्ति सखी-भाव की है।

हिंदी में आनंदघन, घन आनंद, आनंद और घनानंद के नाम से अनेक रचनाएं उपलब्ध हैं। इन्होंने अपने पदों में इस प्रकार के अनेक प्रयोग किए हैं। आधुनिक समीक्षाकार विद्वानों का अभिमत है कि इनका वास्तविक नाम आनंदघन और उपनाम घनानंद था। इनकी रचनाएं मुक्तक और निबंध दोनों रूपों में प्राप्त होती है। 'घनानंद ग्रंथावली' में इनके नाम से ३६ रचनाएं संकलित की गई है।

इतिहासकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन्हें रोमांटिक धारा के श्रेष्ठ कवि स्वीकार किया है और फारसी काव्य से प्रभावित होने पर भी इनके भाषा-प्रयोग की सुसंगति की प्रशंसा की है। रीतिकालीन काव्य में इनकी मुक्त काव्यधारा की सराहना की है। इनके अंतकाल की भी एक कहानी है। कहा जाता है कि एक बार मथुरा में दिल्ली के किसी शाहजादा को जूतों की माला पहनाकर अपमानित किया गया था। उसीने दिल्ली से सेना बुलाकर मथुरा के नागरिकों का 'कत्लेआम' कराया था। कत्लेआम की इस घटना को कुछ विद्वानों ने नादिर-शाह के ११ मार्च, १७३९ ई० के आक्रमण से और कुछ विद्वानों ने अब्दाली दुर्रानी के १६६० ई० के दूसरे आक्रमण से जोड़ा है। इसी कत्लेआम के समय घनानंद का अंत हुआ। (विश्वनाथप्रसाद मिश्र घनानंद ग्रंथावली, ग्रियर्सन—माडर्न वर्नाक्यूलर लिट-रेचर ऑफ हिंदुस्तान)।

घाघ—ये कनौज के रहने वाले थे और सन् १६९६ ई० में उत्पन्न हुए थे। इनकी कहावतें उत्तरी भारत के किसानों के मुखों में विराजती हैं और ग्रियरसन साहब ने 'विहार येजंट लाइफ' नामक पुस्तक में इनकी कहावतें संगृहीत भी की हैं। इन्हींके ढंग से भड्डर और घाक भी थे, परंतु वे इनके समान इतने प्रसिद्ध नहीं थे।

घृतपृष्ठ—राजा प्रियव्रत के दश पुत्रों में से एक पुत्र का नाम। राजा प्रियव्रत ने अपने राज्य को सात भागों में बांटकर अपने सात लड़कों को एक-एक भाग दे दिया था। इनके तीन पुत्र संन्यासी हो गए थे। अतएव सात ही पुत्रों में इन्हें अपना राज्य बांटना पड़ा। घृतपृष्ठ को क्रौंच द्वीप का राज्य मिला था। (भागवत)

घृतस्मद्—सुहोत्र के पुत्र और शौनक के पिता। जो अग्निवंशियों के आदिपुरुष थे।

घृताची—स्वर्ग की एक अप्सरा। इसको देखने से वेदव्यास के मन में काम उत्पन्न हुआ था। जिससे शुकदेव उत्पन्न हुए। महर्षि च्यवन के पुत्र प्रमिति ने इसके

गर्भ से रुरु नामक पुत्र उत्पन्न किया था। (महाभारत)

महोदय (कनौज) के राजा कुशनाभ ने इसके गर्भ से सौ कन्याएं उत्पन्न की थीं। (देखो कनौज)

गंगाद्वार के पास भरद्वाज का आश्रम था। एक समय भरद्वाज गंगा में घृताची को स्नान करते देखकर उसपर मोहित हो गए। वे यहां तक मोहित हुए कि उनका वीर्य-पात हो गया। मुनि ने वीर्य को द्रोणि में (एक प्रकार के पात्र में) रख दिया। उसीसे प्रसिद्ध वीराचार्य द्रोण का जन्म हुआ था।

घृतेय—एक राजकुमार का नाम। ये रन्द्राश्व के पुत्र थे।

घोषवसु—एक भविष्य राजा। ये शुंगवंशी पुलिंदक के पुत्र होंगे।

घोषा—सूक्तद्रष्टी महिला ऋषि; कक्षीवत् की पुत्री; कुष्ठ रोग से ग्रसित होने के कारण इसे साठ वर्ष तक पितृगृह में अविवाहिता रहना पड़ा था। अश्विंयों की कृपा से यह कुष्ठ-मुक्त हुई और तब इसका विवाह हुआ। इसके पति का नाम ज्ञात नहीं है। घोष तथा सुहस्त्य नाम से इसके दो पुत्र हुए। (ऋग्वेद)

घोषिताराम—यह बिहार कोशांबी के दक्षिण-पूर्व में स्थित था, जिसे किसी घोषित नामक श्रेष्ठी ने बनवाया था। कौशांबी के दस बिहारों में इसकी गणना थी। इस बिहार के निकट अशोक ने २०० फुट ऊंचा एक स्तूप बनवाया था।

च

चकोरसातकर्णि—एक भविष्य राजा का नाम। ये कण्ववंश में सुंदर सातकर्णि के पुत्र होंगे।

चक्रतीर्थ—तीर्थविशेष। कुरुक्षेत्र के जिस तीर्थ को दधीचि-तीर्थ कहते हैं, उसीका नाम चक्रतीर्थ है। भीष्म-पितामह को मारने के लिए इसी स्थान पर भगवान् कृष्णचंद्र ने चक्र धारण किया था।

चक्रपाणिदत्त—एक वैद्य का नाम। इन्होंने वैद्यक का एक ग्रंथ बनाया है। इस ग्रंथ का नाम है चक्रदत्त। इनका जन्म ११वीं सदी के प्रारंभ में हुआ था। इनके पिता नारायण कविराज नरपालदेव के रसोइया के दरोगा थे। इन्होंने अपने ग्रंथ में अनेक नई बातों का समावेश करके भारत का कल्याण किया है।

चक्रवर्मा—काश्मीर के एक राजा का नाम। इनके पिता का नाम पंगु था। उस समय काश्मीर में तंत्री और पदातियों का प्राधान्य था। वे जिसको चाहते उसी को राजा बना देते और जिसको जब राज्य से उतारना चाहते, उसी समय उसको राज्य से उतार देते। राजा पंगु के परलोक गमन करने पर शिशु चक्रवर्मा का काश्मीर के सिंहासन पर अभिषेक हुआ। शिशु चक्रवर्मा का पालन कुछ दिनों तक उसकी माता बप्पट देवी के अधीन और पीछे उसकी देखरेख, उसकी पितामही करती थी। नवें वर्ष में मंत्रियों ने चक्रवर्मा को राजच्युत कर दिया। मंत्रियों ने चक्रवर्मा को राजच्युत करके शंकरवर्मा को राजा बना दिया। परंतु बेचारा शंकरवर्मा मंत्रियों को मुंह-मांगा धन नहीं दे सकता था, इस कारण इसको भी राजच्युत होना पड़ा। शंकरवर्मा के बाद मंत्रियों ने पार्थ को राजा बनाया। पुनः किसी कारणवश स्वार्थी मंत्री पार्थ से भी अप्रसन्न हो गए। चक्रवर्मा उचित अवसर जानकर मंत्रियों से मिला और उनको अधिक धन देना स्वीकार किया। पुनः चक्रवर्मा राजा तो हो गए, परंतु उन्होंने अपने शत्रुओं को राज्य के बड़े-बड़े कामों पर भर्ती किया। परंतु मंत्रियों को उचित मूल्य न देने के कारण वह स्वयं राज्य छोड़कर रात को भाग गया।

चक्रवर्मा राज्यभ्रष्ट होकर डामरों के राजा से मिला और उससे सहायता मांगी। डामराधिपति ने कुछ शर्त कराकर सहायता देना स्वीकार किया। डामर और मंत्रियों में युद्ध हुआ। मंत्री मारे गए। चक्रवर्मा राजा हुए। राजा होने पर वह महाभिमानी हो गया, अपनी प्रशंसा चाहने लगा। अतएव धूर्त गणिका आदि इसको ठगने लगे। डामरों पर भी

इसने अत्याचार किए थे, इस कारण वह मारा गया। (राजतरंगिणी)

चक्राङ्कापुरी—एक प्राचीन राज्य का नाम। रामायण में लिखा है कि रामचंद्र जी के यज्ञ के समय जो यज्ञ घोड़ा छोड़ा गया था, वह घूमता-फिरता चक्रांकापुरी में चला गया। उस समय इस पुरी के राजा थे सुबाहु। सुबाहु के पुत्र दमन ने यज्ञाश्व को अपने यहां बांध रखा। शत्रुघ्न और दमन दोनों में युद्ध होने लगा। शत्रुघ्न की सेना कट-कटकर गिरने लगी। अंत में भरतपुत्र पुष्कर ने दमन को परास्त किया। दमन के परास्त होने पर राजा सुबाहु और उनके छोटे भाई चित्रांग लड़ने लगे। कहते हैं कि रामचंद्र जी ने एक दिन स्वप्न में सुबाहु को दर्शन दिया। इससे उसके हृदय में भक्ति उत्पन्न हुई और उसने युद्ध करना छोड़ दिया।

चक्रिक—एक व्याध; यह माता, पिता और विष्णु का परम भक्त था। एक बार विष्णु को फलार्पण करने करने से पूर्व यह फल चख रहा था कि फल इसके गले में अटक गया। उस फल को विष्णु को अर्पण करने हेतु इसने स्वयं ही अपनी गर्दन को काट डाला। इसकी यह अगाध भक्ति देखकर विष्णु ने इसे दर्शन दिए और पुनरुज्जीवित किया। द्वारका-क्षेत्र में शरीर त्यागकर मुक्त हुआ। (पद्मपुराण)

चण्ड—(१) प्रसिद्ध शुंभासुर का प्रधान सेनापति। इसके छोटे भाई का नाम मुंड था। चंड और मुंड दोनों ही भगवती के हाथों मारे गए थे। चंड के मारने से भगवती का नाम चंडी या चंडिका पड़ा था।

(२) एक व्याध। शिवरात्रि के दिन शिवलिंग पर बिल्वपत्रदान के कारण यह व्याधयोनि से मुक्त हुआ। (पद्मपुराण)

(३) मेवाड़ के राणा लाक्षा का पुत्र। ये राणा चंड के नाम से राजपूताने में प्रसिद्ध हैं। इनका स्वार्थ-त्याग राजपूताने के इतिहास में प्रसिद्ध है। मारवाड़ के राजा रणमल्ल ने अपनी कन्या का चंड से विवाह करने की इच्छा से मेवाड़ के राणा के पास अपने पुरोहित द्वारा टीका भेजा था। राणा ने विवाह स्वीकार किया। उस समय चंड राज्यसभा में उपस्थित नहीं थे। राणा लाक्षा ने चंड को राज्यसभा में बुलवाया और उनके आने तक मारवाड़ के पुरोहित को ठहरने के लिए कहा। राणा लाक्षा का हंसोड़ स्वभाव था। इसी कारण उन्होंने पुरोहित जी से कहा—इस पकी दाढ़ी वाले बूढ़े के लिए तो आप लोग टीका नहीं ला सकते? इससे सभा में उपस्थित सभी लोग हंस पड़े। सभा के लोग यही देख रहे थे कि चंड आएं और दूत को विदा किया जाए। थोड़ी देर के बाद चंड भी आ गए। सभा में आकर उन्होंने पिता की बातें सुन लीं जो पिता ने हंसी में कही थीं। वह सोचने लगे, हंसी ही में सही, परंतु पिता ने जिसे मूहूर्तमात्र के लिए भी अपनी समझा, अब उसके साथ मैं विवाह कैसे कर सकता हूं। यह सोचकर, चंड ने विवाह करने में अपनी असहमति बताई। पिता ने बहुत समझाया, धमकाया परंतु चंड अपनी प्रतिज्ञा से नहीं टले। उन्होंने किसी प्रकार भी विवाह करना स्वीकार नहीं किया। राणा लाक्षा मारवाड़राज का अपमान समझकर बड़े दुःखी हुए। राणा चंड पर बड़े विरक्त हुए और रणमल्ल का अपमान न हो, इस कारण उन्होंने स्वयं उस कन्या से विवाह किया। भवितव्यता को कौन मिटा सकता है! बारह वर्ष की कन्या पचास वर्ष के वृद्ध को ब्याही गयी। उसके गर्भ से मुकुल नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। मुकुल की अवस्था पांच वर्ष की है, राणा लाक्षा युद्ध करने के लिए गया जाने वाले हैं। युद्ध में जाने के समय राणा ने चंड से कहा, "यदि मैं युद्ध से न लौटूं, तो मुकुल की जीविका का क्या प्रबंध होगा?" चंड ने उत्तर दिया, "चित्तौड़ का राज्य।" इस उत्तर में पिता को किसी प्रकार का संदेह न रहे, इस कारण चंड ने पिता के जाने के पहले ही मुकुल का राज्याभिषेक करना स्थिर किया। चंड का दृढ़ संकल्प और इतना बड़ा त्याग देख लोगों की बुद्धि चकरा गयी। चंड ने मुकुल का अभिषेक करके उसके सामने प्रतिज्ञा की कि मैं तुम्हारे विश्वासी भृत्य के समान रहूंगा। इस स्वार्थत्याग के बदले चंड पहली श्रेणी के सरदार बनाए गए और यह निश्चित हुआ कि आज से यदि किसीको भूमिदान दिया जाए तो महाराणा के हस्ताक्षर के ऊपर चंड के भाले का चिह्न रहेगा। चंड ने मेवाड़ की उन्नति के लिए तन और मन से परिश्रम किया था। इसी प्रकार कुछ दिन बीत गए। राजमाता को चंड की क्षमता देखकर ईर्ष्या हुई। बिमाता का भाव समझने में चंड को देर न लगी। उन्होंने विमाता की बातें समझकर मेवाड़ का भार उनको दे दिया और वे स्वयं चित्तौड़ छोड़कर मांडू राज्य में चले गए। वहां के राजा इनके स्वार्थ-त्याग की बात पहले से ही जानते

थे। उन्होंने चंड को एक बहुत बड़ी जागीर देकर अपने राज्य में रखा। जाने के समय चंड ने अपनी सौतेली माता से कहा था—"देखना, सिसौदिया कुल का गौरव नष्ट न होने पाए।" जोधपुर के राठौर मेवाड़ राज्य में घुसने लगे। वे स्वार्थी तथा लोभी थे। शीघ्र ही मेवाड़ राज्य के शासन में गड़बड़ी होने लगी। चंड के जाने पर मुकुल के नाना रणमल्ल चंड का काम करने लगे। रणमल्ल ने धीरे-धीरे राज का कारोबार अपने हाथ में ले लिया। नरपिशाच रणमल्ल अपने दौहित्र को मारकर, चित्तौड़ का सिंहासन अपनाने के लिए षड्यंत्र करने लगा। एक बुढ़िया धाय ने मुकुल की माता से ये बातें कहीं। उस समय राजमाता के कान खड़े हुए। उन्होंने संसार में चंड के अतिरिक्त और किसीको अपना रक्षक नहीं समझा। चंड के पास राजमाता का दूत गया। चंड के कौशल और साहस से रणमल्ल तथा उसके साथी मारे गए। रणमल्ल के पुत्र जोधाजी ने भागकर आत्मरक्षा की। चंड के दो पुत्र थे, परंतु दोनों रणमल्ल के पुत्र जोधाजी के साथ युद्ध करते हुए मारे गए।

(टाड्स राजस्थान)

चण्डी—दुर्गा का दूसरा नाम। चंड दैत्य का वध करने के कारण दुर्गा का नाम चंडी हुआ था।

चण्डीदत्त—इनका जन्म सन् १८४१ ई० में हुआ था और ये अवधेश महाराज मानसिंह जी के दरबारी थे।

चण्डीदास—विख्यात पदावलीप्रणेता। सन् १४१७ ई० में ये उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम दुर्गादास था। वे किसी मंदिर के पुजारी थे। उनकी मृत्यु होने पर चंडीदास अपने पिता के स्थान पर नियुक्त किए गए। उसी मंदिर की किसी सेविका के साथ इनका प्रणय था, इसी कारण इन्होंने आजीवन अपना विवाह नहीं किया। इनकी प्रणयिनी जाति की धोबिन थी। इससे वहां के लोगों ने इन्हें समाजच्युत कर दिया। पुनः गांव के एक भले आदमी ने इन्हें धार्मिक समझकर अपने प्रयत्न से समाज में इनका प्रवेश करा दिया। इनके वासस्थान के विषय में बड़ी गड़बड़ी व्याप्त है। बंगाली कहते हैं कि चंडीदास बंगाली थे, और बिहारी कहते हैं कि ये मैथिल थे। यद्यपि इनकी रचना की भाषा मैथिली है, तथापि बंगाली कहते हैं कि पुरानी बंगला वैसी ही थी। जो हो, परंतु बिहारियों का कहना प्रामाणिक है, इसमें संदेह नहीं। यद्यपि चंडीदास को शिक्षा नियमित रूप से नहीं दी गई थी, तथापि इनकी रचनाशैली मनोहर है। सन् १४७७ ई० में इनका शरीरांत हुआ था।

चतुरबिहारी—ये ब्रजवासी थे और सन् १५४८ ई० में उत्पन्न हुए थे।

चतुर्भुजदास—(१) हिंदी साहित्य के इतिहास में इस नाम के दो कवियों का उल्लेख हुआ है। एक का संबंध अष्टछाप से था और दूसरे का राधावल्लभ संप्रदाय से। अष्टछाप के भक्तकवि चतुर्भुजदास का उल्लेख 'दो सौ वैष्णवों की वार्ता' और 'अष्टसखान की वार्ता' में हुआ है। इनका जन्म १५३० ई० में निर्धारित किया गया है। १५४० ई० में इन्होंने पुष्टिमार्ग की दीक्षा ग्रहण की और अपनी ललित रचनाओं के कारण अष्टछाप के कवियों में अपना स्थान बनाया। अष्टछाप के कवि कुंभनदास इनके पिता थे। गोवर्द्धन के निकट जमुनावतो नामक गांव में इनका जन्म हुआ था। इनकी भक्ति माधुर्यभाव की थी। इनकी रचनाएं मुक्तक रूप में उपलब्ध होती हैं। इनके तीन संग्रह कांकरोली विद्या भवन से प्रकाशित हुए हैं—'चतुर्भुज कीर्तन संग्रह', 'कीर्तनावली' और 'दानलीला'। इनमें श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर गोपी-विरह तक की कथा के मार्मिक संदर्भ निबद्ध हैं।

(२) ये राधावल्लभीय संप्रदाय के प्रसिद्ध भक्तकवि थे। इनका उल्लेख नाभादास के 'भक्तमाल' और ध्रुवदास की 'भक्तनामावली' में हुआ है। इन दोनों ग्रंथों में उल्लिखित इनके जन्मवृत्त के अनुसार ये गोंडवाना प्रदेश, जबलपुर के समीप गढ़ा नामक गांव के निवासी थे। ये सेवकजी दामोदरदास के समकालीन थे। इस आधार पर इनका जन्म १५२८ ई० (१५८५ वि०) के लगभग निर्धारित किया गया है। इनकी ब्रजभाषा पर बैसवाड़ी और बुंदेली का प्रभाव है। इनकी रचनाओं से ज्ञात होता है कि संस्कृत और हिंदी पर इनका समान अधिकार था। इनके बारह ग्रंथ उपलब्ध हैं, जिनका प्रकाशन 'द्वादश यश' के नाम से एकसाथ और पृथक्-पृथक् भी हुआ है। इनकी रचनाओं का काव्यत्व की दृष्टि से नहीं, अपितु इनके अगाध भक्तिभाव की दृष्टि से महत्त्व है।

चतुर्भुज मिश्र—प्राचीन संस्कृत के एक पंडित। इन्होंने महाभारत की एक टीका लिखी थी। परंतु इनकी टीका इस समय उपलब्ध है कि नहीं इस विषय में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

चतुर्मुख—ब्रह्मा का नामांतर; कमल-पुष्प से इनका जन्म हुआ। कमल पुष्प द्वारा चारो दिशाओं का अवलोकन करने के कारण इन्हें चार मुख प्राप्त हुए और इसी कारण इन्हें इस नाम से कहा गया।

चन्दकुमारी—पंजाबकेसरी रणजीतसिंह की पुत्रवधू और खड्गसिंह की पत्नी। रणजीतसिंह ने मरने के समय मंत्री ध्यानसिंह के हाथ अपने पुत्र को सौंपा था। परंतु विश्वासघाती मंत्री ने राज्यलोभ से, प्रभु की आज्ञा की अवहेलना करके, खड्गसिंह और उनके पुत्र निहालसिंह को मरवा डाला। रानी चंदकुमारी ने इस अपराध के कारण ध्यानसिंह को निकाल दिया और उत्तमसिंह को प्रधानमंत्री बनाया। मंत्री ध्यानसिंह ने सेनापति गुलाबसिंह की सहायता से चंदकुमारी को राज्य से पृथक् कर दिया और रणजीतसिंह की एक रखेलिन (उपपत्नी) के पुत्र शेरसिंह को राजा बना दिया। रानी चंदकुमारी शेरसिंह से अत्यंत घृणा करती थी। राज्यासन पर बैठकर शेरसिंह ने चंदकुमारी को ब्याहना चाहा, परंतु रानी ने साफ अस्वीकार कर दिया। जब चंदकुमारी शेरसिंह से राजी नहीं हुई, तब उसने दासियों को घूस देकर उसको मरवा डाला। चन्दकुमारी बुद्धिमती स्त्री थी। यद्यपि उसका जीवन विषादमय था, तथापि उसका नैतिक बल स्वच्छ और दृढ़ था।

चन्दनराय—ये नाहिल या माहिल (पुंवाया) जिला शाहजहांपुर के रहने वाले थे। ये सन् १७७३ ई० में विद्यमान थे और गोंडा के राजा के दरबारी थे। इन्हीं राजा के नाम पर चंदनराय ने 'केसरीप्रकाश' नामक ग्रंथ लिखा था। इन्होंने बहुतसे हिंदी के ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें प्रसिद्ध ये हैं : 'श्रृंगाररस', 'कल्लोलतरंगिणी', काव्याभरण', 'चंदनसतसई', 'पथिकबोध'।

चन्दसखी—ये कवयित्री व्रज की थीं और सन् १५८१ ई० में इनका जन्म हुआ था। इनके बनाए कृष्ण-लीला संबंधी पद अब तक गाए जाते हैं। कोई इन्हें पुरुष-कवि बताते हैं।

चन्द सौदागर—इनकी कथा पद्मपुराण में लिखी है। इनके पुत्र का नाम लखिन्देव और पुत्रवधू का नाम बेहुला था। इसके छः पुत्र पद्मा के कोप से मर गए। अंत में लखिन्देव उत्पन्न हुआ। पद्मा मनसा सर्पों की अधिष्ठात्री देवी हैं। उनकी इच्छा थी कि पृथ्वी में हमारा माहात्म्य प्रचारित हो और लोग हमारी पूजा किया करें। चंद एक प्रसिद्ध सौदागर और धनी थे। बे जाति के बनिये थे। चंद सौदागर की प्रतिकूलता के कारण मनसा का माहात्म्य प्रसिद्ध नहीं होने पाता था। अतएव मनसा देवी उनपर क्रुद्ध हो गईं। उसके छः पुत्रों को मनसा देवी ने सांपों से मरवा डाला था। व्यवसाय में भी मनसा देवी ने चंद की बहुत हानि की। उसके सात जहाज मनसा के क्रोध से समुद्र में डूब गए। किसी प्रकार उसकी प्राणरक्षा हुई। मनसा के इतना कष्ट देने पर भी, तेजस्वी चंद सौदागर अपनी प्रतिज्ञा से विचलित न हुआ। उसका एक पुत्र लखिन्देव भी विवाह के दिन एक सांप के डस लेने से मर गया। पुत्रवधू बेहुला भी अपने पति को लेकर नदी में पड़ गई। अनेक कष्ट उठाकर वह स्वर्ग में इंद्र की सभा में पहुंची। बेहुला ने अपने गुणों से स्वामी और उसके भाइयों को जीवित किया। बेहुला मनसा की भक्ति करती थी। मनसा की कृपा से बेहुला का सौभाग्य लौट आया। बेहुला के कहने पर चंद सौदागर का भी मन फिरा, उन्होंने भी मनसा देवी की पूजा करना आरंभ किया। मनसा देवी की पूजा प्रचारित हुई। मनसा प्रसन्न हुई, और चंद सौदागर के दिन लौट आए। (पद्मपुराण)

चन्द्र—लक्ष्मी का भाई। समुद्र मथने से अमृत, पारिजात, लक्ष्मी, ऐरावत, उच्चैश्रवा आदि के साथ इसकी उत्पत्ति हुई है। यह देवताओं में गिना जाता है। अमृतपान के समय देवताओं की पंक्ति में एक दैत्य भी बैठा था। चंद्र ने उसे देखकर विष्णु को पहचनवा दिया। विष्णु ने चक्र से उसका सिर तो काट लिया, परंतु वह असुर मरा नहीं, क्योंकि वह अमृत पी चुका था। मस्तकरूपी राहु उसी क्रोध से चंद्र का ग्रास किया करता है। (महाभारत)

काशीखंड में लिखा है कि ब्रह्मा के मानस पुत्र अत्रि से चंद्रमा की उत्पत्ति हुई थी। महर्षि अत्रि ने तीन हजार दिव्य वर्ष तक तपस्या की थी, उसी समय उनका वीर्य ही सोमरूप बन गया। ब्रह्मा ने उसको लेकर अपने रथ में रख लिया। उस रथ पर बैठकर, सोम ने इक्कीस बार पृथ्वी की प्रदक्षिणा की। उसी भ्रमण के समय जो वीर्य पृथ्वी पर गिरा, उससे अनेक औषधियां उत्पन्न हुईं, जिनसे जगत् की रक्षा होती है। महादेब की कृपा से चंद्र को एक राज्य मिला था, जिसका नाम चंद्रलोक है। दक्ष की जो नव नक्षत्र कन्याएं थीं, उनसे चंद्र का ब्याह हुआ था। चंद्र की अन्य स्त्री का नाम रोहिणी है। रोहिणी से चंद्र का

अधिक प्रेम रहता है। इस कारण इनकी अन्य स्त्रियों ने चंद्रमा को दुतकारा था। चंद्र अप्रसन्न हुए और उन्होंने कहा, तुम लोगों ने कठोर वाक्य कहे हैं, अतएव संसार में तुम सब कठोर समझी जाओगी और जिस तिथि में तुम्हारा भोग होगा, वह तिथि यात्रा के लिए अनुपयुक्त होगी। वे चंद्र के इस शाप से रुष्ट हो गईं और अपने पिता दक्ष के पास जाकर चंद्र के इस दुर्व्यवहार के बारे में इस प्रकार कहा—"चंद्रमा रोहिणी पर अधिक आसक्त हैं, और हम लोगों ने उनको इस दुष्कर्म से रोकना चाहा, इससे रुष्ट होकर हम लोगों को उन्होंने शाप दिया है।" ये सारी बातें दक्ष से उन लोगों ने कहीं। दक्ष ने चंद्रमा के समीप जाकर सब स्त्रियों पर समान व्यवहार रखने के लिए उनको उपदेश दिया। चंद्रमा ने उस समय तो मान लिया, परंतु थोड़े दिन बीतने पर वह पुनः रोहिणी को अधिक चाहने लगे। इस अवस्था में और स्त्रियों पर उनका प्रेम घटना स्वाभाविक ही था। अब की बार प्रेम की न्यूनता तिरस्कार के रूप में परिणत हुई। पुनः अपने पिता के पास जाकर उन लोगों ने चंद्र के दुर्व्यवहार कहे, और यह भी कहा कि हम लोग अपने पति के पास जाना नहीं चाहतीं। यदि आप आज्ञा दें तो हम लोग तपस्विनी बनकर अपना समय बिताएं। चंद्रमा की दुष्टता से दक्ष के मन में बड़ा क्रोध उपजा। उस समय दक्ष की नाक के अग्रभाग से स्त्री-संभोगलोलुप यक्ष्मा की उत्पत्ति हुई। दक्ष की आज्ञा से यक्ष्मा चंद्र के शरीर में प्रविष्ट हुआ। यक्ष्मा रोग के कारण चंद्रमा दिनों-दिन क्षीण होने लगे। चंद्रमा की यह दशा देख देवताओं ने उनपर कृपा करने के लिए दक्ष से कहा। दक्ष ने उत्तर दिया कि यदि चंद्रमा उन सब स्त्रियों से समान व्यवहार रखें, तो दूसरे पक्ष में उनकी कला की वृद्धि हो जाएगी। तभी से चंद्रमा की कला एक पक्ष में क्षीण और दूसरे पक्ष में परिवृद्ध होती है।

एक बार चंद्रमा ने देवगुरु बृहस्पति की स्त्री पर मोहित होकर उसे चुरा लिया था। बृहस्पति ने चंद्र के अत्याचार देवताओं से कहे और अपनी स्त्री को लौटा देने के लिए प्रार्थना की। परंतु चंद्रमा ने किसी भी देवता का कहना न सुना। इसपर क्रुद्ध होकर शुक्राचार्य, महादेव और बृहस्पति चंद्रमा से युद्ध करने के लिए उद्यत हुए। बृहस्पति का पुत्र कच शुक्राचार्य का प्रिय शिष्य था, इसी कारण देवगुरु बृहस्पति की विपत्ति में सहायता करना शुक्राचार्य ने अपना कर्तव्य समझा। इस युद्ध से महानर्थ होने की आशंका कर के देवताओं ने ब्रह्मा से इस युद्ध की बातें कहीं। ब्रह्मा स्वयं युद्धक्षेत्र में उपस्थित हुए। शुक्राचार्य और महादेव को युद्ध से हटाकर ब्रह्मा ने बृहस्पति की स्त्री उन्हें दिलवा दी। बृहस्पति की स्त्री का नाम तारा था। उस समय तारा गर्भवती थी। बृहस्पति के कहने से तारा ने गर्भ त्याग किया। ब्रह्मा ने पूछा—यह गर्भ किसका है? तारा ने जवाब दिया—चंद्रमा का। वह पुत्र चंद्रमा को दे दिया गया जिसका नाम बुध रखा गया। यह बुध चंद्रमा के विपरीत आकाशमंडल में उदित होता है। इसी पाप से चंद्रमा को यक्ष्मा रोग हुआ था। रोग से मुक्त होने के लिए उन्होंने अपने पिता अत्रि से प्रार्थना की। उनकी कृपा से चंद्रमा शापमुक्त हुए और पुनः अपना तेज पा गए।

चन्द्र कवि—इनका जन्म सन् १६६२ ई० में हुआ था। ये भूपाल के बंदन बाबू के दरबारी थे। यह राजगढ़ के नवाब सुलतान पठान के भाई थे। इन्होंने बिहारी की सतसई पर एक टीका कुंडलिया छंद में सुलतान पठान के नाम से लिखी थी।

चन्द्रकेतु—लक्ष्मण के छोटे पुत्र का नाम। रामचंद्र ने इन्हें कारापथ नामक स्थान का राज्य दिया था।

चन्द्रगुप्त—प्राचीन भारत के एक पराक्रमी मौर्य सम्राट्। चंद्रगुप्त का समय निरूपण करना कठिन है। प्रायः ३०० खृष्टाब्द में नंद नामक राजा मगध में राज्य करते थे। इसी राजवंश में सर्वार्थसिद्धि नामक राजा उत्पन्न हुए। कोई-कोई इस सर्वार्थसिद्धि का नाम महानंद बतलाते हैं। उनके मंत्री का नाम राक्षस था। सर्वार्थसिद्धि की दो स्त्रियां थीं। एक का नाम मुरा और दूसरी का नाम सुनंदा था। मुरा के गर्भ से मौर्य नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था और सुनंदा के गर्भ से नव पुत्र उत्पन्न हुए थे। सुनंदा के पुत्र नवनंद कहे जाते थे। राजा सर्वार्थसिद्धि ने अपनी वृद्धावस्था में राज्यभार अपने पुत्रों को देकर और मौर्य को उनका मंत्री बनाकर स्वयं भजन-पूजन करने के लिए अवकाश ग्रहण किया। मंत्री मौर्य के अनेक पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनमें एक का नाम चंद्रगुप्त था। मौर्य के पुत्र बड़े बलवान थे, इस कारण नवनंदों ने मौर्य और उनके पुत्रों को कैद कर लिया। पुनः किसी कारणवश उन्होंने चंद्रगुप्त को कारा से मुक्त कर दिया।

चंद्रगुप्त बलवान, सुंदर और उन्नतिचेता था। उसका हृदय उदार होने के कारण विशाल था। इन्हीं गुणों से लोग उससे बहुत प्रेम करते थे। इससे नवनंदों को ईर्ष्या हुई। वे लोग चंद्रगुप्त का वध करने का अवसर ढूंढ़ने लगे।

चंद्रगुप्त को भी अपने प्राणों की रक्षा की चिंता हुई। किसकी शरण जाने से प्राणरक्षा हो सकती है, वह यह विचारने लगा। एक दिन उसने देखा कि एक ब्राह्मण, जिसके पैर में कुश का कांटा लगा था, कुशों के मूल में मट्ठा डालकर कुशकुल के विनाश करने की चेष्टा में लगा हुआ है। चंद्रगुप्त के पूछने पर मालूम हुआ कि उसका नाम चाणक्य है। चंद्रगुप्त ने सोचा, ऐसे मनुष्यों के आश्रय से अवश्य ही आत्मरक्षा हो सकती है। बहुत विनती कर इस ब्राह्मण को चंद्रगुप्त अपने घर ले गया और एक महोत्सव में किसी प्रकार नवनंद की भोजनशाला में उसका प्रवेश कराकर उसे नंद के आसन पर बैठाया। यह देख नवनंद अत्यंत क्रुद्ध हुए और उन लोगों ने जबरदस्ती उस ब्राह्मण को आसन से उठवा दिया।

चाणक्य ने उसी समय शिखा खोलकर प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं नंदवंश का उच्छेद न कर लूंगा, तब तक शिखाबंधन नहीं करूंगा। चंद्रगुप्त नगर के बाहर जाकर चाणक्य से मिला। दोनों ने मिलकर म्लेच्छाधिप पर्वतराज का आह्वान किया। दोनों में ठहराव हुआ कि जब युद्ध में जय होगा तब आधा राज्य पर्वतराज को मिलेगा। म्लेच्छराज ने सेनासहित नवनंद के राज्य पर आक्रमण किया। नवनंद मारे गए। नंदमंत्री राक्षस ने दूसरा उपाय न देख, सर्वार्थसिद्धि को वन में भेज दिया। चंद्रगुप्त ने राजधानी पर अपना अधिकार जमा लिया। राक्षस ने चंद्रगुप्त का नाश करने के लिए विषकन्या भेजी थी। चंद्रगुप्त ने चाणक्य के कहने से उस कन्या को म्लेच्छराज के यहां भिजवा दिया। उस कन्या से म्लेच्छराज मारा गया।

इसके बाद चाणक्य ने म्लेच्छराज के पुत्र मलयकेतु को प्रतिज्ञात राज्यार्ध ग्रहण करने के लिए बुलाया, परंतु वह डरकर भाग गया। तदनंतर चाणक्य ने कूटनीति से सर्वार्थसिद्धि को मरवा डाला। राक्षस ने मलयकेतु की सहायता से चंद्रगुप्त पर आक्रमण किया था, परंतु चाणक्य ने अपनी नीति से उसे कैद कर लिया। चाणक्य ने राक्षस की बुद्धि की प्रशंसा की और उन्होंने उसे चंद्रगुप्त का मंत्री बनवा दिया।

चाणक्य इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि बुद्धिमान राक्षस को बिना मंत्री बनाए चंद्रगुप्त का निर्विघ्न राज्य करना कठिन है। विशाखदत्त ने इसी घटना को लेकर संस्कृत में 'मुद्राराक्षस' नामक एक उत्तम नाटक लिखा है।

कोई-कोई कहते हैं कि चंद्रगुप्त सर्वार्थसिद्धि के बड़े पुत्र थे। सबसे बड़े होने पर भी दासीपुत्र होने के कारण इनके छोटे भाई इनसे द्वेष रखते थे। सर्वार्थसिद्धि के दो मंत्री थे—राक्षस और शकटार। किसी कारणवश शकटार को राजा ने अपमानित किया, अतएव उसने निश्चित किया कि मैं इस राजकुल का नाश कर डालूंगा। बदला लेने की इच्छा से शकटार ने चाणक्य से मैत्री की और किसी श्राद्ध में राजभवन में ले जाकर नंद के आसन पर उन्हें बैठा दिया। राजा की आज्ञा से नौकरों ने चुटिया पकड़कर चाणय को वहां से निकाल दिया। इससे क्रुद्ध होकर चाणक्य ने भी राजवंश का नाश करने के लिए संकल्प किया।

प्रसिद्ध बौद्धाचार्य बुद्धघोष कहते हैं कि चंद्रगुप्त ने अपने मामा की कन्या को ब्याहा था और उसे ही प्रधान महिषी बनाया था।

चन्द्रपर्वत—अग्निपुराण-वर्णित सूर्यवंशी राजा तारापीड के पुत्र का नाम।

चन्द्रवरदाई भाट—हिंदी के एक कवि। ये सन् ११९५ ई० में विद्यमान थे। ये रणथंभौर के वीसलदेव चौहान के प्राचीन वंश में से थे। ये जब पृथ्वीराज चौहान के दरबार में गए, तब उन्होंने इन्हें अपना सचिव और राजकवि बना लिया। १७वीं सदी के प्रारंभ में मेवाड़ के अमरसिंह ने इनकी कविताओं का संग्रह किया। इनका मुख्य ग्रंथ 'पृथ्वीराज रायसो' है, जिसमें इन्होंने अपने स्वामी की जीवनी का वर्णन किया है। इनका बनाया 'जैचंदप्रकाश' नामक एक और ग्रंथ बताया जाता है, जिसमें कन्नौज के राजा जैचंद का हाल है।

चन्द्रभागा—चंद्रभागा या चनाब का उद्गम हिमालय बताया गया है। ऋग्वैदिक असिक्नी से उसको समीकृत किया गया है।

चन्द्रवक्ता—एक नगरी का नाम, जिसे लक्ष्मणपुत्र चंद्रकेतु ने अपनी राजधानी बनाया था।

चन्द्रवर्मा—चंदेल राजवंश का आदिपुरुष। काशीराज के पुरोहित इंद्रजित की कन्या हेमवती के गर्भ और

चंद्रमा के औरस से इनकी उत्पत्ति हुई थी। कर्णावती नदी के तीर पर ये उत्पन्न हुए थे।

चन्द्रशर्मा—(१) अग्निगोत्र में उत्पन्न एक ब्राह्मण; इसके गुरु का नाम देवशर्मा था। गुरुकन्या ही इसकी पत्नी बनी। एक बार श्वसुर-जामाता दोनों दर्भ-समिधा लाने के उद्देश्य से जंगल गए। किंतु राक्षस ने इसका वध कर डाला। मरने के बाद यह वैकुंठलोक को प्राप्त हुआ। कृष्णावतार के समय इसने अक्रूर के रूप में जन्म धारण किया।

(२) कुरुक्षेत्र निवासी एक सूर्यवंशीय राजा; एक बार सूर्यग्रहण के अवसर पर तुलापुरुषदान के लिए इसने किसी ब्राह्मण को बुलाया। किंतु उस निंद्य दान से एक चंडालयुग्म (पाप और निंदा) उत्पन्न हुआ। ब्राह्मण ने 'गीता' के नवम अध्याय का पाठ कर विष्णु-दूतों की सृष्टि की और उनके द्वारा उस चंडालयुग्म को वापिस किया।

(३) मगधनिवासी एक ब्राह्मण; इसपर गुरु-हत्या का पाप था। एक सिद्ध के कहने पर इसने अमावस्या के दिन पुष्करतीर्थ पर स्नान करके उस पाप को दूर किया। (पद्मपुराण)

चन्द्रशेखर—वृषद्वती नदी के तट पर स्थित एक राज्य का स्वामी; इसके पितामह का नाम पुषन् और पिता का नाम पौष्य था। इसके पिता ने शंकर की आराधनास्वरूप प्रसादरूप में इसे प्राप्त किया था। सूर्यवंशी राजा कुकुत्स तथा भोगवती से उत्पन्न कन्या तारावती इसकी पत्नी थी। कपोत मुनि के शापवश तारावती को भैरव तथा बेतालयोनि नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। इनके अतिरिक्त तारावती के तीन औरस पुत्र थे—दमन, उपरिचर और अलर्क।

चन्द्रसेन—(१) प्राचीन भारतवर्ष के एक पराक्रमी राजा का नाम। इनके पिता का नाम समुद्रसेन था। इन्होंने कुरुक्षेत्र के युद्ध में पांडवों की ओर से युद्ध किया था, और उसी रणक्षेत्र में अश्वत्थामा के हाथ से मारे गए। इसका पता नहीं कि वे कहां के राजा थे।

(२) चंपावती नगरी के राजा का नाम। एक समय शिकार खेलने राजा वन में गए हुए थे। उन्होंने मृग समझकर एक ऋषि के बाण मारा। राजा ने बहुत प्रार्थना की और अनेक प्रयत्नों से उन्होंने ऋषि से अपराध क्षमा कराना चाहा, परंतु ऋषि ने एक भी नहीं सुनी। ऋषि के शाप से राजा का शरीर काला और वृद्ध हो गया। अनंतर एक ऋषि के कहने से वसंतपुर नामक नगर में (यह नगर जयपुर राज्य के अंतर्गत है) गए और शापमुक्त हुए। इन्होंने ख्रीष्टाब्द की प्रथम शताब्दी में चंपावती नगरी का निर्माण करवाया था। यह नगरी चंद्रभागा नदी के तीर पर है जो झालावाड़ राज्य की राजधानी रही है।

(३) ये क्षत्रियकुलांतकारी परशुराम के हाथों मारे गए थे। इनकी गर्भवती रानी ने दाल्भ्यमुनि के आश्रम में जाकर प्राणरक्षा की थी। इसी रानी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र से चंद्रसेनी कायस्थों की उत्पत्ति हुई थी।

(४) मारवाड़ के राजा मालदेव का पुत्र। सन् १५६९ ई० में मालदेव ने अनेक भेंट देकर चंद्रसेन को अकबर के निकट भेजा था। चंद्रसेन योग्य राठौर था, वह जन्मभूमि की स्वाधीनता और राठौर कुल की मर्यादा को अपने प्राणों से भी अधिक मूल्यवान् समझता था। नीचप्रकृति, भीरु, अपने बड़े भाई उदयसिंह को चंद्रसेन इस कारण राजगद्दी पर बैठने देना नहीं चाहता था कि यह राठौर कुल की मर्यादा नष्ट कर देगा। अतएव उसने इसका प्रबल विरोध किया। तेजस्वी राठौरों ने भी उसका साथ दिया। इस प्रकार राठौरों में दो दल हो गए। चंद्रसेन राज-धानी जोधपुर को छोड़कर चला गया, परंतु उसने अपने मान एवं मर्यादा की रक्षा करने के विचार को नहीं पलटा। वह सिवाना नामक स्थान पर रहकर भी इसके लिए चेष्टा करता था कि राठौरों की स्वाधीनता बची रहे। वह अपने प्रयत्न में अधिकांश रूप में सफल भी हुआ था। अपने सत्रह वर्ष की कठोर तपस्या का फल चंद्रसेन देखना चाहता ही था कि यवनों की एक लड़ाई में वह मारा गया। (टाड्स राजस्थान)

चन्द्रहास—ये एक प्रसिद्ध राजा थे। इनकी बाल्यावस्था ही में इनके माता-पिता दोनों परलोकवासी हुए। प्रधानमंत्री ने छल से इन्हें मरवा डालना चाहा था। इसके लिए उन्होंने षड्यंत्र भी रच डाला था। परंतु इनकी धाय इनको लेकर भाग गई और एक गंभीर जंगल में जा छिपी, जिससे इनके प्राणों की रक्षा हुई। यह कहावत बहुत ठीक है कि विपत्ति चारों ओर से आती है। इनकी रक्षिका धाय भी मर गई। वन में एक छोटा बालक निराश्रय पड़ा रहा। एक बार संयोगवश राजमंत्री ने इन्हें देखा और देखते ही उसने

पहचान लिया । मंत्री ने इसको मरवा डालने के लिए आदमी नियुक्त किए । परंतु मंत्री का सोचा बिल्कुल उलटा हुआ । चंद्रहास का मरना तो दूर रहा, इसका बाल भी बांका न हुआ । मंत्रिपुत्र ही मारा गया । अंत में मंत्री की कन्या ने एक बगीचे में चंद्रहास को देखा और उनका विवाह हुआ ।

चन्द्रापीड—(१) महाकवि बाणभट्टकृत कादंबरी का कथा-नायक । इनके पिता उज्जयिनी के राजा तारापीड और माता विलासवती थी । शाप के कारण विलास-वती के गर्भ से चंद्रमा चंद्रापीड के रूप में उत्पन्न हुए थे । चंद्रापीड अपने पिता की आज्ञा लेकर मंत्री शुकनास के पुत्र वैशम्पायन को साथ लेकर हिमालय के समीप मृगया खेलने गए थे । वहां एक किन्नर मिथुन के पीछे घोड़ा दौड़ाते हुए राजकुमार हेमकूट पर्वतनिवासी गंधर्वराज हंस की कन्या महा-श्वेता के आश्रम में उपस्थित हुए । यहीं महाश्वेता की प्रिय सखी, गंधर्वराज की पुत्री, कादंबरी के साथ राजकुमार का परिचय हुआ । प्रथम दर्शन ही में दोनों प्रेमसूत्र में बंध गए । इसके बाद एक विपत्ति आई । चंद्रापीड के मित्र वैशम्पायन महाश्वेता पर मोहित होकर उसका आलिंगन करने के लिए दौड़े; महाश्वेता के शाप से मंत्रिपुत्र मर गए, और शुक हो गए । वैशम्पायन पूर्वजन्म में महर्षि श्वेतकेतु के औरस और लक्ष्मी के गर्भ से उत्पन्न पुंडरीक नामक एक ऋषिकुमार थे । पुंडरीक महाश्वेता को देखकर मोहित हो गए थे । एक दिन पुंडरीक की कामपीड़ा बढ़ गई । उन्होंने अपनी पीड़ा के हेतु चंद्रमा को समझाकर शाप दिया । चंद्रमा ने भी पुंडरीक को शाप दिया । पुंडरीक के शाप से चंद्रमा राजा तारा-पीड के औरस और विलासवती के गर्भ से चंद्रापीड के रूप में उत्पन्न हुए थे । चंद्रमा के शाप से पुंडरीक तारापीड के मंत्री शुकनास के औरस और मनोरमा के गर्भ से वैशम्पायन, उसी पूर्वजन्म के संस्कार से, महाश्वेता के प्रति अनुरक्त हुए थे । महाश्वेता ने जब जाना कि जिसको मैंने शाप दिया है वह हमारा पूर्व-जन्म का प्रेमी है, तब उसे बड़ा कष्ट हुआ । पुंडरीक की मृत्यु के बाद दैवी वाणी के अनुसार भावी पतिसंगम की इच्छा से महाश्वेता पुंडरीक के शरीर की रक्षा कर रही थी । वैशम्पायन की मृत्यु की बात सुनकर, चंद्रापीड ने भी शरीरत्याग किया, और शरीरत्याग करने पर वे विदिशा नगरी में शूद्रक नामक राजा हुए । देवताओं की आज्ञा से चंद्रापीड का भी मृत शरीर रखा गया । महाश्वेता के समान राजभवन छोड़कर ब्रह्मचारिणी के वेश में कादंबरी भी भावी पति की शरीररक्षा करने के लिए महाश्वेता के आश्रम में रहने लगी । शुकरूपी वैशम्पायन को राजा शूद्रक के निकट ले आया गया । शुक के मुंह से अपनी कथा सुनकर राजा शूद्रक ने देहत्याग किया । पापक्षय होने से शुक ने भी देहत्याग किया । शूद्रक के शरीर त्याग करते ही चंद्रापीड जी उठे । कादंबरी के साथ चंद्रापीड का ब्याह हुआ । थोड़ी देर के बाद वैशम्पायन भी जी उठे और उनको महाश्वेता ब्याही गई । (कादंबरी)

(२) काश्मीर के एक राजा का नाम । ये दुर्लभक (प्रतापादित्य) के ज्येष्ठ पुत्र थे । पिता के बाद चंद्रा-पीड काश्मीर राज्य के अधीश्वर हुए । ये राजा गुण-वान् और असीम धार्मिक थे । राजतरंगिणी में लिखा है कि ये सत्ययुग के राजाओं के समान थे । तेज-स्विता और क्षमा का अपूर्व समावेश इसी राजा में देखा गया है । उनके हृदय की महत्ता नीचे लिखी दो घटनाओं से विदित होती है ।

राजा एक अग्रहार बनवाना चाहते थे । उसके लिए स्थान निश्चित किया । उसके पास ही एक चमार की कुटी थी । राजकर्मचारियों ने बहुत कहा कि इस स्थान को दे दो, और उसका मूल्य जितना चाहो ले लो, परंतु उस चमार ने नहीं सुना । इसका संवाद राजा को दिया गया । अंत में उस चमार ने कहा कि यदि महाराज आकर मांगें तो मैं दे दूंगा । महाराज गए और उससे मांगा तथा उस स्थान का पर्याप्त मूल्य भी दिया ।

एक समय राजा के पास एक ब्राह्मणी आई । उसने कहा, मेरा पति मारा गया है । उसका कोई शत्रु नहीं था । अमुक ब्राह्मण पर मेरा संदेह है । संभव है उसी ने कृत्या से मेरे पति को मार डाला हो । महाराज ने उस ब्राह्मण को बुलाया । परंतु अपराधी वही है, इसका निश्चय राजा नहीं कर सके । अपराध निश्चय करने के लिए राजा ने तीन दिन अनशन व्रत किया । तीसरे दिन रात्रि को राजा को स्वप्न हुआ कि इस प्रकार तुम अपराधी की पहचान कर सकते हो । राजा ने अपराधी को प्राणदंड के अतिरिक्त दूसरे दंड से दंडित किया, इससे ब्राह्मण इनपर क्रुद्ध हो गया । और उसने इनके छोटे भाई तारापीड के कहने से

अभिचार के द्वारा राजा को मार डाला। इन्होंने ८ वर्ष ८ महीने राज्य किया था। परंतु इनका यश चिरस्थायी है। (राजतरंगिणी)

चन्द्रावली—एक गोपी, जो चंद्रभानु की कन्या थी। राधा के बड़े चाचा का नाम चंद्रभानु था। चंद्रमल को यह ब्याही गई थी। राधा के समान चंद्रावली भी श्रीकृष्ण पर आसक्त थी। करेला नामक गांव में चंद्रावली अपने पति के यहां रहती थी।

चम्पा राज्य—जिस समय मगध राज्य श्रीसौभाग्य से पूर्ण था, उस समय चंपा नगरी या चंपाराज्य की बड़ी ख्याति थी। श्रीमद्भागवत और पद्मपुराण में लिखा है—हरिश्चंद्र के पौत्र हरित के पुत्र राजा चंप ने चंपा नगरी या चंपा राज्य की स्थापना की थी। इससे चंपा नगरी की प्राचीनता स्पष्ट सिद्ध होती है। विष्णु-पुराण और हरिवंश में हरित के पुत्र का नाम चंचु लिखा है। चंपा नामक अनेक जनपदों का परिचय पाया जाता है। बहुतों का अनुमान है कि यह राज्य वर्तमान कंबोडिया (कंबोज) के दक्षिण भाग में स्थित है। किसी-किसी के मत से काश्मीर के सीमांत प्रदेश में इस राज्य के होने का अनुमान किया जाता है। उसकी राजधानी का नाम ब्रह्मपुर है जिसे इस समय चंपा कहते हैं। मध्यप्रदेश के विलासपुर जिले में भी एक चंपा नगर का पता लगता है। परंतु प्राचीन चंपा नगरी, जिसका वर्णन पुराणों में है, मगध राज्य के समीप है। प्राचीन अंग देश की यह राजधानी थी। इसके दूसरे नाम कर्णपुर मालिनी और लोमपादपुर हैं। वर्तमान भागलपुर के समीप चंपा नगरी थी, इस समय ऐसा अनुमान किया जाता है। हुएनत्सांग ने चंपा नगरी का विवरण इस प्रकार लिखा है—"चंपा बहुत बड़ा जनपद है। चंपा नगरी गंगा के तीर पर बसी है। वहां की भूमि उपजाऊ और समतल है। वहां के वासी सरल और सत्यबादी हैं। वहां अनेक बौद्धमठ और संघाराम विद्यमान हैं। परंतु उनका अधिकांश भाग जीर्ण और टूटा-फूटा है। इन मठों में प्रायः दो सौ बौद्ध भिक्षुक रहते थे। बौद्ध-मंदिरों के अतिरिक्त प्रायः बीस देवमंदिर वर्तमान हैं। यह राजधानी परिखा और प्राकार से वेष्टित है। नगर के समीप गंगा के तीर पर एक सामान्य पहाड़ और उसपर एक मंदिर देखा जाता है। सुना जाता है कि इसके अधिष्ठाता देवता अनेक अलौकिक कार्य करते थे।" चंपा की प्रतिष्ठा के विषय में बौद्धग्रंथों में एक कथा लिखी मिलती है—वर्तमान कल्प के प्रारंभ में मानव-सृष्टि के पहले एक अप्सरा स्वर्गभ्रष्ट होकर मृत्युलोक में आई। थोड़े दिनों के बाद एक देवता के औरस से उस अप्सरा के चार पुत्र उत्पन्न हुए। उन्हीं चार पुत्रों ने जंबूद्वीप का राज्य आपस में बांट लिया। उन्हीं में से एक ने चंपा नगरी बसाई थी। चीन परिव्राजक ने हिरण्यप्रभात व मुंगेर से चंपा नगरी को ५० मील की दूरी पर बतलाया है और नदी परिवेष्टित पहाड़ के २३ मील पश्चिम गंगातीर पर चंपा नगरी का अवस्थान बतलाया है। यह नगरी एक पर्वत पर बसी है और उस पर्वत पर एक देव-मंदिर भी है। कनिंहम कहते हैं कि परिव्राजक ने जिस पहाड़ का वर्णन किया है वह इस समय पत्थर-घाट के नाम से प्रसिद्ध है। वही प्राचीन चंपा नगरी का ध्वंसावशेष है। भागलपुर से पत्थरघाट २४ मील की दूरी पर है। पत्थरघाट के पास एक चंपा नगरी इस समय भी है। (भारतवर्षीय इतिहास)

चरक—विख्यात वैद्यक ग्रंथ चरकसंहिता के प्रणेता। भगवान अनंतदेव ने चर रूप से (गुप्त वेश से) पृथ्वी पर आकर देखा कि मनुष्य अनेक प्रकार की व्याधियों से पीड़ित हो रहे हैं। मनुष्यों की ऐसी दशा देखकर उनके मन में दया उत्पन्न हुई। षडंग-वेदवेत्ता ऋषि के रूप में पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे और उन्होंने संसार के मनुष्यों के दुःख दूर किए। चर रूप से पृथ्वी पर ये उत्पन्न हुए थे, इस कारण चरक नाम से ये प्रसिद्ध हुए। इन्होंने अत्रिपुत्र भारद्वाज से आयुर्वेद की शिक्षा पाई थी। इन्होंने जो वैद्यक का ग्रंथ बनाया है, उसका नाम 'चरकसंहिता' है। इस 'चरकसंहिता' के प्रणेता के विषय में मतभेद है और वह सकारण है। वह चरकसंहिता के अंत में लिखा भी है। ग्रंथकार कहते हैं, रोगों की चिकित्सा के संबंध में अग्निवेश ने जो इस संहिता में लिखा है, वह और ग्रंथों में भी हो सकता है, परंतु जो इस ग्रंथ में नहीं है वह अन्य ग्रंथों में भी नहीं है। तो क्या अग्निवेश ही 'चरकसंहिता' के प्रणेता हैं? जिस प्रकार पुराण आदि शास्त्रग्रंथ शिष्य-प्रशिष्य-परंपरा द्वारा संगठित होते आए हैं उसी प्रकार चरक सुश्रुत आदि की भी मत-परंपरा है।

'चरकसंहिता' में जो चरक का परिचय दिया गया है उससे उनके समय के बारे में निरूपण करना कठिन है। 'चरक' में लिखा है कि चरक आत्रेय ऋषि

का मत प्रकाशित करते हैं। चरक के प्रत्येक अध्याय के प्रारंभ में लिखा है कि भगवान आत्रेय ने कहा। 'भावप्रकाश' नामक वैद्यक ग्रंथ में चरक के विषय में लिखा है—मत्स्यावतार भगवान के द्वारा वेदों का उद्धार हुआ। उस समय शेष या अनन्त को अथर्ववेद में आयुर्वेद प्राप्त हुआ। चर रूप से महीतल पर आकर मनुष्यों को दुःखी देख, उन्हें दया उत्पन्न हुई। इससे प्राणियों के दुःख दूर करने के लिए वह अवतीर्ण हुए। इन्होंने चर से जन्म लिया था इस कारण इनका नाम चरक हुआ। आत्रेय मुनि के शिष्य अग्निवेश ने चिकित्सा-संबंधी जितने ग्रंथ लिखे थे उनका सारांश लेकर इन्होंने 'चरकसंहिता' नामक ग्रंथ बनाया था। यद्यपि इन बातों से चरक का समय-निरूपण नहीं किया जा सकता, तथापि इससे यह तो अवश्य मालूम होता है कि इनके पहले भी आयुर्वेद की चर्चा थी। 'सुश्रुत' और 'चरक' के पढ़ने वालों का मत है कि, चरक सुश्रुत से प्राचीन है। क्योंकि 'सुश्रुत' में पारद का उल्लेख है और 'चरक' में नहीं। पाश्चात्य पंडितों का भी यही मत है। परंतु इस मत को सिद्धांतमत नहीं मान सकते। क्योंकि किसी भी प्रसिद्ध पुराण में चरक का उल्लेख नहीं है। इससे चरक सुश्रुत की अपेक्षा नवीन प्रमाणित होते हैं। भावप्रकाशकार ने चरक को संग्रहकर्ता बतलाया है। संग्रहकर्ता ने यदि पारद का उल्लेख नहीं किया तो इससे वह पुराना नहीं हो सकता। किसी ग्रंथ में किसी विषय का उल्लेख न होना ही उसकी प्राचीनता का प्रमाण नहीं है। दूसरी बात यह है कि स्वयं चरक ही ने अपने ग्रंथ में अस्त्र-चिकित्सा के विषय में धन्वंतरी संप्रदाय का प्रामाण्य माना है। ऐसी अवस्था में हम चरक को सुश्रुत से प्राचीन कैसे कह सकते हैं, परंतु इनके ठीक समय का पता लगाना भी तो कठिन है।

चरक और सुश्रुत का समय-निरूपण करने के लिए विदेशी विद्वानों ने बड़ा प्रयत्न किया है। एम्० सेलभिन लेभी नामक फारस के प्रसिद्ध विद्वान् थे। वे प्राच्य भाषाओं में भी अभिज्ञ समझे जाते थे। चीन देश के 'त्रिपिटक' ग्रंथ की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा है—'चरक' नामक वैद्य, शकवंशीय राजा कनिष्क के दीक्षागुरु थे। कनिष्क का राज्यकाल द्वितीय सदी में माना गया है, अतएव चरक भी दूसरी सदी के हैं। द्वितीय शताब्दी में भारत पर ग्रीस का प्रभाव पड़ा था। ग्रीस ही से चरक ने चिकित्साशास्त्र सीखा था। फारसी पंडित की यह युक्ति अशुद्ध है, क्योंकि यह बात स्पष्ट ही मालूम होती है। पाणिनिसूत्र में चरक का नाम आया है 'कठचरकाल्लुक्'। पाश्चात्य पंडित गोल्डस्टूकर के अनुसंधान से निश्चित हुआ है कि ख्रीष्ट जन्म के छह सौ वर्ष पूर्व, पाणिनि मुनि वर्तमान थे। गोल्डस्टूकर और भी कहते हैं कि ख्रीष्ट जन्म के ५४३ वर्ष पूर्व शाक्य मुनि बुद्धदेव का परलोकवास हुआ था। पाणिनि उसके भी पहले के हैं। कात्यायन और पतंजलि दोनों ने पाणिसूत्रों की टीका लिखी है। कात्यायन की टीका का नाम वार्तिक और पातंजलि की व्याख्या का नाम महाभाष्य है। कात्यायन और पातंजल दोनों समकालीन माने जाते हैं। गोल्डस्टूकर ने ख्रीष्टाब्द से १४० वर्षों पूर्व से लेकर १२० वर्षों पूर्व तक, इनकी स्थिति मानी है। चक्रपाणि और भोज दोनों ही ने चरक का निर्माता पातंजलि ही को माना है। इससे फारसी पंडित की उक्ति की असारता स्पष्ट ही मालूम होती है।

सुश्रुत की अपेक्षा चरक को प्राचीन मानने का प्रधान कारण पंडित लोग थे। चरक की अपेक्षा सुश्रुत में विषयों का निवेश शृंखलित हुआ है। जब जो विषय स्मरण आया, चरक ने वही लिख दिया। इन्होंने समय-समय पर भूयोदर्शन और परीक्षा की उपेक्षा करके दार्शनिक तत्त्वों की ही प्रधानता मानी है। सुश्रुत के अधिकांश सिद्धांत वैज्ञानिक भित्ति पर स्थित हैं। चरकसंहिता में न्याय और वैशेषिक दर्शन के अनेक विषयों का अनुसरण किया गया है। पंडितों का यह भी कहना है कि चरक की भाषा सरल और अलंकारशून्य है। वेद के ब्राह्मण भागों के साथ उसकी समानता उपलब्ध होती है। डॉ० ब्यूलर कहते हैं कि द्वितीय शताब्दी की भाषा काव्यमय थी। गिरनार और नासिक में जो लेख मिले हैं उनकी भाषा सप्तम शताब्दी के बाणभट्ट और सुबंधु की भाषा से अपेक्षाकृत सरल है। सप्तम शताब्दी की भाषा अलंकारपूर्ण है। चरक की भाषा और भी सरल है। अतएव चरक सुश्रुत आदि ग्रंथों से पहले का बना हुआ है यही सिद्ध होता है। बौद्ध धर्म के प्रादुर्भाव के पहले चरकसंहिता प्रचलित थी—यह बात निर्विवाद स्वीकार की जा सकती है। (भारतवर्षीय इतिहास)

चरनदास—ये हिंदी के एक कवि थे और जाति के ब्राह्मण

थे। पंडितपुर जिला फैजाबाद के ये रहने वाले थे। ये हिंदीनिबंध रचना में प्रौढ़ विद्वान् थे। इनका बनाया ग्रंथ 'ज्ञान-स्वरोदय' एक प्रसिद्ध ग्रंथ है। इनका जन्म १४८० ई० में हुआ था।

चरनदासी—वैष्णव संप्रदाय के अंतर्गत एक संप्रदाय का नाम। चरनदास नामक कोई व्यक्ति इसका प्रवर्तक है। इस संप्रदाय का आदिस्थान दिल्ली शहर में है। दूसरे आलमगीर के समय में यह संप्रदाय चला है। इसके अनुयायी श्रीकृष्ण को परब्रह्म समझते हैं। तुलसी या शालिग्राम की ये पूजा नहीं करते हैं। इस संप्रदाय के शिष्य भी चरनदासी कहे जाते हैं।

चर्पटीनाथ—इनकी गणना चौरासी सिद्धों में की गई है। 'वर्णरत्नाकर' में इनको ३१वां और राहुल सांकृत्यायन की सूची में ५९वां स्थान है। इनकी वाणियों के आधार पर विद्वानों ने इन्हें आचार्य नागार्जुन का समकालीन और गोरखनाथ का शिष्य बताया है। प्रसिद्ध संत गोपीचंद भरथरी इनके गुरुभाई थे। इन आधारों पर इनका स्थितिकाल ११वीं, १२वीं शती ई० सिद्ध होता है। डॉक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने इनके एक पद के आधार पर इनका संबंध चम्ब रियासत से जोड़ा है। बहुत संभव है कि ये कुछ दिन वहां रहे हों अथवा वहां के राजवंश से संबद्ध रहे हों। 'नाथसिद्धों की वाणियां' में इनकी ५९ सबदियां और ५ सलोक संकलित हैं। अन्य सिद्धों की भांति चर्पटीनाथ ने भी अपनी सबदियों में लोकप्रचलित पाखंडों का खंडन किया है। इसके अतिरिक्त उनमें पारद तथा स्वर्ण या स्वर्णभस्म बनाने की विधि का भी उल्लेख किया है। इन संदर्भों से ज्ञात होता है कि वे रसक्रिया में निपुणता रखते थे और इस दृष्टि से असंभव नहीं, इस क्रिया का ज्ञान उनको प्रसिद्ध रसायन-विद्या के आचार्य नागार्जुन से प्राप्त हुआ हो। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने तिब्बती में उल्लिखित उनकी 'चतुर्भवाभिशन' कृति का उल्लेख किया है।

चर्मण्वती—इसका उद्गम पश्चिमोत्तर की अरावली पर्वतमाला से हुआ है और पूर्वोत्तर की ओर राजस्थान में प्रवाहित होती हुई वह यमुना में मिल जाती है।

चाचकदेव—जैसलमेर के एक राजा का नाम। ये केलन जी के पुत्र थे। केलन जी की मृत्यु होने पर सन् १२१९ ई० में चाचकदेव गद्दी पर बैठे। कुछ दिनों के बाद इन्होंने चन्ना जाति के राजपूतों के साथ युद्ध किया। इस युद्ध में दो हजार चन्ना जाति के राजपूत मारे गए थे। पुनः रावल चाचकदेव ने सोढ़ा के अधीश्वर राणा अमरसिंह के देशों पर आक्रमण किया। उसने भी सामना किया। अंत में परास्त होकर उसने अपनी कन्या चाचकदेव को ब्याह दी, जिससे वह रक्षित हुआ। कान्यकुब्ज के राठौर धीरे-धीरे मरु देश पर अपना अधिकार फैला रहे थे। उन्होंने मरु देश के कुछ भाग पर अपना अधिकार भी जमा लिया था। इससे रावल चाचकदेव ने सोढ़ा नरेश्वर की सेना के साथ अपनी सेना मिलाकर उनका सामना किया। अंत में छाड़ा और टीडा दो राठौर वीरों ने अपनी कन्याओं को देकर चाचकदेव का क्रोध शांत किया। इस राजा ने ३२ वर्ष तक राज्य किया था। अंत में अन्य राजाओं के समान इनका भी परलोकवास हुआ। (टाड्स राजस्थान)

चाणक्य—प्रसिद्ध नीतिशास्त्रवेत्ता पंडित। इनका जन्म चणक वंश में हुआ था। इस कारण लोग इन्हें चाणक्य कहते थे। इनका दूसरा नाम कौटिल्य था। अन्नपूर्ण घड़े को कूट कहते हैं, इस घड़े के स्वामी का नाम कूटल है। जो एक वर्ष के खाने योग्य अन्न संचित करके रखते हैं, उन्हें कूटल या कुंभीधान्य कहते हैं। चाणक्य के पूर्वपुरुष उसी श्रेणी के गृहस्थ थे। इस कारण इनकी कौटिल्य संज्ञा हुई है। प्रसिद्ध बौद्धशास्त्रवेत्ता रिज डेविस का मत है कि चंद्रगुप्त सन् ३२० ई० में राजा हुए थे। अतएव चाणक्य का भी वही समय है। इन्हींकी बुद्धि से चंद्रगुप्त नवनंदों का नाश कर राजा बना था। (देखो अर्थशास्त्र और चन्द्रगुप्त)

चाणूर—यह यवन देश का राजा था और इसे श्रीकृष्ण ने मारा था। इसका उल्लेख महाभारत में हुआ है।

चामुण्डा—दुर्गा की एक मूर्ति का नाम। सेनापति चंड-मुंड के मारने से इनका 'चामुंडा' नाम हुआ था।

चारुदत्त—राजा शूद्रक कृत 'मृच्छकटिक' नाटक के नायक का नाम। ये ब्राह्मण थे। वसंतसेना नाम की एक वेश्या पर ये अनुरक्त थे। उसी वेश्या की हत्या के अपराध में चारुदत्त पकड़े गए। चारुदत्त का एक शत्रु था, जिसका नाम था वासुदेव। वह अपने को राजमहिषी का भाई बताया करता था। वेश्या वसंतसेना से चारुदत्त का बहुत प्रेम था। वासुदेव भी वसंतसेना को चाहता था, परंतु वसंतसेना उससे घृणा करती थी। इसी कारण वासुदेव ने वसंतसेना को खूब मारा

और हत्या का अपराध चारुदत्त पर लगाकर, उन्हें पकड़वा दिया। विचारकों ने उनको बुलवाया, चारुदत्त के अपराध पर विचारकों को संदेह हुआ। उसी समय चारुदत्त का एक मित्र वसंतसेना के अलंकार लेकर आया। चारुदत्त पर अपराध प्रमाणित हुआ। विचारकों ने चारुदत्त को प्राणदंड की आज्ञा दी। उधर एक बौद्ध संन्यासी के उपचार से वसंतसेना जी उठी। जिस समय चारुदत्त के मारे जाने का उद्योग हो रहा था उस समय वसंतसेना वहां उपस्थित हुई। चारुदत्त बच गए। अंत में चारुदत्त और वसंतसेना का विवाह हुआ था। (मृच्छकटिक)

चारुदेष्ण—हरिवंश वर्णित चंद्रवंशी गंडूष के ज्येष्ठ पुत्र का नाम। ये देवीमीढ़ूष के पौत्र थे।

चार्वाक—नास्तिक्य मत प्रवर्तक मुनि। देवगुरु बृहस्पति इस दर्शन के प्रवर्तक हैं। इनके शिष्य चार्वाक ने इस दर्शन का प्रचार किया। इस कारण इस दर्शन को चार्वाक दर्शन कहते हैं। चारु अर्थात् साधारण दृष्टि से मनोहर वाक्य इस दर्शन में हैं। इस कारण भी इस दर्शन को चार्वाक दर्शन कहते हैं। बृहस्पति नामक अनेक ऋषियों का और चार्वाक नामक अनेक व्यक्तियों का भी परिचय मिलता है। अतएव चार्वाक दर्शन के प्रवर्तक और प्रचारक के विषय में भी मतभेद होना स्वाभाविक है। ऋग्वेद में दो बृहस्पति नाम के ऋषियों का उल्लेख है। एक आंगिरस हैं और दूसरे लौक्य। तैत्तिरीयसंहिता में देवपुरोहित बृहस्पति का परिचय पाया जाता है। मैत्रेयी उपनिषद् में लिखा है कि असुरों के बुद्धिभ्रंश होने के लिए बृहस्पति ने नास्तिक्य मत चलाया। इसीलिए बृहस्पति के दैत्यगुरु शुक्राचार्य का रूप धारण कर अविद्या की सृष्टि की। उसी अविद्या में पड़कर दैत्य वेदादि शास्त्रों का तिरस्कार करने लगे और हित की बात को अहित समझने लगे। संहिताकारों में भी बृहस्पति का नाम देखा जाता है। बृहस्पतिसंहिता २६ संहिताओं के अंतर्गत है। महाभारत में भी दो बृहस्पति देखे जाते हैं। उनमें एक ने 'अहिंसा परमो धर्मः' का प्रचार किया था, दूसरे ने बंचनाशास्त्र बनाया था।

मैत्रेयी उपनिषद् वाले बृहस्पति और यह वंचनाशास्त्र-प्रणेता बृहस्पति दोनों एक ही हैं—ऐसा अनुमान है। वे ही चार्वाक दर्शन के प्रवर्तक बृहस्पति हैं। चार्वाक नामक और भी अनेक व्यक्तियों का परिचय मिलता है। बृहस्पति के शिष्य चार्वाक तो हैं ही, महाभारत के शांतिपर्व में दुर्योधन के मित्र चार्वाक का उल्लेख हुआ है, जो युधिष्ठिर की निंदा करने के कारण ब्रह्मकोप से भस्म हो गया था। ख्रीष्टीय तीसरी सदी में भी एक चार्वाक नामक मनुष्य ने नास्तिक्य मत का प्रचार किया। इसका भी प्रमाण पाया जाता है। लोकायतिक, नास्तिक्य, बार्हस्पत्य और पाखंड आदि नामों के चार्वाक का परिचय होता है। परलोक नहीं मानते इस कारण लोकायत, ईश्वर नहीं मानते इस कारण नास्तिक्य, बृहस्पति का चलाया है इस कारण बार्हस्पत्य नाम से इसका अभिधान होता है।

(भारतवर्षीय इतिहास)

चार्वाक दर्शन—इस दर्शन के संक्षिप्त प्रतिपाद्य विषय ये हैं: देह से भिन्न आत्मा का अस्तित्व नहीं है। आत्मा ही देह है, आत्मा के नाश होने से देह का नाश होता है। इस संसार में सुख ही परम पुरुषार्थ है। प्रत्यक्ष के अतिरिक्त दूसरा प्रमाण नहीं है। पृथिवी, जल, वायु और अग्नि इन चार भूतों से समस्त सृष्टि उत्पन्न हुई है। भूतों ही से चैतन्य भी उत्पन्न हुआ है। परलोक या पुनर्जन्म नहीं है। मृत्यु ही मुक्ति है। चार्वाक कहते हैं कि संसार सुख दुःख-युक्त है; इस कारण जो लोग सुख-भोग की उपेक्षा करते हैं, वे मूर्ख पशु हैं। फल में छिलका या गुठली है इससे क्या कोई फल का त्याग करता है? फलतः चार्वाक मत में सांसारिक भोग-सुख ही सुख है, और परलोक मिथ्या है। जिस प्रकार गुड़ और तंडुल के संयोग से, उसमें मादकता उत्पन्न हो जाती है, उसी प्रकार पंचभूतों के संयोग से भी चैतन्य उत्पन्न हो जाता है और इन भूतों के नाश से शरीर का नाश हो जाता है। देह के नाश होने पर पुनः उसकी उत्पत्ति होने की संभावना नहीं है। मैं स्थूल हूं, कृश हूं, आत्मा शरीर से भिन्न है, आदि धारणाएं केवल लौकिक कल्पना-प्रसूत हैं। देह-नाश होना ही पदार्थों की अंतिम अवस्था है। अतएव चार्वाक कहते हैं—जो हो सके इसी जन्म में सुख भोग लो; जितने दिन तक जीओ, सुख भोग लो; ऋण करके भी घी खाया करो, क्योंकि शरीर के भस्म होने पर, पुनः उसके उत्पन्न होने की संभावना नहीं है। कहा भी है—

यावज्जीवं सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः? ॥

स्वर्ग, अपवर्ग, परलोक, वर्णाश्रम धर्म, बैदिक क्रिया-

कर्म आदि किसीकी भी सार्थकता चार्वाक नहीं मानते हैं। उनके मत से यह सब धूर्तों की चालाकी है। ये सब मूर्खों के जीने के केवल उपाय हैं। यदि यज्ञ में मारा हुआ जीव सचमुच स्वर्ग में जाता है, तो यजमान अपने पिता ही का बलिदान क्यों नहीं करता ? श्राद्ध आदि के पिंडदान से यदि प्रेतों की तृप्ति होती है, तो नीचे रखे हुए अन्न से अटारी पर बैठे हुए मनुष्य की तृप्ति होनी चाहिए। चार्वाकों के मत से शास्त्रापेक्षा युक्ति ही की प्रबलता है। उन्होंने कहा है—

केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्योऽर्थनिर्णयः।
युक्तिहीनविचारे तु धर्महानिः प्रजायते ॥

प्रत्यक्ष प्रमाण के अतिरिक्त दूसरा प्रमाण भी चार्वाक नहीं मानते। वे कहते हैं, अनुमान आदि प्रमाण भ्रमपूर्ण हैं। क्योंकि बिना व्याप्ति ज्ञान के अनुमान नहीं हो सकता। व्याप्ति ज्ञान भी प्रत्यक्ष के द्वारा ही होता है। वर्तमान वस्तुओं ही का ज्ञान प्रत्यक्ष होता है, भूत और भविष्य का नहीं। चार्वाक शब्दप्रमाण को भी नहीं मानते, अतएव वे वेदों को भी नहीं मानते। ईश्वर का अस्तित्व उनके मत से सिद्ध नहीं होता। अतएव वेद-विहित धर्म-कर्म को छोड़कर सांसारिक सुख ही को सर्वस्व और प्रधान कर्तव्य मानना उनका उद्देश्य है। असुरों का बुद्धिनाश करने के लिए बृहस्पति ने इस दर्शनशास्त्र का प्रचार किया था, फलतः इसके अनुसार चलने वालों का अधःपात हिंदूमतानुसार अवश्यम्भावी है।

चितेयु—अग्निपुराण वर्णित चंद्रवंशी भद्राश्व के दस पुत्रों में से पंचम पुत्र का नाम।

चित्रक—चंद्रवंशी राजा वृष्णि के छोटे पुत्र का नाम।

चित्रकूट—'पद्मपुराण' के 'तीर्थमाहात्म्य' में वर्णित एक पावन एवं रमणीय स्थान। आधुनिक प्रयाग से ६५ मील दक्षिण-पश्चिम में चित्रकूट रेलवे स्टेशन से लगभग चार मील की दूरी पर उत्तरप्रदेश के बांदा जिले में स्थित।

चित्रकूर—पुरुवंशी राजा आयु के वंशज शुचि के पुत्र का नाम।

चित्रकेतु—पुराणों में उल्लिखित एक राजा; उसकी अनेक पत्नियां थीं। नारद तथा अंगिरा द्वारा यज्ञ संपन्न करने के कारण उसको कृतद्युती नामक स्त्री से एक पुत्र प्राप्त हुआ। अन्य रानियों ने उसे विष दे डाला। नारद ने चित्रकेतु को एक मंत्र दिया था, जिसके प्रभाव से उसने सात दिन में ही अप्रतिहत गति प्राप्त की थी और सर्वत्र उसकी अबाध गति हो गई थी। एक बार विमान पर बैठकर वह शिवजी के पास कैलास पर पहुंचा और पार्वती को अपनी जांघ पर बैठाए देखकर वह उन्हें उपदेश देने लगा। शंकर उसके उपदेश पर मुस्कराने लगे। किंतु पार्वती ने उसे अगले जन्म में राक्षस होने का शाप दे डाला, जिसके फलस्वरूप वह वृत्रासुर बना।

(२) स्वायम्भुव मन्वंतर वशिष्ठ और अर्जा से उत्पन्न पुत्र।

(३) शूरसेन देश का राजा; उसकी अनेक रानियां थीं। उसकी कोई संतान नहीं थी। अंगिरा ऋषि के वरदान से उसको पुत्र-प्राप्ति हुई।

(४) लक्ष्मण का द्वितीय पुत्र; चंद्रकांता नगर का स्वामी।

(५) पांचाल देश के राजा द्रुपद का पुत्र; इसके भाई का नाम वीर्यकेतु था; द्रोणाचार्य के साथ युद्ध करते हुए मारा गया।

चित्रगुप्त—(१) ब्रह्मा के अंगजात एक पुत्र। ब्रह्मा जगत् सृष्टि कर, जब ध्यानमग्न थे, तब उनके अंग से अनेक वर्णों से चित्रित कलम-दवात लिए एक पुरुष उत्पन्न हुआ। इस मनुष्य ने उत्पन्न होते ही ब्रह्मा से पूछा कि कहां और कौनसा काम हमको करना होगा। यह सुन ब्रह्मा ध्यानमग्न हुए और योगनिद्रा के अवसान होने पर उन्होंने कहा कि तुम मनुष्यों के पाप-पुण्यों के विचार लिखने के लिए यमराज के यहां जाकर रहो। मनुष्यों के चित्रविचित्र कर्म इनके द्वारा गुप्त होते हैं, इस कारण इनका नाम चित्रगुप्त है। ब्रह्मा ने यह और कहा कि तुम हमारे काय (शरीर) से उत्पन्न हुए हो, इस कारण लोग तुम को कायस्थ कहेंगे। इनके अम्बष्ठ, माथुर, गौर आदि नौ पुत्र हुए थे। (भविष्यपुराण)

(२) मनुष्यों की शुभाशुभ कर्मलिपि चित्रगुप्त ही लिखते हैं। यमलोक के पास एक चित्रगुप्तलोक भी वर्तमान है। वहीं चित्रगुप्त की आज्ञा से कायस्थ पाप-पुण्य का विचार करते हैं। (गरुडपुराण)

(३) कार्तिक मास की शुक्ल द्वितीया को इनकी पूजा होती है। इस द्वितीया का नाम यम-द्वितीया है। शापप्राप्त राजा सुदास इसी यम-द्वितीया को चित्रगुप्त की पूजा करके स्वर्ग गए थे। भीष्मपितामह ने भी चित्रगुप्त की उपासना करके इच्छामृत्यु का वर

पाया था ।

चित्ररथ—(१) गंधर्व-विशेष । इनका असली नाम अंगारपर्ण था । इनके पास एक चित्रित रथ था; इस कारण इनको चित्ररथ भी कहते हैं । इनकी स्त्री का नाम कुंभीनसी था । पांडवों के वनवास के समय में अर्जुन ने अंगारपर्ण को परास्त कर दिया था । इस कारण अंगारपर्ण ने अपने रथ को जला दिया । तब से दग्ध-रथ नाम से इनकी प्रसिद्धि हुई ।

(२) ये धर्मरथ के पुत्र थे । बलिराज के क्षेत्रज पुत्र अंग, अंग देश के अधिपति थे । राजा अंग के पुत्र का नाम था महाराज दधिवाहन, दधिवाहन के पुत्र दिविरथ, दिविरथ के पुत्र का नाम धर्मरथ था । चित्ररथ राजा धर्मरथ ही के पुत्र थे । (हरिवंश)

चित्रलेखा—दैत्यराज बाण की कन्या ऊषा की सखी, और बाणमंत्री कूष्मांड की कन्या । इसने ऊषा के कहने से और नारद की सहायता से अनिरुद्ध को श्रीकृष्ण के अंतःपुर से हर लिया था ।

चित्रसेन—गंधर्व-विशेष । दुःखी पांडव जिस समय द्वैतवन में दिन काट रहे थे उस समय अपना ऐश्वर्य दिखाने के लिए दुर्योधन अपने साथी, नौकर-चाकर, सेना आदि से सज-धजकर, आभीरपल्ली देखने के बहाने द्वैतवन में गया । उसी वन में एक सरोवर के किनारे चित्रसेन नामक गंधर्व रहता था । सरोवर के तीर से गंधर्वों को हटा देने के लिए दुर्योधन ने अपनी सेना को आज्ञा दी । दोनों ओर से युद्ध होने लगा, युद्ध में दुर्योधन की सेना को गंधर्वों ने हरा दिया । कुछ देर तक कर्ण लड़ते रहे, परंतु पीछे वह भी अपनी रक्षा करने के लिए भाग गए । दुर्योधन कैद कर लिए गए । उनकी स्त्रियां गंधर्वों के हाथ में पड़ गईं । दुर्योधन के मंत्री भागकर युधिष्ठिर की शरण में गए, और उन लोगों ने दुर्योधन और कौरव-कुलवधुओं की दुर्दशा कहकर उनसे सहायता मांगी । दुर्योधन को सहायता देने की इच्छा भीम की बिलकुल न थी, परंतु महानुभाव युधिष्ठिर के बहुत समझाने पर भीम मान गए । युधिष्ठिर ने भीम, अर्जुन और नकुल, सहदेव को दुर्योधन का उद्धार करने के लिए भेजा । भीम-अर्जुन के साथ गंधर्वों की सेना का युद्ध हुआ । युद्ध में गंधर्वों की सेना परास्त होकर भाग गई । स्वयं गंधर्वराज चित्रसेन युद्धक्षेत्र में उपस्थित हुए, परंतु उन्होंने अर्जुन से युद्ध नहीं किया । गंधर्वराज दुर्योधन और रानियों को लेकर भीम-अर्जुन के साथ युधिष्ठिर के समीप गए । युधिष्ठिर ने दुर्योधन और उनकी स्त्रियों को छुड़वाकर प्रसन्नता के साथ विदा किया । और चित्रसेन ने अपने बंदियों के साथ बहुत उत्तम व्यवहार किया है इसके लिए उसकी प्रशंसा की । दुर्योधन का अभिमान चूर हो गया, वह अपना-सा मुंह लिए हुए घर लौट गया । (महाभारत)

चित्राङ्गद—महाराज शंतनु का पुत्र और भीष्म का सौतेला भाई । यह सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । इसके छोटे भाई का नाम विचित्रवीर्य था । विचित्रवीर्य की जवानी ही में शंतनु का परलोकवास हुआ था । भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ही राजपद ग्रहण करना अस्वीकार किया, इससे चित्रांगद राजा बनाए गए । चित्रांगद प्रजाप्रिय राजा थे । चित्रांगद नामक एक गंधर्व के साथ इन चित्रांगद का तीन वर्ष तक युद्ध होता रहा, अंत में उसी युद्ध में ये मारे गए । (महाभारत)

चित्राङ्गदा—अर्जुन की एक स्त्री का नाम । यह मनीपुर के राजा चित्रवाहन की कन्या थी । इसके गर्भ से बभ्रुवाहन नामक एक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ था । बभ्रुवाहन ही मनीपुर का राजा हुआ क्योंकि उसके मातामह के कोई पुत्र न था । (महाभारत)

चिदम्बरम्—इस नगर का ऐतिहासिक, धार्मिक और कलात्मक अनेक दृष्टियों से महत्त्व है । अपने भव्य मंदिरों के लिए इसकी प्रसिद्धि है । यशस्वी चोलों ने इसको धार्मिक राजनगरी के रूप में वरण किया था । दक्षिण-भारत में महादेव की पांच आदिम प्रतिमाओं में एक 'व्योम प्रतिमा' यहां प्रतिष्ठित है । चिदम्बरम् की नृत्यरत शिवप्रतिमा का विशेष कलात्मक महत्त्व आंका गया है । इसके विचित्र मंदिर और उनमें स्थापित मूर्तियां कला की वैभवावस्था को घोषित करती हैं । यशस्वी चोलों ने इसे धार्मिक राजनगरी के रूप में वरण किया था । शिवमंदिर के महाकक्ष में, देवप्रतिमा के सम्मुख, चोलों का राज्याभिषेक समारोह संपन्न होता था । यह नगर दक्षिणभारत के अर्काट जिले में स्थित है ।

चिन्तामणि त्रिपाठी—यह हिंदी के एक कवि थे । टिकमापुर जिला कानपुर के ये रहने वाले थे और सन् १६५० ई० में विद्यमान थे । ये हिंदी निबंध रचना के प्रौढ़ विद्वान् थे । इनके विषय में यह एक आख्यायिका प्रचलित है कि इनके पिता देवी के परम भक्त थे । एक दिन प्रसन्न होकर देवी ने उन्हें दर्शन दिए

और चार खोपड़ियां दिखाकर कहा कि ये चारों तुम्हारे पुत्र होंगे। तदनुसार उनके चार पुत्र हुए, जिनके नाम थे : चिंतामणि, भूषण, मतिराम और जटाशंकर। जटाशंकर का दूसरा नाम नीलकंठ था। ये एक महात्मा के आशीर्वाद से बड़े प्रसिद्ध कवि हुए। इनके और तीनों भाई संस्कृत पढ़ने लगे और प्रसिद्ध विद्वान् हुए। चिंतामणि बहुत दिनों तक नागपुर के भोंसला मकरंद शाह के दरबार में रहे। इन्हीं के नाम पर चिंतामणि ने 'छंदविचार' नामक एक ग्रंथ बनाया है। इनके बनाए ये ग्रंथ हैं—(१) 'काव्यविवेक', (२) 'कविकुलकल्पतरु', (३) 'काव्यप्रकाश' और (४) 'रामायण'।

चिप्पट जयापीड—काश्मीर के एक राजा का नाम। ललितापीड के औरस और जयादेवी नामक एक वेश्या के गर्भ से ये उत्पन्न हुए थे। इनका दूसरा नाम बृहस्पति था। पृथिव्यापीड का परलोकवास होने पर इनका राज्याभिषेक हुआ। राज्याभिषेक के समय चिप्पट जयापीड बालक ही थे। जयादेवी के पांच भाई थे। अपने भानजे के राजा होने से उन लोगों ने राज्य के बड़े-बड़े काम अपने हाथ में ले लिए थे। राजा बालक ही था, अतः वे राज्य में मनमाने उपद्रव मचाने लगे। चिप्पट जयापीड का जब बाल्यकाल व्यतीत हुआ, तब इनके मामों ने सोचा कि यदि राजा जान लेगा कि हम राज्य का धन मनमाना अपहरण करते हैं, तो अवश्य ही हम लोगों का विनाश कर डालेगा। अतएव किसी प्रकार इसीको समाप्त करना उचित है। यही सोचकर उन्होंने कृत्या द्वारा राजा चिप्पट जयापीड को मरवा डाला। चिप्पट जयापीड ने १२ वर्ष तक राज्य किया था। (राजतरंगिणी)

चिरंजीव—हिंदी भाषा के एक कवि। ये बैसवारा के रहने वाले थे और इनका जन्म सन् ११११ ई० में हुआ था। कहा जाता है, इन्होंने हिंदी भाषा में महाभारत का अनुवाद किया था।

चूडामणि—इनका जन्म सन् १८०४ ई० में हुआ था। ये हिंदी के कवि थे। इन्होंने अपने दो अन्नदाताओं की अर्थात् गुमानसिंह और अजीतसिंह की प्रशंसा में पद्य रचे थे।

चूली महर्षि—वाल्मीकि रामायण में इनका उल्लेख किया गया है। ये ब्रह्मचारी तपस्वी थे। उर्मिला की कन्या सोमदा नामक एक गंधर्वी इनकी उपासना करती थी। बहुत दिनों तक उपासना करने पर महर्षि प्रसन्न हुए और पूछा—तुम क्या चाहती हो? उसने कहा—मैं ब्रह्मचारिणी हूं। मुझे एक योगी पुत्र प्राप्त करने की अभिलाषा है। कृपया आप मुझे पुत्रदान दें। महर्षि ने उसे पुत्र दिया। उस पुत्र का नाम ब्रह्मदत्त रखा गया। इसीने काम्पिल नामक नगर बसाया था। (रामायण)

चेतनचंद्र—हिंदी के एक कवि। इनका जन्म सन् १५५६ ई० में हुआ था। इन्होंने शालिहोत्र-संबंधी एक ग्रंथ रचा, जिसका नाम 'अश्वविनोद' रखा। यह ग्रंथ उन्होंने सोमवंशीय राजा कुशलसिंह के लिए लिखा था।

चेदयः—यह राज्य शिशुपाल के अधीनस्थ था। और इसमें बुंदेलखंड का दक्षिणी भाग और जबलपुर का उत्तरी भाग था।

चेदि राज्य—यह एक प्राचीन राज्य का नाम है। महाभारत तथा अन्यान्य पुराणों में इसका उल्लेख किया गया है। उपरिचरवसु को चेदि का राजा बताया है। दमघोषपुत्र शिशुपाल को भी चेदि देश का राजा बताया है। पुरुवंशी राजा क्रोष्टु के वंश में भी एक चेदि नामक राजा हुए थे। चेदि देश कहां था और इस समय उसका कुछ ठीक पता नहीं लगता। पुराणों के पढ़ने से मालूम होता है कि समय-समय पर चेदि राज्य अनेक देशों में स्थापित हुआ था। प्रलयतत्त्ववेत्ताओं में से कतिपय व्यक्तियों का कहना है कि बुंदेलखंड और बघेलखंड के समीप ही चेदियों की राजधानी थी। दूसरे कहते हैं कि नर्मदा नदी के तीर पर चेदि राज्य स्थापित था। चेदिवंश ही का हैहयवंश दूसरा नाम है। त्रैपुर, डाहल और चैद्य आदि नामों से भी इसका परिचय होता था। खृष्टीय पांचवीं सदी में नर्मदा के तीर पर चेदि राज्य का विशेष अभ्युदय हुआ था। उस समय कालिंजर दुर्ग में चेदि राजाओं की राजधानी स्थापित हुई थी। खृष्टाब्द के २४६ वर्ष पूर्व, चेदि-राजवंश ने एक संवत् चलाया था। उसी समय कालिंजर दुर्ग पर उन लोगों का अधिकार हुआ था। एक समय दक्षिण में कर्नाट तक और उत्तर में बुंदेलखंड पर्यंत चेदि राज्य की सीमा विस्तृत थी। खृष्टीय दसवीं सदी में चंदेल या चंद्रादित्यवंशी क्षत्रियों का अधिकार चेदि राज्य पर हुआ था। गुजरात के बघेलवंशियों के भी अधिकार में कुछ दिनों तक चेदि राज्य रहा है। पुनः वह मुसलमानों के अधिकार में आ गया। नर्मदा नदी

के उत्पत्तिस्थान के समीप चेदि राज्य प्रतिष्ठित हुआ था, ऐसा अनुमान से सिद्ध होता है। पुनः चेदि राज्य दो भागों में विभक्त हुआ। उस समय एक भाग का नाम महाकोशल और दूसरे भाग का नाम चेदि राज्य पड़ा। मध्यभारत में मनीपुर नामक एक नगरी का पता पाया जाता है, वही महाकोशल की राजधानी थी, त्रिपुर व चेदि—चेदि राज्य की राजधानी का नाम है।

चैत्ररथ—चंद्रबंशी कुरु के पुत्रों में से एक का नाम।

चोर कवि—ये संस्कृत के प्रसिद्ध काश्मीरी कवि थे। इनका दूसरा नाम बिल्हण है। इनके बनाए ग्रंथों का नाम 'चौरपंचाशिका', 'विक्रमांकदेवचरित' और 'कर्णसुंदरी' नाटिका हैं। इन्होंने और भी कई ग्रंथ बनाए होंगे; परंतु इन तीनों को छोड़ औरों का पता नहीं चलता। 'सुभाषितावली' में कुछ श्लोक इनके नाम से उद्धृत किए गए हैं। 'चौरपंचाशिका' की रचना के विषय में सुना जाता है कि बिल्हण जब गुजरात के राजा बैटीसिंह की बेटी शशिकला को पढ़ाने के लिए नियत किए गए, तब वे उसके यौवन और सौंदर्य पर मोहित हो गए और उसके साथ गंधर्वविधि से उन्होंने ब्याह कर लिया। इस वृत्तांत के राजा के कान तक पहुंचने में विलंब न लगा। राजा ने कवि का वध किए जाने की आज्ञा दी। वध्यस्थान पर पहुंचने के पहले ही कवि ने अपनी प्रियतमा के वर्णन में पचास श्लोक रच डाले। राजा ने इस काव्य-रचना की भी बात सुनी और उसने न केवल कवि के प्राण ही बचाए; किंतु अपनी बेटी भी उन्हें ब्याह दी। परंतु यह आख्यायिका निर्मूल जान पड़ती है क्योंकि गुजरात का राजा बैटीसिंह सन् ६२० ई० में मर गया और विक्रमांकदेवचरित द्वारा विदित होता है कि बिल्हण खृष्टीय ग्यारहवीं शताब्दी के अंत में काश्मीर से बाहर निकले और उस समय गुजरात में चालूक्य वंश का और भीमदेव का पुत्र कर्णराज राज्य कर रहा था। इतना तो अवश्य सिद्ध होता है कि बिल्हण को गुजरात में कुछ क्लेश अवश्य मिला था, जिससे उन्होंने सोमनाथ जी का दर्शन करके भुला दिया। जान पड़ता है कि इस समय सोमनाथ की यह शोभा न रही होगी, जो महमूद गजनवी की चढ़ाई के पहले थी। जैसा मार्शम्यान आदि इतिहास लिखने वालों ने लिखा है। यदि गजनी के लूटने के पूर्व बिल्हण ने सोमनाथ का दर्शन किया हो तो संभव है कि वे सन् ६२० ई० के बैटीसिंह के समकालीन रहे हों, किंतु न तो 'राजतरंगिणी' और न 'विक्रमांकदेवचरित' इस विषय में कुछ सहायता देते हैं। 'राजतरंगिणी' के द्वारा ज्ञात होता है कि काश्मीर के राजा कलश ने सन् १०६४ ई० से लेकर सन् १०८८ ई० पर्यंत राज्य किया है। इसी राजा के समय बिल्हण काश्मीर को छोड़ भ्रमण के लिए बाहर निकले। 'विक्रमांकदेवचरित' द्वारा जाना जाता है कि बिल्हण मथुरा, कन्नौज, बनारस, प्रयाग, आयोध्या, धार, गुजरात आदि प्रांतों में घूमते हुए सेतुबंध रामेश्वर तक जा पहुंचे थे।

ब्यूलर साहब अनुमान करते हैं कि बिल्हण लगभग सन् १०६५ ई० में भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न राजाओं के दरबार में गए होंगे और अंत में जाकर पश्चिमी चालुक्य के राजा विक्रमदेव के यहां ठहरे हों, जिनके वर्णन में उन्होंने 'विक्रमांकदेवचरित' नामक काव्य बनाया है। पश्चिमी चालुक्य के राजा विक्रमदेव सन् १०७६ ई० में राजगद्दी पर बैठे थे।

बिल्हण ने 'विक्रमांकदेवचरित' में अपने वंश का कुछ वर्णन भी किया है और अपने पुरखों का निवास-स्थान खोनमुख नामक एक काश्मीर का गांव बताया है। काश्मीर के खोनमुख नामक गांव में कौशिक गोत्र में उत्पन्न वेद-शास्त्रादि में निपुण मुक्तिकलश नामक एक पंडित थे। मुक्तिकलश के पुत्र का नाम राजकलश था और राजकलश के बेटे का नाम ज्येष्ठकलश था। ज्येष्ठकलश की पत्नी का नाम नागादेवी था। यही नागादेवी बिल्हण की माता थीं। बिल्हण के जेठे भाई का नाम इष्टशय और छोटे भाई का नाम आनंद था।

बिल्हण शरीर से बहुत सुंदर थे, यदि चौरपंचाशिका की आख्यायिका सत्य हो तो आश्चर्य नहीं कि राजकन्या इनके गुणों में से सौंदर्य को प्रधान समझ, इनपर मोहित हुई हो।

निदान, बिल्हण काश्मीरी कवि थे। 'कर्णसुंदरी' नाटिका के आरंभ में इन्होंने जिनदेव से सभासदों के कल्याण की प्रार्थना की है, इनका समय खृष्टीय ग्यारहवीं सदी मानना ही युक्तियुक्त है।

कुछ लोगों का मत है कि चोरकवि एक और भी हैं जो गुर्णसिंधु राजा के पुत्र थे। पर उनके विषय में भी बिल्हण की तरह राजकन्या पर आसक्ति और अंत में छुटकारे का वर्णन है। यदि ये बिल्हण से

भिन्न कोई कवि हैं तो इनके समय का कुछ भी पता नहीं है। 'कवी चौरमयूरो' इस श्लोकपंक्ति के अनुसार यदि चोर को मयूर का समकालीन मान लें तो चोर भी मयूर के समान खृष्टीय सातवीं सदी के प्रारंभ में वर्तमान माने जा सकते हैं।

चोल—(१) एक प्राचीन राज्य का नाम। ग्रंथों में चोल राज्य की सीमा के विषय में लिखा है, "द्राविड-तैलङ्गयोर्मध्ये चोलदेशः प्रकीर्तितः।" अर्थात् द्राविड़ और तैलंग के मध्यस्थान को चोल देश कहते हैं। चीनी परिव्राजक ने जिस समय इस राज्य को देखा था उस समय इस राज्य की दशा बहुत बिगड़ी हुई थी, सैनिक लूटपाट कर रहे थे। वहां की प्रजा इंद्रियपरायण और नृशंस हो गई थी। (देखो पांड्य)

(२) हरिवंश वर्णित चंद्रवंशी राजा आक्रीड के चार पुत्रों में से एक का नाम।

चौरंगीनाथ—चौरासी सिद्धों में परिगणित; मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य और गोरखनाथ के गुरुभाई; इनके पिता का नाम राजा शालिवाहन था। स्यालकोट में इनका जन्म हुआ। इनकी विमाता ने इनके पैर कटवा दिए थे। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का अभिमत है कि पंजाब आदि प्रदेशों में प्रचलित पूरन-भगत की कथा के चरितनायक यही थे। इनका स्थितिकाल ९वीं-१०वीं शती ई० निर्धारित किया गया है। इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति 'प्राणसांकली' है। 'वायुतत्त्व भावनोपदेश' नाम से इनकी एक अन्य कृति भी बताई जाती है। डॉक्टर बड़थ्वाल ने 'योग-प्रवाह' में इनके कुछ पद संकलित किए हैं। (राहुल सांकृत्यायन—हिंदी काव्यधारा; आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—नाथ संप्रदाय; नाथ सिद्धों की बानियां; डॉ० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल—योगप्रवाह)।

च्यवन—(१) एक प्रसिद्ध प्राचीन ऋषि। भृगु के औरस और पुलोमा के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी। कोई राक्षस इनकी गर्भवती माता को बलात्कारपूर्वक हरण किए जा रहा था। इससे गर्भस्थ बालक क्रुद्ध होकर जमीन पर गिर पड़ा और क्रोधाग्नि से उस बालक ने राक्षस का नाश कर दिया। वह बालक गर्भ से च्युत हुआ था। इस कारण पतनार्थक 'च्यु' धातु से सिद्ध च्यवन इनका नाम रखा गया। एक दिन च्यवन देवसभा में बैठे थे। वहां उनको विदित हुआ कि कुशिकवंश का क्षात्र तेज उनके वंश में संक्रांत होगा। इससे वे बड़े चिंतित हुए। उनके सात्त्विक ब्राह्मणवंश

में उग्र क्षात्र तेज न घुसने पाए, इसके लिए च्यवन ऋषि ने शाप देकर कुशिकवंश का नाश करना चाहा। च्यवन ने कुशिक और उनकी स्त्री से अपना भृत्यकर्म लेना प्रारंभ किया। वे भी इनकी सेवा करने लगे। वे सर्वदा उनके समीप उपस्थित रहते थे। च्यवन ने एक दिन राजा और रानी से अपनी पालकी उठवाई थी, उस समय च्यवन ने उन्हें कोड़े मारे थे। परंतु उन लोगों ने च्यवन के अत्याचारों को बड़ी प्रसन्नता से सहा। राजा और रानी के किसी भी व्यवहार से च्यवन को क्रोध न आया। बिना क्रोध आए शाप दे भी कैसे सकते हैं! अतएव च्यवन को अपना संकल्प छोड़ना पड़ा। राजा और रानी को वर देकर मुनि अपने आश्रम में लौट आए। ऋषि ने अपनी तपस्या के प्रभाव से कुशिक और उनकी रानी को अपने आश्रम में स्वर्ग की शोभा दिखाई थी। च्यवन के पुत्र का नाम और्व और पौत्र का नाम ऋचीक था। ऋचीक महाराज कुशिक के पुत्र गाधिराज की कन्या से ब्याहे गए थे। ऋचीक के पुत्र का नाम जमदग्नि था और पौत्र का नाम राम था। ये ही राम परशुराम के नाम से प्रसिद्ध हुए। इधर गाधिराज को विश्वा-मित्र नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जिसने कठोर तपस्या द्वारा ब्राह्मणत्व-लाभ किया था।

एक समय च्यवन एक सरोवर के तीर के वन में बहुत दिनों से तपस्या कर रहे थे। आंखों के अतिरिक्त उनका और समस्त शरीर वाल्मीक से ढका था। राजा शर्याति की कन्या सुकन्या संयोगवश उस वन में गई। उसने च्यवन की आंखों को चमकीला पदार्थ समझ कांटे से खोद दिया। महर्षि क्रुद्ध हुए। उनके क्रोध से राजा शर्याति के सैनिकों एवं अनुचरों का मलमूत्र बंद हो गया। सब व्यग्र हो गए। पहले तो इसका कारण किसीकी समझ में न आया, पीछे बहुत ढूंढ़ने पर विदित हुआ। राजा मुनि की शरण में गए। बहुत प्रार्थना करने पर मुनि प्रसन्न हुए और उन्होंने सुकन्या का अपने साथ विवाह कर देने का अनुरोध किया। राजा कर ही क्या सकते थे! उन्होंने स्वीकार किया। सुकन्या भी बूढ़े पति के साथ विवाह करने को राजी हो गई। एक समय स्वर्ग के वैद्य अश्विनीकुमार-द्वय ने सुकन्या को देखा, और देखकर वे उसपर आसक्त हो गए। अश्विनीकुमार-द्वय ने बूढ़े पति को छोड़कर अपने से विवाह करने के लिए सुकन्या से अनुरोध किया, परंतु उस पतिव्रता ने

स्वीकार न किया। सुकन्या का पातिव्रत्य देखकर अश्विनीकुमार बड़े प्रसन्न हुए और औषधादि द्वारा च्यवन को उन लोगों ने जवान बना दिया। वैद्यक शास्त्र में लिखा है कि जिस औषधसेवन से बूढ़े च्यवन जवान हुए थे, उसका नाम भी उन्हींके नामानुसार 'च्यवनप्राश' पड़ गया। महर्षि च्यवन ने इस उपकार के बदले अपने श्वसुर के यज्ञ में अश्विनीकुमारों को यज्ञभाग दिया था। इससे इंद्र क्रुद्ध हो गए और उन्होंने महर्षि पर वज्र चलाया। महर्षि ने इंद्र के हाथों को स्तंभित कर दिया और हवन से एक राक्षस उत्पन्न करके उसको इंद्र का वध करने के लिए कहा। तब इंद्र मुनि की शरण में आए। मुनि ने भी क्षमा प्रदान की। आस्तिक ने च्यवन मुनि से शिक्षा पाई थी।

(महाभारत)

(२) एक वैद्य का नाम। ये बहुत प्राचीन वैद्यों में से हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराण में लिखा है कि भास्कर के सोलह शिष्य थे जिनमें एक का नाम च्यवन था। ऋषिश्रेष्ठ च्यवन ने 'जीवदान' नामक एक आयुर्वेद-विषयक ग्रंथ बनाया था।

छ

छत्र कवि—इनका जन्म सन् १५६८ ई० में हुआ था। इन्होंने महाभारत को संक्षिप्त कर एक ग्रंथ बनाया है जिसका नाम विजयमुक्तावली है और वह पद्य में है।

छत्रसाल—(१) ये पन्ना के राजा थे और सन् १६५० ई० में विद्यमान थे। ये गुणियों का सम्मान करने के लिए प्रसिद्ध थे। इन्होंने लाल कवि से 'छत्रप्रकाश' बनवाया था। इसमें बुंदेलों का आरंभ से छत्रसाल तक का इतिहास है। ये सन् १६८८ ई० में मारे गए।

(२) बूंदी के एक राजा का नाम। इनका असली नाम शत्रुशाल था। इनके पिता का नाम गोपीनाथ था। रावरतन के स्वर्ग जाने पर इनका राज्याभिषेक हुआ। बादशाह शाहजहां ने स्वयं जाकर इनके राज्याभिषेक का उत्सव कराया था और उनका सम्मान बढ़ाने के लिए उन्हें दिल्ली के प्रधान शासनकर्ता के पद पर नियुक्त किया था। शाहजहां के राज्य तक इन्होंने अपना काम किया था। ये औरंगजेब की एक सेना के प्रधान सेनापति बनकर दक्षिण गए थे। वहां इन्होंने अपने बाहुबल का परिचय देकर कई किले जीत लिए। दौलताबाद और बीदर के किले पर अधिकार करने के समय इनकी यथार्थ वीरता का परिचय मिला था। यह ऐतिहासिक युद्ध सन् १६५३ ई० में हुआ था।

जिस समय औरंगजेब आदि पिता को राज्य से हटाकर, स्वयं राजा बनने के लिए युद्ध में प्रवृत्त थे, उस समय राव छत्रसाल बादशाह शाहजहां की ओर से युद्ध करते थे। दारा के रणक्षेत्र को छोड़कर भाग जाने पर भी छत्रसाल लड़ते रहे और अंत में उसी युद्ध में मारे गए। (टाड्स राजस्थान)

छाया—सूर्य की पत्नी संज्ञा नाम की सूर्य की एक स्त्री थी। इसी स्त्री के गर्भ से सूर्य के यम नामक पुत्र और यमुना नाम की कन्या उत्पन्न हुई थी। संज्ञा ने सूर्यतेज न सह सकने के कारण अपने समान अपनी छाया से एक स्त्री बनाकर उसे सूर्य के पास रख दिया था और वह अपने पुत्रों के लालन-पालन का भार उसको देकर स्वयं अपने पिता के घर चली गई। पिता विश्वकर्मा ने उसे बहुत झिड़का, और पति के पास लौट जाने के लिए भी कहा; परंतु वह सूर्य के पास न जाकर, उत्तर कुरुवर्ष में चली गई, और वहां घोड़ी का रूप धरकर इधर-उधर विचरने लगी। इधर सूर्य ने छाया को अपनी पत्नी समझकर उससे सावर्णि और शनैश्चर नामक दो पुत्र उत्पन्न किए। अब छाया अपने पुत्रों का अधिक आदर करने लगी। इससे क्रुद्ध होकर यम ने विमाता को लात मारी। इसपर विमाता ने शाप दिया कि

'तुम्हारे पैर गिर पड़ें' । यम ने विमाता के अत्याचार पिता से कहे । सूर्य ने शाप तो नहीं छुड़ाया और कहा कि तुम्हारे पैर के मांस को कीड़े पृथ्वी पर ले जाएंगे, किंतु उन्होंने इसके लिए छाया को फटकारा। इससे क्रुद्ध होकर छाया ने अपनी सृष्टि की सारी कथा कह सुनाई । सूर्य विश्वकर्मा के पास गए और उन्होंने संज्ञा के दुर्व्यवहार की बातें कहकर अभियोग खड़ा किया । विश्वकर्मा ने कहा—वत्स ! तुम्हारा तेज न सहकर संज्ञा हमारे पास आई थी, परंतु मैंने पुनः उसे तुम्हारे ही पास लौटा दिया था । सूर्य संज्ञा को ढूंढ़ने लगे । घोड़े का रूप धारण कर वह उत्तर कुरुवर्ष में घोड़ी रूपिणी संज्ञा से जाकर मिले । उसी समय अश्विनीकुमार-द्वय की उत्पत्ति हुई । अंत में सूर्य के तेज को कम करने का ठहराव करने पर संज्ञा पुनः सूर्य के पास लौट आई ।

छीतस्वामी—ये सन् १५६७ ई० में विद्यमान थे । ये अष्ट-छाप के कवियों में और विट्ठलनाथ के शिष्यों में से थे ।

छीहल—मिश्र बंधुओं ने इन्हें तीसरी कोटि का कवि माना है । इनके द्वारा रचित दो कृतियों का इतिहासकारों ने पता लगाया है, जिनके नाम हैं, 'पंच सहेली' और 'बावनी' । इनकी प्रथम कृति ही संप्रति उपलब्ध है, जिसकी पुष्पिका में उसका रचनाकाल १५७५ वि० उल्लिखित है । अतः इन्हें १५वीं-१६वीं शती ई० में निर्धारित किया जा सकता है । यद्यपि इनकी गणना कृष्णभक्त कवियों की कोटि में की गई है, तथापि इनकी उपलब्ध रचना से ऐसा प्रमाणित नहीं होता है । 'पंच सहेली' में इन्होंने पांच सखियों की कल्पित ख्याति को काव्यरूप दिया है । उसमें प्रयुक्त राजस्थानी मूल भाषा के आधार पर इन्हें राजस्थानी कवि कहा गया है ।

छेम—इनका जन्म सन् १६६८ ई० में हुआ था । इनके विषय में विशेष पता नहीं चलता । बहुत संभव है, शिवसिंह ने अपने सरोज में जिसको दोआब का खेमकरन लिखा है, वह यही छेम हों ।

छेमकरन—इनका जन्म सन् १७७१ ई० में हुआ था और ये धनौली जिला बाराबंकी के रहने वाले थे । इनके बनाए ग्रंथ ये हैं :

(१) रामरत्नाकर, (२) रामास्पद, (३) गुरु-कथा, (४) आह्निक, (५) रामगीतमाला, (६) कृष्णचरितामृत, (७) पदविलास, (८) रघुराज-घनाक्षरी, (९) वृत्तभास्कर ।

इनकी मृत्यु नब्बे वर्ष की अवस्था में सन् १८६१ ई० में हुई थी ।

छेम कवि—हिंदी के एक कवि का नाम । ये जाति के भाट थे और डालामऊ जिला रायबरेली के रहनेवाले थे । सन् १५३० ई० में ये विद्यमान थे । ये हुमायूं बाद-शाह के दरबारी कवि थे । इनके नाम से कुछ पद्य शिवसिंहसरोज में उद्धृत किए गए हैं ।

छोटूराम तिवारी—ये बनारस के रहने वाले एक कवि थे । ये सज्जन बहुत दिनों तक पटना कालेज में संस्कृत प्रोफेसर थे । इन्होंने रामकथा नाम की पुस्तक लिखी है ।

ज

जखनाचार्य—प्रसिद्ध शिल्पकार । दक्षिण के त्रावनकोर और महीशूर का राजवंश बहुत दिनों से शिल्पनिपुणता के लिए प्रसिद्ध है । वर्तमान शताब्दी में जिस प्रकार त्रावनकोर के राजवंशी राजा रविवर्मा शिल्प के लिए प्रसिद्ध हुए हैं, उसी प्रकार १२वीं शताब्दी में महीशूर राजवंश के राजा जखनाचार्य प्रसिद्ध हुए थे । कहा जाता है कि महीशूर के प्रधान देवालय इन्हीं राजा जखनाचार्य के बनाए हुए हैं ।

जगजीवन कवि—ये एक हिंदी के कवि थे । १७०५ संवत् में ये उत्पन्न हुए थे । उनके बनाए कवित्त हजारा में पाए जाते हैं ।

जगजीवनदास चन्देल—ये चंदेले क्षत्रिय थे और कोटवा

जिला बाराबंकी के रहने वाले थे। सतनामी पंथ इन्होंने ही चलाया। ये हिंदी कविता भी करते थे। प्रायः इनकी गद्दी पर बैठने वाले कवि ही होते आए हैं।

जगत्सिंह—(१) कोटे के एक राजा। ये राजा मुकुंदसिंह के पुत्र थे। उनके मरने पर जगत्सिंह का कोटे के राजसिंहासन पर अभिषेक हुआ। ये दिल्ली के बादशाह की अधीनता में दो हजार सेना के 'मनसबदार' अर्थात् सेनापति थे। संवत् १७२६ तक जगत्सिंह दक्षिण के समर में लिप्त थे। उसी संवत् में ये अपुत्रावस्था में परलोकवासी हुए। (टाड्स राजस्थान)

(२) जयपुर के एक राजा। सन् १८०३ ई० में इनका राज्याभिषेक हुआ था। ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ इनकी दो बार संधि हुई थी। इन्होंने एक बार कंपनी के सेनापति के साथ हुल्कर के विरुद्ध शस्त्र भी धारण किया था। मारवाड़ के राजा मानसिंह पर उन्होंने लाख सैनिक लेकर आक्रमण किया था। यद्यपि इन्होंने मारवाड़राज को पहले युद्ध में हराया था, तथापि पीछे इन्हें स्वयं हारना और अपमानित होना पड़ा। कंपनी का पहला संधि-बंधन किसी कारण से टूट गया, तब पुनः सन् १८१८ ई० में दूसरा संधिपत्र लिखा गया। इसी सन् में ये परलोकवासी हुए।

(३) ये मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे। सन् १७३४ ई० में इनका राज्याभिषेक हुआ था। ये दूसरे जगत्सिंह के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अपने प्राचीन गौरव की रक्षा करने के लिए प्रयत्न किया था और वे सफल भी हुए थे।

(४) मेवाड़ के महाराणा। ये प्रथम जगत्सिंह हैं। ये महाराणा कर्णसिंह के पुत्र थे। पिता ने इनको सन् १६२८ ई० में राज्य दिया था। महाराणा जगत्सिंह ने २६ वर्ष तक राज्य किया था। इनका राज्यकाल शांति से बीता। क्योंकि उस समय शाहजहां बादशाह था जो महाराणा के द्वारा उपकृत हो चुका था। इन्होंने जगमंदिर और श्रीनिवास नामक दो सुंदर मकान भी बनवाए थे। इनके समय में मेवाड़ राज्य में शिल्प की बड़ी उन्नति हुई थी। (टाड्स राजस्थान)

जगत्सिंह बिसेन—ये राजा गोंडा के भाई थे। देउनहां नामक राज्यखंड के ये अधीश्वर थे। सं० १७९८ में इनका जन्म हुआ था। ये स्वयं कवि और कवियों के आश्रयदाता थे। अटसेला शिव कवि बन्दीजन इनके आश्रय में थे और वे इनके विद्यागुरु भी थे। ये कविता करने में बड़े निपुण थे। इन्होंने 'छंदश्रृंगार' नामक पिंगल का और 'साहित्यसुधानिधि' नामक अलंकार का ग्रंथ लिखा है। इनके अतिरिक्त इनके लिखे और भी ग्रंथ हैं।

जगत्सेठ—मुर्शिदाबाद के निवासी एक महासेठ। इनका फतेचंद नाम था, 'जगत्सेठ' केवल इनकी उपाधि थी। जगत्सेठ का अर्थ है संसार में सबसे बडा धनी। सन् १७२२ ई० में दिल्ली के बादशाह की ओर से फतेचंद को यह उपाधि मिली थी। ये जैनी थे। इनके पूर्वज मारवाड़ से मुर्शिदाबाद में जाकर बसे थे। इनके पिता का नाम राय उदयचंद था और माता का नाम धनबाई। धनबाई के भाई मानिकचंद नि.संतान थे। मानिकचंद उस समय के धनिकों में एक प्रसिद्ध धनी थे। मानिकचंद ने अपने भानजे फतेचंद को दत्तक ग्रहण किया था, तब से फतेचंद मानिकचंद के पुत्र समझे जाने लगे। नव्वाब सिराजुद्दौला को पदच्युत करके अंग्रेजों का प्रभुत्व विस्तार करने के लिए, जिन लोगों ने प्रयत्न किया था, उनमें फतेचंद जगत्सेठ भी थे। सिराज के बाद मीरजाफर बंगाल के नवाब हुए थे, परंतु वे बहुत दिनों तक इस पद का सुख नहीं भोग सके थे। सन् १७६० ई० में मीरजाफर पदच्युत हुए और उनके स्थान पर मीरकासिम बंगाल के नवाब हुए। मीरकासिम पहले ही जगत्सेठ पर अप्रसन्न थे, उन्होंने १७६३ ई० के अप्रैल मास में फतेचंद को कैद कर लिया। जगत्सेठ को छोड़ देने के लिए अंग्रेजों ने प्रयत्न किया, परंतु उसका कुछ फल नहीं हुआ। अंत में जगत्सेठ मार डाले गए।

जगदीश कवि—ये हिंदवी (हिंदी) के कवि थे और संवत् १५८८ में उत्पन्न हुए थे। ये अकबर बादशाह के दरबार में थे।

जगदीश तर्कालङ्कार—नवद्वीपनिवासी एक प्रसिद्ध नैयायिक। ये १७वीं सदी के प्रारंभ में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम यादवचंद्र तर्कवागीश था और वे भी एक प्रसिद्ध नैयायिक थे। इनकी बाल्यावस्था ही में इनके पिता की मृत्यु हुई। ये बाल्यावस्था में बड़े उद्धत थे। एक दिन ये पखेरू के बच्चे पकड़ने के लिए ताड़ के पेड़ पर चढ़े। ज्यों ही उन्होंने एक घोंसले में हाथ बढ़ाना चाहा, त्यों ही वे वहां देखते क्या हैं कि एक सांप फन बढ़ाए उनको काटने के लिए

उद्यत है। जगदीश ने उस सांप का फन पकड़ लिया। सांप काट तो नहीं सका, परंतु वह उनकी बांह में लिपट गया। जगदीश ने उस सांप को रगड़-रगड़कर मार डाला। एक पंडित जगदीश के इस कृत्य को दूर से ही देख रहे थे। जब जगदीश पेड़ से उतरे तब उन पंडित ने उनको बहुत समझाया, और उनको लिखना-पढ़ना सिखाने के लिए वे स्वयं उद्यत हुए। उस समय जगदीश की अवस्था अठारह वर्ष की थी और वे अत्यंत गरीब थे अतएव उन्होंने बड़े कष्ट से अध्ययन किया था। वे व्याकरण और काव्य पढ़कर न्यायशास्त्र पढ़ने के लिए नवद्वीप के प्रधान नैयायिक भावानंद विद्यावागीश की पाठशाला में गए। भावानंद के यहां का पाठ समाप्त करने पर इनको 'तर्कालंकार' की उपाधि मिली थी। इसके अनंतर वे पाठशाला बनाकर पढ़ाने लगे। इनकी पढ़ाने में बड़ी प्रसिद्धि हुई। इससे दूर-दूर के छात्र इनके यहां आने लगे। इन्होंने 'न्यायदीधिति' की टीका लिखी है। इसके अतिरिक्त इन्होंने और भी ग्रंथ लिखे हैं; जो ये हैं—(१) गंगेशोपाध्याय प्रणीत 'अनुमानमयूख' का भाष्य, (२) पक्षता, (३) केवलान्वयी, (४) केवलव्यतिरेकी, (५) अन्वयव्यतिरेकी, (६) अवयव, (७) चतुष्त्रयतर्क, (८) सिद्धांतलक्षण, (९) व्याप्तिपंचक, (१०) उपाधिवाद, (११) पूर्वपक्ष, (१२) अनुमानदीधिति का तर्क, (१३) सिंहव्याघ्री और (१४) अवच्छेदकनिरुक्ति।

जगदेव कवि—ये हिंदी के एक कवि थे और संवत् १७९२ में उत्पन्न हुए थे। इनकी कविता सरस होती थी।

जगद्धर—भवभूतिकृत 'मालतीमाधव' नामक नाटक की टीका इन्होंने लिखी है। उसके प्रत्येक अंक की समाप्ति में इन्होंने अपने माता-पिता का नाम लिखा है और ग्रंथ की समाप्ति में भी अपने वंश का संक्षेप में कुछ परिचय दिया है। उससे विदित होता है कि द्विजातिकुलतिलक चंडेश्वर नाम के एक प्रसिद्ध मीमांसक हुए, जिनके पुत्र रामेश्वर पंडित भी एक प्रसिद्ध मीमांसक थे। रामेश्वर के पुत्र गदाधर, गदाधर के पुत्र विद्याधर और उनके पुत्र रत्नधर हुए। यही रत्नधर जगद्धर के पिता हैं। जगद्धर ने अपनी माता का नाम दमयंतिका लिखा है। ये जगद्धर न्याय, वैशेषिक, व्याकरण, काव्य आदि में बड़े निपुण जान पड़ते हैं। इनकी 'मालतीमाधव' नाटक की टीका संस्कृत जानने वालों की दृष्टि में बड़ी प्रतिष्ठित समझी जाती है। इन्होंने ग्रंथ के अंत में अपने पिता की उपाधि 'श्रीमन्महोपाध्याय पंडितराज महाकविराज धर्माधिकारी' लिखी है। इससे जाना जाता है कि ये महापंडित विद्वज्जनों के कुल में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने 'वेणीसंहार' और 'वासवदत्ता' की भी टीका लिखी है। इनका समय, पंडितवर रामकृष्ण भांडारकर के निर्णयानुसार खृष्टीय १४वीं सदी से पूर्व नहीं हो सकता।

जगद्धात्री—दुर्गा की एक मूर्ति। शारदीय दुर्गा-पूजा के अनंतर इनकी पूजा होती है। एक समय कई एक देवताओं ने मिलकर यह स्थिर किया कि और कोई देवता नहीं है, परमेश्वर नामक देवता का अस्तित्व नहीं है। भगवती दुर्गा देवताओं का ऐसा विचार जानकर एक ज्योतिर्मयी मूर्ति धारण कर उनके सामने उपस्थित हुईं। अग्नि, वायु आदि देवता उस ज्योतिर्मयी मूर्ति का निर्णय नहीं कर सके। देवताओं ने सबसे पहले पवनदेव को उस ज्योति के समीप भेजा। ज्योति की अधिष्ठात्री देवता ने, उस देव के सामने एक तृण रखकर यह कहा कि यदि तुम इस तृण को यहां से हटा दो तो मैं तुम्हें शक्तिमान समसमझूंगी। पवन ने बहुत प्रयत्न किया, परंतु वे उस तृण को वहां से हटा न सके। तदनंतर अग्नि आए, उनको तृण जलाने के लिए कहा गया; परंतु वे भी उस तृण को नहीं जला सके। तब देवता उन देवी को सबसे बड़ी मानकर उनकी आराधना करने लगे। उस ज्योतिर्मय मूर्ति से भगवती जगद्धात्री के रूप में आविर्भूत हुईं। ये भगवती चतुर्भुजा, त्रिनयना, हास्यमुखी और सिंहवाहिनी हैं। ये रक्त वस्त्र धारण करती हैं और अलंकारविभूषित हैं।

जगन कवि—ये हिंदी के कवि थे और सं० १६५२ वि० में उत्पन्न हुए थे। शृंगार रस के ये एक अच्छे कवि थे।

जगनन्द कवि—ये हिंदी के कवि वृंदावन के रहने वाले थे और सं० १६५८ में उत्पन्न हुए थे। इनके बनाए कवित्त 'कवित्त हजारा' में पाए जाते हैं।

जगनिक बन्दीजन—ये हिंदी के कवि महोबा बुंदेलखंड के वासी थे। सं० ११२४ में ये उत्पन्न हुए थे। जिस प्रकार पृथ्वीराज चौहान के यहां चंद कवि की प्रतिष्ठा थी उसी प्रकार चंदेल राजा परिमाल के यहां इनकी प्रतिष्ठा थी। चंद ने रायसो में इनकी प्रशंसा की है।

जगन्नाथ—पुरी की दारुमयी मूर्ति। कहते हैं, सत्ययुग में

राजा इंद्रद्युम्न ने इस मूर्ति को बनवाया था। यहां जगन्नाथ जी रहते हैं। इस कारण पुरी क्षेत्र को जगन्नाथ क्षेत्र या श्रीक्षेत्र भी कहते हैं। हिंदू इस क्षेत्र को अपना पवित्र तीर्थ समझते हैं। यहां भोजन आदि में जातिभेद की रुकावट नहीं है। बड़े-बड़े क्षत्रिय ब्राह्मण भी यहां अस्पृश्य जातियों के साथ बैठकर महाप्रसाद ग्रहण करते हैं। राजा इंद्रद्युम्न की इच्छा के अनुसार ब्राह्मण-वेशधारी विश्वकर्मा ने श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्रा की मूर्तियां बनाईं। मूर्तियों के तैयार हो जाने पर राजा ने भक्तिपूर्वक उनको प्रणाम किया। उस समय विष्णु ने अपना परिचय दिया और कहा, "मैं तुम्हें वर देता हूं, दस हजार नौ सौ वर्ष तक तुम राज्य करोगे और देह त्याग करने पर निर्गुण परम पद प्राप्त करोगे।" बहुत लोग महाप्रसाद-भक्षण प्रथा को आधुनिक और अप्रामाणिक समझते हैं।

जगन्नाथ कवि—ये कान्यकुब्ज अवस्थी ब्राह्मण थे और सुमेरपुर जिला उन्नाव के रहने वाले थे। संस्कृत-साहित्य के ये अच्छे पंडित थे। पहले ये अवधनरेश मानसिंह के दरबार में थे परंतु बाद में अलवर-नरेश शिवदानसिंह की सभा में रहने लगे थे। इन्होंने संस्कृत में कई ग्रंथ लिखे हैं, परंतु हिंदी में कुछ फुटकर कविताओं के अतिरिक्त इनके बनाए किसी ग्रंथ का पता नहीं चलता।

जगन्नाथ कवि प्राचीन—ये शांत रस के कवि थे। इन्होंने हिंदी में शांत रस पर कई पुस्तकें भी लिखी हैं।

जगन्नाथदास—ये हिंदी के कवि थे। रागसागरोद्भव में इनके बनाए पद पाए जाते हैं।

जगन्नाथ पण्डितराज—ये प्रसिद्ध आलंकारिक और कवि महाशय दिल्ली के बादशाह के दरबार में थे। इन्होंने 'भामिनीविलास' के अंत में अपना परिचय इस प्रकार दिया है : 'दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वयः।' ये तेलंग देश के राजमहेंद्री प्रांत के निवासी थे। पर बहुत दिनों काशी में रहकर इन्होंने विद्याभ्यास किया था। इनके पिता का नाम पेरू भट्ट, माता का नाम लक्ष्मी और गुरु का नाम ज्ञानेंद्र भिक्षु था। जयपुर के राजा की आज्ञानुसार जयपुर और काशी में इन्होंने नक्षत्रों को देखने के उपयुक्त कौतुकालय बनवाए थे। काशी में मानमंदिर घाट पर अब तक वह कौतुकालय वर्तमान है। पर भूमि के हिल जाने से अब उस स्थान से नक्षत्रादि ठीक नहीं दीख पड़ते। इनका समय लोगों ने सन् १६२० ई० से १६६० ई० तक दिल्ली की राजसेवा में कटा हुआ सिद्ध किया है। वहीं के बादशाह से इनको 'पंडितराज' की उपाधि मिली थी। इनके रचित ग्रंथों के नाम 'रसगंगाधर', 'मनोरमाकुचमर्दन', 'गंगालहरी', 'करुणालहरी', 'अश्वघाटीकाव्य' 'भामिनीविलास', 'प्राणाभरण' आदि हैं। सुनने में आता है कि इन्होंने मुसलमान स्त्री के प्रेम में फंसकर उससे विवाह कर लिया था। इस कारण ब्राह्मणों ने इन्हें जातिबहिष्कृत कर दिया। अंत में गंगालहरी रचते-रचते काशी में गंगातट पर इन्होंने प्राणत्याग किया। बुढ़ापे में ये कुछ दिनों तक मधुपुरी (मथुरा) में भी रहे थे।

जज्ज—यह काश्मीर के राजा जयापीड का साला था। जब जयापीड दिग्विजय के लिए बाहर निकले तब इसने उपद्रव करके अपने भगिनीपति के राज्य पर अधिकार कर लिया था। पुनः जब जयापीड लौटे, तब जज्ज ने उनसे युद्ध किया था। बहुत दिनों तक दोनों पक्षों में युद्ध होता रहा। अंत में जज्ज मारा गया। तीन वर्ष इसने राज्य किया था। (राजतरंगिणी)

जटमल—इनके संबंध में इनकी एकमात्र उपलब्ध कृति 'गोरा बादल की बात' से ज्ञात होता है कि इनका पूरा नाम नाहर जाट जटमल (नाहरखां जटमल) और उनके पिता का नाम धरमसी था। ये मोरछड़ों के पठान शासक नासिरनंदअलीखां के समकालीन थे। इनकी इस उपलब्ध कृति की पुष्पिका में उसका रचनाकाल (१६२३ या १६२८ ई०) उल्लिखित है, जिससे कि इनका स्थितिकाल सत्रहवीं शती के पूर्वार्द्ध में सिद्ध होता है। विद्वानों का अनुमान है कि नाहरखां जटमल इनकी उपाधि या इनका उपनाम था। वे जन्मतः हिंदू थे और बाद में मुसलमान हो गए थे। पठान नासिरनंदअली खां के शासनकाल की सुख-शांति का उल्लेख करते हुए उन्होंने उसकी प्रशंसा की है। इस आधार पर इन्हें अलीखां का आश्रित माना जाता है। बहुत संभव है कि उसीके प्रभाव से ये मुसलमान हुए हों।

जटायु—सूर्यसारथि अरुण का पुत्र। अयोध्याधिपति महाराज दशरथ का यह मित्र था। सीताहरण के समय जटायु ने सीता का आक्रंदन सुनकर रावण को रोका था। रावण और जटायु दोनों में युद्ध होने लगा। उसी युद्ध में रावण के अस्त्राघात से जटायु की मृत्यु हुई। सीता को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते राम-लक्ष्मण ने जटायु को

देखा था। जटायु ने सीताहरण की बात राम से कह-कर, प्राणत्याग किया। राम ने अपने पिता के मित्र की अन्त्येष्टि-क्रिया की। (रामायण)

जटासुर—एक राक्षस-विशेष। जिस समय पांडव बदरिका-श्रम में रहते थे उस समय यह राक्षस द्रौपदी का हरण करने के लिए सर्वशास्त्रज्ञ ब्राह्मण बनकर उनके समीप गया और अपनी इष्टसिद्धि के लिए अवसर देखने लगा। एक दिन भीमसेन मृगया खेलने वन में गए। यह युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव को कैद कर द्रौपदी को हर ले गया। संयोगवश मार्ग में भीमसेन मिल गए। उन्होंने इस राक्षस को मार डाला और युधिष्ठिर आदि को उससे छुड़ा लिया। (महाभारत)

जटिल—एक विष्णुभक्त बालक। इसके संबंध में अद्‌भुत उपाख्यान प्रचलित है। यह बालक पाठशाला में जाते डरता था। यदि कोई उसकी माता से यह बात कहता, तो वह अपने पुत्र को गोविंद नाम स्मरण करने का उपदेश देती। तब से वह बालक माता के उपदेशानुसार गोविंद नाम का स्मरण करते-करते पाठशाला जाने लगा। उसकी भक्ति देखकर भगवान मार्ग में उससे मिलते और उसके साथ खेलते थे। एक दिन मित्र के साथ खेलते-खेलते जटिल को बहुत विलंब हो गया, अतएव वह पाठशाला में यथासमय उपस्थित न हो सका। गुरु ने विलंब का कारण पूछा। बालक ने भी उत्तर में सब बातें कह दीं। परंतु गुरु ने उसके कहने पर विश्वास न किया और उसके एक बेंत मारा। परंतु उसके शरीर पर बेंत का दाग न पड़ा। यह देखकर गुरु को बड़ा आश्चर्य हुआ। दूसरे दिन गुरु जी के यहां पितृश्राद्ध था। दही ले आने के लिए गुरु ने जटिल से कहा। भोजन के दिन एक नांद दही लेकर जटिल गुरु के यहां उपस्थित हुआ। सब लोगों ने कहा—इतने मनुष्यों में यह दही बहुत कम है। परंतु जटिल ने उत्तर दिया कि मेरे मित्र गोविंद ने कहा है कि इतना दही बहुत है। भोजन के समय वैसा ही हुआ। यह देखकर जटिल के साथ गुरु जी गोविंद को देखने के लिए वन में गए। गोविंद ने जटिल से कहा कि तुम अपने गुरु से कह दो कि उस इमली के पेड़ में जितने पत्र हैं उतने वर्ष यदि तुम तपस्या करो, तो तुम्हें गोविंद का दर्शन होगा। जटिल से यह सुन-कर गुरु जी वहीं तपस्या करने लगे।

जडभरत—पहले समय में शालग्राम नामक स्थान में एक राजा रहता था, जिसका नाम भरत था। भरत स्व-कर्मनिष्ठ वानप्रस्थाश्रमी था। यह राजा अहिंसा आदि चित्त के गुणों का अभ्यास करके एक महान् आत्मा हो गया था। वह सर्वदा, यहां तक कि स्वप्न में भी, भगवान का नाम स्मरण करता था। इस प्रकार वह राजा मुनियों का वेष धारण कर पुष्प आदि वन से स्वयं ले आया करता था। एक दिन राजा भरत किसी नदी में स्नान करने गया। स्नान करके वह संध्या आदि कर रहा था, उसी समय आसन्नप्रसवा एक मृगी वहां जल पीने आई। मृगी जल पी ही रही थी कि एक भयानक सिंहनाद सुनाई पड़ा। उससे घबड़ाकर वह मृगी नदी के कगार पर कूदने लगी परंतु कगार ऊंचा होने और पूर्ण गर्भ होने के कारण वह कूद तो न सकी, पर गिरकर मर गई। कूदने के समय उस मृगी के गर्भ का बच्चा भी गर्भच्युत होकर नदी में गिरकर बहने लगा। सद्योजात मृगशिशु को बहते देख राजा भरत को बड़ी दया आई और वे उसको अपने आश्रम पर ले आए। थोड़े ही दिनों में राजा भरत का उसपर ऐसा स्नेह हुआ कि अपना नित्यकर्म छोड़कर उसी-का वे लालन-पालन करने लगे। वह मृग भी बड़ा हुआ, कभी-कभी वह आहार ढूंढ़ने के लिए आश्रम से बाहर निकल जाया करता था। उस समय राजा चिंतित हो जाया करता था। राजा ने राज्य, पुत्र, भोग्य वस्तु आदि छोड़कर वानप्रस्थाश्रम-धर्माचरण करने के लिए वनवास अंगीकार किया था। परंतु यहां भी वह एक मृग पर आसक्त हो गया। उसके समस्त धर्म-कर्म लुप्त हो गए। अंत में राजा भरत की मृत्यु का समय उपस्थित हुआ। राजा ने उसीकी चिंता करते-करते प्राणत्याग किए। मृत्यु के समय राजा ने मृग की चिंता करते-करते प्राणत्याग किए थे, अतः वे कालिंजर पर्वत पर एक जातिस्मर मृग हुए। पूर्वजन्म की बातें उन्हें स्मरण थीं। इस कारण वे माता को छोड़ शालग्राम नामक स्थान में चले आए। अपने किए कर्म ही से वे मृगयोनि को प्राप्त हुए हैं —यह जानकर वे अपने आश्रम ही में रहकर शुष्क तृण आदि भक्षणपूर्वक अपना समय बिताने लगे।

यथासमय मृगयोनि छोड़कर जडभरत एक ब्राह्मण-कुल में जातिस्मर ब्राह्मण हुए। पुनः अधोगति न हो इसलिए वे संसार के कामों से विरक्त रहने लगे। वे किसीके साथ अधिक बातें नहीं करते थे। जडबुद्धि पागल के समान रहने लगे। इस कारण लोगों ने

उनका नाम जडभरत रखा। वे मलिन वस्त्र धारण करते थे और अपने अंगों का भी परिष्कार नहीं करते थे। पर शास्त्रों में उनका अगाध ज्ञान था। उन्होंने कभी भी गुरु से अध्ययन नहीं किया। उनकी बातें भी किसीकी समझ में नहीं आती थीं। जिस समय जडभरत के सामने जो वस्तु उपस्थित रहती, वे उसी से अपना पेट भर लिया करते थे। वहां के लोग उसे मूर्ख, पागल समझकर सर्वदा उसको चिढ़ाया करते थे। कभी-कभी उसको भोजन-मात्र देकर उससे खूब काम करा लिया करते थे। पिता की मृत्यु के अनन्तर उनके भाई और भौजाई उनका अपमान करने लगे। एक समय सौवीरराज पालकी पर चढ़कर इक्षुमती-तीरस्थ कपिलाश्रम जा रहे थे। दुःखमय संसार में क्या करना चाहिए—यही जानने के लिए राजा कपिलाश्रम जा रहे थे। राजा के कर्मचारियों ने जडभरत को पालकी ढोने के लिए बेगार पकड़ लिया। जडभरत पालकी ढोने के काम में लग गए। वे भी पूर्वपाप को नष्ट करने की इच्छा से पालकी ढोने लगे। परंतु वे अन्य पालकी ढोने वालों के समान वेग से नहीं चल सकते थे। राजा ने जडभरत से कहा—क्यों जी! तुम तो मोटे हो, और थोड़ी ही दूर पालकी ढोने में थक गए? जडभरत ने उत्तर दिया—"मैं स्थूल नहीं हूं, तुम्हारी पालकी भी मैं नहीं ढोता, और न मैं थका ही हूं।" सौवीरराज ने जडभरत से उनकी बातों का अर्थ पूछा। जडभरत बोले—"मैं आत्मा हूं, आत्मा और देह एक ही नहीं है। आत्मा का उपचय-अपचय नहीं होता, वह एक अक्षय, निर्गुण, शांतिमय और प्रकृति से भिन्न है। मैं शिविका नहीं ढोता, क्योंकि शिविका एक प्रकार की लकड़ी है, लकड़ी वृक्ष से उत्पन्न होती है। शिविका को तोड़ने पर वह लकड़ी ही कही जाएगी, शिविका नहीं। काष्ठ वृक्ष से उत्पन्न होता है इस कारण, मैं शिविका ढोता हूं कहना बिलकुल असत्य है। किंतु शिविका मुझे ढोती है यह कहना विशेष सत्य है, क्योंकि जिस पंचभूत से वृक्ष उत्पन्न हुआ है, वही पंचभूत हमको वहन कर रहा है। जिस प्रकार शिविका तोड़ने पर शिविका दिखाई नहीं पड़ती और केवल वह काष्ठखंड देखा जाता है उसी प्रकार हमारे शरीर में हमको ढूंढ़ने पर कोई हमको नहीं पा सकता, केवल हाथ-पैर पाए जाएंगे। अतएव मैं देह नहीं, देह से भिन्न हूं।" जडभरत की ज्ञानयुक्त इन बातों को सुनकर सौवीरराज पालकी से उतर पड़े और उनसे क्षमाप्रार्थना करने लगे। पुनः राजा ने ब्राह्मण से पूछा—"आप कौन हैं, क्यों इस वेश में रहते हैं और आप के यहां आने का कारण क्या है?" ब्राह्मण ने कहा—"मैं कौन हूं यह कहना कठिन है, तथापि भोग के लिए मैं सर्वत्र जाता हूं यह सत्य है। मैं आत्मा हूं, आत्मा देव, मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि से अतिरिक्त है। केवल कर्मफलभोग के लिए शरीरभेद होता है, धर्म और अधर्म से सुख-दुःख उत्पन्न होते हैं। कर्म से उत्पन्न सुख-दुःख आदि के भोग के लिए जीव या आत्मा को देह धारण करना पड़ता है। इसी कारण सुख-दुःख आदि के भोग के लिए ही मेरा यहां आना हुआ है। यहां आने का और दूसरा कारण नहीं है।" इसी प्रकार अन्य अनेक प्रकार के उपदेश सुनने से राजा का भेदज्ञान नष्ट हुआ। और जडभरत का भी मोक्ष हो गया।

(विष्णुपुराण)

जतुकर्ण चरक में लिखा है कि भगवान पुनर्वसु के छः शिष्य थे, उनमें एक जतुकर्ण भी थे। इन्होंने एक वैद्यकसंहिता भी बनाई थी। परंतु इस समय उसका पता नहीं चलता।

जनक—(१) इक्ष्वाकुवंशी एक राजा का नाम। इक्ष्वाकु के दूसरे पुत्र का नाम निमि था। इनके विषय में पुराणों में एक विलक्षण कथा लिखी है। एक समय कई सौ वर्ष में समाप्त होने वाला यज्ञ का वे अनुष्ठान करना चाहते थे। उस यज्ञ का संपादन करने के लिए उन्होंने कुलगुरु वशिष्ठ को होता बनाया। परंतु वशिष्ठ इंद्र के यज्ञ में फंसे हुए थे। अतएव यज्ञ समाप्त होने तक वशिष्ठ ने निमि को ठहरने के लिए कहा। निमि ने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वशिष्ठ ने भी यह समझा कि मेरा कहना इन्हें स्वीकृत है। परंतु इधर निमि ने गौतम आदि ऋषियों को बुलाकर होता बनाया और यज्ञ भी प्रारंभ कर दिया। यह सुन वशिष्ठ बड़े क्रुद्ध हुए और उन्होंने शाप दिया। राजा ने भी वशिष्ठ को शाप दिया। दोनों के शाप से दोनों का शरीर नष्ट हो गया। उपचार आदि से राजा का शरीर मृतक के समान रक्षित करके यज्ञ समाप्त किया गया। निमि के कोई पुत्र न था। अतएव देश में अराजकता न फैल जाए इस लिए मुनियों ने निमि के शरीर का अरणि से मंथन किया। उस मृत देह से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह कुमार मृत देह से उत्पन्न हुआ—इस कारण उसका

नाम 'जनक' पड़ा। पिता की विदेहावस्था में उसका जन्म हुआ है इस कारण उसका दूसरा नाम वैदेह हुआ और मंथन से उत्पन्न होने के कारण उसका मिथि भी नाम हुआ। इसी जनक ने मिथिलापुरी बसाई थी। इन्हींके वंश में २७वीं पीढ़ी में सीरध्वज जनक उत्पन्न हुए थे, जिनकी कन्या का नाम सीता था। इन राजर्षि जनक का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में पहले ही किया गया है, तथा वहां विदेह राज्य की समृद्धि का भी वर्णन है। इनके समय में मिथिला विद्या का क्रीडा-क्षेत्र बना हुआ था। उपनिषद् आदि का पाठ करने से साफ ही मालूम पड़ता है कि उस समय बड़े-बड़े ऋषि भी इनसे ब्रह्मोपदेश ग्रहण करने के लिए जाते थे। राजर्षि जनक की सहायता से याज्ञवल्क्य ने यजुर्वेद का संकलन किया था। उस समय के ब्राह्मणों से भी इनका सम्मान बहुत बढ़ा-चढ़ा था।

(२) काश्मीर के एक राजा का नाम। इनके पिता का नाम सुवर्ण था। राजा जनक ने जालोर नामक बिहार और अग्रहार बनवाया था।

जनकपुर—(देखो मिथिला)

जनकेश बन्दीजन—ये हिंदी के एक कवि थे और मऊ बुंदेलखंड के रहने वाले थे। सं० १६१२ में ये उत्पन्न हुए थे। छत्रपुर के राजा के दरबार में ये रहते थे। इनकी कविता बहुत मधुर होती थी।

जनदेव—मिथिला के एक राजा का नाम। इनकी सभा में अनेक प्रकार के उपासना-मार्ग जानने वाले दार्शनिक पंडित रहते थे। उनमें नास्तिक पंडित भी थे। उनमें कुछ लोग देहनाश के साथ ही साथ आत्मा का भी नाश होना मानते थे। कुछ लोग शरीर को अविनाशी मानते थे। उन पंडितों के साथ बात करने से मोक्षलाभेच्छु राजा के मन को शांति नहीं मिलती थी, इस कारण राजा पंडितों से अप्रसन्न रहा करते थे। परलोक, पुनर्जन्म, आत्मतत्त्व आदि विषयों की सुमीमांसा न होने के कारण राजा सर्वदा उदासीन रहा करते थे। एक समय कपिलापुत्र महामुनि पंचशिख पृथ्वी पर घूमते-घूमते मिथिला में उपस्थित हुए। महर्षि पंचशिख ने एक स्त्री का दूध पिया था, इसी कारण वे कपिलापुत्र कहे जाते थे। राजा जनदेव पंचशिखाचार्य से तत्त्वज्ञान की शिक्षा प्राप्त कर, कृतार्थ हुए थे। (महाभारत)

जनमेजय—(१) राजा पुरु के पुत्र और ययाति के पौत्र। जनमेजय के पुत्र प्रचिन्वत् ने अपने पराक्रम से समस्त पूर्व देश को जीता था।

(२) राजा परीक्षित के पुत्र और तीसरे पांडव अर्जुन के पौत्र। राजा परीक्षित सांप के काटने से मरे, इस कारण उनके पुत्र जनमेजय ने सर्पों को नाश करने के लिए एक बड़ा यज्ञ करना प्रारंभ किया। परीक्षित को काटने वाला तक्षक प्राणभय से इंद्र की शरण गया। सर्पयज्ञ बंद करा देने के लिए नागराज वासुकि ने अपने भानजे और जरत्कारु के पुत्र आस्तीक को जनमेजय के पास भेजा। आस्तीक जनमेजय के निकट जाकर सर्पयज्ञ की प्रशंसा करने लगे। जनमेजय बोले—यदि देवराज इंद्र तक्षक को छोड़ना नहीं चाहते, तो इंद्र के साथ ही तक्षक को भस्म कर डालो। पुरोहित मंत्र पढ़ने लगे। तक्षक के साथ ही इंद्र भी यज्ञाग्नि की ओर आकृष्ट होने लगे। अंततः इंद्र ने तक्षक को छोड़ दिया। अब केवल तक्षक ही यज्ञाग्नि की ओर खींचा जाने लगा। जनमेजय ने आस्तीक को वर देने की प्रतिज्ञा की। आस्तीक बोले—महाराज! सर्पयज्ञ बंद कर दो, जिससे हमारे मातृकुल की रक्षा हो, यही हमारी अभिलाषा और प्रार्थना है। जनमेजय ने आस्तीक की प्रार्थना स्वीकार करके यज्ञ बंद कर दिया। (महाभारत)

जनस्थान—जहां अब औरंगाबाद (दक्षिण हैदराबाद के अंतर्गत) है वहां किसी समय विकट वन था और यहां राक्षसों की चौकी थी।

जना—माहिष्मती के राजा नीलध्वज की महारानी। इनके पुत्र का नाम प्रवीर और कन्या का नाम स्वाहा था। स्वाहा अग्निदेव को ब्याही गई थी। जना के कहने से प्रवीर ने पांडवों के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को रोक लिया था। श्रीकृष्ण की सहायता और उनके अत्यंत परिश्रम करने पर प्रवीर समरक्षेत्र में मारा गया। पुत्रशोक से विह्वल होकर जना ने भी गंगा में शरीरत्याग किया।

जनार्दन भट्ट—(१) बंबई की छपी काव्यमाला के एकादश गुच्छक में इनका बनाया 'शृंगारशतक' नामक ग्रंथ देखने में आता है। परंतु उसमें इनके निवास या समय का पता नहीं है। काव्य की रचना देखने से ये कवि बहुत ही अर्वाचीन जान पड़ते हैं। इनके पिता का नाम उस ग्रंथ में 'जगननिवास गोस्वामी' लिखा मिलता है। इन्होंने अपने ग्रंथ में पूर्व के कवियों का स्मरण किया है।

विख्याता रघुवंशवद्गुणगणैः शृङ्गाररसारापरं,
शृङ्गारे रसमञ्जरीवदमला माघार्थवत्सत्तनौ।
क्लिष्टा नैषधवच्च मानकरणे कादम्बरीवद्व्रते,
नानाश्लेषविचक्षणा विजयते सारङ्गरम्येक्षणा॥

इससे विदित होता है कि कालिदास, भानुदत्त मिश्र, माघ, श्रीहर्ष, बाण आदि इनके समय तक प्रसिद्धि पा चुके थे। उपर्युक्त कवियों में भानुदत्त मिश्र सबसे नवीन हैं। इनका समय १४वीं सदी का अंत या १५वीं सदी का आदि माना जा सकता है। अतएव विद्वानों का कहना है कि इन गोस्वामी जी का समय १६वीं सदी का पिछला भाग अनुमानित किया जा सकता है।

(२) वैद्यरत्न नामक वैद्यक का एक ग्रंथ इन्होंने हिंदी में लिखा है।

जमदग्नि—महर्षि ऋचीक के पुत्र। ये वैदिक ऋषि थे। ऋग्वेद के कई सूक्तों के पाठ करने से इसका प्रमाण पाया जाता है कि जमदग्नि और विश्वामित्र दोनों ही वशिष्ठ के विरोधी थे। राजा प्रसेनजित् की कन्या रेणुका के साथ इनका ब्याह हुआ था। इनके गर्भ से जमदग्नि के पांच पुत्र उत्पन्न हुए थे। रुमावान्, सुषेण, बहु, विश्वाबहु और राम। राम कनिष्ठ थे, परंतु गुण में सबसे बड़े थे। इन्हींको परशुराम भी कहा जाता था।

एक दिन जमदग्नि की स्त्री रेणुका गंगा स्नान करने गई थी। वहां उन्होंने राजा चित्ररथ को अपनी स्त्रियों के साथ जलक्रीडा करते देखा। इससे रेणुका को भी काम उत्पन्न हुआ और वे चित्ररथ के साथ व्यभिचार करने में प्रवृत्त हुईं। घर आने पर जमदग्नि ने उनपर संदेह किया और अपने पुत्रों को एक-एक करके रेणुका का सिर काटने की आज्ञा दी। परंतु किसीने उनकी आज्ञा का पालन नहीं किया, अतएव जमदग्नि के शाप से वे भी जड हो गए। अंत में जमदग्नि ने परशुराम से कहा, उन्होंने शीघ्र ही पिता की आज्ञा का पालन किया। इससे जमदग्नि उनपर बहुत प्रसन्न हुए। प्रसन्न हो राम को वर देने को उद्यत हुए। तब राम ने उनसे अपनी माता का प्राणदान मांगा। जमग्नि के वर से उनकी माता जीवित हो गईं। जमदग्नि ध्यानमग्न अवस्था में हैहयराज कार्तवीर्य के हाथ से मारे गए थे।

जमालउद्दीन—ये हिंदी के अच्छे कवि थे और संवत् १६२५ में उत्पन्न हुए थे।

जम्बुद्वीप—एक द्वीप का नाम, जिसके अंतर्गत हमारा यह भारतवर्ष है। पुराणों में लिखा है कि राजा प्रियव्रत ने समस्त भूमंडल के सात भाग किए थे और अपने सातों पुत्रों को एक-एक भाग दे दिया था। ज्येष्ठ पुत्र अग्नीध्र को जम्बुद्वीप दिया था। श्रीमद्भागवत में महाराज परीक्षित के प्रश्न के उत्तर में शुकदेवजी ने कहा—हे राजन, यह भूमंडल एक बड़े कमल के समान है। सात द्वीप इसके सात कोष हैं। उन सात कोषों के मध्य में वर्तमान यह जम्बुद्वीप है। उसकी दीर्घता नियुत योजन है और वह लक्ष योजन विशाल है। जम्बुद्वीप गोलाकार है। इस द्वीप में नववर्ष हैं, जिनमें प्रधान भारतवर्ष है। इस वर्णन से जान पड़ता है कि उस समय आजकल के समस्त भूमंडल को जम्बुद्वीप कहते थे और वह भारतीय नृपतियों के अधीन था।

जम्बुमाली—एक राक्षस। इसके पिता का नाम प्रहस्त था। रावण ने इसीको हनुमान से लड़ने के लिए भेजा था। इसके दांत बड़े-बड़े थे। यह लाल वस्त्र पहना करता था। गधे के रथ पर चढ़कर जम्बुमाली हनुमान से लड़ने के लिए गया था। इसी युद्ध में हनुमान ने इसे मार डाला। (रामायण)

जम्भनाथ—इनका जन्म जोधपुर के नागोर जिले में पीपासर या पयासर नामक गांव के एक राजपूत परमार परिवार में १४५१ ई० (१५०८ वि०) को हुआ था। इनके पिता का नाम लोहित और माता का नाम हंसादेवी था। अपने आश्चर्यजनक कार्यों के कारण जनता में ये जम्भोजी और प्रसिद्ध सिद्ध के रूप में मुनींद्र जम्भ के नाम से प्रचलित हुए। आजीवन इन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन कर संतों का सादा जीवन व्यतीत किया। स्थान-स्थान भ्रमण कर उन्होंने जनता को अपने सदुपदेशों से लाभान्वित किया। वे राजस्थान से लेकर उत्तरप्रदेश तक विख्यात हो चुके थे। इनकी कोई भी रचना उपलब्ध नहीं है, किंतु विभिन्न संग्रहों में उनकी स्फुट रचनाएं संकलित हुई हैं। इन रचनाओं से ज्ञात होता है कि वे जात-पांत तथा भेद-भाव के विरोधी और मानव-समानता के पक्षपाती थे। उनकी अवधीप्रधान भाषा में खड़ीबोली का विकसित रूप विद्यमान है। वे विश्नुई संप्रदाय के संस्थापक थे, जिसका संबंध विद्वानों ने नाथपंथ से स्थापित किया है। इनके प्रमुख चार शिष्यों के नाम थे—हावली, पावजी, लोहा पागल और दत्तनाथ।

उन्होंने १५२३ ई० (१५८० वि०) में तालबा (बीकानेर) में समाधि ग्रहण कर शरीर त्यागा। (परशुराम चतुर्वेदी–उत्तरी भारत की संतपरंपरा)।

जय—इसके छोटे भाई का नाम था विजय। ये दोनों विष्णु के द्वाररक्षक थे। एक समय इन लोगों ने सनकादि ऋषियों को विष्णु के यहां जाने से रोका, अतएव ऋषियों ने इन्हें शापित किया। पुनः जब इन लोगों ने प्रार्थना की तब ऋषि बोले—हम लोगों का शाप व्यर्थ नहीं हो सकता। अतएव तुम लोगों की दो प्रकार से मुक्ति हो सकती है। एक तो विष्णु की शत्रुता करने से और दूसरे मित्रता करने से। इन लोगों ने शीघ्र बैकुंठ जाने के लिए शत्रुभाव से मुक्ति की प्रार्थना की। 'तथास्तु' कहकर मुनि चले गए। मुनियों के शाप से जय सत्ययुग में हिरण्याक्ष, त्रेता में रावण और द्वापर में शिशुपाल हुआ था। और विष्णु के हाथ से मारे जाने के कारण इसकी मुक्ति हुई थी।

जय कवि—ये लखनऊ के रहने वाले और बंदीजन थे। सं० १६०१ में इनका जन्म हुआ था। ये वाजिद-अलीशाह के दरबार में थे। उर्दू और हिंदी भाषा में इन्होंने बहुत कविता की है। प्रायः सामयिक चेतावनी-संबंधी इनकी कविता हुआ करती थी। अतएव वह सर्वप्रिय थी। मुसलमानों से धर्मविषयक झगड़ा इन-का बहुत दिनों तक चलता रहा।

जयकृष्ण कवि—ये भी हिंदी के कवि थे। ये भवानीदास कवि के पुत्र थे। 'छंदसार' नामक एक पिंगल का ग्रंथ इन्होंने बनाया है। इनके समय और निवास-स्थान आदि का कुछ भी पता नहीं है।

जयचन्द—कनौज के अंतिम हिंदू राजा। इनके पिता का नाम विजयचंद्र था। ये दिल्ली के राजा अनंगपाल के दौहित्र थे। अनंगपाल की दूसरी कन्या अजमेर के राजा सोमेश्वर को ब्याही गई थी। इसीके गर्भ से पृथ्वीराज का जन्म हुआ था। पृथ्वीराज और जयचंद दोनों ही दिल्लीश्वर अनंगपाल के दौहित्र थे। पृथ्वी-राज पर अनंगपाल अधिक प्रेम रखते थे। इसी कारण दिल्ली के सिंहासन पर पृथ्वीराज को बैठाकर अनंगपाल परलोक सिधारे। इस कारण जयचंद इनसे भीतरी डाह रखने लगा। वह पृथ्वीराज को राजच्युत करने का अवसर ढूंढ़ने लगा। जयचंद एक पराक्रमी राजा था। उसने अपने पराक्रम से दक्षिण में नर्मदा नदी के तीर तक अपना राज्य फैलाया था। एक समय जयचंद ने अपनी कन्या संयुक्ता के स्वयंवर के लिए एक बड़े यज्ञ का प्रारंभ किया था। उस यज्ञ में अनेक स्थान के राजा निमंत्रित किए गए थे परंतु पृथ्वीराज और राणा संग्रामसिंह को इस यज्ञ के लिए निमंत्रण नहीं भेजा गया था। यही नहीं बल्कि इनको अपमानित करने के लिए जयचंद ने इन दोनों की स्वर्णमूर्ति बनवाकर और उन्हें दरबान के कपड़े पहना-कर फाटक पर रखवा दिया था। जयचंद की कन्या संयुक्ता ने पृथ्वीराज की स्वर्णप्रतिमा के गले में माला पहना दी। इसका समाचार पाकर पृथ्वीराज अपनी सेना लिए हुए कनौज पहुंच गए और संयुक्ता को लेकर चल दिए। इससे जयचंद ने अपना बड़ा अपमान समझा और इस अपमान का बदला लेने के लिए गजनी के राजा शहाबुद्दीन गोरी को दिल्ली पर आक्र-मण करने के लिए उत्तेजित किया। दिल्ली पर चढ़ाई करने के लिए शहाबुद्दीन गोरी सन् ११९१ ई० में भारत आया। पानीपत के पास तिरौरी के मैदान में पृथ्वीराज और गोरी का युद्ध हुआ। परंतु इस युद्ध में हारकर गोरी लौट गया। दो वर्ष के बाद गोरी पुनः सन् ११९३ ई० में भारत आया। इस बार भी वहीं युद्ध हुआ। परंतु इस बार पृथ्वीराज का भाग्य-चक्र उलट गया। इस युद्ध में पृथ्वीराज हार गए और मारे गए। दिल्ली का राज्य मुसलमानों के हाथ चला गया। जयचंद को भी इसका फल बहुत शीघ्र ही मिल गया था। कुछ दिनों के बाद मुसलमानों ने इनके राज्य पर भी आक्रमण किया। जयचंद हारकर भागा। भागते समय वह एक नदी पार करने लगा, उसी समय वह नाव के साथ उसी जल में डूब मरा।
(इतिहास)

जयत कवि—ये हिंदी के कवि थे। सं० १६०१ में ये उत्पन्न हुए थे। ये अकबर बादशाह के दरबार में थे।

जयदेव—(१) ये महाशय 'गीतगोविंद' के रचयिता अत्यंत मधुर और ललित कविता बनाने के लिए प्रसिद्ध हुए। इन्होंने निज रचित 'गीतगोविंद' में अपने माता-पिता का नामोल्लेख किया है। इनकी माता का नाम वामादेवी और पिता का नाम भोजदेव था। बंगाल में वीरभूमि नाम के स्थान से कुछ दूर हटकर, भगीरथी में गिरनेवाला अजय नामक एक नद है। इसीके किनारे केंदुला नामक एक गांव है, जिसे लोग जयदेव की जन्मभूमि बतलाते हैं। स्वयं

जयदेव ने लिखा है—

वर्णितं जयदेवकेन हरेरिदं प्रवणेन ।
किन्दुबिल्वसमुद्रसंभवरोहिणीरमणेन ।।

इसीसे पूर्वोक्त बातें मालूम होती हैं। जयदेव के समय के विषय में विचार करने से यही प्रतीत होता है कि ये उमापतिधर के समकालीन थे। ये उमापतिधर बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के मंत्री थे, जो सन् १११६ ई० में वर्तमान था और जिसके पिता दानसागर के रचयिता बल्लालसेन के नाम से सेनावंश के राजाओं के बीच अत्यंत प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध थे। अतएव उमापति के समकालीन होने के कारण १२वीं सदी का पूर्व भाग ही इनका समय माना जा सकता है।

'पृथ्वीराज रासो' के रचयिता कवि चंद १२वीं शताब्दी के अंतभाग में विद्यमान थे, यह बात इतिहास से प्रमाणित हो चुकी है और चंद कवि ने अपने ग्रंथ में जयदेव के गीतगोविंद का नाम दिया है। इससे भी ऊपर कही हुई बात ही प्रमाणित होती है।

जयदेव के रचित 'गीतगोविंद' की कईएक टीकाएं देखने में आती हैं, जिनमें सबसे पुरानी टीका भगवती भवेश के बेटे मैथिल कृष्णदत्त की बनाई जान पड़ती है। भक्तमाल में भी विस्तारपूर्वक जयदेव का चरित्र-वर्णन किया गया है। संस्कृत ग्रंथकार भक्तों के बीच जयदेव प्रसिद्ध भी बहुत हैं। लोग तो यहां तक कहते हैं कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण जी भी 'गीतगोविंद' के गान से रीझ जाते हैं। संस्कृत जानने वालों में विरला ही कोई होगा, जिसने 'गीतगोविंद' काव्य और जयदेव कवि का नाम न सुना होगा।

(२) ये प्रसिद्ध ग्रंथकार 'प्रसन्नराघव' नाटक के रचयिता हैं। ये नैयायिक भी थे। प्रसन्नराघव की प्रस्तावना में इन्होंने यह शंका उठाई है कि जो कवि है वह उत्तम नैयायिक कैसे हो सकता है और उसका समाधान भी विचित्र रीति से किया है जैसाकि नीचे लिखे श्लोक से प्रकट हो जाता है—

येषां कोमलकाव्यकौशलकलालीलावती भारती
तेषां कर्कशतर्कवक्रवचनोद्गारेऽपि किं हीयते।
यैः कान्ताकुचमण्डले कररुहाः सानन्दमारोपिता-
स्तैः किं मत्तकरीन्द्रकुम्भशिखरे नारोपणीयाः शराः।

अर्थात् जिन मनुष्यों की वाणी कोमल काव्यरचना की निपुणता वा चातुर्य की कला से भरी चमत्कार उपजाने वाली है, क्या उनकी वही वाणी न्यायशास्त्र के रूखे और कुटिल शब्दों के उच्चारण से हीन हो सकती है? भला देखो तो जिन विलासियों ने आनंदपूर्वक अपनी ललनाओं के गोल स्तनों पर नखों के चिह्न किए हों वे क्या मतवाले हाथी के ऊंचे गंडस्थलों पर अपने बाणों का घाव नहीं करते?

इन्होंने अपनी माता का नाम सुमित्रा, पिता का नाम महादेव और अपने-आपको कौंडिन्य अर्थात् कुंडिनपुरनिवासी बताया है। निज रचित ग्रंथ में इन्होंने निम्नलिखित कवियों का नामोल्लेख किया है—चोर, मयूर, भास, कालिदास, हर्ष और बाण।

अनुमान से विदित होता है कि उपर्युक्त सब कवि खृष्टीय सातवीं शताब्दी की समाप्ति के पूर्व प्रसिद्धि पा चुके थे। अतएव यह जयदेव सातवीं शताब्दी से पिछले जान पड़ते हैं। परंतु गीतगोविंदकार जयदेव इनसे अवश्य भिन्न हैं क्योंकि न तो इनके माता-पिता का मेल है और न वासस्थान का। इन्हीं प्रसन्नराघवकार जयदेव की ही उपाधि पक्षधर मिश्र और पीयूषवर्ष थी ऐसा बहुतों का अनुमान है। 'चंद्रालोक' नामक अलंकार का एक ग्रंथ भी इन्हीं जयदेव का बनाया हुआ है। जयदेव-रचित 'रतिमंजरी' नामक एक छोटा-सा और ग्रंथ देखने में आता है, परंतु पता नहीं कि यह जयदेव कौन हैं।

श्रीहरप्रसाद शास्त्री ने लिखा है कि पक्षधर मिश्र ई० १५वीं शताब्दी में मिथिला में विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे। यह अनुमान बहुत करके सत्य ही होगा क्योंकि गोस्वामी तुलसीदास जी का, जिन्होंने हिंदी भाषा में 'रामचरितमानस' नाम की रामायण लिखी है, जीवनकाल प्रायः सन् १५२६ ई० से १६२२ ई० तक था, अर्थात् १६वीं सदी के अंतिम भाग में था। इन गोसाईं जी ने 'प्रसन्नराघव' नाटक के भावों को अपनी रामायण में भर दिया है—ऐसा अनुमान होता है, क्योंकि ऐसे भाव बहुधा ग्रंथों में नहीं मिलते। उदाहरणार्थ कुछ श्लोक लिखे जाते हैं—

झगिति जगतीमागच्छन्त्याः पितामहविष्टपान्
महति पाथेयो देव्या वाचः श्रमः समजायत।
अपि कथमसौ मुञ्चेदेनां न चेदवगाहते
रघुपतिगुणग्रामश्लाघ्यां सुधामयदीर्घिकाम् ।।
(प्रसन्नराघव)

भक्ति हेतु विधि भवन विहाई,
सुमिरत शारद आवत धाई।

रामचरित सर बिनु अन्हवाये,
सो श्रम जाय न कोटि उपाये ।।
(रामायण)

नेदं धनुश्चलति किञ्चिदपीन्दुमौले:
कामातुरस्य वचसामिव संविधानै-
रभ्यर्थितं प्रकृति चारु मनः सतीनाम् ।
(प्रसन्नराघव)

डगै न शम्भु शरासन कैसे ।
कामी वचन सती मन जैसे ।।
(रामायण)

चन्द्रहास हर मम परितापं रामचन्द्रविरहानलजातम् ।
त्वं हि कान्तिजितमौक्तिकचूर्णं धारया वहसि
शीतलमम्भः ।।
(प्रसन्नराघव)

चंद्रहास हर मम परितापम् ।
रघुपति विरह अनल संजातम् ।।
शीत निशा तव असि वर धारा ।
कह सीता हर मम दुख भारा ।।
(रामायण)

कुरु सकरुणं चेत: श्रीमन्नशोकवनस्पते
दहनकणिकामेकां तावन्मम प्रकटीकुरु ।
ननु विरहिणीसंतापाय स्फुटीकुरुत भवाँ-
स्तव किसलयश्रेणिव्याजात् कृशानुशिखावलीम् ।।
(प्रसन्नराघव)

सुनहु विनय मम विटप अशोका,
सत्य नाम पर हरु मम शोका ।
नूतन किसलय अनल समाना,
देह अगिनि जनि करहि निदाना ।।
(रामायण)

हिमांशुश्चण्डांशुर्नवजलधरो दावदहन:
ह्यरिद्वीचीवात: कुपितफणिनिश्वासपवन: ।
नवा मल्ली भल्ली कुवलयवनं कुन्तगहनं
मम त्वद्विश्लेषात् सुमुखि विपरीतं जगदिदम् ।।
(प्रसन्नराघव)

राम वियोग कहा तब सीता,
मोकहँ सकल भयउ विपरीता ।
नव तरु किसलय मनहु कृशानू,
काल निशा सम निशि शशि भानू ।
कुवलय विपिन कुन्त वन सरिसा,
वारिद तप्त तेल जनु बरिसा ।
ज्यहि तरु रहै करै सोइ पीरा,
उरग श्वास सम त्रिविध समीरा ।।
(रामायण)

अतएव प्रसन्नराघवकार जयदेव तुलसीदास जी के पहले, अर्थात् १५वीं सदी में, वर्तमान रहे होंगे । कुछ लोग पक्षधर मिश्र को प्रसन्नराघवकार से भिन्न मानते हैं । परंतु ऐसा संशय करने का कोई विशेष कारण नहीं दीख पड़ता ।

जयदेव कवि—(१) ये हिंदी के कवि सं० १८१५ में उत्पन्न हुए थे । इनकी कविता सुंदर होती थी ।

(२) ये कंपिला के रहने वाले हिंदी के कवि थे । सं० १७२८ में ये उत्पन्न हुए थे । नवाब फाजिल-अलीखां के यहां रहते थे और सुखदेव मिश्र कंपिला वाले के शिष्यों में सर्वोत्तम थे ।

जयद्रथ—सिंधु देश के एक राजा । दुर्योधन की भगिनी दु:शला इनको ब्याही गई थी । जयद्रथ के पिता का नाम वृद्धक्षत्र था । जिस समय पांडव काम्यक वन में वास करते थे, उस समय इन्होंने द्रौपदी को कुटी में अकेली पाया । उस समय पांडव कुटी में नहीं थे । जयद्रथ ने द्रौपदी का हरण किया । महावीर भीम ने जयद्रथ को पराजित करके द्रौपदी को उबारा । अर्जुन और भीम दोनों ने जयद्रथ की बड़ी दुर्दशा की । उसका सिर मूंड़कर इन्होंने छोड़ दिया । इसका बदला लेने के लिए जयद्रथ कठिन तपस्या करने लगा । सांसारिक पदार्थों से विरक्त होकर उसने कठिन तपस्या ठानी । उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर महादेव वर देने के लिए वहां उपस्थित हुए । जयद्रथ बोला—मैं यही वर चाहता हूं कि एक रथ पर चढ़कर पांचों पांडवों को हरा दूं । महादेव बोले—तुम अर्जुन को छोड़कर अन्य पांडवों को एक दिन हरा दोगे । यह वर देकर महादेव चले गए । महादेव के इस वर के प्रभाव से महाभारत के युद्ध में अभिमन्यु-वध के समय द्रोण-निर्मित चक्रव्यूह का जयद्रथ द्वार-रक्षक था । अभिमन्यु की सहायता करने के लिए युधिष्ठिर, भीम आदि जाना चाहते थे, परंतु जयद्रथ ने युद्ध में इनको हरा दिया । इसी कारण वे भीतर जाकर अभिमन्यु की सहायता नहीं कर सके । उस समय अर्जुन संशप्तक दल के साथ युद्ध कर रहे थे । व्यूह के समीप जाने का उन्हें अवसर ही नहीं मिला । पुत्र के मारे जाने का दारुण संवाद सुनकर अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि सूर्यास्त होने के पहले ही जयद्रथ को मार

डालूंगा, नहीं तो स्वयं अग्निकुंड में प्रवेश कर, प्राण-त्याग करूंगा। जयद्रथ को बचाने के लिए कौरवों ने बड़ी चेष्टा की थी, उन्होंने जयद्रथ को छिपा रखा था। श्रीकृष्ण ने चक्र से सूर्य को आच्छादित कर दिया, इससे लोगों को मालूम हुआ कि संध्या हो गई। कौरव इससे प्रसन्न हुए कि अब तो अर्जुन स्वयं मर जाएंगे। इसी हर्ष से जयद्रथ बाहर निकला। श्रीकृष्ण की प्रेरणा से अर्जुन ने उसे मार डाला। उसके पिता वृद्धक्षत्र ने उसे वर दिया था कि जो इसका सिर भूमि पर गिराएगा उसका मस्तक खंड-खंड हो जाएगा। उस समय उसके पिता वृद्धक्षत्र कुरुक्षेत्र में समंतपंचक नामक स्थान में तपस्या करते थे। अर्जुन ने जयद्रथ का सिर उनके अंक में रख दिया। तपस्या के अंत में जब वे उठे तब उन्हींके द्वारा जयद्रथ का सिर भूमि पर गिरा। इस कारण उनका सिर खंड-खंड हो गया। अपने वर का भी स्वयं उन्हींको फल मिला। जयद्रथ के पुत्र का नाम सुरथ था। (महाभारत)

जयन्त—(१) अयोध्याधिपति राजा दशरथ के एक मंत्री का नाम। (रामायण)

(२) देवराज इंद्र के पुत्र का नाम। पारिजात हरण के समय इंद्रपुत्र जयंत और कृष्णपुत्र प्रद्युम्न दोनों में खूब युद्ध हुआ था। (हरिवंश)

इंद्रपुत्र ही ने जानकी जी को काक का रूप धर, अपनी चोंच से घायल किया था और जब श्रीरामचंद्र जी ने उसके ऊपर ब्रह्मास्त्र चलाया तब वह प्राण बचाने के लिए तीनों लोकों में गया, पर उसकी कोई भी रक्षा नहीं कर सका। तब वह निरुपाय हो श्रीराम जी की शरण में गया। श्रीराम जी ने उसको प्राणदंड तो न दिया, किंतु उसकी एक आंख फोड़ दी।

जयपाल—(१) लाहौर के प्रसिद्ध एक हिंदू राजा। इनके पुत्र का नाम था अनंगपाल। सन् ९७७ ई० में गजनी के मालिक ने इन्हें जीता था। उसने पेशावर पर अधिकार कर लिया था और ५० हाथी और १० लाख रुपये की भेंट लेकर वह अपनी राजधानी को लौट गया। इसके बाद उसके पुत्र महमूद ने सन् १००१ ई० में पुनः जयपाल के राज्य पर चढ़ाई की। इस युद्ध में भी जयपाल हार गए और कैद हुए। परंतु वार्षिक कर देने की प्रतिज्ञा करने पर छूट गए। दो बार पराजित होने के कारण ये अत्यंत दुःखी हुए और अपने पुत्र को राज्य देकर स्वयं अग्निकुंड में जलकर मर गए। (इतिहास)

(२) अनंगपाल के पुत्र और प्रथम जयपाल के पौत्र। सन् १०१३ ई० में पिता की मृत्यु होने पर ये लाहौर की राजगद्दी पर विराजे। पुनः सन् १०२२ ई० में गजनी के राजा महमूद ने इनको परास्त करके लाहौर पर अपना अधिकार कर लिया। तभी से भारत में मुसलमानी राज्य की नींव पड़ी।

जयमल—(१) एक विख्यात राजपूत वीर। ये बदनौर के राजा थे। बदनौर मेवाड़ के प्रधान सामंत राज्यों में से है। राणा सांगा के पुत्र कायर उदयसिंह अकबर के डर से राजपूतों की प्यारी चित्तौड़ की भूमि को छोड़कर भाग गए। उस समय भी वीरवर जयमल अकबर के सामने खड़े थे और मातृभूमि की रक्षा करने के लिए स्वयं राजपूत होने का परिचय दे रहे थे। इनके युद्ध-कौशल को देखकर मुगल सैन्य को आश्चर्यचकित होना पड़ा था। परंतु असंख्य मुगल सेना के साथ एकाकी जयमल जय प्राप्त नहीं कर सके। सन् १५६८ ई० में जयमल ने स्वदेशोद्धार के लिए युद्धक्षेत्र में प्राणत्याग किया। अकबर ने यद्यपि इस वीर को बड़ी नीचता से मारा था, तथापि इससे उसके हृदय में इनका सम्मान नहीं था—यह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि उसने इनकी संगमरमर की मूर्ति दिल्ली में स्थापित करवाई थी। (टाड्स राजस्थान)

(२) भक्तमाल में भी एक जयमल का विवरण लिखा है। ये अत्यंत विष्णुभक्त थे। ये प्रतिदिन बहुत देर तक विष्णु की पूजा किया करते थे। एक दिन एक राजा ने, जब जयमल विष्णु-पूजन कर रहे थे, तब उनके राज्य पर आक्रमण किया। उस विपत्ति के समय भी जयमल ने पूजा नहीं छोड़ी। स्वयं विष्णु योद्धा का वेश धारण कर रणक्षेत्र में उपस्थित हुए और शत्रुपक्ष का नाश करने लगे। केवल वह राजा ही युद्धक्षेत्र में बचे हुए थे। पूजा समाप्त कर जयमल भी युद्धक्षेत्र में उपस्थित हुए। जयमल के शत्रु राजा ने जिस अलौकिक उपाय से उनकी सेना का नाश हुआ है उसका वर्णन जयमल के सामने किया। जयमल की बातें सुनकर वह राजा भी विष्णुभक्त हो गया। (भक्तमाल)

जयसल—(१) जयसलमेर राज्य के प्रतिष्ठाता यदुवंशी एक राजा। ये दूसाजी के पुत्र थे। ये दो भाई थे। मेवाड़ की राजकन्या से भी दूसाजी के एक पुत्र

उत्पन्न हुआ था। दूसाजी के बाद वही मेवाड़-राजकन्या का पुत्र लुद्रवा राज्य का अधीश्वर हुआ। इसका विवाह सोलंकी सिद्धराज जयसिंह की कन्या से हुआ था, जिसका नाम भोजदेव था। पिता के परलोकवास के अनन्तर भोजदेव ही लुद्रवा का राजा हुआ। उस समय जयसल की अवस्था ३५ वर्ष की थी। जयसल ने भोजदेव के विरुद्ध षड्यंत्र रचा। परंतु भोजदेव सर्वदा ५०० सोलंकी वीरों से रक्षित रहते थे, इस कारण उनके शरीर पर जयसल हस्तक्षेप नहीं कर सके। उसी समय शाहबुद्दीन और पाटन के अधीश्वर दोनों में युद्ध हो रहा था। राजनीतिविशारद जयसल ने शाहबुद्दीन के साथ मिलकर पट्टन पर आक्रमण करने का दृढ़ संकल्प किया। इसी विचार से उन्होंने दो सौ साहसी घुड़सवारों को साथ लेकर पंजाब की यात्रा की। जयसल यवनराज से मिले। यवनराज ने इनका अभिप्राय जानकर अपने प्रधान सेनापति करीमखां को इनके साथ लुद्रवा पर आक्रमण करने के लिए भेज दिया। उस युद्ध में भोजदेव मारा गया। उसकी सेना ने जयसल की अधीनता स्वीकार की। लुद्रवा राज्य जयसल के अधीन हो गया।

जयसल ने लुद्रवा को राजधानी बनाने के लिए अनुपयुक्त जानकर वहां से पांच कोस की दूरी पर एक स्थान निश्चित किया। एक समय एक पत्थर पर जयसल ने एक ब्राह्मण को बैठा देखा। उस ब्राह्मण की कुटी ब्रह्मसरकुंड के समीप थी। जयसल ने ब्राह्मण को प्रणाम करके उसे अपने आने का उद्देश्य कह सुनाया। तब ब्राह्मण ने इस प्रकार कहा—त्रेतायुग में कावाकाग नामक एक योगी इस कुंड के पास रहता था। उसी योगी के नाम के अनुसार इस कुंड से निकली नदी कागा नाम से प्रसिद्ध हुई। एक समय अर्जुन भी श्रीकृष्ण के साथ इस कुंड की यात्रा करने आए थे। उस समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि बहुत दिनों के पीछे हमारे ही वंश का एक मनुष्य इस स्थान पर अपना राज्य स्थापित करेगा। अर्जुन ने कहा—यदि यहां राजधानी बनाई जाएगी, तो यहां के रहने वालों को अत्यंत जलकष्ट होगा। क्योंकि इस नदी का जल निर्मल नहीं है। यह सुनकर श्रीकृष्ण ने अपने चक्र से इस त्रिशृंग पर्वत से एक नई नदी निकाली। यह कहकर योगी ने एक पत्थर निकाला जिसपर एक श्लोक लिखा हुआ था, जिस का अभिप्राय यह था—

हे यदुवंशावतंस! आप इस देश में पधारिए और इस शिखर पर त्रिकोण दुर्ग बनवाइए।

लुद्रवा का विध्वंस हो गया है और जयसल का देश इस स्थान से पांच कोस दूर है जो लुद्रवा से अत्यंत दृढ़ है।

हे यदुवंशसंभूत जयसल! लुद्रवा को छोड़कर इस स्थान पर राजधानी स्थापित करो। सन् ११५६ ई० श्रावणकृष्णा द्वादशी रविवार के दिन जयसलमेर की राजधानी प्रतिष्ठित हुई। लुद्रवा निवासी भी धीरे-धीरे यहां चले आए। जयसल के दो पुत्र थे, जिनका नाम केलन और शालिवाहन था। इन्होंने पाड़ जाति के एक विद्वान् को अपना प्रधानमंत्री और उपदेष्टा बनाया था। (टाड्स राजस्थान)

जयसिंह—(१) उदयपुर के महाराणा। ये महाराणा राजसिंह के पुत्र थे। राजसिंह मरने के बाद सन् १६८१ ई० में उनके दूसरे पुत्र जयसिंह मेवाड़ की राजगद्दी पर बैठे। जयसिंह ने राजगद्दी पर बैठकर औरंगजेब के साथ संधि कर ली। बादशाह का पुत्र अजीम और मुगल-सेनापति दिलेरखां संधिपत्र लेकर मेवाड़ गए थे। मेवाड़ के महाराणा ने उनका अतिशय स्वागत किया था। जयसिंह से विदा होते समय मुगल-सेनापति दिलेरखां ने कहा था—राजपूत सरदार स्वभाव ही से कठोर हैं और मेरा पुत्र आपके मंगल के लिए बंधक रखा गया है। परंतु उसके जीवन के बदले यदि मैं आपके देश की पूर्ण स्वाधीनता का उद्धार कर सकूं तो मैं इसमें त्रुटि नहीं करूंगा। आप अपने चित्त को स्थिर रखिए। आपके स्वर्गीय पिता मेरे मित्र थे।

दिलेरखां ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए प्रयत्न किया था अवश्य, परंतु वह सफल नहीं हो सका। इसीसे कामोरी मुगलों के कठोर आक्रमण से रक्षा पाने के लिए राणा जी को वन में रहना पड़ा था। उस वन से बीच-बीच में निकलकर राणा जी युद्ध भी किया करते थे। यद्यपि इन कामों को करने के लिए अधिक धन की आवश्यकता थी, तथापि राणा जी ने योग्यतापूर्वक इस कार्य का संपादन किया था। इन्होंने मेवाड़ में एक बहुत बड़ा तालाब भी बनवाया था, जिसको 'जयसमुद्र' कहते हैं। अंत में इनको घरेलू झगड़ों के कारण अपमान और कष्ट सहने पड़े थे। इस कष्ट का कारण केवल उनकी

स्त्रीपरायणता ही थी। अंत में इन्होंने अपने पुत्र को राज्य देकर झगड़े से पीछा छुड़ाना चाहा परंतु पुनः इनको राज्य में आना पड़ा। जब ये राज्य में आए, तब इनका पुत्र इनसे लड़ने को प्रस्तुत हो गया। अतः ये पुनः जयसमुद्र पर चले गए। पुनः जब उनके पुत्र ने देखा कि राज्य के सरदारों में भीतरी द्वेष प्रज्वलित हो गया है, तब उस समय को भयानक समझकर, पुत्र ने पिता से संधि कर ली। संधि हो जाने पर जयसिंह ने राज्य ग्रहण कर लिया। जयसिंह ने बीस वर्ष तक राज्य किया था। (टाड्स राजस्थान)

(२) ये जयसिंह काश्मीर के राजा थे। राजतरंगिणी नामक काश्मीर के इतिहास ग्रंथ के रचयिता कल्हण इनके समकालीन थे। कल्हण का समय सन् ११४८ ई० माना जाता है।

(३) जयपुर के एक राजा। इनका पूरा नाम मिर्जा राजा जयसिंह था। ये जगत्सिंह के पौत्र थे। जोधाबाई के कहने ही से बादशाह जहांगीर ने इनको जयपुर राज्य का अधिकारी निश्चित किया। मानसिंह ने जिस प्रकार अकबर के समय अपना राज्य, सामर्थ्य और सम्मान बढ़ाया था, उसी प्रकार औरंगजेब के समय मिर्जा राजा जयसिंह ने भी प्रसिद्धि पाई थी। जिस युद्ध में औरंगजेब था उसी युद्ध में रहकर जयसिंह ने विजय प्राप्त की थी। औरंगजेब की भाग्यलक्ष्मी जयसिंह के ही सहारे भारतीय राजनीति के मैदान में चमकी थी। जयसिंह की ही बुद्धिमत्ता से छत्रपति शिवाजी बंदी के वेश में दिल्ली आए थे। यद्यपि शिवाजी को जयसिंह ने बंदी किया था, तथापि उनकी सम्मानरक्षा करने का उन्होंने वचन भी दिया था, जिसका जयसिंह ने पालन किया था। जिस समय विश्वासघात करके औरंगजेब शिवाजी को मार डालना चाहता था उस समय जयसिंह की ही सहायता से शिवाजी दिल्ली से निकलकर भाग सके थे। इसीसे औरंगजेब इनसे अप्रसन्न रहा करता था। अंत में उसने विष-प्रयोग कराकर इन्हें मरवा डाला।

(४) जयपुर के एक राजा। ये सवाई जयसिंह के नाम से प्रसिद्ध थे। ये सन् १६९९ ई० में सिंहासन पर बैठे। औरंगजेब की मृत्यु के पीछे उनके पुत्रों में राज्य के लिए युद्ध होने लगा। सवाई जयसिंह ने बेदारबख्त का पक्ष लिया था। परंतु वह धौलपुर के युद्ध में मारा गया। शाह आलम बादशाह हुए, अतएव उसने जयपुर राज्य के एक अन्य मनुष्य को शासक बनाकर भेजा। जयसिंह ने अपने प्रबल प्रताप से बादशाह की सेना को भगाकर अपने राज्य पर अधिकार कर लिया। इन्होंने ४४ वर्षों तक राज्य किया था। ज्योतिषशास्त्र का इन्होंने उद्धार किया था। काशी, जयपुर आदि स्थानों में इन्होंने वेधशालाएं बनवाई थीं। जयपुर नाम का नगर भी इन्होंने ही बसाया। (टाड्स राजस्थान)

जयसिंह कवि—ये हिंदी भाषा के कवि थे। ये श्रृंगार रस की अच्छी कविता करते थे।

जयापीड—काश्मीर के एक राजा। इनके पिता का नाम वज्रादित्य था। संग्रामपीड की मृत्यु होने पर जयापीड सिंहासनारूढ़ हुए थे। अपने वंशजों का पुरातन इतिहास सुनने से उनके हृदय में दिग्विजय करने की इच्छा बलवती हो गई। इसी विचार से वे सेना लेकर दिग्विजय के लिए चल पड़े। मार्ग में उनके साथी स्वदेश का स्मरण कर लौटने लगे। यह देख जयापीड ने सभी साथी राजाओं को लौटा दिया और थोड़ी सेना लेकर वे स्वयं आगे बढ़े। वे प्रयाग आए और यहां एक कम एक लाख घोड़े ब्राह्मणों को दान में दिए, और यहां एक स्तंभ गाड़ दिया, जिसमें लिखा था 'श्रीजयापीडदेवस्य'। पुनः अपनी समस्त सेना को लौट जाने की आज्ञा देकर एक दिन रात्रि को यहां से चले। घूमते-घामते अंत में वे गौड़ राज्य में उपस्थित हुए। उस समय जयंत नामक राजा गौड़ देश का शासन करता था। गौड़ देश की राजधानी पौंड्रवर्द्धन नामक नगर में जयापीड उपस्थित हुए। एक वेश्या ने उनको राजा समझकर उपचार आदि से उनका स्वागत किया। उसीके यहां ये ठहर गए। उसने अपनी इच्छा प्रकट की, परंतु जयापीड ने उत्तर दिया—जब तक मेरी दिग्विजय यात्रा समाप्त नहीं होगी, तब तक हमको स्त्रियों से क्या मतलब! उस वेश्या का नाम कमला था।

एक दिन उस गांव में एक सिंह आया था, जिससे नगरवासी त्रस्त हो गए थे। सिंह के आने की खबर जयापीड को लगी। वे वहां गए, और सिंह को मार डाला। दूसरे दिन गौड़राज उसी मार्ग से जा रहे थे, उन्होंने सिंह को मरा हुआ देखा। उसको जब उठवाया, तब वहां उन्हें एक आभूषण गिरा हुआ मिला। उस आभूषण में लिखा था 'जयापीड'। इस नाम को देखकर बहुत लोग तो डर गए, परंतु राजा ने

कहा कि बड़ी प्रसन्नता हुई, जयापीड का जो पता बताएगा उसे मैं पारितोषिक दूंगा। जयापीड का पता मिला, राजा ने उनको अपने घर निमंत्रित कर अपनी पुत्री कल्याणीदेवी उनको ब्याह दी। (राजतरंगिणी)

जयेन्द्र—काश्मीर के एक राजा का नाम। ये अन्यवंशीय राजा विजय के पुत्र थे। (देखो आर्यराज)

जरत्कारु—नागराज वासुकि के भगिनीपति का नाम। वासुकि की भगिनी का नाम भी जरत्कारु ही था। इनके पुत्र का नाम था आस्तीक। आस्तीक की माता जरत्कारु ने आस्तीक के पिता को एक दिन संध्या के समय निद्रा से उठाया। इससे क्रुद्ध होकर वे स्त्री को छोड़ चले गए। उनके जाने के समय उनकी स्त्री रोने लगी। उस समय उन्होंने कहा था 'अस्ति' अर्थात् गर्भ है। अतएव उस गर्भ से उत्पन्न पुत्र का नाम आस्तीक या आस्तिक पड़ा। (महाभारत)

जरा—(१) राक्षसी विशेष। इसी राक्षसी ने मगधपति जरासंध के आधे शरीर को जोड़कर उन्हें जीवित किया था। ब्रह्मा ने इसका नाम गृहदेवी रखा था। इसको लोग षष्ठीदेवी भी कहते हैं। (महाभारत)

(२) एक व्याध का नाम। यदुवंश के नाश होने पर जब श्रीकृष्ण एक वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न थे, तब इसीने उनके बाण मारा था। कहते हैं, यह व्याध पूर्व जन्म में बालिपुत्र अंगद था। (भागवत)

जरासन्ध—मगध के प्रसिद्ध राजा। इनके पिता का नाम बृहद्रथ था। राजा बृहद्रथ ने पुत्र प्राप्त करने के लिए चंडकौशिक की आराधना की थी। प्रसन्न होकर चंडकौशिक ने राजा को एक फल दिया था और कहा था कि इस फल के खाने से अवश्य ही रानी के एक पुत्र होगा। राजा बृहद्रथ की दो रानियां थीं। उन्होंने उस फल में से आधा-आधा फल दोनों को दिया। इससे आधा-आधा पुत्र दोनों ने उत्पन्न किया। ऐसे पुत्र के जन्म की बात सुनकर राजा ने उसको श्मशान में ले जाने की आज्ञा दी। श्मशान में जरा नाम की एक राक्षसी रहती थी। उसने उस अपूर्णांग बालक को जोड़कर जीवित कर दिया। तब से उस लड़के का नाम जरासंध हुआ। उस लड़के को राक्षसी ने राजा को देकर कहा—महाराज, यह बालक अत्यंत पराक्रमी राजा होगा और बिना जोड़ टूटे इसकी मृत्यु भी नहीं होगी। अस्ति और प्राप्ति नाम की जरासंध की कन्याएं मथुरापति कंस को ब्याही गई

थीं। जरासंध की सहायता से कंस ने अपने पिता को राज्यच्युत करके राज्य पाया था। श्रीकृष्ण ने जब कंस को मार डाला तब क्रुद्ध होकर जरासंध ने मथुरा पर आक्रमण किया था। उसने यवनराज कालयवन से भी सहायता ली थी। इनके आक्रमण से रक्षा पाना कठिन जानकर श्रीकृष्ण ने मथुरा छोड़ दी और समुद्र के बीच द्वारका नाम की नगरी बसाई। वहां से लौटकर श्रीकृष्ण मथुरा आए और उन्होंने प्रपंच रचकर कालयवन को मरवा डाला। राजा युधिष्ठिर ने राजसूय नामक यज्ञ प्रारंभ किया। परंतु बिना जरासंध को पराजित किए इस यज्ञ का होना कठिन था। इसलिए भीम और अर्जुन को अपने साथ लेकर श्रीकृष्ण मगध गए। वे तीनों ही स्नातक ब्राह्मण के वेश में थे। जरासंध के महल में ये गए। इनको ब्रह्मचारी जानकर किसीने रोका नहीं। आधी रात को जरासंध इनसे मिलने आया। उस समय उन लोगों ने अपना परिचय देकर युद्ध के लिए उसे ललकारा। श्रीकृष्ण की प्रेरणा से भीम ने जरासंध की संधि को तोड़ दिया, जिससे उसका प्राणांत हो गया। (महाभारत)

जलन्धर—(१) दैत्यविशेष। एक समय इंद्र महादेव के दर्शन के लिए कैलास गए हुए थे। वहां उन्होंने एक भीमाकृति पुरुष को देखा और शिवजी कहां हैं, यह पूछा। उसने इंद्र को कुछ उत्तर नहीं दिया। इस पर क्रुद्ध होकर इंद्र ने उस मनुष्य के सिर पर वज्र मारा। उस मनुष्य के मस्तक से अग्नि की ज्वाला निकली और वह इंद्र को जलाने के लिए चली। इंद्र ने अब समझ लिया कि मैंने जिसके मस्तक पर वज्राघात किया है वह शिव ही है। तब तो इंद्र महादेव जी की स्तुति करने लगे। इंद्र की स्तुति से संतुष्ट होकर महादेव जी ने अग्नि को समुद्र में फेंक दिया। उस अग्नि से एक बालक उत्पन्न हुआ और वह रोने लगा। उसके रोने से संसार बहरा हो गया। इसका कारण जानने के लिए ब्रह्मा समुद्र के तीर पर उपस्थित हुए। समुद्र ने ब्रह्मा से कहा, "यह हमारा पुत्र है, आप इसको लेकर पालन करें।" ब्रह्मा ने उस बालक को गोदी में ले लिया। उस लड़के ने ब्रह्मा की मूंछ इस प्रकार जोर से पकड़ी कि उनकी आंखों से जल निकल पड़ा। इस कारण ब्रह्मा ने उस लड़के का नाम 'जलन्धर' रखा और उसको वर दिया कि रुद्र के अतिरिक्त और कोई इस बालक को मार नहीं सकता। दूसरे पुराणों

में लिखा है कि समुद्र के औरस और गंगा के गर्भ से जलंधर उत्पन्न हुआ था। इसके जन्म लेते ही पृथ्वी रोने लगी जिससे स्वर्ग, मर्त्य और पाताल कांपने लगे। पृथ्वी की विपत्ति देख ब्रह्मा सागर-संगम पर उपस्थित हुए।

ब्रह्मा ने उस बालक को असुर राज्य पर स्थापित किया। धीरे-धीरे वह प्रतापी हो गया और स्वर्ग-राज्य पर चढ़ाई करके उसने उसे भी अपने हस्तगत कर लिया। स्वर्गच्युत होकर इंद्र महादेव की शरण में गए। महादेव ने जलंधर को मारकर इंद्र को पुनः स्वर्ग का राजा बना दिया। जलंधर को वर था कि कि जब तक उसकी स्त्री वृंदा का चरित्र निष्कलंक रहेगा, तब तक उसे कोई भी नहीं मार सकता। विष्णु ने जलंधर का रूप धरकर उसका सतीत्व नष्ट किया जिससे शिव ने थोड़े ही परिश्रम से उसे मार डाला। (पद्मपुराण)

(२) एक राज्यविशेष। (देखो त्रिगर्त)

जलालुद्दीन कवि—ये सं० १६१५ में उत्पन्न हुए थे और हिंदी के एक सुकवि थे। हजारा में इनके बनाए कवित्त पाए जाते हैं।

जलील—इनका पूरा नाम अब्दुलजलील बिलग्रामी था। ये संवत् १७३६ में उत्पन्न हुए थे। औरंगजेब बादशाह के यहां इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। इनके बनाए ग्रंथों से इनके अगाध पांडित्य का परिचय मिलता है। हरिवंश मिश्र कवि से इन्होंने हिंदी भाषा पढ़ी थी। और हिंदी भाषा में अच्छी कविता करते थे।

जलौक—ये काश्मीर के राजा थे। इनके पिता का नाम अशोक था। अशोक का परलोकवास होने पर इनको काश्मीर का राज्य मिला था। इन्होंने बौद्धों को अपने राज्य से निकाल दिया था। ये धर्मात्मा थे। इनके राजत्वकाल में काश्मीर ऐश्वर्यशाली राज्यों में गिना जाता था। (राजतरंगिणी)

जलौका—काश्मीर के राजा प्रतापादित्य के ये पुत्र थे। ये विक्रमादित्य की ज्ञाति के थे। इन्होंने ३२ वर्ष राज्य किया था। इनके शासनकाल में काश्मीर राज्य में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। (राजतरंगिणी)

जवानसिंह—उदयपुर के महाराणा। ये महाराणा भीमसिंह के औरस पुत्र थे। सन् १८२८ ई० में ये राजसिंहासन पर बैठे थे। ये विलासी और आलसी थे। राज्य के शासन में भाग लेना ये जानते ही न थे, या चाहते ही नहीं थे। इनके समय में भी अंग्रेज गवर्नमेंट से संधि-पत्र लिखा गया था। ये बड़े खर्चीले थे। अंत में इनको ऋण भी लेना पड़ा था। इनका जीवन अकर्मण्यता की कालिमा से कलंकित था।

जसवन्तसिंह—(१) महाराज जसवंतसिंह जोधपुर के महाराज गजसिंह के दूसरे पुत्र थे। १६२६ ई० के लगभग इनका जन्म हुआ। अपनी असाधारण कुशलता के कारण बड़े भाई को च्युत करके महाराज गजसिंह ने इन्हें १३ वर्ष की अवस्था में १६३८ ई० को राज्याभिषिक्त कर दिया था। मुगल शहंशाह शाहजहां तथा औरंगजेब के ये समकालीन थे। इनके प्रबल प्रताप से औरंगजेब सदा शंकित रहा करता था। ये राजपूतों के गौरव और हिंदुत्व के महान् संरक्षक थे। जितने वह शूर और प्रतापी थे उतने ही विद्याव्यसनी तथा साहित्य-मर्मज्ञ भी थे। इन्होंने स्वयं अनेक कृतियों का निर्माण किया और विभिन्न कवियों एवं साहित्यकारों को प्रश्रय देकर हिंदी साहित्य की अभिवृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इनके आचार्यत्व और कवित्व को द्योतित करनेवाली इनकी कृतियों के नाम हैं—'भाषा-भूषण', 'सिद्धांत-बोध', 'आनंद-विलास', 'अपरोक्षसिद्धांत', 'अनुभव-प्रकाश' और 'सिद्धांतसार'। 'इच्छाविवेक' नामक एक अन्य ग्रंथ का रचयिता भी इन्हें बताया जाता है। इन मौलिक कृतियों के अतिरिक्त इन्होंने कृष्ण मिश्र के 'प्रबोधचंद्रोदय' नामक संस्कृत नाटक का भी हिंदी पद्यानुवाद किया। हिंदी में इस नाटक के लगभग एक दर्जन अनुवाद हुए। इनमें यह अनुवाद सर्वप्रथम ही नहीं, अपितु सर्वोत्कृष्ट भी है। इनके 'भाषाभूषण' का परवर्ती अलंकारग्रंथों पर व्यापक प्रभाव पड़ा। अफगानों के विरुद्ध काबुल में युद्ध करते हुए इन्होंने वीरगति प्राप्त की। इनके निधन-काल को विद्वानों ने १६७८ से १७०८ तक विभिन्न तिथियों में निर्धारित किया है।

(हिंदी साहित्य का इतिहास, हिंदी साहित्यकोश, भाग २)

(२) ये बघेल क्षत्रिय हम्मीरसिंह के पुत्र थे। कन्नौज के निकट तेरवां में राज्य करते थे। इनके जन्मकाल के संबंध में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। १८वीं शती में इनका स्थितिकाल निर्धारित किया गया है। इन्होंने स्वयं तो साहित्य-निर्माण करके अपने पांडित्य का परिचय दिया ही है, इसके साथ ही हिंदी के ख्यातनामा कवि ग्वाल को आश्रय देकर

अपने विद्वत्प्रेम को भी प्रकट किया है। इनके द्वारा लिखित 'शृंगारशिरोमणि' और 'शालिहोत्र' नामक दो कृतियां उपलब्ध हैं। इनकी प्रथम कृति काव्यशास्त्र-विषयक है और उसमें रसराज शृंगार की सर्वोच्चता को प्रतिपादित किया गया है।

(डॉ० भगीरथ मिश्र – हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास)

जह्नवी—इसका अस्तित्व ऋग्वेदकालीन है। यदि इसका शुद्ध नाम जाह्नवी है तो इसे गंगा का ही पर्याय मानना चाहिए। एक बार जह्नु मुनि ने इसे पी लिया था और बाद में अपने दाहिने कान से बाहर निकाल दिया। इसलिए गंगा को 'जह्नुतनया' नाम से भी कहा गया है।

जह्नु—(१) प्रसिद्ध राजर्षि। इन्होंने गंगा के पीने से जगत् में प्रसिद्धि पाई थी। इनके पिता का नाम सुहोत्र और माता का नाम केशिनी था। उर्वशी के गर्भ से राजा पुरूरवा के सात पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनमें एक का नाम जीम था, जिसके पुत्र कांचनप्रभ थे। कांचनप्रभ के पुत्र सुहोत्र और सुहोत्र के पुत्र जह्नु थे। महाराज जह्नु सर्वमेध नामक यज्ञ करके प्रसिद्ध हुए थे। गंगा उनको पति बनाने के लिए उनके पास गईं, परंतु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। इस कारण क्रुद्ध होकर गंगा ने उनके स्थान को डुबोना चाहा। उस समय जह्नु ने गंगा को पी लिया। यह देख महर्षियों ने गंगा का नाम जाह्नवी रखा। युवनाश्व की कन्या कावेरी से इनका ब्याह हुआ था। कावेरी के गर्भ से जह्नु के एक पुत्र हुआ था, जिसका नाम सुनह था।

(हरिवंश)

(२) रामायण और विष्णुपुराण में जह्नु की कथा दूसरे प्रकार से लिखी गई है। जिस समय भगीरथ अपने पूर्वपुरुषों के लिए गंगा को पाताल ले जा रहे थे उस समय मर्त्यलोक में महर्षि जह्नु एक यज्ञ कर रहे थे। गंगा ने यज्ञभूमि को डुबो दिया और वे यज्ञ-सामग्री बहा ले चलीं। इसपर क्रुद्ध होकर राजर्षि जह्नु ने गंगा को पी डाला। भगीरथ बड़े कष्ट में पड़े और वे उनकी स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर जह्नु ने गंगा को बाहर निकाल दिया, तभी से गंगा को जाह्नवी भी कहते हैं।

(रामायण, विष्णुपुराण)

जह्नु आश्रम—यह पुरातन पवित्र आश्रम भागलपुर के पश्चिम में सुल्तानगंज में स्थित था। सुल्तानगंज में गंगातट पर एक शिला में गैवीनाथ महादेव का मंदिर आज भी इस आश्रम की स्थिति को अक्षुण्ण बनाए हुए है। अपने आश्रम में ध्यानस्थ बैठे महर्षि ने निकट में बहती हुई गंगा की धारा के कलकल से क्षुब्ध होकर गंगा को एक घूंट में ही पी लिया था। राजा भगीरथ की प्रार्थना पर ऋषि ने अपनी जांघ (जह्नु) काटकर गंगा को मुक्त किया था। इसीलिए गंगा को 'जह्नुतनया' भी कहा जाता है।

जाजपुर—ऐतिहासिक एवं धार्मिक महत्त्व के इस क्षेत्र को 'महाभारत' में विराजाक्षेत्र के नाम से अभिहित किया गया है। इसकी प्रसिद्धि सती विरजा (वि-रजा = कामशून्या) के मंदिर के कारण है। यहां पर बोधिसत्त्व, पद्मपाणि, वाराही, चमुंडा और इंद्राणी की भीमकाय प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। यहां से उप-लब्ध सप्त मातृदेवियों की मूर्तियों का विशेष उल्लेख हुआ है। उड़ीसा में इस नाम से एक जिला का अभि-धान हुआ।

जाजलि—अथर्ववेदज्ञ गोत्रप्रवर्तक एक ऋषि। ये अपनी तपस्या के अभिमान में चूर होकर दाम्भिक हो गए थे। वाराणसी के तुलाधार नामक वणिक् के निकट धर्मशास्त्र का उपदेश सुनने से इनको ज्ञान हुआ था।

(महाभारत)

जान कवि—राजस्थान में सीकर के निकट फतहपुर में कायमखानी वंश के संस्थापक का नाम नवाब फतह-खां था। उसीके वंशज न्यामतखां हुए, जोकि 'जान' नाम से कविता करते थे। इनकी ठीक जन्म-तिथि का पता नहीं चलता है; किंतु इन्होंने जिन कृतियों का निर्माण किया उनमें उल्लिखित रचनाकाल से विदित होता है कि इन्होंने १६१४-१६६४ ई० तक ग्रंथ-निर्माण किया। इस दृष्टि से इनका स्थितिकाल १७वीं शती ई० निर्धारित किया जा सकता है। इन-का ज्ञान विपुल था। संस्कृत, फारसी, अरबी और ब्रजभाषा पर इनका समान अधिकार था। इनके द्वारा विरचित लगभग ७६ कृतियों का इतिहासकारों ने उल्लेख किया है। उनमें 'कायमखां रासो' जैसी इति-हास कृतियां भी सम्मिलित हैं। इनकी प्रेमकथा-विषयक कृतियों में 'कनकावती', 'कामलता', 'मधुकरमालती' और 'रत्नावली' आदि का नाम उल्लेखनीय है। इनकी प्रायः अधिकतर कृतियां अभी हस्तलेखों के रूप में ही जीवित हैं (डॉ० मोतीलाल मेनारिया—राज-स्थान का पिंगल साहित्य)।

जानकीप्रसाद पवाँर—(१) ये हिंदी के कवि थे। मौजा

जोहवेनकटी जिला रायबरेली के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम ठाकुर भवानीप्रसाद था। ये फारसी और संस्कृत भाषा में प्रवीण थे। उर्दू में शादनामा नामक एक ग्रंथ इन्होंने बनाया है। भाषा में इनके ये ग्रंथ हैं—(१) 'रघुवीरध्यानावली', (२) 'रामनवरत्न', (३) 'भगवतीविनय', (४) 'रामनिवास-रामायण', (५) 'रामानन्दविहार', (६) 'नीति-विलास'। चित्रकाव्य और शांतरस के वर्णन में ये सिद्धहस्त थे।

(२) ये हिंदी कवि काशी के रहने वाले थे। केशव कृत रामचन्द्रिका की इन्होंने टीका लिखी। इनका बनाया 'युक्तिरामायण' नामक भी एक ग्रंथ है।

जामदग्न्य—ये विष्णु के एक अवतार माने जाते हैं। ये जमदग्नि ऋषि के पुत्र थे और इनका नाम था राम। महादेव से परशु प्राप्त करने के कारण इनको परशुराम भी कहते हैं। ऋचीक प्रदत्त चरु के प्रभाव से क्षत्रियकुमार होने पर भी विश्वामित्र ब्राह्मणधर्मी और जामदग्न्य ब्राह्मणकुमार होने पर भी क्षत्रियधर्मी हो गए थे।

एक समय जामदग्न्य की माता रेणुका स्नान करने गई थीं, वहां उन्होंने मृत्तिकावत् के राजा चित्ररथ को स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा करते देखा। उसे देख रेणुका का भी मन विचलित हुआ। कामक्रीड़ा के अन्त में रेणुका अपने आश्रम में गईं। रेणुका को देखते ही जमदग्नि ने समझ लिया और अपने पुत्रों को क्रमशः उसका शिरच्छेदन करने के लिए कहा। उनके चार पुत्रों ने उनका कहना अस्वीकार किया। तब क्रुद्ध होकर जमदग्नि ने पुत्रों को शाप दिया। उनके शाप से पुत्र अचेतन हो गए। पंचम पुत्र राम उस समय आश्रम में नहीं थे। थोड़ी देर बाद वे आए और पिता की आज्ञा से उन्होंने माता का सिर काट दिया। जमदग्नि का क्रोध दूर हो गया। उन्होंने अपने पुत्र से वर मांगने को कहा। परशुराम ने चार वर मांगे—

(१) मेरी माता जीवित हो जाए, और उनको अपना वध किया जाना भूल जाए।

(२) युद्ध में कोई मेरा सामना न कर सके।

(३) बहुत दिनों तक मैं जीऊं।

(४) मेरे भाई पुनः जी उठें और अपने-अपने कार्य में लग जाएं।

पिता ने प्रसन्न होकर ये चारों वर दे दिए।

एक समय हैहयराज कार्तवीर्य ने परशुराम की अनुपस्थिति के समय जमदग्नि को मार डाला। परशुराम ने घर आकर माता से पितृवध का सारा वृत्तांत सुना और उसी समय हैहय देश में जाकर उन्होंने कार्तवीर्य को मार डाला तथा होम की धेनु का उद्धार किया। कार्तवीर्य का वध करके ही वह तृप्त नहीं हुए, पितृवध का बदला चुकाने के लिए उन्होंने इक्कीस वार पृथ्वी को क्षत्रियहीन कर दिया। उन्होंने क्षत्रियों के रुधिर से कुरुक्षेत्र के पास के समंतपंचक के पांच तालाब भर दिये थे और उन्हीं तालाबों में पितृतर्पण करके महर्षि ऋचीक का दर्शन पाया था। महर्षि ऋचीक ने उनसे क्षत्रियों को न मारने के लिए कहा। तब जामदग्न्य कश्यप को पृथ्वी दान करके स्वयं महेंद्र पर्वत पर जाकर रहने लगे। समुद्र को हटाकर परशुराम ने महेंद्र पर्वत पर अपने रहने के लिए स्थान बनाया था।

परशुराम ने गंधमादन पर्वत पर तपस्या करके महादेव को प्रसन्न किया था और उनसे तेजोमय परशु पाया था।

राम, जिस समय सीता को ब्याह कर अयोध्या की ओर लौट रहे थे, उस समय परशुराम वहां पहुंचे। क्षत्रियकुल में लोग पुनः उत्पन्न हुए, यह समझकर परशुराम रामचंद्र का वध करने के लिए आगे बढ़े। परंतु राम को देखकर परशुराम डर गए। रामचंद्र ने उन्हें समझा दिया। परशुराम ने श्रीराम को अपने धनुष पर शर चढ़ाने के लिए कहा। यदि रामचंद्र जी शर चढ़ा देंगे तो परशुराम हार जाएंगे। श्रीराम ने शर चढ़ा दिया। परशुराम पुनः महेंद्र पर्वत पर चले गए।

रामायण या महाभारत में परशुराम अवतार नहीं माने गए हैं। परंतु मत्स्य और विष्णुपुराण में वे भगवान के छठे अवतार और भागवत में १६वें अवतार माने गए हैं। इन्होंने कोंकण प्रदेश को दस्युओं के अधिकार से निकालकर वहां ब्राह्मणों का उपनिवेश स्थापन किया था।

जाम्बवती—श्रीकृष्ण की प्रधान स्त्रियों में से एक का नाम। श्रीकृष्ण के श्वसुर सत्राजित के पास स्यमंतक नाम की एक मणि थी। सत्राजित के छोटे भाई उस मणि को गले में लगाकर आखेट करने गए थे। एक सिंह ने प्रसेन को मार डाला और मणि लेकर एक

गुहा में चला गया। पुनः जाम्बवान् ने उस सिंह को मारकर मणि ले ली और उस मणि को अपनी कन्या जाम्बवती को खेलने के लिए दे दिया। सत्राजित ने समझा कि श्रीकृष्ण ने उसके भाई प्रसेन को मारकर मणि ले ली। क्योंकि कुछ ही दिन पहले श्रीकृष्ण ने मणि मांगी थी, परंतु सत्राजित ने नहीं दी थी। श्रीकृष्ण अपना कलंक छुड़ाने के लिए और प्रसेन को ढूंढ़ने के लिए वन में गए, वहीं उन्होंने प्रसेन और सिंह के मृतक शरीर को देखा। अपने साथियों को गुहा के बाहर ही छोड़कर स्वयं श्रीकृष्ण गुहा में घुसे। उस गुहा में जाकर स्यमंतक मणि से खेलती हुई जाम्बवती को उन्होंने देखा। श्रीकृष्ण को देखकर जाम्बवती और उसकी धाय चिल्ला उठीं। जाम्बवान् आया और वह श्रीकृष्ण से लड़ने लगा। युद्ध में हारकर जाम्बवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगा और स्यमंतक मणि उनको अर्पण कर दी। जाम्बवती से विवाह कर, उसे और मणि को लेकर श्रीकृष्ण द्वारका लौट आए। जाम्बवती के गर्भ से श्रीकृष्ण के दस पुत्र उत्पन्न हुए थे। (भागवत)

जाम्बवान्—ऋक्षपति। ये भल्लूकराज ब्रह्मा के पुत्र थे। त्रेतायुग में कपिराज सुग्रीव के सेनापति होकर लंका के युद्ध में इन्होंने श्रीरामचंद्र को सहायता दी थी। द्वापरयुग में स्यमंतक मणि के कारण श्रीकृष्ण से इनका युद्ध हुआ था। इसी युद्ध के अंत में जाम्बवान् ने स्यमंतक मणि और अपनी कन्या श्रीकृष्ण को सौंप दी। मालूम होता है, जाम्बवान् ऋक्षजातीय अनार्य राजा थे।

जालन्धरपा—इन्हें जलन्धरीपांव, जलन्धरीपा या जालधारक (जाल धारण करने वाला) आदि विभिन्न नामों से कहा गया है। नाथ संप्रदाय में आदिनाथ के रूप में इनका सम्मान है। तिब्बती परंपरा में इन्हें भोगदेश का निवासी ब्राह्मण (पंडित) और मत्स्येंद्रनाथ का गुरु बताया गया है। राहुल जी ने इनके चार शिष्यों के नामों का उल्लेख इस प्रकार किया है—कर्णपा, मीनपा, धर्मपा और तंतिपा। इनमें मीनपा ही मत्स्येंद्रनाथ हैं। जनश्रुति इन्हें मत्स्येंद्रनाथ का भाई बताती है। गोपीचंद की कथा में इन्हें गोपीचंद की माता मैनामती का गुरु बताया गया है। इन्होंने अपनी एक सबदी में गोपीचंद का भी उल्लेख किया है। अपनी कृति 'विमुक्त मंजरी' में इन्होंने स्वयं को आदिनाथ कहा है। गोरक्षपाद ने अपने 'गोरक्ष सिद्धांत संग्रह' में इन्हें नाथ संप्रदाय का प्रवर्तक बताया है। चंद्रनाथ योगी कृत 'योगी संप्रदाय निष्कृति' में इन्हें गुप्त साम्राज्य के उच्छेदक राजा बृहद्रथ द्वारा संपन्न यज्ञ की अग्नि से उत्पन्न बताया गया है। इन आधारों पर प्रायः यह सिद्ध होता है कि ये ८वीं-९वीं शती ई० में हुए। कुछ विद्वानों ने पंजाब के नगर जालंधर को इनका जन्म-स्थान माना है और इस नगर को इन्हींके नाम पर बसाया हुआ माना है। यहां पर इनका एक मठ या पीठ था, जिसका संस्मारक एक टीला आज भी सुरक्षित है। इनके द्वारा लिखित दो ग्रंथों का उल्लेख किया गया है, जिनके नाम हैं—'विमुक्त मंजरी गीत' और 'हुंकार चित्र बिंदुभावना क्रम'। 'ब्रज प्रदीप' पर विरचित इनकी 'शुद्धि वज्र प्रदीप' नामक टीका नाथ-परंपरा में प्रसिद्ध है। इन्होंने संस्कृत में भी लगभग पांच ग्रंथों की रचना की थी, जोकि संप्रति उपलब्ध नहीं है (राहुल सांकृत्यायन—हिंदी काव्यधारा; डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल—योगप्रवाह; डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी—नाथ संप्रदाय)।

जालिमसिंह—ये झाला जाति के एक राजपूत थे। इनके पूर्वपुरुष सौराष्ट्र देश के अंतर्गत झाला प्रदेश के बीच हलवद नामक स्थान के रहने वाले थे। इनके पूर्वपुरुष कोटा आए थे। कोटा के राजा ने उनका बड़ा आदर किया था तथा उनको अपने प्रधान सेनापति का पद दिया। इनके पिता का नाम पृथ्वीसिंह था, परंतु ये अपने चाचा हिम्मतसिंह के गोद गए थे। इनका जन्म संवत् १७९६ में हुआ था। ये पहले-पहल कोटे के फौजदार नियुक्त हुए। भटवाड़ा के रणक्षेत्र में इन्होंने वीरता और राजनीतिसत्ता का अनुपम परिचय दिया था। परंतु इनकी शक्ति देखकर कोटा के राजा गुमानसिंह के हृदय में कुछ खटका हुआ। उन्होंने इनको अपने राज्य से निकाल दिया। कोटा राज्य से संबंध टूट जाने पर ये उदयपुर गए। उस समय महाराणा अडसी मेवाड़ के अधीश्वर थे। वहां ये कुछ दिनों तक रहे। उदयपुर के महाराणा ने इन्हें 'राजराणा' की सम्माननीय उपाधि से भूषित किया था। पुनः ये अवसर देखकर कोटा चले आए, और इन्होंने गुमानसिंह को प्रसन्न कर लिया। इनके समय में कोटा की राजगद्दी पर पांच राजा बैठ चुके थे।

(टाड्स राजस्थान)

जावाल—एक प्राचीन वैद्य का नाम। ये भास्कर के शिष्यों

में से थे। इन्होंने 'तंत्रसारक' नाम का एक वैद्यक ग्रंथ बनाया है।

जावालि—प्राचीन महर्षि। ये महर्षि गौतम के गुरु थे। महाराज दशरथ की शासनसभा में एक जावालि मंत्रिकार्य करते थे। मालूम नहीं, ये दोनों जावालि एक ही हैं या भिन्न-भिन्न।

जाहरपीर—मुसलमान पंच पीरों में प्रधान पीर के रूप में इनका व्यक्तित्व हिंदू मुसलमानों में सद्भाव तथा समन्वय का प्रतीक बनकर आज तक संपूजित होता आ रहा है। गुरु गुग्गा और ये एक ही व्यक्ति माने जाते हैं। गुरु गुग्गा या गौगा को हरियाणा के मेहरी नामक गांव का चौहान राजपूत बताया गया है। १३५३ ई० में दिल्ली के बादशाह फिरोजशाह के सेनापति अश्वर से युद्ध करते हुए इन्होंने वीरगति प्राप्त की। गुग्गारी कथा से ज्ञात होता है कि उनके पिता का नाम देवराय और उनकी माता का नाम बछल था। इनका विवाह कामरूप (आसाम) के राजा संजा की पुत्री सिरियल से हुआ था। विषवैद्य के रूप में इनकी प्रसिद्धि थी। मुसलमान इन्हें जहर, विषपीर या जाहरपीर के रूप में पूजते हैं। मारवाड़ तथा पंजाब में हिंदुओं द्वारा जाहरपीर की पूजा का प्रचलन आज भी है। वहां नागपंचमी को गुग्गा पंचमी कहा जाता है और इस तिथि को इनकी पूजा होती है। व्रजक्षेत्र में भी जाहरपीर का जागरण होता है। इस प्रकार मुसलमानों में प्रधान फकीर के रूप में और हिंदुओं में एक महान् संत के रूप में भारत के सभी अंचलों की जनता इनकी पावन स्मृति में आज भी प्रतिवर्ष उत्सव-पूजन का आयोजन करती है।

जितव्रत—सूर्यवंशी हविर्द्धान नामक राजा के पुत्र का नाम।

जीमूतमल्ल—यह एक बड़ा पराक्रमी पहलवान था। जिस समय पांडव विराट् के यहां अज्ञातवास में थे, उस समय वहां ब्राह्मणों का एक मेला हुआ। उस मेले में दूर-दूर के पहलवान आए थे। उनमें जीमूतमल्ल नामक एक बड़ा पहलवान आया था। उसके साथ कोई लड़ने के लिए उद्यत नहीं हुआ। अंत में भीमसेन उससे लड़े और उन्होंने उसे मार डाला।

(महाभारत)

जीमूतवाहन—(१) एक प्रसिद्ध स्मार्त पंडित। खृष्टीय ११वीं सदी के प्रथम भाग में ये उत्पन्न हुए थे। इन्होंने मनुसंहिता पर भाष्य बनाया है।

(२) एक गंधर्व विशेष। ये अपनी दया के लिए प्रसिद्ध थे। इन्होंने अपना शरीर तक दान कर दिया था।

जीवन कवि—ये हिंदी के कवि सं० १८०३ में उत्पन्न हुए थे और मुहम्मद अली बादशाह के दरबार में थे।

जीवनाथ बन्दीजन—ये हिंदी कवि नवलगंज, जिला उन्नाव के रहने वाले थे। सं० १८७२ में ये उत्पन्न हुए थे। ये महाराज बालकृष्ण दीवान बादशाह घराने के प्राचीन कवि हैं। इनका 'वसंतपचीसी' नामक ग्रंथ बड़ा उत्तम है।

जीवाराम—रामभक्ति के रसिक संप्रदाय में इन्हें 'युगलप्रिया' के रूप में एक आचार्य माना जाता है। इनका जन्म सारन (बिहार) के ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम शंकरदास था। इनके आरंभिक विद्यागुरु मंसाराम थे। तदनंतर इन्होंने अयोध्या के रसिकाचार्य रामचरणदास का शिष्यत्व प्राप्त किया। इनकी चार कृतियों का अब तक पता लगा है, जिनके नाम हैं—'रसिकप्रकाश भक्तमाल', 'पदावली', 'श्रृंगार रस रहस्य' और 'अष्टयाम वार्तिक'। इनका प्रथम ग्रंथ रसिक संप्रदाय में बहुचर्चित हुआ है। इसमें 'भक्तमाल' की शैली पर रसिक संप्रदाय के संतों की जीवनियां निबद्ध हैं। इसकी पुष्पिका में उल्लिखित रचनाकाल के आधार पर इनका स्थितिकाल १९वीं शती ई० के मध्य में सिद्ध होता है। अयोध्या के प्रसिद्ध रसिक महात्मा युगलानन्यशरण इन्हींके शिष्य थे (डॉ० भगवतीप्रसादसिंह—रामभक्ति में रसिक संप्रदाय)।

जुन्नर—पूना नगर से ४८ मील दूर एक पहाड़ी पर जुन्नर की गुफाएं अवस्थित हैं। यहां कुल मिलाकर ५७ गुफाएं हैं। कुछ विद्वानों ने जुन्नर को ही प्राचीन काल में प्रसिद्ध व्यापारिक नगर बताया है। ये गुफाएं दक्षिण-पश्चिम में शिवनेरी पहाड़ी, पश्चिम में तुलजलेण, उत्तर में सुलेमान पहाड़ियां, गणेशलेण और मानमोंडी पहाड़ी आदि विभिन्न स्थानों पर अवस्थित हैं। जुन्नर की गुफाओं में शिवनेरी पर्वत की चैत्य गुफा, तुलजलेण की चैत्य गुफा और सुलेमान पर्वत की चैत्य गुफा का विशेष महत्त्व है।

जुल्फेकार—ये हिंदी के कवि थे और सं० १७८२ में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने बिहारीसतसई की विलक्षण टीका लिखी है।

जुष्क—काश्मीर के एक राजा का नाम। राजतरंगिणी में

लिखा है कि जुष्क, हुष्क और कनिष्क एक ही समय काश्मीर का शासन करते थे। जुष्क ने अपने नाम पर काश्मीर राज्य में एक नगर की प्रतिष्ठा की थी। ये शकवंशी थे। (राजतरंगिणी)

जेतवन—जेत नामक राजकुमार द्वारा निर्मित यह महाविहार श्रावस्ती से एक मील दक्षिण में है। कन्नौज के गहडवाल राजा गोविंदचंद्र ने इस विहार में रहने वाले भिक्षुओं की सहायतार्थ अनेक गांवों की आय नियत की थी। इस विहार में कुछ समय बुद्ध ने निवास किया था।

जैगीषव्य—विख्यात ऋषि असितदेवल के गुरु। पहले असितदेवल नामक एक ऋषि, गार्हस्थ्य धर्म का पालन करते हुए आदित्यतीर्थ में रहते थे। कुछ दिनों के बाद जैगीषव्य भी वहां गए और योगसाधन कर उन्होंने सिद्धि प्राप्त की। उनके योगबल को देखकर देवल शिष्य बन गए। (महाभारत)

जेतसिंह—बीकानेर के राजा। ये बीकानेर के प्रतिष्ठाता राजा बीका के पौत्र थे। इनके पिता का नाम लूनकरण था। संवत् १५६६ में लूनकरण की मृत्यु हुई। तब जैतसिंह का राज्याभिषेक हुआ। ये अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र नहीं थे। परंतु इनके बड़े भाई ने स्वेच्छा से कुछ जागीर लेकर अपना राज्याधिकार त्याग दिया था। ये बड़े वीर थे। इन्होंने तारनोह प्रदेश के अधिनायक को युद्ध में परास्त कर दिया था। संवत् १६०३ में इनका परलोकवास हो गया।

जैन—एक धर्मसंप्रदाय। इस धर्म के अनुयायियों को भी जैन कहते हैं। यह धर्मसंप्रदाय प्राचीन है। कतिपय पंडितों का मत है कि बौद्धधर्म ही जैनधर्म या संप्रदाय का मूल है। गौतमबुद्ध के जन्म के बाद जो जैनदर्शन लिखे गए हैं उनमें बौद्धदर्शन की छाया पाई जाती है। इसी कारण पूर्वोक्त प्रश्न उठाया जाता है। परंतु दोनों दर्शनों पर जिन लोगों ने गूढ़ विचार किए हैं उनका मत है कि जैनमत के अंतिम तीर्थंकर महावीर बुद्धदेव के गुरु थे। महादेव से बुद्धदेव ने जो बीजमंत्र पाया था, वही समय पाकर बुद्धदेव के द्वारा प्रकाशित हुआ था। 'जिन' शब्द के द्वारा प्रधानतः जैनधर्म के चौबीस महापुरुष और पवित्रात्मा समझे जाते हैं। उनका दूसरा नाम तीर्थंकर है। शास्त्रकार और संसारसमुद्र से पार उतारने वाले को तीर्थंकर कहते हैं। जैन शास्त्रों के मत से चौबीस अवतार भूमंडल पर अवतीर्ण हुए थे। तीर्थंकरों के नाम और संख्या के विषय में जैनशास्त्रों में मतभेद है। पुराणों में जिस प्रकार एक मन्वंतर में एक-एक देवता की प्रधानता लिखी है और भिन्न-भिन्न युगों में अवतार उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार जैनमत के आगम शास्त्रों में भी अनेक बातें लिखी पाई जाती हैं। वे बीते समय को उत्सर्पिणी और वर्तमान काल को अवसर्पिणी कहते हैं। उत्सर्पिणी में जिस नाम के तीर्थंकर विद्यमान थे, अवसर्पिणी में वे ही नाम परिवर्तित हुए हैं।

जैनधर्म में प्रधानतः दो मत हैं। एक का नाम दिगंबर और दूसरे का नाम श्वेतांबर है। दिगंबर कहते हैं : लज्जा से पाप प्रकाशित है, जिसके पाप नहीं उसे लज्जा भी नहीं ही होगी। विशुद्ध आचरण करने से मनुष्य को अविनाशी सुख की प्राप्ति होती है। इसी कारण दिगंबरसंप्रदायी लज्जा-निवारण करने के लिए भी वस्त्र धारण करना उचित नहीं समझते। श्वेतांबर श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। इसी कारण उन्हें श्वेतांबर कहते हैं। इसके दो भेद हैं। एक का नाम मंदिरमार्गी या डेरावासी है। ये तीर्थंकरों की मूर्ति बनाकर उसकी पूजा करते हैं। दूसरे संप्रदाय का नाम स्थानकवासी है। इनको लोग ढूंढिया भी कहते हैं। स्थानकवासी प्रतिमापूजा के विरोधी हैं। जैन संन्यासियों को यति और गृहस्थों को श्रावक कहते हैं। जितेंद्रियता के लिए यति लोग प्रसिद्ध हैं। किसी प्रकार जीवहिंसा न हो इसके लिए ये सर्वदा सावधान रहते हैं। श्रावकों के प्रधान चार गुण हैं—दान, विनय, दया और कठोर नियमों का पालन। जैन यति देवालयों में शास्त्र-पाठ करते हैं। जैनों के आगम नामक पचास धर्मग्रंथ हैं। अहिंसा ही जैनियों का परम धर्म है। पारसनाथ पर्वत, आबू पर्वत, शत्रुंजय पर्वत आदि इनके तीर्थस्थान हैं। कठियावाड़ के गिरनार पर्वत पर भी जैनियों के मंदिर हैं।

जैमिनी—मीमांसादर्शनप्रणेता महर्षि। इनका बनाया मीमांसादर्शन पूर्वमीमांसादर्शन कहा जाता है। इसको जैमिनिदर्शन भी कहते हैं। पूर्वमीमांसादर्शन आस्तिक षड्दर्शनों के अंतर्गत समझा जाता है। इसके १२ अध्याय हैं। इसमें वैदिक मंत्रों पर विचार किया गया है। इस कारण इसे मीमांसादर्शन कहते हैं। जिन-जिन विषयों में वेद और स्मृतियों में विरोध है उसीका विचार इस दर्शन में किया गया है। इस दर्शन के अतिरिक्त देवता का अस्तित्व नहीं माना

जाता। क्योंकि जिस घट पर इंद्र का आवाहन किया गया, यदि उस घड़े पर ऐरावत के साथ या स्वयं इंद्र आकर बैठें, तो अवश्य ही वह घड़ा चूर-चूर हो जाएगा और छोटे घड़े पर इंद्र का आकर बैठना भी तो असंभव है। अतएव जिस मंत्र से जिस देवता का आवाहन किया जाता है उसी मंत्र को ही देवता मान लेने में कोई असुविधा नहीं रह जाती।

जैमिनि नामक अनेक ऋषियों का परिचय पाया जाता है, अतः मीमांसादर्शन के प्रणेता कौनसे जैमिनि हैं इसका पता लगाना कठिन है। कृष्णद्वैपायन वेदव्यास के एक शिष्य का भी नाम जैमिनी था। 'जैमिनिभारत' नामक ग्रंथ इन्हींका बनाया कहा जाता है। ये वेदव्यास से महाभारत और सामवेद पढ़े थे। जैमिनि के नाम से सामवेद की एक शाखा भी है। ये दोनों जैमिनि एक हैं या भिन्न-भिन्न हैं, इसका पता कैसे लगाया जाए? वज्रवारक पांच ऋषियों में जैमिनि का भी नाम पाया जाता है। इनके अतिरिक्त दर्शनकार जैमिनि एक ही हैं, इसका निर्णय करने का कोई उपाय नहीं है।

जोधाजी—जोधपुर के स्थापनकर्ता राठौर वीर। इनके पिता राव रिड़मल्ल थे। इनके पिता और पितामह माडौर के किले में रहकर राज्य-शासन करते थे। परंतु एक योगी के कहने से इन्होंने जोधपुर बसाया था। उदयपुर के चूड़ा जी ने माडौर पर अधिकार कर लिया था। उस समय जोधा जी बन में छिपकर रहने लगे थे। पुनः समय पर जोधा जी ने अपने साथियों को लेकर माडौर के किले पर चढ़ाई की और उसपर अपना अधिकार कर लिया था। संवत् १४८४ के वैशाख मास में मेवाड़ के अंतर्गत धनला नामक ग्राम में इनका जन्म हुआ था। संवत् १५१५ में इन्होंने जोधपुर नगर की स्थापना की थी। जोधा जी के १४ पुत्र थे। **(टाड्स राजस्थान)**

जोधाबाई—ये जोधपुर के राजा मालदेव की पुत्री और उदयसिंह की बहिन थीं। उदयसिंह ने अकबर की कृपा पाने के लिए अपनी बहिन जोधाबाई का ब्याह अकबर से किया था। यह ब्याह सन् १५६६ ई० में हुआ था। इन्हींके गर्भ से सलीम का जन्म हुआ था जो अकबर के पीछे जहांगीर नाम धारण करके दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। ये अकबर को हिंदुओं के साथ अच्छा व्यवहार करने के लिए उपदेश दिया करती थीं।

जोनराज—कल्हण ने अपने से पूर्ववर्ती तथा सामयिक राजाओं का इतिहास सन् ११४८ ई० में राजतरंगिणी में लिपिबद्ध किया था। उसके बाद से अपने समय तक के राजाओं का इतिहास जोनराज ने लिखा है। इनकी बनाई राजतरंगिणी दूसरी राजतरंगिणी कही जाती है। इन्होंने अपने ग्रंथ में अपना समय इस प्रकार लिखा है :

श्रीजोनराजविबुधः कुर्वन् राजतरङ्गिणीम्।
सायकाग्निमिते वर्षे शिवसायुज्यमावसत्॥

अर्थात् पंडित जोनराज संवत् ३५ में राजतरंगिणी बनाकर शिवसायुज्य को प्राप्त हुए। इससे जाना जाता है कि इन्होंने सन् १४१२ ई० में प्राणत्याग किया। इन्होंने भारवि के किरातार्जुनीय नामक काव्य की टीका भी लिखी थी, ऐसा जाना जाता है।

जोरावरसिंह—(१) बीकानेर के एक राजा का नाम। सुजानसिंह के बाद ये बीकानेर के सिंहासन पर बैठे। सन् १७३७ ई० में ये बीकानेर के राजा हुए। दस वर्षों तक इन्होंने राज्य किया था। इनके शासन समय में कुछ विशेष घटना नहीं हुई। **(टाड्स राजस्थान)**

(२) जयसलमेर के प्रधान सामंत। इनके पिता का नाम अनूपसिंह था। अनूपसिंह ने राजकुमार रायसिंह से मिलकर जयसलमेर के राजा रावल मूलराज को कैद कराया था। परंतु जोरावरसिंह ने अपनी माता की आज्ञा से रावल मूलराज को कारागार से निकाल लिया था। रावल मूलराज के मंत्री सलीमसिंह ने षड्यंत्र रचकर इनको राज्य से निकलवा दिया था। एक समय वह कहीं बाहर से आ रहा था कि रास्ते में सामंतों ने उसे घेर लिया। सलीमसिंह ने दूसरा उपाय न देख, जोरावरसिंह के पैर पर पगड़ी रख दी, अतएव उन्होंने क्षमा कर दिया। परंतु दुष्ट सलीमसिंह ने विष से उनको मरवा डाला।

(टाड्स राजस्थान)

ज्ञानचन्द्र—सौराष्ट्रनिवासी द्वापरयुगीन एक महायोगी; ये बड़े पुण्यात्मा व्यक्ति थे। एक बार भयंकर अकाल के कारण इनको और इनकी पत्नी को बीस दिनों तक उपवास करना पड़ा। इस अवस्था में किसी प्रकार इन्हें एक कुम्हड़ा प्राप्त हुआ। ज्यों ही ये उसे खाने के लिए प्रस्तुत हुए कि इन्हींकी तरह बीस दिन से भूखा एक गोप वर्षा के कारण ठिठुरता हुआ इनके घर आया। इन्होंने वह कुम्हड़ा उसे दे दिया और कुछ दिन बाद भूख से दोनों मर गए। मरकर

वे मोक्षत्व को प्राप्त हुए। (पद्मपुराण)

ज्ञानश्रुति—प्रतिष्ठानपुर (पैठण) निवासी एक पुण्यात्मा राजा। एक बार आकाशचारी हंस से इन्हें ज्ञात हुआ कि रैक्व नामक कोई ब्रह्मवेत्ता इनसे भी अधिक पुण्यात्मा है। राजा उसका पता लगाकर उसके पास गया और उसने रैक्व से उसकी निरिच्छ वृत्ति का कारण पूछा। रैक्व ने यह उसे 'गीता' के छठे अध्याय के पारायण से प्राप्त हुई बताया। (पद्मपुराण)

ज्यामघ—पुराणों में इसे मतांतर से परावृत्तपुत्र, रुक्मकवचपुत्र या रुचकपुत्र और इसी प्रकार इसकी पत्नी को चैत्रा या शैव्या कहा गया है। इसकी कोई संतान न थी। एक बार भोज देश की राजकन्या भोज्या का स्वयंवर हुआ। ये भी उसमें गए और भोज्या को विजित कर अपने साथ ले आए। इनकी पत्नी ने जब भोज्या के बारे में इनसे प्रश्न किया तो इन्होंने उसे अपनी पत्नी को पुत्रवधू बताया। निःसंतान चैत्रा को दुःख हुआ; किंतु शीघ्र ही उसको पुत्र-प्राप्ति हुई और तब यथासमय भोज्या से उसका विवाह कर दिया गया। (भागवत)

'हरिवंश' तथा अन्य पुराणों में इस कथा को प्रकारांतर से कहा गया है। वहां कहा गया है कि बंधु-बांधवों द्वारा भगाए गए इस राजा को ब्राह्मणों ने प्रोत्साहित कर विभिन्न नगरों पर आक्रमण के लिए राजी किया। इसने मृत्तिकावती राजनगरी पर अधिकार करने के उपरांत ऋक्षवत् पर्वत को विजित किया और वहां अपना उपनिवेश बसाया। मृत्तिकावती की विजय से वह उपदानवी नामक एक कन्या को साथ लेकर अपने राज्य में वापस आया। अपनी पत्नी से उसने उस कन्या को पुत्रवधू बनाने के लिए कहा। उस कन्या के तपःप्रभाव से शैव्या को विदर्भ नामक पुत्र हुआ और यथासमय दोनों का विवाह कर दिया गया।

ज्योतिष्मान्—ये राजा प्रियव्रत के पुत्र थे। इनको राजा प्रियव्रत ने कुशद्वीप का अधिकार दिया था।

ज्वर—दैत्यराज बाण के एक सेनापति का नाम। इसके तीन पैर, तीन मस्तक, छः बाहु और नौ नेत्र थे। महादेव ने इसे बाण की सहायता के लिए भेजा था। बलराम और प्रद्युम्न को को लेकर श्रीकृष्ण अनिरुद्ध का उद्धार करने के लिए बाण की राजधानी में गए थे। बाण के सेनापति ज्वर से आक्रांत होकर श्रीकृष्ण वहां पीड़ित हुए थे। ज्वर श्रीकृष्ण के शरीर में प्रवेश करके उन्हें पीड़ित करने लगा, अतएव श्रीकृष्ण ने एक और ज्वर की सृष्टि की। इसने श्रीकृष्ण के शरीर में घुसे हुए ज्वर को उनके सामने खड़ा किया। उस समय ज्वर नम्र होकर श्रीकृष्ण से दया-प्रार्थना करने लगा। उसकी स्तुति से प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने ज्वर को छोड़ दिया और उसे वर दिया कि पृथ्वी में तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा ज्वर नहीं रहेगा। (हरिवंश)

ज्वाला—(१) 'महाभारत' (आ० ९०।२४) के अनुसार तक्षक की कन्या, ऋक्ष की पत्नी और अन्तिनार की माता।

(२) नीलध्वज की पत्नी; नीलध्वज ने अर्जुन को अश्वमेध का अश्व वापस कर दिया था; किंतु इसने अपने पति को युद्ध करने के लिए उकसाया। नीलध्वज ने उसे स्वीकार नहीं किया। तब यह अपने भाई उल्मुक के पास गई और उससे अर्जुन के साथ युद्ध करने के लिए कहा। उसने भी इसका कहना नहीं माना। तदनंतर यह गंगातट पर गई। गंगाजल का पैर से स्पर्श होते ही इसने स्वयं को महापाप करने के लिए धिक्कारा। यह सुनकर गंगा को आश्चर्य हुआ। वह सुमंगलादेवी के रूप में प्रकट हुई। उसने ज्वाला से पाप लगने का कारण पूछा। तब इसने कहा कि गंगा ने अपने सात पुत्रों को डुबाकर मार डाला था और तब शंतनु से आठवां पुत्र मांगा। अर्जुन ने उसका वध किया। इसलिए उसने सुमंगलारूप गंगा से कहा, "तुम निपुत्री और पापिनी होओ!" यह सुनकर गंगा ने अर्जुन को शाप दिया कि छह मास के भीतर ही उसका शिरच्छेद हो जाएगा। आगे चलकर बभ्रुवाहन ने युद्ध में अपने बाण से अर्जुन का शिरच्छेद किया। तदनंतर अर्जुन की पत्नी उलुपी ने नागलोक से भभूत लाकर अपने पति को पुनरुज्जीवित किया।

झ

झूनाराम—यह जयपुर राज्य का एक मंत्री था । महाराज जयसिंह की अकाल मृत्यु होने के पीछे भटियानी रानी राज्यशासन करती थी । ऐसा संदेह करने का पूरा अवसर मिलता है कि भटियानी रानी का चरित्र शुद्ध नहीं था । झूनाराम ने उनके हृदय पर अपना अधिकार जमा लिया था । इसी कारण गवर्नमेंट के नियुक्त सुयोग्य प्रधानमंत्री बैरिसाल को निकाल, रानी ने इसे प्रधानमंत्री बनाया । इसके मंत्री बनते ही जयपुर राज्य में मनमाने कार्य होने लगे । जयपुर राज्य में अराजकता ने विशाल मूर्ति धारण कर ली । प्रजा के दुःखों का ठिकाना नहीं रहा । कहते हैं, जयसिंह की अकाल मृत्यु का भी कारण झूनाराम ही हैं । भटियानी रानी के मरने के बाद इसको प्रधानमंत्री के पद से हटाकर चुनार के किले में आजीवन कैद कर लिया गया था ।

(टाड्स राजस्थान)

ट

टोडरमल—बादशाह अकबर के ये राजस्व मंत्री थे । ये जाति के खत्री थे । पंजाब के लाहौर नगर में इनका जन्म हुआ था । ये युद्धविद्या में अत्यंत निपुण थे । ये अकबर के सेनापतियों में से भी थे । गाना-बजाना और कविता करने में भी ये दक्ष थे । गणित के ये प्रकांड विद्वान् थे और ज्ञान के अन्य भागों में भी इनका न्यूनाधिक अधिकार था । यद्यपि ये राजस्व मंत्री के पद पर थे तथापि अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध थे । टोडरमल से पहले राजकीय हिसाब हिंदी भाषा में लिखे जाते थे परंतु इनके समय से राज्य का हिसाब पारसी में लिखा जाने लगा । २७ वर्ष की अवस्था में टोडरमल इतने बड़े राज्य के दीवान हुए थे । मालगुजारी वसूल करने के जो इन्होंने नये नियम बनाए थे, उनसे इनका यश चारों ओर फैल गया । अकबर के राज्य में इनके समान हिसाब जाननेवाला दूसरा नहीं था । टोडरमल ने मुहर्रिरी से अपनी बुद्धि के बल से इतने बड़े उच्च पद को प्राप्त किया था ।

ठ

ठाकुर—इनका जन्म १८८० वि० (१७६३ ई०) को हुआ था । ये बुंदेलखंड के निवासी थे और वहीं की जैतपुर रियासत के राजा केसरीसिंह के यहां इन्होंने आश्रय प्राप्त किया । इनके पिता गुलाबराय ओरछानरेश के मुसाहिब और पितामह खंगराय कांकोरी के मनसबदार थे । इनके पुत्र का नाम दरियाबसिंह और

पौत्र का नाम शंकरप्रसाद था, जोकि कवि थे। जाति के ये कायस्थ थे। राजा केसरीसिंह के पुत्र पारीछत ने इनका राजसम्मान किया और इन्हें दरबार का रत्न घोषित किया। ये पद्माकर के समकालीन थे। पद्माकर के प्रमुख आश्रयदाता बांदा के राजा हिम्मतबहादुर गोसाईं के दरबार में इन्हें समय-समय पर आमंत्रित किया जाता था और इस रूप में इन दोनों रीतिकालीन कवियों की काव्य-स्पर्धा से दरबारी लाभान्वित होते थे। ये इतने स्वाभिमानी थे कि एक बार राजा हिम्मतबहादुर द्वारा कटु वचन कहे जाने के कारण इन्होंने भरे दरबार में तलवार खींचकर अपनी निर्भीक एवं स्वच्छंद वृत्ति की उद्घोषणा कर सुनने वालों को चकित कर दिया था। ये स्वभाव से ही नहीं, अपितु अपने कविकर्म में भी स्वतंत्र थे। रीतिकालीन कवि होने पर भी इन्होंने रीतिमुक्त काव्यधारा को अपनाया, जिसका प्रभाव परवर्ती कवियों पर भी पड़ा। इनकी कविताएं यद्यपि स्फुट रूप से अनेक ग्रंथों में संकलित हुई मिलती हैं, तथापि 'ठाकुर शतक' के उपलब्ध दो संपादित संस्करणों में इनकी प्रायः समस्त रचनाएं संकलित हो गई हैं। इनका निधन १८८० वि० (१८२४ ई०) में हुआ। (लाला भगवानदीन, सं०—ठाकुर शतक)

ड

डिम्बक—शाल्व नगर के राजा ब्रह्मदत्त के पुत्र का नाम। इनके सौतेले भाई का नाम हंस था। हंस और डिबक महादेव के वर से देवता, असुर, गंधर्व और दानव आदि से अवध्य हो गए थे और विरूपाक्ष तथा कुंडोदर नामक दो रुद्र के अनुचर भी इनके साथ सर्वदा रहा करते थे। एक समय इन लोगों ने दुर्वासा मुनि का अपमान किया। उनके दंड-कमंडलु आदि तोड़-फोड़ डाले। मुनि ने इनकी उच्छृंखलता श्रीकृष्ण से जाकर कही। श्रीकृष्ण ने हंस और डिबक के साथ युद्ध किया। श्रीकृष्ण हंस के साथ युद्ध करते-करते उसको बड़ी दूर लिये चले गए। डिबक सात्वकि के साथ युद्ध कर रहा था। डिबक को मालूम हुआ कि उसका भाई मारा गया। अतः उसने युद्ध छोड़कर यमुना में प्रवेश किया, और अपनी जीभ उखाड़कर वह स्वयं मर गया। आत्महत्या करने के कारण डिबक को बहुत दिनों तक नरकभोग करना पड़ा था। (हरिवंश)

डूंगरसिंह—बीकानेर के एक राजा का नाम। इनके पिता का नाम लालसिंह था। ये दत्तक होकर बीकानेर की राजगद्दी पर आए थे। इनकी छोटी अवस्था होने के कारण मंत्रिसभा के द्वारा इनके राज्य का शासन होता था। राजा की अधिक अवस्था होने पर भी मंत्रिसमाज ही राज्य-शासन करता रहा। सन् १८७५ ई० में अमरसिंह नामक एक सामंत ने इनको विष देने का प्रयत्न किया था, अतएव महाराज ने उसे १२ वर्ष के लिए कारागार भिजवा दिया। सन् १८७६ ई० में ये हरिद्वार और गया तीर्थ करने गए थे। वहां से लौटते प्रिंस ऑफ वेल्स (सम्राट् एडवर्ड) से आगरा में मिले थे। इन्होंने अपने सामंतों पर कर बढ़ा दिया था। इससे सामंत असंतुष्ट हो गए थे। अंत में वह असंतोष इतना बढ़ा कि उसका निपटारा युद्ध के द्वारा करना पड़ा। इनको अंग्रेज गवर्नमेंट से भी सहायता लेनी पड़ी। अंग्रेज गवर्नमेंट की सेना और महाराज की सेना दोनों ने वींदासर नामक किले पर आक्रमण किया। अंत में सामंतों ने आत्मसमर्पण कर दिया। (टाड्स राजस्थान)

त

तकवान—ऋग्वेद का मंत्रद्रष्टा ऋषि, जो कि संभवतः कक्षीवत् कुल से संबंधित था। (ऋग्वेद)

तक्ष—दाशरथी भरत से मांडली में उत्पन्न पुत्र; पुराणों तथा 'रामायण' के अनुसार अपने भाई पुष्कर के साथ इसने गांधार देश पर आक्रमण किया और उसे विजित कर तक्षशिला नगरी की स्थापना की (देखिए तक्षशिला)।

तक्षक—एक सर्प का नाम। इसीने राजा परीक्षित को काटा था। सर्पयज्ञ से रक्षा पाने के लिए इसने इंद्र का आश्रय लिया था। परंतु इंद्र ने अपने पर आती हुई आपत्ति को देखकर इसका त्याग किया, परंतु आस्तीक ने इसकी रक्षा की। (महाभारत)

तक्षशिला—(१) झेलम नदी के तट पर एक नगर, जो अटक और रावलपिंडी के बीच में बसा था।

(२) गंधर्व देश की राजधानी का नाम। भरत के ज्येष्ठ पुत्र तक्ष की यह राजधानी थी। इसके पहले तक्ष ने इसे स्थापित किया था। महाभारत के आदि-पर्व में लिखा है कि राजा जनमेजय ने तक्षशिला पर अधिकार कर लिया था। उस समय भी भरत के पुत्र तक्ष के वंशधर वहां राज्य करते थे या और कोई राज्य करता था, इसका पता नहीं मिलता। महाराज जन-मेजय ने तक्षशिला पर अधिकार करके बहुत दिनों तक उसका शासन किया था और वहीं उन्होंने सर्पयज्ञ प्रारंभ किया था। जनमेजय के पहले युधिष्ठिर आदि के समय तक्षशिला का नाम कहीं नहीं देखा जाता। पाश्चात्य पंडितों का मत है कि तक्कजाति ने तक्ष-शिला नगरी स्थापित की थी। इस जाति के आदि-पुरुष का नाम तक्षक था। तक्षगण नागोपासक थे। तक्षशिला नगरी में नागमूर्ति की पूजा होती थी। राजा कनिष्क ने बौद्धधर्म का प्रचार करके नाग-पूजा उठा दी। तक्कजाति नूरानी जाति से उत्पन्न हुई थी ऐसा भी बहुतों का अनुमान है। सिकंदर ने जिस समय भारत पर आक्रमण किया था उस समय तक्षशिला एक छोटा राज्य समझा जाता था। (भारतवर्षीय इतिहास)

तख्तसिंह—जोधपुर के एक राजा। ये अहमदनगर के राजा रायसिंह के प्रपौत्र थे। अहमदनगर के राजा पृथ्वी-सिंह ने महाराज तख्तसिंह के पुत्र यशवंतसिंह को दत्तक पुत्र रूप से ग्रहण किया था। पृथ्वीसिंह के मरने पर तख्तसिंह यशवंतसिंह के नाम से अहमद-नगर का शासन करने लगे। मारवाड़पति मानसिंह का परलोकवास होने पर तख्तसिंह को ही राजरानी तथा सामंतों ने जोधपुर का राजा बनाया। तख्तसिंह के मारवाड़ के राजा होने पर अहमदनगर वालों ने बखेड़ा खड़ा कर दिया। अतएव उनके पुत्र भी छः वर्ष के बाद अहमदनगर से जोधपुर चले गए। इनका शासनकाल प्रजा के लिए उत्तम नहीं था। कई विषयों में इनमें और गवर्नमेंट में मतभेद रहा। (टाड्स राजस्थान)

तञ्जौर—तंजौर नगर का ऐहिासिक महत्त्व है। इसे चोलों, नायकों और मराठों ने राजधानी बनाया था। उनकी यह राजधानी एक धर्मतीर्थ के रूप में विश्रुत थी। इसमें आज भी अनेक भव्य मंदिर हैं, जिनकी वास्तु-कला तथा मूर्तिकला की आधुनिक विद्वानों ने सरा-हना की है। उन मंदिरों में चोलराजा राजेंद्र द्वारा निर्मित भगवान बृहदीश्वर का शिव मंदिर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। २१७ फुट ऊंचा यह विशाल मंदिर वास्तुविद्या के लक्षण-विनियोगों के आधार पर बनाया गया है। समीक्षक विद्वानों ने इसके स्थापत्य को भारतीय स्थापत्य का उत्कृष्ट उदाहरण बताया है। यह नगर इस समय मद्रास नगर से लगभग २१८ मील दक्षिण-पश्चिम में कावेरी नदी के तट पर अवस्थित है।

तण्डि—एक कृतप्रगीत ऋषि; दीर्घ तपश्चर्या के अनंतर इसने शिव को प्रसन्न किया था। शंकर ने इसे वर दिया कि उसका पुत्र सूत्रकार होगा। सूर्यकुलोत्पन्न राजा त्रिधन्वन् इसका शिष्य था।

तनय—ये चंद्रवंशी राजा कुश के पुत्र थे।

तपती—सूर्यतनया। यह सूर्यपत्नी छाया के गर्भ से उत्पन्न हुई थी, और कुरुवंशीय ऋक्ष नामक एक प्रसिद्ध राजा

थे। ऋक्ष के पुत्र संवरण अत्यंत भक्त थे। संवरण की तपस्या से प्रसन्न होकर सूर्यदेव ने अपनी कन्या उन्हें दे दी थी। (महाभारत)

तबई—यह इनका वास्तविक नाम था या उपनाम, इस संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इन्हें दक्खिनी हिंदी में प्रेमाख्यान (मसनवी) रचयिता कवियों में अंतिम एवं प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है। इनकी एकमात्र प्रेमाख्यानक उपलब्ध कृति 'बहराम-वो-गुल-अन्दाम' की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि वह गोलकुंडा के सुलतान कुतुबशाह (१६३६-१६७२ ई०) का समकालीन और उसके दामाद तथा उत्तराधिकारी सुलतान अब्रुलहसन तानाशाह (१६७२-१६८६ ई०) का सम्मानित कवि था। इस सुलतान को दिल्ली के बादशाह औरंगजेब के पुत्र शाहजादा आजमन ने बंदी बनाकर गोलकुंडा को अपने अधिकार में किया था। उस समय के प्रसिद्ध संत एवं विद्वान् तानाशाह के गुरु शाहराजू हुसेनी से भी उनका संबंध था। इस दृष्टि से इनका स्थितिकाल १७वीं शती ई० में निर्धारित किया जा सकता है।

अपनी एकमात्र कृति 'बहराम-वो-गुल-अन्दाम' के कारण अपने क्षेत्र में उनको पर्याप्त प्रतिष्ठा एवं ख्याति अर्जित हो चुकी थी। वास्तव में इस कृति को उन्होंने स्वयं को अमर बनाने के उद्देश्य से लिखा था। इसमें ईरान के सासानी वंश के चौदहवें बादशाह बहराम गोर (१४२१-१४३८ ई०) की विलासभरी जीवनी दी गई है। यद्यपि इस प्रकार की मसनवियों का प्रचलन फारसी साहित्य में व्यापक रूप से हो चुका था, तथापि यह रचना फारसी और दक्खिनी हिंदी के प्रेमाख्यानक काव्यों में अपना स्वतंत्र स्थान रखती है (राहुल सांकृत्यायन—दक्खिनी हिंदी काव्यधारा)। इनका देहावसान कब हुआ, इस संबंध में कुछ ज्ञात नहीं है।

तमसा—टोंस नदी जो उत्तरप्रदेश में है और गंगा में गिरती है।

तरणीसेन—विभीषण के पुत्र। ये अत्यंत रामभक्त थे। रामचंद्र के ही हाथ से ये मारे गए। बालमीकि रामायण में इनका उल्लेख नहीं है।

तरन्त—एक क्षत्रिय; पिता का नाम विददश्व; पैतृक नाम वैदिदश्वि; इसका भाई पुरुमीहल और यह श्यावाश्व ऋषि के आश्रयदाता थे। इसकी पत्नी का नाम शशीयसी था, जिससे इसको एक पुत्र हुआ था, जिसके नाम का पता नहीं चलता है; किंतु जिसके लिए इन्होंने रथवीती दार्भ्य की कन्या को पुत्रवधू के रूप में मांगा था। यद्यपि ये दोनों भाई क्षत्रिय से ऋषि बने थे और इन्होंने दान ग्रहण किया था। अपने दानदाता ध्वस्त्र तथा पुरुषंति की इन्होंने प्रशस्ति गाई है।

ताटका—सुकेतु नामक यक्ष की कन्या। सुकेतु निःसंतान थे अतएव उन्होंने ब्रह्मा की आराधना की। प्रजापति ब्रह्मा के वर से सुकेतु की स्त्री के ताड़का नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई थी। जम्भ के पुत्र सुन्द के साथ इसका ब्याह हुआ था। किसी कारण से महर्षि अगस्त्य के शाप के द्वारा सुन्द मारा गया था। स्वामी के मारे जाने से क्रुद्ध होकर ताड़का अपने पुत्र मारीच को साथ लेकर अगस्त्य को मारने के लिए उनके आश्रम पर गई। माता और पुत्र दोनों ही राक्षसत्व को प्राप्त हो गए थे। अतएव उन दोनों ने ही ब्राह्मणों का नाश करना ही अपना कर्तव्य समझ लिया। ब्राह्मणों को देखते ही वे उसपर धावा करते थे। अगस्त्य के आश्रमवासी तपस्वी ताड़का के अत्याचार से पीड़ित होकर भाग-भागकर अपनी रक्षा करने लगे। ताड़का के अत्याचार से महर्षि अगस्त्य का आश्रम शून्य हो गया और 'ताड़का के वन' के नाम से उसकी प्रसिद्धि हुई। गंगा के दक्षिण किनारे जो अब आरा जिला है वह ताड़का राक्षसी का 'वन' था। ताड़का के उपद्रव से मुनिगण व्याकुल हो गए। तब विश्वामित्र ने अयोध्या रगरी में जाकर और दशरथ से राम और लक्ष्मण को ताड़का का वध करने के लिए मांगा। विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण गए। राम ने ताड़का को मार डाला और मारीच को दूर भगा दिया। ताड़का को मारने के समय राम ने कहा था—महाराज! यह स्त्री है, परंतु विश्वामित्र ने कहा—यह स्त्री नहीं है, जो वीर के समान युद्ध करती है। जिसने स्त्रियों के योग्य लज्जा और कोमलता का त्याग कर दिया है, उसे मारने से स्त्रीवध का प्रायश्चित नहीं होता। (रामायण)

ताण्ड्य—मध्यदेश निवासी; वैशंपायन का शिष्य; सामवेद की तांड्य शाखा से संबद्ध; इनका अपर नाम विचक्षण था। इन्होंने सामवेद की कौथुम शाखा पर 'तांड्य महाब्राह्मण' की रचना की थी, जिसके अपर नाम 'पञ्चविंश ब्राह्मण' या 'प्रौढ ब्राह्मण' हैं।

तातिया टोपे—सिपाही-युद्ध के एक प्रसिद्ध नायक। यह

नाना साहब के दाहिना हाथ समझे जाते थे। इन्होंने भी नाना साहब के समान सिपाही-युद्ध में प्रसिद्धि पाई थी। सिपाही-युद्ध का इतिहास इनकी वीर कहानी से पूर्ण है। सन् १८५६ में इनको प्राणदंड मिला था। (इतिहास)

तातिया भील—एक प्रसिद्ध डाकू। इसके पिता का नाम भावसिंह था। इसका जन्म सन् १८४२ ई० में मध्य-प्रदेश के अंतर्गत विरदा नामक गांव में हुआ था। तातिया को डाका डालने से जो धन मिलता था वह उसे दरिद्र ब्राह्मणों को दान कर दिया करता था। कहते हैं, इसने कभी ब्राह्मण, स्त्री और बालकों को नहीं लूटा। डाकू होने के पहले वह तीन-चार बार जेल में हो आया था। दो बार तो वह जेल से भाग भी चुका था। एक बार वह हाजत से सेंध लगाकर भाग आया था। पुलिस बहुत प्रयत्न करने पर भी उसको पकड़ नहीं सकी थी। अंत में एक स्त्री के धोखा देने से वह पकड़ा गया और प्राणदंड से दंडित हुआ।

तानसेन—भारतीय संगीत के इतिहास में तानसेन का नाम मध्ययुगीन संगीतज्ञ आचार्यों में अग्रणी है। एक ध्रुपदकार के रूप में वैष्णवों के कीर्तन-साहित्य में उनका स्थान अनन्य है। वे ग्वालियर के एक ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए थे और कहा जाता है कि किसी यवनसुंदरी के प्रेम में समर्पित होकर वे मुसलमान हो गए थे। प्रसिद्ध संत स्वामी हरिदास उनके दीक्षागुरु थे और उनके पदों का गायन कर इन्होंने ब्रजभूमि को रस-विभोर कर दिया था। गोसाईं विट्ठलनाथ और सूरदास से उनकी भेंट हुई थी। उनके तीन ग्रंथों का उल्लेख हुआ है—'संगीतसार', 'रागमाला' और 'श्रीगणेशस्तोत्र'। तानसेन का एक कवि की अपेक्षा इस रूप में विशेष महत्त्व है कि उनके द्वारा भक्तिकालीन काव्य में संगीत का संयोग होकर उसकी लोकप्रियता बढ़ी (आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रभुदयाल मीतल—हिंदी कवि; संगीतसम्राट् तानसेन—अकबरी दरबार)।

तामस—श्रवस् तथा मतांतर से धर्म का पुत्र; माता का नाम हिंसा।

(२) प्रियव्रत का वंशज या पुत्र और उत्तम का भाई; माता का नाम उत्पलावती; माता की तामस योनि से उत्पन्न होने के कारण इनको तामस मनु के नाम से कहा गया। सार्वभौम राज्य को प्राप्त किया और अनेक राजाओं को पराजित किया। वसंत तथा शरद् ऋतु के नवरात्र से इन्होंने नर्मदा नदी के दक्षिण तट पर महेश्वरी देवी की आराधना की थी, जिसके वरदानस्वरूप ये चतुर्थ मन्वंतराधिप बने। सत्कर्मों को करते हुए अंत में पत्नी-सहित इन्होंने स्वर्ग प्राप्त किया।

ताम्रपर्णी (तम्बपम्नी)—(१) ताम्रपर्णी के संबंध में उल्लिखित प्राचीन ग्रंथों के विवरणों को आधुनिक विद्वानों ने विभिन्न स्थानों से सभीकृत किया है। पुराणों में उसका विशेष उल्लेख हुआ है। महाभारत (वन-पर्व) में इसे एक पवित्र नदी बताया गया है। 'अर्थ-शास्त्र' में इसे 'पारसयुद्ध' कहा गया है। अशोक के दो अभिलेखों में भी इसका उल्लेख हुआ है। सुंदर पाडच के अभिलेख में उसे 'तणयोरुंद-आरु' कहा गया है, जिसके आधार पर उसे लंका से समीकृत किया जा सकता है। आधुनिक इतिहासकारों ने उसे तिन्ने-वली की ताम्रपर्णी नदी से योजित किया है। कालि-दास ने इसे 'ताम्रवारी' नाम दिया है। यह नदी इसी नाम से वर्तमान है। यह नदी मोतियों के लिए प्रसिद्ध थी। हुएन-त्सांग ने इसे वैदूर्य पर्वत से समी-कृत किया है। यहीं पर अगस्त्य ऋषि का आश्रम था। यूनानी लेखकों ने इसे 'तप्रोबेन' कहा है और उसका संबंध लंकाद्वीप से जोड़ा है।

(२) मद्रास हाते का टिनेवली नगर इसी नदी के तट पर बसा हुआ है।

ताम्रलिप्ति—इस ऐतिहासिक महत्त्व के प्राचीन नगर का साहित्य तथा अभिलेखों में व्यापक उल्लेख हुआ है। मौर्यों के समय यह मगध साम्राज्य के अंतर्गत था। लगभग छठी शती ई० में यह सुह्म देश की राजधानी के रूप में सम्मानित हुआ। चीनी यात्री फाह्यान (५वीं शती) और हुएन-त्सांग (७वीं शती) यहां आए थे। यहां अनेक बौद्ध विहार और मंदिर थे। चौथी से १२वीं शती तक यह दक्षिण में द्वीपांतरों से समुद्री व्यापार का केंद्र बना रहा। अशोक के धर्म-चक्रप्रवर्तन के लिए इसी बंदरगाह से लंका गए थे। मिदनापुर जिले के आधुनिक तामलुक से प्राचीन ताम्रलिप्ति का समीकरण किया गया है। यहां की खुदाई से अनेक मृण्मय पात्र प्राप्त हुए हैं, जिनसे भारत के पश्चिमी एवं दक्षिणी द्वीपांतरों के साथ व्यापारिक संबंधों पर प्रकाश पड़ता है।

तारक—(१) देवद्वेषी असुर। तपस्या से ब्रह्मा को संतुष्ट

करके इसने दो वर पाए थे। एक वर यह था कि इस जगत् में उससे बलवान् दूसरा कोई जन्म न ले और दूसरा वर यह था कि महादेव के पुत्र द्वारा उसकी मृत्यु हो। ब्रह्मा के वर से बलवान् होकर तारक देवताओं को उत्पीड़ित करने लगा। तारक द्वारा पीड़ित होकर देवता ब्रह्मा की शरण गए। ब्रह्मा बोले—मैं तारक का विनाश नहीं कर सकता, क्योंकि मैंने उसे वर दिया है कि शिव के पुत्र के अतिरिक्त दूसरा उसे नहीं मार सकता। अतएव शिव के जिस प्रकार पुत्र उत्पन्न हो वैसा तुम लोग प्रयत्न करो। देवगण कामदेव को साथ लेकर हिमालय पर्वत पर योगध्यानमग्न महादेव के निकट गए। उस समय पार्वती भी शिव की पूजा करने के लिए वहां उपस्थित थीं। कामदेव ने अवसर जानकर बाण मारा। शिव का मन चंचल हुआ। उनका ध्यान टूट गया। वे क्रोध से इधर-उधर देखने लगे। डरकर देवता भाग गए, परंतु कामदेव नहीं भाग सके। वे महादेव की नेत्राग्नि से भस्म हो गए। महादेव भी उस स्थान को छोड़कर अन्यत्र चले गए और पुनः वहां योगमग्न हो गए। महादेव को प्राप्त करने के लिए पार्वती कठोर तपस्या करने लगीं। पार्वती की तपस्या सफल हुई, पार्वती का शिव से ब्याह हुआ। कार्तिकेय उत्पन्न हुए और उन्होंने तारकासुर का वध किया।

(महाभारत)

(२) इंद्रद्वेषी एक असुर। इस असुर ने इंद्र को अत्यंत पीड़ित किया था। इंद्र विष्णु की शरण में गए। विष्णु ने नपुंसक का रूप धारण करके उसका नाश किया था। (गरुडपुराण)

तारा—(१) कपिराज बाली की पत्नी का नाम। ये सुषेण नामक वानरराज की कन्या और अंगद की माता थीं। बाली के मारे जाने पर इन्होंने सुग्रीव से ब्याह किया था। ये पंचकन्याओं में समझी जाती हैं और प्रातःकाल इनका नाम स्मरण करने से बड़े-बड़े पाप दूर हो जाते हैं।

(२) दस महाविद्या के अंतर्गत एक विद्या का नाम।

(३) देवगुरु बृहस्पति की स्त्री का नाम। एक दिन चंद्रमा ने इनकी सुंदरता पर मुग्ध होकर इनको हर लिया। बृहस्पति ने चंद्रमा के इस दुराचार की बात देवताओं से कही। देवताओं और ऋषियों ने तारा को लौटा देने के लिए चंद्रमा से कहा। परंतु चंद्र ने उनका कहना नहीं माना। रुद्र बृहस्पति का पक्ष लेकर युद्ध करने के लिए तैयार हुए। ब्रह्मा ने अनर्थ होने की आशंका से रुद्र को समझा-बुझाकर युद्धक्षेत्र से हटाया और चंद्रमा से तारा को लेकर बृहस्पति को दे दिया। उस समय तारा के गर्भ था। बृहस्पति ने गर्भत्याग कर तारा से अपने समीप आने के लिए कहा। तारा ने गर्भ त्याग दिया। उस पुत्र का नाम हुआ दस्युसुन्तम। वह पुत्र चंद्रमा का ही औरसजात है—यह जानकर ब्रह्मा ने चंद्रमा को वह पुत्र दे दिया।

तारापीड—काश्मीर के एक राजा। ये प्रतापादित्य के पुत्र थे। इन्होंने तुच्छ राज्यलोभ के कारण अपने देवतुल्य बड़े भाई चंद्रापीड को अभिचार के द्वारा मरवाकर काश्मीर का राज्य पाया था। इनका स्वभाव प्रचंड और भयानक था। इनके राज्य में काश्मीर राज्य की श्रीवृद्धि तो अवश्य हुई, परंतु प्रजा दुःखी रही। ४ वर्ष २४ दिन राज्य करके इनकी मृत्यु हुई।

(राजतरंगिणी)

ताराबाई—(१) राजपुताना के अरावली पर्वत के समीपस्थ बदनौर की एक वीर रमणी। ये सोलंकी राजा राव सुरतान की कन्या थीं। इनका ब्याह पृथ्वीराज से हुआ था। ताराबाई के पिता राव सुरतान के पूर्वपुरुष तोंकखोड़ा में राज्य करते थे। लयला नामक अफगान ने उस किले पर अधिकार कर लिया। तब राव सुरतान बदनौर में जाकर रहने लगे। ताराबाई उस समय युवती थीं। वे सर्वदा योद्धा के वेश में रहना अधिक पसंद करती थीं। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि जो यवनों के अधिकार से खोड़ा का उद्धार करेगा, उसीसे वे अपना ब्याह करेंगी। मेवाड़ के राणा रायमल्ल के पुत्र पृथ्वीराज को इन्होंने अपना पति बनाया। इस दम्पती ने मिलकर और राजपूत सेना लेकर खोड़ा पर आक्रमण करके अपना अधिकार कर लिया। अपने भगिनी पति की विश्वासघातकता के कारण पृथ्वीराज मारे गए, तब ताराबाई ने भी उनका साथ दिया।

(२) छत्रपति शिवाजी की पुत्रवधू, और राजाराम की पत्नी। सन् १७०० ई० में इनके पति का परलोकवास हुआ। इसके बाद औरंगजेब ने सिंहगढ़ पर चढ़ाई की। ताराबाई ने बड़ी वीरता से उसकी रक्षा करने के लिए युद्ध किया। परंतु तीन वर्ष युद्ध होने के बाद सिंहगढ़ औरंगजेब के अधिकार में चला

गया। परंतु ज्यों ही औरंगजेब की सेना हटी, त्यों ही ताराबाई की आज्ञा से मरहठों ने सिंहगढ़ पर अपना अधिकार जमा लिया। महाराष्ट्रीय अनेक युद्धों तथा राजनीति में ताराबाई की चतुरता का पता लगता है। सन् १७५३ ई० में इनका परलोकवास हुआ।

तारामती—शैव्य देश के राजा की पुत्री और राजा हरिश्चंद्र की रानी; इसका अपर नाम शैव्या भी है। अपनी सत्यवादिता-व्रत की रक्षा के लिए हरिश्चंद्र एक डोम के हाथ बिक गए थे और तारामती एक ब्राह्मण के घर सेवा करने लगी थी। एक दिन दुर्भाग्यवश इनके पुत्र रोहिताश्व को सर्प ने डस लिया था और उसकी मृत्यु हो गई थी। तारामती मृत पुत्र को लेकर श्मशान गई, जहां का शवदाह-कर उगाहने के लिए राजा हरिश्चंद्र नियुक्त थे। तारामती से भी हरिश्चंद्र ने कर मांगा। उसके पास देने के लिए कुछ न था; किंतु हरिश्चंद्र अपनी कर्तव्य-निष्ठा पर दृढ़ था। इसी बीच इंद्र और महर्षि विश्वामित्र प्रकट हुए। उन्होंने हरिश्चंद्र की सत्य-निष्ठा को देखकर और उसे परीक्षा में सर्वथा सफल समझकर उसे वरदान दिया और रोहिताश्व को जीवित कर दिया।

तार्क्ष्य—(१) नामांतर तारुक्ष्य; अरिष्टनेमि का पैतृक नाम; विशिष्ट ज्ञान-संपादन करने के कारण ये गुरु-गृह में रहे और वहां इन्होंने गाय की रक्षा की।

(२) कश्यप प्रजापति का नामांतर; इस नाम को धारण कर इन्होंने दक्ष की कन्याएं प्राप्त की थीं।

(३) पक्षिराज, संभवतः सूर्य का प्रतीक; देवताओं के लिए यह सोम लाया था। एक दिव्य अश्व के रूप में भी इसका उल्लेख हुआ है। (ऋग्वेद)

तालकेतु—एक दानव। यह पातालकेतु नामक दानव का छोटा भाई था। पातालकेतु को राजा ऋतध्वज ने मार डाला था। अतएव अपने भाई के मारे जाने का बदला लेने के लिए तालकेतु ने जाल फैलाया। उसने मुनिरूप धारण करके यमुनातट पर अपना आवास बनाया। एक दिन राजपुत्र कुवलयाश्व उसके आश्रम पर गए। उसने छल करके राजकुमार की पगड़ी और कंठा ले लिया और राजमहल में जाकर उसने कहा कि कुवलयाश्व मर गए। पुनः उसके छल का पता लोगों को लग गया और वह मार डाला गया।

तालजङ्घ—कार्तवीर्य का पौत्र और जयध्वज का पुत्र; इसके नाम पर वीतहोम, शार्यात, तुंडिकेर, भोज और अवंती—इन राजवंशों को 'तालजंघ' के नाम से कहा गया। इनके सौ पुत्रों में से ये पांच पुत्र अधिक प्रसिद्ध थे। परशुराम के भय से तालजंघ सपरिवार हिमालय पर चला गया था। जब परशुराम तप करने गया तब ये माहिष्मती नगर में आकर रहने लगे थे। तदनंतर अयोध्या पर आक्रमण कर इसने सगर के पिता फल्गुतंत्र पर विजय प्राप्त की थी। सगर ने और्व ऋषि से प्राप्त आग्नेयास्त्र द्वारा इसको तथा इसके सारे परिवार को भस्म कर डाला था। उनमें से केवल वीतहोम बच पाया था, जिसे कि विद्रूप कर छोड़ दिया गया था।

तितिक्षु—चक्रवर्ती सम्राट् महामनस् या महामणि का पुत्र; स्वयं भी चक्रवर्ती; पश्चिमोत्तर भारत के सम्राट् उशीनर का भाई; इनके नाम से 'तितिक्षु वंश' का प्रवर्तन हुआ। इस वंश की स्थिति पूर्वी भारत में थी। इस वंश के राजा बलि ने पूर्वी भारत में बलाढ्य साम्राज्य की स्थापना की थी। बलि के पांच पुत्रों के नाम थे—अंग, बंग, कलिंग, सुह्म और पुंड्र। इन्हीं के नाम से बाद में इन पांच जनपदों का नामकरण हुआ। सूर्यवंशीय राजा दशरथ के समकालीन राजा रोमपाद अंगवंश का था। अंगवंश के राजा कर्ण तथा बृजसेन भारत-युद्ध में सम्मिलित हुए थे। सम्राट् उशीनर का वंश पश्चिमोत्तर भारत में केकय तथा मद्र आदि जनपदों पर शासन करता रहा।

तित्तिर—एक शाखा-प्रवर्तक ऋषि; अंगिरसकुल के ऋषियों की शाखा में अंगिरस, तैत्तिर और कापिभुव नाम से तीन प्रवर थे। तित्तिर ऋषि संभवतः इन्हीं तैत्तिरि का पिता था। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का प्रवर्तन इन्हींके द्वारा हुआ। यह शाखा पहले वैशंपायन के शिष्य याज्ञवल्क्य के अंतर्गत थी, किंतु वैशंपायन ने उसे अलग कर दिया था और उनके शिष्यों ने तित्तिर पक्षियों के रूप में उसे ग्रहण कर लिया था। (विष्णुपुराण)

तिमिङ्गल—'महाभारत' के अनुसार रामक पर्वत पर रहने-वाला एक राजा; राजसूय यज्ञ के समय सहदेव ने इसपर विजय प्राप्त की थी।

तिमिध्वज—अपर नाम शम्बर; दक्षिणभारत में दंडका-रण्य के निकट वैजयंत नगर का राजा; देवासुर-युद्ध के समय यह असुरों की ओर से इंद्र के साथ लड़ा था। इसी समय इंद्र ने अयोध्या से राजा दशरथ को युद्ध के लिए आमंत्रित किया था, किंतु वे बेहोश हो

गए थे। कैकेयी ने, जो उनकी सारथि थी, उनकी रक्षा की थी। कहा जाता है, आधुनिक विजयदुर्ग, मतांतर से वनवासीनगर, प्राचीन वैजयंतनगर था।

तिलोत्तमा—पहले दैत्यराज हिरण्यकशिपु के वंश में निकुंभ नामक एक असुर उत्पन्न हुआ था। निकुंभ के दो पुत्र थे, सुंद और उपसुंद। ये दोनों विश्व-विजय करने की इच्छा से विंध्य पर्वत पर कठोर तपस्या करने लगे। इनके तप से संतुष्ट होकर ब्रह्मा इनको वर देने के लिए आए। सुंद और उपसुंद ने वर मांगा कि त्रिलोक में कोई भी हम लोगों को नहीं मार सके। यदि किसी कारणवश दोनों भाइयों में विवाद हो जाए तब वे ही एक-दूसरे का विनाश कर सकें; अन्य किसी उपाय से उनकी मृत्यु न हो। यह वर देकर ब्रह्मा के चले जाने पर सुंद और उपसुंद ने देवताओं को दुःख देना आरंभ किया। यज्ञ आदि क्रिया का लोप हो गया। इन दैत्यों के अत्याचार से रक्षा पाने के लिए देवता, ऋषि, सिद्ध आदि ब्रह्मा के निकट गए और देवताओं ने उनके अत्याचार ब्रह्मा से कह सुनाए। ब्रह्मा ने थोड़ी देर तक ध्यान किया और पुनः विश्वकर्मा को बुलाया। विश्वकर्मा ब्रह्मा के समीप उपस्थित हुए। ब्रह्मा ने एक अपूर्वसुंदरी स्त्री बनाने की विश्वकर्मा को आज्ञा दी। संसार में जितने सुंदर पदार्थ हैं, उनका तिल-तिल-भर सुंदर भाग लेकर विश्वकर्मा ने एक सुंदरी स्त्री बनाई। उस स्त्री का नाम हुआ तिलोत्तमा। ब्रह्मा ने सुंद-उपसुंद के निकट जाने के लिए तिलोत्तमा को आज्ञा दी। तिलोत्तमा को देखकर और उसके साथ अपना-अपना ब्याह करने के लिए वे दोनों आपस में लड़ने लगे और आपस में ही कट मरे। त्रिभुवन की बाधा दूर हुई, लोग पुनः अपने-अपने धर्म-कर्म करने लगे। (महाभारत)

यहीं दुर्वासा के शाप से बाण की कन्या हुई थी।

तुकाजी हुल्कर—इंदौर के राजा। ये अहल्याबाई के सेनापति थे। अहल्याबाई अपने सेनापति पर अत्यंत विश्वास और स्नेह करती थीं अतएव उन्होंने सेनापति को हुलकर की उपाधि दी थी।

तुकाराम—ये एक महाराष्ट्र देश के साधु थे। सन् १५८८ ई० में इन्होंने पूना के पास देहुक नामक स्थान में जन्म ग्रहण किया था। ये यद्यपि शूद्र जाति के थे, तथापि सभी जाति के महाराष्ट्रीय इनका आदर करते थे। इनकी जब २१ वर्ष की अवस्था हुई तब इनके माता-पिता का स्वर्गवास हुआ, और उसी समय इनके बड़े भाई भी घर छोड़कर बाहर चले गए। २५ वर्ष की अवस्था में इनका ब्याह हुआ था। भाई के घर छोड़कर चले जाने पर तुकाराम को वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसी समय उस देश में दुर्भिक्ष पड़ा और उसमें बहुत लोगों ने अन्न न मिलने के कारण प्राणत्याग किए। इन दोनों घटनाओं का तुकाराम पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इन्होंने भी घर छोड़ दिया, और ये ईश्वरोपासन में अपना समय बिताने लगे। तुकाराम की कविताओं का नाम 'अभंग' है। इन्होंने आठ हजार से भी अधिक अभंग बनाए हैं। इन अभंगों के द्वारा इन्होंने महाराष्ट्र देश में धर्म-प्रवाह संचारित कर दिया था। दूर-दूर के लोग इन्हें देखने को जाते थे। शिवाजी ने इनको अपनी राजधानी में बुलाने के लिए एक व्यक्ति भेजा था। परंतु तुकाराम ने अत्यंत विनय से उनको उत्तर दे दिया। अनंतर स्वयं शिवाजी उनके समीप गए और उनका उपदेश सुनकर वन में जाकर तपस्या करने लगे। शिवाजी की ऐसी अवस्था देखकर उनकी माता जीजाबाई तुकाराम के समीप गईं, और सारी हालत तुकाराम से कही। तदनंतर जब पुनः शिवाजी वहां आए तब तुकाराम ने उन्हें योग्य शिक्षा देकर विदा किया। अब भी क्या धनी, क्या दरिद्र, सभी तुकाराम की कविता का आदर के साथ पाठ करते हैं। तुकाराम ने अंतिम समय अपनी पत्नी से कहा था कि तुम्हारे गर्भ से एक अत्यंत भक्त पुत्र उत्पन्न होगा। तुम उसका नारायण नाम रखना। तुकाराम की भविष्यवाणी सफल हुई थी। उस लड़के को देखने के लिए शिवाजी भी आए थे और उसके पालन के लिए एक गांव दिया था।

तुकाराम जाति के शूद्र थे। उनके पूर्वपुरुष व्यापार करके जीविका-निर्वाह करते थे। परंतु धन के अभाव से तुकाराम का व्यापार नहीं चलता था। कोई उनका विश्वास कर उन्हें ऋण भी नहीं देता था। तुकाराम की दो पत्नियां थीं। उनमें से एक दरिद्र की कन्या और रोगिणी थी, दूसरी धनी की कन्या थी। उसका नाम अबलाई था। अबलाई धनी की लड़की थी, परंतु दरिद्र के यहां ब्याह होने से उसकी प्रकृति कठोर हो गई थी। उसने कुछ रुपये तुकाराम को व्यवसाय करने के लिए कहीं से लाकर दिए थे। उससे कुछ लाभ भी हुआ था, परंतु एक गरीब ब्राह्मण की दुर्दशा सुनकर तुकाराम ने वे सभी रुपये उसे दे डाले और छूंछे हाथों घर लौट आए।

यह देखकर अबलाई ने उग्र मूर्ति धारण की। उनकी पहली पत्नी रोगिणी थी ही, और पुन: अन्न का कष्ट, अतएव उसने प्राण त्यागकर इन दु:खों से अपना पीछा छुड़ाया। इन्हीं सब बातों को देखकर तुकाराम को निश्चय हो गया कि संसार में सुख नहीं है। अतएव वे घर छोड़ चले गए। इनके उपदेश सुनने के लिए दूर-दूर से लोग आते थे। तुकाराम ने कहां शरीरत्याग किया—इसका कुछ भी पता नहीं लगता; तथापि इतना जाना गया है कि सन् १६५६ ई० में इनका परलोकवास हुआ था।

तुज्जीन—काश्मीर के एक राजा का नाम। इनके पिता का नाम जलौका था। महाराज तुज्जीन बड़े प्रजा-रंजक राजा थे। इनकी स्त्री का नाम वाक्पुष्टा था। इन्होंने तुंगेश्वर नामक शिव मंदिर बनवाया था। एक समय तुज्जीन के राज्य में दुर्भिक्ष पड़ा। अन्न के अभाव से जिधर देखो, उधर ही दुबले-पतले आदमी दृष्टिगोचर होते थे। बड़े-बड़े कुलीन अन्न के लिए द्वार-द्वार मारे-मारे फिरने लगे। अपनी प्रजा की ऐसी दुरवस्था देखकर तुज्जीन अपने पास से अन्न खरीदकर प्रजा में बंटवाने लगे। परंतु अंत में राजकोष भी शून्य हो गया। राजा बड़ी विपत्ति में पड़े। वे दिन-रात प्रजा की चिंता करते-करते सूखकर कांटा हो गए। राजा की ऐसी दशा देख, महारानी वाक्पुष्टा ने उन्हें बहुत समझाया और प्रजा को भोजन देने का कुछ प्रबंध कर दिया। इसी प्रकार एक साल बीता, दूसरे साल वृष्टि हुई और अकाल भी जाता रहा। राजा तुज्जीन ने ३६ वर्ष तक राज्य किया था।

(राजतरंगिणी)

तुम्बरु (तुम्बुरु)—(१) कश्यप तथा प्राधा से उत्पन्न पुत्र; प्रसिद्ध गंधर्व; इसकी पत्नी का नाम रम्भा था। नारद मुनि के साथ यह ब्रह्मा की सभा में गायन के साथ भगवान का गुणगान किया करता था। श्रीकृष्ण के अभिषेक के समय यह उनके पास आया था। रम्भा पर आसक्त होने के कारण कुबेर ने इसे शाप दिया, जिससे कि यह विराध राक्षस बना। राम-लक्ष्मण के साथ युद्ध में मृत होने के कारण इसका पुनरुद्धार हुआ।

(२) सुबाहु तथा मुनिकन्या से उत्पन्न एक गंधर्व; इसकी दो कन्याओं के नाम थे मनुवंशी और सुकेशी।

(३) एक राक्षस, देवासुर संग्राम में जिसका वध वायु ने किया था।

तुर्वसु—राजा ययाति के औरस और देवयानी के गर्भ से ये उत्पन्न हुए थे। पुराणों को देखने से मालूम होता है कि इन्हीं तुर्वसु ने तुरुस्क (तुर्कस्थान) राज्य स्थापित किया था।

तुलसी—एक गोपी का नाम। ये गोलोक में राधिका की सहेली थीं। राधा ने इन्हें एक दिन श्रीकृष्ण के साथ क्रीड़ा करते देख शाप दिया कि "तुम मनुष्य योनि को प्राप्त होओ।" यह शाप सुनकर तुलसी दु:खित हुईं और श्रीकृष्ण की शरण गईं। श्रीकृष्ण ने कहा, "तुम मनुष्य-जन्म प्राप्त कर तपस्या द्वारा हमारा अंश प्राप्त कर सकोगी।" राधा के शाप से तुलसी ने मर्त्य-लोक में राजा धर्मध्वज के औरस और उनकी स्त्री माधवी के गर्भ से जन्म ग्रहण किया। उसका रूप संसार के सभी पदार्थों से अतुलनीय था, इस कारण उसका नाम तुलसी पड़ा। इसने वन में जाकर कठोर तपस्या की। तपस्या के अंत में वर देने के लिए ब्रह्मा वहां उपस्थित हुए। तुलसी ने श्रीकृष्ण को पाने के लिए वर मांगा। ब्रह्मा ने कहा, सुदामा नामक एक गोप गोकुल में रहता था। वह श्रीकृष्ण के अंग से उत्पन्न हुआ था। वह भी राधा के शाप से शंखचूड नाम धारण करके पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ है। पहले तुम उसको अपना पति बनाओ, बाद में तुमको श्रीकृष्ण भी मिल जाएंगे। यह कह ब्रह्मा चले गए। तुलसी का भी यथासमय शंखचूड से ब्याह हुआ। शंखचूड के उत्पात से देवतागण व्याकुल हो गए। शंखचूड को वर था कि जब तक उसकी स्त्री का सतीत्व नष्ट नहीं होगा, तब तक वह नहीं मारा जाएगा। देवताओं की दुर्दशा देखकर श्रीकृष्ण ने शंखचूड की मूर्ति धारण कर तुलसी का सतीत्व नष्ट किया। शंखचूड भी मारा गया। तुलसी ने अपना सतीत्व नष्ट हुआ जानकर श्रीकृष्ण को शाप दिया कि तुम पाषाण हो जाओ। तुलसी अपने स्वामी का मरना सुनकर नारायण के पैरों पर गिर पड़ी। तब नारायण ने कहा, तुम्हारा शरीर गंडकी नदी हो, और तुम्हारे केशों से तुलसी नामक वृक्ष उत्पन्न हो, तुम लक्ष्मी के समान हमारी प्रियतमा होओगी।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

तुलसीदास—प्रसिद्ध महात्मा कवि। ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। यमुना किनारे राजापुर नामक ग्राम में शायद सन् १५३५ ई० में इनका जन्म हुआ था। आठ वर्ष की अवस्था में इनके पिता मर गए थे। पिता के

परलोकवास होने के कुछ दिनों के बाद तुलसीदास काशी में पढ़ने आए। काशी में १२ वर्ष रहकर इन्होंने विद्याध्ययन किया। तदनंतर ये स्वदेश को लौट गए और ब्याह करके संसारधर्म का पालन करने लगे। कहते हैं, तुलसीदास बड़े स्त्रीपरायण थे। वे सर्वदा स्त्री के साथ रहा करते थे। एक समय तुलसीदास के ससुर ने उनकी स्त्री को बुलाया, परंतु उन्होंने उसे न जाने दिया। एक दिन तुलसीदास किसी कार्यवश कहीं गए थे, अवसर जानकर उनके ससुराल वाले उसी समय आए और उनकी स्त्री को ले गए। जब तुलसीदास लौटकर आए और अपनी स्त्री को घर में न देखा, तब उन्होंने माता से पूछा। माता से मालूम होने पर बिना विलंब किए ही तुलसीदास अपनी ससुराल के लिए चल पड़े। स्त्री ने अपने पति को कामवश देखकर बड़े क्रोध में भरकर कहा—

लाज न लागत आपकों, दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम कों, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थिचर्ममय देह मम, तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ, होत न तो भवभीति॥

स्त्री की बातों का तुलसीदास के मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उनके ज्ञाननेत्र खुल गए। वे वहीं से काशी चले गए। वहीं से उनके धार्मिक जीवन का सूत्रपात हुआ। उन्होंने कई-एक ग्रंथ भी बनाए हैं, जिनमें से उनका 'रामचरितमानस' नामक काव्य बहुत ही प्रसिद्ध है। उनके विषय में अनेक अलौकिक घटनाएं प्रसिद्ध हैं जिनसे उनके महात्मा और महानुभाव होने का परिचय मिलता है।

तुलसी साहिब—इनका जन्म १७६० से १७६३ ई० के बीच हुआ था। इन्हें मराठा सरदार रघुनाथराव का ज्येष्ठ पुत्र तथा बाजीराव द्वितीय का अग्रज माना गया है; किंतु यह मत इतिहाससम्मत नहीं है। बारह वर्ष की अवस्था में ये घर से निकल पड़े थे और हाथरस में रहने लगे थे। इन्हें 'साहिब पंथ' का प्रवर्तक माना जाता है। इन्होंने किसी लोकपुरुष को गुरु स्वीकार नहीं किया है, अपितु हृदयस्थ 'पद्म-गुरु' को ही अपना आधार माना है और उसीको 'मूल संत' कहा है। काशी में रहकर इन्होंने विभिन्न संप्रदायों के अनुयायियों से सैद्धांतिक वाद-विवाद किया था। स्वयं को इन्होंने पूर्वजन्म में तुलसीदास बताया है। इनकी वाणियां आध्यात्मिक दुरूहता से परिपूर्ण हैं। इन्होंने परंपरागत संत मत के सिद्धांतों का परिमंडन करने की अपेक्षा आत्म-स्थापना पर अधिक बल दिया है। इनकी कृतियां 'शब्दावली', 'रत्नसागर', 'पद्मसागर' (अपूर्ण) और 'घटरामायन' सभी प्रकाशित हो चुकी हैं। इनका निधन १८४२ या १८४३ ई० में माना गया है (बड़थ्वाल—हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय)।

तुलाधार—(१) काशी का रहने वाला धार्मिक और ब्रह्मतत्त्वज्ञ एक बनिया। इसीने महर्षि याजलि को मोक्षधर्म का उपदेश दिया था। (महाभारत)

(२) एक व्याध, यह भी काशी का रहने वाला था। माता-पिता की सेवा करके यह सर्वज्ञ बन गया था। भूत-भविष्य का ज्ञान इसकी आंखों के सामने नाचा करता था।

तृणबिन्दु—एक ऋषि का नाम। ये २४वें द्वापर में वेदों का विभाग करके वेदव्यास नाम से प्रसिद्ध हुए थे।

तृणावर्त—कंस का एक अनुचर दानव। इसे कंस ने श्रीकृष्ण को मारने के लिए गोकुल भेजा था। तृणावर्त वायु बनकर श्रीकृष्ण को लेकर आकाश में जाना चाहता था, परंतु श्रीकृष्ण बड़े भारी हो गए, अतएव वह उन्हें उठा तक न सका। श्रीकृष्ण ने इसका गला पकड़ लिया था, इसलिए यह भाग न सका और वहीं मर गया। (श्रीमद्भागवत)

तृष्टामा—इसका अस्तित्व ऋग्वेदकालीन है। यह सिंधु की पश्चिमी सहायक नदी है। इस समय इसे 'जासकार' नाम से कहा जाता है और यह काश्मीर के लद्दाख क्षेत्र में बहती है।

तेगबहादुर—सिक्खों के नवें गुरु। सन् १६७५ ई० में औरंगजेब ने इनका सिर कटवा लिया था। इनके पिता हरगोविंदसिंह सिक्खों के छठे गुरु थे। इनकी माता का नाम नानकी था। मुगल-सम्राट् औरंगजेब की आज्ञा से ये कैद करके दिल्ली ले आए गए थे। मुसलमान धर्म ग्रहण करने के लिए उनपर बड़े-बड़े अत्याचार किए गए थे। तेगबहादुर ने अपने गले में एक कागज का टुकड़ा लटकाकर औरंगजेब से कहा कि हमारे गले में जो मंत्र बंधा है, उसके प्रभाव से कटा मस्तक जुड़ जाता है। सम्राट् ने उनका सिर कटवा दिया, परंतु मस्तक न जुड़ा। तब वह कागज पढ़कर देखा गया। उसमें लिखा था, "सिर दिया, सर नहीं दिया" अर्थात् मस्तक दे दिया पर अपने मन का भाव नहीं दिया।

तेजसिंह—ये जयसलमेर के महाराज यशवंतसिंह के तृतीय

पुत्र थे। यशवंतसिंह के मरने के बाद इन्होंने ही बलपूर्वक जयसलमेर का राज्य अपने हाथ में कर लिया था। नियम से राज्य के अधिकारी इनके बड़े भाई के पुत्र अक्षयसिंह थे। अक्षयसिंह जयसलमेर से भागकर दिल्ली यशवंतसिंह के भाई हरिसिंह के पास पहुंचे। हरिसिंह ने प्रतिज्ञा की कि मैं जयसलमेर चलकर तेजसिंह को गद्दी से उतार दूंगा। इसी अभिप्राय से अक्षयसिंह को लेकर हरिसिंह जयसलमेर गए।

जयसलमेर में एक उत्सव होता था, जिसका नाम था 'ल्हास'। उस दिन धड़सी नामक तालाब के किनारे राजा-प्रजा सभी एकत्रित होते थे और उस तालाब से एक-एक मुट्ठी रेत निकालकर बाहर रखते थे। उसी समय अवसर देखकर हरिसिंह ने तेजसिंह पर आक्रमण किया। बहुत मनुष्य मारे गए। तेजसिंह भी इतने घायल हुए कि वे घावों के कारण मर गए।
(टाड्स राजस्थान)

तोषनिधि—इनका जन्म जिला फरुखाबाद के कपिला नामक स्थान में हुआ था। इनके पिता का नाम ताराचंद अवस्थी था, जोकि कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तोषमणि और तोषनिधि को एक ही व्यक्ति माना है, जोकि युक्तिसंगत नहीं है। इनके तीन ग्रंथों का अभी तक पता लगा है, जिनके नाम हैं—'रतिमंजरी', 'नखशिख' और 'व्यंग्यशतक'। 'रतिमंजरी' की पुष्पिका में उसका रचनाकाल १७३० ई० दिया गया है, जिससे इनके स्थितिकाल के संबंध में कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

तोषमणि—ये तोषनिधि से भिन्न थे। इनका जन्म शृंगवेरपुर (सिंगरौर) में हुआ था। इनके पिता का नाम चतुर्भुज शुक्ल था। इनके तीन ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं, जिनके नाम हैं—'सुधानिधि', 'विनयशतक' और 'नखशिख'। इनके ग्रंथ 'सुधानिधि' का रचनाकाल १६३५ ई० (१६९१ वि०) है, जिसके आधार पर इनके स्थितिकाल का अनुमान लगाया जा सकता है। भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से इनकी कृतियों की सराहना की गई है। इनकी कृतियों में आचार्यत्व और कवित्व, दोनों का संयोग हुआ है।

त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य—इनका पैतृक नाम गैरिक्षित था। ऋग्वेद में इस सूक्तद्रष्टा एवं पूरुओं के राजा का पौरुकुत्सि तथा पौरुकुत्स्य नामों से उल्लेख हुआ है। इनके पिता का नाम पुरुकुत्स और माता का नाम पुरुकुत्सानी था। पुरुकुत्स सुदास का समकालीन था। त्रसदस्यु के दो पुत्रों के नाम हिरणिन् तथा कुरुश्रवण थे।

ऋग्वेद (५।२१) के एक संदर्भ के अनुसार एक बार राजा त्र्यरुण अपने पुरोहित वृश जान को साथ लेकर रथ में जा रहा था। पुरोहित रथवाहन कर रहा था। रथ द्रुतगति से चलाए जाने के कारण एक ब्राह्मणपुत्र उसके नीचे आ गया और उसकी मृत्यु हो गई। इसपर राजा तथा पुरोहित में ब्राह्मणपुत्र की हत्या को लेकर पारस्परिक विवाद उपस्थित हो गया। तब वे निर्णय के लिए राजा इक्ष्वाकु के पास गए। इक्ष्वाकु ने निर्णय दिया कि हत्या का दोषी रथवाहक वृश जान है। इस अभियोग से उऋण होने के लिए वृश जान ने वार्श साम स्तोत्र का पाठ कर ब्राह्मण बालक को पुनर्जीवित किया। राजा इक्ष्वाकु को पक्षपात से प्रभावित जानकर अग्निदेव उसके घर से गुप्त हो गया। तब उसके घर के सब यज्ञ-याग बंद हो गए। राजा को अपनी भूल का ज्ञान हुआ और वह वृश जान के पास गया। तब वृश जान ने वार्श साम सूक्त का पाठ कर अग्नि को संतुष्ट किया, जिससे कि राजा के घर में पुनः यज्ञ-याग होने लगे। इस कथा में त्र्यरुण, त्रैवृष्ण तथा त्रसदस्यु को एक ही व्यक्ति माना गया है।

त्रिगर्ता—पंजाब का जालंधर जिला।

त्रिजटा—लंकेश्वर रावण के अंतःपुर में रहनेवाली एक राक्षसी। यह सीता की रक्षा करने के लिए नियुक्त की गई थी। अन्य राक्षसियों का सीता के प्रति निर्दय व्यवहार था, परंतु त्रिजटा का सीता के प्रति व्यवहार सदय था।
(रामायण)

त्रित—गौतम मुनि के एक पुत्र का नाम। एकत और द्वित नामक इनके दो भाई और थे। ये तीनों बड़े तपस्वी और विद्वान् थे। त्रित अपने भाइयों की अपेक्षा विद्या और बुद्धि में श्रेष्ठ थे। एक समय ये तीनों भाई वन में होकर पशु लाने के लिए दूसरे गांव में गए। दोनों भाई पशु लेकर घर चले आए और त्रित को वन में छोड़ आए। त्रित एक भेड़िये के सामने पड़ गए। वे उससे अपनी रक्षा करने के लिए जो दौड़े तो एक कुएं में गिर पड़े। कहते हैं, उन्होंने वहीं बैठकर सोमयज्ञ किया। उस यज्ञ में देवता भी उपस्थित हुए तथा उनके प्रभाव से उस कूप ही में सरस्वती

नदी का आविर्भाव हुआ। तभी से वह कूप उदयान तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस कूप का जल पीने से सोमरस पीने का फल मिलता है। त्रित के शाप से इनके दोनों भाई वन में वृक बनकर घूमते हैं।
(महाभारत)

त्रिपुरारि—महादेव का नामांतर। त्रिपुर का नाश होने के कारण महादेव का यह नाम पड़ा है। तारकासुर के तीन पुत्र थे। तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली। इन लोगों ने कठोर तपस्या करके यह वर पाया था कि ये तीनों भाई स्वतंत्र तीन नगरों में वास करेंगे। हजार वर्ष के बाद वे तीनों नगर मिलित होंगे उस समय यदि कोई बाण मारकर उसका विनाश कर सकेगा वही इनका मारने वाला होगा। इसीके अनुसार उन लोगों ने मय दानव को तीन नगर बनाने की आज्ञा दी। मय दानव ने अपने तपोबल से स्वर्ग में सुवर्णमय, अंतरिक्ष में रजतमय और पृथिवी में लौहमय नगर बनवाए। तारकाक्ष सुवर्णमय पुरी में, कमलाक्ष रजतमय पुरी में और विद्युन्माली लौहमय पुरी में वास और शासन करने लगे। तारकाक्ष का एक हरि नामक पुत्र था, उसने तपस्या द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न करके यह वर पाया कि उसके नगर में एक तालाब खोदा जाए। उसमें स्नान करने से अस्त्र से मारे हुए मनुष्य जी उठेंगे। ऐसा वर पाकर दानवों के अभिमान की सीमा न रही। वे देवताओं पर अत्याचार करने लगे। इन्द्रादि देवता ब्रह्मा की शरण में गए। ब्रह्मा ने कहा कि मेरे ही वर के प्रभाव से वे इतना अत्याचार कर रहे हैं। किंतु महादेव के बिना दूसरा कोई उनका विनाश नहीं कर सकता है। अतएव देवों को लेकर ब्रह्मा महादेव के निकट गए। देवताओं की दुर्दशा सुनकर महादेव अधीर हो गए। उन्होंने देवों का कल्याण-संपादन करने के लिए दानवों के विनाश का संकल्प किया। महादेव दिव्य रथ पर आरूढ़ हुए और स्वयं ब्रह्मा सारथि बने। कुछ दूर आगे जाकर, उन्होंने दानवों के त्रिपुर को देखा। महादेव धनुष चढ़ाकर त्रिपुर के मिलने की अपेक्षा करने लगे। पुरत्रय के मिलने के समय ही महादेव ने बाण मारकर उनका नाश किया। पुरवासी आर्तनाद करने लगे। महादेव ने असुरों को जलाकर पश्चिम समुद्र में फेंक दिया।
(महाभारत)

त्रिभुवन गुप्त—काश्मीर के एक राजा का नाम। ये अभिमन्यु गुप्त के द्वितीय पुत्र थे। संवत् ५१ के अगहन शुक्लपक्ष में इनकी दादी ने अभिचार से इन्हें मरवा डाला। ४ वर्ष, ४ महीने, १० दिन इन्होंने काश्मीर का शासन किया था।
(राजतरंगिणी)

त्रिवेणी—यह एक प्राचीन तीर्थस्थान है। जिसको अनेक कवियों ने अपने काव्यों में रूपायित किया है। बंगाल के मध्ययुगीन कवि मुकुन्दराम ने इसका एक पुण्य-स्थल के रूप में वर्णन किया है। यहां पर जफरखां का एक मकबरा है, जोकि हिंदू मंदिर के ऊपर खड़ा किया गया है और जिसमें महाकाव्यों के दृश्य निर्मित हैं। भागीरथी और सरस्वती के संगम पर स्थित यह तीर्थ बंदेल जंकशन से ५ मील दूर मुक्तवेणी के नाम से कहा जाता है।

त्रिशंकु—(१) सूर्यवंशी एक राजा। सशरीर स्वर्ग जाने की इच्छा से इन्होंने वसिष्ठ को यज्ञ कराने के लिए कहा था। वसिष्ठ ने कहा—यह होना असंभव है। गुरु से कोरा उत्तर पाकर त्रिशंकु ने गुरुपुत्रों के समीप जाकर अपना अभिप्राय प्रकट किया। वसिष्ठ के पुत्रों ने कहा कि यह काम हम लोगों के द्वारा नहीं हो सकता, पिता की उपेक्षा करके हम लोग यह काम नहीं कर सकते हैं। राजा त्रिशंकु ने कहा कि गुरु ने भी हमारा काम कराना अस्वीकार किया और आप लोग भी अस्वीकार करते हैं। अतएव हमको अब दूसरा गुरु बनाना ही पड़ेगा। यह सुन वसिष्ठ के पुत्र बड़े क्रुद्ध हुए और उन लोगों ने शाप दिया—तुम चांडालत्व को प्राप्त होओ। वसिष्ठ के पुत्रों के शाप से राजा चांडाल हो गए, उनकी मनोवृत्ति मलिन हुई। राजा को चांडाल जानकर मंत्रियों ने भी उन्हें छोड़ दिया। राजा अपनी दुर्दशा देख विश्वामित्र के पास गए। विश्वामित्र ने योगबल से सब जान लिया। उन्होंने सशरीर राजा को स्वर्ग पहुंचाने की प्रतिज्ञा की। विश्वामित्र की आज्ञा से उनके पुत्र यज्ञ का आयोजन करने लगे, महर्षियों को निमंत्रण देने के लिए विश्वामित्र के शिष्यगण चारों तरफ दौड़ाए गए। वसिष्ठ, उनके पुत्र तथा महोदय ऋषि के अतिरिक्त और सभी वेदज्ञ ऋषियों को निमंत्रण दिया गया। महोदय और वसिष्ठ के पुत्रों ने कहा कि जिस यज्ञ में क्षत्रिय यज्ञ कराने वाला है और करने वाला चांडाल है, उसमें देवता आदि हवि भोजन कैसे करेंगे? यह सुनकर विश्वामित्र अप्रसन्न हुए और उन्होंने वसिष्ठ के पुत्रों को कुकुर-मांस-भोजी डोम तथा निषाद हो जाने के लिए शाप दिया। विश्वामित्र की आज्ञा से देवज्ञ

ऋषियों ने यज्ञ प्रारंभ किया। स्वयं विश्वामित्र इस यज्ञ के अध्वर्यु बने। परंतु यज्ञ में कोई भी देवता न आया, तब क्रुद्ध होकर विश्वामित्र अपनी तपस्या से राजा को स्वर्ग भेजने का प्रयत्न करने लगे। विश्वामित्र के तपोबल से राजा धीरे-धीरे ऊपर उठने लगे, पर इंद्र ने मना किया। इससे विश्वामित्र और भी क्रुद्ध हो गए और उन्होंने एक नये स्वर्ग का निर्माण करना प्रारंभ किया। इससे अनर्थ होने की संभावना देख, देवों ने विश्वामित्र से संधि कर ली। तब से अधोमस्तक होकर त्रिशंकु अंतरिक्ष में लटकते हैं। (रामायण)

(२) हरिवंश में एक दूसरे त्रिशंकु की बात लिखी गई है। ये महाराज त्रय्यावरुण के पुत्र थे। इनका पहला नाम सत्यव्रत था। इन्होंने दूसरे की स्त्री का हरण किया था। इस कारण इनके पिता इनपर अप्रसन्न हो गए थे। तदनंतर इन्होंने गुरुदेव वसिष्ठ की गौ को मार डाला और उसका मांस भी खाया। इन्हीं तीन पापों के कारण इनका नाम त्रिशंकु पड़ा था। इनके पिता ने इन्हें अपने राज्य से बाहर निकाल दिया था। यह देखकर विश्वामित्र को इनपर दया आई और इन्होंने त्रिशंकु को पिता के राज्य पर बैठा दिया। त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग भेजने के लिए विश्वामित्र ने यज्ञ भी करवाया था। देवता भी इनको स्वर्ग में स्थान देने के लिए सहमत हुए। इनकी स्त्री का नाम सत्यरथा था। इसीके गर्भ से पुण्यात्मा हरिश्चंद्र उत्पन्न हुए थे। (हरिवंश)

त्रिशिरा—एक राक्षस का नाम। यह खर-दूषण की सेना में विद्यमान था। श्रीरामचंद्र जी के द्वारा १४ हजार राक्षसों के मारे जाने पर त्रिशिरा और खर ये दो ही बचे थे। (रामायण)

त्रैलिङ्गस्वामी—महात्मा दाक्षिणात्य ब्राह्मणवंश में उत्पन्न हुए थे। विजिना ग्राम में सन् १५२९ ई० के पौष मास में इन्होंने जन्म ग्रहण किया था। इनके पिता नृसिंहधर बड़े भारी धनी थे। नृसिंहधर की दो स्त्रियां थीं। बड़ी स्त्री के गर्भ से यही त्रैलिंगधर उत्पन्न हुए थे। यही त्रैलिंगधर बाद में त्रिलिंगस्वामी नाम से प्रसिद्ध हुए थे। ये काशी में रहते थे, और इनकी लोग विश्वनाथ के समान पूजा और श्रद्धा करते थे। त्रैलिंग की ४० वर्ष की अवस्था में इनके पिता का परलोकवास हुआ था। पिता के परलोकवास होने पर इन्होंने अपनी माता से अनेक शास्त्रों तथा योगविद्या का अध्ययन किया था। त्रैलिंग की ५२ वर्ष की अवस्था होने पर इनकी माता का भी परलोकवास हुआ। माता का अग्निसंस्कार करके त्रैलिंग पुनः घर नहीं लौटे। इनके छोटे भाई श्रीधर ने इन्हें बहुत रोका, परंतु इन्होंने उनके कहने पर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया। पुनः इनके छोटे भाई श्रीधर गांव वालों को साथ लेकर इनके पास गए, परंतु तो भी त्रैलिंग अपने संकल्प से विचलित नहीं हुए। उन्होंने पिता की समस्त संपत्ति छोटे भाई को दे दी। श्रीधर ने अपने बड़े भाई के रहने के लिए स्थान तथा आहारादि का प्रबंध कर दिया था। उसी स्थान पर रहकर २० वर्ष तक इन्होंने योगाभ्यास किया। वहीं भगीरथस्वामी नामक एक योगी से इनका साक्षात्कार हुआ। त्रैलिंग भगीरथस्वामी के साथ पुष्करक्षेत्र गए और वहां बहुत दिनों तक वास किया।

वहां रहकर इन्होंने योग की गुप्त क्रियाएं सीखीं। इन्होंने भगीरथस्वामी से दीक्षा ली, और उन्होंने इनका गणपतिस्वामी नामकरण किया, परंतु काशी में रहने के समय जिस नाम से इनकी प्रसिद्धि थी, वही नाम बना रहा। पुष्कर तीर्थ में भगीरथस्वामी के देहत्याग करने के पश्चात् त्रैलिंगस्वामी अनेक तीर्थों में गए। रामेश्वर से होकर जब स्वामी जी सुदामापुरी गए तब वहां इनके आशीर्वाद से एक ब्राह्मण को धन-पुत्र लाभ हुआ था। वहां इनकी सिद्धि देखकर लोगों की भीड़ इनके यहां जुटने लगी। इससे दुःखित होकर वहां से ये हिमालय प्रदेश में, नेपाल के राज्य में, चले गए। वहां इन्होंने कुछ दिनों तक योगाभ्यास किया परंतु जब वहां भी लोग इन्हें घेरने लगे तब ये वहां से तिब्बत और मानससरोवर को चले गए। वहां इन्होंने बहुत दिनों तक योगाभ्यास किया। अनंतर वहां से आकर मध्यप्रदेश में नर्मदा नदी के तीर पर मार्कण्डेय मुनि के आश्रम में रहने लगे। वहां इनका अनेक संन्यासियों से परिचय हुआ। वहां एक खाकी बाबा नामक योगी रहते थे। एक दिन वे आधी रात को नर्मदा किनारे गए। वहां उन्होंने देखा, नर्मदा की धारा दुग्धधारा हो गई है, और त्रैलिंगस्वामी उसका पान कर रहे हैं। परंतु खाकी बाबा जब वहां उपस्थित हुए, तो फिर पानी का पानी। इस अलौकिक घटना के देखने से खाकी बाबा को बड़ा आश्चर्य हुआ। तब से खाकी बाबा और आश्रम के अन्य लोग इनमें बड़ी भक्ति करने लगे। पुनः वहां से ये काशी गए। काशी

में पहले-पहल इन्होंने तुलसीदास के बाग में अपना आसन जमाया, पुनः वहां से वेदव्यास के आश्रम तथा वहां से हनुमानघाट पर ये रहने लगे। तुलसीदास के बाग में रहने के समय इन्होंने एक कुष्ठरोगी को नीरोग किया था। एक बार एक दक्षिणी स्त्री ने नंगे रहने के कारण इनका तिरस्कार किया था। काशी के विश्वनाथ ने उस स्त्री को इष्टसिद्धि के लिए स्वामी जी के पास जाने के लिए स्वप्न में आज्ञा दी थी। वह स्त्री अपने स्वामी का असाध्य रोग दूर करने के लिए विश्वनाथ की आराधना करती थी। विश्वनाथ ने उसे वर दिया कि नंगे स्वामी को प्रसन्न करो, रोग छूट जाएगा। इन्होंने शीतातप के कष्ट को वश में कर लिया था। माघ की रात्रि में भी ये कभी गंगा में घंटों स्नान करने लग जाते थे। इनके विषय में और भी अनेक कथाएं प्रचलित हैं। इन्होंने काशी में पंचगंगा के पास 'लाट' नामक शिवलिंग स्थापित किया है। कहा जाता है कि सन् १८८७ ई० के पौष मास में शुक्ल एकादशी की संध्या को इस महात्मा ने २८० वर्ष की अवस्था में शरीरत्याग किया।

त्वष्टाधर—शुक्राचार्य का पुत्र एवं असुर पुरोहित; 'महाभारत' (आदि० ५९।३६) में इसकी तेजस्विता तथा ब्रह्मविद्या-विचक्षणता का उल्लेख हुआ है।

त्वष्टृ—(१) यह देवताओं का शिल्पी था। गो और शुक्र इसके माता-पिता थे। इसकी पत्नी का नाम यशोधरा था। इसे विश्वकर्मा तथा प्रजापतियों के अधिकार प्राप्त थे। हस्तकौशल-निर्मित वस्तुओं का इसे एकाधिकार प्राप्त था। इस प्रकार समस्त प्रजा का निर्माता यही था। इसीलिए इसे विश्वकर्मन् तथा प्रजापति कहा गया। इसके तीन पुत्र हुए, जिनके नाम थे त्रिशिरस, विश्वरूप और विश्वकर्मन्। 'भागवत' (६।६।४४) में इसके सन्निवेश नामक चतुर्थ पुत्र का भी उल्लेख हुआ है। विश्वरूप का इंद्र द्वारा वध होने के कारण यह इंद्र का घोर शत्रु हो गया था। एक बार इंद्र इसके सोमयाग में सम्मिलित हुआ। वहां इंद्र ने सोमपान किया; किंतु पुनः उसे वमन कर दिया। जो सोम शेष था, उसका उसने हवन किया और उससे इंद्रशत्रु वृत्र का आविर्भाव हुआ।

(२) महाभारतकालीन शिल्पशास्त्रज्ञ; युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के समय इंद्र ने इससे इंद्रप्रस्थ नगर का निर्माण कराया था।

(३) कश्यप तथा अदिति का पुत्र; जोकि प्रत्येक आश्विन मास में उदित होता है।

(४) प्रभास वसु तथा अंगिरस् पुत्री ब्रह्मवादिनी का पुत्र, जोकि प्रत्येक फाल्गुन मास में प्रकाशित होता है।

(५) 'भागवत' के अनुसार, राजा भौवन तथा दूषणा से उत्पन्न पुत्र और 'विष्णुपुराण' के अनुसार मनस्यु का पुत्र।

द

दक्ष प्रजापति—इनकी उत्पत्ति के विषय में अनेक पुराणों में भिन्न-भिन्न मत पाए जाते हैं। कालिकापुराण में लिखा है—ब्रह्मा ने जगत् की सृष्टि करने की इच्छा से आधा पुरुष का और आधा नारी का शरीर ग्रहण किया और उसी नारी के गर्भ से विराट् पुरुष की उत्पत्ति हुई। विराट् पुरुष ने स्वायम्भुव मनु को जन्माया। स्वायम्भुव मनु ने तपस्या द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न किया और ब्रह्मा ने सृष्टि के लिए दक्ष को उत्पन्न किया। दक्ष ने योगमाया की आराधना करके यह वर पाया कि योगमाया उनकी कन्या रूप से उत्पन्न होकर महादेव की गृहिणी बनेंगी। इसी प्रकार बिना स्त्रीसंग के दक्ष प्रजापति सृष्टि करने लगे। परंतु दक्ष ने जितने पुत्र उत्पन्न किए वे सब नारद के कहने से पृथ्वी-परिक्रमा करने लगे। इस प्रकार प्रजा की वृद्धि रुक गई, तब दक्ष ने मैथुनी सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा से असिक्नी को ब्याहा। उसीके गर्भ से योगमाया उत्पन्न हुई, जिसका नाम सती था।

गरुडपुराण में लिखा है, प्रजापति ब्रह्मा ने प्रजा-सृष्टि करने की इच्छा से धर्म, रुद्र, मनु, सनक, भृगु आदि मानस पुत्रों को उत्पन्न किया और दक्षिणाङ्गुष्ठ से दक्ष और वामाङ्गुष्ठ से उनकी स्त्री को उत्पन्न किया। दक्ष ने अनेक कन्याएं उत्पन्न की थीं, जिनमें एक कन्या सती रुद्र को ब्याही गयी थी।

हरिवंश में इस प्रकार लिखा है—दस प्रचेताओं की इच्छा और मारिषा के गर्भ तथा सोमदेव के अंश से दक्ष की उत्पत्ति हुई थी। उन्होंने अनेक मानसी कन्याओं की सृष्टि की थी। इन कन्याओं में से दस धर्म को, १३ कश्यप को, और २१ सोमदेव को ब्याही गईं। इन्हीं कन्याओं के गर्भ से दैत्य, दानव, नाग, पशु, पक्षी आदि नानाजातीय जीवों की सृष्टि हुई।

हरिवंश के द्वितीय और तृतीय अध्याय में लिखा है कि ब्रह्मा के दक्षिणाङ्गुष्ठ से दक्ष और वामाङ्गुष्ठ से दक्षपत्नी उत्पन्न हुए थे। प्रजापति दक्ष ने पहले देवता, गंधर्व, असुर, पशु, पक्षी आदि की मानसी सृष्टि करके देखा कि मानसी सृष्टि की प्रजाओं की वृद्धि नहीं होती, अतएव उन्होंने स्त्री-पुरुष के योग ही से प्रजा की सृष्टि करना उचित समझा। तब उन्होंने वीरण प्रजापति की कन्या असिक्नी को ब्याहा। असिक्नी के गर्भ से दक्ष ने ५ हजार पुत्र उत्पन्न किए। परंतु ब्रह्मा के मानस पुत्र नारद ने हर्यश्व और सरलाश्व आदि दक्षपुत्रों को अनेक प्रकार की बातें समझाकर उद्देश्य-हीन बना दिया। वे सृष्टिकार्य से उदासीन हो गए। यह देखकर दक्ष ने नारद का नाश कर दिया। पुनः ब्रह्मा दक्ष के निकट आए और उन्होंने नारद का जीवन-दान मांगा। दक्ष ने कहा—मैं अपनी कन्या देता हूं, आप इसे ले जाकर कश्यप को दीजिए, उसीके गर्भ से नारद पुनः उत्पन्न होंगे। ब्रह्मा ने दक्षकन्या कश्यप को दी, और उसके गर्भ से नारद उत्पन्न हुए।

भागवत में दक्ष को ब्रह्मा का मानसपुत्र लिखा है। दक्ष ने मनुकन्या प्रसूति को ब्याहा। प्रसूति के गर्भ से दक्ष को १६ कन्याएं उत्पन्न हुईं। उनमें १३ धर्म को, एक अग्नि को, एक पितरों को और एक शिव को ब्याही गई। दक्ष का सती में बड़ा स्नेह था। एक समय प्रजापतियों ने एक बड़े यज्ञ का अनुष्ठान किया। उस यज्ञ में समस्त देवता उपस्थित थे। प्रजापति दक्ष जब इस यज्ञ में आए, तब सब देवता उनका सम्मान करने के लिए खड़े हुए परंतु महादेव बैठे ही रहे। इससे दक्ष अप्रसन्न हो गए। उन्होंने शिव की निंदा की तथा शाप दिया कि शिव आज से देवताओं के साथ यज्ञभाग नहीं पा सकेंगे। यह कहकर दक्ष यज्ञभूमि से उठकर चले गए। तभी से जामाता और श्वशुर में विद्वेष खड़ा हो गया।

थोड़े दिनों के बाद परमेष्ठी ब्रह्मा ने दक्ष को समस्त प्रजापतियों का अधिपति बनाया। इससे दक्ष के अभिमान की सीमा नहीं रही। उन्होंने बृहस्पति नामक एक यज्ञ का अनुष्ठान किया। इस यज्ञ में सब को निमंत्रण दिया गया। परंतु महादेव और सती को निमंत्रण नहीं दिया गया। पिता के घर में होने वाले यज्ञ का संवाद सुनकर सती ने अपने मायके जाने के लिए स्वामी की अनुमति मांगी। परंतु स्वामी ने किसी प्रकार अनुमति नहीं दी। तब सती बिना निमंत्रण पाए ही और पति की बात न मानकर, पिता के यज्ञ में उपस्थित हुईं। दक्ष सती के सामने ही शिव की निंदा करने लगे। पिता के द्वारा अपमानित होकर सती ने वहीं यज्ञस्थान ही में शरीरत्याग किया। नारद से सती के देहत्याग की बात सुनकर शिव व्याकुल हो गए, और उन्होंने अपनी एक जटा काटकर उसी समय भूमि पर पटक दी। उस जटा से वीरभद्र उत्पन्न हुआ। शिव के अनुचरों को लेकर वीरभद्र दक्षयज्ञ का विनाश करने के लिए चल पड़े। वीरभद्र ने भृगु की दाढ़ी उखाड़ ली। पूषा के दांत तोड़ डाले, और दक्ष का सिर काटकर यज्ञाग्नि में भस्म कर डाला। यह सब हाल सुनकर ब्रह्मा देवों को साथ लेकर कैलास गए और उन्होंने स्तुतियों द्वारा महादेव को प्रसन्न कर दक्ष को जीवित करने का अनुरोध किया। महादेव ने कहा, दक्ष का मस्तक जल गया है। अतएव अब बकरे का मस्तक ही दक्ष का मस्तक बने। ब्रह्मा ने वैसा ही किया। दक्ष जी उठे। उन्होंने यज्ञ समाप्त करके अनेक विध स्तुति करके महादेव को प्रसन्न किया। (भागवत)

महाभारत आदिपर्व के पांचवें खंड में लिखा है—प्रचेता के दक्ष नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। दक्ष ही से समस्त प्रजा उत्पन्न हुई। इसी कारण दक्ष पितामह कहे जाते हैं। दक्ष ने वीरणी के गर्भ से एक हजार पुत्र और पचास कन्याएं जन्मायी थीं। इन कन्याओं में से दस धर्म को, १३ कश्यप को और २७ चंद्रमा को ब्याही गईं। कश्यप की स्त्रियों में दाक्षायिणी सबसे श्रेष्ठ हैं। उनके गर्भ से द्वादश आदित्य उत्पन्न हुए थे। तदनंतर कश्यप से इंद्र आदि देवता और विव-

स्वान् उत्पन्न हुए। विवस्वान् के दो पुत्र थे, वैवस्वत मनु और यम। (महाभारत)

दक्षिणा—आकूति तथा रुचि से उत्पन्न कन्या, जिसका विवाह यक्ष से हुआ था। इनके तुषित नामक बारह पुत्र उत्पन्न हुए। यज्ञ इसका भाई था; किंतु विष्णु अवतार होने के कारण लक्ष्मी रूप में अवतीर्ण अपनी दक्षिणा नामक बहन से विवाह किया। एक बार राधा की उपस्थिति में दक्षिणा कृष्ण के अंक में बैठ गई। इस पर क्रोधित होकर राधा ने उसे वहां से भगा दिया। बाद में यह लक्ष्मी के शरीर में प्रविष्ट होकर ब्रह्मा जी के पास गई और ब्रह्मा जी से इसका विवाह हुआ। (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

दग्धरथ—गंधर्वविशेष। इनका दूसरा नाम अंगारवर्ण था। इनके पास एक चित्रित रथ था। इस कारण इनको लोग चित्ररथ भी कहा करते थे। पांडवों के वनवास के समय में अर्जुन से इनका युद्ध हुआ था। उस युद्ध में ये पराजित हुए, इससे इन्होंने अपना चित्ररथ जला डाला। तभी से इनका नाम दग्धरथ हुआ।

दण्ड—इक्ष्वाकुपुत्रों में कनिष्ठतम, जोकि मूढ़, विद्याविहीन और उन्मत्त स्वभाव का था; बड़ा शूर-वीर और बुद्धिमान था। इसके घोर नामक दोष के कारण राजा इक्ष्वाकु ने इसे सुदूर विंध्याद्रि तथा शैवल पर्वत प्रांत का राजा बना दिया। विंध्य तथा नील पर्वतों के बीच का प्रदेश इसके अधीन था। वहां इसने मधुमत्त या मधुमंत नामक नगरी का निर्माण किया। उशनस् शुक्र इसका पुरोहित था।

एक बार यह महर्षि भार्गव के आश्रम में गया। वहां महर्षि की अनुपस्थिति में कामातुर ऋषिकन्या अरजा के साथ बलात्कार करके अपने नगर में भाग आया। महर्षि के लौटने पर उन्हें सारी घटना का पता लगा। तब उन्होंने दंड को सराज्य विनष्ट होने का शाप दिया। अरजा एक सरोवर में सौ वर्षों तक देहशुद्धि के लिए तपस्या करती रही। दंड के विनष्ट राज्य को दंडकारण्य के नाम से कहा गया।

दण्डकारण्य (दण्डकवन)—इसकी प्रसिद्धि राम वनवास के कारण है (रामायण, १।४६)। पुराणों और काव्य-ग्रंथों में उसकी विस्तार से चर्चाएं हुई हैं। कुछ ग्रंथों में इसका विस्तार गोदावरी के उद्गमस्थल तक और कुछ ग्रंथों में आधुनिक बुंदेलखंड से कृष्णा नदी तक बताया गया है। पुराणों में इसका वर्णन एक पवित्र तीर्थ के रूप में हुआ है, जोकि दक्षिण में था। वहां अनेक जलकुंड, आश्रम और पहाड़ी सरिताएं थीं। इसे विंध्यपर्वत के पार्श्व में निर्धारित किया गया है, जोकि मध्य तथा दक्षिण का विभाजक है।

दण्डपाणि—काशिराज पौंड्रक का पुत्र; कृष्ण ने इसके पिता का शिरच्छेद किया था। इस प्रतिशोध के लिए इसने महेश्वर यज्ञ किया और शंकर से कृष्ण के नाश के लिए एक कृत्या मांगी। कृत्या द्वारिका गई; किंतु कृष्ण के सुदर्शन से भयभीत होकर वह वाराणसी भाग आई। उसका पीछा करते हुए सुदर्शन चक्र ने कृत्या का तथा समस्त नगर का संहार कर डाला (पद्म० उत्त०, २७८)।

दण्डी—दंडी कवि किस देश में और कब हुए थे, इसका निश्चित निर्णय अभी नहीं हो पाया। बंगालियों का अनुमान है कि 'दशकुमारचरित' में विदर्भ देश की विशेष प्रशंसा होने के कारण ये विदर्भवासी थे। परंतु ऐसे दुर्बल प्रमाणों से किसी सिद्धांत पर उपनीत होना भूल है। क्योंकि ऐसी स्थिति में प्रयाग के वर्णन करने वाले कालिदास को प्रयागवासी मानना पड़ेगा। कुछ लोगों का कहना है कि ये शूद्रक कवि से नवीन हैं, क्योंकि इन्होंने अपने काव्यादर्श में—

लिम्पतीव तमोङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।

इस शूद्रक कृत मृच्छकटिक के श्लोकार्द्ध को उद्धृत किया है। शूद्रक का समय पहली सदी माना जाता है। इनकी प्राचीनता के विषय में एक श्लोक प्रचलित है—

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाभवत्।
कवि इति ततो व्यासे कवयस्त्वपि दण्डिनि॥

यह प्राचीन श्लोक उनकी प्राचीनता सिद्ध करता है। ये कवि कालिदास के समकालीन हों तो कुछ आश्चर्य नहीं। राजशेखर कवि सन् ७६१ ई० में हुए थे और उन्होंने अपने ग्रंथ में दंडी का नाम दिया है। इसके द्वारा विल्सन साहब का यह अनुमान कि दंडी सोमदेव भट्ट की अपेक्षा नवीन हैं और 'कथासरित्सागर' देखकर इन्होंने 'दशकुमारचरित' की रचना की है, यह ठीक नहीं जान पड़ता। परंतु इससे इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि दंडी कवि शूद्रक और राजशेखर इन दोनों के मध्य के समय में उत्पन्न हुए थे। अतएव पूर्वोक्त कथानक के आधार पर इनको छठी सदी का मानना कुछ अनुचित नहीं है।

जो लोग घर-बार छोड़कर संन्यासी हो जाते हैं,

उन्हें दंडी कहते हैं। संभव है, दंडी इनका नाम न हो, किंतु केवल इनके चतुर्थाश्रमीत्व का द्योतक हो। इस अनुमान की पुष्टि में पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर लिखते हैं कि दंडियों के रहने का कोई नियत स्थान नहीं है, वे सदा रमते-विचरते हैं। केवल वर्षा ऋतु के चार महीनों में यात्रा में बहुत अधिक क्लेश मिलने के कारण किसी गृहस्थ के यहां टिके रहते हैं। यह दण्डी कवि भी बरसात में किसी गृहस्थ के यहां टिके रहते थे, और प्रत्येक चौमासे में एक-एक ग्रंथ बनाते थे। जिस बार दंडी जिस गृहस्थ के यहां टिकते थे, वर्षा के अंत में, चलते समय अपनी रचित पुस्तक उसीको सौंप जाते थे। 'दशकुमारचरित' को दंडी ने एक वर्ष के चौमासे में बनाया। वैसे ही अलंकारग्रंथ 'काव्यादर्श' भी एक ही चौमासे का बना प्रतीत होता है। यदि यह किंवदंती सत्य हो तो, दंडीरचित ग्रंथों के आदि और अंत में जो न्यूनता दिखलाई पड़ती है, उसका भी उत्तर मिल जाता है। क्योंकि ऐसा भी सुनने में आता है कि दंडी ने जिस बरसात में 'दशकुमारचरित' बनाया, उसी बरसात में उनका देहांत हुआ। इसी कारण न तो 'दशकुमारचरित' संपूर्ण हो सका और न ठीक उसका पूर्वापर-संबंध ही लग सका।

दंडी के बनाये जो ग्रंथ उपलब्ध होते हैं उनके नाम ये हैं—'काव्यादर्श', 'दशकुमारचरित', 'छंदोविचिति' और 'कलापरिच्छेद'। वासवदत्ता की भूमिका में हाल साहब ने अनुमान किया है—'लिम्पतीव तमोङ्गानि' आदि श्लोक दंडिविरचित हैं और मम्मट ने इन्हें 'काव्यप्रकाश' में उद्धृत किया है। यह असंभव भी नहीं जान पड़ता। इससे विल्सन साहब का उपनीत सिद्धांत अशुद्ध जान पड़ता है। अर्थात् सोमदेव की अपेक्षा दंडी अर्वाचीन हो तो मम्मट से वे कथमपि प्राचीन नहीं हो सकते। यदि हाल साहब का अनुमान ठीक हो तो उक्त श्लोक को 'मृच्छकटिक' में प्रक्षिप्त मानना पड़ेगा या शूद्रक को कालिदास, दंडी आदि की अपेक्षा नवीन मानना पड़ेगा।

दत्त—(१) इनके पिता का नाम संदीपनि था, जोकि बलराम, कृष्ण और सुदामा के विद्यागुरु थे। इन्हें पंचजन नामक राक्षस उठाकर समुद्र में ले गया था। जब संदीपनि ने गुरुदक्षिणा में अपने पुत्र को मांगा तो कृष्ण ने समुद्र में प्रवेश कर, पंचजन राक्षस का वध कर, दत्त का उद्धार किया था।

(२) इस नाम से अनेक मध्यकालीन कवियों का उल्लेख हुआ है। उनमें 'लालित्यलता' के रचयिता का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कानपुर जिले में असनी तथा कन्नौज के बीच स्थित आजमऊ नामक स्थान में इनका जन्म हुआ था। ये चरखारी नरेश खुमानसिंह के दरबारी कवि थे। खुमानसिंह का शासनकाल १७६१-१७८२ ई० था। इस दृष्टि से और इनकी 'लालित्यकला' के रचनाकाल १७३४ ई० के आधार पर इनका स्थितिकाल १८वीं शती के पूर्वार्द्ध में रखना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। इनकी उक्त कृति अलंकार विषय पर विरचित है। उसमें इनके कवित्व तथा आचार्यत्व का सुंदर संयोग देखने को मिलता है। इस दृष्टि से इन्हें पद्माकर श्रेणी का कवि माना गया है।

(हिंदी साहित्यकोश, भाग २)

दत्तात्रेय—प्रसिद्ध ऋषि। अत्रिपत्नी अनसूया के गर्भ से भगवान विष्णु ने दत्तात्रेय का जन्म धारण किया था। कुशिकवंशी एक कुष्ठ ब्राह्मण प्रतिष्ठानपुर में रहता था। उसकी पतिव्रता स्त्री बड़े मनोयोग से सेवा करती थी। वह ब्राह्मण एक दिन एक वेश्या को देखकर काममोहित हुआ और उसने अपनी स्त्री को उस वेश्या के यहां ले चलने की आज्ञा दी। साध्वी स्त्री कामार्त पति को कंधे पर लेकर वेश्या के यहां चली। मार्ग में उस कुष्ठ ब्राह्मण का पैर अणीमांडव्य नामक ऋषि के शरीर में लगा। इससे क्रुद्ध होकर ऋषि ने शाप दिया कि जिसका पैर मेरे शरीर में लगा है वह सूर्योदय के पहले मर जाएगा। पतिव्रता स्त्री को ऋषि का शाप सुनकर कष्ट तो हुआ, परंतु उसने दृढ़ता से कहा, "अब सूर्योदय ही न होगा।" पतिव्रता की बात भला कभी झूठी हो सकती है! रात बीत गई, तथापि सूर्योदय नहीं हुआ। जगत् में अंधेरा छा गया, सूर्योदय न होने से जगत् के नष्ट होने की आशंका होने लगी। घबड़ाकर देवगण ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने कहा कि जब पतिव्रता के माहात्म्य से सूर्योदय नहीं हो रहा है तब पतिव्रता की सहायता से ही सूर्योदय हो सकेगा। ब्रह्मा की आज्ञा से देवगण अत्रिपत्नी अनसूया के पास गए। अनसूया ने उस ब्राह्मणी के पास जाकर सूर्योदय होने के लिए अनुमति चाही और कहा कि यदि सूर्योदय होने पर तुम्हारा पति मर जाएगा तो मैं उसे जीवित कर दूंगी। ब्राह्मणी ने सूर्योदय होने की आज्ञा दी, सूर्योदय हुआ। देवगण प्रसन्न होकर अनसूया को वर देने के लिए गए। उन्होंने वर मांगा

कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर मेरे पुत्र हों। अनसूया के गर्भ से ब्रह्मा सोम रूप से, विष्णु दत्तात्रेय रूप से और रुद्र दुर्वासा रूप से उत्पन्न हुए थे। (मार्कण्डेयपुराण)

दधीचि—ब्रह्मांडपुराण में लिखा है कि ये महर्षि शुक्राचार्य के पुत्र थे। ये अथर्वा के औरस और कर्दम प्रजापति की कन्या शांति के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ऋग्वेद में भी लिखा है कि ये महर्षि अथर्वा के पुत्र थे। महाभारत में लिखा है कि दक्ष जिस समय हरिद्वार में शिवविहीन यज्ञ कर रहे थे, उस समय दधीचि ने शिव को निमंत्रण देने के लिए दक्ष को बहुत समझाया था, परंतु दक्ष ने उनकी एक न सुनी। इससे अप्रसन्न होकर दधीचि वहां से चले गए। वृत्रासुर के अत्याचार से जब देवता पीड़ित हो रहे थे, तब उन्हें मालूम हुआ कि यदि दधीचि मुनि के अस्थि से वज्र बने तो उसीसे वृत्रासुर का नाश होगा। यह सोचकर देवता दधीचि के निकट गए, और उन लोगों ने उनसे अपनी अस्थि देने की प्रार्थना की। इसके पहले इंद्र ने दधीचि मुनि का अपकार किया था। एक समय महर्षि दधीचि उग्र तपस्या कर रहे थे, भीत होकर इंद्र ने अलम्बुषा नाम की अप्सरा द्वारा उनकी तपस्या में विघ्न डाला। परंतु इस समय उदारचेता महर्षि, पूर्व अपकार भूल गए। उन्होंने देवताओं के उपकार के लिए अपना शरीर छोड़ दिया। उनके अस्थि से वज्र बनाया गया और उसी वज्र से वृत्रासुर मारा गया।

दनु—प्रजापति दक्ष की कन्या और कश्यप की स्त्री, इसके गर्भ से वातापी, नरक, वृषपर्वा, निकुंभ, प्रलंब और वनायु आदि ४० दानव उत्पन्न हुए थे।

दन्तपुर—यह कलिंग शासकों की राजधानी थी। यहां से प्राप्त अभिलेखों में इसकी अनुपम सुंदरता का वर्णन किया गया है। इसके दन्तपुर नाम से आभास होता है कि यह दांतों का नगर था। 'दारवावंस' से ज्ञात होता है कि यहीं से बुद्ध का पवित्र दांत लंका ले जाया गया। जैन ग्रंथों में भी इसका उल्लेख हुआ है।

दन्तवक्त्र—शिशुपाल का भाई। यह श्रीकृष्ण के द्वारा मारा गया था। त्रेता में कुंभकर्ण और सतयुग मे हिरण्यकशिपु दैत्य हुआ था।

दन्तवक्र—इसके पिता-माता का नाम वृशशर्मन् तथा श्रुतदेवी था। यह करुष देश का राजा था। कलिंगराज चित्रांगद की कन्या तथा द्रौपदी के स्वयंवरों में यह सम्मिलित हुआ था। राजसूय यज्ञ के समय पांडव सहदेव ने इसके राज्य पर विजय प्राप्त की थी। यह भारत-युद्ध में भी सम्मिलित हुआ था और कृष्ण ने इसका वध किया। (भागवत)

दम—पुराणों के मतांतर से मरुत या नरिष्यंत का पुत्र; इसकी माता का नाम इंद्रसेना वाभ्रती था। यह माता के गर्भ में निरंतर नौ वर्षों तक रहा। यह अनेक विद्याओं में निष्णात था। इसने दैत्यराज वृषपर्वन् से धनुर्वेद, दैत्याधिपति दुंदुभि से अस्त्र-समुदाय, शक्ति से सामवेद और राजर्षि उर्ष्टिषेण से योगशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया। दशार्ण देश के राजा चारुवर्मन् की कन्या सुमना को इसने स्वयंवर में वरण किया था। इसने अपने पिता के पातक वपुष्मत् का वध किया।

दमघोष—चंद्रवंशी एक राजा। ये चेदि देश के राजा थे। दमघोष ने यदुवंशी वसुदेव की दूसरी भगिनी सुप्रभा को ब्याहा था। सुप्रभा के गर्भ से शिशुपाल और दंतवक्त्र उत्पन्न हुए थे। (हरिवंश)

दमन—विदर्भराज भीम के एक पुत्र का नाम। पहले कोई संतान न होने के कारण राजा भीम का समय बड़े कष्ट से बीतता था। एक समय दमन नामक महर्षि विदर्भराज के यहां आये। ब्रह्मर्षि के वर से राजा की स्त्री के गर्भ से तीन पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। उन्होंने दमन महर्षि के नामानुसार ही पुत्र-कन्याओं का नामकरण किया। सबसे छोटे पुत्र का नाम दमन था। (महाभारत)

दमयन्ती—विदर्भाधिपति भीम की कन्या। राजा भीम ने अपनी अपूर्वसुंदरी कन्या को ब्याह देने के लिए एक स्वयंवर-सभा की। इस सभा में देवताओं को भी निमंत्रण दिया गया था। दमयंती ने हंसों से निषधराज नल के गुण सुने थे। दमयंती ने देवताओं को छोड़कर नल के गले में माला पहनाई। कलि और शनि भी स्वयंवर-सभा में जा रहे थे। उन लोगों ने स्वयंवर से लौटे हुए देवों से सुना कि दमयंती ने देवताओं को छोड़कर नल को वरण किया है।

इससे कलि और शनि दोनों ही दमयंती पर रुष्ट हुए। वे दोनों दमयंती को पीड़ा देने के लिए अवसर ढूंढ़ने लगे। बहुत दिनों तक उन लोगों को कोई अवसर न मिला। अंत में विवाह के ग्यारहवें वर्ष में कलि ने नल के शरीर में प्रवेश किया। राज्यभ्रष्ट होकर नल दमयंती के साथ जंगलों में घूमते फिरे।

नल के भाई पुष्कर निषेध के राजा हुए। बहुत वर्षों बाद कलि निर्जित हुआ तथा नल और दमयंती पुनः सिंहासनासीन हुए। (महाभारत)

दम्भोद्भव—अतिप्राचीन एक चक्रवर्ती राजा। ये बड़े बली और अभिमानी थे। ये सबसे कहा करते थे कि संसार में ऐसा कौन है जो मुझसे लड़ सके। एक बार इन्होंने यही बात एक महर्षि से कही। महर्षि ने उत्तर दिया कि नरनारायण बड़े बली हैं और वे तुमको जीत सकते हैं। अंत में ये नरनारायण के पास पहुंचे। पहले तो उन लोगों ने राजा को रोका, परंतु राजा कब मानने वाले थे! वे झट लड़ने के लिए तैयार हो गए। अंत में राजा दंभोद्भव हार गए। (महाभारत)

दयानन्द सरस्वती—ये एक संन्यासी थे। गुजरात के अंतर्गत काठियावाड़ में मोरवी नामक एक राज्य है। इस राज्य के प्रधान नगर का नाम मोरवी है। वहीं दयानंद ने सन् १८२४ ई० में जन्म ग्रहण किया था। जिस समय दयानंद ने जन्म लिया उस समय भारत में ऊधम मचा हुआ था। अंग्रेज और मरहठों में युद्ध हो रहा था, लुटेरों के भय से देश में सर्वत्र अशांति फैली हुई थी।

दयानंद के पिता पक्के शिवोपासक थे। पिता का चरित्र, धर्मनिष्ठ पुत्र में संक्रांत हुआ था। इनकी माता एक दयावती कुलकामिनी थीं। इन्होंने पांच वर्ष की अवस्था में वर्ण-परिचय पढ़कर वेद-मंत्र और कुछ वेदभाष्य का अभ्यास किया। आठवें वर्ष में इनका यज्ञोपवीत हुआ और तब से ये यजुर्वेद पढ़ने लगे। १४ वर्ष की अवस्था में इन्होंने व्याकरण, यजुर्वेद तथा वेद के और भागों का अध्ययन करके अपना अध्ययन समाप्त किया।

कहा जाता है, एक घटना से इनकी जीवन-धारा परिवर्तित हो गई। एक बार शिवरात्रि के रात्रि-जागरण में आधी रात को ये सोचने लगे कि जो वृष-बाहन पुरुष हमारे सामने वर्तमान हैं, जो भोजन-शयन आदि करते हैं, जिन्होंने हाथ में त्रिशूल धारण किया है क्या ये वे ही महादेव हैं? क्या ये ही पुराणोक्त कैलासपति परमेश्वर हैं? यही चिंतन करते-करते वे अपने पिता से अपनी शंका का समाधान पूछने लगे। पिता ने कहा—यह तुम क्यों पूछते हो? दयानंद ने कहा कि यदि ये ही सर्वशक्तिमान परमेश्वर हैं तो इनके शरीर को अभी चूहे ने छू लिया और इन्होंने उसका कुछ भी प्रतीकार नहीं किया। इसके उत्तर में पिता ने जो कुछ कहा उससे इनके संशय का घटना तो दूर रहा, वह और भी बढ़ गया। उसी समय इन्होंने मूर्ति-पूजा छोड़ देने की इच्छा की, परंतु पिता के भय से इस बात को ये प्रकाशित न कर सके। इसके कुछ ही दिनों के बाद इनकी १४ वर्ष की भगिनी सांघातिक रोग से, असह्य पीड़ा भोगकर, दो घंटे में मर गई। दयानंद ने पहले ही पहल मृत्यु का यह भयंकर दृश्य देखा था। मृत्यु का भयंकर स्वरूप देखकर इनके हृदय से मुक्ति की इच्छा प्रबल हो गई, इन्होंने निश्चित कर लिया, जिस प्रकार हो उस प्रकार मृत्यु के दुःख से छूटना चाहिए। ये संसार से पूर्ण विरक्त हो गए। पिता ने दयानंद का यह परिवर्तन देखकर इनपर जमींदारी का भार छोड़ना चाहा, परंतु इन्होंने इस काम को करना अस्वीकृत किया। इनके माता-पिता ने इनका विवाह करना निश्चित किया।

दयानंद ने इसके लिए माता-पिता को बहुत रोका, परंतु उन लोगों ने कुछ न सुना। अतएव दूसरा उपाय न देख, दयानंद सन् १८४६ ई० में घर से भाग खड़े हुए। कुछ दिनों तक तो इनका कुछ पता नहीं लगा। परंतु पीछे पता लगाकर इनके पिता ने इनको एक मठ में पकड़ लिया। दयानंद पिता के साथ घर लौट आए। पिता ने पुत्र को पहरे में रखने का प्रबंध कर दिया। एक दिन रात के समय ज्यों ही पहरेवाले सोए, त्यों ही अवसर देख, दयानंद फिर घर से भागे और भागकर अहमदाबाद, बड़ौदा आदि स्थानों में घूम-घूमकर मूर्तिपूजा के विरुद्ध वक्तृता देने लगे। सन् १८५४ ई० में ये हरिद्वार कुंभ के मेले में गए, तब से इनके अनेक विरोधी हो गए। दयानंद ने भारत के प्रायः सभी स्थानों में भ्रमण किया था।

मूर्तिपूजा के विरुद्ध व्याख्यान देने के कारण बहुत लोग इनकी जान के ग्राहक हो गए थे। इनकी भ्रमण-कथा बड़ी विलक्षण है। परमहंस परमानंद के यहां इन्होंने 'वेदांतसार' आदि ग्रंथों का अध्ययन किया था और परमहंस पूर्णानंद से संन्यासाश्रम ग्रहण किया था। अनेक स्थानों में घूमने के कारण जिन साधु-संन्यासियों से इनका परिचय हुआ था उनमें व्यासाश्रम के योगानंद, वाराणसी के सच्चिदानंद, केदारघाट के गंगागिरि, ज्वालानंद पुरी और शिवानंद गिरि के नाम उल्लेख योग्य हैं। दर्शन और योगशास्त्र - विषयक अनेक ग्रंथ इनके साथ रहते थे। अवसर पाने पर ये

शास्त्रपाठ और योगाभ्यास किया करते थे। तदनंतर ये मथुरा आए, और वहां के प्रसिद्ध पंडित विरजानंद के यहां नाना शस्त्रों का अध्ययन करने लगे। शैव और वैष्णव दोनों संप्रदायों के ये विरोधी थे। इन्होंने फरक्काबाद में एक वैदिक पाठशाला स्थापित की थी और पंजाब में कई स्थानों पर इन्होंने आर्यसमाज की प्रतिष्ठा की थी।

मूर्तिपूजा की असारता बतलाने के लिए इन्होंने काशी के पंडितों की एक सभा की। सन् १८६९ ई० की १७वीं नवंबर, मंगलवार को काशी में दुर्गाकुंड के समीप सब लोग एकत्रित हुए। विचार होने लगा परंतु इस विचार में सरस्वती जी हार गए। इसके अनंतर ये कलकत्ता आदि स्थानों में घूमते रहे। सन् १८८३ ई० में अजमेर में इनका शरीरांत हुआ।

दयानाथ दुबे—ये हिंदी के एक कवि थे। सन् १८३२ ई० में इन्होंने जन्म ग्रहण किया था। इनका बनाया प्रेम-संबंधी एक ग्रंथ है जिसका नाम 'आनंदरस' है।

दयानिधि—ये बैसवाड़े के रहने वाले थे और सन् १७५४ ई० में जन्मे थे। राजा अचलसिंह की आज्ञा से इन्होंने शालिहोत्र नामक एक ग्रंथ लिखा था।

दयाबाई—इनका जन्म राजस्थान स्थित मेवात के डेहरा गांव में हुआ था। प्रसिद्ध संत सहजोबाई इनकी गुरु-भगिनी और संतप्रवर रामचरणदास इनके गुरु थे। अपने गुरु के साथ वे दिल्ली चली गई थीं और उन्हींके सत्संग में इन्होंने जीवन-यापन किया। इनका अपर नाम दयादास भी है। कहीं-कहीं इन्होंने स्वयं को दयाकुंवर भी कहा है। इनके द्वारा रचित तीन कृतियां प्रकाशित हैं, जिनके नाम हैं 'दयाबोध', 'दयादासचरित' और 'विनयमालिका'। इन कृतियों में दयाभावापन्न भक्ति का सहज निरूपण हुआ है और इस दृष्टि से उनमें सगुण भावधारा का सहज अभि-व्यंजन हुआ है। इनके जन्मकाल के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। 'दयाबोध' की पुष्पिका में उसका रचनाकाल १७६१ ई० उल्लिखित है। उसके दो वर्ष बाद १७६३ ई० में इनका निधन हुआ (परशुराम चतुर्वेदी—उत्तरी भारत की संत-परंपरा)।

दयाराम त्रिपाठी—ये एक हिंदी के कवि थे। इनका जन्म सन् १७१२ ई० में हुआ था। इनकी कविता प्रधानतः शांतरस की ओर झुकी हुई होती थी। इनका 'अनेकार्थ' प्रसिद्ध है।

दयाल—ये हिंदी के कवि थे और सन् १८८३ ई० में जीवित थे। ये 'भौम' कवि के पुत्र थे।

दयालसिंह—इनका पूरा नाम सरदार दयालसिंह मजीठिया था। इन्होंने पंजाब में एक प्रतिष्ठित सिक्ख कुल में सन् १८४९ ई० में जन्म ग्रहण किया था। इनका परिवार दानशीलता के लिए प्रसिद्ध है। इनके पिता-मह सरदार देशासिंह जाटों के नेता थे। जाट लोग रणपंडित होते हैं, यह बात कहने की आवश्यकता नहीं है। महाराजा रणजीतसिंह ने देशासिंह को उनके समरकौशल और उनके अन्य गुणों पर प्रसन्न होकर अमृतसर का शासनकर्ता बनाया। दयालसिंह के पिता सरदार लेहनासिंह खालसा सेना के सेनापति थे। पिता की मृत्यु होने पर सरदार लेहनासिंह अमृतसर के शासनकर्ता के पद पर नियत किए गए। सन् १८५४ ई० में लेहनासिंह की भी, वृद्ध होने के कारण, काशी में मृत्यु हुई। उस समय दयालसिंह की अवस्था ५ वर्ष की थी। पिता की मृत्यु के बाद इनकी माता की भी मृत्यु हुई। उस समय कोर्ट ऑफ वार्ड्स की देख-रेख में इनकी संपत्ति का प्रबंध और शिक्षा होने लगी। इन्होंने शीघ्र ही अंग्रेजी और फारसी भाषाओं में अभिज्ञता प्राप्त कर ली। अपनी संपत्ति का अधि-कार मिल जाने पर ये दो वर्ष तक इंग्लैंड भी रहे थे। इंग्लैंड में इनका बहुत आदर और मान हुआ था। वहां से लौटने पर इन्होंने देश में सामाजिक और राजनीतिक विषयों की उन्नति करने के लिए प्रयत्न किया था। दर्शनशास्त्र में इनका प्रगाढ़ प्रेम था। दान के लिए इनकी प्रसिद्धि थी, सर्वसाधारण के कार्यों में ये खूब दान दिया करते थे। ये पंजाब के राज-नीतिक नेता थे। पंजाब के प्रधान अंग्रेजी पत्र 'ट्रिब्यून' के ये प्रतिष्ठाता थे। मृत्यु के समय इन्होंने एक दान-पत्र लिखा था, जिसमें इन्होंने पुस्तकालय के लिए ६० हजार रुपये और एक मकान दिया था। कालेज खोलने के लिए इन्होंने जो संपत्ति दी थी, उसका मूल्य १५ लाख रुपये है। ये कांग्रेस के संचालकों में से थे। इन्हींकी सहायता से लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था। सन् १९०५ ई० में इन्होंने शरीर त्याग दिया।

दरदाः—दर्दस्तान जो काश्मीर से उत्तर सिंधु के चढ़ाव की ओर है।

दरिया साहब—बिहार-निवासी दरिया साहब का मध्य-युगीन निर्गुण संत कवियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान है। कहा जाता है कि इनके पूर्वज क्षत्रिय थे, जोकि उज्जैन

से आकर बिहार में बस गए थे और जिन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। इनका जन्म शाहबाद जिले के धरकंदा गांव में १७३४ ई० को हुआ था। २० वर्ष की अवस्था से ही इन्होंने संतमत अपना लिया था; किंतु इस अवस्था में भी उनकी पत्नी शाहमती सदा उनके साथ रहीं। इन्होंने स्वयं को कबीरदास का अवतार माना है और उनकी वाणियों में कबीर का ही समाजसुधारक एवं विशुद्ध तत्त्वज्ञान-संबंधी दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है। इनकी निरपेक्ष एवं सर्वजन-हितकारी विचारधारा के कारण हिंदू और मुसलमान दोनों इनके अनुयायी हो गए थे। अपने सम-सामयिकों में ये संत शिवनारायणदास के अधिक निकट प्रतीत होते हैं। साधु और गृहस्थ, दोनों ही इनके पंथ के अनुयायी थे।

संत दरिया संस्कृत, हिंदी और फारसी के निष्णात विद्वान् थे। उनके द्वारा विरचित लगभग बीस कृतियों का इतिहासकार विद्वानों ने उल्लेख किया है। उनमें से 'अग्रज्ञान', 'अमरसागर', 'भक्तिहेतु', 'ब्रह्मचैतन्य', 'ब्रह्मविवेक', 'दरियानामा', 'दरियासागर', 'गणेश-गोष्ठी', 'ज्ञानदीपक', 'ज्ञानमूल', 'ज्ञानरत्न', 'ज्ञान-स्वरोदय', 'कालचरित्र 'मूर्तिउखाड़', 'निर्भयज्ञान', 'प्रेममूल', 'शब्द' या 'बीजक', 'सहसरानी', 'विवेक-सागर' और 'यज्ञसमाधि' प्रामाणिक मानी गई हैं। 'ब्रह्मचैतन्य' संस्कृत में और 'दरियानामा' फारसी में हैं। शेष कृतियां हिंदी में हैं।

अन्य संत कवियों की अपेक्षा दरिया साहब की रचनाओं में कवित्व की गरिमा अधिक है। उनमें भाषा-कौशल, अलंकार-विधान और छंद-प्रयोग विशेष रूप से स्पृहणीय है। प्रबंध और मुक्तक, दोनों प्रकार की काव्य-विधाओं की दृष्टि से दरिया साहब की रचनाएं उपादेय हैं। हिंदी संत-परंपरा में उनका अपना विशिष्ट स्थान है। उनका निधन १७८० ई० में हुआ (डॉ० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी—संतकवि दरिया : एक अनुशीलन)।

दलपतिराय—ये हिंदी के कवि थे और अहमदाबाद के रहने वाले थे। इनका जन्म सन् १८२८ ई० में हुआ था। इन्होंने 'भाषाभूषण' पर एक उत्तम टीका लिखी है।

दलसिंह—ये बुंदेलखंड के राजा थे और हिंदी के कवि भी थे। इनका जन्म सन् १७२४ ई० में हुआ था। इन्होंने 'प्रेमपयोनिधि' नामक एक ग्रंथ लिखा था।

दलीपसिंह—पंजाबकेसरी रणजीतसिंह के छोटे पुत्र। सन् १८३८ ई० में दलीपसिंह ४ वर्ष की अवस्था में पंजाब के सिंहासन पर बैठाए गए। सिक्खयुद्ध का अंत होने पर लार्ड डलहौजी ने पंजाब पर अधिकार कर लिया। उस समय दलीप एक शिक्षक की देख-रेख में रहा करते थे। बालक होने पर सरकार से इन्हें दो लाख वार्षिक खर्च के लिए मिलते थे। सन् १८५३ ई० में ये ईसाई हो गए। तदनंतर ये इंग्लैंड गए और पैरिस के होटल में इनका प्राणांत हो गया।

दश—एक असुर का नाम। भृगु मुनि के शाप से यह अलर्क नामक कीट की योनि में उत्पन्न हुआ था। (देखें अलर्क)

दशपुर—मालवा में अनेक शासकों के अभिलेखों में इस नगर का उल्लेख हुआ है। आरंभ में यह गुप्त साम्राज्य का अंग था। इससे भी पूर्व यह क्षहरात क्षत्रप नहपान के दामाद उषवदात के अधिकार में था, जिसने यहां अनेक लोकोपयोगी कार्य करके अशोक जैसी ख्याति प्राप्त की थी। क्षत्रपों से इसे सातवाहनों ने हस्तगत किया। किंतु गुप्तकाल में दशपुर और विदिशा का इतना अधिक महत्त्व बढ़ गया था कि वे उज्जयिनी की संपन्नता से स्पर्धा करते थे। वहां धनसंपन्न श्रेष्ठियों का निवास था और इस रूप में उसकी व्यापारिक ख्याति थी। इसे मध्य-प्रदेश के मंदसौर से समीकृत किया गया है।

दशरथ—अयोध्या के राजा। इनके पिता का नाम अज था। ये विष्णु के अवतार रामचंद्र के पिता थे। दशरथ की राजधानी अयोध्या अत्यंत प्राचीन नगरी थी। वह सरयू के तीर पर स्थित थी, और उसकी विशालता १२ योजन थी। दशरथ की तीन प्रधान महारानियां थीं, कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा और अप्रधान ३५० थीं। दशरथ ६० हजार वर्ष जीते रहे और राज्य करते रहे। बहुत वर्षों तक दशरथ के कोई संतान न हुई। केवल शांता नाम की एक कन्या दशरथ के थी, उसको भी उन्होंने अपने मित्र अंगदेशाधिपति रोमपाद को दत्तक रूप से दे दिया था। अपुत्रक राजा दशरथ बड़े दुःखित थे। अनंतर मंत्रियों के कहने से उन्होंने ऋष्यश्रृंग को बुलाकर अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया। उस यज्ञ का चरु खाने से प्रधान तीनों महारानियों के गर्भ रहा। यथासमय राम, भरत और लक्ष्मण, शत्रुघ्न उत्पन्न हुए। यज्ञ करने के पहले दशरथ शिकार खेलने वन में गए थे। वहां दशरथ ने शब्द-

भेदी बाण द्वारा अंध मुनि के पुत्र श्रवण को हाथी के भ्रम से मार डाला। पुत्रशोकातुर अंध मुनि ने दशरथ को शाप दिया कि तुमको भी हमारे ही समान पुत्र-शोक से प्राण त्याग करना पड़ेगा। इस शाप से दुःखी होकर राजा घर आए। अयोध्या के दक्षिण की ओर निषादपति गुह का राज्य था, उसकी राजधानी का नाम शृंगवेरपुर था। गुह अनार्य राजा था। इसके साथ दशरथ की मैत्री थी। ताडका राक्षसी को मारने के लिए राजा दशरथ ने विश्वामित्र की प्रार्थना करने पर राम और लक्ष्मण को उनके साथ भेजा था। कैकेयी के कुचक्र में फंसकर राजा दशरथ ने अपने पुत्र राम-लक्ष्मण को १४ वर्ष के लिए वन में भेजा था और इसी पुत्रवियोग से उनके प्राण भी गए।

(रामायण)

दशार्णदेश—'रामायण', 'महाभारत' और संस्कृत के अनेक काव्य-नाटकों में इस देश का उल्लेख हुआ है। यहां पर सुग्रीव ने सीता की खोज में वानरसेना को भेजा था। दशार्णदेश के यादव राजा क्षत्रदेव ने पांडवों की ओर से भारत-युद्ध में भाग लिया था और बड़ा नाम कमाया था। इस देश के निवासी बौद्धधर्मानुरागी थे। मध्यप्रदेश के आभुक्ति वेदिस या मिलसा क्षेत्र से प्राचीन दशार्ण देश को समीकृत किया गया है।

दाऊद—ये मुल्ला दाऊद के नाम से प्रसिद्ध हैं। उत्तरप्रदेश के रायबरेली जिले में गंगातट पर अवस्थित डलमऊ को इनका जन्मस्थान बताया गया है। मलिक नथन को संबोधित करके इन्होंने अपनी रचनाएं की हैं। इस आधार पर विद्वानों का अभिमत है कि मलिक नथन दाऊद के कोई कृपापात्र थे, जिनको उन्होंने अपने काव्य की कथा सुनाई थी। इतिहासकार अलबदाउनी ने 'मुंतखिब-उल-तवारीख़' में इनका उल्लेख मौलाना दाऊद के रूप में किया है, जिससे ज्ञात होता है कि अरबी-फारसी के असाधारण विद्वानों में उनकी गणना होने लगी थी। अलबदाउनी ने लिखा है कि फीरोजशाह के प्रधानमंत्री खानजहां के पुत्र जूनाशाह के लिए दाऊद ने 'चंदायन' नाम से हिंदी में एक मसनवी की रचना की थी, जिसमें लोरिक तथा चांदा के प्रणय का वर्णन किया गया है। इस मसनवी की रचना ७८१ हिजरी (१४३६ वि०) में हुई थी। इस दृष्टि से दाऊद का स्थितिकाल १५वीं शती ई० के आरंभ में निश्चित है। दाऊद की उक्त कृति अपनी लोकप्रियता की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

दादूदयाल—हिंदी के संत कवियों में कबीर के बाद दादू का स्थान है। इनका जन्म १५४४ ई० को अहमदाबाद में हुआ था। इनकी जाति के संबंध में विद्वानों का मतभेद है। इन्हें धुनियां, मोची या तेली कहा गया है, जिससे इनका निम्न जाति में उत्पन्न होना सिद्ध होता है। कुछ लोग इन्हें मुसलमान और कुछ ब्राह्मण का औरस पुत्र मानते हैं। इनके गुरु का नाम बुड्ढन था, जोकि कबीर की वंश-परंपरा के संत थे। दादूपंथी बुड्ढन को भगवान का स्वरूप मानते हैं और इसी रूप में उनका गुण-गान करते हैं। युवावस्था तक इन्होंने गृहस्थ-जीवन व्यतीत किया। इनके दो पुत्रों के नाम थे—गरीबदास और मिस्कीनदास। इसी प्रकार इनकी दो कन्याओं के नाम थे—नानाबाई और माताबाई। 'जीवनपरथी' के संपादक सुखदयाल और 'दादूवाणी' के संपादक मंगलदास इनको गृहस्थ स्वीकार नहीं करते हैं। उनका कहना है कि नानाबाई उनकी माता का नाम था। उक्त दोनों पुत्र उनके औरस पुत्र नहीं थे, अपितु इनके आशीर्वाद से उत्पन्न हुए थे। राजकुमारी और श्यामकुमारी इनकी दो शिष्याएं थीं।

इन्होंने संत-परंपरा में 'ब्रह्मसंप्रदाय' या 'परब्रह्म संप्रदाय' की प्रतिष्ठा की थी, जोकि बाद में 'दादू-पंथ' के नाम से विख्यात हुआ। इन्होंने राजस्थान, दिल्ली, काशी, बिहार, बंगाल और अपने जन्मस्थान गुजरात की यात्राएं कीं तथा अपने सदुपदेशों से बहु-संख्यक हिंदू-मुसलमान जनता को अपना अनुयायी बनाया। कहा जाता है कि फतेहपुर सीकरी में ४० दिनों तक अकबर ने इनका सत्संग किया था। इनके १५२ शिष्यों का उल्लेख हुआ है। (भक्तमाल)

इनकी रचनाओं का संग्रह 'अनमैवाणी' के नाम से प्रकाशित है। 'कायाबेलि' के नाम से इनकी दूसरी कृति भी प्रकाशित है। देश के विभिन्न हस्तलेख-संग्रहों में सुरक्षित इनकी वाणियों को देखकर इनकी लोकप्रियता का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। सैद्धांतिक दृष्टि से कबीर से उनकी समानता है; किंतु कबीर में जहां उग्रता, प्रचंडता, तीव्रता एवं अनगढ़ता है, दादू में सरलता, विनम्रता, दयालुता और सहजता है। उनके विचारों में मानवसहज जीवन का अभिव्यंजन हुआ है।

दादू का निधन सांभर के निकट, नराने की गुफा में, १६०३ ई० को हुआ था। दादूपंथियों का वह

'दादूद्वारा' है, जहां प्रतिवर्ष फाल्गुन मास में मेला लगता है। इस गुफा में उनकी स्मृति-सामग्री भी सुरक्षित है (डॉ० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल—हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी—उत्तरी भारत की संत-परंपरा; हिंदी साहित्यकोश, भाग २)।

दामोदर—(१) काश्मीर के एक राजा। इनके पिता का नाम प्रथम गोनर्द था। मथुरा के युद्ध में गोनर्द के मारे जाने पर उनके पुत्र दामोदर काश्मीर के सिंहासन पर बैठे। यद्यपि दामोदर काश्मीर जैसे सुख-समृद्धिपूर्ण राज्य के राजा हुए, परंतु उन्हें शांति नहीं मिली। वे पितृघातियों से बदला चुकाने के लिए सदा व्याकुल रहा करते थे। कुछ दिनों के बाद इन्होंने सुना कि गांधारराज की राजकन्या का स्वयंवर होने वाला है। उसमें वृष्णियों को भी निमंत्रण दिया गया है। ये भी सेना लेकर चले। इन्होंने श्रीकृष्ण आदि से युद्ध किया। श्रीकृष्ण ने इन्हें मार डाला।

(राजतरंगिणी)

(२) काश्मीर के एक राजा। ये जलौका के पश्चात् काश्मीर के सिंहासन पर बैठे थे। मालूम नहीं, ये किस वंश के थे। ये बड़े पक्के शैव थे, इसी से कुबेर भी इनसे मित्रता रखते थे। कहते हैं कि कुबेर से मैत्री होने के कारण यक्ष लोग इनकी आज्ञा का पालन करते थे। ये यक्षों से बांध बंधवाते थे, जिससे काश्मीर में बाढ़ न आवे। एक समय राजा द्वितीय दामोदर वितस्ता नदी में स्नान करने जा रहे थे। मार्ग में ब्राह्मणों ने इन्हें घेरा, और वे इनसे भोजन मांगने लगे। ये स्नान करने जा रहे थे। इस कारण इन्होंने उधर कुछ ध्यान न दिया। ब्राह्मणों ने इन्हें सांप होने का शाप दे दिया पुनः बहुत प्रार्थना करने पर रामायण का पाठ एक दिन में सुन जाने पर शाप न लगेगा, ऐसा उन लोगों ने कहा।

(राजतरंगिणी)

दामोदर गुप्त—संस्कृत के एक कवि, जो काश्मीर-निवासी थे। इन्होंने 'कुट्टनीमत' नामक एक ग्रंथ लिखा है। इनके विषय में राजतरंगिणी में लिखा है।

स दामोदरगुप्ताख्यं कुट्टनीमतकारिणम्।
कविं कविं बलिरिव धूर्यधीसचिवं व्यधात्॥

जिससे मालूम होता है कि ये महाराज जयापीड के मंत्री थे। जयापीड का समय सन् ७७३ ई० से लेकर सन् ८०३ ई० तक माना गया है। अतः दामोदर गुप्त का भी वही समय मानना उचित है। इनका बनाया 'कुट्टनीमत' अपने ढंग का अनोखा है।

दामोदरदास—ये हिंदी के कवि थे और इनका जन्म सन् १५६५ ई० में हुआ था। इनके विषय में इससे अधिक कुछ नहीं पता चलता।

दामोदर मिश्र—इन्होंने 'हनुमन्नाटक' का संग्रह किया था। ये काव्यप्रकाशकार मम्मट से प्राचीन हैं। अतएव ग्यारहवीं सदी के पूर्वभाग में इनका होना प्रमाणित होता है।

दारुक—श्रीकृष्ण का सारथि। जिस समय अर्जुन सुभद्रा को हरकर लिए जा रहे थे, उस समय इन्होंने अर्जुन से कहा था—मैं यादवों के विरुद्ध रथ नहीं हांक सकता, अतएव आप मुझे बांध दें, और जहां चाहें रथ ले जाएं। वैकुंठयात्रा के समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन के लिए संदेशा उनके पास इसीके द्वारा भेजा था।

(महाभारत)

दाल्भ्य (दार्भ्य)—दल्भ वंश में उत्पन्न इस राजा के ब्राह्मणग्रंथों तथा उपनिषदों में केशिन्, चेकितान तथा बक आदि पैतृक नाम उल्लिखित हैं। एक वैयाकरण के रूप में भी इसका उल्लेख हुआ है।

दाशूर—तपस्वी शरलोम का पुत्र, जो कि मगध में किसी पर्वत पर निवास करता था। पिता के निधन के बाद जब यह शोक-संतप्त हुआ तो अग्नि ने प्रकट होकर इसे कदंब वृक्ष के अग्र भाग पर बैठने का निर्देश किया। वहां से इसने समस्त दिशाओं को स्त्रियों के समान देखा। तत्पश्वात् कदंब दाशूर ऋषि के नाम से यह प्रसिद्ध हुआ। वनदेवता से इसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे कि इसने ज्ञानोपदेश दिया।

(योगवाशिष्ठ)

दास (भिखारीदास)—दास या भिखारीदास का हिंदी के आचार्यों तथा कवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके संबंध में इतिहासकारों ने जो तथ्य खोज निकाले हैं, तदनुसार ये प्रतापगढ़ के राजा पृथ्वीपतिसिंह के अनुज हिंदूपतिसिंह के आश्रित विद्वान् थे। इनका जन्म प्रतापगढ़ (उत्तरप्रदेश) के निकट रोंग्या (रेंउगा) नामक स्थान में हुआ था। इनके प्रपितामह का नाम रामदास तथा पिता का नाम कृपालदास और भाई का नाम चैनलाल था। इनका पुत्र अवधेशलाल और पौत्र गौरीशंकरलाल हुआ, जिनका कोई पुत्र न होने के कारण आगे के लिए इनकी वंश-परंपरा समाप्त हो गई। जाति के ये कायस्थ थे। इनकी रचनाओं

के आधार पर इतिहासकारों ने इनका स्थितिकाल १७२१-१७५१ ई० के बीच रखा है।

इनके द्वारा रचित ग्रंथों के संबंध में विद्वानों का मतभेद है। 'काव्यनिर्णय', 'शृंगारनिर्णय', 'छंदार्णव-पिंगल', 'विष्णुपुराण', 'रससारांश', 'अमरकोश', 'शब्दनामप्रकाश' और 'शतरंजप्रकाश' इनकी प्रामाणिक रचनाएं मानी गई हैं।

इनकी कृतियों के आधार पर स्पष्ट है कि ये प्रसिद्ध आचार्य और सफल कवि थे। इनकी रचनाओं में सरलता एवं सुगमता के गुणों का सन्निवेश हुआ है। इस दृष्टि से आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन्हें एक आचार्य की अपेक्षा एक कवि के रूप में अधिक महत्त्व दिया है। इन्होंने परिमार्जित साहित्यिक भाषा का प्रयोग किया है। शब्द-जंजाल और भावों की दुरूहता से इनकी रचनाएं मुक्त हैं। इस दृष्टि से रीतिकालीन कवियों एवं आचार्यों में भिखारीदास का प्रतिष्ठित स्थान है (रामचंद्र शुक्ल—हिंदी साहित्य का इतिहास)।

दासराज—यह एक अनार्य राजा था। इसीकी पालित कन्या को महाराज शंतनु ने ब्याहा था। (महाभारत)

दिति—प्रजापति दक्ष की कन्या। ये कश्यप की स्त्री और दैत्यों की माता थीं। देवताओं ने जब दैत्यों का नाश किया तब दिति ने इंद्र का दमन करने के लिए एक पुत्र की प्रार्थना अपने पति से की। कश्यप ने उनकी प्रार्थना पूर्ण करके कहा—तुमको हजार वर्ष तक गर्भ धारण करना पड़ेगा, और सर्वदा शुद्धता से रहना होगा। सावधानी से दिति भी इन नियमों का पालन करने लगीं। आनेवाली आपत्ति के डर से इंद्र गर्भ नष्ट करने के लिए सर्वदा अवसर की ताक में रहे। संयोगवश एक दिन बिना पैर धोए दिति सोई थीं। यह अवसर देखकर इंद्र गर्भ में घुस गए, और उन्होंने गर्भ के ४९ टुकड़े कर डाले। इसी गर्भ से मरुतगण उत्पन्न हुए थे। (रामायण)

दिद्दा—काश्मीर की सिंहासनाधिरूढ़ा एक महारानी। इसको महारानी कहने के बदले पिशाचिनी कहना अधिक उपयुक्त होगा। क्योंकि पहले यह पूर्वगुप्त नामक शिशुराजा की अभिभाविका नियत की गयी थी। परंतु क्रमशः पांच राजाओं को अनेक उपायों से मरवाकर अंत में यह स्वयं सिंहासन पर बैठ गयी। यह व्यभिचारिणी परले सिरे की थी। राजतरंगिणी में लिखा है—वृद्धा विधवा महारानी दिद्दा किसी दिन भी बिना पुरुष के नहीं सोती थी। २३ वर्ष चार महीना, २३ दिन इसने राज्य किया था। इसने अपने मरने के समय अपने भाई के बेटे को राज्य दे दिया। (राजतरंगिणी)

दिनकर मिश्र—ये संस्कृत के एक प्रसिद्ध पंडित थे। इन्होंने रघुवंश की टीका भी लिखी है। लोग कहते हैं कि इन्होंने सन् १३८५ ई० में यह टीका लिखी। ये बौद्ध थे।

दिनकर राव—ये बंबई प्रदेश के रत्नगिरी जिला के दवतर नामक स्थान में सन् १८१९ ई० में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। उनका नाम था राघव दादू। दिनकर राव की पहले से तीन-चार पीढ़ियां ग्वालियर राज्य में रहा करती थीं। वहां वे सभी राज्य के उच्च कर्मचारी थे। दिनकर राव ने बाल्यावस्था में संस्कृत और फारसी भाषाएं सीखी थीं। ये पक्के सनातनधर्मी हिंदू थे और संध्या आह्निक आदि नित्य कर्म बड़े प्रेम से करते थे। संगीत-विद्या में भी इनका प्रगाढ़ प्रेम था। १५ वर्ष की अवस्था में इन्हें राज्य के एकाउंटेंट का पद मिला। इस काम का इन्होंने बड़ी योग्यता से संपादन किया।

थोड़े दिनों के बाद पिता की मृत्यु होने पर दिनकर राव एक प्रांत के सूबेदार बनाए गए। सन् १८४४ ई० में राजघराने में कलह उपस्थित हुआ। महाराज बालक थे, अतः राजकीय व्यवस्था उच्छृंखल हो गई। मालगुजारी वसूल न होती, राजकोष खाली हो गया। खंद जाति विद्रोह करने लगी। इस समय एक उत्तम व्यवस्थापक की बड़ी आवश्यकता थी। ऐसे विकट समय में सन् १८५२ ई० में दिनकर राव राजमंत्री हुए। इन्होंने अपना मासिक वेतन ५ हजार से घटाकर २ हजार कर दिया। इसी प्रकार इन्होंने अन्यान्य खर्चे में भी कमी की। इसके पश्चात् इन्होंने राजकोष पूर्ण करने का प्रयत्न किया। इन्होंने मालगुजारी वसूल करने के लिए चुन-चुनकर अधिकारी नियत किए। इन्होंने सब विभागों के कर्मचारियों को काम बांट दिए। इस प्रकार देश में पुनः शांति स्थापित हुई।

१८५७ ई० में सिपाही-विद्रोह हुआ। उस समय दिनकर राव ने अंग्रेज सरकार को बड़ी सहायता दी। दिनकर राव के कहने से सेन्धिया ने कुछ भी उपद्रव नहीं किया। विद्रोही दल जिस समय ग्वालियर राज्य में से होकर जा रहा था, उस समय दिनकर राव ने अपनी सेना को उसका साथ न देने के लिए चेतावनी

दी थी। विद्रोह के अंत में सन् १८५६ ई० में भारत के बड़े लाट ने एक दरबार किया, जिसमें दिनकर राव को धन्यवाद और काशी जिले में एक बड़ी जमींदारी दी गयी। इसी वर्ष इन्होंने ग्वालियर के मंत्री के पद को छोड़ दिया। तदनंतर धौलपुर में सुपरिटेंडेंट का पद ग्रहण किया। सन् १८६१ ई० में ये बड़े लाट की व्यवस्थापक सभा के मेंबर नियत हुए। गवर्नमेंट से इन्हें के० सी० एस० आई० की उपाधि मिली थी। तदनंतर इन्हें राजा की उपाधि दी गई। वृद्धावस्था में इन्होंने सभी प्रकार के काम छोड़ दिए। सन् १८६६ ई० में इनकी मृत्यु हुई।

दिनेश टिकारी वाले—ये हिंदी के कवि थे। इनका समय १८०७ विक्रमी संवत् है। इन्होंने 'रसरहस्य' नामक एक ग्रंथ लिखा है।

दिलदार—ये हिंदी के कवि थे। इनका जन्म सन् १५६३ ई० में हुआ था। इनका कुछ विशेष पता नहीं चलता।

दिलीप—सूर्यवंशी एक प्राचीन राजा। पुराणों में दो दिलीपों का पता लगता है। एक दिलीप रघु के पिता थे और दूसरे भगीरथ के पिता। रघुवंश में कालिदास ने लिखा है कि रघु के पुत्र अज, उनके पुत्र दशरथ और दशरथ के पुत्र राम थे। परंतु वाल्मीकि रामायण से पता चलता है कि दिलीप और राम के बीच में १७ पुरुष हुए हैं।

महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंश में दिलीप का विवरण इस प्रकार लिखा है। एक समय दिलीप स्वर्ग से आ रहे थे, मार्ग में इन्हें कामधेनु मिली, परंतु इन्होंने उसे प्रणाम नहीं किया। इसपर इन्हें उसने शाप दिया कि मेरी पुत्री नन्दिनी की सेवा किए बिना तुम्हारे पुत्र नहीं होगा। बहुत दिनों तक कोई संतान न होने के कारण राजा बड़े चिंतित हुए। अंत में इन्होंने पुत्र न होने का कारण वसिष्ठ से पूछा तब उनके उपदेश से इन्होंने नन्दिनी की सेवा की और तब रघु उत्पन्न हुए। (रघुवंश)

दिवाकर—(१) इनका पूरा नाम मातंग दिवाकर था। ये कन्नौज के महाराज हर्षवर्द्धन के सभासद थे। इन्हीं महाराज हर्षवर्द्धन की सभा में बाण, मयूर आदि कवि थे। दिवाकर यद्यपि मातंग-वंशज थे, तथापि विद्या के कारण बाण-मयूर के समान इनकी प्रतिष्ठा थी—

अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः।
श्रीहर्षस्याभवत् सभ्यः समो बाणमयूरयोः॥

श्रीहर्ष के समकालीन होने के कारण इनका समय सातवीं सदी का आरंभ भाग माना जाता है।

(२) ये एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। पं० सुधाकर द्विवेदी ने इनका समय पंद्रहवीं सदी बताया है। ये गोदावरी नदी के तट पर बसे हुए गोल नामक एक ग्राम के निवासी थे। जातकपद्धति नामक एक ग्रंथ भी इन्होंने बनाया है।

दिविरथ—महाराज अंग के पौत्र और दधिवाहन के पुत्र। दिविरथ का नाम धर्मरथ और उनके पौत्र का नाम चैत्ररथ था।

दिवोदास—(१) ब्रध्नस्व के पुत्र। ये मेनका के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इनकी बहन का नाम अहल्या था।

(२) मनुवंशी काशीराज रिपुंजय का पुत्र। इसने तपस्या द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न करके वर पाया था। उसीके फल से नागर राज्य के निकट अनंगमोहिनी नाम की स्त्री के साथ इसका विवाह हुआ और स्वर्ग से इसे रत्न और कुसुम मिले। इसी कारण इसका नाम दिवोदास पड़ा था। इसने बहुत दिनों तक काशी का राज्य किया था।

(३) इसके पुत्र का नाम प्रतर्द्दन था और पिता का नाम सुदेव। राजा सुहोत्र के पुत्र काश थे। उनके पुत्र काश्य या काशिराज ने काशीपुरी बसाई थी। इसी वंश में हर्यश्व नामक एक राजा हुए थे, जिन्हें यदुवंशी हैहय के पुत्रों ने मार डाला था। हर्यश्व के बाद सुदेव काशिराज हुए, पर उन्हें भी हैहयपुत्रों ने मार डाला। तदनंतर सुदेव के पुत्र दिवोदास काशी के अधीश्वर हुए और उन्होंने काशी को दुर्ग प्राकार आदि बनाकर सुरक्षित किया। उस समय गंगा के उत्तर तीर से लेकर गोमती के दक्षिण तीर तक काशी का राज्य विस्तृत था। (महाभारत)

हरिवंश और मत्स्यपुराण में लिखा है कि हैहयवंशियों ने काशी पर अधिकार कर लिया था और दिवोदास ने उनको मार भगाया। तदनन्तर हैहयवंशी राजा दुर्दम ने दिवोदास को परास्त किया और वे स्वयं काशी के राजा बन गए। दिवोदास के पुत्र प्रतर्द्दन ने पुनः अपने पिता के राज्य का उद्धार किया था।

दिव्या—(१) हिरण्यकशिपु की कन्या तथा महर्षि भृगु की पत्नी।

(२) प्लक्षद्वीप के निवासी राजा दिवोदास की कन्या; राजा ने इसका विवाह रूपदेश के राजा

चित्रसेन से निश्चित किया; किंतु ठीक विवाह के समय ही चित्रसेन की मृत्यु हो गयी। तब ब्राह्मणों की अनुमति से रूपसेन से इसका विवाह तय हुआ; किंतु उसका भी इसी प्रकार निधन हो गया। इस तरह इसके लिए निश्चित इक्कीस पतियों की मृत्यु हो गई। तदनंतर इसका स्वयंबर रचा गया; किंतु स्वयंवर में उपस्थित समस्त राजा परस्पर युद्ध करते हुए मर गए। इस अभाग्य के कारण दिव्या अत्यंत दु:खित होकर जंगल में चली गई। एक बार उज्ज्वल नामक शुक उस जंगल में गया और उसने शोकसंतप्त दिव्या को 'अशून्यशयन' व्रत धारण करने के लिए कहा। चार वर्षों तक इस व्रत को धारण करने के अनंतर विष्णु ने दिव्या को दर्शन दिया और वे इसे विष्णुलोक को ले गए। (पद्मपुराण)

दीनदयाल गिरि—इनकी गणना हिंदी के नीति-साहित्य के रचयिताओं में की गई है। इनका जन्म १८०२ ई० में बनारस के गायघाट मुहल्ले में हुआ था। ये दशनामी संन्यासी कुशागिरि के शिष्य थे। स्वयंवर-गिरि और रामदयाल गिरि इनके गुरुभाई थे। संस्कृत और हिंदी दोनों भाषाओं पर इनका समान अधिकार था। कृष्णभक्त कवियों में इनका श्रेष्ठ स्थान माना गया है।

इनकी पांच रचनाएं उपलब्ध हैं, जिनके नाम हैं —'अनुरागबांग', 'दृष्टांततरंगिणी', 'अन्योक्तिमाला', 'वैराग्यदिनेश' और 'अन्योक्तिकल्पद्रुम'। ये पांचों रचनाएं डॉ० श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित होकर 'दीनदयाल गिरि ग्रंथावली' के नाम से नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित हैं।

हिंदी के नीतिकारों में इनका प्रमुख स्थान है। इनकी नीतिपरक रचनाओं में कविता की सरसता भी विद्यमान है। इन्होंने संस्कृत-मिश्रित प्रौढ़ भाषा का प्रयोग किया है। भाषा मूलत: व्रज है; किंतु उसमें अवधी तथा भोजपुरी का भी सम्मिश्रण हुआ है। कुंडलियां और दोहे इनके प्रमुख छंद हैं; किंतु कवित्त और सवैया का भी इन्होंने प्रयोग किया है। इनकी अन्योक्तिमयी शैली इनके काव्य-सौंदर्य का सर्वाधिक सराहनीय गुण है। १८६५ ई० में इनका निधन हुआ [डॉ० श्यामसुंदरदास—दीनदयाल गिरि ग्रंथावली (भूमिका)]।

दीननाथ—द्वापर युग का एक राजा; इसकी कोई संतान न थी। पुत्रप्राप्ति के लिए इसे गालव ऋषि ने नरयज्ञ करने की सलाह दी। इसके दूत दशपुर नगर के कृष्णदेव ब्राह्मण तथा सुशीला से उत्पन्न तीन पुत्रों को मांगने के उद्देश्य से उनके पास गए। उन्होंने पुत्र देना स्वीकार नहीं किया। तब राजा के दूत चार लाख मुहरें देकर उनके ज्येष्ठ पुत्र को बलात् ले जाने लगे। माता-पिता के अनुरोध पर उन्होंने उसे छोड़ दिया। फिर कनिष्ठ पुत्र को ले जाने लगे। किंतु माता-पिता ने उसे भी रोक लिया। अंत में वे मंझले पुत्र को बिना कुछ सुने बलात् ले गए। माता-पिता को बड़ा शोक-संताप हुआ। राजदूत ब्राह्मणपुत्र को लेकर रात व्यतीत करने के उद्देश्य से महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में रुक गए। महर्षि ने स्वयं को नरबलि के लिए प्रस्तुत किया; किंतु राजदूत नहीं माने। तब विश्वामित्र राजा दीननाथ के पास गए और उन्होंने राजा से कहा कि पूर्णाहुति देकर पुत्र प्राप्त करो। राजा ने ब्राह्मणपुत्र को छोड़ दिया और यज्ञ किया। पूर्णाहुति के बाद उसका पुत्र हुआ और ब्राह्मण बालक की रक्षा करने के कारण विश्वामित्र को स्वर्गप्राप्ति हुई। (पद्मपुराण)

दीर्घतमा—प्राचीन महर्षि। ये उतथ्य के पुत्र और बृहस्पति के बड़े भाई थे। इनके जन्मान्ध होने के कारण इनका नाम दीर्घतमा पड़ा था।

दीर्घबाहु—राजा खट्वांग का पुत्र और रघु का पिता; मत्स्य तथा पद्मपुराण में इसे अजपुत्र कहा गया है। अन्य पुराणों में इसे रघु का विशेषण माना गया है। यह बड़ा विष्णुभक्त था। पिता खट्वांग इसे राज्याधिष्ठित करके स्वयं निवृत्त हो गया था।

(२) धृतराष्ट्र का पुत्र, भीम ने जिसका वध किया था।

दीर्घिका—इसके पिता का नाम वीरशर्मन् था। अत्यंत दीर्घकाय होने के कारण मृत्युभय से कोई इसके साथ विवाह करने को तैयार न था। तब इसने पतिप्राप्ति के लिए तपस्या की। तप करते यह वृद्धा हो गई। तब कुष्ठरोग पीड़ित एक वृद्ध गृहस्थ इसके पास आया और इसने उससे विवाह कर लिया। कालांतर में पति की इच्छा पर उसे कंधे पर बिठाकर यह यात्रा करने के लिए निकली। मार्ग में चलते हुए मांडव्य पर इसका धक्का लग गया। उसने इसे शाप दिया; किंतु इस पतिपरायणा पर उसका कोई प्रभाव न हुआ। संभवत: इसका अपर नाम शांडिली भी था।

दुन्दुभि—दानवविशेष। यह दानव महिषाकार था। बालि

ने इसका वध किया था, और उसके सिर को ऋष्यमूक पर्वत पर फेंक दिया था। तभी से मतंग मुनि के शाप के कारण बालि ऋष्यमूक पर्वत पर नहीं जा सकता था। (रामायण)

दुर्गसिंह –एक प्राचीन वैयाकरण। इन्होंने कलाप व्याकरण की टीका और वृत्ति लिखी है।

दुर्गा—आद्या शक्ति। दुर्ग नामक असुर के मारने के कारण इनका नाम दुर्गा पड़ा है। महिषासुर ने देवताओं को भगाकर स्वर्ग पर अपना अधिकार कर लिया। इससे दु:खी होकर देवता ब्रह्मा की शरण गए। ब्रह्मा देवताओं को लेकर महादेव के पास उपस्थित हुए और उन्होंने देवताओं की दुर्दशा का वर्णन किया। महादेव क्रुद्ध हुए। उनके वदन से एक तेज निकला। उसी समय ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं के भी मुख से ज्योति निकलने लगी। सभी के देखते-देखते उस तेजोमंडल ने एक सुंदर स्त्री का रूप धारण किया। देवताओं ने उस स्त्री को अपने-अपने अस्त्र प्रदान किए। उस देवी ने महिषासुर को तीन बार मारा, पहली बार उग्रचंडा रूप से, दूसरी बार भद्रकाली रूप से, तीसरी बार दुर्गा रूप से। (देवीभागवत)

दुर्गादास—प्रसिद्ध राठौर वीर, ये मारवाड़ की लूनी नदी के पास दूनाडे नामक प्रदेश के सामंत थे। इनके पिता का नाम आशासिंह था। जिन प्रभुभक्त वीर राठौरों ने स्वार्थत्याग का उज्ज्वल दृष्टान्त दिखाकर अपनी शुभ्र कीर्ति को चिरस्थायिनी बनाया है, उन सबके अगुआ दुर्गादास ही हैं। कुमार अजितसिंह को अपने हाथ में समर्पण कर देने के लिए औरंगजेब ने इन्हें मारवाड़ का समस्त राज्य देने का लोभ दिया था। परंतु वीरवर दुर्गादास ने उसका साफ-साफ शब्दों में तिरस्कार कर दिया। संवत् १७३६ वि० में जो राठौरों ने भयानक युद्ध किया था, उस युद्ध में वीर-श्रेष्ठ दुर्गादास ने अपनी वीरता का परिचय दिया था। उस युद्ध में इन्होंने मुसलमान वीरों का गर्व धूल में मिला दिया था। कुमार अजित की रक्षा करने के लिए ये आबू के पहाड़ पर वेश बदलकर रहा करते थे, और वहीं इनकी संरक्षकता में मारवाड़ का भावी अधीश्वर बढ़ रहा था। दुर्गादास अपने प्रयत्न में सफल भी हुए थे, अर्थात् दुर्गादास ने राजकुमार अजित को अपने प्रयत्न, त्याग और वीरता से मारवाड़ का अधीश्वर बना दिया था। दुर्गादास के गुण देवोपम थे। टाड साहब कहते हैं कि दुर्गादास के स्वार्थत्याग का उदाहरण संसार की किसी भी वीर जाति में नहीं पाया जाता है। (टाड्स राजस्थान)

दुर्गावती—(१) चित्तौड़ के महाराणा सांगा की कन्या। वेसिन के राजा सिलौढ़ी को ये ब्याही गई थीं। गुजरात के अधिपति बहादुरशाह ने सन् १५३१ ई० में राजा सिलौढ़ी को कैद करके बलपूर्वक मुसलमान बना लिया। सिलौढ़ी के भाई लक्ष्मण ने किले की रक्षा करने के लिए युद्ध किया, परंतु असंख्य मुसलमानों को रोकना उनके लिए असंभव था। अतएव उन्होंने किला मुसलमानों को दे देने की इच्छा की। रानी दुर्गावती ने मुसलमानों के हाथ में जाने की अपेक्षा मरना अच्छा समझकर, ७०० राजपूत स्त्रियों के साथ अग्निकुंड में प्रवेश किया था।

(२) चंदेल क्षत्रियवंशी महोबा के राजा की कन्या। महोबा हमीरपुर जिले का प्रधान नगर है। दुर्गावती की सुंदरता तथा उसके अनुपम गुणों को सुनकर दलपतसाह ने उसके साथ ब्याह करने की अपनी इच्छा प्रकट की। परंतु दुर्गावती के पिता ने उसे स्वीकार नहीं किया। इससे दलपत ने महोबे पर चढ़ाई की और दुर्गावती को अपनी धर्मपत्नी बनाया। परंतु दुर्गावती का भाग्य खोटा निकला। ४ वर्ष के बाद ही वह विधवा हो गई। उसके एक पुत्र हुआ था, जिसकी अवस्था तीन वर्ष की थी। महारानी अपने पुत्र को राजसिंहासन पर बैठाकर स्वयं गढ़मंडल का राज्यशासन करने लगी। महारानी के सुशासन के प्रभाव से राजकोष धनपूर्ण हो गया, प्रजा सुख से अपने दिन बिताने लगी। परंतु विधवा रानी को यह सुख भी भोगना नहीं बदा था। उसके अतुल ऐश्वर्य की बात दिल्ली के सम्राट् अकबर के कानों तक पहुंची। अकबर के मध्यभारत के सेनापति आसफखां ने १८ हजार सेना लेकर गढ़मंडल की राजधानी सिंहगढ़ पर आक्रमण किया। पहले दिन के युद्ध में तो महारानी दुर्गावती की जीत हुई, परंतु दूसरे दिन के युद्ध में हाथी पर बैठी हुई महारानी घायल हुईं। एक बाण आकर उनकी आंख में लगा, और दूसरे बाण से उनकी कनपटी बिंध गई। महारानी को आहत देखकर उनकी सेना भागने लगी। उस समय महारानी युद्ध में अपनी जीत की कोई आशा न देख, स्वयं छुरी से अपनी वक्षस्थल फाड़कर मर गईं।

दुर्जनसाल –कोटा राज्य के अधीश्वर राजा भीमसिंह के ये छोटे पुत्र थे। इनके बड़े भाई अर्जुनसिंह पूर्वप्रथा के

अनुसार कोटा राज्य के अधीश्वर हुए। परंतु वे चार वर्ष तक राज्य करने के बाद परलोकवासी हुए। अनंतर दुर्जनसाल और श्यामसिंह इन दोनों भाइयों ने राज्य के लिए युद्ध करना प्रारंभ किया। उसका फल यह हुआ कि दुर्जनसाल के बड़े भाई श्यामसिंह उसी युद्ध में मारे गए। हाड़ा जाति के कवियों ने लिखा कि श्यामसिंह के मरने पर दुर्जनसाल भ्रातृवियोग से बड़े दुःखी हुए थे। वे हाहाकार करते फिरते थे।

दुर्जनसाल सन् १७२४ ई० में कोटे के राजा हुए। उस समय तैमूरवंश के अंतिम सम्राट् मुहम्मदशाह का दिल्ली पर अधिकार था। दिल्ली के सम्राट् ने दुर्जनसाल को बड़े सम्मान के साथ दिल्ली बुलाया और खिलत दी। इसी समय हाड़ा जाति के राज्यों में गोवध न होने का आदेश, दिल्ली के बादशाह ने प्रचारित किया था। आमेरनरेश ईश्वरसिंह ने कोटा राज्य पर बड़े जोर-शोर से आक्रमण किया था, परंतु दुर्जनसाल की वीरता से उनके सभी करतब व्यर्थ हो गए। वीरश्रेष्ठ दुर्जनसाल ने कई प्रदेशों को जीतकर अपने राज्य में लिया लिया। वे बड़े शिकारी थे। वे जब शिकार खेलने वन में जाते, तब उनके साथ उनकी स्त्रियां भी जाती थीं। दुर्जनसाल का ब्याह मेवाड़ की राजकन्या से हुआ था। (टाड्स राजस्थान)

दुर्जय— ये धृतराष्ट्र के पुत्र थे। इन्हींको दुर्योधन ने कर्ण की सहायता के लिए भेजा था और भीमसेन ने इन्हें मार डाला था। (महाभारत)

दुर्दम—(१) इसके पिता का नाम विक्रमशील और माता का नाम कालिंदी था। प्रमुच ऋषि की कन्या रेवती इसकी पत्नी थी।

(२) रुद्रश्रेण्य का पुत्र; मतांतर से भद्रसेन का पुत्र; इसके पुत्र का नाम धनक था। दिवोदास ने इसके भाइयों का वध किया था। बाद में दिवोदास को पराजित कर, इसने बदला लिया।

(३) गोदावरी तट पर प्रतिष्ठान नगरवासी एक ब्राह्मण; यह हर किसीसे दान ग्रहण कर लेता था, जिसके कारण इसका नरकपात हुआ।

(४) इसके पिता का नाम विश्वावसु गंधर्व था। एक बार कैलास पर जब वसिष्ठ, अत्रि आदि ऋषि शंकर की तपस्या में लीन थे, तो यह अपनी सैकड़ों पत्नियों को लेकर वहां आया और हालास्य तीर्थ में नग्न होकर स्नान करने लगा। तब ऋषि वसिष्ठ ने इसे राक्षस बन जाने का शाप दिया, किंतु इसकी पत्नियों के अनुरोध पर ऋषि ने अपने शाप की सीमा को सोलह वर्ष कर दिया। राक्षस बन जाने पर यह गालव ऋषि को खाने दौड़ा; किंतु विष्णु ने सुदर्शन चक्र से इसका वध कर डाला। तब इसका उद्धार हुआ और यह पुनः गंधर्वलोक में चला गया। (स्कंदपुराण)

दर्दुरः—पूर्वीघाट की पर्वतमाला के दक्षिणी भाग का नाम।

दुर्मुख—ये धृतराष्ट्र के पुत्र थे। दुर्जय को मारकर भीमसेन ने जब कर्ण का रथ तोड़कर उसे विवश कर दिया था, तब दुर्योधन ने दुर्मुख को कर्ण की सहायता के लिए भेजा था। परंतु वह बेचारा रणभूमि में उपस्थित होते ही भीमसेन के द्वारा मारा गया। (महाभारत)

दुर्योधन—धृतराष्ट्र के ज्येष्ठ पुत्र का नाम। महाभारत के युद्ध में ये ही कौरव दल के नेता थे। भीम इनके समानवय के थे। भीम का बल देखकर ये सर्वदा उनसे ईर्ष्या किया करते थे। इन्होंने बाल्यावस्था में भीम को विष पिलाकर नदी में फिंकवा दिया था।

धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को युवराज बनाना चाहा था, परंतु दुर्योधन के आपत्ति खड़ी करने से राजा का वह विचार कार्य में परिणत न हो सका। दुर्योधन के कहने से अंध राजा धृतराष्ट्र ने कुंती और पांडवों को राजधानी से निकालकर वारणावत नामक नगर में भेज दिया था। दुर्योधन वारणावत में पांडवों को जला देना चाहता था, परंतु यह अपनी कुवासना पूरी नहीं कर सका। पांडव अपनी रक्षा करने के लिए रात को वारणावत नगर से निकलकर भागे, और पांचाल राज्य में जाकर उपस्थित हुए। पांचाल राज्य के राजा द्रुपद थे। महाभारत के समय में पांचाल राज्य दो भागों में बंटा था, जिसे उत्तर पांचाल और दक्षिण पांचाल कहते थे। उत्तर पांचाल आजकल का रुहेलखंड है। इसकी राजधानी का नाम था अहिच्छत्र। दक्षिण पांचाल गंगा का द्वीप था। उसकी प्राचीन राजधानी काम्पिल्य में थी। द्रुपदराज के साथ कौरवों की शत्रुता बहुत पुरानी थी। ये दोनों ही बड़े पराक्रमी राज्य थे। द्रुपद की कन्या के साथ पांडवों का विवाह होने पर कुरु और पांचाल की शत्रुता और भी बढ़ गई। इसी कारण बहुत लोग महाभारत युद्ध को कुरु पांचाल युद्ध कहते हैं। उसी समय द्रौपदी के ब्याह के लिए स्वयंवर रचा गया था। उसमें अनेक

राजा आए थे, युधिष्ठिर आदि भी उसमें छद्मवेश से गए थे। कौरव आदि किसी राजा से लक्ष्यवेध न हो सका, अंत में छद्मवेशधारी अर्जुन ने लक्ष्यवेध किया और द्रौपदी को पाया।

द्रुपद एक पराक्रमी राजा थे। पांडवों का उनसे संबंध हो गया। भागे हुए पांडवों ने एक बड़े सहायक को पाकर धृतराष्ट्र से आधा राज्य मांगा। धृतराष्ट्र ने पांडवों को आधा राज्य दे दिया और उनकी राजधानी इंद्रप्रस्थ में बनवा दी। राज्य पाकर पांडवों ने राजसूय यज्ञ करना प्रारंभ किया। श्रीकृष्ण की सहायता और सलाह से युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ बड़े समारोह से समाप्त हुआ। इससे जल-भुनकर दुर्योधन खाक हो गया। उसने अपने मामा शकुनि से सलाह करके जुआ खेलने के लिए युधिष्ठिर को बुलाया। शकुनि की चालाकी से युधिष्ठिर जुए में राज्य हार गए और १२ वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास की भी उन्होंने प्रतिज्ञा की। इसके बाद द्रौपदी को भी दाव पर युधिष्ठिर हार गए। दुःशासन केश पकड़कर द्रौपदी को सभा में खींच ले आया और उसे नग्न करने की चेष्टा करने लगा, परंतु श्रीकृष्ण सहायक थे इस कारण द्रौपदी नंगी नहीं की जा सकी। उसी समय दुर्योधन ने द्रौपदी को अपनी जंघा पर बैठने के लिए बुलाया था। द्रौपदी पर इन अत्याचारों को होते देख, पुरुषसिंह भीम ने प्रतिज्ञा की कि मैं दुःशासन का रक्तपान करूंगा, और दुर्योधन की जंघाओं को तोड़ डालूंगा।

पांडवों को बारह वर्ष का वनवास देकर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ। अपना ऐश्वर्य दिखाने के लिए उसने घोषयात्रा भी की थी, परंतु वह चित्रसेन नामक गंधर्व के हाथों बंदी हो गया। महात्मा युधिष्ठिर ने दुर्योधन के बंदी होने को अपना अपमान समझकर भीम और अर्जुन को इसके उद्धार के लिए भेजा। युद्ध में चित्रसेन परास्त हुआ। उसने भीमार्जुन के हाथ में सपरिवार दुर्योधन को अर्पित कर दिया। युधिष्ठिर ने आदर के साथ बुलाकर इसे अपने पास बिठाया तथा अनेक प्रकार के उपदेश देकर विदा किया।

इस घटना से दुर्योधन को जो कष्ट हुआ वह दुर्योधन ही जान सकता है। पांडवों ने मत्स्यदेश के विराट् के यहां रहकर एक वर्ष का अपना अज्ञातवास बिताया था। कोई कहते हैं, वर्तमान जयपुर ही मत्स्यदेश है, और किसी-किसीके मत से मत्स्यदेश गुजरात के समीप था। बहुत लोग कहते हैं कि रंगपुर जिला ही प्राचीन मत्स्यदेश है। विराट् के भवन में अज्ञातवास के समय विराट् का साला और उनका सेनापति कीचक भीमसेन द्वारा मारा गया। कीचक के भय से कौरव भी विराट् से शत्रुता नहीं कर सकते थे। कीचक के मरने का संवाद सुनकर दुर्योधन ने विराट् के उत्तर गोगृह पर आक्रमण किया परंतु अर्जुन से हारकर दुर्योधन घर लौट आए। इसी युद्ध के दिन ही पांडवों के अज्ञातवास की अवधि पूरी हो गई थी। विराट् के साथ पांडवों का परिचय हुआ। विराट् के कहने पर अर्जुनपुत्र अभिमन्यु ने उत्तरा से ब्याह किया। अब पांडवों को दो प्रबल सहायक मिले। एक पांचालराज द्रुपद और दूसरे मत्स्यराज विराट्। युधिष्ठिर ने अपना आधा राज्य दे देने के लिए धृतराष्ट्र के यहां कहलाया। परंतु दुर्योधन ने साफ कह दिया कि बिना युद्ध के एक सुई की नोक के बराबर भी भूमि नहीं दी जाएगी। बीच में पड़कर श्रीकृष्ण ने झगड़ा मिटा देना चाहा, परंतु दुर्योधन ने उनकी एक भी बात नहीं सुनी। अतः दोनों ओर से युद्ध होने की तैयारी होने लगी। कौरव-पांडव दोनों ने श्रीकृष्ण की सहायता मांगी। श्रीकृष्ण ने स्वयं पांडवों का साथ दिया, और उनकी सेना ने कौरवों का। अट्ठारह दिनों तक युद्ध हुआ। दस दिन युद्ध होने के बाद कौरव सेनापति भीष्म मारे गए। पांच दिन युद्ध होने के बाद कौरव सेनापति द्रोण, अढ़ाई दिन के युद्ध के बाद कर्ण और आधा दिन युद्ध करके कौरव सेनापति शाल्व मारे गए। कौरव-दल हार गया। दुर्योधन भागकर एक तालाब में जाकर छिप गया। ढूंढ़ते-ढूंढ़ते भीम वहां पहुंचे। भीम के दुर्वाक्यों से उत्तेजित होकर दुर्योधन तालाब में से निकला। भीम और दुर्योधन का गदा-युद्ध प्रारंभ हुआ। भीम ने अपनी पहले की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार गदा से दुर्योधन की जंघाएं तोड़ डालीं। दुर्योधन उसी दशा में वहीं गिर गया। उसको वहीं छोड़कर पांडव अपनी सेना में चले गए। उस समय दुर्योधन से मिलने के लिए अश्वत्थामा वहां उपस्थित हुए। दुर्योधन के अनुरोध से अश्वत्थामा ने द्रौपदी के पांच पुत्रों को मार डाला। यह समाचार दुर्योधन को मिला। दुर्योधन काल की गोद में सदा के लिए सो गया।

(महाभारत)

दुर्लभक—काश्मीर के एक राजा। इनके पिता का नाम दुर्लभवर्द्धन था और माता का नाम अनंगलेखा। काश्मीरराज बलादित्य इनके नाना थे। नाना ने अपने दौहित्र दुर्लभक को दत्तक रूप से ग्रहण किया था और उनका नाम प्रतापादित्य रखा था। पिता की मृत्यु के बाद इन्होंने काश्मीर का राज्य ग्रहण किया। प्रतापादित्य ने प्रतापपुर नामक एक सुंदर नगर बसाया था। उस नगर में देश-विदेश के व्यवसायी वणिक् आकर रहा करते थे। उस नगर में अशेष गुणसंपन्न तथा ऐश्वर्यशाली नोंन नामक वणिक् भी रहा करता था। एक दिन नोंन ने राजा को अपने यहां आने के लिए निमंत्रित किया। राजा उसके घर गए। वहां जाकर मणिमय दीप आदि को देखकर राजा को चकित होना पड़ा था।

एक समय राजा दुर्लभक ने मार्ग में नोंन की पत्नी नरेंद्रप्रभा को देखा। नरेंद्रप्रभा ने भी राजा को देखा। देखने से ही उन दोनों में परस्पर प्रेम हो गया। राजा लौटकर घर आए। राजा नरेंद्रप्रभा की चिंता से दिन-दिन क्षीण होने लगे। एक ओर राजा का महान् कर्तव्यपालन और दूसरी ओर नरेंद्रप्रभा के प्रेम का स्वाभाविक आकर्षण——इन दोनों बड़ी विषम समस्याओं का सामंजस्य करना राजा के लिए कठिन काम हो गया।

राजा की क्षीणता और अस्वस्थता की बात नगर में फैल गई। महामना नोंन ने भी ये बातें सुनीं। नोंन स्वयं महाराज के समीप उपस्थित होकर कहने लगे——राजन्! आप इतना कष्ट क्यों उठाते हैं, धर्मभय से प्राण देना उचित नहीं है। जिस कीर्ति के लोप की आशंका से आप प्राण देने के लिए प्रस्तुत हैं, मरने पर उस कीर्ति को कौन सुनने आएगा! आप मेरी चिंता कुछ न करें। मैं आपके लिए प्राण देने को भी प्रस्तुत हूं, तुच्छ उपभोग्य पदार्थों की बात ही क्या है! मैं प्रसन्नता से नरेंद्रप्रभा को आपके अर्पण करता हूं। आप ग्रहण करें। यदि आज्ञा हो तो पास के मंदिर में आई हुई नरेंद्रप्रभा को मैं बुला लाऊं।—नोंन की बातें सुनकर राजा दुर्लभक पहले तो बड़े लज्जित हुए, परंतु काम के प्रबल प्रलोभन को न रोक सकने के कारण नरेंद्रप्रभा को उन्होंने ग्रहण कर लिया। नरेंद्रप्रभा के गर्भ से राजा के तीन पुत्र चंद्रापीड, तारापीड और मुक्तापीड उत्पन्न हुए थे। इनको यथाक्रम वज्रादित्य, उदयादित्य और ललितादित्य भी कहते हैं। राजा दुर्लभक ने ५० वर्ष तक राज्य करके स्वर्ग को प्रस्थान किया। (राजतरंगिणी)

दुर्लभवर्द्धन—एक कायस्थ रमणी के गर्भ और नागवंशी कर्कोटक के औरस से ये उत्पन्न हुए थे। काश्मीरराज बलादित्य की एक कन्या थी, जिसका नाम अनंगलेखा था। एक दिन अनंगलेखा को देखकर एक ज्योतिषी ने राजा से कहा—महाराज! आपका जामाता इस राज्य का अधिपति होगा। यह सुन राजा चिंतित हुए। उन्होंने सोचा कि यदि मैं किसी सामान्य मनुष्य से अपनी कन्या ब्याहूं, तो जामाता राजा भी नहीं हो सकेगा। अतएव बलादित्य ने अनंगलेखा का ब्याह दुर्लभवर्द्धन से किया। दुर्लभवर्द्धन नीतिज्ञ और विद्वान् थे, अतएव थोड़े ही दिनों में उन्होंने सबके हृदय पर अपना अधिकार जमा लिया। दुर्लभवर्द्धन भाग्यानुसारी बुद्धि से काम करने लगे, उनकी बुद्धिमत्ता देखकर राजा ने उनका नाम प्रज्ञादित्य रखा और धीरे-धीरे उनको अधिक संपत्ति का मालिक बना दिया। परंतु राजकन्या का हृदय दुर्लभवर्द्धन की ओर नहीं लगा, वह खंग नामक एक मंत्री के प्रणय में फंस गई। खंग भी उसकी ओर झुके। भय, लज्जा आदि त्यागकर दोनों प्रणयी सुख से अपना समय बिताने लगे। एक दिन रात्रि को अनंगलेखा के चरित्र की परीक्षा करने के लिए दुर्लभवर्द्धन अंतःपुर में छिपकर घुसे। वहां का जो दृश्य उन्होंने देखा उससे उन्हें क्रोध आना स्वाभाविक था। तथापि नीतिज्ञ दुर्लभवर्द्धन क्रोध रोककर और मंत्री खंग के कपड़े पर यह वाक्य 'तुम मारने योग्य हो, तथापि मैंने छोड़ दिया' लिखकर बाहर चले आए। उठकर खंग ने अपने कपड़े को जो देखा, तो उसपर कुछ लिखा हुआ था। उसे पढ़कर उसके हृदय का भाव एक बार ही में बदल गया। उसके हृदय से अनंगलेखा का प्रेम दूर हो गया। अब वह दुर्लभवर्द्धन के उपकार करने की चिंता में लगा। अंत में बलादित्य के मरने पर खंग ने अन्य मंत्रियों को वश में करके दुर्लभवर्द्धन को काश्मीर के राजसिंहासन पर बैठा दिया। दुर्लभवर्द्धन ने अपनी स्त्री का चरित्र-दोष प्रकाशित नहीं किया था। इन्होंने ३५ वर्ष तक राज्यशासन कर परलोकगमन किया। (राजतरंगिणी)

दुर्वासा—अत्रि मुनि के पुत्र। अनसूया के गर्भ से ये उत्पन्न हुए थे। स्वयं महादेव ने ही अंशरूप से अनसूया के गर्भ से दुर्वासा रूप में जन्मग्रहण किया था। दुर्वासा

अत्यंत क्रोधी होने के कारण प्रसिद्ध हैं। इन्होंने और्व की कन्या कंदली को ब्याहा था। इनके कोप से देवराज इन्द्र लक्ष्मीभ्रष्ट हुए थे। इन्हींके शाप से शकुंतला ने पति द्वारा परित्यक्ता होकर अनेक कष्ट उठाए थे। एक समय दुर्वासा गरम-गरम खीर खा रहे थे, उसी समय उसी खीर से थोड़ी-सी निकालकर उन्होंने श्रीकृष्ण को दी। और उसे अपने सर्वांग में लगाने के लिए कहा। श्रीकृष्ण ने उसे सर्वांग में लगाया, परंतु यह ब्राह्मण का प्रसाद है इस बुद्धि से उसे पैर में नहीं लगाया। यह देखकर दुर्वासा बोले—तुमने हमारा उच्छिष्ट सर्वांग में लगाया है इस कारण तुम्हारा सर्वांग अभेद्य होगा, परंतु पैर में नहीं लगाया, अतएव वह अभेद्य नहीं होगा। इसी कारण पैर ही में बाण लगने के कारण श्रीकृष्ण की मृत्यु हुई। कुंती की सेवा से प्रसन्न होकर उसे जो मंत्र इन्होंने बताया था, उसके प्रभाव से कर्ण तथा पांच पांडव उत्पन्न हुए थे। (महाभारत)

दुःशला अंधराज धृतराष्ट्र की यह कन्या थी। दुर्योधन इसके बड़े भाई थे। इसका ब्याह सिंधु देश के राजा जयद्रथ के साथ किया गया था। इसके पुत्र का नाम सुरथ था। जिस समय जयद्रथ को महाभारत के युद्ध में अर्जुन ने मारा, उस समय सुरथ बालक था। दुःशला ने अपने पुत्र के अभिभावक का पद ग्रहण कर के सिंधु राज्य का शासन किया था। युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा लेकर अर्जुन जब सिंधु राज्य में गए थे, उस समय सुरथ मारे डर के मर गया, यह सुनकर अर्जुन ने सुरथ के पुत्र को सिंधु देश के राज्य पर बैठा दिया। (महाभारत)

दुःशासन ये धृतराष्ट्र के पुत्र और दुर्योधन के छोटे भाई थे। दुर्योधन इसी के परामर्श से अपना काम किया करता था। महाभारत के युद्ध का कारण यही था। जुए में जब पांडव हार गए तब यही दुःशासन द्रौपदी के केश पकड़कर उन्हें सभा में लाया था और इसने उनको नंगा करने का प्रयत्न किया था। इसी अपमान का बदला चुकाने के लिए भीमसेन ने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक मैं दुःशासन की छाती फाड़कर रुधिर न बहाऊंगा और जब तक दुर्योधन के रक्त से द्रौपदी की चोटी नहीं भिगोऊंगा तब तक द्रौपदी के बाल खुले रहेंगे। कुरुक्षेत्र के युद्ध में भीमसेन ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की थी। (महाभारत)

दुष्यन्त—पौरववंशीय एक विख्यात राजा और महाकवि कालिदासकृत 'अभिज्ञानशाकुंतल' नामक नाटक के नायक। कालिदास ने महाभारत के अंतर्गत आदिपर्व में लिखी दुष्यंत और शकुंतला की कथा को अपनी असाधारण कल्पना और अमृतमयी रचनाप्रणाली से नाटक का रूप दिया है। महाभारत में लिखा है—एक समय राजा दुष्यंत मृगया खेलने वन में गए। वहां वे एक मृग के पीछे दौड़ते-दौड़ते मालिनी नदी के तीर पर कण्व मुनि के आश्रम में पहुंचे। मंत्री और पुरोहित को आश्रम के बाहर ठहराकर राजा एकाकी आश्रम में गए। उस समय कण्व वहां नहीं थे, वे फल ढूंढ़ने के लिए कहीं बाहर गए हुए थे। राजा का शब्द सुनकर कुटी से एक अत्यंत सुंदर स्त्री बाहर निकली और उसने अर्घ्य-पाद्य आदि से अतिथि-सत्कार किया। ऋषि को वहां न देखकर राजा ने शकुंतला का परिचय पूछा। जो कण्व से सुना था वही शकुंतला कहने लगी। उसने कहा—एक समय महर्षि विश्वामित्र की तपस्या से डरकर देवराज ने उनकी क्रिया में विघ्न डालने के लिए मेनका नाम की एक अप्सरा को भेजा था। मेनका पर महर्षि मोहित हुए। जप-तप छोड़कर वे मेनका के साथ भोग-विलास करने लगे। मेनका के गर्भ रहा। मेनका यथासमय एक पुत्री उत्पन्न कर और उसे मालिनी नदी के तीर पर रखकर स्वर्ग चली गई। शकुंतसमूह (पक्षिगण) हाल की जन्मी उस कन्या को निर्जन वन में पड़ी देख और दयावश हो, उसकी रक्षा करने लगे। जब प्रभातकाल महर्षि कण्व मालिनी के तीर पर गए, तब उन्होंने उस कन्या को देखा और वे उसे उठाकर अपने आश्रम में ले आए। मैं वही कन्या हूं। महर्षि कण्व को मैं पिता कहती हूं। शकुंतों ने मेरी रक्षा की थी इस कारण पिता ने मेरा नाम शकुंतला रखा है।

शकुंतला का परिचय पाकर राजा ने समझ लिया कि यह राजपुत्री है। क्योंकि विश्वामित्र क्षत्रिय राजकुमार थे, उन्होंने अपनी तपस्या से महर्षि-पद पाया था। अतः स्वयं राजा ने ही शकुंतला से गंधर्व विवाह करने का प्रस्ताव किया। शकुंतला ने उनसे कण्व के आने तक ठहरने को कहा। तब राजा कहने लगे—शास्त्रों में आठ प्रकार के विवाह लिखे गए हैं। ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गंधर्व, राक्षस और पैशाच। इन आठ प्रकार के विवाहों में ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर और गंधर्व विवाह करने का क्षत्रिय को अधिकार है। अतएव इस विषय में दूसरे

की सम्मति लेने की आवश्यकता नहीं है। शकुंतला ने भी शास्त्रसम्मत विवाह करने में आपत्ति नहीं की, परंतु उसने यह ठहरा लिया कि उसके गर्भ से उत्पन्न पुत्र ही राजा हो सकेगा। रीति के अनुसार, दोनों का गंधर्व विवाह हुआ। कण्व के आने के पहले राजा उस आश्रम से चल दिए। जाने के समय राजा ने कहा कि तुम्हें यहां से ले जाने के लिए आज रात को मेरे मनुष्य आएंगे। आश्रम में आकर कण्व ने शकुंतला के विवाह की बातें सुनीं और सुनकर वे प्रसन्न हुए। शकुंतला के गर्भ रहा और यथासमय उसने अत्यंत सुंदर एक पुत्र उत्पन्न किया। कुमार के तीन वर्ष के होने पर कण्व ने शास्त्रानुसार उसके जातकर्म आदि संस्कार किए। वह बालक पांच वर्ष की अवस्था में सिंह, व्याघ्र आदि को पकड़कर आश्रम के वृक्षों से बांध दिया करता था, इस कारण तपस्वी लोग उसे सर्व-दमन कहकर पुकारते थे। तब से उस बालक का एक नाम सर्वदमन पड़ा। महर्षि कण्व ने सर्वदमन का अद्‌भुत पराक्रम देखकर शकुंतला से कहा, "तुम्हारे पुत्र के यौवराज्याभिषेक का समय उपस्थित हुआ है अतएव अब तुम्हारा यहां रहना उचित नहीं है।" यह कह-कर मुनि ने शकुंतला को हस्तिनापुर दुष्यंत के पास ले जाने के लिए शिष्यों को आज्ञा दी।

कण्वशिष्य शकुंतला को राजा के यहां पहुंचाकर लौट आए। परंतु राजा पहचान नहीं सके। शकुंतला के संबंध की कोई भी बात उन्हें स्मरण नहीं आई। राजा के मुख से वैसी कठोर बातें सुनकर शकुंतला ठिठक गई, मारे लज्जा के वह जड़ के समान खड़ी रह गई। थोड़ी देर के बाद उसे ज्ञान हुआ। वह भी बड़े कठोर शब्दों में राजा की भर्त्सना करने लगी।

इस प्रकार दोनों में तर्क-वितर्क हो रहा था, उस समय देववाणी हुई—"राजन्! शकुंतला का कहना सत्य है। यह पुत्र तुम्हारा ही है। तुम शकुंतला के पुत्र का पालन करो। हम लोगों के कहने से तुम इस लड़के का भरण-पोषण करोगे। अतएव इसका नाम भरत होगा।" देववाणी सुनकर राजा ने शकुंतला और उसके पुत्र को ग्रहण किया और राजा अमात्य तथा पुरोहित को सम्बोधित करके कहने लगे—आप लोगों ने इस देवदूत की बातें सुनीं। मैं जानता हूं कि यह हमारा पुत्र है, परंतु यदि मैं यों ही इसे रख लेता तो लोग मुझको दोषी ठहराते और यह बालक भी कलंकित होता। इसी कारण हमने इतना वादविवाद किया है।

(महाभारत)

दुलह द्विवेदी—ये हिंदी के कवि थे और वनपुरा के रहने वाले थे। इन्होंने 'कविकुलकंठाभरण' नामक ग्रंथ सन् १७४६ ई० में लिखा था।

दूलहराय—ढूंढ़ार राज्य के स्थापनकर्ता। ये निषधाधिपति राजा नल के ३३ पुश्तों के पीछे राजा सोढ़ासिंह के पुत्र थे। सोढ़ासिंह के मरने पर उनके भाई ने अपने सुकुमार भतीजे को गद्दी से अलग कर दिया। दूलह-राय की माता अपने देवर का ऐसा कठोर अत्याचार देखकर अत्यंत चिंतित हुईं, परंतु वे सामने आती हुई एक दूसरी विपत्ति को देखकर और पुत्र को झोली में बांधकर राजधानी से बाहर हुईं। उन्होंने सोचा कि जब यह नृशंस, राज्य लेने के लिए उद्यत हुआ है, तब दूलहराय का प्राण ही क्यों रहने देगा। अत: महारानी कंगालिन के वेष में पुत्र की झोली लेकर चलीं। चलते-चलते वे खोहगांव के पास पहुंचीं। यह स्थान वर्तमान जयपुर से ढाई कोस दूर था। मार्ग की थकावट तथा भूख-प्यास से रानी व्याकुल हो गयी थीं, अतएव वे बच्चे की झोली रखकर फल आदि ढूंढ़ने के लिए गयीं। लौटकर उन्होंने देखा कि बच्चा सोया हुआ है और उसपर एक सांप फन की छाया किए खड़ा है। यह देख दु:खिनी रानी पर मानो वज्र गिरा। उनका शरीर कांप उठा। उसी समय एक ब्राह्मण उधर से जाता दीख पड़ा। उसने रानी को बहुत समझाया और कहा—आप चिंतित न हों। आपका पुत्र राजा होगा। रानी ने कहा—भविष्यत् की मुझे कुछ चिंता नहीं, भविष्य सर्वदा अंधकार में रहा करता है। इस समय हम लोग भूखे हैं। आप ऐसा कोई उपाय बताएं जिससे हम लोगों को भोजन मिले। तब ब्राह्मण ने खोहगांव का मार्ग बताया। रानी खोहगांव में गईं। वहां वे मीना-राज के यहां दासियों में भर्ती हुईं। एक दिन मीना की रानी की आज्ञा से दासी रानी ने भोजन बनाया। उस भोजन को खाकर मीनाराज लालनसी बहुत संतुष्ट हुए और उन्होंने पूछा कि यह भोजन किसने बनाया है। उस भोजन बनाने वाली परि-चारिका का परिचय पाते ही मीनाराज उसको अपनी भगिनी के समान तथा दूलहराय को भानजे के समान रखने लगे। दूलहराय भी मीनाराज का आश्रय पा-कर क्षात्रधर्म की शिक्षा प्राप्त करने लगा। उस समय दिल्ली के सिंहासन पर तंवर वंश का अधिकार था।

मीनाराज उसके करद राजा थे। जब दूलहराय की अवस्था १४ वर्ष की हुई, तब मीनाराज ने इन्हें कर देने के लिए दिल्ली भेजा।

दूलहराय दिल्ली में पांच वर्ष तक रहे, उस समय मीना के एक कवि के साथ इनका विशेष परिचय हो गया था। दिल्ली के राजा को देखने से दूलहराय की भी राजा बनने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। मीना के कवि के परामर्श से दूलहराय ने मीनाराज लालनसी पर आक्रमण किया, और उनको मारकर वे स्वयं राजा बन बैठे। राजा बनकर दूलहराय निश्चिंत नहीं बैठे रहे, उन्हें अपना राज्य बढ़ाने की चिंता व्यापी। इसी विचार से वे बड़गूजर राजा पर आक्रमण करने के लिए चल दिए। बड़गूजर राजा ने इनको अपनी लड़की ब्याह दी और इनको अपना उत्तराधिकारी भी बनाया। माची नामक स्थान में नाटू नाम का एक मीनाराज रहा करता था, उसपर भी दूलहराय चढ़ गए। दोनों दलों में युद्ध हुआ। मीनाराज की सेना परास्त हुई। दूलहराज ने उसपर भी अधिकार जमा लिया। माची प्रदेश पर अधिकार करके दूलहराय ने वहां अपनी नयी राजधानी बनवाई और उसका नाम 'रामगढ़' रखा। दूलहराय ने अजमेर की राजकुमारी भरोनी के साथ भी ब्याह किया था। एक समय राजा दूलहराय किसी देवमंदिर से दर्शन करके लौटे आ रहे थे। उस समय मीनाओं का एक बड़ा समूह इनपर टूट पड़ा। इन्होंने भी उत्तर दिया तो सही, परंतु ये एकाकी इतनी बड़ी सेना का क्या कर सकते थे! इसीसे ये उस युद्ध में मारे गए।
(टाड्स राजस्थान)

दूल्हाराम—ये रामसनेही पंथ के तीसरे गुरु थे। ये सन् १७७६ ई० में हुए थे, और इनका परमपद १८२४ ई० में हुआ। इनके प्राय: १०,००० सबद और ४,००० साखी प्रसिद्ध हैं।

दूषण—लंकापति रावण के एक सेनापति का नाम। इसके दूसरे भाई का नाम था खर। रावण का राज्य गोदावरीतीरस्थ दंडकारण्य तक विस्तृत था। राज्य के प्रांत भाग की रक्षा करने के लिए खर और दूषण १४ हजार सेना लेकर दंडकारण्य में रहा करते थे। रावण की भगिनी शूर्पणखा भी इसी वन में रहा करती थी। सीता के साथ राम-लक्ष्मण जब दंडकारण्य में रहा करते थे, तब मोहित होकर शूर्पणखा राम के पास पहुंची। राम ने उसकी नाक कटवा ली। शूर्पणखा रोती हुई खर-दूषण के पास पहुंची। खर-दूषण ने राम पर आक्रमण किया। दूषण पांच हजार सेना का नायक था। इस युद्ध में दूषण आदि सभी मारे गए। (रामायण)

दूहड़—ईडर के राजा आसथान के ज्येष्ठ पुत्र। पिता के परलोकवास होने पर दूहड़ अपने पिता के राज्य के स्वामी हुए। परंतु उनका हृदय उस राज्य के पाने से तृप्त नहीं हुआ। प्राचीन कन्नौज राज्य पर अधिकार करने की उनकी बड़ी प्रबल इच्छा थी। पिता के राज्य पर बैठकर दूहड़ अपनी अभिलाषा को पूर्ण करने का प्रयत्न करने लगे। परंतु उनका प्रयत्न सफल नहीं हुआ। कन्नौज राज्य के उद्धार करने में निष्फलप्रयत्न होकर दूहड़ ने मंडोर राज्य पर अधिकार जमाने का प्रयत्न किया। इस प्रयत्न में वे केवल असफल ही नहीं हुए किंतु मारे भी गए।
(टाड्स राजस्थान)

दृढधनु—विष्णुपुराणवर्णित चंद्रवंशी राजा सेनजित के तृतीय पुत्र का नाम।

दृढनेमि—ये भी चंद्रवंशी राजा थे। इनके पिता का नाम सत्यधृति था। (विष्णुपुराण)

दृढरथ—ये पुरुवंशी राजा जयद्रथ के पुत्र थे।

दृढसेन—ये सुश्रम के पुत्र थे और पुरुवंश की एक शाखा उपरिचरवसु के वंश में उत्पन्न हुए थे।

दृढहनु—ये स्येनजित के द्वितीय पुत्र थे।

दृढायु—ये पुरूरवा के पांचवें पुत्र थे।

दृषद्वती—कग्गर नदी का नाम, जो अंबाला और सरहिंद होकर बहती है और राजपुताने के रेगिस्तान में विलीन हो जाती है।

देव—(१) हिंदी के एक प्रसिद्ध कवि। सामने गांव जिला मैनपुरी के रहने वाले थे। इनका जन्म संवत् १६६१ वि० में हुआ था। ये हिंदीभाषा-काव्य के आचार्य माने जाते हैं। शिवसिंहसरोज के कर्ता को इनकी बनाई ७२ पुस्तकों का पता चला था। उनमें से कुछ ग्रंथों के नाम ये हैं—(१) प्रेमतरंग, (२) भावविलास, (३) रसविलास, (४) रसानंदलहरी, (५) सुजानविनोद, (६) काव्यरसायनपिंगल, (७) अष्टयाम, (८) देवमायाप्रपंचनाटक, (९) प्रेमदीपिका, (१०) सुमिलविनोद, (११) राधिकाविलास।

(२) इनका दूसरा नाम काष्ठजिह्वा स्वामी था। ये काशी में रहते थे और संस्कृत के बड़े पंडित थे। एक बार इन्होंने शास्त्रार्थ में अपने गुरु को परास्त

कर दिया था। इससे इनको बड़ा कष्ट हुआ। तभी से इन्होंने काठ की जीभ मुंह में बनाकर डाल ली। ये पाटी पर लिखकर लोगों से बातचीत करते थे। काशीनरेश महाराज ईश्वरीनारायणसिंह ने इनसे उपदेश लिया था। इन्होंने 'विनयामृत' आदि अनेक हिंदी के ग्रंथ लिखे हैं।

देवक—भोजवंशी आहुक के पुत्र। उग्रसेन इनके भाई थे और देवकी इनकी कन्या थी। ये श्रीकृष्ण के नाना थे।

देवकी—श्रीकृष्ण की माता। (देखो देवक)

देवकीनन्दन शुक्ल—ये मकरंदपुर जिला कानपुर के रहने वाले थे। सं० १८७० वि० में ये उत्पन्न हुए थे। इनकी कविता सरस और मनोहर होती थी। इनके दो भाई और थे। ये तीनों ही कविता करने में बड़े निपुण थे। इनका बनाया 'नखसिख' नामक एक ग्रंथ है।

देवदत्त—(१) ये हिंदी के कवि थे। शिवसिंहसरोज में लिखा है कि इनका बनाया ललितकाव्य प्रसिद्ध है। सं० १७०५ वि० में ये विद्यमान थे।

(२) ये भी हिंदी के एक कवि थे। सं० १९७२ वि० में इनका जन्म हुआ था। इनका बनाया 'योग-तत्त्व' नामक एक ग्रंथ है।

देवदास—मगध देश का एक ब्राह्मण। इसकी पत्नी का नाम उत्तमा, पुत्र का नाम अंगद तथा पुत्री का नाम वलया था। दोनों पुत्र-पुत्री पर गृहस्थ का भार निर्भर कर ये पति-पत्नी तीर्थाटन के लिए चल दिए। मार्ग में इन्हें एक सिद्ध ने इंद्रप्रस्थ तथा बदरिकाश्रम की यात्रा का सुझाव दिया। ये तदनुसार इंद्रप्रस्थ गए। वहां यमुना में स्नान करते हुए इनका उद्धार हुआ और इन्हें स्वर्गलोक की प्राप्ति हुई।

देवद्युति—सरस्वती तट पर निवास करनेवाला एक ऋषि। विष्णु के वरदान से इसे एक पुत्र की प्राप्ति हुई थी, जिसका नाम सुमित्र था। यह विष्णु का परम भक्त था। इसने एक हजार वर्षों तक विष्णु की तपस्या की, जिससे इसमें अपूर्व तेज का उदय हुआ। विष्णु ने इसकी भक्ति से प्रसन्न होकर इसे दर्शन दिया और वर मांगने के लिए कहा। इसने वर में केवल विष्णुभक्ति को ही मांगा। (पद्मपुराण)

देवयानी—दैत्यगुरु शुक्राचार्य की कन्या और नहुषपुत्र राजा ययाति की पत्नी। ब्राह्मण की कन्या होकर इन्होंने क्षत्रिय से ब्याह किया था। दैत्यराज वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा के साथ देवयानी की मित्रता थी। एक समय दोनों अपनी सहेलियों के साथ स्नान कर रही थीं। वायु के चलने से तट पर रखे हुए सभी के वस्त्र परस्पर मिल गए। स्नान के अंत में शर्मिष्ठा ने देवयानी का वस्त्र पहन लिया। फिर क्या था, दोनों में कलह होने लगी। शर्मिष्ठा ने देवयानी के पिता को असुरों का भाट बतलाया, और देवयानी को कुएं में गिरवाकर वह स्वयं घर चली गई। संयोगवश राजा ययाति वहां पहुंच गए। राजा ययाति रमणी का आर्तनाद सुनकर उस कुएं के पास गए और देवयानी को निकाला। कुएं से निकलकर देवयानी अपने घर नहीं गई। उन्होंने किसीके द्वारा अपने पिता को अपनी दुर्दशा का हाल और अपना संकल्प कहला भेजा। दैत्यगुरु ने अपना अभिप्राय दैत्यराज वृषपर्वा से कहा। वृषपर्वा ने उनसे अपने अभिप्राय को बदल देने के लिए कहा। तब शुक्राचार्य बोले कि तुम देवयानी को प्रसन्न करो, यदि वह तुम्हारे नगर में रहना स्वीकार करे, तो मुझे भी स्वीकृत है। वृषपर्वा देवयानी के समीप जाकर उसका अनुनय करने लगा। देवयानी बोली—यदि तुम्हारी कन्या शर्मिष्ठा हजार दासियों के साथ मेरी दासी होना स्वीकार करे, और हमारे ब्याह के बाद भी हमारे पति के घर दासी बनकर ही जाए तो मैं अपना संकल्प छोड़ सकती हूं। दैत्यराज ने देवयानी का कहना स्वीकार किया। देवयानी घर लौट आई। शर्मिष्ठा भी दासियों को लेकर शुक्राचार्य के घर देवयानी की सेवा करने के लिए गई। एक समय देवयानी अपनी दासियों के साथ वन में घूम रही थी। उस समय राजा ययाति वहां आए। देवयानी ने उनसे विवाह करने का प्रस्ताव किया, शुक्राचार्य ने भी इस विवाह में अपनी सहमति दी। उसी वन में देवयानी और राजा ययाति का ब्याह हुआ। दैत्यराज के दिए दहेज तथा देवयानी को लेकर ययाति अपने नगर को लौट गए। कुछ दिन बीतने पर ययाति के औरस और देवयानी के गर्भ से यदु और तर्वसु नामक दो पुत्र तथा दासी शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्यु, अनु और पुरु नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। देवयानी ने सोचा कि राजा अधर्म कर रहे हैं, क्योंकि उन्होंने दासी के गर्भ से अधिक पुत्र उत्पन्न किए हैं। देवयानी ने अपने पति का यह व्यवहार अपमानजनक समझकर पिता से कहा। पिता ने शाप दिया—तुमने जो अधर्माचरण किया है इस

कारण तुमको अकाल ही में वार्द्धक्यग्रस्त होना पड़ेगा। राजा ययाति ने शुक्राचार्य से बहुत प्रार्थना की कि महाराज, शापनिवारण कीजिए। तब शुक्राचार्य ने कहा—हमारा शाप व्यर्थ नहीं हो सकता। हां, यदि तुम्हारा कोई पुत्र स्वेच्छा से वार्द्धक्य लेना स्वीकार करे, तो तुम युवा हो सकते हो। शर्मिष्ठागर्भज पुरु के अतिरिक्त दूसरे किसीने भी वार्द्धक्य लेना स्वीकार नहीं किया। अतएव राजा ययाति ने पुरु को राज्य देकर और पुत्रों को राज्य से वंचित किया।

देवराज—किरात नगर में व्यापार करने वाला एक ब्राह्मण। यह अत्यंत शराबी तथा धूर्त था। एक बार तालाब में स्नान करते हुए इसे शोभावती नामक एक वेश्या मिली और उसके साथ इसका प्रेम-संबंध स्थापित हो गया। उसके प्रेम के कारण इसने अपने माता, पिता तथा पत्नी सहित सारे परिवार को नष्ट कर डाला। तदनंतर एक बार यह प्रतिष्ठान नगर में गया और वहां इसने शिव के दर्शन किए तथा शिवकथा सुनी। उसके एक मास बाद जब इसकी मृत्यु हुई तो शिवदर्शनों के कारण इसे कैलास में जाने का अधिकार प्राप्त हो गया।

देवरात—एक वैदिकयुगीन गृहस्थ। इसकी एक कन्या थी, जिसका नाम कला था और जो शोण के साथ परिणीता थी। मारीचि ने इसका वध किया। मृत्युकाल में इसके द्वारा 'हर' का उच्चारण होने के कारण इसे कैलास पर्वत पर पार्वती की दासी बनने का सुयोग प्राप्त हुआ। (पद्मपुराण)

देवल—असित मुनि के पुत्र और व्यासदेव के शिष्य। रंभा के शाप से ये अष्टावक्र हो गए थे।

देववर्णिनी—भरद्वाज मुनि की कन्या और विश्रवा की पत्नी। इसके गर्भ से वैश्रवण नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। वैश्रवण का दूसरा नाम कुबेर है। ये देवताओं के धनाध्यक्ष हैं। पहले लंकापुरी इनकी राजधानी थी, परंतु सौतेले भाई रावण के अनेक अत्याचारों के कारण इन्होंने हिमालय के उत्तर में स्थित अलकापुरी को अपनी राजधानी बनाया।

देवसेना—सावित्री के गर्भ से उत्पन्न प्रजापति ब्रह्मा की कन्या। इनका दूसरा नाम षष्ठी है। ये सोलह मातृकाओं में श्रेष्ठ तथा शिशुपालन करने वाली हैं। देवसेनापति कार्तिकेय के साथ इनका ब्याह हुआ था। इनकी एक बहन थी, जिसका नाम था दैत्यसेना।

देवहूती—स्वायंभुव मनु की कन्या और कर्दम प्रजापति की पत्नी। प्रसिद्ध सांख्यदर्शन-रचयिता महर्षि कपिल इन्हींके गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इन्हींसे महर्षि कपिल ने शास्त्राध्ययन किया था। इन्हींके ज्ञानगर्भ उपदेशों के बल ही से संसार को ज्ञान की शिक्षा देने में महर्षि कपिल समर्थ हो सके थे। (हरिवंश)

देवा कवि—ये हिंदी के कवि थे और राजपुताने के रहने वाले थे। सं० १८५५ वि० में ये उत्पन्न हुए थे। ये कवि कृष्णदास पावहारी गलताजी वाले के शिष्य थे और उदयपुर के पास एक मंदिर में चतुर्भुजस्वामी के अधिकारी थे।

देवापि—कुरुवंशीय सूक्तद्रष्टा राजा। कुरु वंश का राजा शंतनु इसका छोटा भाई था। इनके माता-पिता का नाम सुनंदा तथा राजा प्रतीप था। छोटे भाई शंतनु के राजगद्दी पर बैठने के कारण राज्य में १२ वर्ष का अवर्षण हुआ था। ब्राह्मणों के परामर्श से पुनः देवापि को गद्दी पर बैठाने का विचार किया गया; किंतु साधु-स्वभाव एवं विरक्त देवापि ने राजगद्दी स्वीकार न करके शंतनु का पुरोहित बनकर यज्ञ किया। तदनंतर यह तपस्या करने के लिए अरण्य में चला गया।

'महाभारत' में देवापि को प्रतीप तथा शैव्यास्त्री सुनंदी का पुत्र बताया गया। पुराणों में इसके दूसरे भाई का बाह्लीक नाम उल्लिखित है। कुष्ठ रोग से ग्रसित होने के कारण इसको राजा बनाना अस्वीकार कर दिया गया था। कलयुग में इसने सोमवंश की स्थापना की और वर्णाश्रम धर्म को पुनरुज्जीवित किया (भागवत, विष्णु)।

देवी—पुराणों में यह सामान्य रूप से देवों की स्त्रियों के लिए प्रयुक्त हुआ है; किंतु विशेष रूप से इसका प्रयोग सृष्टि-विधायिका आदिमाया के लिए हुआ है। किसी भी संकट के समय मानवों और देवों ने इसकी शरण ली। पुराणों में इसके महात्म्य और प्रभाव का विस्तार से वर्णन किया गया है। 'मार्कण्डेयपुराण' के 'सप्तशती' आख्यान में आदिशक्ति महामाया भगवती का व्यापक उल्लेख हुआ है। उसमें इसके विभिन्न अवतारों का महात्म्य वर्णित है। उसके ये विभिन्न अवतार-रूप हैं—त्रिगुणात्मिका, दुर्गा, महिषासुरमर्दिनी, शाकंभरी, सती, पार्वती, काली, गौरी, कालिका, मातृका और सिद्धाम्बिका। पुराणों में इन देवी अवतारों के १०८ सिद्धपीठों का भी उल्लेख हुआ है (कालिकापुराण, मत्स्यपुराण, मार्कण्डेय-

पुराण, पद्मपुराण)।

देवी कवि—ये हिंदी के कवि थे और इनकी बनाई श्रृंगार-रस की कविता बहुत उत्तम होती थी।

देवीदत्त—हिंदी के कवि। शांतरस तथा सामयिक कविताएं इनकी अच्छी होती थीं।

देवीदास—ये हिंदी के कवि और बुंदेलखंडी थे। सं० १७१२ वि० में ये उत्पन्न हुए थे। इन्होंने अनेक ग्रंथ बनाए हैं। यादववंशी करौली के महाराज मैया रतनसिंहजी की सभा में ये सं० १७४२ वि० में गए और तब से मरणपर्यंत वहीं रहे। उन्हींके नाम पर इन्होंने 'प्रेम-रत्नाकर' नामक ग्रंथ की भी रचना की है। इनके नीतिसंबंधी दोहे बहुत सुंदर हैं।

देवीदीन बन्दीजन—ये कवि रसाल कवि बिलग्रामी के भानजे थे। इनके बनाए नखसिख और रसदर्पण दो ग्रंथ हैं।

देवी बन्दीजन—ये कवि सं० १७५० वि० में उत्पन्न हुए थे। सूरसागर आदि ग्रंथों को इन्होंने हास्यरस में बनाया है।

देवीराम—ये शांतरस के कवि थे। सं० १७५० वि० में उत्पन्न हुए थे। इनके काव्य उत्कृष्ट नहीं हैं।

दैत्यसेना—प्रजापति की कन्या और देवसेना की भगिनी। केशी नामक दानव ने इसे बलपूर्वक ब्याहा था।

(महाभारत)

द्युमत्सेन—शाल्व देश के एक राजा का नाम। इनके पुत्र का नाम सत्यवान् और पुत्रवधू का नाम सावित्री था। किसी कारण से द्युमत्सेन अंधे हो गए। कतिपय दुष्टों ने मिलकर इन्हें राज्य से अलग कर दिया। राज्य-भ्रष्ट होकर राजा द्युमत्सेन महारानी शैव्या और पुत्र सत्यवान् को लेकर वन में रहने लगे। एक समय मद्र देश के राजा उस वन में गए, और उन्होंने अपनी कन्या सावित्री उनके पुत्र सत्यवान् को ब्याह दी। सत्यवान् अल्पायु थे, थोड़े ही दिनों में उनकी आयु पूरी हो गई। सावित्री ने यमराज को अपने पातिव्रत्य से वश में करके उनसे कतिपय वर पाए थे। उन्हीं वरों के प्रभाव से राजा द्युमत्सेन को आंखें मिल गईं और राज्य भी मिल गया, तथा सत्यवान् पुनः जी उठे। द्युमत्सेन ने यथासमय सत्यवान् को राज्य देकर स्त्री के साथ वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया।

(महाभारत)

द्रमिडाः (द्रविडाः)—दक्षिण भारत का वह भूभाग जो मद्रास से श्रीरंगपट्टम् और कन्याकुमारी तक है। इसकी राजधानी कांचीपुर में (जो अब कांजीवरम् कहलाता है) थी।

द्राविड राज—चोल देश के दक्षिण में द्राविड राज्य है। चीनी परिव्राजक हुएनत्सांग ने लिखा है—द्राविड राज्य की परिधि एक हजार मील की है। उसकी राजधानी का नाम कांचीपुर है। कांचीपुर की परिधि पांच मील थी। वर्तमान काल में 'पालार' नदी के तीर पर जो कांजीवरम् नामक नगरी देखी जाती है वही प्राचीन कांचीपुर की स्मृति है। द्राविड राज्य के उत्तर में कोंकण और दक्षिण में मदुरा आदि राज्यों के वर्णन पाया जाता है। इन्हीं वर्णनों के आधार पर कनिंहम ने द्राविड राज्य की एक सीमा निश्चित की है। वे कहते हैं—कुंदपुर से लेकर कादु और त्रिपति होते हुए पूलिकट नामक सरोवर तक एक रेखा खींचने से द्राविड राज्य के पश्चिम की सीमा जानी जा सकती है। कालीकट से कावेरी नदी के मुहाने तक दूसरी रेखा खींचने से दक्षिण की सीमा बनती है। चीनयात्री जिस समय कांची गए थे उस समय वहां कई सौ बौद्धों के संघाराम थे। उनमें दस हजार बौद्ध संन्यासी रहा करते थे। हुएनत्सांग कांची से सिंहल जाने के लिए प्रस्तुत थे। परंतु उस समय सिंहल में राष्ट्रविप्लव हो रहा था। इस कारण वे वहां नहीं जा सके। उस समय सिंहल से तीन सौ संन्यासी आए थे, और सिंहल के राजा की हत्या की बात उन्हींने प्रचारित की थी। हिसाब से देखा गया है कि सन् ६४६ ई० के जुलाई महीने में हुएनत्सांग कांचीपुर में गए थे। सिंहल के राजा 'गुणामुगालान' सन् ६३६ ई० में मारे गए थे। राजा की मृत्यु के बाद ही से सिंहल में अशांति का स्रोत बह रहा था, अतएव चीनी परिव्राजक की सिंहल-यात्रा रुक गई। हुएनत्सांग ने लिखा है—द्राविड राज्य की भूमि उपजाऊ है, वहां उत्तम रीति से खेती होती है। वहां के रहने वाले साहसी, सत्यवादी, सज्जन और विद्यानुरागी होते हैं। द्राविड देश के वासी मध्यदेश की भाषा बोलते हैं। एक समय द्राविड राज्य कहने से विंध्यपर्वत के दक्षिणस्थ देश द्राविड, कर्नाट, गुर्जर, आंध्र और तैलंग—ये पांच देश समझे जाते थे। कहीं-कहीं तैलंग के स्थान में महाराष्ट्र देश द्राविड राज्य के अंतर्गत माना गया है। द्राविड देश साधारणतः तमिल देश कहा जाता है। वहां की प्रचलित भाषा तमिल है। वंगोपसागर के दक्षिण भाग से कुमारिका तक समस्त

दाक्षिणात्य के पूर्वभाग में किसी समय तमिल भाषा बोली जाती थी। इसी कारण समस्त तमिल भाषा-भाषी देश द्राविड देश के नाम से पुकारा जाता था। कलिंग, आंध्र, चोल, कर्णाट आदि जो-जो राज्य गौरवशाली हुए उनके साथ द्राविड का नाम मिला दिया जाता था। यही कारण है कि द्राविड की राजधानी कहीं कांचीपुर लिखी मिलती है और कहीं राजमहेंद्री। जिस प्रकार बंग देश में भिन्न-भिन्न समयों में अनेक राज्यों का अभ्युदय हुआ था, उसी प्रकार द्राविड देश में तत्तत् समय में अनेक राज्यों के अभ्युदय होने का प्रमाण पाया जाता है। इतिहास की आलोचना से द्राविड राज्य के विषय में इतना ही पता चलता है।

द्राह्यायण—रुद्रभूति का पैतृक नाम। सामवेद के श्रौतसूत्रों एवं गृह्यसूत्रों के रचयिता आचार्य। इसे राणायणीय शाखा का सूत्रकार भी माना जाता है। इसके द्वारा विरचित 'खादिर श्रौतसूत्र' शार्दूल शाखा के अंतर्गत है।

द्रुपद—चंद्रवंशी पृषत नाम के राजा का पुत्र। राजा पृषत के साथ भरद्वाज ऋषि की मित्रता थी। पृषत के पुत्र द्रुपद और भरद्वाज के पुत्र द्रोण दोनों समवयस्क थे। द्रुपद जब-तब भरद्वाज के आश्रम पर जाकर द्रोण के साथ खेला करते थे। इस प्रकार द्रुपद और द्रोण में भी बंधुता हो गई। कुछ दिनों के बाद, राजा पृषत के मरने पर द्रुपद उत्तर पांचाल के राजा हुए।

महाभारत के समय में पांचाल देश के दो भाग थे, उत्तर पांचाल और दक्षिण पांचाल। वर्तमान रुहेलखंड उत्तर पांचाल कहा जाता था। उसकी राजधानी का नाम अहिच्छत्र था। दक्षिण पांचाल की राजधानी काम्पिल्य नामक नगर में थी। भरद्वाज के मरने पर द्रोण तपस्या करने लगे। द्रुपद राजा होकर द्रोण की मैत्री भूल गए। द्रोण द्रुपद के यहां आए और उन्होंने पुरानी बंधुता का स्मरण भी दिलाया। द्रुपद ने दरिद्र ब्राह्मण के साथ मैत्री रखना अनुचित समझा।

कुछ दिनों के बाद आचार्य द्रोण कौरव-पांडवों को अस्त्रशिक्षा देने के लिए नियत हुए। द्रुपद के अपमान को द्रोण भूले हुए नहीं थे। कौरव-पांडवों को अस्त्रविद्या में निपुण बनाकर द्रोण ने अर्जुन को आज्ञा दी कि द्रुपद को कैद करके हमारे समीप ले आओ। द्रोणाचार्य ने अस्त्रशिक्षा देने के पहले अर्जुन से इसके लिए प्रतिज्ञा करा ली थी। अर्जुन सचिवों के साथ द्रुपद को कैद करके ले आए। द्रोण ने अपना अपमान स्मरण कराकर उनसे मैत्री की, परंतु यह मैत्री जबरदस्ती की हुई। इस मैत्री से द्रुपद ने अपना घोर अपमान समझा और द्रोणहंता पुत्र प्राप्त करने का संकल्प किया। किस प्रकार द्रोणहंता पुत्र होगा इसकी चिंता वे करने लगे। गंगा के किनारे याज और उपयाज नामक दो स्नातक ब्राह्मण रहते थे। द्रुपद ने बड़े परिश्रम से उन्हें बुलाकर अपना पुरोहित बनाया और उन्हींके द्वारा एक यज्ञ कराया। उस यज्ञ से धृष्टद्युम्न नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, और याज्ञसेनी नामक एक कन्या। द्रौपदी काली थी इस कारण उसको कृष्णा कहते थे। महाभारत के युद्ध में द्रोण के हाथों द्रुपद मारे गए, परंतु धृष्टद्युम्न ने द्रोण को मारा। द्रुपद का एक नपुंसक पुत्र शिखंडी था, जिसके द्वारा भीष्म पितामह की मृत्यु हुई।

(महाभारत)

द्रुह्यु—राजा ययाति के औरस और दैत्यराज वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी। इन्होंने भी ययाति का वार्द्धक्य लेना अस्वीकार किया था। इनके पुत्र का नाम बभ्रु था। (विष्णुपुराण)

द्रोण—भरद्वाज ऋषि के पुत्र। भरद्वाज का आश्रम गंगा के किनारे था। एक समय महर्षि भरद्वाज गंगास्नान करने जा रहे थे। वहां घृताची नाम की कन्या को देखकर वे कामार्त हो गए। उस समय उनका रेतस्खलन हुआ जिसे उन्होंने द्रोण नामक यज्ञपात्र में रख दिया। उस द्रोण से एक पुत्र का जन्म हुआ। महर्षि ने उसका नाम द्रोण रखा। भरद्वाज ने अग्निवेश्य नामक ऋषि को आग्नेयास्त्र की शिक्षा दी थी। द्रोण ने उन्हीं अग्निवेश्य नामक ऋषि से धनुर्वेद का अध्ययन किया था। अग्निवेश्य ने गुरुपुत्र और अपने शिष्य द्रोण को आग्नेयास्त्र की भी शिक्षा दी थी। पूर्वकाल में अनेक प्रकार के आग्नेयास्त्रों का युद्ध में उपयोग किया जाता था। रामायण और महाभारत में भी नालीक यंत्र का उल्लेख पाया जाता है। 'नालीकैस्ताडयामास' (रामायण) नालीक यंत्र के आकार आदि देखने से स्पष्ट मालूम होता है कि आजकल की बंदूक और नालीक यंत्र दोनों एक ही हैं।

पहले तुलागुडा नामक एक और आग्नेयास्त्र यंत्र

था, यह तुला के आकार का बनता था। इससे गोले बरसाए जाते थे। वह अग्नि के बल से चलता था। उससे वायु तथा मेघध्वनि के समान भयंकर शब्द निकलता था और वह चक्रसहित होता था—

तथैवासनयश्चैव चक्रयुक्तास्तुलागुडाः।
वायुस्फोटाः सनिर्घाता महामेघस्वनास्तथा॥

(महाभारत)

ऊपर का वर्णन पढ़ने से तुलागुडा और आजकल की तोपें, दोनों एक ही हैं ऐसा समझने का प्रमाण मिल जाता है।

परंतु ऐसे अस्त्रों से देवता और आर्य घृणा करते थे, क्योंकि ऐसे अस्त्रों के युद्ध में वे अपना कुछ भी पुरुषार्थ नहीं दिखा सकते थे। ऐसे अस्त्रों को वे कूट-युद्ध के साधन समझते थे। उस समय कूटयुद्ध बहुत निषिद्ध समझा जाता था। जिस युद्ध में शारीरिक बल का परिचय पाया जाए, वही युद्ध उस समय उत्तम समझा जाता था। वैशंपायन ने जनमेजय से कहा है—राजन्! कलिकाल में पौरुषहीन अधार्मिक राजाओं के समय में हमारे कहे गुलिकानिक्षेपक, प्रस्तरक्षेपक, यंत्र और अन्यान्य कृत्रिम यंत्रसमूह कूट-युद्ध के उपकरण होंगे। ज्यों-ज्यों अधर्म बढ़ता जाएगा, उतना ही अधिक कूटयुद्ध के उपयोगी शस्त्रों का आश्रय लिया जाएगा—

यन्त्राणि लोहसीसानां गुलिकाक्षेपकानि च।
तथा चोपलयन्त्राणि कृत्रिमाण्यपराणि च॥
कूटयुद्धसहायानि भविष्यन्ति कलौ नृप।
अधर्मवृद्धया चैतानि भविष्यन्त्युत्तरोत्तरम्॥

जो समझते हैं कि ईसा के पहले बारूद का प्रचार नहीं था, उन्हें इन बातों पर ध्यान देना चाहिए।

प्राचीनकाल में कूटयुद्ध करना निंदित समझा जाता था। इस कारण नालीकादि यंत्र की ओर उनकी उपेक्षा थी परंतु किले आदि की रखवाली के लिए इनका उपयोग किया जाता था। रामायण में रावण के दुर्ग का वर्णन और महाभारत में इंद्रप्रस्थ और द्वारका के दुर्गवर्णनों का पाठ करने से इसका पता चलता है।

द्रोण और द्रुपद में मित्रता थी परंतु वह मित्रता किसी कारण से टूट गई (देखो द्रुपद)। द्रोण ने अपने पिता की आज्ञा से शरद्वान् की कन्या कृपी को ब्याहा था। कृपी के गर्भ से अश्वत्थामा का जन्म हुआ था। जन्म के समय अश्वत्थामा ने घोड़े के समान घोर नाद किया था। इस कारण उनका नाम अश्वत्थामा पड़ा था। महेंद्र पर्वत पर जाकर द्रोण ने भार्गव परशुराम से अस्त्रविद्या सीखी थी और वे उनसे उत्तम-उत्तम अस्त्र ले आए थे। अर्जुन ने जब गुरुदक्षिणा लेने के लिए द्रोण से प्रार्थना की, तब द्रोण बोले—देखो अर्जुन! जब कभी मैं तुमसे युद्ध करने लगूं तब तुम भी युद्ध ही से उत्तर देना, कुछ संकोच न करना। अर्जुन की इस प्रतिज्ञा को ही द्रोण ने गुरुदक्षिणा में लिया। यही कारण है कि अर्जुन ने द्रोण के साथ महाभारत के युद्ध में घोर संग्राम किया था, नहीं तो द्रोण के सबसे अधिक प्रिय शिष्य अर्जुन ऐसा कभी न करते। महाभारत के युद्ध में अर्जुन जब द्रोण के साथ युद्ध कर रहे थे तब अश्वत्थामा की मृत्यु का संवाद सुनकर द्रोण अचेत हो गए, उसी समय धृष्टद्युम्न ने द्रोण का सिर काट डाला।

(महाभारत)

द्रौपदी—पांचालराज द्रुपद की यज्ञवेदी से उत्पन्न कन्या। इसका वर्ण काला था—इस कारण इसको कृष्णा भी कहते हैं। स्वयंवरसभा में लक्ष्यभेद करके अर्जुन इसको ले आए थे और पांचों भाइयों ने मिलकर इसको ब्याहा था। ये अपने पतियों के साथ वन-वन घूमी थीं। अज्ञातवास के समय विराट के यहां ये सैरिंध्री (दासी) बनकर रही थीं। दुर्योधन और दुःशासन ने सभा में इनका अपमान किया था, जिसका बदला भीम ने रण में चुकाया। महाभारत युद्ध के अंत में इन्होंने कुछ दिन अपने पतियों के साथ बिताए थे। महाप्रस्थान के समय ये भी अपने पतियों के साथ चली थीं, परंतु सबसे पहले ये ही हिम से गली थीं। (महाभारत)

द्वारकादास—शेखावटी के एक राजा का नाम। ये खंडेला-राज गिरिधरराय के बड़े पुत्र थे। पिता के मरने के बाद ये उनके सिंहासन पर बिराजे। परंतु पिता के सिंहासन पर बैठने के थोड़े ही दिनों बाद इन्हें एक बड़ी विपत्ति में फंसना पड़ा। शेखावत संप्रदाय के आदिपुरुष नूनकरण थे। उन्हींके वंशधर के, जो उस समय मनोहरपुर के अधीश्वर थे, अपनी स्वाभाविक नीचता के वशवर्ती होकर इन्हें इस विपत्ति में फंसाया था। दिल्ली के बादशाह एक सिंह पकड़ लाये। प्रचलित रीति के अनुसार उन्होंने उस सिंह से युद्ध करने के लिए विज्ञापन निकाला। इस विज्ञापन के निकलते ही मनोहरपुर के राजा ने बादशाह से

कहा—हमारी जाति के रायसलोत द्वारकादास जो प्रसिद्ध वीर नाहरसिंह के शिष्य हैं, वे ही इस सिंह से लड़ सकते हैं। बादशाह ने सिंह से लड़ने के लिए द्वारकादास को आज्ञा दी। द्वारकादास मनोहरपुर-पति की चालाकी ताड़ तो गए, परंतु उन्होंने बादशाह की आज्ञा का बड़ी धीरता से पालन किया। मैदान दर्शकों से भर गया, द्वारकादास भी स्नान करके और पूजा की सामग्री लेकर वहां उपस्थित हुए। द्वारकादास ने जाकर सिंह के टीका लगा दिया और उसके गले में माला पहना दी। तदनंतर अपने आसन पर धीर भाव से बैठकर वे पूजा करने लगे। द्वारकादास के आचरण को देख लोग विस्मित हो रहे थे। मनोहरपुर के राजा मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे। इसी समय सिंह द्वारकादास के पास जाकर उनका शरीर सूंघने लगा। पुनः जब बादशाह ने बुलाया, तब द्वारकादास वहां से उठकर बादशाह के समीप चले गये। बादशाह ने समझा कि अवश्य ही यह दैवी-शक्ति से बलवान हैं। प्रसन्न होकर बादशाह ने द्वारकादास से इच्छानुसार मांगने के लिए कहा। द्वारकादास ने यही मांगा कि आज से किसीको ऐसी विपत्ति में न फंसाना।

अंत में द्वारकादास खांजहान के हाथ से मारे गए। कहते हैं खांजहान और द्वारकादास दोनों परम मित्र थे। एक समय बादशाह किसी कारण से खांजहान से अप्रसन्न हुए और द्वारकादास को उन्होंने कहला भेजा कि खांजहान को जीता हुआ या मारकर मेरे पास ले आओ। इस आज्ञा को सुनकर द्वारकादास को बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने खांजहान से कहला भेजा कि इस घृणित कार्य को संपन्न करने का भार मुझपर रखा गया है, अतएव आप स्वयं बादशाह के यहां जाकर आत्मसमर्पण करें या यहां से कहीं भाग जाएं। खांजहान ने ऐसा करना अनुचित समझा। दोनों वीर संग्रामक्षेत्र में जाकर लड़ने लगे। एक-दूसरे के प्रहार से दोनों ही मर गए। (टाड्स राजस्थान)

द्वारावती (द्वारवती)—वासुदेव कृष्ण की निवासभूमि होने और उनके द्वारा वहां अश्वमेध यज्ञ करने के कारण पुराणों तथा जैन ग्रंथों में उसको परंपरा ही से एक तीर्थस्थान के रूप में मान्यता प्राप्त होती आई है। इसपर अंधक-वृष्णियों और कुकुरों का शासन रहा। 'हरिवंश' (३५।४५-४९) में इस नगरी की सुरक्षा, सुंदरता, अलंकृत भित्तियों, विशाल प्रासादों और सुसज्जित वाटिकाओं का विस्तार से वर्णन हुआ है। अंधक वेणु के दस पुत्रों ने सर्वप्रथम इसपर विजय प्राप्त करके इसे हस्तगत किया था। अपने मूल रूप से यह नगरी गिरनार पर्वत के निकट थी; किंतु बाद में इसे काठियावाड़ के पश्चिमी समुद्रतट पर स्थित माना जाने लगा।

द्विविद—एक वानर का नाम। यह नरकासुर का मित्र था। अतएव नरकासुर के मारे जाने पर इसने उत्पात करना प्रारंभ किया। यह नगर आदि को नष्ट-भ्रष्ट कर उच्छृंखलों के समान घूमने लगा। एक दिन बलभद्र रैवत उद्यान में स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। द्विविद वहां पहुंचा और उपद्रव करने लगा। तब बलदेव जी ने इसे मार डाला। (विष्णुपुराण)

द्वैतवन—उत्तर-पूर्व में तंगण और दक्षिण-पूर्व में कुरुक्षेत्र तथा हस्तिनापुर के मध्य में हिमालय के निकटवर्ती स्थान। वनवासकाल में पांडवों ने यहां कुछ समय व्यतीत किया था। द्वैत नामक झील के कारण इस अरण्य भाग का ऐसा नामकरण हुआ था।

द्वैपायन—(देखो कृष्णद्वैपायन।)

ध

धनञ्जय—(१) अर्जुन का एक नाम। उत्तर-कुरु जीतने से अर्जुन का नाम धनंजय पड़ा था।

(२) संस्कृत के एक कवि। ये भोजराज के पितृव्य धारानरेश मुंज की सभा के पंडित थे। इनका बनाया 'दशरूपक' नाम का ग्रंथ प्रसिद्ध है। उस ग्रंथ की समाप्ति में लिखा था—

विष्णोः सुतेनापि धनञ्जयेन विद्वन्मनोरागनिबद्धहेतुः ।
आविष्कृतं मुञ्जमहीशगोष्ठीवैदग्ध्यभाजा दशरूपमेतत् ॥

जिससे विदित होता है कि इनके पिता का नाम विष्णु था और ये मुंज के समकालीन और उनके सभासद् थे। भोजराज का समय ग्यारहवीं सदी का प्रथम भाग माना गया है। मुंज भोज के पितृव्य थे, इस कारण इनका समय भोजराज के समयानुसार दसवीं सदी का अंत मानना होगा। इस हिसाब से धनंजय का भी वही समय हुआ। इनके समकालीन धनिक, पद्मगुप्त, हलायुध आदि कवि थे। धनिक धनंजय के भाई थे, क्योंकि उन्होंने भी अपने पिता का नाम विष्णु लिखा है। पद्मगुप्त 'नवसाहसांक' नामक काव्य के रचयिता हैं। हलायुध प्रसिद्ध कोषकार हैं। मल्लीनाथ आदि प्रसिद्ध टीकाकारों ने इनको स्मरण किया है। परंतु यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि कोषकार हलायुध और ये हलायुध दोनों एक हैं या भिन्न-भिन्न हैं। 'दशरूपक' साहित्य का ग्रंथ है।

धनपति—(१) कुबेर का नामांतर, क्योंकि कुबेर देवताओं के धनाध्यक्ष हैं।

(२) देहस्थित वायुविशेष। यह वायु ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुआ था और उन्हींकी आज्ञा से शरीर धारण किया था। (वामनपुराण)

धनपाल—अयोध्या नगरी का एक धर्मपरायण वैश्य। इसने सूर्यदेव का एक भव्य मंदिर बनवाया था और वहां एक कर्मनिष्ठ पुराणिक को पुराणपठन के लिए नियुक्त किया था। किंतु थोड़े दिनों में ही इसकी मृत्यु हो गई। इसकी भक्ति एवं निष्ठा के फलस्वरूप सूर्यदेव इसे विमान द्वारा सूर्यलोक में ले गया था और वहां इसे बैठने के लिए अपना आसन दिया तथा इसकी पूजा कराई। इस प्रकार यह पुण्यकर्मा वैश्य ब्रह्मलोक को प्राप्त हुआ। (भविष्यपुराण, ब्रह्मपुराण)

धनसिंह—हिंदी के कवि। संवत् १७६१ वि० में ये उत्पन्न हुए थे, और मौरावां जिला उन्नाव के रहने वाले थे। ये जाति के भाट थे और निपुण कवि थे।

धनिक—ये विष्णु कवि के पुत्र और धनंजय के भाई थे। इन्होंने धनंजय-रचित दशरूपक पर 'दशरूपावलोक' नाम की एक टीका लिखी है।

धनीराम कवि—ये बनारस के रहने वाले थे। सं० १८८८ वि० में इनका जन्म हुआ था। काव्यप्रकाश की भाषा और रामचंद्रिका की टीका इन्होंने लिखी है।

धनेश्वर—अवंती नगरी का एक ब्राह्मण, जो कि महान् पापाचारी था और निषिद्ध पदार्थों का व्यापार करता था। एक बार अपने व्यापारिक कार्यवश वह माहिष्मती नगरी गया। वहां कार्तिक मास में होने वाले भजन, कीर्तन और कथा-वार्ता से प्रभावित होकर वह भी उसमें तन्मय हो गया। पूर्णिमा के दीपोत्सव की रात को सर्पदंश के कारण उसकी मृत्यु हो गई। उसको नरक में जाना पड़ा; किंतु नरक के अग्निकुंड में माहिष्मती नगरी में किए गए पुण्यकार्यों के फलस्वरूप वह एक वर्ष तक बिना कष्ट के रहा। तदनंतर उसे यक्ष-योनि प्राप्त हुई और वह कुबेर का सेवक बना। (पद्मपुराण, स्कन्दपुराण)

धन्वन्तरि—(१) महाराज विक्रम की सभा के नवरत्नों में इनका नाम पहले लिखा मिलता है। समुद्रमंथन के समय जो चतुर्दश रत्न निकले हैं उनमें अमृत-कलशहस्त धन्वन्तरि का भी उल्लेख पाया जाता है। पुराणों में धन्वंतरि काशीराज नाम से प्रसिद्ध हैं। एक सुश्रुत के गुरु धन्वंतरि का पता चलता है। काशी में वृद्धकाल नामक महादेव के पास धन्वंतरिकूप आज भी धन्वंतरि का स्मारक बना हुआ है। कहा जाता है कि वैद्य धन्वंतरि परलोक सिधारते समय गुणकारी औषधियों की झोली इसी कूप में छोड़ गए। अतएव उस कूप का जल आज भी आरोग्यकारी समझा जाता है। परंतु विक्रम के नवरत्नों में के धन्वंतरि वैद्य नहीं थे। इनका बनाया कोई ग्रंथ अभी तक नहीं मिला है। इनके समय के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि छठी सदी के धन्वंतरि विक्रम के सभारत्न थे।

(२) देववैद्यविशेष, समुद्रमंथन के समय ये उत्पन्न हुए थे। दुर्वासा के शाप से इंद्र के श्रीभ्रष्ट होने पर ब्रह्मा के आदेश से देवताओं ने समुद्रमंथन करके लक्ष्मी का उद्धार किया। उसी समुद्रमंथन के समय धन्वंतरि अमृत-कलश हाथ में लेकर निकले थे, और देवताओं के वैद्य नियत किए गए।

हरिवंश में धन्वंतरि की उत्पत्ति और प्रकार से लिखी है। समुद्रमंथन से उत्पन्न होकर इन्होंने विष्णु से प्रार्थना की कि—प्रभो! मैं आपका पुत्र हूं, आप कृपा कर मेरे लिए यज्ञभाग विधान करें और हमारे रहने का स्थान निश्चित कर दें। विष्णु बोले वत्स! यज्ञभाग देवताओं में बंट गया है, अब मैं इस विषय में कुछ भी नहीं कर सकता। इस जन्म में तुम देव-

पुत्र हुए हो, दूसरे जन्म में तुम्हारी बड़ी प्रसिद्धि होगी। गर्भ ही में तुमको अणिमादि सिद्धियां प्राप्त होंगी और तुम उसी शरीर से देवत्व प्राप्त कर सकोगे। तुम्हारे द्वारा आयुर्वेद के आठ भाग होंगे। यह कहकर विष्णु अंतर्हित हो गए।

भावप्रकाश में लिखा है—मर्त्यलोक के मनुष्यों का कष्ट देखकर इंद्र ने स्वर्गीय वैद्य धन्वंतरि को मर्त्यलोक में भेजा। धन्वंतरि ने इंद्र से आयुर्वेद का अध्ययन किया, और दिवोदास काशीराज के रूप से भूमंडल पर अवतीर्ण हुए। इनके बनाए ग्रंथ का नाम 'धन्वंतरि-संहिता' है।

धरनीदास—इनका जन्म छपरा (बिहार) जिले के मांझी नामक गांव में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। इनके जन्मकाल के संबंध में पर्याप्त विवाद है। सामान्यत: इनका जन्म १६१६ ई० और निधन ४० वर्ष की अवस्था में १६५६ ई० को माना गया है। संत रामानंद की शिष्य-परंपरा की आठवीं पीढ़ी के संत स्वामी विनोदानंद इनके दीक्षागुरु थे। इनकी तीन रचनाएं उपलब्ध हुई हैं, जिनके नाम हैं—'शब्दप्रकाश', 'रत्नावली' और 'प्रेमप्रगास'। इन कृतियों में अवधी और भोजपुरी भाषा का प्रयोग किया गया है। इनके 'प्रेमप्रगास' में सूफियों की प्रेमाख्यानक शैली में उल्लिखित एक प्रेमकथा वर्णित है। इनकी रचनाओं में लोकजीवन की रसता विद्यमान है और इस दृष्टि से मध्ययुगीन संत कवियों में सम्मान्य स्थान पर रखा गया है (परशुराम चतुर्वेदी —उत्तरी भारत की संतपरंपरा; डॉ० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल—हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय)।

धर्म—ब्रह्मा के दक्षिण अंग से इनकी उत्पत्ति हुई है। वराहपुराण में इनकी उत्पत्ति के विषय में लिखा है—ब्रह्मा सृष्टि करने की इच्छा करके अत्यंत चिंतित हुए, उसी समय ब्रह्मा के दक्षिण अंग से एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उसके कानों में श्वेत कुंडल और गले में श्वेत माला थी। ब्रह्मा ने उस मनुष्य से कहा—तुम चार पैर वाले वृषभ के आकार के हो। तुम सबसे प्रधान होकर प्रजापालन करो। धर्म सत्ययुग में चार पैर से, त्रेता में तीन पैर से, द्वापर में दो पैर से और कलि में एक पैर से प्रजा की रक्षा करता है। गुण, द्रव्य, क्रिया और जाति—ये ही चार धर्म के पैर हैं। वेदों में धर्म को विश्रृंग लिखा है। इसके दो सिर और सात मस्तक हैं। एकादशी तिथि में धर्म का वास है अतएव धर्म को लक्ष्य करके जो एकादशी का व्रत करते हैं उनके पाप छूटते हैं।

वामनपुराण में धर्म की स्त्री का नाम अहिंसा लिखा है। अहिंसा के गर्भ से चार पुत्र उत्पन्न हुए थे। सनत्कुमार, सनातन, सनक, सनंद। दूसरे पुराणों में ये ब्रह्मा के पुत्र बतलाए गए हैं। चंद्रमा ने जिस समय गुरु-पत्नी का हरण किया था, उस समय धर्म दुःखी होकर अरण्य मे चले गए थे। तभी से वह अरण्य धर्मारण्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

धर्मगुप्त—सोमवंशीय राजा नंद का पुत्र। एक बार वह जंगल में गया और रात हो जाने के कारण वृक्ष का आश्रय लेकर वहीं रह गया। तदनंतर वहां एक रीछ आया और वह भी उसी वृक्ष का आश्रय लेकर रहने लगा। सिंह उसका पीछा किए हुए था, जो कि वृक्ष के नीचे ही रुक गया। वृक्ष में रात बिताते हुए दोनों ने यह तय किया कि आधी-आधी रात तक बारी-बारी से एक-दूसरा जागता रहेगा। राजा निश्चित होकर सो गया और रीछ जागता रहा। इस बीच नीचे खड़े शेर ने रीछ से राजा को नीचे गिरा देने के लिए कहा। किंतु रीछ ने ऐसा विश्वासघात करने से इन्कार कर दिया। फिर आधी रात बाद रीछ सो गया और धर्मगुप्त जागता रहा। उससे भी शेर ने रीछ को नीचे गिरा देने की बात कही। धर्मगुप्त ने विश्वासघात कर रीछ को नीचे गिरा दिया; किंतु रीछ ने शाखाओं को पकड़कर किसी प्रकार अपने को नीचे गिरने से बचा लिया। इसपर रीछ ने धर्मगुप्त को पागल हो जाने का शाप दिया। रीछ ने उसे बताया कि वह भृगुकुल का एक ऋषि है और स्वेच्छापूर्वक रूप धारण कर सकता है। सिंह ने भी रीछ से कहा कि वह मैद्र नामक यक्ष तथा कुबेर का सचिव था। गौतम ऋषि के शाप से वह सिंह बना था। रीछ के साथ संवाद करने पर उसका शाप समाप्त हुआ और वह पुन: यक्ष रूप में परिणत हो गया। धर्मगुप्त के पागल बन जाने से चिंतित उसका पिता नंद जैमिनि ऋषि के पास गया। ऋषि ने उसे उपाय बताया कि वह अपने पुत्र को ले जाकर उसको पुष्करिणी तीर्थ पर स्नान कराए। नंद राजा ने वैसा ही किया और उसका पागल पुत्र ठीक हो गया। तदनंतर नंद राजा तप करने के लिए जंगल में चला गया। (स्कंदपुराण)

धर्मदत्त—करवीर नामक नगर में रहने वाला एक ब्राह्मण।

एक बार पूजा-साहित्य को लेकर वह मंदिर में जा रहा था। रास्ते में उसे कलहा नामक एक राक्षसी मिली। उसके भय से ब्राह्मण त्रस्त हो गया और उसने वह पूजा-साहित्य उसपर दे मारा। पूजा-सामग्री में रखा हुआ तुलसी-दल का कलहा के शरीर से स्पर्श हुआ और उसे अपना पूर्वजन्म स्मरण हो आया। उसने धर्मदत्त से अपनी राक्षस-योनि की मुक्ति का उपाय पूछा। धर्मदत्त ने उसपर दया करके अपना कार्तिक व्रत का पुण्य उसे दे दिया, जिससे उसका उद्धार हो गया। इस कार्तिक व्रत के सुफल से धर्मदत्त अगले जन्म में दशरथ बना और राक्षसी कैकेयी बनी। (पद्मपुराण, स्कंदपुराण)

धर्मदास—काव्यसंग्रह में इनका बनाया 'विदग्ध-मुख-मंडन' नामक ग्रंथ प्रकाशित हुआ है। उसका मंगलाचरण बुद्धदेव की स्तुति के बारे में है। यथा—

सिद्धौषधानि भयदुःखमहापदानां,
पुण्यात्मनां परमकर्णरसायनानि।
प्रक्षालनैकसलिलानि महामलानां,
शौद्धोदनेः प्रवचनानि चिरं जयन्ति॥

इससे इनकी बुद्धधर्म में निष्ठा स्पष्ट मालूम होती है। परंतु इनके ग्रंथ से इनके वासस्थान या समय का पता नहीं चलता। विदग्ध-मुख-मंडन ग्रंथ प्राचीन जान पड़ता है। संभवतः ये बौद्ध धर्म की प्रबलता के समय में रहे होंगे। अतः इनके समय का होना सातवीं या आठवीं सदी निश्चित किया जा सकता है। इनके वास-स्थान के विषय में बहुतों ने बुद्धि दौड़ाई है परंतु वह दौड़ निःसार है। हरिमोहन प्रामाणिक का कहना है कि मगध देश में बौद्धों की अधिकता थी, अतएव ये मगध देश के माने जा सकते हैं।

धर्मध्वज—मिथिला के जनकवंशी एक राजा। दंडनीति वेद और मोक्षशास्त्र में ये बड़े भारी विद्वान् थे। एक समय सुलभा नाम की एक संन्यासिनी योगिन बनकर पृथ्वी की परिक्रमा करती थी। वह धार्मिक महात्माओं से धर्मध्वज की प्रशंसा सुनकर मिथिला में पहुंची। मोक्षधर्म में धर्मध्वज का अधिकार हुआ है कि नहीं, इसकी परीक्षा करने के लिए उसने योगिनी का वेष छोड़कर एक मनोहर स्त्री का रूप ग्रहण किया, और राजा के पास जाकर भिक्षा मांगी। बहुत देर तक दोनों में धार्मिक गूढ़ विचार हुए। सुलभा के मोक्ष-संबंधी ज्ञान को देखकर राजा को आश्चर्य हुआ था। (महाभारत)

धर्मव्याध—एक समय कौशिक नामक एक ब्राह्मण एक वृक्ष के नीचे वेदमंत्रों का पाठ कर रहा था। उसी समय एक बकी ने वृक्ष पर से उस ब्राह्मण पर बीठ कर दी। ब्राह्मण ने क्रोध करके उसकी ओर देखा। वह भस्म होकर गिर गई। उसको मरा देख ब्राह्मण को दुःख हुआ। अनंतर वह ब्राह्मण एक गांव में भिक्षा के लिए गया। एक गृहस्थ के द्वार पर जाकर उसने भिक्षा की याचना की। घर की मालकिन ब्राह्मण को बाहर ठहरने के लिए कहकर घर में भिक्षा लाने गई। उसी समय उसका पति बाहर से आया, वह स्त्री अपने पति की सेवा में लग गई और इसीसे ब्राह्मण को भिक्षा देना भूल गई। कुछ देर के बाद उसे स्मरण आया और भिक्षा लेकर वह बाहर आयी। विलंब होने के कारण ब्राह्मण अत्यंत क्रुद्ध हो गए थे। उन्होंने स्त्री को झिड़ककर शाप देने की धमकी दी। स्त्री ने कहा—यदि हमसे कुछ अपराध हुआ हो तो आप उसे क्षमा करें। मैं पति की सेवा करने लगी थी, क्योंकि स्त्रियों का पति ही देवता है। आप शाप देने की धमकी देते हैं उससे मुझे कुछ भी डर नहीं है। मैं वह बकी नहीं हूं। आप ब्राह्मण अवश्य हैं, परंतु आपको धर्मतत्त्व मालूम नहीं है। यदि धर्म-तत्त्व जानने की इच्छा हो तो मिथिला देश में एक धर्मव्याध रहता है। आप उसके पास जाएं। ब्राह्मण को स्त्री की बातें सुनने से आश्चर्य हुआ, वह धर्म-व्याध से धर्मोपदेश सुनने के लिए मिथिला चला। मिथिला में जाकर उसने देखा, तपस्वी धर्मव्याध मांस बेच रहा है। ब्राह्मण को देखकर व्याध प्रणाम करके बोला—आप एक ब्राह्मणी के कहने से मेरे पास आए हैं। आइए, हमारे घर चलिए। उसकी बातों से कौशिक को बड़ा आश्चर्य हुआ। ऐसे धार्मिक पुरुष का ऐसे निंदित कर्म में लगा रहना उन्हें बहुत बुरा लगा। व्याध ने कहा—मांस बेचना हमारा पूर्व परंपरागत कार्य है, विधाता ने पहले ही से हमारी यह वृत्ति निश्चित कर दी है। यह कहकर उस व्याध ने ब्राह्मण को अनेक धर्मोपदेश दिए, और अपने पूर्वजन्म के वृत्तांत भी बतलाए। व्याध पूर्वजन्म में एक वेदाध्यायी ब्राह्मण था। एक समय किसी राजा के साथ आखेट करते हुए उसने मृगरूपी एक तपस्वी के बाण मारा था, उसी तपस्वी के शाप से वह व्याधजाति में जन्मा था।

धर्माकर—'पद्मपुराण' की कथा के अनुसार, एक परम

चरित्रवान गृहस्थ। कथा में कहा गया है कि एक बार किसी राजपुत्र ने अपनी सुंदर पत्नी को छह मास के लिए इसके यहां रख दिया था। इस गृहस्थ के मन में राजवधू के प्रति कभी भी कोई कलुषित विचार उत्पन्न नहीं हुए। किंतु कुछ दूषित लोगों ने राजपुत्र के हृदय में दूषित विचार भरे, जिनका उसपर कोई प्रभाव न हुआ। गृहस्थ लोक-निंदा के भय से एक दिन धधकती चिता में प्रविष्ट हो गया; किंतु वह अग्निपरीक्षा में सर्वथा निर्दोष सिद्ध हुआ। इसके निंदकों के मुख पर कोढ़ उपज आया। देवताओं ने इसे 'सज्जाना द्रोहक' की पदवी दी।

धर्मारण्य—गया के समीप का देश।

धावक—एक प्राचीन प्रसिद्ध कवि। श्रीयुत पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर लिखते हैं—ऐसी किंवदंती प्रचलित है कि धावक नामक किसी कवि ने रत्नावली और नागानंद नामक नाटक बनाए। राजा श्रीहर्ष ने धन द्वारा धावक को अपनी ओर झुकाकर उन्हें परितुष्ट किया, और उन नाटकों को अपने नाम से प्रचलित करवाया। मुख्य और प्रसिद्ध अलंकारशास्त्रज्ञ पंडित मम्मट भट्ट के लेख से भी यही बात पक्की होती है। परंतु धावक और श्रीहर्ष के बीच समय का जो अंतर विद्यमान है उससे पूर्वोक्त बात मानी नहीं जा सकती। कालिदासविरचित 'मालविकाग्निमित्र' नाटक की प्रस्तावना में प्राचीन नाटक लिखने वालों के बीच धावक का भी नाम लिखा मिलता है। इससे धावक विक्रमादित्य के भी पूर्ववर्ती निश्चित होते हैं। अतएव विद्यासागर की किंवदंती और मम्मट के लेख दोनों ही ठीक नहीं जान पड़ते। जब श्रीहर्ष का एक अच्छा कवि होना, और देश की सब भाषाओं का जानना, एक प्रामाणिक इतिहास से सिद्ध है तब निर्मूल किंवदंती तथा मम्मट का लेख संभालने के लिए किसी दूसरे धावक कवि की कल्पना करके श्रीहर्ष की कविविषयक कीर्ति को उड़ा देने की चेष्टा किसी प्रकार न्यायसंगत नहीं जान पड़ती।

उपर्युक्त मत से प्रकट होता है कि धावक का समय विक्रम से भी बहुत पूर्व रहा होगा, पर ध्यान रखना चाहिए, मालविकाग्निमित्र की दो-एक प्रतियों में धावक का नाम लिखा मिलता है। बहुत करके यह भी संभव है कि प्राचीन कालिदास मालविकाग्निमित्र के कर्ता न हों, क्योंकि भोजराज की सभा में भी तो एक कालिदास वर्तमान थे। इन्हीं सब बातों का विचार करके धावक का समय सातवीं सदी निश्चित किया जाता है।

धीर कवि—ये हिंदी के कवि सं० १८२२ वि० में उत्पन्न हुए थे और दिल्ली के बादशाह शाहआलम के दरबार में रहते थे।

धीरधी—काशी का एक ब्राह्मण। यह परम शिवभक्त था, जिससे इसको शिव का अनुग्रह प्राप्त था। जब शिवगणों को इसके शिवानुग्रह के प्रति आश्चर्य हुआ तो, शिव ने स्वयं उसके पूर्वजन्म की कहानी सुनाते हुए कहा कि पूर्वजन्म में यह मानसरोवर का हंस था। अपने पुण्यसंचय के कारण यह इस जन्म में ब्राह्मण बना। वह हंसयोनि से पूर्व भी ब्राह्मण था; किंतु भूल से गुरु का पादस्पर्श न करने के कारण यह हंस बना। शिवोपासना से यह जीवन-मुक्त हुआ।

(पद्मपुराण)

धुन्धु—राक्षसविशेष। यह पराक्रमी राक्षस, प्रसिद्ध मधु-राक्षस का पुत्र था। यह उत्तंक मुनि के आश्रम के पास एक समतल रेतीले स्थान में रहता था। प्राणियों का नाश करने की इच्छा से यह मरुक्षेत्र में सोकर तपस्या करता था। एक वर्ष श्वास रोकने के बाद वह एक दिन श्वास लेता था। इसके श्वास से वन, पर्वत आदि कांपने लग जाते थे और धूलि उड़ने से दिशाएं ढंक जाती थीं। इस राक्षस से देवता भी डरते थे। राजा बृहदश्व के पुत्र कुवलयाश्व ने इसका वध किया था। धुंध को मारने के कारण कुवलयाश्व धुंधमार कहे जाने लगे। महर्षि उत्तंक की आज्ञा से कुवलयाश्व ने अपने पुत्रों को लेकर उसपर आक्रमण किया और मार डाला।

धुन्धुमार—बृहदश्व कुवलयाश्व का नामांतर, जोकि उसे धुंधु दैत्य का वध करने के कारण प्राप्त हुआ। ऐडविड राजा ने इसे रुद्र-खड्ग प्रदान किया था, जिससे इसने उक्त दैत्य का वध किया। इसके पिता का नाम कुवलयाश्व बताया गया है। इसके एक हजार इक्कीस पुत्र थे, जिनमें से धुंधु के युद्ध के बाद केवल तीन बच पाए थे। उनके नाम थे दृढाश्व, भद्राश्व (घृण) और कपिलाश्व। इसे वरुथिनी एकादशी के व्रतपुण्य से स्वर्गप्राप्ति हुई।

धूमावती—दश महाविद्याओं के अंतर्गत एक विद्या। तंत्रों में इनकी उत्पत्ति इस प्रकार लिखी है—एक दिन क्षुधा से व्याकुल होकर पार्वती ने महादेव से भोजन मांगा, परंतु महादेव उस समय भोजन नहीं दे सके।

तब पार्वती भूख से व्याकुल होकर महादेव को ही खा गईं। इससे पार्वती के शरीर में धूम निकलने लगा। तभी से उनका नाम धूमावती पड़ा। पुनः महादेव माया का शरीर बनाकर बोले—देवी ! जब तुमने हमको खा लिया है तब तुम विधवा हो गई हो, अब तुमको विधवा के वेश में रहना चाहिए और उसी वेश में लोग तुम्हारी पूजा करेंगे तथा तुम्हारा नाम धूमावती होगा। कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को पुरश्चरण सिद्धि के लिए धूमावती के मंत्र का जप किया जाता है।

धूम्रलोचन—दानवपति शुंभ का सेनापति। शुंभ ने इसे ही ६० हजार सेना लेकर भगवती को पकड़कर ले आने के लिए भेजा था, परंतु यह वहां जाकर अपनी सेना के साथ मारा गया।

धृतराष्ट्र—(१) शंतनुपुत्र विचित्रवीर्य के पुत्र। इनकी माता काशिराज की कन्या अंबिका थी, काशिराज की दूसरी कन्या अम्बालिका भी विचित्रवीर्य ही को ब्याही गई थी। अम्बालिका के गर्भ से पांडु उत्पन्न हुए थे। अपुत्रक अवस्था में विचित्रवीर्य की मृत्यु होने से उनकी माता सत्यवती वंशलोप होने की आशंका से चिंतित हुई थी और अपने कुमारिकावस्था के पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास को बुलाया था। व्यास के आने पर उन्होंने अपनी दोनों बहुओं को गर्भ रखने की आज्ञा दी। संगम के समय कृष्णद्वैपायन की भयावनी मूर्ति देख अम्बालिका पीली पड़ गयी और अंबिका ने अपनी आंखें बंद कर लीं, इसी कारण उसका पुत्र अंधा धृतराष्ट्र हुआ। व्यासदेव ने सत्यवती से कह दिया था कि अम्बिका का पुत्र अंधा होगा। धृतराष्ट्र के जन्म होने पर सत्यवती ने पुनः अम्बिका को व्यासदेव के साथ संगम करने के लिए कहा था। अम्बिका सास का कहना भी नहीं टाल सकती थी, और व्यासदेव के पास जाने में उसे भय लगता था, इस कारण उसने अपनी दासी को अपने वस्त्र पहनाकर व्यासदेव के पास भेजा। व्यास ने उसके गर्भ रख दिया। इसी गर्भ से महात्मा विदुर उत्पन्न हुए थे। धृतराष्ट्र का ब्याह गांधारराज सुबल की कन्या गांधारी से हुआ था। व्यासदेव के वर से गांधारी के सौ पुत्र होने वाले थे। गांधारी दो वर्ष गर्भ धारण किए रही, परंतु उसके कोई प्रसव न हुआ। इसी समय कुंती के तेजस्वी तीन पुत्र हो गए थे। इससे गांधारी को बड़ी ईर्ष्या हुई और वह अपना पेट ठोंकने लगी। उसके गर्भ से लोहे के समान कठिन एक मांसपिंड उत्पन्न हुआ। गांधारी उस मांसपिंड को फिंकवा रही थी। उसी समय व्यासदेव जी वहां पहुंचे, और उनकी सम्मति से वह मांसपिंड सौ भागों में किया गया और घृतपूर्ण कलशों में वे पृथक्-पृथक् रख दिए गए। दो वर्ष के बाद उन घड़ों में से एक से दुर्योधन उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही दुर्योधन ने गर्दभ के समान शब्द किया, तथा उस समय और भी अनेक अमंगलसूचक चिह्न देखे गए। विदुर ने धृतराष्ट्र से ऐसे लड़के का त्याग करने को कहा था, परंतु संतान के स्नेह के कारण धृतराष्ट्र उसे छोड़ न सके। एक मास के भीतर कलशों में से ९९ पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। कुरुक्षेत्र के युद्ध के अंत में भीमसेन के द्वारा सौ पुत्रों के मारे जाने का संवाद सुनकर धृतराष्ट्र ने भीम का आलिंगन करना चाहा था, परंतु श्रीकृष्ण के परामर्शानुसार लोहे के भीम उनके अंक में दे दिए गए धृतराष्ट्र ने उसे चूर्ण कर दिया। अनंतर धृतराष्ट्र गांधारी के साथ वन में गए और वहां छः महीने के बाद वन में दावानल प्रज्वलित होने के कारण वहीं भस्म हो गए। (महाभारत)

(२) नागविशेष। यह कद्रू का पुत्र था। इसीके साथ पांडवों का विरोध हुआ था। अश्वमेध का अश्व लेकर अर्जुन मनीपुर गए थे। वहां अर्जुन के पुत्र बभ्रुवाहन ने घोड़ा पकड़ लिया। इसी कारण दोनों में युद्ध हुआ। इस युद्ध में अर्जुन मारे गए। अर्जुन की मृत्यु सुनकर बभ्रुवाहन की माता चित्रांगदा रोने लगी, नागजातीय अर्जुन की स्त्री उलूपी भी वहां आकर रोने लगी। उलूपी और चित्रांगदा दोनों के कहने से बभ्रुवाहन संजीवक मणि लाने को पाताल गए। उधर धृतराष्ट्र नाग के कहने से वासुकी ने मणि देना अस्वीकार किया। अतः बभ्रुवाहन और वासुकी में युद्ध होने लगा। बभ्रुवाहन वासुकी को युद्ध में परास्त करके संजीवक मणि ले आए। तब धृतराष्ट्र ने अपने पुत्रों के द्वारा अर्जुन का सिर बकदाल्भ्य वाले वन में फिंकवा दिया। अर्जुन का शरीर मस्तकशून्य है यह देख, मनीपुर के राजमहल में हाहाकार मच गया। अंत में श्रीकृष्ण के अनुग्रह से धृतराष्ट्र के दोनों पुत्र मारे गए और अर्जुन का सिर भी आ गया।

धृतवर्मा—त्रिगर्त देश का कौरवपक्षीय पराक्रमी महारथी। इसके दो भाइयों के नाम थे—सूर्यवर्मा और केतु-

वर्मा। पांडवों के अश्वमेध यज्ञ के समय अर्जुन ने त्रिगर्त देश पर आक्रमण किया था, जिसमें सूर्यवर्मा पराजित हुआ और केतुवर्मा मारा गया। तब धृत-वर्मा युद्धभूमि में उतरा। इसके तेजस्वी बाण के प्रहार से अर्जुन के हाथ का गांडीव नीचे गिर गया। अंत में विजय अर्जुन की हुई और समस्त त्रिगर्त अर्जुन के दास बनकर उसकी शरण में आए। (महाभारत)

धृष्टद्युम्न—पांचालराज द्रुपद के पुत्र और पृषत के पौत्र। इन्होंने महाभारत के युद्ध में पुत्रशोकातुर द्रोण का सिर काट लिया था। युद्ध के अंतिम दिन रात को द्रोणपुत्र अश्वत्थामा पांडवों के शिविर में छिपकर घुसे और धृष्टद्युम्न को मार डाला। (महाभारत)

धेनुक—असुरविशेष। यह गर्दभ के आकार का था। बलराम के द्वारा यह मारा गया था। एक समय बलराम और श्रीकृष्ण गौएं चराते-चराते तालवन में गए और वहां तालफल तोड़ने लगे। उसी वन में धेनुक नाम का राक्षस रहता था। तालफल के गिरने का शब्द सुनकर यह राक्षस इनकी ओर दौड़ा। बलराम ने दोनों पैर पकड़कर और तालवृक्ष पर पटक-कर इसे मार डाला। (भागवत)

धोयी—जयदेव ने गीतगोविंद में 'धोयीकवि क्ष्मापतिः' ऐसा लिखकर धोयी कवि की प्रशंसा की है। इसमें संशय नहीं कि ये एक अच्छे कवि थे। इनका बनाया 'पवनदूत' नामक एक ग्रंथ भी है। इस ग्रंथ का विषय कालिदास के मेघदूत के समान है। इस ग्रंथ में कुवलय-वती नाम की नायिका ने पवन द्वारा प्राणप्रिय राजा लक्ष्मण के पास अपने विरह का संदेसा भेजा है। इसमें संदेह नहीं कि यह राजा लक्ष्मण बंगाल का सेनवंशीय वही राजा लक्ष्मणसेन है, जिसके सभासद जयदेव, धोयी, गोवर्द्धन, शरण, उमापतिधर आदि थे। अतएव उन कवियों के समान धोयी भी बंगदेश-वासी ही होंगे। इनका भी समय १२वीं सदी का पूर्वभाग ही मानना उचित है।

धोयी का यह श्लोक प्रसिद्ध है—

इक्षुदण्डं कलानाथं भारतञ्चापि वर्णय।
इति धोयीकविर्ब्रूते प्रतिपर्वरसायनम्॥

धौंकलसिंह (१) ये जाति के बैस क्षत्रिय और न्यावां जिला रायबरेली के रहने वाले थे। इनका जन्म सं० १८६० वि० में हुआ था। रमलप्रश्न आदि छोटे-छोटे ग्रंथ इनके बनाए पाए जाते हैं।

(२) जोधपुर के राजा भीमसिंह के ये पुत्र थे। इनका जन्म भीमसिंह के मरने के बाद हुआ था। भीमसिंह के मरने पर मानसिंह वहां के अधीश्वर बन गए। पोकरण के जागीरदार सवाईसिंह के हृदय में पितृहिंसा का वैर जागरूक था। उन्होंने यह प्रकाशित किया कि मृत महाराज भीमसिंह की रानी गर्भवती हैं, उनके गर्भ से यदि पुत्र होगा, तो न्यायतः इस राज्य पर उसका अधिकार है। अतएव वह राजा बनाया जाएगा। ऐसा प्रकाशित करके सवाईसिंह ने कतिपय सामंतों को अपने पक्ष में कर लिया। एक दिन यह प्रस्ताव महाराज मानसिंह के सामने भी किया गया। महाराज मानसिंह ने उसे कुछ महत्व का न समझकर स्वीकृत कर लिया। कुछ दिनों के अनंतर महारानी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। महारानी ने समझा कि यदि यह पुत्र यहां रहेगा तो मानसिंह उसे मार डालेगा। यही सोचकर उन्होंने सवाईसिंह के यहां पोकरण में उस लड़के को भेज दिया। दो वर्ष के बाद मानसिंह को पता लगा। उस समय मान-सिंह ने कहा कि यदि वह सचमुच महाराज का पुत्र होगा तो मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने में कुछ संदेह नहीं है। मानसिंह ने जब महारानी से पूछा तब उन्होंने यही कह दिया कि वह पुत्र मेरा नहीं है। मानसिंह का बोझ बहुत कुछ हलका हुआ, परंतु सवाई-सिंह जिस प्रतिहिंसा का बदला लेना चाहते थे उनका वह मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ। उन्होंने धौंकलसिंह को को खेतड़ी के सामंत छत्रसिंह भाटी के यहां भेज दिया, और जयपुर के महाराज जगत्सिंह को मान-सिंह के विरुद्ध उभारा। कृष्णाकुमारी का ब्याह भी मृत महाराज भीमसिंह से निश्चित हुआ था, परंतु भीमसिंह मर गए। सवाईसिंह ने जयपुर के महाराज से कृष्णाकुमारी के साथ ब्याह करने के लिए कहा। उन्होंने प्रस्ताव उदयपुर भेजा। परंतु सवाईसिंह की चतुरता से मानसिंह ने मार्ग में ही उनकी सेना से विवाह के प्रस्ताव की सामग्री छीनकर उसे मार भगाया। इससे उनका विरोध बद्धमूल हो गया। बड़ी तैयारी से जगत्सिंह जोधपुर पर चढ़ आए। राठौर सेना भी जगत्सिंह की ओर जा मिली थी। युद्ध हुआ। युद्ध से भागकर मानसिंह ने जोधपुर के किले का आश्रय लिया। अंत में जगत्सिंह वहां से अपमानित होकर जयपुर लौट गए। सवाईसिंह का षड्यंत्र प्रकाशित हो गया। अमीरखां ने मानसिंह के

कहने से सवाईसिंह को मित्रता के जाल में फांसकर मार डाला। पुनः १८२७ ई० में धौंकलसिंह मारवाड़ का राज्य प्राप्त करने के लिए चेष्टा करने लगे। जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह तथा कतिपय राठौर सामंतों का दल इसलिए तैयार हुआ कि मानसिंह को गद्दी से उताकर धौंकलसिंह को गद्दी दिला दें। परंतु ब्रिटिश गवर्नमेंट के सुप्रबंध से षड्यंत्र-कारी हताश हो गए, और धौंकलसिंह भी निराश हो गए। (टाड्स राजस्थान)

धौम्य—पांडवों का पुरोहित। इनके बड़े भाई का नाम देवल था। चित्ररथ के कहने से पांडवों ने धौम्य को पुरोहित बनाया था। नारद से इन्होंने सूर्य का एक स्तोत्र पाया था। उसी स्तव की शिक्षा इन्होंने युधिष्ठिर को दी थी। इसी स्तोत्र के प्रभाव से युधिष्ठिर ने अक्षय स्थान पाया था। (महाभारत)

ध्यानसिंह—पंजाबकेशरी महाराज रणजीतसिंह के दीवान। ये रणजीतसिंह के दाहिने हाथ थे। ध्यानसिंह के बड़े भाई का नाम गुलाबसिंह और छोटे का नाम सुचित्त-सिंह था। इन तीनों भाइयों को राजा रणजीतसिंह मानते थे और उन लोगों को राजा की उपाधि दी थी। महाराज रणजीतसिंह की आज्ञा से राजकीय पत्रों में ध्यानसिंह 'राजा कलानबहादुर' लिखे जाते थे। महाराज रणजीतसिंह ने मरने के समय खड्ग-सिंह को अपना उत्तराधिकारी और ध्यानसिंह को उनका शिक्षक तथा अभिभावक नियुक्त किया। परंतु खड्गसिंह पंजाबकेशरी के सिंहासन के योग्य नहीं थे। यारों की सम्मति से वे ध्यानसिंह पर संदेह करने लगे। अंत में ध्यानसिंह के पुत्र को राजभवन न जाने की आज्ञा उन्होंने दी। इसके थोड़े ही दिनों के बाद खड्गसिंह कैद कर लिए गए और उन्होंने कारागार में ही प्राणत्याग किया। खड्गसिंह के पुत्र नवनिहाल-सिंह का राज्याभिषेक संपन्न हुआ। परंतु जिस दिन कारागार में खड्गसिंह ने विदा ली, उसी दिन एक द्वार के गिर जाने से नवनिहालसिंह भी मर गए। अब रानी चांदकुमारी ने राज्य का भार ग्रहण किया। राज्य पाकर महारानी ध्यानसिंह का विरोधा-चरण करने लगी। ध्यानसिंह भी महारानी को पद-च्युत करने के लिए प्रयत्न करने लगे। रानी चांद-कुमारी पदच्युत कर दी गई और रणजीतसिंह की रखेलिन स्त्री के एक पुत्र शेरसिंह का राज्याभिषेक किया गया। राज्य पर बैठकर शेरसिंह चांदकुमारी को ब्याहने का प्रयत्न करने लगा। परंतु रानी ने शेरसिंह के प्रस्ताव का निषेध किया। सिंहासन के लिए रानी चांदकुमारी और शेरसिंह में संघर्ष हो गया। अंत में दोनों में संधि हुई। नौ लाख वार्षिक की जागीर लेकर रानी चांदमारी ने राज्य का अधिकार छोड़ दिया और शेरसिंह ने राजकुमारी को ब्याहने की आशा छोड़ दी। संधि होने पर महारानी लाहौर में अपने पुत्र के बनाए मकान में रहने लगीं। यद्यपि रानी और शेरसिंह में संधि हो गई, परंतु शत्रुता नहीं गई। ध्यानसिंह और शेरसिंह महारानी को मारने का प्रयत्न करने लगे। सन् १८४२ ई० में राजा शेरसिंह और मंत्री ध्यानसिंह के उद्योग से दासियों द्वारा रानी मारी गई। कुछ दिनों बाद शेर-सिंह और ध्यानसिंह के बीच कुछ उपद्रव खड़ा हुआ। सिंध वाला सरदार पंजाब में बड़े प्रतिष्ठित समझे जाते थे। वे रणजीतसिंह की जाति के थे। वे रखेलिन के पुत्र के शासन से संतुष्ट नहीं थे। ध्यान-सिंह शेरसिंह के मंत्री थे। इस कारण वे सरदार इन-पर भी विरक्त हो गए थे। वे इस बात को जानते थे कि रानी चांदकुमारी की हत्या में ध्यानसिंह भी सम्मिलित थे। इसी कारण वे शेरसिंह और ध्यान-सिंह दोनों के प्राण लेने को उद्यत हुए। सिंध वाला सरदारों में सरदार अजितसिंह साहसी और चतुर सरदार थे। सरदार अजितसिंह एक दिन ३०० घुड़सवार और २५० पैदल सेना साथ लेकर उनपर चढ़ गए और उन्होंने दोनों को मार डाला।

(इतिहास)

ध्रुव—राजा उत्तानपाद के पुत्र। बहुत प्राचीन समय में प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक स्वायंभुव मनु के दो पुत्र थे। राजा उत्तानपाद की दो महारानियां थीं—सुनीति और सुरुचि। सुरुचि पर राजा का अधिक प्रेम था। सुनीति के गर्भ से ध्रुव और सुरुचि के गर्भ से उत्तम नामक दो पुत्र राजा के हुए थे। एक समय राजा उत्तानपाद सुरुचि के गर्भ से उत्पन्न उत्तम को गोद में लेकर सिंहासन पर बैठे थे। उसी समय ध्रुव भी वहां आ गया और वह राजा की गोद में बैठने की चेष्टा करने लगा। सौभाग्यगर्विता सुरुचि अपनी सौत के पुत्र को राजा की गोद में जाते हुए देखकर कहने लगी—वत्स! तुम सुनीति के गर्भ से उत्पन्न हुए हो, तुम हमारे पुत्र नहीं हो, अतएव तुम्हें ऐसी उच्च अभिलाषा नहीं करनी चाहिए। यह राजासन

हमारे गर्भ से उत्पन्न पुत्र के योग्य है, तुम्हारे नहीं।

विमाता की ऐसी बातों को सुनकर ध्रुव रोने लगा। वह रोता हुआ अपनी माता के समीप पहुंचा। रोने का कारण पूछने पर ध्रुव ने माता से सब हाल कह दिया। सुनकर सुनीति को बड़ा कष्ट हुआ। वह ध्रुव के आंसू पोंछती हुई कहने लगी—वत्स ! इसमें किसीका अपराध नहीं है, जो दूसरे को दुःख देता है वह स्वयं ही अपने दिए दुःख का भोग करता है। सुरुचि का कहना सत्य है। तुम अभागे अवश्य हो, क्योंकि तुमने मुझ अभागिन के गर्भ से जन्म लिया है। तुमने मेरा दूध पिया है। अतएव तुम्हें राजासन कैसे मिलेगा ? सुरुचि पुण्यवती है, उसने अपने पुण्य से राजा को वश में कर रखा है। अतएव तुम दुःख न करो और अपनी वर्तमान स्थिति में संतुष्ट रहो। यदि सुरुचि की बातें तुम्हें बड़ी दुःखद लगती हैं तो तपस्या करो, तपस्या से पुण्यसंचय करो। अपने मन को धर्म में लगाओ। एकांतभाव से भगवान की आराधना करो, सर्वदा प्राणियों का हित करो, इस प्रकार अवश्य ही तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा। वत्स ! उस भगवान के अतिरिक्त दूसरा कोई तुम्हारा दुःख नहीं छुड़ा सकता। माता की बातों को सुनकर ध्रुव कहने लगे—मां ! तुम्हारी बातें इस समय मेरे ध्यान में नहीं आती हैं। मैं तपस्या के द्वारा उस स्थान को प्राप्त करूंगा, जो पिता को भी दुर्लभ है। यह कहकर और माता को प्रणाम कर ध्रुव घर से निकल गए। बहुत दूर जाने पर ध्रुव को सप्तर्षि का साक्षात्कार हुआ। उनसे ध्रुव ने अपनी सब बातें कहीं। महर्षियों ने ध्रुव की छोटी अवस्था और दृढ़ संकल्प देखकर, उन्हें विष्णु के आराधन का उपदेश दिया। ध्रुव विष्णु की पूजा-प्रक्रिया नहीं जानते थे। सप्तर्षियों ने विष्णुमंत्र का उपदेश देकर उसका जप करने के लिए उनसे कहा। सप्तर्षियों से मंत्र पाकर ध्रुव यमुना के किनारे मधु नामक वन में भगवान की आराधना करने लगे। ध्रुव की तपस्या देखकर इंद्र आदि देवता भयभीत हो गए। उन लोगों ने ध्रुव की तपस्या में विघ्न डालने का बहुत प्रयत्न किया परंतु वे सफल-मनोरथ नहीं हो सके। देवगण भगवान विष्णु के समीप उपस्थित हुए। विष्णु देवताओं को धीरज देकर वर देने के लिए ध्रुव के निकट उपस्थित हुए। ध्रुव ने अभिलषित वर पाया। घर लौट आने पर पिता ने उनको बड़ी प्रसन्नता से राज्य दिया।

राज्य पाकर ध्रुव ने शिशुमार की कन्या भ्रमि को ब्याहा। ध्रुव की दूसरी स्त्री का नाम इला था। ध्रुव ने भ्रमि के गर्भ से कल्प और वत्सर नामक दो पुत्र और इला के गर्भ से उत्कल नामक एक पुत्र उत्पन्न किया। ध्रुव के वैमात्रेय भ्राता उत्तम शिकार खेलने गए थे, उन्हें एक यक्ष ने मार डाला। इस कारण ध्रुव यक्षों से युद्ध करने गए। कुबेर के युद्ध न करने की प्रार्थना करने पर मनु ने ध्रुव को युद्ध करने से रोक दिया, अतएव कुबेर से वर पाकर ध्रुव लौट आए। ३६ हजार वर्ष राज्य करके ध्रुव विष्णुप्रदत्त अपने लोक में गए। (भागवत)

ध्रुवदास—इनका जन्म सहारनपुर (उत्तरप्रदेश) के देवबंद कस्बे में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। अनुश्रुति के अनुसार, इनके पितामह बीठलदास हितहरिवंश के शिष्य और जूनागढ़ राज्य के दीवान थे। इनके पिता श्यामदास परम भक्त थे। उन्होंने हितहरिवंश के पुत्र गोपीनाथ से राधावल्लभ मत की दीक्षा ग्रहण की थी। इस प्रकार इनकी वंश-परंपरा राधावल्लभ संप्रदाय से संबद्ध रही है। संत ध्रुवदास के जन्मकाल के संबंध में कोई प्रामाणिक ऐतिहासिक वृत्त उपलब्ध नहीं है; किंतु सांप्रदायिक वाणियों के आधार पर विद्वानों ने १५७५ ई० के लगभग इनका जन्म होना माना है। शैशवकाल में ही ये विरक्त होकर वृंदावन चले आए थे और आजीवन वहीं भगवद्भजन में लीन रहे। मुख्य रूप से एकांत भक्तिभाव में जीवनयापन करने के साथ ही ये अच्छे कवि और काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ थे।

इनके द्वारा विरचित बयालीस ग्रंथ प्रसिद्ध हैं, जिन्हें 'बयालीस लीला' के नाम से कहा जाता है, जोकि प्रकाशित हो चुके हैं। वस्तुतः इन्हें स्वतंत्र ग्रंथ कहने की अपेक्षा फुटकर पद-संग्रह कहना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

राधावल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक हितहरिवंश के बाद ध्रुवदास का ही दूसरा स्थान है। इन्होंने अपने 'सिद्धांत विचार' नामक ग्रंथ में सर्वप्रथम अपने संप्रदाय के सिद्धांतों की शास्त्रीय एवं लोकग्राह्य विस्तृत व्याख्या करके अपने महत्त्व को स्थापित किया। हितहरिवंश द्वारा संस्कृत में उल्लिखित संप्रदाय-संबंधी मंतव्यों को हिंदी में प्रस्तुत करने का

एकमात्र श्रेय इन्हींको है। हिंदी में माधुर्य भक्ति के उद्‌भावक के रूप में इनका विशिष्ट स्थान है। इनके पदों में भक्ति और रीति का समन्वय हुआ है। उनमें काव्य-कौशल और काव्यशास्त्रीय रूढ़ियों का सम्यक् निरूपण हुआ है। इनके 'हितश्रृंगारलीला', 'रस-मुक्तावली', 'सभामंडल', 'जीवदशा', 'मनशिक्षा' और 'भक्तनामावली' आदि ग्रंथ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'मानलीला' और 'दानलीला' भी उनके भक्तहृदय की सरसता के द्योतक हैं (डॉ० विजयेंद्र स्नातक—राधावल्लभ संप्रदाय—सिद्धांत और साहित्य; ललिताचरण गोस्वामी—गोस्वामी हितहरिवंश और उनका संप्रदाय)।

न

नकुल—पांडु के क्षेत्रज पुत्र। पांडु की महारानी माद्री के गर्भ और अश्विनीकुमारों के औरस से इनकी उत्पत्ति हुई थी। महाराज पांडु शापग्रस्त होकर अपनी दो रानियों के साथ वनवास करते थे। उसी समय दुर्वासा के दिए मंत्र के प्रभाव से कुंती के तीन पुत्र उत्पन्न हुए। यह देखकर माद्री ने भी अपने स्वामी से पुत्र की प्रार्थना की। पांडु के कहने से कुंती ने माद्री को भी मंत्र प्रदान किया। उसी मंत्र के प्रभाव से अश्विनीकुमारों के द्वारा माद्री ने दो पुत्र उत्पन्न किए, जिनका नाम नकुल और सहदेव था। अज्ञात-वास के समय नकुल तंत्रीपाल के नाम से विराट् के यहां गोरक्षा करने के काम पर नियुक्त थे। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय ये दशार्ण (वर्तमान छत्तीस-गढ़) मालव आदि देशों को जीतकर तथा समुद्र-तीरस्थ आभीर देशों को जीतकर पंजाब में उपस्थित हुए थे, पंजाब अमरपर्वत और द्वारपाल आदि देशों को जीता था। इसके अनंतर उन्होंने द्वारका में वसु-देव के पास दूत भेजा था। यादवों ने जब युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार कर ली, तब नकुल पश्चिमोत्तर प्रदेशस्थ म्लेच्छ पह्लव आदि जातियों को जीतकर इंद्रप्रस्थ में लौट आए। चेदिराज की कन्या करेणूमती से इनका ब्याह हुआ था और उसके गर्भ से निरमित्र नामक एक पुत्र इनके उत्पन्न हुआ था। (महाभारत)

नग्नजित्—गांधार देश का एक क्षत्रिय राजा। श्रीकृष्ण की पत्नी का यह पिता था। इसका जन्म इषुपाद नामक दैत्य के अंश से हुआ था। श्रीकृष्ण ने इसके समस्त पुत्रों को पराजित किया था। भारत-युद्ध में यह कौरवों के पक्ष से लड़ा था। (महाभारत)

(२) गांधार देश का राजा। इसके पुत्र का नाम स्वर्जित् था। पर्वत एवं नारद ने इसको राजगद्दी पर बैठाया था।

नचिकेता—प्रसिद्ध तपस्वी उद्दालक ऋषि के पुत्र। एक समय उद्दालक भ्रम से कुश, पुष्प आदि नदी के किनारे भूल आए थे। घर आकर उन्होंने अपने पुत्र नचिकेता को उन्हें ले आने के लिए नदी किनारे भेजा। नचिकेता नदी किनारे गए, परंतु वहां फल, पुष्प आदि न पाकर खाली हाथ लौट आए। पुत्र को खाली हाथ लौटते देखकर और क्रुद्ध होकर उद्दालक मुनि ने शाप दिया—तुम्हें शीघ्र ही यम का दर्शन हो। पिता के शाप से नचिकेता प्राणहीन होकर भूमि पर गिर पड़े। महर्षि उद्दालक पुत्र को मरा देख विलाप करने लगे। एक दिन और एक रात वह शव कुशासन पर पड़ा रहा। दूसरे दिन अकस्मात् उस शव में जीवन-संचार होने लगा। उद्दालक ने पुत्र को यह कहकर प्रणाम किया—पुत्र! तुम अपने तपोबल के प्रभाव से समस्त स्वर्गलोक देख आए हो। तुम्हारा यह शरीर मनुष्य-शरीर नहीं है। नचिकेता बोले—मैं पिता के शाप से शरीर त्याग करके यम-लोक में गया, और यमराज से मैंने पूछा: मुझे कहां जाना होगा, तब यम बोले: पिता ने आपको यम-दर्शन होने का शाप दिया था, सो हो चुका, अब आप घर जा सकते हैं। तब नचिकेता ने अपने पुण्योपार्जित लोक देखने की इच्छा प्रकट की। यम की आज्ञा से एक दिव्य रथ उपस्थित हुआ, उस रथ पर चढ़कर

नचिकेता ने पुण्यलोकों का दर्शन किया। नचिकेता ने कहा—सब लोकों की अपेक्षा गोदान से जो लोक प्राप्त होता है, वह अत्यंत रमणीय है। सब लोक देखकर नचिकेता लौट आए। (महाभारत)

कठोपनिषद् में नचिकेता की कथा दूसरे प्रकार से लिखी है। ये वाजश्रवस नामक राजा के पुत्र थे। वाजश्रवस का दूसरा नाम गौतम था। एक समय गौतम ने विश्वजित् नामक यज्ञ किया। इस यज्ञ में राजा ने अपनी समस्त संपत्ति ब्राह्मणों को दे दी। उस समय नचिकेता बालक थे। बालक नचिकेता पिता को दान करते देख, बहुत ही आनंदित हुए। उन्होंने अपने पिता से कहा कि मुझे भी किसी ब्राह्मण को दे दो। परंतु राजा ने बालक नचिकेता के कहने पर ध्यान नहीं दिया। तथापि बालक कहता ही गया। इससे क्रुद्ध होकर राजा वाजश्रवस बोले—"मृत्यवे त्वां ददामीति।" राजा ने अपना वचन सत्य करने के लिए पुत्र को यमराज के समीप भेज दिया। नचिकेता ने यमराज के यहां तीन दिन वास किया। उस समय यमराज ब्रह्मलोक में गए हुए थे, अतः नचिकेता को उनका दर्शन नहीं हो सका। यम ने ब्रह्मलोक से लौटकर देखा कि उनके घर पर अतिथि तीन दिन से उपवास कर रहा है। यम बोले—तुमने तीन दिन हमारे यहां उपवास किया है अतएव तुम तीन वर मांगो।

नचिकेता ने तीन वर ये मांगे—

(क) मेरे पिता सर्वदा इसी चिंता में पड़े रहते हैं कि मैं (नचिकेता) यमलोक में किस प्रकार रहता हूं, मेरी प्रार्थना है कि मेरे पिता की यह चिंता दूर हो और वे मुझपर पहले के समान प्रसन्न रहें और आपकी दया से जब मैं यहां से लौटूं तब मेरे पिता को यह ज्ञान बना रहे कि मैं यमराज के यहां से लौट आया हूं।

(ख) जो लोग स्वर्गलोक में जाएं, उन्हें जरा, मृत्यु, क्षुत्पिपासा आदि का कष्ट न रहे।

यमराज ने ये दो वर दिए। तदनन्तर नचिकेता ने तीसरा वर यह मांगा—

(ग) कोई-कोई कहते हैं कि मनुष्य की मृत्यु होने पर शरीर, इंद्रिय, मन, बुद्धि के अतिरिक्त जीवात्मा रहता है और कोई-कोई कहते हैं कि जीवात्मा नहीं है। इस विषय में मुझे संदेह है, आप मेरे इस संदेह को दूर करें। यही मेरी तीसरी प्रार्थना है।

यम ने अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों का लोभ दिखाकर नचिकेता से तीसरे वर को छुड़वाने की चेष्टा की, परंतु किसी भी प्रकार से नचिकेता ने उसे नहीं छोड़ा। अंत में प्रसन्न होकर नचिकेता को यम ने परमात्मविषयक उपदेश दिया। (कठोपनिषद्)

नन्द—(१) ये श्रीकृष्ण के पालने वाले पिता थे। मथुरा जिला में यमुना के उस पार गोकुल नामक एक गांव है। उस गांव में गोप रहा करते थे। उस समय वहां गोपों के अधिपति नंद थे और मथुरा में कंस राज्य कर रहा था। नंद मथुराधिप कंस के एक करद नृपति थे। नन्द की स्त्री का नाम यशोदा था। जिस दिन गोकुल में यशोदा के गर्भ से महामाया कन्या रूप से प्रकट हुईं, उसी रात्रि को मथुरा में देवकी के गर्भ से भगवान श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए। कंस के भय से वसुदेव श्रीकृष्ण को गोकुल में रखकर कन्या को ले आए। महामाया की उत्पत्ति के समय उनकी माया से गोकुल में सभी अचेत हो गए थे। इस कारण वसुदेव को लड़के बदलने में सुविधा हुई। गोकुल में नंद के यहां श्रीकृष्ण लालित और वर्द्धित हुए थे। गोकुल ही में श्रीकृष्ण ने कंस के भेजे दानवों का वध किया था। यहीं से भगवान श्रीकृष्ण कंस के धनुर्यज्ञ में निमंत्रित होकर अक्रूर के साथ मथुरा गए थे और कंस को मारकर स्वयं मथुरा ही में रहने लगे। पुनः वे वृंदावन नहीं लौटे। जिस दिन श्रीकृष्ण ने गोकुल छोड़ा था, उसी दिन से नंद का जीवन दुःखों की काली रेखाओं से अंकित हो गया था। हंस और डिबक का वध करने के लिए श्रीकृष्ण एक बार गोकुल गए थे। वहां यशोदा और नंद से श्रीकृष्ण की भेंट हुई, श्रीकृष्ण उन्हें समझा-बुझाकर लौट आए। इसके पश्चात् प्रभासक्षेत्र में भी इनका मिलाप हुआ था, वही मिलाप जीवन का अंतिम मिलाप है।

एक समय एकादशी का व्रत करके नंद यमुना-स्नान कर रहे थे, वहीं से वरुण के दूत उन्हें वरुण की सभा में ले गए। श्रीकृष्ण ने वहां से नंद को छुड़ाया था। इसी दिन से नंद जिस घाट पर स्नान कर रहे थे उस घाट का नाम नंदघाट पड़ा।

(भागवत)

(२) मगध के एक राजा। इस नाम के नौ राजा पटना के सिंहासन पर बैठे थे। इनकी उत्पत्ति के विषय में अनेक प्रकार के मत देखे जाते हैं। विष्णु-पुराण, ब्रह्मांडपुराण, भागवत और मत्स्यपुराण में नंद

का जन्म-वृत्तांत पाया जाता है। इन सभी पुराणों में लिखा है कि नंद एक शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे और इनके पिता का नाम महानंदि था। परंतु जैन और बौद्ध ग्रंथकार पूर्वोक्त बात को नहीं मानते। उनका कहना है कि नंद पटना के एक नाई के औरस और एक वेश्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। एक उपाध्याय ने नंद के साथ अपनी कन्या ब्याह दी थी। पाटलीपुत्र के अपुत्रक राजा उदायी गुप्त जब मारे गए, तब मंत्रीगण राज्याभिषेक की सामग्री लेकर नगर के बाहर एकत्रित हुए और किसको सिंहासन पर बैठाएं, इस बात की चिंता करने लगे। उसी समय नंद वहां आकर खड़े हो गए। राजहस्ति ने अभिषेकार्थ जल से नंद का अभिषेक किया और उन्हें अपनी पीठ पर बैठा लिया। राजा के घोड़े ने आनंद से विह्वल होकर ह्रेषारव किया, और चारों ओर आनंदध्वनि होने लगी। इससे मंत्रियों ने भी नंद ही को राजा बनाया। ख्रीष्टीय ई० के ४६६ वर्ष पूर्व नंद राजा हुए थे। इनके वंश में क्रमशः सात और नंद हुए थे। कल्पक नामक एक अशेष विद्वान नंद के मंत्री थे। कल्पक के पुत्र-पौत्र क्रमशः नंद राजाओं के मंत्री होते आए। कल्पक के पुत्र शकटाल नवम नंद के मंत्री थे। प्रसिद्ध वररुचि इसी नवम नंद के सभापंडित थे। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ पंडित चाणक्य ने इसी नंदवंश के अंतिम राजा को राज्यच्युत करके चंद्रगुप्त को पटना का राजा बनाया।

नन्द कवि—ये हिंदी के कवि थे और सं० १६२५ वि० में उत्पन्न हुए थे। ये उत्तम कवि थे। हजारा में इनका नाम पाया जाता है।

नन्दकिशोर—ये हिंदी के कवि थे। इन्होंने भाषा में 'रामकृष्णगुणमाल' नामक ग्रंथ लिखा है।

नन्दकुमार (महाराज)—ये काश्यपगोत्री नंद के वंश में थे। राजा आदिशूर ने पांच ब्राह्मणों को कान्यकुब्ज देश से बुलवाया था। उनमें एक का नाम दक्ष था। नंदकुमार के पूर्वपुरुष मुर्शिदाबाद जिले के जरुल नामक गांव में रहते थे। नंदकुमार के प्रपितामह का नाम रामगोपालराय और पितामह का नाम चंडीचरण राय था। चंडीचरण के दो विवाह हुए थे, उनमें पहली स्त्री से पद्मनाभराय नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। पद्मनाभ की दो कन्याएं थीं और एक पुत्र। दोनों कन्याएं बड़ी थीं, उनका नाम विष्णुप्रिया और कृष्णप्रिया था। पुत्र नंदकुमार थे। इनके प्रपितामह रामगोपालराय किसी कारण से जरुल गांव को छोड़कर अपनी ससुराल भद्रपुर में जाकर रहने लगे। नंदकुमार के कोई पूर्वपुरुष पीतमुंडी नामक गांव में रहते थे, इस कारण उस वंश के लोग पीतमुंडी कहे जाने लगे। पीतमुंडी ब्राह्मण पहले कुलीन नहीं समझे जाते थे, परंतु बाद में ये श्रोत्रिय कहे जाने लगे। नंदकुमार ने बंगाल के विख्यात नव्वाब अलीवर्दीखां के राज्यसमय अमीनगीरी करके बहुत धन एकत्रित किया था। परंतु दीवान से विरोध हो जाने के कारण इन्हें नौकरी छोड़ देनी पड़ी। अलीवर्दी की मृत्यु होने पर नंदकुमार सिराजुद्दौला के यहां नौकरी के लिए आनेजाने लगे। सिराजुद्दौला पहले नंदकुमार से कुछ अप्रसन्न था, परंतु पीछे प्रसन्न होकर उसने इन्हें हुगली की दीवानी दी। सिराज के नष्ट-भ्रष्ट हो जाने पर नंदकुमार क्लाइव के मुंशी बनाए गए। पहले शोभाबाजार राजवंश के प्रतिष्ठाता नवकृष्णदेव इस पद पर थे, परंतु सिराज के खजाने से अधिक धन मिलने के कारण उन्होंने नौकरी छोड़ दी। तब उस पद पर नंदकुमार नियुक्त किए गए। क्लाइव के विलायत चले जाने पर भेरलस्ट साहब बंगाल के गवर्नर हुए। पहले वे नंदकुमार से बहुत प्रसन्न थे, परंतु पीछे किसी कारण से उन दोनों में अनबन हो गई। इनके बाद कार्टियर साहब बंगाल के गवर्नर हुए। तीन वर्ष के बाद ये भी विलायत चले गए। तदनंतर वारिन हेस्टिंग्ज बंगाल के गवर्नर हुए। इन्हींकी आंखों पर चढ़ने से नंदकुमार का प्राणांत हुआ। सुप्रीम कोर्ट में नंदकुमार पर एक जाली मुकद्दमा चलाया गया, विचारपति ने नंदकुमार को फांसी की आज्ञा दे दी।

५२ लाख नकद और भूमिसंपत्ति आदि छोड़कर नंदकुमार मरे थे। इनके पुत्र गुरुदास की अकाल मृत्यु हो गई, उनकी स्त्री जगदंबा उस संपत्ति की अधिकारिणी हुई। (इतिहास)

नन्ददास—ये रामपुर के निवासी ब्राह्मण थे और विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे। इनकी गणना अष्टछाप के कवियों में है। इनके बनाए ग्रंथों के नाम ये हैं। (१) 'नाममाला', (२) 'अनेकार्थ', (३) 'पञ्चाध्यायी', (४) 'रुक्मिणीमंगल', (५) 'दशमस्कन्ध', (६) 'दानलीला', (७) 'मानलीला'। इन ग्रंथों के अतिरिक्त इनके बनाए अनेक पद पाए जाते हैं।

नन्दराम कवि—ये हिंदी के कवि थे। इनकी शांत रस

की कविता अच्छी होती थी।

नन्दराम हलदिया—आमेरराज के मंत्री दौलतसिंह के ये भाई थे और उसी राज्य में सेनापति के पद पर वर्तमान थे। सीकर के अधिपति देवीसिंह ने जिस समय शेखावाटी प्रदेश में अपना सिर उठाया उस समय आमेरराज ने इनको सेना-सहित उसको दमन करने और कर लेने के लिए भेजा था। जिस समय इनकी सेना उक्त प्रदेश में पहुंची उस समय देवीसिंह मर गए थे। तब सीकर के राजसिंहासन पर एक अबोध बालक विराजमान था। शेखावाटी प्रदेश के सभी सामंत देवीसिंह के विरुद्ध थे, परंतु नीतिज्ञ देवीसिंह ने आमेर की राज्यसभा के सदस्यों से प्रेम कर रखा था। नंदराम हलदिया और उनके भाई राजमंत्री दौलतसिंह देवीसिंह के मित्र थे। सीकर की सरहद में देवीसिंह के पहुंचने पर सीकर के दीवान आदि इनके डेरों पर गए। नंदराम हलदिया के परामर्श से उन लोगों ने युद्ध की तैयारी कर ली। नंदराम भी दिखावटी लड़ाई लड़ने लगा। अंत में अपने लिए लाख और राज्य के लिए दो लाख लेकर वह लौट आया। महाराज को भी यह बात मालूम हो गई। उन्होंने नंदराम की संपत्ति जप्त कर ली, और उसे कैद करने की आज्ञा दी। परंतु धूर्त नंदराम पहले ही भाग गया था। (टाड्स राजस्थान)

नन्दलाल कवि—(१) ये हिंदी के कवि थे और सं० १६११ वि० में उत्पन्न हुए थे। इनकी कविता सुंदर होती थी। हजारा में इनके कवित्त पाए जाते हैं।

(२) ये भी हिंदी के कवि थे। इनकी कविता सरस होती थी। इनका जन्म सं० १७७४ वि० में हुआ था।

नन्दा—भगवती का नामांतर। वराहपुराण में ब्रह्मा भगवती से कहते हैं—देवि! तुमने देवताओं के बड़े-बड़े काम किए हैं। परंतु एक और भी काम करना पड़ेगा। वह यह कि महिषासुर का नाश करना होगा। ब्रह्मा के यह कहने पर देवताओं ने भगवती को हिमालय पर्वत पर स्थापित किया। हिमालय पर स्थापित करने से देवी को बड़ा आनंद प्राप्त हुआ। इस कारण देवी का नाम नंदा पड़ा। (वराहपुराण)

नन्दिगुप्त—काश्मीर के एक राजा का नाम। इनके पिता का नाम अभिमन्युगुप्त था। अभिमन्युगुप्त के मरने के पश्चात् बालक नंदिगुप्त काश्मीर के सिंहासन पर बैठाए गए। अनंतर इनकी पितामही दिद्दा ने स्वयं राज्यभोग करने की इच्छा से, अभिचार द्वारा नंदीगुप्त को मारने का प्रयत्न किया। दुःख है कि वह दुराचारिणी अपनी दुरभिलाषा सफल करने में समर्थ भी हुई। १ वर्ष १ महीना ११ दिन राजासन पर बैठकर नंदीगुप्त परलोकवासी हुए। (राजतरंगिणी)

नन्दिनी—यह कामधेनु सुरभी की कन्या थी। महर्षि वशिष्ठ के यहां यह रहती थी। इसीकी सेवा से अयोध्याधिपति दिलीप को रघु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। इसीके कारण विश्वामित्र और वसिष्ठ के बीच विरोध उत्पन्न हुआ था।

नन्दी—महादेव का अनुचर। इनपर महादेव ने द्वाररक्षा का भार सौंपा था।

नमुचि—(१) दैत्यविशेष। यह महासुर शुंभ का तीसरा भाई था। (वामनपुराण)

(२) प्रसिद्ध दानवराज। एक समय नमुचि इंद्र के भय से भयभीत होकर सूर्य की किरणों में जा छिपा। यह देख इंद्र ने उससे मित्रता की और कहा—मित्र! मैं सच कहता हूं, दिन या रात में भीगी या सूखी वस्तुओं से मैं तुम्हारा वध कभी नहीं करूंगा। एक दिन कुहरे से संसार ढका था। इंद्र ने सुयोग पाकर जलफेन के द्वारा उसका सिर काट डाला। उस समय वह कटा हुआ मस्तक—"अरे पापी! तूने मित्र का वध किया है"—कहता हुआ इंद्र के पीछे दौड़ा। इंद्र ब्रह्मा की शरण में गए। ब्रह्मा ने विधिपूर्वक यज्ञ करके और अरुणा नाम की नदी में स्नान करके पाप से मुक्त होने की आज्ञा दी। ब्रह्मा की आज्ञा से देवराज इंद्र ने अरुणा के तीर पर विधिपूर्वक यज्ञ किया और उस नदी में स्नान किया। सरस्वती नदी की एक शाखा का नाम अरुणा है। नमुचि का भी मस्तक उस नदी में पड़ा जिससे उसे अक्षयलोक प्राप्त हुआ। (महाभारत)

नर—(१) भागवत में ये भगवान् के चौथे अवतार बतलाए गए हैं। धर्म की पत्नी मुक्ति के गर्भ से इनकी उत्पत्ति है। नर और नारायण ये दो मूर्ति होने पर भी समान आकार के हैं। दूसरे युग में नरसिंह ने दो मूर्ति धरकर यह अवतार ग्रहण किया था। महाभारत में लिखा है कि स्वायंभुव मनु के अधिकार के समय नारायण ने धर्म के पुत्ररूप से नर और नारायण, हरि और श्रीकृष्ण रूप धारण किया था। इनमें नर और नारायण ने बदरिकाश्रम में जाकर कठोर तपस्या की थी। एक समय इनको उपासना

करते देख नारद को बड़ा आश्चर्य हुआ था और उन्होंने पूछा भी था—जिसकी उपासना सभी मुक्ति के लिए करते हैं, वह किसकी उपासना करता है? भगवान् ने उत्तर दिया—यह अत्यंत गोपनीय बात है। तथापि तुमको भक्त जानकर बतलाता हूं: जो सूक्ष्म, अविज्ञेय, कार्यविहीन, अचल, नित्य और त्रिगुणातीत है, जिनसे सत्त्व आदि गुण उत्पन्न हुए हैं, जो अव्यक्त होने पर भी व्यक्तरूप से अवस्थान करते तथा 'प्रकृति' इस नाम से पहचाने जाते हैं, वे ही परमात्मा हम लोगों की उत्पत्ति के कारण हैं, हम उन्हींकी, माता-पिता जानकर, उपासना करते हैं। (महाभारत)

नरनारायण की कठोर तपस्या देखकर इंद्र आदि देवता डर गए, उन लोगों ने कामदेव के साथ अप्सराओं को इनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिए भेजा। अप्सराओं को देखते ही इन लोगों ने देवताओं की चालाकी समझ ली और देवता तथा अप्सराओं का अभिमान चूर्ण करने के लिए उर्वशी की सृष्टि की। उर्वशी की सुंदरता अप्सराओं में सबसे बढ़कर थी। उर्वशी को बनाकर उन्होंने उसे देवलोक में भेज दिया। ये ही द्वापर के अंत में अर्जुन और श्रीकृष्ण के रूप से प्रकट हुए थे। (भागवत)

(२) काश्मीर के एक राजा। ये बड़े साहसी राजा थे। इनके शासन-समय में काश्मीर की अत्यंत श्रीवृद्धि हुई थी। कितने ही मठ अग्रहार इन्होंने बनवाए थे। वितस्ता नदी के तीर पर एक नगर इन्होंने बनवाया था। इनका यश किन्नर गाते थे।

उसी नगर में विशाखदत्त नामक एक ब्राह्मण युवक रहता था। उसने नागराज सुश्रुवा का उपकार करके उसकी कन्या चंद्रलेखा को ब्याहा था। राजा नर ने ब्राह्मण की स्त्री चंद्रलेखा की सुंदरता आदि की प्रशंसा सुनी। राजा ने उसकी प्राप्ति के लिए अनेक उपाय किए, परंतु कोई भी सफल नहीं हुआ अतएव उन्होंने बलपूर्वक उसका हरण करना ही निश्चित किया। राजा की सेना आकर ब्राह्मण के द्वार पर खड़ी हुई। ब्राह्मण दूसरे मार्ग से स्त्री के साथ भागकर अपने ससुर नागराज सुश्रुवा के निकट चला गया और उसने राजा के अत्याचार की बातें नागराज से कहीं। सुनकर नागराज बड़े क्रुद्ध हुए। उन्होंने वज्रवृष्टि द्वारा राजा और उनके नगरों को जला डाला। राजा नर ३९ वर्ष ९ मास राज्य कर अपनी दुर्नीति से अंत में विनष्ट हुए। (राजतरंगिणी)

(३) काश्मीर के एक राजा। ये द्वितीय नर के नाम से विख्यात हैं। ये कामशास्त्रप्रणेता वसुनंद के पुत्र थे। इन्होंने काश्मीर का शासन ६० वर्ष तक किया था। (राजतरंगिणी)

नरक—(१) कलि के पौत्र। भय के औरस और मृत्यु के गर्भ से इसकी उत्पत्ति हुई थी।

(२) दानवविशेष। पृथ्वी के गर्भ से यह उत्पन्न हुआ था। (देखो कृष्ण)

नरनारायण—(१) शरभरूपी महादेव ने दंताघात से नरसिंह के दो टुकड़े कर दिए। देहार्द्ध नर शरीर से महातपा नर, और देहार्द्ध सिंह शरीर से महातपा नारायण ऋषि उत्पन्न हुए। (कालिकापुराण)

(२) ब्रह्मा के हृदय से धर्म उत्पन्न हुए थे। धर्म ने दक्ष प्रजापति की दस कन्याओं से ब्याह किया था। उन्हींके गर्भ से हरि, कृष्ण, नर और नारायण चार पुत्र उत्पन्न हुए थे। हरि और कृष्ण योगस्थ हो गए, और नरनारायण बदरिकाश्रम में जाकर तपस्या करने लगे। इसी कारण बदरिकाश्रम को नरनारायण-आश्रम कहते हैं। (देवीभागवत)

नरपति नाल्ह—संभवतः नरपति इनकी उपाधि और नाल्ह इनका नाम था। इनके जन्मस्थान तथा जन्मकाल के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं होता है। कुछ विद्वानों ने इन्हें १६वीं शती का जैन कवि माना है; किंतु इनकी उपलब्ध कृति 'बीसलदेव रासो' में न तो जैन ग्रंथों की प्रक्रिया देखने को मिलती है और न उसके किसी अंश में जैन प्रभाव विद्यमान है। सं० १५३८ वि० में रचित भाण कवि की 'हम्मीर दे चउपई' नामक कृति में एक नाल्ह का उल्लेख हुआ है, जो हम्मीरदेव का चारण था। संभवतः यह नाल्ह 'बीसलदेवरासो' का रचयिता था। हम्मीरदेव का निधन सं० १६३८ वि० में हुआ था। इसलिए नरपति नाल्ह का स्थिति-काल १४वीं श० ई० अनुमानित किया जा सकता है (डॉ० माताप्रसाद गुप्त तथा अगरचंद नाहटा—बीसलदेवरासो, भूमिका)।

नरवाहन जी कवि—ये हिंदी के कवि थे और भौगांव के निवासी थे। सं० १६०० वि० में ये उत्पन्न हुए थे। ये हितहरिवंशराय जी के शिष्य थे। इनकी कथा भक्तमाल में भी है।

नरसिंह—(१) भगवान का चतुर्थ अवतार। दैत्यराज हिरण्यकशिपु के वध के लिए भगवान ने यह रूप धारण किया था। इनका आधा शरीर मनुष्य के

समान और आधा सिंह के समान था। ब्रह्मा के वर से हिरण्यकशिपु अवध्य हो गया था, और ब्रह्मा के वर के कारण देवता उसे शाप भी नहीं दे सकते थे। अस्त्र-शस्त्र आदि उसके शरीर पर काम नहीं कर सकते थे। ब्रह्मा से वर पाकर दैत्यराज हिरण्यकशिपु महाभिमानी हो गया। देवताओं को पीड़ा देना ही उसने अपना कर्तव्य समझ लिया। इस प्रकार पीड़ित होकर देवगण विष्णु की शरण गए। विष्णु ने अभय देकर देवताओं को विदा किया और हिरण्यकशिपु का वध कैसे होगा इसकी चिंता वे करने लगे। अंत में नृसिंह मूर्ति धारण करने का उन्होंने संकल्प किया। यही भयंकर मूर्ति धारण करके नृसिंह हिरण्यकशिपु की सभा में उपस्थित हुए। दैत्यराज के पुत्र प्रह्लाद ने नृसिंह को देखकर कहा—इस नृसिंह मूर्ति को देखने से मालूम पड़ता है कि इसीके द्वारा दानवकुल का विनाश होगा। हिरण्यकशिपु ने नृसिंह को मारने की आज्ञा दी। दैत्यराज के अनुचर उनकी ओर लपके सही, परंतु वे मारे गए। अनंतर हिरण्यकशिपु ने स्वयं नृसिंह पर आक्रमण किया और वह मारा गया। (हरिवंश)

भागवत में लिखा है—हिरण्यकशिपु ने तपोबल के प्रभाव से ब्रह्मा से वर पाया और वह स्वर्गराज्य से देवताओं को हटाकर स्वयं इंद्र बन गया। दैत्यराज के चार पुत्र थे, उनमें प्रह्लाद बड़ा विष्णुभक्त था। दैत्यगुरु शुक्राचार्य के पुत्र षंड और अमर्क दैत्यराज के पुत्रों को पढ़ाने के लिए नियुक्त हुए। एक दिन दैत्यराज ने परीक्षा लेने के लिए अपने पुत्रों को बुलाया। पूछने पर प्रह्लाद विष्णु का गुण गाने लगा। दैत्यपति अपने भाई हिरण्याक्ष को मारने से विष्णु पर अधिक क्रुद्ध था। पुत्र के मुख से शत्रु का गुण-कीर्तन सुनकर दैत्यराज प्रह्लाद को डांटने लगा। परंतु उसके डांटने का फल कुछ भी नहीं हुआ। प्रह्लाद ने विष्णुभक्ति नहीं छोड़ी। इस कारण हिरण्यकशिपु प्रह्लाद को अनेक प्रकार से पीड़ा देने लगा, परंतु प्रह्लाद की रक्षा भगवान की कृपा से होती गई। प्रह्लाद के साथ अनेक दैत्यबालक भी विष्णुभक्त हो गए। अंत में दैत्यपति ने प्रह्लाद को अपने समीप बुलवाया और उससे कहा—मूर्ख! तू किसके बल पर मेरी आज्ञा का अनादर करता है? तेरे इस दुस्साहस का कारण क्या है? तेरा हरि कहां है? प्रह्लाद ने उत्तर दिया—हरि सर्वत्र विद्यमान हैं। हिरण्यकशिपु बोला—हरि, यदि सर्वत्र सब वस्तुओं में विद्यमान हैं तो इस खंभे में भी अवश्य विद्यमान होंगे। यह कहकर दैत्यराज ने उस खंभे में लात मारी। उसी समय भीम गर्जन करते हुए नृसिंह वहां प्रकट हुए और उन्होंने बड़ी सरलता से हिरण्यकशिपु को मार डाला। अनंतर प्रह्लाद की स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान अंतर्हित हो गए। (भागवत)

(२) खंडेला राज्यखंड के एक अधीश्वर। इनके पिता का नाम गोविंदसिंह था। गोविंदसिंह के मारे जाने पर नरसिंह उसके अधीश्वर हुए। जयपुर के राजा ने इनसे कर लेने के लिए नंदराम हलदिया की अध्यक्षता में एक सेना भेजी। नरसिंहदास आमेरराज को कर देना पहले ही अस्वीकृत कर चुके थे, अतएव ये उनकी आंखों पर चढ़ चुके थे। सेनापति नंदराम हलदिया ने, खंडेला के एक दूसरे अधीश्वर इंद्रसिंह के पुत्र प्रतापसिंह को नरसिंह के अधिकृत देशों का अधिकार दिलवा दिया। पुनः कुछ दिनों के बाद नरसिंह ने नंदराम हलदिया को धन देकर वश में किया और उसीके प्रपंच से नरसिंह का अधिकार पुनः उसके पैतृक राज्य पर हो गया। पुनः जब आमेरराज का एक दूत इनसे कर उगाहने के लिए आया, तब नरसिंह ने उसे मार-पीटकर अपने दरबार से निकाल दिया। वह दूत अमेरराज की सभा में जाकर अपने अपमान की बातें कहने लगा। सुनते ही अमेरराज को अत्यंत क्रोध आया। उन्होंने मंत्री आशाराम को वहां भेजा। आशाराम ने चतुरता से नरसिंहदास और प्रतापसिंह को कैद करके आमेर भेज दिया। बहुत दिनों तक ये वहां ही कैद थे। ये पुनः छूटे और मारवाड़ के प्रसिद्ध युद्ध में मारे गए। (टाड्स राजस्थान)

नरसिया कवि—ये भक्तकवि जूनागढ़ काठियावाड़ के रहनेवाले थे। इनके पद रागसागरोद्भव में पाए जाते हैं।

नरहरि—बंगाल के राजा आदिशूर के राज्यकाल में कान्यकुब्ज से पांच श्रोत्रिय ब्राह्मण बुलाए गए थे, उनमें से एक का नाम भट्ट नारायण था। भट्ट नारायण की छठी पीढ़ी में नरहरि उत्पन्न हुए थे। इन्हींके वंशज नदिया का राजवंश है।

नरहरिसहाय बन्दीजन—ये हिंदी के कवि असनी के वासी थे और सं० १८६८ वि० में उत्पन्न हुए थे। ये जलालउद्दीन अकबर बादशाह के दरबार में थे। असनी गांव

इनको माफी में मिला था। इनके पुत्र हरिनाथ महाकवि और उदार थे। इस समय भी इनके वंश बनारस आदि स्थानों में पाए जाते थे। असनी वाला इनका घर खंडहर पड़ा हुआ है। इनके किसी ग्रंथ का पता नहीं लगा है। हां, इनके अनेक छप्पय सुने जाते हैं।

नरिन्द्र कवि (प्राचीन)—(१) ये हिंदी के एक प्राचीन कवि थे और सं० १७८८ वि० में उत्पन्न हुए थे।

(२) ये पटियाला के महाराज थे और हिंदी के कवि थे। ये सं० १६१४ वि० में उत्पन्न हुए थे। इनकी कविता सरस होती थी।

नरेन्द्रादित्य—(१) ये काश्मीरराज गोकर्ण के पुत्र थे। इन्होंने भूतेश्वर नामक शिव और अक्षयिनी नामक देवी की प्रतिष्ठा की थी। नरेन्द्रादित्य ने ३६ वर्ष ३ महीना और १० दिन राज्य किया था। (राजतरंगिणी)

(२) ये भी काश्मीर के राजा थे। ये द्वितीय नरेन्द्रादित्य थे। इनके पिता का नाम नरेन्द्रादित्य था और माता का नाम पद्मावती। इनका दूसरा नाम लक्ष्मण था। वज्र और कनक नामक इनके दो मंत्री थे। नरेन्द्रादित्य ने नरेन्द्रस्वामी नामक एक शिवलिंग और राज्य के कागज पत्र रखने के लिए एक गृह बनवाया था। इन्होंने १३ वर्ष काश्मीर का राज्य किया था। (राजतरंगिणी)

नरेश कवि—ये हिंदी के कवि थे। लोगों का अनुमान है कि इन्होंने नायिकाभेद की कोई पुस्तक लिखी होगी। क्योंकि इनके पद्य उसी प्रकार के पाए जाते हैं।

नरोत्तम—एक पुण्यशाली ब्राह्मण। यह अपने माता-पिता का अनादर करने वाला था। किंतु अपने तीर्थाटन आदि से पर्याप्त पुण्य अर्जित कर चुका था। एक बार इसने किसी बगुले को शाप दिया जिससे इसका पर्याप्त पुण्य एवं सामर्थ्य नष्ट हो गया। इससे यह बड़ा दुःखी हुआ। इसी समय इसने यह आकाशवाणी सुनी कि वह मूक नामक चांडाल के पास जाकर उससे धार्मिक उपदेश ग्रहण करे। तदनुसार यह चाण्डाल के पास गया। उस समय वह अपने माता-पिता की सेवा कर रहा था। उसने इसे रुकने के लिए कहा; किंतु यह रुका नहीं। मूक ने इसे किसी पतिव्रता के पास जाने के लिए कहा। इतने में ही इसे विष्णुरूप ब्राह्मण मिला और उसने इसे पतिव्रता के घर पहुंचा दिया। वह पतिसेवा में निरत थी। वहां से यह धर्मवैश्य और अंत में एक वैष्णव के यहां गया। उसने इसे विष्णु के दर्शन कराए। विष्णु ने इसे माता-पिता की सेवा का उपदेश दिया, जिसमें निरत होकर यह स्वर्गलोक को प्राप्त हुआ। (पद्मपुराण)

नरोत्तमदास—ये हिंदी के कवि थे। ब्राह्मणवाड़ी जिला सीतापुर के रहनेवाले थे। इनका बनाया एक ग्रंथ है, जिसका नाम सुदामाचरित्र है। सुदामाचरित्र की कविता मधुर है।

नर्मदा—पुराणों में इसकी पावन महिमा का विस्तार से वर्णन हुआ है। मैकाल पर्वतमाला इसका उद्गम स्थान है और भडौंच में जाकर यह समुद्र में गिरती है। इसमें अनेक छोटी-छोटी नदियां मिलती हैं। इसको रेवा, समोद्भवा तथा मेखलसुता भी कहा गया है। इसके तट पर भृगु तथा यमदाग्नि का पवित्र आश्रम और कन्यातीर्थ स्थित थे। मध्यप्रदेश एवं पश्चिमी भारत की यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण महानदी है।

नल—निषध देश के राजा। स्वयंवर रीति से इन्होंने विदर्भराज भीम की कन्या दमयंती को ब्याहा था। दमयंती के रूप की प्रशंसा सुनकर नल उसपर आसक्त हो गए थे। एक दिन राजा नल बगीचे में घूम रहे थे, उसी समय एक सुवर्णहंस को देखकर नल ने उसे पकड़ लिया। हंस ने मनुष्यवचन से नल से कहा—आप मुझे छोड़ दें, मैं आपका उपकार करूंगा। भीम की कन्या दमयंती के पास जाकर आपके गुणों की मैं प्रशंसा करूंगा, जिससे वह आपको पति वरण कर ले। नल ने हंस को छोड़ दिया। हंस ने दमयंती के निकट जाकर नल की प्रशंसा की। दमयंती नल के गुणों पर आसक्त हो गई। राजा भीम ने कन्या को युवती देखकर स्वयंवर-सभा निमंत्रित की। इस सभा में देवता भी आए थे, परंतु दमयंती ने नल को वरण किया। (महाभारत)

नलकूबर—यक्षराज कुबेर का पुत्र। इनके भाई का नाम मणिग्रीव था। एक समय दोनों भाई मदमत्त होकर कैलास के समीप गंगातीरस्थ तपोवनों में स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। यह देखकर नारद ने इनको शाप दिया था। नारद के शाप से ये दोनों भाई अर्जुन वृक्ष के रूप में परिणत हुए। (देखो यमलार्जुन)

एक समय स्वर्ग की अप्सरा रम्भा अभिसारिका वेश में नलकूबर के पास जा रही थी। रावण ने बलात्

रंभा को रोक रखा, इससे युद्ध होकर रंभा ने रावण को शाप दिया कि यदि रावण किसी स्त्री पर बलात्कार करेगा तो उसका सिर फट जाएगा ।
(रामायण)

नवखान कवि—ये हिंदी के कवि थे और बुंदेलखंड के रहने वाले थे । सं० १७९२ वि० में इनका जन्म हुआ था ।

नवद्वीप—नौ द्वीपों का समुच्चय होने के कारण इसको नवद्वीप के नाम से कहा गया । बंगाल में लोकप्रिय वैष्णवधर्म के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु यहीं उत्पन्न हुए थे । किसी समय यह संस्कृत विद्या का प्रख्यात केंद्र था । मध्ययुगीन भारत में तर्कशास्त्र की नयी विद्या (नव्यन्याय) मिथिला नवद्वीप (बंगाल) में प्रचलित हुई थी । वल्लालसेन, लक्ष्मणसेन और अशोकसेन के शासनकाल में इसकी अधिक ख्याति हुई । नवद्वीप-घाट रेलवे स्टेशन से नवद्वीप पश्चिम में और नदिया के कृष्णनगर कस्बे से आठ मील दूर है ।

नवनिधि—ये हिंदी के कवि थे । इनकी कविता अत्यंत मधुर होती थी ।

नवलकिशोर मुंशी—यह एक साधारण व्यक्ति थे, किंतु निज अध्यवसाय और प्रतिभा से ये बहुत बड़े धनी हुए । इन्होंने लखनऊ में एक छापाखाना सन् १८५८ ई० में खोला । उत्तरी भारत में यह प्रथम ही छापा-खाना था जिसने हिंदी के ग्रंथों के प्रकाशन की ओर सबसे पहले ध्यान दिया था । इसने हिंदी, उर्दू, फारसी और संस्कृत के सब मिलाकर चार हजार से अधिक ग्रंथ प्रकाशित किए ।

जिस समय यह प्रेस स्थापित किया गया था, उस समय अवध सिपाही-विद्रोह के उपद्रवों से पूर्णतः शांत नहीं हो पाया था । इस छापेखाने ने अंग्रेज सरकार के उद्देश्यों का सर्वसाधारण में प्रचार कर चिर-स्मरणीय देशसेवा की । उसीके फल से और ब्रिटिश सरकार की कृपादृष्टि से इस प्रेस की उत्तरोत्तर उन्नति होती गई । इसके मालिक सरकार के विशेष कृपापात्र बने और इन्हें मान प्रतिष्ठा भी मिली ।

जिस समय यह प्रेस खोला गया था, उस समय इस देश में रेल का प्रसार नहीं हो पाया था, तथापि मुंशी जी ने सरकारी उच्च कर्मचारियों की सहायता से कलकत्ते से छापेखाने की भारी-भारी कलें तथा टाइप आदि अन्य सामान लखनऊ तक मंगवा लिए ।

सन् १८५९ ई० में इस छापेखाने से एक पत्र अंग्रेजी में निकाला गया । इसका उद्देश्य था कि प्रजा के उत्तेजित चित्त को सरकार की शांत नीति समझा-कर शांति स्थापित करें । जब यह उद्देश्य पूर्ण हो चुका तब वह बंद कर दिया गया । तथापि उसके शून्य आसन को उर्दू भाषा के एक दैनिक पत्र 'अवध समाचार' ने ग्रहण किया । इसकी नीति प्रजा के मन में सरकार की ओर से विश्वास उत्पन्न कराना थी ।

सरकार ने मुंशी जी की राजभक्ति और देशसेवा देखकर उनको सी० आई० ई० की उपाधि से अलंकृत किया था ।

नवलदास क्षत्रिय—ये जाति के क्षत्रिय और हिंदी के कवि थे । गूढ़गांव जिला बाराबंकी के रहने वाले थे । सं० १३१९ वि० में ये उत्पन्न हुए थे । इनके बनाए ग्रंथ का नाम 'ज्ञानसरोवर' है ।

नवलसिंह कायस्थ—ये हिंदी के कवि झांसी के निवासी थे और राजा सांथर के दरबार में नौकर थे । इनका जन्म सं० १९०८ वि० में हुआ था । ये बड़े कवियों में थे । नामरामायण और हरिनामावली नामक दो ग्रंथ भी इनके लिखे हुए हैं ।

नवी कवि—ये हिंदी के कवि थे और इन्होंने नखशिख-वर्णन पर एक ग्रंथ लिखा था ।

नवीन कवि—ये हिंदी के कवि थे । इनके बनाए शृंगार रस के सुंदर कवित्त पाए जाते हैं ।

नहुष—चंद्रवंशी आयु नामक राजा के पुत्र । इन्होंने तपस्या और यज्ञ आदि के अनुष्ठान से इंद्रत्व प्राप्त किया था । महर्षि अगस्त्य के शाप से ये इंद्रपद से भ्रष्ट हो गए और भूतल में दस हजार वर्ष तक सांप होकर रहे । नहुष के बहुत विनय करने पर अगस्त्य प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि तुम्हारे वंश में युधिष्ठिर नामक एक राजा होंगे, उन्हींके अनुग्रह से तुम्हारी गति होगी । वनवास के समय भीम को नहुष-रूपी सर्प ने पकड़ लिया । भीम के आने में विलंब देखकर उन्हें ढूंढ़ने के लिए युधिष्ठिर बाहर गए और उन्होंने भीम को उस अवस्था में देखा । युधिष्ठिर ने सर्प का परिचय पूछा और क्या देने से वह भीमसेन को छोड़ देगा यह भी पूछा । सर्प ने अपना परिचय दिया और शापमुक्त होने के कारण दिव्य शरीर धारण कर वह स्वर्ग को प्रस्थान कर गया । (महाभारत)

नाग—एक नाग जाति, जिसके राजा का नाम तक्षक था । भूमि पर घसीटकर चलने के कारण इन्हें सर्प (सरी-सृप) नाम दिया गया । प्राचीन साहित्य में सर्पसत्र

या नागयज्ञों का उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार का एक सर्पसत्र जनमेजय ने किया था। यह यज्ञ उसने अपने पिता परीक्षित के घातक तक्षक नाग से बदला लेने के लिए किया था। एक सर्पसत्र मरुत्त ने अपनी मातामही के कहने पर आयोजित किया था।

नागर—ये हिंदी के कवि थे। इनका जन्म सं० १६४२ वि० में हुआ था। इनके लिखे कुछ कवित्त हजारा में हैं।

नागरीदास—इस नाम के अनेक कवि हो चुके हैं। अनेक नागरी (राधा) भक्तों ने स्वयं को नागरीदास नाम से प्रचलित किया। जिन नागरीदास का उल्लेख यहां किया जा रहा है, वे कृष्णगढ़ नरेश सामंतसिंह थे। उन्होंने कविरूप में स्वयं का नागरीदास नाम से उल्लेख किया है। उनका जन्म १७५६ वि० (१६९९ ई०) में हुआ। बाल्यकाल से ही ये बड़े शूरवीर थे। तेरह वर्ष की अवस्था में ही इन्होंने बूंदीनरेश हाड़ा जैतसिंह को पराजित किया था। पिता की मृत्यु के बाद इनके भाई बहादुरसिंह ने राजगद्दी पर अपना अधिकार कर लिया। मराठों की सहायता से इन्होंने राजगद्दी पर अधिकार किया; किंतु इन बातों से इन्हें इतनी विरक्ति हुई कि १८१४ वि० (१७५७ ई०) में अपने पुत्र सरदारसिंह को गद्दी पर बैठाकर ये वृंदावन चले गए और वहां इन्होंने सारा जीवन राधाकृष्ण की भक्ति में निरत रहकर व्यतीत किया।

काव्य-रचना के प्रति इनका रुझान बाल्यकाल से ही था। कृष्णगढ़ में इन्होंने कृष्णभक्तिपरक रचनाओं का निर्माण कर लिया था। वृंदावनवास के बाद इन्होंने निंबार्क संप्रदाय को वरण किया और भक्ति में लीन हो गए। इन्होंने लगभग ७५ कृतियों का निर्माण किया, जोकि 'नागरसमुच्चय' के नाम से एकसाथ प्रकाशित हैं। इनकी कविता पर मुख्यतः ब्रजभाषा और गौणतः उर्दू तथा खड़ीबोली का प्रभाव है। कविता साधारण कोटि की है (आचार्य रामचंद्र शुक्ल—हिंदी साहित्य का इतिहास)।

नागार्जुन (१)—महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने इन्हें सिद्ध सरहपाद का शिष्य, कांचीनिवासी और जाति से ब्राह्मण बताया है। नागा अरजंद, नागा अंजन तथा नागनाथ आदि इनके अनेक नाम उल्लिखित हैं। इन्हें शालिवाहन का गुरु बताया गया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इन्हें गोरखनाथ की पारसनाथी शाखा का प्रवर्तक सिद्ध किया है और इनका स्थितिकाल ११वीं श० ई० के लगभग माना है। ये प्रसिद्ध शून्यवादी बौद्ध आचार्य नागार्जुन से भिन्न थे। ये सिद्ध, साधक तथा रासायनिक थे। 'नाथसिद्धों की बानियां' में इनकी केवल दो सब्दी संकलित हैं (राहुल सांकृत्यायन—पुरातत्त्व निबन्धावली; हिंदी काव्यधारा; आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—नाथ संप्रदाय; डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल—योगप्रवाह)।

नागार्जुनी कोण्डा—प्राचीन भारत का यह एक विख्यात ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक प्रतिष्ठान था। यहां से इतिहास तथा पुरातत्त्व-विषयक महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई है। इसप्रकार की सामग्री में विहारों, स्तूपों तथा मंदिरों के मानवावशेष, दूसरी-तीसरी शती की ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्णित अभिलेख, मुद्राएं, मृद्भांड और अयरावती शैली की लगभग ४०० कलावस्तुएं प्राप्त हुई हैं। यहां बनी इमारतों के मानवावशेषों से ज्ञात हुआ है कि उनके निर्माण में कुशल स्थपतियों एवं शिल्पियों का योगदान था। बौद्ध जगत् के विख्यात तत्त्ववेत्ता निदान-नागार्जुन का तथा अनेक राजवंशों का इस महान् प्रतिष्ठान से संबंध रहा है। यह पहाड़ी वर्तमान आंध्रप्रदेश के गुंटूर जिलांतर्गत पलनाड तालुके में स्थित है। मछरेला रेलवे स्टेशन से पश्चिम की ओर इसकी दूरी लगभग १६ मील है।

नागोजी भट्ट—ये महाराष्ट्र के ब्राह्मण काशीनिवासी थे और प्रसिद्ध वैयाकरण थे। इनके पिता का नाम शिव भट्ट और माता का नाम सतीदेवी था। ये शृंगवेरपुर (सिंगरौर) के राजा रामसिंह के आश्रित थे और भट्टोजी के पौत्र हरि दीक्षित के शिष्य थे। इन्होंने संस्कृत में अनेक ग्रंथ लिखे हैं। बृहल्लघुमंजूषा लघुमंजूषा, लघुशब्देंदुशेखर, परिभाषेंदुशेखर, लघुशब्दरत्न आदि व्याकरण ग्रंथ, प्रायश्चित्तेंदुशेखर, आचारेंदुशेखर, तीर्थेंदुशेखर, श्राद्धेंदुशेखर आदि बारह धर्मशास्त्र-विषयक शेखर-ग्रंथों के अतिरिक्त कई ग्रंथों की इन्होंने टीका भी की है। इनमें से वाल्मीकीयरामायण पर 'रामाभिरामी', काव्यप्रदीप पर 'उद्योत' नाम की टीका प्रसिद्ध है। दुर्गासप्तशती की भी इनकी लिखी एक उत्तम टीका है। कहते हैं, सोलह वर्ष की अवस्था तक इन्होंने कुछ भी विद्याभ्यास नहीं किया था। परंतु पीछे किसीके उपदेश से वागीश्वरी देवी की आराधना कर, इन्होंने विद्या पाई। इनका समय १७वीं सदी माना जाता है।

नाथ कवि—(१) ये हिंदी के कवि थे। मालूम नहीं कि

इनका पूरा नाम क्या था। उदयनाथ, शिवनाथ, शंभुनाथ आदि कवियों ने अपना नाम पद्यों में केवल नाथ ही लिखा है।

(२) ये हिंदी के कवि थे और सं० १७३० वि० में उत्पन्न हुए थे। ये नवाब फजल अलीखां के यहां रहते थे।

(३) हिंदी के कवि। ये सं० १८०३ वि० में उत्पन्न हुए थे और मानिकचंद के यहां रहते थे।

(४) हिंदी के कवि। इनके जन्म का समय सं० १८११ वि० बताया जाता है, और राजा भगवंतराय खींची के साथ रहते थे।

(५) ये गुजराती ब्राह्मण काशी में रहते थे। इनका पूरा नाम हरनाथ था। सं० १८३६ वि० में ये उत्पन्न हुए थे। 'अलंकारदर्पण' नामक इनका लिखा ग्रंथ उत्तम है।

(६) हिंदी के कवि। ये ब्रजवासी थे और ऊंचेगांववाले गोपाल भट्ट के पुत्र थे। सं० १६४१ वि० में इनका जन्म हुआ था। इनका 'षट्ऋतुवर्णन' सुंदर है।

नाथद्वार (नाथद्वारा)—यह वर्तमान भारत का प्रसिद्ध वैष्णव मंदिर है। यहां की कृष्ण प्रतिमा को बल्लभाचार्य ने मथुरा के मंदिर में स्थापित किया था। तदनंतर उसे गोवर्धन और फिर नाथद्वारा में स्थानांतरित किया गया। यह धर्मस्थल उदयपुर (राजस्थान) से ३० मील उत्तर-पूर्व में बनारस नदी के दक्षिण तट पर स्थित है।

नादिरशाह—पारस देश के एक अधिपति का नाम। इनका जन्म सन् १६८७ ई० में फारस के खुरासान नामक स्थान में एक मेषपालक के यहां हुआ था। फ्रांस के विख्यात नेपोलियन बोनापार्ट की तरह इन्होंने भी एक दरिद्र बालक होकर राजपद पाया था। फारस, अफगानिस्तान आदि देशों पर अधिकार करके इन्होंने अपनी शासनशक्ति बढ़ाई थी। दिल्ली के सम्राट् मुहम्मदशाह के समय फारस के अधिपति नादिरशाह भारत में भी आए थे। सन् १७३९ ई० में मुगलसेना के साथ नादिरशाह का युद्ध हुआ। इस युद्ध में २० हजार मुगल मारे गए और उनके प्रधान सेनापति भी इसी युद्ध में निहत हुए। दूसरी गति न देख, मुहम्मदशाह ने नादिरशाह की अधीनता स्वीकार की। नादिरशाह ने दिल्ली में प्रवेश किया और दिल्ली में जाकर नादिर ने 'कत्ले-आम' की आज्ञा दे दी। इससे एक लाख, बीस हजार नगरवासी मारे गए। नादिरशाह दिल्ली के खजाने से धन, रत्न और मोरपंखी सिंहासन लेकर चला गया। कहते हैं, नादिरशाह ने भारत से ९ करोड़ रुपये का माल-असबाब लूटा था। इस अत्याचार का फल उसे जीवन के अंत में भोगना पड़ा था। वह पागल होकर अत्याचार करने लगा। उसके अत्याचार से लोग घबड़ा गए। अनन्तर १७४७ ई० में एक घातक के द्वारा उसकी मृत्यु हुई। नादिरशाह का पहला नाम नादिर कूली खां था। पारस के अधिपति होने पर उसका नाम नादिरशाह हुआ था।

(इतिहास)

नानक—सिखों के गुरु। सन् १४६९ ई० में पंजाब की इरावती नदी के तीरस्थ तलबंदी नामक गांव में नानक का जन्म हुआ था। नानक के पिता का नाम कालू था। ७ वर्ष की अवस्था में कालू ने अपने पुत्र को पढ़ने के लिए विद्यालय में भेजा। ९ वर्ष की अवस्था में जब नानक के यज्ञोपवीत का आयोजन होने लगा, तब नानक ने कहा कि लौकिक यज्ञोपवीत से क्या लाभ है! भगवान् का नाम ही श्रेष्ठ उपवीत है। कालू की भौतिक अवस्था अच्छी नहीं थी। धन के अभाव से उन्हें सर्वदा कष्ट होता था। एक समय कालू ने अपने नौकर के साथ कुछ द्रव्य देकर नानक को बाजार भेजा था। नानक ने वह द्रव्य गरीबों को बांट दिया। घर आने पर पिता ने उन्हें बहुत धमकाया। उसके उत्तर में नानक बोले—मनुष्यों के साथ लेन-देन से जो लाभ होता है, उससे कहीं अधिक ईश्वर के साथ लेन-देन से लाभ होता है। उस समय नानक की अवस्था १५ वर्ष की थी। एक दिन किसी देवमंदिर की ओर पैर फैलाकर नानक सोये थे, लोगों ने आश्चर्य से इसका कारण पूछा। नानक ने उत्तर दिया—मैं जिधर भी पैर फैलाऊंगा उधर ही ईश्वर का मंदिर है। इन सब बातों से देखा जाता है कि भावी सिख-गुरु का धर्मभाव बाल्यकाल में ही स्फुरित हो गया था।

नानक एकेश्वरवादी थे। कोई कहते हैं कि ये कबीर के शिष्य थे, और कोई कहते हैं कि सैयदहुसेन नामक एक मुसलमान-फकीर से इन्होंने दीक्षा ली थी। हिंदू और मुसलमानों का धार्मिक-सामाजिक विरोध मिटाना ही नानक के धर्म का उद्देश्य था। इस विषय में इन्होंने सफलता भी पाई थी। नानक हिंदुओं के अवतारों को मानते थे और मुहम्मद को

ईश्वर का दूत समझते थे। वे कभी हिंदू-संन्यासियों के वेष में और कभी मुसलमान-फकीरों के वेष में घूमा करते थे। सन् १५३८ ई० में नानक की मृत्यु हुई।

४० वर्ष की अवस्था में इन्हें 'सिखगुरु' की पदवी मिली थी। इनकी मृतदेह के लिए इनके मुसलमान और हिंदू-शिष्यों में झगड़ा हुआ था। अंत में निश्चित हुआ कि यह देह जल में डुबा दी जाए। जल में डुबोने के समय देखा गया कि मृतशरीर नहीं है। तब हिंदू और मुसलमान-शिष्यों ने कफन आधा-आधा फाड़कर अपनी-अपनी रीति के अनुसार गुरु की अंतिम क्रिया की। इनका उपदेश 'ग्रंथसाहब' के नाम से प्रसिद्ध है, नानकपंथियों में 'ग्रंथसाहब' का बड़ा आदर होता है।

नानासाहब—ये बाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र थे। इनका नाम धुंधूपंथ था। सन् १८१८ ई० में बाजीराव ने अंग्रेज गवर्नमेंट को आत्मसमर्पण किया, और कानपुर से १२ मील की दूरी पर गवर्नमेंट के वृत्तिभोगी रूप से बिठूर नामक गांव में वे रहने लगे। गवर्नमेंट से बाजीराव को तीन लाख रुपये की वृत्ति मिलती थी। उन्होंने अपने अंतिम पत्र में धुंधूपंत को अपना उत्तराधिकारी बनाया। सन् १८५१ ई० में बाजीराव की मृत्यु हुई। तदनंतर २७ वर्ष की अवस्था में धुंधूपंत अंग्रेज गवर्नमेंट की आज्ञा से पेशवा की गद्दी पर बैठे। धुंधूपंत को गद्दी पर बैठने के समय बाजीराव के छोड़े ३० लाख रुपये नकद और बहुमूल्य आभूषण आदि प्राप्त हुए। बाजीराव ने धुंधूपंत को गवर्नमेंट की आज्ञा से दत्तक लिया था, उस समय गवर्नमेंट ने कहा था कि धुंधूपंत पेशवा कहे जाएंगे और उनको सरकार से वृत्ति मिलेगी। धुंधूपंत ने गवर्नमेंट से प्राप्य वार्षिक वृत्ति पाने की प्रार्थना की। इस समय टामसन साहब संयुक्त प्रदेश (पुराना उत्तर प्रदेश) के छोटे लाट थे और लार्ड डलहौजी भारत के बड़े लाट थे। टामसन ने नानासाहब की प्रार्थना अस्वीकृत की। बड़े लाट ने भी टामसन की युक्ति का समर्थन किया। उन्होंने कहा—बाजीराव को ४३ वर्ष तक गवर्नमेंट ने ६ लाख रुपये की वार्षिक वृत्ति दी है और बाजीराव पेशवा की मृत्यु के समय धुंधूपंत को बहुत धन भी मिला है, उसी धन से उसे परिवार का पालन करना उचित है। यही नानासाहब के असंतोष का कारण हुआ। उसी असंतोष ने सन् १८५७ ई० में सिपाही-विद्रोह भड़काया था जिसमें असंख्य जनों का क्षय हुआ। उस समय लार्ड कैनिंग शासक थे। नानासाहब ही सिपाहियों के प्रधान नेता थे। कानपुर में ही सबसे अधिक जनसंहार हुआ था। बड़े परिश्रम से सिपाही-विद्रोह का दमन हुआ। १८५९ में तांतियाटोपी को फांसी होने पर नानासाहब वन में भाग गए। (इतिहास)

नाभाक—ऋग्वेद का सूक्तद्रष्टा। यह नाभाग ऋषि का पुत्र था। इसके द्वारा रचित सूक्त से ज्ञात होता है कि यह आंगिरस वंश का था और इसने अपने पिता की ही भांति इंदु तथा अग्नि की स्तुति में उनकी रचना की।

नाभाग—करुष के सात पुत्र थे, उनमें एक दिष्ट भी थे। महाराज दिष्ट के पुत्र नाभाग थे। नाभाग ने पिता के निषेध करने पर भी एक वैश्यकन्या को ब्याहा था और किसी मुनि के वर से इन्हें क्षत्रियत्व प्राप्त हुआ था। (मार्कंडेयपुराण)

नाभादास कवि—ये हिंदी के कवि, दक्षिणी ब्राह्मण थे और सं० १५४० वि० में उत्पन्न हुए थे। जयपुर गलता गादी के महंत अग्रदासजी ने इन्हें शिष्य बनाया था। ये भक्त और कवि थे। इनके लिखे ग्रंथ का नाम 'भक्तमाल' है। इसमें १०८ छप्पय हैं। इस ग्रंथ में भक्तों की विचित्र कथाएं हैं।

नामदेव—संत रामदेव का नाम रामानंदी परंपरा के महाराष्ट्रीय संतों में उल्लेखनीय है। उनके समय महाराष्ट्र में अलखनिरंजन नाथ पंथ और महानुभाव पंथ का प्रचलन था। इन दो धार्मिक पंथों के अतिरिक्त महाराष्ट्र में पंढरपुर के 'बिठोवा' उपासना प्रचलित थी, जिसके दर्शनों के लिए प्रतिवर्ष यात्रा (वारी) होती थी। इन वारी करने वाले लोगों का एक अलग ही संप्रदाय 'वारकरी' नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस संप्रदाय में विट्ठल की उपासना की प्रमुखता थी। इसी विट्ठलोपासक वारकरीपंथ में संत नामदेव (१२७०-१३५० ई०) हुए।

कहा जाता है कि नामदेव पहले एक डाकू के रूप में प्रसिद्ध थे; किंतु बाद में वे भक्त बन गए। नाथपंथी बिसोबाखेचर से उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। महाराष्ट्र में प्रसिद्ध हो जाने के अनंतर नामदेव ने 'ज्ञानेश्वरी' टीका के रचयिता प्रसिद्ध संत विज्ञानेश्वर के साथ उत्तरभारत की यात्रा की। वे उत्तरभारत होते हुए पंजाब गए। गुरुदासपुर के घोमाना नामक

स्थान पर नामदेव की स्मृति का एक मंदिर तथा उनके पंथ के अनेक अनुयायी आज भी वहां विद्यमान हैं।

नामदेव की विट्ठलभक्ति में सगुण-निर्गुण का समन्वय है। कबीर पर उनके विचारों का स्पष्ट प्रभाव है। व्रत, तीर्थ तथा बाह्याडंबरों के प्रति उपेक्षा का दृष्टिकोण कबीर को नामदेव से मिला। कबीर के भगवन्नाम तथा सतगुरु-साधना को भी नामदेव के विचारों ने प्रभावित किया।

संत नामदेव ने मराठी तथा हिंदी, दोनों भाषाओं के साहित्य को अपनी वाणियों से समृद्ध किया। मराठी में उनके कई सौ अभंग और हिंदी में लगभग सौ पद हैं। उनके अभंगों को महाराष्ट्र में आज भी बड़े भक्तिभाव से गाया जाता है। सिक्खों के धर्मग्रंथ 'गुरुग्रंथसाहब' में नामदेव के लगभग इकसठ पद संगृहीत हैं जिन्हें आज भी कीर्तनों में गाया जाता है।

नायक कवि—हिंदी के कवि। 'दिग्विजय भूषण' नामक ग्रंथ में इनके लिखे पद्य पाए जाते हैं।

नारद—ब्रह्मा के मानसपुत्र। ब्रह्मा ने पहले मरीचि, अत्रि आदि की ओर सनक, सनंदन, सनातन, सनत्कुमार तथा नारद की सृष्टि की। नारद की कथा प्रायः सभी पुराणों में देखी जाती है। 'नार' शब्द का अर्थ है जल। सर्वदा तर्पण करने के कारण इनका नाम नारद पड़ा। प्रजापति दक्ष ने प्रजा-सृष्टि की उत्कट इच्छा के कारण वीरण प्रजापति की कन्या असिक्नी को ब्याहा और उसके गर्भ से ५ हजार कन्याएं उत्पन्न कीं। हर्यश्व, शवलाश्व आदि दक्षपुत्रों को योगशास्त्र का उपदेश देकर संसारत्यागी बना दिया। इससे दक्ष अत्यंत क्रुद्ध हुए और शाप देकर उन्होंने नारद का नाश कर दिया। दक्ष के निकट आकर ब्रह्मा ने नारद के जीवन की प्रार्थना की, तब दक्ष ने अपनी एक कन्या ब्रह्मा को देकर कहा कि कश्यप इस कन्या को ब्याहें और इसीके गर्भ से पुनः नारद उत्पन्न होगा। ब्रह्मा ने दक्षकन्या कश्यप को दी और उसके गर्भ से पुनः नारद उत्पन्न हुए। (हरिवंश)

श्रीमद्भागवत में नारद ने भगवान् व्यास से अपने पूर्वजन्म के वृत्तांत कहे हैं, वे इसप्रकार हैं—

वह (नारद) वेदज्ञ ब्राह्मणों की एक दासी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। बाल्यकाल में ही वे उन वेदज्ञ ब्राह्मणों की सेवा करने लगे। ऋषियों का भी उन-पर अधिक स्नेह था। एक दिन ऋषियों का उच्छिष्ट खाने से वह पापमुक्त हो गए, उनकी चित्तशुद्धि हो गई। ऋषियों द्वारा उच्चारित हरिगुण के गान में उनका चित्त अत्यंत अनुरक्त हो गया। उससमय उनकी अवस्था ५ वर्ष की थी। एक दिन सांप के काटने से अकस्मात् उनकी माता की मृत्यु हुई। माता के मरने के अनंतर उन्होंने स्वाधीनभाव से उस आश्रम को छोड़कर उत्तर की ओर प्रस्थान किया और घूमते-घूमते वह एक वन में चले गए। अत्यंत क्षुधातुर और तृष्णार्त होने के कारण एक सरोवर में उन्होंने स्नान और जलपान किया। तदनंतर वह एक वट के वृक्ष के नीचे बैठकर भगवान् की आराधना करने लगे। एकाग्रचित्त से ध्यान करते-करते उन्होंने हृदय में भगवान् का दर्शन पाया, परंतु शीघ्र ही भगवान् के अंतर्हित हो जाने से नारद व्याकुल हो गए। भगवान् ने आकाशवाणी द्वारा नारद को सांत्वना देते हुए कहा—नारद, इस जन्म में तुम हमको नहीं देख सकते क्योंकि अजितेंद्रिय योगी हमको नहीं देख सकता, तो भी जो मैंने तुम्हें दर्शन दिया वह केवल तुम्हारी भक्ति की दृढ़ता के लिए। मेरी भक्ति से साधुजन इंद्रिय-जय करके मुझको प्राप्त कर सकते हैं। अतएव साधु-सेवा द्वारा तुम अपनी भक्ति दृढ़ करो, इसप्रकार तुम शीघ्र ही इस निंदित लोक को छोड़कर हमारे पार्श्वचर होओगे। हमारे अनुग्रह से तुमको प्रलयकाल में भी हमारी स्मृति बनी रहेगी। तब से नारद हरिनाम का जप करते-करते पृथ्वी-परिक्रमा करने लगे। अनंतर भोग के शेष होने पर इनका पंचभौतिक शरीर नष्ट हो गया। पुनः सृष्टि के अनन्तर विष्णु के मानसपुत्ररूप से नारद उत्पन्न हुए। (श्रीमद्भागवत)

ब्रह्मवैवर्तपुराण के मत से नारद ब्रह्मा के मानस-पुत्र थे। ये ब्रह्मा के कंठ से उत्पन्न हुए थे। ब्रह्मा ने नारद तथा अन्य अपने मानसपुत्रों से सृष्टिकार्य करने के लिए कहा। नारद ने देखा कि सृष्टिकार्य में लगने से ईश्वरचिंतन में बाधा होगी, इस कारण उन्होंने पिता की आज्ञा का पालन नहीं किया। इससे क्रुद्ध होकर ब्रह्मा ने नारद को शाप दिया। ब्रह्मा के शाप से नारद गंधमादन पर्वत पर गंधर्व-योनि में उत्पन्न हुए, तब इनका नाम उपवर्ह था। इस जन्म में उन्होंने गंधर्वराज चित्ररथ की ५० कन्याओं को ब्याहा था। उन स्त्रियों में मालावती सबसे प्रधान थी।

एक समय स्वर्गवेश्या रंभा ब्रह्मा की सभा में नाच

रही थी। उसको देखने से नारद का वीर्यपात हो गया, इससे क्रुद्ध होकर ब्रह्मा ने नारद को शाप दिया। ब्रह्मा के शाप से नारद गंधर्वदेह छोड़कर नरदेह में उत्पन्न हुए। ये कान्यकुब्जवासी गोपराज द्रुमिल की स्त्री कलावती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। कलावती वंध्या थी। काश्यप नारद नामक ऋषि स्वर्ग की अप्सरा मेनका को देखकर काममोहित हुए और उनका वीर्य-पात हो गया। किसी प्रकार से कलावती ने उस वीर्य को खा लिया। उससे उसके गर्भ रहा और उसी गर्भ से नारद उत्पन्न हुए। काश्यप नारद के वीर्य से होने के कारण इनका नाम नारद पड़ा। ये बालकों को जलदान तथा ज्ञानदान करते थे और ये जाति-स्मर और महाज्ञानी थे इस कारण इनका नाम नारद हुआ।

ददाति नारं ज्ञानं च बालकेभ्यश्च नित्यशः।
जातिस्मरो महाज्ञानी तेनायं नारदः स्मृतः॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

ब्राह्मणों ने नारद को विष्णु-मंत्र का उपदेश दिया था। उनकी आराधना से प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु ने उन्हें दर्शन दिया और शीघ्र ही अंतर्धान हो गए।

नारद के व्याकुल होने पर आकाशवाणी हुई—तुम इस नश्वर देह के अंत में मुझे पा सकोगे। यथा-समय शरीरत्याग करके नारद ब्रह्मलीन हुए। महा-भारत में लिखा है कि नारद ने ब्रह्मा से संगीत-विद्या सीखी थी और दक्ष के पुत्र को सांख्ययोग का ज्ञानोपदेश करके संसार त्याग किया। (महाभारत)

एक समय विष्णु की सभा में नारद और तुंबरु उपस्थित हुए। विष्णु की आज्ञा से तुंबरु गान करने लगे। तुंबरु का गान सुनकर नारद को ईर्ष्या उत्पन्न हुई, अतएव विष्णु की आज्ञा से उलूकेश्वर के निकट जाकर नारद गानविद्या सीखने लगे। गीत-वाद्य में शिक्षा पाकर नारद तुंबरु को जीतने की इच्छा से उनके घर की ओर जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने लूले-लंगड़े अनेक स्त्री-पुरुषों को देखा। उन स्त्री-पुरुषों ने कहा—हम लोग राग-रागिणी हैं, नारद के गान से हम लोगों का अंगभंग हो गया, तुंबरु के दर्शन के लिए हम लोग यहां खड़े हैं। यह सुनकर नारद लज्जित हुए। नारद ने विष्णु के समीप जाकर समस्त वृत्तांत कहा। विष्णु बोले—गीतशास्त्र में तुम्हें अभी अभि-ज्ञता नहीं प्राप्त हुई, जब हम यदुवंश में श्रीकृष्णरूप से अवतीर्ण होंगे तब तुम गानविद्या की शिक्षा प्राप्त करना। भगवान् श्रीकृष्ण के अवतीर्ण होने पर नारद वहां उपस्थित हुए। श्रीकृष्ण की आज्ञा से नारद ने पहले जांबवती और सत्यभामा के निकट दो वर्ष तक गान किया तथापि वे स्वर नहीं सीख सके। तदनंतर उन्होंने रुक्मिणी के निकट दो वर्ष तक वीणा से गान सीखा।

एक समय, नारद ने विष्णु से माया का स्वरूप पूछा। ब्राह्मण-रूप धारण करके विष्णु ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि के घर में जाकर माया के विविध रूप दिखाए। इसी यात्रा में एक सरोवर में स्नान करने से नारद को स्त्रीत्व प्राप्त हुआ। स्त्रीवेशी नारद १२ वर्ष तक राजा तालजंघ की पत्नी होकर रहे। अनंतर विष्णु आए और तालजंघ की पत्नी को सरोवर में स्नान कराकर उसे पुनः नारद बना लिया।
(भागवत)

विद्वानों का अनुमान है, नारद नाम का एक व्यक्ति पहले हुआ होगा, परंतु पश्चात् उस व्यक्ति के धर्ममत तथा सिद्धांतों के आधार पर एक संप्रदाय गठित हुआ। उस संप्रदाय के लोग नारद कहे जाते हैं। क्योंकि सृष्टि के आदि से लेकर श्रीकृष्ण जी पर्यंत नारद नामक देवर्षि का पता लगता है। नारद कभी देवर्षियों में और कभी ब्रह्मर्षियों में भी देखे जाते हैं। ऐसी स्थिति में एक नारद का होना वे विद्वान् स्वीकार करना नहीं चाहते। नारद के बनाए ग्रंथ का नाम 'नारद-पांचरात्र' और 'नारदसूत्र' है।

नारायण—(१) (देखो नर)

(२) एक ज्योतिषी पंडित। 'मुहूर्तमार्तंड' नामक जो संस्कृत का प्रसिद्ध ग्रंथ है, उसके रचयिता नारायण हैं। इन्होंने अपने ग्रंथ पर 'मार्तंडवल्लभा' नामक एक टीका भी की है। पं० सुधाकर द्विवेदीजी के मत से इन ग्रंथों का निर्माणकाल शाके १४९३ (१५७१ ई०) है। यही समय स्वयं नारायण ने अपने ग्रंथ में लिखा है। 'मुहूर्तमार्तंड' ग्रंथ के अंत में अपना कुछ विशेष परिचय भी इन्होंने दिया है। यथा—

श्रीमत्कौशिकपावनो हरिपदद्वन्द्वार्पितात्मा हरि-
स्तञ्जोऽनन्त इलासु रोचितगुणो नारायणस्तत्सुतः।
ख्यातं देवगिरेः शिवालयमुदक् तस्मादुदक् टापरो
ग्रामस्तद्वसतिर्मुहूर्तभवनं मार्तण्डमत्राकरोत्॥

इससे विदित होता है कि इनके पिता का अनंत और निवासस्थान देवगिरि से कुछ दूर पर टापर

एक गांव था । सन् १५७१ ई० और सन् १५७२ ई० में ग्रंथ बनाने से इनका समय ख्रीष्टीय १६वीं सदी का पिछला भाग मान लेने में कुछ भी बाधा नहीं ।

नारायणदास—ये हिंदी के कवि थे । सं० १६१५ वि० में उत्पन्न हुए थे । इन्होंने हितोपदेश को हिंदी छंदों में बनाया ।

नारायणदास वैष्णव—ये हिंदी के कवि थे । छंदसार नामक 'पिंगल ग्रंथ' भी इन्होंने लिखा है ।

नारायण बन्दीजन—ये हिंदी के कवि थे और काकूपुर जिला कानपुर के रहने वाले थे । सं० १८०९ वि० में ये उत्पन्न हुए थे । इन्होंने शिवराजपुर के चंदेल राजाओं की वंशावली बनाई है ।

नारायण भट्ट—ये गोकुलस्थ गोसाईं थे और ऊंचगांव बरसाने के समीप के रहने वाले थे । सं० १६२० वि० में इनका जन्म हुआ था । 'रागसागरोद्‌भव' में इनके पद पाए जाते हैं । ये महाराज बड़े भक्त थे । वृंदावन, मथुरा, गोकुल आदि तीर्थों में जो तीर्थ लुप्त हो गए थे, उन सबको प्रकट कर, रासलीला की जड़ इन्होंने ही प्रथम डाली थी ।

नारायणराय—ये बनारस के सरदार कवि के शिष्य थे । 'भाषाभूषण' की टीका और 'कविप्रिया' की वार्तिक टीका इन्होंने लिखी । श्रृंगाररस के इनके अनेक कवित्त पाए जाते हैं ।

नालंदा—प्राचीन भारत के ज्ञानकेंद्रों में नालंदा महाविहार का नाम उल्लेखनीय है । इस महाविहार के अवशेष बिहार प्रदेश की वर्तमान राजधानी पटना (पाटलिपुत्र) से ५५ मील दक्षिण-पूर्व में बड़गांव के विस्तृत क्षेत्र तक बिखरे हुए मिले हैं । मगध की राजधानी राजगृह से उत्तर-पश्चिम की ओर इसकी दूरी लगभग एक योजन पर्यंत बताई गई है । नालंदा बौद्धों तथा जैनों, दोनों धर्मों का महान् केंद्र था । बुद्ध तथा महावीर के समय नालंदा एक प्रसिद्ध नगर के रूप में प्रसिद्ध था । बुद्ध के प्रधान शिष्य उपतिस्य सारिपुत्र का जन्म नालंदा में ही हुआ था और वहीं पर उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया । बुद्ध स्वयं वहां गए थे । सम्राट् अशोक ने नालंदा जाकर सारिपुत्र के चैत्य की पूजा की थी और एक विशाल एवं भव्य स्तूप का निर्माण कराया था । जैनधर्म के २४वें तीर्थंकर महावीर स्वामी ने वहां जाकर लगभग चौदह वर्षों तक निवास किया था । इस अवधि में वहां जैनों के कई मंदिर निर्मित हुए, जिनके अवशेष समय-समय पर की गई खुदाइयों से उपलब्ध हुए हैं ।

चीनी यात्री ह्वेनत्सांग और ई-त्सिंग, जो कि ७वीं शती ई० में भारत आए थे और जो कई वर्षों तक यहां रहे, नालंदा गए थे । उन्होंने वहां अध्ययन भी किया था । अपने यात्रा-वृत्तांतों में उन्होंने नालंदा की तत्कालीन स्थिति पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला है । जिस समय ह्वेनत्सांग नालंदा आया था, उस समय वहां लगभग दस हजार विद्यार्थी अध्ययन करते थे । विश्वविद्यालय में एक हजार पांच सौ दस आचार्य-प्राचार्य अध्यापन के लिए नियुक्त थे । ह्वेनत्सांग ने नालंदा के तत्कालीन कुलपति शीलभद्र का शिष्यत्व प्राप्त कर, लगभग पांच वर्षों तक एक विद्यार्थी की भांति बौद्धधर्म तथा तत्त्वज्ञान का विधिवत् अध्ययन किया था । उसने नालंदा महाविहार को विश्व का सबसे बड़ा विद्याकेंद्र कहा है और वहां के आचार्यों की अद्‌भुत विद्वत्ता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है ।

नालंदा को महाविहार एवं विश्वविद्यालय के स्तर पर उन्नत करने का श्रेय गुप्त सम्राट् कुमारगुप्त शुक्रादित्य (४१४-४५५ ई०) को है । उसके बाद बुद्धगुप्त (४७५-४९५ ई०) ने इसका पुर्ननिर्माण किया । इस विश्वविद्यालय में अध्ययन हेतु चीन, कोरिया, मंगोलिया, जापान, तिब्बत, श्रीलंका और पूर्वी तथा पश्चिमी द्वीप-समूहों के विद्यार्थी भारत आते थे और ज्ञान-संपदा को लेकर अपने देशों को लौटते थे । विश्वविद्यालय के नियम उदार थे और सर्वसामान्य के लिए वहां अध्ययन की सुविधा थी । प्रवेश के लिए एक योग्यता परीक्षा देनी होती थी, जिसमें थोड़े ही विद्यार्थी सफल हो पाते थे । किंतु जो प्रवेशार्थी प्राचीन तथा नवीन विद्या-शाखाओं का ज्ञाता होता था, उसे सरलता से प्रवेश मिल जाता था । वर्तमान गुरुकुल वस्तुतः नालंदा जैसे प्राचीन विश्वविद्यालयों के परिवर्तित रूप हैं, यद्यपि वे उतने सर्वांगीण नहीं हैं ।

विश्वविद्यालय में अनेक विषयों की विधिवत् शिक्षा दी जाती थी । बौद्ध महायान वाङ्मय का विशिष्ट अध्ययन किया जाता था । इसके अतिरिक्त चारों वेद, षड्वेदांग, हेतुविधा, पुराण, शब्दविद्या (व्याकरण), चिकित्साविद्या, ज्योतिष और ब्राह्मण, बौद्ध-जैन, इन तीनों धर्मों का संपूर्ण ज्ञान, इन्द्रजाल (अथर्ववेद) सांख्य, शिल्पस्थानविद्या (विभिन्न कलाएं) और अध्यात्मविद्या आदि अनेक विरूप

अध्ययन के लिए नियत थे। भिक्षुओं के लिए विनय के अनुसार विशेष नियम निर्धारित थे।

विश्वविद्यालय के प्रत्येक अंतेवासी को अपनी प्रतिभा तथा योग्यता को प्रदर्शित करने की पूरी स्वतंत्रता एवं सुविधा प्राप्त थी। जो छात्र अपनी तर्कबुद्धि से विशिष्टता प्राप्त करता था अथवा अनुसंधान द्वारा विद्या की किसी नई शाखा की संस्थापना करता था, उसका सामूहिक सम्मान किया जाता था, जिसका कि राष्ट्रीय महत्त्व माना जाता था।

अध्ययन तथा अनुसंधान कार्य की सुविधा के लिए विश्वविद्यालय का एक पुस्तकालय था, जिसमें कई सहस्र हस्तलिखित पोथियां सुरक्षित थीं। तिब्बती स्रोतों के अनुसार, यह पुस्तकालय एक पृथक् क्षेत्र में स्थापित था, जिसे कि 'धर्मगंज' नाम से कहा जाता था। अपने ढंग का यह अद्भुत एवं विशाल पुस्तकालय था। उसके तीन प्रमुख अंग थे, जिन्हें रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नरंजक नाम से कहा जाता था। उसके रत्नसागर पुस्तकालय का भवन नौमंजिला था। इसीसे नालंदा के ग्रंथागार का अनुमान लगाया जा सकता है।

नासिक—रामायण, पुराणों आदि विभिन्न ग्रंथों और अभिलेखों में इसका वर्णन हुआ है। 'रामायण' के अनुसार यह जनस्थान पंचवटी के निकट गोदावरी नदी के तट पर स्थित था। यहां पर लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा की नाक काटने के कारण इस स्थान का ऐसा नामकरण हुआ। आधुनिक विद्वानों ने इसके तीन भाग किए हैं। गोदावरी नदी के बायें तट को पंचवटी या प्राचीन नासिक, उसके दक्षिण में मध्य नासिक और उसके पश्चिम में आधुनिक नासिक बताया गया है। प्राचीन नासिक में उमा-माहेश्वर का मंदिर और उसके निकट ही दक्षिण-पूर्व में नीलकंठेश्वर महादेव का मंदिर है। इस मंदिर में स्थित लिंग को महाराज जनक के समय का बताया जाता है। पंचवटी के निकट पूर्व में तपोवन में एक राममंदिर है। जिसमें स्थापित राम की प्रतिमा को अत्यंत प्राचीन बताया जाता है। सातवाहन शासकों के समय नासिक बौद्धों का भव्य एवं प्रसिद्ध केंद्र बन चुका था। नासिक में महायान-संप्रदाय के भद्रयानिकों द्वारा निर्मित बौद्ध गुफाओं का कला के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनकी संख्या २३ है और इनकी प्राचीनता ईसा की प्रथम शती है। यहां पर चैत्य एवं विहार, दोनों प्रकार की गुफाएं हैं। इनकी कलाशिल्प की बड़ी प्रशंसा की गई है।

निकुम्भ—(१) दैत्यविशेष। ये श्रीकृष्ण के द्वारा मारा गया था।

(२) कुंभकर्ण के पुत्र का नाम। यह रावण का मंत्री था। लंका के युद्ध में यह मारा गया था। इसके भाई का नाम कुंभ था। (रामायण)

निक्षुभा—देवलोक की एक अप्सरा। सूर्य के शापवश इसका जन्म मिहिर गोत्र के सुजिह्व नामक ब्राह्मण के घर कन्या-रूप में हुआ था। अपने पिता के आदेशानुसार यह प्रतिदिन अग्नि प्रज्वलित कर लाया करती थी। एक दिन एकाएक इसके हाथ की अग्नि भड़क उठी और उसके प्रकाश से सूर्य को इसका रूपलावन्य दिखाई दिया, जिससे सूर्य के मन में काम-वासना का उदय हुआ। सूर्य ने एक मनुष्य का रूप धारण किया और उसके पिता सुजिह्व के पास आकर कहने लगा कि उसने निक्षुभा से पाणिग्रहण तथा उसको गर्भधारण किया है। इसपर क्रोधित होकर सुजिह्व ने निक्षुभा को शाप दिया कि जिस संतान को तुम जन्म दोगी वह लोक में निंद्य तथा तिरस्कारणीय होगी। किंतु सूर्य ने निक्षुभा को वरदान दिया कि उससे उत्पन्न होनेवाली संतान मेरी पूजा की अधिकारिणी होगी। बाद में सूर्य के द्वारा इसके अनेक पुत्र हुए। (भविष्य)

निदाघ—ये पुलस्त्य के पुत्र थे। इनके गुरु का नाम ऋभु था। देविका नाम की नदी के किनारे वीरपुर नामक गांव में ये रहते थे। इन्होंने ऋभु के द्वारा अद्वैत तत्त्व की शिक्षा पाई थी। (विष्णुपुराण)

निधान कवि—(१) ये हिंदी के कवि सं० १७०८ वि० में उत्पन्न हुए थे। इनकी कविता सरस होती थी। हजारा में इनका उल्लेख किया गया है।

(२) ये ब्राह्मण हिंदी के कवि थे। ये अली अकबर खां बहादुर के यहां राजकवि थे। इनका लिखा 'शालिहोत्र' नामक ग्रंथ उत्तम है।

निपटनिरञ्जन स्वामी—ये सं० १६५० वि० में उत्पन्न हुए थे। ये सिद्ध हो गए हैं। इन्होंने कितने ग्रंथ बनाए हैं, इसका ठीक पता नहीं लगता। 'शांतसरस' और 'निरंजनसंग्रह' आदि ग्रंथ देखे जाते हैं।

निमि—सीता के पिता सीरध्वज जनक के पूर्वपुरुष। निमि के पुत्र मिथि थे। इन्होंने ही मिथिला बसाया था। मिथि के पुत्र का नाम जनक था। इन्हीं जनक

से इनके वंशज जनक नाम से प्रसिद्ध हुए। (देखो कुशध्वज)।

निम्बादित्य—वैष्णवों के चार प्रसिद्ध संप्रदायों का नाम पद्मपुराण में लिखा मिलता है। उनमें से पहला श्रीरामानुज-संप्रदाय है, जिसका सिद्धांत विशिष्टाद्वैतवाद है। दूसरा माध्व-संप्रदाय है, जिसके मत में जीव और ब्रह्म भिन्न-भिन्न हैं। तीसरा विष्णुस्वामी-संप्रदाय है, जो माध्व से बहुत कुछ मिलता है, दोनों भेदवादी हैं। चौथा वैष्णवों का संप्रदाय इन्हीं निंबादित्य द्वारा प्रवर्तित है। इनके सिद्धांत को द्वैताद्वैतवाद कहते हैं। इनके मतानुसार, जैसे डाल-पत्ते आदि वृक्ष से भिन्न हैं और अभिन्न भी हैं उसीप्रकार जीव भिन्न भी है और अभिन्न भी।

इनका निंबादित्य नाम पड़ने का यह कारण सुनने में आता है कि किसी जैन से इनका शास्त्रार्थ होता था। वाद-विवाद करते-करते संध्या हो जाने के कारण जैन संन्यासी ने भोजन करने का विचार त्याग दिया। तब निम्बादित्य आचार्य ने सूर्य को एक नीम के पेड़ पर उस संन्यासी के भोजन करने तक रोक रखा। इसी कारण इनका नाम निंबार्क या निंबादित्य पड़ा।

निंबादित्य-रचित ग्रंथ का नाम 'धर्माब्धिबोध' है। मथुरा के पास ध्रुवतीर्थ नामक स्थान है। वहीं पर निंबादित्य की गद्दी है। लोग कहते हैं, उनकी गद्दी पर उनके शिष्य हरिव्यासजी के वंशज आज तक विराजमान हैं। ये लोग निम्बार्कस्वामी का समय १४२० ई० से भी पूर्व बताते हैं। परंतु उनका कहना ठीक नहीं माना जा सकता क्योंकि तीसरे वैष्णव-सम्प्रदाय-प्रवर्तक वल्लभाचार्य १५३५ ई० में उत्पन्न हुए थे, निंबादित्य इनसे अवश्य बाद के हैं। अतएव इनका समय १६वीं सदी का अंतिम भाग, और १७वीं सदी का प्रथम भाग माना जा सकता है। इनके केशव और हरिव्यास नामक दो शिष्य थे।

निवाज कवि—(१) ये हिंदी के कवि और जाति के जुलाहे थे। ये बिलग्राम के रहने वाले थे। ये श्रृंगाररस के अच्छे कवि थे।

(२) ये अंतरवेद के निवासी और जाति के ब्राह्मण और हिंदी के कवि थे। ये महाराज छत्रसाल बुंदेला पन्ना नरेश के दरबार में रहते थे। आजमशाह की आज्ञा से इन्होंने शकुंतलानाटक का संस्कृत से हिंदी में अनुवाद किया था।

(३) ये भी हिंदी के कवि थे और बुंदेलखंडी ब्राह्मण थे। ये भगवंतराय खींची गाजीपुर वाले के यहां रहते थे।

निवातकवच—दैत्यविशेष। यह दैत्य संह्लाद का पुत्र और दैत्यपति हिरण्यकशिपु का पौत्र था। इसके वंशज भी निवातकवच कहे जाते हैं। महाभारत में इनकी संख्या तीन करोड़ लिखी है। यह दानवसमूह इंद्र आदि देवताओं के घोर शत्रु थे। पांडवों के वनवास के समय अर्जुन इंद्र के निकट अस्त्रविद्या सीखने के लिए स्वर्ग गए हुए थे। उन्होंने देवों से, अस्त्रविद्या-विशारद यक्षों से और गंधर्वों से भी अस्त्रविद्या सीखी। अस्त्र-विद्या सीख लेने पर अर्जुन ने इंद्र से गुरुदक्षिणा लेने के लिए प्रार्थना की। इंद्र ने इनसे गुरुदक्षिणा में निवातकवच आदि का वध किया जाना ही मांगा। अर्जुन मातली द्वारा परिचालित रथ पर बैठकर निवातकवच के स्थान पर गए और उसका समूल नाश किया। (महाभारत)

निशाकर मुनि—एक तपस्वी। इनका उल्लेख रामायण में किया गया है। दक्षिण समुद्र के किनारे विंध्यपर्वत पर इनका आश्रम था। इन्हींके साथ इनके आश्रम में रहकर संपाति ने अपनी आयु के ६० हजार वर्ष व्यतीत किए थे। (रामायण)

निशुम्भ—विख्यात दानव। यह दानव, महर्षि कश्यप के औरस और उनकी स्त्री दनु के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। इसके बड़े भाई का नाम शुंभ और छोटे का नमुचि था। नमुचि इंद्र के द्वारा मारा गया था। कनिष्ठ भाई की मृत्यु से क्रुद्ध होकर महावीर शुंभ और निशुंभ दोनों भाइयों ने स्वर्ग पर आक्रमण किया, तथा देवताओं को पदच्युत करके वे स्वयं स्वर्ग के राजा बने। महिषासुर के मंत्री रक्तबीज से इनकी भेंट हुई। रक्तबीज से इन लोगों ने सुना कि विंध्याचल पर्वत की कात्यायनी देवी ने महिषासुर को मारा है, और उसके सेनापति चंड तथा मुंड उसी देवी के भय से जल में छिपे हैं। शुंभ और निशुंभ ने कात्यायनी को मार डालने का संकल्प किया। उन लोगों ने सुधीर नामक दूत को देवी के पास भेजा। देवी के पास जाकर वह दूत बोला—पृथ्वी के शुंभ और निशुंभ सबसे श्रेष्ठ वीर हैं, तुम भी त्रिलोक में सर्वोत्तम सुंदरी हो, अतः इन दोनों भाइयों में से जिसको चाहो उसीको वरण सकती हो। देवी ने दूत से कहा—तुम जो कहते हो वह

बहुत ठीक है परंतु मैंने एक प्रतिज्ञा की है कि जो युद्ध में मुझको परास्त कर देगा उसीको मैं अपना पति बनाऊंगी। ऐसा दूत के कहने पर शुंभ-निशुंभ ने धूम्रलोचन नामक दैत्य को देवी को पकड़कर ले आने के लिए भेजा। धूम्रलोचन के मारे जाने पर दैत्यपति निशुंभ ने सेनापति चंड और मुंड को भेजा। परंतु वे दोनों भी मारे गए, तब उन लोगों ने तीस कोटि अक्षौहिणी सेना लेकर रक्तबीज को भेजा। रक्तबीज ने घोर युद्ध किया। इसके एक-एक रक्त-बिंदु से एक-एक दानव उत्पन्न होकर लड़ने लगते। परंतु अंत में, समस्त सेना के साथ रक्तबीज मारा गया और इंद्र को स्वर्ग का राज्य मिला।

(वामनपुराण)

मार्कंडेयपुराणांतर्गत देवीमाहात्म्य में शुंभ और निशुंभ की उत्पत्ति की बात नहीं लिखी है।

निषिधदेश—यह देश सतपुड़ा पहाड़ियों के निकटस्थ वर्तमान बरार के पश्चिमोत्तर और मालवा के दक्षिण में स्थित था। 'महाभारत' (३।३२४/१२) में गिरिप्रस्थ को निषधों की राजधानी बताया गया है। 'विष्णुपुराण' तथा 'वायुपुराण' में निषधदेश के राजाओं का वर्णन हुआ है, जोकि राजा नल के वंशज थे। निषधराज नल निष्णात सारथी और अश्वविद्या का जानकार था। उसकी रानी दमयंती विदर्भदेश की राजकुमारी थी। श्रीहर्ष ने अपने 'नैषधचरित' महाकाव्य में नल-दमयंती की कथा का विस्तार से उल्लेख किया है।

निषाद—निषादों का अस्तित्व वैदिककालीन है। संभवतः वे वनचर, आखेटक तथा मछुआरे थे। यह बर्बर आदिवासी वन्य-जाति आर्यावर्त से बाहर की थी। 'रामायण' (आदि०, अयो०) में निषादराज ग्रह का उल्लेख हुआ है। उसने राम का सत्कार किया था। 'रामायण' में श्रृंगवेरपुर उसकी राजधानी बताई गई है। मनु ने उसकी उत्पत्ति ब्राह्मण पिता तथा शूद्रा माता से बताई है (१०।८)। विंध्य एवं सतपुड़ा पर्वतमालाओं में उसका मूलनिवास बताया गया है और निषादराष्ट्र का क्षेत्र पटियात्र के पश्चिम विंध्य एवं सरस्वती के बीच निर्धारित किया गया है। दूसरी शती में निषादराष्ट्र पर पश्चिमी क्षत्रपों का अधिकार हो गया था।

नील—(१) माहिष्मती पुरी के राजा। अग्निदेव ने इनकी सुंदरी कन्या को ब्याहा था। अग्नि ने राजा नील को वर दिया था कि जो इस नगरी पर चढ़ाई करेगा वह अग्नि द्वारा भस्म हो जाएगा। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय सहदेव ने इनकी नगरी पर आक्रमण किया था। सहदेव ने जब देखा कि उनकी सेना आग से घिर गई है, तब वे अग्नि की उपासना करने लगे। प्रसन्न होकर अग्नि ने सहदेव को नीलराज से पूजा दिला दी और लौट जाने के लिए कहा।

(महाभारत)

(२) वानरसेनापति। रामचंद्रजी के सेतु बांधने के समय इसी वानर ने सहायता की थी।

नीलकण्ठ—ये प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। इनकी लिखी 'ताजिक नीलकंठी' नाम की पुस्तक का विशेष आदर है। इनके पिता का नाम अनंत और पितामह का नाम चिंतामणि था। प्रसिद्ध रामदैवज्ञ—जिन्होंने 'मुहूर्तचिंतामणि' नामक ग्रंथ लिखा है, इन्हींके कनिष्ठ भाई थे। नीलकंठ के पुत्र एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे जिन्होंने 'मुहूर्तचिंतामणि' की 'पीयूषधारा' नाम की टीका लिखी है। ग्रंथारंभ में ये अपने पिता का वर्णन इसप्रकार करते हैं—

सीमा मीमांसकानां कृतसुकृतचयः कर्कशस्तर्कशास्त्रे,
ज्योतिः शास्त्रे च गर्गः फणिपतिभणिति व्याकृतौ शेषनागः।
पृथ्वीशाकब्बरस्य स्फुरदतुलसभामण्डनं पण्डितेन्द्रः,
साक्षात् श्रीनीलकण्ठः समजनि जगतीमण्डले नीलकण्ठः॥

इससे मालूम होता है कि ये मीमांसक नैयायिक ज्योतिषी और वैयाकरण थे और अकबर शाह के सभासद् भी थे। इनका निवासस्थान विदर्भ देश और इनकी स्त्री का नाम पद्मा था।

अकबर बादशाह के समकालीन होने के कारण इनका समय १६वीं सदी का पिछला भाग ही निश्चित है।

नीलकण्ठ त्रिपाठी—ये टिकमापुर के रहने वाले थे। प्रसिद्ध कवि मतिराम के भाई थे और स्वयं कवि थे। इनके लिखे किसी ग्रंथ का पता नहीं लगा है।

नीलकण्ठ मिश्र—ये अंतरवेद के रहने वाले थे और सं० १६४८ वि० में उत्पन्न हुए थे। ये ब्रजभाषा के उत्तम पंडित और कवि थे।

नीलध्वज—एक पराक्रमी राजा। यह माहिष्मती नगरी का शासक था, जो हस्तिनापुर के दक्षिण में नर्मदा नदी के तट पर अवस्थित थी। इसकी पत्नी का नाम सुनंदा और पुत्र का नाम प्रवीर था। युधिष्ठिर के अश्वमेध के अश्व को इसने पकड़ लिया था और

उसके रक्षक वृषकेतु को पराजित कर दिया था। अनुशाल्व ने प्रवीर को पराजित किया। तदनंतर अर्जुन और नीलध्वज में घमासान युद्ध हुआ। इस संग्राम में अपने श्वसुर नीलध्वज की सहायता के लिए अग्नि भी युद्ध में कूद पड़ा। अग्नि अर्जुन की सेना को भस्म करने लगा। तब अर्जुन अग्नि की शरण में गया। अग्नि ने दोनों में मित्रभाव स्थापित किया और दक्षिण विजय के लिए नीलध्वज भी अर्जुन की सहायता के लिए उसके साथ गया। (जैमिनि अश्वमेघ)

नीलसखी—ये हिंदी के कवि थे। जैतपुर बुंदेलखंड के रहने वाले और सं० १९०२ वि० में उत्पन्न हुए थे। इनके लिखे पद रसीले होते थे।

नीलाधर—हिंदी के प्राचीन कवि। सं० १७०५ वि० में ये उत्पन्न हुए थे। पुराने कवियों ने इनकी प्रशंसा की है।

नृगराजा—ये प्राचीन राजा थे। पयोष्णी नामक नदी के किनारे सोमयज्ञ करके राजा नृग ने इंद्र को प्रसन्न किया था। राजा नृग ने सात अश्वमेध यज्ञ किए थे। इन सातों यज्ञों में राजा नृग ने बहुत धन व्यय किया था। यज्ञपात्र तथा आवरण आदि सभी सुवर्ण के बनाए गए थे। एक-एक यज्ञ में सात-सात यूप (यज्ञस्तंभ) सुवर्ण के बनवाए गए थे। ब्राह्मणों को बहुत दक्षिणा दी गई थी। राजा नृग ने इन यज्ञों में सुवर्ण की गौ बनवाकर दी थीं। इन्हीं यज्ञों के प्रताप से राजा नृग को इंद्रलोक प्राप्त हुआ था। (महाभारत)

इनके विषय में और भी कथा प्रचलित है, परंतु उनके मूल का कहीं पता नहीं चलता।

नृसिंह—देखें नरसिंह।

नेही कवि—ये हिंदी के कवि थे। इनकी कविता सरस होती थी।

नैमिषारण्य—यह स्थान गोमती नदी के वामतट पर सीतापुर से लगभग बीस मील के फासले पर है। इसे अब नीमसार मिसरिक भी कहते हैं।

नैसुक कवि—हिंदी के प्राचीन कवि। ये बुंदेलखंड के वासी थे और सं० १९०४ वि० में इनकी उत्पत्ति हुई थी। ये श्रृंगाररस की सुंदर कविता करते थे।

नोने कवि—ये बंदीजन थे। बांदा (बुंदेलखंड) के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम कवि बिहारीलाल था। मालूम नहीं, ये बिहारीलाल कौन हैं। ये हिंदी साहित्य में अत्यंत प्रवीण थे। इनकी उपलब्ध कविताओं से इनके अगाध पांडित्य तथा साहित्यनैपुण्य का परिचय मिलता है। मालूम नहीं, इनका कोई ग्रंथ है कि नहीं।

प

पक्षधर मिश्र—उद्भट नैयायिक। ये न्यायशास्त्र के बड़े पंडित और असामान्य बुद्धिमान थे। इनके विषय में अनेक किंवदंतियां प्रचलित हैं। बहुतों का कहना है कि पक्षधर मिश्र और प्रसन्नराघवकर्ता जयदेव दोनों एक ही थे। ये मिथिलावासी थे। प्रसिद्ध बंगीय नैयायिक इन्हींके शिष्य थे।

पक्षिल स्वामी—अतिप्राचीन नैयायिक पंडित। ये गौतम-विरचित न्यायसूत्र पर भाष्य करने वालों में सबसे प्राचीन हैं। इनका लिखा भाष्य भी अन्य भाष्यों की अपेक्षा उत्तम समझा जाता है। ये बहुत प्राचीन हैं। ख्रीष्टीय सदी के पूर्व चौथी सदी में इनकी विद्यमानता का पता लगता है। हेमचंद्र ने अपने अभिधान में पक्षिल स्वामी और चाणक्य को एक ही व्यक्ति माना है, इनका दूसरा नाम वात्स्यायन था। ये चंद्रगुप्त की सभा में विद्यमान थे।

पजनेश कवि—ये कवि पन्ना बुंदेलखंड के रहने वाले थे। सं० १८७२ वि० में इनकी उत्पत्ति हुई थी। इनका लिखा 'मधुप्रिया' नामक ग्रंथ हिंदी साहित्य में उत्तम है। इनकी अनूठी उपमा, अनूठे पद, अनुप्रास, यमक आदि प्रशंसा के योग्य हैं। इन्होंने 'नखशिखवर्णन' भी लिखा है।

पञ्चजन—असुरविशेष। यह असुर पाताल में रहता था।

श्रीकृष्ण ने इसे मारकर इसके अस्थि से पांचजन्य नामक शंख बनवाया था।

पञ्चम कवि नवीन—ये बंदीजन और अजयगढ़ (बुंदेलखंड) के वासी थे। इनका जन्म सं० १९११ वि० में हुआ था। ये अजयगढ़ के राजा गुमानसिंह के दरबारी कवि थे।

पञ्चम कवि प्राचीन—ये जाति के बंदी थे और बुंदेलखंड के रहने वाले थे। इनका जन्म सं० १७३५ वि० में हुआ था। ये पन्ना के महाराज छत्रसाल बुंदेला के दरबार में थे।

पञ्चमेढ—एक असाधारण उदर वाला राक्षस। इस विचित्र राक्षस की पांच इंद्रियां, पांच पैर, दस हाथ और आठ सिर थे। विशाल उदन होने के कारण इसका असाधारण आहार था। इसने युद्ध के समय बाली तथा सुग्रीव को उदरस्थ कर लिया था। इसीप्रकार दधीचि तथा कश्यप आदि ऋषियों को भी इसने निगल लिया था। वीरभद्र ने इनके साथ युद्ध कर, इसके उदर को फाड़ा और उदरस्थ अनेक व्यक्तियों का उद्धार किया। (पद्मपुराण)

पंचवटी—यह जनस्थान अगस्त्य आश्रम के निकट गोदावरी के तट पर स्थित था, जो वन्यपशुओं, मृगों तथा फल-फूलों से परिपूर्ण था। यहीं पर राम, सीता और लक्ष्मण एक पर्णकुटी बनाकर रहते थे। यहीं शूर्पणखा राम से मिली थी। और उसके दुराग्रह के कारण लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट लिए थे। (रामायण)

पञ्चशिख—ये सांख्यदर्शन के संप्रदाय में प्रसिद्ध दार्शनिक थे। इनके गुरु विख्यात दार्शनिक महात्मा असुरि थे। असुरि के गुरु सांख्यदर्शनप्रणेता महर्षि कपिल थे। पंचशिख ने ही सांख्यदर्शन के सिद्धांतों का प्रचार किया था। असुरि की स्त्री का नाम कपिला था। पंचशिख पुत्ररूप से गुरुपत्नी कपिला का स्तन्य पीते थे। इस कारण ये कपिलापुत्र भी कहे जाते थे।

पतञ्जल काप्य—एक वैदिक ऋषि, जिसका जन्म अंगिरस कुल के कवि क्षत्रिय ब्राह्मणवंश में हुआ था। यह भद्र देश का निवासी था। एक बार भुज्यु लाह्यायनि नामक ऋषि इसके आश्रम में आया। वहां इसकी भेंट उसकी कन्या से हुई। उस कन्या के शरीर में वास करने वाले सुनन्वन् अंगिरस से इसको तत्त्वज्ञान की उपलब्धि हुई। बाद में इसका याज्ञवल्क्य के साथ वाद-विवाद हुआ और इसे पराजय स्वीकार करनी पड़ी। 'बृहदारण्यकोपनिषद्' (३।३।१; ७।१) में 'याज्ञवल्क्य-भुज्य-संवाद' सुरक्षित है।

पतञ्जलि—ये प्राचीन 'वैयाकरण महाभाष्य' के रचयिता हैं। इनका निवास गोनर्द देश में था। इनकी माता का नाम गोणिका था। महाभाष्य के कतिपय वाक्यों को उद्धृत करके भांडारकर और गोल्डस्टुकर ने इनका समय निर्धारित करने का प्रयत्न किया है, और यह सिद्ध किया है कि पतंजलि यूनानी मिनेंडर और पाटलीपुत्र के राजा पुष्पमित्र के समकालीन थे। उन महाशयों के कथनानुसार, पतंजलि का समय सन् ई० के १४० वर्ष पूर्व से १२० वर्ष पूर्व तक निश्चित होता है। पतंजलि ने जो 'मौर्यैर्हिरण्यार्थिभिरर्चाः प्रकल्पिताः' अर्थात् मौर्यवंशी राजाओं ने सुवर्ण की कामना से पूजा की पद्धति चलाई—ऐसा वाक्य लिखा है। इससे गोल्डस्टुकर साहब समझते हैं कि वे मौर्यवंशीय प्रथम राजा चंद्रगुप्त से पहले न रहे होंगे। अर्थात् सन् ई० के ३१५ वर्ष पूर्व के समय की अपेक्षा प्राचीन न रहे होंगे। प्रत्युत संभव है कि उस वंश के अंतिम राजा के भी पीछे अर्थात् सन् ई० से १८० वर्ष पूर्व रहे हों। क्या इस अनुमान को भी असंभव कहने का साहस किया जाएगा?

'अरुणाद्यवनः साकेतम्' यवनराजा ने अयोध्यापुरी को घेरा, 'अरुणाद्यवनो माध्यमिकान्' यवनराजा ने माध्यमिकों को घेरा है, इन वाक्यों से अनुमान किया जाता है कि यूनान वालों ने पतंजलि के ही समय अयोध्या पर आक्रमण किया था। माध्यमिक नागार्जुन के शिष्यों का एक संप्रदाय है, जो शून्यवादी बौद्धों के नाम से विशेष प्रसिद्ध है। अब विचारना चाहिए कि यूनान वालों ने अयोध्या पर कब चढ़ाई की। प्राचीन यूनान के इतिहास से मालूम पड़ता है कि सबके वर्णनानुसार राजा मिनेंडर ने यमुना नदी तक के देशों को विजय किया। मथुरा में इसके नाम के सिक्के भी पाए जाते हैं। मिनेंडर का राज्यकाल, प्रोफेसर लासेन के मतानुसार, सन् ई० से १४४ वर्ष पूर्व है। निदान इन सब बातों से निस्संदेह यह बात प्रतीत होती है कि पतंजलि सन् ई० की पहली-दूसरी शताब्दी में वर्तमान थे।

किसी-किसीका कहना है, योगशास्त्रकार पतंजलि व्याकरण-महाभाष्यकार पतंजलि से भिन्न हैं और ये महाभाष्यकार ही वैद्यक ग्रंथ के प्रणेता हैं। इनके मत से योगशास्त्रकर्ता पतंजलि पाणिनि की

अपेक्षा प्राचीन हैं। किसीका मत है कि ये तीनों ग्रंथों के कर्ता पतंजलि भिन्न-भिन्न हैं। किसीका कहना है कि इन तीनों ग्रंथों के कर्ता एक ही पतंजलि हैं। पतंजलि का योगसूत्र चार भागों में विभक्त है। ये २६ तत्त्व मानते हैं। कपिल ने ईश्वर को न मानकर १५ तत्त्व माने हैं और ये ईश्वर को भी मानते हैं।

पतिराम—ये हिंदी के कवि थे और सं० १७०१ वि० में उत्पन्न हुए थे। इनके लिखे पद्य हजारा में पाए जाते हैं।

पदुमनदास—रीतिकालीन काव्यशास्त्रियों में इनका प्रतिष्ठित स्थान माना जाता है। ये बादम नगर के राजा रामसिंह के पुत्र दलेलसिंह के आश्रित कवि थे। अपने आश्रयदाता की प्रेरणा से इन्होंने १७४१ वि० (१६८४ ई०) में 'काव्यमंजरी' नामक ग्रंथ की रचना की थी। इनका एकमात्र यही ग्रंथ उपलब्ध है। इस कवि-शिक्षा विषयक ग्रंथ का स्थान केशव की 'कविप्रिया' के बाद माना जाता है। कुछ अंशों में यह 'कविप्रिया' से भी उत्कृष्ट है। भाषा-व्यवस्था और रचना-कौशल की दृष्टि से इनके उक्त ग्रंथ की आधुनिक विद्वानों ने बड़ी सराहना की है।

पद्मनाभ जी—ये ब्रजवासी थे और कृष्णदासजी पयअहारी गलता वाले के शिष्य थे। सं० १५६० वि० में ये उत्पन्न हुए थे। इनके लिखे पद 'रागसागरोद्भव' में पाए जाते हैं।

पद्मपुराण—पुराणों में इसका दूसरा स्थान है। इस महापुराण के पांच खंड हैं—(१) सृष्टिखंड, (२) भूमिखंड, (३)स्वर्गखंड, (४)पातालखंड और (५)उत्तरखंड। 'सृष्टिखंड' में भीष्म के प्रश्नों के उत्तर में पुलस्त्य ऋषि ने जो धर्मतत्त्व की व्याख्या की है वह लिखी गई है। पुष्करतीर्थ का माहात्म्य-वर्णन, ब्रह्मयज्ञ वेदपाठ-विधि, दानतत्त्व, विविध व्रत-कथा, शैल-जाया का विवाह, गो-माहात्म्य, ताड़का का उपाख्यान, कालकेय प्रभृति दैत्यों का विनाश प्रसंग, ग्रहों की पूजापद्धति, सृष्टिखंड में प्रधानतः इन्हीं विषयों की आलोचना की गई है। भूमिखंड में पृथ्वी का वर्णन है। पृथु, नहुष, ययाति प्रभृति राजाओं का उपाख्यान, शिवशर्मा, सुव्रत, च्यवन आदि की कथा, पितृमातृपूजा, धर्म की आलोचना, हुंड आदि दैत्यों के वध का विवरण—ये विषय भूमिखंड में विवेचित हुए हैं। 'भूमिखंड' में भूतत्त्व और पुरातत्त्व मिला है। अतएव यह खंड किसी समय का भूगोल और इतिहास माना जाता है। यह खंड सूत और शौनक के कथोपकथनरूप से बनाया गया है। इसमें १२७ अध्याय हैं। शौनक आदि ऋषियों के प्रश्न करने पर व्यासशिष्य सूत ने स्वर्ग का वर्णन किया है, वही बात 'स्वर्गखंड' में लिखी गई है। इसमें ४६ अध्याय हैं। 'स्वर्गखंड' में पहले सृष्टि-तत्त्व लिखा गया है। तदनंतर अनेक प्रकार के तीर्थों के माहात्म्य, धर्मालोचना, वर्णाश्रमधर्म, योगधर्म, व्रत आदि की आलोचना और बहुतसी स्तुतियां लिखी गई हैं। इस खंड के तीसरे अध्याय में भारतवर्ष का परिणाम नद-नदी, पर्वत और अधिवासियों का विवरण लिखा है। चतुर्थ अध्याय में समग्र भूमंडल का आभास पाया जाता है। इस खंड में दिलीप, पृथु, युधिष्ठिर आदि राजाओं का वर्णन है और निःसंतान होने के कारण संतान-प्राप्ति के उपाय के प्रसंग में श्रीधर राजा का उपाख्यान, लक्ष्मी व्रत के प्रसंग में भद्रश्रवा राजा का उपाख्यान, ब्राह्मण की प्राणरक्षा की फलोक्ति के प्रसंग में दीननाथ राजा का नरमेध और श्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रत के प्रसंग में चित्रसेन राजा का उपाख्यान वर्णित है। 'पातालखंड' ७२ अध्यायों में संपूर्ण हुआ है। इस खंड में ऋषियों के समीप महाभाग सूत रामचरित का वर्णन करते हैं। राज्याभिषेक तथा अश्वमेध यज्ञ से इस खंड का प्रारंभ किया गया है। मध्य में अनेक तीर्थों और कृष्णचरित्र का भी उल्लेख किया गया है। भारद्वाज आश्रम से आतिथ्य ग्रहण करके श्रीरामचंद्र का अयोध्या जाना तथा कौशल्या का मासिक श्राद्ध आदि का वर्णन करके इस खंड की समाप्ति की गई है। 'उत्तरखंड' में शिव-पार्वती के कथोपकथनरूप से अनेक धर्मतत्त्वों का विवरण दिया गया है। सगर राजा का उपाख्यान, देवशर्मा का उपाख्यान, जालंधरोपाख्यान, नानातीर्थमाहात्म्य, श्रीभागवतमाहात्म्य, गीतामाहात्म्य, भक्तिमाहात्म्य, विष्णुसहस्रनाम, श्रीरामशतनाम, नृसिंह और मत्स्य प्रभृति अवतारों का वर्णन इस खंड में है। (भारतवर्षीय इतिहास)

पद्मवर्ण—महाराज यदु के पुत्र। ये नागकन्या के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इनकी माता का नाम मुचकुंदा था। (हरिवंश)

पद्माकर भट्ट—ये बांदा बुंदेलखंड के वासी मोहन भट्ट के पुत्र थे। सं० १८३८ वि० में इनका जन्म हुआ था। ये प्रथम आपासाहब रघुनाथराव पेशवा के यहां थे।

इनके एक कवित्त से प्रसन्न होकर आपासाहब ने इन्हें एक लाख रुपये पारितोषिक में दिए। पुन: यहां से ये जयपुर गए और वहां सवाई जगत्सिंह के नाम 'जगद्विनोद' नामक ग्रंथ लिखा। इस ग्रंथ को लिखकर इन्होंने जयपुर के राजा से बहुत धन पाया। वृद्धावस्था में इन्होंने गंगासेवन किया था। उसी समय का लिखा इनका 'गंगालहरी' नामक स्तुतिग्रंथ विशेष आदरणीय है।

पद्मावती—(१) विदर्भ देश के राजा सत्यकेतु की पुत्री। इसका विवाह मथुरा के राजा उग्रसेन के साथ हुआ था। एक बार यह अपने मायके गई। वहां गोभिल या द्रुमिल नामक एक कुबेर-दूत से संबंध होने के कारण यह गर्भवती हो गई। इसने गर्भ को गिराने का बड़ा प्रयत्न किया; इसपर इसके गर्भस्थ शिशु ने कहा कि वह कालनेमि दैत्य के हंता विष्णु से बदला लेने के लिए जन्म धारण कर रहा है। यही शिशु कंस के नाम से कहा गया। (पद्मपुराण)

(२) प्रणिधि नामक एक वैश्य की स्त्री। एक बार पति के प्रवास के समय इसे किसी धनुर्ध्वज नामक आत्मज ने स्नान करते हुए देख लिया। वह उसपर मोहित हो गया। इसकी सखियों द्वारा रोके जाने पर भी वह नहीं माना तो उन्होंने हंसी में उसे कह दिया कि यदि वह गंगा-यमुना के संगम पर प्राण त्याग दे तो उसे पद्मावती प्राप्त हो सकती है। उसने सचमुच ही प्राण त्याग दिए। वह तत्काल ही प्रणिधि के रूप-आकार का जन्म धारण करके, उसके घर पहुंचा। इसपर पद्मावती को अपना वास्तविक पति ज्ञात करना असंभव हो गया। इसी समय विष्णु प्रकट हुए और उन्होंने पद्मावती से दोनों को पतिरूप में मानने के लिए कहा। पद्मावती द्वारा यह उत्तर देने पर कि भूमंडल में इसप्रकार का आचार निषिद्ध है, विष्णु उन तीनों को बैकुंठ ले गए। (पद्मपुराण)

पद्मिनी—भीमसिंह की प्रधान रानी। सन् १२७५ ई० में लक्ष्मणसिंह मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ में सिंहासन पर बैठे। लक्ष्मण कम अवस्था के थे, इसकारण उनके चाचा भीमसिंह ही राज्य-शासन करते थे। पद्मिनी रूपवती, गुणवती और पतिव्रता थी। पतिव्रता के गुण ही उसके लिए काल हुए। पद्मिनी के गुणाग्नि में पड़कर मेवाड़ की राजधानी जलकर भस्म हो गई।

खिलजीवंशी दिल्ली के सम्राट् ने पद्मिनी के रूप-गुणों की प्रशंसा सुनी। उसने पद्मिनी को पाने की आशा से चित्तौड़ पर आक्रमण तो किया, परंतु उसपर वह अधिकार न कर सका। अंत में, छल और विश्वासघात करके भीमसिंह को उसने कैद कर लिया। अलाउद्दीन ने समझा था कि भीमसिंह को कैद करने से पद्मिनी अनायास ही मिल जाएगी, परंतु उसकी आशा निष्फल हुई। पद्मिनी ने धूर्तशिरोमणि से भी धूर्तता की। उसने सम्राट् से कहलाया—मैं आत्मसमर्पण करने को तैयार हूं, परंतु मेरे आत्मसमर्पण करने से पहले आपको अपनी सेना हटा लेनी पड़ेगी। आपके डेरे तक मुझको पहुंचाने के लिए मेरी अनेक सहेलियां जाएंगी। उनकी किसी प्रकार की अप्रतिष्ठा न हो। कुलीन स्त्रियों के प्रति उचित सम्मान दिखाया जाए, इसका आपको पूर्ण प्रबंध करना पड़ेगा। आपको अंतिम विदाई के लिए स्वामी से मेरी एक बार भेंट करानी होगी। अलाउद्दीन ने पद्मिनी की सभी बातें मान लीं। नियत दिन हजार शस्त्रधारी, रणबांकुरे, राजपूत वीर परदादार डोलियों पर चढ़कर बादशाह के डेरे में एकत्रित होने लगे। थोड़ी देर के लिए पद्मिनी से भेंट करने के लिए भीमसिंह भी उसी कैंप में बुलाए गए। पद्मिनी भीमसिंह को अपनी सवारी में बैठाकर ले गई। पद्मिनी की सहेलियों की सवारी है, यह समझकर किसीने रोका-टोका तक नहीं। भीमसिंह के लौटने में विलंब हुआ तो अलाउद्दीन घबड़ाया। उसने शीघ्र ही डोलियों के परदे हटवाए। परदे हटाने पर जो उसने देखा उससे उसे बड़ा कष्ट हुआ। क्रोध से उसका हृदय जलने लगा। वीर राजपूतों ने भी शीघ्र ही बादशाह की सेना पर आक्रमण किया और उन लोगों को पद्मिनी और भीमसिंह का पीछा करने का अवसर न दिया। मार्ग में एक तेज घोड़े पर चढ़कर भीमसिंह भी निरापद चित्तौड़ के किले में पहुंच गए। किंतु इतना करने पर भी पद्मिनी स्वामी को न बचा सकी। अलाउद्दीन ने बड़े जोरशोर से चित्तौड़ पर आक्रमण किया। राजपूत वीर भी किले की रक्षा करने लगे। पद्मिनी के चाचा गोरा और उसके भतीजे बादल ने इस युद्ध में जो वीरता दिखाई, वह सचमुच राजपूतवीरों के लिए उचित थी। १२ वर्ष के बादल ने रणरंग में जो अभिनय दिखाया था, वह अर्जुनपुत्र अभिमन्यु के युद्ध का स्मारक था। भीमसिंह ने स्वप्न देखा

कि चित्तौड़ की अधिष्ठात्रीदेवी १२ राजपुत्रों का खून पीने के लिए व्याकुल हैं। एक-एक करके ग्यारह पुत्रों को भीम ने रण में भेजा, सब के सब मारे गए। अंत में, वंशलोप होने के भय से बचे हुए एक पुत्र को न भेजकर स्वयं भीमसिंह रणक्षेत्र में अवतरित हुए। चित्तौड़ की राजपूत वीरांगनाएं जुहार व्रत करने के लिए उद्यत हुईं। पद्मिनी बहुत दिनों के लिए पति से विदा होकर चिता में जल गई। अन्य राजपूत ललनाओं ने पद्मिनी का साथ दिया। भीमसिंह युद्ध में मारे गए। चित्तौड़गढ़ वीरशून्य हो गया, लेकिन नहीं हुआ एक सती का सतीत्वहरण। दिल्ली के बादशाह ने जिसके लिए इतना प्रयत्न किया वह पद्मिनी उनको न मिल सकी। अलाउद्दीन ने देखा, पद्मिनी की चिता से धूम निकल रहा था।

पद्मेश कवि—हिंदी के कवि। सं० १८०३ वि० में इनका जन्म हुआ था। इनकी कविता सुंदर होती थी।

पम्पा—तुंगभद्रा की एक सहायक नदी; इसका उद्गम ऋष्यमूक पर्वत से हुआ है। रामायण के अनुसार, यहां पर हनुमान की राम से प्रथम भेंट हुई थी। यह नदी निर्मल एवं कमलों से सुशोभित थी। यहां पम्पा नामक एक सरोवर भी था, जो अत्यंत मनोरम था।

पयोष्णी—तापती नदी की एक शाखा जो बरार प्रांत में है। इसे वहां पूर्णा भी कहते हैं।

परताप साहि—ये बुंदेलखंड के वासी और कवि रतनेश के पुत्र थे। ये बंदीजन थे। सं० १७६० वि० में इनका जन्म हुआ था। ये महाराजा छत्रसाल के दरबारी कवि थे। इन्होंने कई ग्रंथ भी लिखे हैं। हिंदी साहित्य में इनका लिखा 'काव्यविलास' नामक ग्रंथ मनोहर है। विक्रम साहि की आज्ञा से इन्होंने 'भाषाभूषण' और बलभद्र के नखशिख की टीका बनाई है। इनके 'विज्ञार्थकौमुदी' नामक ग्रंथ की बड़ी प्रशंसा हुई।

परम कवि बन्दी—ये कवि महोबे के रहने वाले थे और सं० १८७१ वि० में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने 'नखशिखवर्णन' लिखा है, जो उत्तम है।

परमानन्ददास—ये ब्रजवासी और वल्लभाचार्य के शिष्य थे और सं० १६०१ वि० में उत्पन्न हुए थे। ये कुछ कविता भी करते थे। 'रागसागरोद्भव' में इनके अनेक पद हैं। ये अष्टछाप के कवियों में गिने जाते हैं।

परमानन्दलल्ला पुराणीक—ये अजयगढ़ बुंदेलखंड के वासी थे। सं० १८९४ वि० में ये उत्पन्न हुए थे। इनका लिखा 'नखशिख' सुंदर है।

परमेश कवि प्राचीन—ये हिंदी के कवि थे और सं० १८६८ वि० में उत्पन्न हुए थे। इनके कवित्त हजारा में पाए जाते हैं।

परमेश बन्दीजन—ये कवि सतावां जिला रायबरेली के रहने वाले थे। सं० १७९६ वि० में इनका जन्म हुआ। इनकी फुटकल कविताएं पाई जाती हैं।

परशुराम—महर्षि जमदग्नि के पुत्र। इनकी माता रेणुका थीं। इनके पितामह महर्षि ऋचीक ब्राह्मण-पुत्र थे, किंतु इनकी पितामही सत्यवती थीं। (देखो ऋचीक)

परशुराम ने अपनी माता रेणुका का सिर काट लिया था, और इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियशून्य करने पर भी क्षत्रियकुल का समूल नाश नहीं कर सके थे। अनेक क्षत्रानियों ने अपना वंश बचा लिया था, (पौरव ज्ञाति विदूरथ के पुत्र ऋक्षवान् की पर्वतों ने तथा भल्लुकों ने रक्षा की थी। भल्लुकों की लड़ाई रामायण में लिखी है। विद्वान् कहते हैं, ये भल्लुक अनार्य जाति के थे, पशु नहीं। अनार्य जातियों में भल्लुक, व्याघ्र आदि की पूजा प्रचलित है। जो जाति जिस जंतु या पदार्थ की पूजा करती है उस जाति को उस पूज्य जंतु या पदार्थ से हानि होने का भय नहीं रहता और वह जाति भी अपने उसी पूज्य के नाम से पुकारी जाती है। आज भी सौ तालों में व्याघ्र और सुपारी गोत्र के मनुष्य देखे जाते हैं।) महर्षि पराशर ने सौदास के पुत्र सर्वकर्मा की रक्षा की थी। प्रतर्दन का पुत्र गोवत्सों द्वारा रक्षित हुआ था। महर्षि कश्यप ने इन सब राजकुमारों का राज्याभिषेक किया था। (देखो जामदग्न्य) (महाभारत)

परशुराम कवि—(१) ये हिंदी के कवि थे। दिग्विजय-भूषण में इनके कवित्त पाए जाते हैं।

(२) ये भी हिंदी के कवि थे और ब्रज के रहने वाले थे। सं० १६६० वि० में इनका जन्म हुआ था। इनके पद 'रागसागरोद्भव' में मिलते हैं। ये बड़े भक्त थे। ये श्रीभट्ट और हरिव्यासजी के सिद्धांत के अनुयायी थे। इन्होंने अपनी सुंदर कवित्व शक्ति का उपयोग 'भगवद्गुणवर्णन' में किया है।

परसाद कवि—ये हिंदी के कवि थे। सं० १६८० वि० में इनका जन्म हुआ था। ये उदयपुर के महाराणा के दरबारी-कवि थे। इनकी कविता की प्रसिद्धि कुछ

कम नहीं है ।

पराग कवि—ये हिंदी के कवि थे । काशीनरेश महाराज उदयनारायणसिंह की सभा में ये रहते थे । इन्होंने 'अमरकोश' के तीनों कांडों का हिंदी में अनुवाद किया है ।

परावसु—एक अंगिरावंशीय ऋषि । यह विश्वामित्र ऋषि का पौत्र, रैम्य ऋषि का पुत्र और अवविसु ऋषि का बड़ा भाई था । पशु-भ्रम से इसने अपने पिता का वध कर दिया था, जिससे इसको ब्रह्महत्या का पाप लगा और यह अपनी ऋत्विक परंपरा से च्युत हो गया । इसके भाई अवविसु ने इसके ब्रह्महत्या-पातक को दूर करने के लिए अनुष्ठान तथा तपस्या की और इसे पुनः इसका स्थान दिलाया । इसने एक बार परशुराम के क्षत्रियद्रोह पर और उसकी आत्म-प्रशंसा के अभियान पर व्यंग्य किया था, जिससे क्रोधित होकर वह क्षत्रिय-संहार के लिए पुनःप्रवृत्त हुआ । (महाभारत)

पराशर—महर्षि वसिष्ठ के पौत्र और शक्ति के पुत्र । इनकी माता का नाम अदृश्यंती था । इनका जन्म-विवरण महाभारत में इसप्रकार लिखा है—

एक समय इक्ष्वाकुवंशी राजा कल्माषपाद एक गली से जा रहे थे, वसिष्ठपुत्र शक्ति भी उसी मार्ग से जाने लगे । राजा ने उन्हें मार्ग छोड़ देने के लिए कहा, परंतु शक्ति ने नहीं माना, इससे क्रुद्ध होकर राजा कल्माषपाद ने शक्ति को कोड़ा मारा । शक्ति ने राजा को शाप दिया—"तुमने एक तपस्वी वेदज्ञ ब्राह्मण को राक्षस के समान मारा है, अतएव तुम नरमांसभक्षी राक्षस होकर मारे-मारे फिरोगे ।" महर्षि शक्ति के शाप से राजा कल्माषपाद सबसे पहले शक्ति को ही खा गया, तदनंतर वसिष्ठ के अन्यान्य पुत्रों को । वसिष्ठ के पुत्रों का नाश करने में उनके प्रसिद्ध शत्रु विश्वामित्र का भी संकेत था । विश्वामित्र ने राक्षसरूपी कल्माषपाद को खुल्लम-खुल्ला इस कार्य को करने के लिए उभाड़ा था । महर्षि वसिष्ठ इस बात को जानते थे कि महर्षि बनने के प्रयासी विश्वामित्र की प्रेरणा से यह ब्राह्मणवध किया जा रहा है, परंतु उन्होंने इस दुष्कर्म का उत्तर देना उचित नहीं समझा, क्योंकि वे महर्षि थे और महर्षि बनना नहीं चाहते थे । महर्षि वसिष्ठ ने पुत्र-शोक से कातर होकर शरीर त्याग करने के लिए अनेक प्रयत्न किए, परंतु सब निष्फल हुए । अंत में, हारकर वे घर लौटे आते थे कि उन्हें पीछे से वेद-ध्वनि सुनाई पड़ी । वसिष्ठ ने पूछा—हमारे पीछे कौन आ रहा है ? पीछे से उत्तर मिला—आपकी ज्येष्ठ-पुत्रवधू अदृश्यंती । अदृश्यंती बोली—हमारे गर्भ में आपका पौत्र वर्तमान है, वह गर्भ में १२ वर्ष से वेदाध्ययन कर रहा है । इससे वसिष्ठ को आश्वास हुआ । उन्होंने समझा कि अब वंशरक्षा होने की आशा हो गई । वे प्रसन्न होकर पुत्रवधू के साथ लौटे आ रहे थे कि मार्ग में एक राक्षस अदृश्यंती को निगल जाने के लिए दौड़ा । वसिष्ठ ने योगबल से जान लिया कि यह राक्षस नहीं है किंतु हमारे पुत्र के शाप से राक्षस बना हुआ कल्माषपाद नामक राजा है । वसिष्ठ ने अपनी पुत्रवधू को अभय दिया और मंत्रपूत जल के अभिषेक से राजा को शापमुक्त किया । वसिष्ठ ने राजा को पुत्र होने का वर दिया, और अयोध्या में जाकर राज्य करने के लिए कहा । यथासमय अदृश्यंती ने एक पुत्र उत्पन्न किया । वसिष्ठ ने उस पुत्र का नाम पराशर रखा । बड़े होने पर पराशर ने अपने पिता की मृत्यु का हाल सुना । तदनंतर वे राक्षसकुल का नाश करने के लिए यज्ञ करने लगे । राक्षसों के प्राणरक्षार्थ पुलस्त्य, पुलह आदि महर्षि पराशर के यहां गए, और जाकर बोले—वत्स, तुम जिनको पितृहत्या का दोषी समझते हो, असल में वे दोषी नहीं हैं, तुम्हारे पिता ही अपने वध का स्वयं कारण थे, तुम्हारे पिता को मारने वाला कल्माषपाद शापमुक्त होकर स्वर्ग में है, तुम क्रोध दूर करो, व्यर्थ हत्या की आवश्यकता नहीं है । ऋषियों के उपदेश से पराशर अपने संकल्प से विरत हुए । (महाभारत)

वेद-विभाग-कर्त्ता कृष्णद्वैपायन पराशर के पुत्र थे । पराशर तीर्थयात्रा के लिए अनेक देशों में घूमते-फिरते यमुना नदी के तीर पर उपस्थित हुए । नदी पार कराने को पराशर ने धीवर से कहा । धीवर ने अपनी कन्या मत्स्यगंधा को इस काम के लिए नियुक्त किया । नदी के बीच में नाव के पहुंचने पर पराशर कामातुर हुए और उन्होंने मत्स्यगंधा से संगम करना चाहा । मत्स्यगंधा ने उस पार चलकर उनकी अभि-लाषा पूरी करने के लिए कहा । शीघ्र ही नौका यमुना के उस पार पहुंच गई । मत्स्यगंधा ने रात तक उनको ठहरने के लिए कहा, क्योंकि दिवाविहार शास्त्रविरुद्ध है । उन्होंने तपोबल से वहां कोहरा फैला दिया,

और मत्स्यगंधा के अनुरोध करने पर उसका शरीर सुगंधयुक्त करके उसके साथ विहार किया। इसी संगम से वेदव्यास की उत्पत्ति हुई। इनका जन्म द्वीप में हुआ था, इस कारण ये द्वैपायन नाम से प्रसिद्ध हैं। द्वैपायन जन्म लेते ही माता की आज्ञा से तपस्या के लिए वन में चले गए। वन जाने के समय द्वैपायन अपनी माता से कहते गए कि जब तुम स्मरण करोगी तभी मैं आ जाऊंगा।

परीक्षित्—तृतीय पांडव अर्जुन के पौत्र और वीरबालक अभिमन्यु के पुत्र। ये मत्स्यदेशाधिपति विराट की कन्या उत्तरा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। एक समय राजा परीक्षित् ने सुना कि हमारे राज्य में कलि ने प्रवेश किया है। वे कलि को दंड देने के लिए सरस्वती नदी के तीर पर उपस्थित हुए। वहां उन्होंने देखा कि राजोचित वस्त्र से सुसज्जित एक शूद्र, एक गौ और एक बैल को डंडों से मार रहा है। उस वृषभ के तीन पैर नष्ट हो चुके थे, केवल एक रह गया था। राजा परीक्षित् ने सोचा कि यह वृषभ त्रिपादहीन धर्म है, गौ, पृथ्वी और दंडधारी शूद्र ही कलि है। वृष से परिचय पाकर राजा ने कलि का वध करने के लिए खड्ग उठाया। कलि राजवेश छोड़कर उनके पैरों पर गिर गया, और उसने प्राण की भिक्षा चाही और अपने रहने के लिए राजा से स्थान बताने को भी कहा। राजा परीक्षित् बड़े दयालु थे, उन्होंने अपने पैरों पर कलि को पड़ा देख, दयावश उसको क्षमा किया। उन्होंने कलि के रहने के लिए द्यूत, मद्यपान, स्त्री, हिंसा आदि स्थान बता दिए। इसीसे इन चारों स्थानों में चार प्रकार के अधर्म विद्यमान हैं। द्यूत में मिथ्या, मद्यपान में मत्तता के कारण तपोनाश, स्त्री में शुद्धता का नाश और हिंसा में क्रूरता के कारण तपोनाश। (भागवत)

एक समय राजा परीक्षित् मृगया के लिए वन में गए हुए थे। एक मृग को बाण मारकर उसके पीछे पीछे राजा दौड़े जा रहे थे। मृग दूर निकल गया था। मार्ग में एक मुनि मिले। राजा ने उनसे मृग के विषय में पूछा। वह मुनि मौनी थे अतएव उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया। वृद्ध, क्षुधातुर और श्रांत राजा को इससे बड़ा कष्ट हुआ। क्रुद्ध होकर राजा ने एक मरा सांप मुनि के गले में माला की तरह पहना दिया। फिर भी मुनि ने कुछ उत्तर नहीं दिया। इससे दुःखी होकर राजा अपनी राजधानी में लौट आए। इस मुनि के श्रृंगी नामक एक महातेजस्वी पुत्र था। उसके एक मित्र ने हंसी में उससे कहा, "श्रृंगिन्! तुम्हें अभिमान करने का कोई कारण नहीं है, तुम्हारे पिता ने मृत सर्प को गले में धारण किया है।" यह सुनकर श्रृंगी ने शाप दिया—जिस पापी ने हमारे निरपराध पिता के गले में मरा हुआ सांप डाला है, वह आज से सात दिन के बीच तक्षक के काटने से मर जाएगा। इस शाप की बात जब पुत्र के मुख से श्रृंगी के पिता ने सुनी, तब उन्होंने अपने पुत्र को अनेक उपदेश दिए और शापानुग्रह करने के लिए भी कहा। परंतु पुत्र शापानुग्रह करने को प्रस्तुत नहीं हुआ। तब ऋषि ने गौरमुख नामक एक शिष्य के द्वारा शाप का वृत्तांत राजा से कहला दिया और तक्षक से सावधान होने के लिए भी कहा। देखते-देखते सातवां दिन उपस्थित हुआ। तक्षक ने देखा कि एक ब्राह्मण बड़ी तेजी से राजधानी की ओर जा रहा है। उससे तक्षक ने पूछा, क्यों जी ब्राह्मण! तुम कहां जा रहे हो? ब्राह्मण बोला, आज हमारे राजा परीक्षित् को सर्प काटेगा, मैं उनको आरोग्य करने के लिए जा रहा हूं। तक्षक ने अपना परिचय देकर एक वृक्ष को काटा। उसी क्षण वृक्ष भस्म हो गया। तदनन्तर तक्षक ने उस वृक्ष को ब्राह्मण से पुनः जीवित करने के लिए कहा। उस ब्राह्मण का नाम काश्यप था। काश्यप ने शीघ्र ही उस वृक्ष को मंत्रबल से हरा-भरा कर दिया। तक्षक, ब्राह्मण की शक्ति देखकर कुछ चिंतित हुआ। ब्राह्मण से बातचीत करने पर उसे मालूम हुआ कि धनलाभ की इच्छा से वह राजा के पास जा रहा है। यह जानकर तक्षक ने ब्राह्मण को बहुत अधिक धन दिया और राजा की चिकित्सा करने को मना कर दिया। नियत समय पर तक्षक ने राजा को काटा और राजा ने प्राणत्याग किया। (महाभारत)

देवीभागवत में मूलकथा इसीप्रकार लिखी गई गई है। परंतु वहां अधिक यह लिखा है कि राजा ने सतखना अटारी बनवाई थी, मणिमंत्रौषधि के प्रभाव जानने वाले बड़े-बड़े विद्वान् उसके रक्षक थे। तक्षक ने कई एक सर्पों को तपस्वी का वेष धारण कराकर उनके हाथों में फल दिए, और उन्हीं फलों में वह स्वयं जाकर बैठा। परंतु पहरे वालों ने उन तपस्वीवेषधारी सर्पों को राजभवन में नहीं घुसने दिया। तब उन लोगों ने अपने फल भिजवा दिए। राजा ने उन पके हुए फलों में से ज्योंही एक फल

तोड़ा, त्योंही देखा कि उसमें एक छोटा-सा कीट बैठा है। उस समय संध्या हो गई थी। राजा ने देखा ब्रह्मशाप व्यर्थ हुआ। इसीसे उस छोटे कीट से कटवाकर उन्होंने ब्रह्मशाप को सम्मानित करना चाहा। राजा ने उस कीट को अपनी ग्रीवा पर रखा। तब तक्षक ने अपनी भयंकर मूर्ति धारण की और राजा को काटकर वह चला गया। इसप्रकार राजा परीक्षित् की मृत्यु हुई। (देवीभागवत)

परुष्णी—इस नदी का अस्तित्व ऋग्वेदकालीन है। इसका दूसरा नाम इरावती है। इसीके तट पर प्रसिद्ध दासराज-युद्ध हुआ था। यही वैदिक परुष्णी वर्तमान रावी नदी के नाम से प्रसिद्ध है। यूनानी लेखकों ने इसे 'हाइड्रोएट्स' कहा है।

पर्णाशा—यह नदी राजपूताने में है और इसका प्रचलित नाम बनास है। यह चंबल में गिरती है।

पर्वत—एक देवर्षि, जो कश्यप का मानसपुत्र और नारद का भतीजा था। यह जनमेजय के सर्पयज्ञ में उपस्थित था और इसका युधिष्ठिरसभा, इंद्रसभा तथा कुबेरसभा में सामान्य प्रवेश था। वनवासकाल में यह पांडवों से मिलने के लिए काम्यकवन गया था। एक बार नारद और इसका संजय की कन्या दमयंती से प्रेम हो गया था। नारद के साथ दमयंती का विवाह हो जाने पर इसने नारद को वानरमुख बनने का शाप दिया था। (महाभारत)

पर्वगुप्त—काश्मीर के एक राजा का नाम। ये वक्रांधि संग्रामगुप्त के पुत्र थे। सं० २४ वि० में इन्होंने अपने कुकृत्यों से राज्य पाया था। इन्होंने पहले तो अभिचार कराया परंतु वह निष्फल हुआ। अंत में, इन्होंने चढ़ाई की और अपने पिता को मारकर स्वयं राजा बन गए। इन्होंने प्रजा को सताकर अधिक धन उपार्जन किया था। एक स्त्री के फेर में पड़ने से इनके प्राण गए। (राजतरंगिणी)

पवहारी बाबा—एक विख्यात योगी। ये सन् १८४० ई० में जौनपुर जिला के अंतर्गत प्रेमापुर नामक स्थान में जन्मे थे। इनके पिता का नाम अयोध्या तिवारी था। अयोध्या तिवारी एक निष्ठावान् व्यक्ति थे। अयोध्या तिवारी के बड़े भाई लक्ष्मीनारायण संसार-वासना छोड़कर गाजीपुर के जिले में कुर्थाना नामक गांव में गंगा के तीर पर एक कुटी बनाकर उसमें भजन-पूजन किया करते थे। पवहारी बाबा पिता के दुलारे पुत्र थे। इनका नाम था रामभजनदास। माता-पिता आदर से इनको शुक्राचार्य कहते थे। बाल्यावस्था में ही चेचक के कारण इनकी दाहिनी आंख फूट गई थी। पांचवें वर्ष में इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ था। इनके चाचा योगी लक्ष्मीनारायण कठिन रोग के कारण अंधे हो गए थे। ये अपने पिता की आज्ञा से उनकी सेवा करने के लिए गए। उस समय इनकी अवस्था १० वर्ष की थी। वहां रहकर इन्होंने बड़े-बड़े पंडितों से संस्कृत का अध्ययन किया। वेदांतदर्शन का इन्होंने बड़े मनोयोग से अध्ययन किया। सन् १८५६ ई० में योगी लक्ष्मीनारायण का स्वर्गवास हुआ। तब शुक्राचार्य अनेक तीर्थों में घूमने लगे। बदरिकाश्रम से लेकर सेतुबंध रामेश्वर तक जितने तीर्थ थे उन सब में ये पैदल गए। तीर्थों से लौटकर इन्होंने अन्न खाना छोड़ दिया था। वे केवल दूध और बिल्वपत्र का रस पीकर रहते थे। तभी से लोग इन्हें पवहारी बाबा कहने लगे। कुछ दिनों के बाद इन्होंने दूध और पत्र-रस भी छोड़ दिया तथा ५० मिर्चों को पीसकर उन्हींका रस पी जाते थे। वे एक घर में द्वार बंद करके योगसाधना करते थे। योगसाधना करके जब वे बाहर निकलते थे तब देखने वालों को मालूम पड़ता था मानो उनके शरीर से ज्योति निकल रही है। ये बड़े महात्मा हो गए थे। इनकी वेष-भूषा संन्यासियों जैसी नहीं थी। ये अन्नदान को बड़ा पुण्य समझते थे और सर्वदा इनके यहां अन्न बांटा जाता था।

पांचाल—कुरु-पांचालों की पागप्रियता का ब्राह्मण-ग्रंथों में उल्लेख हुआ है। यद्यपि इन दोनों की बोलियों में समानता थी, तथापि वे भिन्न-भिन्न जातियां थीं और उनके अलग-अलग जनपद थे। पांचाल जनपद, कुरु जनपद की पूर्व दिशा में था।

पाटलावती—काली सिंद नदी, जो चंबल की एक शाखा है।

पाटलीपुत्र—मगध राज्य की प्राचीन राजधानी। सर्वप्रथम अजातशत्रु ने इस नगर में अपनी राजधानी स्थापित की थी। जिस समय यह नगर अजातशत्रु की राजधानी बना, उस समय इसका नाम पाटलीग्राम था। सुनिध और भाषाकार नामक अजातशत्रु के मंत्रियों ने वहां दुर्ग, परिखा आदि बनवाया। अजातशत्रु के राज्यकाल में भगवान् बुद्धदेव विद्यमान थे। मंत्रियों ने नई राजधानी में भगवान् बुद्ध का स्वागत किया। भगवान् बुद्ध ने पाटली-

पुत्र में आकर अपने अनुचर आनंद से कहा था— "यह नगर किसी तरह अत्यंत प्रसिद्ध होगा, यह वाणिज्य का एक विख्यात नगर होगा।" गौतम बुद्ध की यह भविष्यवाणी सफल हुई थी। चंद्रगुप्त और अशोक की राजधानी बनकर पाटलीपुत्र ने बड़ी उन्नति की।

पाटलीपुत्र की स्थापना के विषय में अनेक प्रकार के मत देखे जाते हैं। ग्रीक ऐतिहासिक डायडोरस का मत है कि हेरोक्लस ने इस नगरी की प्रतिष्ठा की थी। पाश्चात्य पंडितों का सिद्धांत है कि श्रीकृष्ण के भाई बलराम और हेरोक्लस दोनों एक ही मनुष्य के नाम हैं। हम पाश्चात्य पंडितों के इस सिद्धांत का अनुसरण करना उचित नहीं समझते हैं। पुराणादि ग्रंथों में पाटलीपुत्र की स्थापना के विषय में जो लिखा है उसकी आलोचना हम यहां करेंगे। वायुपुराण में भविष्य राजवंशवर्णन के प्रसंग में लिखा है कि क्षेमवर्मा के राज्यकाल के पच्चीस वर्ष के पश्चात् राजा अजातशत्रु का राज्यकाल प्रारंभ होगा, अनंतर राजा क्षत्रौजा चालीस वर्ष पर्यंत राज्यशासन करेंगे। उसके बाद राजा बिंबिसार का अट्ठाइस वर्ष, राजा दर्भक का पच्चीस वर्ष, और नरपति उदायी का तेंतीस वर्ष राज्य रहेगा। राजा उदायी कुसुमपुर नामक एक प्रसिद्ध नगर की स्थापना करेंगे। कुसुमपुर की स्थापना गंगा के दक्षिणी तीर पर होगी। राजा उदायी के राज्यशासन के चौथे वर्ष इस नगर की प्रतिष्ठा होगी। महावंश नामक एक बौद्धग्रंथ में लिखा है कि राजा अजातशत्रु के पुत्र उदय ने कुसुमपुर या पाटलीपुत्र नाम का नगर बनवाया। वायुपुराण का महावंश के साथ मिलान करते समय वंशावली में अजातशत्रु और उदय का स्थान बतलाना बहुत कठिन है। विष्णुपुराण में अजातशत्रु के पुत्र का नाम दर्भक लिखा है। वायुपुराणोक्त बिंबिसार के पुत्र दर्भक और वायुपुराणोक्त अजातशत्रु के पुत्र दर्भक, ये दोनों एक हैं कि नहीं यह बतलाना भी बड़ा कठिन है क्योंकि वायुपुराण के बिंबिसार और विष्णुपुराण के विंबसार को यदि एक मान लें तो अजातशत्रु के लिए बड़ी गड़बड़ी होगी। वायुपुराणानुसार, अजातशत्रु बिंबिसार के पौत्र हैं, और विष्णुपुराण में लिखा है कि अजातशत्रु बिंबिसार के पुत्र थे। संभव है, अधिक समय बीतने के कारण लिपिकर के प्रमाद से बीच के एक-दो नाम छूट गए हों। अथवा वंशावली लिखने में ही उलट-पलट हो गई हो। बौद्धग्रंथों से यह मालूम होता है कि बुद्धदेव जब अंतिम बार गंगा पार करके राजगृह से वैशाली नगर में गए। उस समय मगधराज अजातशत्रु के दो मंत्री पाटलीपुत्र में दुर्ग बनवा रहे थे। उस समय व्रिजीवासी उज्जिहानगण बड़े पराक्रमी हो गए थे। उनके अत्याचारों से रक्षा पाने के लिए मगधराज ने दुर्ग बनवाना प्रारंभ किया था। उस समय बुद्ध भगवान् ने भविष्यवाणी भी की थी। इन सब बातों से यह सिद्धांत स्थिर किया जा सकता है कि राजा अजातशत्रु ने ही इस नगर को बनवाना प्रारंभ किया हो, परंतु उसकी समाप्ति उनके पुत्र या पौत्र के समय में हुई हो।

पाणिनि—प्रचलित संस्कृत व्याकरण के कर्ता-ऋषि। प्रोफेसर मैक्समूलर के कथनानुसार, पाणिनि, कात्यायन वररुचि के समकालीन तथा सन् ई० से ३५० वर्ष पूर्व के सिद्ध होते हैं। कात्यायन वररुचि का वर्णन ऊपर हो चुका है और वहीं पर पाणिनि को भी प्रायः उनका समसामयिक ही कहा है। मैक्समूलर अपने मत को प्रमाणित करने के लिए सोमदेव भट्ट रचित कथा-सरित्सागर से प्रमाण उद्धृत करते हैं। परंतु कथा-सरित्सागर ऐतिहासिक विषयों में कितना प्रामाण्य है, इस विषय में संदेह है। क्या काश्मीर में रचे जाने के कारण राजतरंगिणी के समान कथा-सरित्सागर प्रामाणिक माना जा सकता है। जिस-प्रकार राजतरंगिणी लिखने के लिए कल्हण ने ऐतिहासिक सामग्री एकत्रित की थी, क्या सोमदेव भट्ट ने भी कथा-सरित्सागर के लिए ऐतिहासिक सामग्री एकत्रित की थी? अभी तक तो यही मालूम हुआ है कि काश्मीरराज अनंतदेव की पटरानी सूर्यवती के मनस्तोष के लिए कथा-सरित्सागर रचा गया था। क्या मनोविनोद के लिए स्त्रियां इतिहास का अनुशीलन करती हैं? इस ग्रंथ में ऐसी कहानियां भरी पड़ी हैं जिनका मूल इतिहास समझना बड़ी भूल है। इन्हीं कात्यायन वररुचि के वर्णनप्रकरण में प्रोफेसर मैक्समूलर ने कुछ बातों को ऐतिहासिक सत्य माना है परंतु सबको नहीं। मालूम नहीं कि प्रोफेसर साहब किस आधार पर अनुमान करते हैं। प्रोफेसर मैक्समूलर के अनुमान की मात्रा यहां तक बढ़ी है कि जिससे उन्होंने सिद्ध करना चाहा है कि ३५० वर्ष ई० से पूर्व भारतवासियों को लिखने का ज्ञान नहीं था। गोल्डस्टुकर साहब ने प्रोफेसर मैक्समूलर के

इस अनुमान की भूल दिखाने की बड़ी चेष्टा की है। उन्होंने पाणिनि के शब्दों द्वारा अपने विरोधी मत का खंडन किया है। वे शब्द नीचे लिखे हैं—

'यवनानी' अर्थात् यवनों की लिखावट।

'लिपिकर' अर्थात् लिखने वाला।

पाटल, कांड, सूत्र और पत्र आदि शब्दों से विशेषकर वृक्ष के अवयवों का निर्देश होता है। पर यह असंभव नहीं कि पुस्तक के अर्थ में भी इनका प्रयोग होता रहा हो।

'वर्ण' और 'कार' ये दो शब्द अक्षर के लिए आए हैं।

'लोप' अक्षर का अर्थ है लुप्त या दृष्टि से बहिर्गत होना।

इन शब्दों को देखने और उनके ग्रंथों को विचारने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि पाणिनि के समय में भी भारत में लिखने का प्रचार था। गोल्डस्टुकर साहब कहते हैं कि संभव है जिस समय यूनान देश में प्लैटो और एरिस्टाटल जैसे प्रसिद्ध लेखक उन्नति को प्राप्त हुए हों। उस समय हिंदुस्तान वालों को लिखने की वैसी उपयोगी विद्या न प्राप्त हुई हो। मैं इसके उत्तर में कहूंगा कि नहीं, फिर पाणिनि के समय में तो लिखने की विद्या बहुत उन्नति कर चुकी थी। इसके अनेक प्रमाण मिल चुके हैं।

निदान पाणिनि के समय-निरूपण के विषय में प्रोफेसर मैक्समूलर का सिद्धांत गोल्डस्टुकर साहब के कथनानुसार असत्य प्रतीत होता है। परंतु आश्चर्य तो इसका है कि बोथलिंक साहब भी पाणिनि को ३५० ई० वर्ष के पूर्व का व्यक्ति समझते हैं। वे कहते हैं कि काश्मीर के इतिहास राजतरंगिणी में लिखा है कि राजा अभिमन्यु ने चंद्र तथा अन्यान्य वैयाकरणों को पतंजलि विरचित महाभाष्य का प्रचार करने का आदेश दिया था। अभिमन्यु का समय सन् ई० से १०० वर्ष पूर्व का है। अतः पाणिनि के सूत्रों के महाभाष्य को अभिमन्यु से ५० वर्ष और पूर्व का मान लेने में कोई बाधा नहीं है। पतंजलि के अतिरिक्त वार्तिककार कात्यायन और सूत्रकार पाणिनि, यदि इनमें से प्रत्येक के लिए ५० वर्ष रख दिए जाएं तो कथा-सरित्सागर के निर्णयानुसार पाणिनि का समय सन् ई० से ३५० वर्ष पूर्व का हो जाता है। बोथलिंक साहब के इस अनुमान को अत्यंत दुर्बल समझकर गोल्डस्टुकर साहब उसकी उपेक्षा करते हैं।

गोल्डस्टुकर साहब का मत है कि पाणिनि कात्यायन की अपेक्षा प्राचीन हैं। अतएव उन्होंने अपने मत की पुष्टि करने के लिए नीचे लिखी चार युक्तियां दी हैं—

(१) कतिपय शब्द पाणिनि के समय में प्रचलित तथा व्याकरणानुसार शुद्ध थे, परंतु कात्यायन के समय वे अप्रचलित और अशुद्ध हो गए।

(२) कात्यायन के समय में कतिपय शब्दों के ऐसे अर्थ लगाए जाने लगे, जैसे पाणिनि के समय में नहीं लगते थे।

(३) शब्द और उनके अर्थों का जैसा प्रयोग पाणिनि के समय में था वैसा कात्यायन के समय में नहीं रह गया था।

(४) संस्कृत-विद्या ने कात्यायन के समय एक नवीन अर्थात् पाणिनि के समय से भिन्न रूप धारण किया।

इन युक्तियों को सिद्ध करने के लिए उक्त लेखक ने प्रमाण के स्थान पर पाणिनिरचित सूत्रों को उदाहरण के स्थान पर दिखाया है। उनसे यह अनुमान किया जा सकता है कि पाणिनि और कात्यायन दोनों के समय में संस्कृतभाषा की अवस्था समान नहीं रही होगी। अतएव विद्वान् गोल्डस्टुकर कहते हैं कि पाणिनि कात्यायन से प्राचीन हैं।

गोल्डस्टुकर साहब कहते हैं कि पाणिनि के ग्रंथों से विदित नहीं होता कि उनके समय में वेदों का आरण्यक भाग प्रचलित था क्योंकि उनके ग्रंथ में आरण्यक शब्द का अर्थ वन में रहने वाला मनुष्य लिखा है। बाद में इस शब्द का अर्थ वन का मार्ग तथा वनैला मार्ग आदि भी हो गया। परंतु अब आरण्यक शब्द का अर्थ वेद का वह प्रचलित भाग बतलाते हैं जो उपनिषदों से पूर्व रचा गया। ऐसे आरण्यक ऐतरेयारण्यक, बृहदारण्यक आदि बहुत हैं। पर पाणिनि ने ऐसा अर्थ नहीं किया। संभव है कि पाणिनि को यह अर्थ विदित न रहा हो या उनके ग्रंथ में इसका उल्लेख न होने पर यह भी संभव है कि उस समय वेद के वे भाग न रहे हों या पाणिनि उन्हें जानते न हों।

इसीप्रकार गोल्डस्टुकर साहब नाना प्रकार के प्रमाणों को रखकर यह सिद्ध करना चाहते हैं कि पाणिनि को अधोलिखित ग्रंथ विदित न थे अथवा उनका पता पाणिनि के ग्रंथों से नहीं लगता। वे ग्रंथ

ये हैं—'वाजसनेयीसंहिता, शतपथब्राह्मण, उपनिषद्, अथर्ववेद और षड्दर्शन'।

पर इनका यह सिद्धांत कहां तक ठीक है, इसमें वैसा ही संदेह है जैसा कि पाणिनि को सन् ई० से ३५० वर्ष पूर्व मान लेने में पड़ता है। वास्तव में, भारतीय पंडितों के विश्वासानुसार, व्यास, जैमिनि, कपिल आदि षड्दर्शनकारों से पाणिनि नवीन ही हैं। हां, पतंजलि उनसे बाद के हो सकते हैं और हैं।

गोल्डस्टुकर के मतानुसार, 'प्रातिशाख्य' और 'फिट-सूत्र' पाणिनि से प्राचीन हैं। उणादि गण और धातुपाठ उन्हींकी रचना है, पर उणादि सूत्र पाणिनी की अपेक्षा नवीन है। इन सब बातों से मालूम होता है कि पाणिनि संस्कृत-व्याकरण के कितने बड़े सहायक थे, यह तो विदित होता है, परंतु पाणिनि के समय के विषय की कोई ठीक मीमांसा नहीं होती।

पाणिनी बुद्धदेव की अपेक्षा भी प्राचीन हैं। पर कितने पुराने हैं, इसका ठीक निर्णय नहीं किया जा सकता। बुद्ध का जन्मकाल सन् ई० से ६२३ वर्ष पूर्व अनुमान किया जाता है। अतएव पाणिनि इससे भी प्राचीन हुए। पर यह ठीक नहीं कहा जा सकता कि पाणिनि कितने प्राचीन थे।

पाणिनि का निवास गांधार देश में शालातुर नामक स्थान में था। इनकी माता का नाम दाक्षी था।

रमेशचंद्रदत्त के अनुमान से, पाणिनि का समय सन् ई० से पूर्व आठवीं सदी में सिद्ध होता है। यास्क इनसे भी सौ वर्ष पहले के हैं। यद्यपि इसका कोई पक्का प्रमाण नहीं मिलता है कि पाणिनि का ठीक-ठीक समय वही है जो दत्त महाशय ने लिखा है, तो भी यह संभव है कि पाणिनि का समय प्रायः इसीके लगभग होगा। क्योंकि यदि कात्यायन का समय सन् ई० से ३५० वर्ष पूर्व माना जाए तो असंभव न होगा, क्योंकि अष्टाध्यायी जैसे ग्रंथ को उस समय भारत-भर में प्रसिद्ध होने के लिए अधिक समय अपेक्षित है।

पाणिनि ने एक काव्य भी लिखा है। उसका नाम 'जाम्बवतीजय' है। बहुतों का कहना है कि काव्यकर्ता पाणिनि और व्याकरणकर्ता पाणिनि दोनों भिन्न व्यक्ति हैं। परंतु ऐसे कहने वाले अपने मत को पुष्ट करने के लिए कुछ प्रमाण नहीं दे पाते।

नमः पाणिनये तस्मै यस्य रुद्रप्रसादतः।
आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवतीजयम्॥

इस श्लोक से काव्य और व्याकरण दोनों के कर्ता एक ही पाणिनि सिद्ध होते हैं। जाम्बवतीजय के उदाहरणार्थ कतिपय श्लोक नीचे लिखे हैं—

क्षपाः क्षामीकृत्य प्रसभमपहृत्याम्बुसरिताम्,
प्रताप्योर्वीं कृत्स्नां तरुगहनमुच्छोष्य सकलम्।
क्व सम्प्रत्युष्णांशुर्गत इति समालोकनपरा-
स्तडिद्दीपा लोका दिशि दिशि चरन्तीह जलदाः॥

इस श्लोक में ग्रीष्म का अंत और वर्षा का वर्णन विलक्षण रीति से किया गया है।

विलोक्य सङ्गमे रागं पश्चिमाया विवस्वतः।
कृतं कृष्णं मुखं प्राच्या न हि नार्यो विनेर्ष्यया॥

सरोरुहाक्षीणि निमीलयन्त्या रवौ गते साधु कृतं नलिन्याः।
अक्ष्णां हि दृष्ट्वापि जगत्समग्रं फलं प्रियालोकनमेकमेव॥

प्रकाश्य लोकान् भगवान् स्वतेजसा,
प्रभादरिद्रः सवितापि जायते।
अहो चला श्रीर्बलमानदामहो
स्पृशन्ति सर्वं हि दशा विपर्यये॥

ऐन्द्रं धनुःपाण्डुपयोधरेण शरद्दधानार्द्रनखक्षताभम्।
प्रसादयन्ती सकलङ्कमिन्दुं तापं रवेरप्यधिकं चकार॥

इन श्लोकों से पाणिनि की कवित्वशक्ति का अनुमान किया जा सकता है।

पाण्डु—विचित्रवीर्य के क्षेत्रजपुत्र। महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास के औरस और विचित्रवीर्य की विधवा पत्नी अम्बालिका के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी। इनकी दो पत्नियां थीं—कुंती और माद्री। भोजकन्या कुंती ने स्वयंवर में पांडु को वरण किया था। तदनंतर भीष्म ने मद्र देश की राजकन्या माद्री को पांडु से ब्याह दिया। भीष्म ही धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर के रक्षक थे। युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन कुंती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे और माद्री के गर्भ से नकुल-सहदेव उत्पन्न हुए थे। ये पांचों पांडु के क्षेत्रजपुत्र थे। युधिष्ठिर धर्म के औरस से, भीम वायु के औरस से, अर्जुन इंद्र के औरस से और नकुल-सहदेव अश्विनी-कुमार द्वय के औरस से उत्पन्न हुए थे। पांडु के क्षेत्रजपुत्र पांडव कहे जाते हैं।

पांडु ने शंतनु की नष्टप्राय कीर्ति का उद्धार किया। उन्होंने अनेक राजाओं को परास्त करके प्रचुर अर्थसंचय किया और पांच यज्ञों के अनुष्ठान किए। यज्ञ समाप्त करके पांडु दोनों पत्नियों के साथ वन में चले गए। उसी वन में एक महातेजस्वी ऋषि-पुत्र मृगरूप धारण करके मृगी के साथ संगम कर रहा

था। राजा पांडु ने उस काममोहित मृग और मृगी को पांच बाण मारे। मृगरूपधारी ऋषिपुत्र ने राजा को शाप दिया—मैं फल-मूल खाने वाला ऋषि हूं। मेरा नाम किमिंदम है। मैं लोक-लज्जा से मृगरूप धारण करके मृगी के साथ मैथुनाचरण कर रहा था। तुमने अतृप्तिकाल में ही मुझे मार दिया है। मृग के रूप में तुमने मुझे मारा है। अतएव ब्राह्मणवध का पातक तो तुम्हें नहीं होगा, परंतु मैं शाप देता हूं कि स्त्रीसंगम करने के समय अतृप्तावस्था में ही तुम्हारी मृत्यु होगी। इसी शाप के डर से पांडु ने स्त्रीसंगम करना ही छोड़ दिया। कुंती ने दुर्वासा से एक मंत्र पाया था, जिसके प्रभाव से वह देवताओं को बुलाकर गर्भाधान करा सकती थी। पांडु के कहने से कुंती ने माद्री को भी वही मंत्र सिखा दिया। उसी मंत्र के प्रभाव से माद्री ने अश्विनीकुमारों द्वारा नकुल और सहदेव दो पुत्र पाए थे। वसंतऋतु में एक दिन पांडु कामार्त होकर माद्री के निषेध करने पर भी उससे भोग करने लगे और मुनि के शाप से मर गए। माद्री भी पांडु के साथ सती हो गई। वनवासी महर्षि, कुंती और पंच-पांडवों के साथ दोनों शव हस्तिनापुर लाए। भीष्म और धृतराष्ट्र ने इनकी मृत्यु पर बहुत शोक प्रकट किया। अनंतर उनकी आज्ञा से विदुर ने मृतदेहों की अंतिम क्रिया की।

पाण्डुराष्ट्रा—दक्षिण के तिनवली और मदुरा के जिले जहां हैं वहां पाण्डुराष्ट्रा था। इसकी राजधानी उरगपुर में थी। उरगपुर का वर्तमान नाम नीगापट्टम और मदुरा है।

पाण्ड्य—रामायण (६।४१) के अनुसार, वहां सुग्रीव ने सीता की खोज के लिए वानरों को भेजा था। अशोक के अभिलेखों में पाण्ड्यों का उल्लेख है। उनसे अशोक के मैत्रीपूर्ण संबंध थे। पाण्ड्य देश की सीमाएं अशोक के साम्राज्य से मिलती थीं। दक्षिण भारत में पाण्ड्य शासकों ने अनेक वर्षों तक राज्य करके वहां के सांस्कृतिक, कलात्मक और साहित्यिक गौरव को बढ़ाया। पाण्ड्यों ने अपनी राजधानी पहले ताम्रपर्णी में स्थापित की और तदनंतर उसे मदुरा (दक्षिणी मथुरा) में स्थानांतरित किया। मदुरा का अस्तित्व आज भी मद्रास नगर के दक्षिण में पूर्ववत् बना हुआ है। पाण्ड्य देश में मदुरा और तिरुनेलवेलि जिले सम्मिलित थे।

पातञ्जलदर्शन—संसार को दु:ख का हेतु मानकर पतंजलि ने उन दु:खों को दूर करने के उपाय बताए हैं। योगसूत्र या पातंजलदर्शन में वे ही उपाय लिखे गए हैं। पतंजलि ने सांख्यमत का अनुसरण किया है। पातंजलदर्शन कहता है कि प्रकृति-पुरुष के भेदज्ञान के लिए योग की आवश्यकता है। बिना योग के तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं होता, कैवल्य या मोक्षप्राप्ति असंभव है। पदार्थतत्त्वनिरूपण के विषय में सांख्य से पातंजल में थोड़ा ही भेद है। सांख्य के पच्चीस तत्त्वों के अतिरिक्त पातंजल एक पुरुष या ईश्वर नामक एक छब्बीसवां पदार्थ मानते हैं। उसका मत है कि पच्चीस तत्त्वों के अतिरिक्त एक पुरुष है जो 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट:' है। अर्थात् जिनका अविद्यामूलक क्लेशकर्म विपाक और आशय से सबंध नहीं है, वही ईश्वर और ज्ञानाधार हैं। पातंजल के मत से, सामान्य पुरुष रागद्वेषादि क्लेश, पाप-पुण्य आदि कर्म, जन्म-मृत्यु, आयु-भोग आदि कर्मफल तथा तदनुरूप संस्कारों के अधीन है। किंतु विशेष या ईश्वर इनसे परे हैं। योग के प्रभाव से वही ज्ञान की पराकाष्ठा प्राप्त होती है, उसी ज्ञान की प्राप्ति ही कैवल्य है। कैवल्य का निरूपण करना ही पातंजल-दर्शन का उद्देश्य है। इसीकारण पहले स्थूलभाव से पदार्थों का विचार करके योगप्रकरण तथा योग-प्रभाव से किसप्रकार कैवल्य प्राप्त होता है?—यही विषय इस दर्शन में बतलाया गया है। पतंजलि ने 'योग' शब्द का अर्थ बताया है 'योगश्चित्तवृत्ति-निरोध:'। इसके द्वारा चित्तवृत्ति का निरोध किया जा सके वही योग है। योग के आठ अंग हैं। यथा—यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयो-ऽष्टावङ्गानि। अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनमें पहले पांच बहिरंग हैं और शेष तीन अंतरंग हैं। क्योंकि यम नियमादि के साथ शरीर का और धारणा एवं ध्यान के साथ चित्त का संबंध है। योग के चार सोपान हैं—हेय, हेयहेतु, हान, और हानोपाय। पतंजलि के मत से, संसार हेय है क्योंकि दु:खमय है। प्रकृति-पुरुष का संयोग ही दु:ख का हेतु है क्योंकि उससे अविद्या उत्पन्न होती है। प्रकृति-पुरुष का वह संयोगविच्छेद ही हान है क्योंकि इससे अविद्या का हनन होता है। प्रकृति-पुरुष का भेदज्ञान ही हानोपाय है, क्योंकि उसके द्वारा तत्त्वज्ञान होने से मिथ्याज्ञान नष्ट होता है। योग द्वारा ही हानोपाय निश्चित किया जा

सकता है। इसके अलावा पातंजलदर्शन में चित्त की अवस्था तथा उसकी वृत्तियों की आलोचना की गई है। उनके मतानुसार, चित्त की अवस्था और वृत्तियां पांच हैं। वे पांच अवस्थाएं ये हैं—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। जिस समय चित्त में अधिक चंचलता होती है उस समय चित्त क्षिप्त होता है। अर्थात् उसमें रजोगुण की अधिकता है। चित्त में मोह होने पर मूढ़ावस्था होती है। अर्थात् उस समय तमोगुण की अधिकता होती है। जब कभी चित्त में स्थिरता कभी चंचलता होती है, तब उस अवस्था का नाम मूढ़ है। दृढ़ रूप से ध्येयवस्तु की ओर जब चित्त लग जाता है तब वह चित्त की एकाग्र अवस्था है। इन वृत्तियों का निरोध होना ही चित्त की निरुद्धावस्था कही जाती है। वृत्तिपंचक-प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द ही चार प्रमाण हैं। मिथ्याज्ञान को विपर्यय कहते हैं, इच्छानुसार कल्पना विकल्प कही जाती है इत्यादि। योग के द्वारा चित्त की वृत्तियां रोकी जा सकती हैं। अर्थात् पुरुष में विकार होने की कोई संभावना नहीं रह जाती। इसीकारण योगसूत्र में पतंजलि ने चित्त की वृत्ति को निरोध करने के अनेक उपाय बताए हैं। उनका मत है कि विक्षिप्तावस्था से योग का आरंभ होता है। चित्त का निरोध हो जाना ही पूर्ण योग है। परंतु चित्तवृत्ति का निरोध किन उपायों से हो सकता है—इसके उत्तर में पातंजलदर्शन कहता है, 'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः', अर्थात् अभ्यास-वैराग्य के द्वारा ही चित्तवृत्ति का निरोध किया जा सकता है। उसी चित्तवृत्ति निरोध का ही दूसरा नाम 'समाधि' है। अनेक प्रकार से समाधि की सिद्धि होती है। ईश्वरप्रणिधान से समाधि होती है, चित्तस्थिरता से समाधि होती है। जिस समाधि में समस्त वृत्तियां निरुद्ध हो जाएं, उसे निर्बीज समाधि कहते हैं। उसी समाधि के प्राप्त होने से ही पुरुष शुद्ध व मुक्त हो जाता है। इसी अवस्था का नाम है 'पुरुष को कैवल्य प्राप्ति'। कैवल्य लाभ करने पर पुरुष किस अवस्था में रहता है?—इसका उत्तर पतंजलि देते हैं—'पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति', अर्थात् गुणों से पुरुष का संबंध टूट जाने से पुनः उसमें विकार नहीं होता। उसी अवस्था में कैवल्य अर्थात् आत्मस्वरूप में अवस्थिति होती है। उस अवस्था में भेदज्ञान नष्ट हो जाता है, आत्मस्वरूप की प्राप्ति होती है। कपिल आदि जिस अवस्था को निश्रेयस या मोक्ष कहते हैं, पतंजलि का कैवल्य भी वही पदार्थ है। पतंजलि के मत से, सुख-दुःख आत्मधर्म नहीं हैं, किंतु वे चित्त के धर्म हैं, वे केवल आत्मा में प्रतिबिंबित होते हैं। अतएव राग-द्वेष आदि वृत्तियों से चित्त का संबंध दूर करने पर आत्मस्वरूप में अवस्थान करने से ही मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति होती है।

पातंजलदर्शन के चार पाद हैं—(१) समाधिपाद, (२) साधनपाद, (३) विभूतिपाद और (४) कैवल्यपाद। इसके भाष्यों में व्यासभाष्य सर्वोत्तम है। भोजदेव की वृत्ति भी इसपर है।

पारस्कर—सूत्रकार आचार्यों में से एक। इनके द्वारा विरचित 'पारस्कर गृह्यसूत्र' शुक्ल-यजुर्वेद से संबद्ध ग्रंथ है। उपलब्ध कर्मकांड विषयक सूत्र-ग्रंथों में इस ग्रंथ के कारण आचार्य पारस्कर का नाम सुप्रसिद्ध है।

पारियात्र—विंध्या पर्वत की पश्चिमी पर्वतमाला जिसमें अरावली शामिल है और जो नर्मदा के मुहाने से खंबात की खाड़ी तक फैली हुई है।

पार्थ—काश्मीर के एक राजा। ये निर्जितवर्मा के औरस तथा मृगावती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। दस वर्ष की अवस्था में ये काश्मीर के राजसिंहासन पर बैठे। उस समय काश्मीर में दो प्रधान दल थे। एक का नाम तंत्री और दूसरे का नाम एकांग था। इनका कर्तव्य राजा से धन हथियाना था। वे इतने प्रभावशाली हो गए थे कि जिसको चाहते राज्यच्युत कर देते और जिसको चाहते उसीको राजा बना देते थे। उन्हीं में से एक तंत्रीदल की सहायता से पार्थ को राज्य मिला था। पार्थ के बालक होने के कारण इनके पिता निर्जितवर्मा ही राज्यकार्य चलाते थे। इनके समय में बड़ा अनर्थ होने लगा था। तंत्री और एकांग दोनों दल प्रजा का लुंठन करने लगे थे।

निर्जितवर्मा की दो रानियां थीं—वप्पटदेवी और मृगावती। इनका व्यवहार मंत्री सुगंधादित्य से निंदित था। दोनों अपने पुत्र को राजा बनाना चाहती थीं। इसीकारण सुगंधादित्य के प्रयत्न से पार्थ राजासन से उतार दिए गए और वप्पटदेवी का पुत्र चक्रवर्मा गद्दी पर बिठाया गया। तदनन्तर मंत्रियों ने चक्रवर्मा को राज्यच्युत करके मृगावती के पुत्र शूरवर्मा को राजा बनाया। परंतु शूरवर्मा के राजा होने

पर मंत्रियों का अधिकार घट गया और उनका अभीष्ट सिद्ध नहीं होने लगा। इस कारण पार्थ ने अधिक धन देने की प्रतिज्ञा करके पुन: राजासन प्राप्त किया। शाम्बवती नाम की एक वेश्या से पार्थ का प्रेम था। वह इन दलों की अभिसंधि जानती थी। उसने सब बातें पार्थ से कह दीं। इसीकारण तंत्री-दल पार्थ पर असंतुष्ट हो गया और उन्हें पुन: राज्य-च्युत कर दिया। पार्थ ने दोनों बार मिलाकर १६ वर्ष १ महीना १३ दिन राज्य किया था। (राजतरंगिणी)

पार्वती—हिमालय द्वारा मेना अप्सरा से उत्पन्न कन्या और शिवपत्नी। एक बार क्रीड़ा करते हुए इसने शिव की आंखों को मूंद लिया था, जिससे सारे संसार में अंधकार फैल गया और क्षय की स्थिति उत्पन्न हो गई। ऋषियों ने जब इससे आग्रह किया तब इसने क्रीड़ा बंद कर दी। जन्म से यह काले वर्ण की थी। किंतु अनर-केश्वर तीर्थ में स्नान करने से इसको गौरवर्ण प्राप्त हुआ। एक बार कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर इसने एक सुंदर रूपवती कन्या की अभिलाषा की। उसके फलस्वरूप इसके समक्ष अशोक-सुंदरी नामक एक कन्या प्रकट हुई, जिसे इसने अपनी कन्या के रूप में वरण किया। इसके शरीर-मल से गजानन की उत्पत्ति हुई थी। शंकर से इसका कार्तिकेय पुत्र उत्पन्न हुआ। इसने बाण तथा वीरभद्र को भी अपने पुत्र माने थे। देवताओं की प्रार्थना पर इसने दुर्गा का अवतार धारण कर, दुष्टों का संहार किया।

पार्श्वनाथ—हिमालय के दक्षिण में यह सबसे ऊंचा पहाड़ है, जो कि हजारीबाग जिले में वर्तमान है। यह जैनों का प्रसिद्ध तीर्थ है। इसमें अनेक जैनमंदिर हैं। इस पहाड़ी पर जैनों के चौबीसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने शरीर का त्याग किया था।

पालकाप्य—गजायुर्वेदवेत्ता प्राचीन ऋषि। अग्निपुराण में गजचिकित्सा के विषय में पालकाप्य का उल्लेख किया गया है। इन्होंने लोमपाद ऋषि को गजायुर्वेद की शिक्षा दी थी। इन्होंने एक ग्रंथ भी लिखा था। परंतु दु:ख है कि वह अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

पावनी—बर्मा की इरावदी नदी का नाम।

पावा—जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थ। यहां पर महावीर स्वामी ने अपना पार्थिव शरीर छोड़ा था। यहीं पर बुद्ध ने चंड लोहार के घर पर अंतिम भोजन किया था। यहां मल्लजन रहते थे, जो कि महावीर तथा बुद्ध के अनन्य उपासक थे। गोरखपुर जिले के पूर्व में छोटी गंडक नदी के तट पर पावापुरी आज भी वर्तमान है। कनिंघम ने आधुनिक पड़रौना से प्राचीन पावा का समीकरण किया है।

पिङ्गल—एक आचार्य। इसके संबंध में इतिहासकारों में मत-मतांतर है। किसीने इसे सम्राट् अशोक का गुरु माना है। प्राचीन ग्रंथकारों के मत से, यह पाणिनि का अनुज अथवा मामा था। 'छंदशास्त्र' नामक ग्रंथ के रचयिता होने के कारण इसका इतिहास में बड़ा महत्त्व है। षड्वेदांगों में इस ग्रंथ का अपना विशिष्ट एवं अग्रणी स्थान है। इसमें वैदिक छंदों के अतिरिक्त लौकिक छंदों पर भी प्रकाश डाला गया है।

पितृवर्तिन्—कुरुक्षेत्र देश के निवासी कौशिक ब्राह्मण के सात पुत्रों में से कनिष्ठ। इन सातों भाइयों के जन्मांतरों की कथा 'मत्स्यपुराण' (२०।१८) में वर्णित है। आप्दकर्म के समय इन सातों भाइयों के जन्म-जन्मांतरों की कथा को मार्कण्डेय ऋषि ने भीष्म-पितामह को सुनाई थी।

पिथुण्ड—जैन-शासक खारवेल की हाथीगुम्फा प्रशस्ति में पिथुंड का उल्लेख हुआ है। यह पिथुंडक का ही रूपांतर है, जिसका संबंध संस्कृत के 'पृथुदक' शब्द से स्थापित किया जा सकता है। इसे अशोक के समकालीन कालिंगों ने बसाया था। टॉलेमी ने इसे 'पितुंद्र' कहा है। खारवेल ने पिथुंडों का पुनरुद्धार किया था।

पिप्पलाद—एक उपनिषत्कालीन ऋषि। व्यास की अथर्वन् शिष्य-परंपरा में देवदर्श (वेदस्पर्श) का शिष्य और अथर्ववेद-संहिता का प्रथम संकलनकर्ता। इसका शाब्दिक अर्थ है 'पीपल के फल खाकर जीवित रहनेवाला'। अथर्ववेद की उपलब्ध पिप्पलादशाखा का प्रवर्तक भी यही था। इसके पिता का नाम दधीचि ऋषि था। किंतु माता का नाम मतांतर से प्रातिथेयी (वडवा), सुवर्चा या सुभद्रा उपलब्ध होता है। पति की मृत्यु का समाचार सुनकर प्रातिथेयी ने उदर विदीर्ण कर, गर्भ को बाहर निकाला था और उसे पीपल वृक्ष के नीचे रखकर स्वयं सती हो गई थी। इसीकारण संभवत: इसका ऐसा नाम पड़ा। अथर्ववेद की 'पैप्पलाद संहिता' का निर्माता यही था। इसके नाम से 'पैप्पलाद ब्राह्मण', 'पिप्पलाद श्राद्धकर्म' और 'अगस्त्य

कल्पसूत्र' भी उपलब्ध हैं। यह अपने समय के प्रमुख तत्त्वज्ञानियों में से एक था। इसके गंभीर विचार 'प्रश्नोपनिषद्' में संकलित हैं।

पिप्पलायन—ये ऋषभदेव के पुत्र बड़े भागवत थे। ऋषभदेव ने बहुत प्रयत्न किया था कि उनके लड़के धार्मिक और भगवद्भक्त हों। वे अपने प्रयत्न में सफल हुए।

पिप्पलिवन—यहां पर मौर्यों का आधिपत्य था। कुछ विद्वानों ने आधुनिक बस्ती जिले की भूतपूर्व विर्दपुर रियासत में अवस्थित पिपरावा गांव से इसकी समता स्थापित की है।

पिप्फलिवन—बुद्धयुगीन मोरिय (मौर्य) गणतंत्र की यह राजधानी थी। इसे न्यग्रोधवन या पिप्पलिवन भी कहा गया है। कुछ विद्वानों ने इसे नेपाल की तराई रुक्मिनदेई में बताया है। मोरिय गणतंत्र ने बुद्ध के अवशेषों पर यहां एक स्तूप का निर्माण कराया था, जिसे अंगार नाम से कहा गया है।

पीतलखोरा—खानदेश जिले के चालीसगांव स्टेशन से १२ मील दक्षिण की ओर पीतलखोरा की चैत्य-गुफाएं अवस्थित हैं, जो प्रायः अब भग्नावशेष के रूप में वर्तमान हैं। प्रमुख गुफा की लंबाई ५० फुट, चौड़ाई ३५ फुट और ऊंचाई ३० फुट के लगभग होगी। उसका भीतरी प्रकोष्ठ २० फुट ८ इंच चौड़ा है। उसकी छत गज-पृष्ठाकार है। मृज और कार्ले की भांति उसका स्तंभ अठपहलू है। इस गुफा के सामने का भाग पूर्णतया नष्ट हो चुका है।

पीतलखोरा की गुफाओं के स्तंभों पर अंकित विभिन्न दृश्य चित्रकला की प्राचीनता के द्योतक हैं। अजंता के गुफाचित्रों से उसकी समानता होने के कारण उनमें परस्पर शैलीगत तथा ऐतिहासिक एकता दृष्टिगत होती है।

गुफा सं० ४ एक महाविहार था, जिसके द्वारों पर मूर्तियां उत्कीर्णित थीं। किंतु अब वे सर्वथा नष्ट हो चुकी हैं। चैत्यगुफा में विभिन्न मूर्तियां आज भी वर्तमान हैं।

पुण्ड कवि—संस्कृत और हिंदी के प्राचीन कवि। ये उज्जैन के निवासी थे और सं० ७७० वि० में उत्पन्न हुए थे। उस समय के अवंती के राजा मानसिंह के ये दरबारीकवि थे। इन्हीं राजा से इन्होंने काव्य की शिक्षा पाई थी। इन्होंने हिंदी भाषा में सर्वप्रथम कविता की। क्योंकि इनके पहले के अन्य किसी कवि का पता नहीं लगता। इस कवि का दूसरा नाम पुष्पभाट था।

पुण्डरीक कवि—ये बुंदेलखंडी और हिंदी के कवि थे। ये १७६९ सं० में उत्पन्न हुए थे। इनकी कविता सुंदर है।

पुण्ड्र—बलिराज का क्षेत्रजपुत्र (देखो अंग)

पुण्ड्रवर्धन (पौण्ड्रवर्धनभुक्ति)—पुंड्रों या पौंड्रवों का वर्णन 'महाभारत' तथा 'ऐतरेयब्राह्मण' में हुआ है। इस दृष्टि से उनकी प्राचीनता स्वयंसिद्ध है। दंडी के 'दशकुमारचरित' में पुंड्रदेश पर विगालवर्मा की सेना द्वारा आक्रमण किए जाने का उल्लेख हुआ है। पुंड्रवर्धनभुक्ति के अंतर्गत संपूर्ण बंगाल सम्मिलित था। वह गुप्त-साम्राज्य का अंग था, जिसपर गुप्त सम्राटों के सामंतों का अधिकार था। बंगाल के पालराजाओं तथा सेनराजाओं के कतिपय अभिलेखों में उसका वर्णन हुआ है। ह्वेनत्सांग ने भी इसका वर्णन किया है। पार्जिटर के अनुसार, पुंड्रवर्धन में संथाल परगना, वीरभूमि और हजारीबाग का उत्तरी भाग सम्मिलित था। १३वीं-१४वीं शती में इसपर मुसलमानों का अधिकार हो गया था।

पुनर्वसु आत्रेय—एक प्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्य। इसकी माता का नाम चंद्रभागा था। इसी कारण इसके चांद्रभाग अथवा चांद्रभागी नाम भी प्राप्त होते हैं। कृष्ण-यजुर्वेदीय होने के कारण इसका कृष्णमेय नामांतर भी प्राप्त होता है। अपने पिता ऋषि अत्रि तथा ऋषि भरद्वाज से इसे आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त हुआ। एक तिब्बतीय अनुभूति के अनुसार, इसने आयुर्वेद का ज्ञान तक्षशिला में प्राप्त किया था। इसके पिता अत्रि ऋषि मान्य आयुर्वेदवेत्ता थे। इंद्र ने स्वयं जिन ऋषियों को आयुर्वेद का ज्ञान दिया था उनमें अत्रि ऋषि भी एक थे। बौद्ध महाकवि अश्वघोष (बुद्धचरित १।४३) का अभिमत है कि आयुर्वेद चिकित्सा-तंत्र का जो अंश अत्रि ऋषि द्वारा पूरा न हो सका था, उसे पुनर्वसु ने पूर्ण किया। पुनर्वसु आत्रेय यायावर प्रकृति का ऋषि था। घूम-घूमकर यह आयुर्वेद का ज्ञान वितरित करता था। इसके बाद इसकी शिष्य-परंपरा ने इस विद्या का प्रचार-प्रसार किया। इसके शिष्यों में अग्निवेश, भेल, जतूकर्ण, पराशर और क्षीरप्राणि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसके द्वारा विरचित 'आत्रेय संहिता' संप्रति उपलब्ध हुआ है। इसके नाम पर लगभग तीस 'आयुर्वेदीय योग' भी उपलब्ध हैं।

पुन्यपाल—जयसलमेर के एक राजा का नाम। इनके पिता का नाम लाखनसेन था। लाखनसेन की मृत्यु होने पर पुन्यपाल के सिर पर जयसलमेर का राजमुकुट स्थापित किया गया। परंतु ये बड़े क्रोधी और रूखे स्वभाव के थे। इनके व्यवहारों से सभी सामंत अप्रसन्न थे। इसीकारण इनको सामंतों ने राज्य से अलग कर दिया। राज्यच्युत होकर ये जयसलमेर के पास किसी गांव में जाकर रहने लगे। इनका समय १३वीं सदी का अंतिम भाग है। (राजस्थान)

पुरञ्जय—एक प्राचीन सूर्यवंशीय राजा। पहले देवासुर-संग्राम में देवगण दैत्यों से पराजित होकर विष्णु की शरण में गए और विष्णु की आज्ञा से उन लोगों ने पुरंजय से सहायता मांगी। पुरंजय ने देवताओं की प्रार्थना स्वीकार की और उन्होंने इंद्र से वृषभरूप धारण करने के लिए कहा। इंद्र ने पहले तो लज्जावश स्वीकार नहीं किया परंतु पीछे देवताओं के कहने पर वे भी सहमत हो गए। राजा पुरंजय ने वृषभरूपी इंद्र पर चढ़कर दैत्यों को पराजित किया। तभी से पुरंजय का नाम 'ककुत्स्थ' हुआ और उनके वंशज 'काकुत्स्थ' कहे जाने लगे। (विष्णुपुराण)

पुरन्दर—देवराज इंद्र का नामांतर। ये शत्रु के नगर का विदारण करते हैं। इसकारण इनको पुरंदर कहते हैं।

पुराण—कल्प के इतिहास को पुराण कहते हैं। पुराणों में हिंदुओं के दैनिक धर्मानुष्ठान की रीति लिखी गई है। पुराणों में प्राचीन इतिहास का सार निहित है। इनमें हिंदूजाति की प्रतिष्ठा, गौरव, महत्त्व, वीरत्व, साहस, न्यायनिष्ठा, दया, दाक्षिण्य आदि का खाका खींचा गया है। कर्म-अकर्म, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य आदि मनुष्य जीवन की गति निश्चित करने का मूलमंत्र दृष्टांत आदि पुराणों में बड़े सुंदर दिए गए हैं। पुराणों की संख्या, आकार, विषय, परंपरा, धर्म, तत्त्व, कवित्व, लेखनशैली आदि पर विचार करने से अचंभित होना पड़ता है। पुराणों के समान उपयोगी और बृहत्काय ग्रंथ किसी देश की किसी भी भाषा में नहीं लिखे गए हैं। 'पुराण' शब्द का अर्थ है प्राचीन-पुरातन। अर्थात् जिसमें पुराने समय का राजनैतिक, सामाजिक और प्राकृतिक अवस्था का वर्णन किया गया हो, जो मनुष्यों के चित्त को धर्म की ओर खींच लाए उसे पुराण कहते हैं। किसी-किसीके मत से पुराणों में पांच लक्षण होने की आवश्यकता है और किसीके मत से दस लक्षण। जो पुराणों को पंचलक्षणाक्रांत मानते हैं उनमें भी दो प्रकार के मत प्रचलित हैं। वाराहपुराण में लिखा है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि नु।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

अर्थात् सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वंतर और वंशानुचरित—इन पांच लक्षणों से युक्त ग्रंथ को पुराण कहते हैं। परंतु अमरकोश में पुराण के पांच लक्षण इनसे कुछ भिन्न हैं। सृष्टिविषय, प्रलगविषय, देवतत्त्व, अवतारतत्त्व, मनु और मन्वंतर का विवरण तथा चंद्र-सूर्यवंश के आधुनिक और प्राचीन विवरण जिसमें लिखे गए हों, उसे पुराण कहते हैं। भागवत में पुराणों के दशविध लक्षण का उल्लेख है। यथा—(१) सर्ग, अर्थात् प्रकृति के तीन गुणों से किस प्रकार पदार्थसमूह और उसके अधिष्ठाता देवों की उत्पत्ति होती है। (२) विसर्ग, अर्थात् कर्मफल के अधीन होकर किसप्रकार चराचर की सृष्टि होती है। (३) वृत्ति, अर्थात् विधिवश किन उपायों से प्राणियों की जीवनरक्षा होती है। (४) रक्षा, अर्थात् वेद-विरोधी राक्षसों के आक्रमण से किसप्रकार देवता और ऋषियों की रक्षा के लिए नारायण अवतार ग्रहण करते हैं। (५) मन्वंतर, अर्थात् मनु, देवगण, मनुपुत्रगण, सुरेश्वर, ऋषि तथा नारायण के अवतार किसप्रकार अपने-अपने अधिकारों का पालन करते हैं। (६) वंश, अर्थात् ब्रह्मा से उत्पन्न विशुद्ध राजवंश का भूत, भविष्यत् और वर्तमान चित्र। (७) वंशानुचरित, अर्थात् राजवंशियों का चरित्र। (८) संस्था, अर्थात् नित्य, नैमितिक, प्राकृतिक, आत्यंतिक—विश्व के चार प्रकार के प्रलय। (९) हेतु, अर्थात् अज्ञानता के कारण कर्मवश जीव किसप्रकार संसार का हेतु होता है। (१०) अपाश्रय, अर्थात् सब अवस्थाओं में जीव का ब्रह्म के साथ संबंध। कालक्रम से आज पुराणों में विकृति हो गई है, अतएव इन लक्षणों को मिला लेना आवश्यक है।

पुरी—यह पवित्र नगर बंगाल की खाड़ी के समुद्र तट पर उड़ीसा जिले में स्थित है। श्रीक्षेत्र के रूप में इसकी धार्मिक गरिमा आज भी लोकमान्य है। पुराणों में इसे पुरुषोत्तम क्षेत्र कहा गया है और यहां के पुरुषोत्तमरूप भगवान् जगन्नाथ की महिमा का वर्णन किया गया है। जगन्नाथ मंदिर के निकट अनेकान्य मंदिर हैं। भारत के प्रसिद्ध तीर्थ के रूप में पुरी का आज भी महत्त्व बना हुआ है।

पुरु—(१) ययाति के पुत्र और नहुष के पौत्र। ययाति की दो पत्नियां थीं—देवयानी और शर्मिष्ठा। देवयानी दैत्यगुरु शुक्राचार्य की कन्या थी और शर्मिष्ठा दैत्य-पति वृषपर्वा की। देवयानी के गर्भ से यदु और तुर्वसु नामक ययाति के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्यु, अनु और पुरु तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। शुक्राचार्य ने राजा ययाति को जराग्रस्त हो जाने का शाप दिया था। परंतु ययाति की प्रार्थना से प्रसन्न होकर उन्होंने कहा कि तुम अपनी वृद्धावस्था किसी दूसरे पर उसकी सहमति से रख सकते हो। देवयानी ने एक-एक करके सभी पुत्रों से ययाति का बुढ़ापा ग्रहण करने के लिए कहा। परंतु सबसे छोटे पुत्र पुरु के अतिरिक्त किसीने स्वीकार नहीं किया। ययाति ने पुरु को बुढ़ापा देकर उनको राज्य का अधिकारी बनाया।

पिता की आज्ञा का पालन करने के कारण पुरु सबसे छोटा होने पर भी और ज्येष्ठ भाइयों के रहते हुए भी राज्य के अधिकारी हुए। पुरु के तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे—प्रवीर, ईश्वर और रौद्राश्व। (महाभारत)

(२) हस्तिनापुर के चंद्रवंशी राजा। अलग्जेंडर के भारताक्रमण के समय इन्होंने वितस्ता नदी के किनारे उसे रोका था। यद्यपि युद्ध में पुरु पराजित हो गए थे, तथापि उनकी वीरता से प्रसन्न होकर अलग्जेंडर ने उनका राज्य उन्हें लौटा दिया।

(इतिहास)

पुरुकुत्स—राजा मांधाता के पुत्र। ये राजा शशबिंदु की कन्या इंदुमती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इनके बड़े भाई का नाम मुचकुंद था। पुरुकुत्स की पत्नी ऋषि के शाप से नदी बन गई थी। महर्षि सौभरि को इनकी पचास बहिनें ब्याही गई थीं। पुरुकुत्स नर्मदा नदी के उत्तर के देशों के राजा थे। नर्मदा के गर्भ से पुरुकुत्स का एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम त्रसदस्यु था। नर्मदा के कहने से पुरुकुत्स ने पाताल में जाकर अनेक गंधर्वों का नाश किया था।

(हरिवंश)

पुरुषोत्तम कवि—ये कवि बुंदेलखंडी थे और सं० १७३० वि० में उत्पन्न हुए थे। ये बंदीजन तथा पन्नानरेश छत्रसाल के दरबारी थे।

पुरूरवा—बुध के पुत्र और चंद्रमा के पौत्र। चंद्रमा ने बृहस्पति-पत्नी तारा को हर लिया था। उस समय तारा के गर्भ से चंद्र का एक पुत्र हुआ। उस पुत्र का नाम बुध था। बुध का ब्याह राजपुत्री इला से हुआ। इला के गर्भ से बुध का पुरूरवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उर्वशी इंद्र के शाप से मर्त्यलोक में उत्पन्न हुई और पुरूरवा की पत्नी बनी। राजा शर्तों का पालन नहीं कर सके, इसकारण उर्वशी ने पुरूरवा को छोड़ दिया। पुरूरवा उर्वशी के वियोग से अधीर हो गए और इधर-उधर घूमने लगे। घूमते-घूमते वे कुरुक्षेत्र पहुंचे, वहां उनकी उर्वशी से भेंट हुई। राजा ने उससे घर में लौट आने का अनुरोध किया। राजा के कष्ट को सुनकर उर्वशी बोली—मैं आपके द्वारा गर्भवती हुई हूं। वर्ष-दिन के बाद कतिपय पुत्र उत्पन्न होंगे। उनको देने के लिए मैं आपके घर आऊंगी और उसी समय आपके यहां एक रात रहूंगी। उर्वशी के गर्भ से आयु, श्रुतायु, विश्वायु आदि सात पुत्र उत्पन्न हुए थे। उर्वशी इन पुत्रों को लेकर राजा को दे आई और रात भी उनके यहां रही। प्रयाग में पुरूरवा की राजधानी थी। यह नगर गंगा के तीर पर स्थापित हुआ था। इसकारण इसका नाम प्रतिष्ठान हुआ। पुरूरवा ने गंधर्वों से एक अग्निपूर्ण स्थान पाया था। उसी अग्नि के बल से इन्होंने अनेक यज्ञ करके अंत में गंधर्वलोक प्राप्त किया।

पुरोचन— दुर्योधन का मित्र और कर्मचारी। दुर्योधन की आज्ञा से इसने पांडवों को विनष्ट करने के लिए वारणावत नगर में जतुगृह बनाया था। विदुर के संकेत से पांडव पुरोचन के दुर्व्यवहार को ताड़ गए थे। भीमसेन पुरोचन के घर में तथा उस जतुगृह में आग लगाकर माता और भाइयों को लेकर सुरंग से भाग गए। उसी घर में पुरोचन जलकर मर गया।

(महाभारत)

पुलस्त्य—सप्तर्षियों में से एक। ये ब्रह्मा के मानसपुत्र हैं और प्रजापतियों में गिने जाते हैं। पुलस्त्य के पुत्र का नाम विश्रवा था। विश्रवा की पहली पत्नी से कुबेर और कैकसी के गर्भ से रावण आदि तीन भाई उत्पन्न हुए थे। (रामायण)

पुलह—ये ब्रह्मा के मानसपुत्र हैं और सप्तर्षियों में से एक हैं। पुलह की पत्नी का नाम गति है, जिसके गर्भ से कर्मश्रेष्ठ, वरीयान् और सहिष्णु नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे।

किसीके मत से पुलह की पत्नी का नाम क्षमा है। उसके गर्भ से कर्द्दम, अर्वरबीज और सहिष्णु तीन पुत्र उत्पन्न हुए। (भागवत)

पुलिन्द—इस राज्य में बुंदेलखंड का पश्चिमी भाग और समूचा सागर जिला सम्मिलित था।

पुलोम—राक्षसविशेष। देवराज इंद्र ने इसकी कन्या को ब्याहा था।

पुलोमा—महर्षि भृगु की पत्नी और च्यवन की माता। इसके पिता का नाम दैत्यराज वैश्वानर था।

पुषी कवि—ये हिंदी के कवि और जाति के ब्राह्मण थे। ये मैनपुरी के समीप के रहने वाले थे। ये सं० १८०३ वि० में उत्पन्न हुए थे। इनकी कविता-शैली उत्तम है।

पुष्कर—(१) निषधराज नल का छोटा भाई। इसने कलि की सहायता से अपने बड़े भाई नल को जुए में जीत लिया था और उनको राज्यच्युत करके स्वयं राजा बन गया था। (महाभारत)

(२) ये हिंदी के कवि थे। इन्होंने साहित्य विषयक 'रसरत्न' नामक एक ग्रंथ लिखा है।

(३) हिंदुओं का यह पुरातन एवं पवित्र तीर्थस्थल है। पुराणों में इसकी महिमा का वर्णन किया गया है। यहां के पवित्र सरोवर में स्नान करने से परम पापी भी स्वर्ग प्राप्त कर लेता है। इस तीर्थस्थान पर ब्रह्मा, सावित्री, बदरीनारायण, वराह और शिव के पांच मंदिर हैं। यह तीर्थस्थल संप्रति अजमेर (राजस्थान) से सात मील उत्तर में स्थित है।

पुष्कलावती—सिंधु नदी के पश्चिम में गांधार की प्राचीन राजधानी। इसका निर्माण भरत के पुत्र एवं राम के भतीजे पुष्कर ने कराया था। सिकंदर के आक्रमण के समय यहां हस्ति नामक एक भारतीय राजा राज्य करता था। बाद में, इसपर शकों का अधिकार हो गया था। तारानाथ के अनुसार, यहां कनिष्क का पुत्र निवास करता था। टॉलेमी, एरियन और डायनोसिस पेरीगेटीज प्रभृति इतिहासकारों ने विभिन्न नामों से इसका उल्लेख किया है। स्वात एवं काबुल नदी-संगम के निकट आधुनिक चारसद्दा से प्राचीन पुष्कलावती का समीकरण किया गया है।

पुष्पदन्त—(१) शिव का अनुचरविशेष। यह एक बार छिपकर शिव और पार्वती की बातें सुन रहा था। इससे पार्वती बहुत अप्रसन्न हुईं। उनके शाप से पुष्पदंत मर्त्यलोक में कौशांबी नगरी के एक ब्राह्मण के यहां उत्पन्न हुआ। इस ब्राह्मण का नाम था सोमदत्त और सोमदत्त के पुत्र का नाम कात्यायन था। (कथा-सरित्सागर)

(२) एक प्रधान गंधर्व। यह पार्वती की सहेली जया का स्वामी था। किसी कारण से शिव इसपर अप्रसन्न हुए और उन्होंने इसकी आकाश में गमन करने की शक्ति नष्ट कर दी। पुनः महादेव की बहुत स्तुति करने पर इसे खेचरत्व प्राप्त हुआ। पुष्पदंत का लिखा शिवस्तोत्र 'महिम्नस्तोत्र' कहा जाता है।

(३) अष्टदिग्गजों का एक दिग्गज। उत्तर और पश्चिम दिशा के अधिपति वायु इसपर चढ़कर उन दिशाओं की रक्षा करते हैं।

पूतना—दानवीविशेष। इसीको कंस ने श्रीकृष्ण को मारने के लिए गोकुल भेजा था। यह गोकुल में जाकर माया से सुंदर स्त्री बनी और नंद के घर में गई। पूतना ने श्रीकृष्ण को यशोदा के अंक से अपनी गोदी में ले लिया और उनको अपना स्तन पिलाने लगी। उसने अपने स्तनों में विष लगा रखा था। उसकी यही भीतरी इच्छा थी कि इसप्रकार मैं श्रीकृष्ण को मार डालूंगी। वह भला श्रीकृष्ण को क्या पहचान सकती थी! उसने श्रीकृष्ण को सामान्य बालक समझा और इसप्रकार उनको मारने का प्रयत्न किया। श्रीकृष्ण स्तनपान करने लगे। बालघातिनी पूतना मारे पीड़ा के व्याकुल हो गई। अंत में, वह उस यंत्रणा को न सह सकी। अतः वह अपनी भयंकर मूर्ति धारण करके श्रीकृष्ण के मुख से स्तन छुड़ाने का प्रयत्न करने लगी। परंतु वह अपने कार्य में सफल न हो सकी। वह दानवी अत्यंत व्याकुल होकर तथा भयंकर नाद से दिशाओं को प्रतिध्वनित करती हुई कटे वृक्ष के समान गिर पड़ी और उसी समय मर गई। श्रीकृष्ण दानवी की आंखों पर चढ़कर नाचने लगे। (भागवत)

हरिवंश में पूतना का वृत्तांत दूसरे प्रकार से लिखा है। पूतना कंस की धाय थी। कंस की आज्ञा से पूतना गोकुल में गई और चीलपक्षी का वेश धरकर आधी रात को वह नंद के घर पहुंची तथा श्रीकृष्ण को स्तन पिलाने लगी। आधी रात हो गई थी। नगर सुनसान हो गया था। सभी नगरवासी निद्रा के अधीन अचेत हो रहे थे। श्रीकृष्ण स्तन पीने लगे। पूतना के स्तन, पीड़ा से मानो फटने लगे। पूतना जोर-जोर से चिल्लाने लगी। शीघ्र ही उसके स्तन कट गए और वह भी मर गई। नंद के घर में सभी जाग गए और मृत पूतना को देखकर वे विस्मित हुए। पूतना क्यों मरी इसका कारण कोई नहीं जान सका। (हरिवंश)

पूतना एक बालग्रह समझी जाती है। जन्मदिन से बालकों को जो कुछ पीड़ा होती है वह पूतना की अप्रसन्नता से ही होती है—यह कुछ हिंदुओं का विश्वास है। दिन, महीना और वर्ष के अनुसार, पूतना का उपद्रव होता है। पूतना के उपद्रवों को शांत करने के लिए बलिदान आदि की विधि हिंदू-शास्त्रों में लिखी है।

पूर्वाराम—जेतवन के उत्तर-पूर्व में श्रावस्ती के निकट विशाखा द्वारा निर्मित एक बौद्धविहार। इसमें तथागत बुद्ध ने प्रवचन किया था।

पूषन्—ऋग्वेद का एक प्रमुख एवं प्रभावशाली देवता। संभवतः यह सूर्य का ही नामांतर है। इसके स्वरूप एवं स्वभाव की बहुविध चर्चाएं ऋग्वेद में वर्णित हैं। इसकी पत्नी का नाम सूर्या था। यह द्युलोक में निवास करता हुआ विश्व का भ्रमण, निरीक्षण और संरक्षण करता है। यह दंतविहीन है। पुराणों की कथाओं में कहा गया है कि एक बार इसने दक्षयज्ञ में शंकर की हंसी उड़ाई थी, जिससे शिवगण चंडीश ने इसके दांत तोड़ डाले थे। तत्पश्चात् शिव ने इसे वर दिया था कि यह यजमानों के दंतों से हविर्भक्षण करता रहेगा।

पृथा—कुंती का दूसरा नाम। यह यदुवंशी राजा शूर की कन्या थी। शूर ने इसका नाम पृथा रखा था। राजा कुंतिभोज शूर के मित्र तथा फुफेरे भाई थे। उनके कोई संतान न थी। अतएव राजा शूर ने उनसे प्रतिज्ञा की थी कि मेरी जो पहली संतान होगी, उसे मैं तुमको दे दूंगा। इसी प्रतिज्ञा के अनुसार, उन्होंने अपनी बड़ी कन्या पृथा कुंतिभोज को दे दी थी। (देखो कुंती) (महाभारत)

पृथिवीसिंह—मारवाड़ के राजा यशवंतसिंह का ज्येष्ठ पुत्र। जब औरंगजेब ने यशवंतसिंह को विद्रोही अफगानों का दमन करने के लिए काबुल भेजा, उस समय यशवंतसिंह ने इन्हींको राज्य का भार सौंपा था। ये ही उस समय मारवाड़ का शासन करते थे। इनको औरंगजेब ने एक बार अपनी राजसभा में बुलवाया। पृथिवीसिंह सम्राट् की आज्ञा नहीं टाल सके। वे दिल्ली पहुंचे। सम्राट् ने उनका बड़े सम्मान से स्वागत किया। रीति के अनुसार, पृथिवीसिंह बादशाह के समीप ही बैठते थे। एक दिन वे सभा में आए और बादशाह को सलाम करके अपने आसन पर बैठने जा ही रहे थे, इतने में बादशाह ने उन्हें हंसकर बुलाया। पृथिवीसिंह भी बादशाह के समीप जाकर खड़े हो गए। बादशाह ने उनका हाथ पकड़कर धीरे-धीरे कहा—राठौर ! सुना है तुम इन भुजाओं में अपने पिता के समान बल रखते हो। अच्छा कहो, इस समय तुम क्या करोगे ? पृथिवीसिंह ने उत्तर दिया—ईश्वर दिल्लीश्वर का कल्याण करें। बादशाह ! जब साधारण राजा और प्रजाओं पर आपका हाथ फैलता है तो उनकी सभी इच्छाएं पूरी होती है, परंतु सौभाग्यवश आपने इस सेवक के हाथ स्वयं ही पकड़ लिए हैं, अतएव अब मैं समस्त पृथ्वी को जीत सकता हूं। इतना कहते-कहते राठौर वीर के शरीर में मानो नया बल आ गया। उस समय बादशाह ने कहा—देखते हैं, यह जवान दूसरा कुट्टन है। औरंगजेब यशवंतसिंह को कुट्टन कहा करता था। बादशाह ने पृथिवीसिंह को खिल्लत दी। पृथिवीसिंह ने रीति के अनुसार, बादशाह के दिए कपड़े वहीं पहन लिए और वे अपने आसन पर जा बैठे।

किंतु वही दिन उस नवयुवक के उल्लासमय जीवन का अंतिम दिन था। राजसभा से घर लौटते-लौटते पृथिवीसिंह व्याकुल हो गए। उनके हृदय में ऐंठन होने लगी, सिर कांपने लगा। देखते-देखते यशवंतसिंह के हृदय का आनंद, राठौरकुल का होनहार वीर कुमार पृथिवीसिंह सदा के लिए विदा हो गए।

कहते हैं, बादशाह ने उन खिल्लत के कपड़ों में इस प्रकार विष को लगाकर दिया था, जिनके पहनने के कारण पृथिवीसिंह का अंत हुआ।

(टाड्स राजस्थान)

पृथिव्यापीड़—(१) काश्मीर के एक राजा का नाम। इनके पिता का नाम राजा वज्रादित्य था और माता का नाम मंजरिका। ये राजा होकर प्रजापीड़न करने लगे। ४ वर्ष १ महीना तक इन्होंने राज्य किया। अनंतर इनके सौतेले भाई संग्रामापीड़ ने इन्हें राजच्युत कर दिया। (राजतरंगिणी)

(२) काश्मीर के एक राजा। ये द्वितीय पृथिव्यापीड़ कहे जाते हैं। जयापीड़ के औरस और कल्याणदेवी के गर्भ से ये उत्पन्न हुए थे। इनका नाम संग्रामापीड़ था। इनके बड़े भाई ललितापीड़ के परलोकवास होने पर ये पृथिव्यापीड़ नाम बदलकर काश्मीर के सिंहासन पर बैठे। इनका राज्यकाल

७ वर्ष है। (राजतरंगिणी)

पृथुराज—वेन राजा के पुत्र। इन्होंने बाहुबल से समस्त राजाओं को जीत लिया था। इन्होंने पृथ्वीतल को प्रोथित समतल बनाया था। इसकारण ये पृथु कहे जाते थे। इनके राजसूय यज्ञ में महर्षिगण उपस्थित हुए थे और उन्होंने इनका राज्याभिषेक किया था। इनके शासनकाल में बिना जोती हुई भी भूमि अन्न उत्पन्न करती थी। धेनु-समूह कामदुहा हुई थी। प्रबल प्रतापी महाराज पृथु ने अनेक यज्ञ संपादन करके समस्त प्राणियों को अभिलषित द्रव्य देकर संतुष्ट किया था। इसी दानी राजा ने अपने अश्वमेध-यज्ञ में पृथ्वी के समस्त पदार्थों की स्वर्ण प्रतिमाएं बनाकर ब्राह्मणों को दी थीं। इन्होंने ६६ हजार सुवर्णछत्र और मणि-रत्नभूषित सुवर्णमय पृथ्वी दान की थी। (महाभारत)

पहले समय में अत्रिवंशी अंग नामक एक प्रजापति थे। धर्मराज की कन्या सुनीथा के गर्भ से उन्हें वेन नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वेन महादुराचारी राजा था। वह समझता था कि संसार में मुझसे बढ़-कर दूसरा कोई पूज्य नहीं है। अतएव देवता के लिए याग-यज्ञ आदि करना व्यर्थ है।

वेन के अत्याचार से प्रजा पीड़ित होने लगी। अनंतर एक समय मरीचि आदि ऋषियों ने इसके अत्याचार न सहकर अत्याचार न करने के लिए इसे समझाया। परंतु दुराचारी वेन ने इनकी बातों को हंसकर उड़ा दिया। इससे ऋषिगण मारे क्रोध के जल गए और एकत्रित होकर बलगर्वित वेन का दमन करने लगे। ऋषिगण वेन का ऊरु रगड़ने लगे। उससे नाटे कद का एक मनुष्य उत्पन्न हुआ। वह पुरुष ऋषियों के सामने भय से कांपता हुआ खड़ा हो गया। ऋषिश्रेष्ठ अत्रि इसको भयभीत देखकर बोले—निषीद (उपवेशन करो), यही पुरुष निषादवंश का आदिपुरुष है। अनंतर ऋषिगण वेन का दक्षिण बाहु-मंथन करने लगे। इसी बाहु से प्रदीप्त अग्नि के समान पृथु उत्पन्न हुए। पृथु कवच, धनु और दिव्य शर लेकर उत्पन्न हुए थे। सत्पुत्र पृथु के उत्पन्न होने से वेन पुन्नाम नरक से रक्षा पाकर स्वर्ग गए। अनंतर ब्रह्मा देवताओं के साथ वहां उपस्थित हुए और उन्होंने पृथु को चक्रवर्ती राजा बनाया। पृथिवी स्थित मनुष्यों का सुख-स्वाच्छंद्य विधान करके उन्होंने राज्य किया था। एक समय प्रजा ने राजा के समीप उपस्थित होकर अपनी-अपनी वृत्ति निश्चित कर देने के लिए प्रार्थना की। पृथु ने उनकी प्रार्थना से शर-संधान करके पृथ्वी पर आक्रमण किया। पृथ्वी पृथु के भय से गोरूप धारण करके भागी। पृथु भी उसके पीछे-पीछे दौड़े। गोरूपधारिणी पृथ्वी ब्रह्म-लोक आदि में घूमती हुई कहीं नहीं ठहर सकी। पृथु भी धनुर्बाण लेकर सब स्थानों में उसका अनुसरण करने लगे। अंत में, पृथ्वी महाराज पृथु की शरण में आई। पृथु बोले—पृथ्वी ! तुम सब प्रजाओं को जीविका प्रदान करो और मेरी पुत्री बनो। पृथ्वी बोली—मैं आपके प्रस्ताव से सहमत हूं, परंतु किस-प्रकार आप प्रजारक्षा करना चाहते हैं यह पहले स्थिर कर लें। प्रजा की जीविका का विधान करने के लिए मेरा दोहन करना होगा। दोहन करने के लिए बछड़ों की आवश्यकता होती है। बछड़ों के बिना कभी दूध नहीं निकलता। और मुझे समतल भी करना पड़ेगा। नहीं तो मेरा दूध सब स्थानों में कैसे फैलेगा।

पृथु ने पृथ्वी की बात सुनकर धनुष के अग्रभाग से अनेकों पर्वतों को उलट दिया। इसप्रकार समस्त पृथ्वी समतल हुई। अनंतर महाराज पृथु ने भगवान् स्वायंभुव मनु को वत्स बनाकर अपने हाथ से गोरूप-धारिणी पृथ्वी से अनेक शस्य दोहन किए। उसी अन्न द्वारा प्रजा जीवन धारण कर रही है। अनंतर ऋषियों ने सोमदेव को वत्स बनाकर पुनः पृथ्वी का दोहन किया था। इस बार देवगुरु बृहस्पति दोहन-कर्ता बने थे। तदनंतर इंद्र आदि देवताओं ने मिल-कर पुनः पृथ्वी को दुहा था। इस बार इंद्र स्वयं वत्स बने थे और सविता दोग्धा बनी थी। यज्ञीय हवि इस बार क्षीर रूप से दुहा गया था। भूमि पृथु की पुत्री हुई थी इसी कारण भूमि का नाम पृथ्वी पड़ा। इसप्रकार महाराज पृथु असामान्य प्रताप से राजाओं में अग्रणी हुए थे। (हरिवंश)

श्री मद्भागवत में पृथु की कथा इसप्रकार लिखी है। ब्राह्मणों ने अपुत्रक वेन के दोनों बाहुओं का मंथन किया। एक बाहु से पुरुष और दूसरे से एक स्त्री उत्पन्न हुई। उस समय ऋषियों ने कहा था—तुम सबसे प्रथम राजा हो, अतएव तुम्हारा नाम पृथु होगा और कन्या का नाम अर्चि होगा। ऋषियों के कहने से अर्चि और पृथु का ब्याह हुआ। अनंतर पृथु को कुबेर ने सुवर्णमय आसन, वरुण ने श्वेत छत्र, वायु ने दो व्यंजन, ब्रह्मा ने वेदमय कवच, हरि ने सुदर्शन चक्र और लक्ष्मी ने संपत्ति दी। भगवान् रुद्र

ने एक तलवार दी। अग्नि ने पृथु को छाग, सूर्य ने रश्मिमय बाण और भूमि ने योगमयी पादुका उपहार में दीं।

महाराज पृथु भगवान् के अंश से उत्पन्न हुए थे। इन्होंने समस्त प्रजाओं पर भगवान् दिवाकर के समान अपना प्रताप फैलाया था। पृथु ने उत्तम कार्यों द्वारा सबको प्रसन्न कर दिया था। वे परस्त्री को माता और अपनी स्त्री को अपने शरीरार्द्ध के समान समझते थे। इन्होंने सौ अश्वमेध यज्ञ किए थे। अंतिम यज्ञ के समाप्त होने के पहले ही देवराज इंद्र ने उनका यज्ञीय अश्व चुरा लिया था। महाराज पृथु ने सनत्कुमार की आराधना करके ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था और यथासमय उन्होंने सद्गति पाई थी। (भागवत)

पृथूदक—पीहो, जहां पर सुप्रसिद्ध ब्रह्मयोनि तीर्थ है। यह स्थान थानेश्वर से पश्चिम की ओर चौदह मील दूर है।

पृथ्वीराज—(१) भारत के अंतिम हिंदू-सम्राट्। (देखो जयचंद और चंद कवि)

(२) बीकानेर के राजा। ये बड़े वीर और सत्कवि थे। इनका विवाह मेवाड़ के राणा प्रतापसिंह के भाई सक्तसिंह की कन्या के साथ हुआ था। यद्यपि ये अकबर के दरबार में सामंतों की प्रतिष्ठा से रहते थे, तथापि राजपूत स्वाधीनता के एकांत उपासक थे। जिस समय बालिका का दुःख देखकर महासागर समान महाराणा का हृदय क्षुभित हुआ था, हिंदू-गौरव और स्वाधीनता का एकमात्र टिमटिमाता हुआ दीपक जिस समय बुझने को तैयार था, उस समय इसी वीरकवि की कविता ने उसे प्रकृतिस्थ बनाया। इन्हींकी कविता को देखकर महाराणा प्रताप ने अकबर की अधीनता स्वीकार न की थी।

महाराणा प्रताप ने एक बार एक पत्र लिखा था, जिसमें लिखा गया था कि मैं भी दिल्ली सम्राट् की अधीनता स्वीकार करने को तैयार हूं। वह पत्र राजसभा में आया। बादशाह बड़े प्रसन्न हुए। बादशाह ने पृथ्वीराज से कहा—अब तो तुम्हारा 'अणदागल' असबार दागा जाएगा। पृथ्वीराज महाराणा प्रताप को अणदागल असबार कहा करते थे। 'अणदागल' का अर्थ है बिना दागा हुआ, अर्थात् स्वाधीन। इसपर पृथ्वीराज बोल उठे—यह पत्र उनका नहीं है। किसी वैरी ने उनके नाम से लिख दिया है। अतएव इस पत्र के अनुसार, तब तक कोई कार्रवाई न की जाए, जब तक मैं इस विषय के सत्यासत्य का निर्णय न कर लूं। पृथ्वीराज ने उत्तेजनापूर्ण कई दोहे लिखकर प्रतापसिंह को उत्तेजित किया। वीरहृदय पुनः वीरता से उद्भासित हो गया। मोहरात्रि का अंत हो गया। महाराणा प्रताप भी अपनी प्रतिज्ञा के पालन में दृढ़ हो गए।

पृथ्वीसिंह—ये जयपुर के महाराज माधोसिंह के पुत्र थे। इनकी छोटी अवस्था में ही इनके पिता की मृत्यु हुई। अतः पिता के मरने पर छोटी अवस्था में ही इनका राज्याभिषेक संपादित हुआ। पृथ्वीसिंह छोटी रानी के पुत्र थे। पटरानी के पुत्र प्रतापसिंह थे। अतएव पटरानी ही उस समय राजकाज करने लगी। ये चंद्रावंश की कन्या थीं। परंतु फिरोज नामक एक फीलवान से गुप्त प्रणय करके इन्होंने अपने को कलंकित कर दिया था। महारानी ने उसे राजसभा का सदस्य बना दिया। इससे सभी सामंत अप्रसन्न हो गए। वे जयपुर में रहना छोड़कर अपने घर में जाकर रहने लगे। महाराष्ट्र अम्बाजी ने सुअवसर देखकर एक वेतनभोगी सेना-कर वसूल करने के लिए भेज दी। यद्यपि उस समय भी आरतराम और खुशहालीराम बोहरा आदि राजनीतिपटु सज्जन जयपुर में वर्तमान थे तथापि फिरोज के सामने किसीकी कुछ चलती नहीं थी, सभी बलहीन हो गए थे। इसी-प्रकार नौ वर्ष तक आमेर का राज्य चला। अनंतर एक दिन पृथ्वीसिंह घोड़े से गिरकर मर गए। बहुत लोग संदेह करते हैं कि पटरानी ने इनको विषप्रयोग द्वारा मरवा डाला है। बीकानेर और कृष्णगढ़ की राजकुमारियों से इनका विवाह हुआ था। इन्हें कृष्णगढ़ की राजकुमारी के गर्भ से मानसिंह नामक एक पुत्र भी हुआ था। (टाड्स राजस्थान)

पृषध्र—वैवस्वत मनु के पुत्र। इन्होंने व्याघ्र के धोखे से गोवध किया था। इस कारण ये शूद्र हो गए। तदनंतर पश्चात्तापरूपी दवाग्नि में भस्म होकर इन्होंने परब्रह्म-प्राप्ति की थी।

पैठन (पैठान)—पैठन एक ऐतिहासिक नगर के रूप में विश्रुत है। इसका प्राचीन नाम प्रतिष्ठानपुर था, जिसे अश्मकों ने अपनी राजधानी बनाया था और सातवाहनों के समय जो समृद्धावस्था में था। जैन अनुश्रुतियों के अनुसार, किसी शातकर्णि और उसके पुत्र शक्तिकुमार ने उसको अपनी राजधानी बनाया था। इस राजा ने जैनधर्म ग्रहण कर लिया था। यह

नगर हैदराबाद के निकट औरंगाबाद जिले में गोदावरी के दक्षिण तट पर स्थित है।

पौण्ड्र—यह एक प्राचीन राज्य था। पुंडवर्द्धन, पौंड्र, पुंड्रक, पौंड्रवर्द्धन आदि नामों से इसका उल्लेख पुराण-इतिहासों में है। बौधायन सूत्र में लिखा है—पुंड्र, सौवीर, बंग, कलिंग प्रभृति जनपदों के अधिवासियों को देखकर पुनष्टोम नामक प्रायश्चित करना चाहिए। इससे मालूम पड़ता है कि पहले किसी नीचकर्म करने के कारण पौंड्रवासी समाजच्युत कर दिए गए थे। मनुसंहिता आदि में भी ऐसी ही बातें लिखी पाई जाती हैं। मनु कहते हैं कि पौंड्रक, ओड्र, द्राविड़, कंबोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद और खश आदि देशों के उत्पन्न क्षत्रिय संस्कारहीन हैं तथा यज्ञ-अध्ययन आदि भी वे नहीं करते, इस कारण वे शूद्र हो गए हैं। रामायण किष्किंधाकांड में भी पौंड्र को दक्षिण देश का एक जनपद लिखा है। सीता को ढूंढ़ने के लिए अंगद, सुषेण, जांबवान् आदि को दक्षिण दिशा में भेजने के समय सुग्रीव ने कहा था—दक्षिण दिशा में गोदावरी प्रदेश, पौंड्र, केरल, चोल आदि राज्यों में सीता को ढूंढ़ना। महाभारत में संजय ने जहां देश, जनपद आदि का वर्णन किया है—वहां पौंड्र उत्तर भारत के राज्यों में परिगणित हुआ है। युधिष्ठिर के राजसूय और अश्वमेध-यज्ञ के समय भी पौंड्र राज्य का पता लगता है। यज्ञाश्व की रक्षा करने के लिए उसके साथ-साथ अर्जुन बंग, पौंड्र आदि जनपदों में होकर कोशल राज्य में पहुंचे थे। महाभारत में यही लिखा है। महाभारत में पुंड्रक नाम लिखा है। मत्स्यपुराण में लिखा है कि पुंड्रवर्द्धन राज्य पूर्व देश में है। ब्रह्मांडपुराण के मत से, पौंड्र देश की स्थिति भारत के पूर्वभाग में निश्चित होती है। वहां उसका नाम पौंड्र लिखा है। गरुड़पुराण में लिखा है कि पुंड्र राज्य भारत के दक्षिण-पूर्व कोण में विद्यमान है। बृहत्संहिता में वराहमिहिर ने पुंडराज्य को पूर्व देश के अंतर्गत लिखा है। इनसब लेखों से यह बात प्रतिपादित होती है कि पुंड्रवंशीय राजा भिन्न-भिन्न समय में अनेक नगरों में वास करते थे अथवा उन-उन देशों पर उनका आधिपत्य विस्तृत हुआ था। इसीकारण कभी भारतवर्ष के उत्तरभाग में, कभी दक्षिणभाग में और कभी पूर्वभाग में पौंड्र राज्य की स्थिति का परिचय पाया जाता है। इस समय अनुसंधान के द्वारा जो पौंड्रवर्द्धन की स्थिति का परिचय पाया जाता है, उससे यह जनपद पूर्वदेश का ही मालूम पड़ता है। इस राज्य की प्रतिष्ठा के विषय में लिखा है कि चंद्रवंशी पुंड्र नामक राजा ने इस राज्य की जड़ रोपी। ययाति-पुत्र पुरु के वंश में तीसवीं पीढ़ी में बलिराज के क्षेत्र में दीर्घतमा ऋषि ने अंग, बंग, कलिंग, सुह्म, पौंड्र और ओड्र नामक पुत्र उत्पन्न किए। उनमें से जो जिस देश का अधिपति हुआ, वह देश भी उसीके नाम से प्रसिद्ध हुआ। पुंड्र का राज्य पौंड्र नाम से प्रसिद्ध हुआ। पुंड्र के संतान आदि के विषय का कुछ पता नहीं मिलता। पुराणादि ग्रंथों को देखने से विदित होता है कि पुंड्र का वंश इन्हींसे समाप्त हो गया अथवा उस वंश का और कोई राजा न हो सका हो। अतएव पुंड्र के बाद कौन पुंड्रवर्द्धन वहां के राजा हुए थे, इसको जानने के लिए कोई उत्तम उपाय नहीं है। बौद्धग्रंथों को देखने से मालूम होता है कि इस धर्म की उत्पत्ति के समय पुंड्रवर्द्धन की बड़ी प्रतिष्ठा थी। ख्रीष्ट जन्म के २६४ वर्ष पूर्व राजा बिंदुसार की मृत्यु होने पर राधागुप्त ने अशोकवर्द्धन को राजासन पर बिठाया और अशोकवर्द्धन का राज्य निष्कंटक करने के लिए उनके स्वजन-संबंधियों को उस मंत्री ने मार डाला। उस समय अशोकवर्द्धन के भाई बीताशोक प्राणरक्षा करने के लिए भागकर पुंड्रवर्द्धन के राज्य में चले गए थे। उस समय बंगाल के उत्तर भाग का नाम पुंड्रवर्द्धन था। मौर्यवंश के राज्यशासन के अंत में पुंड्रवर्द्धन की क्या अवस्था हुई थी, यह जानने का उपाय नहीं है।

चीनी परिव्राजक ह्वेनत्संग जिस समय पौंड्र राज्य में उपस्थित हुए थे उस समय वह राज्य समृद्धिशाली था। उस समय पुंड्रवर्द्धन की परिधि आठ सौ मील समझी जाती थी। परिव्राजक ने इस राज्य में तीन सौ बौद्धभिक्षु और बीस संघाराम देखे थे। निर्ग्रंथी (नंगा) संप्रदाय के संन्यासी ही यहां अधिक रहते थे। बौद्धमठ और संघाराम को छोड़कर सौ देवमंदिर उस समय यहां विद्यमान थे। परिव्राजक के वर्णन से पौंड्रवर्द्धन नामक किसी जनपद का परिचय नहीं पाया जाता किंतु वहां पौंड्रवर्द्धन राज्य का उल्लेख है। पुरातत्त्ववेत्ता कनिंहम कहते हैं कि पौंड्रवर्द्धन और इस समय का पावना दोनों एक ही प्रदेश के दो नाम हैं। गंगा नदी के दूसरे पार काकजोल नामक प्राचीन

राज्य से एक सौ मील की दूरी पर पावना है। परिव्राजक के वर्णन में देखा जाता है कि काकजोल राज्य से चलकर और गंगापार करके वे पौंड्रवर्द्धन में पहुंचे थे। काकजोल से पौंड्रवर्द्धन की दूरी उन्होंने ६०० लि, अर्थात् एक सौ मील लिखी है। अतएव कनिंहम कहते हैं कि पावना और पौंड्रवर्द्धन दोनों एक ही हैं। काश्मीर के इतिहास में लिखा है कि पुंड्रवर्द्धन गौड़ राज्य के राजा जयंत की राजधानी थी। राजा जयंत ने सन् ७८२ ई० से सन् ८१३ ई० तक राज्य किया था। (भारतवर्षीय इतिहास)

पौण्ड्रक—पुंड्र देश के एक राजा। ये पौंड्रक वासुदेव के नाम से प्रसिद्ध थे। जरासंध के ये परममित्र थे। इनके पिता का नाम वसुदेव था। वसुदेव की दो पत्नियां थीं—सुतनु और नाचाटी। सुतनु के गर्भ से पौंड्रक और नाचाटी के गर्भ से कपिल उत्पन्न हुए थे। कपिल ने संसारत्याग करके संन्यास ग्रहण किया और पौंड्रक वासुदेव नाम धारण करके राज्य करने लगे। श्रीकृष्ण उस समय द्वारका में थे। इसकी ढिठाई इन्होंने भी सुनी। श्रीकृष्ण भी वासुदेव कहे जाते हैं। यह पौंड्रक को अच्छा नहीं मालूम होता था। पौंड्रक सोचा करता था कि मैं शंखचक्रगदाधारी हूं। शार्ंग धनु हमारा है, हमारे जैसा बली कोई नहीं है, तब हमारे रहते दूसरा वासुदेव नाम धारण करने का अधिकारी कौन हो सकता है?—इसीप्रकार वह अपना अहंकार दिखाया करता था। वह यह भी कहता था कि जगत् में जो वासुदेव नाम था उसे एक अहीर के छोकरे ने धारण किया है। श्रीकृष्ण का दमन करने के लिए उसने द्वारका पर चढ़ाई की, अनेक यादवों को उसने मार गिराया। अंत में, श्रीकृष्ण के साथ उसका युद्ध हुआ और वह मारा गया। (हरिवंश)

पौष्य—(देखो उत्तंक)

प्रचेतस्—ब्रह्मा के पुत्र। लोकपितामह ब्रह्मा ने अपनी देह से वेदवेदांगवित् पुत्रों की सृष्टि की। उनके नाम ये हैं—अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, मरीचि, भृगु, अंगिरा, क्रतु, वसिष्ठ, बोढु, कपिल, आसुरि, कवि, शंकु, पंचशिख और प्रचेतस्। (ब्रह्मवैवर्त पुराण)

विष्णुपुराण में लिखा है कि प्राचीनबर्हि नामक एक प्रजापति के दस पुत्र उत्पन्न हुए। उनका नाम प्रचेतस् था। प्राचीनबर्हि ने अपने पुत्रों को प्रजासृष्टि के लिए अनुरोध किया। ये धनुर्वेद के बड़े ज्ञाता थे। इन्होंने पिता की आज्ञा पाकर समुद्र में जाकर घोर तपस्या की। दस हजार वर्षों तक उन लोगों ने समुद्र में रहकर भगवान् विष्णु की आराधना की। भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर वहां उपस्थित हुए। विष्णु को आया देखकर प्रचेतसों ने उनको प्रणाम किया। तब भगवान् बोले—अभिलषित वर मांगो, मैं प्रसन्न होकर तुम लोगों को वर देने आया हूं। भगवान् वर देकर अंतर्हित हुए।

जिस समय ये लोग तपस्या कर रहे थे, उस समय बढ़कर वृक्षों ने संसार को घेर लिया। अतः इन लोगों ने मुख से अग्नि और वायु की सृष्टि की। वायु और अग्नि दोनों ने मिलकर वृक्षों को सुखाना और जलाना प्रारंभ किया। इससे दुःखी होकर वृक्षों के राजा सोम वहां उपस्थित हुए और उन्होंने वृक्षकन्या मरिषा से प्रचेतसों का ब्याह करा दिया। उसी मरिषा के गर्भ से दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुए थे। (विष्णुपुराण)

प्रजापति—एक प्रमुख वैदिकदेवता। पुराणों तथा महाभारत में वर्णित इसकी कथा ब्रह्मा की कथा से पर्याप्त साम्य रखती है। ऋग्वेद के एक समस्त सूक्त में इसकी प्रशस्ति करते हुए इसे पृथ्वी का सर्वोच्च देवता कहा गया है। यह पृथ्वी का अधिपति है। ब्राह्मण-ग्रंथों में इसे देवताओं का पिता कहा गया है। उपनिषदों में इसे परब्रह्म या विश्वात्मा कहा गया है। इसे देवों के अतिरिक्त मनुष्यों तथा असुरों का भी पिता कहा गया है। इन तीनों ने प्रजापति से उपदेश ग्रहण किया था। इसकी कन्या का नाम सूर्यासावित्री था, जिसका विवाह सोम देवता के साथ हुआ था। पुराणों में प्रजापति द्वारा सृष्टि-निर्माण की कथाएं विस्तार से दी गई हैं। प्रजापति का लोकव्यवहार संबंधी विचारों का संकलन स्मृतियों में हुआ है।

प्रतर्दन—काशी का काश्य जनपद का राजा और वैदिक सूक्तद्रष्टा। इसे काशिराज देवोदासि भी कहा गया है। यह ययाति का पौत्र और दिवोदास का पुत्र था। इसकी माता ययाति राजा की पुत्री माधवी थी। इसके पुत्र का नाम भरद्वाज था। क्षतश्री भी संभवतः इसका दूसरा पुत्र था। यह नैमिषारण्य में आयोजित ऋषियों के यज्ञ में सम्मिलित हुआ था और इसने वहां प्रश्न किए थे। इसने इंद्र से ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्राप्त किया था। इसने हैहयवंशीय राजाओं को पराजित करके अपने पिता का बदला लिया था और अपने

राज्य को पुनः प्राप्त किया था। यह परम दयालु और ब्राह्मणभक्त राजा था। यह दानी इतना था कि इसने ब्राह्मण को अपना शरीर तक दे दिया था। इसका पितामह ययाति जब स्वर्ग से च्युत हुआ तो इसने अपने पुण्य देकर उसे पुनः स्वर्ग भेजा था।

यह परम तत्त्वज्ञानी था। 'कौषीतकी उपनिषद्' के 'इंद्र-प्रतर्दन-संवाद' में इसके गंभीर तत्त्वज्ञान-संबंधी विचारों का पता चलता है।

प्रतापनारायण मिश्र—ये कात्यायनगोत्री कान्यकुब्ज ब्राह्मण और बैजेगांव के मिश्र थे। इनके पूर्वज बैजेगांव के रहने वाले थे। परंतु इनके पिता पंडित संकटाप्रसाद जी कानपुर में आ बसे थे। वे एक प्रवीण ज्योतिषी थे। इस कारण उनकी आर्थिक अवस्था भी अच्छी होती गई। उन्होंने कुछ धन उपार्जन कर लिया। पं० प्रतापनारायण मिश्र का जन्म आश्विन कृष्ण नवमी सं० १९१३ (सन् १८५६ ई०) में हुआ था। पिता की इच्छा थी कि वे अपने पुत्र को ज्योतिषी बनाएं, परंतु उधर इनकी रुचि न होने के कारण अंततः पिता इनको अंग्रेजी पढ़ाने लगे। सन् १८७५ ई० में इन्होंने पढ़ना छोड़ दिया था। इतने दिनों में अंग्रेजी भाषा में इनको कुछ अभिज्ञता प्राप्त हो गई थी। संस्कृत-फारसी का भी इन्हें कुछ-कुछ ज्ञान हो गया था।

काव्यांकुर इनके हृदय में पहले ही जम चुका था। भारतेंदु की कवि-वचन-सुधा को ये मन लगाकर पढ़ते थे। कवियों का साथ तथा कविदल के जमाव में ये आया-जाया करते थे। इसप्रकार ये भी एक कवि हो गए। इन्होंने ललित कवि से छंदःशास्त्र के नियम भी पढ़े थे।

एक-दो मित्रों की सहायता से सन् १८८३ ई० में इन्होंने 'ब्राह्मण' नाम का एक मासिक पत्र निकाला। 'ब्राह्मण' के लेख हास्यमय तथा शिक्षाप्रद होते थे। ये संस्कृत और फारसी में भी हिंदी के समान कविता कर सकते थे। सन् १८८९ में पंडित प्रतापनारायण कालाकांकर गए और वहां 'हिंदोस्थान' के सहकारी संपादक के पद पर नियुक्त हुए। परंतु ये स्वतंत्र प्रकृति के होने के कारण वहां बहुत दिनों तक नहीं रह सके। मिस्टर ब्रैडला के भारतागमन के उपलक्ष में इन्होंने कविता की थी, जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई थी। १२ पुस्तकों का इन्होंने हिंदी में अनुवाद किया है और २० पुस्तकें लिखी हैं। सं० १९५१ में इनकी मृत्यु हुई।

प्रतापसिंह—(१) मेवाड़ के प्रसिद्ध धर्मरक्षक महाराणा। ये चित्तौड़ के महाराणा उदयसिंह के पुत्र थे। इन्होंने अपने हिंदूगौरव की रक्षा के लिए जो आत्मत्याग किया है और जो तपस्या की है, वह इतिहास के पृष्ठों पर सुवर्णाक्षरों में लिखे गए हैं। बादशाह अकबर ने सन् १५६८ ई० में चित्तौड़ के किले पर अधिकार कर लिया और उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। उदयसिंह चित्तौड़ से भागकर गुहिलौतों की शरण में गए। अपनी प्रिय मातृभूमि के वियोग से उदयसिंह का हृदय फट गया था। उन्होंने ४ वर्षों के बाद मातृभूमि के शोक से शरीर को त्याग दिया। उदयसिंह की मृत्यु के बाद, प्रतापसिंह शिशोदिया कुल के गौरव के अधिकारी हुए, परंतु राज्य शत्रुहस्तगत हो गया और उनकी राजधानी शत्रुसेना द्वारा विध्वस्त हो गई। उस समय अधिकांश राजपूत-राजा बादशाह की कृपा के भिक्षुक होकर देशद्रोही हो गए थे। आर्य-राजाओं के हृदय से आत्मगौरव की महिमा विदा हो चुकी थी। अक्षय कीर्ति की उपेक्षा करके इन लोगों ने धन, राज्य आदि का अर्जन करना ही अपना कर्त्तव्य समझ लिया था। बादशाह की कृपा पाने के लिए राजाओं ने अपनी कुलकन्याओं को भी बादशाहों के अर्पण किया था। देश की ऐसी दशा में प्रताप ने स्वाधीनता की रक्षा के लिए, मातृभूमि का उद्धार करने के लिए, व्रत प्रारंभ किया। जो थोड़े से राजपूत देश के लिए प्राण देने को सहर्ष प्रस्तुत थे, प्रताप उन्हींके नेता बने। प्रताप सोने-चांदी के बर्तनों को दूर फेंककर पत्तल में भोजन किया करते थे। राजधानी का जब तक उद्धार नहीं होगा, तब तक के लिए प्रताप ने विलास-सामग्रियों को छोड़ दिया था। वे तृणशय्या पर सोते थे तथा शोक का चिह्न लंबे केश और दाढ़ी उन्होंने रखी थी। प्रताप की आज्ञा से उनकी सेना अरावली पर्वतमाला के जंगली प्रदेशों में घूमा करती थी। और अवसर पाते ही वहां से निकलकर मुगल-सेना पर आक्रमण करती और उनका धन लूट लेती थी। अकबर ने प्रताप को दंड देने के लिए अपनी प्रधान सेना अजमेर में रखी थी।

राजस्थान के राजाओं ने मुगल-सम्राट् के हाथों अपनी स्वाधीनता तथा वंशमर्यादा बेच दी। परंतु प्रताप ने अपनी स्वाधीनता के लिए जीवन न्योछावर कर रखा था—चाहे कुछ भी हो जाए, प्रताप मुगल-

सम्राट् की अधीनता स्वीकार नहीं करेंगे।

एक समय आमेर के राजकुमार मानसिंह (अकबर-पुत्र सलीम के साले) गुजरात से लौटते हुए प्रताप की राजधानी कमलभीर में ठहर गए। प्रताप ने राजा मानसिंह का आदर-सम्मान किया। किंतु जब भोजन का समय हुआ और मानसिंह भोजन करने बैठे, तब प्रताप के पुत्र अमरसिंह उनके सम्मान के लिए वहां खड़े थे। वहां प्रतापसिंह को उपस्थित न देखकर मानसिंह बार-बार पूछने लगे—महाराणा जी कहां हैं? अमरसिंह ने उत्तर दिया—उनके सिर में इस समय पीड़ा है इसी कारण वह उपस्थित न हो सके। मानसिंह को अब समझने में देर न लगी। वे बोले—मैं अन्न का अपमान नहीं करता। अन्न-देवता तुमको मैं सिर चढ़ाता हूं, यह कहकर उन्होंने भोजन को प्रणाम किया, तदनंतर वे अमरसिंह से बोले—महाराणा से कह देना कि मैं सिर की पीड़ा की दवा शीघ्र ही लेकर आता हूं। तब तक प्रताप भी वहां पहुंच गए। उन्होंने कड़ककर कहा—जो राजपूत कुलांगार मुसलमानों से अपनी बहन ब्याहता है और तुर्कों के साथ भोजन करता है, सूर्यवंशी राजा उसके साथ भोजन नहीं करते। मानसिंह बोले—इसका उत्तर देने के लिए मैं शीघ्र लौटता हूं। महाराणा ने कहा—युद्धक्षेत्र में आपको देखकर प्रसन्नता होगी। इतने में ही एक राजपूत बोल उठा—अपने फूफा और बहनोई को भी साथ लेते आना।

मानसिंह अकबर के सामने गए और उन्होंने अपने अपमान की बातें कहीं और कहा—यह हमारा अपमान नहीं हुआ, किंतु भारत के सम्राट् का अपमान हुआ है, क्योंकि सेवक की प्रतिष्ठा या अपमान प्रभु की ही प्रतिष्ठा और अपमान समझा जाता है। प्रताप ने हुजूर के संसार का सिर नीचा किया, परंतु इस एक प्रताप को जब तक बादशाह सर नहीं करेंगे तब तक हुजूर के प्रताप में यह एक बड़ा धब्बा है। इसी प्रकार अनेक बातों से उन्होंने प्रताप के विरुद्ध अकबर को भड़काया। प्रताप से अपने अपमान का बदला चुकाने के लिए उन्होंने बहुत-कुछ प्रयत्न किया। और भी राजपूत-राजा, जो प्रताप के गौरव से जला करते थे, मानसिंह के सहायक बने। सम्राट् का पुत्र सलीम बड़ी सेना का सेनापति होकर अरावली प्रदेश में आकर उपस्थित हुआ। प्रताप भी २२ हजार स्वदेश-भक्त वीरराजपूतों को लेकर अरावली की पहाड़ी पर मुगल-सेना की राह देख रहे थे। कमलभीर के दक्षिण पर्वत और वनाकीर्ण ४० मील की विस्तृत भूमि प्रताप की सेना की केंद्रभूमि बनी। इस भूमि के चारों ओर पर्वतमाला है। इस प्रदेश को हलदीघाटी कहते हैं। यहीं दोनों सेनाओं का भयंकर युद्ध हुआ। दोनों दलों के योद्धा आपस में लड़ रहे थे। मुसलमान-सेना अपना विक्रम दिखला रही थी और स्वदेश-भक्त मातृभूमि के उद्धार के लिए उन्मत्त सिंह के समान शत्रुसेना का विनाश कर रहे थे। उसी समय प्रताप के सम्मुख हाथी पर चढ़ा हुआ सलीम आ गया। उसका हाथी रक्षकों से घिरा हुआ था, तथापि प्रताप का विजयी घोड़ा 'चेतक' सेना को चीरता-फाड़ता आगे की ओर बढ़ा। प्रताप के युद्ध-कौशल से रक्षकसेना मारी गई। सलीम हाथी पर बैठा हुआ था। प्रताप ने उसे ताककर भाला चलाया। प्रताप का भाला हौदे में लगा। हाथीवान मारा गया, हौदा चूर-चूर हो गया और सलीम के प्राण बच गए। उस हाथी को छोड़कर, सलीम दूसरे हाथी पर गया तथा रणस्थल भी उसने छोड़ दिया। प्रताप ने मानसिंह को बहुत ढूंढ़ा परंतु वे नहीं मिले। कुछ ऐतिहासिकों का कहना है कि मानसिंह हलदीघाटी के युद्ध में गए ही नहीं। परंतु दूसरा पक्ष कहता है कि मानसिंह भी युद्ध में गए थे, परंतु वे डेरे पर ही बैठे रहे, युद्ध करने नहीं गए। अनगिनत मुसलमान-सेना के सामने राजपूत-सेना नहीं ठहर सकी। तीन बार प्रताप के जीवन का संदेह उपस्थित हुआ, क्योंकि महाराणा प्रताप के सिर पर मेवाड़ का श्वेतच्छत्र सुशोभित था। राजाभक्त झालापति मन्ना ने प्रताप के सिर का राजछत्र और मुकुट खींचकर अपने सिर पर धारण किया। मुगलों ने मन्ना को ही प्रताप समझा और उनपर आक्रमण करके उन्हें मार डाला। महाराणा प्रताप के वेष में मन्ना के अंग छिन्न-भिन्न हो गए थे, चेतक के भी अंगों में कितने ही घाव लगे थे, तथापि वह प्रभुभक्त घोड़ा अपने प्रभु को बड़े वेग से एक निरापद स्थान में ले गया। प्रभु को वहां पहुंचाकर चेतक भूमि पर गिरा और मर गया। प्रताप ने उस घोड़े के स्मरणार्थ वहां एक छतरी बनवा दी। सन् १५७६ ई० में इस युद्ध का अंत हुआ। कमलभीर का गिरिदुर्ग मुगलों के अधीन हुआ। तथापि प्रताप हताश नहीं हुए, पुनः युद्ध करने के लिए वे सेना और धन एकत्रित करने लगे। लगा-

तार पांच वर्ष युद्ध हुआ। कमलभीर के दुर्ग पर प्रताप ने पुनः अधिकार कर लिया। तदनंतर शनैः-शनैः २२ गिरिदुर्गों पर उन्होंने अधिकार कर लिया। इसी प्रकार एक वर्ष में ही प्रताप ने समस्त मेवाड़ से मुसलमान-सेना को भगा दिया। इस समय भी चित्तौड़, अजमेर और मंडलगढ़ पर मुसलमानों का ही अधिकार था। इसी समय महाराणा प्रताप ने मानसिंह के राज्य आमेर प्रदेश पर आक्रमण किया और उसी राज्य के अंतर्गत भालपुर गांव को लूट लिया। तदनंतर उदयपुर को भी महाराणा ने अपने अधिकार में कर लिया। बादशाह ने भी अब युद्ध बंद करना उचित समझा। प्रताप ने उदयपुर को मेवाड़ राज्य की राजधानी बनाया, परंतु वे चित्तौड़ का उद्धार न कर सके। समस्त जीवन में युद्ध तथा और भी अनेक कष्टों के कारण प्रताप का शरीर शिथिल हो गया था। महाराणा प्रताप मृत्युशय्या पर सोये हैं, वीर सामंत खड़े हैं, पुत्र अमरसिंह सामने हाथ जोड़े खड़े हैं। महाराणा की चेष्टाओं से मालूम होता है कि वे कुछ कहना चाहते हैं। सालूंब्रा सरदार ने पूछा, क्या आज्ञा है। महाराणा बोले—अमरसिंह मेरे सामने प्रतिज्ञा करें कि हम भोग-विलास में लिप्त न होंगे और तुम भी प्रतिज्ञा करो कि इनको भोग-विलास में लिप्त न होने दोगे और चित्तौड़ के उद्धार में इनकी सहायता करोगे। दोनों ने प्रतिज्ञा की। महाराणा प्रताप चित्तौड़ का उद्धार न कर सके। इसका कष्ट उनको रहा। चित्तौड़ का उद्धार और स्वजाति की स्वाधीनता ही उनके जीवन के उद्देश्य थे। इनमें से उन्होंने एक सिद्ध किया था, परंतु दूसरा सिद्ध न कर सके। इसी कारण वह राजभवन में नहीं रहते थे। कुटी ही उनका वासस्थान थी। अमरसिंह स्वभाव से ही विलासी थे। इसी कारण प्रतापसिंह समझते थे कि ये देश की स्वाधीनता की रक्षा करने योग्य नहीं हैं। मृत्यु के पहले उन्होंने कई बार अपना इस प्रकार का अभिप्राय प्रकट किया था। इसी कारण प्रताप ने मृत्यु के समय प्रधान सामंतों से तलवार छुआकर यह प्रतिज्ञा कराई थी कि वे लोग सर्वदा कुमार अमरसिंह के साथ रहेंगे और उनको विलासी न बनने देंगे। सन् १५९७ ई० में यह भारत का सूर्य राजपूताने में अस्त हुआ था। १७ पुत्र छोड़कर प्रताप सुरधाम पधारे थे। उनमें अमरसिंह सबसे बड़े थे। (टाड्स राजस्थान)

(२) ये मेवाड़ के महाराणा थे। ये दूसरे प्रतापसिंह कहे जाते थे। इनके पिता का नाम जगत्सिंह था। ये सन् १७५२ ई० में मेवाड़ के सिंहासन पर बैठे। आप लोग पहले प्रताप के समान इन प्रताप को न समझें, ये गुणों में ठीक उनके विपरीत थे। वे स्वजाति के मुख को उज्ज्वल करने वाले थे और ये स्वजाति के मुख में कालिमा पोतने वाले थे। प्रताप नाम में जो स्वर्गीय भाव है उसे नष्ट करने के लिए ही ये उत्पन्न हुए थे। इनके समय में कोई ऐसी बात ही नहीं हुई जो लिखने योग्य हो। तीन वर्ष तक इन्होंने राज्य किया। इनके राज्यकाल में तीन बार महाराष्ट्रों ने इनपर चढ़ाई की। मेवाड़ राज्य को लुटेरे महाराष्ट्रों ने नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। आमेर के राजा जयसिंह की कन्या से इनका ब्याह हुआ था, जिसके गर्भ से राजसिंह नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। (टाड्स राजस्थान)

(३) ये आमेर (वर्तमान जयपुर) के राजा थे। इनके पिता का नाम माधोसिंह था। माधोसिंह के परलोकवास होने पर प्रतापसिंह के सौतेले भाई पृथ्वीसिंह राजासन पर बैठाए गए। परंतु पृथ्वीसिंह अकाल में ही घोड़े से गिरकर मर गए। तदनंतर प्रतापसिंह आमेर के राजा बनाए गए। उस समय राजा खुशहालीराम आमेर के प्रधानमंत्री थे। वे राजनीति में बड़े चतुर थे। अतएव राजा खुशहालीराम फिरोज की शक्ति नष्ट करने का प्रयत्न करने लगे। फिरोज माधोसिंह की विधवारानी का उपपति था। राजा खुशहालीराम पहले माचेरी के सामंत की अधीनता में थे। परंतु आमेर के राजमंत्री होकर भी खुशहालीराम अपने पूर्वप्रभु को भूल नहीं गए थे। वे भीतर ही भीतर माचेरी सामंत को स्वाधीन बनाने का भी प्रयत्न करते रहे थे। अनेक छल-बल करके फिरोज को खुशहालीराम ने मरवा डाला। इस समय माचेरी सामंत और खुशहालीराम इन दोनों में स्वार्थ का झगड़ा उपस्थित हुआ। एक दल ने लुटेरे महाराष्ट्रों का आश्रय लिया। चोट्टे महाराष्ट्रों ने अच्छा अवसर पाया। वे प्रजा पर मनमाने अत्याचार करने लगे और लूटने लगे। प्रतापसिंह जब तक बालक थे, तब तक आमेर इसी प्रकार की अशांतियों से उद्विग्न हो गया था। जब महाराज प्रताप ने अपने हाथ में राज्य का भार लिया, तब उन्होंने समस्त विपत्तियों को छिन्न-भिन्न कर दिया

और महाराष्ट्रों का दमन करने का भी उन्होंने दृढ़ संकल्प कर लिया।

इसी समय अत्याचारी मूर्ख महाराष्ट्रों ने प्रत्येक प्रांत में भयंकर लूट प्रारंभ कर दी थी। इन लुटेरों के भय से समस्त भारत कंपित हो गया था। महाराज प्रतापसिंह ने यह निश्चित कर लिया था कि अब बिना महाराष्ट्रों के दमन किए राजपूताने के राज्यों का मंगल नहीं है। सन् १७८७ ई० में मारवाड़ के सिंहासन पर महाराज विजयसिंह विराजमान थे। प्रतापसिंह ने मारवाड़राज के पास दूत द्वारा एक पत्र भेजा "भयानक अत्याचारी और हम लोगों के शत्रु महाराष्ट्र हृदयभेदी अत्याचारों से हमको पीड़ित कर रहे हैं। इस कारण उनका दमन करना हमारा परम कर्त्तव्य है। सभी राजपूत-राजाओं को चाहिए कि वे सभी मिलकर युद्ध में अपने शत्रु को परास्त करें और पुनः निश्चित होकर राज्य करें। मैंने स्वयं रणभूमि में जाकर महाराष्ट्रों को दंड देने का विचार पक्का कर लिया है। अतः यदि आप अपनी राठौर-सेना को मेरी सहायता के लिए भेज दें तो सरलता से मैं अपनी जाति के शत्रुओं का अहंकार मिट्टी मे मिला दूंगा।" मारवाड़पति विजयसिंह ने इस पत्र को पाकर ही सेना को तैयार होने की आज्ञा दी। इसके पहले ही महाविपत्ति में पड़कर अजमेर का अधिकार महाराष्ट्रों को दे दिया था। इस समय प्रतापसिंह को विशेष उद्योगी देखकर पुनः अजमेर पर अधिकार करने की इच्छा से वे आगे बढ़े। बलवान् राठौर-सेना के सेनापति जवानदास नियुक्त हुए।

तुंगा नामक स्थान में महाराष्ट्रों के नेता सेंधिया और उनके शिक्षित फ्रांसीसी सेनापति डिवाइन ने बड़े वेग से मारवाड़ और जयपुर की मिली सेनाओं पर आक्रमण किया। दोनों ओर से युद्ध होने लगा। अपनी जाति की रक्षा के लिए वीर राठौर और कछवाहे लड़ने लगे और लुटेरे महाराष्ट्र अपने लुटेरेपन की रक्षा के लिए लड़ने लगे। सेंधिया भाग गया, उसकी सारी सेना तितर-बितर हो गई। महाराष्ट्र-सेना अस्त्र-शस्त्र और द्रव्य आदि छोड़कर भाग गई। विजयी राठौर और कछवाहों ने उस धन को आपस में बांट लिया। इस युद्ध की विजय के उपलक्ष में प्रतापसिंह ने एक बहुत बड़ा उत्सव किया और २४ लाख रुपये दीन-दुखियों को बांट दिए। प्रतापसिंह की वीरता और युद्धकौशल से महाराष्ट्र-तस्करों का गर्व चूर हुआ। पुनः राजपूताने में शांति विराज गई। परंतु जिस प्रकार यक्ष्मा के द्वारा जर्जरित और शिथिल अंगों में हिरण्यगर्भ आदि औषध कुछ ही काल तक फल दिखाते हैं। जब तक औषधि की शक्ति वर्तमान रहती है, तब तक यक्ष्मारोगी के अंगों में स्फूर्ति दीख पड़ती है। उसी प्रकार गृहकलह और विजातीय आक्रमणों से जर्जरित राजपूताने के राजाओं में इस विजय की शांति बहुत दिनों तक नहीं रह सकी।

प्रतापसिंह की सम्मति से मारवाड़राज ने अपनी सेना तुंगार के युद्ध में भेज दी थी। इस समय माधोजी सेंधिया मारवाड़ पर चढ़ आया। मारवाड़राज ने प्रतापसिंह से सहायता मांगी। इन्होंने भी अपनी सेना भेज दी। परंतु सेना के पहुंचने पर राठौर-भाटों ने कछवाहों की निंदा गाई। इससे वे क्रुद्ध हो गए। उनका क्रोध इतना बढ़ा कि वे इस बात को भी भूल गए कि हमको क्या करना है। राठौर और महाराष्ट्र-सेना में युद्ध होने लगा। कछवाहों की सेना बैठी तमाशा देखती रही। महाराष्ट्र जीत गए, यदि इस बार भी दोनों सेनाएं मिल जातीं तो महाराष्ट्रीय दर्प सदा के लिए चूर्ण हो जाता। इस वृत्तांत को सुनकर प्रतापसिंह को बड़ा दुःख हुआ था। सन् १८०३ ई० में महाराज प्रताप इस लोक से विदा हो गए।

(टाड्स राजस्थान)

(४) खंडेला के राजा राव इंद्रसिंह के पुत्र। राव इंद्रसिंह के मारे जाने के समय ये बिलकुल बालक थे। इनके मंत्रियों ने महाराष्ट्रों को किसी प्रकार धन देकर इनकी रक्षा की। उस समय खंडेला के दो अधीश्वर थे, प्रतापसिंह और नरसिंहदास। प्रतापसिंह से जब आमेर के राजा कर मांगते थे तब वे अपना देय कर दे दिया करते थे। परंतु नरसिंहदास नहीं देते थे। इस कारण आमेरराज के सेनापति नंदराम हलदिया सेना लेकर आए। प्रतापसिंह ने अच्छा अवसर जानकर आमेरराज के सेनापति से कहा कि मैं समस्त खंडेला का कर दूंगा, यदि यह प्रदेश हमारे अधिकार में करवा दिया जाए। सेनापति ने स्वीकार कर लिया। यहां तक कि प्रतापसिंह को समस्त खंडेला राज्य का अधिकार-पत्र दे दिया गया। प्रतापसिंह ने भी उस राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। नरसिंहदास गोविंदगढ़ में जाकर रहने लगे। प्रतापसिंह ने गोविंदगढ़ पर भी चढ़ाई की, परंतु नंदराम हलदिया ने घूंस लेकर पुनः नरसिंहदास को राज्य दिला

दिया। नंदराम हलदिया के भाग जाने पर आमेर-राज का सेनापति आशाराम पुनः इस प्रदेश में आया और उसने धोखे से प्रतापसिंह और नरसिंहदास दोनों को बंदी कर लिया। प्रतापसिंह कैसे बंदी हुए इसका कुछ भी पता नहीं बताया जा सकता। अस्तु, प्रतापसिंह बहुत दिनों तक कैद रहे। जब मारवाड़-राज और आमेरराज दोनों में युद्ध प्रारंभ हुआ, तब प्रतापसिंह और नरसिंहदास दोनों छोड़ दिए गए। नर-सिंहदास तो मारवाड़ के युद्ध में मारे गए, परंतु प्रताप-सिंह का पता नहीं चला। (टाड्स राजस्थान)

प्रतापादित्य—(१) काश्मीर के एक राजा। युधिष्ठिर नामक राजा के राज्यच्युत होने पर काश्मीर का सिंहासन शून्य हो गया। तब मंत्रियों ने मिलकर देशांतर से विक्रमादित्य की जाति के प्रतापादित्य को काश्मीर के राजासन पर बैठाया। ये विक्रमादित्य शक प्रवर्तयिता नहीं थे।

प्रतापादित्य ने इस प्रकार राज्यशासन किया था कि कोई इन्हें नया राजा नहीं कह सकता था। इन्होंने ३२ वर्ष तक राज्य करके परलोकवास किया था। (टाड्स राजस्थान)

(२) ये यशोहर के अधिपति और गुहवंशी बंगीय कायस्थ थे। सन् १५६४ ई० में इनका जन्म गौरनगर में हुआ था। उस समय बंगाल, बिहार और उड़ीसा का शासन पठान कर रहे थे। प्रताप के पिता श्री-हरि और चाचा जानकीवल्लभ थे। उस समय सुलेमानशाह बंगाल के नवाब थे। श्रीहरि और जानकी-वल्लभ दोनों नवाब के यहां नौकरी करके धनशाली हो गए थे। नवाब सुलेमानशाह ने श्रीहरि को 'विक्रमादित्य' और जानकीवल्लभ को 'वसंतराय' की उपाधि दी। तब से ये दोनों भाई उपाधि नाम से ही प्रसिद्ध हुए।

सन् १५७३ ई० में सुलेमान का छोटा पुत्र दाऊद-खां बंगाल, बिहार और उड़ीसा का नवाब हुआ। दाऊदखां ने यथासमय दिल्ली के सम्राट् को कर नहीं दिया। इस कारण दोनों में युद्ध होने की तैया-रियां होने लगीं। यह देखकर विक्रमादित्य ने यमुना और इच्छामती नदी के वियोगस्थान पर किला बनवा लिया और वहां एक नगर भी बना लिया। उनके बंधु-बांधव जो पूर्व बंगाल में रहा करते थे, उनको भी वहीं बुला लिया। यही वर्तमान यशोहर जिला है। यहां पहले चांदखां की जागीर थी। चांदखां का कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण यह स्थान जन-शून्य हो गया। सिंह, बाघ आदि हिंस्र जंतुओं की वह निवासभूमि हो गया था। धन-रत्न की रक्षा के लिए विक्रमादित्य ने उस स्थान को पसंद किया था। दाऊद-खां के साथ सम्राट्-सेना का युद्ध हुआ। दाऊदखां गौर छोड़कर उड़ीसा भाग गया और सम्राट्-सेनापति मुनीबखां से पराजित होकर बिहार और बंगाल सम्राट् को देकर उसने संधि कर ली। तब से वह उड़ीसा में रहने लगा। गौर छोड़ने के समय वह अपने धन की यशोहर में रक्षा करने के लिए श्रीहरि और जानकीवल्लभ को कह गया। मुनीबखां ने उड़ीसा पर अधिकार किया तो सही, परंतु शीघ्र ही वह बीमार पड़कर मर गया। दाऊदखां ने शीघ्र ही उड़ीसा से आकर बंगाल पर अधिकार कर लिया। दिल्ली के सम्राट् ने हुसेनकुलीखां नामक सेनापति को बंगाल की रक्षा करने के लिए भेजा। हुसेनकुली-खां के साथ दाऊदखां का पुनः युद्ध हुआ। इस युद्ध में दाऊदखां का सेनापति काला पहाड़ और स्वयं दाऊदखां भी मारा गया। गौर छोड़ने के समय दाऊदखां ने जो संपत्ति यशोहर भेजी थी वह वहां ही रही, वहां से लौटी नहीं। विक्रमादित्य अतुल ऐश्वर्य के स्वामी हुए। बंगाल का प्रबंध करने के लिए टोडरमल गौर आए। विक्रमादित्य यशोहर शासन का भार वसंत-राय को देकर स्वयं गौर आए और कागज-पत्र बनाने में टोडरमल की सहायता करने लगे। कागज बन जाने पर विक्रमादित्य ने टोडरमल से विदा मांगी। पुनः नौकरी करने की इच्छा उन्होंने प्रकट नहीं की। टोडरमल ने पारितोषिक में विक्रमादित्य को बहुमूल्य वस्तुएं दीं। विक्रमादित्य यशोहर पहुंचकर अनेक याग-यज्ञ करके नये राज्य का शासन करने लगे। यशोहर में बड़ी-बड़ी सुंदर अटारियां बन गईं। इसी समय विक्रमादित्य के एक पुत्र हुआ। उस पुत्र का नाम विक्रमादित्य के पिता भवानंद ने 'प्रतापादित्य' रखा। युवक प्रताप शिकार खेलने वन में जाया करते थे। उस समय उनका साहस, बुद्धि और कष्ट-सहिष्णुता आदि देखकर लोगों को आश्चर्य होता था। सन् १५७५ ई० में महामारी के कारण गौर भी जनशून्य हो गया, परंतु यशोहर की इससे श्रीवृद्धि हुई। गौर का यशहरण करने के कारण यशोहर नाम सार्थक हुआ था। क्रमशः प्रताप का स्वभाव उद्धत हो गया। वे बातचीत में पिता

और चाचा की आज्ञा का तिरस्कार कर दिया करते थे। विक्रमादित्य पुत्र के इस दुर्व्यवहार से चिंतित हुए। प्राणसम भाई वसंतराय का प्रताप अपमान करेगा, विक्रमादित्य यही सोचा करते थे। पीछे पुत्र के कारण भाई से किसी प्रकार का विवाद न हो इसलिए उन्होंने युक्ति से पुत्र को कहीं दूर हटा देने का विचार किया। उन्होंने अकबर की राजधानी आगरे में प्रताप को भेज दिया। वसंतराय का प्रताप में बड़ा स्नेह था, उन्होंने भाई से प्रताप को आगरा न भेजने के लिए कहा था। परंतु प्रताप ने समझ लिया था कि चाचा के कारण ही मैं निकाला जा रहा हूं। जो भी हो, आगरा जाने से प्रताप का मंत्रियों के साथ परिचय हुआ और उनकी सहायता से बादशाह अकबर के साथ भी उनका परिचय हुआ। प्रताप का भाग्य खुला। धीरे-धीरे प्रताप कुमार सलीम और टोडरमल आदि के मित्र हो गए। यशोहर की मालगुजारी बादशाह के खजाने में जमा करने के लिए विक्रमादित्य प्रताप के यहां भेज दिया करते थे। प्रताप ने जब देखा कि मैं सम्राट् और उनके मंत्रियों का विश्वासपात्र हो गया हूं तब उन्होंने मालगुजारी दाखिल करना बंद कर दिया। यशोहर से यथासमय राजकोष में दाखिल करने के लिए रुपये भेजे जाते थे, परंतु वे दाखिल नहीं हो पाते थे। इसी प्रकार मालगुजारी बाकी पड़ने पर सम्राट् ने प्रताप को बुलाकर इसका कारण पूछा। प्रताप ने उत्तर दिया—हमारे पिता वृद्ध हो गए हैं। इस कारण चाचा ही राज्य का प्रबंध करते हैं। मालूम पड़ता है, किसी कारण से चाचा मालगुजारी नहीं भेजते और उनकी अयोग्यता के कारण राज्य में भी सर्वदा अराजकता फैली रहती है। यह सुनकर बादशाह अप्रसन्न हुए और राज-कर देने पर प्रताप को ही अपना राजा बनाने की उन्होंने अपनी सम्मति प्रकट की। बहुत शीघ्र ही प्रताप ने बाकी राज्य-कर दे दिया। बादशाह ने उसमें से तीन लाख रुपये उनको लौटा दिए और उनको राजा के सनद-पत्र देकर यशोहर भेजा। सम्राट् से २२ हजार सेना लेकर प्रताप ने प्रस्थान किया। प्रताप के यशोहर के समीप पहुंच जाने पर विक्रमादित्य और वसंतराय ने सुना कि सम्राट् की आज्ञा से प्रताप राज्य लेने आ रहे हैं। वे यह सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुए। पुत्र को राज्य देने के लिए विक्रमादित्य अत्यंत हर्षित हुए। विक्रमादित्य और वसंतराय बड़े हर्ष के साथ प्रताप की बाट जोह रहे थे। उनके आने से नगरनिवासी अत्यंत प्रसन्न हुए। परंतु आते ही प्रताप ने नगर को घेर लिया और राजकोष पर अधिकार कर लिया। प्रताप को डर हुआ था कि वसंतराय उसे रोकेंगे, परंतु यहां वैसा कुछ नहीं हुआ। पिता और पितृव्य प्रताप के व्यवहार से दुःखी हुए और नगरवासी भी विस्मित हुए। विक्रमादित्य और वसंतराय दोनों प्रताप के डेरे में गए और उसकी दुष्टता की कोई बात न कहकर तथा अनेक प्रकार के उपदेश देकर राज्य ग्रहण करने के लिए उनसे कहा। प्रताप पिता के साथ राजमहल में आया। प्रताप को राज्य देकर विक्रमादित्य और वसंतराय दोनों धर्मचर्चा करने लगे। प्रताप ने अपने राज्य का सुप्रबंध करके पोर्तूगीज लुटेरों का दमन किया। प्रताप के पराक्रम की चारों ओर प्रसिद्धि हो गई। इसी समय विक्रमादित्य का परलोकवास हुआ। प्रताप ने चाचा के कहने से उत्कल से उत्कलेश्वर नामक महादेव और गोविंददेव नामक श्रीकृष्ण की मूर्ति यशोहर में स्थापित की। प्रताप की इच्छा थी कि आसपास के राजाओं को मिलाकर दिल्ली के सम्राट् से स्वाधीन हो जाएं। इसीलिए वे उड़ीसा गए और उड़ीसा के राजाओं से मित्रता स्थापित करके वे अपने राज्य में लौट आए। दिन-प्रतिदिन प्रताप की योग्यता बढ़ने लगी। बंग देश में कोई उसका सामना करने वाला नहीं रह गया। पीछे से किसी प्रकार का गृहकलह न हो इसलिए विक्रमादित्य ने यशोहर राज्य को (६० प्रतिशत भाग प्रताप को और ४० प्रतिशत वसंतराय को इस प्रकार) दो भागों में बांट दिया था। विक्रमादित्य के मरने पर पहले वसंतराय प्रताप से मिलकर राज्यशासन करते थे, परंतु बाद में प्रताप की दुष्टता से उन्हें अलग होना पड़ा। प्रताप ने उचित बदला देकर वसंतराय से चकसीरी परगना मांगा था। मग और फिरंगियों के आक्रमण से राज्य की रक्षा करने के लिए प्रताप को इन स्थानों की बहुत आवश्यकता थी। वसंतराय ने जब चकसीरी परगना देने को मना कर दिया, तब प्रताप अत्यंत क्रुद्ध हो गए। गृहकलह का यही प्रारंभ है। प्रताप ने अपनी कन्या बिंदुमती का चंद्रद्वीप के राजा कंदर्पनारायण के पुत्र रामचंद्र के साथ ब्याह किया था। कोई-कोई कहते हैं कि दुरभिलाषी राज्यलोलुप प्रताप ने अपने जामाता को मार-

कर उसका राज्य लेने की इच्छा की थी। रामचंद्र अपने साले उदयादित्य की सहायता से भागकर अपने राज्य में गए थे। गृहकलह का मूल कारण वसंतराय को जानकर प्रताप ने उनको और उनके पुत्रों को मार डाला। वसंतराय का एक छोटा पुत्र था। उसका नाम था राघव। वसंतराय की स्त्री उस पुत्र को लेकर एक वन में छिप गई थी, इसी कारण वह बचा रहा। राघव छिपा-छिपा दिल्ली जाकर बादशाह की शरण में गया और बादशाह की सहायता से प्रताप को जीतकर वह यशोहर का राजा हुआ। बादशाह ने उसे 'यशोहरजित्' की उपाधि दी थी।

प्रतिबाहु—यदुवंशी राजा 'नाम' के ये पुत्र थे। 'नाम' के स्वर्ग जाने पर प्रतिबाहु जयसलमेर के राजा हुए थे।

प्रतीप—कुरुवंशी राजा। ये शंतनु के पिता थे।

प्रद्युम्न—श्रीकृष्ण के पुत्र। ये रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। कामदेव और महादेव की कोपाग्नि में भस्म होकर श्रीकृष्ण के औरस और रुक्मिणी के गर्भ से ये उत्पन्न हुए थे। जन्म होने के सातवें दिन श्रीकृष्ण के प्रबल शत्रु शम्बरासुर ने उसे हर लिया। यह बात श्रीकृष्ण को मालूम तो हो गई, परंतु उन्होंने इसका कुछ भी प्रतिविधान नहीं किया। दैत्यपति शम्बर की रानी का नाम मायावती था। मायावती का कोई पुत्र नहीं था। अतएव शम्बर ने प्रद्युम्न को मायावती के हाथों में सौंप दिया और उसे पालने-पोसने के लिए कहा। मायावती कोई दूसरी नहीं है यह स्वयं रति है। प्रद्युम्न को देखते ही मायावती को अपने पूर्व-जन्म के वृत्तांत स्मरण हो आए। वह पति का लालन-पालन स्वयं करना उचित न समझकर धाय के द्वारा उसे पालने-पोसने लगी। प्रद्युम्न जब जवान हुए, तब मायावती उनसे पत्नी के समान भाव प्रकट करने लगी। यह देखकर प्रद्युम्न ने एक दिन मायावती से पूछा —तुम मेरे प्रति पुत्रभाव छोड़कर इस प्रकार का विपरीत भाव क्यों प्रकट करती हो? प्रद्युम्न को एकांत में ले जाकर मायावती कहने लगी—नाथ! तुम हमारे पुत्र नहीं हो, शम्बर भी तुम्हारा पिता नहीं है। तुम्हारा जन्म वृष्णिवंश में हुआ है। तुम्हारी माता रुक्मिणी और पिता श्रीकृष्ण हैं। तुम्हारे जन्म के सातवें दिन सौर घर से शम्बर तुम्हें उठा लाया था। मैं तुम्हारे रूप पर मोहित हुई हूं, तुम शम्बर को मारो और मेरा मनोरथ पूर्ण करो। यह सुनकर प्रद्युम्न ने किसी प्रकार शम्बर का क्रोध बढ़ाया और युद्ध में वैष्णवास्त्र के द्वारा उसे मार डाला। तदनंतर मायावती को लेकर वे द्वारका चले गए।

प्रद्योत—प्रद्योत-राजवंश का प्रवर्तक। इसके पिता का नाम शुनक या शुनीक था, जो सूर्यवंश के अंतिम राजा रिपुंजय या अरिंजय का महामात्य था। इसने रिपुंजय का वध करके अपने पुत्र प्रद्योत को राजगद्दी पर बैठाया था। पुराणों में इसके पिता का नाम क्षेमक बताया गया है और इसे 'म्लेच्छहंता' की उपाधि से अभिहित किया गया है। इसके पिता का म्लेच्छों ने वध किया था, जिसका बदला लेने के लिए इसने म्लेच्छयज्ञ किया था। यज्ञ के सोलह मील लंबे यज्ञकुंड में इसने हारदूण, बर्बर, गुरुंड, शक, खस, पवन, पल्लव, रोमज, खरसंभव द्वीप के कामस और सागर मध्य स्थित चीन के म्लेच्छों को जलाकर भस्म किया था।

इस वंश के राजाओं का क्रम 'वायुपुराण' में उल्लिखित है। इनका क्रम इसप्रकार है—प्रद्योत, पालक, विशाखयूप, जनक और नंदवर्धन। इस वंश के राजाओं ने ७४५-६९० ई० पूर्व के बीच राज्य किया।

प्रद्वेषी—महर्षि दीर्घतमा की पत्नी का नाम।

प्रधान कवि—ये हिंदी के कवि थे और सं० १७७५ वि० में उत्पन्न हुए थे। इनके कवित्त मनोहर होते थे।

प्रधान केशवराय—ये हिंदी के कवि थे। इन्होंने 'शालिहोत्र' नामक अश्वचिकित्सा के विषय में एक ग्रंथ हिंदी में लिखा है।

प्रभञ्जन—एक राजा। यह नि:संतान था। इसने शिव की तपस्या की। इसकी तपस्या से शिव ने प्रसन्न होकर इसे तथा इसके भावी वंशजों को केवल एक संतान प्राप्त होने का वरदान दिया। तदनुसार इसको तथा इसके वंशजों को केवल एक-एक संतान की प्राप्ति हुई। राजा चित्रवाहन तक यही क्रम चलता रहा। किंतु चित्रवाहन का पुत्र न होकर पुत्री उत्पन्न हुई, जिसका नाम चित्रांगदा था। इसीके द्वारा अपने वंश का प्रवर्तन करने के उद्देश्य से राजा चित्रवाहन ने 'दौहित्राधिकार' की शर्त पर अपनी इस कन्या का विवाह अर्जुन से किया। अर्जुन से चित्रांगदा का बभ्रुवाहन नामक पुत्र हुआ और वही चित्रवाहन के राजवंश का उत्तराधिकारी बना। (महाभारत)

प्रभाकरवर्द्धन—एक प्राचीन राजा। थानेश्वर में इनकी राजधानी थी। कहते हैं, कन्नौजराज हर्षदेव के ये

पिता थे। जिस समय प्रभाकरवर्द्धन थानेश्वर प्रदेश का शासन करते थे, उस समय उनके जामाता ग्रहवर्मा कन्नौज के राजा थे। हर्षवर्द्धन जब कन्नौज के राजा हुए तब थानेश्वर कन्नौज राज्य में मिला दिया गया था।

प्रभास—एक प्राचीन तीर्थ। महाभारत से मालूम होता है कि यह तीर्थ द्वारका के अंतर्गत था। यज्ञाश्व के पीछे अर्जुन प्रभासक्षेत्र होकर द्वारकापुरी में गए थे। पुराणों से यद्यपि यह बात सिद्ध है कि श्रीकृष्ण के स्वर्गारोहण करने पर द्वारकापुरी समुद्र में लीन हुई। यही बात प्रभासक्षेत्र के लिए भी है। तथापि बहुत दिनों से लोगों ने एक द्वारकापुरी और एक प्रभासक्षेत्र निर्दिष्ट कर लिया है। यह निर्देश कब हुआ और किसने किया, इसका पता नहीं है। आज भी प्रभासक्षेत्र गुजरात काठियावाड़ के बिलावल बंदर के पास वर्तमान है। यह यज्ञीय स्थान समझा जाता है।

प्रमद्वरा—एक ऋषिपत्नी। गंधर्वराज विश्वावसु के औरस और मेनका नाम की अप्सरा के गर्भ से इसकी उत्पत्ति हुई थी। यह प्रमितिपुत्र रुरु को ब्याही गई थी। इसके गर्भ से महर्षि शुनक की उत्पत्ति हुई थी। प्रमद्वरा को किसी सांप ने काट खाया था, जिससे वह मर गई। तभी से क्रोध के कारण रुरु ने सर्पवंश का नाश करना प्रारंभ कर दिया था। (महाभारत)

प्रमारवंश—क्षत्रियों के अग्निकुल की एक शाखा। अग्निकुल की प्रधान शाखाएं ये चार हैं—प्रमार, पुरिहर, चौहान और चालुक्य या शोलंकी। प्रमार में भी ३५ शाखाएं हैं।

प्रमिला—हिमालय में स्थित स्त्रीराज्य की सम्राज्ञी। इसने पांडवों के अश्वमेध-यज्ञ का अश्व पकड़ लिया था। तब अर्जुन के साथ इसका भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में अर्जुन को सफलता मिलती न दिखाई दी। तब आकाशवाणी के निर्देश पर अर्जुन ने इससे संधि करके विवाह किया। तदनंतर यज्ञ-अश्व की मुक्ति हुई।

प्रयाग—तीर्थराज। रामायण में लिखा है कि मध्य भारत में इल नामक राजा ने प्रतिष्ठानपुर नामक नगर बसाया। यहां किसी समय पुरूरवा की राजधानी थी। वह प्रतिष्ठाननगर इस समय कहां है? बहुत लोग कहते हैं कि उसी प्रतिष्ठानपुर के भग्नावशेष पर ही प्रयाग या इलाहाबाद नगर स्थापित हुआ है। मत्स्यपुराण में लिखा है कि ययाति ने जिस समय पुरु को राज्य दिया उस समय उन्होंने कहा था—'गङ्गायमुनयोर्मध्ये कृत्स्नोऽयं विषयस्तव' इस उक्ति से भी प्रतिष्ठान या प्रयाग का ही बोध होता है। इससे पुरूरवा से लेकर ययाति पर्यंत यह राज्य चंद्रवंशी राजाओं के अधिकार में था यह मालूम पड़ता है। ययाति ने पुरु को अपने राज्य का श्रेष्ठ भाग दिया था, इससे यह नगर उस समय विशेष संपत्तिशाली था, यह अनुमान किया जाता है। महाराज युधिष्ठिर के समय में भी प्रतिष्ठान नामक जनपद का पता मिलता है। उस समय प्रतिष्ठान की राजधानी प्रयाग में थी। राजा युधिष्ठिर ने प्रयागमाहात्म्य सुनकर इस विषय में मार्कंडेय मुनि से कई-एक प्रश्न पूछे थे। उन्हीं प्रश्नों के उत्तर में महर्षि मार्कंडेय कहते हैं कि प्रयाग में प्रतिष्ठान से लेकर वासुकीहृद पर्यंत जो स्थान है उसे प्रजापतिक्षेत्र कहते हैं। इस क्षेत्र में कम्बल, अश्वतर और बहुमूल नामक नाग का वास है। मत्स्यपुराण में भी इसी प्रकार लिखा गया है। कूर्मपुराण में महर्षि मार्कंडेय युधिष्ठिर के प्रति कहते हैं—गंगा के पूर्व तीर पर त्रिभुवन प्रसिद्ध सर्वसमुद्र नामक एक खोह है तथा प्रतिष्ठान नगरी भी वहीं विद्यमान है। प्रतिष्ठान के उत्तर और गंगा के वाम भाग में हंसप्रपतन नामक प्रसिद्ध तीर्थ है। इस वर्णन से गंगा के दूसरे पार और गंगा के पूर्व की ओर प्रतिष्ठान विद्यमान है। कालप्रभाव से वह नगर नष्ट हो गया अथवा इलाहाबाद में ही मिल गया इसका कुछ निश्चय नहीं किया जा सकता। प्रतिष्ठाननगर के लुप्त होने पर प्रयाग की प्रसिद्धि हुई है। यद्यपि प्रयाग कभी किसी स्वाधीन राज्य की राजधानी नहीं था, हो भी तो उसका उल्लेख पुराणों में नहीं देखा जाता। तथापि सृष्टि के आदिकाल से ही प्रयाग मुक्तिक्षेत्र माना जाता है। रामायण में भी प्रयाग और प्रागवट का उल्लेख है। अयोध्याकांड के ५४वें सर्ग में प्रयाग में भरद्वाजाश्रम गंगा-यमुना का संगम आदि का उल्लेख है। वहां श्रीरामचंद्र ने लक्ष्मण से कहा था—सौमित्र! यह देखो, प्रयागतीर्थ के चारों ओर से अग्नि का केतुस्वरूप धूम उठ रहा है। मालूम पड़ता है, मुनि आश्रम में ही हैं। ठीक-ठीक हम लोग गंगा-यमुना के संगमस्थान पर पहुंच गए हैं। क्योंकि दोनों नदियों के संगम से जलध्वनि हो रही है। परंतु उस समय यह नगर किस राजा की राजधानी था इसका पता नहीं लगता। इससे मालूम पड़ता है कि प्रतिष्ठानपुर के

नष्ट होने पर प्रयाग कौशल राज्य के ही अंतर्गत था। महाभारत में लिखा है—प्रयाग महाराज दुर्योधन के राज्य के अंतर्गत था। महाराज युधिष्ठिर दुर्योधन को सुयोधन कहा करते थे। दुर्योधन के मरने पर प्रयाग की बात स्मरण करके युधिष्ठिर विलाप करते हैं—हाय, एक दिन इस राज्य के सुयोधन राजा थे, वे एकादश अक्षौहिणी के अधीश्वर थे इत्यादि। मत्स्यपुराण और कूर्मपुराण में यह बात लिखी है।

भारतवर्ष के अन्यान्य प्रसिद्ध स्थानों के समान प्रयाग में भी एक समय बौद्धों की प्रधानता विस्तृत हुई थी। प्रयाग के किले में एक धातुनिर्मित स्तंभ (लाट) विद्यमान है। इस देश पर एक समय राजा अशोक का शासन था। यही बात उस लाट से पाई जाती है। बौद्धधर्म की नीति और उपदेश उस स्तंभ में खुदे हुए हैं। अशोक के अनंतर प्रयाग गुप्तवंशियों के अधिकार में था। गुप्तवंशी राजा समुद्रगुप्त ने अशोक के स्तंभ पर अपना भी स्मृतिचिह्न अंकित किया है। समुद्रगुप्त ने अपने पितृकुल का परिचय तथा अपने राज्य की गौरवकथा उस स्तंभ पर खुदवाई है। सम्राट् अकबर के शासनसमय में प्रयाग में एक किला बना जिसका नाम 'इलाहाबाद' रखा गया। शाहजहां के समय में उस किले का नाम अल्हाबाद हुआ और अब इलाहाबाद हो गया है। जो भी हो, पहले सम्राट् अशोक के स्तंभ का जो उल्लेख किया गया है, उसके कितने ही अंश सम्राट् जहांगीर ने तोड़-फोड़ डाले थे। तदनंतर पुनः उसका संस्कार कराया और उसपर फारसी में अपने राज्य की महिमा गाई। इलाहाबाद किले में जो स्तंभ इस समय वर्तमान है उसमें भिन्न-भिन्न राजाओं के शासन का भिन्न-भिन्न प्रकार का उल्लेख पाया जाता है। चीन-परिव्राजकों के भ्रमण-वृत्तांत से प्रयाग का जो परिचय मिलता है, उससे मालूम होता है कि फाहियान और ह्वेनत्संग दोनों ही अयोध्या होकर प्रयाग पहुंचे थे। परंतु इनके मार्ग भिन्न-भिन्न थे। ह्वेनत्संग का वर्णन इस प्रकार है—अयुतो अर्थात् अयोध्या से नाव पर चढ़कर ५० मील चलने पर चीनी परिव्राजक गंगा के उत्तर तीरस्थ ओयीमुखी अर्थात् हयमुख नामक स्थान में पहुंचे। कहते हैं कि हय नामक दानव की राजधानी होने के कारण इस नगर का नाम हयमुख पड़ा। चंद्रवंश की शाखा यदुवंश में हय नामक एक राजा थे। संभव है, उनकी ही यह राजधानी हो। भागवत में हय नामक यवन-राजा द्वारा पुरंजन के राज्य पर आक्रमण किए जाने का उल्लेख है। हयमुख उसी यवन राजा का ही राज्य हो, ऐसा भी अनुमान किया जा सकता है। अस्तु, वहां से ह्वेनत्संग दक्षिण-पूर्व की ओर एक सौ सोलह मील जाकर प्रयाग पहुंचे। ह्वेनत्संग ने प्रयाग के विषय में यह लिखा है—दो नदियों के संगम स्थान पर यह नगर विद्यमान है और इसके पश्चिम की ओर बालुकामय समतल भूमि है। नगर के बीच में ब्राह्मणों का एक देवमंदिर है। कहते हैं, उस मंदिर में एक पैसा चढ़ाने से हजार पैसे मिलते हैं। मंदिर के आंगन में एक बहुत बड़ा वृक्ष है, लोग कहते हैं कि उस वृक्ष पर एक नरभक्षी दैत्य रहता है। वृक्ष के चारों ओर नरकंकाल फैला हुआ था। जो यात्री मंदिर के सामने आत्मबलिदान करते थे उन्हींका कंकाल वृक्ष के आजू-बाजू पड़ा था। ह्वेनत्संग कहते हैं, बहुत दिनों से उस वृक्ष के आसपास नरकंकाल रखा जाता है। कनिंहम का मत है कि जिस वृक्ष का उल्लेख परिव्राजक ने किया है वह वृक्ष 'अक्षयवट' ही है। किले में अक्षयवट आज भी वर्तमान है। परंतु परिव्राजक-कथित मंदिर का पता नहीं चलता, ऐसी स्थिति में उन्हीं स्तंभों को ही मंदिर का भग्नावशेष माना जा सकता है। अक्षयवट तथा उसके आसपास के स्तंभों को देखने से वहां एक प्राचीन नगर के होने का पता लगता है। संभवतः अधिक समय होने के कारण वहां की भूमि ऊंची हो गई हो और मंदिर भूमि में दब गया हो। अतएव आज किले में अक्षयवट के समीप जाने के लिए सीढ़ियों से नीचे उतरना पड़ता है। रसीद-प्रणीत 'जामै उत्तवारीख' में अक्षयवट का विवरण लिखा है। उन्होंने लिखा है कि प्रयाग का यह वृक्ष (अक्षयवट) गंगा और यमुना के संगम पर विद्यमान है। रसीद उद्दीन ने आबूरिहाण-लिखित अनेक विषयों का अपने ग्रंथों में उल्लेख किया है। आबूरिहाण के ग्रंथ में महमूद गजनी के समय का विवरण रहना संभव है। परंतु सप्तम शताब्दी के ह्वेनत्सग ने लिखा है—प्रयागनगर और गंगा-यमुना के संगम के बीच में दो कोस बालू का मैदान है। जब उन्होंने अक्षयवट को नगर के मध्य में लिखा है, तब कम से कम नगर से एक मील की दूरी पर गंगा-यमुना का संगम-क्षेत्र का होना संभव

माना जा सकता है। परंतु ह्वेनत्सांग की भारत-यात्रा से नौ सदी बाद अकबर के राज्य-काल के अब्दुलकादिर ने लिखा है कि इसी वृक्ष से लोग गंगा में कूदते थे। इससे मालूम पड़ता है कि ह्वेनत्सांग के समय गंगा नगर से दूर थी और अकबर के समय समीप। मालूम पड़ता है कि अकबर के राज्य के बहुत पहले लोगों ने नगर छोड़ रखा था। क्योंकि अकबर के राज्य के इक्कीसवें वर्ष अर्थात् १५७२ ई० में जब इलाहाबाद किला बना तब वहां अक्षयवट के अतिरिक्त और किसीका चिह्न तक भी नहीं था। आबूरिहाण के वर्णन में प्रयाग का उल्लेख नहीं है, किंतु केवल वटवृक्ष का ही उन्होंने वर्णन किया है। अतः इससे भी उस समय नगरी के जनशून्य होने का प्रमाण पाया ही जाता है। अकबर और आबूरिहाण के मध्यवर्ती किसी भी ऐतिहासिक ने इस नगर का उल्लेख नहीं किया है। इससे भी पूर्वोक्त बात ही पाई जाती है।

प्रयाग की प्रतिष्ठा के विषय में एक अद्भुत किंवदंती प्रसिद्ध है। प्रयाग नामक एक ब्राह्मण अकबर के राज्यकाल में यहां वास करते थे। उन्हींके नामानुसार प्रयाग की उत्पत्ति हुई है। कहा जाता है कि सम्राट् अकबर जिस समय इलाहाबाद किला में बनवा रहे थे, उस समय नदी की धार से किले की एक दीवार टूट गई। उस दीवार को कारीगर किसी भी प्रकार से नहीं बना सकते थे। अकबर ने कई मनुष्यों से इस विषय में सम्मति पूछी। उससे निश्चित हुआ कि बिना नरबलि दिए दीवार का बनाया जाना कठिन है। तदनंतर घोषणा प्रचारित की गई—कौन मनुष्य इस किले के बनने में सहायता पहुंचाने की इच्छा से प्राणदान करने को तैयार है? उसका नाम चिरस्थायी करने के लिए उसीके नाम पर नगर का नाम रखा जाएगा। इस घोषणा को सुनकर वही प्रयाग नामक ब्राह्मण बादशाह की सहायता करने की इच्छा से प्राण देने के लिए उद्यत हुआ। प्रयाग के प्राणदान करने से यह किला बना है। इसी कारण नगर का नाम प्रयाग रखा गया। कनिंहम कहते हैं कि जो यात्री अक्षयवट का दर्शन करने जाता है तब उससे यही प्रयाग नाम की उत्पत्ति या प्रतिष्ठा विषयक उपाख्यान कहा जाता है। परंतु कनिंहम साहब इस उपाख्यान पर विश्वास नहीं करते। उन्होंने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा है कि सातवीं शताब्दी के ह्वेनत्सांग के वर्णन में भी प्रयाग नाम देखा जाता है। ई० सन् के २३५ वर्ष पूर्व अशोक ने जो स्तंभ का निर्माण कराया है उसमें भी प्रयाग नाम पाया जाता है। अतएव १६वीं सदी में प्रयाग-निर्माण के विषय में जो किंवदंती प्रसिद्ध है वह असत्य है।

प्रलम्ब—एक अत्यंत दुराचारी दानव। श्रीकृष्ण, बलराम और गोपबालक जिस समय खेल रहे थे उस समय यह दानव गोपवेश धारण करके उनके साथ जा मिला। श्रीकृष्ण प्रलंबासुर की अभिसंधि ताड़ गए। वे गोपबालकों के साथ कृत्रिम मल्लयुद्ध करने लगे। इस कृत्रिम युद्ध में यह ठहराव हुआ कि जो हार जाएगा वह विजेता को अपने कंधे पर रखकर निर्दिष्ट स्थान तक ले जाएगा। प्रलंबासुर बलराम के साथ युद्ध में पराजित होकर उनको अपने कंधे पर चढ़ाकर ले चला। थोड़ी दूर ले जाकर बलराम का वध कर देने की ही प्रलंबासुर की इच्छा थी। यह समझकर बलराम इतने भारी हुए कि प्रलंब उनको ढो नहीं सका। अंत में, प्रलंब अपनी मूर्ति धारण करके बलराम की ओर बढ़ा किंतु शीघ्र ही युद्ध में बलराम द्वारा मारा गया। (भागवत)

प्रवरसेन—(१) काश्मीर के एक राजा। इनका दूसरा नाम श्रेष्ठसेन था। लोग इन्हें तुञ्जीन भी कहा करते थे। ये बड़े वीर थे। इन्होंने प्रवरेश्वर नामक शिव तथा मातृचक्र की प्रतिष्ठा की थी। इसके अतिरिक्त और भी अनेक पुरातन मंदिरों का इन्होंने संस्कार कराया। प्रवरेश्वर शिव को इन्होंने त्रिगर्त देश दिया था। इन्होंने ३० वर्ष राज्य किया था। (राजतरंगिणी)

(२) ये द्वितीय प्रवरसेन के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके पिता का नाम तोरमान था। प्रथम प्रवरसेन के ये पौत्र थे। प्रथम प्रवरसेन की मृत्यु होने पर उनके बड़े पुत्र हिरण्य काश्मीर के सिंहासन के अधिपति हुए। तोरमान छोटे थे। अतएव वे युवराज के पद पर आसीन हुए। युवराज तोरमान ने अपने नाम का सुवर्ण का सिक्का चलाया। इस बात से राजा बहुत अप्रसन्न हुए। उन्होंने तोरमान को कैद कर लिया। उस समय तोरमान की स्त्री अंजना गर्भवती थी। वह पति की आज्ञा से एक कुंभकार के घर में रहने लगी। वहीं उसका एक पुत्र हुआ। वही पुत्र द्वितीय प्रवरसेन हुआ। प्रवरसेन की बाल्यावस्था की क्रीड़ाओं से मालूम किया जा सकता था कि वह उच्चवंशी तथा भावी

राजा हैं। वह अपने साथियों के साथ खेल में राजा बनता था और सबका शासन करता था। एक समय मामा जयेन्द्र ने इसे देखा। आकार आदि देखने से उन्हें संदेह हुआ। वे उस बालक के पीछे-पीछे गए। वहां अंजना को देखने से जयेन्द्र का संदेह दूर हुआ। जयेन्द्र से सभी बातें जानकर प्रवरसेन अत्यंत क्रुद्ध हुए। परंतु मामा के यह कहने पर कि समय के द्वारा बलवान बनाया हुआ कार्य अधिक अच्छा होता है—प्रवरसेन ने क्रोध शांत किया और वे तीर्थयात्रा के लिए चले गए।

हिरण्यगुप्त के मरने पर काश्मीर का राजसिंहासन कुछ दिनों तक शून्य ही रहा था। पुन: उज्जयिनीपति विक्रमादित्य की आज्ञा से मातृगुप्त काश्मीर के राजा हुए।

प्रवरसेन तीर्थाटन करते-करते श्रीपर्वत पर पहुंचे। वहां उन्होंने अपने राज्य की दुर्दशा और पिता की मृत्यु की बात सुनी। उनको बड़ा कष्ट हुआ। वे इसके प्रतिकार का उपाय सोच ही रहे थे कि अश्वपाद नामक सिद्ध वहां गया। उसने प्रवरसेन को संबोधन करके कहा—आप मेरे पहले के गुरु हैं। मैंने आपसे ही सिद्धि प्राप्त की है। उस समय मैंने आपसे पूछा था कि आप क्या चाहते हैं, तो आपने कहा था—मुझे राज्य चाहिए। मैंने आपको मनोरथ पूर्ण करने के लिए भगवान् चंद्रशेखर से प्रार्थना की है। उन्होंने कहा—यह मेरा अनुचर है। मैं उसका अभीष्ट पूरा करूंगा। इतना कहकर वह सिद्ध चला गया। प्रवरसेन भी तपस्या करने लगे। महादेव यथासमय आए और प्रवरसेन को वर देकर चले गए।

प्रवरसेन भी काश्मीर के समीप पहुंचे। राज्य के मंत्री प्रवरसेन के समीप गए और उनसे मातृगुप्त के विरुद्ध युद्ध करने के विषय में परामर्श करने लगे। प्रवरसेन ने कहा—मेरा हृदय विक्रमादित्य का नाश करने के लिए शीघ्रता कर रहा है। मातृगुप्त से मेरा कुछ विरोध नहीं है। जो क्लेश सहन कर सकते हैं, यदि वे शत्रु भी हैं तो उनको पीड़ा देने से क्या लाभ है। जो छोटों-छोटों को जीतकर जगत् में वीर के नाम से प्रसिद्ध हैं उनका नाश करने वाले ही सच्चे वीर कहे जा सकते हैं। यह कहकर प्रवरसेन मंत्रियों के साथ विक्रमादित्य से युद्ध करने के लिए चल दिए। मार्ग में ही इन्होंने सुना कि विक्रमादित्य का परलोकवास हो गया। इससे प्रवरसेन को बड़ा दुःख हुआ। उसी समय यह संवाद आया कि काश्मीरराज विक्रमादित्य राज्य छोड़कर कहीं जा रहे हैं। प्रवरसेन ने समझा कि कदाचित् मेरे पक्ष वालों ने उन्हें राज्य से उतार दिया है। अत: इसका निर्णय करने के लिए वे स्वयं मातृगुप्त के समीप गए। और अत्यंत नम्रता से उन्होंने राज्य छोड़ने का कारण उनसे पूछा। मातृगुप्त ने कहा—राजन्! जिसने मुझे राजा बनाया था वह अब इस संसार में नहीं रहा, अत: अब मेरा भी राज्यभोग करना अन्याय और कृतघ्नता है। प्रवरसेन ने मातृगुप्त को बहुत समझाया कि आप राज्य न छोड़ें, परंतु मातृगुप्त ने कुछ भी न सुना और वे काशी जाकर संन्यासी हो गए। प्रवरसेन काश्मीर के राजा तो हुए परंतु राज्य की जो कुछ आय होती थी वह सब वे मातृगुप्त के पास काशी भेज देते थे। दस वर्ष के बाद मातृगुप्त का स्वर्गवास हुआ।

प्रवरसेन काश्मीर का राज्य करने लगे। उनकी सेनाओं ने भारत के अन्यान्य प्रांतों को भी अपने अधीन कर लिया था। विक्रमादित्य के पुत्र शिलादित्य को शत्रुओं ने राज्यच्युत कर दिया था। प्रवरसेन ने शिलादित्य को उसका पितृराज्य दिला दिया। और काश्मीर का जो सिंहासन विक्रमादित्य ले गए थे, उसे ये लौटा लाए। इन्होंने वितस्ता नदी पर नौकाओं का पुल बंधवा दिया था। अपने नाम का एक नगर भी इन्होंने बनवाया था। इसके अतिरिक्त और भी कितने ही महान् राजोचित् कार्य प्रवरसेन ने किए। इनका राज्यकाल ६० वर्ष है।

(राजतरंगिणी)

प्रवाहण जैवलि—पांचालदेश का एक तत्त्ववेत्ता राजा। जीवल का वंशज होने के कारण इसे जैवलि कहा गया। एक बार इस ज्ञानी राजा ने अपने पांचालदेश में तत्त्वज्ञान परिषद् का आयोजन किया था। श्वेतकेतु आरुणेय का इससे शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें जैवलि की विजय हुई। तब श्वेतकेतु अपने घर आया और उसने क्रुद्ध होकर अपने पिता जैवलि द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर पूछे। उसका पिता उद्दालक आरुणि भी उन प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ न हो सका। तब दोनों राजा जैवलि की शरण में गए और उससे ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्राप्त किया। इतिहास में यह प्रथम व्यक्ति था, जिसने ब्राह्मणों को ब्रह्मज्ञान दिया। इसका अन्य ऋषियों से भी तत्त्वविद्या पर शास्त्रार्थ हुआ था।

(छांदोग्य उपनिषद्)

प्रवीण कविराय—हिंदी के कवि। ये सं० १९१२ वि० में उत्पन्न हुए थे। हजारा में इनके लिखे कवित्त पाए जाते हैं। नीति और शांत रस के ये अच्छे कवि थे।

प्रवीण ठाकुरप्रसाद—ये कवि अवध के रहने वाले और पयासी के मिश्र थे। इनका जन्म सं० १९२४ वि० में हुआ था। इनके गांव का नाम पलिया था, जो शाहगंज के समीप है। ये महाराजा मानसिंह के दरबार में रहते थे। इनकी कविता सुंदर होती थी।

प्रवीणराय पातुरि—बुंदेलखंड ओरछा की यह रहने वाली थी। सं० १६४० वि०में इसकी उत्पत्ति हुई थी। यह कवयित्री थी और ओरछे के राजा इंद्रजीत के यहां रहा करती थी। राजा इंद्रजीत भी कवि थे, अतएव इन दोनों में प्रेम हो गया था। केशवदास जी ने कवि-प्रिया नामक ग्रंथ में इसकी बड़ी प्रशंसा की है, जिससे यह मानने में कोई संदेह नहीं रहता कि यह एक उत्तम कवयित्री थी। कहते हैं, सम्राट् अकबर ने इसकी प्रशंसा सुनकर इसे अपनी सभा में बुलवाया था। पहले तो राजा इंद्रजीत ने इसे नहीं जाने दिया। परंतु जब यवनराज ने अपनी त्योरी बदली तब प्रवीणराय ने जाना ही उचित समझा। उसने सोचा हमारे कारण एक प्रबल बादशाह से व्यर्थ विरोध होना अच्छा नहीं। प्रवीणराय बादशाह के दरबार में गई। वहां अकबर और प्रवीण राय में नीचे लिखी बातें हुईं—

बादशाह—युवन चलत तिय देह ते चरकि चलत किहि हेत।
प्रवीण—मन्मथ वारि मसाल को सैंति सिहारो लेत ॥
बादशाह—ऊंचे ह्वै सुर वश कियो सम ह्वै नर वश कीन।
प्रवीण —अब पताल वश करन को ढरकि पयानो कीन॥

तदनंतर प्रवीण ने यह दोहा पढ़ा—

विनती रायप्रवीण की सुनिए शाह सुजान।
जूंठी पतरी भखत हैं बारी वायस श्वान ॥

यह सुनकर बादशाह ने प्रसन्नतापूर्वक इसे विदा किया। वहां से प्रवीण राजा इंद्रजीत के पास लौट आई।

प्रवीर—एक पुरुवंशीय राजा। पुराणों में इसके पिता का नाम प्राचिन्वत् लिखा गया है, जबकि 'महाभारत' में पुरु या पूरु उल्लिखित है। इसके दो भाई थे, जिनके नाम ईश्वर तथा रौद्राश्व थे। इसके द्वारा अपने वंश का प्रवर्तन हुआ। अतः इसे 'वंशकृत' कहा गया है। 'महाभारत' के अनुसार, इसकी पत्नी का नाम शूरसेनी (श्येनी) और पुत्र का नाम मनस्यु (नमस्यु) बताया गया है। इसने तीन अश्वमेध और एक विश्वजित्-यज्ञ किया था। तदनंतर इसने गृहस्थ का परित्याग करके वानप्रस्थ-जीवन व्यतीत किया।

प्रशस्त पादाचार्य—प्राचीन नैयायिक पंडित। इन्होंने 'पदार्थधर्मसंग्रह' नामक वैशेषिक दर्शन का भाष्य लिखा है।

प्रसिद्ध कवि—ये हिंदी के कवि, प्राचीन प्रसिद्ध कवि कहे जाते थे। सं० १५९० वि० में इनका जन्म हुआ था। बड़े कवि थे और खानखाना के यहां रहते थे।

प्रसूति—दक्ष की पत्नी और सती की माता। जब महादेव ने दक्ष और उनके यज्ञ का नाश किया, तब प्रसूति के कहने से महादेव ने दक्ष को पुनः जीवन प्रदान किया था।

प्रसेन—एक यादववंशीय राजा। इसके पिता का नाम निम्न तथा बड़े भाई का नाम समाजित् था। ये दोनों भाई जुड़वां पैदा हुए थे। इसका प्रसेनजित् नामांतर भी प्राप्त होता है। इसके पास स्यमंतक मणि थी। एक बार इसे धारण करके यह जंगल गया। वहां सिंह ने इसका वध कर दिया और ऋक्षराज जाम्बवत् ने इसके मृत-शरीर से उस मणि को निकाल लिया। (पद्मपुराण)

प्रहस्त—रावण के सेनापति का नाम। यह रावण के सामने अपनी बहुत बड़ी वीर-कहानी गाता था। परंतु युद्ध में मारा गया।

प्रह्लाद—दैत्यपति हिरण्यकशिपु के पुत्र। ये अत्यंत विष्णु-भक्त थे। बाल्यावस्था में ही इनकी विष्णुभक्ति प्रकट हो गई थी। दैत्यराज ने पुरोहित षंड और अमर्क को प्रह्लाद को शिक्षा देने के लिए नियत किया। प्रह्लाद के गुरु विष्णु का नाम न लेने के लिए सर्वदा प्रह्लाद को उपदेश दिया करते थे, परंतु उसका कुछ भी फल नहीं हुआ। किंतु प्रह्लाद के साथ से अन्य भी दैत्य बालक विष्णुभक्त हो गए। इससे अनर्थ होने की संभावना देखकर षंडामर्क ने दैत्यराज से कह दिया। दैत्यराज ने डांटकर प्रह्लाद को मना किया, परंतु प्रह्लाद बड़ी नम्रता से पिता के सामने विष्णु-गुणगान् करने लगे। दैत्यराज ने क्रुद्ध होकर प्रह्लाद को मरवा डालने के लिए अनेक उपाय किए, परंतु भगवान् की कृपा से प्रह्लाद की कुछ भी हानि नहीं हुई। दैत्यराज अपने उपायों को निष्फल होते देखकर बड़े दुःखी हुए। अंत में, प्रह्लाद ने अपने पिता के सामने कहा कि जगत् के ऊपर ईश्वर हैं, वे सबकी

रक्षा करते हैं। इससे हिरण्यकशिपु अत्यंत क्रुद्ध हुआ और बोला—अरे मूर्ख ! तेरा मृत्युकाल आया है। यदि तेरा ईश्वर सब स्थानों में वर्तमान है तो इस खंभे में क्यों नहीं है ? प्रह्लाद ने उस खंभे की ओर देखा और प्रणाम किया, तदनंतर वे बोले—यहीं तो हरि देखे जा रहे हैं। हिरण्यकशिपु को वहां कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था। उसने प्रह्लाद को बहुत भला-बुरा कहकर उस खंभे पर एक लात मारी। लात के लगते ही उस खंभे से भयंकर शब्द हुआ। प्रह्लाद ने खंभे में नृसिंह भगवान् को देखा, परंतु अब भी हिरण्यकशिपु को कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। अतएव वह भौंचक्का होकर चारों ओर देखने लगा कि यह भयंकर शब्द कहां हुआ ? उसी समय खंभे से भयंकर नृसिंह प्रकट हुए। हिरण्यकशिपु गदा लेकर उस ओर दौड़ा, नृसिंह ने उसे उठाकर अपनी जंघा पर रख लिया तथा नखों से उसका पेट फाड़कर उसे मार डाला। तदनंतर अन्यान्य दानव जो शस्त्र लेकर हिरण्यकशिपु के उद्धार के लिए प्रस्तुत थे उन्हें भी मार डाला। इसके पश्चात् देव-गंधर्व आदि क्रोधशांति के लिए नृसिंह की स्तुति करने लगे। ब्रह्मा के कहने से प्रह्लाद ने नृसिंह के कोप की शांति के लिए स्तव किया। प्रह्लाद की स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् बोले—भद्र प्रह्लाद ! तुम्हारा मंगल हो, मैं तुम पर प्रसन्न हुआ हूं। वर मांगो। प्रह्लाद बोले—भगवन् ! मैं स्वभाव से ही कामासक्त हूं। अतः इन वरों का लोभ मुझे न दिखाएं, यदि आप मुझको वर देना चाहते ही हैं तो यही दीजिए कि मेरे हृदय में काम का अंकुर कभी उत्पन्न न हो। भगवान् के कहने से प्रह्लाद ने दूसरा वर यह मांगा—मेरे पिता ने जो आपका स्वरूप न जानकर आपकी निंदा की है, उसके पाप से वे मुक्त हों। भगवान् बोले—केवल तुम्हारे पिता का ही उद्धार नहीं हुआ, किंतु उनके २१ पूर्वजों का भी उद्धार हो गया, क्योंकि उनके वंश में तुम्हारा जन्म हुआ। (भागवत)

प्राग्ज्योतिष—एक प्राचीन राज्य का नाम। यद्यपि सूत्रग्रंथ तथा संहिताओं में इस राज्य का उल्लेख नहीं है तथापि रामायण, महाभारत, पुराण और तंत्र के ग्रंथों में इसका वर्णन पाया जाता है। मनुसंहिता में प्राग्ज्योतिष का नाम नहीं लिखा है, किंतु वहां भी किरातनिषेवित एक प्राच्य राज्य का उल्लेख है। महाभारत में प्राग्ज्योतिष को किरातों की निवास-भूमि लिखा है। अतएव ऐसा मालूम होता है कि मनु का किरातनिषेवित राज्य और महाभारत का प्राग्ज्योतिष दोनों एक ही हैं। किंतु मनु ने प्राग्ज्योतिष का नाम क्यों नहीं लिया ?—इस प्रश्न का उत्तर देना इस समय कठिन है। मनु ने किरात के देशवासियों को क्षत्रिय बतलाया है किंतु उनका उपनयन आदि संस्कार न होने के कारण वे शूद्रवत् हो गए हैं। रामायण में प्राग्ज्योतिष नामक एक नगर लिखा है और उसका होना पश्चिम की ओर लिखा है। त्रेतायुग में रावण ने सीता को हर लिया था। उन्हें ढूंढने के लिए सेनापति सुग्रीव ने वानरों को चारों ओर भेजा था। सुषेण, मारीच आदि वानरों को पश्चिम की ओर भेजने के समय सुग्रीव कहते हैं—

> योजनानि चतुःषष्टिर्वराहो नाम पर्वतः।
> सुवर्णश्रृङ्गः सुमहानगाधे वरुणालये ।।
> तत्र प्राग्ज्योतिषं नाम जातरूपमयं पुरम्।
> तस्मिन् वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः ।।

अर्थात् अगाध समुद्र में ६४ योजन विस्तृत सुवर्ण-शिखर विशिष्ट वराह नामक महापर्वत विद्यमान है। वहीं सुवर्णनिर्मित प्राग्ज्योतिष नामक पुरी भी है। उसी पुरी में नरक नाम का दुरात्मा दानव रहता है। रामायण-वर्णित यह प्राग्ज्योतिषपुरी इस समय कहां है, उसका कुछ चिह्न है या नहीं आदि बातें बतलाना बहुत ही कठिन है। इस समय प्राग्ज्योतिष नाम से जो प्रदेश या नगर समझा जाता है वह असम प्रदेश है। असम प्रदेश में बड़े-बड़े पर्वत हैं अवश्य, परंतु उसके समुद्र-मध्य में होने के प्रमाण नहीं मिलते। त्रेतायुग से आज तक बहुत समय बीत गया। इसमें कितने नये नगर बने और कितने ही पुराने नगर नष्ट हुए। कितने जलमय प्रदेश स्थल हो गए और कितने ही स्थलमय प्रदेश जलमय हो गए। अतः यह संभव है कि त्रेतायुग में श्रीरामचंद्र के अवतार ग्रहण करने के समय प्राग्ज्योतिष का भारत-भूमि से संबंध न हो और वह समुद्र के बीच में रहा हो। वही जलमय प्रदेश क्रमशः आज स्थलरूप में परिणत हो गया हो। महाभारत में लिखा है – युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ के समय जब अर्जुन दिग्विजय के लिए निकले तब उनसे प्राग्ज्योतिष के राजा भगदत्त ने किरात, चीन तथा सागर-तीरस्थ अन्यान्य अनूपदेशवासियों की बड़ी सेना लेकर युद्ध किया था। कुरुक्षेत्र के युद्ध में भी भगदत्त ने किरात, चीन आदि सेनाओं द्वारा दुर्योधन की सहा-

यता की थी। युधिष्ठिर के अश्वमेध-यज्ञ के समय भी प्राग्ज्योतिषाधिपति भगदत्त के पुत्र वज्रदत्त ने युधिष्ठिर का यज्ञाश्व बांध लिया था। पुनः अर्जुन से युद्ध में परास्त होकर वह उनका करद राजा हो गया। महाभारत में संजयकथित जनपदों में प्राग्ज्योतिष का नाम नहीं है। वहां किरात देश का उल्लेख हुआ है। पुराण-ग्रंथों में प्राग्ज्योतिष का विशेष परिचय वर्तमान है। मत्स्यपुराण में प्राग्ज्योतिष प्राच्य जनपदों में लिखा गया है। वायुपुराण, ब्रह्मांडपुराण, वामनपुराण और ब्रह्मपुराण आदि में प्राग्ज्योतिष का होना भारत के पूर्वभाग में लिखा है। विष्णुपुराण में प्राग्ज्योतिष का नाम नहीं लिखा है। वहां प्राग्ज्योतिष के स्थान में कामरूप राज्य का उल्लेख पाया जाता है। वहां भारत के नदनदियों का नाम तथा स्थान निर्देश करते हुए महर्षि पराशर मैत्रेय से कहते हैं कि कामरूप निवासी और दक्षिण-देशनिवासी इन नदियों का जल पीते हैं। इससे मालूम होता है कि प्राचीनकाल में पूर्वदेशी राज्यों में कामरूप राज्य ही प्रसिद्ध था और पीछे वही प्राग्ज्योतिष के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके प्रमाण-स्वरूप कुछ श्लोक कालिकापुराण से नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

करतोया सदा गङ्गा पूर्वभागावधिश्रया।
यावल्ललितकान्तास्ति तावदेव पुरं तव॥
अत्र देवी महामाया योगनिद्रा जगत्प्रसूः।
कामाख्यारूपमास्थाय सदा तिष्ठति शोभना॥
अत्रास्ति नदराजोऽयं लौहित्यो ब्रह्मणःसुतः।
अत्रैव दश दिक्पालाः स्वे स्वे पीठे व्यवस्थिताः॥
अत्र स्वयं महादेवो ब्रह्मा चाहं व्यवस्थितः।
चन्द्रः सूर्यश्च सततं वसतोऽत्र च पुत्रक॥
सर्वेक्रीडार्थमायाता रहस्यं देशमुत्तमम्।
अत्र श्रीर्वसते भद्रा भोग्यमात्रं तथा बहु॥
अस्य मध्ये स्थितो ब्रह्मा प्राग् नक्षत्रं ससर्ज ह।
ततः प्राग्ज्योतिषाख्येयं पुरी शक्रपुरीसमा॥
अत्र त्वं वस भद्रं ते ह्यभिषिक्तो मया स्वयम्।
कृतदारः सहामात्यै राजा भूत्वा महाबलः॥

"भगवान् नरकासुर से कहते हैं—हे पुत्र! जिस स्थान में करतोया नाम की गंगा नदी सर्वदा प्रवाहित हो रही है और जहां ललितकांता देवी विराजती हैं, वहां तक तुम्हारी पुरी होगी। इसी स्थान पर जगत्-प्रसविनि योगनिद्रा महामाया देवी कामाख्या का रूप धारण करके सर्वदा विराजती हैं। इसी स्थान पर स्वयं महादेव ब्रह्मा और मैं रहता हूं। चंद्र-सूर्य भी यहीं रहते हैं, यह स्थान रहस्यमय है। अतः क्रीड़ार्थ सभी देवता यहां आए हैं। यहां सर्वतोभद्रा नाम की लक्ष्मी विद्यमान हैं। पहले इस नगर में ब्रह्मा ने एक नक्षत्र रखा था, इसीसे इंद्रपुरी के समान इस पुरी का नाम प्राग्ज्योतिष हुआ। तुम विवाह करके अमात्यों के साथ वहां राज्य करो। मैंने तुम्हारा अभिषेक किया।"

गरुड़पुराण में प्राग्ज्योतिष का नाम नहीं पाया जाता है। वहां कामरूप को महातीर्थ बतलाया गया है। पुराणों को छोड़कर तंत्रशास्त्रों में भी कामरूप का माहात्म्य वर्णित है। तंत्रशास्त्रों में लिखा है—कामरूप देवीक्षेत्र है, और ऐसा स्थान दूसरा नहीं है। दूसरी जगह देवी का दर्शन असंभव हो सकता है। किंतु कामरूप में घर-घर में देवी विराजती हैं। योगिनीतंत्र में लिखा है—महापीठ कामरूप अत्यंत गुप्ततीर्थ है। इन सब उदाहरणों से जाना जाता है कि त्रेता से लेकर भिन्न-भिन्न युगों में कामरूप अथवा प्राग्ज्योतिष का माहात्म्य परिकीर्तित होता आया है। वराहमिहिर के भारतीय विभाग-वर्णन में कामरूप का नाम नहीं है। वहां प्राग्ज्योतिष का ही नाम लिखा गया है। परंतु कालिदास के रघुवंश में दोनों का नाम पाया जाता है। यथा—

चकम्पे तीर्णलौहित्ये तस्मिन् प्राग्ज्योतिषेश्वरः।
तद्गजालानतां प्राप्तैः सह कालागुरुद्रुमैः॥
न प्रसेहे स रुद्धार्कमसारावर्षदुर्दिनम्।
रथवर्त्म रजोऽप्यस्य कुत एव पताकिनीम्॥
तमीशः कामरूपाणामत्याखण्डलविक्रमम्।
भेजे भिन्नकटैर्नागैरन्यानुपरुरोध यैः॥
कामरूपेश्वरस्तस्य हेमपीठाधिदेवताम्।
रत्नपुष्पोपहारेण छायामानर्च पादयोः॥

"अर्थात् उनके (रघु के) लौहित्य नदी के पार होने पर सेना के हाथियों से बांधने से जिस प्रकार कृष्णागुरु वृक्ष कांपते थे, प्राग्ज्योतिष के राजा भी उसी प्रकार कांपने लगे। रघु के रथों, घोड़ों तथा हाथियों से उड़ाई धूलि से बिना मेघ के भी आकाश आच्छन्न हो गया। रघु की सेना का आक्रमण तो दूर रहा, प्राग्ज्योतिषाधिपति उस धूलि को भी नहीं सह सके। प्राग्ज्योतिषाधिपति जिन मदस्रावी मातंगों से दूसरों पर आक्रमण करते थे, वे ही मातंग उन्होंने

इंद्र से भी अधिक बलशाली रघु को उपहार में दिए। रघु सुवर्णपीठ पर बैठे थे। उनकी चरणप्रभा से वह पीठ शोभा पा रही थी। कामरूपेश्वर ने आकर रत्न-रूपी पुष्पोपहार से उनके चरणों की पूजा की।"

इस वर्णन से मालूम पड़ता है कि कामरूप राज्य कितने दिनों से वर्तमान है तथा वह कभी कामरूप के नाम से और कभी प्राग्ज्योतिष के नाम से प्रसिद्ध था। किंतु कालिकापुराण के एक श्लोक से विदित होता है कि प्राग्ज्योतिष कामरूप का ही एक भाग था। कामरूप एक प्रदेश था और उसकी राजधानी का नाम प्राग्ज्योतिष था। कामरूप नाम के संबंध में कालिकापुराण में लिखा है—महादेव की कोपाग्नि में जलकर कामदेव ने यही रूप प्राप्त किया था। तभी से इस पीठ का नाम 'कामरूप' हुआ। ब्रह्मा ने पहले यहां एक नक्षत्र की सृष्टि की थी इस कारण इसका प्राचीन नाम प्राग्ज्योतिष है। (भारतवर्षीय इतिहास)

प्राणनाथ कवि—(१) ये कवि ब्राह्मण थे और बैंसवारे के रहने वाले थे। सं० १५८१ वि० में इनका जन्म हुआ था। इनका लिखा 'चक्रव्यूह इतिहास' नामक ग्रंथ उत्तम है।

(२) ये कोटा के रहने वाले थे और कवि भी थे। इनका जन्म सं० १७८१ वि० में हुआ था। ये कोटे के राव के दरबार में राजकवि थे। इनकी कविता सुंदर होती थी।

प्राधा—प्रजापति ऋषि कश्यप की भार्या। इनके गर्भ से गंधर्व और अप्सराओं की उत्पत्ति हुई थी। (हरिवंश)

प्रियदर्शी—प्रसिद्ध भारत-सम्राट् अशोक का नामांतर। सम्राट् अशोक का राज्य भारत-भर में तो विस्तृत था ही, किंतु भारत की सीमाओं पर भी उनका राज्य था, यह बात उनके लेखों से मालूम होती है। सम्राट् अशोक के लेख दो प्रकार के अक्षरों में लिखे मिलते हैं। एक प्रकार के अक्षर वे हैं जो वामभाग से दक्षिण की ओर लिखे जाते हैं (जैसे कि देवनागरी, बंगला, गुजराती आदि) और दूसरे दक्षिण से वाम की ओर को लिखे जाते हैं (जैसे फारसी, अरबी आदि के अक्षर) भारत में अशोक के जो शिलालेख मिले हैं वे देवनागरी आदि के समान अक्षरों में लिखे मिलते हैं और जो भारत की सीमाओं पर या पारस आदि देशों में मिलते हैं वे फारसी आदि के समान अक्षरों में लिखे गए हैं। भारतीय शिलालेखों में अशोक का नाम प्रियदर्शी (प्रियदसी) लिखा है यथा—"इयं धम्म लिपि देवाणं पियेण रण्णापिय दसिना लेहाविदा।" और बौद्ध धर्मग्रंथों में अशोक का नाम प्रियदर्शी ही लिखा मिलता है। इससे ऐसा समझने का अवसर मिलता है कि सम्राट् अशोक का बौद्ध धर्मसंबंधी नाम प्रियदर्शी था। जिस प्रकार आज भी धार्मिक संप्रदायों का अपना-अपना नाम रहता है। उस संप्रदाय की दीक्षा लेने वालों को वही नाम दे दिया जाता है। उसी प्रकार अशोक का सांप्रदायिक नाम प्रियदर्शी था।

प्रियव्रत—स्वायंभुव मनु के ज्येष्ठ पुत्र। ये प्रजापति थे। प्रजापति विश्वकर्मा की कन्या बर्हिष्मती को इन्होंने ब्याहा था। इसी स्त्री के गर्भ से अग्नीध्र आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए थे। भागवत में यही लिखा है, परंतु विष्णुपुराण में लिखा है कि प्रियव्रत का ब्याह कर्दम की कन्या से हुआ था और उसके गर्भ से सम्राट् तथा कुक्षी नाम की दो कन्याएं और दस पुत्र उत्पन्न हुए थे। इन दस पुत्रों के अतिरिक्त प्रियव्रत के दूसरी स्त्री से उत्तम, तामस और रैवत नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। भागवत में लिखा है कि वे ही पुत्र मन्वंतर के अधिपति हुए। प्रियव्रत के प्रथमोक्त दस पुत्रों में से तीन पुत्र संन्यासी हो गए थे और अन्य सात पुत्र राजा हुए थे। प्रियव्रत समस्त पृथ्वी के अधीश्वर थे। उन्होंने पृथिवी को सात भागों में बांटकर सातों भाग अपने सातों पुत्रों को दे दिए थे। उन सात भागों के नाम ये हैं—जंबूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलीद्वीप, कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप। इन द्वीपों के चारों ओर लवणसमुद्र, इक्षुसमुद्र, सुरासमुद्र, घृतसमुद्र, क्षीरसमुद्र, दधिसमुद्र और जलसमुद्र हैं। उन सात द्वीपों में से जंबूद्वीप के अधिपति प्रियव्रत ने अपने बड़े पुत्र अग्नीध्र को अपना उत्तराधिकारी बनाया। उसने इध्मजिह्व को प्लक्षद्वीप, यज्ञबाहु को शाल्मलीद्वीप, हिण्यरेता को कुशद्वीप, घृतपृष्ठ को क्रौंचद्वीप, मेधातिथि को शाकद्वीप और वीतिहोत्र को पुष्करद्वीप दिया था। प्रियव्रत सभी बातों में श्रेष्ठ पुरुष थे। भागवत में लिखा है कि प्रियव्रत ने ग्यारह अर्बुद वर्षों तक राज्यशासन किया था। प्रियव्रत की स्तुति में अनेक कथाएं प्रचलित और प्रसिद्ध हैं। आधी पृथ्वी पर प्रकाश होता है और आधी पृथ्वी पर अंधकार—इस प्रकार की अपने साम्राज्य में प्राकृतिक विषमता देखकर प्रियव्रत ने अंधकार दूर करने की प्रतिज्ञा की—मैं अपने तेज से

रात्रि को भी दिन कर दूंगा। तदनंतर द्रुतगामी ज्योतिर्मय रथ पर चढ़कर द्वितीय सूर्य के समान उन्होंने सूर्य का पीछा किया। उस समय रथचक्र से जो सात खात बने वे सात समुद्र हुए और उन्हीं सात समुद्रों से घिरे रहने के कारण पृथ्वी के सात भाग हुए। पुराणों में जो इनके विषय में लिखा है उसका यही अभिप्राय है कि राजा प्रियव्रत ने जिन कामों को किया है, वे काम ईश्वर के बिना दूसरे किसीसे सिद्ध नहीं हो सकते। अंत में, वे आत्मज्ञान प्राप्त करके मोक्ष के अधिकारी हुए थे।

प्रियादास स्वामी—हिंदी के कवि और महात्मा। ये वृंदावन में वास करते थे। इनकी उत्पत्ति सं० १८१६ वि० में हुई थी। नाभा जी रचित भक्तमाल की इन्होंने पद्यमय टीका लिखी है।

प्रेमनाथ कवि—ये कवि कुलवा जिला खीरी के रहने वाले ब्राह्मण थे। सं० १८३५ वि० में इनका जन्म हुआ था। ये राजा अली अकबर मुहम्मद के दरबार में थे और वहीं इन्होंने ब्रह्मोत्तरखंड का हिंदी-अनुवाद किया था।

प्रेमसिंह—कोटे का एक राजा। महाराव जगत्सिंह के अपुत्रावस्था में ही स्वर्गवासी होने पर माधोसिंह के चौथे पुत्र कनीराम के (जो कोइला प्रदेश के जागीरदार थे) पुत्र प्रेमसिंह का कोटे के सिंहासन पर अभिषेक हुआ। परंतु इनके भाग्य में राज्यशासन नहीं बदा था। अतएव छः महीने ही राज्य करने पर ये अपने उद्धत और निंद्य आचारों के कारण सर्वसाधारण की दृष्टि से उतर गए। अतएव वहां के सामंतों ने इन्हें गद्दी से पृथक् करके 'पुनस्तत्रैव वेताल:' की कथा चरितार्थ की। (टाड्स राजस्थान)

प्रेमी यवन—ये हिंदी के कवि और दिल्ली के रहने वाले थे। ये यद्यपि मुसलमान थे, तथापि हिंदी के प्रति इनका अतुल अनुराग था। इनका जन्म सं० १७६८ वि० में हुआ था। इन्होंने 'अनेकार्थ-नाममाला' नामक एक कोश लिखा।

प्लक्षद्वीप—पृथ्वी के सात भागों में से एक भाग का नाम। यह द्वीप जंबूद्वीप से सटा हुआ है। प्लक्षद्वीप का विस्तार जंबूद्वीप से द्विगुण है। जंबूद्वीप का विस्तार लाख योजन है और प्लक्षद्वीप का विस्तार दो लाख योजन है। प्लक्षद्वीप के अंतर्गत भी सात वर्ष हैं। प्लक्षद्वीप के अधिपति मेधातिथि के सात पुत्र थे, जिनके नाम शांतमय, शिशिर, सुखोदय, आनंद, शिव, क्षेमक और ध्रुव थे। इन्हीं सात पुत्रों के नामानुसार प्लक्षद्वीप के सात वर्षों के भी नाम रखे गए हैं। प्लक्षद्वीप में भी अनेक नद-नदी, पर्वत आदि विद्यमान हैं। प्लक्षद्वीप के एक ओर लवणसमुद्र और दूसरी ओर इक्षुसमुद्र वर्तमान हैं।

फ

फतहसिंह—उदयपुर के महाराणा। सज्जनसिंह जी के निःसंतान परलोकवास होने पर श्रीमान् फतहसिंह उदयपुर के महाराणा हुए। सन् १८८४ ई० की २४ दिसंबर को फतहसिंह राजगद्दी पर विराजे। एक हिंदू-महाराजा में जो गुण होने चाहिएं, वे सभी महाराणासाहब में थे। इनके आदर्श जीवन और शुद्ध सदाचार से पहले के क्षत्रिय-महाराजाओं का स्मरण होता है। महाराणासाहब बड़े पराक्रमी, श्रमशील, संयमी, बुद्धिमान, गंभीर, मितभाषी, दूरदर्शी, दृढ़प्रतिज्ञ और न्यायशील थे। ये शस्त्रसंचालन और अश्वारोहण में निपुण थे। आपको सिंह के आखेट में बड़ा अनुराग था। परंतु आप सिंहनी या मृग आदि पर शस्त्र नहीं चलाते थे। राज्य के मुख्य-मुख्य काम आप स्वयं देखते और प्रतिदिन प्रायः सात घंटे राजकाज करते थे। आपके शासनकाल में मेवाड़ की प्रजा शांत और सुखी थी। राजपूताने के एजेंट गवर्नर जनरल ने अपने व्याख्यान में एक बार उदयपुर के महाराणा को लक्ष्य करके कहा था—"महाराणा फतहसिंह आदर्श नरेश हैं। वर्तमान अन्य महाराजाओं को इनका अनुकरण करना चाहिए।" महाराणा

साहब को अपने महत्त्व और कुल की मर्यादा का पूर्ण ध्यान रहता था। प्राचीन हिंदू राजाओं की छटा इनमें पूर्ण रूप से वर्तमान थी। महारानी विक्टोरिया के जुबली उत्सव में श्रीमान् महाराणासाहब को जी० सी० एस० आई० की पदवी मिली।

(टाड्स राजस्थान)

फल्गुतन्त्र—अयोध्या का एक राजा। इसके पुत्र का नाम राजा सगर था। एक बार इसकी वृद्धावस्था में हैहयों ने इनके राज्य पर आक्रमण किया और इसे राज्यच्युत करके पत्नीसहित अयोध्या से निष्कासित कर दिया। इसने और्व के आश्रम में जाकर शरण ली और वहीं इसका शरीरांत हुआ। इसकी मृत्यु के उपरांत इसके पुत्र सगर का जन्म हुआ था।

(ब्रह्माण्ड पुराण)

फहीम कवि—ये हिंदी के प्रसिद्ध कवि थे। इनके बड़े भाई का नाम शेख अबुलफजल फैजी था। इनका जन्म सं० १५८० वि० में हुआ था और ये बादशाह अकबर के वजीर थे। इनके किसी ग्रंथ का तो पता नहीं है, परंतु इनके लिखे कुछ दोहे पाए जाते हैं, जो मनोहर और शिक्षाप्रद हैं।

फालका राव अनोवा—ये महाराष्ट्र के ब्राह्मण और ग्वालियर के निवासी थे। इनका जन्म सं० १६०१ वि० में हुआ था। ये लछिमनाराव के मंत्री थे और हिंदी के कवि थे। इन्होंने केशवदास विरचित 'कविप्रिया' की सुंदर टीका लिखी।

फेन—उशीरवंश का एक राजा। इसके पिता का नाम राजा उषद्रथ, पुत्र का नाम सुतपस् और पौत्र का नाम बलि औशीनर था। इसके वंश में इसके पौत्र का सर्वाधिक नाम है। (हरिवंश)

फेनप—भृगुकुल का एक गोत्रकार। इसका पैतृक नाम सुमित्र था। कुलजा नदी के तट पर स्थित त्रिशिखर पर्वत पर गाय के दूध का फेन खाकर यह जीवित रहता था, जिस कारण इसको फेनप नाम से कहा गया है। गोमाहात्म्य का महत्त्व बताते हुए इसकी पुण्य-कथा भीष्म पितामह ने महाराज युधिष्ठिर को सुनाई थी। (महाभारत)

फैजी शेख अबुलफजल—इनके पिता का नाम नागौरी शेख मुबारक था। ये अकबर के दरबारी कवि थे। छोटे-बड़े सभी विद्वानों में इनकी प्रसिद्धि है। ये अरबी, फारसी तथा संस्कृत के निपुण पंडित थे। इनके लिखे ग्रंथ तो देखने में नहीं आए हैं। हां, इनके लिखे कुछ दोहे मिलते हैं जिनसे इनके सुकवि होने का परिचय मिलता है।

फ्रेडरिक पिकोट—ये थे तो अंग्रेज परंतु थे बड़े हिंदी-प्रेमी। इनका जन्म सन् १८३६ ई० में इंग्लैंड में हुआ। इनके पिता की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी, अतएव इनकी यथोचित शिक्षा नहीं हो सकी। प्रारंभ में ये एक स्कूल में पढ़ने लगे, परंतु धनाभाव के कारण शीघ्र ही इनको पढ़ना छोड़ना पड़ा। स्कूल से निकलकर पहले-पहल इन्होंने एक प्रेस में कंपोजिटरी करना प्रारंभ किया और वहीं कुछ काल के अनंतर ये प्रूफरीडर के काम पर नियुक्त हुए। इसी समय इन्हें संस्कृतभाषा सीखने की इच्छा उत्पन्न हुई। इस भाषा का अध्ययन ये अंग्रेजी पुस्तकों की सहायता से कर सकते थे। परंतु उन पुस्तकों का दाम अधिक होने के कारण इनका प्रयत्न कुछ शिथिल-सा हो गया। परंतु ये हताश नहीं हुए। अपने प्रयत्न में लगे रहे। अंत में, एक मित्र की सहायता से इन्हें कुछ पुस्तकें मिल गईं और इन्होंने संस्कृत पढ़ना प्रारंभ कर दिया। थोड़े ही दिनों में इन्होंने संस्कृत में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। विद्योन्नति के साथ-साथ इनकी आर्थिक अवस्था भी सुधरती गई। तदनंतर एलन कंपनी के छापेखाने में ये मैनेजर नियत हुए। इस पद पर रहकर इन्होंने कई अच्छी-अच्छी पुस्तकें लिखीं। देशी भाषाओं में पहले-पहल इन्होंने उर्दू का अध्ययन किया। तदनंतर गुजराती, बंगला, तमिल, तेलगु, मलयालम, कन्नड आदि भाषाओं का इन्होंने अध्ययन किया। इन भाषाओं की शिक्षा होने पर इनका अनुराग हिंदी पर बढ़ा। हिंदी पर इनकी प्रीति इतनी बढ़ी कि ये हिंदीपत्रों के पाठक बने और पुनः ये हिंदीपत्रों में लेख लिखने लगे। इनका हिंदी-प्रेम प्रसिद्ध हो गया। इनकी लिखी पुस्तकें सिविल सर्विस परीक्षा में नियत हुईं। अच्छी-अच्छी हिंदी पुस्तकों पर इनकी सम्मति विलायती पत्रों में छपा करती थी। इस कारण भारतीय हिंदी रसिक-मंडली के हृदय में इनको उच्च आसन मिला। मृत्यु के कतिपय वर्ष पहले ये गिलवर्ट और रेमिंगटन कंपनी के पूर्व विभाग के मंत्री नियत हुए और अंतकाल तक वहीं काम करते रहे। सन् १८६५ ई० में ये भारतवर्ष में रीहा घास की खेती करने आए थे और लखनऊ में सन् १८६६ ई० में इनकी मृत्यु हुई।

ब

बक—असुरविशेष । यह श्रीकृष्ण के हाथों मारा गया । श्रीकृष्ण धेनु चराने वन में गए थे । उनके साथ गोप-बालक भी थे । प्यासी गौओं को जल पिलाने के लिए वे एक जलाशय पर गए । इसी समय यह बक-रूपी राक्षस श्रीकृष्ण को निगल गया । परंतु श्रीकृष्ण का तेज न सह सकने के कारण इसने श्रीकृष्ण को उगल दिया । अंत में, श्रीकृष्ण ने इसकी ऊपर-नीचे की चोंच पकड़कर इसे चीर डाला । (भागवत)

बदरिकाश्रम—भारत के सर्वोच्च तीर्थों में से उत्तराखंड का एक पावन स्थल । इसकी महिमा तथा गरिमा का पुराणों में भी उल्लेख किया गया है । इस तीर्थ की सर्वपापमोचन के रूप में अधिक प्रसिद्धि है । यह स्थान श्रीनगर (गढ़वाल) से लगभग ५५ मील दूर हिमालय पर्वतमाला में स्थित है । अलकनंदा के निकट पश्चिमाभिमुख नर-नारायण का एक मंदिर बना है, जिसे यद्यपि शंकराचार्य द्वारा स्थापित माना जाता है, किंतु इससे भी वह प्राचीन है । यहां पर छह मास तक पूजा होती है और छह मास तक यह बर्फ से ढका रहता है ।

बदरीनारायण चौधरी—पंडित बदरीनारायण चौधरी भारद्वाजगोत्री सरयूपारीण ब्राह्मण खोरिया के उपाध्याय हैं । ये मिर्जापुर के वासी थे । इनके पितामह पंडित शीतलप्रसाद उपाध्याय एक प्रतिष्ठित रईस, महाजन, व्यापारी और जमींदार थे । इन्होंने अपने परिश्रम से बहुत धन और प्रतिष्ठा प्राप्त की थी । इनके पिता का नाम गुरुचरण उपाध्याय है । ये एक आदर्श ब्राह्मण थे ।

पं० बदरीनारायण चौधरी जी का जन्म सं० १९१२ वि० भाद्रकृष्ण षष्ठी को हुआ । पांच वर्ष की उम्र होने से पहले ही इनकी सुशीला और विदुषी माता ने इन्हें हिंदी पढ़ाना आरंभ कर दिया था, तथापि पाठशाला में भी इन्हें हिंदी की शिक्षा प्राप्त करना पड़ी । सं० १९१७ वि० में इन्हें फारसी प्रारंभ कराई गई । तदनंतर ये अंग्रेजी पढ़ने लगे । परंतु कई कारणों से इनकी पढ़ाई का सिलसिला ठीक नहीं चल सका । कुछ दिनों तक इन्होंने गोंडे में विद्याभ्यास किया था । गोंडे में इनका और अवधेश महाराज सर प्रतापनारायणसिंह, लाल त्रिलोकीनाथसिंह और राजा उदयनारायणसिंह आदि का साथ हो गया । इस कारण अश्वारोहण, गजसंचालन, लक्ष्यवेध, मृगया आदि से इनका अनुराग हो गया । ये अपने सहचरों के साथ घुड़दौड़ करते और अहेर खेलते थे ।

संवत् १९२४ में ये गोंडे से फैजाबाद आए और वहां के जिला स्कूल में पढ़ने लगे । उसी वर्ष इनका विवाह भी बड़ी धूमधाम से जौनपुर के समंसा ग्राम में हुआ । संवत् १९२५ में इनके पितामह का स्वर्गवास हो गया । अतः बदरीनारायण जी को मिर्जापुर लौट जाना पड़ा और वहीं के जिला स्कूल में ये पढ़ने लगे । तदनंतर सं० १९२७ वि० के आरंभ में ये स्कूल में पढ़ना छोड़कर घर पर स्वतंत्र मास्टर से पढ़ने लगे । और घर के कार्यों की देखभाल भी करने लगे । पुनः इनके पिता ने इन्हें संस्कृत पढ़ाना आरंभ किया क्योंकि संस्कृत की ओर इनका झुकाव अधिक था । उन्हें समय-समय पर अन्य नगरों में भ्रमण करना पड़ता था । अतएव इनके पिता ने इन्हें पढ़ाने के लिए पंडित रामानंद पाठक जी को नियुक्त किया जो एक अच्छे विद्वान् थे । पं० रामानंद पाठक जी के साथ से चौधरी जी का मन कविता की ओर झुका और वही पंडित जी इनके कविता के गुरु भी हुए । परंतु घर के कामों में फंसने के कारण इनकी प्रकृति में भी परिवर्तन होने लगा । आनंद-विनोद, मन-बहलाव की सामग्रियां एकत्रित होने लगीं, किंतु इनमें विशेषता यह थी कि साहित्य-चर्चा भी साथ ही साथ होती रही । संगीत पर इनका अधिक अनुराग हुआ और उसमें इन्होंने निपुणता भी प्राप्त कर ली । संवत् १९२८ में ये पहले-पहल कलकत्ता गए और वहां से लौट आने पर, वर्षों तक बीमार पड़े रहे । इसी समय साहित्यसंबंधी विशेषतया ब्रजभाषा की अनेक पुस्तकों को इन्होंने देख डाला । सं० १९२९ वि० में पं० इंद्रनारायण शंगलू से इनकी मित्रता हुई । पं० इंद्र-

नारायण जी बुद्धिमान्, कुशाग्रबुद्धि, कार्यपटु तथा देशहितैषी थे। तभी से चौधरी जी का सभा, समाज और समाचारपत्र तथा उर्दू शायरी में भी अनुराग बढ़ा। उक्त पंडित जी ने ही चौधरी जी का भारतेंदु जी से परिचय कराया। चौधरी जी और भारतेंदु जी का वही परिचय मित्रता के रूप में बदल गया जिसमें उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती गई। सं० १९३० वि० में इन्होंने सद्धर्मसभा और सं० १९३१ वि० में रसिक समाज स्थापित किया। इसी प्रकार और भी कई सभाएं स्थापित कीं। सं० १९३२ वि० में इन्होंने कविताएं लिखना प्रारंभ किया। उन कविताओं में से कुछ कविवचन-सुधा में भी छपी थीं। सं० १९३८ वि० में आनंद-कादंबिनी की प्रथम माला प्रकाशित हुई और सं० १९४९ वि० से 'नागरीनीरद' नामक साप्ताहिक पत्र भी संपादित होने लगा। इनके कई-एक लेख, कविता और ग्रंथ आदि इन्हीं पत्रों में निकले थे। 'भारतसौभाग्य', 'हार्दिकहर्षादर्श', 'भारतबधाई', 'आभाभिनंदन', 'वर्षाबिंदु' आदि इनकी कविताएं प्रकाशित हुईं। ये केवल मनोविनोद के लिए कविता करते थे, न कि उससे धन अथवा महाकवि की प्रतिष्ठा पाने की इनकी इच्छा थी। पारिवारिक परतंत्रता इनके विद्याव्यसन की बाधक हुई। कविताओं में ये अपना नाम 'प्रेमघन' लिखा करते थे। (हिंदीकोविदरत्नमाला)

बनादास—इनका जन्म गोंडा (उत्तरप्रदेश) जिले के अशोकपुर गांव में १८२१ ई० में हुआ था। ये क्षत्रिय थे और इनके पिता का नाम गुरुदत्तसिंह था। इन्होंने लगभग सात वर्षों तक सेना में कार्य किया। अयोध्या के रामघाट पर इन्होंने लगभग चौदह वर्षों तक तप किया। इन्होंने लगभग चौसठ ग्रंथों की रचना की, जिनमें से इकसठ ग्रंथ प्राप्त हो चुके हैं। इनके ग्रंथों में 'उभयप्रबोधक रामायण', 'विस्मरण सम्हार', 'अर्जपत्रिका', 'आत्मबोध', 'सिद्धांत-बोध वेदांत', 'बीजक', 'संत सुमिरनी' और 'सगुन बोधक' आदि का नाम उल्लेखनीय है।

इनकी गणना रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवियों में की जाती है। इस दृष्टि से गोस्वामी तुलसीदास के बाद इनकी काव्य-पटुता एवं प्रबंध-सौष्ठव की प्रशंसा की गई है। यद्यपि इनकी रचनाओं में निर्गुणोपासना तथा सूफियों की प्रेमभक्तिपरक भावनाओं का उद्रेक भी पर्याप्त प्रभावशाली रूप से अभिव्यंजित हुआ है, तथापि मुख्यतः ये रामभक्ति शाखा के अंतर्गत आते हैं। इनका निधन १८९२ ई० में हुआ। (भगवतीप्रसाद सिंह—रामभक्ति में रसिक संप्रदाय)

बनारसीदास—ये वैश्य जाति के थे। इनका जन्म जौनपुर में १५५६ ई० में हुआ। इनके पिता का नाम खरगसेन था। श्वेतांबर संप्रदाय की खतरगच्छीय शाखा के भानुचंद्र इनके गुरु थे। अपने 'अर्ध कथानक' में इन्होंने आत्मचरित पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि आरंभ में ये व्यापार करते थे और बैलगाड़ी लेकर आगरा तक आया करते थे। इनकी अनेक संतानें हुईं; किंतु सब काल-कवलित हो गईं। इन घोर असंतोष और विपत्तिग्रस्त परिस्थितियों में भी इन्होंने अपने साहित्यप्रेम को उजागर बनाए रखा और अपनी कविता द्वारा निरंतर लोकप्रिय होते गए। ये संस्कृत, प्राकृत और विभिन्न देशभाषाओं के ज्ञाता थे। जैन-धर्म में इनकी अगाध निष्ठा थी। जैन-धर्म के तात्त्विक पक्ष का इन्होंने गंभीर अध्ययन किया था और जैनाचार्यों में इनका 'सांप्रतिक अध्यात्ममत' बहुप्रचलित हो चुका था। अपनी बहुमुखी प्रतिभा के कारण इन्होंने समाज में और विद्वद्वर्ग में स्वयं को सुप्रतिष्ठित कर दिया था।

इन्होंने लगभग पचहत्तर कृतियों का निर्माण किया। इनकी समस्त रचनाओं को इनकी मृत्यु के कुछ दिन बाद ही १६४४ ई० में जगजीवन ने एक साथ संग्रहीत किया, जिसका नाम 'बनारसीविलास' है। इनकी रचनाओं में काव्यकौशल की अपेक्षा आत्मबोध और धार्मिक पक्ष की प्रमुखता है। किंतु तत्कालीन सांस्कृतिक तथा सामाजिक अध्ययन की दृष्टि से इनका बड़ा महत्त्व है। अपनी निर्भीक और स्वतंत्र विचारधारा के कारण इनकी रचनाओं में वास्तविकता का समावेश देखने को मिलता है। (कामताप्रसाद जैन —हिंदी जैन साहित्य का इतिहास)

बन्दिन्—'महाभारत' के अनुसार, ऐंद्रद्युम्नि राजा की विद्वत्सभा का विद्वान्। इसे सूतपुत्र भी कहा गया है। यह अत्यंत प्रखर पांडित्य का व्यक्ति था। इसने अष्टावक्र के पिता कहोड़ तथा अनेक ब्राह्मणों को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। उसमें कहोड़ की पराजय हुई और पूर्व शर्त के अनुसार उसे पानी में डुबोकर मार दिया गया। अपने पिता का बदला लेने के लिए ग्यारह वर्षीय अष्टावक्र ने शास्त्रार्थ करके बंदिन् को पराजित किया और इसे भी समुद्र में डुबो

दिया गया ।

बभ्रु—एक यादव । यदुवंश का नाश होने पर श्रीकृष्ण की आज्ञा से ये यादव-स्त्रियों की रक्षा के लिए जा रहे थे, किंतु मार्ग में दस्युओं ने इन्हें मार डाला ।
(महाभारत)

बभ्रुवाहन—अर्जुन के पुत्र । ये मनीपुर की राजकन्या चित्रांगदा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । नाना की मृत्यु होने पर बभ्रुवाहन मनीपुर के राजा हुए । अर्जुन के तिरस्कार और अपनी सौतेली माता नागकन्या उलूपी के उत्साहित करने से बभ्रुवाहन ने पिता अर्जुन से युद्ध किया था तथा युद्ध में अर्जुन को मार डाला था । चित्रांगदा ने रणक्षेत्र में आकर बभ्रुवाहन और उलूपी को बहुत धिक्कारा तथा वह पति के साथ मरने के लिए उद्यत हुई । बभ्रुवाहन भी प्राण-त्याग करने के लिए उद्यत हुए । उलूपी ने इनको प्राण-त्याग करने के लिए उद्यत देखकर संजीवनी मणि का स्मरण किया । स्मरण करते ही वह मणि उसके पास उपस्थित हुई । उलूपी के कहने से बभ्रुवाहन ने अर्जुन के वक्षस्थल पर संजीवनी मणि रख दी । इससे अर्जुन पुन: जी उठे । बभ्रुवाहन की माता चित्रांगदा और उलूपी दोनों युधिष्ठिर के यज्ञ में गई थीं ।

महाभारत के युद्ध में अन्याय से अर्जुन ने भीष्म का वध किया था । इस कारण गंगा से आज्ञा लेकर वसुओं ने अर्जुन को शाप दिया था । उस शाप के वृत्तांत को जानकर उलूपी ने अपने पिता से कहा । नागराज वसुगण के निकट गए और उन लोगों से शापानुग्रह करने के लिए कहा । परंतु वसुगण ने कहा —भीष्म को मारने से अर्जुन का पाप संचित हुआ है । अपने पुत्र बभ्रुवाहन के द्वारा मारे जाने पर उनका यह पाप नष्ट होगा । इसीसे अर्जुन का मंगल करने के लिए ही उलूपी ने बभ्रुवाहन को उत्साहित किया था ।

बर्बरिक—एक पांडववंशीय क्षत्रिय । इसके पिता का नाम घटोत्कच और पितामह का नाम भीम था । इसकी माता का नाम मौर्वी था, जो कि प्राग्ज्योतिषपुर के गुरु दैत्य की कन्या थी । श्रीकृष्ण का इसपर अत्यंत स्नेह था और उन्होंने इसे सुहृदय नाम दिया । जन्मांतर में यह सूर्यवर्चस् यक्ष था । एक बार इसकी गर्वोक्ति से ब्रह्मा ने इसे शाप दिया कि अगले जन्म में यह कृष्ण के हाथों मारा जाएगा । अगले जन्म में अपने शाप की शांति के लिए कृष्ण ने इसे देवी उपासना के लिए प्रेरित किया । इसकी उपासना से प्रसन्न होकर देवी ने इसे दर्शन दिया था । एक बार अपने पितामह भीम को न पहचान सकने के कारण इसने मल्लयुद्ध में उसे पराजित किया । बाद में, वस्तुस्थिति का पता लग जाने के कारण आत्मग्लानिवश यह आत्म-हत्या करने के लिए तैयार हो गया । तब देवी ने इसे समझाया । महाभारत-युद्ध में यह पांडवों के पक्ष से लड़ा था । तब इसने अपनी तपस्या से अर्जित विभूति का प्रयोग करके रणभूमि को आतंकित कर दिया । वह शत्रुओं और मित्रों, दोनों पर जा लगी । कृष्ण के पैर को भी उसने आहत कर दिया । तब कृष्ण ने क्रोधवश सुदर्शन चक्र से इसका वध किया । देवी ने प्रकट होकर इसे पुनर्जीवित किया । पुनर्जीवित होकर यह कृष्ण के कहने पर गुप्तक्षेत्र में तपस्या करने के लिए चला गया ।
(स्कंदपुराण)

बर्हिषद—ये राजा विजिताश्व के पौत्र थे । इनको प्राचीन-बर्हि भी कहते हैं । इन्होंने यज्ञ और कर्मकांड में बड़ी अभिज्ञता प्राप्त की थी । इनके यज्ञ की कुशा से पृथ्वी भर गई थी और इन्होंने समस्त पृथ्वी को यज्ञवेदी बना दिया था ।

बलदेवप्रसाद—ये मुरादाबाद के वासी और कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । इनका जन्म पौष शुक्ल ११, सं० १९२६ वि० में हुआ था । इनके पिता का नाम सुखनंदन मिश्र था ।

पंडित बलदेवप्रसाद मिश्र को पहले-पहल हिंदी की शिक्षा दी गई थी । तदनंतर इन्होंने अंग्रेजी का अध्ययन करना प्रारंभ किया । इसके अतिरिक्त इन्होंने संस्कृत, फारसी, बंगला, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं का भी अभ्यास किया था । जिन-जिन भाषाओं को ये जानते थे उनके हिंदी में अनुवाद भी कर सकते थे ।

ये समाचारपत्रों को पढ़ने के बड़े अनुरागी थे । अपनी जानी हुई भाषाओं के चार-चार समाचार-पत्र मंगाते थे । इसीसे इन्होंने १८-२० वर्ष में समाचारपत्र-संपादन की योग्यता प्राप्त कर ली थी । 'साहित्यसरोज,' 'सत्यसिंधु,' 'भारतवासी,' 'भारत-भानु,' 'सोलजर' पत्रिका आदि कई पत्रों का इन्होंने संपादन किया था । ये तंत्रविद्या के बड़े प्रेमी थे । तंत्रशास्त्र के उद्धार के लिए इन्होंने 'तंत्रप्रभाकर' नामक एक प्रेस भी खोला था और उसमें तंत्रसंबंधी कई ग्रंथ भी छापे थे । परंतु पीछे शायद अनुराग कम हो गया या किसी और कारण से इन्होंने इस विषय

से हाथ खींच लिया था।

मिस्मेरेजम से भी इनको बड़ा प्रेम था। कहते हैं, उस विद्या का इन्हें अच्छा अभ्यास था। 'जागती जोति' नामक मिस्मेरेजम की एक पहली पुस्तक भी इन्होंने लिखी। तब से ये ग्रंथ लिखने के आदी हो गए। कुल मिलाकर इन्होंने २५ पुस्तकें लिखी हैं।

बलभद्र मिश्र—इनका जन्म ओरछा के सनाढ्य ब्राह्मण-वंश में १५४३ ई० के लगभग हुआ था। इनके पिता का नाम काशीनाथ था। प्रसिद्ध कवि एवं काव्य-शास्त्री केशवदास इनके अग्रज थे। ये अनेक विषयों के विद्वान् थे। मुख्य रूप से इन्हें आचार्यत्व की कोटि में रखा गया है। इनके द्वारा विरचित कृतियों के नाम ये हैं—'नखशिख', 'रसविलास', 'बलभद्री व्याकरण', 'हनुमन्नाटक', 'गोवर्द्धन सतसई टीका' और 'दूषण विचार'। इनमें से प्रथम ग्रंथ नायिकाभेद पर है और दूसरे ग्रंथ को इन्होंने स्वयं महाकाव्य कहा है; किंतु वस्तुत: यह रसविषयक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ है।

बलभी—बलभी या बल्लभी गुर्जरदेश का एक समृद्धिशाली नगर था, जिसके अवशेष गुजरात के पूर्व में भावनगर के पास प्राप्त हुए हैं। बलभी राज्य में गुजरात, भडौंच और सूरत के जिले सम्मिलित थे। पांचवीं शती के एक अभिलेख में बलभी का वर्णन बलभद्र की राजधानी के रूप में हुआ है। शीलादित्य ने सर्व-प्रथम इसको राजधानी बनाया था।

बलराम—भगवान् नारायण के अंश से आविर्भूत शेषावतार। ये वसुदेव तथा रोहिणी के पुत्र और श्रीकृष्ण के अग्रज थे। जब वसुदेव-देवकी कंस के कारागार में थे तब सात मास तक ये देवकी के गर्भ में रहे और तदनंतर योगमाया से वसुदेव की द्वितीय पत्नी रोहिणी के गर्भ में चले गए। रोहिणी उस समय गोकुल में थी। वहीं इनका जन्म हुआ। गर्भांतर होने के कारण इनको 'संकर्षण' भी कहा गया है। अत्यंत रूपवान् होने के कारण इन्हें 'राम' और बलशाली होने के कारण 'बलराम' कहा गया। ये सदैव हल-मूसल धारण किए रहते थे। अत: इन्हें 'हली', 'हलायुध' तथा 'सीरपाणि' आदि अनेक नामों से भी कहा गया है। ये हल-मूसल इन्हें तपस्या से प्राप्त हुए थे, जिनसे इन्होंने जरासंध का वध किया। ये सदा ही श्रीकृष्ण के साथ रहते थे और कमलों की माला तथा पीत-वस्त्र धारण करते थे। श्रीकृष्ण और इन्होंने एक साथ सांदीपनि ऋषि के आश्रम में वेदविद्या, ब्रह्म-विद्या और शस्त्रविद्या की शिक्षा प्राप्त की थी। गदायुद्ध तथा मल्लयुद्ध में इन्होंने विशेष दक्षता प्राप्त की थी। आनर्त देश की राजकन्या रेवती से इनका विवाह हुआ था। नंद-यशोदा को मिलने के लिए ये गोकुल गए थे।

एक बार हस्तिनापुर में दुर्योधन की कन्या लक्ष्मणा का स्वयंवर हुआ। इसमें कृष्ण के पुत्र एवं बलराम के भतीजे साम्ब ने लक्ष्मणा का अपहरण कर लिया। किंतु दुर्योधन द्वारा इन दोनों को पकड़ लिया गया। तब बलराम ने जाकर सारे कौरवपक्षीय राजाओं को पराजित किया और ये साम्ब तथा लक्ष्मणा को छुड़ा लाए।

दुर्योधन और भीम दोनों इनके शिष्य थे। अत: भारत-युद्ध में ये नहीं चाहते थे कि दोनों में युद्ध हो। इसलिए इन्होंने कृष्ण से कहा था कि वे दोनों पक्षों से अलग रहें। किंतु कृष्ण ने पांडवों का साथ दिया। अत: ये रुष्ट होकर तीर्थाटन के लिए चले गए।

ये बड़े मद्यपायी थे। इन्होंने एक बार नशे में चूर होकर नैमिषारण्य में रोमहर्षण सूत की हत्या कर डाली थी, जिससे ये शापित हुए। तपस्या तथा तीर्थाटन करके इन्होंने अपने शाप का मोचन किया था। जब भीम-दुर्योधन में गदायुद्ध हुआ तब उसे टालने के लिए इन्होंने अनेक यत्न किए, किंतु भीम ने कपट से दुर्योधन का वध कर ही डाला, जिससे असंतुष्ट होकर ये द्वारका चले गए। भारत-युद्ध के बाद इन्होंने द्वारका में मद्यपान पर प्रतिबंध लगा दिया था, किंतु यादवों ने उसका पालन नहीं किया और आपस में लड़-भिड़कर वे मर गए। इस कारण विरक्त होकर ये प्रभास-क्षेत्र गए और वहां इन्होंने यौगिक मार्ग द्वारा देहत्याग किया।

(पद्मपुराण, महाभारत)

बलि—ये दैत्यराज प्रह्लाद के पौत्र और विरोचन के पुत्र थे। इनकी पत्नी का नाम विंध्यावली था। अपनी कठोर तपस्या से इन्होंने इंद्र को पराजित किया और इस प्रकार तीनों लोकों में अपना प्रभुत्व स्थापित किया। इन्होंने अश्वमेध-यज्ञ किया। इंद्र के अनुरोध पर वामनस्वरूप विष्णु इनके समक्ष उपस्थित हुए और उन्होंने इनसे तीन पग पृथ्वी की याचना की। बलि के गुरु शुक्राचार्य ने वास्तविकता को समझ लिया था। इसलिए बलि से उन्होंने अस्वीकार करने

के लिए कहा; किंतु बलि ने द्वार पर आए किसी भी व्यक्ति को निराश लौटा देना अस्वीकार कर दिया। बलि ने तीन पग पृथ्वी दान कर देने का संकल्प किया। तब वामनरूप विष्णु ने अपना विस्तार किया। दो पगों में उन्होंने स्वर्ग तथा पृथ्वी को नाप लिया। तीसरे पग के लिए स्थान मांगने पर बलि ने उसे अपने सिर पर रखने के लिए कहा। बलि की इस विषम परिस्थिति को देखकर प्रह्लाद प्रकट हुए। उनके अनुनय-विनय और बलि के पुण्यकार्यों के फलस्वरूप उन्हें सुतल में रहने की आज्ञा प्रदान की गई। बलि ने उनकी आज्ञा का पालन किया।

बलि आनव—आनव प्रदेश का राजा। इसके पिता का नाम सुतपस् था। यह राजा सगर का समकालीन था। यह बड़ा पराक्रमी राजा था। इसने अपने राज्य को सुदूरपूर्व तक बढ़ाया था। पुराणों में 'आनव' के स्थान पर 'दानव' पाठ दिया गया है और असुरराज बलि वैरोचन से इसकी अभिन्नता बताई गई है। किंतु यह असत्य एवं अनैतिहासिक है। इसकी पत्नी का नाम सुदेष्णा था।

ब्रह्मा की कठोर तपस्या करके इसने महायोगी होने, कल्पांत तक जीवित रहने और अजेय होने का वरदान प्राप्त किया था। इसे प्रजाप्रिय, धर्मज्ञ होने के साथ-साथ यह भी वरदान प्राप्त हुआ था कि इसके धार्मिक विचार सर्वमान्य होंगे और अपने राज्य में यह चातुर्वर्ण्य की स्थापना करेगा। (हरिवंश)

वृद्धावस्था तक इसकी कोई संतान नहीं हुई। तब इसने दीर्घतपस् औचथ्य मामस्तेय ऋषि के द्वारा सुदेष्णा में पांच पुत्र उत्पन्न कराए। इन पुत्रों के नाम थे—अंग, बंग, कलिंग, पुंड्र और सुह्म (सुस)। इनका वंश आनव नाम से रहा। कल्पांत में यह देहत्याग करके स्वर्ग चला गया था। इसके बाद इसका साम्राज्य पांच पुत्रों में विभाजित हुआ और उन्हींके नाम से अंगदेश, बंगदेश, कलिंगदेश, पुंड्रदेश और सुह्मदेश के रूप में जाना गया।

बलि वैरोचन—एक विष्णुभक्त दैत्यराज। इसके पिता का नाम विरोचन और पितामह का नाम प्रह्लाद था। पुराणों में इसकी माता के देवी या सुरुचि नामांतर प्राप्त होते हैं। इसकी राजधानी महाबलिपुर थी। इसका नाम सप्तचिरंजीव पुण्यात्माओं में परिगणित है। इसके अतिरिक्त छह पुण्यात्माओं के नाम हैं—अश्वत्थामा, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृप और परशुराम। दैत्यों का राजा होते हुए भी यह परम विष्णुभक्त था। एक बार विष्णु ने देवों के पक्ष का परित्याग कर दिया था। इस सुअवसर से लाभ उठाने के लिए दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने बलि को स्वर्ग पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया। बलि ने देवों को पूर्णतः पराजित कर दिया। तदनंतर इसने अपने पितामह प्रह्लाद को स्वर्ग में आमंत्रित किया और उनसे प्रतिष्ठित पद स्वीकार करने की प्रार्थना की। प्रह्लाद ने स्वीकार किया और बलि का स्वर्गराज अभिषेक किया। तदनंतर बलि ने स्वर्गराज्य के संचालन के लिए प्रह्लाद से उपदेश ग्रहण किया। तब प्रह्लाद ने इसे उपदेश दिया था कि "सदा ही धर्म की विजय होती है। इसलिए तुम धर्म से ही राज्य करो।" इस उपदेश के अनुरूप बलि ने स्वर्ग पर राज्य किया और अखंड कीर्ति अर्जित की।

एक बार यह इंद्र को पराजित करके उसकी सारी संपत्ति स्वर्गलोक में ले जाने लगा, किंतु वह समुद्र में जा गिरी। उसे समुद्र से बाहर निकालने के लिए विष्णु ने समुद्रमंथन का प्रस्ताव देवों के समक्ष रखा। देवता बलि के पास सहयोग के लिए गए। बलि ने देवों की प्रार्थना को स्वीकार किया और देव-दैत्यों ने मिलकर समुद्रमंथन किया। देवों की यह परोक्ष इच्छा थी कि समुद्रमंथन से अमृत प्राप्त करके दैत्यों पर विजय प्राप्त की जा सके। समुद्रमंथन से प्राप्त रत्नों की संख्या तथा उनके नामों के संबंध में पुराणों की सूचियों में भिन्नता देखने को मिलती है। देवों की चतुराई से समुद्रमंथन के रत्नों से दैत्यवर्ग वंचित ही रहा, जिससे देव-दैत्यों का युद्ध हुआ और इसमें विष्णु के सहयोग से इंद्र की विजय हुई तथा बलि मारा गया। किंतु शुक्राचार्य के स्पर्श तथा मंत्र से वह पुनर्जीवित हो उठा। शुक्राचार्य ने उसका ऐंद्रमहाभिषेक किया और उससे विश्वजित-यज्ञ कराया। इसने सौ अश्वमेध-यज्ञ भी किए। विश्वजित-यज्ञ में पितामह प्रह्लाद और शुक्राचार्य ने इसे अनेक दिव्य भेंटें प्रदान कीं।

इस प्रकार स्वर्ग का वह पूर्णाधिपति बना। किंतु इसके राज्य में देवों तथा ब्राह्मणों को कष्ट ही मिला। इनके अनुरोध पर विष्णु ने वामनावतार धारण किया। वामनावतार ने इससे तीन पग पृथ्वी मांगी और बलि को पाताल जाना पड़ा।

यह बड़ा तत्त्वज्ञानी था। इसके उदाहरण महाभारत के 'बलि-इंद्र-संवाद' तथा 'बलि-प्रह्लाद-संवाद'

में देखने को मिलते हैं। इसकी दो पत्नियों के नाम थे— विंध्यावलि और अशना। अशना से इसके बाण आदि सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे। इसकी कोटरा नामक पत्नी से वाणासुर का जन्म हुआ था। इसकी कन्याओं में शकुनि तथा पूतना के नाम प्रमुख हैं। बलिप्रतिपदा की तिथि को बलि की उपासना तथा पूजा-प्रतिष्ठा होती है।

बह्लीक—बह्लीकों का जनपद बलरव (उत्तर-पश्चिम अफगानिस्तान) था। इनके संबंध में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है।

बाघ—बौद्ध कलाकेंद्रों में अजंता के बाद बाघ का ही स्थान है। बाघ की गुफाओं के निर्माता उन स्थपतियों के अदम्य साहस एवं धैर्य सहज ही सराहना का विषय बन गया है, जिन्होंने बीहड़ वन में ठोस चट्टानों को काट-काटकर उनसे कला की अजस्र धारा को बहाया।

ये गुफाएं विंध्याटवी (मध्यप्रदेश) में अवस्थित हैं। इनका संबंध महायान बौद्ध संप्रदाय से है। बाघ नर्मदा की एक सहायक नदी है, जिसके तट पर ये गुफाएं बनाई गई हैं। गुफाओं के निकट ही बाघ नाम से एक कस्बा भी है। इन गुफाओं की संख्या नौ है। प्रथम गुफा 'गृह गुफा' के नाम से कही जाती है, जो कि लगभग नष्ट हो चुकी है। द्वितीय गुफा 'पांडवों की गुफा' नाम से कही जाती है, जो सबसे बड़ी है और सौभाग्य से सुरक्षित भी है। तृतीय गुफा को 'हाथीखाना' के नाम से कहा जाता है। इसपर भव्य भित्तिचित्र अंकित हैं। किंतु यह अर्धध्वस्त है। चतुर्थ गुफा को 'रंगमहल' कहा जाता है। उसपर भी चित्रों के अवशेष हैं। पंचम गुफा संभवतः भिक्षुओं के निवास के लिए बनाई गई थी। शेष चारों गुफाएं बिल्कुल नष्ट हो चुकी हैं।

सौभाग्यवश इन गुफाओं के इतिहास का आधार उपलब्ध है। १९२९ ई० में इनकी सफाई करते समय पांडवों की गुफा में माहिष्मती के राजा सुबंधु (४१६-४८६ ई०) का एक ताम्रपत्र प्राप्त हुआ था। इस ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि महाराज सुबंधु ने उनका निर्माण 'आर्य भिक्षुसंघ' के निवास के लिए कराया था और उनके लिए 'दासिलकपल्ली' नामक एक गांव दान में दिया था, जिसकी आय से वहां की व्यवस्था होती थी।

बाघ के गुफाचित्रों के अध्येता विद्वानों का अभिमत है कि वे एक निश्चित समय के अंतर्गत एक ही शैली के कलाकारों द्वारा निर्मित हुईं। वे प्रकृति, मानव और पशु-पक्षी आदि विभिन्न विषयों से संबद्ध हैं। उनमें रूपायित पेड़, पौधे, फल, फूल, पत्र, लताओं आदि की छवियां प्रकृति के निसर्ग सुंदर रूप को प्रकट करती हैं। उनमें रेशे और रेखाओं की सजीवता दर्शनीय है। यहां के गुफाचित्रों में सर्वाधिक घुमावशाली एवं मनोमुग्धकारी दृश्य पक्षियों के अंकित हुए हैं। इन पक्षियों में शुक, सारिका, कुक्कुट, कलहंस, कोकिल, मयूर, सारस और चकोर आदि के नाम प्रमुख हैं। यह पक्षी-चित्रण प्रतीकात्मक है और उसके द्वारा उल्लास, विषाद तथा रहस्य आदि की विभिन्न मनोदशाओं को अभिव्यंजित किया गया है। लताबंध, कमल, कमलनाल और पुष्पस्तवकों के बीच-बीच में दर्शाए गए पक्षियों का संयोजन अत्यंत भव्य, सहज तथा स्वाभाविक है। बाघ की चित्रकला में पक्षियों का यह चित्रण निश्चित ही उनके निर्माता-कलाकारों की अभिरुचि का परिचायक है। उसका आधार लोककला रही है।

बाघ की चित्रावली में पशुओं में हाथी और बैल का चित्रण विशेष रूप से हुआ है। हाथी मांगल्य और बैल धरती की समृद्धि का सूचक है। अजंता के चित्रों में भी बैल का कम किंतु हाथी का चित्रण अधिक हुआ है। 'कमलवनों में हाथी' अजंता तथा बाघ के चित्रकारों को अधिक प्रिय रहे हैं। बौद्धकला (मूर्ति और चित्र दोनों में) पुष्पों में कमल और पशुओं में हाथी का विशिष्ट स्थान रहा है। बौद्धकला का यह हस्ति-अंकन वस्तुतः बोधिसत्त्व के जन्मांतर का प्रतीक है। मानवता के प्रति बुद्ध के लोकमंगल का प्रतीक हाथी और कारुण्य का प्रतीक कमल है। कमल प्रकाश तथा रमणीयता का भी रूपांतर है।

प्रकृति-चित्रण और पशु-पक्षी-चित्रण के अतिरिक्त मानव छवियों के अंकन में भी बाघ के कलाकार अत्यंत निपुण थे। इस दृष्टि से चौथी गुफा का दो स्त्रियों का एक करुणाप्लावित दृश्य बहुत ही मुग्धकारी है। दृश्य में एक स्त्री झरोखे के पास शोकाकुल दशा में खड़ी है, जो कपड़े से मुंह ढांपे रो रही है। दूसरी स्त्री उसके पास खड़ी उसको धैर्य बंधा रही है। झरोखे के बाहर पेड़ पर एक कपोतयुग्म बैठा हुआ है, जिसको देखकर चित्रित दृश्य की सारी कहानी आंखों के आगे तैर जाती है। तब पति-

वियुक्ता उस विरहिणी के प्रति देखने वालों की सहज सहानुभूति प्रकट होती है।

इस प्रकार बाघ की चित्रावली अपने आप में सर्वांगीण और कला-रसिकों के लिए अतीत के अनेक वर्षों से आकर्षण का विषय बनी हुई है।

बाण भट्ट—ये महाकवि कन्नौज के अधिपति श्रीहर्षवर्द्धन के सभापंडित थे। इन्होंने स्वरचित 'हर्षचरित' नामक ग्रंथ में अपने जीवन की कतिपय घटनाओं का उल्लेख किया है। ये शोणतीरवासी सारस्वतवंशी ब्राह्मण थे। बाल्यकाल में ही पितृ-मातृहीन होने के कारण ये उच्छृंखल प्रकृति के हो गए थे। नागरिकों के साथ रहने के कारण इनके आचार में संदेह किया जा सकता है, जो नितांत निर्मूल भी नहीं है। बाण भट्ट यद्यपि उच्छृंखल प्रकृति के ही थे तथापि उनका चरित्र नीच नहीं हुआ। बाण भट्ट के जहां तमोली, अत्तार आदि साथी थे, वहां धातु-परीक्षक और धातुव्यवहारविद् भी इनके मित्र थे। उच्छृंखलता का प्रवाह अनिवारित नहीं बहता है, क्योंकि उसकी सीमा है, उसका बांध है। मन की अशांति ही उच्छृंखलता की सीमा या बांध है। बाण भट्ट का मन अपने साथियों से ऊब गया। वे उनका साथ छोड़कर श्रीहर्षवर्द्धन की सभा में उपस्थित हुए। विद्याव्यसनी राजा ने इनको उचित आश्रय दिया। 'हर्षचरित', 'कादम्बरी का पूर्वभाग', 'चंडिकाशतक' और 'पार्वतीपरिणय' आदि इनके लिखे ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। अनेक विद्वानों का मत है कि पार्वतीपरिणय के कर्ता ये बाण भट्ट नहीं हैं। हर्षचरित और कादम्बरी दोनों गद्यकाव्य हैं। चंडिकाशतक में सौ श्लोकों से भगवती की स्तुति की गई है। पार्वतीपरिणय नाटक है। कहा जाता है कि इन ग्रंथों के अतिरिक्त पद्य-कादम्बरी भी बाण भट्ट ने लिखी थी। परंतु वह ग्रंथ अभी तक न तो कहीं प्रकाशित हुआ है और न ही उसका कहीं पता लगा है। बाण भट्ट की रचना के विषय में एक श्लोक प्रचलित है, जिससे इनकी रचनाशैली का पूर्वज्ञान हो जाता है। यथा—

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चालीरीतिरुच्यते।
शिलाभट्टारिका वाचि बाणोक्तिषु च सा यदि॥

शब्द और अर्थ इन दोनों पर ध्यान रखकर समान रचना पांचाली रीति कही जाती है। यदि वह पांचाली रीति शिलाभट्टारिका के वचन में अथवा बाण भट्ट की उक्ति में हो।

ऊपर कहा गया है कि बाण भट्ट हर्षदेव के सभापंडित थे। काव्यप्रकाश के टीकाकार पंडितों ने बाण भट्ट और हर्षदेव के संबंध में एक विलक्षण झमेला डाल दिया है। काव्यप्रकाश की वृत्ति में एक स्थान पर लिखा है कि 'श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्', अर्थात् श्रीहर्ष से जिस प्रकार धावक आदि को धन प्राप्त हुआ था। काव्यप्रकाश के टीकाकार महेश्वर इसका अर्थ करते हैं—'श्रीहर्षो राजा, भावकेन रत्नावलीं नाटिकां तन्नाम्ना कृत्वा बहुधनं लब्धम्'। काव्यप्रकाश की टीका में वैद्यनाथ ने लिखा है—"श्रीहर्षाख्यस्य राज्ञो नाम्ना रत्नावलीनाटिकां कृत्वा धावकाख्यः कविर्बहुधनं लेभे"। दूसरे टीकाकारों ने भी इसी प्रकार का अपना मत प्रकाशित किया है। काव्यप्रकाश के टीकाकार प्रसिद्ध विद्वानों ने जो लिखा है उसको मानने से पहले कुछ विचार करना आवश्यक है। कालिदास द्वारा रचित मालविकाग्निमित्र नामक नाटक की प्रस्तावना में लिखा है—'प्रथितयशसां धावकसौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य कृतौ किं कृतो बहुमानः"। अर्थात् प्रसिद्ध विद्वान् धावक सौमिल्ल कविपुत्र आदि के लिखे नाटकों के रहते हुए भी वर्तमान कवि कालिदास के नाटक का इतना आदर क्यों किया जाता है? इससे दो बातों का पता लगता है एक तो यह कि धावक एक प्रसिद्ध नाटक-लेखक थे और कालिदास से प्राचीन थे। अतः सातवीं सदी के हर्षदेव के नाम से कालिदास से भी प्राचीन धावक कवि ने रत्नावली नाम की नाटिका लिखी हो। यह किसी भी प्रकार उचित नहीं समझा जा सकता है। इस उलझन को सुलझाने के लिए दो उत्तर दिए जा सकते हैं—एक तो यह कि मालविकाग्निमित्र के कर्ता कालिदास रघुवंशकर्ता कालिदास से भिन्न हैं, क्योंकि रघुवंशकर्ता कालिदास विनयी थे और मालविकाग्निमित्रकर्ता कालिदास उद्धत। इसके लिए प्रमाणत दोनों के श्लोक दिए जा सकते हैं।

मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः॥
(रघुवंश)

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥
(मालविकाग्निमित्र)

अतः यह मान लेने पर कि मालविकाग्निमित्र के कर्ता कालिदास भोजराज के सभापंडित थे, जिनका

उल्लेख भोजप्रबंध में किया गया है, तो पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर एक प्रकार से दिया जा सकता है। परंतु धावक और श्रीहर्ष के समकालीनत्व का प्रमाण और किसी स्थान में नहीं पाया जाता और इसके विपरीत हर्षदेव तथा बाण भट्ट के समकालीनत्व और हर्षदेव से बाण भट्ट को धन प्राप्ति के भी अनेक प्रमाण मिलते हैं। यथा—

हालेनोत्तमपूजया कविवृषा श्रीपालितो लालितः,
ख्यातिं कामपि कालिदासकवयो नीताः शकारातिना।
श्रीहर्षो विततार गद्यकवये बाणाय वाणीफलम्,
तद्वत्सत्क्रियया‌भिनन्दमपि च श्रीहारवर्षोऽग्रहीत्॥

अर्थात् हाल नामक राजा ने कविश्रेष्ठ श्रीपालित को उत्तम पूजा से प्रसन्न किया। शकाराति ने (विक्रमादित्य) कालिदास नामक कवियों की प्रसिद्धि की। राजा श्रीहर्ष ने गद्यकवि बाण भट्ट को वाणी-फल प्रदान किया। उसी प्रकार श्रीहारवर्ष नामक राजा ने अभिनंद कवि को सत्कार द्वारा अपनाया। इससे स्पष्ट ही जाना जाता है कि गद्यकवि बाण को श्रीहर्ष ने धन दिया।

हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनाम्,
श्रीहर्षेण समर्पितानि गुणिने बाणाय कुत्राद्य तत्।
या बाणेन तु तस्य सूक्तिनिकरैरुट्टङ्किताः कीर्तय—
स्ताः कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाग्मन्ये परिम्लानताम्॥

अर्थात् कई सौ भार सुवर्ण मत्त हाथियों के समूह जो श्रीहर्ष ने गुणी बाण को दिए थे, वे आज कहां हैं और बाण ने जो सुंदर वचनों से उसकी (श्रीहर्ष की) कीर्ति गाई है वह प्रलय काल में भी म्लान नहीं होगी। इस श्लोक से भी बाण और श्रीहर्ष का संबंध प्रमाणित होता है। इन्हीं प्रमाणों को लेकर विद्वानों ने श्रीहर्ष के सिर पर एक कलंक मढ़ दिया। वह यह कि काव्यप्रकाश में 'श्रीहर्षादेर्धावकादीनां' पाठ अशुद्ध है। उसके स्थान पर 'बाणादीनां' पाठ ही शुद्ध है। हाल साहब ने इसी पाठ को शुद्ध समझकर अपनी वासवदत्ता की अंग्रेजी भूमिका में लिखा है कि बाण भट्ट ही रत्नावलीकार हैं। अपने इस सिद्धांत को पुष्ट करने के लिए हाल साहब ने अनेक युक्तियों का उल्लेख किया है। उन सब युक्तियों में हाल साहब की प्रबल युक्ति यह है कि एक ही श्लोक रत्नावली और हर्षचरित दोनों ग्रंथों में पाया जाता है। वह श्लोक यह है—

द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्ततात्।
आनीय झटिति घटयति विधिरभिमुखमभिमुखीभूतः॥
(रत्नावली)

यह श्लोक रत्नावली और हर्षचरित दोनों में एक ही रूप से पाया जाता है। बस, इसी कारण हाल साहब कहते हैं कि बाण भट्ट ही रत्नावलीकर्ता हैं। परंतु मेरी समझ से उनकी यह युक्ति सारहीन है। कुमारसंभव नामक काव्य में महाकवि कालिदास ने शिवपुराण से ज्यों के त्यों कई श्लोक उद्धृत किए हैं। तो क्या इस कारण कुमारसंभव और शिवपुराण दोनों का कर्ता एक ही माना जाएगा! कवियों की यह रीति है कि अपने प्रस्तुत विषय में यदि अपने भावानुसार दूसरे का श्लोक मिल जाए तो वे उसे अपना लिया करते हैं। इसके अनेक प्रमाण दिए जा सकते हैं। अस्तु, वक्तव्य यह है कि 'श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्' यहां 'बाणादीनामिव धनम्' पाठ ही शुद्ध है; किंतु बाण को रत्नावलीकार मानना और श्रीहर्ष के नाम से रत्नावली नाटिका लिखने के कारण धनप्राप्ति कहना निर्मूल है क्योंकि ऊपर उद्धृत श्लोक में अभिनंद ने कहा है, 'गद्यकवये बाणाय' अर्थात् गद्यकवि बाण को। यहां बाण को गद्यकवि कहकर अभिनंद इस बात को सूचित करता है कि गद्यकाव्य लिखने के कारण बाण को हर्ष ने पारितोषिक दिया था। दूसरे श्लोक से तो यह बात साफ ही प्रतिपन्न होती है कि हर्ष ने अपनी कीर्तिगान करने के कारण बाण को सुवर्ण हाथी आदि से सम्मानित किया था।

बाण भट्ट का समय ७वीं सदी है। कहा जाता है कि ह्वेनत्संग के भारत आने के समय बाण भट्ट वर्तमान थे। सूर्यशतककर्ता मयूरभट्ट बाण के जमाता थे। और जैन-पंडित मानतुंगाचार्य इनके मित्र थे। ये तीनों ही हर्षवर्द्धन के सभापंडित थे।

बादरायण—ब्रह्मसूत्रों के रचयिता एक प्रख्यात आचार्य। बदरवंशीय होने के कारण संभवतः इनका ऐसा नामकरण हुआ। अनेक विद्वानों ने बादरायण तथा पाराशर्य व्यास को एक ही व्यक्ति माना है। किंतु 'सामविधान ब्राह्मण' में उल्लिखित तालिका के अनुसार, इन दोनों में चार पीढ़ियों का अंतर है। बादरायण अंगिरस कुल के और पाराशर्य व्यास आंगरिस कुल के थे। बादरायण के शिष्यों में तांडि और शाट्यायनि के नाम प्रमुख हैं। इसी प्रकार बादरि से बादरायण भिन्न व्यक्ति हुए।

कृष्णद्वैपायन व्यास और बादरायण एक ही व्यक्ति थे। इनकी प्रसिद्धि 'ब्रह्मसूत्र' के रचयिता होने के कारण है। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मसूत्रों की मूल रचना जैमिनी ने की थी और उनका ग्रंथरूप में पुनः संस्कार बादरायण ने किया था। इस ग्रंथ को उत्तरमीमांसा, ब्रह्ममीमांसा तथा वेदांतरूप आदि अनेक नामों से कहा गया है। इस ग्रंथ में अनेक पूर्ववर्ती आचार्यों तथा उनके मतों का उल्लेख हुआ है। इन सूत्रों का मुख्य उद्देश्य उपनिषदों के तत्त्वज्ञान को समन्वित करना था। भगवद्गीता के तत्त्वज्ञान पर भी अनेक सूत्रों की रचना हुई है। वेदांतदर्शन का यह एकमात्र प्रौढ़ एवं सर्वांगीण ग्रंथ है।

बादामी—गुप्तोत्तर भारत में जो कला-निर्माण हुआ, उसमें बादामी की गुफाओं का नाम उल्लेखनीय है। ये गुफाएं बंबई के मारवाड़ जिले में बनी हुई हैं। संख्या में वे कितनी थीं, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता है। उनमें से चार गुफाएं ही अब तक जीवित रह सकी हैं। इन गुफाओं का निर्माण दक्षिण के कला-प्रेमी पल्लव राजवंश (३००-१००० ई०) के समय आरंभ हुआ और उनका पुनर्निर्माण तथा उद्धार चालुक्यवंश (६००-१२०० ई०) तक होता रहा। वर्तमान चारों गुफाओं का निर्माणकाल ८वीं से १०वीं शती है।

एलोरा की भांति बादामी गुफाओं में भी ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन तीनों धर्मों का संगम दर्शित है। जो चित्र बच पाए हैं उनमें तीन ब्राह्मण-धर्म के और एक जैन-धर्म का है। बौद्ध-धर्म का कोई भी अवशेष नहीं है।

शैली-संरचना की दृष्टि से बादामी की कला पर अजंता का प्रभाव है, यद्यपि अजंता जैसी पटुता एवं निपुणता बादामी में देखने को नहीं मिलती है। ऐसा संभवतः इसलिए भी देखने को मिलता है कि बादामी में कोई भी चित्र ऐसा नहीं बच पाया है, जो धूमिल नहीं पड़ गया हो या खुरच न गया हो।

बाभ्रव्य पाञ्चाल—(१)एक वैदिक आचार्य। इसका पूरा नाम गालव(सुबालक) बाभ्रव्य पांचाल था। 'बहवृच' तथा 'आचार्य' इसकी उपाधियां थीं। यह दक्षिण पांचाल देश के ब्रह्मदत्त राजा का मंत्री था। राजा के दूसरे मंत्री का नाम कंडरिक या पुंडरिक था। इन दोनों विद्वानों ने समस्त वैदिक ऋचाओं का संकलन करके उन्हें ऋक्-साम-यजु-अथर्व०, इन चार संहिताओं में विभाजित किया था, जिनको अंतिम रूप दिया था व्यास ने।

बाभ्रव्य पांचाल अनेक शास्त्रों तथा विद्याओं में पारंगत था। योगविद्या में उसे विशेष दक्षता प्राप्त थी। 'ऋग्वेदशिक्षा' नामक वैदिक व्याकरण का रचयिता एवं प्रचारक भी इसे ही माना जाता है। ऋक्संहिता के क्रमपाठ के व्यवस्थापक के रूप में इसका विशेष नाम है।

(२) कामशास्त्र का रचयिता एक आचार्य। इसका उल्लेख वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में हुआ है। वात्स्यायन के अनुसार, आचार्य श्वेतकेतु द्वारा रचित कामशास्त्र का संक्षिप्तीकरण बाभ्रव्य पांचाल ने किया था। ऋक्संहिता के क्रमपाठ के व्यवस्थापक और कामशास्त्रकार एक ही नाम के दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति हुए।

बाभ्रू (वैराट)—प्राचीन बाभ्रू ही वैराट कहा जाता है। मत्स्यदेश ही विराट या वैराट के नाम से जाना जाता था। इस राज्य में आधुनिक जयपुर का भी अधिकतर भाग सम्मिलित था।

बालधि—एक ऋषि। इसने पुत्रप्राप्ति की अभिलाषा से घोर तपस्या की थी। इसकी तपस्या से प्रसन्न होकर देवों ने इसे वर मांगने के लिए कहा। इसने अमर-पुत्र की मांग की; किंतु इस नश्वर संसार में अमरता का वर प्रदान करना देवों ने अस्वीकार कर दिया। तब इसने एक पर्वत की ओर संकेत करते हुए उसकी आयु के पुत्र की कामना की। देवों ने स्वीकार कर लिया। उस पुत्र का नाम मेधावी था, जिसका अपर नाम 'पर्वतायु' भी था। बड़ा होने पर यह उद्दंड बन गया। एक बार इसने धनुपाक्ष नामक एक ऋषि का अपमान किया, जिससे क्रुद्ध होकर ऋषि ने इसे भस्म हो जाने का शाप दिया। जब ऋषि का शाप चरितार्थ न हुआ तो उसने योगबल से उसके कारण का पता लगाया। तब अपने तपोबल से उसने एक भैंसे का निर्माण किया और उससे उस पर्वत को उखाड़ डाला, जिसपर पर्वतायु का जीवन निर्भर था। तब उसकी मृत्यु हुई। बालधि ऋषि ने पुत्र की मृत्यु पर बड़ा विलाप किया। (महाभारत)

बालकृष्ण भट्ट—इनके पूर्वपुरुष मालवा छोड़कर कालपी के पास बेतवा नदी के किनारे जटकरी नामक एक गांव में आ बसे। इनके पितामह का नाम पं० श्याम जी था। ये बड़े चतुर विद्वान् थे। अतएव इन्होंने कुल-पहाड़ के राजा के यहां एक नौकरी कर ली। पंडित

श्याम जी के छोटे पुत्र का नाम बिहारीलाल था। इन-पर पंडित जी का बड़ा प्रेम था। अतएव पंडित श्याम जी ने अपने छोटे पुत्र बिहारीलाल को ही अपना उत्तराधिकारी बनाया। पंडित बिहारीलाल जी जट-करी से आकर प्रयाग में रहने लगे। इनके दो पुत्र थे जानकीप्रसाद और वेणीप्रसाद। बालकृष्ण भट्ट के पिता का नाम वेणीप्रसाद था।

बालकृष्ण भट्ट का जन्म सं० १९०१ वि० में हुआ था। इनकी माता विदुषी थीं। माता की प्रेरणा से भट्ट जी का पढ़ने में मन लग गया। इनके पिता ने चाहा था कि ये दुकानदारी के काम में लगें। परंतु माता की प्रेरणा से इनका चित्त पढ़ने में ही लगा रहा। १५-१६ वर्ष तक इन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया।

सिपाही-विद्रोह के अनंतर भारत में अंग्रेजी राज्य की जड़ जमी। साथ ही साथ अंग्रेजी भाषा का भी प्रचार बढ़ा। अतएव विदुषी माता के परामर्श से भट्ट जी ने अंग्रेजी पढ़ना प्रारंभ किया। पहले-पहल ये मिशन स्कूल में भर्ती हुए। वहां इन्होंने एंट्रेंस तक की शिक्षा पाई। इन्होंने बायबिल की परीक्षा में कई बार इनाम भी पाया था। परंतु बायबिल के अध्ययन से इनकी अपने धर्म पर श्रद्धा नहीं घटी। अपनी धर्मश्रद्धा के कारण ही इनका हेडमास्टर से कुछ विरोध हो गया और इन्होंने पढ़ना छोड़ दिया। अंग्रेजी पढ़ना छोड़ने पर ये पुनः संस्कृत-साहित्य का अध्ययन करने लगे। इसी बीच ये यमुना मिशन स्कूल में अध्यापक हो गए, परंतु धर्मविवाद के कारण इन्हें अध्यापकपद भी छोड़ना पड़ा।

स्वतंत्रता की उपासना करते हुए इन्होंने कुछ दिन बेकार बैठकर गंवाए। परंतु जब इनका विवाह हुआ तब पुनः इनकी धन उपार्जन करने की इच्छा हुई। व्यापार करने की इच्छा से ये कलकत्ता गए, परंतु वहां से शीघ्र ही लौट आए। कलकत्ता से लौट आने पर ये चुपचाप बैठे नहीं रहे, किंतु इन्होंने संस्कृत-साहित्य के अध्ययन में मन लगाया और उस समय के प्रसिद्ध मासिक और साप्ताहिक पत्रों में ये लिखने लगे। इसी समय प्रयाग के कुछ उत्साही नवयुवकों को लेकर इन्होंने हिंदी-प्रवर्द्धिनी नाम की एक सभा स्थापित की और इसी सभा से 'हिंदीप्रदीप' नाम का एक मुख-पत्र निकाला। इसके संपादक भट्ट जी स्वयं हुए। हिंदीप्रदीप को भट्ट जी बहुत दिनों तक चलाते रहे। इनके लिखे हुए 'कलिराज की सभा', 'रेल का विकट खेल', 'बालविवाह नाटक', 'सौ अजान एक सुजान', 'नूतन ब्रह्मचारी', 'जैसा काम वैसा परिणाम', 'आचारविडंबना', 'भाग्य की परख', 'षट्-दर्शनसंग्रह' का हिंदी अनुवाद, 'गीता' और 'सप्तशती' की समालोचना आदि लेख पढ़ने योग्य हैं।

पंडित बालकृष्ण भट्ट जी कायस्थपाठशाला में संस्कृत के अध्यापक थे। परंतु किसी कारण से भट्ट जी को उक्त पद छोड़ना पड़ा। इन्होंने नागरी प्रचा-रिणी सभा काशी के कोश-विभाग में भी उपसंपादक का काम कुछ दिनों तक किया था।

बालमुकुंद गुप्त—ये अग्रवाल वैश्य थे। इनका जन्म सन् १८६५ में हरियाणा के रोहतक जिले के गुरयानी नामक गांव में हुआ था। जिस समय बालमुकुंद गुप्त बाल्या-वस्था में थे उस समय पंजाब में हिंदी का प्रचार नहीं था। अतएव इन्होंने उर्दू और फारसी का ही पहले अध्ययन किया था। पुनः वयःप्राप्त होने पर इन्होंने हिंदी का स्वतंत्र अध्ययन किया। बाल्यकाल से ही प्रबंध लिखने का इन्हें अच्छा अभ्यास था। बाल्यकाल से ही ये लखनऊ के 'उर्दू अखबार' और 'अवध पंच', लाहौर के 'कोहनूर', मुरादाबाद के 'रहबट' और स्यालकोट के 'विक्टोरिया पेपर' आदि पत्रों में लेख लिखा करते थे। तभी से इनकी गणना प्रसिद्ध लेखकों में होने लगी।

जब चुनार के प्रसिद्ध रईस बाबू हनुमान्प्रसाद ने चुनार से 'अखबारे चुनार' नामक पत्र प्रकाशित करना आरंभ किया, तब बालमुकुंद गुप्त को बुलाकर उसका संपादक नियुक्त किया। गुप्त जी ने उस पत्र का बड़ी योग्यता से संपादन किया। परंतु कुछ दिनों के बाद ये लाहौर चले गए और वहां से सप्ताह में तीन बार निकलने वाले 'कोहनूर' नामक पत्र के संपादक नियुक्त हुए। कुछ दिनों में इन्होंने उसे दैनिक कर दिया।

उन्हीं दिनों कालकांकर से 'हिंदोस्थान' नामक पत्र हिंदी में प्रकाशित होता था। उसके संपादक थे पंडित मदनमोहन मालवीय। श्रीभारतधर्ममहामंडल के अधिवेशन में मालवीय जी वृंदावन गए हुए थे और बालमुकुंद गुप्त भी आए हुए थे। पंडित दीनदयालु ने दोनों में परिचय कराया। जब मालवीय जी हिंदी का संपादन छोड़ने लगे, तब मालवीय जी ने गुप्त जी को बुलाकर हिंदोस्थान की संपादक समिति में

नियुक्त करवा दिया। राजा साहब स्वयं संपादक थे और पंडित प्रतापनारायण, पंडित राधारमण चौबे आदि उपसंपादक थे।

कुछ दिनों के बाद गुप्त जी कालाकांकर से घर चले गए। उन्हीं दिनों कलकत्ता में 'हिंदी बंगवासी' का जन्म हुआ। भारतधर्ममहामंडल के अधिवेशन के समय 'हिंदी बंगवासी' के संचालक काशी आए हुए थे। उनसे वहीं गुप्त जी की भेंट हुई। उन्हीं दिनों 'हिंदी बंगवासी' में 'शिक्षित हिंदुबाला' नाम का एक उपन्यास निकलता था। काशी से लौटकर गुप्त जी घर आए और वहींसे इन्होंने उक्त उपन्यास की आलोचना करते हुए 'हिंदी बंगवासी' के संपादक बाबू अमृतलाल चक्रवर्ती को एक पत्र लिखा। उस पत्र के उत्तर में चक्रवर्ती जी ने कृतज्ञता प्रकट की और इनको कलकत्ता बुलाकर अपना सहकारी बनाया। यह बात सन् १८९३ ई० की है।

कुछ दिनों के बाद गुप्त जी 'बंगवासी' के संपादक हुए। वहां सात वर्षों तक गुप्त जी ने बड़ी योग्यता से अपना काम किया। परंतु उक्त पत्र के मालिकों में जब झगड़ा होने लगा तब गुप्त जी नौकरी छोड़कर घर चले गए। इनके घर पहुंचते ही 'भारतमित्र' के मालिक ने इन्हें पुनः कलकत्ता बुला लिया और 'भारतमित्र' के संपादन का भार इनपर छोड़ा। तब से वे 'भारतमित्र' का अपने अंतिम समय तक संपादन करते रहे। इनका परलोकवास सन् १९०७ ई० में भादो शुक्ला एकादशी बुधवार को दिल्ली में हुआ। गुप्त जी बड़े चतुर थे। इनकी निष्पक्ष और रसीली समालोचना प्रणाली प्रशंसनीय थी। इन्होंने कई-एक ग्रंथों का अनुवाद किया है तथा स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखे हैं। 'रत्नावली' नाटिका, 'हरिदास', 'शिवशंभु का चिट्ठा', 'स्फुट कविता' और 'खिलौना' आदि इनकी पुस्तकें प्रसिद्ध हैं।

बाल्हीक—भारत के एक प्राचीन राज्य का नाम। महाभारत आदि पुरातन-ग्रंथों में इसका उल्लेख पाया जाता है। महाभारत के युद्ध में बाल्हीकराज सम्मिलित हुए थे। बाल्हीकराज के पुत्र सोमदत्त ने सात्यकि के साथ भीम पराक्रम से युद्ध किया था। बाल्हीकराज के पिता का नाम प्रतीप था। काश्मीर के इतिहास राजतरंगिणी नामक ग्रंथ में राजपुरी नाम की एक नगरी का परिचय पाया जाता है। वहां के राजा संग्रामपाल ने जब अपनी स्वाधीनता की घोषणा की तब काश्मीराधिपति हर्षदेव ने उस राज्य पर अधिकार करने के लिए दंडनायक नाम के सेनापति को भेजा था। वह सेनापति अठारह महीने चलकर वहां से लौटा था। राजपुरी अथवा राजगृह दोनों एक के ही दो नाम हैं। राजतरंगिणी में लिखा है कि दंडनायक सेनापति बाल्हीक राज्य को लांघकर काश्मीर राज्य पहुंचा था। इससे ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि काश्मीरराज्य और मगधराज्य की राजधानी राजपुरी या राजगृह के मध्य में बाल्हीकराज्य स्थित है।

विशेष अनुसंधान करने पर यह बात निश्चित रूप से मालूम होती है कि बाल्हीक राज्य का ही परिवर्ती समय में 'व्याकट्रिया' नाम पड़ गया। बाल्हीक राज्य का ही व्याकट्रिया और उससे बालख नाम पड़ा। पारस जीतकर लौटने के समय महावीर अलकजेंडर के साथ प्रायः १४ सौ सैनिकों ने व्याकट्रिया में उपनिवेश स्थापन किया और वे वहीं रहने लगे। ग्रीकों के राजत्वकाल में व्याकट्रिया के राजाओं द्वारा चलाए कितने ही सिक्के पाए गए हैं। उन सिक्कों से प्राचीन काल की बहुत-सी बातें मालूम हुई हैं। बहुत पहले व्याकट्रिया में संस्कृत-भाषा प्रचलित थी यह बात उन सिक्कों से मालूम होती है। संस्कृत-भाषा का उत्पत्ति-स्थान भारतवर्ष है। पहले अति दूर व्याकट्रिया या बाल्हीकराज्य में भारतवर्ष का प्रभाव विस्तृत हुआ था। इससे यह बात प्रमाणित होती है। चंद्रगुप्त के आविर्भाव के प्रायः ६०४२ वर्ष पूर्व व्याकट्रिया में 'डाईनिसस' नामक राजा के होने का पता लगता है। पाश्चात्य देश के इतिहास में डाईनिसस नामक अनेक राजाओं का उल्लेख पाया जाता है। इससे मालूम होता है कि उस समय डाईनिसस नाम एक उपाधि हो गया था। अतएव व्याकट्रिया के डाईनिसस का असली नाम क्या था इसका पता लगाना कठिन है। दीनेश या दानवेश किसी हिंदू-राजा का नाम या विशेषण डाईनिसस के रूप में बदला जा सकता है, यह भी असंभव नहीं है। सण्ड्रोकटस (Sandrocottus) या काण्ड्रेगुपस् (Kandragupso) का जब चंद्रगुप्त हो सकता है तब डाईनिसस का दानवेश या दीनेश होना भी असंभव नहीं है।

पाश्चात्य पंडितों का सिद्धांत है कि यह राज्य हिंदुकुश पर्वत के पश्चिम भाग में स्थित है। उसके उत्तर या उत्तर-पश्चिम की ओर अक्षासनद इसको

सेकडियाना से बिलगाए हुए है। उनके मत से ब्याकट्रिया हिंदू और इंदु यूरोपियनों का आदि वासस्थान है। वहीं से पृथ्वी के अन्यान्य भागों में आगे सभ्यता फैली है। इतिहास में ब्याकट्रिया गण का जो परिचय मिलता है, उससे यह जाना जाता है कि मिडी और पारसियों के साथ इनकी पूर्ण समानता थी। उनकी मातृभाषा 'जेन्द' थी। पहले यह पराक्रमी और ऐश्वर्यशाली राज्य था। उस समय फारस देश के पूर्व तक इसकी सीमा थी। यह राज्य एशिया महादेश में स्थलपथ का एक बड़ा वाणिज्य का केंद्र समझा जाता था। ब्याकट्रिया राजवंश नष्ट होने पर उस जनपद के स्थान पर बालख राज्य या बालकन राज्य स्थापित हुआ है।

बिल्व—एक विष्णुभक्त, जो कि परम शिवभक्त बन गया था। सृष्टि का सृजन करते समय ब्रह्मा ने बिल्व वृक्ष (बेलपत्र) का निर्माण किया। इसे 'श्रीवृक्ष' भी कहा जाता है। इस वृक्ष के नीचे एक व्यक्ति तपस्या करने के लिए बैठा, जिसे ब्रह्मा ने बिल्व नाम दिया। इसकी तपस्या से प्रसन्न होकर इंद्र ने इसे पृथ्वी का राज्य करने के लिए कहा। इसने इंद्र से वज्र मांगा; किंतु इंद्र ने इसे अपना स्मरण करने के लिए कहा। एक बार शिवभक्त कपिल घूमता हुआ इसके आश्रम में आया। ये दोनों मित्र बन गए। एक दिन दोनों में शास्त्रार्थ हुआ और उससे क्रुद्ध होकर बिल्व ने कपिल ऋषि का वज्र से वध कर डाला; किंतु कपिल ने अपनी शिवभक्ति के बल से पुनर्जन्म प्राप्त किया। फिर बिल्व ने विष्णुभक्ति और तदनंतर शिवभक्ति की। कपिल ऋषि से इसकी फिर भेंट हुई और इसको शिवभक्त जानकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ।

(स्कन्दपुराण)

बिहारीलाल—हिंदी के प्रसिद्ध ज्ञाता और प्रधान कोशकाव्य सत्सई के कर्ता। प्रसिद्ध प्राचीन कवि, विद्वान्, वीर आदि का जीवन प्राय: विवादमय देखा जाता है। अर्थात् उनके जीवनीलेखकों का मत आपस में नहीं मिलता। मेरी समझ से इसका कारण यही जंचता है कि प्रसिद्ध मनुष्य को अपने से किसी न किसी प्रकार संबंधयुक्त करना सभी चाहते हैं। ऐसी इच्छा होने पर लोग अपने मत को पुष्ट करने के लिए प्रमाण ढूंढ़ने लगते हैं। प्रमाण का मिल जाना कोई असंभव नहीं है। यही हाल कविवर बिहारीलाल के विषय में भी हुआ है।

सरयूपारीण पंडित महेशदत्त ने 'भाषाकाव्यसंग्रह' नामक एक ग्रंथ लिखा है। उसमें उन्होंने लिखा है कि बिहारीलाल कान्यकुब्ज और श्री वृंदावन के रहने वाले थे। वृंदावनवासी गोस्वामी राधाचरण जी एक सत्सई के दोहे को उद्धृत करके उसके अनुसार बिहारी जी को 'केशव' नामक भाट का पुत्र बताते हैं। वह दोहा यह है—

जनम लियो द्विजराजकुल बसे प्रगट ब्रज आय।
मेरे हरो कलेश सब केशव केशवराय॥

इन दोनों मतों में कौन-सा मत प्रामाणिक है यह जानना कठिन है। 'भाषाकाव्यसंग्रह' के रचयिता ने सरयूपारीण और कान्यकुब्ज कवियों का ही अपने ग्रंथ में वर्णन किया है। उन्हींके साथ उन्होंने बिहारीलाल को भी कान्यकुब्ज बना डाला है, परंतु इसमें उन्होंने प्रमाण कुछ भी नहीं दिया है। गोस्वामी जी का अनुमान कहां तक ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य है यह जान लेना भी आवश्यक है। यद्यपि लल्लूलाल हरिचरणदास आदि ने भी बिहारी को केशव का पुत्र बतलाया है, तथापि उनको राय या भाट कहना किसी प्रकार उचित नहीं जान पड़ता। क्योंकि भाटों को छोड़कर अन्य भी—हुलासराय, कल्याणराय आदि—राय पदवी धारण करते हैं और जिसने अपने आश्रयदाता जयसिंह की प्रशंसा ७।८ दोहों में करके भाटों की तरह चापलूसी नहीं की है वह भाट कैसे हो सकता है और भाट होकर वह अपने को 'द्विजराज' लिखने का साहस भी कैसे कर सकता है?

इनके कुलनिर्णय के विषय में दो भिन्न-भिन्न मत और प्रचलित हैं। काशीवासी श्रीराधाकृष्णदास अपने 'कविवर बिहारीलाल' नामक लेख में बिहारी को कवि केशवदास का पुत्र बतलाते हैं और उनका दूसरा नाम केशवराय था, यह भी मानते हैं। ये केशवदास टेहरी के रहने वाले सनाढ्य ब्राह्मण थे। बुंदेलखंड ओड़छाधिराज से सम्मान पाकर इन्होंने 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया', 'रामचंद्रिका', 'ज्ञानगीता' आदि हिंदी-साहित्य के अनूठे ग्रंथ लिखे। दूसरा मत बिहारीलाल के चौबे होने का है। डाक्टर ग्रियर्सन, ठाकुर शिवसिंह, राजा शिवप्रसाद आदि इसी मत के पोषक हैं। जो भी हो, इनके कुल के विषय में कुछ निश्चत नहीं कहा जा सकता कि ये किस जाति के थे।

जयपुर के राजा मिर्जा जयशाह सं० १६७६ वि० में राजगद्दी पर बैठे और वे नवविवाहिता रानी के प्रेम

में मुग्ध हो गए। संयोगवश घूमते-घामते बिहारी भी वहां पहुंचे थे। कामदारों ने बिहारी जी को इस काम पर नियुक्त किया कि तुम महाराज का चित्त रानी के प्रेम की ओर से हटा दो। बिहारीलाल ने जाते ही महाराज को यह दोहा सुनाया—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही पै लगे आगे कौन हवाल॥

इस दोहे का प्रभाव महाराज पर खूब पड़ा उन्होंने बिहारी से कहा कि ऐसे दोहे जितने बना सको, लाओ। बिहारी के चले जाने पर कामदारों ने एक दोहे के लिए बिहारी को १०० मोहर भेंट देने के लिए प्रस्ताव किया और अन्य दोहों के लिए प्रति दोहे एक-एक मोहर देने का विचार प्रकट किया। महाराज ने कहा, मैंने तो इस दोहे के बदले गांव देना भी थोड़ा समझा था। इस प्रकार बिहारीलाल की पहुंच जयपुर दरबार में हुई।

एक समय की बात है, दरबार में सभी बैठे थे। एक चित्रकार एक चित्र बनाकर ले आया। इस चित्र में ज्येष्ठ की कठोर धूप से तड़फड़ाया हुआ एक सांप मयूर की छाया में जाकर बैठा था। बाघ और मृग साथ-साथ घूम रहे थे। इस चित्र को देखकर किसीने कुछ नहीं समझा। महाराज पूछने लगे—

किहि लाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ॥

चट बिहारीलाल जी बोल उठे—

जगत तपोवन सो कियो दीरघ दाघ निदाघ।

महाराज बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे—कवि और चित्रकार दोनों ही प्रकृति की प्यारी संतानें हैं।

संवत् १८१६ वि० में महाराज जयसिंह का देहांत हुआ। उस समय जयपुर राज्य में बड़ी गड़बड़ी मची। मालूम नहीं कि उस समय राज्य का कौन अधिकारी हुआ। कृष्णकवि के मतानुसार, उस समय कृष्णसिंह और रामसिंह का होना पाया जाता है। परंतु जयनगर पंचरंग में मिर्जा जयसिंह के पीछे विष्णुसिंह का होना लिखा है। कौन जाने कृष्णसिंह और रामसिंह दोनों ही उस समय अपने-अपने राजा होने का प्रयत्न करते रहे हों। इन सब बातों को देखकर बिहारी का चित्त जयपुर में नहीं लगा। यह बात उनके एक दोहे से प्रमाणित होती है—

जिन जिन देखे वे कुसुम गई सु बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब की अपत कटीली डार॥
चले जाहु ह्यां को करै हाथिन को ब्योपार।
नहिं जानत इहि पुर बसत धोबी ओड कुम्हार॥
चुप करि रे गन्धी चतुर अतर दिखावत काहि।
करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि॥
अरे हंस या नगर में जैयो आय विचार।
कागनि सों जिन प्रीति करि कोइल दई बिडार॥

जयपुर छोड़ने के बाद बिहारी जी कृष्णकवि को साथ लेकर मारवाड़ गए। जब वे राजदरबार में गए तो उन्होंने देखा कि एक-दो कवि बिहारी की सतसई के नाना प्रकार के अर्थ कर रहे हैं। बिहारीलाल जी ने कृष्ण से कहा—बेटा चलो, यहां यदि हम अपने को बिहारी प्रकट करते हैं तो अवश्य ही ये लोग इन दोहों का अर्थ पूछेंगे। इन दोहों के कई अर्थ तो इन्हीं लोगों ने कर डाले हैं। यहां से बिहारी धन की आशा से वंचित होकर चले गए। सं० १७१८ वि० तक इन्होंने तीन वर्षों में सतसई पूरी कर दी। तदनंतर बिहारी कवि ने अपना चित्त भगवान् के भजन में लगाया। अन्यान्य कवियों के समान बिहारीलाल में भी आत्मश्लाघा करने का दोष पाया जाता है। ये कहते हैं—

सतसय्या के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखत के छोटे लगें बेधें सकल शरीर॥
जो कोऊ रसरीति को समुझत चाहै सार।
पढ़ै बिहारी सतसई कविता को श्रृंगार॥

सतसई पर कितनी ही टीकाएं हो चुकीं, जिनमें कुछ टीकाकारों के नाम नीचे लिखे जाते हैं। १. सूरति मिश्र, २. चंद्र, ३. गोपालशरण, ४. कृष्ण, ५. करण, ६. अनवरखां, ७. पठान सुलतान (कुंडलिया), ८. जुलफिकार, ९. यूसफखां, १०. रघुनाथ, ११. लाला, १२. सरदार, १३. लल्लूलाल, १४. गंगाधर, १५. रामबक्श, १६. परमानंद (संस्कृत में), १७. जोखूदास (कुंडलिया), १८. छोटू (वैद्यक टीका)।

बाबू राधाकृष्णदास ने अपने लेख में बिहारीलाल का उत्पत्तिस्थान ग्वालियर बताया है। इसमें उन्होंने प्रमाण दिया है—

जनम ग्वालियर जानिये खंड बुंदेलेपाल।
तरुनाई आई सुभग मथुरा बसि ससुराल॥

माथुर समाज में भी ऐसी ही जनश्रुति पाई जाती है। एक प्रकार से ग्वालियर के ही अंतर्गत बसुआ गोविंदपुर में बिहारी की जन्मभूमि बताई जाती है।

बिहारी के चाचा इसी गांव में रहते थे।

कहते हैं, बिहारीलाल एकाक्ष थे। अतएव लड़के उन्हें 'कौआ कौआ' कहा करते थे। महाराज जयसिंह को भी यह बात मालूम हुई। उन्होंने कहा—कौआ-राम, तुमने कौए की आंख पर कोई कविता नहीं की। बिहारीलाल ने यह दोहा सुनाया—

हीन को हितउ नहीं बनै कोऊ करो अनेक।
फिरत काग गोलक भयो दुहूं देह जिय एक॥

गोवर्द्धन की आर्या सप्तशती और सात वाहन की गाथा सप्तशती देखकर बिहारी के हृदय में सत्सई बनाने का संकल्प उत्पन्न हुआ था। बिहारी ने इन संस्कृत और प्राकृत के अनूठे ग्रंथों से अपनी सत्सई में अनेक भाव लिए हैं। कई स्थानों पर सूरदास के सूर-सागर के भी भाव पाए जाते हैं।

बीका जी—बीकानेर के आदि स्थापनकर्ता। ये मारवाड़ राज्य के प्रतिष्ठाता राठौर वीर जोधा जी के पुत्र थे। जिस समय प्राचीन राजधानी मंडोर राज्य को छोड़कर ये मारवाड़राज की नवीन राजधानी जोधपुर में आए, उस समय उनके दूसरे कुमार बीका अपने चाचा कांधल के साथ तीन सौ राठौर-सेना लेकर पिता के राज्य की सीमा को बढ़ाने के लिए बाहर निकले। परंतु उनके जाने से पहले इनके भाई बीदा ने मोहिलो की प्राचीन निवासभूमि पर आक्रमण करके उस देश को जीत लिया था। अपने भाई की जयप्राप्ति से उत्साहित होकर बीका दिग्विजय के लिए चल दिए।

मारवाड़ के राजकुमार बीका जी पहले-पहल तीन सौ राठौर-वीरों को साथ लेकर दिग्विजय के लिए चले। सर्वप्रथम उन्होंने जांगल नामक स्थान के अधिवासी सांखला नाम की प्राचीन जाति पर आक्रमण किया और उन्हें जीत लिया। इस विजय से और इनके साहस तथा इनकी वीरता के गौरव से मरुस्थल गौरवान्वित हो गया। उस युद्ध में विजय प्राप्त करने के कारण पुंगलदेश के भाटियों से इनका परिचय हुआ। पुंगलपति ने बीका को वीर तथा एक होनहार युवक जानकर इनसे अपनी कन्या ब्याह दी। पुंगलपति ने समझ लिया था कि युद्ध से अपनी स्वाधीनता नहीं बचाई जा सकती। इसी कारण सुचतुर पुंगलपति ने अपनी कन्या देकर स्वाधीनता की रक्षा की। बीका भाटियों के साथ किसी प्रकार का भी उपद्रव न करके और वहीं कोडमदेसर नामक स्थान में किला बनवाकर रहने लगे और वहीं से धीरे-धीरे अन्य प्रदेशों पर अधिकार करके अपने राज्य की सीमा बढ़ाने लगे। विजयी वीर राठौरों ने देखते-देखते ही उस प्रदेश में एक प्रभावशाली राष्ट्र गठित किया। उस समय बीकानेर राज्य के अधिकांश भागों में जाटजाति के लोग बसते थे।

इस समय बीकानेर राज्य की बस्ती इस शीघ्रता से बढ़ रही थी कि बीका जी अपने पिता के वास-स्थान मंडोर को छोड़कर थोड़े ही दिनों में २६७० ग्रामों के अधीश्वर हो गए। इतने बड़े प्रदेश पर विजय प्राप्त करने के लिए बीका जी को विशेष शक्ति का प्रयोग नहीं करना पड़ा था। क्योंकि वहां के वासियों ने बिना युद्ध किए ही इच्छापूर्वक बीका जी की अधीनता स्वीकार की।

मारवाड़ के जिन भागों पर अधिकार करने के लिए बीका जी राजधानी से निकले थे, उन प्रांतों के जाट तथा जोहियागण सामान्य वृत्ति से अपना निर्वाह किया करते थे। गाय, भैंस, भेड़ आदि वे पाला करते थे और गाय-भैंस का घी तथा भेड़ों का ऊन सारस्वत-ब्राह्मणों के हाथों बेचते थे। इन्हीं द्रव्यों की बिक्री से जो लाभ होता था उससे उनकी जीविका चलती थी।

नवीन राज्य-स्थापन करने की इच्छा से जाट और जोहियों के अधिकृत देश में अधिकार करने के लिए बीका जी जिस समय गर्व से आगे बढ़ रहे थे, उस समय उनके कार्य में सहायता पहुंचाने वाले बहुत से सुयोग उपस्थित हो गए। इसी कारण उन्होंने अनायास ही एक बड़े राज्य पर अपना प्रभुत्व विस्तारित कर लिया। अत्याचारी राजा के अत्याचारों से पीड़ित होकर उस देश के वासियों ने इच्छापूर्वक बीका जी को आत्मसमर्पण किया।

इस प्रकार विजयी बीका ने थोड़ी-सी सेना की सहायता से एक बड़े राज्य को अपने हस्तगत कर लिया। तदनंतर ये दिग्विजय करने के लिए पश्चिम की ओर आगे बढ़े। बीका ने अपनी सेना के साथ बागार देश पर आक्रमण किया जो भारी राज्य के अधिकार में था। उन्होंने उसको अपने अधिकार में किया। इस प्रकार बीका ने मंडोर छोड़ने के बीसवें वर्ष बागार देश में राजधानी स्थापित करने का विचार किया और नेरा नामक जाट से पूर्वोक्त भूखंड को लेकर संवत् १५४५, वैशाख मास, सन् १४८९ ई० की १५ मई को अपनी नई राजधानी

स्थापित की।

महाराज बीका नवीन राजधानी स्थापित करके बहुत दिनों तक जीवित नहीं रहे। उन्होंने भारतवर्ष में एक नवीन राज्य की स्थापना करके सं० १५५१ वि० में इस लोक को छोड़ दिया। उनके लूनकरन और गड़सी नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे।

(टाड्स राजस्थान)

बीरबल—अकबर के नवरत्नों में श्रेष्ठ बीरबल का नाम उनकी अनूठी सूझ-बूझ के कारण लोक में सुप्रचलित है। इनके नाम से लोक में अनेक कथाएं प्रचलित हैं। कहा जाता है कि ये त्रिविक्रमपुर (तिकवांपुर) जिला कानपुर के एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण-परिवार में उत्पन्न हुए थे। वहां इनके द्वारा बसाया गया एक गांव आज भी विद्यमान है। इनके पिता का नाम गंगादास था। इनका पैतृक नाम महेशदास था और हिंदी-साहित्य में इनकी ब्रह्मकवि के नाम से प्रसिद्धि है। इनका जन्म १५८५ वि० (१५२८ ई०) में हुआ था। प्रयाग के अशोक स्तंभ पर इनकी प्रयाग यात्रा का उल्लेख हुआ है, जो कि इन्होंने १६३२ शक में की थी। इनके द्वारा विरचित 'सुदामाचरित' नामक एक काव्य ग्रंथ का उल्लेख हुआ है, जो कि उपलब्ध नहीं है। इनकी काव्य-ख्याति दरबार तक ही सीमित रही। इनकी फुटकर रचनाएं संग्रह-ग्रंथों में उपलब्ध हैं। वे शृंगार रस से परिपूर्ण हैं और काव्योक्तियों के उदाहरण रूप में उनका प्रयोग हुआ है। ये समस्यापूर्ति में अत्यंत प्रवीण थे। इनका निधन १६४० वि० (१५८३ ई०) में हुआ था (मिश्रबंधु—मिश्रबंधु विनोद, भाग १; रामचंद शुक्ल—हिंदी-साहित्य का इतिहास)।

बुध—नवग्रहों में से एक। इसका जन्म बृहस्पति की पत्नी तारा में चंद्रमा से हुआ था। इस कारण इसे 'बृहस्पतिपुत्र' भी कहा जाता है। चंद्रपुत्र होने के कारण इसकी गणना सोमवंश में की गई है। मनु की कन्या इला इसकी पत्नी थी, जिससे इसका पुरूरवा नामक पुत्र हुआ। चंद्रमा ने बृहस्पति की दूसरी पत्नी तारा का भी अपहरण किया। उससे भी बुध का जन्म हुआ।

'विष्णुधर्म' में कहा गया है कि एक बार कश्यप ऋषि के पुत्र रज की पत्नी वारुणी स्नान करते समय समुद्र में डूब गई थी। चंद्रमा ने उसे निकालने के लिए समुद्र में प्रवेश किया; किंतु इसी बीच समुद्र से एक बालक का उदय हुआ। यही बालक बुध के नाम से कहा गया। पहले इसका लालन-पालन बृहस्पति की दूसरी पत्नी तारा ने किया और फिर इसे चंद्र-पत्नी दाक्षायणी को दे दिया गया।

बुध परम विद्वान् था। हस्तिशास्त्र में वह निष्णात था। इसे 'सर्वसारतंभ' का रचयिता माना जाता है।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

वृषपर्वा—असुरराज। इनकी कन्या शर्मिष्ठा थी, जो देवयानी की दासी बनाई गई थी। (महाभारत)

बृहदश्व—प्राचीन कोशलपति, इनका दूसरा नाम कल्माषपाद था। (देखो कल्माषपाद)

बृहद्रथ—मगध के एक राजा का नाम। इन्हींका पुत्र प्रसिद्ध जरासंध था।

बृहद्बल—सूर्यवंशी एक राजा। ये महाभारत के युद्ध में अभिमन्यु के हाथ से मारे गए थे।

बृहस्पति—देवगुरु महर्षि। शास्त्रीय ग्रंथों में अनेक बृहस्पति नामक ऋषियों का पता लगता है। ऋग्वेद में दो बृहस्पति ऋषियों का उल्लेख हुआ है। एक अंगिरस और दूसरे लौक्य अर्थात् एक अंगिरा के वंश में उत्पन्न और दूसरे लोक के वंश में उत्पन्न। तैत्तिरीयसंहिता में देवपुरोहित एक बृहस्पति का उल्लेख हुआ पाया जाता है। मैत्रेयी उपनिषद् में लिखा है कि असुरों की बुद्धि भ्रष्ट करने के लिए बृहस्पति ने नास्तिक दर्शन का प्रचार किया था। इसी कारण उन्होंने शुक्राचार्य का रूप धारण करके अविद्या उत्पन्न की, जिससे अज्ञानी असुरों ने वेदादि सत्शास्त्रों के उपदेशों पर अवज्ञा प्रकट की, अतएव उनका पतन हुआ। संहिताकारों में भी एक बृहस्पति की प्रसिद्धि है। बृहस्पतिसंहिता उन्नीस संहिताओं के अंतर्गत समझी जाती है। महाभारत में भी दो बृहस्पतियों का परिचय पाया जाता है। उनमें एक 'अहिंसा परमोधर्मः' के प्रचारक हैं और दूसरे वंचनाशास्त्र के प्रणेता हैं। मैत्रेयी उपनिषद् और महाभारत के बृहस्पति दोनों एक ही हैं, ऐसा अनेक विद्वानों का मत है और वे ही 'चार्वाक-दर्शन' के आदिप्रणेता भी हैं।

देवगुरु बृहस्पति की पत्नी का नाम तारा था। एक समय चंद्रमा उनकी स्त्री को हरकर ले गया। इसके लिए बृहस्पति ने देवताओं के सामने अभियोग उपस्थित किया। देवताओं की सभा जुड़ी। विष्णु, ब्रह्मा, शिव आदि सभी उपस्थित हुए। सभी ने चंद्रमा से अनुरोध किया कि तुम तारा को लौटा दो। परंतु चंद्रमा

ने किसीके कहने पर ध्यान नहीं दिया। चंद्रमा का यह औद्धत्य भूतपति शिवजी से नहीं देखा गया। वे युद्ध करने के लिए तैयार हो गए। ब्रह्मा ने जब बात को बिगड़ते देखा तब उन्होंने चंद्रमा को समझाकर तारा को बृहस्पति के हवाले करा दिया। उस समय तारा ने कहा कि मुझे चंद्रमा का गर्भ है। बृहस्पति की आज्ञा से तारा ने गर्भ को निकाल दिया और वह बृहस्पति के साथ चली गई।

बृहस्पति संहिता—यह संहिता अस्सी श्लोकों की है। देवराज इंद्र ने एक सौ यज्ञ करके वाग्मीप्रवर बृहस्पति से पूछा—भगवन्! किन-किन वस्तुओं के दान करने से मनुष्य सर्वदा सुखी रहते हैं? कृपया यह मुझसे कहिए। इसके उत्तर में बृहस्पति ने जो दानमाहात्म्य कहा है, वही इस संहिता में लिखा गया है। इसमें यह बात पाई जाती है कि इस संहिता के कर्ता बृहस्पति हैं। परंतु इस समय जो बृहस्पति संहिता के नाम से संहिता प्रसिद्ध है, वह बाद में बनी है, यही लोगों का विश्वास है। इस संहिता में 'दानधर्म' का माहात्म्य विस्तृत रूप से लिखा गया है। तालाब, कुंआ, पोखर, बागीचा आदि के बनाने का माहात्म्य इस संहिता में बड़े विस्तार से लिखा है। इस संहिता के मत से, जो मनुष्य पोखर खुदवाता है अथवा उसका जीर्णोद्धार करवाता है वह अपने कुल का उद्धार करके स्वर्गलोक पाता है। "यस्तटाकं नवं कुर्यात् पुराणं वापि खानयेत्। स सर्वं कुलमुद्धृत्य स्वर्गे लोके महीयते।" ब्राह्मण को दान देने का माहात्म्य इस संहिता में लिखा है। ब्राह्मण के क्रोध से कुलक्षय होता है—यह बात संहिताकार ने स्पष्ट रूप से कही है।

बेडसा—बेडसा गुफा की लंबाई ४५ फुट और ऊंचाई २१ फुट के लगभग है। इस गुफा तक पहुंचने के लिए चट्टानों को काटकर रास्ता बनाया गया है। गुफा के सामने दो स्तंभ हैं, जिनकी जगती के स्थान पर पूर्ण कुंभ बनाया गया है। स्तंभों के शीर्ष भाग मौर्य स्तंभ की आकृति के हैं। इनके चारों कोनों पर हाथी, घोड़ा, वृषभ तथा शार्दूल उत्कीर्णित हैं। इन दोनों स्तूपों के पीछे दोनों पार्श्वों में दो अलिंद हैं। उनकी वेदिका तथा गवाक्षों पर परंपरा के विपरीत अलंकरणों की भव्यता शिथिल दिखाई देती है। विद्वानों का अभिमत है कि भज और बेडसा के बाद अलंकरणों की परंपरा क्षीण होती गई। भज और कोंडानी की गुफाओं की भांति बेडसा की गुफा में भी काष्ठ का अधिक प्रयोग हुआ है।

फर्गुसन ने लिखा है कि बेडसा के स्तंभ बुद्ध तथा बोधिसत्त्वों आदि के चित्रों से अलंकृत थे। किंतु किसी स्थानीय शासक द्वारा उनकी सफाई करवा देने के बाद उनकी चित्रकारी धुंधली पड़ गई।

बेनी कवि—(१) ये हिंदी के कवि थे और असनी जिला फतेहपुर के निवासी थे। इनका जन्म सं० १६६० वि० में हुआ था। ये महान् कवीश्वर हुए हैं। इनका लिखा नायिकाभेद का एक अत्युत्तम ग्रंथ पाया जाता है। इनकी कविता बहुत ही सरस, सरल, मधुर और ललित है।

(२) ये कवि बंदीजन बेनी, जिला रायबरेली के निवासी थे। संवत् १८४४ में ये उत्पन्न हुए थे। ये लखनऊ के नवाब के दीवान महाराज टिकैतराय के यहां रहते थे। इनकी मृत्यु सं० १८९२ वि० में हुई।

बेनीप्रगट—ये कवि ब्राह्मण थे और लखनऊ निवासी कविंद कवि के पुत्र थे। ये सं० १८८० वि० में उत्पन्न हुए थे। इनकी कविता अत्यंत सुंदर है।

बेनी प्रवीण—ये हिंदी के कवि कान्यकुब्ज वाजपेयी ब्राह्मण थे और लखनऊ के निवासी थे। इनका जन्म सं० १८७६ वि० में हुआ था। इनकी कविता उत्तम होती थी। इनका लिखा नायिका-विषयक ग्रंथ पढ़ने योग्य है।

बेनीमाधवदास—ये गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे। सं० १६५५ वि० (१५९८ ई०) तक इनका गोस्वामी जी के साथ रहना बताया जाता है। इन्हें गोस्वामी जी का शिष्य कहा जाता है। इनकी प्रसिद्धि इनके द्वारा विरचित 'मूल गोसाईं चरित्र' के कारण हुई है। इस ग्रंथ की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि ये गोंडा जिले के पसका गांव के निवासी थे। इस ग्रंथ में गोस्वामी जी का जीवनचरित उल्लिखित है। हस्तलेख के रूप में उपलब्ध इस ग्रंथ की तिथियों का परीक्षण करने पर डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने ग्रंथ की प्रामाणिकता पर संदेह किया है।

बैद्यनाथ—यह बिहार प्रदेश के संथाल परगना जिले में एक छोटा-सा कस्बा है। इसे हार्दपीठ तथा देवघर भी कहा जाता है। यह एक सुरम्य प्राकृतिक स्थान है। यहां पर अनेक मंदिर हैं। उनमें बैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग के मंदिर का नाम प्रमुख है। इस कारण यह स्थान भारत के तीर्थस्थानों में गिना जाता है।

बोधगया (बुद्धगया)—यहां पर तथागत द्वारा बोधि या संबोधि (आत्मज्ञान) प्राप्त किए जाने के कारण बौद्धविश्व में इस स्थान का बहुत बड़ा महत्त्व माना गया है। बौद्धग्रंथों में इस परम पवित्र स्थान का विशेष उल्लेख किया गया है। अपने मूल रूप में यह स्थान एक रेतीला टीला था, जिसे उरुविल्व या उरुवेला कहा गया है। भिक्षु वीरदेव भी कुछ दिनों तक यहां पर रहा था। गया से यह स्थान छह मील दक्षिण में है।

बोधायन—एक सूत्रकार आचार्य। यह कण्व बौधायन का पुत्र या उसका वंशज था। इसीलिए इसका 'काण्वायन' नामांतर भी प्राप्त होता है। इसके बौधायन तथा बोधायन दोनों नाम मिलते हैं। इसका मूल निवास संभवतः दक्षिण भारत की कृष्णा नदी के तट पर था। बौधायन शाखा के ब्राह्मण आज भी इस क्षेत्र में विद्यमान हैं। सायणाचार्य इसी शाखा के थे। दक्षिण भारत में बौधायन धर्मसूत्रों का अधिक प्रचार है।

इसके द्वारा रचित 'बौधायन धर्मसूत्र' अपने संपूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है। संप्रति उपलब्ध संस्करण में बहुत बड़ा भाग प्रक्षिप्त बताया जाता है। बौधायन के नाम से एक स्मृति भी संप्रति उपलब्ध है।

ब्रजवासीदास—इनका जन्म वृंदावन में १७३३ ई० के लगभग हुआ था। ये बल्लभ संप्रदाय के अनुयायी तथा मोहन गोसाईं के शिष्य थे। इनकी प्रसिद्धि इनके विशाल ब्रजभाषा प्रबंध काव्य 'ब्रजविलास' के कारण है। इसकी रचना १८२७ वि० (१७७० ई०) में हुई थी। इस ग्रंथ की रचना-प्रेरणा का स्रोत 'रामचरितमानस' था। इसमें श्रीकृष्ण के चरित्र को प्रबंधात्मक शैली में लिखा गया है। इसके अनेक कथा-संदर्भों पर 'सूरसागर' का प्रभाव है। अपनी सरल भाषा-शैली के कारण जन-सामान्य में इस ग्रंथ का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ है। कृष्ण मिश्र के संस्कृत नाटक 'प्रबंध चंद्रोदय' का भी इन्होंने ब्रजभाषा में पद्यबद्ध अनुवाद किया है। ब्रजभाषा को लोकसहज बनाने में ब्रजवासीदास की उक्त कृतियों का विशेष महत्त्व है (हिंदी साहित्य कोश, भाग २)।

ब्रह्मकवि—राजा वीरवर का यह दूसरा नाम था। ये जाति के ब्राह्मण और अंतर्वेद के रहने वाले थे। इनका माता-पिता का रखा हुआ नाम महेशदास था। ये कान्यकुब्ज दुबे ब्राह्मण थे। अंतर्वेद हमीरपुर जिले के किसी गांव में इनका वासस्थान था। ये काव्य पढ़-लिखकर राजा भगवान्दास आमेर के यहां कवियों में भर्ती हो गए। आमेरराज भगवान्दास इनकी कविता से बहुत प्रसन्न हुए और इनको अपनी सबसे प्रिय तथा उत्तम वस्तु जानकर उन्होंने बादशाह अकबर को उपहार में दे दिया। ये कवि कविता में अपना नाम ब्रह्म लिखा करते थे। गुणी बादशाह ने एक उत्तम कवि होने के अतिरिक्त इनमें अन्य प्रकार की योग्यताओं को देखकर इन्हें अपना मुसाहब बनाया और 'कविराय' की पदवी दी। तदनंतर पंचहजारी का इन्हें मनसब मिला। इन्हें 'राजा वीरवर' का भी खिताब मिला था। इनकी जीवनी तवारीखों में लिखी है। सन् ९९० हिजरी, बिजौर इलाके काबुल के युद्ध में पठानों के हाथ से मारे गए। राजा वीरवर ने बादशाह अकबर की आज्ञा से कानपुर जिले में अकबरपुर नामक एक गांव बसाया था और वहीं ये भी रहते थे। नारनौल कस्बे में इनका पुराना घर अभी तक वर्तमान है। अपने समय में इन्होंने बादशाह से चौधराना पद ब्राह्मणों को दिलवाया, गोवध बंद करवाया और हिंदू-मुसलमानों का भेद मिटाया।

(शिवसिंहसरोज)

ब्रह्मदत्त—एक प्राचीन राजा। रामायण में इनकी विलक्षण कथा लिखी है। वहां लिखा है, गौतम नामक एक ब्राह्मण इनके यहां अतिथि बनकर आया। उस अतिथि के भोजन में दैवयोग से मांस मिल गया। अतिथि भोजन पर बैठा। भोजन में मांस का योग मालूम होते ही उसने 'गीध हो जाओ' राजा को शाप दिया। बहुत प्रार्थना करने पर ब्राह्मण ने राजा को शापमुक्ति का उपाय भी बताया—भविष्य में श्रीरामचंद्र के स्पर्श से तुम्हारी मुक्ति होगी। श्रीरामचंद्र के राज्य के समय में एक उलूक और एक गृध में विवाद होने लगा। उनका विवाद रहने के स्थान के लिए था। श्रीरामचंद्र जी के निकट दोनों का विवाद न्याय के लिए उपस्थित किया गया। अपना पक्ष-समर्थन करते हुए उलूक बोला—पृथ्वी की सृष्टि के समय से मैं इस स्थान पर रहता आया हूं। गीध बोला—मनुष्य की सृष्टि के समय से इस स्थान पर मेरा अधिकार है। श्रीरामचंद्र जी ने निर्णय किया कि वृक्षों की सृष्टि ही आदि-सृष्टि है और मानवसृष्टि उसके बाद की है। अतएव श्रीरामचंद्र जी ने गीध को ही दोषी

ठहराया और वे उसको मारने के लिए चले। उसी समय श्रीरामचंद्र के स्पर्श से गीध शापमुक्त हो गया। रामायण में इसके अतिरिक्त ब्रह्मदत्त का और कुछ परिचय नहीं पाया जाता है। महाभारत के शांतिपर्व में एक दूसरे ब्रह्मदत्त का उपाख्यान लिखा गया है। शत्रुओं पर विश्वास करना अनुचित है और बिना विश्वास किए शत्रु जीते भी नहीं जा सकते—इसी प्रश्न का उत्तर देते हुए भीष्मपितामह ने राजा युधिष्ठिर से ब्रह्मदत्त का उपाख्यान कहा है। ब्रह्मदत्त कांपिल्य देश के राजा थे। उनके पुत्र ने पूजनी नाम की पक्षिणी के पुत्र को मार डाला। इस कारण पक्षिणी ने पुत्रहंता राजपुत्र की दोनों आंखें निकाल डालीं। इस बात को सुनकर राजा तनिक भी अप्रसन्न नहीं हुए। राजा उस पक्षिणी से बोले—मेरे पुत्र ने निंदित कर्म किया है इसलिए उसको दंड देकर तुमने उचित ही किया है। यह कहकर उन्होंने उस पक्षिणी को पहले के समान अपने घर में रहने के लिए कहा, परंतु उस पक्षिणी ने स्वीकार नहीं किया। उसने स्पष्ट ही कह दिया कि किसीका अनिष्ट करके उसके आश्रय में रहना अनुचित है। अर्थात् किसीके साथ शत्रुता करके पुनः उसीका आश्रय ग्रहण करना नीति के विरुद्ध है। यह कहकर राजा के बहुत अनुरोध करने पर भी उस पक्षिणी ने न माना और वह राजा का राज्य छोड़कर दूसरे स्थान पर चली गई।

ब्रह्मपुत्र—असम की इस प्रमुख नदी का उद्गम मानसरोवर के पूर्वी क्षेत्र से हुआ है। पुराणों में इसका व्यापक वर्णन हुआ है। असम के लखीमपुर जिले की सीमा पर ब्रह्मपुत्र में ब्रह्मकुंड नाम से एक कुंड है। उसमें परशुराम ने अपना क्षत्रियविनाशी परशु समर्पित किया था। इस कुंड को तीर्थरूप के समान समझा जाता है।

ब्रह्मपुर—अलकनंदा तथा कर्णाली नदियों के बीच का विस्तृत पर्वतीय क्षेत्र ही प्राचीन ब्रह्मपुर था। कनिंघम ने इसे गढ़वाल कुमाऊं जिलों में स्थित बताया है। इन जिलों पर कत्यूरों का शासन था, जिनका उल्लेख समुद्रगुप्त के प्रयाग-स्तंभ पर हुआ है।

ब्रह्मपुराण—अष्टादश पुराणों में यह पुराण प्रथम समझा जाता है। सूत और शौनक मुनि के कथोपकथन रूप में यह पुराण लिखा गया है। यह पुराण पूर्व और उत्तर दो भागों में विभक्त है। पूर्वभाग में सृष्टिप्रसंग, देवताओं और असुरों का जन्मविवरण और चंद्र-सूर्यवंश का वर्णन है। सूर्यवंश के वर्णन के समय इस पुराण में श्रीरामचंद्र जी के चरित्र का वर्णन किया गया है और चंद्रवंश के वर्णन के समय श्रीकृष्णचंद्र जी का चरित्र लिखा गया है। प्रियव्रत, उत्तानपाद, वेन, पृथु और पुरूरवा आदि राजाओं का भी इसमें वर्णन है। प्रजापति दक्ष का जन्म-वृत्तांत, पार्वती का जन्म और विवाह ब्रह्मपुराण में लिखा गया है। द्वीप, वर्ष, स्वर्ग, नरक और पाताल वर्णन तथा सूर्य प्रभृति देवताओं की स्तुति ब्रह्मपुराण के पूर्वभाग में देखी जाती है। उत्तरखंड में, पुरुषोत्तमतीर्थ का विस्तृत वर्णन, श्रीकृष्ण का चरित्र तथा गुणानुवाद और धर्मतत्त्व का दर्शनतत्त्व आदि आलोचित हुए हैं। पुरुषोत्तम-वर्णन के प्रसंग में उड़ीसा और जगन्नाथ मंदिर के पुरातत्त्व तथा मंदिर और निकुंज समूह किस प्रकार सूर्य, शिव और जगन्नाथ देव के नाम से समर्पित हुए हैं, आदि बातें लिखी गई हैं। ब्रह्मपुराण के उत्तरखंड में जो श्रीकृष्ण का चरित्र लिखा गया है वह विष्णुपुराण के श्रीकृष्ण-चरित्र से मिलता-जुलता है। इस पुराण के उपसंहार में योग का विषय उठाया गया है। योग के अंग-प्रत्यंगों का निरूपण करके योग की आलोचना की गई है। युग के अनुसार धर्म में परिवर्तन, ह्रास, वृद्धि आदि तीर्थप्रसंग, गंगा की उत्पत्ति का वर्णन, वर्ण और आश्रम तथा उसके धर्म, मृत्यु, मृत्यु का स्वरूप तथा कारण और पितृश्राद्ध आदि की कथाएं प्रसंगानुसार इस पुराण में वर्णित हुई हैं।

ब्रह्मवैवर्तपुराण—यह पुराण बारहवां पुराण समझा जाता है। ब्रह्मखंड, प्रकृतिखंड, गणेशखंड, श्रीकृष्णजन्मखंड—इन चार खंडों में यह पुराण समाप्त है। नैमिषारण्यतीर्थ में शौनकादि ऋषियों के समक्ष सूत ने इस पुराण को परमपौराणिक कहा है। इसी पुराण में श्रीकृष्ण और राधा का लीलाप्रसंग विस्तार से लिखा गया है। लोगों का विश्वास है कि राधा के संबंध में आज तक जितने ग्रंथ बने हैं उन सबका मूल यही ब्रह्मवैवर्तपुराण ही है। क्योंकि ब्रह्मवैवर्तपुराण को छोड़कर और किसी भी पुराण में राधा के संबंध में कुछ भी नहीं लिखा है। इस पुराण के ब्रह्मखंड में सृष्टिनिरूपणप्रकरण में लिखा है कि श्रीकृष्ण के शरीर से नारायण आदि उत्पन्न हुए हैं। रासमंडल में राधा उत्पन्न हुईं और राधाकृष्ण की देह से गौ, गोपी और

गोपों की उत्पत्ति हुई। तदनंतर चराचर विश्व की सृष्टि हुई। प्रकृतिखंड में, सृष्टिकार्य में दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री—इन पांच प्रकृतियों का माहात्म्य कहा गया है। प्रसंगवश सावित्री, सत्यवान्, सुरभि, स्वाहा और स्वधा का उपाख्यान, देवीमाहात्म्य में सुरथ का वंश-वर्णन, गंगा का उपाख्यान, रामायण आदि की कथाएं, इंद्र के प्रति दुर्वासा का शाप और लक्ष्मीपूजा आदि का उल्लेख पाया जाता है। गणेशखंड में प्रधानतः गणेश का माहात्म्य लिखा गया है। प्रसंगतः जमदग्नि, कार्तवीर्य, परशुराम आदि का भी उपाख्यान लिखा गया है। श्रीकृष्णजन्मखंड में श्रीकृष्णलीला लिखी गई है। ब्रजलीला, मथुरा-लीला, राधा-कृष्ण का पुर्नमिलन, गोकुलवासियों का गोलोक-गमन आदि भी इसी कृष्णजन्मखंड में आ गए हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराण के अंतिम अध्याय में महा-पुराण और उपपुराणों के लक्षण, महापुराणों की श्लोकसंख्या और उपपुराणों के नाम दिए गए हैं। अधिकांशतः श्रीमद्भागवत के साथ इसका मत मिलता है। इस अंतिम अध्याय से पहले के अध्याय में ब्रह्मवैवर्तपुराण में क्या-क्या विषय हैं—इसका निर्देश किया गया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण के मत से, महा-पुराणों के दस लक्षण हैं। यथा—सृष्टि, स्थिति, प्रलय, पालन, कर्म, वासना वर्णन, चतुर्दश मनुओं में से प्रत्येक का नाम और वंशवर्णन, मोक्षनिरूपण, श्रीहरि का गुण-कीर्तन और पृथक्-पृथक् देवों की महिमा का वर्णन। ये दस महापुराण के विशेष लक्षण हैं, परंतु पांच लक्षणयुक्त पुराणों और उपपुराणों में जो लक्षण समानतः रहेंगे, वे ये हैं—सृष्टि, प्रलय, चंद्र और सूर्यवंश के वर्णन के साथ ही चतुर्दश मनुओं का अधिकार-कीर्तन और चंद्र-सूर्यवंशी राजाओं का वंश-वर्णन।

ब्रह्मसम्प्रदाय—इस संप्रदाय के प्रवर्तक मध्वाचार्य हैं। मध्वाचार्य सन् ११९९ ई० में दक्षिण देश के तुलव नामक गांव में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम मधीजी भट्ट था। अनंतेश्वर मठ में विद्याभ्यास करके नौ वर्ष की अवस्था में मध्वाचार्य ने संन्यास ग्रहण किया। इनके गुरु अच्युतप्रोच सनक के वंशधर माने जाते हैं। संन्यासाश्रम ग्रहण करने के समय मध्वाचार्य ने भगवद्गीता का एक भाष्य लिखा था। कहा जाता है, उस भाष्य को देखकर स्वयं व्यासदेव ने प्रसन्नता प्रकट की थी और इस उपलक्ष्य में उन्होंने शालि-ग्राम शिला की तीन मूर्तियां मध्वाचार्य को उपहार में दी थीं। वे तीनों मूर्तियां उड़पी, मध्यतल और सुब्रह्मण्य नामक स्थानों में स्थापित की गईं। उड़पी मठ में मध्वाचार्य ने श्रीकृष्ण की भी मूर्ति स्थापित की थी। कहा जाता है कि श्रीकृष्ण की वह मूर्ति अर्जुन ने बनवाई थी। द्वारका से मालावार जाने के समय एक वाणिज्य का जहाज डूब गया था। उसी जहाज में वह कृष्णमूर्ति भी थी, जो उसी जहाज के साथ डूब गई। मध्वाचार्य ने ध्यान द्वारा जानकर उस मूर्ति को निकलवाया। इसी कारण ब्रह्मसंप्रदाय के वैष्णवों का उड़पी प्रधान तीर्थ माना जाता है। अपनी जन्मभूमि तुलव गांव में भी मध्वाचार्य ने आठ मठों की स्थापना की है। एक में राम और सीता, एक में सीता और लक्ष्मण, एक में चतुर्भुज कालिय-मर्द्दन, एक में द्विभुज कालियमर्द्दन, एक में सुवितल, एक में शूकर, एक में नृसिंह और एक में वसंत सुवितल की उन्होंने प्रतिष्ठा की। पद्मनाभतीर्थ नामक एक शिष्य की सहायता से मध्वाचार्य ने और भी अनेक मठों की प्रतिष्ठा की है। मध्वाचार्य ने प्रायः ३७ ग्रंथ लिखे हैं। उन ग्रंथों में ऋग्भाष्य, सूत्रभाष्य, गीताभाष्य, दशोप-निषद्भाष्य, भागवततात्पर्य, तंत्रसार, कृष्णनामामृत-महार्णव आदि ग्रंथ विशेषकर प्रसिद्ध हैं। मध्वाचार्य संप्रदाय के संन्यासी पीले कपड़े पहनकर भिक्षावृत्ति से निर्वाह करते हैं। इनके तिलक में एक विशेषता है। तिलक के बीच में ये काली रेखा लगाते हैं। इस संप्रदाय में नारायण सब कारणों के कारण तथा अद्वितीय ईश्वर माने जाते हैं। इस संप्रदाय में जीव और ईश्वर का अभेद नहीं माना जाता है। इस संप्रदाय के वैष्णव कहते हैं कि परमात्मा से इस जगत् की रचना अवश्य हुई है परंतु जीव और परमात्मा दोनों पृथक्-पृथक् और स्वतंत्र हैं। इस विषय में वे दृष्टांत देते हैं—

यथा पक्षी च सूत्रञ्च नानावृक्षरसा यथा।
यथा नद्यः समुद्रश्च शुद्धोदलवणे यथा॥
चौरापहार्यौ च यथा यथा पुंविषयावपि।
तथा जीवेश्वरौ भिन्नौ सर्वदैवविलक्षणौ॥

अर्थात् पक्षी और सूत्र, वृक्ष और रस, नदी और समुद्र, विशुद्ध जल और लवण, चोर और चोरी का द्रव्य, पुरुष और इंद्रिय आदि जिस प्रकार भिन्न-भिन्न हैं, उसी प्रकार जीव और परमात्मा में भी परस्पर विभिन्नता वर्तमान है। एक कारण है, दूसरा कर्म है।

एक कर्ता है, दूसरा क्रिया है। जीव-ईश्वर में इसी प्रकार का संबंध है। वे परमात्मा और जीवात्मा को पृथक्-पृथक् मानते हैं। इस कारण मध्वाचार्य द्वैतवादी कहे जाते हैं और उनका सिद्धांत द्वैतवाद कहा जाता है। वे कहते हैं—आत्मा अविनश्वर और अद्वितीय अवश्य है, परंतु वह सब प्रकार से परमात्मा के अधीन है। परमात्मा के साथ जीवात्मा का अविच्छिन्न संबंध अवश्य है, परंतु इनमें अभेद नहीं है। ब्रह्मसंप्रदायी मोक्ष या निःश्रेयस् नहीं चाहते हैं। इनके मत से, मोक्ष पाना मनुष्य के सामर्थ्य से बाहर है। इस मत में नारायण गुणातीत हैं, माया के संयोग से सत्त्व, रज और तम, ये त्रिगुण ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर का रूप धारण करके संसार की सृष्टि, स्थिति और लय करते हैं। इनकी उपासना-प्रणाली तीन प्रकार की है—अंकन, नामकरण, और भजन। शरीर में शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि का चिह्न धारण करना अंकन कहा जाता है। विष्णु के नामानुसार अपने पुत्र, पौत्र आदि का नाम रखना नामकरण है। भजन दस प्रकार का है। अर्थात् सत्यवाक्य, हितकथा, प्रियवचन, स्वाध्याय, दान, परिरक्षण, दया, स्पृहा श्रद्धा आदि। विष्णु का अनुग्रहलाभ, उनके उत्कर्ष का ज्ञान आदि इस संप्रदाय का चरमलक्ष्य है। वेद, रामायण, महाभारत, पंचरात्र और मध्वाचार्य प्रणीत ग्रंथों का इस संप्रदाय में बड़ा आदर है। विष्णु इनके प्रधान आराध्य देव हैं। इस संप्रदाय के वैष्णवों के साथ शैवों का विरोध नहीं देखा जाता। क्योंकि इनके मंदिर में शिव और विष्णु की एक स्थान पर पूजा की जाती है। इस संप्रदाय के अनुयायी तप्त लौहशलाका द्वारा अपने शरीर पर शंख-चक्र का चिह्न अंकवाते हैं। 'अतप्ततनुर्न तदा मोक्षमश्नुते', शंकराचार्य ने इस श्रुति की व्याख्या की है कि तपस्या द्वारा जिनका शरीर शुद्ध नहीं हुआ है वे मोक्ष के अधिकारी नहीं हैं। परंतु मध्वाचार्य-संप्रदायी इस अर्थ को नहीं मानते हैं। वे कहते हैं, तप्त शलाका द्वारा शंख-चक्र अंकित कराना ही इस श्रुति का तात्पर्य है। इस संप्रदाय की प्रधानतः दो शाखाएं हैं—व्यासकूट और दासकूट। व्यासकूट के वैष्णवों में मध्वाचार्य के उपदेशों को कन्नडभाषा में गद्य-पद्य में प्रकाशित किया है। उनकी उपासना में कन्नडभाषा का ही व्यवहार होता है। दासकूट संस्कृतभाषा की प्रधानता मानते हैं।

(भारतवर्षीय इतिहास)

ब्रह्मा—एक पौराणिक देवता। इसे सृष्टिकर्ता माना गया है। सृष्टि-रचना के लिए इसने सर्वप्रथम प्रजापति का निर्माण किया, जिसने प्रजा को सृष्ट किया। वेदों का धाता या विधाता ही पुराणों का चतुर्मुख ब्रह्मा है। उपनिषदों में इसे परमेष्ठिन् ब्रह्म का शिल्प और एक तत्त्वज्ञ आचार्य कहा गया है। यह ज्ञान ब्रह्मा ने प्रजापति को और प्रजापति ने मनु को दिया। पुराणों के अनुसार, इसका जन्म कमलरूपा पृथ्वी से हुआ। इसने अपने शरीर से शतरूपा को उत्पन्न किया और उसपर मोहित हुआ। अपने मानसपुत्रों के समक्ष शतरूपा को देखने में इसे संकोच हुआ। तब इसने चार मुख धारण किए। जब शतरूपा आकाशमार्ग की ओर गई तो इसने पांचवां मुख धारण किया। किंतु उसे बाद में शंकर ने तोड़ डाला था। पुराणकथा में कहा गया है कि एक बार ब्रह्मा ने स्तुति द्वारा शंकर को प्रसन्न किया। शंकर ने प्रसन्न होकर जब वर मांगने के लिए कहा तब इसने शंकर को अपना पुत्र बनने को कहा। शंकर ने इसका पुत्र होना तो स्वीकार कर लिया; किंतु इसका पांचवां शिर भंजन किया।

पुराणों के अनुसार, ब्रह्मा ने चार मुखों से चार वेदों का निर्माण और पुराणों का प्रवचन किया।

ब्रह्माण्डपुराण—यह पुराण अठारहवां पुराण समझा जाता है। इस समय इस पुराण के अनेक अंश असंलग्न रूप से पाए जाते हैं। अतएव इस समय संपूर्ण ब्रह्मांडपुराण का मिलना कठिन है। अध्यात्मरामायण इसी ब्रह्मांडपुराण के अंतर्गत है। परंतु आज जो ब्रह्मांडपुराण प्रकाशित हुआ है उसमें अध्यात्मरामायण नहीं देखा जाता। अन्य पुराणों के वर्णन से जाना जाता है कि ब्रह्मांडपुराण चार पादों में विभक्त है। प्रक्रियापाद, अनुषंगपाद, उपोद्‌घातपाद और उपसंहारपाद। इस समय जो ब्रह्मांडपुराण पाया जाता है उसमें प्रक्रियापाद और अनुषंगपाद का कुछ भाग पाया जाता है। अध्यात्मरामायण तो इस समय एक पृथक् ग्रंथ ही समझा जाता है। महाभाग सूत ने दृषद्वती नदी के तीर पर यक्षक्षेत्र में इस पुराण को वर्णित किया है। उनके वर्णन से विदित होता है कि उन्होंने इस पुराण को वेदव्यास से सुना था और उससे पहले वायु ने इस पुराण का वर्णन किया था। इस पुराण में कौन-कौन से विषय हैं, यह बात इस पुराण के पहले अध्याय में लिखी गई। इस समय प्रधानतः नीचे लिखे विषय ब्रह्मांडपुराण में पाए जाते हैं—सृष्टिप्रकरण, कल्प-

निरूपण, युगभेद और मन्वंतर-क्रम-कथन, जंबूद्वीप-वर्णन और भारतवर्षवर्णन, किंपुरुष, अनुद्वीप, केतुमालवर्ष आदि का विवरण, भरतवंश, पृथुवंश, देववंश, ऋषिवंश, अग्निवंश और संहिताकारों का वंशवर्णन आदि ब्रह्मांडपुराण में हैं। ब्रह्मांडपुराणान्तर्गत अध्यात्मरामायण के सात कांड हैं। प्रथम कांड में श्रीराम का ब्रह्मस्वरूपत्व कथन, राक्षसपीडित पृथ्वी के उद्धार के लिए श्रीराम का अवतार ग्रहण, बाललीला, अहल्या उद्धार, भार्गवदर्पध्वंस आदि विषय वर्णित हैं। अयोध्याकांड में श्रीरामचंद्र का वनगमन, दशरथ का प्राणत्याग, आरण्यकांड में मायामृग का वध और सीताहरण, किष्किधाकांड में बालीवध, सीता का अन्वेषण, सुंदरकांड में हनुमान का लंका-प्रवेश और राम के समीप सीता का संवाद आनयन, लंकाकांड में रावण-वध और श्रीराम का राज्याभिषेक और उत्तरकांड में रावण आदि का जन्मविवरण, सीता का वनवास, लक्ष्मण का त्याग, लव-कुश का राज्याभिषेक और रामचंद्र का वैकुंठगमन आदि विषय वर्णित हैं। अध्यात्मरामायण में अनेक दार्शनिक तत्त्वों की व्याख्या की गई है। इसमें रामगीता के दार्शनिक तत्त्वों का समावेश है। यहां दर्शनतत्त्व की आलोचना से यह उपदेश पाया जाता है—

जिस प्रकार स्फटिक मणि किसी वस्तु का संबंध होने पर उसीके समान वर्ण धारण करती है उसी प्रकार अन्नमय आदि कोषों के संबंध से जीव भी एक अन्य वस्तु के समान प्रतीत होता है। परंतु 'तत्त्वमसि' आदि वाक्यों के विचार करने से जीव संबंधशून्य है और अज-अद्वितीय है, यह बात मालूम होती है। अध्यात्मरामायण में भी इसी उपदेश का उल्लेख किया गया है, यही उपमा वहां भी दी गई है।

केषेष्वयं तेषु तु तत्तदाकृति-
विभाति सङ्गात् स्फटिकोपलो यथा।
असङ्गरूपोयमजो यतोऽद्वयो
विज्ञायतेऽस्मिन् परितो विचारिते ॥

ब्रह्मांडपुराण का मुक्तिविचार रामगीता के विचार से बहुत मिलता है। ब्रह्म में लीन होने के विषय में रामगीता का उपदेश है कि जीव अपने स्वरूप को हमसे अभिन्न समझता हुआ समुद्र में जलबिंदु के समान, दूध में दूध के बिंदु के समान, महाकाश में खंड आकाश के समान मुझमें मिल जाता है।

आत्मन्यभेदेन विभावयन्निद
भवत्यभेदेन मयात्मना तदा।
यथा जलं वारिनिधौ यथा पयः
क्षीरे वियद्व्योम्न्यनिले यथानिलः ॥

(भारतवर्षीय इतिहास)

ब्रह्मावर्त—भारत के एक प्राचीन भाग का नाम। मनुसंहिता में लिखा है कि सरस्वती और दृषद्वती इन दो देवनदियों के मध्य में जो देवनिर्मित देश है उस देश को विद्वान् ब्रह्मावर्त कहते हैं। यथा—

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं विदुर्बुधाः ॥

(मनुसंहिता)

ब्राह्मण (ग्रंथ)—वेद का एक भाग। कालानुसार शनैः मनुष्यों की धारणाशक्ति में ह्रास होते देखकर कारुणिक महर्षियों ने पहले तो वेदों को लिपिबद्ध किया, तदनंतर वेद का कौन सूक्त याग, यज्ञ आदि में किस प्रकार व्यवहृत होता है—यह बताने के लिए वेदों के ब्राह्मणभाग की सृष्टि की। ब्राह्मणभाग गद्य में लिखे गए हैं। वेद की शाखाओं की संख्या की तरह ब्राह्मणों की भी संख्या है। ब्राह्मणभाग बाद में वेदों का उपसंहार भी समझा जाने लगा था।

ऋग्वेद के दो ब्राह्मण हैं। एक का नाम ऐतरेय-ब्राह्मण और दूसरे का नाम सांख्यायन-ब्राह्मण है। यजुर्वेद के भी दो ब्राह्मण हैं। शुक्लयजुर्वेद के ब्राह्मण का नाम शतपथ-ब्राह्मण और कृष्णयजुर्वेद के ब्राह्मण का नाम तैत्तिरीय-ब्राह्मण है। सामवेद के आठ ब्राह्मण हैं। कोई-कोई कहते हैं कि 'अद्भुत ब्राह्मण' नामक एक नवां ब्राह्मण सामवेद का था, जिनमें 'तांड्य महाब्राह्मण' आदि कतिपय ग्रंथ पाए जाते हैं। अथर्ववेद के ब्राह्मण का नाम गोपथ-ब्राह्मण है।

ऊपर कहा गया है कि ब्राह्मण ग्रंथ बाद में वेदों के उपसंहार समझे जाने लगे। वैदिक मंत्रों का कर्मकांड में किस प्रकार उपयोग करना चाहिए, प्रधानतः यही विषय ब्राह्मणों का प्रतिपाद्य है। प्रसंगतः कर्मकांड तत्त्वों के उपदेश-व्याज से और भी अनेक कथाएं इनमें पाई जाती हैं। ब्राह्मणों में सृष्टितत्त्व की कथा वर्तमान है। और भी अनेक पौराणिक कथाओं के मूल इनमें पाए जाते हैं। ब्राह्मणों में बलिदान-प्रथा की प्रधानता देखी जाती है। जलप्लावन का उपाख्यान सर्वप्रथम ब्राह्मणों में ही लिखा मिलता है। यह उपाख्यान शतपथ-ब्राह्मण में इस प्रकार लिखा गया

है, वैवस्वत मनु एक दिन तर्पण कर रहे थे। उनकी अंजलि में एक छोटा मत्स्य आया और उसने कहा—आप मेरी रक्षा करें। मेरे द्वारा आपका उपकार होगा। मनु उस मत्स्य की रक्षा करने लगे। इसी बीच में वह मत्स्य इतना बड़ा हो गया कि अगत्या मनु उसको समुद्र में रखने के लिए बाध्य हुए। उसी समय उस मत्स्य ने मनु को संबोधित करके कहा—अमुक वर्ष के अमुक दिन जलप्लावन से महाप्रलय होगा। आप एक समुद्री जहाज बनवाकर अपनी रक्षा करें। मत्स्य की उस भविष्यवाणी के अनुसार जलप्लावन उपस्थित हुआ। मनु ने जहाज पर चढ़कर आत्मरक्षा की। जलप्लावन के समय मनु के जहाज को चलाकर उस मत्स्य ने उत्तरीय पर्वत के शिखर पर एक वृक्ष के निकट मनु की रक्षा की। उसी वृक्ष में जहाज बांधकर मनु जलप्लावन के समय वहीं ठहरे थे। पुनः जलप्लावन का वेग कम होने पर मनु वहां से नीचे उतरे। उस समय संसार के सभी पदार्थ नष्ट हो चुके थे। केवल एक मनु ही अपनी रक्षा कर सके थे। पुनः उन्हीं मनु से संसार के मनुष्यों की सृष्टि हुई। मन्वंतर की भी उत्पत्ति उन्हींसे हुई। शतपथ-ब्राह्मण के इसी उपाख्यान का पुराणों में दूसरा रूप बदला गया है और दूसरे देशों के ग्रंथों में भी इस उपाख्यान का विशेष प्रभाव पड़ा है। बाइबल के नोया की कथा जो जानते हैं, इस उपाख्यान को पढ़कर वे अवश्य ही समझ सकते हैं कि जलप्लावन के समय अरारत पर्वत पर नोया के जहाज का ठहरना शतपथ-ब्राह्मण के इस उपाख्यान का दूसरा रूप है। अधिक विद्वान क्या इसी कारण नोया और मनु को एक व्यक्ति प्रमाणित करने की चेष्टा करते हैं। शतपथ-ब्राह्मण और ऐतरेय-ब्राह्मण में सृष्टि-संबंधी इसी प्रकार का एक और उपाख्यान देखा जाता है। उस उपाख्यान का सार यह है—सृष्टिकर्ता प्रजापति ने अपनी कन्या ऊषा से मनुष्य-सृष्टि की। ऋग्वेद के ऊषा और सूर्य के स्तोत्र से ही इस कल्पना की सृष्टि हुई है। यह बात स्पष्ट ही जानी जाती है। ऋग्वेद में लिखा है, सूर्य ऊषा के पीछे-पीछे दौड़ रहे हैं। ऊषा के अनंतर सूर्य की किरणें विस्तृत होती हैं, इसका यही साफ अर्थ है। परंतु कविकल्पना में ऊषा सुंदरी कन्या बनाई गई, सूर्य पिता प्रजापति बनाए गए और इन दोनों के दुर्व्यवहार का वर्णन करके बीभत्सता की पराकाष्ठा दिखाई गई। केवल मैं ही इस कल्पना को बीभत्स नहीं बता रहा हूं। किंतु शंकराचार्य से पहले जिन्होंने बौद्धों का घोर विरोध किया था और हिंदूधर्म की प्रधानता स्थापित की थी, कुमारिल भट्ट भी इस कल्पना को बीभत्स बता गए हैं (देखो कुमारिल)। तैत्तरीय-ब्राह्मण में यही सृष्टि-प्रणाली दूसरे रूप से लिखी गई है। सृष्टि के प्रारंभ काल में जल के अतिरिक्त और कुछ भी पदार्थ नहीं था। उसी जल में एक कमल का पत्ता था। वराहरूप धारण करके प्रजापति जल में घुस गए और भीतर से मिट्टी निकालकर उन्होंने चारों तरफ फैला दी। उस समय पत्थरों के साथ मिलकर वही मिट्टी इस पृथ्वी के रूप में परिवर्तित हुई। शतपथ-ब्राह्मण में यह उपाख्यान दूसरे रूप से लिखा गया है। वहां लिखा है कि सृष्टि के पश्चात् प्रजापति से असुर और देवता उत्पन्न हुए। उस समय अपनी-अपनी प्रधानता के लिए वे आपस में लड़ने लगे। उनके युद्ध से पृथ्वी पद्मपत्र के समान कांपने लगी। इसी ब्राह्मण-ग्रंथ में एक स्थान पर लिखा है कि सृष्टि के प्रारंभ से ही प्रजापति ब्रह्मा विद्यमान थे। उन्होंने पहले जीवसृष्टि की और बाद में पक्षी आदि की सृष्टि की। जब भोजन के अभाव में वे सभी मर गए तब ब्रह्मा ने स्तन में दूध उत्पन्न किया। शतपथ और कौषीतकी-ब्राह्मणों में शिव और रुद्र की प्रधानता कही गई है। दक्ष-पार्वती का पूजा-प्रसंग पहले-पहल शतपथ-ब्राह्मण में ही देखा गया था। असुरों को जीतकर देवताओं ने समस्त पृथ्वी पर अपना अधिकार कर लिया। यह विषय ऐतरेय और शतपथ-ब्राह्मण में लिखा है। शतपथ-ब्राह्मण के प्रारंभ में विष्णु की प्रधानता देखी जाती है। इंद्र ने विष्णु का सिर काट लिया था, यह उपाख्यान भी शतपथ-ब्राह्मण में है। सामवेद के तांड्य-ब्राह्मण में व्रात्य ब्राह्मणों का, अर्थात् जो ब्राह्मण होकर भी ब्राह्मण-व्यवहार छोड़कर दूसरा व्यवहार करते हैं, वर्णन लिखा है। ये व्रात्यगण ब्राह्मण-वृत्ति छोड़कर दूसरी वृत्ति ग्रहण करने से ब्राह्मणत्वभ्रष्ट नहीं होते। तांड्य-ब्राह्मण में इसका उल्लेख है। यज्ञमाहात्म्य और यज्ञ की प्रणाली के वर्णन के संबंध में ब्राह्मणभागों में और भी अनेक आख्यायिकाओं का उल्लेख पाया जाता है। ऐतरेय-ब्राह्मण में हरिश्चंद्र और शुनःशेप के प्रसंग में नरबलि का उल्लेख है। वहां लिखा है कि राजा हरिश्चंद्र अपने पुत्र रोहितक को बलि देना चाहते थे। परंतु पुत्र ने पिता का कहना न माना, अत-

एव राजा हरिश्चंद्र ने शुनःशेप को समझा-बुझाकर उनकी बलि देने की व्यवस्था की। शुनःशेप देवताओं की स्तुति करके उससे बच गए।

रामायण, भागवत, विष्णुपुराण आदि में भी शुनः-शेप की कथा वर्तमान है। रामायण में लिखा है कि शुनःशेप के पिता का नाम ऋचीक था और अयोध्या के राजा के निकट वह बेचा गया था। परंतु विश्वामित्र के कहने से उसने देवताओं की स्तुति की और वह बच गया। संभव है कि ऋग्वेद के एक सूक्त का अवलंबन करके ऐतरेय-ब्राह्मण में शुनःशेप के बलिदान की कथा लिखी गई है। वैदिक काल में नरमेध प्रथा प्रमाणित करने वाले के लिए शुनःशेप की कथा एक ब्रह्मास्त्र है। इस कथा के प्रचारक सायणाचार्य हैं, ऋग्वेद नहीं।

भ

भग—(१) एक वैदिक देवता। द्वादश आदित्यों में से एक। ऋग्वेद का एक पूरा सूक्त इसीकी स्तुति में है। 'भग' का शाब्दिक अर्थ है 'प्रदान करने वाला'। यह अपने उपासकों-आराधकों को संपत्ति तथा सौभाग्य प्रदान करता है। ऋग्वेद की प्रसिद्ध एवं प्रिय देवता उषा इसकी बहिन थी। इसकी आंखें रश्मियों से विभूषित थीं। ईरानी साहित्य में इसे बघ (देव) नाम से कहा गया है।

(२) द्वादश आदित्यों में से एक। इसकी पत्नी का नाम सिद्धि था, जिससे इसको महिमा, विभु तथा प्रभु नामक तीन पुत्र और आशि नामक एक कन्या हुई थी। ब्राह्मणग्रंथों तथा पुराणों की कथा के अनुसार, दक्ष के यज्ञ में इसने ऋत्विज का कार्य किया था। दक्ष द्वारा शिव की निंदा करने पर इसने आंखों के संकेत द्वारा उसे अधिक निंदा करने के लिए प्रोत्साहित किया था, जिससे शिव के पार्षद वीरभद्र ने इसकी आंखें बाहर निकाल दी थीं। तदनंतर यह शंकर की शरण में गया। तब शंकर ने इसे कहा था—'तुम मित्रों की आंखों से देखा करोगे'। 'महाभारत' में इसे कश्यप तथा अदिति का पुत्र बताया गया है। (महाभारत)

भगदत्त—प्राग्ज्योतिषपुर का राजा। यह नरकासुर का ज्येष्ठ पुत्र था। श्रीकृष्ण ने नरक को मारकर उसके पुत्र भगदत्त को प्राग्ज्योतिषपुर के सिंहासन पर बैठाया। युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ के समय यज्ञीय अश्व प्राग्ज्योतिषपुर में उपस्थित हुआ था। अर्जुन उसके रक्षक थे। भगदत्त ने उस घोड़े को रोक लिया और वह अर्जुन के साथ आठ दिनों तक युद्ध करता रहा। अंत में, परास्त होकर होकर भगदत्त ने युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार की। महाभारत-युद्ध के समय इसने कौरवों का पक्ष लेकर पांडवों से युद्ध किया था। इसने युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, घटोत्कच, अभिमन्यु, विराट, सात्यकि आदि वीरों से घोर युद्ध किया था। यह कौरव पक्ष का प्रधान वीर समझा जाता था। द्रोण के सेनापतित्व में इसने अर्जुन से घोर युद्ध किया था और उसी युद्ध में यह मारा गया। अर्जुन को मारने के लिए भगदत्त ने वैष्णवास्त्र का प्रयोग किया था, परंतु श्रीकृष्ण ने उस अस्त्र को स्वयं अपनी छाती से रोक लिया। (महाभारत)

भगवतरसिक—ये हिंदी के भक्तकवि वृंदावन के निवासी थे। इनके पिता का नाम माधवदास जी था और ये हरिदास जी के शिष्य थे। सं० १६०१ वि० में ये उत्पन्न हुए थे। इनकी लिखी कुंडलियों का कवि-समाज में बड़ा आदर है।

भगवतीदास—ये हिंदी के कवि और ब्राह्मण थे। इनका जन्म संवत् १६८८ में हुआ था। इनका लिखा हिंदी में 'नचिकेतोपाख्यान' है जिसकी कविता मनोरम है।

भगवन्तराय—ये हिंदी के कवि थे। इन्होंने तुलसीदास कृत मानसरामायण के सातों कांडों का कवित्तों में अनुवाद किया है। इनकी रचना अद्भुत है। कविता भी सरस और मनोहर है। इनके विषय में इससे अधिक और कुछ पता नहीं लगा है।

भगवानदास—ये कवि मथुरा के निवासी थे और सं० १५६० वि० में उत्पन्न हुए थे। इनके लिखे पद रागसागरोद्भव में पाए जाते हैं।

भगवानदास निरञ्जनी—ये हिंदी के कवि थे। भर्तृहरिशतक का हिंदी कवित्तों में इन्होंने अनुवाद किया है। इनके नाम में 'निरंजनी' पद देखकर ऐसा संदेह करने का अवसर मिलता है कि ये निरंजन संप्रदाय के संन्यासी थे। परंतु इसका कोई पुष्ट प्रमाण न मिलने के कारण इस संदेह को न उठाया जाना ही अच्छा है।

भगवानहित—ये हिंदी के कवि थे। इनका पूरा नाम भगवानहितरामराय था। इनके पद रागसागरोद्भव में पाए जाते हैं।

भगीरथ—सूर्यवंशी एक राजा। इनके पिता का नाम दिलीप और पितामह का नाम अंशुमान था। महाराज दिलीप भगीरथ को राज्यभार देकर हिमालय के शिखर पर तपस्या करने के लिए चले गए। वहां उन्होंने बहुत दिनों तक तपस्या की। तदनंतर देहपात करके स्वर्ग प्राप्त किया। पिता की मृत्यु के बाद भगीरथ राज्य पाकर चिंता करने लगे कि किस प्रकार गंगा स्वर्ग से लाई जा सकती हैं। भगीरथ प्रजावत्सल और धर्मात्मा राजा थे, परंतु अभाग्यवश उनका कोई पुत्र नहीं था। मंत्रियों को राज्य का भार सौंपकर गंगा को ले आने के लिए वे निकल पड़े। भगीरथ हिमालय के गोकर्ण तीर्थ पर उपस्थित हुए और वहां ऊर्ध्वबाहु होकर घोर तपस्या करने लगे। भगवान् ब्रह्मा भगीरथ की सहस्र वर्षों की तपस्या से प्रसन्न होकर उन्हें वर देने के लिए उपस्थित हुए। भगीरथ ने दो वर मांगे—(१) कपिल के शाप से भस्म हुए हमारे साठ हजार प्रपितामह गंगा के जल से पवित्र होकर स्वर्गगामी हों और (२) संतान के अभाव से हमारा वंश लुप्त न होने पाए। ब्रह्मा ने प्रथम वर के उत्तर में कहा—तुम्हारी कामना पूर्ण होगी, परंतु गंगा के पतनवेग को पृथ्वी सहन नहीं कर सकेगी और महादेव के अतिरिक्त और कोई इस वेग को धारण भी नहीं कर सकेगा। अतः महादेव गंगा को धारण करना स्वीकार करें, इसका प्रबंध तुम करो। द्वितीय वर के उत्तर में ब्रह्मा ने कहा—तुम्हारे वंश की रक्षा होगी। ब्रह्मा के कहने से भगीरथ तप द्वारा महादेव को प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगे। एक वर्ष की कठोर तपस्या करने पर महादेव उनके समीप आए। महादेव बोले—तुम्हारी इच्छा के अनुसार मैं गंगा को धारण करूंगा। महादेव के मस्तक पर बड़े वेग से गंगा गिरने लगीं। एक बार गंगा की इच्छा हुई थी कि तीव्र वेग से गिरकर महादेव को लेकर पाताललोक चली जाए, परंतु भूतनाथ महादेव ने गंगा का यह गर्वभाव जानकर अपनी जटा में ही गंगा को एक हजार वर्ष तक छिपाकर रखा। महादेव के जटाजूट से गंगा को बाहर निकलते न देखकर भगीरथ पुनः महादेव की स्तुति करने लगे। भगीरथ की स्तुति से प्रसन्न होकर महादेव ने अपने जटाजूट से गंगा को बाहर निकाल दिया। गंगा महादेव के मस्तक से सात स्रोतों से भूमि पर उतरीं। ह्लादिनी, पावनी और नलिनी नामक तीन प्रवाह पूर्व की ओर बहे और वङ्क्षु, सीता तथा सिंधु नामक तीन प्रवाह पश्चिम की ओर गए और बचा हुआ एक प्रवाह भगीरथ के बताए हुए मार्ग से चला। भगीरथ पैदल गंगा के साथ नहीं चल सकते, इस कारण उन्हें एक रथ दिया गया था। भगीरथ की कामना पूर्ण हुई। भगीरथ के बताए मार्ग से जो गंगा का प्रवाह चला वह भागीरथी नाम से प्रसिद्ध हुआ। (रामायण)

महात्मा भगीरथ अत्यंत दानी थे। वे ब्राह्मणों को अधिक धन दिया करते थे।

भङ्गास्वन—इंद्रविरोधी एक राजर्षि। पुत्रप्राप्ति के लिए इसने अग्निष्टोम-यज्ञ किया था। इंद्र के प्रबल विरोध के फलस्वरूप भी अग्नि की कृपा से इसको सौ पुत्रों की प्राप्ति हुई। एक बार यह वन में मृगया से भटकता हुआ किसी सरोवर में स्नान करने के लिए उतरा तो इंद्र ने इसे पुरुष से स्त्री बना दिया। यह खिन्नमन अपने राज्य में आया और राज्यभार अपने पुत्रों को देकर स्वयं वन में चला गया। वहां इसने एक तपस्वी से विवाह किया और सौ पुत्रों को उत्पन्न किया। इसके स्त्री-जीवन को देखकर इंद्र को ईर्ष्या हुई। वह ब्राह्मणरूप में इसके राज्य में गया और इसके पुत्रों में भेद डालकर उन्हें परस्पर लड़वा दिया, जिससे वे सब मर गए। तब यह अपने राज्य में गया और वहां की विध्वस्त स्थिति को देखकर बहुत दुःखी हुआ। ब्राह्मणरूपधारी इंद्र को इसपर दया आ गई। उसने अपना वास्तविक रूप धारण करके इसे दर्शन दिया और इसके पुत्रों को पुनर्जीवित किया। इंद्र के कहने पर भी इसने पुनः पुरुषरूप प्राप्त करने की अपनी अनिच्छा प्रकट की। (महाभारत)

भज—ऐतिहासिक दृष्टि से भज या भाजा की गुफा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विद्वानों ने इसका निर्माणकाल २०० ई० पूर्व निर्धारित किया है। इसकी लंबाई ५९ फुट, चौड़ाई २६ फुट ८ इंच और ऊंचाई २० फुट है। इसका भीतरी स्तूप सीधा है। प्रकोष्ठ में भी २७ अठपहलू सादे स्तंभ हैं, जिनकी ऊंचाई ११ फुट ७ इंच है। भीतरी स्तूप के आधार व्यास की लंबाई ११ फुट है। इसका अंड १० फुट ऊंचा है। इसकी दूरी बंबई-पूना मार्ग से लगभग डेढ़ मील दक्षिण में और मलव्ली रेलवे स्टेशन से एक मील दूर है।

इस गुफा का निर्माण काष्ठ से हुआ है और इस रूप में यह भारत की काष्ठकला का अद्भुत उदाहरण है। इस गुफा की आकृति गया की लोमश ऋषि गुफा के समान है। इसकी छत गज-पृष्ठाकार है और छत की धरनें काष्ठ-निर्मित हैं।

भज के एक बौद्ध विहार में हाथी पर आरूढ सम्राट् की एक मूर्ति है, जिसमें उसका मंत्री भी साथ में दिखाया गया है। इस मूर्ति की कलाविदों ने बड़ी प्रशंसा की है और उसे 'वैदिक आर्य-संस्कृति में धर्मानुसार शासन करने वाले चक्रवर्ती सम्राट् का भारतीय राजनीतिक आदर्श प्रस्तुत करने वाला' कहा है। भज की इस मूर्ति में अधर्म पर धर्म की विजय, रूप और माया के संसार के मिथ्यात्व तथा धर्म और अनासक्ति के शाश्वत सायुज्य (स्वर्ग) के सुख की मूल तात्त्विक धारणाओं का उत्कृष्ट अंकन हुआ है (मुकर्जी—भारत की संस्कृति और कला)।

भट्ट कल्लट—ये काश्मीरी संस्कृत-पंडित थे। इनके गुरु का नाम वसुगुप्त था। वसुगुप्त ने 'स्पंदकारिका' नाम का एक ग्रंथ लिखा था और उसपर 'स्पंदसर्वस्व' नाम की टीका भट्ट कल्लट ने लिखी। ये काश्मीर के राजा अवंतिवर्मा के समकालीन थे। अवंतिवर्मा का समय राजतरंगिणी के निर्देशानुसार सन् ८५५ ई० से ८८४ ई० तक विदित होता है। अतः भट्ट कल्लट ख्रीष्टीय ९वीं सदी के पिछले भाग के माने जा सकते हैं। इनके पुत्र का नाम सुकुल था और वे प्रसिद्ध आलंकारिक थे। भट्ट कल्लट शैवमत के थे।

भट्ट नारायण—शांडिल्यगोत्रज बंगीय बंद्योपाध्याय ब्राह्मणों के आदिपुरुष तथा विख्यात नाटक वेणीसंहार के रचयिता। बंगाल के सेनवंशीय प्रथम राजा आदिशूर ने कान्यकुब्ज से जो पांच ब्राह्मण बुलवाए थे, उनमें एक भट्ट नारायण भी थे। आदिशूर के यज्ञ समाप्त होने पर वे पांचों ब्राह्मण अपने देश में लौट आना चाहते थे, परंतु राजा ने उन्हें किसी प्रकार आने नहीं दिया। राजा के सविनय प्रार्थना करने पर उन ब्राह्मणों ने भी बंगाल में रहना ही स्थिर किया। राजा ने प्रत्येक ब्राह्मण को आदरपूर्वक एक-एक गांव दिया। उन ग्रामों के नाम ये हैं—पंचकोटि, कामकोटि, हरिकोटि, कल्कग्राम और वटग्राम। अन्य चार ब्राह्मणों के समान भट्ट नारायण केवल कान्यकुब्ज से स्त्री-पुत्र ही लेकर नहीं गए थे किंतु वे अधिक धन-रत्न भी अपने साथ ले गए थे। राजा आदिशूर ने जब अपने दिए हुए ग्राम को ग्रहण करने के लिए कहा तब भट्ट नारायण ने बड़े अहंकार से दान ग्रहण करना अस्वीकार किया। उन्होंने कहा—मेरे पास अधिक धन है, मैं उससे गांव खरीद सकता हूं। कहते हैं, भट्ट नारायण ने राजा का दिया गांव न लेकर अपने धन से एक गांव खरीदा था।

डा० राजेन्द्रलाल मित्र के कथनानुसार, आदिशूर का ही नामांतर वीरसेन है। उक्त महाशय तथा रमेशचंद्रदत्त के भी निर्देशानुसार, बंगाल में राजा वीरसेन का समय सन् ९८६ ई० से १००६ ई० तक अनुमित होता है। भट्ट नारायण जी ने आदिशूर को अपना परिचय नीचे लिखे श्लोक द्वारा दिया था।

वेणीसंहारनामा परमरसयुतो ग्रन्थ एकः प्रसिद्धो
भो राजन् मत्कृतोऽसौ रसिकगुणवता यत्नतो गृह्यते सः।
नाम्नाहं भट्टनारायण इति विदितश्चारुशाण्डिल्यगोत्रो
वेदे शास्त्रे पुराणे धनुषि च निपुणः स्वस्ति ते स्यात्किमन्यत्॥

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि बंगाल में आने से पहले ही भट्ट नारायण 'वेणीसंहार' नामक नाटक लिख चुके थे और वह ग्रंथ प्रसिद्ध भी हो चुका था। निदान बंगाल के राजा आदिशूर के समसामयिक होने के कारण भट्ट नारायण का समय ख्रीष्टीय १०वीं सदी निश्चित होता है। इनके रचित वेणीसंहार के श्लोक बहुधा काव्यप्रकाश में उद्धृत किए गए हैं। भट्ट नारायण के लिखे एक ग्रंथ का नाम 'प्रयोगरत्न' है। मालूम नहीं, 'प्रयोगरत्न' का पता अभी तक किसीको लगा है कि नहीं।

भट्ट नारायण के पिता का नाम भट्ट माहेश्वर था। क्योंकि 'भट्टमाहेश्वरसुतो भट्टनारायणः सुधीः' ऐसा श्लोकार्ध सुनने में आता है।

ब्यूलर साहब ने काश्मीर के शैवदार्शनिक लक्ष्मण

गुप्त को उत्पल और भट्ट नारायण का शिष्य बतलाया है। लक्ष्मण गुप्त सन् ९५० ई० में विद्यमान थे। आश्चर्य नहीं कि ये भट्ट नारायण 'वेणीसंहार' के रचयिता ही हों। वेणीसंहार के श्लोक 'ध्वन्यालोक' नामक ग्रंथ में आनंदवर्द्धन ने उद्धृत किए हैं।

भट्ट लोल्लट—काव्यप्रकाशकार ने 'रसनिरूपण' में इनकी सम्मति उद्धृत की है। राजा नकरुय्यक ने भी 'अलंकारसर्वस्व' में इनके मत को उठाया है। अतएव ये मम्मट भट्ट से प्राचीन सिद्ध होते हैं। इनके रचित किसी ग्रंथ का पता अभी तक नहीं लगा है। इनके नाम से मालूम पड़ता है कि ये काश्मीरी थे। इनका समय ख्रीष्टीय ११वीं सदी से पहले नहीं हो सकता, परंतु उसके पूर्व कब तक इनके होने की संभावना है, यह बात नहीं बताई जा सकती।

भट्टोजी दीक्षित—संस्कृत व्याकरण के प्रसिद्ध ग्रंथ 'सिद्धांतकौमुदी' के रचयिता। सिद्धांतकौमुदी बनाकर इन्होंने पाणिनी व्याकरण को प्रांजल और सुपाठ्य बना दिया है। इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर सूरि और पुत्र का नाम भानुजी दीक्षित था। भट्टोजी दीक्षित ने सिद्धांतकौमुदी को छोड़कर ३३ ग्रंथ लिखे हैं। जिनमें कतिपय ग्रंथों का नाम नीचे लिखा जाता है—अद्वैतकौस्तुभ, धातुपाठ, आचारप्रदीप, लिंगानुशासनसूत्रवृत्ति, अशौचनिर्णय, आह्निककारिका, तिथिनिर्णय, प्रौढ़मनोरमा, मासनिर्णय, तीर्थयात्राविधि, शब्दकौस्तुभ और उणादिसूत्रवृत्ति।

भट्टोत्पल—ये एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। इन्होंने वराहमिहिर के प्रायः सभी ग्रंथों पर टीका लिखी थी। वराहमिहिर की 'पंचसिद्धांतिका' पर इनकी लिखी टीका नहीं मिलती। इससे लोग अनुमान करते हैं कि 'पंचसिद्धांतिका' पर इनकी लिखी टीका लुप्त हो गई हो अथवा इन्होंने लिखी ही न हो। प्राचीन ज्योतिषियों ने इन्हें भट्टोत्पल नाम से स्मरण किया है, परंतु इन्होंने अपना नाम केवल उत्पल ही लिखा है। बृहज्जातक की टीका में इन्होंने अपना समय ८८८ शाके अर्थात् सन् ९६६ ई० लिखा है। अतएव इनका समय १०वीं सदी ही निश्चित है।

भट्टोद्भट—संस्कृत के एक विद्वान् और कवि। राजतरंगिणी के चौथे अध्याय में लिखा है, 'भट्टोऽभूदुद्भटस्तस्य भूमिभर्तुः सभापतिः', जिससे जान पड़ता है कि ये महाशय काश्मीर के राजा जयापीड़ के सभासद् थे। महाराज जयापीड़ का राज्यकाल सन् ७७९ ई० से लेकर ८१२ ई० तक निश्चित हुआ है। अतएव भट्टोद्भट का समय भी काश्मीर के राजा जयापीड़ के समयानुसार ख्रीष्टीय आठवीं सदी का प्रारंभ माना जाना ही उचित है। इनके लिखे ग्रंथ का नाम 'अलंकारसारसंग्रह' है। इसकी टीका प्रतीहारेंदुराज ने लिखी है। इनका लिखा 'कुमारसंभव' नामक कोई काव्य भी था, जिसका एक श्लोक नीचे उद्धृत किया जाता है—

या शैशिरी श्रीस्तपसा मासेनैकेन विश्रुता।
तपसा तां सुदीर्घेशादूर्णवद्द्धतीमधः॥

इस श्लोक के एक 'तपस' शब्द का अर्थ माघ मास है और दूसरे का अर्थ शरीर को कष्ट देने वाली तपस्या है। उक्त श्लोक से इनकी प्रौढ़ कवित्वशक्ति स्पष्ट ही मालूम पड़ती है। इनके समसामयिक 'कुट्टनीमत' के रचयिता दामोदर गुप्त और वामन आदि विद्वान् हैं। ये काश्मीरी थे। व्याकरण, अलंकार और काव्य में इनकी अनुपम अभिज्ञता थी।

काव्यप्रकाश के टीकाकारों ने कहीं इन्हें उद्भट कहीं उद्भट भट्ट और किसी-किसी स्थान पर उद्भटाचार्य लिखा है। 'अलंकारसारसंग्रह' और 'कुमारसंभव काव्य'—इन ग्रंथों को छोड़कर भट्टोद्भट के अन्य किसी ग्रंथ का पता नहीं चलता है।

भद्रकाया—एक प्राचीन आयुर्वेदवेत्ता। चरक संहिता में भिषक्सम्मिलन के उपलक्ष्य में इनका नाम आया हुआ है।

भद्रायु—एक शिवभक्त राजा। इसकी पत्नी का नाम कीर्तिमालिनी था। यह कुष्ठ रोग से ग्रसित था। जब यह सोलह वर्ष का था, तब इसके घर ऋषभ नामक शिवावतार अवतीर्ण हुआ। उसे इसने अनेकानेक वरदान प्रदान करके शास्त्रास्त्रों से सज्जित करके बारह सहस्र हाथियों का बल प्रदान किया। एक बार इसके राज्य में शिव ने व्याघ्र का रूप धारण करके एक ब्राह्मण की पत्नी का अपहरण कर लिया। तब इस प्रजापालक राजा ने अपनी पत्नी उस ब्राह्मण को दे दी और स्वयं अग्निप्रवेश के लिए प्रस्तुत हो गया। इसके इस त्यागमय कार्य से प्रसन्न होकर शिव ने इसे दर्शन देकर ब्राह्मण की पत्नी उसे लौटा दी।
(स्कंदपुराण)

भद्राश्ववर्ष—राजा प्रियव्रत के पुत्र अग्नीध्र के नौ पुत्र थे। राजा अग्नीध्र ने अपने नौ पुत्रों को अपना राज्य जंबुद्वीप समभाग में बांट दिया। उनके आठवें पुत्र

का नाम भद्राश्व था। भद्राश्व को जो जंबुद्वीप का भाग मिला वह भद्राश्ववर्ष नाम से प्रसिद्ध हुआ। विष्णुपुराण में लिखा है कि भद्राश्व को मेरु का पूर्व भाग दिया गया था। वही भद्राश्ववर्ष नाम से भी प्रसिद्ध है।

भरत—(१) नाट्यशास्त्रप्रवर्तक आचार्य। महर्षि वाल्मीकि के समय में महर्षि भरत नाट्यशास्त्र के प्रधान अध्यापक थे, इसका प्रमाण पाया जाता है। इनके समय में नाट्यशास्त्र की विशेष उन्नति हुई थी, इसके प्रमाण पाए जाते हैं। परंतु नाट्यशास्त्र भरत मुनि और वाल्मीकि के समय के भरत मुनि दोनों एक हैं कि नहीं इसका पता लगाना कठिन है क्योंकि एक ही वंश में दो भरत-मुनियों का होना पाया जाता है। परंतु प्रमाणों से यह बात निश्चित है कि नाट्यशास्त्र के प्रधान आचार्य यही हैं। महाकवि कालिदास अपने विक्रमोर्वशी में लिखते हैं—

मुनिना भरतेन यः प्रयोगो भवतीष्वष्टरसाश्रयो निबद्धः।
ललिताभिनयं न मद्यभर्ता मरुतां द्रष्टुमना सलोकपालः॥

अर्थात् तुम लोगों को (अप्सराओं को) भरत मुनि ने जो आठों रसों का अभिनय बताया है, उस ललित अभिनय को देखने के लिए लोकपालों के साथ देवराज इंद्र उत्कंठित हैं। इससे भरत की प्राचीनता और नाट्यशास्त्रों की प्रवर्तकता स्पष्ट ही सिद्ध है। भरत मुनि का लिखा नाट्यसूत्र प्रसिद्ध है। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार बतलाया है—

पूर्वं कृतयुगे विप्रा वृत्ते स्वायम्भुवेऽन्तरे।
त्रेतायुगे संप्रवृत्ते मनोर्वैवस्वतस्य च॥
ग्राम्यधर्मे प्रवृत्ते तु कामलोभवशं गते।
ईर्ष्याक्रोधादिसंमूढे लोके सुखितदुःखिते॥
देवदानवगन्धर्वै रक्षोयक्षमहोरगैः।
जम्बूद्वीपे समाक्रान्ते लोकपालप्रतिष्ठिते॥
महेन्द्रप्रमुखैर्देवै रुक्तः किल पितामहः।
क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यञ्च यद्भवेत्॥
न च वेदविहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु।
तस्मात्सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम्॥
एवमस्त्विवति तानुक्त्वा देवराजं विसृज्य च।
सस्मार चतुरो वेदान् योगमास्थाय तत्त्ववित्॥
धर्म्यमर्थ्यं यशस्यञ्च सोपदेशं ससंग्रहम्।
भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शकम्॥
सर्वशास्त्रार्थसंपन्नं सर्वशिष्यप्रवर्तकम्।
नाट्याख्यं पञ्चमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम्॥
संकल्पभगवानेवं सर्वान् वेदाननुस्मरन्।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम्॥
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि॥
वेदोपवेदैः संबद्धो नाट्यवेदो महात्मना।
येन नारदसंयुक्तो वेदवेदाङ्गकारणम्॥
उपस्थितोहं लोकेशं प्रयोगार्थं कृताञ्जलिः।
नाट्यस्य ग्रहणं प्राप्तं ब्रूहि किं करवाण्यहम्॥

इन श्लोकों का भावार्थ यह है कि महर्षि भरत मुनियों को संबोधित करके कहते हैं—पहले स्वायंभुव मन्वंतर बीत जाने पर जब वैवस्वत मन्वंतर आया, तब ग्राम्य धर्म प्रवृत्त हुआ, काम और लोभ के कारण मनुष्यों में ईर्ष्या-द्वेष उत्पन्न हुआ, मनुष्यों में सुख-दुःख की समानता हुई, जंबूद्वीप में देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस आदि जब बस गए, तब इंद्र आदि प्रमुख देवताओं ने ब्रह्मा से कहा—हम लोग इस प्रकार का खेल चाहते हैं जो दृश्य और श्रव्य दोनों हो, वेद शूद्रों को नहीं सुनाए जा सकते अतएव आप एक ऐसा पांचवां वेद लिखें जिसे सब वर्ण के लोग सुन सकें। यह सुनकर ब्रह्मा ने 'एवमस्तु' कहा और इंद्र को विदा करके चारों वेदों का स्मरण किया। तदनंतर ब्रह्मा ने संकल्प किया कि इतिहाससहित नाट्य नामक पांचवां वेद मैं बनाऊंगा, जिससे धर्म, अर्थ, यश और उपदेश भी प्राप्त होंगे, जिसमें शास्त्रों के रहस्य रहेंगे। ऐसा संकल्प करके ब्रह्मा ने चारों वेदों से नाट्यशास्त्र लिखा। ऋग्वेद से गद्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर नाट्यशास्त्र ब्रह्मा ने लिखा। मैं नारद के संबंध से इस शास्त्र को जानता हूं। आप लोगों के सामने अभिनय के लिए उपस्थित हूं, क्या आज्ञा है?

(२) ये अयोध्यापति महाराज दशरथ के पुत्र थे। महारानी कैकेयी के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी। श्रीरामचंद्र जी तो आदर्श पुरुषोत्तम थे ही, लक्ष्मण की भ्रातृभक्ति संसार में बेजोड़ है, परंतु इसमें भी संदेह नहीं कि भरत की महत्ता और उदारता संसार में कहीं भी नहीं मिलेगी। जिस राज्य के लिए लालायित होकर कितने ही राजपुत्र अत्यंत निंदित और घृणित कार्य करने से भी नहीं रुकते, वही राज्य, सो भी छोटा-मोटा नहीं—कोशल राज्य भरत को मिला

है, परंतु महात्मा भरत उसे नहीं चाहते। जिस समय अयोध्या में राज्य के लिए अकांड तांडव हुआ था उस समय उदारहृदय महात्मा भरत अयोध्या में नहीं थे। वे अपने मामा युधाजित् के यहां केकय देश में गए हुए थे। आने पर उन्होंने सब वृत्तांत सुना। उसके लिए उन्होंने अपनी परमपूज्य माता को कितनी ही उलटी-सीधी बातें सुनाईं। इस कांड से भरत का हृदय चूर-चूर हुआ ही था, ऊपर से कौशल्या के उपालंभ-युक्त वचनों की वृष्टि ने उन्हें और भी अधमरा बना दिया। ऐसी स्थिति में संभव है, दूसरा घबड़ा जाए और लक्ष्यच्युत हो जाए, परंतु महात्मा भरत उसपर भी प्रकृतिस्थ ही रहे। भरत जब रामचंद्र को अयोध्या में लौटा ले आने के लिए गए और नंदीग्राम में श्रीरामचंद्रजी से मिले, तब लक्ष्मण की संदेहदृष्टि का बोध होने पर भरत ने उधर कुछ भी ध्यान नहीं दिया था। भरत का चरित्र देवतुल्य है। अतएव महाराज दशरथ ने कहा है—

गुणैः श्लाघ्यो हि मे रामो भरतस्तु विशिष्यते।

(३) पुरुवंशी राजा दुष्यंत के पुत्र। राजा दुष्यंत ने महर्षि कण्व की कन्या शकुंतला को गांधर्वविधि से ब्याहा था। राजधानी में जाकर राजा दुष्यंत शकुंतला को भूल गए। कण्व के आश्रम में ही शकुंतला का एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पुत्र महाउद्धत था, सिंह के बच्चों को पकड़ लिया करता था। इस कारण उसका नाम महर्षियों ने सर्वदमन रखा था। तदनंतर शकुंतला पुत्र को लेकर राजा के पास गई। राजा ने पहले तो शकुंतला को रखने में अपनी असम्मति प्रकट की, परंतु पुनः देववाणी होने पर उन्होंने शकुंतला और पुत्र को रख लिया। राजा ने पुत्र का नाम भरत रखा क्योंकि देववाणी हुई थी कि "तुम पुत्र का भरण करो"। इसी कारण शकुंतलापुत्र सर्वदमन का नाम भरत पड़ा। भरत चक्रवर्ती राजा थे। ब्रह्मपुराण में लिखा है कि इन्हीं भरत के नाम पर भारतवर्ष की सृष्टि हुई है। भरत ने गंगा के तीर पर ५५ अश्वमेध-यज्ञ किए थे और यमुनातीर पर ७८ अश्वमेध-यज्ञ के घोड़े उन्होंने बांधे थे। दिग्विजययात्रा करके उन्होंने किरात, हूण, यवन, पौंड्र, कंक, खश, शक और भी अनेक म्लेच्छजातियों का नाश किया था। पहले जो दानव देवांगनाओं को जीतकर पाताल में ले गए थे, भरत ने उन सबका उद्धार किया। उनके राज्य के समय में प्रजाओं के सभी अभिलाष पूर्ण होते थे। भरत की तीन महारानियां थीं जो विदर्भदेश की रहने वाली थीं। उनके गर्भ से भरत के नौ पुत्र उत्पन्न हुए थे परंतु वे पुत्र निस्तेज थे, इसी कारण महारानियों ने उन पुत्रों को मार डाला।

(४) राजा ऋषभ के पुत्र। राजा ऋषभ ने इसके लिए विशेष प्रयत्न किया था कि उनके पुत्र धार्मिक हों। राजा ऋषभ अपने प्रयत्न में सफल भी हुए थे। भरत ऋषभ के ज्येष्ठ पुत्र थे। ये भी अपने पिता की शिक्षा के अनुसार राज्यपालन करते थे। इनकी प्रजावत्सलता प्रसिद्ध हो गई थी। ये याग-यज्ञ आदि में सर्वदा रत रहा करते थे। बहुत दिनों तक राज्य-भोग करके राजा भरत ने हरिक्षेत्र पुलस्त्याश्रम में जाकर संन्यास ग्रहण किया। परंतु उस समय तक भी उनके हृदय से वासना नहीं हटी थी। अतएव वे मुक्ति-मार्ग से पीछे हट गए। (देखो जड़भरत)

(५) वेदों तथा वैदिक साहित्य में भरतों के यशस्वी वंश का उल्लेख हुआ है। उन्हें सिंधु तटवासी बताया गया है। इसी शक्तिशाली जाति के कारण संभवतः इस देश का नामकरण 'भारत' हुआ।

भरत मल्लिक—वैद्यकुलोत्पन्न विख्यात संस्कृतज्ञ पंडित। ये बंगाल के निवासी थे। इनके पिता का नाम गौरांग-मल्लिक था। इन्होंने अपनी विद्वत्ता के कारण 'महा-महोपाध्याय' और 'यशश्चंद्रराय' की उपाधि प्राप्त की थी। बहुत लोग इन्हें भरतसेन भी कहते हैं। इनकी लिखी मुग्धबोधबोधिनी, भट्टी काव्य की टीका, नलोदय की टीका, किरातार्जुनीय की टीका और कुमारसंभव की टीका प्रसिद्ध हैं। इन पांच टीकाओं के अतिरिक्त उपसर्गवृत्ति कारकोल्लास, द्रुतबोध व्याकरण आदि ग्रंथ इनके लिखे हैं। उपसर्गवृत्ति में लिखा है कि १७५८ शाके अर्थात् १८३६ ई० में ये वर्तमान थे।

शाकेऽष्टशरसप्तेन्दुमिते चाषाढके कुजे।
समाप्ता चोपसर्गाणां वृत्तिः प्रतिपदिन्दुभे॥

भरद्वाज—विख्यात प्राचीन आर्यऋषि। उतथ्य की पत्नी ममता के गर्भ से और उसके सहोदर बृहस्पति के वीर्य से इनकी उत्पत्ति हुई थी। ममता गर्भवती थी उसी समय छिपकर बृहस्पति उसके पास गए। गर्भ ने निषेध भी किया था परंतु बृहस्पति ने नहीं माना। गर्भस्थ बालक ने क्रुद्ध होकर चरण द्वारा शुक्र प्रवेश का मार्ग रोक दिया। इससे शुक्र भूमि में गिर पड़ा। बृहस्पति के शाप से गर्भस्थ बालक अंधा हो गया

और उसका नाम दीर्घतमा पड़ा। भूमिपतित शुक्र से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। ममता इस पुत्र का त्याग करना चाहती थी, परंतु बृहस्पति ने ऐसा करने से निषेध किया। बृहस्पति ने कहा, इसका भरण करो। इस कारण दोनों में विवाद होने लगा। विवाद का फल यह हुआ कि उस बालक को छोड़कर दोनों चले गए। अनंतर देवताओं ने उस पुत्र को लेकर दुष्यंत-पुत्र राजा भरत को अर्पण किया। देवताओं ने उस पुत्र को राजा के हाथ में समर्पण करने के समय 'भर' कहा था और वह दो से उत्पन्न था। इस कारण उसका नाम भरद्वाज पड़ा। इनका दूसरा नाम वितथ था क्योंकि राजा भरत के कोई संतान नहीं थी। उनका वंश वितथ होना ही चाहता था। इसी कारण भरद्वाज का दूसरा नाम वितथ पड़ा।

ये आयुर्वेद के एक आचार्य थे। भावप्रकाश में लिखा है कि व्याधिग्रस्त प्राणियों का दुःख दूर करने के लिए मुनियों के परामर्श से महर्षि भरद्वाज इंद्रपुरी गए और वहां इन्होंने आयुर्वेद का अध्ययन किया। वहां से समग्र आयुर्वेद का अध्ययन करके ये पुनः मर्त्यलोक में लौट आए और इन्होंने आयुर्वेद की शिक्षा मुनियों को दी। उनसे शिक्षा पाकर मुनियों ने आयुर्वेद का प्रचार किया।

भरद्वाज आश्रम—रामायण (अयो० ५४।६) में वर्णित भरद्वाज आश्रम की स्थिति आज भी गंगा-यमुना के संगम पर पूर्ववत् स्थित है। अयोध्या से दंडकारण्य जाते हुए श्रीराम यहां रुके थे। उन्होंने ऋषि भरद्वाज से १४ वर्षों के वनवास के लिए आशीष प्राप्त किया था।

भर्तृहरि—ये उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के ज्येष्ठ भ्राता थे। विक्रमादित्य के पिता गंधर्वसेन के औरस और एक दासी के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी। कुछ दिनों तक इन्होंने उज्जयिनी का राज्य भी किया था। तदनंतर अपनी पत्नी की दुश्चरित्रता से खिन्न होकर इन्होंने राज्य छोड़कर संन्यास ग्रहण किया। इनका नाम 'हरि' था। अतएव कैय्यट ने कहा है "तथापि हरिबद्धेन सारेण ग्रन्थसेतुना"। इनके नाम के साथ जो भर्तृ पद का प्रयोग किया गया है वह प्रजापालन करने के कारण है। व्याकरण महाभाष्य की सार नाम की एक व्याख्या इन्होंने लिखी थी। वाक्यप्रदीप और शतकत्रय भी इन्हींका लिखा है। सार ग्रंथ की सारवत्ता संसार-प्रसिद्ध है। उसीके आधार पर काश्मीरी पंडित कैय्यट ने महाभाष्य पर प्रदीप नाम की व्याख्या लिखी है। वाक्यप्रदीप में वाक्य और पद का विचार किया गया है। यह व्याकरण विज्ञान का बेजोड़ ग्रंथ है। वाक्यप्रदीप पर हेलाराज और पुंजराज की लिखी टीका है। हेलाराज कल्हण से भी प्राचीन हैं।

भवभूति—संस्कृत के एक प्रधान नाटककार। इनके लिखे तीन प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। वीरचरित, उत्तरचरित और मालतीमाधव। यद्यपि इन नाटकों में क्रमशः वीर, करुण और श्रृंगार रस निबद्ध किए गए हैं तथापि भवभूति करुण रस के प्रधान लेखक हैं। जिस प्रकार अन्यान्य कवियों ने श्रृंगार रस को आदि-रस माना है। उसी प्रकार भवभूति करुण रस को ही आदि-रस मानते हैं। इन्होंने उत्तरचरित में कहा है—

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिव श्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान्
अम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्॥

अर्थात् एक ही करुण रस निमित्तभेद से भिन्न होकर दूसरे रसों के रूप में परिणत होता है। जिस प्रकार एक ही जल कभी आवर्त, बुद्बुद, तरंग आदि अनेक विकारों का रूप धारण करता है। प्रसिद्ध 'आर्या सप्तशती' के कर्ता गोवर्द्धनाचार्य भवभूति के विषय में यह लिखते हैं—

भवभूतेः सम्बन्धाद्भूधरभूरेव भारती भाति।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा॥

इससे स्पष्ट है कि भवभूति करुण रस के कितने पुष्ट लेखक थे।

अन्यान्य कवियों के समान भवभूति का समय निश्चित करना भी कुछ सहज नहीं है। काश्मीर के इतिहास राजतरंगिणी के चौथे तरंग में लिखा है—

कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः।
जितो ययौ यशोवर्मा तत्पदस्तुति वन्द्यताम्॥

अर्थात् वाक्पतिराज और भवभूति आदि से सेवित राजा यशोवर्मा पराजित होकर जिसकी स्तुति-गान करने लगा, ये यशोवर्मा 'रामाभ्युदय' नामक काव्य के रचयिता हैं। यशोवर्मा नामक राजा सन् ६९३ ई० से ७२९ ई० तक कन्नौज के राजासन पर आसीन था। इस राजा को काश्मीर के राजा ललितादित्य ने परास्त किया और वह भवभूति को अपने साथ काश्मीर ले गया। अतएव भवभूति का होना अष्टम

शताब्दी का प्रारंभ ही निश्चित किया जाता है।

'गौडवहो' (गौड़वध) नामक प्राकृत काव्य जिसके कर्ता भवभूति के साथी वाक्पतिराज हैं। वाक्पतिराज ने गौड़वध में यशोवर्मा की बड़ी प्रशंसा की है और उनके द्वारा गौड़ देश के राजा का परास्त होना भी उसमें लिखा है। उसीमें वाक्पतिराज ने अपनी रचना के विषय में इस प्रकार लिखा है—

भवभूइ जलहि निगाय कव्वामयरसकणा इव स्फुरन्ति।
जस्स विशेषा अज्जवि वियडेसु कहापवन्धेसु॥

इसका संस्कृत-अनुवाद इस प्रकार है—

भवभूतिजलधिनिर्गतकाव्यामृतरसकणा इव स्फुरन्ति।
यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथाप्रबन्धेषु॥

अर्थात् भवभूतिरूपी जलनिधि से निकले हुए काव्य-रूपी अमृत के कणों के समान जिसके निबंधों में अनेक विशेष गुण अद्यापि चमक रहे हैं। इससे वाक्पतिराज के साथ भवभूति का यशोवर्मा के यहां अष्टम शताब्दी के आदि में होना सूचित होता है। और उसी गौड-वहो की भूमिका में लिखा है कि इंदौर में मालती-माधव की एक हस्तलिखित पुस्तक मिली है। उसके अंत में 'भट्टकुमारिलशिष्यकृते' लिखा हुआ है। कुमा-रिल भट्ट सप्तम शताब्दी के अंत में हुए थे। इसके द्वारा भी भवभूति का उक्त समय ही पाया जाता है।

शंकरदिग्विजय में लिखा है कि विद्धशालभंजिका, बालरामायण आदि के कर्ता राजशेखर के यहां गए थे और उनके लिखे नाटक आचार्य ने भी देखे थे। इस बात से राजशेखर और शंकर की समकालीनता प्रमाणित होती है। राजशेखर अपनी बालरामायण में लिखते हैं—

बभूव वल्मीकभवः पुरा कवि-
स्ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया
विराजते सम्प्रति राजशेखरः॥

अर्थात् पहले वाल्मीकि कवि हुए, पुनः वही भर्तृमेण्ठ के रूप में प्रकट हुए। तदनन्तर जो भवभूति नाम से प्रसिद्ध थे वह अब राजशेखर के रूप में वर्तमान हैं। शंकर का समय अष्टम शताब्दी का अंत निश्चित हुआ है। सुतरां राजशेखर का भी वही समय मानना होगा। भवभूति को राजशेखर से पहले का होना चाहिए। अतएव ऊपर जो भवभूति का समय अष्टम शताब्दी का अंत लिखा गया है, वह इससे भी सिद्ध होता है।

ऊपर कहा गया है कि भवभूति ने तीन नाटक लिखे हैं। उनकी प्रस्तावना में इन्होंने अपना स्वल्प परिचय भी दिया है। महावीरचरित की प्रस्तावना में भवभूति ने इस प्रकार लिखा है—

"अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम्, तत्र केचित्तैत्तिरीयिणः काश्यपाश्चरणगुरवः पङ्क्तिपावनाः पञ्चाग्नयो धृतव्रताः सोमपीथिन उदुम्बरा ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति। तदामुष्यायणस्य तत्रभवतो वाजपेय-याजिनो महाकवेः पञ्चमः सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्तेर्नीलकण्ठस्यात्मसम्भवः श्रीकण्ठपद-लाञ्छनो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः।

श्रेष्ठः परमहंसानां महर्षीणामिवाङ्गिरा।
यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः॥"

अर्थात् दक्षिण में पद्मपुर नामक नगर है, जहां यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का अध्ययन करने वाले व्रतधारी सोमयज्ञकारी पंक्तिपावन पंचाग्निक ब्रह्म-वादी काश्यपगोत्रीय उदुम्बर ब्राह्मण रहते हैं। उनके यहां वाजपेय यज्ञ करने वाले पुण्यशीलभट्ट गोपाल नामक महाकवि का प्रादुर्भाव हुआ। भट्टगोपाल के पौत्र और पवित्रकीर्ति पिता नीलकंठ तथा माता जतु-कर्णी के पुत्र श्रीकंठपदभूषित भवभूति का वहीं जन्म हुआ। परमहंसों में श्रेष्ठ और महर्षियों में अंगिरा के समान जिसके भगवान् ज्ञाननिधि नामक गुरु हुए, जो यथार्थ में ज्ञाननिधि ही हैं। इन तीन नाटकों के अति-रिक्त भी भवभूति का लिखा कोई ग्रंथ अवश्य होगा। क्योंकि शार्ङ्गधरपद्धति आदि ग्रंथों में कई श्लोक भव-भूति के नाम से उद्धृत हैं, परंतु वे श्लोक इन नाटकों में नहीं पाए जाते हैं यथा—

निरवद्यानि पद्यानि यदि नाट्यस्य का क्षतिः।
भिक्षुकक्षाविनिक्षिप्तः किमिक्षुर्नीरसो भवेत्॥

यह श्लोक उक्त नाटकों में नहीं पाया जाता है और शार्ङ्गधरपद्धति में भवभूति के नाम से यह श्लोक उद्धृत हुआ है।

रसपुष्टि तथा वर्णनचातुर्य के तारतम्य से विद्वानों ने अनुमान किया है कि महावीरचरित भवभूति की प्रथम रचना है। तदनंतर मालतीमाधव और फिर उत्तरचरित लिखा गया। निःसंदेह यह बात मानने योग्य और युक्ति-युक्त है। क्योंकि इन नाटकों में उत्तरोत्तर श्रेष्ठता बढ़ती गई है। इनमें उत्तरोत्तर अभ्यास का कौशल देखा जाता है। मालतीमाधव का श्मशान-वर्णन तथा कपालकुंडला के द्वारा मालती

का हरण किया जाना आदि बातें ऐसी हैं जो नाट्य-शास्त्र जानने वालों की आंखों में अवश्य खटकती हैं। परंतु उनका श्मशान-वर्णन तथा विप्रलम्भ श्रृंगार-वर्णन ऐसा अच्छा हुआ है कि लक्षण-दोष रहने पर भी उनसे सहृदयों के चित्त में आनंद ही होता है।

भवभूति ने नाटक क्यों लिखे इसका उत्तर न तो भवभूति ने ही अपने ग्रंथों में दिया है और न उसका कुछ अनुसंधान ही कहीं से पाया जाता है। परंतु उस समय की स्थिति पर ध्यान देने से इस प्रश्न का उत्तर मिल जाता है। उस समय लोगों का मन बौद्धधर्म से हट रहा था। लोगों में धार्मिक पिपासा जागृत हो रही थी। वैदिक विद्वान् बौद्धधर्म को निर्मूल करने का प्रयत्न कर रहे थे। भवभूति ने भी इन नाटकों द्वारा उन्हीं वैदिक विद्वानों के कार्य में सहायता पहुंचाई। इन्होंने बौद्धधर्म का खंडन नहीं किया है और न इन धर्मों के विषय में कुछ स्पष्ट ही कहा है। परंतु उदाहरणों द्वारा वैदिक धर्म की श्रेष्ठता और बौद्धधर्म की हीनता दिखलाते हुए दोनों प्रकार के धार्मिकों का चित्र खींच दिया, जिससे वैदिक धर्म पर श्रद्धा और बौद्धधर्म पर घृणा अपने-आप हो जाती है।

कामंदकी मालतीमाधव की एक पात्री है, वह बौद्ध संन्यासिनी थी। वह अपने आश्रम-धर्म का कुछ भी विचार न करके मालती और माधव को विवाह-सूत्र में गूंथने के लिए व्याकुल है। उसकी शिष्या सौदामिनी बौद्धधर्म छोड़कर अघोरघंट और कपाल-कुंडला के तांत्रिक जाल में फंसी थी। ये तांत्रिक बड़े ही दुराचारी और नृशंस थे। नरबलि देना इनके लिए कोई बात ही न थी। यही मालतीमाधव में बौद्धधर्म के अधःपात का चित्र है। महावीरचरित और उत्तरचरित में वैदिकधर्म की श्रेष्ठता का चित्र है। श्रीरामचंद्र के आदर्श चरित्र, लक्ष्मण का भ्रातृ-प्रेम और सीता का सतीत्व आदि एक से एक बढ़कर अतुलनीय और स्पृहणीय आदर्श हैं।

भविष्यपुराण—यह पुराण अष्टादश पुराणों में ग्यारहवां पुराण है। यह पांच पर्वों में विभक्त है। प्रथम पर्व में सृष्टिप्रक्रिया, तिथि-माहात्म्य और विष्णु, शिव और सूर्य की पूजा का प्रसंग है। द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ पर्व में यथाक्रम शिवमाहात्म्य, विष्णुमाहात्म्य और सूर्यमाहात्म्य विस्ताररूप से वर्णित है। पंचम पर्व में स्वर्ग का वर्णन है। इस पुराण में सब धर्मों के विरोध-परिहार करने की चेष्टा की गई है। इससे बहुतों का विश्वास है कि और देवताओं की अपेक्षा ब्रह्म की प्रधानता सिद्ध करना ही पुराणकार का लक्ष्य था। इस पुराण में शाकद्वीपवासी सूर्योपासक मग जाति का उल्लेख देखकर पाश्चात्य पंडित कहते हैं कि वह ईरानवासी अग्निपूजकों के लिए लिखा गया है। अन्यान्य पुराणों के समान इस पुराण में भी प्राचीन राजागण और चंद्र-सूर्यवंश का वर्णन पाया जाता है। परंतु इधर जो भविष्यपुराण बंबई से प्रकाशित हुआ है उसमें मुगल बादशाह अकबर की कथा, कलकत्ता राजधानी का वर्णन और ब्राह्म धर्म-प्रचारक सुप्रसिद्ध केशवचंद्र सेन का नामोल्लेख पाया जाता है। भविष्यपुराण में इन आधुनिक बातों को देखकर अनेक विद्वान् इस पुराण को अंततः इस पुराण में आए हुए विषय-विशेष को आधुनिक या प्रक्षिप्त समझते हैं। (भारतवर्षीय इतिहास)

भागवत—यह आठवां पुराण है परंतु यह सभी पुराणों में श्रेष्ठ समझा जाता है। वैष्णव सम्प्रदायी बड़ी भक्ति से इसकी पूजा किया करते हैं। इस महापुराण की रचना इतनी सुंदर और मधुर है कि साहित्य-संसार में भी इसने ऊंचा आसन पाया है। श्रीकृष्ण का माहात्म्य-प्रचार और मानव-हृदय में धर्मभाव का जागरण—भागवत के यही दो प्रधानतम उद्देश्य हैं। भागवत के दशम स्कंध में जो श्रीकृष्ण की लीला का वर्णन किया गया है वह अत्यंत मधुर है। विद्वान् मात्र उस मधुरता के लोभ को संवरण नहीं कर सकते। भागवत बारह स्कंधों में विभक्त है। प्रथम स्कंध में ऋषियों के प्रश्न के उत्तर में लोमहर्षण-नंदन उग्रश्रवा सूत ने भगवान् के गुणों का वर्णन करके भगवान् के अवतार धारण करने का प्रसंग उठाया है। नारद का पूर्वजन्म, युधिष्ठिर का राज्यलाभ, श्रीकृष्ण का द्वारका-गमन, युधिष्ठिर आदि का स्वर्गारोहण और परीक्षित को ब्रह्मशाप आदि कथाएं प्रथम स्कंध में वर्णित हैं। द्वितीय स्कंध में सृष्टि-वर्णन के अनंतर भागवत के विषय में परीक्षित के प्रश्न से शुकदेव ने भागवत का आरंभ किया है। तीसरे स्कंध में श्रीकृष्ण का बाल्यचरित्र वर्णन, सृष्टि-तत्त्व, वराहरूप से भगवान् द्वारा जल से पृथ्वी का निकाला जाना, कपिल का जन्म और उनका सांख्य-योग कथन आदि अनेक विषय वर्णित हैं। चतुर्थ में मनु की कन्याओं का वंश-वर्णन, सती का देह-त्याग, ध्रुवचरित्र, वेन, पृथु,

पुरंजन और प्रचेता आदि का चरित्र-वर्णन प्रभृति विविध विषय हैं। यहीं से उपाख्यानों का आरंभ होता है। पंचम स्कंध में प्रियव्रत, अग्निध्र, जडभरत, और भरतवंशी राजाओं का वृत्तांत लिखा है। वर्ष-वर्णन, भारतवर्ष की श्रेष्ठता, ज्योतिषतत्त्व और पाताल का विवरण पंचम स्कंध में ही है। छठे स्कंध में अजामिल का जन्म और चरित्र, दक्षकथा, वृत्रासुर का विवरण और सविता प्रभृति देवों का वंश-कीर्तन है। सप्तम स्कंध में हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद के प्रसंग में देश-काल-भेद से धर्म के विशेष-विशेष माहात्म्यों का वर्णन है। आठवें स्कंध में मन्वंतर-वर्णन, बलि के निकट वामन का तीन पैर भूमि की प्रार्थना करना, बलि का पाताल जाना और मत्स्य-चरित वर्णित हुआ है। नवम स्कंध में मनुपुत्रों का वंशवृत्तांत, अम्बरीषवंश, सगरवंश, रामतनय कुश का वंश, सोमवंश, विश्वामित्रवंश, पुरुवंश, यदुवंश आदि प्रभृति वंशों का विवरण है। भगीरथ का गंगा ले आना, श्रीरामचंद्र का यज्ञानुष्ठान, परशुराम द्वारा कार्तवीर्य अर्जुन का वध आदि कथाएं इसी स्कंध के अंतर्गत हैं। दशम स्कंध श्रीकृष्ण की लीलाओं के वर्णन से पूर्ण है। कंस के कारागार में देवकी के गर्भ में भगवान् का आविर्भाव और बाल्यक्रीडा से लेकर कौरव-युद्ध तक के भगवत्संबंधी सभी चरित इस स्कंध में वर्णित हैं। गोपियों का वस्त्र-हरण, रास-लीला, रुक्मिणी-हरण प्रभृति प्रसंग इसी स्कंध में हैं। ग्यारहवें स्कंध में धर्मालोचना, मुक्ति-प्रसंग और यदु-वंश-ध्वंस की कथा है। द्वादश स्कंध में भविष्य राज-वंश का वर्णन और कलि का धर्म कहा गया है। इसी द्वादश स्कंध के द्वादश अध्याय में भागवत के जिन विषयों की आलोचना हुई है उन विषयों का दिग्दर्शन कराया गया है। भागवत का कोई-कोई अंश गद्य में लिखा गया है। भागवत की भाषा अन्य पुराणों की अपेक्षा दुर्बोध है। भागवत में भगवान् के सोलह अव-तारों का वर्णन है। भागवत भक्ति-प्रधान ग्रंथ है। इस ग्रंथ में महर्षि नारद के कहने से भगवान् का गुण-कीर्तन किया गया है। महर्षि वेदव्यास जब पुराण के अनेक ग्रंथ लिख चुके और महाभारत भी लिख चुके तब नारद ने उनसे कहा — तुमने धर्म-अधर्म सभी विषयों का वर्णन किया है, तुमने बहुत पुराण और काव्य भी लिखे, परंतु बिना भगवान् के यशो-गान के परितोष नहीं होता, क्योंकि —

न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्। तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमन्त्यशिक्षया ॥ तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्ध-वत्यपि। नामान्यनन्तस्य यशोङ्कितानि यत्श्रृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥

अर्थात् मनोहर पदों से युक्त वाक्य-रचना व्यर्थ है, यदि उसमें भगवान् का गुण-कीर्तन न हो। राजहंस वायस-सेवित अपरिष्कृत जलाशय छोड़कर निर्मल एवं स्वच्छ सरोवर में विहार करते हैं। भगवद्भक्त परम-हंस उस प्रकार की वाक्य-रचना का तिरस्कार करते हैं और हरिगुणानुवाद-पूर्ण रचना का आदर करते हैं। जिस ग्रंथ के प्रत्येक श्लोक में भगवान् का गुण-कीर्तन है वही ग्रंथ सर्वसाधारण का पाप नष्ट कर सकता है। क्योंकि उस ग्रंथ के पाठ से साधुगण भगवान् का नामस्मरण, गुण-कीर्तन आदि कर सकते हैं। भागवत के मत से, भक्ति ही प्रधान है। भक्ति से ही ज्ञान उत्पन्न होता है। इसी कारण भागवत-कर्ता ने भगवान् के कार्यों को सर्वश्रेष्ठ बतलाया है।

आजकल भागवत के कर्ता के विषय में बड़ा गोलमाल हो रहा है। यह विवाद पुराना है। पुराने पंडितों को भी इसके कर्ता के विषय में संदेह था। परंतु उन लोगों ने अपना संदेह मिटा लिया। अतएव वे अब इस विषय में बिलकुल चुप हैं। परंतु आजकल नई रोशनी के कुछ विद्यादिग्गज उत्पन्न हुए हैं जो अंगरेजों की बराबरी करना चाहते हैं। दर्शन, पदार्थविद्या तथा शिल्पकला संबंधी नये आविष्कार तो इन छिछोरे इंद्रिय-दासों के बूते हो ही नहीं सकते, अतएव आविष्कर्ता की श्रेणी में अपना नाम लिखाने की लिप्सा पूरी करने के लिए ये मनमानी हांका करते हैं। भागवत के कर्ता के विषय में ये कहते हैं कि भागवत वोपदेव का लिखा है, व्यासदेव का नहीं। यह उक्ति है तो सुहावनी, परंतु ऐतिहासिक दृष्टि से निराधार कल्पना ही है। जिन्हें कुछ भी ग्रंथों के उलटने का समय मिला है वे अनायास ही इस उक्ति की असा-रता समझ सकते हैं। वोपदेव का समय तेरहवीं सदी है। ये वैद्यवर केशव के पुत्र और धनेश मिश्र के शिष्य थे। वोपदेव देवगिरि के महाराज महादेव के दरबारी पंडित थे। इस राजा ने सन् १२६० ई० से लेकर १२७१ ई० तक राज्य किया था। वोपदेव भी इसी समय रहे और उनके ग्रंथ भी इसी समय के बने हैं। वोपदेव ने ये ग्रंथ लिखे हैं—हरिलीला,

मुक्ताफल, परमहंस-प्रियाशत-श्लोकचंद्रिका, मुग्धबोध व्याकरण, कविकल्पद्रुम, काव्य-कामधेनु और राम-व्याकरण। यदि भागवत वोपदेव का लिखा होता तो वह भी इसी समय में लिखा गया होता परंतु इसके अनेक प्रमाण पाए गए हैं कि वोपदेव से बहुत पहले लोगों ने भागवत को आदर की दृष्टि से देखा था। यह बात सभी पढ़े-लिखे लोग मानते हैं कि शंकराचार्य वोपदेव से बहुत पहले के हैं। उन्होंने भी अपने विष्णुसहस्रनाम के भाष्य में और चतुर्दशमत-विवेक में भागवत का उल्लेख किया है और शंकराचार्य से भी प्राचीन हनुमत् और चित्सुख मुनि ने भागवत पर टीका की है। इन बातों को देखकर भी वोपदेव भागवत के कर्ता कैसे माने जा सकते हैं! सिद्धांतदर्पण नामक ग्रंथ में लिखा है—

वोपदेवकृतत्वे तु वोपदेवपुराभवैः।
कथं टीका कृता वै स्युर्हनुमच्चित्सुखादिभिः॥

अर्थात् यदि भागवत वोपदेव-कृत होता तो उनके पूर्ववर्ती हनुमत् चित्सुखाचार्य आदि उसकी टीका कैसे लिखते? विद्वानों ने रामानुजाचार्य का समय १०४६ ई० निश्चित किया है। इन्होंने भी भागवत का प्रमाण उद्धृत किया है। काश्मीरी पंडित क्षेमेंद्र ने भी भागवत का नामोल्लेख किया है। राजतरंगिणीकार की अपेक्षा क्षेमेंद्र प्राचीन हैं। इतने प्रमाणों के रहने पर भी जिनकी इच्छा हो कि वे भागवत को वोपदेव-कृत मानें, वे मान सकते हैं, परंतु उनका सिद्धांत प्रमाण-रहित और अशुद्ध समझा जाएगा।

भागुरि—अनेक शास्त्रों का निष्णात आचार्य। संभवतः यह इसका पैतृक-नाम था और इसके पिता का नाम भगुर था। पतंजलि के 'महाभाष्य' में जिस लोकायतिकशास्त्र की निर्मात्री भागुरी का उल्लेख हुआ है, संभवतः वह इसकी बहन थी। इसके गुरु का नाम बृहद्गर्ग था। पाणिनि के उत्तरकालीन व्याकरण-ग्रंथों में एक वैयाकरण के रूप में भागुरि का उल्लेख होने पर ज्ञात होता है कि इसने एक श्लोकबद्ध व्याकरण-ग्रंथ की रचना की थी, जो कि पर्याप्त विस्तृत था। इसके द्वारा विरचित 'त्रिकांडकोश' संप्रति उपलब्ध है। इसी प्रकार इसके द्वारा निर्मित ज्योतिष एवं स्मृति-विषयक ग्रंथों का तथा उनके उद्धरणों का उल्लेख परवर्ती ग्रंथकारों ने किया है। इसे सामशाखा यथा यजुःशाखा का आचार्य भी कहा गया है, जिससे प्रतीत होता है कि इन शाखाओं पर भी इसने ग्रंथ-रचना की थी। इसी प्रकार काव्यशास्त्र और सांख्यदर्शन पर भी इसने ग्रंथ-रचना की थी। यह बहुमुखी पांडित्य का लोकमान्य आचार्य था।

भानदास कवि—ये चरखारी के रहने वाले बंदीजन थे। सन् १८५५ ई० में ये उत्पन्न हुए थे। खुमानसिंह बुंदेला राजा चरखारी के दरबार में रहते थे। इन्होंने 'रूपविलास' नामक एक पिंगल का ग्रंथ लिखा है।

भानुगुप्त—गुप्तवंशी एक राजा। सन् ५१० ई० पर्यंत इन्होंने मालवा पर राज्य किया था। हूण सरदार तोरामान ने इनपर चढ़ाई की और इन्हें परास्त करके इनके हाथ से मालवाराज्य छीन लिया।

भारती (उभयभारती)—ये मिथिला के प्रकांड मीमांसक मंडन मिश्र की पत्नी थीं। इनके अन्य नाम शारदा या सरसवाणी भी थे। ये अपने पति की ही भांति प्रकांड विदुषी थीं। शंकराचार्य द्वारा शास्त्रार्थ में पति की पराजय के अनंतर इन्होंने स्वयं भी शंकराचार्य से शास्त्रार्थ किया था। शंकराचार्य उनके पांडित्य से अत्यधिक प्रभावित हुए थे। बाद में, ये दोनों पति-पत्नी शंकराचार्य के अद्वैत-वेदांत के अनुयायी हो गए।

भारवि—ये संस्कृत के महाकवि थे। इनके लिखे 'किरातार्जुनीय' नामक महाकाव्य का संस्कृतज्ञ समाज में बड़ा आदर है। महाकवि भारवि की प्रशंसा में यह श्लोक प्रचलित है—

माघेन विघ्नितोत्साहा न क्षमन्ते पदक्रमे।
स्मरन्तो भारवेरेव कवयः कपयो यथा॥

अर्थात् माघ की रचना-शैली देखकर कवियों का पदविन्यास करने का उत्साह जाता रहा और भारवि का स्मरण करके तो वे कवि कपि हो जाते हैं।

महाकवि भारवि कब और कहां उत्पन्न हुए, इसका निरूपण उपलब्ध प्रमाणों द्वारा किया जाता है। 'प्राचीन लेखमाला' नामक प्राचीन लेखों के संग्रह की पुस्तक में एक दानपत्र मुद्रित हुआ है। वह दानपत्र महाराज श्रीपृथ्विकोंगणि का है। उसमें लिखा है—

"किरातार्जुनीय पञ्चदशसर्गादिकोंकारो दुर्विनीतनामधेयः।"

यह शिलालेख शक ६९८ का लिखा हुआ है। उसी ग्रंथ में एक दूसरा लेख मुद्रित हुआ है, जो चालुक्यवंशोद्भूत श्रीपुलकेशिन का शिलालेख कहा जाता है। उस लेख के अंत में यह पद्य लिखा है—

येनायोजिनवेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिनाजिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितभारविकालिदासकीर्तिः॥

यह लेख शक ५५६ का लिखा हुआ है। इन दोनों लेखों से तो यह बात निःसंदेह प्रमाणित होती है कि ख्रीष्टीय सप्तम शतक के प्रारंभ में भारवि और उनके काव्य 'किरातार्जुनीय' की उतनी ही प्रसिद्धि थी जितनी कविकुल-गुरु कालिदास की। अतएव भारवि का समय ख्रीष्टीय छठी सदी से भी पहले का मानना चाहिए। पाश्चात्य पंडित याकोबी अंग्रेजी की एक त्रैमासिक पुस्तक में लिखते हैं कि माघ कवि ६०० सन् के मध्यभाग से किसी प्रकार नवीन नहीं हैं और भारवि तो उनसे भी प्राचीन हैं। बस, भारवि के समय के विषय में इससे अधिक और कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इनके वासस्थान के विषय में कुछ चर्चा न छेड़ना ही अच्छा है। क्योंकि उसका ठीक-ठीक कुछ पता तो नहीं है और पता लगाने के लिए कोई उचित उपाय भी नहीं है। कतिपय विद्वानों ने भारवि के वासस्थान के विषय में अपना यह मत प्रकाशित किया है कि इन्होंने सह्य पर्वत का वर्णन किया है, इस कारण इनका वासस्थान दक्षिण में ही कहीं रहा होगा। परंतु क्या यह अनुमान ठीक कहा जाएगा अथवा अनुमान करने की यही रीति है। यदि यही रीति है तो बाणभट्ट ने विंध्याटवी का वर्णन किया है। तदनुसार वे विंध्याटवी के वासी थे। रत्नाकर ने हरविजय महाकाव्य में स्वर्ग का वर्णन किया है। अत: वे स्वर्गवासी थे। पाताल जाने का मार्ग-वर्णन करने वाले परिमल पातालवासी थे··· इत्यादि बातें भी उसी प्रकार कही जाएंगी, परंतु ये कवि अपने वर्णनीय स्थान के वासी नहीं थे। महाकवि भारवि का लिखा एक 'किरातार्जुनीय' नामक महाकाव्य ही मिलता है, इनके दूसरे किसी ग्रंथ का पता नहीं लगता है। किरात का अर्थ-गौरव प्रसिद्ध है। किसीने कहा है—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

प्राचीन कवियों की रुचि शृंगार की ओर विशेषत: पाई जाती है, परंतु किरातार्जुनीय इस दोष से मुक्त है। इस ग्रंथ में नीति के उत्तम उपदेश हैं।

भावन कवि—ये हिंदी के कवि थे और इनका पूरा नाम भवानीप्रसाद पाठक था। इनका वासस्थान मरौवा जिला उनाव था। सं० १८९१ वि० में ये वर्तमान थे। ये एक प्रसिद्ध कवि थे। इन्होंने 'काव्यशिरोमणि' नामक ग्रंथ लिखा है, जिसमें प्राय: काव्य के सभी विषयों का वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ का दूसरा नाम 'काव्यकल्पद्रुम' भी है।

भावसिंह—बूंदी के राव राजा छत्रसाल के ज्येष्ठ पुत्र। सं० १७१५ वि० में छत्रसाल की मृत्यु हुई। इसके बाद राव भावसिंह के सिर पर बूंदी का राजमुकुट रखा गया। प्रसिद्ध स्वार्थी बादशाह औरंगजेब ने छत्रसाल की शत्रुता का बदला उनके पुत्र भावसिंह से चुकाने का अवसर पाकर राजा आत्माराम को आज्ञा दी कि उद्धत स्वभाव और सदा असंतुष्ट हाड़ा जाति को जाकर दंड दो और बूंदी राज्य को रणथंभौर के अधीन कर दो; बूंदी पर अधिकार और हाड़ा जाति को दंड देते ही मैं दक्षिण की यात्रा करूंगा। उसी समय बूंदी राज्य से आपका संबंध करा दूंगा। बादशाह की आज्ञा पाकर राजा आत्माराम बारह सौ प्रशिक्षित सिपाहियों को लेकर हड़ौती प्रदेश में पहुंचे और तलवार तथा अग्नि की सहायता से देश को नष्ट-भ्रष्ट करना उन्होंने प्रारंभ किया। राजा आत्माराम ने सबसे पहले वहां के प्रधान सामंत के इंद्रगढ़ पर आक्रमण किया। परंतु हाड़ा-वीरों का आक्रमण आत्माराव सह न सके। उनकी सेना छिन्न-भिन्न हो गई। आत्माराम भी प्राण बचाकर भाग गए। राजा आत्माराम परास्त और अपमानित होकर औरंगजेब की सभा में उपस्थित हुए और उन्होंने अपनी सब करतूतों का वर्णन किया। औरंगजेब ने उनके अत्याचारों को सुनकर बड़ी घृणा प्रकट की और उनका तिरस्कार भी किया।

कपटी औरंगजेब ने हाड़ा जाति के विक्रम का विशेष परिचय पाकर वहां के राजा को अपने हस्तगत करने की इच्छा से उन्हें बुला भेजा। राव भावसिंह ने पहले तो किसी प्रकार कुचक्री औरंगजेब की बातों पर विश्वास न किया। परंतु बाद में औरंगजेब के शपथ लेने पर राव भावसिंह दिल्ली गए। औरंगजेब ने इनका बड़े आदर से स्वागत किया और शहजादा मोअज्जम की अधीनता में उनको औरंगाबाद का प्रधान शासनकर्ता बनाया।

हाड़ा जाति के इतिहास से जाना जाता है कि राव भावसिंह ने औरंगाबाद के प्रधान शासक-पद पर अधिष्ठित होकर स्वजातीय राजपूत तथा बुंदेला-राजपूत दल के साथ कई-एक युद्धों में बड़ा विक्रम प्रकट किया है। बीकानेर के राजा करणसिंह के प्राणनाश करने के लिए जो षड्यंत्र रचा गया था, उसका दमन

राव भावसिंह ने ही अपनी असीम शक्ति से किया था। संवत् १७३८ में राव भावसिंह को औरंगाबाद में परलोक-प्राप्ति हुई।

भास्कर वर्मा—कामरूप के एक राजा का नाम। ख्रीष्टीय सातवीं सदी में जब ह्वेनत्संग भारतवर्ष में आए थे, तब कामरूप में भास्कर वर्मा नामक एक राजा राज्य करते थे। कन्नौजराज हर्षवर्द्धन के ये बड़े मित्र थे। ह्वेनत्संग ने उन्हें ब्राह्मण बतलाया है। भास्कर वर्मा के राज्यकाल में कामरूप में अनेक हिंदू देवी-देवताओं के मंदिर थे। संन्यासी ने कामरूप में एक भी संघाराम अथवा बौद्धमंदिर नहीं देखा था। भास्कर वर्मा का दूसरा नाम कुमारराज था। ५६५ शक संवत् में नालंदा में जो बौद्धसभा का अधिवेशन हुआ था उसमें भास्कर वर्मा भी सम्मिलित हुए थे और वहां इनका बड़ा सम्मान भी हुआ था।

भास्कराचार्य—भारत के प्रख्यात ज्योतिर्वेत्ता पंडित और गणितज्ञ। इनके पिता का नाम महेश आचार्य था। इनका वासस्थान सह्य पर्वत के समीप विज्जडविड नामक गांव में था। १११४ ख्रीष्टाब्द में ये उत्पन्न हुए थे। इन्होंने ३६ वर्ष की अवस्था में, ११५० ई० में, अपने प्रसिद्ध 'सिद्धांत-शिरोमणि' नामक ग्रंथ की रचना की। यह ग्रंथ इन चार खंडों में विभक्त है—(१) लीलावती या पाटीगणित, (२) बीजगणित, (३) ग्रहगणित, (४) गोलाध्याय। इनका लक्ष्मीधर नामक पुत्र और लीलावती नाम की कन्या थी।

भास्करानन्द सरस्वती—ये विख्यात वेदांती संन्यासी १८९० संवत् में कानपुर के अंतर्गत मैथे लालपुर नामक गांव में उत्पन्न हुए थे। जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यंत इनके जीवन की घटनाएं आश्चर्यमय हैं। इनके पिता का नाम पं० मिश्रीलाल था। इनके जन्म के दिन संध्या को अपरिचित तीन संन्यासी पं० मिश्रीलाल के घर पर आए हुए थे और उन लोगों ने यह भी कहा था कि आज ही रात को तुम्हारे एक सौभाग्यशाली पुत्र उत्पन्न होगा। सबको विस्मित करते हुए आधी रात को भास्करानंद उत्पन्न हुए।

पं० मिश्रीलाल की आज्ञा से तीनों संन्यासी सूतिका-गृह में गए और वहां कुछ हवन आदि करके बाहर निकल गए। इसके बाद उन संन्यासियों को किसीने नहीं देखा कि वे किधर गए।

मिश्रीलाल ने अपने पुत्र का नाम मतिराम रखा। नवें वर्ष में मतिराम का उपनयनसंस्कार विधिपूर्वक हुआ। उपनयन होने के अनंतर मतिराम सारस्वत-चंद्रिका और कालिदास का रघुवंश पढ़कर वेदांत-दर्शन पढ़ने लगे। वेदांतदर्शन पढ़ने के साथ ही साथ उनको संसार से विराग भी होने लगा। उनका हृदय वैराग्यभाव से पूर्ण हो गया। पं० मिश्रीलाल ने पुत्र की ऐसी दशा देखकर छोटी अवस्था में ही उनका विवाह करवा दिया।

विवाह होने के थोड़े ही दिनों के बाद मतिराम वेदांतदर्शन पढ़ने के लिए काशी गए। वहां वेदांत तथा अन्यान्य दर्शनों में विद्वत्ता प्राप्त करके मतिराम अपनी जन्मभूमि का दर्शन करने के लिए मैथे लाल-पुर में आए। देश में आने पर उनकी गणना बड़े-बड़े पंडितों में होने लगी। इस समय उनकी अवस्था १७ वर्ष की थी। घर रहने पर भी वे संसार के मोह में नहीं फंसे। वे संसार से संबंध छोड़ने का अवसर ढूंढ़ने लगे। माता-पिता, स्त्री, बंधु-बांधव आदि को वे अपनी आध्यात्मिक उन्नति के बाधक समझने लगे। उनकी स्त्री को गर्भ था। यथासमय स्त्री ने एक पुत्र प्रसव किया। जिस रात्रि को पुत्र उत्पन्न हुआ, उसी रात्रि को मतिराम ने घर छोड़ दिया।

गृह छोड़कर मतिराम अनेक स्थानों में घूमते हुए अंत में उज्जयिनी नगरी में पहुंचे। इस महानगरी में महाकालेश्वर शिव का मंदिर है। यह मंदिर काशी के विश्वनाथ के मंदिर की अपेक्षा बहुत बड़ा है। मतिराम उसी मंदिर में शिव की पूजा करते थे तथा नगर के पास ही एक निर्जन स्थान में जाकर ध्यान करते थे। इसी प्रकार कुछ दिन बीतने पर उनकी योग सीखने की इच्छा हुई। जिस रात्रि को उनको ऐसी इच्छा हुई उसके दूसरे ही दिन दक्षिण के प्रधान परमहंस स्वामी पूर्णानंद जी वहां उपस्थित हुए। मतिराम उन्हीं योगिराज से योग की शिक्षा ग्रहण करने लगे। उन्होंने बड़े परिश्रम से प्राणायाम में सिद्धि प्राप्त की और शनैः-शनैः उन्हें अन्य प्रकार की भी सिद्धि प्राप्त हुई।

इस प्रकार अनेक प्रकार की योग-विभूति पाकर मतिराम ने कुछ दिनों तक उज्जयिनी में ही वास किया। तदनंतर ये गुजरात गए और वहां एक मठ में ठहरकर वेदादि शास्त्रों का अध्ययन किया। पुनः ये अनेक तीर्थों में घूमते रहे। तीर्थभ्रमण करने पर इन्होंने संन्यास ग्रहण करने की इच्छा की और उन्हीं अपने योगशिक्षक स्वामीजी से संन्यास-

धर्म की दीक्षा ली। संन्यास ग्रहण करने पर मतिराम ने अपना नाम, यज्ञसूत्र, कुल, मान-संभ्रम आदि सभीका त्याग किया। अब उनका गुरु द्वारा प्रदत्त नाम पड़ा—स्वामी भास्करानंद सरस्वती। इस समय स्वामीजी की अवस्था २७ वर्ष की थी। संन्यास ग्रहण करने पर वे कुछ समय रेवा नदी के तीर पर एक श्मशान में रहे थे। तदनंतर वहां से वे जाह्नवी के तीर पर शृंगिरामपुर गए। इसी स्थान पर स्वामीजी को अपने पुत्र की मृत्यु का संवाद मिला। इनका पुत्र ग्यारह वर्ष का होकर मर गया। स्वामीजी को घर से निकले ग्यारह वर्ष हो गए थे। पुत्र की मृत्यु का संवाद सुनकर भी वे विचलित नहीं हुए।

उसके बाद अपनी दु:खिनी पत्नी को देखने के लिए स्वामीजी अपने घर भी आए थे। गांव के लोग स्वामीजी को देखकर कृतार्थ हुए। उन्होंने गांव के वासियों को वेदांत का उपदेश दिया और पुनः गृह-त्याग किया। इसके पश्चात् तीन वर्ष तक मौनी होकर उन्होंने कठोर साधना की। वे भारत के प्रसिद्ध और दुर्गम तीर्थों में पैदल गए। द्वारका से बंबई के मध्य के समस्त तीर्थों में घूमकर अंत में स्वामीजी सेतुबंध रामेश्वर गए। वहां से मद्रास होते हुए वे जगन्नाथपुरी में उपस्थित हुए। वहां से बंगदेश, असम और बिहार के तीर्थों में घूमते हुए स्वामीजी पुनः प्रयाग आए। प्रयाग से पुनः हरिद्वार गए। इसी प्रकार स्वामीजी ने १३ वर्षों में भारत के समस्त तीर्थ देखे-भाले। उनका हरिद्वार में पं० अनंतराम जी से परिचय हुआ, यद्यपि स्वामीजी वेदांत का अधिक ज्ञानार्जन उन पंडितजी से करने लगे। स्वामीजी ने पं० अनंतराम से गीताभाष्य, पंचदशी, वेदांत परिभाषा, दशोपनिषद् आदि ग्रंथों का अध्ययन किया। उनके साथ स्वामीजी का कुछ समय बड़े आनंद से बीता।

हरिद्वार से स्वामीजी पुनः काशी आए। इस समय उनकी अवस्था ४० वर्ष की थी। यहां वे गंगा के तीर पर विश्वनाथ की उपासना करने लगे। इस समय उनके मुंह से रात-दिन केवल विश्वनाथ शब्द निकला करता था। वे अपने-आप कभी हंसने और कभी रोने लगते थे। उनको देखने के लिए लोगों की भीड़ एकत्रित होने लगी। धीरे-धीरे आने-जाने वालों की संख्या बढ़ने लगी। स्वामीजी की इच्छा इस स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान में जाने की हुई। अमेठी के राजा लाल माधवसिंह के कहने से स्वामीजी उन्हींके 'आनंदबाग' में गए। यह आनंदबाग काशी में दुर्गाकुंड के पास है। राजा ने स्वामीजी की सेवा के लिए १० भृत्य नियुक्त कर दिए। अब स्वामीजी आनंदबाग में सदानंद करने लगे।

स्वामीजी के रहने का स्थान निर्जन अवश्य था, परंतु यहां भी स्त्री-पुरुषों की भीड़ एकत्रित होने लगी। स्वामीजी के भक्तों की वृद्धि होने लगी। अब बड़े-बड़े घरों की स्त्रियां, रानी-महारानी आदि पालकी पर चढ़कर स्वामीजी के दर्शन के लिए आने लगीं। कहते हैं कि एक राजा ने स्वामीजी के चरित्र की परीक्षा के लिए काशी की तीन वेश्याओं को एक हजार रुपये पारितोषिक देकर स्वामीजी के यहां भेजा था। स्वामीजी के हुंकार से दो वेश्याएं तो उसी समय वहां से भाग गईं। परंतु तीसरी के पैर में सांप लिपट गया। वह 'त्राहि-त्राहि' करने लगी और स्वामीजी से दया-प्रार्थना करने लगी। यह देखकर राजा तो मारे डर के भाग गया। वह वेश्या चार घंटे तक उसी प्रकार पड़ी रही। प्रभात होने पर सर्प चला गया और वह भी अपने घर चली गई। घर लौटकर वह पश्चात्ताप करने लगी और अपनी संपत्ति बेचकर वह तीर्थयात्रा को चली गई। तीर्थयात्रा से लौटकर उसने वेश्यावृत्ति छोड़ दी।

इस घटना के बाद आनंदबाग में सभीका आना-जाना बंद हो गया। इस समय स्वामीजी गुफा में दो-तीन महीने तक अनाहार ही पड़े रहे। यहां तक कि उन्होंने जलपान भी नहीं किया। गुफा से निकलकर स्वामीजी ने कौपीन का भी त्याग कर दिया। अब से वे नंगे रहने लगे। संसार या समाज से उन्होंने बिलकुल ही संबंध छोड़ दिया। स्वामीजी के पास पुनः दर्शनार्थी लोग आने लगे। किसी दर्शनार्थिनी स्त्री के आने पर स्वामीजी बैठे हुए अपने भक्तों में से किसीका दुपट्टा लेकर लपेट लिया करते थे और स्त्री के चले जाने पर जिसका कपड़ा होता उसे ही दे देते। माघ की रात्रि में भी स्वामीजी बाहर नंगे ही पड़े रहते थे। बंगाल के विजयकृष्ण गोस्वामीजी भी परमहंस भास्करानंद सरस्वतीजी के भक्तों में से थे। दक्षिण की एक रानी ने स्वामीजी से दीक्षा ली थी। किसी प्रकार के मुकद्दमे के कारण वह रानी अपनी संपत्ति से अलग कर दी गई, तब वह स्वामीजी की शरण में आई। स्वामीजी

ने कहा कि इस मुकद्दमे में तुम्हारा विरोधी हार जाएगा। स्वामीजी की भविष्यवाणी सफल हुई। रानी मुकद्दमा जीत गई। रानी ने जय प्राप्त करके स्वामीजी की सेवा में डेढ़ लाख रुपये भेज दिए परंतु स्वामीजी ने उन्हें छुआ तक नहीं। रानी ने उन्हीं रुपयों से आनंदबाग के पास एक शिवमंदिर बनवाया और अतिथिशाला तथा उसीमें स्वामीजी की मूर्ति की भी प्रतिष्ठा की। स्वामीजी के आनंदबाग में आने के प्रायः ५ वर्ष पहले उनके पिता मिश्रीलाल काशी आए। यहां आकर उन्होंने भी संन्यास-आश्रम ग्रहण किया और उनकी मृत्यु भी यहीं हुई और स्वामीजी की माता बदरिकाश्रम गईं और वहीं उनका शरीर-पात भी हुआ। बदरिकाश्रम में जब स्वामीजी की माता रोग-पीड़ित हुईं तब स्वामीजी योगबल से जान-कर शीघ्र ही बदरिकाश्रम पहुंच गए।

माता की मृत्यु के बाद स्वामीजी पुनः आनंदबाग में लौट आए। प्रतिदिन स्वामीजी की प्रसिद्धि होने लगी। आनंदबाग में सर्वदा मानो मेला लगा रहता था।

काशी के राजा ईश्वरीप्रसाद सिंह बहादुर ने स्वामी-जी के प्रति भक्ति-प्रदर्शन करने के लिए उनकी पत्थर की मूर्ति अपने राजभवन में स्थापित की थी। अयोध्या के महाराज प्रतापनारायण सिंह ने स्वामीजी से दीक्षा ग्रहण की थी। स्वामीजी का भी उनपर विशेष स्नेह था। एक दिन महाराज को एक टेलिग्राम काशी में मिला जिसमें लिखा था कि यहां एक विशेष राजकीय कार्य है अतः आप चले आएं। महाराज ने स्वामीजी से जाने की अनुमति मांगी, परंतु स्वामी-जी ने किसी भी प्रकार से अनुमति नहीं दी। महा-राज बड़ी आफत में फंसे। इधर गुरु की आज्ञा, उधर राजकार्य की गुरुता, इन दोनों में किसको मानें और किसको न मानें। महाराज कुछ भी स्थिर न कर सके। महाराज पुनः स्वामीजी के पास गए। स्वामी-जी ने कहा, यदि राजधानी में जाने का कोई बड़ा भारी आवश्यक कार्य हो तो इस गाड़ी से न जाकर दूसरी गाड़ी से जाना। महाराज ने स्वामीजी की आज्ञा पालन की। दूसरी गाड़ी से जाने के लिए जब महाराज स्टेशन पर गए तब सुना कि पहली गाड़ी (जिससे महाराज ने जाना निश्चित किया था) जौन-पुर के पास एक दूसरी गाड़ी से टकरा गई जिससे बहुत मनुष्य मरे और घायल हुए। अब महाराज की बुद्धि में स्वामीजी के रोकने का अर्थ समझ आया।

काशी और अयोध्या के राजाओं के अतिरिक्त भारत के अन्य राजा भी यथा—रीवां, नाटौर, भिनगा, डुमरांव, बेतिया, दरभंगा आदि के राजा, हैदराबाद के निजाम, मुर्शिदाबाद के नव्वाब आदि मुसलमान राजा-गण और भारत के बड़े लाट, उत्तर-पश्चिम प्रदेश के छोटे लाट और भारत के प्रधान सेनापति आदि राजपुरुष—स्वामीजी के दर्शनों के लिए आनंदबाग में गए थे और वे सभी स्वामीजी में भक्ति रखते थे। कलकत्ता भवानीचरणदत्त लेन के डाक्टर भादुड़ी १४ वर्षों से अम्लशूल रोग से पीड़ित थे। उन्होंने अंत में स्वामीजी की शरण ली। स्वामी-जी ने डाक्टर भादुड़ी के पेट पर हाथ फेरा। स्वामी जी के हाथ फेरते ही डाक्टर भादुड़ी की सारी पीड़ा जाती रही।

एक समय पश्चिमोत्तर प्रदेश के एक जमींदार स्वामीजी के दर्शनों के लिए आनंदबाग में आए। वे स्त्री-पुरुष दोनों ही स्वामीजी के शिष्य थे। स्त्री को दस मास का गर्भ था। पति पत्नी को काशी ले आना नहीं चाहता था, परंतु पत्नी के बहुत अनुरोध करने पर वह पत्नी को भी साथ ले आया था। आनंदबाग में आने पर स्त्री को प्रसव-वेदना हुई। जमींदार बेचारा बड़ी आफत में फंसा। उसने अभी तक स्वामीजी को इस विपत्ति का कुछ भी हाल नहीं सुनाया था। उस समय स्वामीजी के पास बहुत लोग बैठे थे। उन्हींमें मानकी नाम की एक वृद्धा स्त्री भी वहीं उपस्थित थी। उसको देखकर ही स्वामीजी उठ खड़े हुए और मानकी को अपने पीछे-पीछे आने का संकेत करके वे जहां जमींदार की पत्नी प्रसव-वेदना से पीड़ित हो रही थी, वहां उपस्थित हुए। स्वामीजी ने उस स्त्री के माथे पर हाथ रखने के लिए मानकी को कहा। तदनंतर मानकी ने स्वामीजी की आज्ञा से कहा कि गर्भस्थ पुत्र दस दिन के बाद उत्पन्न हो। स्वामीजी की आज्ञा से मानकी के ऐसा कहते ही जमींदार की पत्नी की प्रसव-वेदना शांत हो गई। पुनः स्वामीजी ने उस स्त्री को घर भिजवा दिया। स्वामीजी का वचन सत्य हुआ था। दस दिन के बाद जमींदार की पत्नी ने एक पुत्र उत्पन्न किया।

इसी प्रकार कितनी ही अलौकिक घटनाएं घटी हैं, जिनकी गिनती नहीं की जा सकती। भारतवर्ष तथा यूरोप के भिन्न-भिन्न प्रदेश, अमेरिका, अफ्रीका, चीन

आदि महादेशों से कितने ही लार्ड, लेडी, काउंट, वैरन, मार्क्विस, जनरल, कर्नल आदि उपाधिधारी स्वामीजी के दर्शन के लिए आनंदबाग में आए। सन् १८९९ ई० में स्वामीजी ने समाधिस्थ होकर रविवार की अर्धरात्रि को देहत्याग किया था। बृहस्पतिवार को ही स्वामीजी ने अपने विशिष्ट भक्तों से कह दिया था कि अब शीघ्र ही मैं शरीरत्याग करूंगा। शिष्यों के अनुरोध से तार द्वारा यह समाचार सब स्थानों में भेज दिया गया। अनेक स्थानों से भक्तवृंद स्वामीजी का अंतिम दर्शन करने के लिए आने लगे। परमभक्त गयाप्रसाद, प्रयाग के चौधरी महादेवप्रसाद, अयोध्या के महाराजा प्रतापनारायण सिंह, काशी के महाराजा और उनके दीवान, नागौद के महाराज यादवेंद्रसिंह, मैनपुर के महाराज तेजसिंह आदि राजा, महाराज, जमींदार, तालुकदार, मजिस्ट्रेट, जज और अन्य बहुत लोग स्वामीजी के दर्शन के लिए उपस्थित हुए। उनकी लिखी दशोपनिषद्-स्वराज्यसिद्धि आदि की व्याख्या आदर के साथ दार्शनिक पंडितों में पढ़ाई जाती है।

भीखा साहब—अपर नाम भीखानंद चौबे बावरी पंथ के भुरकुड़ा, गाजीपुर शाखा के प्रसिद्ध संत गुलालसाहब के शिष्य थे। इनका जन्म आजमगढ़ जिले के खानपुर बोहना नामक स्थान में हुआ था। बाल्यकाल से ही ये संत-स्वभाव के व्यक्ति थे। एक बार इन्होंने गाजीपुर जिले के अनुआरा गांव में गुलालसाहब का एक पद सुना और उनके भुरकुड़ा स्थित मठ में जाकर उनके शिष्य बन गए। १७६० ई० में संत गुलालसाहब के निधन के बाद ये उनके मठ के उत्तराधिकारी बन गए। इनके शिष्यों में गोविंदसाहब और चतुर्भुजदास अधिक प्रसिद्ध हुए।

भीखा साहब की उपलब्ध एवं प्रकाशित कृतियों के नाम हैं—'राम कुंडलिया', 'राम सहस्रनाम', 'राम सबद', 'रामराग', 'रामकवित्त' और 'भगत बच्छावली'। ये सभी रचनाएं 'भीखा साहब की बानी' अपर नाम 'महात्माओं की बानी' नामक संग्रहों में एकसाथ प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी रचनाओं में आत्म-निग्रह, संसार के प्रति असारता और अद्वैत वेदांत दर्शन का निरूपण हुआ है। इनकी भाषा भोजपुरी और अरबी-फारसी मिश्रित खड़ीबोली है। इन्होंने पद, कवित्त, रेखता, कुंडलिया और दोहा छंदों का प्रयोग किया है। इनका निधन १७९१ ई० में हुआ (परशुराम चतुर्वेदी—उत्तरी भारत की संत-परंपरा)।

भीटा—प्राचीन विटभयपट्टन, जिसे जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी ने विकसित किया था। जैन राजा उदयन ने इसे राजधानी बनाया था। जनरल कनिंघम ने १८७२ ई० में यहां का पुरातात्त्विक सर्वेक्षण किया था। यह स्थान इलाहाबाद से कुछ मील की दूरी पर स्थित है।

भीतरगांव—कानपुर से २० मील दक्षिण और कोदा-जहानाबाद से दस मील उत्तर-पश्चिम में एक ऐतिहासिक महत्त्व का गांव है। यहां पर एक विशाल मंदिर है।

भीम गुप्त—काश्मीर के एक राजा। इनके पिता का नाम अभिमन्यु गुप्त था। भीम गुप्त अभिमन्यु गुप्त के सबसे छोटे पुत्र थे। जब भीम गुप्त के बड़े दो भाई क्रमशः इनकी दुराचारिणी पितामही दिद्दा के द्वारा मारे गए, तब भीम गुप्त काश्मीर के राजसिंहासन पर बैठे। शिशुराजा भीम गुप्त जब कुछ बड़े हुए, जब इन्हें भला-बुरा समझने की बुद्धि हुई, तब इनकी माता ने दिद्दा का व्यवहार तथा राज्य की व्यवस्था इन्हें समझाई। भीम गुप्त उसको दूर करने का प्रयत्न करने लगे। परंतु दिद्दा ने उनके मन के भावों को समझ लिया तथा ब्राह्मणों द्वारा उसे मरवा डाला।

भीमरथी—दक्षिण भारत में कृष्णा की सहायक नदी, जिसका आधुनिक भीमा नदी से समीकरण किया गया है। पुराणों में इसका सह्य नदी के रूप में वर्णन हुआ है।

भीमसिंह (महाराणा)—(१) ये उदयपुर के महाराणा थे। हमीर की अकाल मृत्यु के पश्चात् उनके छोटे भाई भीमसिंह सन् १७७८ ई० में मेवाड़ के सिंहासन पर बैठे। भीमसिंह बहुत दिनों तक अपनी माता की अधीनता में रहे। स्वाधीनता का समय प्राप्त होने पर भी भीमसिंह को स्वाधीनता नहीं मिली। अतएव वे स्वभाव से ही निस्तेज और उत्साहहीन हो गए थे। महाराणा की बुद्धि इतनी मोटी हो गई थी कि उनमें सामर्थ्य और विचार का नाम भी नहीं रह गया था। इसी कारण एक कुचक्री के द्वारा भीमसिंह परिचालित होने लगे। राणाजी ने चंदावत सरदारों को राज्य के ऊंचे पद दे रखे थे। चंदावतों ने अपने पुराने शत्रु शक्तावतों से वैर का बदला चुकाने का प्रण किया। इस आपसी झगड़े से मेवाड़ की बड़ी हानि हुई।

बालक भीमसिंह उस झगड़े को रोकना चाहते थे परंतु अपनी असमर्थता के कारण वे उसे रोक न सके। शक्तावत और चंदावत का पुराना वैर दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा। चंदावत तो महाराणा के प्रिय थे ही, इन्हींका एक सरदार मेवाड़ का प्रधानमंत्री भी था। परंतु बुद्धिहीन भीमसिंह ने इस ऊंचे पद का अपमान किया। चित्तौड़ और उदयपुर की राजकीय भूमि, सिंधी सेना के अधीन कर दी गई थी। यह सेना मंत्री के ही अधिकार में थी। मंत्री और राणा में कुछ भी सहानुभूति नहीं थी। क्योंकि जिस समय महाराणा धन के अभाव से कष्ट पा रहे थे, उस समय मंत्री अपने इष्ट मित्रों के साथ गुलछर्रे उड़ा रहा था। राज्य का धन इस प्रकार नष्ट किया जा रहा था कि राणा भीमसिंह को ईडर में अपने विवाह के लिए ऋण लेना पड़ा था। परंतु इस विश्वासघाती सामंत ने अपनी कन्या के ब्याह में दस लाख रुपये उड़ा दिए। यह देखकर राजमाता चंदावतों से बहुत अप्रसन्न हुई। उन्होंने शक्तावत संप्रदाय के सामंतों को बुलाया तथा उन्हें राज्य के ऊंचे पदों पर प्रतिष्ठित किया। शक्तावतों को राजमाता का दिया हुआ राजकीय अधिकार तो मिला सही, परंतु उनके पास अधिक सेना न होने के कारण वे कुछ न कर सके। इस कारण कोटे के सरदार जालिमसिंह से इन लोगों ने सहायता की प्रार्थना की। जालिमसिंह चंदावतों से बहुत ही बिगड़ा हुआ था। शक्तावतों से जालिमसिंह का वैवाहिक संबंध था। अतएव उनका अभिप्राय जानकर जालिमसिंह उनके पक्ष में हो गया और वह अपने महाराष्ट्र-मित्र नानाजी बल्लाल के साथ १०,००० सेना लेकर अपने कुटुंबियों के पक्ष में जा मिला। इस समय शक्तावतों के दो कार्य हुए। प्रथम तो विद्रोही चंदावतों का दमन और राजा रतनसिंह को कमलमेर से भगाना। चंदावत लोग सिंधियों के साथ मिलकर चित्तौड़ के प्राचीन दुर्ग में स्थित होकर राणा के विरुद्ध अनेक प्रकार के कपट-जाल फैला रहे थे। अतएव सबसे पहले उनका दमन करना ही शक्तावतों ने उचित समझा।

मेवाड़ में जिस समय ये बातें हो रही थीं उस समय माधोजी सिंधिया की प्रभुता नष्ट हो गई थी। मारवाड़ और जयपुर के मिले हुए विक्रम से सिंधिया का पराक्रम नष्ट हो गया।

भीमसिंह ने उचित अवसर जानकर उन देशों पर आक्रमण करने का निश्चय किया, जिनपर महाराष्ट्रों ने अधिकार कर लिया था। मेवाड़ में फिर भी प्राचीन वीरता की झलक एक बार दिखाई पड़ी। राणाजी के दीवान मालदास मेहता और उनके सहकारी मौजीराम दोनों ही विशेष साहसी और बुद्धिमान् थे। इन्होंने सबसे पहले नीमबेहड़ा तथा उसके आसपास के स्थानों पर, जहां महाराष्ट्रों ने अधिकार कर लिया था, अपना अधिकार जमा लिया। इस प्रकार थोड़े ही समय में अपने निकले हुए देशों पर मेवाड़ का अधिकार पुनः स्थापित हुआ। परंतु मेवाड़ के दुर्भाग्य से उसका यह गौरव बहुत दिनों तक नहीं रह सका। राजपूत अपने देशों पर अधिकार करके महाराष्ट्र देशों पर लपके। यह बात वीररमणी अहल्याबाई से नहीं देखी गई। इन्होंने अपनी सेना सिंधिया की सहायता के लिए भेजी। फिर क्या था, राजपूतों ने अपने जिन किलों का उद्धार किया था वे भी इनके हाथ से निकल गए। अंत में, भीमसिंह को अपनी अकर्मण्यता का फल चखना पड़ा था। (टाड्स राजस्थान)

(२) (देखो पद्मिनी)।

(३) मारवाड़ के राजा। मारवाड़ के राजा विजयसिंह की मृत्यु होने पर उनके पौत्र भीमसिंह जयसलमेर से मारवाड़ जोधपुर आए और वहां आकर उन्होंने राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया। विजयसिंह के मध्यमपुत्र जालिमसिंह मारवाड़ के सिंहासन के अधिकारी थे। वे भी पिता की मृत्यु का समाचार पाकर चले। परंतु वे मेड़ता नामक स्थान में शुभ दिन और शुभ मुहूर्त में राजधानी में प्रवेश करने के लिए ठहर गए। जालिमसिंह जैसे ही नगर के द्वार पर आए वैसे ही उन्होंने सुना कि भीमसिंह के मस्तक पर मारवाड़ का मुकुट शोभा दे रहा है। जालिमसिंह की सभी आशाएं धूलि में मिल गईं। जब भीमसिंह ने सुना कि जालिमसिंह आया है तब उसने अपनी सेना को उसे पकड़ने के लिए भेजा। जालिमसिंह भागकर उदयपुर के राणा की शरण में गया। भीमसिंह ने मारवाड़ के सिंहासन पर बैठते ही पैशाचिक अत्याचार करना प्रारंभ कर दिया था। इसने अपने चाचाओं को भी मरवा डाला था। मानसिंह से लड़ाई बहुत दिनों तक चली। इसका विषैला फल यहां तक हानिकारक हुआ कि भीमसिंह तो खराब हुए ही, समूचा मारवाड़ नष्टभ्रष्ट हो गया।

(टाड्स राजस्थान)

(४) कोटे के राजा। रामसिंह के मरने के उपरांत भीमसिंह कोटे के राजा हुए। हाड़ा जाति के इतिहास में लिखा है कि भीमसिंह के राज्य के समय में कोटा राज्य की बड़ी उन्नति हुई। बादशाह बहादुरशाह के मरने पर और फर्रुखसियर के दिल्ली के सिंहासन पर बैठने के समय दोनों सैयदभाई प्रबल शक्ति से भारत का शासन कर रहे थे। राव भीमसिंह ने उन्हींका पक्ष ग्रहण किया और उनकी नीति का अनुकरण करके अपनी उन्नति का भी उपाय निकाल लिया। माधोसिंह के समय में कोटे का राज्य तीसरी श्रेणी का समझा जाता था, परंतु भीमसिंह की बुद्धिमत्ता से उसे प्रथम श्रेणी का पद मिला। इस अतर्कित उन्नति के लिए राव भीमसिंह पर स्वार्थीपन अथवा स्वजाति-द्रोह का भी कलंक लगाया जा सकता है।

कोटे के इतिहास से जाना जाता है कि प्रसिद्ध कुलीचखां ने, जिसने इतिहास में अपना निजामुलमुल्क नाम धारण करके हैदराबाद का राज्य स्थापन किया था, दिल्ली के बादशाह की अधीनता न मानकर दिल्ली के अधीन देशों को लूटना-खसोटना आरंभ कर दिया। बादशाह ने उसको दमन करने के लिए जयपुर के राजा जयसिंह, कोटे के राजा भीमसिंह और नटवर के राजा भीमसिंह की अधीनता में एक सेना भेजी। भीमसिंह कुलीचखां के मित्र थे। अतएव कुलीचखां ने उन्हें एक पत्र भेजा जिसमें लिखा था कि मैं दिल्ली के बादशाह की कुछ भी हानि नहीं करता। षड्यंत्री जयसिंह की यह चालाकी है। इस कारण आप उनपर विश्वास न करें और मेरी दक्षिण की यात्रा में रोक-टोक न करें। भीमसिंह ने उत्तर दिया—मुझे स्वामी की आज्ञा मिली है, उसका पालन मैं अवश्य करूंगा। आप तैयार हो जाएं। भीमसिंह और गजसिंह दोनों कुलीचखां के कुचक्र से मारे गए। (टाड्स राजस्थान)

भीमसेन—(१) द्वितीय पांडव। ये पांडु के क्षेत्रज-पुत्र थे। ये कुंती के गर्भ से और पवनदेव के औरस से उत्पन्न हुए थे। भीम और दुर्योधन, ये दोनों समवयस्क थे। ये दोनों एक ही दिन उत्पन्न हुए थे। भीम अत्यंत बलवान् थे। दुर्योधन आदि कोई भी मल्लयुद्ध में भीम की बराबरी नहीं कर सकता था। इस कारण दुर्योधन सदा भीम से जला करता था और भीम को मारने के लिए सदा प्रयत्न किया करता था। एक दिन छिपकर दुर्योधन ने भीम को विष पिलाकर जल में फिंकवा दिया। बहते-बहते भीम नागलोक में पहुंचे। वहां नागों ने उपचार करके भीम के प्राण बचाए। नागलोक से लौटकर भीम ने युधिष्ठिर से दुर्योधन के दुराचारों का वर्णन किया। दुर्योधन ने अन्य पांडवों के साथ भीम को वारणावत नगर में लाक्षागृह में जला देने का भी प्रयत्न किया था। भीम ने दुर्योधन के बुरे भावों को शीघ्र ही जान लिया और वे लाक्षागृह में अग्नि लगाकर माता कुंती, द्रौपदी और अपने भाइयों को लेकर द्रुपदराज्य में चले गए। द्रुपद के राज्य में जाने से पहले भीम ने हिडिंब राक्षस को मारकर उसकी भगिनी हिडिंबा को ब्याहा था। हिडिंबा के गर्भ से भीम का घटोत्कच नामक एक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ था।

पांचाल नगरी में द्रौपदी की प्राप्ति होने के पश्चात् भीम युधिष्ठिर आदि को साथ लेकर इंद्रप्रस्थ गए। वहां युधिष्ठिर ने बड़े समारोह से राजसूय-यज्ञ का अनुष्ठान किया। श्रीकृष्ण और अर्जुन के साथ भीमसेन मगध राज्य गए और वहां उन्होंने जरासंध का वध किया। दुर्योधन ने कपट से जुए के खेल में युधिष्ठिर को परास्त करके द्रौपदी का तिरस्कार किया था। भीम ने द्रौपदी के अपमान का बदला लेने के लिए सभास्थान में सबके सामने प्रतिज्ञा की कि मैं दुर्योधन को समस्त भाइयों के साथ मार डालूंगा। दु:शासन का हृदय तोड़कर रुधिर पीऊंगा और गदा की मार से दुर्योधन के ऊरुदेश को तोड़ डालूंगा। कुरुक्षेत्र के युद्ध में भीम ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया था। पांडवों के महाप्रस्थान के समय द्रौपदी, सहदेव, नकुल और अर्जुन के पतन के अनंतर भीम का पतन हुआ था। उस समय युधिष्ठिर बोले, तुम भोजन दूसरों को न देकर स्वयं अधिक भोजन करते थे और अपने को अद्वितीय बलशाली समझकर अहंकार करते थे, इसी कारण तुम यहां पतित हुए हो। भीमसेन ने वहीं प्राणत्याग किया।

(२) विदर्भराज। ये दमयंती के पिता थे।

भीषम कवि—ये हिंदी के कवि थे और इनका जन्म सं० १६८१ वि० में हुआ था। इनके लिखे कवित्त हजारा में पाए जाते हैं।

भीषमदास—ये हिंदी के भक्त-कवि थे। रागसागरोद्भव तथा रागकल्पद्रुम में इनके पद पाए जाते हैं।

भीष्मक—विदर्भ राज्य का राजा । यह रुक्मिणी का पिता था ।

भीष्म पितामह—महाराज शंतनु के ज्येष्ठ पुत्र । ये गंगा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । राजा शंतनु ने गंगा से विवाह करने के समय यह प्रतिज्ञा की थी कि वे अपनी पत्नी के किसी कार्य में बाधा नहीं डालेंगे और कभी उसको कुवचन नहीं कहेंगे । गंगा के गर्भ से आठ पुत्र उत्पन्न हुए थे । उनमें सात पुत्रों को गंगा ने जल में डुबो दिया । पत्नी के वियोग-भय से शंतनु कुछ भी नहीं बोल सके । आठवें गर्भ से भीष्म उत्पन्न हुए । इस पुत्र की रक्षा के लिए शंतनु ने पत्नी के प्रति कटु वाक्यों का प्रयोग किया । गंगा उसी समय पहली प्रतिज्ञा के अनुसार शंतनु को छोड़कर चली गई । शंतनु ने पुत्र का नाम गांगेय या देवव्रत रखा ।

तदनंतर एक दिन शंतनु यमुना के तीर गए और वहां वसु नामक दासराज की कन्या को देखकर उसपर मुग्ध हुए और उन्होंने दासराज की कन्या सत्यवती को ब्याहने का प्रस्ताव किया । दासराज ने कहा—मुझे अपनी कन्या का विवाह कर देने में कुछ आपत्ति नहीं है, परंतु इसके लिए आपको एक प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी और वह यह कि मेरी कन्या से जो पुत्र हो वही आपका उत्तराधिकारी समझा जाए । शंतनु ने दासराज के प्रस्ताव पर अपनी सहमति न दी और वे दुःखित होकर राजधानी में लौट आए । यह बात छिप न सकी ।

देवव्रत ने भी इस बात को जान लिया । वे दासराज के समीप गए और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं विवाह नहीं करूंगा और सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न पुत्र ही राजा होगा । इस भीषण प्रतिज्ञा को सुनकर स्वर्ग से देवों ने उनपर पुष्पवृष्टि की । देवव्रत ने इस भीषण प्रतिज्ञा का पालन किया था । इसी कारण वे भीष्म नाम से प्रसिद्ध हुए । भीष्म के कहने से शंतनु ने सत्यवती को ब्याहा ।

शंतनु की मृत्यु होने पर भीष्म ने विमाता सत्यवती के अनुरोध से राज्य का शासन किया था क्योंकि उस समय विचित्रवीर्य बालक थे । भीष्म ने काशीराज की अम्बिका और अम्बालिका नामक दो कन्याओं को ले आकर उनसे विचित्रवीर्य का ब्याह कर दिया था । कुरुक्षेत्र के युद्ध में कौरव पक्ष की ओर से भीष्म प्रतिदिन पांडवों की दस हजार सेना का नाश करते थे । दस दिन युद्ध करने पर भीष्म ने अर्जुन के बाण से व्यथित होकर शरशय्या ग्रहण की । उस समय सूर्य दक्षिणायन थे इसलिए उन्होंने प्राणत्याग नहीं किया । कुरुक्षेत्र के युद्ध के अंत में युधिष्ठिर ने भीष्म से अनेक उपदेश ग्रहण किए थे । महाभारत के समस्त शांतिपर्व में यही उपदेश भरे हैं ।

भुवनेश्वर—इस गांव का धार्मिक, प्राकृतिक और स्वास्थ्यप्रद आदि अनेक दृष्टियों से महत्त्व है । यहां पर बिंदुसागर जैसे सुंदर सरोवर हैं । केदारगौरी सरोवर का जल मंदाग्निनाशक कहा जाता है । इसके नामकरण का आधार भगवान् लिंगराज या त्रिभुवनेश्वर (६६७-६८ ई०) अथवा भुवनेश्वर का मंदिर न केवल अपनी धार्मिक गरिमा के कारण, अपितु स्थापत्य की दृष्टि से भी प्रशंसनीय है । इस मंदिर के रूप में भारत का स्थापत्यशास्त्र मूर्तित हुआ है । इसकी विशालता का अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है । इसका विस्तार साढ़े चार एकड़ भूमि में हुआ है । यहां पर परशुरामेश्वर का भी एक मंदिर बना है । इसी पुराने भुवनेश्वर के समीप ही उड़ीसा की नई राजधानी भुवनेश्वर नाम से बसाई गई थी ।

भूधर कवि—हिंदी के कवि । ये काशी के वासी थे । इनका जन्म सं० १७०० वि० में हुआ था । इनके लिखे कवित्त हजारा में पाए जाते हैं ।

भूपति कवि—ये हिंदी के कवि अमेठी के महाराज थे । इनका असली नाम राजा गुरुदत्तसिंह बंधल था । सं० १८०३ वि० में इनका जन्म हुआ था । ये महाराज स्वयं तो कवि थे ही, इसके अतिरिक्त ये कवियों के प्रधान आश्रयदाता भी थे । कवींद्र आदि कवि इनकी ही सभा में थे ।

भूपनारायण कवि—ये कवि जाति के भाट थे और काकूपुर जिला कानपुर के रहने वाले थे । ये सं० १८५६ वि० में उत्पन्न हुए थे । शिवराजपुर के चंदेले क्षत्रिय राजाओं की वंशावली इन्होंने बनाई है ।

भूमि—एक महीयसी देवी । यह ब्रह्मा की पुत्री और भगवान् नारायण की पत्नी थी । जब भगवान् नारायण ने वराहावतार धारण किया तो इसने एक पुत्र को जन्म दिया था, जिसे भौम या नरकासुर नाम से कहा गया है । श्रीकृष्ण ने जब भौमासुर का वध किया तो यह स्वयं प्रकट हुई और इसने अदिति के दोनों कुंडल लौटाने के साथ-साथ श्रीकृष्ण से भौमासुर की संतान-रक्षा के लिए प्रार्थना की थी । एक बार यह दैत्यों द्वारा त्रसित हुई । तब वराहावतार

विष्णु ने इसकी रक्षा की। परशुराम द्वारा क्षत्रिय-संहार हो जाने के बाद इसने कश्यप प्रजापति से 'सर्वसमर्थ' भूपाल नियुक्त करने की प्रार्थना की थी। सम्राट् पृथु वैन्य ने इसका दोहन किया था। कश्यप ऋषि द्वारा पुनः स्थिर करने के कारण इसका एक नाम 'काश्यपी' भी पड़ा। संजय ने धृतराष्ट्र से इसकी महिमा का विस्तार से कथन किया है।

(महाभारत)

भूमिहार—एक जातिविशेष। यह मैथिल ब्राह्मणों की एक शाखा है। इनकी उत्पत्ति के विषय में यह किंवदंती प्रचलित है—परशुराम ने जब समस्त पृथ्वी को क्षत्रियों से हीन कर दिया और पृथ्वी से क्षत्रिय नाम उठ गया, तब ब्राह्मणों ने क्षत्रियों की संपत्ति ले ली। उन लोगों ने ब्राह्मणोचित क्रिया-कर्म त्याग करके राज्य-शासन करना आरंभ कर दिया। ब्राह्मणों के आचार-विचार उनसे लुप्त होने लगे और क्षत्रियों के क्रिया-कर्म, आचार-विचार उनमें आने लगे। कुछ दिनों तक तो उनका परिचय ब्राह्मण शब्द से होता रहा, परंतु अधिक समय बीत जाने से उनके नाम और जाति की नयी सृष्टि हुई। अब वे भूमिहार ब्राह्मण नाम से परिचित होते हैं।

भूरिश्रवा—एक महावीर राजा। ये चंद्रवंशी राजा सोमदत्त के पुत्र थे। महाभारत के युद्ध में इन्होंने दुर्योधन का पक्ष ग्रहण किया था। उसी युद्ध में अर्जुन ने इनके हाथ काट डाले थे। अनंतर सात्यकि ने इनका सिर काट डाला। (महाभारत)

इनके विषय में जनश्रुति यह है कि काशी रामनगर के पास भुइली नामक गांव में इनकी राजधानी थी। अभी उस गांव में टूटे-फूटे खंडहर वर्तमान हैं, जो इस बात के साक्षीस्वरूप हैं कि यहां किसी समय एक बड़े प्रभावशाली राजा की राजधानी थी। वहां हनुमानजी की एक बड़ी विशाल मूर्ति है। इसके विषय में लोग कहते हैं कि राजा भूरिश्रवा इस मूर्ति को जीतकर ले आए थे।

भूषण कवि—ये काश्यपगोत्री कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। कानपुर जिले के अंतर्गत टिकमापुर नामक गांव में ये रहते थे। संस्कृत के पंडित लोग त्रिविक्रमपुर का अपभ्रष्ट रूप टिकमापुर बताते हैं। इन वीरकवि के पिता का नाम रत्नाकर था।

शिवसिंहसरोज में लिखा है—रत्नाकर जी अपने गांव से आधा कोस दूर एक देवी के स्थान पर नित्य दुर्गापाठ करने जाते थे। देवी का नाम था—'वनकी भुंइया'। एक दिन भगवती प्रसन्न हुईं और उन्होंने चार भक्तों के मुंड दिखाकर कहा—देखो, ये ही चारों तुम्हारे पुत्र होंगे। देवी की वाणी सच्ची हुई। रत्नाकर जी के चार पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम ये थे—चिंतामणि, भूषण, मतिराम और जटाशंकर या नीलकंठ।

कहते हैं, भूषण को पहले कविता का कुछ भी बोध नहीं था। इनके बड़े भाई चिंतामणि दिल्लीपति औरंगजेब के प्रसिद्ध दरबारी कवि थे। चिंतामणि के अर्जित धन से भूषण का भी काम चलता था। लोग कहते थे कि चिंतामणि कमाऊ पूत है और भूषण 'घररहा' कुपूत है। एक दिन भूषण की भौजाई ने अपने पति के कमाऊ पूत होने का और भूषण के कुपूत होने का बड़े तीक्ष्ण शब्दों में ताना दिया। भूषण उस ताने को न सह सके। वे घर छोड़कर कुमायूं नरेश के दरबार में पहुंचे। इस बीच में उन्होंने कविता रचने का अभ्यास कर लिया। कुमायूं नरेश ने उनके 'उदलत मद अनुमद जो जलधि जल' कवित्त पर प्रसन्न होकर उन्हें एक लाख रुपये दिए और कहा—"तुम्हें ऐसा दानी नहीं मिलेगा।" भूषण ने भी इस गर्वोक्ति का उचित उत्तर दिया—"आप जैसे दाता तो बहुत हैं, परंतु मुझ जैसा त्यागी याचक आपको नहीं मिलेगा।"—यह कहकर भूषण ने उस धनराशि को तृण के समान त्याग दिया।

भूषण पन्ना के महाराज प्रातःस्मरणीय छत्रसाल के दरबार में छः महीने तक रहे थे। और उन्हींके नाम पर कवि ने 'छत्रसाल दशक' लिखा। औरंगजेब को हिंदी कविता से बड़ा प्रेम था। वह समझता था कि बिना इसकी सहायता के मेरे अत्याचार छिप नहीं सकते। कई कवीश्वर अपनी कविता से बादशाह को प्रसन्न किया करते थे। कवीश्वर लोग औरंग को नौरंग कहा करते थे। एक दिन औरंगजेब ने मयूर-सिंहासन पर बैठकर कहा—"तुम लोग मेरी प्रशंसा ही किया करते हो, क्या मुझमें कोई ऐब नहीं है? मेरे दोषों को भी कहो, तब मालूम पड़े कि तुम सत्यवादी हो।" बादशाह का अभिप्राय यह था कि वे इस बहाने अपने निंदकों का पता लगाएं। कवि-समाज चुप। चिंतामणि के साथ रहने से भूषण भी दरबार में आया-जाया करते थे। सब कवियों को चुप देखकर भूषण बोले—"जहांपनाह, खुशामद खुदा को भी

प्यारी है, इसी कारण हम लोग आपके दोषों को छिपाकर केवल गुण ही बखानते हैं। परंतु जब आप हम लोगों की सत्यवादिता की परीक्षा लेना चाहते हैं तब आपके दोषों को कहने में कोई डर नहीं करना चाहिए। आप सत्य ही सुनना चाहते हों तो सुनिए, मैं हाजिर हूं। आप मर्द हों तो सुनें।"

औरंगजेब सोचने लगा, न मालूम यह नौजवान कवि क्या कह उठे। पर कह चुका था इसलिए बोला —"इसी समय मेरी सच्ची तारीफ करो।" भूषण ने कहा—"बादशाह सलामत, मैं जानता हूं कि सच्ची तारीफ करने से मेरा सिर धड़ से अलग किया जाएगा, अतः आप अपनी इस आज्ञा को रद्द करें। बादशाह बोला—"अच्छा यही होगा।" पुनः भूषण बोला—"इस समय तो आप मेरी बात मानते चले जाते हैं, परंतु जिस समय सच्ची प्रशंसा सुनेंगे उस समय ये सब बातें भूल जाएंगी। अतः मेरा वध न करने का फरमान लिख दें और सब दरबारी अमीरों की उसपर गवाही लिखवा दें।" तब भूषण ने कहा—

"किबले की ठौर बाप बादशाह शाहजहां (१) हाथों तसबीह लिए प्रात उठि बन्दगी को (२)" ये दो कवित्त पढ़कर "सौ-सौ चूहे खाय कें बिलारी चलीं तप कें" पर समाप्त किया। औरंगजेब इन कवित्तों को सुनकर व्याकुल हो ही रहा था कि उधर कवि और राजपूतों ने कहा—"शाबाश भूषण, धन्य भूषण!" बादशाह की क्रोधाग्नि में मानो घृताहुति पड़ी। तलवार खींचकर बादशाह स्वयं भूषण को मारने को उठा। पर न्यायी मुसाहब और सरदारों ने अपकीर्ति और प्रतिज्ञा-लंघन का डर दिखाकर उसे रोक दिया। बादशाह ने कहा, "जा भूषण, मुंह मत दिखा।" भूषण घर आए और उन्होंने अपनी केसर नाम की घोड़ी सजाई। औरंगजेब खुशामदी कवियों को साथ में लेकर जामा मस्जिद में गया। इतने में भूषण कवि भी अपनी घोड़ी पर सवार होकर उधर से ही निकले। बादशाह को उन्होंने सलाम नहीं किया, परंतु उसके साथी एक कवीश्वर को उन्होंने नमस्कार किया। इससे औरंगजेब और भी जल गया। उसने एक कवि को संकेत किया कि इससे पूछो, अब यह कहां जाएगा। कवि ने कहा—"है रंग नौरंगशाह को और न दूजो रंग" भूषण समझ गए उन्होंने उत्तर दिया—

कितेक देश जिते दल के बल···
सो रंग है शिवराज बली
जिन नौरंग में रंग एक न राख्यो।

इस समय औरंगजेब की जैसी दशा हुई उसे कौन बतला सकता है। उस समय उसके मुंह से निकला—"हाय, मैंने भूषण को क्यों न मरवा डाला!" इसका अर्थ यह था—शिवाजी एक तो वैसे ही वीर है, जब उसे भूषण जैसा कवि वीरत्व का बढ़ावा देगा, उस समय न मालूम उसकी सेना क्या कर डालेगी! यदि मैं भूषण को मरवा डालता तो अच्छा होता।

शिवाजी और भूषण का सम्मिलन अपने लिए भयंकर समझकर उसने कई सवार भूषण को पकड़ने के लिए भेजे थे। परंतु वे भूषण की घोड़ी न पा सके। अंत में, वे छूछे हाथ लौट आए। भूषण जंगली और पहाड़ी मार्गों से रायगढ़ पहुंचे। नगर के बाहर ही एक देवी के मंदिर के समीप विश्राम करने के लिए वे उतरे। इतने में एक तेजस्वी सवार घोड़े को टहलाता हुआ भूषण को दिखाई पड़ा। उसका उन्नत तथा तेजस्वी स्वरूप देखकर भूषण ने जाना, यह कोई राजपुरुष है। उस पुरुष ने पूछा—"तुम कौन हो?" भूषण ने अपनी सब कहानी कह सुनाई।

तब उस पुरुष ने कहा—"अवश्य ही आपने शिवाजी की प्रशंसा के कवित्त सुनाए होंगे।" भूषण ने कहा—"आप पहले यह तो बताएं कि आप हैं कौन?" उसने उत्तर दिया—"मैं शिवाजी महाराज का सेनापति हूं। अतः अपने स्वामी की प्रशंसा अवश्य सुनूंगा।" भूषण ने अपना यह कवित्त पढ़ा—

इन्द्र जिमि जम्भ पर वाडव सुअम्भ पर
रावण सदम्भ पर रघुकुलराज है।
पौन वारिवाह पर शम्भु रतिनाह पर
ज्यों सहस्रबाह पर राम द्विजराज है।
दावा द्रुम दुण्ड पर चीता मृग झुण्ड पर
भूखन वितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तिमिरंश पर कान्ह जिमि कंस पर
त्यों म्लेच्छ वंश पर सेर शिवराज है॥

यह कवित्त क्या था मानो इंद्रजाल था। उस पुरुष का हृदय वीरता से फूल उठा। बोला—"फिर पढ़ो, फिर पढ़ो।" इस प्रकार उसने इस कवित्त को बावन बार पढ़वाया। बार-बार कवित्त सुनने पर भी उस पुरुष की तृप्ति नहीं हुई परंतु भूषण कहते-कहते थक गए थे। तब "आप दरबार में आइए"—कहकर वह पुरुष चला गया।

दूसरे दिन भूषण दरबार में गए। वहां उस सेनापति को बहुत ढूंढ़ा परंतु पता नहीं लगा। अंत में, भूषण ने अपने कवित्त पढ़े। सारी सभा मुग्ध हो गई, तदनंतर एक सेनानी उठा और भूषण को योग्य आसन पर बैठा दिया। भूषण ने जब ध्यान से देखा तो उन्हें मालूम पड़ा कि वह सेनापति स्वयं महाराज शिवाजी ही थे।

इससे भूषण जरा घबराए। महाराज शिवाजी ने कहा, "घबराओ मत। तुम मेरे दरबार की शोभा बढ़ाओ। यहां औरंगजेब का कुछ भी भय नहीं है। आप जैसे कवि की मुझे आवश्यकता थी।"

महाराज की यह अभयवाणी सुनकर भूषण ने तीन और कवित्त पढ़े। वह सभा वीरोल्लास से गरज उठी। महाराज ने बावन गांव, हाथी आदि की उन्हें खिल्लत दी। भूषण ने कहा—"मुझे इन सबकी आवश्यकता नहीं। मैं आपको धर्मरक्षक और गोपालक समझकर आया हूं। आप उनकी रक्षा करें।"

भूषण कवि शिवाजी के साथ स्वयं युद्ध में जाते थे और वीरों का उत्साह बढ़ाते थे। इस कविराज का नाम भूषण नहीं था। इनके असली नाम का किसीको कुछ पता भी नहीं है। इन्होंने शिवराजभूषण में लिखा है कि "चित्रकूट-नरेश सोलंकी महाराज ने मुझे कवि-भूषण की उपाधि दी।"

कई वर्षों के बाद जब ये घर जाने लगे, तब महाराज ने बड़े सम्मान से इनको विदा किया। मार्ग में ये बुंदेला राज्य से होकर निकले। महाराज छत्रसाल ने इनकी पालकी कंधे पर रखकर ढोई। उन्होंने कहा, "मैं दे तो क्या सकता हूं, इससे मैं आपकी सेवा ही करूंगा।" तब महाराज की गुणग्राहकता को सराहकर इन्होंने एक कवित्त पढ़ा—

साहु को सराहूं कि सराहूं छत्रसाल को।

दिल्ली के बादशाह को भूषण के घर आने की खबर मिली। बादशाह ने इन्हें बुलाया। इन्होंने कहलाया—"मैं शिवाजी की प्रशंसा करता हूं यदि आपको वह सुनना हो तो मैं आ सकता हूं।" बादशाह ने कहलाया—"आओ, तुम्हारी सभी बातें हमें स्वीकार हैं।" भूषण ने शिवराज की प्रशंसा के कवित्त पढ़े। शिवाजी ने जब सुना कि भूषण दिल्ली गए हैं, तब उन्होंने उनको अपने यहां बुला लिया। तब से भूषण वहीं रहे। भूषण हजारा, भूषण उल्लास और दूषण उल्लास ये तीन ग्रंथ भूषण के लिखे और भी सुने जाते हैं। परंतु वे अभी तक मिले नहीं हैं। हजारा में भी भूषण के नवरसमय ७० कवित्त हैं। पर रौद्र, वीर, भयानक, अद्भुत—इन्हीं रसों पर इनके कवित्त अधिक हैं। इन्होंने अपने कवित्तों में रूसी, फ्रांसीसी आदि का भी वर्णन किया है, परंतु वे सब अब नहीं मिलते।

भृगु—विख्यात मुनि। प्राचीन काल में रुद्र वारुणी मूर्ति धारण करके एक यज्ञ का अनुष्ठान करते थे। उस यज्ञ में देवपत्नी और देवकन्या गण उपस्थित हुई थीं। उस समय ब्रह्मा दीक्षित होकर यज्ञाग्नि में आहुति देते थे। देवकन्याओं को देखकर ब्रह्मा कामातुर हुए और उनका रेतःपात हुआ। अनंतर ब्रह्मा ने अपनी किरणों से उस रेतस् को लेकर अग्नि में आहुति दी। आहुति देते ही अग्निशिखा के साथ भृगु, धूमयुक्त अंगिरा और निर्धूम अंगार से कवि की उत्पत्ति हुई। वारुणीमूर्तिधारी महादेव बोले—"जब यह यज्ञ हमारे द्वारा आरंभ किया गया है तब ये हमारे पुत्र हैं।" अग्नि बोले—"जब ये हमको आश्रय करके हमारे अंग से उत्पन्न हुए तब ये मेरे ही पुत्र हैं।" ब्रह्मा बोले—"ये हमारे वीर्य से उत्पन्न हुए हैं अतः हमारे ही ये पुत्र हैं।" इसी प्रकार तीनों देवताओं में विवाद होने लगा। तब अन्य देवताओं ने मध्यस्थ बनकर तीनों को एक-एक पुत्र दिलवा दिया। भृगु महादेव को, अंगिरा अग्नि को और कवि ब्रह्मा को मिले।

एक बार भृगु मुनि ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर में कौन श्रेष्ठ है, इसकी परीक्षा लेने गए। सबसे पहले वे ब्रह्मा के निकट गए और उन्होंने ब्रह्मा के प्रति कुछ भी सम्मान नहीं दिखाया। इससे ब्रह्मा क्रुद्ध हुए और उन्होंने भृगु का तिरस्कार किया। भृगु मुनि महादेव के निकट भी गए और भृगु ने महादेव के प्रति भी कुछ भी सम्मान नहीं दिखाया। महादेव भी इनपर अप्रसन्न हुए। भृगु ने स्तुति करके महादेव का क्रोध शांत किया और वे विष्णु के यहां चले गए। उस समय विष्णु सोए हुए थे। भृगु ने विष्णु की छाती में एक लात मारी। इससे विष्णु जाग उठे। लात मारने से क्रोध करना तो दूर रहा, विष्णु उठकर मुनि की चरणसेवा करने लगे। हमारी कठोर छाती में लात मारने से मुनि के चरण में चोट आई होगी, यह समझकर विष्णु बहुत ही दुःखित हुए। इस प्रकार की ब्राह्मण-भक्ति के कारण ही विष्णु सब देवों में श्रेष्ठ समझे जाते हैं। इनके बारह पुत्र

थे, जो देवता समझे गए। उनके नाम ये थे—भुवन, भौवन, सुजन्य, सुजन, ऋतु, वसु, मूर्द्धा, त्याज्य, वसुद, प्रभव, अव्यय और दक्ष। भृगु के अन्य पुत्र च्यवन आप्लुवान विप्र कोटि के थे।

दुराचारी और उद्धत राजा वेन को इन्हीं भृगु मुनि ने राजसिंहासन पर बैठाया था।

भृगुकच्छ (भरुकच्छ)—यह नगर ऊंचे तट प्रदेश पर बसा होने के कारण ही संभवतः इस नाम से कहा गया। इसका उल्लेख अनेक ग्रंथों तथा अभिलेखों में हुआ है। 'दिव्यावदान' में इसे घनी आबादी का एक संपन्न एवं समृद्धशाली नगर कहा गया है। टालेमी ने इसे बैरीगाजा नाम से कहा है। हुविष्क के मथुरा अभिलेख तथा गर्जर जयभट्ट के दानपत्र में भी इसका उल्लेख हुआ है। सातवीं शती में ह्वेनत्संग यहां आया था। उसने इस नगर की वैभवावस्था का विस्तार से वर्णन किया है। यह एक व्यापारिक बंदरगाह था। अधिकतर विद्वानों ने इसे काठियावाड़ के आधुनिक भड़ौंच या ब्रौंच से समीकृत किया है।

भृगकच्छ—भड़ौंच नगर। यहीं पर नर्मदा समुद्र में गिरती है और यहीं पर महर्षि भृगु का आश्रम भी था।

भेल—आयुर्वेदप्रचारक प्राचीन महर्षि। चरक से यह बात प्रमाणित होती है कि भेल ऋषि प्रणीत चिकित्साशास्त्र इससे पहले प्रचलित था। आत्रेय आदि ऋषि भेल के शिष्य थे और भेल पुनर्वसु के शिष्य थे। अष्टांगसंहिताकार वाग्भट ने भेल के ग्रंथों को पढ़ा था।

भोज—वसुदेव के एक पुत्र का नाम। इन्हींसे यदुवंश में भोज नामक एक शाखा प्रचलित हुई है।

भोजकटम्—पूर्णानदी पर बसा हुआ इलिचपुर जो बरार में है। यहां रुक्मिणी का भाई रुक्मिण रहता था।

भोज कवि—(१) इनका दूसरा नाम बिहारीलाल बंदीजन था। ये चरखारी के रहने वाले थे और जाति के भाट थे। सं० १९०१ वि० में ये उत्पन्न हुए थे। चरखारी के महाराजा रतनसिंह के ये दरबारी कवि थे। इनकी कविता अद्भुत होती थी। इनका लिखा 'भोजभूषण' नामक ग्रंथ उत्तम है। ये शरफो नाम की एक वेश्या पर आसक्त थे। उसकी प्रशंसा में भी इन्होंने बहुत कवित्त लिखे हैं। इन्होंने एक और ग्रंथ लिखा था जिसका नाम रसविलास है।

(२) ये कवि ब्राह्मण थे और इन्हें मिश्र की उपाधि मिली थी। ये महाराव बुद्ध बूंदी के दरबार में थे। इनका जन्म सं० १७८१ वि० में हुआ था। मिश्रश्रृंगार नामक इनका लिखा एक ग्रंथ भी है।

भोजभद्र—ये विदर्भ के राजा थे। इन्होंने नागार्जुन की वक्तृता और धर्मव्याख्या सुनकर बौद्धधर्म ग्रहण किया था। भोजभद्र ईसवी सन् के ५६ वर्ष पूर्व उत्पन्न हुए थे।

भोजराज—इतिहासप्रसिद्ध विद्वान् और वीर राजा। इनके पिता का नाम सिंधुराज था। भोजराज कवि और ग्रंथकार थे। भोजराज के लिखे ग्रंथों में पातंजलदर्शन की वृत्ति विशेष प्रसिद्ध है। यह वृत्ति भोजवृत्ति नाम से प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त अमरटीका, चंपूरामायण, चारुचर्या, सरस्वतीकंठाभरण और राजवार्तिक भोजराज के लिखे ग्रंथ हैं। इनके शासनकाल में अलंकार, ज्योतिष और व्यवहार-विधि के अनेक ग्रंथ बने थे। भोज ने विक्रमादित्य के बत्तीस सिंहासनों का उद्धार किया था। बहुत लोग भोज और विक्रमादित्य को एक ही समझते हैं और कालिदास आदि को इन्हींकी सभा के नवरत्न बतलाते हैं। परंतु यह बात ऐतिहासिक दृष्टि से प्रमाणित नहीं होती। पहले उज्जयिनी के सिंहासन पर भोज और विक्रमादित्य नाम के अनेक राजा हो गए। भोज और विक्रमादित्य एक प्रकार से राजाओं की उपाधि हो गया था। संभव है कि विद्यानुरागी भोज ने भी कोई नवरत्नसभा स्थापित की हो। भोजप्रबंध में लिखा है कि भोजराज के पिता का नाम सिंधुल था और मुंजराज भोजराज के छोटे चाचा थे। सिंधुल की मृत्यु होने पर मुंज को सिंहासन मिला। उस समय भोजराज विद्या अर्जन करके यशस्वी हो रहे थे। मुंज को अपने राज्यच्युत होने का भय हुआ। उन्होंने अपने विश्वासी वत्सराज को भोज को मारने के लिए नियुक्त किया। परंतु दयावान् वत्सराज गुणी भोजराज को न मार सका। भोज को छोड़कर पशु के रुधिर से अपनी तलवार रंगकर वह आया। मुंज को भोज के मारे जाने का संवाद सुनाकर उन्हें एक पत्र दिया। उस पत्र में नीचे लिखी हुई बात लिखी थी—नृपशिरोमणि मांधाता, रावणारि श्रीरामचंद्र और पांडवश्रेष्ठ युधिष्ठिर—इन सभी ने पृथ्वी यहीं छोड़कर प्रस्थान किया है, परंतु अब यह पृथ्वी मुंज के साथ पाताल जाएगी।

इन बातों को सुनकर मुंज को बोध हुआ। वे अपने कुकर्म पर पछताने लगे। उनकी दुर्दशा देखकर

वत्सराज ने सच्ची बात कह सुनाई और भोज को ले आकर उनके सामने कर दिया। मुंज भोज को राज्य देकर भगवद्‌भजन करने लगे। परंतु न मालूम भोजप्रबंधकर्ता बल्लालसेन को यह बात कहां से मिली। उन्होंने ऐसी बेतुकी बात किस आधार पर लिखी। भोजराज के पिता सिंधुराज थे और मुंजराज उनके छोटे भाई तथा उनके बाद राजगद्दी पर बैठे। यह बात सिंधुराज के जीवनचरितरूप नवसाहसांक के विरुद्ध है। यह बात तो सिद्ध ही है कि मुंज की सभा में धनिक, धनंजय, पद्मगुप्त आदि कवि थे। पद्मगुप्त ने ही नवसाहसांकचरित लिखा है। उन्होंने उसमें लिखा है—

दिवं यियासुर्मम वाचि मुद्रा-
मदत्त यां वाक्पतिराजदेवः।
तस्यानुजन्मा कविबान्धवस्य
भिनत्ति तां सम्प्रति सिन्धुराजः॥

अर्थात् वाक्पतिराजदेव (मुंज) के स्वर्ग जाने पर मेरी वाणी रुक गई थी, मानो उन्होंने मेरी वाणी में ताला लगा दिया था। आज उन्हीं कवि बांधव के छोटे भाई सिंधुराज मेरी वाणी का ताला खोल रहे हैं।

इससे स्पष्ट प्रमाणित है कि सिंधुराज मुंजराज के छोटे भाई थे।

भोजराज जिस प्रकार विद्वान् थे उसी प्रकार वीर भी थे। महमूद गजनी ने जब कालिंजर दुर्ग पर आक्रमण किया था तब युद्ध करके इन्होंने अधिक प्रतिष्ठा पाई थी। इन्होंने चेदि और चालुक्य राज्यों को भी अपने अधिकार में कर लिया था। इसी कारण चेदि और चालुक्य के राजा गुजरात के राजा के साथ मिलकर इनपर चढ़ आए थे। इसी युद्ध में भोजराज १०६२ ई० में मारे गए।

भोज राज्य—महाभारत तथा पुराणादि अन्य ग्रंथों में राजा भोज तथा भोजराज्य का उल्लेख पाया जाता है। भोजराज्य किस समय प्रतिष्ठित हुआ था, इस विषय में दो प्रकार के मत प्रचलित हैं। यदुकुल में वसुदेव के एक पुत्र का नाम भोज था। उसीके नामानुसार भोज-राज्य का नामकरण हुआ था, ऐसा अनुमान बहुतों का हैं। कोई-कोई कहते हैं—परमारवंशी राजपूत-नृपति राजा भोज सबसे अधिक प्रसिद्ध थे। उन्हींके नामानुसार भोज राज्य का नाम पड़ा है। परंतु यह बात ठीक नहीं मालूम पड़ती, क्योंकि परमारवंशी राजा भोज ख्रीष्टीय १०वीं सदी में उत्पन्न हुए थे। परंतु उसके बहुत पूर्व काल से भोज राज्य और राजा भोज की प्रसिद्धि चली आती है। महाभारत में धृत-राष्ट्र के प्रश्न के उत्तर में संजय ने भोज राज्य का उल्लेख किया था। वहां भोज राज्य उत्तर देश का जनपद बतलाया गया है। मत्स्यपुराण में भी भोज राज्य का प्रसंग उठाया गया है। वहां इस राज्य को विंध्याचल के पीछे स्थित जनपद बतलाया गया है। इन सब बातों से बड़े प्राचीन समय से इस राज्य की स्थिति का पता लगता है। परंतु प्राचीन भोज राज्य इस समय भारत के किस प्रदेश को कहते हैं ? पुरा-तत्त्ववेत्ताओं का मत है कि विक्रमादित्य के समय में जो मालव या उज्जयिनी राज्य था, अति प्राचीनकाल में वही भोज राज्य नाम से प्रसिद्ध था और बाद में भी वही भोज राज्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। विक्रमादित्य के समय में अथवा उनसे कुछ पहले से ही भोज राज्य का नाम लुप्त हो गया था। उनके पीछे जब राजा भोज हुए तो उनकी प्रसिद्धि के साथ ही साथ भोज राज्य की कीर्ति भी चमक उठी। यदुवंशी राजा भोज ने किस नगरी में अपनी राजधानी बनाई थी और उस समय उसका क्या नाम है, यह बतलाना कठिन है। परंतु राजा भोज ने किस नगर में राज्य किया था उसका परिचय इस समय तक भी वर्तमान है। मालवा प्रदेश में धार नामक जो नगर वर्तमान है, उसी नगर में राजा भोज की प्राचीन राजधानी थी। परमारवंशी राजा भोज महमूद गजनी के समकालिक थे। ख्रीष्टीय नवम शताब्दी के प्रारंभ में आबू पर्वत के निकटस्थ अचलगढ़ गिरिदुर्ग से परमारवंशी राज-पूत क्षत्रियों ने जाकर मालवा में अपनी राजधानी स्थापित की थी। परमारवंशी राजा उपेन्द्र ने सबसे पहले मालवा के धार नगर में अपनी राजधानी स्था-पित की थी। उपेन्द्र से पांचवीं पीढ़ी में राजा हर्ष-देव उत्पन्न हुए थे। उसी समय राष्ट्रकूटवंशियों का अभ्युदय हुआ था। इस कारण राज्य-रक्षा के लिए हर्षदेव को बड़े-बड़े कष्ट उठाने पड़े थे। हर्षदेव के पुत्र का नाम मुंजराज था। ये कवि और विद्योत्साही थे। उनके राज्यकाल में धनिक, धनंजय, हलायुध, पद्मगुप्त आदि ग्रंथकार राजसभा की शोभा बढ़ा रहे थे। राजा मुंज ने त्रिपुर के चेदियों को परास्त किया था। कल्याण के राजा तैलप को इन्होंने युद्ध में सोलह बार हराया था, परंतु १७वें युद्ध में वे स्वयं पकड़े गए।

वे सन् ६६३ ई० में भागने की चेष्टा में मारे गए।

भोलानाथ ब्राह्मण—ये कन्नौज के निवासी और हिंदी के कवि थे। इन्होंने छंदों में बैतालपचीसी लिखा है।

(दोहा) कोई जो विक्रय करे, वस्तु सुधन के हेत।
सदा चकरिया आपनो, तन विक्रय करि देत॥

भोलासिंह—ये हिंदी के कवि थे और पन्ना बुंदेलखंड के रहने वाले थे। सं० १८६६ वि० में ये उत्पन्न हुए थे।

भौण्डिकेय—हैहयवंश की एक शाखा।

भौन कवि—ये नरहरिवंशी बंदी थे और बेती जिला रायबरेली के रहने वाले थे। सं० १८८१ वि० में ये उत्पन्न हुए थे। ये महान् कवि श्रृंगाररस के वर्णन में बड़े सत्कवि और सिद्धहस्त लेखक थे। इनका लिखा अलंकार में 'श्रृंगाररत्नाकर' नाम का ग्रंथ बहुत ही सुंदर है। इनके पुत्र दयाल कवि भी एक सुकवि थे।

म

मकरध्वज—(१)—हनुमत्पुत्र। यह अपने पिता के स्वेदबिंदु से उत्पन्न हुआ था। हनुमान् का यह स्वेदबिंदु एक बार दक्षिण सागर के निवासी किसी मगर पर गिर पड़ा था, जिससे यह उत्पन्न हुआ। अहिरावण-युद्ध में इसकी भेंट हनुमान् से हुई थी।

(२) धृतराष्ट्र-शत्रु। भीम ने इसका वध किया था। इसने 'अतिरात्र' नामक युद्ध किया था, जिसके फलस्वरूप इसे विपुल धन की उपलब्धि हुई थी।

मकरन्दकर—एक प्राचीन ज्योतिषी और गणितज्ञ। इनके लिखे ज्योतिष के ग्रंथ भी प्रसिद्ध हैं।

मकरन्द कवि—(१) ये हिंदी के कवि थे और सं० १८१४ वि० में उत्पन्न हुए थे। श्रृंगाररस के ये सिद्धहस्त कवि थे। इनके लिखे कवित्त बड़े ललित हैं।

(२) ये कवि भाट थे और पुवांवा जिला शाहजहांपुर के रहने वाले थे। ये चंदन कवि के कुल में थे। हास्यरस नामक एक ग्रंथ भी इन्होंने लिखा है।

मकराक्ष—रावण के सेनापति का नाम। यह खर नामक राक्षस का पुत्र था। खर भी रावण का एक सेनापति था, परंतु वह श्रीरामचंद्र के हाथों जनस्थान में मारा गया था।

मगध राज्य—महाभारत के पश्चात् जो राज्य गौरवशाली थे, उनमें सबसे अधिक प्रतापशाली मगध राज्य था। पुराणों में लिखा है कि भारतवर्ष में जिस समय अनेक छोटे-छोटे राज्य स्थापित हुए थे उस समय ३२ राजाओं ने मगध में राज्य किया था। उन्हींके समय में २४ इक्ष्वाकु, २७ पांचाल, २४ काशेय, २८ हैहय, ३२ कलिंग, २५ अश्मक, २६ कुरु, २८ मैथिल, २३ शूरसेन और २० वीतिहोत्र वंश के राजा भिन्न-भिन्न जनपदों का शासन करते थे। उनका नाश करने के लिए महानंदीतनय महापद्म उत्पन्न हुए। ये कलि के अंश से उत्पन्न हुए थे। इन्होंने एकछत्र राज्य स्थापित किया। ये मगध के राजा थे। कुरुक्षेत्र युद्ध के दो हजार सात सौ तीस वर्ष बीतने पर ये विद्यमान थे, इसका प्रमाण पाया जाता है। इस वंश के नाश होने पर चंद्रगुप्त ने मगध का सिंहासन अलंकृत किया था। मगध के सिंहासन पर नंदवंश का नाश होने पर मौर्यवंश प्रतिष्ठित हुआ। मगध के सिंहासन पर जरासंधवंश का अंतिम राजा रिपुंजय था। मंत्री सुनीक ने उन्हें मारकर अपने पुत्र प्रद्योत को राज्य दे दिया। इस प्रकार जरासंध से अट्ठाइस राजा होने के पश्चात् शिशुनाग मगध के राजा हुए। शिशुनागवंशी दस राजाओं के शासन बीतने पर महापद्म का शासनाधिकार प्रारंभ हुआ था।

जरासंध के परवर्ती मगध के राजाओं के परिचय तथा राज्यकाल के संबंध में बहुत मतभेद पाया जाता है। मत्स्यपुराण में लिखा है—महाभारत युद्ध में जरासंधपुत्र सहदेव के मारे जाने पर सोमाधि नामक उसका दामाद गिरिव्रज का राजा हुआ। उसने पांच सौ आठ वर्ष तक राज्य किया। विष्णुपुराण में भविष्य राजवंश के वर्णन में लिखा है कि जरासंध-पुत्र सहदेव

का सोमापि नामक एक पुत्र उत्पन्न होगा और उसका वंश मगध के राजसिंहासन पर बैठेगा। उस समय उनकी राजधानी कहां थी और कितने दिनों तक उन्होंने राज्य किया था, इस विषय में विष्णुपुराण में कुछ भी नहीं लिखा है। परंतु वायुपुराण में लिखा है कि प्रसिद्ध महाभारत के युद्ध में जरासंधपुत्र सहदेव के मारे जाने पर उसका पुत्र राजर्षि सोमाधि गिरिव्रज के सिंहासन पर बैठा। उसने ५८ वर्ष राज्य किया था। उसके पुत्र श्रुतश्रवा ने ६४ वर्ष, श्रुतायु के पुत्र अयुतायु ने २६ वर्ष, उनके पुत्र निरमित्र ने सौ वर्ष, उनके पुत्र सुकृत्य ने ५६ वर्ष और उनके पुत्र बृहत्कर्मा ने २३ वर्ष राज्य किया। बृहत्कर्मा के पुत्र (नाम नहीं लिखा) इस समय मगध राज्य के सिंहासन को शोभित कर रहे हैं। ये भी २३ वर्ष राज्य करेंगे। इनके पुत्र श्रुतंजय २४ वर्ष, उनके पुत्र महाबाहु ३५ वर्ष, उनके पुत्र सूची ५८ वर्ष, उनके पुत्र क्षेम २८ वर्ष, उनके पुत्र भुवन ६४ वर्ष, उनके पुत्र धर्मनेत्र ५८ वर्ष, उनके पुत्र सुव्रत ३८ वर्ष, तदनंतर दृढ़सेन ५८ वर्ष, सुमति ३३ वर्ष, सुबल २२ वर्ष, सुनेत्र ४० वर्ष, सत्यजीत ८३ वर्ष, वीरजित् ३५ वर्ष और अंत में अरिंजय (रिपुंजय) ५० वर्ष राज्य करेंगे। इसी प्रकार बृहद्रथ से लेकर ३२ राजा एक के बाद एक उत्पन्न होकर पूर्ण एक हजार वर्ष पृथ्वीपालन करेंगे। इन सब राजाओं के नाम और राज्य के संबंध में मत्स्यपुराण में अन्य प्रकार से लिखा हुआ है। सोमाधि ५८ वर्ष, श्रुतश्रवा ६४ वर्ष, अप्रतीय २५ वर्ष, निरमित्र २४ वर्ष, सुरक्ष ५८ वर्ष, बृहत्कर्मा २३ वर्ष, सेनाजित् ५० वर्ष, श्रुतंजय ४० वर्ष, विभु २८ वर्ष, सूची ६४ वर्ष, क्षेम २८ वर्ष, अनुव्रत ६० वर्ष, सुनेत्र २५ वर्ष, निर्वृत्ति ५८ वर्ष, त्रिनेत्र २८ वर्ष, द्युमत्सेन ४० वर्ष, महीनेत्र ३३ वर्ष, अचल ३२ वर्ष और पचास वर्ष। इस प्रकार इनका राज्य-शासनकाल है। मत्स्यपुराण में मगधराजवंश का इसी प्रकार का परिचय दिया गया है। अंत में लिखा है—

> द्वात्रिंशति नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथाः।
> पूर्णंवर्षसहस्रन्तु तेषां राज्यं भविष्यति॥

वायुपुराण में लिखा है—

> द्वात्रिंशच्च नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथाः।
> पूर्णंवर्षसहस्रं वै तेषां राज्यं भविष्यति॥

यद्यपि राजाओं की संख्या और राज्यकाल के विषय में इन पुराणों में मतभेद नहीं है, तथापि प्रसंगोक्त बातों में मिलान करना कठिन है। परंतु इससे इतना पता तो अवश्य लगता है कि बृहद्रथ से लेकर (जरासंध के पिता का नाम बृहद्रथ था) अरिंजयपर्यंत ३२ राजाओं ने हजार वर्ष तक मगध पर राज्य किया। परंतु पहले हमने जो अंश उद्धृत किया है उससे यह स्पष्ट ही मालूम पड़ता है कि सोमापि से रिपुंजयपर्यंत अट्ठारह (वायुपुराण के मत से २१) राजा मगधराज्य के शासक हुए थे और उन सबका शासन समय मत्स्यपुराण के मत से ११४४ और वायुपुराण के मत से ९१३ वर्ष है। इन दोनों के अंतर का ठिकाना नहीं है। परंतु इनका अंतर मिटाने के लिए हम दो उपायों का अवलंबन कर सकते हैं। पहला तो यह कि पूर्वोक्त अट्ठारह या इक्कीस राजाओं के अतिरिक्त और चौदह या ग्यारह राजा मगध के शासक थे और उनका शासनकाल एक हजार वर्ष था। दूसरा यह कि पूर्वोक्त राजाओं के अतिरिक्त बत्तीस राजा और हुए जिनका शासनकाल हजार वर्ष है।

इस प्रकार मत्स्यपुराण के मतानुसार, जरासंधपौत्र सोमापि से बृहद्रथवंश के शेषराजा का राज्यकाल १४४ वर्ष बताया जा सकता है। मत्स्यपुराण के मत से, पुलक ने बृहद्रथवंश का नाश किया था। पुलक ने अपने स्वामी को मारकर अपने पुत्र को राज्य पर बैठाया था। उसने केवल २३ वर्ष राज्य किया था। वह कपटी धूर्त था इस कारण सामंतगण उसका सम्मान नहीं करते थे। मत्स्यपुराण में उसका नाम तक नहीं लिखा गया है। पुलक के अनंतर पालक २८ वर्ष, विशाखयूप ५३ वर्ष, और सूर्यक २१ वर्ष, राज्यशासन करते रहे। सूर्यक ने अपने पुत्र को वाराणसी का राजा बनाया था और वे स्वयं गिरिव्रज का शासन करते रहे। इसके पश्चात् शिशुनाग ने ४० वर्ष और उनके पुत्र काकवर्ण ने २६ वर्ष राज्य किया, तदनन्तर क्षेमधामा ने ४६ वर्ष, क्षेमजित् ने २४ वर्ष, विंध्यसेन ने २८ वर्ष, काण्वायन ने ९ वर्ष, भूमिमित्र ने १४ वर्ष, अजातशत्रु ने २७ वर्ष, वंशक ने २४ वर्ष, उदासी ने ३३ वर्ष, नंदीवर्द्धन ने ४० वर्ष और महानंदी ने ४३ वर्ष राज्य किया था। वायुपुराण में लिखा है कि बृहद्रथवंश का अवसान होने पर वीतिहोत्रवंश का अभ्युदय हुआ था। उस समय मुनिक नामक एक कर्मचारी ने राजा प्रद्योत को मारकर अपने पुत्र को राजा बनाया। प्रद्योत के

पुत्र ने कुछ अनीति का काम नहीं किया था, अतएव सामंतों का उसमें अनुराग था। उसने २३ वर्ष राज्य किया था।

इन राजाओं के राज्यकाल में भारतवर्ष के अन्यान्य प्रदेशों में और भी अनेक राजाओं का अभ्युदय हुआ था। उस समय इक्ष्वाकु, पांचाल, कालक, हैहय, कलिंग, शक, कुरु, मैथिल, शूरसेन आदि वंश के राजा भिन्न-भिन्न प्रदेशों में राज्य करते थे। इन क्षत्रिय-राजाओं के अंत होने पर राजा महानंदी की शूद्रा स्त्री के गर्भ से उत्पन्न महापद्म राजा हुए। कुछ दिनों के बाद वे ही भारत के एकछत्र सम्राट् हो गए। उन्होंने अट्ठाइस वर्ष राज्य किया था परंतु मत्स्य-पुराण में लिखा है—

इत्येते भवितारो वै दशद्वौ शिशुनागजाः।
शतानि त्रीणि पूर्णानि षष्टिवर्षाधिकानि तु॥

अर्थात् शिशुनागवंशी १२ राजाओं ने ३६० वर्ष राज्य किया। मत्स्यपुराण के उद्धृत अंश से शिशुनाग-वंश के काकवर्ण से महानंदीपर्यंत ग्यारह राजा होते हैं और उनका राज्यकाल तीन सौ चार वर्ष होता है। फलतः तीन सौ साठ वर्ष शासनकाल और शिशु-नागवंशी १२ राजाओं का अस्तित्व स्वीकार करने के लिए एक राजा और उनका ५६ वर्ष राज्यकाल मानना पड़ेगा। शिशुनागवंश का नाश होने पर महा-पद्मानंद मगध के राजा हुए। कुरुक्षेत्र-युद्ध में पांडवों के एकछत्र राज्य के नष्ट होने पर वे ही भारतवर्ष के प्रथम एकछत्र सम्राट् प्रसिद्ध हुए।

सहदेवपुत्र सोमापि की राज्यप्राप्ति के ३२५६ अथवा २८२ वर्ष के पश्चात् शिशुनाग ने मगध का सिंहासन पाया था। इस वंश ने तीन सौ बासठ वर्ष मगध का शासन किया था। शिशुनागवंशी महानंदी की शूद्रा स्त्री के गर्भ से महापद्मानंद उत्पन्न हुए थे। उनके पुत्र १०० वर्ष तक राजा रहे। कौटिल्य की सहायता से उनका विनाश करके चंद्रगुप्त मगध के सिंहासन का अधिकारी हुआ। उसीसे मगध में मौर्य-वंश की प्रतिष्ठा हुई। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि सहदेवपुत्र सोमापि की राज्यप्राप्ति के ३७४२ वर्ष के पश्चात् चंद्रगुप्त मगध के सिंहासन पर बैठे। किंतु पाश्चात्य पंडितों ने चंद्रगुप्त का राज्य-प्राप्ति-काल ३१२ वर्ष ख्रीष्टाब्द के पूर्व से ३२० वर्ष ख्रीष्टाब्द के पूर्व तक निश्चित किया है। चंद्रगुप्त के राज्य पाने के थोड़े दिनों के बाद अलक्जेंडर भारत-वर्ष में आया था। उसके आने की बात प्राच्य और पाश्चात्य अनेक ग्रंथों में लिखी है। उन सबके मिलान से ही चंद्रगुप्त का समय निर्देश किया जाता है। इस हिसाब से यह बात मालूम पड़ती है कि ख्रीष्टजन्म से ४०६२ वर्ष पूर्व सहदेवपुत्र सोमापि वर्तमान थे। कुरुक्षेत्र का युद्ध उससे पहले की बात है।

अस्तु। सोमापि से लेकर शिशुनागवंशी बिंबिसार और अजातशत्रु के पूर्ववर्ती अनेक राजाओं की उतनी प्रसिद्धि नहीं पाई जाती है। इतिहास में बिंबिसार और अजातशत्रु का नाम विशेष प्रसिद्ध है। राजा बिंबिसार ने राजगृह में मगध की राजधानी स्थापित की थी। विदेह क्षत्रियों के आक्रमण से पीड़ित हो-कर बिंबिसार ने अपनी राजधानी बदल दी थी। बिंबिसार के राज्यकाल में मिथिला के विदेह क्षत्रिय पराक्रमी हो गए थे। वे बीच-बीच में मगध राज्य पर चढ़ाई करते थे। उन्हींके आक्रमण से रक्षा पाने के लिए गंगा और शोण के संगम-स्थान पर राजगृह नामक नगर को सुदृढ़ और सुरक्षित बनाकर बिंबि-सार ने वहां अपनी राजधानी स्थापित की। इससे पहले जरासंध के पिता ने गिरिव्रज में मगध की राज-धानी बनाई थी। बिंबिसार गिरिव्रज से राजगृह में राजधानी उठा ले गए। इस समय जो प्रदेश दक्षिण विहार के नाम से प्रसिद्ध है वह पहले मगध राज्य के अंतर्गत था। गंगा के दक्षिण तीर से लेकर सोन नदी के दोनों तीरों पर यह राज्य विस्तृत था। उस समय गंगा के उत्तर भाग में लिच्छविगण मगध के शत्रु हो गए थे। गंगा के दक्षिण तीर पर राजगृह में बिंबिसार की राजधानी थी और गंगा के उत्तर भाग में वैशाली नगरी में लिच्छविगण की राजधानी स्थापित थी। उसके पूर्व की ओर उस समय अंग की राजधानी चंपा (भागलपुर) में थी। उत्तर-पश्चिम की ओर कोशल राज्य—अयोध्या से और उत्तर की ओर श्रावस्ती नगरी में उसकी राजधानी थी। बिंबि-सार के समय प्रसेनजित् कोशल के राजा थे।

काशी का दक्षिण भाग उस समय कोशल राज्य के अधिकार में था। श्रावस्ती के राजा प्रसेनजित् का प्रतिनिधि उस समय काशी राज्य का शासन करता था। कोशल राज्य के कुछ पूर्व की ओर एक धर्म मानने वाली दो जातियां रहती थीं। उनका नाम था शाक्य और कोलीय। रोहिणी नदी के दोनों तीरों पर ये दोनों जातियां वास करती थीं। यद्यपि वे स्वाधीन

कही जाती थीं, तथापि मगध और कोशलराज के सामने सर्वदा उनको नीचा देखना पड़ता था। शाक्यों की राजधानी का नाम था कपिलवस्तु। शाक्यकुलपति शुद्धोदन वहां राज्य करते थे। उस समय कोलीयों के साथ शाक्यों की मित्रता थी। राजा शुद्धोदन ने कोलीयवंश की दौहित्री से ब्याह करके दोनों जातियों में प्रेमबंधन स्थापित किया था। कोलीयों के राजा का नाम सुभूति था। देवरहो नामक नगर में उनकी राजधानी थी। उस समय दिल्ली में कुरुवंशी राजा राज्य करते थे। उस समय दक्षिणात्य राज्य अनेक खंडों में विभक्त हुआ था। बिंबिसार जिस समय मगध में राज्य करते थे उस समय आर्यावर्त और दाक्षिणात्य दोनों प्रदेश अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गए थे।

बिंबिसार के लोकांतर होने पर उनके पुत्र अजातशत्रु मगध के सिंहासन के अधीश्वर हुए। कहा जाता है कि पिता बिंबिसार को मारकर इसने मगध राज्य पाया। अजातशत्रु ने बहुत दूर तक अपना राज्य फैलाया था। कोशल और पश्चिम भारत के अनेक राज्यों ने उनकी अधीनता स्वीकार की थी। तूराणवंशी भज्जियान जाति के लोगों ने हिमालय को डांककर इसी समय बिहार पर अपनी प्रभुता स्थापित की थी। अपने अधिकृत देशों में साधारण तंत्रशासन-प्रणाली स्थापित करके वे बलवान् हो गए थे और मगध की ओर उनकी सर्वदा दृष्टि रहती थी। अपने राज्य की अधिक दृढ़ता संपादित करने के लिए और भज्जियानों का दमन करने के अभिप्राय से राजा अजातशत्रु ने पाटलीपुत्र में अपनी राजधानी स्थापित की। (देखो पाटलीपुत्र)

मगधा—बिहार प्रांत। उस समय मगध देश की पश्चिमी सीमा सोन नद थी।

मङ्कणक—एक पौराणिक ऋषि। इसे कहीं तो कश्यप का मानसपुत्र और कहीं मातरिश्वन् तथा सुकन्या का पुत्र बताया गया है। सरस्वती के तट पर इसने हजारों वर्षों तक तप किया। एक बार इसके हाथ में कुश गड़ जाने से शाकरस बहने लगा, जिसको देखकर यह प्रसन्नता से नाचने लगा। इसके साथ सारा विश्व नृत्य करने लगा। इस परिस्थिति को रोकने के लिए देवों ने शंकर से अनुरोध किया। शंकर ने ब्राह्मण-रूप धारण करके इससे नाचने का कारण पूछा। इसने बताया कि रस बहने से इसको ज्ञात हो गया कि उसे सिद्धि प्राप्त हो गई है। इसी कारण वह आनंद-विभोर होकर नृत्य कर रहा है। इसपर शंकर ने भी अपने अंगूठे से भस्म निकाली। तब इसने कोई अवतारी पुरुष जानकर शंकर को नमस्कार किया। शंकर ने इसे दर्शन दिए और इसे वर मांगने को कहा। इसने अपनी प्रसन्नता के उन्माद पर विजय प्राप्त करने का वर मांगा। तब शंकर के 'तथास्तु' कहने पर इसका आनंद-उन्माद समाप्त हुआ। तदनंतर वह पुनः तपस्यारत हुआ। एक बार नदी तट पर स्नान करते हुए इसने एक सुंदर स्त्री को देखा और इसका वीर्य स्खलित हो गया। इसने यह वीर्य कमंडलु पर रखा और उसके सात भाग करके निम्नलिखित सात पुत्रों को जन्म दिया—वायुवेग, वायुबल, वायुहा, वायुमंडल, वायुज्वाल, वायुरेतस् और वायुचक्र। महाभारत में इन्हें सप्तर्षि कहा गया है। इस सप्तर्षि से ही मरुतों का जन्म हुआ। (महाभारत)

मङ्कि—एक पौराणिक आचार्य, जो कि अत्यंत मायावादी था। आरंभ में यह एक लोभी किसान था, जो कि हर क्षण धन-संचय में लगा रहता था। एक बार यह अपने दो बैलों के साथ खेत जोत रहा था। बैलों के मार्ग में एक ऊंट बैठा हुआ था। इसने उसे नहीं देखा और बैलोंसहित उसकी पीठ पर जा चढ़ा। ऊंट उठा और हल-बैल तथा इसे लेकर दौड़ पड़ा। इसके दोनों बैल क्षत-विक्षत होकर मर गए। इसे देखकर मंकि को बड़ा दुःख हुआ। तब इसमें बुद्धि-विचार का उदय हुआ और इसने तृष्णाजनित भाग्यवाद की कड़ी आलोचना की। फिर यह विरक्त होकर परमात्मचिंतन में लीन हो गया। इसके ये तत्त्व-चिंतन-संबंधी विचार 'मंकिगीता' में संगृहीत हैं, जिनको भीष्म ने युधिष्ठिर को सुनाया था।

(महाभारत, शांतिपर्व)

आधुनिक विद्वानों ने मंकि और मंखलि गोशाल को एक ही व्यक्ति मानते हुए इसे बौद्ध-पूर्व आजीवक संप्रदाय से इसका संबंध स्थापित किया है। इस संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य मंखलि गोशाल थे। इसमें योगप्रधान दैववाद या भाग्यवाद का प्रतिपादन किया गया है। सम्राट् अशोक के समय इस संप्रदाय का व्यापक प्रचलन था। जैन-बौद्धधर्मों के विकास ने इस संप्रदाय के प्रभाव को क्षीण किया।

मङ्गल—शंकर के घर्मबिंद से उत्पन्न और नवग्रहों में परिगणित। जब दक्षयज्ञ में सती की मृत्यु हो गई

थी, तब उसके विरह से संतप्त शंकर ने उसकी प्राप्ति के लिए तप किया। तपस्यारत शंकर के मस्तक से एक धर्मबिंदु पृथ्वी पर गिरा, जिससे मंगल की उत्पत्ति हुई। इसका भौम नाम भी है और इसे पृथ्वी तथा भार्या का संरक्षणकर्ता माना जाता है। अग्नि के संपर्क से उत्पन्न होने के कारण इसका एक नाम 'अंगारक' भी है। आगे चलकर शंकर ने इसे नवग्रहों में स्थापित किया।

'स्कंदपुराण' (७।१।४५) में इसकी उत्पत्ति के संबंध में कहा गया है कि एक बार शंकर हिरण्याक्ष की कन्या विकेशी से, जिसे उन्होंने पत्नीरूप में वरण कर लिया था, संभोग करने ही वाले थे इतने में अग्नि आ पहुंचा। उसे देखकर शंकर क्रोध में उत्तेजित हो उठे और उनकी आंखों से एक तेजोमय अश्रुबिंदु विकेशी के मुख में जा गिरा, जिससे कि वह गर्भवती हो गई। किंतु उस तेजोमय गर्भ को वह सहन न कर सकी और उसने उसे बाहर गिरा दिया। उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसे पृथ्वी ने स्तनपान करवाकर बड़ा किया। उसका ही नाम मंगल पड़ा।

मङ्गलदास नाथूभाई—ये एक प्रसिद्ध स्वदेश-हितैषी तथा दाता थे। सन् १८३२ ई० में बंबई महानगर में इनका जन्म हुआ था। धनी होने के कारण इनके पितामह का सर्वत्र आदर था। पिता की मृत्यु के समय मंगलदास की अवस्था ११ वर्ष की थी। इनके पितामह का नाम रामदास मनोहरदास और पिता का नाम नाथूभाई रामदास था। गुजराती नामों में पिता का नाम रहता है। पहले अपना नाम, तदनंतर पिता का नाम और फिर व्यवसाय अथवा जातिगत नाम होता है। अनेक स्थानों में तीसरा नाम रहता ही नहीं है। मंगलदास उनके पिता और पितामह के नामों की ओर दृष्टि करने से गुजराती नाम का रहस्य बहुत-कुछ समझ में आ जाएगा। मंगलदास एक अध्यापक से घर पर ही अंग्रेजी पढ़े थे। १६ वर्ष की अवस्था में रुक्माबाई से इनका ब्याह हुआ और ब्याह होने के दो वर्ष के बाद इनपर गृहकृत्यों का भार आ पड़ा। वे जाति के कपोल बनिया थे। होली के समय उस जाति में कितनी ही कुरीतियां प्रचलित थीं। मंगलदास ने अपने प्रयत्न से इन्हें दूर कर दिया। शिक्षा की उन्नति की ओर उनका विशेष ध्यान था। सन् १८३२ ई० में उन्होंने बंबई में एक विद्यालय स्थापित किया था। इसी वर्ष वे रायल एशियाटिक सोसायटी और रायल जियोग्रफिकल सोसायटी के मेंबर हुए। सन् १८६३ ई० में हिंदू ग्रेजुएटों के लिए उन्होंने एक वृत्ति स्थापित करने की इच्छा से बंबई विश्वविद्यालय में २० हजार रुपये दिए। सन् १८६७ ई० में उनके उद्योग से 'बांबे एसोसियेशन' नामक सभा पुनः खड़ी हुई। वे नौ वर्ष तक बंबई के लाट साहब की सभा के सदस्य रहे थे। इस सभा में वे सर्वदा लोकोपकार करने की चेष्टा करते रहते थे। स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण इन्होंने इस पद को छोड़ दिया। सन् १८७२ ई० में इन्हें सी० एस० आई० की उपाधि मिली थी और १८७५ ई० में इन्हें नाइट की उपाधि मिली। उसी वर्ष सम्राट् एडवर्ड युवराज के रूप में भारतवर्ष आए थे। मंगलदास के दो पुत्रों के विवाह के समय युवराज इनके घर गए थे। १८९० ई० में मंगलदास का स्वर्गवास हुआ।

मञ्चित कवि—ये हिंदी के कवि थे और इनकी कविता अत्यंत सरस होती थी। सं० १७७५ वि० में इनका जन्म हुआ था।

मञ्झन—हिंदी के सूफी-संत कवियों में इनका नाम उल्लेखनीय है। इनकी एकमात्र उपलब्ध कृति 'मधुमालती' (रचनाकाल ९५२ हिजरी, १५४५ ई०) से इनके संबंध में जो जानकारी प्राप्त होती है उससे ज्ञात होता है कि ये १६वीं शती ई० के मध्य में वर्तमान थे। इन्होंने शेरशाह के उत्तराधिकारी सलीमशाह का उल्लेख किया है, जो कि १५४५ ई० में गद्दी पर बैठा। इनके गुरु का नाम शेख मुहम्मद या गौस मुहम्मद था, जो कि बड़े सिद्धपुरुष थे। वे मुसलमान थे। एक हस्तलिखित प्रति की पुष्पिका में उनका नाम गुफ्तार मियां मंझन लिखा हुआ है। इस्लामधर्म की मान्यताओं की उन्हें पूर्ण जानकारी थी। उन्होंने सूफीधर्म के अनुसार प्रेम के द्वारा परमेश्वर की प्राप्ति बताई है। उनकी यह कृति कथा-निर्वाह तथा काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से भले ही शिथिल हो, किंतु आध्यात्मिक तत्त्व-विवेचन की दृष्टि से उत्कृष्ट है। कवि की इस तत्त्वविद् प्रवृत्ति से ही उनकी इस कृति के कथानक में कुछ जटिलता एवं शिथिलता प्रतीत होती है (डॉ० शिवगोपाल मिश्र (सं)—मधुमालती; भूमिका)।

मणिग्रीव—धनपति कुबेर के पुत्र का नाम। यह नलकूबर से छोटा था।

मणिदेव बन्दीजन—ये हिंदी के कवि तथा जाति के भाट थे। इनका वासस्थान बनारस था और सं० १८९६ वि० में जन्म हुआ था। इनकी गिनती प्रसिद्ध कवियों में होती थी। सुनते हैं कि इन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें से एक का नाम 'रामरावणयुद्ध' है।

मणिपुर—एक प्राचीन राज्य। इस राज्य का उल्लेख महाभारत में है। युधिष्ठिर के यज्ञाश्व के साथ अर्जुन मणिपुर गए थे। वहां उनके पुत्र बभ्रुवाहन मणिपुर के राजा थे। मणिपुर का राज्य बभ्रुवाहन को अपने नाना से मिला था।

मणिमान्—कुबेर के एक कर्मचारी का नाम। एक बार अज्ञानता से इसने अगस्त्य मुनि के सिर पर थूक दिया था। इससे क्रुद्ध होकर मुनि ने शाप दिया—मनुष्य के हाथ से ही तुम्हारी मृत्यु होगी। गंधमादन पर्वत पर रहने के समय यह द्वितीय पांडव भीम के हाथ से मारा गया था। भीमसेन उस पर्वत पर द्रौपदी के लिए सुवर्ण का कमल लाने गए थे। कुबेर के अनुचरों ने उन्हें बाधा दी। युद्ध छिड़ गया। भीम ने बहुतों को मार गिराया।

मण्डन—ये जैतपुर (बुंदेलखंड) के निवासी और वहींके राजा मंगदसिंह के उपाश्रित विद्वान् थे। इतिहासकार विद्वानों ने इन्हें गोस्वामी तुलसीदास का समकालीन तथा इसका उपस्थितिकाल १६५९ ई० बताया है। इनके द्वारा विरचित आठ कृतियों का विद्वानों ने उल्लेख किया है, जिनके नाम हैं—'जनकपचीसा', 'रसरत्नाकर', पुरंदरमाया', 'जानकी जू को ब्याह', 'शृंगारकवित्त', 'बारामासी', 'नयनपचासा' और 'रसविलास'। इनकी कृतियों में इनका आचार्यत्व एवं कवित्त दोनों का समन्वय मिलता है। इनकी भाषा सरल एवं शैली प्रसादगुणपरक है।

मण्डन कवि—ये हिंदी के कवि, जैतपुर बुंदेलखंड के रहने वाले थे। सं० १७१६ वि० में ये उत्पन्न हुए थे। ये बुंदेलखंड के कवियों में महाकवि समझे जाते थे। ये राजा मंगदसिंह के दरबारी कवि थे। इनके लिखे तीन ग्रंथ हैं। उनके नाम ये हैं—(१) रसरत्नावली, (२) रसविलास, (३) नयनपचासा। रसरत्नावली साहित्य के उत्तम ग्रंथों में से एक है।

मण्डन मिश्र—भारत के एक प्राचीन रत्न। इनके वंश के विषय में कुछ विशेष पता नहीं है। माहिष्मती पुरी में ये रहते थे। यह नगरी जबलपुर के पास नर्मदा के किनारे पर थी। ये प्रसिद्ध भट्ट कुमारिल के प्रिय शिष्यों में से थे। इनका नाम तो विश्वरूप था। परंतु शास्त्रार्थ में अजेय होने के कारण लोग इन्हें मंडन मिश्र कहने लगे थे।

भट्ट कुमारिल के अंतिम समय शंकराचार्य जी उपस्थित हुए थे। उस समय भट्ट कुमारिल ने कहा—यदि आप भारत के समाज को वैदिक रीति पर गठित करना चाहते हैं तो आप मंडन मिश्र को किसी प्रकार अपना साथी बनाएं। बिना उसकी सहायता के आपकी इष्टसिद्धि होना कठिन है। वह महाविद्वान् और हमारा शिष्य है। आप उसके पास जाएं और उसे शास्त्रार्थ में परास्त कर सकें तो आपको उससे बड़ी सहायता मिलेगी। शंकराचार्य प्रयाग से माहिष्मती पुरी गए और वहां मंडन मिश्र से इनका शास्त्रार्थ होने लगा। इनका शास्त्रार्थ बड़े महत्त्व का है। मंडन की एक-एक युक्ति बड़े महत्त्व की है। इस शास्त्रार्थ में मंडन की सहधर्मिणी शारदा मध्यस्थ बनी थी। अंत में, शंकराचार्य ने कौशल से मंडन मिश्र को परास्त किया। मंडन मिश्र ने पूर्वप्रतिज्ञा के अनुसार शंकराचार्य से संन्यास की दीक्षा ली थी। संन्यासी होने पर मंडन मिश्र का नाम सुरेश्वराचार्य हुआ। शंकराचार्य के साथ ये भी उनकी शिक्षा का प्रचार करते फिरे। इन्होंने व्याससूत्र पर भाष्य भी लिखा था, परंतु इन्हींके समय में दुष्टों ने उस रत्न को नष्ट कर डाला। बृहदारण्यक उपनिषद् पर इन्होंने वार्तिक लिखा है, जो 'तात्पर्यवार्तिक' टीका के नाम से प्रसिद्ध है। ये श्रृंगेरी मठ के अधिपति बनाए गए थे।

मंडन मिश्र के वासस्थान के विषय में भ्रमात्मक मत फैल गया है। इस भ्रम का मूल केवल कल्पना ही है। मंडन मिश्र को लोग मिथिला के वासी समझते हैं। शायद इसलिए कि मंडन मिश्र बड़े पंडित और मिश्र थे। क्योंकि इसके अतिरिक्त उन लोगों के पास कुछ भी प्रमाण नहीं है, इस भ्रम में बड़े-बड़े लोगों को भी पड़ना पड़ा है। अंबिकादत्त व्यास अपने सामवत नाटक में मिथिला के वर्णन में लिखते हैं—

आखण्डलः पण्डितमण्डलेषु
यत्राभवन्मण्डनमिश्रनामा।
आर्या च भार्या च सती यदीया
समध्यगच्छत्सकलं हि शास्त्रम्॥

यह श्लोक मिथिला के वर्णन में है। परंतु आश्चर्य यह है कि शंकरदिग्विजय में साफ ही माहिष्मती पुरी

में मंडन मिश्र का होना लिखा है।

ततः प्रतस्थे भगवान् प्रयागात्तं
मण्डनं पण्डितमाशु जेतुम्।
गच्छन् खसृत्या पुरमालुलोके
माहिष्मतीं मण्डनमण्डितां सः॥

यह माहिष्मती पुरी वही है जहां हैहयवंशी राजाओं की राजधानी थी। नर्मदा नदी के तीर पर उसका होना प्रसिद्ध है। ऐसी स्थिति में मंडन को मैथिल समझना या कहना कहां तक उचित है ?

मतङ्ग—ऋष्यमूक पर्वत पर रहने वाले एक ऋषि। वानरराज बाली ने दुंदुभि नामक असुर को मार डाला था और उसका शव फेंक दिया। उसके शरीर का एक रक्तबिंदु मतंग मुनि के शरीर पर जाकर पड़ा। इससे क्रुद्ध होकर मुनि ने बाली को शाप दिया कि इसी स्थान पर आने से तुम्हारी मृत्यु होगी। तब से बाली ऋष्यमूक पर्वत पर नहीं जाता था। इसी कारण सुग्रीव जब किष्किंधा से निकाल दिए गए, तब वे बाली के भय से ऋष्यमूक पर्वत पर जाकर रहने लगे थे।

मतिराम त्रिपाठी—ये कवि टिकमापुर जिला कानपुर के रहने वाले थे। ये भूषण कवि के भाई थे। ये हिंदी-काव्य के आचार्य माने जाते हैं। बड़े-बड़े राजाओं के दरबार में ये रहे थे। ललितललाम, छंदसार और रसराज नामक तीन ग्रंथ इन्होंने लिखे थे।

मत्स्य—विष्णु का पहला अवतार। भागवत में लिखा है कि प्रलयकाल में भूलोक आदि समस्त लोकों के जल निमग्न होने पर महासमुद्र में सोये हुए विधाता के मुख से वेदों की उत्पत्ति हुई। उस समय हयग्रीव ने समस्त वेद चुरा लिए थे। यह जानकर भगवान् विष्णु ने वेदों के उद्धार के लिए विष्णुरूप धारण किया। एक समय विवस्वान् के पुत्र सत्यव्रत नामक महर्षि नदी में तर्पण कर रहे थे। उसी समय एक मत्स्य उनकी अंजलि में आया। सत्यव्रत ने उसे जल में फेंक दिया। तब वह बोला मैं बड़े-बड़े हिंस्र जंतुओं से डरकर आपकी शरण में आया था। अब आप ऐसा करें जिससे मुझे पुनः जल में न जाना पड़े। सत्यव्रत पर अनुग्रह करने के लिए भगवान् विष्णु ने मत्स्य का रूप धारण किया था, परंतु सत्यव्रत यह नहीं जानते थे। सत्यव्रत ने मत्स्य को उठाकर एक घड़े में रख दिया। परंतु थोड़ी देर बाद देखा गया कि बढ़कर वह मत्स्य घड़े में भर गया। अनंतर मत्स्य की प्रार्थना से सत्यव्रत ने उसे एक सरोवर में रख दिया। थोड़े दिनों के बाद शरीर बढ़ने के कारण वह इस सरोवर में भी नहीं समा सका। अनन्तर ऋषि ने उसको एक झील में रख दिया। महर्षि ने जब देखा कि उस झील में भी वह मत्स्य नहीं अंट रहा है तब महर्षि ने उसे समुद्र में रख आना चाहा। उस समय मत्स्यरूपी विष्णु ने सत्यव्रत पर प्रसन्न होकर अपना परिचय दिया। विष्णु बोले—आज से सातवें दिन समस्त त्रिभुवन प्रलय-पयोधि-जल में डूब जाएगा। उस समय मैं एक बड़ी नौका भेजूंगा। तुम समस्त औषधियों और बड़े बीजों तथा अन्यान्य प्राणियों को लेकर सप्तर्षियों के साथ उसपर आश्रय लेना। जब तुम्हारी नौका प्रचंड वायु के झकोरे में फंसेगी तब मैं तुम्हारे पास उपस्थित होऊंगा। तुम महासर्परूपी रज्जु द्वारा उस नौका को हमारे शृंग में बांध देना। जब तक ब्रह्मा की रात नहीं बीतेगी, तब तक मैं उस नौका को लेकर समुद्र में घूमता फिरूंगा। मत्स्यरूपी विष्णु इतना कहकर चले गए। अनंतर सातवें दिन विष्णु के कहने के अनुसार प्रलयकाल उपस्थित हुआ। सत्यव्रत ने देखा एक बड़ी नौका उनके निकट आकर खड़ी है। वे सभी पदार्थों को लेकर सप्तर्षियों के साथ उस नौका पर चढ़ गए। अनंतर समुद्र में अयुत योजन बड़ा एक सोने का मत्स्य उत्पन्न हुआ। राजर्षि सत्यव्रत ने एक सर्परज्जु द्वारा उसी मत्स्य के शृंग में अपनी नाव को बांध दिया। उसी समय मत्स्य-रूपी विष्णु ने सत्यव्रत के तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया था। राजा सत्यव्रत ने ऋषियों के साथ उसी नौका में रहकर आत्मतत्त्व तथा सनातन वेद का श्रवण किया था। अनंतर प्रलय के पश्चात् मत्स्य-रूपी विष्णु ने हयग्रीव का वध करके ब्रह्मा को वेद दिलवा दिया था। राजर्षि सत्यव्रत विष्णु के अनुग्रह से वैवस्वत मनु के नाम से प्रसिद्ध हुए।

महाभारत में भी मत्स्यावतार की कथा प्रायः इसी प्रकार लिखी गई है। वहां लिखा है कि वैवस्वत मनु ने मत्स्य को क्रमशः छोटे-छोटे जलाशयों में से उठाकर गंगा में रखा और अंत में वहां से उठाकर समुद्र में रखा। उस बड़े मत्स्य को उठाकर ले जाने में वैवस्वत मनु को कुछ कष्ट नहीं होता था। महाभारत में लिखा है कि मत्स्यरूपी विष्णु की आज्ञा से मनु ने प्रलय से पहले ही एक नौका बनवा ली थी। वह नौका जल में डाली गई। विष्णु, शृंगधारी

मत्स्य का रूप धारण करके वहां उपस्थित हुए। मनु ने एक रज्जु से नौका को मत्स्य के शृंग में बांध दिया। मनु सप्तर्षियों के साथ अनेक प्रकार के उद्‌भिज्जों के बीज लेकर उस नाव पर चढ़े थे और कोई उनके साथ नहीं था। बहुत वर्ष बीतने पर मत्स्य की आज्ञा से मनु ने हिमालय की चोटी पर अपनी नाव लगाई। आज भी हिमालय की वह चोटी नौका-बंधन चोटी के नाम से प्रसिद्ध है। मत्स्यावतार सतयुग में हुआ था। इस अवतार के शरीर के नीचे का भाग मत्स्य के समान और ऊपर का भाग मनुष्य के समान था।

मत्स्यगन्धा—राजा उपरिचर की कन्या। राजा का दूसरा नाम वसु था। इन राजा ने बड़ी कठोर तपस्या की थी। इनकी उग्र तपस्या से देवराज इंद्र डर गए। इंद्र के कहने से इन्होंने तपस्या करनी छोड़ दी। तदनंतर इंद्र ने इन्हें स्फटिकमय आकाशगामी रथ और वैजयंती की माला दी। वसु की स्त्री का नाम था गिरिका। अहेर के समय काम-पीड़ित वसु का रेतःपात हुआ। उस रेतः को वसु ने एक श्येन पक्षी द्वारा अपनी रानी को भेजा था, परंतु मार्ग में दूसरे पक्षी से आक्रांत होने के कारण वह रेतः यमुना जल में गिर पड़ा। अद्रिका नाम की एक अप्सरा ब्रह्मा के शाप से मत्सी होकर यमुना जल में रहती थी। रेतः के यमुना जल में गिरते ही उसने उसे पी लिया। उस मत्सी के गर्भ रहा। मछुओं ने उस मत्सी को पकड़कर राजा वसु को अर्पण किया। उसके पेट में एक पुत्र और एक कन्या पाई गई। यही पुत्र बाद में मत्स्य नाम से प्रसिद्ध राजा हुए थे। राजा वसु ने मछुओं को कन्या दे दी। उसके शरीर में मत्स्य की गंध थी, इस कारण उसका नाम मत्स्यगंधा पड़ा।

(देखो पराशर)

मत्स्यदेश—इसकी गणना बौद्धयुगीन महाजनपदों में की गई है। इसका अस्तित्व वैदिकयुगीन है। वहां के किसी राजा ने अश्वमेध संपादित करके स्वयं को भारत के महान् शासकों में प्रतिष्ठित किया था (शतपथ, १३।५।४।९)। मत्स्यदेश को 'मनुस्मृति' (२।१९-२०) में ब्रह्मर्षिदेश कहा गया है। प्राचीन भारत में यमुना नदी और राजस्थान की अरावली पहाड़ियों के मध्यवर्ती क्षेत्र को पश्चिम में मत्स्यदेश और पूरब में शूरदेश कहा जाता था। वैराट भी मत्स्यदेश का ही एक अंग था। कालांतर में समस्त मत्स्यदेश को विराट या वैराट नाम से कहा जाने लगा था। 'महाभारत' (४।१३।१) में विराटनगर को मत्स्यनगर कहा गया है, जो कि पांडवों के मित्र-राजा विराट की राजधानी थी। यह विराटनगर या वैराटनगर इंद्रप्रस्थ से दक्षिण-पश्चिम और सूरसेन देश से दक्षिण में स्थित था। पांडवों ने अपना एक वर्ष का अज्ञातवास विराट (मत्स्यदेश) में ही व्यतीत किया था। प्राचीन मत्स्य-देश (विराट) में आधुनिक जयपुर से भरतपुर, अलवर एवं वैराट सम्मिलित था। वर्तमान वैराट तांबे की खानों के लिए प्रसिद्ध है, जिसकी दूरी जयपुर से ४१ मील उत्तर में और दिल्ली से १०५ मील दक्षिण-पश्चिम में है।

मत्स्यपुराण—यह अष्टादश पुराणों में सोलहवां पुराण समझा जाता है। महाप्रलय में भगवान् विष्णु ने मत्स्य-रूप धारण करके मनु तथा संसार के समस्त पदार्थों की जो बीज-रक्षा की थी, प्रधानतः यही विषय इस पुराण में लिखा है। सृष्टि-रक्षा के लिए भगवान् ने यह अवतार धारण किया था। मनु और मत्स्य का शतपथब्राह्मण में जो संक्षेप से उल्लेख किया है, इस पुराण में उसीका विस्तृत विवरण है। मत्स्यपुराण में प्रधानतः नीचे लिखे विषयों का प्रसंगतः विवरण दिया गया है। नरसिंहमाहात्म्य, विष्णु के दशावतार प्रसंग में अनंत तृतीया आदि व्रतों का तथा प्रयाग आदि तीर्थों का माहात्म्य, चंद्रवंश, सूर्यवंश, कुरुवंश, हुताशनवंश, और ययाति-कार्त्तवीर्य आदि का उपाख्यान, कल्प और युग विवरण, प्रतिमा-लक्षण, देव-मंडप-लक्षण, सावित्रीचरित, ग्रहादिकों की शुभाशुभ यात्रा का फल, पार्वती का जन्म, मदनभस्म, शिव का विवाह, कार्त्तिकेय का जन्म, राजधर्म, भविष्य के राजाओं का विवरण आदि, मत्स्यरूपधारी विष्णु के द्वारा इस पुराण में पूर्ववर्ती सप्तकल्पों का वर्णन देखा जाता है। महाप्रलय के समय मनु पर्वत पर अपनी नाव को रखकर बैठे थे, उसी समय मत्स्यरूप-धारी विष्णु ने इस पुराण के विषयों का वर्णन किया।

मत्स्या—जयपुर के पास का प्रदेश जिसमें अलवर भी शामिल है।

मत्स्येन्द्रनाथ—सिद्ध-साधना के प्रवर्तक के रूप में इनका उल्लेख हुआ है। मीनपाल, मीननाथ, मीनानाथ, मीनपा, मच्छेंद्रपा या मच्छंदरनाथ आदि इनके नामांतर हैं। ये तंत्राचार की सिद्धभूमि कामरूप (असम) के निवासी थे। राहुल जी ने इन्हें बंगाल के कला-

प्रेमी एवं विद्वान् राजा देवपाल का समकालीन नवीं शती ई० में बताया है। यह इसलिए भी संभव है कि संस्कृत के प्रसिद्ध काव्यशास्त्री अभिनवगुप्त (१०वीं श०) ने अपने 'तंत्रालोक' ग्रंथ में मत्स्येंद्रनाथ की वंदना की है। 'वर्णरत्नाकर' आदि ग्रंथों में सिद्धों की जो सूची दी गई है, उसमें प्रथम नाम मत्स्येंद्रनाथ का है। इस दृष्टि से आधुनिक विद्वानों ने इन्हें नाथ-संप्रदाय का प्रवर्तक माना है।

परंपरागत एक दंतकथा में कहा गया है कि ये मछुआरे थे और एक बार इन्हें मछली निगल गई थी, जिसके पेट में ये १२ वर्षों के दीर्घकाल तक वर्तमान रहे। इसी रूप में एक बार घूमते हुए ये चर्पटीनाथ के पास पहुंचे और उनसे इन दोनों ने दीक्षा ग्रहण की। मीन (मत्स्य) के उदर में रहकर पालन-पोषण होने और शिक्षा-दीक्षा ग्रहण करने के कारण ही इनको मीननाथ कहा गया।

मत्स्येंद्रनाथ संस्कृत और हिंदी के समान रूप से विद्वान् थे। इनकी लिखी हुई चार संस्कृत-पुस्तकें संप्रति प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनके नाम हैं—'कौलज्ञान-निर्णय', 'आकुलवीरतंत्र', 'कुलानंद' और 'ज्ञान-कारिका'। उनके द्वारा विरचित हिंदी के कुछ पदों का संकलन आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'नाथ-सिद्धों की बानियां' में किया है। उनकी वाणियों में कवित्व सौष्ठव की अपेक्षा शैव-अद्वैत तत्त्व का विशेष रूप से वर्णन हुआ है। कामरूप के कौलाचार का निरूपण भी इनके पदों में हुआ है। कहा जाता है कि कौलधर्म की साधना करते हुए एक बार वे कामरूप की सुंदरियों के विलास में उलझ गए थे, जहां से इनका उद्धार इनके प्रमुख शिष्य एवं उत्तराधिकारी गोरखनाथ ने किया। वस्तुतः गोरक्षसिद्धांत के मूल आधार मत्स्येंद्रनाथ के विचार ही थे। (राहुल सांस्कृत्यायन—पुरातत्त्व निबंधावली; हिंदी काव्यधारा; डॉ० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल—योगप्रवाह; आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—नाथ संप्रदाय।)

मथुरापुरी—मथुरा राज्य और मथुरा नगरी की प्रतिष्ठा के विषय में रामायण के उत्तरकांड में बहुत-कुछ लिखा गया है। पहले सतयुग में मधु नामक महाअसुर यहां का राजा था। वह ब्राह्मणभक्त धर्मपरायण और उदारचरित था। इससे प्रसन्न होकर महादेव ने उसे उपहार में एक शूल दिया था। उस शूल के प्रताप से कोई उसको जीत नहीं सकता था। वह शूल लेकर जिस युद्ध में जाता था सभी शत्रु भस्म हो जाते थे। पिता के मरने पर उसके पुत्र लवण नामक असुर को वह शूल प्राप्त हुआ। लवण उद्धत, धर्मद्वेषी और अत्याचारी था। शूल के प्रभाव से वह किसीको कुछ नहीं गिनता था। उससे ऋषियों के यज्ञ में बड़ा विघ्न होता था, ब्राह्मण विकल हो गए थे। श्रीरामचंद्र उस समय अयोध्या के सिंहासन पर विराज रहे थे। असुर लवण के अत्याचार से पीड़ित होकर भार्गव आदि ब्राह्मण श्रीरामचंद्र के समीप उपस्थित हुए। ब्राह्मणों से लवण के अत्याचार सुनकर श्रीराम ने उसका दमन करने को, शत्रुघ्न से मथुरा पर चढ़ाई करने के लिए कहा। शत्रुघ्न ने मथुरा पर आक्रमण किया। बहुत दिनों तक इनमें युद्ध होता रहा। अंत में, शत्रुघ्न ने उस दैत्य को मार डाला। देवताओं के अनुग्रह से शत्रुघ्न लवण का नाश कर सके थे। यह देवनिर्मित रमणीय मथुरापुरी राक्षस के भय से जनशून्य हो गई थी, वह अब जनाकीर्ण हो गई। इसके अनंतर सुंदर नगर बनाया गया। यह नगर यमुना के किनारे सुशोभित हो रहा है। इस प्रकार मथुरा नगर को भयशून्य करके और वहां बारह वर्ष तक रहकर शत्रुघ्न अयोध्या लौट आए। अयोध्या से मथुरा जाने के समय शत्रुघ्न को यमुना पार होना पड़ा था और उन्होंने मथुरा में प्राचीन ब्राह्मणों के यज्ञों का स्तूप देखा था। रामायण में ऐसा ही लिखा है। यद्यपि शत्रुघ्न ने इस नगरी को बसाया, तथापि यह नगरी पहले से वर्तमान थी। यह बात रामायण के वर्णन से सिद्ध होती है। मधु-दैत्य के राज्यकाल में वह 'मधुवन' नाम से प्रसिद्ध है। लवणासुर के अधिकार के समय वह मधुपुरी नाम से प्रसिद्ध थी। शत्रुघ्न ने जब इसका उद्धार किया तब यह मथुरापुरी के नाम से प्रसिद्ध हुई। मनुसंहिता में मथुरा का नाम शूरसेन लिखा है। मथुरा के अधिवासी बड़े युद्धकुशल थे, यह मनु ने लिखा है। मथुरापुरी के स्थापन के विषय में पूर्वोक्त विवरण ही संक्षेप से विष्णुपुराण में लिखा है। वराहपुराण में मथुरा-माहात्म्य विशद रूप से लिखा है। इस पुराण के मत से, मथुरा का परिमाण बीस योजन है। मथुरा के अंतर्गत द्वादश वनों का जो दर्शन करते हैं उनको कभी नरक का दर्शन नहीं करना पड़ता। भागवत, ब्रह्मवैवर्त पुराण और हरिवंश में मथुरा का माहात्म्य अनेक प्रकार से लिखा है।

उग्रसेन, कंस और श्रीकृष्ण आदि के समय पुराणों में मथुरा की बड़ी प्रतिष्ठा है। उग्रसेन मथुरा के राजा थे। उनके पुत्र का नाम कंस था और श्रीकृष्ण उग्रसेन के दौहित्र थे। शत्रुघ्न का राज्य मथुरा में किस प्रकार उग्रसेन के पितृपितामहों के अधिकार में गया, इसका कुछ भी पता नहीं है। परवर्तीकाल में जब हम लोग मथुरा का परिचय पाते हैं तब द्वापर के अंत में मथुरा समृद्धिशाली देश और उसके राजा उग्रसेन पाते हैं। उग्रसेन का पुत्र कंस अपनी दुष्टता के लिए प्रसिद्ध था। अपने पिता को कैद करके वह स्वयं मथुरा का राजा बन गया। सिंहासन आरोहण के समय उसने देववाणी सुनी थी कि उसकी भगिनी देवकी के आठवें गर्भ से उसकी मृत्यु होगी। इसीलिए उसने देवकी और देवकी के पति वसुदेव को कैद कर लिया। उसी कारागार में ही श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए। वसुदेव उनको गोकुल में नंद के घर रख आए। वहीं श्रीकृष्ण का लालन-पालन हुआ। माता-पिता और मातामह कारागार में दुःख पा रहे हैं, जब श्रीकृष्ण ने यह जाना तब वे कंस को मारने के लिए उपाय सोचने लगे। वसुदेव की दूसरी स्त्री के गर्भ से बलराम उत्पन्न हुए थे। बलराम बड़े और श्रीकृष्ण छोटे थे। वसुदेव के कारागार में रुद्ध रहने के समय रोहिणी ने भी अपने पुत्र को नंद के घर रख दिया था। श्रीकृष्ण को मरवा डालने के लिए कंस ने अनेक उपाय किए थे, परंतु उसके सभी उपाय निष्फल हुए।

अंत में, कंस ने एक धनुषयज्ञ करने को विचारा। उसी यज्ञ में बलराम और श्रीकृष्ण को बुलाकर, पहलवानों से उन्हें मरवा डालेंगे, यही कंस ने सोचा था। इसीलिए उसने अक्रूर को बलराम और श्रीकृष्ण को मथुरा ले आने के लिए भेजा था, परंतु बलराम और श्रीकृष्ण ने मथुरा में आकर जिस वीरत्व का परिचय दिया, उसे देखकर लोग आश्चर्य करने लगे। चाणूर, मुष्टिक आदि वीरों को उन्होंने मार गिराया। कुवलयापीड नामक मत्त हाथी को मारकर कंस को भी उन लोगों ने मार डाला। कंस के मारे जाने पर पुनः उग्रसेन मथुरा के राजा हुए। कंस को मारने के कारण मगधपति जरासंध श्रीकृष्ण पर अत्यंत कुपित हुआ। कंस उसका जामाता था। अपने जामाता को मारने वाले यादवों को मारने के लिए जरासंध ने अठारह बार मथुरा पर आक्रमण किया। परंतु उसका मनोरथ सफल नहीं हुआ। अंत में, जरासंध ने कालयवन के साथ मैत्री की। कालयवन उस समय एक पराक्रमी राजा था। कालयवन की अगणित सेना के साथ मिलकर जरासंध ने पुनः मथुरा पर आक्रमण किया। यादव बड़े भयभीत हुए। क्योंकि कालयवन महादेव के वर से अजेय था। बिना मथुरा छोड़े कल्याण न देखकर श्रीकृष्ण पहले ही मथुरा से चले गए थे और नई राजधानी स्थापित करने का उपाय करने लगे। कालयवन और जरासंध के भय से मथुरा नगरी पुनः उजड़ गई। यादवों की नई राजधानी द्वारावती स्थापित हुई। इस घटना के बाद पुराणों में मथुरा का कुछ विशेष उल्लेख नहीं पाया जाता। इससे मालूम पड़ता है तब से मथुरा जनशून्य हो गई। तदनंतर यह नगरी मगधराज्य के अंतर्गत हो गई।

ग्रीस देश के ऐतिहासिक एरियान ने मथुरा को शूरसेन राज्य की राजधानी बतलाया। उनके मत से, शूरसेन राज्य में दो प्रसिद्ध नगर विद्यमान हैं। एक का नाम मेथोरास, और दूसरे का नाम क्लिसोबोरास था। इन दोनों नगरों के बीच से योवारेस नाम की नदी बहती थी। ऐतिहासिक प्लिनि ने—जोमानस नदी के तीर मेथोरा और क्लिसोबोरा नगरी का होना बतलाया है। उन्होंने इस नाम का अर्थ देवताओं की नगरी लिखा है। परिव्राजक फाहियान नगरहार तथा अन्यान्य स्थानों में घूमकर और सिंधु नदी को पार करके मथुरा नगरी में घुसे थे। मथुरा के समीप बहने वाली यमुना के बायें और दाहिने दोनों ओर उस समय बीस बौद्धों के संघाराम थे। उस समय मथुरा में बौद्धधर्म का विशेष प्रचार था। जिस समय ह्वेनत्सांग मथुरा में आए थे उस समय भी बौद्धों का प्रभाव लुप्त नहीं हुआ था। बीस संघाराम उस समय भी वर्तमान थे। परंतु उनमें केवल दो हजार बौद्ध धर्मयाजक वर्तमान थे। परिव्राजक ने लिखा है कि मथुरा के अधिवासी विनयी तथा सरल प्रकृति के थे। वे धर्म को सम्मान की दृष्टि से देखते थे। वे प्राकृतिक वीर तथा व्यवसायी और अध्यवसायी थे।

मदनगोपाल कवि—ये कवि जाति के ब्राह्मण और फतुहाबाद के रहने वाले थे। ये सं० १८७६ वि० में उत्पन्न हुए थे। गनवारवंशी राजा अर्जुनसिंह बलिरामपुर के यहां ये थे। राजा अर्जुनसिंह की आज्ञा के अनुसार इन्होंने 'अर्जुनविलास' नामक एक ग्रंथ भी लिखा है।

इनका लिखा एक और ग्रंथ है। इसका नाम 'वैद्य-रत्न' है। यह ग्रंथ वैद्यक विषय का है।

मदनमोहन कवि—ये कवि बुंदेलखंड चरखारी के रहने वाले थे। इनका जन्म सं० १८८२ वि० में हुआ था। ये महाराज चरखारी के दरबारी कवि और मंत्री भी थे।

मदनमोहन मालवीय—आज से करीब तीन सौ वर्ष हुए होंगे कि मालवा के कुछ ब्राह्मण अनेक प्रकार के उत्पीडनों से घबड़ाकर अपनी प्रिय जन्मस्थली मालवा की उर्वरा भूमि को छोड़कर देशांतर को चले। उनमें से एक प्रसिद्ध कुल ने प्रयाग में आकर आश्रय लिया। मालवा के संबंध से यह कुल मालवी कुल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह वंश अपनी स्वाभाविक उदारता, साहजिक धर्मनिष्ठा और परंपरागत विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध है। पंडित मदनमोहन मालवीय जी के पिता का नाम पंडित बैजनाथ मालवीय था। ये संस्कृत के बड़े अच्छे पंडित थे। मालवीय जी का जन्म सन् १८६२ ई० में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही मातृभाषा में हुई। आप प्रारंभिक शिक्षा समाप्त करके अंग्रेजी गवर्नमेंट स्कूल में पढ़ने लगे। वहां से आपने एंट्रेंस परीक्षा पास की। तदनंतर आप म्योर सेंट्रल कालेज में पढ़ने लगे। सन् १८८४ ई० में आपने बी० ए० की परीक्षा पास की। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर आप गवर्नमेंट स्कूल में अध्यापक के पद पर नियत हुए। यहां आप तीन वर्षों तक काम करते रहे। तदनंतर आपको कालाकांकर के 'तत्र भवान् सदा समरविजयी' राजा रामपालसिंह ने हिंदी भाषा के दैनिक पत्र 'हिंदोस्थान' का संपादन-भार सौंपा। 'हिंदोस्थान' को आपने अढ़ाई वर्ष तक बड़ी योग्यता से संपादित किया। तब से फिर हिंदी भाषा में वैसे लेख पढ़ने को नहीं मिले। इनकी लेखप्रणाली की ओजस्विता और सरलता ये प्रधान गुण हैं। अढ़ाई वर्षों के बाद आपने कानून पढ़ने की इच्छा की। राजा रामपालसिंह ने प्रसन्नता से आपको विदा किया और आपको पढ़ने में उपयुक्त सहायता भी दी। तीन वर्ष तक पढ़कर आपने एल० एल० बी० की परीक्षा पास की। तब से आप इलाहाबाद हाईकोर्ट में वकालत करते रहे।

आप देश के सच्चे सेवक और बुद्धिमान् हितैषी हैं। सर ऐंटनी मेकडानल के समय में आप के ही परिश्रम से हिंदी भाषा को अदालतों में स्थान मिला। आपके प्रयत्न से प्रयाग में एक हिंदू बोर्डिंग हाउस बना है। लाहौर वाली कांग्रेस के आप सभापति चुने गए थे। आप बड़े लाट की कौंसिल के सभासद थे। आप प्रजा के पक्ष का पोषण, उसके अभावों का निवेदन सदा करते हैं। बसु बाबू के बिल के प्रतिवाद में और 'प्रेस-एक्ट' के विरुद्ध जो आपने कौंसिल में वक्तृताएं दीं, उनसे पूर्वी और पश्चिमी साहित्यशास्त्र-संबंधी आपके पूर्ण ज्ञान का परिचय मिलता है। आप सनातनधर्मी हैं। परंतु समाज को हानि पहुंचाने वाली कुरीतियों को सुधारना भी चाहते हैं। आपके द्वारा काशी में हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना भी हो गई।

मदनसिंह—कोटा राज्य के राणा। ये माधोसिंह के पुत्र थे। इनके समय में कोटा राज्य के महाराव कोटा के प्रधानमंत्री कहे जाते थे। महाराव और रावराणा में बड़ा भेद होता था। एक समय इनमें प्रबल विवाद उठ खड़ा हुआ। इसी समय कोटा राज्य को दो खंडों में विभक्त करके अंग्रेजी गवर्नमेंट ने झालावाड़ की सृष्टि की और मदनसिंह को उसका राजा बनाया।

(टाड्स राजस्थान)

मदालसा—ये एक विदुषी रमणी थीं। ये गंधर्वकन्या थीं। राजा ऋतध्वज के साथ इनका ब्याह हुआ था। मदालसा विदुषी और ज्ञानवती स्त्री थीं। इनके गर्भ से विक्रांत, सुबाहु, शत्रुमर्द्दन और अलर्क नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए थे। ये अपने पुत्रों को स्वयं शिक्षा देती थीं। माता के उपदेश से ही विक्रांत, सुबाहु और शत्रुमर्द्दन संसार-विरागी संन्यासी हो गए। ये अपने पुत्रों को किस प्रकार शिक्षा देती थीं यह बात नीचे लिखी घटना से मालूम होगी।

मदालसा के बड़े पुत्र विक्रांत को किसीने एक दिन मारा। वह रोते-रोते घर गया और अपनी माता से रोकर कहने लगा, "मां, हमको अमुक-अमुक ने मिलकर पीटा है। मैं राजपुत्र हूं, वे दीन-हीन प्रजा के पुत्र हैं। उन्होंने मेरी प्रतिष्ठा पर कुछ भी ध्यान न देकर मुझको मारा है। आप इसका प्रतिविधान करें।"

मदालसा पुत्र के प्रश्न का उत्तर देने लगी। उसने कहा—"वत्स, तुम शुद्ध-आत्मा हो, आत्मा की प्रकृति नाम के द्वारा कलुषित नहीं हो सकती। राजपुत्र या विक्रांत तुम्हारी उपाधि है। अतएव अपने को राज-पुत्र समझकर तुम्हें अभिमान नहीं करना चाहिए।

तुम्हारा यह परिदृश्यमान शरीर पंचभौतिक है। तुम्हारी यह देह नहीं है, फिर देह पर मार खाने से रोते क्यों हो ?"

महारानी की शिक्षा से जब तीन राजपुत्र संसार-विरागी संन्यासी हो गए तब राजा ऋतध्वज एक दिन मदालसा से प्रार्थना करने लगे—मदालसा ! तीन पुत्रों को उपदेश देकर तुम वनवासी कर चुकी हो, अब इस छोटे पुत्र अलर्क को ऐसी शिक्षा दो जिससे वह अपने भाइयों के मार्ग का अनुसरण न करे। यदि वह भी संन्यासी हो जाएगा तो फिर राज्यशासन कौन करेगा ?

मदालसा अपने छोटे पुत्र अलर्क को राजनीति की शिक्षा देने लगीं। उनके उपदेशों से अलर्क राजनीति-विद्या में निपुण हो गया। मार्कण्डेय पुराण में ऋतध्वज और मदालसा के संबंध में नीचे लिखा उपाख्यान है—

दैत्यों के उपद्रव से महर्षि गालव की तपस्या में विघ्न होने लगा। यह संवाद सुनकर राजा शत्रुजित् के पुत्र ऋतध्वज यज्ञरक्षा के लिए उनके आश्रम में उपस्थित हुए। एक दिन गालव ईश्वराराधन कर रहे थे, ऐसे समय में तपस्या में विघ्न डालने के लिए एक दानव शूकर का रूप धरकर आश्रम में उपस्थित हुआ। ऋतध्वज ने उसे देखकर बाण चलाया और उसे घायल किया। शूकर भागा, राजकुमार ऋतध्वज ने भी कुवलय नामक अश्व पर चढ़कर उसका पीछा किया। शूकर भागता-भागता बड़ी दूर चला गया परंतु राजपुत्र ने उसका साथ नहीं छोड़ा। अंत में, वह एक बिल में घुस गया, साथ-साथ राजकुमार भी भीतर गए। बिल में गहरा अंधकार था। बहुत देर तक अंधेरे में चलने के बाद राजपुत्र एक मैदान में पहुंचे। उन्होंने देखा कि वहां इंद्रपुरी के समान सौ-सौ प्रासाद सुशोभित हो रहे हैं। वे वहां शूकर को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते एक महान् भवन में उपस्थित हुए। उन्होंने एक सुंदर युवती को देखा। वह युवती ऋतध्वज को देखते ही मूर्च्छित हुई। सखियों की सेवा से जब उसकी मूर्च्छा भंग हुई तब राजपुत्र ने उसका परिचय पूछा। एक सखी बोली—ये गंधर्वराज विश्वावसु की कन्या मदालसा हैं। एक दिन ये बाग में घूमती थीं उस समय वज्रकेतु दानव का पुत्र पातालकेतु माया फैलाकर इनको पाताल ले गया। इनसे विवाह करने के लिए दैत्य ने तभीसे इनको कैद में रखा है। सखी ने राजकुमारी का परिचय देकर राजपुत्र का परिचय पूछा। आप कौन हैं और किस लिए इस पातालपुरी में आए हैं ? ऋतध्वज के आदि से अंत तक कह सुनाने पर सखी बोली—तब आप हमारी सखी की रक्षा कीजिए, ये आपके प्रति अनुरागिणी हुई हैं। देवकन्या-तुल्य मदालसा को पत्नी पाकर कौन अपने को भाग्यवान् नहीं समझेगा और आपके समान पति तो हमारी सखी के ही योग्य हैं।

मदालसा को ब्याहकर ऋतध्वज आ रहे थे। मार्ग में दैत्यों ने उनपर आक्रमण किया। युद्ध होने लगा। अकेले ऋतध्वज ने समस्त दैत्य-सेना को उन्मत्त हस्ती के समान मथ डाला और वे जय प्राप्त करके निर्विघ्न पत्नी के साथ अपने पिता के राज्य में उपस्थित हुए। राजा शत्रुजित् और राज्य के बड़े कर्मचारीगण ने मदालसा को बड़े आदर से ग्रहण किया।

कुछ दिनों के बाद ऋतध्वज पिता की आज्ञा से तपस्वियों की रक्षा के लिए पुनः यमुना के किनारे घूमने लगे। वहीं पातालकेतु का छोटा भाई तालकेतु माया से मुनि का रूप धरकर रहता था। तालकेतु ने अपने भ्रातृहंता ऋतध्वज को देखते ही पहचान लिया और उनसे बदला चुकाने के लिए अवसर ढूंढ़ने लगा। वह ऋतध्वज को देखकर कहने लगा—राजकुमार ! आप ऋषियों की तपस्या की रक्षा करने के लिए तत्पर हैं। मैं एक यज्ञ करना चाहता हूं परंतु दक्षिणा देने की शक्ति मुझमें नहीं है अतएव मैं यज्ञ भी नहीं कर सकता हूं। यदि आप अपना यह मणिमय हार हमें दे दें तो हमारा अभीष्ट सिद्ध हो जाएगा। यह सुनकर ऋतध्वज ने अपना हार उस ऋषिरूपधारी दानव को दे दिया। हार पाकर दानव ने कहा—मैं इस समय जल में जाकर वरुण देवता की उपासना करूंगा। जब तक मैं लौटकर न आऊं तब तक आप मेरे आश्रम की रक्षा करें।

राजपुत्र ने दानव की बातों पर किसी प्रकार का संदेह नहीं किया। राजपुत्र का हार लेकर तालकेतु राजा शत्रुजित् की सभा में आया। वही हार दिखाकर कहने लगा कि ऋतध्वज दानवों के युद्ध में मारा गया। इस भयंकर संवाद को सुनकर मदालसा स्थिर न रह सकीं। उस संवाद को सुनते ही मदालसा मूर्च्छित हुईं और फिर न उठीं।

तालकेतु यमुना तट पर लौट आया और युवराज से बोला—हमारा यज्ञ समाप्त हो गया। अब आप

जा सकते हैं। आपने मेरा बहुत दिनों का मनोरथ पूर्ण किया, आपका मंगल हो।

ऋतध्वज ने राजधानी में आकर सब बातें सुनीं। मदालसा अब इस संसार में नहीं है, उसने स्वामी के वियोग से प्राण छोड़ दिए—यह सुनकर वे और भी अचेत हुए। मेरा अमंगल सुनकर ही मदालसा ने प्राण छोड़ दिए और मैं उससे वियुक्त होकर अभी तक जीता हूं आदि कहकर वे विलाप करने लगे। ऋतध्वज की ऐसी अवस्था देखकर उनके मित्र नागराजपुत्रों ने अपने मित्र के दुःख को दूर करने की प्रतिज्ञा की। मदालसा से पुनः ऋतध्वज का मिलन हो इसीलिए वे अपने पिता से विशेष अनुरोध करने लगे। नागराज हिमालय पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगे। सरस्वती और महादेव को तुष्ट करके उन्होंने वर पाया और मदालसा जिस अवस्था में मरी थी ठीक उसी अवस्था में वह नागराज के घर उत्पन्न हुई। मदालसा जैसी थी वैसी ही नागराज के गृह में उत्पन्न हुई। तदनंतर नागराज ने ऋतध्वज को अपनी पुरी में बुलाकर मदालसा से उनका मिलन करवा दिया। मदालसा का यह मिलन स्थिर हुआ था।

मदुण—मथुरा का नामांतर।

मदुरा—मंदिरों से परिपूर्ण यह नगर परंपरा से ही धार्मिक महत्त्व को मोहित करता आ रहा है। यहां का मीनाक्षी देवी (महालक्ष्मी) का मंदिर भारतीय मंदिरों के इतिहास में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसके एक भाग में शिव का मंदिर है। यहां का विष्णु-मंदिर भी प्रसिद्ध है। इन मंदिरों के स्थापत्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। यह नगर मध्ययुग (तेरहवीं शती) में पांड्य राजाओं की राजधानी के रूप में सम्मानित रहा है। आज भी यह नगर अपने प्राचीन नाम से मद्रास से ३४५ मील दक्षिण की ओर वैगाई नदी के दक्षिण तट पर स्थित है।

मद्रदेश—भारतवर्षीय प्राचीन जनपदों में मद्रदेश एक विशेष प्रसिद्ध जनपद है। प्राचीन मद्रदेश के अवस्थान के विषय में चार प्रकार का मत प्रचलित है। महाभारत में संजय की उक्ति में मद्रदेश उत्तरीय जनपदों में गिना गया है। ब्रह्मांडपुराण में मद्रक नामधेय और गरुड़पुराण में मद्र नामक भारत के उत्तर प्रांत में स्थित प्रदेश का उल्लेख है। इन दोनों पुराणों में तथा मत्स्यपुराण के इस वचन के—"गान्धारा यवनाश्चैव सिंधुसौवीरमद्रकाः" अनुसार, मद्रदेश गांधार आदि देशों के पार्श्व में स्थित समझा जाता है। इस मत के अनुसार, पाश्चात्य पंडितों ने इरावती और वितस्ता नदियों के मध्य में मद्रदेश की स्थिति का अनुमान किया है। प्रायः यही मत सर्वसाधारण का भी है। दूसरा मत यह है कि विराट और पांड्यराज्य के मध्य यह पूर्व-दक्षिण तक फैला हुआ जनपद मद्रदेश के नाम से प्रसिद्ध है। शक्ति-संगम तंत्र में मद्रदेश की स्थिति में इसी प्रकार का सिद्धांत पाया जाता है। यथा—

वैराटपाण्ड्ययोर्मध्ये पूर्वदक्षक्रमेण तु।
मद्रदेशः समाख्यातो माद्री हा तत्र तिष्ठति॥

तीसरा मत यह है कि प्राचीन मिडिया राज्य ही प्राचीनतम मद्रदेश है। चौथा मत यह है कि वर्तमान मद्रास प्रदेश ही मद्र शब्द के अपभ्रंश से बना है। जो हो, परंतु इसमें संदेह नहीं कि प्राचीन भारत में मद्रदेश नाम से प्रसिद्ध कोई प्रांत या राज्य अवश्य था। परंतु प्रमाणों द्वारा यह जाना जाता है कि उत्तरमद्र हिमालय की तराई में था और दक्षिणमद्र दक्षिणात्य में है।

मद्रा—रावी और चनाब के बीच का प्रदेश, जो पंजाब में है।

मधु—एक दैत्य का नाम।

मधुकैटभ—ब्रह्मदेव के स्वेद से उत्पन्न प्रख्यात असुरद्वय। 'महाभारत' के अनुसार, इन दोनों असुरों का जन्म विष्णु के कर्णमल से हुआ था। ब्रह्मा ने मिट्टी से इन दोनों की आकृति बनाकर उसमें प्राण-संचार किया। इन दोनों में जिसकी त्वचा कोमल थी उसे मधु नाम दिया गया। इन्होंने अपने तपोबल से अजेयता प्राप्त की थी। किंतु जब ये लोगों को मारने लगे तब विष्णु ने इन्हें मोहित करके इनका वध किया। देवासुर संग्राम में भी इन्होंने भाग लिया था। इन्हें असुरजाति का पूर्वज माना जाता है।

मधुपुरी—देखो मथुरापुरी।

मधुसूदनदास—ये रामानुज संप्रदाय के वैष्णव थे। इनका जन्म इटावा के माथुर चौबों में हुआ था। पुराणकथा के आधार पर रचित इनकी एकमात्र कृति 'रामाश्वमेध' उपलब्ध है, जिसका रचनाकाल १८३९ वि० (१७८२ ई०) है। इस रामकथा से संबद्ध रचना पर 'रामचरितमानस' का प्रभाव है। इसकी भाषा ब्रजमिश्रित अवधी है। प्रबंध-रचना और काव्य-

कौशल की दृष्टि से इस रचना को विद्वानों ने 'रामचरितमानस' का परिशिष्ट कहा है। उसमें प्रयुक्त भाषा के लालित्य की विद्वानों ने सराहना की है (रामचंद्र शुक्ल—हिंदी साहित्य का इतिहास)।

मध्वाचार्य—माध्वमत-प्रवर्तक एक आचार्य (देखो ब्रह्म-संप्रदाय)।

मनभावन ब्राह्मण—ये कवि मुंडिया जिले शाहजहांपुर के निवासी थे। सं० १८३० वि० में ये उत्पन्न हुए थे। ये चंदनराय के १२ शिष्यों में से सबसे प्रधान शिष्य थे। इनका लिखा ग्रंथ 'श्रृंगाररत्नावली' पढ़ने योग्य है।

मनसा—एक देवी। इसे शिवकृपा से विषबाधा दूर करने का अलौकिक सामर्थ्य प्राप्त हुआ था। वासुकि और सर्प आदि विषैले प्राणी इसकी उपासना करते थे और पृथ्वी के समस्त सर्पों पर इसका वरद हस्त था। यह सर्प विष को इस मायावी ढंग से दूर कर देती थी कि धन्वंतरि भी वैसा नहीं कर सकते थे। इसे कश्यपऋषि की कन्या तथा वासुकि सर्प की भगिनी माना जाता है। जरत्कारु ऋषि से इसका विवाह हुआ था। इसके पुत्र का नाम आस्तिक था। ग्रामीण समाज में आज भी इसकी पूजा-प्रतिष्ठा होती है।

मनसा कवि—ये हिंदी के कवि थे। ये कविता-लालित्य और अनुप्रासों के लिए प्रसिद्ध हैं।

मनसाराम कवि—ये हिंदी के प्रसिद्ध कवि थे। इनका लिखा नायिकाभेद का ग्रंथ उत्तम है।

मनियरसिंह क्षत्री—ये काशी के निवासी क्षत्री थे। सं० १८६१ वि० में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने कई ग्रंथ भी लिखे हैं। जिनमें से हनुमत्-छब्बीसी और भाषा-सौंदर्यलहरी, शिवसिंहसरोज उपलब्ध हैं।

मनीराम कवि—ये हिंदी के कवि थे और श्रृंगार रस की सुंदर कविता करते थे।

मनु—ब्रह्मा के पुत्र और मनुष्य जाति के आदिपुरुष। प्रत्येक कल्प में चौदह मनु उत्पन्न होते हैं। इनके नाम ये हैं—स्वायंभुव, स्वारोचिष, औत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सार्वाणि, दक्षसार्वाणि, रुद्रसार्वाणि, देवसार्वाणि और इंद्रसार्वाणि। इस समय सप्तम वैवस्वत मनु का अधिकार चलता है। मत्स्यपुराण में चतुर्दश मनुओं के नाम में कुछ भेद देखा जाता है। प्रथम मनु स्वायंभुव हैं। गायत्री और ब्रह्मा से इनकी उत्पत्ति हुई थी। द्वितीय स्वारोचिष, तृतीय औत्तम, चतुर्थ तामस, पंचम रैवत, षष्ठ चाक्षुष, सप्तम वैवस्वत मनु, अष्टम सार्वाणि मनु, नवम रौच्य (ये रुचि प्रजापति के पुत्र थे), दशम भौत्य (ये भूति नामक प्रजापति के पुत्र थे), एकादश मेरुसार्वाणि (ये ब्रह्मा के पुत्र थे), द्वादश मनु ऋभु, त्रयोदश ऋतुधामा और चतुर्दश बिबकसेन।

मनुसंहिता—स्मृतियों में सर्वप्रधान स्मृति मनुसंहिता ही है। मनु के साथ मनुष्यों के अनेक प्रकार के संबंध हैं। ब्रह्मा के पुत्र मनु, मनुष्यों के आदिपुरुष मनु, स्वायंभुव आदि चतुर्दश मनु, सूर्यपुत्र मनु, पृथ्वी के प्रथम राजा मनु, धर्मसूत्र-प्रणेता मनु। परंतु किस मनु ने किस समय मनुसंहिता की रचना की, इसका निर्णय कौन करेगा? लिखा है कि संसारी मनुष्यों को जानने तथा करने योग्य विषयों का उपदेश मनु ने अपने शिष्यों को दिया था। बाद में, शिष्यों ने उन्हीं उपदेशों को लिपिबद्ध कर दिया। इस संहिता में जगत् की उत्पत्ति का विवरण, जातकर्मादि संस्कार-विधि, ब्रह्मचर्य-विवरण, गुरु का अभिवादन और स्नानविधि, दाराधिगमन, विवाह और विवाह लक्षण, महायज्ञ विधान, सनातन श्राद्धविधान, ब्राह्मण आदि चतुर्वर्णों की जीविका के लक्षण, गृहस्थ का कर्त्तव्य, भक्ष्याऽभक्ष्यविचार, शौच, द्रव्य आदि की शुद्धि, स्त्रीधर्म, यति-संन्यासी और राजाओं के धर्म, ऋण-दान आदि का विचार-निर्णय, साक्षियों का प्रश्न-विधान, स्त्री और पुरुष का धर्म, दायभाग, द्यूतक्रीडा, तस्कर आदि को दंडविधान, वैश्य और शूद्र का कर्त्तव्य-विधान, संकर जातियों की उत्पत्ति-विवरण, चतुर्वर्णों का आपद्धर्म, प्रायश्चित्तविधि, कर्मजनित देहांतरप्राप्तिरूप उत्तम-मध्यम-अधम त्रिविध गति, मोक्षोपाय, कर्मों का दोष और गुण, देशधर्म, जाति-धर्म, कुलधर्म और वेदविरोधी पाखंडियों के धर्म आदि इसमें विवेचित हुए हैं। मनुसंहिता के कर्ता महर्षि मनु हैं, ऐसा बहुतों का विश्वास है, परंतु सच्ची बात यह नहीं है। मनुसंहिता में देखा जाता है कि महर्षि मनु ने अपने शिष्यों को जो शास्त्रतत्त्व बतलाए थे, कुछ दिनों तक ये उपदेश गुरुपरंपरा से प्रचलित थे। अंत में, उन्हीं उपदेशों को किसी शिष्य ने लिपिबद्ध किया। आजकल की प्रचलित मनुसंहिता मनु-रचित नहीं है, यह बात मनुसंहिता के प्रथम अध्याय के अंतिम श्लोक से जानी जाती है। महर्षि मनु के किसी शिष्य ने इस शास्त्र का जिस प्रकार वर्णन किया है उससे यह बात स्पष्ट ही मालूम होती

है। मनुस्मृति के प्रथम अध्याय का अंतिम श्लोक यह है—

यथेदमुक्तवान् शास्त्रं पुरा पृष्टो मनुर्मया।
तथेदं यूयमप्यद्य मत्सकाशान्निबोधत॥

अर्थात् पुराकाल में भगवान् मनु ने हमारे प्रश्न के उत्तर में जो शास्त्र कहा है, वही मैं यथातथ रूप से कहता हूं, आप लोग श्रवण करें। मनुसंहिता के अंतिम श्लोक से भी यही बात पाई जाती है। "इत्येतन्मानवं शास्त्रं भृगुप्रोक्तं पठन् द्विजः" अर्थात् मनु के शिष्य भृगु ने जिस शास्त्र को विस्तृत किया था वही 'मनुसंहिता' कही जाती है। इससे यह बात भी समझी जाती है कि मनु के बाद ये उपदेश-समूह लिपिबद्ध किए गए थे। वे उपदेश पहले सूत्ररूप में 'मानव धर्म-सूत्र' के नाम से प्रसिद्ध थे, वे ही बाद में संहिता के आकार में ग्रथित हुए। यह संहिता वेदानुकूल है। यथा —

वेदार्थोपनिबन्धत्वात्प्राधान्यं हि मनोः स्मृतेः।
मन्वर्थविपरीता च या स्मृतिः सा न शस्यते॥

फलतः इससे मनुस्मृति की प्रधानता प्रतिपन्न होती है। मनुसंहिता बारह अध्यायों में समाप्त है। उन अध्यायों में सब मिलाकर २७०४ श्लोक हैं। उन अध्यायों में जो विषय विवेचित हुए हैं, उनका संक्षेप में नीचे निर्देश किया जाता है। प्रथम अध्याय में—मुनियों की धर्म-जिज्ञासा, उसके संबंध में मनु का उत्तर, सृष्टि-प्रकरण, मनु की आज्ञा से भृगु का मानवधर्म-कथन, दैवादिकाल-निर्णय, वर्ण-धर्म-कथन और ग्रंथ की अनुक्रमणिका; द्वितीय अध्याय में—धर्म का चतुर्विध प्रमाण, ब्रह्मचर्य-विधि, शिष्यों का कर्तव्य, बड़ों को अभिवादन करने की रीति; तृतीय अध्याय में—चतुर्वर्णों की विवाह-विधि, ब्राह्म आदि आठ प्रकार के विवाहों के लक्षण, पंच-महायज्ञ, अतिथि-सत्कार, श्राद्ध आदि का नित्यत्व कथन; चतुर्थ अध्याय में—उञ्छशीलवृत्ति आदि जीविका के उपाय, गार्हस्थ्य नियम; पंचम अध्याय में—भक्ष्याभक्ष्यविचार, अशौचनिर्णय, द्रव्यशुद्धि और स्त्रीधर्म-कथन; षष्ठ अध्याय में—आश्रमधर्म की विधि-व्यवस्था; सप्तम अध्याय में—राजधर्म और राज्यरक्षा के उपायों का वर्णन; अष्टम अध्याय में—व्यवहार-दर्शन, अष्टादश-विवाद पद का निर्णय, साक्षिविवरण, दंडनिर्णय, राजदंड की पापनाशकता; नवम अध्याय में—स्त्री-पुरुषों का धर्मविचार, दाय-विभाग, द्यूत-क्रीडा, वैश्य और शूद्रों का कर्तव्य-कथन; दशम अध्याय में—संकर वर्णों की उत्पत्ति चतुर्वर्णों की उत्पत्ति का विवरण; एकादश अध्याय में—प्रायश्चित्तविधि; द्वादश अध्याय में—कर्म के अनुसार जन्मान्तरप्राप्ति का विवरण, ज्ञान और मोक्ष आदि का विवरण है। (भारतवर्षीय इतिहास)

मनोहर कवि—इनका पूरा नाम राजा मनोहरदास कछवाहा था। ये अकबर शाह के मुसाहबों में से थे और फारसी तथा संस्कृत भाषा के एक बड़े कवि थे। फारसी कविता में ये अपना नाम तोसनी रखते थे।

(२) इनका दूसरा नाम काशीराम रिसालदार था। ये भरतपुर के रहने वाले थे। इन्होंने एक ग्रंथ लिखा है, जिसका नाम मनोहरशतक है। मनोहर-शतक की मनोहरता में किसीको संदेह नहीं हो सकता। शिवसिंहसरोजकार के समय में ये कवि जीवित थे।

मनोहरदास निरञ्जनी—इन्होंने हिंदी में 'ज्ञानचूर्णविवेचनिका' नामक एक वेदांत की पुस्तक लिखी है।

मन्थरा—दशरथ की महारानी कैकेयी की दासी। इसीके परामर्श से महारानी कैकेयी ने राम का वनवास और भरत का राज्याभिषेक, ये दो वर मांगे थे। मंथरा कैकेयी के साथ ही आई थी।

मन्दपाल—धार्मिक तपस्वी और वेदपारग महर्षि। इन्होंने बहुत दिनों तक तपस्या की। अंतिम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर ये पितृलोक को गए थे। संतान उत्पन्न न करने के कारण इनको ईप्सित लोक की प्राप्ति नहीं हुई। इन्हें अपने कर्म-फलों के भोग से वंचित होना पड़ा। अतएव थोड़े समय में अनेक पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा से महर्षि विहंगम मंडल में गए और वहां उन्होंने शर्ङ्गक का रूप धरकर जरिता नाम की एक शार्ङ्गिका के गर्भ से चार पुत्र उत्पन्न किए। खांडव वनदाह के समय इनके दग्ध होने की संभावना हुई थी अतएव मंदपाल ने अग्नि की स्तुति की। इस स्तुति से प्रसन्न होकर अग्नि ने मंदपाल के चारों पुत्रों की रक्षा की। (महाभारत)

मन्दोदरी—लंकेश्वर रावण की पटरानी। यह मय नामक दानव के औरस और हेमा नाम की अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। रावण का प्रसिद्ध पराक्रमी पुत्र मेघनाद इसीके गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

यह पंचकन्याओं में से है। रावण के मरने पर इसका विभीषण से ब्याह हुआ था। (रामायण)

मन्यु—एक देवताविशेष, जिसे क्रोध का प्रतीक माना गया है और ऋग्वेद के सूक्तों में जिसका अन्य देवताओं के समान आवाहन किया गया है। एक बार देवासुर संग्राम में देवता पराजय की स्थिति में पहुंच गए थे। तब उन्होंने विजय-प्राप्ति के लिए गौतमी नदी के तट पर तपस्या की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर शंकर ने उन्हें अभयदान किया और देवताओं की पराजय के लिए उनकी सहायतास्वरूप अपने तृतीय नेत्र से मन्यु देवता को उत्पन्न किया। इसने दैत्यों तथा असुरों का वध करके देवताओं को विजय दिलाई। इसलिए इस अजेय देवता की ऋग्वेद में स्तुति की गई है। उसे अपने भक्तों की रक्षा करनेवाला कहा गया है। (ऋग्वेद तथा ब्रह्मपुराण)

मम्मट—संस्कृत के अलंकारशास्त्र की प्रधान पुस्तक काव्यप्रकाश के कर्ता। मम्मट ने किस संवत् में काव्यप्रकाश लिखा, इस प्रश्न के उत्तर में एक मत ऐसा प्रचलित है, जो १३३५ के पूर्व ही उनका समय बतलाता है। क्योंकि १३वीं शताब्दी के माधवाचार्य ने सर्वदर्शन-संग्रह में काव्यप्रकाश का उल्लेख किया है।

परंतु मम्मट का समय ११वीं सदी का अंतिम भाग मानना ही मेरी समझ से उत्तम है। क्योंकि ये मालवाधीश सिंधुराज के पुत्र भोजराज से नवीन और काव्यप्रकाश के टीकाकार माणिक्यचंद्र से प्राचीन हैं। भोजराज का समय नवीं सदी का अंत और दसवीं सदी का प्रारंभ माना गया है। मम्मट ने काव्यप्रकाश के दशम उल्लास में उदात्तालंकार के उदाहरण में—"भोजनृपतेस्तत्त्यागलीलायितम्," यह पद्य उद्धृत किया है जिससे भोजराज से मम्मट अर्वाचीन सिद्ध होते हैं। माणिक्यचंद्र से मम्मट की प्राचीनता के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं है। क्योंकि इन्होंने काव्यप्रकाश की संकेता नाम की टीका लिखी है। ख्रीष्टीय ११६० ई० में माणिक्यचंद्र ने काव्यप्रकाश की टीका संकेता लिखी। माणिक्यचंद्र ने अपना समय काव्यप्रकाश की टीका में लिखा है—

रसवक्त्रग्रहाधीशवत्सरे (१२१६) याति माधवे।
काव्ये काव्यप्रकाशस्य संकेतोऽयं समर्थितः॥

माणिक्यचंद्र ने अपना समय १२१६ विक्रमी संवत् बतलाया है। इसके अनुसार उनका समय ११६० ख्रीष्टीय ई० होता है।

काव्यप्रकाशकार मम्मट का कुछ विशेष वृत्तांत नहीं मालूम पड़ता। काव्यप्रकाश की निदर्शन नामक टीका से इतना मालूम पड़ता है कि ये शैवागमानुयायी शैव थे और 'शब्दव्यापार-विचार' नामक ग्रंथ भी इन्होंने लिखा है।

मम्मट का जन्म किस जनपद में हुआ था, इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि काश्मीर में। जैयट-कैयट आदि काश्मीरियों के नाम के सदृश इनका भी नाम मम्मट है। मम्मट ने परिकरालंकारपर्यंत काव्यप्रकाश लिखा था, आगे का अंश अल्लटसूरि ने पूरा किया। काव्यप्रकाश की निदर्शन नामक टीका में लिखा है—

कृतः श्रीमम्मटाचार्यवर्यैः परिकरावधि।
प्रबन्धः पूरितः शेषो विधायाल्लटसूरिणा॥

मय दानव—शिल्पशास्त्रज्ञ दानव। यह शिल्प का निपुण अभिज्ञ पारदर्शी था। इसीने युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ की सभा बनाई थी, जिसको देखकर बड़ों-बड़ों की बुद्धि चकरा गई थी। मंदोदरी इसीकी कन्या थी, जो रावण को ब्याही गई थी। इसके दो पुत्र थे। एक का नाम मायावी और दूसरे का दुन्दुभि था। दुन्दुभि, वानरराज बाली के हाथों मारा गया था।

मयूरध्वज—रत्ननगर का एक धर्मपरायण राजा। इसने नर्मदा नदी के तट पर अपने आठवें अश्वमेध-यज्ञ का आयोजन किया और यज्ञ के अश्व के संरक्षण का भार अपने पुत्र सुचित्र अथवा ताम्रध्वज को सौंपा। जब सुचित्र दिग्विजय करके लौट रहा था तो रास्ते में उसे युधिष्ठिर के अश्वमेध का अश्व मिला। सुचित्र ने उसे पकड़ लिया, जिस कारण उसका कृष्णार्जुन से भयंकर संग्राम हुआ। संग्राम में सुचित्र ने कृष्ण को मूर्च्छित कर दिया और यज्ञ-अश्व को लेकर अपने नगर लौट आया। मूर्च्छित कृष्ण के चैतन्य हो जाने पर इन दोनों ने ब्राह्मण का रूप धारण करके रत्नपुरसम्राट् मयूरध्वज के पास गए। उससे ब्राह्मणवेशधारी कृष्ण ने कहा कि जंगल में उसके पुत्र को सिंह ने पकड़ लिया है। सिंह उस बालक को इस शर्त पर छोड़ने के लिए तैयार है कि मयूरध्वज राजा का आधा शरीर उसे प्राप्त हो। ब्राह्मण की इच्छा को पूरा करने के लिए राजा आरे से अपना शरीर कटवाने लगा। इसी समय इसकी पत्नी कुमुदिनी आई और उसने वामांग के रूप में स्वयं को अर्पित करने का प्रस्ताव रखा; किंतु ब्राह्मण ने कहा कि सिंह को राजा का दाहिना अंग चाहिए। तब विवश होकर राजा को अपना शरीर

कटवाने के लिए प्रस्तुत होना पड़ा। जब उसका शरीर काटा जाने लगा तो उसकी बायीं आंख से आंसू बहने लगा। इसपर ब्राह्मण ने कहा कि दुःखपूर्वक दिया हुआ यह दान उसे स्वीकार नहीं है। तब मयूरध्वज ने कहा कि वह यह आंसू शरीर कष्ट के कारण नहीं, अपितु इसलिए बह रहा है कि काश, यह सौभाग्य दाहिने अंग की भांति बायें अंग को भी प्राप्त होता! राजा की इस बात को सुनकर ब्राह्मण-वेशधारी कृष्ण अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुआ और उसने राजा को अपनी बांहों में कस लिया। तदनंतर अपना यज्ञ पूरा करके मकरध्वज कृष्णार्जुन के साथ यज्ञीय अश्व के संरक्षण के लिए चला गया। (जैमिनी पुराण)

मरीचि—ब्रह्मा के मानस-पुत्र। ये सप्तर्षियों में से एक हैं।

मरुत्त—दिति के गर्भ और कश्यप के औरस से इस देवता की उत्पत्ति हुई थी। दिति के पुत्र-दैत्यों के मारे जाने पर दिति ने देवताओं से अजेय एक पुत्र की प्रार्थना स्वामी से की। कश्यप के वर से उसका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह जानकर देवराज इंद्र ने गर्भावस्था में ही वज्र द्वारा उसके ४६ टुकड़े कर दिए। परंतु गर्भ के कई खंड हो जाने पर भी कश्यप के वर से इनका विनाश नहीं हुआ। इसी कारण ये ४६ मरुत्त के नाम से प्रसिद्ध हुए।

मरुद्वृषा—इसका ऋग्वेदकालीन अस्तित्व है। 'निरुक्त' (६।२६) में इसका अर्थ किया गया है, "जो वायु या मरुतों द्वारा बाढ़ में लाई गई हो।" पुराणों में इसे कावेरी कहा गया है। स्टीन ने इसे चिनाब की सहायक नदी मरुवर्द्धन के नाम से कहा है।

मलजाः—(मलदाः) करूष देश के समीप का देश, जिसे मालदा कहते हैं और जो शाहाबाद आरा का पश्चिमी भाग है।

मलयागिरि—इसे मलयकूट, श्रीखंडाद्रि तथा चंदनाद्रि भी कहा जाता है। किसी पांडव राजा ने इस पहाड़ी पर शरण ली थी। पुराणों तथा काव्यों में इस पर्वत का व्यापक उल्लेख हुआ है। पार्जिटर ने नीलगिरि से कन्याकुमारी तक फैले पश्चिमी घाट के पर्वत खंड को इस गिरि से समीकृत किया है। कुछ विद्वानों के मत से, जातकों का चंदनपर्वत मलगिरि या मलाबार है।

मलिक मुहम्मद जायसी—हिंदी के सूफी कवियों में इनका प्रमुख स्थान है। इनका जन्म ८००-६०० हिजरी (१३६७-१४६४ ई०) के बीच किसी समय जायस (उदयमान) में हुआ था, जो कि रायबरेली (उत्तर-प्रदेश) जिले में आज भी इसी नाम से विद्यमान है। वे मुगल बादशाह बाबर (१५२६-१५३० ई०) और सुलतान शेरशाह सूरी (१५४०-१५४५ ई०) के समकालीन थे, जिनका इन्होंने अपने ग्रंथों में उल्लेख भी किया है। उनकी पारिवारिक स्थिति का केवल इतना ही पता चलता है कि वे सामान्य स्तर के किसान थे। उनके पुत्र का नाम मलिक कबीर था। सैयद अशरफ उनके गुरु थे, जिन्होंने "प्रेम का दीपक जलाकर उनके हृदय को निर्मल किया।" उनके दूसरे गुरु मोहदी या महदी शेख बुहरान थे। कहा जाता है कि जब ये सात वर्ष के थे, इन्हें चेचक निकल आई थी और उससे इनकी एक आंख जाती रही। इस बीमारी से इनके एक ओर के हाथ-पैर भी बेकार हो गए थे और इनके कुबड़ेपन ने इन्हें कुरूप बना दिया था। इस प्रसंग में यह भी कहा जाता है कि एक बार जब ये अकबर के दरबार में गए तो इनकी कुरूपता पर वह हंस पड़ा। ठीक इसी घटना का संबंध सुलतान शेरशाह से भी बताया गया था। इन्होंने अपनी हंसी उड़ाने वालों को लज्जित कर दिया था।

जायसी अत्यंत उदार, दानशील और साधु स्वभाव के महापुरुष थे। अमेठी दरबार में इनका एक उच्चकोटि के फकीर के रूप में बड़ा सम्मान था। जीवन के अंतिम दिनों में इन्होंने अमेठी के मंगरा नामक घने जंगल में एकांत तपश्चर्या-जीवन व्यतीत किया और वहीं पर किसीने एक शेर के धोखे में गोली चलाकर इनका शरीरांत कर दिया।

जायसी की कृतियों के नाम इस प्रकार हैं—'पद्मावत', 'अखरावट', 'आखिरी कलाम', 'महरी बाईसी', 'चित्रावत' और 'मोस्तीनामा'। इनके अतिरिक्त भी अनेक अन्य कृतियां भी इनके द्वारा विरचित बताई जाती हैं; किंतु वे संदिग्ध हैं। अपनी रचनाओं में जायसी ने इस्लाम की सूफी प्रेमपद्धति का भारतीय पृष्ठभूमि पर बड़ी सफलता से चित्रण किया है (डॉ० माताप्रसाद गुप्त—जायसी ग्रंथावली; डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय (सं०, अनु०) हिंदुई साहित्य का इतिहास)।

मलूकदास—ये हिंदी के कवि और कड़ा मानिकपुर के रहने वाले थे। सं० १८८५ वि० में इनकी उत्पत्ति हुई

थी। इनकी कविता बहुत ललित होती है।

मलैसी जी—जयपुर के प्राचीन राजा। इनके पिता का नाम पजोनी था। महाराज पजोनी ने कन्नौज के स्वयंवर के समय पृथ्वीराज की ओर से युद्ध किया था। पजोनी और मलैसी ये दोनों उस युद्ध में सम्मिलित हुए थे। पजोनी जी उस युद्ध में मारे गए। उनके अनंतर मलैसी जी आंबेर की गद्दी के अधीश्वर हुए। (टाड्स राजस्थान)

मल्लाः—इस नाम के दो देश हैं। पश्चिम से मुलतान और पूर्व में हजारीबाग का वह भाग जिसमें पारसनाथ पर्वत है और मानभूमि जिले का भी कुछ भाग शामिल है।

महादेव—ये हिंदुओं के एक प्रधान देवता हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महादेव ये ही तीन प्रधान देव हैं। परमात्मा की सृष्टि-शक्ति ब्रह्मा के नाम से, पालन-शक्ति विष्णु के नाम से और संहार-शक्ति महादेव के नाम से प्रसिद्ध है। महादेव का प्रधान अस्त्र त्रिशूल है। उनके धनुष का नाम पिनाक है। महादेव के एक दूसरे प्रसिद्ध अस्त्र का नाम पाशुपत है। महादेव ने प्रसन्न होकर यही अस्त्र अर्जुन को दिया था। त्रिपुर का विनाश करके वे त्रिपुरारि नाम से प्रसिद्ध हुए। समुद्र-मंथन से उत्पन्न विष पीने के कारण उनका नीलकंठ नाम पड़ा। परशुराम ने महादेव से अस्त्रविद्या की शिक्षा पाई थी। महादेव ने दक्षयज्ञ का नाश किया था।

महानन्द वाजपेयी—ये बैसवारे के रहने वाले थे और हिंदी तथा संस्कृत के पंडित थे। ये परम शैव थे। इन्होंने बृहत् शिवपुराण का हिंदी में अनुवाद किया है।

महानन्दा—परम शिवभक्तिन एक वेश्या। यह एक मुर्गे और एक बंदर को रुद्राक्षों से सजाए रखकर शिव की भक्ति करती थी और वे दोनों इसके समक्ष नृत्य किया करते थे। एक बार इसकी परीक्षा लेने के लिए शंकर वैश्य का रूप धारण करके इसके पास आए। उनके रत्नकंकण को देखकर महानंदा ने उसको लेने की इच्छा प्रकट की और उसके मूल्य रूप में तीन दिन तक वैश्यरूप शिव की पत्नी बनना स्वीकार किया। एक रात को महानंदा के घर में आग लग जाने से वह रत्नकंकण जल गया। उससे दुःखित होकर वैश्यरूप शिव प्राण-त्याग करने के लिए उद्यत हो गया। महानंदा ने भी दूसरा उपाय न देखकर उसके साथ सती होने का संकल्प किया, क्योंकि वह उसकी पत्नी का धर्म निभा रही थी। उसकी इस कर्त्तव्य-निष्ठा को देखकर शंकर प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे दर्शन देकर उसके समस्त पापों का हरण किया। (शतरुद्रसंहिता)

महापुराण—प्रधानतः पुराणों के दो भेद हैं। महापुराण और उपपुराण। महर्षि व्यास के लिखे और दस हजार से अधिक श्लोक वाले पुराण महापुराण कहे जाते हैं। वैसे महापुराण अट्ठारह हैं, जिनके नाम ये हैं—(१) ब्रह्मपुराण, (२) पद्मपुराण, (३) विष्णुपुराण, (४) शिवपुराण, (५) लिंगपुराण, (६) गरुड़पुराण, (७) नारदीयपुराण, (८) श्रीमद्भागवत, (९) अग्निपुराण, (१०) स्कंदपुराण, (११) भविष्यपुराण, (१२) ब्रह्मवैवर्तपुराण, (१३) मार्कंडेयपुराण, (१४) वामनपुराण, (१५) वराहपुराण, (१६) मत्स्यपुराण, (१७) कूर्मपुराण और (१८) ब्रह्मांडपुराण।

महाबलीपुरम्—इस स्थान का अपना ऐतिहासिक तथा धार्मिक महत्त्व है। इसे सप्त पैगोडों का स्थान कहा जाता है। इस स्थान पर ब्रह्मा, विष्णु और शिव के सतत साहचर्य के प्रतीक अनेक मंदिर हैं। विष्णु के वराहावतार तथा महिषमर्दिनी की मूर्तियां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यहां पर अनेक कलात्मक गुफाएं भी बनी हुई हैं, जिनमें पौराणिक विषयों का भव्य-अंकन हुआ है। मंदिरों में त्रिचनापली, महेंद्रवाडि और डलवानूर के नाम उल्लेखनीय हैं, जो कि स्थापत्य तथा मूर्तिकला के दर्शनीय संगम हैं। महाबलीपुरम् की वराह गुफा में पल्लवराजसिंह विष्णु और उसकी दो रानियों की मानवाकार प्रस्तर प्रतिमाएं अत्यंत ही कलापूर्ण हैं। यह मूर्ति-फलक अलंकरणों की चरमार से रहित अपनी सादगी और सात्त्विकता की दृष्टि से परंपरागत क्लासिक कला के आदर्शों को व्यक्त करता है। नरसिंहवर्मन प्रथम (६३०-६६८ ई०) ने महाबलीपुरम् का गौरव बढ़ाया। उसने वहां एक ही प्रस्तर पर निर्मित मंदिरों तथा रथों का निर्माण करवाकर अपनी कलाप्रियता का परिचय दिया।

महाभारत—भारतवर्ष का एक इतिहास और महाकाव्य। कुरु-पांडव युद्ध होने के पश्चात् पराशर-पुत्र महर्षि वेदव्यास ने इस महाकाव्य की रचना की। महाभारत के विषय में प्रधानतः यह प्रसिद्धि है कि यह ग्रंथ एक लाख श्लोकों का है। महाभारत के आदिपर्व के प्रथम अध्याय में यह बात इस प्रकार लिखी है। पहले

उपाख्यान भाग को छोड़कर २४ हजार श्लोकों में वेदव्यास ने भारतसंहिता लिखी। पंडितगण उसी चौबीस हजार श्लोक वाली संहिता को ही भारत कहते हैं। तदनंतर समस्त पर्वों का सार-संग्रह करके उन्होंने १५० श्लोकों में अनुक्रमणिका अध्याय लिखा। व्यास ने पहले यह संहिता अपने पुत्र को दी। तदनंतर अन्य शिष्यों को भी इस संहिता का अध्ययन कराया। इस संहिता के बनाने पर इन्होंने साठ लाख श्लोकों की एक और बड़ी संहिता लिखी। उसके तीस लाख श्लोकों का देवलोक में, पंद्रह लाख श्लोकों का पितृ-लोक में, चौदह लाख श्लोकों का गंधर्वलोक में और एक लाख श्लोकों का मर्त्यलोक में प्रचार हुआ। व्यास-शिष्य वैशम्पायन ने जनमेजय के सर्वमेध नामक यज्ञ में उस लक्ष श्लोक वाली संहिता का कीर्तन किया था। वही आज महाभारत के नाम से प्रसिद्ध है। महाभारत में १८ पर्व हैं। आदि, सभा, वन, विराट्, उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शांति, अनुशासन, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक, मौशल, महाप्रास्थानिक और स्वर्गारोहण। ये पर्व-समूह एक सौ उपपर्वों में विभक्त हैं।

महाभारत तथा अन्यान्य पुराणों में वर्णित एक विषय के साथ कभी-कभी दूसरे विषयों का विरोध पाया जाता है। यही कारण है कि आजकल पुराणों में क्षेपक बतलाने का लोगों को साहस होने लगा है। समस्त पुराण-उपपुराणों के प्रक्षिप्त अंश की आलोचना हम यहां नहीं करेंगे। महाभारत के समान बड़े ग्रंथ के प्रक्षिप्त अंश की आलोचना भी इस स्थान पर असंभव है, तथापि किस कारण से प्रक्षिप्त प्रसंग उठाया जाता है और साधारणतः महाभारत के किस-किस अंश को विद्वान् प्रक्षिप्त समझते हैं, यही बात यहां दिखलाई जाएगी। महाभारतीय क्षेपक के विषय में प्रधानतः चार कारण बतलाए जाते हैं। (१) महाभारत के आदिपर्व में, पर्व अध्यायों के संग्रह प्रसंग में, महाभारत में वर्णन किए जाने वाले विषयों का जहां उल्लेख है, उसके साथ किसी-किसी स्थान का मेल न होना। पर्वाध्याय-संग्रह में अनुगीता और ब्राह्मणगीता का नाम नहीं है, परंतु आश्वमेधिक पर्व में ये दोनों गीताएं देखी जाती हैं। इतने बड़े दो विषयों का अनुक्रमणिका में उल्लेख क्यों नहीं हुआ? (२) लिखा है, जनमेजय के सर्पयज्ञ में पढ़ा गया महाभारत एक लाख श्लोकों का है और इस समय वही महाभारत प्रचलित है। परंतु गणना करने से महाभारत में इस समय ८४ हजार ८ सौ ३६ श्लोक मात्र पाए जाते हैं। यदि हरिवंश को मिला दें तो श्लोकों की संख्या बढ़ जाती है। इससे यह अनुमान अवश्य किया जाता है कि बाद के समय में महाभारत के श्लोकों में कुछ घटाव-बढ़ाव हुआ है। (३) महाभारत का समस्त अंश वेदव्यासरचित नहीं है, यह बात आदिपर्व के कतिपय अध्यायों से प्रमाणित होती है। नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियों के प्रश्न के उत्तर में लोमहर्षण-पुत्र उग्रश्रवा महाभारत का वर्णन करते हैं—ऐसा लिखा है। वहां और भी यह लिखा मिलता है, प्रश्नकर्ता महर्षिगण कहते हैं, "महर्षि द्वैपायन ने जिस पुराण की रचना की, सर्प-यज्ञ में राजा जनमेजय के सामने वैशम्पायन ने जिस महाभारत को गाया था, वेदव्यासप्रणीत उसी महा-भारत को सुनने की हम लोग इच्छा करते हैं।" इस प्रकार महाभारत के अनेक स्थानों में सूत, शौनक, उग्रश्रवा, जनमेजय आदि का प्रश्नोत्तर जहां देखा जाता है वहां उन अंशों को वेदव्यासरचित कैसे कहा जा सकता है। (४) चरित्रगत असंगति। वेदव्यास के समान सुपंडित और सुकवि अपने ग्रंथों में चरित्रों का सामंजस्य विधान नहीं कर सकते। इस बात पर विश्वास कैसे किया जा सकता है। उन्होंने युधिष्ठिर को आदर्श सत्यवादी कहकर वर्णन किया है। उन्हीं-के मुख से गुरुहत्या-मूलक असत्य कहलाना अनुचित हुआ है। यहां चरित्र का सामंजस्य भंग हो गया है,

आधुनिक विद्वानों का यही मत है। मैं यह कहना नहीं चाहता कि महाभारत में या अन्य पुराणों में प्रक्षिप्त अंश वेदव्यास के पश्चात् की रचना नहीं है। अवश्य है—यह मैं भी कहना चाहता हूं। परंतु प्रक्षिप्त अंश के लिए जो चार प्रकार के कारण दिखाए जाते हैं, उनके विषय में भी मतभेद है। द्रोणवध के लिए युधिष्ठिर से असत्य कहलाकर उनका चरित्र कलंकित किया गया है। अतएव वह विषय प्रक्षिप्त है। परंतु मैं इस बात को नहीं मान सकता। इसका उत्तर दो प्रकार से दिया जा सकता है—महाभारत जब इतिहास है तब तो जैसा हुआ वैसा ही लिखा गया है, यही मानना उचित है। यदि इतिहास से इस बात को निकाल दें तब इतिहास की यह एक बड़ी भारी भूल रह जाएगी। यदि महाभारत को महा-काव्य मानें तो इस प्रकार के चरित्र-चित्रण से कवि-

प्रतिभा की उज्ज्वलता ही विदित होती है। युधिष्ठिर सत्यवादी थे, उन्होंने कभी मिथ्यावचन नहीं कहे, यह उक्ति जितनी हृदयंगम होगी उससे कहीं अधिक सत्यवादी युधिष्ठिर से द्रोणवध के लिए असत्य बुलवाकर तथा उस असत्य कहने का फल बताना हृदयंगम होगा। इस प्रकार सत्य ज्योति का अधिक प्रकाश होगा। जिस अवस्था में युधिष्ठिर से अश्वत्थामा के वध का वृत्तांत कवि ने प्रकाशित कराया है, यदि वह कल्पना है तो भी उच्च कवि-हृदय की उच्च कल्पना है, इसमें संदेह नहीं। इस घटना से युधिष्ठिर के चरित्र से एक विलक्षण प्रकार की लोक-शिक्षा मिलती है। युधिष्ठिर मनुष्य थे और कवि ने भी मनुष्य-चरित्र ही अंकित किया है। मनुष्य-चरित्र दिखाकर कवि ने दिखाया है कि युधिष्ठिर के समान मनुष्य को भी किस प्रकार अवस्था का दास बनना पड़ता है। यह देखकर दूसरों को सावधान होना चाहिए; संभव है कवि का यह भी लक्ष्य हो और इस घटना से महाभारत की अनेक घटनाएं जुड़ी हैं। यदि महाभारत से यह घटना निकाल दी जाती या निकाल दी जाए, तो महाभारत एक दूसरे रूप में परिणत हो जाता, या हो जाएगा। अतएव व्यासदेव ने युधिष्ठिर से कहलाया है—

तव तथ्यभये मग्नो जयेऽशक्तो युधिष्ठिरः।
अव्यक्तमब्रवीद्राजन् हतः कुञ्जर इत्युत ॥

अतः इसको मिथ्या या प्रक्षिप्त कहना किसी प्रकार उचित नहीं कहा जा सकता।

दूसरा संदेह श्लोकों की संख्या के विषय में है। इस विषय में अनेक बातें हैं। पहले तो श्लोकसंख्या गिनने की रीति अनेक प्रकार की प्रचलित है। कोई-कोई 'जनमेजय उवाच' को भी एक श्लोक गिन लिया करते हैं। कोई केवल श्लोकों को ही गिनते हैं। महाभारत की श्लोक-गणना किस रीति के अनुसार की गई है, इसका उत्तर कोई-कोई ही दे सकते हैं। कोई 'नारायणं नमस्कृत्य' से, कोई आस्तिकपर्व से, कोई राजा उपरिचर के उपाख्यान से, महाभारत का आरंभ मानते हैं। ऐसी स्थिति में मनमाना हिसाब लगाना केवल उपहासास्पद है। जो श्लोकों की कम संख्या बतलाते हैं उन्होंने किस प्रदेश में प्रचलित महाभारत की श्लोक-संख्या की गणना की है, यह नहीं कहा जा सकता। बंगाल के महाभारत, बंबई प्रदेश में प्रचलित महाभारत तथा दाक्षिणत्य प्रदेश में प्रचलित महाभारत का जब एक-दूसरे से मिलान किया जाता है, तब इनमें अनेक कमीबेशी पाई जाती है। इसके अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। भीष्मपर्व में जहां भगवद्गीता की समाप्ति हुई है वहां उसके बाद के वैशम्पायनोक्त साढ़े पांच श्लोक बंगाल के महाभारत में नहीं पाए जाते। यह बात नीलकंठ ने अपनी महाभारत की टीका में लिखी है—"गीता सुगीता कर्त्तव्या इत्यादयः पञ्चश्लोकाः गौडैर्न पठ्यन्ते।" बंबई प्रदेश में जो महाभारत प्रचलित है उसमें इनसे भी अधिक और दो श्लोक पाए जाते हैं। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रदेशों में प्रचलित महाभारत में कमीबेशी पाई जाती है। अस्तु। दूसरे प्रदेश के महाभारत के अधिक श्लोकों को गिन लेने पर भी महाभारत की श्लोक-संख्या ठीक नहीं होती। इससे ऐसा मालूम पड़ता है कि जिस समय महाभारत की श्लोक-गणना हुई थी, उससे परवर्ती समय में लेखकों के प्रमाद से कुछ श्लोक छूट गए। और "महाभारत में लाख श्लोक हैं" इसका यह अर्थ नहीं है कि महाभारत में लाख ही श्लोक हैं, एक भी कमोबेश नहीं। तथापि महाभारत में भी प्रक्षिप्त अंश है, एक सिद्धांत के विरुद्ध दूसरी बात को देखकर ही यह कहा जाता है।

महाभिष—एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा। पूर्वजन्म में इसने सहस्र अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ करने के कारण स्वर्गलोक को प्राप्त किया। एक बार स्वर्गलोक में महानदी गंगा का वस्त्र हवा में उड़ रहा था, जिसे देखकर सबने अपनी नजरें नीचे झुका लीं; किंतु यह उसे एकटक देखता रहा। गंगा ने भी इसे प्रेम-भरी दृष्टि से देखा। दोनों प्रेमबंधन में बंध गए। उनके इस पापाचार के कारण ब्रह्मा ने उन्हें मृत्युलोक में गिर जाने का शाप दिया। किंतु दोनों द्वारा क्षमा-याचना करने पर ब्रह्मा ने पुनः उन्हें स्वर्गप्राप्ति का वचन दिया। इस प्रकार महाभिष राजा शंतनु और गंगा उसकी पत्नी बनी। तदनंतर अपने पुण्यार्जन के बाद उन्होंने स्वर्ग प्राप्त किया।

महाराष्ट्र राज्य—दाक्षिणात्य का प्रसिद्ध जनपद। अनेक शास्त्रीय ग्रंथों में महाराष्ट्र का उल्लेख पाया जाता है। ब्रह्मांडपुराण में महाराष्ट्र दक्षिण देश का जनपद लिखा गया था। किसी-किसी पुराण में 'राष्ट्रवासिन' शब्द देखा जाता है। इसका अर्थ टीकाकारों ने सौराष्ट्र और महाराष्ट्र देश के अधिवासी किया है।

ह्वेनत्संग के भारतागमन के समय महाराष्ट्र एक प्रसिद्ध जनपद था। ह्वेनत्संग कोंकण देश से उत्तर-पश्चिम की ओर चार सौ मील जाकर महाराष्ट्र देश में गए थे। ह्वेनत्संग ने लिखा है कि कोंकण देश से महाराष्ट्र देश में जाने का मार्ग बड़ा ही कठिन है। यह मार्ग वनैला है और हिंस्र जंतु तथा चोरों से अत्यंत भयानक है। उन्होंने महाराष्ट्र देश की लंबाई-चौड़ाई एक हजार मील बताई है। इस राज्य की राजधानी की परिधि पांच मील है। राजधानी के पश्चिम की ओर एक बड़ी नदी बहती है। ह्वेनत्संग के वर्णनानुसार कनिंहम ने महाराष्ट्र देश की यह सीमा बतलाई है। उत्तर में मालव, पूर्व में आंध्र या कोशल, दक्षिण में कोंकण, और पश्चिम में समुद्र। इस सीमा के अंतर्गत का स्थान ही महाराष्ट्र राज्य है। परंतु ह्वेनत्संग ने महाराष्ट्र देश की राजधानी के विषय में जो कुछ लिखा है उस विषय में कनिंहम को बड़ा संदेह है। कनिंहम साहब कहते हैं कि गोदावरी के तीर पर स्थित पैथान या प्रतिष्ठान (अब पैठण) ही सप्तम शताब्दी में महाराष्ट्र राज्य की राजधानी रहा होगा। परंतु महाराष्ट्र देश की राजधानी से परिपार्श्वक स्थान (भरोच) की जो दूरी ह्वेनत्संग ने बतलाई है वह नहीं मिलती। अतएव यह अनुमान किया जाता है कि कल्याणी नगरी ही को ह्वेनत्संग ने महाराष्ट्र देश की राजधानी बताया है। इस नगरी में चालुक्यवंशी राजाओं की राजधानी थी। इस नगरी के पश्चिम की ओर कैलास नामक एक नदी भी बहती है। अन्नगुंडी और भरोच की दूरी के हिसाब से भी इस नगरी को ह्वेनत्संग की देखी महाराष्ट्र की राजधानी मान सकते हैं। कल्याण या कल्याणी का नाम बहुत दिनों से प्रसिद्ध है। छठी शताब्दी में 'काल्लेयेना' नामक स्थान में ईसाई धर्म-गुरुओं का अड्डा था। ह्वेनत्संग ने अपने वर्णन में लिखा है कि महाराष्ट्र देश की भूमि उर्वरा है, वहां खेतीबारी बड़ी सावधानी से होती है। यहां के वासी सज्जन, दृढ़प्रतिज्ञ और बदला लेने में बड़े दक्ष हैं। उपकारियों के प्रति वे कृतज्ञ होते हैं और शत्रुओं के प्रति वे अत्यंत ही निर्दय होते हैं। अपमानित होने पर वे प्राण देकर भी बदला लेते हैं। जो कोई उनकी शरण जाकर सहायता चाहता है, उसे वे आत्म-विस्मृतिपूर्वक सहायता देते हैं। महाराष्ट्रवासी जब किसी शत्रु से बदला लेने के लिए उसपर आक्रमण करते हैं, तब वे शत्रुओं को सावधान कर दिया करते हैं, पुनः सावधान शत्रु पर वे आक्रमण करते हैं। यदि कोई महाराष्ट्र सेनापति युद्ध में हार जाता है तो वे उसको कुछ भी विशेष दंड नहीं देते। किंतु पराजित सेनापति को स्त्रियों जैसे कपड़े पहनने पड़ते हैं और उसी लज्जा से वह प्राण-त्याग कर देता है। जिस समय ह्वेनत्संग महाराष्ट्र में गए थे उस समय पुलकेशि नामक एक क्षत्रिय वहां का राजा था। वह बड़ा ही प्रसिद्ध राजा था। उसकी कीर्ति चारों ओर फैल गई थी। उसकी प्रजा राजा में बड़ी भक्ति रखती थी। उसी समय कन्नौज के राजा शिलादित्य ने आसपास के समस्त स्थानों पर अपना अधिकार जमाया था। परंतु महादेश पर उनका अधिकार नहीं जम सका था। शिलादित्य ने अनेक प्रदेशों से बड़े-बड़े वीरों को बुलाकर अपनी सेना में रखा था। युद्ध के समय सेना का निरीक्षण वे स्वयं करते थे, तथापि वे महाराष्ट्र देश को अपने हाथ में नहीं कर सके। राजा पुलकेशि को रण में पराजित करना तो दूर रहा, किंतु वे स्वयं पुलकेशि से परास्त हो गए थे। महाराष्ट्र जाति की स्वाधीनता रक्षित रही थी। बाद के समय में भी महाराष्ट्र जाति ने विलक्षण वीरता का परिचय दिया है। पुलकेशि के उत्तराधिकारियों ने हजार वर्ष के बाद भी मुगल सम्राट् औरंगजेब का अभिमान चूर कर दिया था।

महाराष्ट्र देश के प्राचीन इतिहास की आलोचना में प्रायः ऐतिहासिकों को बड़ी-बड़ी बाधाओं का सामना करना पड़ता है। महाराष्ट्र जाति के इतिहास-प्रणेता ग्रेंट डफ कहते हैं कि अन्य प्राचीन जातियों के समान महाराष्ट्र जाति का भी प्राचीन इतिहास अंधकार में लीन है। मुसलमानों का महाराष्ट्र देश पर अधिकार होने से पहले महाराष्ट्र देश में दो-तीन बार राष्ट्र-परिवर्तन हुआ था। पुराणों में लिखा है कि कावेरी और गोदावरी के बीच का स्थान दंडकारण्य कहा जाता है। जिस समय रावण का आधिपत्य चारों ओर फैला था उस समय रावण ने यह प्रदेश अपने गायकों को दान में दिया था। लोगों का विश्वास है कि महाराष्ट्र देश के आदिमवासी गुरशी थे, वे नीच वंश के थे। परंतु गीत-वाद्य में वे बड़े निपुण थे। इतिहासकार महाराष्ट्र देश में टगर नामक एक नगर का प्रथम उल्लेख करते हैं। कहते हैं, वही महाराष्ट्र देश की राजधानी थी। ख्रीष्ट जन्म के अढ़ाई सौ वर्ष पहले मिस्र के व्यापारी इस नगर में व्यापार

करने आते थे। ख्रीष्टीय १२वीं सदी के ताम्र-शासन से इस नगर की प्रधानता विदित होती है। इस नगर में शीलारवंशी किसी राजपूत-राजा की राजधानी थी और उसने आसपास के राज्यों पर अपना अधिकार जमा लिया था। इस समय टगर नगर का कुछ भी पता नहीं है। पुरातत्त्ववेत्ता कहते हैं कि टगर वर्तमान वीरनगर के उत्तर-पूर्व की ओर गोदावरी नदी के तीर पर वर्तमान था। इस नगर के प्रतिष्ठाता राजाओं ने कितने दिनों तक यहां राज्य किया था इसके विषय में कुछ भी विदित नहीं है। परंतु ख्रीष्टीय ७७-७८ ई० में शालिवाहन ने इस राज्य पर अधिकार किया था। कहते हैं, शालिवाहन किसान के पुत्र थे, परंतु लोग इन्हें महादेव का अवतार समझते हैं। शालिवाहन टगर नगर से अपनी राजधानी प्रतिष्ठान में ले गए थे। तभी से टगर नगर का नाश होना प्रारंभ हुआ। प्रतिष्ठान में राजधानी स्थापित करके शालिवाहन ने बड़ी दूर तक अपना अधिकार फैला दिया। मालवा के राजा विक्रमादित्य उनसे हार गए थे, ऐसा भी सुना जाता है। कोई-कोई कहते हैं कि शालिवाहन ने जब मालवा पर आक्रमण किया तब वहां के राजा विक्रमादित्य ने उनसे संधि कर ली। उसी संधि के नियमानुसार नर्मदा नदी के उत्तर का देश शालिवाहन के अधीन और नर्मदा नदी के दक्षिण का देश विक्रमादित्य के अधीन रहा। परंतु बहुत लोग इस बात पर विश्वास नहीं करते क्योंकि विक्रमादित्य ख्रीष्ट जन्म के ५७ वर्ष पूर्व हुए थे और शालिवाहन ख्रीष्ट जन्म के ७७ वर्ष पश्चात् उत्पन्न हुए थे। इन दोनों के समय में १३४ वर्ष का व्यवधान है। अतएव उनके युद्ध और संधि की कल्पना नितांत असत्य है। शालिवाहन के बाद बहुत दिनों तक महाराष्ट्रदेशी किसी राजा का कुछ भी परिचय नहीं पाया जाता है। ख्रीष्टीय १२वीं सदी के प्रारंभ में यादववंशियों ने देवगढ़ में नई राजधानी की स्थापना की थी। (भारतवर्षीय इतिहास)

महावीर—जैनियों के अंतिम तीर्थंकर। जैन-ग्रंथों में लिखा है कि ये सात धनुष लंबे थे और ७२ वर्ष तक जीवित रहे थे। ये अंतिम तीर्थंकर थे। इनके जन्म और संसार-त्याग के विषय में जैन-ग्रंथों में लिखा है, महावीर के पिता का नाम सिद्धार्थराज और माता का नाम त्रिशला देवी था। त्रिशला वैशाली के राजा केतक की बहन थी। सिद्धार्थराज कुंद ग्राम के सरदार थे। महावीर का जन्मकाल ख्रीष्ट जन्म के छः सौ वर्ष पूर्व बतलाया जाता है। जिस रात्रि को महावीर का जन्म हुआ उस रात्रि को अनेक अलौकिक घटनाएं घटी थीं। उनतीस वर्ष की अवस्था में महावीर ने घर छोड़ दिया। घर छोड़ने के समय उन्होंने दरिद्रों को बहुत-से दान दिए थे। बारह वर्ष वनवास करने के पश्चात् ये योगी अथवा तीर्थंकर नाम से प्रसिद्ध हुए। ७२ वर्ष की अवस्था में इन्होंने शरीर-त्याग किया। (भारतवर्षीय इतिहास)

महावृष—महावृषों का वैदिक अस्तित्व सिद्ध होता है। उनका मूल संभवतः उत्तरप्रदेश के तराईभरवर (गढ़वाल) से संबंधित था।

महिदास ऐतरेय—एक वैदिकयुगीन आचार्य। किसी इतर या इतरा वंश से संबद्ध होने के कारण संभवतः यह 'ऐतरेय' इस मातृसत्तात्मक नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसने एक सौ सोलह वर्षों की आयु प्राप्त की; किंतु आजीवन यह रुग्ण बना रहा। किंतु इसने रोग-व्याधि के आगे अपनी पराजय स्वीकार नहीं की। इसे 'ऐतरेय ब्राह्मण' और 'ऐतरेय आरण्यक' नामक ग्रंथों का रचयिता माना जाता है। (छान्दोग्य उपनिषद्)

महिषासुर—एक महाबलशाली असुर जो मयासुर तथा रम्भा का पुत्र था। मयासुर की शिवभक्ति से प्रसन्न होकर शंकरांश से समन्वित मयासुर का जन्म हुआ था। महिषासुर ने देवी दुर्गा की भक्ति करके उसके भक्तों में अपना स्थान बनाया। इसने ब्रह्मा की उपासना करके यह वरदान प्राप्त किया था कि मनुष्य के हाथों इसका वध न हो। किंतु यह बड़ा अत्याचारी हो गया था। एक बार इसने तपस्यारत पार्वती से स्वयं को वरण करने के लिए कहा। इसपर दोनों में युद्ध हुआ और तब अष्टादश भुजरूपधारिणी पार्वती ने इसका वध किया।

महेन्द्र—महेंद्रमाली पर्वत जो गंजाम में है।

महेषदत्त ब्राह्मण—ये हिंदी के कवि, धनौली जिला बाराबंकी के निवासी थे। ये संस्कृत भी जानते थे।

माखन कवि—सं० १८१७ वि० में ये उत्पन्न हुए थे। इनकी कविता बहुत ही ललित और सरल होती थी।

मागध—वैश्य पिता और क्षत्रिया माता से उत्पन्न पुत्र। एक प्रकार की संकर जाति। धर्मशास्त्रों में संकर जाति दो प्रकार की होती है। एक अनुलोम और दूसरी प्रतिलोम। उच्चवर्ण के पिता और नीचवर्ण की माता के गर्भ से उत्पन्न जाति अनुलोम संकर

कही जाती है और नीचवर्ण के पिता तथा उच्चवर्ण की माता से उत्पन्न पुत्र प्रतिलोम संकर जाति का होता है। मागध जाति प्रतिलोम संकर है।

माघ—ये महाकवि संस्कृत-साहित्य में बड़े प्रसिद्ध तथा आदरणीय हैं। इनके लिखे महाकाव्य 'शिशुपाल-वध' का संस्कृत-साहित्य-वाटिका में बहुत ही ऊंचा स्थान है। इस महाकाव्य की सुमधुर तथा मनोमुग्धकारी कविता की छटा पर संस्कृत-साहित्य-निकुंज-वासी अनेक पिक लुब्ध हैं और उन्होंने इसका गुण-गान भी किया है। किसी कवि ने कहा है—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

कालिदास उपमा के लिए, अर्थ-गुरुता के लिए भारवि और पदलालित्य के लिए दंडी प्रसिद्ध हैं परंतु माघ में ये तीनों गुण वर्तमान हैं।

एक कवि ने श्लेषालंकार से माघ की प्रशंसा की है। वह श्लोक ऐसा है—

मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माघे रतिं कुरु।
मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माघे रतिं कुरु॥

मुरारिपदचिन्ता—भगवत्-चरण की यदि चिंता हो तो—मा अघे रतिं कुरु—पाप में अनुराग न करो, मुरारिपदचिंता—मुरारि नामक कवि के पदों, श्लोकों को समझने की यदि चिंता हो तो माघ नामक कवि में रति अनुराग करो।

अन्यान्य संस्कृत कवियों के समान माघ के विषय का भी ज्ञान लोगों को कम ही है। महाकाव्य शिशुपाल-वध के अंत में माघ कवि ने अपना कुछ वृत्तांत लिखा है। वह भी अपूर्ण ही है। उससे केवल इतना ही पता चलता है कि श्रीवर्मल नाम के एक राजा थे। उनके प्रधान मंत्री का नाम सुप्रभदेव था। सुप्रभदेव के पुत्र दत्तक हुए, जिनके पुत्र माघ ने शिशुपाल-वध नामक महाकाव्य लिखा। परंतु श्रीवर्मल नामक राजा कहां के थे, उनकी राजधानी कहां थी आदि बातों की चर्चा वहां नाममात्र की भी नहीं की गई है। बल्लाल पंडित विरचित भोजप्रबंध में माघ कवि के विषय में एक कथा लिखी है। यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से उस कथा का कुछ भी महत्त्व नहीं है तथापि माघ की असीम उदारता का परिचय इस कथा से मिलता है। माघ कवि गुजरात के रहने वाले थे। एक समय गुजरात में बड़ा अकाल पड़ा। उन्होंने गुजरात छोड़ दिया और मालवा के राजा भोजराज की राजधानी धारा नगरी में पहुंचे। माघ पंडित ने एक पत्र देकर अपनी पत्नी को राजा के समीप भेजा। पत्र में यह श्लोक लिखा था—

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमाँश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां हि विचित्रो विपाकः॥

अर्थात् कुमुदवन शोभाहीन हो गया, कमलों की शोभा बढ़ रही है, उलूक अपनी प्रसन्नता छोड़ रहे हैं, चक्रवाक प्रसन्न हो रहे हैं, सूर्य उदय हो रहा है, चंद्रमा अस्त हो रहा है—दुर्दैव के विलासों का विपाक बड़ा ही विचित्र है। यह श्लोक प्रभात के वर्णन में है। इस श्लोक को पढ़कर भोजराज बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने तीन लाख रुपये माघ पंडित की पत्नी को दिए और स्वयं जाकर माघ पंडित के दर्शन करने की प्रतिज्ञा भी की।

माघ पंडित की पत्नी इन रुपयों को लेकर जा रही थी, मार्ग में दीन-याचक मिले। माघ की पत्नी ने सारा धन उन गरीबों को दे दिया। पुनः छूछे हाथ वह पति के पास पहुंची और उसने सब हाल कह सुनाया। माघ कवि यह सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। एक दिन माघ की फटी-टूटी हालत देखकर किसी याचक-कवि ने कहा था—

आश्वास्य पर्वतकुलं तपनोष्मतप्त-
मुद्दामदावविधुराणि च काननानि।
नानानदीनदशतानि च पूरयित्वा
रिक्तोऽसि यज्जलद! सैव तवोत्तमा श्रीः॥

अर्थात् सूर्य की किरणों से तप्त पर्वतों को आश्वासन देकर दावानल से दग्ध हुए वनों को लहलहा बनाकर और नदी तथा नदों को पूरा करके जो तुम खाली हो गए हो, जलद, वही तुम्हारी सर्वोत्तम शोभा है। माघ पंडित का नाम सुनकर माघ पंडित के यहां दूर-दूर से याचक जुटने लगे। जब तक धन इनके पास था तब तक तो इन्होंने धनार्थियों को खूब धन दिया, अंत में माघ पंडित छूछे हो गए और अब याचक उनके घर से निराश होकर फिर जाने लगे। इससे दुःखी होकर माघ पंडित ने कहा—

दारिद्र्यानलसन्तापः शान्तः सन्तोषवारिणा।
याचकाशाविघातान्तर्दाहः केनोपशाम्यति॥

अर्थात् दारिद्र्यरूपी अग्नि का संताप तो संतोषरूपी जल से बुझ गया, परंतु याचकों के आशा-विघात

से उत्पन्न दाह किस प्रकार शांत होगी ? इसका माघ पंडित को इतना दुःख हुआ कि इसी दुःख से उनका प्राणांत हो गया। माघ के प्राणांत होने पर उनकी स्त्री ने यह श्लोक कहा था—

सेवन्ते स्म गृहं यस्य दासवद्भूभुजः पुरा ।
हाद्य भार्यासहायोऽयं मृतो वै माघपण्डितः ॥

राजा भोज माघ कवि की मृत्यु सुनकर बड़े दुःखी हुए और वे स्वयं वहां आए और उनका सब संस्कार कराया। माघ की पत्नी भी पति की अनुगामिनी हुई।

प्रबंध-चिंतामणि में भी इसी बात से मिलती-जुलती ही बात लिखी है।

इस कथा के आधार पर महाकवि माघ का समय राजा भोज के समकाल ही सिद्ध होता है।

परंतु भोजप्रबंध अथवा प्रबंध-चिंतामणि के आधार पर किसीका समय निर्णय करना ऐतिहासिक दृष्टि से कभी उचित नहीं मालूम पड़ता। क्योंकि उसमें कालिदास, भारवि और भास सभी को एक ही समय का लिखा है।

ध्वन्यालोककर्त्ता काश्मीर के आनन्दवर्द्धनाचार्य ने माघ के काव्य का एक श्लोक अपने 'ध्वन्यालोक' नामक ग्रंथ में उद्धृत किया है। आनंदवर्द्धनाचार्य काश्मीर के महाराज अवंतिवर्मा के समय में थे। अवंतिवर्मा का समय नवम शताब्दी का अंतिम भाग है यह बात राजतरंगिणी से सिद्ध होती है। माघ का एक श्लोक है—

अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना ।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ॥

इस श्लोक में जिस न्यास ग्रंथ का उल्लेख किया गया है। उसका कर्त्ता जिनेन्द्रबुद्धिपादाचार्य था। न्यास नामक ग्रंथ काशिका वृत्ति की टीका है। चीन देश के परिव्राजक ईशिग ने लिखा है कि जयादित्य की मृत्यु ६६० के लगभग हुई थी, जयादित्य बौद्ध था और काशिका वृत्ति का यह कर्त्ता था। परंतु न्यास ग्रंथ के कर्त्ता का उसने कुछ भी उल्लेख नहीं किया है। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि उसके समय में जिनेन्द्रबुद्धि नामक पंडित विद्यमान नहीं था। विद्वानों का अनुमान है, अष्टम शताब्दी के आरंभ में न्यास नाम का ग्रंथ रचा गया होगा। अष्टम शताब्दी के रचित ग्रंथ का उल्लेख माघ ने अपने ग्रंथ में किया है और नवम शताब्दी के अंत में उत्पन्न आनंदवर्द्धन ने अपने ग्रंथ में माघ से एक श्लोक उद्धृत किया है। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि अष्टम शताब्दी का अंत अथवा नवम शताब्दी का मध्य माघ कवि का समय होगा।

माण्डवी—कुशध्वज जनक की कन्या और भरत की पत्नी। इनके गर्भ से तक्ष और पुष्कर नामक भरत के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे।

मातङ्गी—नव महाविद्या। इनके चार हाथ और तीन नेत्र हैं। सिर में अर्धचंद्र वर्तमान है। इनका वस्त्र रक्त-वर्ण का है। ये खड्ग, चर्म, पाश, और अङ्कुश ये ही अस्त्र अपने हाथों में धारण करती हैं।

मातरिश्वन्—एक वैदिक देवता, जिसे अग्नि के साथ समीकृत किया गया है। वैदिक साहित्य में इसे वायु के साथ समीकृत किया गया है। यास्क ने इसे वायु में सांस लेने वाला पवन कहा है।

मातली—देवराज इंद्र का सारथि। इसकी कन्या गुणकेशी सुमुख नामक नाग को ब्याही गई थी।

मातादीन मिश्र—ये सराय मीरा के रहने वाले थे। इन्होंने शाहनामा का हिंदी में अनुवाद किया है। कवि-रत्नाकर नामक एक संग्रह-ग्रंथ भी इन्होंने लिखा है। शिवसिंह जी लिखते हैं कि इस ग्रंथ (सरोज) को लिखने में मातादीन मिश्र ने हमको बड़ी सहायता दी है। (शिवसिंहसरोज)

मातादीन शुक्ल—ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। ये अजगरा जिला प्रतापगढ़ के रहने वाले थे। राजा अजीत सिंह सोमवंशी प्रतापगढ़ वाले के यहां थे। इन्होंने छोटे-छोटे कई ग्रंथ लिखे हैं। शिवसिंहसरोजकार के समय में ये जीवित थे।

मातृका—एक देवीगण। इस देवीगण में योगेश्वरी माहेश्वरी आदि आठ देवियां हैं। कामयोगेश्वरी, क्रोध-माहेश्वरी, लोभ-वैष्णवी, मद-ब्राह्मणी, मोह-कौमारी, मात्सर्य-ऐंद्राणी, पैशुन्य दंड-धारिणी और असूया-वाराही आदि नाम से इनकी प्रसिद्धि है।

मातृगुप्त—संस्कृत के कवि। इन्होंने उज्जयिनी के राजा हर्षदेव की कृपा से काश्मीर का राज्य पाया था। काश्मीर के इतिहास राजतरंगिणी में इनकी कथा इस प्रकार लिखी है—

राजा हर्षदेव की सभा में एक दिन मातृगुप्त नामक कवि आए। मातृगुप्त अनेक राजाओं की सभाओं में गए थे और सबसे निराश होकर हर्षदेव की प्रशंसा सुनकर इनकी सभा में आए थे। राजा को देखने तथा उनके सद्व्यवहार से मातृगुप्त बड़े प्रसन्न हुए और उनकी सभा में ही रहने का निश्चय किया।

राजा भी इनकी कविता सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। राजा ने मातृगुप्त को देखकर जान लिया कि ये महात्मा केवल गुणवान् ही नहीं हैं, इनकी गंभीर प्रकृति देखने से विदित होता है कि ये सम्मानार्ह कोई महात्मा हैं। मातृगुप्त उनके यहां रहना चाहते हैं, यह बात जानकर राजा ने उनकी परीक्षा लेने की इच्छा से उनका विशेष कुछ सम्मान नहीं किया। मातृगुप्त रहने लगे। जिस प्रकार स्वामी की सेवा करनी चाहिए उसी प्रकार सर्वतोभाव से मातृगुप्त राजा की सेवा में रहने लगे। इस प्रकार मातृगुप्त को तीन वर्ष बीत गए।

एक दिन राजा बाहर घूमने निकले थे। उन्होंने मातृगुप्त की दुरवस्था देखी। यह देखकर राजा को बड़ा ही कष्ट हुआ। हाय! मैंने इस गुणी पर धन के उन्माद से बड़ा ही अत्याचार किया है। मैं अभी तक इसके लिए कुछ भी प्रबंध नहीं कर सका। मैं क्या इसे अमृत दे दूंगा या चिंतामणि, जो इसकी इतनी कड़ाई से परीक्षा ले रहा हूं। धिक्कार है मुझको, यह विचारकर राजा ने उन्हें सम्मानित करना चाहा। परंतु किस वस्तु से उन्हें सम्मानित करें, यह बहुत विचारने पर भी राजा निश्चित नहीं कर सके।

एक दिन शीतकाल की रात में एक पहर रात बाकी थी, उसी समय सहसा राजा की निद्रा उचट गई। घर के दीपकों का प्रकाश क्षीण हो रहा था। राजा ने भृत्यों को बाहर से बुलाया परंतु सभी भृत्य सोये हुए थे। उस समय बाहर से उत्तर आया—महाराज! मैं मातृगुप्त हूं। राजा ने उनको अंदर बुलाया। मातृगुप्त अंदर गए और राजा की आज्ञा से उन्होंने दीपकों को प्रज्वलित कर दिया। मातृगुप्त वहां का काम करके बाहर निकले आ रहे थे, उसी समय राजा ने उनसे ठहरने को कहा। मातृगुप्त ठहर गए। राजा ने पूछा, कितनी रात है? मातृगुप्त ने उत्तर दिया, एक पहर। राजा ने पूछा, क्यों रात को तुम्हें निद्रा नहीं आती। मातृगुप्त ने इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया—मैं इस कठिन शीतकाल में अग्निसेवन के द्वारा समय बिता रहा हूं। मेरा शरीर शिथिल है और थरथरा रहा है, भूख के मारे बोली नहीं निकलती। मैं चिंता के समुद्र में डूब रहा हूं। इसी कारण निद्रा अपमानित दयिता के समान मुझको छोड़कर कहीं चली गई है और सत्पात्र-प्रदत्त राज्य के समान रात्रि का भी अंत नहीं होता। यह सुनकर राजा ने उन्हें धन्यवाद दिया और विदा किया। राजा सोचने लगे कि इनको क्या दूं। उसी समय उनको स्मरण हुआ कि काश्मीर राज्य का सिंहासन इस समय सूना पड़ा है। यद्यपि काश्मीर राज्य हमसे अनेक हमारे आश्रित राजा मांग रहे हैं, तथापि वह राज्य इन्हींको देना उत्तम है। यह सोचकर राजा ने एक दूत काश्मीर के मंत्रियों के पास भेजा और उसके द्वारा यह कहलाया कि मातृगुप्त नाम का एक मनुष्य हमारा शासनपत्र लेकर आएगा, तुम लोग उसे ही अपना राजा मानना। दूत को भेजकर राजा ने उसी रात को मातृगुप्त के नाम काश्मीर के लिए शासनपत्र भी लिखवाया। प्रातःकाल होने पर राजा ने मातृगुप्त को शासनपत्र देकर काश्मीर जाने की आज्ञा दी। वे बेचारे करते ही क्या, उसी फटी-टूटी हालत में काश्मीर जाने के लिए तैयार हुए।

मातृगुप्त यथासमय काश्मीर पहुंचे, मंत्रियों ने इनका बड़ा आदर-सत्कार किया। तदनंतर इन्हें राजसिंहासन पर बैठाया। मातृगुप्त ने ४ वर्ष ९ महीने १ दिन तक काश्मीर का राज्य किया। इसी समय मालवाधिपति का स्वर्गवास हुआ। काश्मीर राज्य के प्रकृत अधिकारी प्रवरसेन ने इनको राज्य न छोड़ने के लिए बहुत कहा, परंतु मातृगुप्त ने कहा कि जिसने हमको राज्य दिया था अब उसके न रहने पर राज्यभोग करना हमारे लिए नितांत अनुचित है। मातृगुप्त काशी में जाकर संन्यासी हो गए।

(राजतरंगिणी)

माद्री—मद्रदेशाधिपति की कन्या और राजा पांडु की पत्नी। इन्हींके गर्भ से और अश्विनीकुमारों के औरस से नकुल-सहदेव का जन्म हुआ था। पांडु की मृत्यु होने पर माद्री ने भी अपने पति का साथ दिया था, अर्थात् वह भी सती हो गई थी।

माधवदास ब्राह्मण—सं० १५८० वि० में ये उत्पन्न हुए थे। इनके लिखे पद रागसागरोद्भव में पाए जाते हैं। ये जगन्नाथपुरी में अधिक रहा करते थे। कहते हैं, ये एक बार ब्रज में भी आए थे।

माधवराव—इनका पूरा नाम था राजा सर माधवराव के० सी० एस० आई०। इनका जन्म १८२४ ई० में कुंभकोणम् नामक नगर में एक उच्चवंशी महाराष्ट्र कुल में हुआ था। इनके पिता त्रावनकोर राज्य के दीवान थे। माधवराव बाल्यकाल में मद्रास के

प्रेसिडेंसी कालेज में पढ़े थे, पढ़ने के समय ये एक परिश्रमी विद्यार्थी थे। गणित और साइंस में माधवराव बहुत बढ़े-चढ़े थे। १८४६ ई० में विश्वविद्यालय से पदवी पाकर माधवराव ने कुछ दिनों तक शिक्षा-विभाग में ही काम किया। तदनंतर वे मद्रास के एकाउंटेंट-जनरल के आफिस में काम करने लगे। वहीं से त्रावनकोर के राजकुमार के शिक्षक-पद पर नियुक्त होकर वे त्रावनकोर गए। इस पद पर उन्होंने चार वर्ष तक काम किया, तदनंतर उसी राज्य के एक उच्च पद पर वे नियुक्त हुए। वे इस पद से दीवान के पेशकार हुए। इसी समय त्रावनकोर राज्य के दक्षिण विभाग के शासन का भार उनको सौंपा गया। उन्होंने बड़ी योग्यता से इस काम को संभाला। इस समय त्रावनकोर राज्य की अवस्था अत्यंत शोच्य हो गई थी। महाराज स्वयं राज्य का कुछ भी काम नहीं करते थे। प्रायः सभी कर्मचारी घूस लेने लग गए थे। नौकरों को समय पर वेतन नहीं दिया जा सकता था। गवर्नमेंट का नियत कर भी बाकी पड़ने लगा। राज्य का खजाना खाली हो गया था। इसी कारण बड़े लाट लार्ड डलहोजी त्रावनकोर राज्य को गवर्नमेंट के राज्य में मिला लेना चाहते थे। माधवराव ने बड़े लाट से मिलकर पूर्वोक्त विचार त्यागने के लिए उनसे अनुरोध किया। बड़े लाट प्रसन्न हुए और उन्हें ७ वर्ष की अवधि उन्होंने दी। निश्चित हुआ कि ७ वर्ष के मध्य में यदि माधवराव त्रावनकोर राज्य की अवस्था नहीं सुधारेंगे तो इस राज्य पर गवर्नमेंट का अधिकार हो जाएगा। माधवराव अब त्रावनकोर के सर्वप्रधान मंत्री हुए। वे अनेक प्रकार से राज्य की आमदनी बढ़ाने लगे। सन् १८६५ ई० में उन्होंने भारत गवर्नमेंट से त्रावनकोर और कोचीन के लिए वाणिज्य-विषयक संधि स्थापित की। इस काम के लिए गवर्नमेंट ने उन्हें के० सी० एस० आई० की उपाधि दी। इसी वर्ष वे मद्रास विश्वविद्यालय के फेलो भी नियत हुए। इस समय माधवराव के छात्र राजकुमार त्रावनकोर के महाराज हुए। नये महाराज को सिखा-पढ़ाकर बहुतों ने माधवराव के विरुद्ध भड़काया। इसका फल यह हुआ कि दोनों में मनोमालिन्य बढ़ गया और १८७२ ई० में माधवराव को काम छोड़ना पड़ा। त्रावनकोर के राजा ने माधवराव को मासिक हजार रुपये की पेंशन दी। १९ वर्ष तक माधवराव को यह वृत्ति मिलती रही। अब वे मद्रास में ही रहने लगे, उन्होंने सोचा था कि अब जीवन का शेष भाग शांति से बिताऊंगा। बड़े लाट ने उन्हें अपनी सभा का सभासद् बनाना चाहा था, परंतु माधवराव ने इस पद को ग्रहण करना अस्वीकृत किया। तदनंतर गवर्नमेंट के अनुरोध से माधवराव इंदौर के तुकोजी हुल्कर के यहां दीवानी के पद पर नियत हुए। इस पद पर उन्होंने दो वर्ष तक काम किया था। इसी समय बड़ौदा के गायकवाड़ मल्हारराव पदच्युत किए गए थे। भारत सरकार ने हुल्कर से माधवराव को मांगकर बड़ौदा के नए महाराज के शिक्षक तथा उनके प्रतिनिधि पद पर नियत किया। इस समय बड़ौदा राज्य की दशा बहुत बिगड़ गई थी। कर्मचारियों की प्रताड़ना, धूर्तता आदि से बड़ौदा राज्य श्मशान के समान हो रहा था। सरदार, जमींदार आदि प्रजाओं पर अत्याचार तथा लूटपाट आदि के द्वारा धनसंचय कर रहे थे। माधवराव ने इन अत्याचारों को रोक दिया तथा मालगुजारी वसूल करने की उन्होंने अच्छी रीति प्रचलित की। जमींदारगण दरबार को कुछ कर देते थे और जागीर का स्वयं उपभोग करते थे। माधवराव ने उनसे १७-१८ वर्ष का बाकी का कर वसूल किया। जिन सरदारों ने सिर उठाया उन्हें माधवराव ने निकाल दिया। इन्हीं उपायों से शीघ्र ही राज्य में शांति स्थापित हो गई। उन्होंने राज्य के प्रत्येक विभाग का संस्कार किया।

सन् १८७७ ई० में नाबालिग गायकवाड़ को लेकर माधवराव दिल्ली दरबार में गए थे। इसी दरबार में माधवराव को राजा की उपाधि मिली थी। सन् १८८२ ई० में गायकवाड़ को राज्य-भार मिला। तदनंतर माधवराव और गायकवाड़ में मतभेद होने लगा, इसी कारण माधवराव ने यहां काम करना छोड़ दिया। काम छोड़ने के समय महाराज ने उन्हें तीन लाख रुपये दिए थे। माधवराव अपने परिवार के साथ मद्रास में रहने लगे। सन् १८८७ ई० में मद्रास में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था, उसकी स्वागत-कारिणी सभा के सभापति माधवराव बनाए गए थे। सन् १८९० ई० में इनका परलोकवास हुआ।

माधव विद्यारण्य—वेद के विख्यात भाष्यकार सायणाचार्य के बड़े भाई। ख्रीष्टीय १४वीं सदी में दक्षिण की तुंगभद्रा नदी के तीरस्थित पंपा नगरी में इनका जन्म

हुआ था। इनके पिता का नाम मायण और माता का नाम श्रीमती था। विजयानगरम् के राजा बुक्क-राय के ये कुलगुरु तथा प्रधानमंत्री थे। भारती तीर्थ के पास इन्होंने संन्यास की दीक्षा ली थी। सन् १३३१ ई० में ये शृंगेरी मठ के शंकराचार्य के पद पर अभिषिक्त हुए। ६० वर्ष की अवस्था में इनका परलोकवास हुआ। इन्होंने पराशर-संहिता का एक भाष्य भी लिखा है जो पराशरमाधव के नाम से प्रसिद्ध है। इस भाष्य में माधवाचार्य ने अपना परि-चय इस प्रकार दिया है—

श्रीमती जननी यस्य सुकीर्तिर्मायणः पिता।
सायणो भोगनाथश्च मनोबुद्धी सहोदरौ॥

माधव विद्यारण्य अथवा माधवाचार्य विजयानगरम् के राजा बुक्कराय के मंत्री थे। सायण नाम का कोई था ही नहीं। कहा जाता है कि इन्हींका नामांतर सायण था। इसका कारण यही बताया जाता है कि माधवा-चार्य से बहुत पहले सायण नाम के कोई वेदभाष्यकर्त्ता थे, उन्हींके लिखे वेदभाष्य के आधार पर माधव विद्यारण्य ने वेदभाष्य बनाकर सायण के नाम से उसे प्रसिद्ध किया। कृष्ण यजुर्वेद के ब्राह्मण के टीकाकार का नाम सायण माधव लिखा है और शुक्ल यजुर्वेद के ब्राह्मण के टीकाकार का नाम सायणाचार्य लिखा है। इससे बहुतों का ऐसा विश्वास है कि सायण और माधव दोनों भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे। संभव है, माधवा-चार्य के पांडित्य पर रीझकर सायण से उनके पांडित्य की तुलना की गई हो। और सायण माधव नाम से उनकी प्रख्याति हुई हो तदनंतर उनका वही नाम प्रसिद्ध हो गया हो।

माधवाचार्य के विषय में ऊपर लिखे यही दो मत प्रचलित हैं। इन्होंने शंकरदिग्विजय नामक एक और भी ग्रंथ लिखा है।

माधवसिंह—(१) ये बूंदीराज राव रतन के पुत्र थे। बादशाह जहांगीर का पुत्र खुर्रम कुछ राजपूत-राजाओं की सहायता पाकर जिस समय अपने पिता को राज्य से अलग करके स्वयं बादशाह बनना चाहता था और बुरहानपुर में जाकर उसने अत्याचार करना प्रारंभ किया था उस समय बूंदीराज राव रतन अपने माधव-सिंह और हरिसिंह नाम के दोनों पुत्रों को साथ लेकर बुरहानपुर गए और युद्ध में उसको हराया। इस युद्ध में राव रतन और माधवसिंह ने बड़ी वीरता दिखाई थी। इसके लिए माधवसिंह को बादशाह ने कोटा राज्य का शासन-भार वंश-परंपरा के लिए दिया।

माधवसिंह का जन्म सन् १५६५ ई० में हुआ था। चौदह वर्ष की अवस्था में बुरहानपुर की लड़ाई में इन्होंने जो असीम साहस और वीरता दिखाई उससे प्रसन्न होकर बादशाह जहांगीर ने उन्हें तीन सौ साठ गांवों का राज्य कोटाराज्य दिया। माधवसिंह ने अपने पराक्रम से कोटा राज्य की सीमा बढ़ा ली। माधवसिंह के मरने के समय तक मालवा और हाड़ौती की सीमा तक कोटाराज्य का विस्तार हो गया था। माधवसिंह सं० १६८० ई० में पांच योग्य पुत्रों को छोड़कर मर गए। (टाड्स राजस्थान)

(२) जयपुर के राजा। जयपुर-नरेश महाराज रामसिंह का कोई पुत्र नहीं था और उनकी मृत्यु का समय आ गया। उस समय गवर्नमेंट से आज्ञा पाकर रामसिंह ने अपने कुटुंबी एक युवक ठाकुर कायमसिंह को दत्तक लिया। प्रचलित रीति के अनुसार कायम-सिंह का नाम माधवसिंह रखा गया और वे १८८० ई० के सितंबर महीने में आमेर की राजगद्दी पर बैठे। जिस समय ये राजगद्दी पर विराजे उस समय इनकी अवस्था १६ वर्ष की थी। इस समय के जयपुर के रेजिडेंट ने लिखा है कि जिस समय महाराज गद्दी पर विराजे उस समय उनको उपयुक्त शिक्षा नहीं मिली थी इस कारण दो वर्ष तक जयपुर राज्य रेजि-डेंट और एक मंत्रिसमाज के द्वारा शासित हुआ। इसी अवसर में महाराज माधवसिंह ने आमेर राज्य के शासन की उपयुक्त शिक्षा पा ली।

महाराज माधवसिंह ने कृष्णगढ़ और काठियावाड़ के अंतर्गत ध्रांगदा की दो राजकुमारियों से ब्याह किया था। ये १७८१ ई० में गयाजी और कल-कत्ता गए। कलकत्ता से लौटकर इसी वर्ष के अगस्त महीने में महाराज ने जयपुर में इकानामिक और इंडस्ट्रियल म्यूजियम स्थापित किए। इस म्यूजियम की प्रतिष्ठा से विशेष उपकार हुआ। सन् १८८२ ई० में महाराज माधवसिंह को राज्यशासन का पूर्ण अधिकार मिल गया। यद्यपि महाराज राज्य के काम चलाने में अब सुदक्ष हो गए थे, तथापि राजकीय बड़े-बड़े काम पोलिटिकल एजेंट की सम्मति से महा-राज को करने पड़ते थे। इन्हींकी शुभ इच्छा से जयपुर में एक शिल्प-प्रदर्शिनी स्थापित हुई। इस प्रदर्शनी को स्थापित करने में महाराज ने कई लाख रुपये खर्च किए थे। (टाड्स राजस्थान)

(३) जयपुर के महाराज जयसिंह के उदयपुर की राजकन्या के गर्भ से उत्पन्न पुत्र। जयसिंह का एक बड़ा पुत्र था जिसका नाम ईश्वरीसिंह था। जयसिंह के मरने के बाद ईश्वरीसिंह पिता की गद्दी पर बैठा। माधवसिंह को आमेर राज्य के अधीन टोंक आदि कई परगने जयपुर से और उदयपुर से रामपुरा तथा भानपुरा नाम के दो प्रदेश मिले। माधवसिंह की जागीर से ८४ लाख की आमदनी थी।

ईश्वरीसिंह ने पांच ही वर्ष में अपनी अयोग्यता सिद्ध कर दी। सभी सामंत उनसे अप्रसन्न हो गए और उन सब लोगों ने मिलकर माधवसिंह तथा उदयपुर के राणा के पास इस आशय का प्रस्ताव किया कि ईश्वरीसिंह राज्यच्युत किए जाएं तथा माधवसिंह जयपुर के राज्य पर बैठाए जाएं। महाराणा जगतसिंह ने जयपुर के महाराज से कहला भेजा कि आपसे वहां के सामंत अप्रसन्न हैं, गृह-कलह बढ़ने की संभावना है, अतः आप राजसिंहासन माधवसिंह को दे दीजिए। ईश्वरीसिंह ने इसे बड़ी भारी आपत्ति समझा। उन्होंने इस आपत्ति से रक्षा पाने के लिए आपाजी सिंधिया से संधि कर ली। उदयपुर के राणा ने जब देखा कि ईश्वरीसिंह यों मानने वाले नहीं हैं तब उन्होंने भी युद्ध की घोषणा कर दी। कोटा और बूंदी के अधीश्वरों ने भी माधवसिंह का पक्ष लिया। राजमहल नामक स्थान पर दोनों ओर से घोर युद्ध हुआ। राणा की सेना हार गई। विजयी महाराष्ट्र सेना की विजय से ईश्वरीसिंह ने अपनी रक्षा कर ली। माधवसिंह के भाग्याकाश में निराशारूपी मेघों की घटा छा गई।

महाराणा ने उसी उपाय का अवलंबन करना उचित समझा, जिस उपाय से ईश्वरीसिंह ने विजय पाई थी। महाराणा ने ४६ लाख हुल्कर को तब देना निश्चित किया जब वह ईश्वरीसिंह को राज्य से हटाकर माधवसिंह को राज्य दिला दें। लोभी हुल्कर सहमत हो गया, परंतु ईश्वरीसिंह को जब इस बात की खबर हुई उसी समय उसने विष खाकर प्राण त्याग दिए। माधवसिंह का मार्ग निष्कंटक हुआ। राज्य पर बैठकर माधवसिंह ने हुल्कर को देयभाग दे दिया।

माधवसिंह क्षत्रिय वीर थे। साहस, वीरता, नीतिज्ञता, उच्चाभिलाष आदि सभी उत्तम गुण उनमें वर्तमान थे। माधवसिंह के शासनकाल में आमेर राज्य की दिनोदिन श्रीवृद्धि होने लगी। माधवसिंह इस बात को समझते थे कि महाराष्ट्र जाति का बिना दमन किए अथवा इस जाति को बिना रजवाड़े से निकाले कल्याण नहीं। वे अपने उद्देश्य की पूर्ति में अवश्य ही सफल होते, यदि जाटों से उनकी भिड़ंत न हो जाती।

माधवसिंह ने १७ वर्ष तक राज्य किया। तदनंतर ये उदरामय रोग से पीड़ित हुए और उसी रोग से मरे। (टाड्स राजस्थान)

माधवानन्द भारती—ये संन्यासी थे और काशी में रहते थे। ये सं० १६०२ वि० में उत्पन्न हुए थे। संस्कृत की शंकरदिग्विजय को इन्होंने हिंदी में लिखा था। (शिवसिंहसरोज)

माधवी—ययाति राजा की कन्या। इसे यह वरदान प्राप्त हुआ था कि अनेक पुत्रों का प्रजनन करने के बाद भी यह अक्षुण्णयौवना तथा चिरकुमारी बनी रहेगी। एक बार गुरुदक्षिणा हेतु गालब ऋषि राजा ययाति के पास आया। उसे अपने गुरु विश्वामित्र को आठ सौ अश्व गुरुदक्षिणा में देने थे। ययाति ने अपनी पुत्री माधवी को देते हुए गालब ऋषि से कहा कि इसके बदले वह इच्छित धन की प्राप्ति कर ले। इसे लेकर वह इक्ष्वाकु राजा हर्यश्व के पास गया। उसे माधवी को देकर ऋषि ने दो सौ अश्व प्राप्त किए। अवधि समाप्त होने के बाद गालब ऋषि पुनः उसे काशिराज दिवोदास के पास ले गया। उससे भी दो सौ अश्व प्राप्त किए। फिर उशीनर से भी दो सौ अश्व लिए। शेष दो सौ अश्वों के बदले गालब ऋषि ने माधवी को विश्वामित्र ऋषि को दे दिया और गुरुदक्षिणा से मुक्ति प्राप्त की। अंत में, माधवी किसी से विवाह स्वीकार न करके तपस्या करने के लिए चली गई। (महाभारत)

मान कवि—(१) ये राजपूताने के रहने वाले कवीश्वर थे। सं० १७५६ वि० में ये उत्पन्न हुए थे। ब्रजभाषा के ये बड़े निपुण कवि थे। राणा राजसिंह मेवाड़ वाले की आज्ञा से इन्होंने उदयपुर का इतिहास 'राजदेव-विलास' नामक ग्रंथ लिखा था। इस ग्रंथ में राणा राजसिंह और औरंगजेब की अनेक लड़ाइयों का वर्णन है।

(२) ये कवि चरखारी के रहने वाले बंदीजन थे। ये बुंदेला के राजा विक्रमशाह चरखारी के दरबार में थे।

(३) ये कवि बैसवारे के रहने वाले ब्राह्मण थे। ये सं० १८१८ वि० में उत्पन्न हुए। इन्होंने कृष्णकल्लोल नामक एक ग्रंथ लिखा है और कृष्णखंड का अनेक छंदों में हिंदी अनुवाद किया। इस ग्रंथ में इन्होंने कई राजाओं की वंशावली भी दी है। (शिवसिंहसरोज)

मानदास कवि—ये कवि ब्रजवासी थे। सं० १६८० वि० में ये उत्पन्न हुए थे। इनके पद रागसागरोद्‌भव नामक ग्रंथ में पाए जाते हैं। वाल्मीकि रामायण और हनुमान नाटक आदि ग्रंथों से सार लेकर इन्होंने हिंदी में रामचरित लिखा है। इनका लिखा रामचरित बड़ा ही ललित है। इनकी रचनाशैली विलक्षण है। ये एक महान कवि माने जाते थे।

मानराय—ये बंदीजन असनी के रहने वाले थे। सं० १५८० वि० में ये उत्पन्न हुए थे। ये अकबर के दरबारी थे।

मानसिंह—जयपुर के महाराज। ये जयपुर के राजा भगवानदास के भाई और जगतसिंह के पुत्र थे। भगवानदास स्वयं निःसंतान थे अतएव उन्होंने मानसिंह को गोद लिया। भगवानदास ने अपनी कन्या अकबर को दे दी थी। मानसिंह ने भी मुगल-बादशाह से सम्मान पाने की इच्छा से अपनी बहन शाहजादे सलीम को ब्याही थी। इसी कारण मानसिंह अकबर के बड़े प्रिय थे। इन्होंने सम्राट् के सहकारी बनकर अनेक कठिन काम किए थे। इन्हींकी तलवार ने अनेक देशों पर बादशाह का अधिकार करवाया था। उड़ीसा तथा असम को जीतकर उन देशों पर बादशाह का अधिकार करा दिया था। इन्हींके पराक्रम से काबुल पर भी बादशाह का अधिकार हुआ था।

मानसिंह की दिनोदिन बढ़ती हुई प्रभुता देखकर बादशाह के हृदय में एक प्रकार की चिंता ने स्थान पाया। इससे भयभीत होकर बादशाह ने मानसिंह को विष-प्रयोग द्वारा मार डालना चाहा परंतु उसका फल उलटा हुआ। उस विष से स्वयं अकबर की ही मृत्यु हुई।

राजा मानसिंह ने अपने भानजे खुसरो को राजगद्दी दिलाने के लिए एक षड्‌यंत्र रचा था। इस षड्‌यंत्र को दबाने की इच्छा से बादशाह ने मानसिंह को बंगाल का शासन करने के लिए भेज दिया और खुसरो यावज्जीवन के लिए कैद किया गया। मानसिंह बड़े ही बुद्धिमान थे। उन्होंने प्रकट रूप से इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया, परंतु छिपे-छिपे वे अपने भानजे का पक्ष पुष्ट करते रहे। राजा मानसिंह बीस हजार राजपूत सेना के अधिनायक थे। उनकी सेना अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध थी, अतएव उनका दमन करना बादशाह की शक्ति से भी बाहर था। कहते हैं, बादशाह ने दस करोड़ रुपये देकर मानसिंह को अपने वश में किया था। मुसलमान इतिहासवेत्ता कहते हैं कि सन् १०२४ हिजरी अर्थात् सन् १६१५ ई० में बंगाल में मानसिंह की मृत्यु हुई थी। मानसिंह के समय में जयपुर राज्य की प्रसिद्धि हुई। इन्होंने स्वदेशी-भक्त स्वधर्म-संन्यासी स्वाधीनता-उपासक वीर-केसरी महाराणा प्रताप को नीचा दिखाने के अनेक प्रयत्न किए थे। (टाड्‌स राजस्थान)

मानिक दास—ये मथुरा के निवासी और ब्रज के वासी थे। इन्होंने मानिकबोध नामक एक ग्रंथ लिखा है, जिसमें श्रीकृष्ण की लीला वर्णित की गई है।

मान्धाता—सूर्यवंशी राजा युवनाश्व के पुत्र। पहले राजा युवनाश्व का कोई पुत्र नहीं था, इससे दुःखी होकर वे राजधानी छोड़कर ऋषियों के आश्रम में गए और संतान-प्राप्ति के निमित्त एक यज्ञ करने का अनुरोध उन्होंने मुनियों से किया। ऋषियों ने राजा के अनुरोध से एक यज्ञ किया। आधी रात को यज्ञ समाप्त हुआ, मुनि मध्यवेदी पर एक कलशी में जल रखकर सो गए। रात का युवनाश्व को प्यास लगी और वे उस कलशी का जल पी गए। सवेरे महर्षियों ने जाना कि जो जल महारानी के लिए रखा गया था उसे स्वयं महाराज ने पी लिया है। मंत्रपूत जल के प्रभाव से राजा के गर्भ रहा। समय पर राजा का पेट फटा और उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इससे राजा की कोई हानि नहीं हुई। अब कठिनाई यह हुई कि लड़का दूध किसका पीए। उसी समय देवराज इंद्र वहां आए और उन्होंने कहा 'मां धास्यति' अर्थात् मुझको पान करेगा। तब से उस लड़के का नाम मान्धाता हुआ। इंद्र ने इस बालक को पीने के लिए एक अमृतस्रावी अंगुली दी। उसको पीकर वह बालक एक ही दिन में बड़ा हो गया। मान्धाता चक्रवर्ती राजा थे।

शशिबिंदु की कन्या बिंदुमती को राजा मान्धाता ने ब्याहा था। इसके गर्भ से मान्धाता को पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचकुंद ये तीन पुत्र और ५० कन्याएं उत्पन्न हुई थीं। (विष्णुपुराण)

मायापुर—हरिद्वार का नामांतर। (देखो हरिद्वार)

मायावती—शम्बरासुर की कन्या। कामदेव की पत्नी ही दूसरे जन्म में मायावती हुई थी।

मायावी—असुर विशेष। दुंदुभि नामक असुर का पुत्र। यह असुर कपिराज बालि के हाथ से मारा गया।

मारीच—ताड़का नाम की राक्षसी का पुत्र। यह लंकाधिपति रावण का एक सेनापति था। यही रावण की आज्ञा से मृग बनकर पंचवटी में गया था। इसीकी सहायता से रावण सीताहरण कर सका था।

मार्कण्डेय आश्रम—(१) 'महाभारत' (वनपर्व, अ० ८४) तथा 'पद्मपुराण' (अ० १६) के अनुसार, इस आश्रम में भीष्मपितामह गए थे और वहां के निवासियों ने उनका समुचित सम्मान किया था। यह आश्रम गोमती या गंगा के तट पर कहीं स्थित था।

(२) गोमती और सरयू नदियों के संगम पर यह आश्रम है।

मार्कण्डेय मुनि—मृकंडु मुनि के पुत्र। इनकी पत्नी का नाम धूमावती था। धूमावती के गर्भ से वेदशिरा नाम का इनका एक पुत्र हुआ था।

मार्कंडेय विष्णु की आराधना करके चिरजीवी हुए थे। नृसिंहपुराण में मार्कंडेय के दीर्घजीवन-प्राप्ति की कथा इस प्रकार लिखी है—मार्कंडेय का जन्म होने पर मृकंडु मुनि ने जाना कि यह बालक बारह वर्ष का होकर मर जाएगा। इससे मार्कंडेय के माता-पिता सदा दु:खित ही रहा करते थे। एक दिन मार्कंडेय ने अपने माता-पिता के दु:ख का कारण पूछा। मृकंडु ने सभी बातें साफ-साफ कह दीं। मार्कंडेय ने पिता को धीरज बंधाया और वे बोले मैं यम को जीतकर दीर्घजीवी होऊंगा। यह कहकर मार्कंडेय वन में चले गए और वहां विष्णु की आराधना करके उन्होंने दीर्घजीवन प्राप्त किया।

पद्मपुराण में मार्कंडेय के दीर्घजीवन प्राप्त करने की कथा दूसरे प्रकार से लिखी है। मार्कंडेय के उपनयन संस्कार होने के अनंतर एक दिन सप्तर्षि उनके पिता के घर आए हुए थे। मार्कंडेय ने सप्तर्षियों को प्रणाम किया, सप्तर्षियों ने 'दीर्घजीवी होओ!' कहकर आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद देने के अनंतर ही सप्तर्षियों को मालूम हुआ कि मार्कंडेय अल्पायु है। इसलिए वे मार्कंडेय को साथ लेकर ब्रह्मा के निकट गए। ब्रह्मा के वर से दीर्घजीवन प्राप्त करके मार्कंडेय घर लौट आए।

मालदेव—मारवाड़ का राजा। गांगा के मरने पर सं० १५८८ वि० (सन् १५३१ ई०) में मालदेव मारवाड़ के सिंहासन पर बैठे। मालदेव ने अपने पराक्रम और साहस से मारवाड़ राज्य की सीमा को बहुत बढ़ाया। मारवाड़ और दिल्ली की सीमा पर कई-एक किले बने थे। उनपर दिल्ली के राजाओं का अधिकार था, मालदेव ने अवसर पाकर उन किलों पर अपना अधिकार जमा लिया। मालदेव निष्कंटक होकर दिन-प्रतिदिन अपना गौरव बढ़ाने लगे। इतिहास-लेखक फरिश्ता ने लिखा है कि उस समय हिंदुस्तान में मालदेव सबसे बड़ा राजा था।

मालदेव ने राज्य प्राप्त करके अपने पूर्व-पुरुषों की भूमि का, जो मुसलमानों के अधिकार में चली गई थी, उद्धार किया। नागौर और अजमेर पर भी इन्होंने अपना अधिकार कर लिया। राठौरों के अधीनस्थ जो राजा स्वाधीन बन गए थे, राजा मालदेव ने उन राजाओं को पुन: अपने अधीनतारूपी सूत्र में बांध लिया। इनको अपने अधीन करके राठौरराज मालदेव अपनी सेना लेकर उत्तर की ओर बढ़ा। भाटियों के साथ उसका युद्ध बहुत दिनों तक होता रहा। विक्रमपुर पर उसने अपना अधिकार कर लिया। आमेर राजधानी से दस कोस की दूरी पर वर्तमान चाटसू नगर को उसने जीत लिया तथा उसको रक्षित रखने की इच्छा से उसके चारों ओर शहरपनाह बनवा दिया। सांतलमेर को जीतकर उसने नये जीते हुए पोकर्ण को दृढ़ तथा सुसज्जित किया।

इस प्रकार अपने राज्य का विस्तार मालदेव ने आठ वर्षों में किया। अब समय आया था कि वह अपने उपार्जित राज्य का उपभोग करता। परंतु इसी समय उसे एक बड़े भारी संकट में फंसना पड़ा। शेरसिंह को जब मालूम हुआ कि मारवाड़ राज्य एक बड़ा ऐश्वर्यशाली राज्य है तब उसने सोचा कि उसकी राजधानी के पास इतने बलशाली राज्य का रहना उसके लिए अत्यंत हानिकारक है। अतएव उसने मारवाड़ पर चढ़ाई की। मालदेव को जब इसकी खबर लगी तब उसने न तो शेरसिंह की सेना को रोकने का प्रयत्न किया और न ही अपने यहां की सेना को कुछ आज्ञा दी। शेरसिंह की सेना जब बहुत पास आ गई तब मालदेव ने अपनी विजयिनी पचास हजार राठौर सेना लेकर प्रस्थान किया। दोनों सेनाएं आमने-सामने पड़ी हुई हैं। शेरसिंह राठौर सेना को

देखकर बहुत घबराया। उसने एक पत्र लिखकर मालदेव के डेरे में फिंकवा दिया। उस पत्र को पढ़ते ही मालदेव का अपने सरदारों पर अविश्वास उत्पन्न हो गया।

देखते-देखते लड़ाई का दिन उपस्थित हुआ। परंतु राजा मालदेव इस समय भी सोये हैं। सरदार देख रहे हैं कि युद्ध के लिए अब राजा की आज्ञा होती है, परंतु कुछ नहीं, राजा ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। अब सरदार घबड़ाए। इसका कारण सरदारों ने शीघ्र ही जान लिया। राजा की आज्ञा के बिना भी वे लड़ने लगे। मुट्ठीभर राठौर वीर अगणित यवन-सेना को ध्वंस-विध्वंस करने लगे। देखते-देखते अनेक यवन वीर कटकर गिर गए। जो यवन वीर युद्ध में कटते थे उनकी पूर्ति शीघ्र ही हो जाती थी, परंतु राठौर वीरों का जो स्थान सूना होता था वह स्थान सदा के लिए सूना ही रहता था। अब मालदेव की भी आंखें खुलीं, परंतु इस समय हो ही क्या सकता था। मालदेव परास्त हुआ, मालदेव अपमानित हुआ। यद्यपि इस युद्ध के बाद भी मालदेव बहुत दिनों तक जीवित रहा परंतु वह अपने इस अपमान का बदला न ले सका। (टाड्स राजस्थान)

मालव—षोडश महाजनपदों में से एक। मालव जन आधुनिक मांडगोमरी से लेकर मुल्तान तक फैले हुए थे। इन्होंने पंजाब में सिकंदर की सेना का डटकर सामना किया था; किंतु पराजित होकर वे राजस्थान में बस गए थे। उनकी स्थिति गुप्तों के बाद तक बनी रही।

मालव राज्य—एक प्राचीन राज्य। अनेक प्राचीन ग्रंथों में इस राज्य का उल्लेख पाया जाता है। प्राचीन सूत्र ग्रंथों से लेकर आधुनिक पुराणादि ग्रंथों तक में इस राज्य का उल्लेख है। बौधायन सूत्र में मालव देश के वासियों को मिश्र जाति बतलाया है। रामायण में सीता को ढूंढ़ने के लिए वानर जब भेजे जाते थे तब सुग्रीव ने उनको मालव राज्य में सीता को ढूंढ़ने के लिए कहा था। वहां मालव राज्य को पूर्वदेशों में स्थित बतलाया गया है। महाभारत में संजयकथित जनपदों में मालव राज्य का भी नाम देखा जाता है। मत्स्यपुराण में मालव प्राच्य जनपदों में गिनाया गया है। वहां लिखा है—

सुह्योत्तराः प्रविजया मार्गमागेयमालवाः।
शाल्वमागधगोनर्दाः प्राच्या जनपदाः स्मृताः॥

अर्थात् सुह्य, प्रविजय, मार्ग, मागेय, मालव, शाल्व, मगध, गोनर्द, आदि प्राच्य जनपद हैं। वायुपुराण में मालव पर्वतीय देशों में गिनाया गया है। इसी प्रकार अन्यान्य पुराणों में भी भारतवर्ष के वर्णन के प्रसंग में मालव राज्य का उल्लेख हुआ है। इन सब बातों से मालव राज्य की प्राचीनता स्पष्ट ही मालूम होती है। अनेक मनुष्य मालव और अवंती इन दोनों को एक ही राज्य प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं। परंतु पुराण आदि शास्त्रों को देखने से ये दोनों राज्य भिन्न-भिन्न ही प्रतीत होते हैं। परंतु हां, यह हो सकता है कि एक ही राज्य का कभी मालव और कभी अवंती नाम रहा हो। मालव राज्य किसके द्वारा और कब स्थापित हुआ था, इसका कुछ भी पता नहीं है। परंतु इतिहास से जाना जाता है कि बौद्धों के समय में बौद्ध राज्य की बड़ी प्रसिद्धि हुई थी। उस समय इस राज्य का गौरव चारों ओर प्रसिद्ध हो गया था। हर्षवर्द्धन के समय में मालव राज्य कन्नौज राज्य के अधीन था। सुलतान मुहम्मद के द्वारा मालव राज्य के नाश होने की बात प्रसिद्ध है। गुलामवंशी राजाओं के राज्यकाल में मालव मुसलमानों के अधीन था। परंतु पुनः मुहम्मद तुगलक के राज्यकाल में मालव राज्य स्वाधीन हो गया था। पुनः दिल्लीश्वर अकबर के समय यह राज्य मुसलमानों के अधीन हुआ।

चीनी परिव्राजक ह्वेनत्संग ने लिखा है—पूर्व-दक्षिण की ओर मालव राज्य और उत्तर-पूर्व की ओर मगध राज्य उस समय शिक्षा के प्रधान स्थान थे। परिव्राजक और भी कहते हैं कि मालव राज्य के इतिहास से जाना जाता है कि प्रायः साठ वर्ष पहले सुशिक्षित और ज्ञानवान् शिलादित्य उत्पन्न हुए थे। इससे ह्वेनत्संग के भारतागमन के समय दूसरे शिलादित्य मालव के सिंहासन पर विराजमान थे यह बात सिद्ध होती है। उनका राज्यकाल ६१० ई० पर्यंत था। ह्वेनत्संग के आने के समय मालव राज्य में हिंदू और बौद्ध इन दोनों धर्मों की प्रधानता थी। उस समय भी एक सौ मंदिर और एक सौ संघाराम मालव में विद्यमान थे। इस समय भी एक मालव नगर का परिचय अवश्य पाया जाता है, परंतु आज मालव की वह शोभा नहीं, आज मालव की वे ऊंची अट्टालिकाएं, देवमंदिर तथा संघाराम आदि सभी चूर्ण-विचूर्ण हो गए हैं।

परिव्राजक ह्वेनत्संग ने लिखा है कि माही नदी

के दक्षिण-पूर्व की ओर और भरोच से तीन सौ तेंतीस मील उत्तर-पश्चिम की ओर प्राचीन मालव राज्य वर्तमान है। (भारतवर्षीय इतिहास)

मालिनी – वह नदी जो सरयू में अयोध्या से पचास मील की दूरी पर चढ़ाव की ओर मिलती है। यहीं पर कण्व ऋषि का आश्रम था।

माल्यवान्—राक्षस विशेष। यह माली और सुमाली का भाई था। इनके पिता का नाम सुकेश और माता गंधर्व-कन्या वेदवती थीं।

माल्यवान् पर्वत—आधुनिक भूगोलवेत्ताओं ने इसे हिंदुकुश पर्वत के नाम से अभिहित किया है। इस पर्वत से अनेक शाखाएं निकली हैं, जो कि पश्चिमोत्तर हिमालय से लेकर दक्षिण-पश्चिम में अफगानिस्तान तक फैली हुई हैं। बदखशां और कोकचा इसीकी पर्वतमालाएं हैं।

माहिष्मती—(१) प्राचीन महत्त्व की इस नगरी का उल्लेख पुराणों, बौद्ध ग्रंथों और काव्यों में व्यापक रूप से हुआ है। पुराणों के अनुसार, किसी यदुवंशीय राजकुमार ने इसकी स्थापना की थी। कुछ विद्वान् महिष्मत को इसका संस्थापक मानते हैं। 'भागवत' (९।१५।२६) में इसका संबंध हैहयों से बताया गया है। पतंजलि के 'महाभाष्य' और दंडी के 'देशकुमार-चरित' में भी इसका उल्लेख हुआ है। भंडारकर के अनुसार, यह अवंति-दक्षिणापथ की राजधानी थी। कुछ विद्वानों ने इंदौर के लगभग ४० मील दक्षिण में विन्ध्य एवं ऋक्ष पर्वतों के मध्य नर्मदा नदी के दक्षिण पार्श्व में मान्धाता क्षेत्र से इस नगरी को समीकृत किया है। 'पद्मपुराण' (१८३।२) में इसे नर्मदा नदी के तट पर अवासित बताया गया है।

(२) प्रसिद्ध नाम माहेश्वर जो नर्मदा के तट पर इंदौर से चालीस मील दक्षिण की ओर स्थित थी।

मिथि—मिथिला राज्य के प्रतिष्ठापक राजा। इनका जन्म-वृत्तांत बड़ा विलक्षण है। इक्ष्वाकु के द्वितीय पुत्र निमि थे। सहस्रवर्ष व्यापी यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिए उन्होंने अपने कुलगुरु वसिष्ठ को होता के पद पर वरण किया परंतु पांच सौ वर्ष में समाप्त होने वाले इंद्र के एक यज्ञ में वे लिप्त थे, इस कारण वसिष्ठ ने उस यज्ञ के समाप्त होने तक निमि को ठहरने के लिए कहा। निमि ने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वसिष्ठ ने इससे समझ लिया कि निमि को हमारा कहना स्वीकार है। अतएव वसिष्ठ इन्द्र के यज्ञ में लग गए। इधर निमि ने गौतम को होता बनाकर यज्ञ आरंभ कर दिया। इससे क्रुद्ध होकर निद्राप्राप्त राजा को वसिष्ठ ने शाप दिया। वसिष्ठ के शाप से राजा का शरीर नष्ट हो गया। राजा ने भी वसिष्ठ को शाप दिया जिससे वसिष्ठ का भी शरीर नाश हो गया। तैल, गंध आदि के द्वारा राजा का शरीर सुरक्षित रखा गया और यज्ञ समाप्त किया गया। राजा निमि के कोई पुत्र नहीं था, अतः अराजकता के भय से मुनियों ने अरणि द्वारा निमि का शरीरमंथन किया, उस शरीर से एक कुमार उत्पन्न हुआ। मृतदेह से यह पुत्र उत्पन्न हुआ था, इस कारण इसका नाम जनक पड़ा। पिता की विदेहावस्था में उत्पन्न होने से इस कुमार का नाम वैदेह हुआ। मंथन द्वारा उत्पन्न होने के कारण उस प्रकार का नाम मिथि पड़ा। इन्होंने ही मिथिलापुरी का निर्माण किया था।

मिथिला—(१) मिथि के द्वारा स्थापित विदेह राज्य। यह राज्य सदानीरा (गंडकी) नदी के उस पार स्थित है। राजर्षि जनक की प्रसिद्धि के साथ ही साथ मिथिला राज्य की प्रसिद्धि संसार में फैल गई थी। इस राज्य के मिथिला, विदेह आदि नाम राजा मिथि के नामानुसार हुए थे। मिथिला राज्य की राजधानी मिथिला नगरी में थी। रामायण में लिखा है कि राजा निमि ने वैजयंत नाम का एक सुंदर नगर स्थापित किया था। गौतमाश्रम के निकट यह नगर स्थित है। वही नगर मिथिला की राजधानी है। वैजयंत मिथिला नगरी का दूसरा नाम था। राजा जनक के नामानुसार उसको जनकपुर भी कहते हैं। तिरहुत जिले में जो जनकपुर में वर्तमान है इस समय बहुत लोग उसीको मिथिला समझते हैं। सीतामढ़ी और सीताकुंड नाम के दो तीर्थस्थान जनकपुर में वर्तमान हैं। कहते हैं, सीतामढ़ी में सीता का जन्म हुआ था। कहते हैं, ब्याह के पहले सीतादेवी सीताकुंड में स्नान करती थीं। मिथिला के सभी राजगण प्रायः विद्वान् और ज्ञानी के नाम से प्रसिद्ध हैं। उपनिषद् की आलोचना के लिए जनक की राजधानी प्रसिद्ध है। शतपथब्राह्मण, बृहदारण्यक उपनिषद्, कौषीत की उपनिषद् आदि में जनक और विदेह राज्य का विवरण देखा जाता है। शतपथब्राह्मण में लिखा है कि विद्वत्ता और ज्ञान के कारण राजर्षि जनक ने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था। (भारतवर्षीय इतिहास)

(२) 'रामायण', 'महाभारत', पुराणों, काव्य-नाटकों, बौद्धग्रंथों और अभिलेखों में विदेह की इस राजधानी का व्यापक उल्लेख हुआ है। इसकी स्थापना वैदिकयुगीन किसी व्यक्ति ने की थी। इसे नेपाल-सीमा पर स्थित आधुनिक जनकपुर नामक एक कस्बे से समीकृत किया गया है। महर्षि विश्वामित्र जब राम-लक्ष्मण सहित विदेहराज जनक की पुत्री सीता के स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिए अयोध्या से मिथला गए थे, तो बीच में एक स्थान पर विश्राम करने के उपरांत चार दिन में वे मिथिला पहुंचे थे। 'भविष्य पुराण' के अनुसार, निमि के पुत्र मिथि ने मिथिला की स्थापना की थी। इस नगर का संस्थापक होने के कारण उन्हें जनक कहा गया। मिथिला के राजा जनक और अयोध्या के राजा दशरथ की मित्रता के कारण मिथिला का चिरंतन महत्त्व है। इसपर प्रसेनजित् जैसे यशस्वी राजा का शासन रहा और बुद्ध तथा महावीर जैसे महान् पुरुष वहां गए। नव्य न्याय के प्रवर्तक गंगेश उपाध्याय मिथिला के ही थे।

मिहिरकुल—काश्मीर के एक राजा। इनके पिता का नाम वसुकुल था। ये अपनी क्रूरता के लिए प्रसिद्ध थे। इनके राज्यकाल में हत्या की अधिकता व्याप्त हो गई थी। वृद्ध और बालक की हत्या करना इनके लिए कोई बात ही नहीं थी। एक दिन इनकी महारानी सिंहल देश के कपड़े का कुरता पहने हुए थीं। सिंहल देश के कपड़े में पैर का चिह्न बना हुआ था। महारानी के स्तन पर पैर का चिह्न देखकर राजा को बड़ा क्रोध हुआ। परंतु कंचुकी के कहने पर राजा का संदेह दूर हुआ। यह सुनकर राजा ने सिंहल देश को जीतने के लिए प्रस्थान किया। मिहिरकुल ने सिंहलराज को राज्यच्युत करके वहां एक प्रबल राजा को प्रतिष्ठित किया। सिंहल से लौटकर मिहिरकुल ने चोल, द्रविड, कर्णाट आदि देशों को जीतने के लिए प्रस्थान किया। परंतु उस देश के रहने वाले राजा मिहिरकुल के आने से पहले ही देश छोड़कर भाग गए थे। मिहिरकुल काश्मीर लौट आए और वहां उन्होंने मिहिरपुर नामक एक विशाल नगर तथा श्रीनगर में मिहिरेश्वर नामक शिव की स्थापना की थी। इस राजा ने ७० वर्ष राज्य किया था।

(राजतरंगिणी)

मीमांसासूत्र—महर्षि जैमिनी-प्रणीत दर्शनशास्त्र। मीमांसा दर्शन में वेदों का नित्यत्व बतलाया गया है। वेद अभ्रांत और अपौरुषेय हैं, वेद अनादि और अनंत हैं, वेद स्वतःसिद्ध हैं—वेदों में ये बातें लिखी गई हैं, मीमांसाशास्त्र के अनुसार, कर्मकांड ही सर्वप्रधान है। कर्मकांड के अतिरिक्त वेदों में जो कुछ है वह कर्मकांड में प्रवृत्ति दिलाने के लिए है। वेद पांच भागों में विभक्त हैं—विधि, निषेध, नामधेय, मंत्र और अर्थवाद। वेद के जिन वाक्यों में मनुष्यों का कर्त्तव्य बतलाया है वह विधि है। ऐसा करो यही विधि है। जिन वाक्यों में अकर्त्तव्य कर्म लिखे हैं वे निषेध हैं। उत्पत्ति, विनियोग, प्रयोग आदि भेद से विधि अनेक प्रकार की है। कौन यज्ञ किस उद्देश्य से करना चाहिए उसके लिए किन-किन सामग्रियों की आवश्यकता है, आदि बातें विधिचतुष्ट्य के द्वारा जानी जाती है। कल्पना करो, अग्निहोत्र यज्ञ करना है। उस समय यह जानना आवश्यक है कि किन द्रव्यों से देवता की उपासना की जाती है और यह भी जानना चाहिए कि यज्ञ में किस क्रिया के पश्चात् कौनसी क्रिया करनी चाहिए। यजमान उस यज्ञ करने का अधिकारी है कि नहीं, जो वह करना चाहता है। कौन मनुष्य किस यज्ञ का अनधिकारी है आदि बातें भी विधिचतुष्टय के द्वारा जानी जाती हैं। नियम तथा परिसंख्या के द्वारा इन विधियों का विचार हुआ करता है। मंत्रों के द्वारा मंत्रार्थ-देवताओं का आवाहन होता है उनके क्रमभंग शब्द-विपर्यय तथा उच्चारणदोष आदि विघ्नकारक हैं। जिस अभिप्राय से जो यज्ञ किया जाता है वही उस यज्ञ का नाम है। अर्थवाद के द्वारा विधि-निषेधों की निंदा तथा प्रशंसा सूचित होती है। अर्थवाद तीन प्रकार का है—(१) गुणवाद, (२) अनुवाद और (३) भूतार्थवाद। मीमांसाशास्त्र के प्रतिपाद्य के विषय में संक्षेपतः यही कहा जा सकता है कि वेदों में क्या-क्या विषय हैं, उनके द्वारा यागादिकों की प्रधानता किस प्रकार सूचित होती है, प्रधानतः यही बात मीमांसाशास्त्र में लिखी है। मीमांसा के मत से यही प्रधान है और सब बातें गौण हैं। यही बात इस सूत्र के द्वारा कही गई है 'आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानन्य', अर्थात् कर्म ही वेदों के सार हैं, वेदों में कर्म से भिन्न जो अन्य बातें देखी जाएं, वे अनर्थक हैं। अधिक क्या कहा जाए, मीमांसकों ने देवताओं का भी अस्तित्व स्वीकार नहीं किया है। वे कहते हैं, मंत्र ही देवता हैं। देवता कभी शरीरी नहीं हो सकते,

यदि देवताओं को शरीरी माना जाए तो एक ही समय में भिन्न-भिन्न स्थानों में उनका आवाहन कैसे किया जा सकता है ? और शरीरी होने पर उनको प्रत्यक्ष भी होना चाहिए। जैमिनि के मत से, यज्ञादि कर्मों के द्वारा ही मोक्ष प्राप्त होता है। यज्ञों की क्रियापद्धति में अथवा मंत्रों के उच्चारण में दोष होने से फल-प्राप्ति में विघ्न होने की संभावना रहती है। जैमिनि-दर्शन में ईश्वर का अस्तित्व नहीं देखा जाता। इसी कारण शंकराचार्य मीमांसा-दर्शन को नास्तिक-दर्शन कहते हैं। परंतु अन्यान्य दर्शनकार मीमांसा को उस दृष्टि से नहीं देखते। वे कहते हैं—यद्यपि मीमांसा-दर्शन में ईश्वर का नाम नहीं है तथापि उसे नास्तिक-दर्शन कहना अत्यंत भूल है क्योंकि 'ब्रह्मापीति चेत्' इस सूत्र से मीमांसाकार ने ब्रह्म का अस्तित्व स्वीकार किया है। मीमांसा में अधिकारिभेद माना जाता है, मीमांसा वेदों का एकांत पक्षपाती है परंतु ईश्वर को वेदों का कर्ता वे नहीं मानते। उनका कहना है कि वेदों का कर्ता कोई हो नहीं सकता। शब्द नित्य हैं, शब्दों की नित्यता प्रमाणित करने के लिए उन्होंने अनेक सूत्रों की रचना की है। उनका तात्पर्य यह है कि उच्चारण के अनन्तर ही उनका अर्थ ज्ञात होता है। शब्दों का नाश नहीं होता अतएव शब्द नित्य हैं। सब शब्दों का सब स्थानों पर एक ही अर्थ समझा जाता है। इससे शब्दों की एकता और नित्यत्व दोनों बातें प्रमाणित होती हैं। शब्दों में क्षय-वृद्धि भी नहीं है, क्योंकि एक ही वस्तु के लिए बार-बार एक शब्द के उच्चारण करने पर भी उसकी संख्या में वृद्धि नहीं देखी जाती। शब्दों के नाश होने का भी कोई कारण नहीं देखा जाता, वे अपौरुषेय और नित्य शब्द ही वेद हैं। वेदविहित कर्मों का अनुष्ठान ही मोक्ष-प्राप्ति का एकमात्र उपाय है। (भारतवर्षीय इतिहास)

मीराबाई—मेवाड़ के अधिपति महाराणा कुंभ की पत्नी। सन् १८२० ई० में मारवाड़ राज्य के एक सामंत के घर उनका जन्म हुआ था। मीरा विष्णु की उपासिका थीं, परंतु उनका पति कुल-शक्ति का उपासक था। मीराबाई की सास ने विष्णु की उपासना छोड़ने के लिए उन्हें दबाया। जब राजमाता ने देखा कि मेरी आज्ञा का पालन नहीं हुआ तब उन्होंने उन्हें राजभवन का परित्याग करने के लिए कहा। राणा कुंभ ने भी माता की आज्ञा के प्रतिकूल काम करना नहीं चाहा।

मीरा राजभवन छोड़कर तापसी के वेष में राजमहल से बाहर हुईं। मीरा को स्वामी से जो धन मिला था, उससे उन्होंने स्थान-स्थान पर धर्मशालाएं बनवाईं तथा दीन-दुखियों को खिलाया। राणा कुंभ ने मीरा की प्रसन्नता के लिए चित्तौड़ में गोविंद जी का मंदिर बनवाया था। मीरा सर्वसाधारण के साथ श्रीकृष्ण-प्रेम में मत्त होकर रास्तों में कीर्तन करतीं। मीरा के मधुर स्वर से जनसमूह मुग्ध हो जाया करता था। 'बिना प्रेम से मिले न नंदलाला' वाला मीरा का गाना सुनकर नर-नारी-वृंद भक्तिरस में गोते खाने लगता था। राणा कुंभ ने किसी कारण से मीरा को चित्तौड़ से निकाल दिया। उस समय मीरा राजपूताने में घूमती रहीं। मीरा जिस प्रकार अनुपम सुंदरी थीं उसी प्रकार उनका कंठ भी मधुर था।

राजपूताने के स्त्री-पुरुष मीरा को स्वर्गभ्रष्ट देवांगना समझते थे। मीराबाई के विषय में एक भ्रमपूर्ण प्रवाद इतिहास में पाया जाता है। प्रवाद यही है—एक बार सम्राट् अकबर तानसेन को साथ लेकर मीरा का गाना सुनने के लिए आए थे। मीरा के गाने से प्रसन्न होकर बादशाह ने एक लाख रुपये का हार उन्हें भेंट किया। यह सुनकर राणा कुंभ ने उन्हें असती समझा और अनेक उपायों से उन्हें मरवा डाला। ये सम्राट् अकबर के जन्म से १२२ वर्ष पहले विद्यमान थीं, इस स्थिति में ऊपर लिखा हुआ प्रवाद सत्य कैसे हो सकता है ! मीरा की सुललित पदावली भारत के प्रत्येक प्रांत में प्रसिद्ध है। मीरा के चरित्र पर राणा कुंभ श्रद्धा रखते थे। कुछ दिनों तक राणा कुंभ का मीरा पर संदेह था और उन्होंने मीरा को चित्तौड़ से बाहर भी कर दिया था। परंतु बाद में उन्हें अपनी भूल मालूम हुई। तब उन्होंने ब्राह्मण-दूत भेजकर मीरा को बुलवा लिया। मीरा के लिए राणा ने अनेक कृष्णमंदिर बनवा दिए। मीरा प्रतिदिन मंदिर में जातीं और कीर्तन करतीं। कहते हैं कि मीरा ने भगवान् को प्रत्यक्ष किया था। इस समय भी रणछोड़जी के साथ चित्तौड़ में मीराबाई की पूजा होती है।

मुकुन्दलाल—ये कवि बनारस के रहने वाले और रघुनाथ कवीश्वर के गुरु के शिष्य थे। सं० १८०३ वि० में ये उत्पन्न हुए थे। इनका लिखा काव्य उत्तम है। (शिवसिंहसरोज)

मुकुन्दसिंह—राजा मुकुंदसिंह कोटे के प्रथम राजा माधवसिंह के प्रथम पुत्र थे। माधवसिंह के मरने के पश्चात् ये कोटे के राजा बने। हाड़ौती और मालवा की सीमा पर इन्होंने एक धारा बनवाई है, जिसका नाम 'मुकुंदधार' है। कोटा के इतिहास में मुकुंदसिंह की बड़ी कीर्ति गाई गई है। इन्होंने अपने राज्य के अनेक स्थानों पर दुर्भेद्य किले तथा सर्वसाधारण के लिए उपयोगी तालाब बनवाए हैं।

जिस समय औरंगजेब ने अपने पिता के विरुद्ध तलवार उठाई थी, उस समय मुकुंदसिंह ने अपने पांचों भाइयों के साथ बूढ़े बादशाह शाहजहां का पक्ष लिया था और एक युद्ध में वे मारे गए। (टाड्स राजस्थान)

मुकुलजी—राणा लाक्षा का पुत्र और मेवाड़ का राणा।

मुचकुन्द—महाराज मान्धाता के पुत्र। कहा जाता है कि इन्होंने देवताओं का पक्ष लेकर असुरों का विनाश किया था। इससे प्रसन्न होकर देवताओं ने इन्हें वर देना चाहा। मुचकुंद ने वर मांगा कि जो मुझे निद्रा से जगाएगा, वह मेरे देखते ही भस्म हो जाए। मथुरा पर विजय प्राप्त करके कालयवन श्रीकृष्णचंद्र को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते गिरनार पहुंचा। उसने मुचकुंद को कृष्ण समझकर लात मारी और भस्म हो गया।

मुद्गल—एक ऋग्वैदिक राजा। इसकी पत्नी का नाम मुद्गलानी था। एक बार चोरों ने इसकी गायें चुरा ली थीं। केवल एक बूढ़ा बैल बच पाया था। इसने उसीमें गाड़ी जोतकर अपनी पत्नी की सहायता से चोरों का पीछा किया और लकड़ी का एक मुद्गल (द्रुघण) फेंककर चोरों को पकड़ लिया था। (ऋग्वेद)

मुनि—एक ऋषिपत्नी। प्राचेतस दक्ष प्रजापति द्वारा असिक्नी में उत्पन्न पुत्री। इसका विवाह कश्यप ऋषि से हुआ था। इससे भीमसेन आदि सोलह देव-गंधर्व पुत्र उत्पन्न हुए थे। (महाभारत)

मुबारक—इनका पूरा नाम सैयद मुबारकअली बिलग्रामी था। ये मुसलमान थे परंतु हिंदी की कविता इनकी उत्तम होती थी।

मुर—ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न तालजंघ नामक दैत्य का पुत्र, जिसका मुरु नामांतर भी प्राप्त होता है। इसकी राजधानी चंद्रवती नगरी थी। ब्रह्मांश के कारण इसने देवोंसहित विष्णु को भी पराजित किया। विष्णु युद्धभूमि से भागकर बदरिकाश्रम की सिंहावती गुफा में जाकर छिप गया। किंतु मुर ने वहां तक उसका पीछा किया। विष्णु ने योगमाया से एक शक्तिस्वरूपा देवी को जन्म दिया, जिसने मुर का वध किया। विष्णु ने इस देवी को 'एकादशी' नाम दिया और उसे समस्त पापों का नाश करने का वरदान दिया। (पद्मपुराण)

मुरारि—संस्कृत नाटक 'अनर्घराघव' के रचयिता। इस ग्रंथ का नामोल्लेख नवम शतक के रत्नाकर कवि ने अपने 'हरविजय' नामक काव्य में किया है। अतएव नवीं सदी से पहले के ये कवि हैं।

मुहम्मद हजरत—इस्लाम धर्म में इन्हें पैगंबर (ईश्वर का दूत) माना जाता है। इन्होंने ही इस्लाम धर्म का प्रवर्तन किया। मक्का के एक पुजारी वंश में इनका जन्म ५७० ई० में हुआ था। आरंभ में इन्होंने व्यापार का पेशा अपनाया। व्यापारिक कार्यवश इन्हें अनेक सुदूर नगरों का भ्रमण करना पड़ा। इसी बीच इनका परिचय यहूदी तथा ईसाई धर्मानुयायियों से हुआ। उनकी मूर्तिहीन ईश्वर-भक्ति ने इनको प्रभावित किया, जिसके फलस्वरूप इन्होंने इन दोनों धर्मों के साहित्य का अध्ययन किया। ४० वर्ष की अवस्था में इन्होंने स्वयं को अल्लाह का रसूल घोषित किया। इनके क्रांतिकारी विचारों के कारण मक्का के मूर्तिपूजक पुजारी इनके कट्टर शत्रु बन गए। इस कारण ये मक्का छोड़कर मदीना चले गए। यहीं से इन्होंने हिजरी सन् का प्रचलन किया। मदीना में इनके बहुसंख्यक अनुयायी बन गए और इन्हें देवदूत (पैगंबर) के रूप में माना जाने लगा। इन महापुरुष का निधन ६१२ ई० में हुआ।

मूकजी कवि—ये राजपूताने के रहने वाले बंदीजन थे। सं० १७५० वि० में इनका जन्म हुआ था। इस महाकवि ने चौहानों की एक शाखा खींची जाति की वंशावली लिखी है। इस पुस्तक में प्राचीन और नवीन राजाओं की जीवनी लिखी है।

मूजावत्त—हिमालय स्थित एक पर्वत का नाम। ऋग्वेद में इसे मौजावत नाम से कहा गया है।

मूनब्राह्मण कवि—ये हिंदी के कवि जिला गाजीपुर असोथर के रहने वाले थे। सं० १८६० वि० में इनका जन्म हुआ था। ये बड़े विख्यात कवि थे। सुनते हैं, इन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे हैं। राम-रावणयुद्ध नामक इनका लिखा ग्रंथ पाया जाता है।

मूलक—मूलकों की गणना दक्षिण के आदिवासी कबीलों

में की गई है, जो कि अश्मकों या अस्सकों से संबंधित थे। मूलकों तथा अश्मकों को एक ही इक्ष्कुवंश का बताया गया है। इन दोनों जनों के प्रदेशों की सीमा का विभाजन गोदावरी नदी करती थी। पहले ये मूलक और अश्मक अलग-अलग थे; किंतु बाद में एक-साथ मिल गए थे।

मूलराज—जयसलमेर के एक रावल। ये रावल जैतसी के पुत्र थे। जैतसी के मरने पर सं० १३५० वि० (सन् १२९४ ई०) में मूलराज गद्दी पर बैठे।

जिस समय मूलराज का जयसलमेर के रावल पद पर अभिषेक हुआ था, उस समय जयसलमेर का किला मुसलमान सैनिकों से घिरा हुआ था। उस यवनसेना का सेनापति नवाब महबूबखां था। यवनसेना किले पर आक्रमण करने लगी और यादवसेना किले की रक्षा में नियुक्त हुई। इस भयानक युद्ध में नौ हजार यवनसेना मारी गई। इससे घबराकर यवनसेनापति नवाब महबूबखां प्राणों के भय से बची हुई सेना को लेकर भाग गया और पुन: सेना एकत्रित करके उसने किले पर धावा किया। एक वर्ष तक यवनसेना किले को घेरे रही। इतने समय तक अन्न के अभाव से यादवसेना को कष्ट पहुंचने लगा। तब जयसलमेरपति मूलराज ने सरदारों को बुलाया और उनसे कहा, "अब तक हम लोगों ने अपनी स्वाधीनता की रक्षा की, परंतु अब भोजन के लिए कुछ भी नहीं है और कोई भी उपाय नहीं है जिससे हम लोग अपनी रक्षा कर सकें, इसलिए हम लोगों को इस समय क्या करना चाहिए, इसका निर्णय आप लोग करें।" सरदारों ने उत्तर दिया, स्त्रियों को जौहर व्रत का अवलंबन करना चाहिए और हम लोगों को रण में अपनी वीरता दिखाकर स्वर्गपुर चलने को तैयार हो जाना चाहिए। किले में इस प्रकार का विचार हो रहा था, उधर मुसलमानों ने समझा कि किले पर अधिकार करना बड़ा कठिन है क्योंकि इतने दिन हो गए और हमारी सेना भी दिनोदिन घट रही है। अत: किले को घेरकर पड़े रहना व्यर्थ है, यह सोचकर यवनसेना लौट पड़ी। इसी समय रत्नसी ने सेनापति के छोटे भाई को किले के भीतर बुलाया और उसका आदर-सत्कार करके बातें करने लगे। उसे किले में आने से मालूम हुआ कि किले में सेना के भोजन के लिए कुछ नहीं है। वह वहां से भागकर दौड़ा-दौड़ा सेनापति के पास पहुंचा और किले की सब बातें कह सुनाईं। सेनापति लौट आया और उसने पुन: किले को घेर लिया। उस समय का कर्त्तव्य तो पहले निश्चित ही हो चुका था। स्त्रियों ने जौहर व्रत का अवलंबन किया और पुरुषों ने अगणित यवनसेना का विनाश करके स्वर्ग प्राप्त किया।

देखते-देखते सुरपुर सदृश जयसलमेर का राजभवन श्मशान-तुल्य हो गया। सं० १३५१ वि० (सन् १२९५ ई०) में यह युद्ध समाप्त हो गया। रत्नसी के दो लड़के सेनापति महबूबखां के द्वारा रक्षित थे। उन्होंने मूलराज तथा रत्नसी आदि का अंतिम संस्कार किया। किले में ताले बंद करके नवाब चला गया।

(टाड्स राजस्थान)

मूलसिंह—इनका नाम मूलराजसिंह था, परंतु लोग इन्हें मूलसिंह के नाम से पुकारते थे। अखैसिंह की मृत्यु होने पर मूलसिंह जयसलमेर की गद्दी पर बैठे। इनके तीन पुत्र थे—रायसिंह, जैतसिंह और मानसिंह। रावल मूलराज के मंत्री का नाम स्वरूपसिंह था। वह बड़ा ऊधमी तथा दुराचारी था। उसकी स्वेच्छाचारिता से जयसलमेर की प्रजा और सामंत-मंडली उससे अप्रसन्न रहा करते थे। स्वरूपसिंह के अत्याचार से पीड़ित सरदारसिंह नामक एक सरदार ने युवराज रायसिंह से प्रार्थना की कि आप ऐसा कोई प्रबंध करें, जिससे इस दु:ख से हम लोगों को छुटकारा मिले। रायसिंह भी उससे अप्रसन्न ही थे, वे सहज ही सहमत हो गए। एक दिन राजसभा में रायसिंह ने स्वरूपसिंह को मारने के लिए म्यान से तलवार निकाली, वह दौड़कर मूलराज की शरण में जाना चाहता था, परंतु युवराज की तलवार ने बड़ी शीघ्रता से उसका काम तमाम कर दिया। उसी समय सरदारसिंह ने मूलराज को भी मारने का प्रस्ताव किया था, परंतु युवराज रायसिंह ने उसी समय इस प्रस्ताव को अस्वीकृत किया।

रायसिंह की संहारमूर्ति देखकर रावल मूलराज अंत:पुर में चले गए। इधर सरदारों ने विचारा कि मूलराज के सिंहासन पर बैठे रहने से अब हम लोगों का कल्याण नहीं है और हम लोगों ने उन्हींके सामने उनको मारने का प्रस्ताव किया था। ऐसी स्थिति में क्या हम लोग उनसे अपने कल्याण की आशा कर सकते हैं, यह सोचकर सरदारों ने युवराज से यह प्रस्ताव किया कि आपको हम लोग राजतिलक

देते हैं । अब आप ही राज्यभार ग्रहण कीजिए । सब सामंतों की सहमति जानकर राजपुत्र ने पिता को कैद करा लिया और स्वयं राज-काज करने लगा, परंतु वह राजसिंहासन पर नहीं बैठा ।

तीन महीने चार दिन कैद रहने के बाद अनूपसिंह की पत्नी के उद्योग से मूलराज कैद से छूटकर पुनः राजगद्दी पर बैठे। राजगद्दी पर बैठते ही उन्होंने अपने पुत्र रायसिंह को निर्वासित कर दिया । रायसिंह ढाई वर्ष के बाद जब पुनः जयसलमेर लौटे तब मूलराज ने उनसे तथा उनके अनुचरों से अस्त्र छीनकर उन्हें देवा के किले में कैद कर लिया । मूलराज ने उस किले में आग भी लगवा दी थी, जिसके फल से राय-सिंह अपनी पत्नी के साथ जलकर मर गए । सन् १८१८ ई० में उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ संधि कर ली थी । संधि करने के बाद मूलराज दो वर्ष जीवित रहकर मर गए । (टाड्स राजस्थान)

मूषिक—भारतीय साहित्य में मूषिकों का अनेकविध उल्लेख होने के कारण आधुनिक इतिहासकारों ने उनके स्पष्टीकरण के लिए अनेक प्रकार की संभाव-नाएं प्रकट की हैं । उनके इस नामकरण का आधार यह है कि वे पश्चिमोत्तर सार्थपथ स्थित मूषिकपथ (Red tract) के निवासी थे । वैयाकरण पतंजलि ने उन्हें 'मौषिकार' और एरियन ने 'मौसिकेनोज' कहा है । एरियन ने यहां के प्रभावशाली ब्राह्मणों का उल्लेख करते हुए कहा है कि मकदूनियां के आक्रांता के विरुद्ध विद्रोह करने में उनका प्रमुख हाथ था । सिकंदर ने उन्हें शस्त्र डालने के लिए विवश कर दिया था । मूषिक उत्तरी कबीले की एक शाखा थी । आधुनिक सिंध (पाकिस्तान) का विशाल भाग उनके अंतर्गत था, जिसकी राजधानी संभवतः अलोर (सिखोर जिला) थी ।

मृत्यु—एक स्त्री-देवताविशेष । इसे ब्रह्मा ने जगत् का संहार करने के उद्देश्य से उत्पन्न किया था । यम-देवता से इसका पर्याप्त साम्य बैठता है । यम की भांति यह भी समस्त प्राणियों की नाशक है । इसकी उत्पत्ति करने के बाद ब्रह्मा ने इसे जगत्क्षय का कार्य सौंपा । ब्रह्मा की इस आज्ञा को सुनकर इसने रोना आरंभ किया और जगत्क्षय जैसे दुःखद कार्य करने में अपनी असमर्थता प्रकट की । इसपर ब्रह्मा ने प्रत्येक उत्पन्न प्राणि के क्षय की अवश्यंभाविता पर प्रकाश डाला और इसे एक निमित्तमात्र बनने के लिए कहा । महाभारत आदि ग्रंथों में मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए अनेक उपाय बताए गए हैं । (महाभारत)

मेकला—मेकल पर्वत के नीचे का प्रदेश । मेकल पर्वत को अमरकण्टक कहते हैं ।

मेघनाद—लंकेश्वर रावण का पुत्र । देवराज इंद्र को युद्ध में पराजित करने के कारण यह इंद्रजित् नाम से प्रसिद्ध था । इसने लंका के युद्ध में दो बार लक्ष्मण को हराया था । अनंतर भयंकर युद्ध होने पर यह लक्ष्मण के हाथ से मारा गया । (रामायण)

मेघवाहन—काश्मीर के एक राजा का नाम । ये तृतीय गोनर्द के वंश के थे । काश्मीर के राजा के न रहने पर मंत्री गांधार देश से इन्हें लाए थे । ये बड़े दयालु थे । राजगद्दी पर बैठते ही इन्होंने ढिंढोरा पिटवा दिया कि कोई जीवहिंसा न करने पाए । यज्ञों में पशु-हिंसा के बदले घृतपशु तथा पिष्टपशु की बलि दी जाने लगी । मेघवाहन ने मेघवन नाम का अग्रहार, पुष्ट नामक गांव और मेघ नामक मठ बनवाया था । राजा मेघवाहन की रानियों ने भी अपने-अपने नाम से मठ, अग्रहार, चतुःशाल आदि बनवाए थे ।

एक दिन राजा बाहर घूमने के लिए निकले, उसी समय उन्होंने सुना कि कोई दुःखी व्यक्ति चोर-चोर कहकर पुकार रहा है । यह सुनकर राजा ने आज्ञा दी—"कौन है, चोरों को बांधो ।" राजा के यह कहने पर चोर-चोर की चिल्लाहट बंद हो गई । इस घटना के एक-दो दिन के बाद पुनः राजा एक दिन बाहर घूमने निकले । उस समय दो सुंदर स्त्रियां राजा के सामने उपस्थित होकर कहने लगीं, "देव ! हम लोगों के स्वामी नागगण उस दिन मेघ होकर आकाशमंडल में फैल गए थे, मेघ को देखकर कृषकों को भय हुआ कि कहीं पत्थर न पड़ें । इससे वे चोर-चोर कहकर पुकारने लगे । तब आपने कहा कि चोरों को बांधो । आपके यह कहते ही हमारे स्वामी पाशबद्ध होकर पड़े हैं । आप जगत् के पालक हैं । कृपा करके हमारे स्वा-मियों को बंधन-मुक्त कीजिए ।" राजा के कहने से नागगण बंधन-मुक्त कर दिए गए । इसी प्रकार इनके विषय में अनेक अलौकिक कथाएं राजतरंगिणी में लिखीहैं । लंका तक का देश इन्होंने जीता था । अहिंसा-प्रचार के लिए ही इन्होंने अपनी विजययात्रा की थी। राजतरंगिणी में लिखा है कि वरुणदेव से इनका साक्षात्कार हुआ था । राजा मेघवाहन ने ३४ वर्ष तक काश्मीर का राज्य किया था । (राजतरंगिणी)

मेदलराव—कछवाहों के आदिपुरुष दूलेराव के पौत्र और कांकिलदेव के पुत्र। पिता के मरने के उपरांत पिता का सिंहासन मेदल जी को मिला। मेदल जी अत्यंत साहसी, वीर तथा पराक्रमी थे। इस समय सुसावत्त मीनों के राज्य में आमेर के राव भत्तो रहते थे। राव भत्तो समस्त मीना जाति के संप्रदाय में श्रेष्ठ और प्रभावशाली थे। मेदलराव ने सेना को साथ लेकर आमेर राज्य पर आक्रमण किया। मेदलराव के पराक्रम को मीना न सह सके, वे रण छोड़कर भागने लगे। मेदल जी ने मीनाओं को परास्त करके आमेर के किले पर अपना अधिकार कर लिया। मेदलराव इसी प्रकार अपने पिता के राज्य को बढ़ाने लगे। तदनंतर नंदला नामक मीना जाति को अपने अधिकार में करके गतोर नामक देश को भी उन्होंने अपने अधीन कर लिया। इसी प्रकार दूलेराव के वंशधरों का सौभाग्य-सूर्य धीरे-धीरे मेघनिर्मुक्त होकर प्रकाशित होने लगा। मेदलराव की प्रतिपत्ति देखते-देखते ही राजपूताने में बढ़ गई। मेदलराव एक प्रभावशाली राजा समझे जाने लगे। इस प्रकार राज्य का विस्तार करके मेदलराव स्वर्ग को सिधारे।

मेधा कवि—हिंदी के एक कवि। इनका जन्म सं० १८६७ वि० में हुआ था। इन्होंने 'चित्रभूषण' नामक चित्र-काव्य ग्रंथ बड़ा ही सुंदर लिखा है।

मेधातिथि—मनुसंहिता के विख्यात टीकाकार। इनके पिता का नाम वीरस्वामी भट्ट था।

मेधाविन्—(१) एक ऋषिकुमार। यह बालधि ऋषि का पुत्र था। स्वभाव से यह बड़ा उद्दंड था। यह पर्वतों पर आजीवित था। इसलिए इसको 'पर्वतायु' भी कहा गया है। धनुषाक्ष मुनि द्वारा भैंसों से पर्वतों का विदीर्ण करने के कारण इसकी मृत्यु हुई थी।

(२) एक तत्त्वज्ञानी ब्राह्मण कुमार। संसार की क्षणभंगुरता दिखाकर इसने अपने पिता को मोक्ष तथा धर्म की ओर प्रवृत्त किया था। बौद्ध तथा जैन धर्मों के ग्रंथों में इसे 'राजकुमार मृगपुत्र' कहा गया है।

(३) एक कुरुवंशीय राजा, पुराणों में जिसे मतांतर से सुनय या सुतपस् का पुत्र बताया गया है।

(४) च्यवन ऋषि का पुत्र। एक बार चैत्ररथ नामक वन में इसकी मंजुघोषा नामक अप्सरा से भेंट हुई, जिसके रूप-यौवन पर मोहित होकर इसने तपस्या का परित्याग किया। अनेक वर्षों तक इसके साथ रहने के बाद इसे अपने तपक्षय का स्मरण हो आया। इसने विक्षुब्ध होकर मंजुघोषा को पिशाच योनि में पतित हो जाने का शाप दिया। उसके क्षमा-याचना पर इसने चैत्र कृष्णपक्ष की पापमोचिनी एकादशी व्रत करने का सुझाव दिया। तब मंजुघोषा एकादशी व्रत को धारण करके शापमुक्त हुई।

(पद्मपुराण)

मेनका—अप्सरा विशेष। इसी अप्सरा को इंद्र ने महर्षि विश्वामित्र की तपस्या में विघ्न डालने के लिए भेजा था। यह अपने काम को पूरा भी कर सकी थी। इसीके गर्भ और विश्वामित्र के औरस से शकुंतला का जन्म हुआ था।

मेना—हिमवान् की पत्नी। यह पितरों की मानसी कन्या थी। इसीके गर्भ से मैनाक नामक पुत्र और गंगा तथा उमा नाम की कन्याओं की उत्पत्ति हुई थी।

मेरु—हेमाद्रि एवं स्वर्णाचल नामों से विख्यात यह पर्वत गढ़वाल में बदरिकाश्रम के निकट स्थित है। इसके पश्चिम में निषध तथा पारियात्र पर्वत, दक्षिण में हिमवंत तथा कैलास और उत्तर में शृंगवान् तथा जरुधि स्थित हैं। एरियन ने इसे ही 'माउंट मेरोस' नाम से कहा है।

मेहत्नु—इसका अस्तित्व ऋग्वेदकालीन है। वहां इसे सिंधु की सहायक नदी कहा गया है। संभवतः यह क्रमु की सहायक नदी थी।

मैत्रि—एक तत्त्ववेत्ता ऋषि। इसकी माता का नाम मित्रा था। इसने 'मैत्र्युपनिषद्' की रचना की थी। इससे मैत्रि ऋषि ने अपने शिष्य शाकायन्य ऋषि को आत्मज्ञान का उपदेश दिया है। आत्मज्ञान-संबंधी विचारों की दृष्टि से इस उपनिषद् का बड़ा महत्त्व माना जाता है।

मैत्रेय—ये एक ऋषि थे। विष्णुपुराण में इनका उल्लेख हुआ है। इन्होंने प्रह्लाद के चरित्र-विषयक विष्णुपुराण में अनेक प्रश्न किए हैं।

मैत्रेयी—योगिराज याज्ञवल्क्य की पत्नी। ज्ञान और विद्या में मैत्रेयी याज्ञवल्क्य के समान ही थी। याज्ञवल्क्य ने संन्यास ग्रहण करने की इच्छा से एक दिन मैत्रेयी से कहा कि मैं अब संन्यास ग्रहण करने जाता हूं। अतः मैं चाहता हूं कि जो कुछ धन है वह तुमको और कात्यायनी को आधा-आधा बांट दूं। नहीं तो मेरे न रहने पर संभव है कि तुम लोगों में झगड़ा हो। मैत्रेयी ने कहा—इन नश्वर पदार्थों को लेकर मैं क्या करूंगी ? मुझे इन पदार्थों से कुछ भी प्रयोजन नहीं।

आप उस ब्रह्मज्ञान का उपदेश मुझे दें जिससे यथार्थ कल्याण हो। मैत्रेयी के कहने पर याज्ञवल्क्य ने ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश दिया। मैत्रेयी पति के संन्यास ग्रहण करने पर वहीं रहकर अध्यात्मतत्त्व का अनुशीलन करने लगी।

मैथिलवंश— इक्ष्वाकु के पुत्र निमि का नाम तथा उनके वंश का विवरण विष्णुपुराण और श्रीमद्भागवत में देखा जाता है। निमि इक्ष्वाकु के पुत्रों में बारहवें हैं। विष्णुपुराण और श्रीमद्भागवत में लिखा है कि निमि के पुत्र का नाम जनक था। जनक का दूसरा नाम वैदेह और मिथि था। परंतु रामायण में लिखा है कि निमि के पुत्र का नाम मिथि और मिथि के पुत्र का नाम जनक था। रामायण और भागवत में जनक के पुत्र का नाम उदावसु लिखा है। परंतु विष्णुपुराण में उनका नाम नंदीवर्धन लिखा है। रामायण और भागवत में नंदीवर्द्धन उदावसु के पुत्र लिखे हैं। इसी प्रकार रामायण और विष्णुपुराण में स्थल-स्थल पर मतभेद पाया जाता है।

पुराणों में सीरध्वज का नाम ही जनक लिखा है। परंतु रामायण में सीरध्वज जनक के पूर्वपुरुष लिखे गए हैं। सीरध्वज सीता के पितामह थे। रामायण और हरिवंश में सीरध्वज के भाई का नाम कुशध्वज लिखा है। परंतु श्रीमद्भागवत में सीरध्वज के पुत्र का नाम कुश है। जिधर देखो उधर ही शास्त्रों में मैथिल वंश के विषय में मतभेद देखा जाता है।

मैनाक—शिवालक पर्वत का नाम।

मैनामाटी—ऐतिहासिक महत्त्व की मैनामाटी पहाड़ियां कोमिल्ला नगर (बंगला देश) से पांच मील पश्चिम में स्थित हैं। इस नाम का संबंध बंगाल के चंद्र राजा मानिकचंद की रानी नयनामती से स्थापित किया जाता है। वह नाथपंथ के प्रवर्तक गोरक्षनाथ (गोरख-नाथ) की शिष्या थीं। यहां पर ब्राह्मण, जैन और बौद्ध तीनों धर्मों से संबंधित ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त हुए हैं। उपलब्ध कला-सामग्री में नक्काशी किए हुए मृण्फलक, जिनपर यक्षों, गंधर्वों, विद्याधरों, किन्नरों, बुद्ध बोधिसत्त्वों के अतिरिक्त पशुओं और कमल-पुष्पों की आकृतियां उरेही गई हैं।

मैन्द—एक वानरराज। यह सुषेण वानर का पुत्र था। इसके छोटे भाई का नाम छिविद था। अंगद वानर इनका मामा था। सीता की खोज के लिए गंधमादन पर्वत भेजे गए वानरों में एक यह भी था। राम-रावण युद्ध में भी यह सम्मिलित हुआ था। इसने अनेक राक्षसों का वध किया। इसने इंद्रजित् के साथ हुए राम के युद्ध में भी बड़ा पराक्रम दिखाया था। दक्षिण दिग्विजय के लिए आए हुए सहदेव से भी इसका किष्किंधा में युद्ध हुआ था। किंतु दोनों ओर से संधि हो जाने के बाद इन्होंने सहदेव को सम्मानित करके विदा किया था। (महाभारत)

मोतीलाल कवि—ये बांसी राज्य के रहने वाले हिंदी के कवि थे। इनका जन्म सं० १५९७ वि० में हुआ था। इन्होंने गणेशपुराण का भाषान्तर किया है। (शिवसिंहसरोज)

मोदागिरि—मुंगेर के पास का पर्वत, जिसे मुद्गिरि या मुद्गलगिरि कहते हैं और जो भागलपुर जिले में है।

मोहन कवि—ये कवि जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह के दरबारी कवि थे। इनका जन्म सं० १८७५ वि० में हुआ था।

मोहन भट्ट—ये हिंदी के कवि और बांदा के रहने वाले थे। इन्हींके पुत्र प्रसिद्ध पद्माकर कवि थे। ये पहले बुंदेला पन्नानरेश के दरबार में थे। तदनंतर जयपुर के महाराज सवाई प्रतापसिंह और जगत्सिंह के दरबार में थे। इनकी कविता बहुत सरस और मधुर होती थी।

मोहनलाल पण्ड्या—गुजरात की प्रथा के अनुसार इनका पूरा नाम मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या था। इनके पूर्वपुरुष गुजरात के रहने वाले थे, परंतु किसी कारण-वश वे अपनी जन्मभूमि को छोड़कर दिल्ली में आकर बस गए। उन्हींमें एक पंडित निर्भयराम जी थे। इन्होंने आगरे में अपना रहना स्थिर किया। परंतु मोहनलाल जी के पिता विष्णुलाल जी आगरे से मथुरा आए और वहां इन्होंने सेठ लक्ष्मीचंद्र के यहां नौकरी कर ली।

पं० मोहनलाल जी का जन्म सं० १९०७ वि० अगहन बदि ३ मंगलवार को हुआ था। सात वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत हुआ। तदनंतर हिंदी और संस्कृत की इन्हें शिक्षा दी जाने लगी। इसके दो वर्ष के बाद ये आगरा के स्कूल में भर्ती हुए और अंग्रेजी पढ़ने लगे। तदनंतर जहां-जहां इनके पिता की बदली हुई, वहां-वहां वह अपने पिता के साथ रहकर पढ़ते रहे।

इनको अच्छी शिक्षा देने के अभिप्राय से इनके पिता ने काशी में इनकी बदली करवा ली। काशी में

क्वींस कालेज के स्कूल में मोहनलाल जी पढ़ने लगे। परंतु वहां के मास्टर पं० मथुराप्रसाद मिश्र से कुछ खटपट हो जाने के कारण इन्होंने जयनारायण स्कूल में अपना नाम लिखवाया। जयनारायण स्कूल में पढ़ने वाले बंगाली विद्यार्थी थे। इसी कारण पंड्या जी को भी दूसरी भाषा बंगला लेनी पड़ी। परंतु बंग भाषा में ये बार-बार फेल हुए। अंत में, इन्होंने स्कूल से नाम कटवा लिया और घर पर ही अभ्यास करने लगे। काशी में रहने के समय ही मोहनलाल जी का बाबू हरिश्चंद्र से परिचय हुआ।

मोहनलाल जी के पिता ने देहांत के समय इनको अपने मित्र मुमताजुद्दौला नवाब सरफैजअलीखां के सुपुर्द किया। नवाब साहब बड़ौदा कमीशन के समय अपने साथ रखकर इन्हें राजकार्य की शिक्षा देने लगे। तदनंतर इन्होंने उदयपुर में नौकरी कर ली। श्रीनाथ द्वारा तथा कांकरौली के महाराजाओं की नाबालगी में इन्होंने उन राज्यों का अच्छा प्रबंध किया। तदनंतर ये उदयपुर की सदर अदालत के दीवानी के काम पर नियत हुए। वहां से कौंसिल की मेम्बरी और सेक्रेटरी के पद पर ये गए। १३ वर्ष तक इन्होंने उदयपुर राज्य की सेवा करके वहां इस्तीफा दे दिया और प्रतापगढ़ में यह नियत हुए। प्रतापगढ़ से ये बहुत दिनों तक पेंशन पाते रहे।

महारानी विक्टोरिया की जुबली के समय इन्होंने भारत सरकार को १००० रुपये इसलिए दिए कि दो पदक प्रतिवर्ष कलकत्ता यूनिवर्सिटी में सबसे प्रथम उत्तीर्ण होने वाले दो विद्यार्थियों को दिए जाएं।

इन्होंने हिंदी में सब मिलाकर १२ पुस्तकें लिखी हैं। पृथ्वीराजरासो का भी इन्होंने संपादन किया है। सन् १९१२ ई० में मथुरा में इनकी मृत्यु हुई।

मोहनजोदड़ो—यह प्रागैतिहासिक महत्त्व का नगर था। यहां से ताम्र-पाषाण युग के अवशेष प्राप्त हुए हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि एक समय वह सुविकसित नागरिक सभ्यता का सर्वोच्च नगर था। सिंधु घाटी के इस पुरातन नगर से जो सामग्री मिली है, वह अनेक विषयों से सम्बद्ध है और उसके द्वारा प्राचीन मानव सभ्यता के विभिन्न अंगों पर प्रकाश पड़ता है। संप्रति वह सिंध (पाकिस्तान) के लरकाना जिले में स्थित है।

मौनीबाबा—सन् १८५९ ई० में नदिया जिले के अंतर्गत आबुदिया नामक गांव में कायस्थ वंश में मौनीबाबा का जन्म हुआ था। उसके पिता का नाम रामचंद्र घोष था। वे परम वैष्णव और हरिभक्तिपरायण थे। गृहस्थी अच्छी न होने के कारण रामचंद्र पावना में रहकर कामकाज किया करते थे। रामचंद्र के दो पुत्र थे। बड़े का नाम प्यारीलाल और छोटे का नाम हीरालाल था। ये दोनों पावना के अंग्रेजी स्कूल में पढ़ते थे। उस स्कूल के एक अध्यापक ब्राह्मण थे। वे प्यारीलाल का पवित्र जीवन देखकर उन्हें ईश्वरभक्ति तथा ब्राह्म धर्म का उपदेश दिया करते थे।

ये दोनों बालक ज्यों-ज्यों बढ़ने लगे, त्यों-त्यों उनका धर्मभाव प्रबल होने लगा। इसी समय उनके माता-पिता का वियोग हुआ। माता-पिता की मृत्यु के अनंतर इन बालकों ने प्रकाशरूप से ब्राह्म धर्म ग्रहण कर लिया।

ब्राह्म धर्म ग्रहण करने के साथ ही साथ हिंदू धर्म से इनका संबंध टूट गया। इससे इन्हें धन का कष्ट होने लगा। प्यारीलाल ने अपने छोटे भाई के पढ़ने का खर्च चलाने के लिए पढ़ना छोड़कर एक नौकरी कर ली। वह पहले-पहल जलपाई गुड़ी के विद्यालय में शिक्षक नियत हुआ। तदनंतर रंगपुर के अंतर्गत गोपालपुर के अंग्रेजी स्कूल में प्रधान शिक्षक का काम करने लगा। बहुत दिनों तक वह यही काम करता रहा।

प्यारीलाल ने अध्यापक होते ही अपना ब्याह कर लिया था। गोपालपुर रहने के समय उसकी पत्नी तथा एक बहन उसके साथ रहती थी। संसार में रहकर भी वह आधी रात को उठकर साधन-भजन किया करता था। अधिक देर तक निद्रा न आए, इसलिए वह एक बेंच पर सोया करता था। दिन-रात मिलाकर वह ३-४ घंटे ही सोता था। वह कभी उत्तम भोजन नहीं करता था। वह सामान्य भोजन पर ही निर्वाह करता था। बीच-बीच में वह उपवास भी करता था। प्यारीलाल घर में रहकर घर के काम-धंधों से जो कुछ समय पाता उसमें वह भगवद्भजन किया करता था।

इस प्रकार साधन-भजन तथा संसार का काम करते-करते प्यारीलाल को बारह वर्ष बीत गए। इसी समय उसकी पत्नी भी मर गई। पत्नी के मरने से वह कुछ व्याकुल अवश्य हुआ था, परंतु उसकी व्याकुलता वैराग्य के रूप में परिणत हो गई। पत्नी के मरते ही उसने घर के काम-धंधे छोड़ दिए और

एकांत में रहकर वह भजन-पूजन करने लगा।

प्यारीलाल की पत्नी के मरने पर उसके मित्रों ने उससे पुनः ब्याह करने के लिए अनुरोध किया था, परंतु उन सभीको संसार की अनित्यता और धार्मिक उपदेश देकर प्यारीलाल ने समझा दिया।

प्यारीलाल की पत्नी के मरने के थोड़े दिनों के बाद उसका छोटा भाई पढ़ना छोड़कर रुपया कमाने लगा। प्यारीलाल ने अच्छा अवसर देखकर छोटे भाई को घर का काम सौंप दिया और स्वयं चित्रकूट भजन करने के लिए चला गया। प्यारीलाल ने निःसहाय अवस्था में ब्राह्म धर्म ग्रहण किया था, परंतु उसके हृदय में हिंदू धर्म के लिए पिपासा जागृत थी इसी कारण उसने पर्वत गुहा में जाकर योग साधने का विचार ठान लिया।

तीन वर्ष तक चित्रकूट के पर्वत पर योग साधकर प्यारीलाल ओंकारनाथ पर्वत पर योगसाधन करने के लिए चला गया। ओंकारनाथ पर्वत योगसाधन के लिए एक उत्तम स्थान है। वहां जाकर अनेक साधु-संन्यासी योगसाधन तथा तपस्या करते हैं। प्यारीलाल ने उस पर्वत पर अपने लिए एक उत्तम स्थान बना लिया। एक वर्ष तक उसने बड़ी कठिन तपस्या की थी। इस बीच में आसन छोड़कर उठते उसे किसीने नहीं देखा था। उसकी कठिन तपस्या देखकर लक्ष्मीनारायण सेठ नामक एक धनी ने उसके लिए एक गुफा बनवाई थी। इस गुफा में जाकर प्यारीलाल पहले की अपेक्षा और अधिक दृढ़ता से योगसाधन करने लगा। इसी समय उसने मौनव्रत का अवलंबन किया था। वह किसीसे बातचीत नहीं करता था, इसी प्रकार छः महीने के बाद मौनीबाबा के नाम से उसकी प्रसिद्धि हुई।

मौनीबाबा के दर्शन के लिए समय-समय पर उनकी गुहा के बाहर बड़ी भीड़ लग जाया करती थी। सभी अपने-अपने दुःख के निवारण के लिए मौनीबाबा के समीप आया करते थे। पूर्वोक्त धनी ने एक बार कहा था, पहले मैं बड़ा दरिद्र था। जिस दिन से मौनीबाबा की कृपा हुई है उसी दिन से हमारे धन की वृद्धि होने लगी है। हमारे ऐश्वर्य के मूल मौनीबाबा ही हैं। ओंकारनाथ के महंत जी कहते थे कि मैंने बहुत साधु देखे हैं परंतु मौनीबाबा के समान साधु हमारे देखने में नहीं आया। मौनीबाबा अपने शरीर की रक्षा का कुछ भी प्रयत्न नहीं करते थे। वह पाव-भर दूध और छटांक बिल्वपत्र का रस पीते थे। ७१ वर्ष की अवस्था में सन् १८३६ ई० में उनकी मृत्यु हुई।

य

यक्ष—यक्षगण का उल्लेख पुराण आदि शास्त्र-ग्रंथों में लिखा पाया जाता है। परंतु इस समय इस बात का पता लगाना बड़ा कठिन है कि उसका स्थान कहां था, इस समय वे किसी रूप में वर्तमान हैं कि नहीं। मनुसंहिता में लिखा है कि बर्हिषद् नामक अत्रिपुत्र से यक्षों की उत्पत्ति हुई।

अधिक समय बीतने के कारण वस्तु में विकार होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि यक्षों के विषय में एक विभिन्न प्रकार की धारणा सर्वसाधारण के हृदय में बद्धमूल हुई है। लोग समझते हैं, यक्षगण एक अलौकिक प्राणी हैं। इस धारणा का मूल क्या है, इसका पता लगाना कठिन ही नहीं, किंतु नितांत असंभव भी है। पुराणों तथा कथा-सरित्सागर आदि ग्रंथों में ऐसी अनेक कथाएं लिखी हैं, जिनमें मनुष्यों के साथ यक्षों के वैवाहिक संबंध का वर्णन है। शास्त्र-ग्रंथों में, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि वर्णों के वंशवर्णन के साथ ही यक्षवंश का भी वर्णन पाया जाता है। इन सब बातों को देखते हुए इस बात को मानने में कुछ भी संकोच नहीं होता कि यक्षगण अलौकिक थे। यक्षों के विषय में आजकल के विद्वानों में दो प्रकार के मत प्रचलित हैं। कतिपय विद्वानों का अनुमान है, यू अथवा यहूदियों को मिस्रवासी हिक्सो (Hykso)

कहा करते थे। यक्ष शब्द ही उच्चारणभेद अथवा उच्चारण-वैकल्प से इस रूप में परिणत हुआ है। यक्षगण कुबेर के धनरक्षक थे। आज भी हम लोगों में 'यक्ष का धन' यह प्रवाद प्रसिद्ध है। इस प्रवाद का अर्थ समझा जाता है—'महाकृपण का धन।' इस प्रवाद के द्वारा भी यक्षों का महाकृपण होना प्रतिपन्न होता है। उस समय के यू अथवा यहूदी भी सूदखोर और महाकृपण हुआ करते थे। 'मरचेंट ऑफ वेनिस्' नामक नाटक में महाकवि शेक्सपियर ने शाईलाक नाम के जिस यहूदी का चित्र अंकित किया है उससे भी यही बात प्रमाणित होती है। मालूम पड़ता है कि इसी कारण यक्ष और यू अथवा यहूदियों को एक पर्याय में लोग मानते हैं।

दूसरे पक्ष का कहना है कि हिक्स (ह्यक्ष) यक्ष ये शब्द सादृश्यवाचक अवश्य हैं परंतु हिक्स शब्द यहूदियों का वाचक नहीं है। मिस्र देश का एक राजवंश हिक्स नाम से प्रसिद्ध है। हिक्स जिस देश पर आक्रमण करते उसे छार-खार करके छोड़ देते थे। दुर्धर्षता और अत्याचारपरायणता के कारण ही भारतीय उनको यक्ष कहने लगे होंगे। हिक्स अथवा यक्ष कभी मिस्र के राजा थे, यह बात इतिहास से सिद्ध है। मिस्र देश के शिलालेखों तथा स्तंभों से यह बात प्रमाणित है। (भारतवर्षीय इतिहास)

यज्ञ—स्वायंभुव मन्वंतर में विष्णु का सातवां अवतार। इसका जन्म रुचि, ऋषि और आकूति से हुआ। इसकी पत्नी का नाम दक्षिणा था, जिससे इसके तृषित नामक बारह पुत्र उत्पन्न हुए। स्वायंभुव मनु ने इसे अपने मन्वंतर का इंद्र बनाया। रुद्र के द्वारा इसका शिरच्छेद किए जाने पर अश्विनीकुमारों ने शल्यक्रिया के द्वारा इसका शिर पूर्ववत् स्थापित किया।

यदु—महाराज ययाति के पुत्र। ये देवयानी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। शुक्राचार्य की कन्या देवयानी के गर्भ से ययाति के यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। ययाति के सबसे बड़े पुत्र यदु थे। एक समय ययाति शुक्राचार्य के शाप से जराग्रस्त हो गए थे। ययाति के बहुत प्रार्थना करने पर शुक्राचार्य ने कहा, "दूसरे की सहमति से तुम अपनी वृद्धावस्था को उसे देकर युवा बन सकते हो।" ययाति ने यदु से अपनी वृद्धावस्था लेने के लिए कहा। यदु ने उसके उत्तर में साफ ना कर दी। इससे क्रुद्ध होकर ययाति ने यदु को शाप दिया कि तुम हमारे पुत्र होकर भी अपनी अवस्था नहीं दे सकते, इस कारण तुम और तुम्हारे वंशज कोई भी राज्याधिकारी नहीं हो सकेंगे। इन्हीं-से यादव-वंश की उत्पत्ति हुई।

यदुवंश—यदु के पुत्रों में क्रोष्टु और सहस्रजित् का वंश विशेष प्रसिद्ध है। सहस्रजित् के पुत्र का नाम हैहय था। हैहय से दसवें पुरुष में कार्तवीर्यार्जुन उत्पन्न हुआ था। दत्तात्रेय की आराधना से इन्हें वर मिला था। कतिपय पुराणों में दत्तात्रेय विष्णु के अवतार लिखे गए हैं। कार्तवीर्य ने दत्तात्रेय से अधर्म द्वारा सेवा को दूर करना, धर्म द्वारा पृथ्वी को जीतना, शत्रु से पराजित न होना, भुवनविख्यात पुरुष के द्वारा अपनी मृत्यु और युद्धक्षेत्र में हजार बाहु की प्राप्ति आदि का वर पाया था। कार्तवीर्य ने दस हजार यज्ञ किए थे और सप्तद्वीपा वसुमती को अपने अधिकार में कर लिया था। उनके राज्य में किसीके द्रव्य को कोई नहीं चुराता तथा कोई दुःखी भी नहीं होता। वे धर्म से राज्य-पालन करते थे। एक समय वे नर्मदा में जलक्रीडा कर रहे थे, इसी समय लंकाधिपति रावण ने उनकी राजधानी पर आक्रमण किया, इससे क्रुद्ध होकर इन्होंने रावण को पशुओं के समान बांध रखा था। कर्कोटकवंशी नागों को परास्त करके इन्होंने माहिष्मती नगरी की स्थापना की थी। ८५ हजार वर्ष राज्य करने के पश्चात् ये परशुराम के हाथों मारे गए। कार्तवीर्य के सौ पुत्रों में से जयध्वज आदि पांच पुत्र जीवित थे। जयध्वज अवंति के राजा थे। उनका तालजंघ नामक एक पुत्र था। तालजंघ के भी सौ पुत्र थे और वे भी तालजंघ नाम से ही परिचित होते थे। उनमें से अधिकांश के सगर के हाथों मारे जाने पर भरत को राज्य मिला। भरत के पुत्र का नाम वृष था। वृष के पुत्र मधु और मधु के वृष्णि आदि एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए।

इसी वंश की यदु के पश्चात् यादव संज्ञा हुई। इस वंश की मधु से माधव संज्ञा हुई।

इसी हैहयवंश की ही वीतिहोत्र, सुव्रत, भोज, अवंति भौंडिकेय, तालजंघ, भरत और सुजात आदि अनेक शाखाएं हुईं। यदु के दूसरे पुत्र क्रोष्टु की माद्री और गांधारी नाम की दो पत्नियां थीं। क्रोष्टु के पुत्रों में अनमित्र, युधाजित्, देवमीढुष और वृजिनीवान प्रसिद्ध हैं। वृजिनीवान के वंशज शशबिंदु चतुर्दश रत्नों के स्वामी और चक्रवर्ती हुए थे। कहा जाता है,

शर्शबिंदु की दस हजार पत्नियां थीं और एक-एक पत्नी से एक-एक लाख पुत्र उत्पन्न हुए थे। इनके प्रपौत्र उशना ने एक सौ अश्वमेध यज्ञ किए थे। उशना के पौत्र का नाम ज्यामघ था। ये बड़े स्त्रैण थे। इनकी पत्नी का नाम शैव्या था। उस समय किसी बड़े स्त्री-वश मनुष्य की तुलना करनी होती तो ज्यामघ से की जाती थी। यद्यपि ज्यामघ को कोई संतति नहीं थी, परंतु स्त्री के भय से वे विवाह नहीं कर सके थे। एक समय राजा ज्यामघ ने शत्रुसेना के साथ युद्ध करते-करते एक नगर पर आक्रमण किया। सभी नगर-वासी भाग गए। एक सुंदर राजकन्या किसी प्रकार नहीं भाग सकी। ब्याह करने की इच्छा से ज्यामघ उसे अपने घर ले आए। परंतु उस कन्या को देखते ही जब रानी शैव्या ने त्योरी चढ़ाई, तब ज्यामघ ने अपना अभिप्राय छिपाकर कहा—मैं इसे अपनी पतोहू बनाने के लिए लाया हूं। उस समय भी ज्यामघ का कोई पुत्र नहीं था। जब ज्यामघ का पुत्र हुआ तब उसीसे उस कन्या का ब्याह हुआ था। उस पुत्र का नाम ज्यामघ ने विदर्भ रखा था। विदर्भ ने पिता की आज्ञा से बड़ी अवस्था वाली कन्या को ब्याहा था। इसी वंश में सात्वत उत्पन्न हुए थे। सात्वत के सात पुत्र थे। उनमें भज्यमान, अंधक, वृष्णि, देवावृध आदि अत्यंत प्रसिद्ध हैं। देवावृध और उनके पुत्र बभ्रु की पुराणों में बड़ी प्रशंसा लिखी है। इनके संबंध में एक श्लोक कहा जाता है—'बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः," अर्थात् बभ्रु मनुष्यों में श्रेष्ठ है तथा देवावृध देवों के तुल्य हैं। इनके उपदेश से कितने ही मनुष्यों ने मोक्ष पाया था। विदर्भ के एक दूसरे पुत्र का नाम लोमपाद था। ये अंगदेश के राजा थे। राजा दशरथ के साथ इनकी मित्रता थी।

एक बार लोमपाद के पाप से उनके राज्य में बारह वर्ष तक निर्वर्षण रहा। अतएव उन्होंने वेश्याओं के द्वारा लुभाकर ऋष्यशृंग मुनि को अपने देश में बुलाया जिससे उनके राज्य में वृष्टि हुई। दशरथ की कन्या, जिसे लोमपाद ने दत्तक लिया था, मुनि को उन्होंने ब्याह दी। सात्वत के दूसरे पुत्र महाभोज भी बड़े धर्मात्मा थे। उन्हींसे भोजवंश की सृष्टि हुई। इसी वंश में सुप्रसिद्ध राजा श्वफल्क उत्पन्न हुए थे। जहां वे रहते थे वहां व्याधि तथा अनावृष्टि का भय नहीं रहता था। एक बार काशी राज्य में तीन वर्ष तक वृष्टि नहीं हुई, इसलिए काशीराज श्वफल्क को अपनी राजधानी ले गए। श्वफल्क के आते ही काशी राज्य में बड़ी वृष्टि हुई। काशीराज ने अपनी कन्या गांदिनी को उनसे ब्याह दिया। उसी गांदिनी के गर्भ से अक्रूर का जन्म हुआ था। वृष्णि के वंश में प्रसेन और सत्राजित् का जन्म हुआ था। स्यमंतक मणि के उपाख्यान प्रसंग में इन दोनों से पुराणों के वक्ता तथा श्रोता मात्र परिचित हैं। सूर्य की उपासना करने से सत्राजित् को स्यमंतक मणि प्राप्त हुई थी। उस मणि को गले में पहनकर सत्राजित् द्वारकापुरी में गए। उस मणि को देखकर यादव चकित हो गए। श्रीकृष्ण ने भी कहा—राजा उग्रसेन के गले में ही इस मणि की शोभा होती। उस मणि पर सभी की स्पृहा देखकर तथा श्रीकृष्ण के मांगने पर न नहीं कहा जा सकता, यह समझकर सत्राजित् ने वह मणि अपने छोटे भाई प्रसेन को दे दी। जो कोई शुद्धता और यत्नपूर्वक उस मणि को रखता उसे उस मणि से आठ भार स्वर्ण प्रतिदिन प्राप्त होता था और उस मणि के प्रभाव से राज्य के समस्त विघ्न दूर होते थे। परंतु यदि कोई शरीर की अशुद्धावस्था में उस मणि को धारण करता तो उसका नाश हो जाता।

एक दिन अशुद्धावस्था में ही उस मणि को धारण कर प्रसेन शिकार खेलने वन में गए और वे वहां एक सिंह के द्वारा मारे गए। उस सिंह को जांबवान् ने मारा। इस प्रकार वह मणि जांबवान् के हाथ में आ गई। परंतु इस बात को कोई भी द्वारकावासी नहीं जानता था। उस मणि के विषय में श्रीकृष्ण को कलंक लगा। सब लोगों का यह विश्वास दृढ़ हो गया कि श्रीकृष्ण ने ही प्रसेन को मारकर मणि ले ली है। इस कलंक को दूर करने के लिए श्रीकृष्ण मणि ढूंढ़ने निकले। श्रीकृष्ण ने ढूंढ़-ढांढ़कर के अंत में जाम्बवान् को पाया। इक्कीस दिन तक श्रीकृष्ण का जाम्बवान् से मल्लयुद्ध हुआ। युद्ध में जाम्बवान् पराजित हुआ और वह मणि श्रीकृष्ण को मिल गई। जाम्बवान् ने अपनी कन्या भी श्रीकृष्ण को ब्याह दी। श्रीकृष्ण का कलंक दूर हुआ। सत्राजित् ने श्रीकृष्ण पर कलंक लगाया था, अतएव अपने कर्म से लज्जित होकर उन्होंने भी अपनी कन्या सत्यभामा का ब्याह श्रीकृष्ण से कर दिया। स्यमंतक मणि पर सत्राजित् का ही अधिकार रहा। पहले सत्यभामा से शतधन्वा, कृतवर्मा और अक्रूर विवाह करना चाहते थे। अतः श्रीकृष्ण के साथ सत्यभामा के ब्याही जाने से उन लोगों ने

अपना अपमान समझा। उसी अपमान का संशोधन करने के लिए शतधन्वा ने सत्राजित् को मार डाला और स्यमंतक मणि को ले लिया।

इसी समय पांडवों के जतु-गृहदाह के उपलक्ष्य में श्रीकृष्ण वारणावत नगर में गए थे। सत्यभामा ने श्रीकृष्ण के समीप जाकर अपने पिता के मारे जाने तथा मणि के अपहरण का वृत्तांत कहा। तदनंतर श्रीकृष्ण ने शतधन्वा को मार डाला, परंतु स्यमंतक मणि उनको नहीं मिल सकी क्योंकि शतधन्वा ने पहले ही वह मणि अक्रूर को दे दी थी। अक्रूर ने जब मणिरक्षा का दूसरा उपाय न देखा तब उन्होंने श्रीकृष्ण को वह मणि दे दी। उस मणि पर बहुतों की आंखें लगी थीं, इस कारण श्रीकृष्ण ने उसे अक्रूर के पास ही रहने दिया। श्रीकृष्ण ने कहा—राज्य की रक्षा के लिए आप इसे अपने पास ही रखें। सात्वत-पुत्र अंधक के कुकुर, भज्यमान आदि पुत्र उत्पन्न हुए थे। कुकुर के वंश में उग्रसेन तथा कंस आदि हुए। भज्यमान से देवमीढुष और देवमीढुष के पुत्र शूर हुए। शूर की पत्नी का नाम मारिषा है। मारिषा के गर्भ से वसुदेव आदि दस पुत्र और पृथा, श्रुतदेवा आदि पांच कन्याएं उत्पन्न हुई थीं। कुंतिभोज वसुदेव के पिता शूर के मित्र थे। कुंतिभोज के कोई वंशधर नहीं था, इस कारण शूर ने उन्हें अपनी पुत्री पृथा पुत्रीरूप में दे दी। इसी पृथा का नाम कुंती पड़ा था और यह पांडु को ब्याही गई थी। वसुदेव की दूसरी बहन श्रुतदेवा कारुषवृद्धशर्मा को ब्याही गई थी। उसके दो पुत्र हुए थे - दंतवक्र और महाशूर। श्रुतकीर्ति केकयराज को ब्याही गई थी। उसके प्रतर्द्दन आदि केकय नामक पांच पुत्र उत्पन्न हुए थे। राजाधिदेवी को अवंतिराज ने ब्याहा था। उससे बिंदु और अनुबिंदु नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। श्रुतश्रवा से चेदिराम दमघोष का विवाह हुआ था। उससे शिशुपाल का जन्म हुआ था। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में यही शिशुपाल श्रीकृष्ण के हाथ से मारा गया था।

देवकी आदि कंस की सात बहिनें वसुदेव को ब्याही गई थीं। श्रीकृष्ण और बलराम ये ही दो वसुदेव के पुत्र थे। रोहिणी के गर्भ से बलराम और देवकी के गर्भ से श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए थे। कंस के कारागार में श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। कंस को मालूम था कि देवकी के आठवें गर्भ से उसकी मृत्यु होगी। इसी कारण वसुदेव और देवकी को उसने कैद कर लिया था और उनकी संतानों को उत्पन्न होते ही वह मरवा डालता था। परंतु श्रीकृष्ण के जन्म के समय सभी पहरुए सो गए थे। वसुदेव श्रीकृष्ण को गोकुल में नंद के घर रख आए। संयोगवश उसी दिन नंद के एक कन्या उत्पन्न हुई थी। पुत्र को रखकर और कन्या को लेकर वसुदेव मथुरा के कारागार में चले आए। यह कन्या स्वयं योगमाया थी। कंस ने योगमाया को मरवा डालने की इच्छा से उसे पत्थर पर पटकने की आज्ञा दी। पत्थर के ऊपर पटकने के समय योगमाया आकाश में जाकर अंतर्हित हो गई और उस समय उसने कहा—"तुम्हारा नाश करने वाला गोकुल में बढ़ रहा है।" तब से नंदपालित श्रीकृष्ण को मारने के लिए कंस ने अनेक चेष्टाएं कीं परंतु उसे किसी एक में भी सफलता प्राप्त नहीं हुई। अंत में योगमाया की भविष्यवाणी पूर्ण हुई। श्रीकृष्ण के हाथों कंस मारा गया। अपने पिता उग्रसेन को राज्यच्युत करके कंस स्वयं सिंहासन पर बैठा था। कंस के मारे जाने पर उग्रसेन को पुनः राज्य मिला। देवकी और वसुदेव बंधन-मुक्त हुए। श्रीकृष्ण के सोलह हजार एक सौ स्त्रियां थीं और आठ पटरानियां थीं। श्रीकृष्ण के आठ अयुत और आठ लक्ष पुत्र हुए थे और उन पुत्रों की वंशवृद्धि से यदुवंश में असंख्य मनुष्य हो गए थे। यदुवंश की संख्या नहीं की जा सकती। अंत में यदुवंशी उच्छृंखल होकर ब्राह्मणशाप से दग्ध हो गए।

यम—सूर्य के पुत्र। संज्ञा के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी। (देखो छाया)

यमसंहिता—इस संहिता में ७८ श्लोक हैं। विधि-निषेध तथा प्रायश्चित्त तत्त्व ही इस संहिता में आलोचित हुए हैं। इस संहिता में रजक, चर्मकार, नट, कैवर्त, भिल्ल आदि को अंत्यज वर्ण लिखा है। इस संहिता में संध्या समय आहार करना, सोना, वेद पाठ करना आदि कामों को न करने की आज्ञा दी गई है। इस संहिता के प्रवर्तक यम हैं। परंतु कौन यम, इसका पता नहीं मिलता। कोई कहते हैं, यम नामक ऋषि ने इस संहिता को निबद्ध किया है, परंतु कतिपय विद्वान् इस पक्ष को सत्पक्ष नहीं कहते। वे यम नामक ऋषि को इस संहिता का कर्ता मानते हैं। पाश्चात्य पंडितों के मत से यह संहिता नवीन है।

यमुना—इसका ऋग्वेदकालीन अस्तित्व है। 'पद्मपुराण' के 'यमुना माहात्म्य' में इसकी महिमा तथा गरिमा का

विस्तार से वर्णन किया गया है ।

ययाति—चंद्रवंशी राजा नहुष के पुत्र । इनकी दो स्त्रियां थीं, देवयानी और शर्मिष्ठा । देवयानी दैत्यगुरु शुक्राचार्य की कन्या थी और शर्मिष्ठा दैत्यपति वृषपर्वा की । देवयानी के गर्भ से यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्यु, अनु और पुरु नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे । शुक्राचार्य के शाप से ययाति जराग्रस्त हुए थे । ययाति ने अपनी जरा पुत्रों को देने की इच्छा से सब पुत्रों से सहमति पूछी । शर्मिष्ठागर्भजात पुरु के अतिरिक्त और किसीने भी जरा लेना स्वीकृत नहीं किया । आज्ञा उल्लंघन करने वाले पुत्रों को ययाति ने शाप दिया और पुरु को अपनी जरा अवस्था देकर वे बोले कि मैं तुम्हारे यौवन से कुछ दिनों तक विषयभोग करता हूं, पीछे एक हजार वर्ष होने पर मैं तुम्हारा यौवन तुम्हें लौटा दूंगा और अपनी जरा ले लूंगा । सहस्र वर्ष बीतने पर ययाति ने अपने पुत्र पुरु को बुलाकर कहा—मैंने हजार वर्ष तक विषय-सुख भोगे, परंतु मेरी तृप्ति नहीं हुई । मालूम पड़ता है, अग्नि में घृताहुति के समान विषय-सुख से कभी किसीकी तृप्ति नहीं हो सकती, अतएव अब विषय-सुख भोगना व्यर्थ है—यह कहकर ययाति ने पुत्र को यौवन लौटा दिया और वे स्वयं वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करके कठिन तपस्या करने लगे । उसी तपस्या के फल से ययाति स्वर्ग में गए और वहां कुछ दिनों तक इन्होंने सुख से वास किया । पुनः ये देवराज इंद्र के शाप से स्वर्गभ्रष्ट हुए । स्वर्गभ्रष्ट होकर अंतरिक्ष पथ से आने के समय उनकी अष्टशिवि आदि अपने दौहित्रों से भेंट हुई । उन लोगों ने अपने-अपने पुण्यफल से ययाति को स्वर्ग में भेज दिया और उन्हींके पुण्यबल से ययाति ने मुक्तिलाभ किया ।

ययातिकेसरी—मगध के एक हिंदू राजा । जिस समय बौद्धों के अत्याचार और उत्पीड़नों से उत्कलवासी त्रस्त हो रहे थे, जिस समय बौद्ध धर्म की प्रज्वलित आग हिंदू धर्म को धायं-धायं करके जला रही थी, उस समय मगधराज ययातिकेसरी उत्कल देश में गए और उन्होंने उत्कल में पुनः हिंदू धर्म की प्रतिष्ठा की । वीर और धर्मप्रेमी ययातिकेसरी के प्रभाव से असंख्य बौद्धमंदिरों में हिंदू देवराज की मूर्तियां स्थापित की गईं । ये केसरी बंश के आदिपुरुष थे ।

(भारतवर्षीय इतिहास)

ययातिपुर—केसरी वंश के आदिराजा ययातिकेसरी ने इस नगर की प्रतिष्ठा की थी । छठी सदी के प्रारंभ में यह नगर बसाया गया था और इसी नवनिर्मित नगर में केसरी वंश की राजधानी स्थापित हुई । यह नगर वैतरणी नदी के तीर पर स्थित है । इस समय ययातिपुर की याजपुर नाम से प्रसिद्धि है ।

(भारतवर्षीय इतिहास)

यवक्रीत—भरद्वाज ऋषि का पुत्र । इसने वेदविद्या को प्राप्त करने के लिए घोर तप किया । इसका यवक्री नामांतर भी प्राप्त होता है । यवक्रीत का शाब्दिक अर्थ है—यव देकर खरीदा गया । ये दोनों पिता-पुत्र यद्यपि अत्यंत तपोनिष्ठ थे, तथापि वेद-ऋचाओं के निर्माण की क्षमता न होने के कारण ब्राह्मणों द्वारा ये आदर की दृष्टि से नहीं देखे जाते थे । इसलिए वेदविद्या को प्राप्त करने के लिए इसने घोर तप किया, जिससे इंद्र भी विचलित हो गया । इसने इंद्र से कहा कि यदि वह यवक्रीत की मनोकामना को पूरा न करेगा तो यह अपने अंगों को छिन्न-भिन्न कर अग्नि में होम कर देगा । इसकी तपोरत निष्ठा से प्रभावित होकर एक बार इंद्र ने वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किया और भागीरथी के तट पर बैठकर वह एक-एक मुट्ठी बालू उसमें डालने लगा । यवक्रीत ने उसे देखा और उससे ऐसा करने का कारण पूछा । तब ब्राह्मणरूपधारी इंद्र ने कहा कि वह बालू डालकर भागीरथी में पुल का निर्माण करना चाहता है, जिससे कि लोग आ-जा सकें । इसपर यवक्रीत ने उसको इस व्यर्थ श्रम को न करने की सलाह दी । इसपर वृद्ध ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि जिस प्रकार यवक्रीत वेदज्ञान की प्राप्ति के लिए व्यर्थ तप कर रहा है, उसी प्रकार मेरा भी पुल बनाने का यह प्रयास है । यह सुनकर यवक्रीत ने इंद्र को पहचान लिया । उसने इंद्र से क्षमा मांगी । तब इंद्र ने उसको उसकी समस्त मनःकामनाओं को पूरा होने का वरदान दिया और कहा—"तुम और तुम्हारे पिता में वेदों को सृजन करने की क्षमता उदित हो और तुम दोनों अन्य ऋषियों से श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करो ।"

यवक्रीत ने यह बात सगर्व अपने पिता भरद्वाज को सुनाई । भरद्वाज ने उसके अभिमान का उपशमन करने के लिए उसे बालधि तथा उसके पुत्र मेधाविन् की कथा सुनाई । एक दिन यह निकट में ही विश्वामित्र ऋषि के पुत्र रैम्य के आश्रम में गया । वहां

रैम्य के पुत्र परावसु की सुंदर पत्नी स्नुषा को देखकर यह इतना कामातुर हुआ कि उसके साथ बलात्कार कर बैठा। स्नुषा ने यह बात अपने श्वसुर रैम्य को बताई। वह इतना क्रोधाविभूत हुआ कि उसने अपनी जटा के दो बाल उखाड़े और उन्हें अग्नि में होम कर दिया। उनसे एक राक्षस और एक सुंदर स्त्री का आविर्भाव हुआ। इस सुंदरी ने यवक्रीत को मोहित कर उसका सारा तेज क्षीण कर दिया और अंत में राक्षस ने उसका वध कर डाला।

इस घटना के बाद ब्रह्मयज्ञ से निवृत्त होकर भरद्वाज ऋषि अपनी होमशाला में आए। वहां उन्होंने यज्ञशाला में अग्नि प्रज्वलित न होने का कारण पूछा। गृहरक्षक ने उन्हें यवक्रीत-वध की सारी कथा सुना दी। अपने मृत पुत्र को धरती पर पड़ा हुआ देखकर ऋषि को बड़ा दुःख हुआ। उसने अपने पुत्र के अभिमान की भर्त्सना की और रैम्य ऋषि को शाप दिया कि वह भी अपने पुत्र द्वारा ही मारा जाएगा। तदनंतर अग्नि में प्रविष्ट होकर भरद्वाज ऋषि ने अपना प्राणांत कर दिया।

कालांतर में रैम्य ऋषि अपने पुत्र परावसु द्वारा मारा गया। तदनंतर रैम्य ऋषि के दूसरे पुत्र अर्वावसु ने उग्र तप करके सूर्य तथा देवताओं को प्रसन्न किया और उनसे भरद्वाज, यवक्रीत तथा पिता रैम्य को पुनर्जीवित करने तथा अपने बंधु परावसु को पितृहत्या के दोष से मुक्त करने का वरदान प्राप्त किया। भरद्वाज ऋषि ने अर्वावसु की प्रशंसा की और उसके उपकार के लिए उसे धन्यवाद दिया। (महाभारत)

यवनदेश—भारतीय साहित्य में यवनदेश का व्यापकता से उल्लेख हुआ है। जो यूनानी पश्चिमोत्तर सीमांत में आकर बस गए थे, उन्हें ही यवन या योन कहा जाता था। उन्हें 'गौतमधर्मशास्त्र' (६।२१) में क्षत्रियों द्वारा शूद्रा स्त्रियों से उत्पन्न संतति बताया गया है। हिंदुओं से उनका संघर्ष नितांत पुरातनकाल से चला आ रहा था। बौद्ध युग में इसकी प्रतिष्ठा बनी और उसे निर्वाणप्राप्ति का उपयुक्त स्थान बताया गया। यहां पर इतिहास, पुरातत्त्व और कला की विपुल निधि का निर्माण हुआ। सिकंदर से (४०० ई० पूर्व) पहले ही उनका भारत-प्रवेश हो गया था।

यवनाचार्य—ये ज्योतिष के एक प्रसिद्ध विद्वान् थे। इनके लिखे हुए ग्रंथ का नाम 'यवनसिद्धांत' है। बलभद्र नामक एक ज्योतिर्वेत्ता ने 'सद्धायनरत्न' नामक एक ग्रंथ लिखा है। उस ग्रंथ में ग्रंथकार ने यवनाचार्य का परिचय इस प्रकार दिया है। यवनाचार्य ने जातक स्कंध-विषयक 'ताजिक' नामक एक ग्रंथ लिखा है। यह ग्रंथ फारसी भाषा में था। मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह ने इस ग्रंथ का संस्कृत भाषा में अनुवाद करवाया। इनकी प्रसिद्धि यवन नाम से भी है।

यव्यावती—इसका ऋग्वेदकालीन अस्तित्व है। सायण ने इसे हरियूपीया अपर नाम से कहा है। इसकी वर्तमान भौगोलिक स्थिति के संबंध में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

यशवन्तसिंह—(१) मारवाड़ के एक राजा। ये महाराज गजसिंह के द्वितीय पुत्र थे। राजपूताने की चिरप्रचलित रीति के अनुसार महाराज गजसिंह के बड़े पुत्र अमरसिंह ही राज्य के अधिकारी थे। परंतु अमरसिंह की उद्दंडता के कारण महाराज गजसिंह ने उनको राज्याधिकार से च्युत करके देशनिकाला दे दिया और यशवंतसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया।

महाराज गजसिंह की मृत्यु होने पर यशवंतसिंह का मारवाड़ की गद्दी पर अभिषेक हुआ। यशवंतसिंह उदयपुर की राजकन्या के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। यशवंतसिंह विद्याप्रेमी और धार्मिक थे। भाट कवि कहते हैं कि राजा यशवंतसिंह एक आदर्श राजा थे। इन्होंने अपने ऐश्वर्य से देश की मूर्खता और अज्ञानता दूर की थी। इनकी कृपा से अनेक हिंदू धर्मशास्त्र के ग्रंथ भी बन गए थे।

इनके पिता और पितामह का दक्षिण देश रणस्थल था। यशवंतसिंह भी इसी देश को अपना रणस्थल बनाकर अपने महत् चरित्रों को प्रकाशित करना चाहते थे। इसके लिए इन्हें सहायता की आवश्यकता थी। यदि उस समय बादशाह महाराज यशवंतसिंह के महत् चरित्रों को कुछ भी समझ सकते तो इसमें संदेह नहीं कि इतिहास बदल जाता। परंतु बादशाह तो अपनी मौज में मस्त थे। उनके पुत्र ही जो चाहते थे सो करते थे। इसी कारण बादशाह ने सबसे पहले इनको गोड़वाने में भेजा। औरंगजेब के अधीनस्थ विशाल सेना के एक अंश का सेनापति होकर महाराज यशवंतसिंह युद्धकार्य में लिप्त रहा करते थे। यद्यपि इन युद्धों में ये स्वाधीन नहीं थे, तथापि बादशाह की सहायता के लिए अन्य सेनापतियों की अपेक्षा इनकी तथा इनकी सेना की ही वीरता प्रकाशित हुई

थी। इस प्रकार राठौर वीर यशवंतसिंह की शूर-वीरता आदि प्रकट होने लगी। इस समय बादशाह बीमार पड़े, उनके रोग बढ़ने के साथ ही साथ यशवंत-सिंह का भाग्य भी बढ़ने लगा। बादशाह शाहजहां जब सांघातिक रोग से पीड़ित हुए तब उन्होंने दारा को अपना प्रतिनिधि बनाया। दारा ने यशवंतसिंह की बहादुरी का परिचय पाकर इन्हें पंचहजारी का खिताब दिया, और मालवा प्रदेश का अपना प्रतिनिधि चुना।

बादशाह के रोग बढ़ने के साथ ही उनके पुत्रों में राज्य पाने की इच्छा प्रबल हो उठी। इस समय वृद्ध बादशाह चारों ओर अंधकार ही अंधकार देखने लगे। उस समय बादशाह ने राजपूतों को ही अपना रक्षक बनाया। औरंगजेब को दमन करने के लिए राठौर वीर यशवंतसिंह तीस सहस्र राजपूत और मुगल सेना के सेनापति होकर आगरे से चले। उज्जैन से लगभग आठ कोस दूर पर जब इनकी सेना पहुंची, तभी पता मिला कि औरंगजेब भी पास ही पहुंच गया है। अतएव यशवंतसिंह ने अपनी सेना वहीं ठहराई। देखते-देखते विद्रोहियों की सेना नर्मदा पार कर बहुत पास आ गई। परंतु यशवंतसिंह ने उसकी कुछ भी परवाह न की। मौका पाकर औरंगजेब की सेना मुराद की सेना से मिलकर बलवान् हो गई, तो भी यशवंतसिंह ने किसी प्रकार की बाधा विद्रोहियों को न दी। ये समझते थे कि मैं बात की बात में विद्रो-हियों का दमन कर लूंगा। परंतु यशवंतसिंह के इस अभिमान का फल बड़ा ही विषम हुआ। इसी उपेक्षा के फल से इनका सम्मान और गौरव नष्ट हो गया। औरंगजेब ने यशवंतसिंह की अधीनस्थ मुगल सेना को षड्यंत्र करके अपने वश में कर लिया। जब यश-वंतसिंह ने लड़ाई करने की आज्ञा दी, उसी समय मुगल सेना औरंगजेब के पक्ष में जाकर खड़ी हो गई, परंतु इससे यशवंतसिंह हताश नहीं हुए। ये अपनी तीस हजार राजपूत-सेना लेकर युद्ध के लिए खड़े हुए। यशवंतसिंह भयंकर रूप धारण करके रणभूमि में निर्भय विचरण करने लगे तथा यवनसेना का संहार करने लगे। उस युद्ध में १० हजार मुगल मारे गए और मुराद तथा औरंगजेब बड़े कष्ट से प्राण लेकर भागे। उस समय यशवंतसिंह भूखे सिंह के समान अपने शिकार को इधर-उधर ढूंढ़ने लगे।

राजा यशवंतसिंह युद्ध से राजधानी में लौट आए। राज्य में लौट आने पर एक बड़ा विषम कांड उप-स्थित हुआ। मेवाड़ की राजकन्या से यशवंतसिंह का ब्याह हुआ था। उसने जब सुना कि महाराज रण-स्थल से शत्रुओं का नाश किए बिना चले आए हैं, तब उसने अपने घर के किवाड़ बंद करा दिए और कह-लाया—महाराणा के दामाद या तो रणस्थल में मर-कर स्वर्ग चले जाते हैं, नहीं तो शत्रुओं का नाश कर-के घर लौटते हैं। महाराणा की पुत्री ऐसे पति का मुंह नहीं देखना चाहती जो रणस्थल से बिना शत्रुओं को नष्ट किए लौट आता है। यशवंतसिंह बड़ी विपदा में पड़े। महारानी ने बिना खाये-पीए नौ दिन बिता दिए। अंत में महारानी की माता ने उसे समझाया कि अब महाराज जायेंगे, और पुनः अपने गौरव को लौटावेंगे। महाराज यशवंतसिंह मालवा चले गए। इसी बीच में वृद्ध बादशाह का भाग्य-सूर्य अस्त हो गया। ये कैद कर लिए गए और औरंगजेब स्वयं बादशाह बन गया।

यशवंतसिंह दारा के पक्ष में थे। औरंगजेब अपने अन्य शत्रुओं का दमन करके दारा का दमन करने के लिए मेड़ता की ओर बढ़ा क्योंकि उन दिनों दारा उधर ही भटकता फिरता था। यशवंतसिंह की सेना दारा के साथ थी। औरंगजेब ने मारवाड़राज से कहलाया कि यदि आप चुप हो जाएं तो आपके सब अपराध क्षमा किए जाएंगे और साथ ही आपको गुज-रात की सूबेदारी भी दी जाएगी। यशवंतसिंह ने औरंगजेब के इस प्रस्ताव को मान लिया। ये दक्षिण की ओर भेज दिए गए। वहां ये शिवाजी से मिलकर काम करने लगे। कहते हैं, यशवंतसिंह के प्रबंध से ही सेनापति शाइस्ताखां मारा गया था। औरंगजेब यश-वंतसिंह के सब कुचक्र जानता था। तो भी शाइस्ता-खां के मारे जाने पर उसने यशवंतसिंह को प्रधान सेनापति बनाया। यह उसकी एक चाल थी। यशवंत-सिंह को उस समय उभाड़ना उसने उत्तम न समझा। परंतु दो वर्ष बीतने पर औरंगजेब ने यशवंतसिंह को पदच्युत करके वह पद आमेरराज जयसिंह को दे दिया। जयसिंह से अप्रसन्न होकर बादशाह ने पुनः प्रधान सेनापति का पद यशवंतसिंह को ही दिया था। प्रधान सेनापति का पद पाकर यशवंतसिंह मुअज्जम के साथ मिलकर षड्यंत्र करने लगे। इसकी खबर पाते ही बादशाह ने दिलेरखां को अपना प्रधान सेना-पति बनाया। प्रधान सेनापति के मार्ग में यशवंतसिंह

के द्वारा अनेक विघ्न पड़ने लगे। अतएव बादशाह ने इन्हें गुजरात का सूबेदार बनाकर भेज दिया। अनंतर बादशाह ने अफगानों का दमन करने के लिए इनको काबुल भेज दिया। वहीं हिंदूकश की तराई में सन् १६८१ में इनका परलोकवास हुआ।

(टाड्स राजस्थान)

(२) मारवाड़ के एक राजा। ये महाराज तख्त-सिंह के पुत्र थे। उनकी मृत्यु होने पर सन् १८७१ ई० में इनका जोधपुर के राज्यासन पर अभिषेक हुआ। इसी समय से निःशंक होकर ये मारवाड़ का शासन करने लगे। महाराज ने अपनी नीतिज्ञता, बुद्धिमत्ता आदि के कारण गवर्नमेंट को प्रसन्न किया। अपने राज्य की सुव्यवस्था की, सामंतों को प्रसन्न किया और अन्य राजकीय उत्तम प्रबंध किए।

सन् १८७५ ई० में जब सम्राट् प्रिंस आॅफ वेल्स के रूप में पधारे थे, उस समय भारत के बड़े-बड़े राजा कलकत्ते बुलाए गए थे। कलकत्ते ही में मारवाड़पति महाराज यशवंतसिंह को के० सी० एस० आई० की उपाधि मिली। इनको यह उपाधि स्वयं प्रिंस आॅफ वेल्स के करकमलों से मिली थी। दिल्ली के पहले दरबार में भी ये उपस्थित हुए थे और वहां इनका बड़ा आदर हुआ था। (टाड्स राजस्थान)

यशवंतसिंह बघेले—ये तिरवा जिला कानपुर के रहने वाले थे। इनका जन्म सं० १८५५ वि० में हुआ था। ये संस्कृत, हिंदी और फारसी के बड़े पंडित थे। इन्होंने नायिकाभेद का श्रृंगारशिरोमणि नामक ग्रंथ, अलंकार का भाषाभूषण और अश्वचिकित्सा का शालिहोत्र नामक तीन ग्रंथ लिखे हैं। सं० १८७१ में इनका स्वर्गवास हो गया। (शिवसिंहसरोज)

यशोदा—नंद की पत्नी। इन्हींने गोकुल में श्रीकृष्ण का पालन किया था। इनके पूर्वजन्म के विषय में अनेक प्रकार के मत प्रचलित हैं।

सती ने पति की निंदा सुनकर दक्ष यज्ञ में प्राण-त्याग किया। तदनंतर पुनः उनको पाने के लिए उनकी माता प्रसूति ने हिमालय में बड़ी कठिन तपस्या की थी। तपस्या से प्रसन्न होकर भगवती ने कहा—"मैं द्वापर के अंत में पृथिवी में उत्पन्न होऊंगी परंतु उत्पन्न होकर मैं आप लोगों की कन्या बनकर रह नहीं सकती।" यह कहकर भगवती अंतर्धान हो गई। दक्ष नंदरूप से और प्रसूति यशोदारूप से गोकुल में उत्पन्न हुए थे। (भागवतपुराण)

वसुश्रेष्ठ द्रोण और उसकी पत्नी धरा भगवान् का दर्शन करने के लिए गंधमादन पर्वत पर तपस्या करते थे। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् ने कहा—तुम लोग दूसरे जन्म में हमारा दर्शन कर सकोगे। वही द्रोण नंदरूप से और धरा यशोदारूप से उत्पन्न हुए थे। (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

यशोदानंद कवि—ये हिंदी के कवि थे। संवत् १८२८ वि० में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने एक ग्रंथ लिखा है, जिसका नाम 'बरवै नायिकाभेद' है। यह ग्रंथ बरवै छंदों में ही लिखा गया है।

यशोधर्म—उज्जयिनीपति विक्रमादित्य के नामांतर। (देखो विक्रमादित्य)।

यशोवती—काश्मीरराज दामोदर की स्त्री। दामोदर अपने पितृहंता श्रीकृष्ण को मारने के लिए कुरुक्षेत्र के पास युद्ध करने गए और इसी युद्ध में वे मारे गए। दामोदर के मारे जाने पर उनकी गर्भवती पत्नी यशोवती काश्मीर के राजसिंहासन पर आरूढ़ हुई। यशोवती ने काश्मीर का शासन बड़ी खूबी से किया था। इन्हीं-के पुत्र द्वितीय गोनर्द थे। (राजतरंगिणी)

यशोवर्मन्—कनौज के प्रसिद्ध राजा। विख्यात कवि भवभूति इन्हींके सभापंडित थे। इन्होंने गौड़ देश को जीतकर नर्मदा के किनारे कीर्तवीर्य के नगर को देखा था। वहां से ये मारवाड़ तथा थानेश्वर गए थे। यहां से कुरुक्षेत्र होकर अयोध्या होते अपनी राजधानी कनौज में उपस्थित हुए। काश्मीराधिपति ललितादित्य के साथ इनका युद्ध हुआ था और इस युद्ध में हारकर इन्होंने ललितादित्य से संधि कर ली। इन्हीं यशोवर्मा ने 'रामाभ्युदय' नामक काव्य लिखा है।

याज—कश्यप कुल का एक ऋषि। यमुना तट पर इसका आश्रम था। द्रुपद राजा ने इससे तथा इसके भाई उपयाज से द्रोण का विनाश करने के लिए एक पुत्र उत्पन्न करने हेतु यज्ञ कराया था। इस पुत्रकामेष्टि यज्ञ से द्रुपद को धृष्टद्युम्न नामक पुत्र हुआ। पांचालराज पुरुयशस् इन दोनों भाइयों का शिष्य था। (स्कंदपुराण)

याजलि—आयुर्वेदज्ञ एक प्राचीन ऋषि।

याज्ञवल्क्य—ब्रह्मज्ञ और धर्मशास्त्रकार एक ऋषि। इन्होंने जनक को ब्रह्मोपदेश दिया था। (देखो याज्ञवल्क्य-संहिता)

याज्ञवल्क्यसंहिता—इस संहिता के प्रवर्तक योगीश्वर याज्ञवल्क्य हैं। उन्होंने सामश्रवा आदि मुनियों से वर्णाश्रम-

धर्म, व्यवहारशास्त्र तथा प्रायश्चित आदि का उपदेश दिया है। राजर्षि जनक की राजसभा में भी एक याज्ञवल्क्य का परिचय पाया जाता है। याज्ञवल्क्य-संहिताकार तथा जनक के सभासद् दोनों याज्ञवल्क्य एक हैं या दो हैं, इस विषय में मतभेद है। कोई कहते हैं, जनक के सभासद् याज्ञवल्क्य ही इस धर्मसंहिता के प्रवर्तक हैं। कोई कहते हैं, उनके वंशधर दूसरे याज्ञवल्क्य ने इस संहिता को लिखा था। परंतु इस संहिता के प्रारंभ के दो श्लोकों से विदित होता है कि इस संहिता के कर्ता मिथिला के रहने वाले योगीश्वर याज्ञवल्क्य थे। अतएव जनक-राजसभा के याज्ञवल्क्य ही इस संहिता के कर्ता माने जा सकते हैं। इस संहिता में राजधर्म, व्यवहारविधि, दायभाग आदि विषयों में जो तत्त्व लिखे गए हैं उनको देखने से यह बात स्पष्ट ही मालूम होती है कि यह संहिता किसी आदर्श राजा के शासनकाल में लिखी गई होगी। इस संहिता में तीन अध्याय हैं और एक हजार बारह श्लोक हैं। पहले अध्याय में गर्भाधान, विवाह, यज्ञ, श्राद्ध और वर्णसंकर की उत्पत्ति लिखी है और भक्ष्याभक्ष्यप्रकरण, शुद्धिप्रकरण तथा अनेक प्रकार की पूजा का विधान भी वर्णित है। द्वितीय अध्याय में व्यवहारशास्त्र का विषय अर्थात् ऋण लेना, ऋण देना, प्रतिभू-जामिन प्रकरण, साक्षिप्रकरण, लेख्य-प्रकरण, दिव्यप्रकरण, दायभागप्रकरण, दंडपारुष्य-प्रकरण, साहसप्रकरण, संभूयसमुत्थानप्रकरण, स्त्री-संग्रहप्रकरण आदि अनेक विषय लिखे हैं। तीसरे अध्याय में अशौचप्रकरण, आपद्धर्मप्रकरण, यतिप्रकरण, अध्यात्मप्रकरण, प्रायश्चित्तप्रकरण आदि बातों का उल्लेख किया गया है। याज्ञवल्क्यसंहिता का दाय-भागप्रकरण आज भी कानून के रूप में माना जाता है। दायभाग के वचनों को लेकर विज्ञानेश्वर भट्टारक ने 'मिताक्षरा' और जीमूतवाहन ने 'दायभाग' नामक ग्रंथ का संकलन किया है। आज भी भारतवर्ष में पितृपितामह आदि स्वजन-परित्यक्त धन मिताक्षरा और दायभाग के अनुसार ही बांटा जाता है। इधर मिताक्षरा प्रचलित है और बंगदेश में दाय-भाग का आदर है। मनुसंहिता में उच्च वर्ण को निम्न वर्ण की कन्या से विवाह करने की आज्ञा है, परंतु याज्ञवल्क्य ने इसका निषेध किया है।

(भारतवर्षीय इतिहास)

यारी साहब—इनका पैतृक नाम यार मुहम्मद था। ये बाबरी पंथ के प्रसिद्ध संत बीरू साहब के शिष्य थे। इस पंथ के गाजीपुर (उत्तरप्रदेश) तथा दिल्ली में दो केंद्र थे। यारी साहब दिल्ली केंद्र से संबंधित थे। कहा जाता है कि इनका संबंध किसी शाही घराने से था। इन्होंने ऐश्वर्यमय जीवन का त्याग करके संत का जीवन वरण किया। डॉक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने १६८६ से १७२३ ई० के बीच इनकी उपस्थिति मानी है। इनके प्रसिद्ध पांच शिष्यों के नाम हैं—केशवदास, सूफी शाह, शेखनशाह, हसनमुहम्मद और बुल्ला साहब। बुल्ला साहब ने इनकी एक गद्दी भुरकुड़ा (गाजीपुर) में स्थापित की थी, जो कि आज भी वर्तमान है।

इनकी रचनाओं का एक संग्रह 'रत्नावली' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इनकी प्रेम-साधना सूफी संतों के अनुरूप है। इन्होंने योगमार्ग की श्रेष्ठता को स्वीकार किया है। इनकी भाषा पर अरबी-फारसी का प्रभाव है। इन्होंने कवित्त, सवैया, साखी, पद और झूलना आदि छंदों का प्रयोग किया है (डॉ० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल—हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय; आचार्य परशुराम चतुर्वेदी—उत्तरी भारत की संत परंपरा)।

यास्काचार्य—महामुनि यास्क निरुक्त के कर्ता हैं। इनका लिखा निरुक्त इस समय भी प्रचलित है। इस समय इन्हींका लिखा निरुक्त ही वेदों के अर्थ करने का विद्वानों के लिए प्रधान साधन है। पाश्चात्य पंडितों का अनुमान है कि ख्रीष्ट जन्म के पूर्व पांचवीं शताब्दी में महामुनि यास्क विद्यमान थे। निरुक्त को देखने से मालूम पड़ता है कि महामुनि यास्क के पहले भी अनेक निरुक्तकार हो चुके थे। उनमें शाकपूणि, ऊर्णनाभ, स्थूलोष्ठिवी आदि कतिपय निरुक्तकारों का उल्लेख महामुनि यास्क ने किया है।

युगराज कवि—ये हिंदी के कवि थे। इनकी कविता बहुत ही सरस तथा मनोहर है।

युगल कवि—ये हिंदी के कवि थे। इनका जन्म सं० १७५५ में हुआ था। इनके लिखे हुए पद अति अनूठे और ललित हैं।

युगलकिशोर भट्ट—ये महाराज कैथल के रहने वाले और हिंदी के कवि थे। इनका जन्म सं० १७९५ में हुआ था। ये मुहम्मदशाह बादशाह के बड़े मुसाहिबों में थे। सं० १८०३ वि० में इन्होंने अलंकारनिधि नामक एक अलंकार का ग्रंथ लिखा था। इसमें ९६ अलंकारों

के लक्षण तथा उनके उदाहरण बतलाए गए हैं। उसी ग्रंथ में इन्होंने अपना वृत्तांत दोहों में लिखा है—

ब्रह्मभट्ट हौं जाति में, निपट अधीन निदान।
राजा पद मोंको दयो, महमदशाह सुजान।।
चारि हमारी सभा में, कोविद कवि मतिचारु।
सदा रहत आनंद बढ़े, रस को करत विचारु।।
मिश्र रुद्रमणि विप्रवर, औ सुखलाल रसाल।
शतंजीव सुगुमान हैं, शोभित गुणनि विशाल।।

युगलप्रसाद चौबे—ये हिंदी के कवि थे। इन्होंने दोहावली नामक सरस और सुंदर पुस्तक लिखी है।
(शिवसिंहसरोज)

युधाजित्—(१) केकय देश के राजा अश्वपति का पुत्र और महारानी कैकेयी का भाई। यह अपने भानजे भरत तथा शत्रुघ्न को कैकय देश ले गया था और इसी समय उपयुक्त अवसर जानकर दशरथ ने राम का राज्याभिषेक किया।

(२) अवंति देश का एक राजा। इसकी पुत्री लीलावती इक्ष्वाकु-राजा सुदर्शन की पत्नी थी। अपने जामाता सुदर्शन से इसकी शत्रुता थी। इसलिए इसने उसे राजगद्दी से च्युत करके उसके भाई शत्रुजित् को राजगद्दी पर बैठाया था।

(३) एक यादववंशीय राजा। इसके पिता का नाम क्रोष्टु एवं इसकी माता का नाम माद्री था। अन्य पुराणों में इसे वृष्णि का पुत्र कहा गया है। इसके दो पुत्रों के नाम शिनि और अनमित्र थे। इसके वंशज श्वफल्क तथा चित्ररथ ने स्वतंत्र राजवंशों की स्थापना की थी। (भागवत)

युधामन्यु—ये पांचालदेश के राजा थे। महाभारत के युद्ध में इन्होंने पांडवों का पक्ष ग्रहण किया था। इनका ठीक नाम क्या था, इसका पता नहीं है। ये युद्धक्षेत्र में शत्रुओं के प्रति क्रोधातुर होकर युद्ध करते थे। इस कारण युधामन्यु नाम से इनकी प्रसिद्धि हो गई थी। इनके दूसरे भाई का नाम उत्तमौजा था। ये दोनों भाई बड़े वीर और साहसी थे।

युधिष्ठिर—(१) चंद्रवंशी सुप्रसिद्ध राजा। इनकी एक राजधानी इंद्रप्रस्थ में और दूसरी हस्तिनापुर में थी। पांडवों में ये सबसे बड़े थे। महाराज पांडु की ज्येष्ठ महारानी कुंती के गर्भ से युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन उत्पन्न हुए थे और दूसरी पत्नी माद्री के गर्भ से सहदेव और नकुल उत्पन्न हुए थे। दुर्वासाप्रदत्त वर के प्रभाव से कुंती ने धर्मराज के औरस से युधिष्ठिर को उत्पन्न किया था। (देखें कुंती)

युधिष्ठिर के जन्मसमय देववाणी हुई थी कि—यह पांडु का प्रथम पुत्र धार्मिकों में सर्वश्रेष्ठ विक्रमी, सत्यवादी, पृथ्वी का चक्रवर्ती, त्रिलोकविश्रुत, यशस्वी, तेजस्वी और व्रतपरायण तथा युधिष्ठिर नाम का होगा। अनंतर मुनि के शाप से राजा पांडु की मृत्यु हुई। पिता की मृत्यु होने पर पांचों पांडुपुत्र हस्तिनापुर आए और भीष्मपितामह की देखरेख में रहकर धृतराष्ट्र-पुत्रों के साथ लालित-पालित और शिक्षित होने लगे। थोड़े ही दिनों में पांडव और कौरवगण अस्त्रविद्याविशारद हो गए। युधिष्ठिर महारथी हुए। शिक्षा समाप्त होने पर धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को युवराज बनाया। पिता के इस व्यवहार से असंतुष्ट होकर दुर्योधन पांडवों का सौभाग्य नष्ट करने की चेष्टा करने लगा। दुःशासन, कर्ण और शकुनि के साथ सलाह करके उसने कुंती के साथ पांडवों को वारणावत नगर में भस्म करवा देने का प्रयत्न किया था, परंतु इसका समाचार पाकर पांडव सजग हो गए और वहां से भाग गए। वहां से भागकर पांडवगण कुछ दिनों तक एक सघन वन में रहे थे, तदनंतर द्रौपदी के स्वयंवर के समय दरिद्र ब्राह्मण का वेष बनाकर वे द्रुपद राज्य में उपस्थित हुए। निविड वन में रहने के समय भीम ने हिडिंब नामक राक्षस को मारकर उसकी भगिनी हिडिंबा को ब्याहा था। हिडिंबा के गर्भ से घटोत्कच नामक एक बड़ा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ था। द्रौपदी-स्वयंवर में अर्जुन ने लक्ष्यभेद करके द्रौपदी को पाया और माता की आज्ञा के अनुसार पांचों भाइयों ने द्रौपदी को ब्याह लिया। एक भाई दो दिन द्रौपदी के घर में रहता था परतु अज्ञातवास या वनवास के समय द्रौपदी के घर में कोई नहीं रहा।

धृतराष्ट्र आदि कौरवों ने सुना कि पांडवों का विवाह द्रौपदी के साथ हुआ है। उस समय विदुर ने धृतराष्ट्र से कहा कि पांडव बड़े प्रतापी हैं, श्रीकृष्ण उनके म ी हैं और उसपर भी इस समय पांचालराज द्रुपद के साथ उनका घनिष्ठ संबंध हो गया है। यदि इस समय उनको राज्य नहीं दिया जाएगा तो निःसंदेह युद्ध होगा और शीघ्र ही कौरववंश का नाश हो जाएगा। द्रोण और भीष्म ने विदुर की बातों का समर्थन किया था। यद्यपि कर्ण और दुर्योधन ने विदुर

की बातों पर आपत्ति की, तथापि परिणामदर्शी धृतराष्ट्र ने उन लोगों की बातों पर ध्यान न देकर विदुर के परामर्श को ग्रहण किया। धृतराष्ट्र की आज्ञा से विदुर रत्न, धन, संपत्ति लेकर द्रुपद और पांडवों के निकट गए और कुशलप्रश्न पूछकर उन्होंने रत्न, धन आदि उपहार में दिए। विदुर ने द्रुपद से कहा—धृतराष्ट्र और कौरव इस विवाह-संवाद को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए हैं। कौरव पांडवों को देखने के लिए अत्यंत उत्सुक हैं। उनकी इच्छा है कि पांडव हस्तिनापुर में आएं। द्रुपद की आज्ञा तथा श्रीकृष्ण के परामर्श से द्रौपदी और कुंती को साथ लेकर पांडवगण श्रीकृष्ण और विदुर के साथ हस्तिनापुर में उपस्थित हुए। वहां पहुंचकर पांडवों ने भीष्मपितामह, धृतराष्ट्र आदि बड़ों को नमस्कार किया। धृतराष्ट्र ने पांडवों से कहा—तुम लोग आधा राज्य लेकर खांडवप्रस्थ में जा करके रहो। ऐसा होने से दुर्योधन के साथ पुनः तुम लोगों का विवाद होने की संभावना न रहेगी। धृतराष्ट्र की आज्ञा सिर पर धारण करके पांडव खांडवप्रस्थ को चले गए। वहां जाकर पांडवों ने इंद्रप्रस्थ नामक एक सुंदर नगर बनाया। एक दिन नारद मुनि वहां आए और उन्होंने सुंद, उपसुंद की कथा सुनाकर द्रौपदी के लिए भाइयों में परस्पर विरोध न हो इसलिए एक नियम बना लेने के लिए उपदेश दिया।

नारद के सामने ही पांडवों ने प्रतिज्ञा की कि पांचों भाइयों में से एक जब द्रौपदी के पास रहेगा, तब दूसरा कोई वहां नहीं जा सकेगा। जो कोई इस नियम को भंग करेगा उसे ब्रह्मचारी रहकर बारह वर्ष तक वन में रहना पड़ेगा। युधिष्ठिर के शासनकाल में प्रजा बड़ी सुखी थी। उस समय की पृथ्वी सुखमयी और धन-धान्य से पूर्ण थी। अकस्मात् एक दिन वहां एक दुर्घटना हो गई। युधिष्ठिर के घर में अस्त्र-शस्त्र रखे रहते थे। अर्जुन अस्त्र लेने के लिए युधिष्ठिर के घर में सहसा चले गए। वहां द्रौपदी के साथ युधिष्ठिर बैठे थे। नियमभंग करने के कारण अर्जुन को बारह वर्ष के लिए वन को जाना पड़ा। युधिष्ठिर अर्जुन को वन में नहीं जाने देना चाहते थे। उन्होंने कहा—पिता के न रहने पर बड़ा भाई छोटे भाई के लिए पिता के तुल्य है ऐसी स्थिति में अर्जुन का गृहप्रवेश किसी प्रकार निंदित नहीं समझा जा सकता, परंतु अर्जुन विनीतभाव से युधिष्ठिर की आज्ञा के पालन में अपनी असमर्थता बतलाकर वन के लिए चल दिए। वन से अर्जुन के लौट आने पर युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ का आयोजन किया था। इस यज्ञ को करने से पहले दिग्विजय करने की आवश्यकता होती है। दिग्विजय के समय मगधराज जरासंध ने पांडवों की अधीनता स्वीकार नहीं की। अतएव वह कृष्ण की चतुरता से भीम के हाथों मारा गया। राजसूय यज्ञ में युधिष्ठिर का ऐश्वर्य और दबदबा देखकर दुर्योधन को बड़ी ईर्ष्या हुई। वह किस प्रकार पांडवों का नाश करेगा, इसके लिए वह शकुनि और कर्ण के साथ विचार करने लगा। अंत में, जुए में युधिष्ठिर को हराकर उनका अपमान करना निश्चित हुआ। धृतराष्ट्र की आज्ञा लेकर दुर्योधन ने जुआ खेलने के लिए युधिष्ठिर को बुलाया। विदुर ने युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिए मना किया था। परंतु युधिष्ठिर ने उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया। युधिष्ठिर और शकुनि का जुआ खेलना निश्चित हुआ। इस प्रकार दुर्योधन का प्रतिनिधि बनकर शकुनि जुआ खेलने लगा। युधिष्ठिर बाजी हारकर शकुनि के दास हुए। बाजी में युधिष्ठिर द्रौपदी को भी हार गए थे, अतः वह भी शकुनि की दासी हुई। केश पकड़कर दुःशासन द्रौपदी को राजसभा में खींच लाया। द्रौपदी के अपमान से धृतराष्ट्र के अंतःपुर में खलबली मच गई। धृतराष्ट्र के कानों तक इसकी खबर पहुंच गई। द्रौपदी सभा में लाई जाकर अपमानित की गई। दुर्योधन ने द्रौपदी को लक्ष्य करके अपनी जंघा का कपड़ा हटाया और संकेत से उसे बैठने के लिए कहा। भीम से यह नहीं सहा गया। वे उठना चाहते ही थे, परंतु युधिष्ठिर के कहने से शांत होकर बैठ गए।

वृद्ध महाराज धृतराष्ट्र ने द्रौपदी को अपने समीप बुलाकर बहुत समझाया-बुझाया। द्रौपदी के स्वामी तथा वह स्वयं महाराज की आज्ञा से दासत्व से मुक्त हुई। महाराज पांडवों के सामने अपने पुत्रों के दुर्व्यवहार के लिए दुःखित हुए और उन्होंने इन सब बातों को भूल जाने के लिए पांडवों से अनुरोध किया। पांडव भी द्रौपदी के साथ इंद्रप्रस्थ चले गए। तदनंतर दुर्योधन पांडवों की शक्ति, उनकी भावी उन्नति और उससे कौरवों की भावी विपत्ति की बातें समझाकर धृतराष्ट्र को युधिष्ठिर के विरुद्ध उभाड़ने लगा। अब की बार युधिष्ठिर के राज्य छीनने की भी

वह चेष्टा करेगा, यह भी उसने धृतराष्ट्र को समझाया। धृतराष्ट्र उसकी बातों में आ गया। पुन: जुआ खेलने के लिए युधिष्ठिर आमंत्रित किए गए। इस बार युधिष्ठिर राज्य, धन, रत्न आदि सभी हार गए। अंत की बाजी में हारकर पांडव स्त्री के साथ बारह वर्ष वन में रहने के लिए और एक वर्ष अज्ञात वास के लिए बाध्य हुए। वे दरिद्री के वेश में हस्तिनापुर से चले। वनवास के समय दुर्योधन के बहनोई जयद्रथ ने द्रौपदी को हर लिया था, परंतु भीम ने उन्हें मार्ग में जाकर पकड़ा और युद्ध में उन्हें परास्त करके अत्यंत अपमानित किया। अज्ञातवास का समय पांडवों ने मत्स्यराज्य के राजा विराट के यहां गुप्तरूप से रहकर बिताया था। विराट के यहां युधिष्ठिर अक्षक्रीड़ा-निपुण ब्राह्मण के वेश में, भीम रसोइया के रूप में, अर्जुन नपुंसक के रूप में, नकुल अश्वचिकित्सक के रूप में, सहदेव ग्वाला के रूप में और द्रौपदी सैरंध्री के रूप में रहती थी।

सैरंध्री रूपिणी द्रौपदी विराट के साले तथा उसके प्रधान सेनापति कीचक द्वारा अपमानित हुई थी, अतएव भीम ने कीचक को विराट की नाट्यशाला में मार डाला। विराट के पराक्रमी सेनापति कीचक के मारे जाने के संवाद के प्रसिद्ध होते ही दुर्योधन ने विराट के गोगृह पर आक्रमण करने के लिए त्रिगर्तराज सुशर्मा को सेना के साथ भेजा। सुशर्मा विराट के दक्षिण गोगृह पर आक्रमण करके गौओं को ले जा रहा है, विराट ने गोपाध्यक्ष से यह संवाद सुनकर स्वयं सुशर्मा पर आक्रमण किया। सुशर्मा विराट को परास्त करके अपने रथ पर बैठाकर अपने नगर की ओर चला। यह देखकर युधिष्ठिर ने भीम को विराट के उद्धार के लिए भेजा। भीम ने विराट को छुड़ाकर सुशर्मा को कैद कर लिया। इस उपकार के बदले राजा विराट युधिष्ठिर और भीम को मत्स्यराज्य देना चाहते थे, परंतु युधिष्ठिर ने नहीं लिया।

इधर दुर्योधन कर्ण, भीष्म आदि वीरों के साथ विराट के उत्तर गोगृह पर आक्रमण करके ६० हजार गौ लेकर जा रहा था। यह संवाद पाकर विराट ने अपने पुत्र उत्तर को कौरव सेना का सामना करने के लिए भेजा। परंतु विराट का सारथि सुशर्मा के साथ युद्ध में मारा गया था अतएव सैरंध्री और विराटकन्या उत्तरा के परामर्श से उत्तर ने बृहन्नला रूपी अर्जुन को अपना सारथि बनाया। कौरव सेना को देखते ही उत्तर का हृदय कांप उठा। उस समय अपना परिचय देकर अर्जुन स्वयं रथी हुए और उत्तर को सारथि बनाकर उन्होंने कौरव सेना में रथ ले चलने की आज्ञा दी। अर्जुन ने कुरुवीरों को हराकर विराट की गौओं का उद्धार किया। दुर्योधन आदि सभीने अर्जुन को पहचान लिया। अब प्रश्न यह हुआ कि अर्जुन के अज्ञातवास की अवधि पूरी हुई है कि नहीं ? परंतु भीष्म ने हिसाब लगाकर बता दिया कि नहीं अज्ञातवास की अवधि को पूरे हुए पांच महीने छ: दिन हो गए। अर्जुन के कहने से उत्तर ने उन्हें सर्वत्र प्रसिद्ध कर दिया कि हमने ही युद्ध में विजय पाई है। तदनंतर पांडवों के साथ विराट का परिचय हुआ।

राजा विराट की कन्या उत्तरा अर्जुनपुत्र अभिमन्यु को ब्याही गई। इस प्रकार पांचालराज के समान राजा विराट भी पांडवों के एक बड़े सहायक हो गए। पांडवों ने पांचालराज के पुरोहित को दूत बनाकर धृतराष्ट्र के पास भेजा। कौरव सभा में जाकर दूत ने कहा—पांडव युद्ध करना नहीं चाहते, वे बिना हिंसा किए अपने राज्य का आधा भाग चाहते हैं। परंतु दुर्योधन ने साफ ही कह दिया कि बिना युद्ध के सूई की नोक के बराबर भी भूमि मैं नहीं दूंगा। दोनों ओर से रणभेरी बजने लगी। कुरुक्षेत्र के महायुद्ध का आरंभ हो गया। युधिष्ठिर ने बड़ी वीरता से राजा शल्य को पराजित किया और इसी युद्ध में एक बार असत्य भी कहा था। (महाभारत)

(२) काश्मीर के राजा। इनके पिता का नाम नरेन्द्रादित्य था। पिता की मृत्यु के अनंतर युधिष्ठिर का काश्मीर के सिंहासन पर अभिषेक हुआ। कुछ दिनों तक तो इन्होंने पूर्वप्रचलित रीति के अनुसार राज्यशासन किया। परंतु बाद में ये ऐश्वर्य के मद से मत्त होकर मनमाने काम करने लगे। उनकी सभी बातों में विपरीतता पाई जाने लगी। बुद्धिमानों का आदर करना वे भूल गए, अनुचरों की सेवा समझने की बुद्धि उनकी जाती रही। सभासद् पंडितों ने अपने तुल्य मूर्खों को भी सम्मानित होते देखा तब वे राजसभा छोड़कर चले गए। अवसर पाकर राजसभा में धूर्त घुस गए और राजा को उलटा-सीधा समझाकर अपना काम साधने लगे। राजा के इन व्यवहारों से अनुजीवीगण अप्रसन्न हो गए। थोड़े ही दिनों में राज्य में उच्छृंखलता देखकर मंत्रीगण राजा से विरोधाचरण करने लगे। मंत्रियों ने मिलकर राजा

को पदच्युत करने के लिए षड्यंत्र करना प्रारंभ किया। आस-पास के राजा भी राज्यलोभ से मंत्रियों के षड्-यंत्र में सम्मिलित हुए। इन सब बातों को जानकर राजा युधिष्ठिर बहुत ही डर गए, उन्होंने शांति स्थापित करने के लिए बहुत प्रयत्न किया परंतु वे सफल नहीं हो सके। इस समय यदि मंत्री चाहते तो अवश्य ही शांति स्थापित हो जाती, परंतु मंत्रियों को इस बात का बड़ा भय था कि युधिष्ठिर के अधिकारारूढ़ रह जाने से हम लोगों पर बहुत बुरी बीतेगी, क्योंकि हम लोगों के षड्यंत्र की बात इन्हें मालूम हो गई है। अनंतर सेना संग्रह करके मंत्रियों ने राजभवन को घेर लिया और राजा से कहला भेजा कि आप शीघ्र ही राज्य छोड़कर यहां से चले जाएं, तभी कल्याण है। राजा ने शीघ्र ही राज्य छोड़कर प्रस्थान किया। काश्मीर छोड़कर युधिष्ठिर पहाड़ी मार्ग से चले। मार्ग में उनको बड़े-बड़े कष्ट भोगने पड़े। रानियों के कष्ट देखकर पक्षी भी रोने लगे। अनंतर युधिष्ठिर ने अपने पूर्वमित्र एक राजा का आश्रय ग्रहण किया। युधिष्ठिर ने ३४ वर्ष राज्य किया था। (राजतरंगिणी)

(३) काश्मीर के राजा। ये द्वितीय युधिष्ठिर के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये राजा प्रवरसेन के पुत्र थे। इन्होंने २१ वर्ष ३ महीने तक राज्य किया था। (राजतरंगिणी)

युयुत्सु—महाराज धृतराष्ट्र द्वारा वैश्य स्त्री में उत्पन्न एक 'करण' पुत्र। 'महाभारत' में मिश्र जाति से उत्पन्न संतति को 'करण' कहा गया है। कौरववंशीय होने के बावजूद इसकी सद्भावना पांडवों के प्रति थी। दुर्योधन द्वारा कपट से भीमसेन को विषयुक्त भोजन खिलाए जाने की पूर्वसूचना इसने पांडवों को दी थी। भारत-युद्ध में यह पहले कौरवों के पक्ष में रहा और बाद में पांडवों के पक्ष में चला गया। यह बड़ा शूरवीर और धनुर्धर था। भारत-युद्ध की महा विनाशलीला में जो बच गए थे उनमें से एक यह भी था। युद्धोपरांत युधिष्ठिर ने इसे धृतराष्ट्र की सेवा में नियुक्त किया था। दो बार पांडवों ने इसे हस्तिनापुर की रक्षा का भार सौंपा था। धृतराष्ट्र का पुत्र होने पर भी युधिष्ठिर का इसपर विश्वास एवं प्रेम था। (महाभारत)

युयुधान—श्रीकृष्ण के सारथि सात्यकि का दूसरा नाम। पारिजातहरण के समय ये देवलोक में गए थे और इन्होंने देवशत्रुओं को परास्त किया था। कुरुक्षेत्र के युद्ध में भी इनकी वीरता बड़ी यशस्विनी हुई थी।

युवनाश्व—सूर्यवंशी एक राजा। इनके पिता का नाम प्रसेनजित् और माता का नाम गौरी था। प्रसिद्ध राजा मांधाता इन्हींके पुत्र थे।

योगवासिष्ठ—रामचरितात्मक एक दर्शनग्रंथ। शास्त्रकारों ने लिखा है कि वाल्मीकीय रामायण पढ़ने का पूरा फल बिना योगवासिष्ठ रामायण पढ़े नहीं होता। क्योंकि योगवासिष्ठ रामायण में रामचंद्रजी के चरित के साथ ही साथ निगूढ़ दर्शनतत्त्व प्रकाशित हुआ है। वैराग्यप्रकरण, मुमुक्षुप्रकरण, उत्पत्तिप्रकरण, स्थितिप्रकरण, उपशमप्रकरण और निर्वाणप्रकरण आदि भागों में यह ग्रंथ विभक्त है। इसमें मुक्ति का स्वरूप, मुक्ति प्राप्ति के उपाय, मुमुक्षुओं के प्रति उपदेश और अवतारतत्त्व आदि विषय बड़े विशदभाव से वर्णित हैं। वेदांत के गंभीर तत्त्व सरल भाषा तथा आलंकारिक शैली के द्वारा इस ग्रंथ में वर्णित हैं। इस ग्रंथ के प्रधान वक्ता वसिष्ठजी हैं और जिज्ञासु हैं श्रीरामचंद्र। श्रीराम पूछते हैं और वसिष्ठजी उनको दार्शनिक तत्त्व समझाते हैं। वैराग्यप्रकरण में धन, ऐश्वर्य, अहंकार आदि की अनित्यता दिखलाई गई है। मुमुक्षुप्रकरण से वसिष्ठजी ने उत्तर देना प्रारंभ किया है।

यौधेय—प्रसिद्ध पांडव राजा युधिष्ठिर के पुत्र का नाम।

यौयुधान (यौयुधानि)—यादव-राजा सात्यकि का पुत्र। 'महाभारत' के कुछ प्रकाशित संस्करणों में इसकी माता का नाम सरस्वती बताया गया है, जो युक्तिसंगत नहीं है। युधिष्ठिर ने इसे सरस्वती के तटवर्ती राज्य इंद्रप्रस्थ का राजा बनाया था।

र

रक्त—स्वायंभुव मन्वंतर का एक अति पराक्रमी असुर। यह महिषासुर का पुत्र था। इसके बल और अतिबल नामक दो पुत्र थे। यह अत्यंत बलवती सेना से युक्त था और उससे इसने इंद्र पर भी विजय प्राप्त की। इसकी सेना में धूम्राक्ष आदि तेंतीस सेनापति थे, जिनमें प्रत्येक के अंतर्गत एक-एक हजार अक्षौहिणी सेना थी। (स्कंदपुराण)

रक्तबीज—स्वायंभुव मन्वंतर का एक असुर। इसने रुद्र की तपस्या करके यह वरदान प्राप्त किया था कि उसके शरीर की जितनी भी बूंदें धरती पर गिरेंगी, उनसे उसीके बल-विक्रम के उतने ही राक्षस उत्पन्न होंगे। इस वरदान का फल उसे देवी चामुंडा के साथ शुंभ-निशुंभ की ओर से लड़ते हुए मिला था। एक बार शुंभ-निशुंभ ने इसे दूत बनाकर देवी चामुंडा के पास भेजा था और उससे कहलाया था कि वह (देवी) त्रिलोक वैभव के स्वामी शुंभ-निशुंभ की पत्नी बनने का प्रस्ताव स्वीकार कर ले, अन्यथा युद्ध में उसकी पराजय होगी। देवी के इन्कार करने पर और उसका युद्ध के लिए आह्वान करने पर दोनों ओर से भयंकर संग्राम हुआ। देवी के साथ युद्ध करते हुए उसके रक्त से असंख्य राक्षस उत्पन्न होते गए। अंत में देवी ने उसका इस प्रकार वध किया कि उसके शरीर से एक भी बूंद रक्त की नहीं गिरी।

(मार्कंण्डेय पुराण, दुर्गासप्तशती)

रघु—सूर्यवंशी प्रसिद्ध राजा। अयोध्या में इनकी राजधानी थी। इन्हींके नामानुसार इनका वंश रघुवंश नाम से प्रसिद्ध है। इनके पिता का नाम महाराज दिलीप और पुत्र का नाम अज था। अज के पुत्र दशरथ और दशरथ के पुत्र रामचंद्र थे। महाराज दिलीप ने अपने कुलगुरु वसिष्ठ की आज्ञा से कामधेनु की पुत्री नंदिनी को प्रसन्न करके रघु को पाया था। महाराज दिलीप ने एक यज्ञ किया था। उस यज्ञ के अश्व की रक्षा का भार रघु को दिया गया। देवराज इंद्र उस अश्व को चुराकर ले गए। रघु और इंद्र में युद्ध होने लगा। रघु ने इंद्र को परास्त करके यज्ञीय अश्व छुड़ा लिया। राज्य मिलने पर महाराज रघु अपने राज्य में सर्वत्र शांति स्थापित करके दिग्विजय के लिए बाहर निकले। चारों दिशाओं को जीतकर रघु जो प्रचुर धन ले आए थे उससे विश्वजित् नामक एक यज्ञ किया और सब धन ब्राह्मणों को दक्षिणा में दे डाला। (रघुवंश)

रघुनन्दन भट्टाचार्य—बंगीय प्रसिद्ध स्मार्त पंडित। ये ख्रीष्टीय १५वीं शताब्दी में नवद्वीप में उत्पन्न हुए थे। इनकी उत्पत्ति का समय-निरूपण करना महाकठिन है। इस समय का बंगीय हिंदू समाज इन्हींके लिखे धर्मशास्त्र के अनुसार परिचालित होता है। जिस समय ये उत्पन्न हुए थे उस समय हिंदू समाज की बडी शोच्य दशा थी। मुसलमानों के साथ से हिंदूओं का आचार-व्यवहार नष्ट-भ्रष्ट हो रहा था। इन्हीं बातों को देखकर रघुनंदन भट्टाचार्य ने हिंदू समाज का संस्कार करने की इच्छा से 'अष्टाविंशतितत्त्व' नामक एक स्मृति-ग्रंथ का प्रणयन किया। उस समय प्रचलित हिंदू धर्म के साथ रघुनंदन की स्मृति का विरोध होने के कारण अनेक स्थानों से पंडितगण रघुनंदन से शास्त्रार्थ करने आए थे। शास्त्रार्थ में रघुनंदन ने विजय पाई। तभीसे दूर-दूर के विद्यार्थी उनके यहां आने लगे और वहां शिक्षा पाकर स्मृतिशास्त्र का प्रचार करने लगे। थोड़े ही दिनों में समूचे बंगाल में रघुनंदन की स्मृति का आदर होने लगा, और उसीके अनुसार हिंदू समाज परिचालित होने लगा। उसी समय से रघुनंदन स्मार्त भट्टाचार्य अथवा स्मार्त रघुनंदन के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनके पिता का नाम हरिहर भट्टाचार्य था। इनके पिता स्मृतिशास्त्र के पंडित थे और नवद्वीप में पढ़ाते थे। उन्होंने २५ वर्ष परिश्रम करके अपना स्मृति-ग्रंथ लिखा था। इस ग्रंथ के लिखने के थोड़े दिनों के बाद पिंडदान करने के लिए रघुनंदन गयां गए थे। इन्होंने जीवनभर शास्त्रों का अनुशीलन किया था।

रघुनाथ कवि—(१) ये काशी के रहने वाले बंदीजन थे और हिंदी के कवि थे। इनका जन्म सं० १८०२ वि०

में हुआ था। बरिबंडसिंह नरेश के दरबारी कवि थे। इनकी गणना हिंदी साहित्य के आचार्यों में होती है। इनके लिखे ग्रंथ बड़े मनोहर हैं। वे ये हैं—(१) रसिकमोहन, (२) जगमोहन, (३) काव्यकलाधर और (४) इश्कमहोत्सव।

(२) रघुनाथ इनका लेखकीय नाम था। इनका नाम पंडित शिवदीन था। ये रसूलाबाद के रहने वाले ब्राह्मण थे। इनके लिखे भाषामहिम्न आदि कई छोटे-छोटे ग्रंथ हैं।

(३) ये कवीश्वर राजा अमरसिंह जोधपुर के दरबार में थे। इनका जन्म सं० १६२५ वि० में हुआ था। इनका पूरा नाम रघुनाथराय था।

(४) इनका पूरा नाम महंत रघुनाथदास था। ये भक्त-कवि अयोध्या में रहते थे। ये ब्राह्मण थे और पैंतपुर जिला सीतापुर के निवासी थे। तदनंतर संसार से चित्त उपराम होने के कारण अयोध्या में रहने लगे। इन्होंने रामचंद्र की स्तुति में अनेक कविताएं तथा दोहे लिखे हैं।

रघुनाथदास—जिस समय चैतन्यदेव बंगाल में प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे थे उसी समय हरिदास और गोवर्द्धनदास नामक दो व्यक्ति गौड़ के नवाब के यहां से सप्तग्राम ठेके मे लिए हुए थे। उससे इन्हें बहुत आमदनी थी। गोवर्द्धनदास के पुत्र का नाम रघुनाथ था। रघुनाथ ने पांच वर्ष की अवस्था में विद्यारंभ किया था और सात वर्ष की अवस्था से वह पढ़ने के लिए गुरु जी के यहां जाने लगा।

चांदपुर नामक एक छोटा पुरवा सप्तग्राम के अंतर्गत था। वहीं इनके कुलपुरोहित बलराम आचार्य रहते थे। रघुनाथ इन्हीं बलराम आचार्य से विद्याभ्यास करते थे। रघुनाथ की अवस्था १२ वर्ष की थी। उसी समय हरिदास नामक एक यवन, जिसने हिंदू धर्म के महामंत्र को ग्रहण किया था, काजियों की मार से व्याकुल होकर बलराम के आश्रम में आया। बलराम का आश्रय पाकर हरिदास निर्विघ्न साधना करने लगा। हरिदास भगवद्भजन में इतना विभोर हो जाता था कि लोग उसे पागल समझते थे।

आचार्य के यहां जितने लड़के पढ़ने आते थे, प्रायः वे हरिदास को पागल समझकर उसपर धूल-कीचड़ फेंका करते थे। परंतु हरिदास के मुख से भगवान् का नाम सुनकर रघुनाथ के हृदय में एक विलक्षण भाव उत्पन्न होता था। रघुनाथ का चित्त अब पढ़ने-लिखने में नहीं लगता था। आचार्य महाशय के न रहने पर रघुनाथ हरिदास के साथ भगवत्कीर्तन करता था। गोवर्द्धनदास के मित्र तथा आत्मीय स्वजन-संबंधी रघुनाथ की ऐसी दशा देखकर आपस में चर्चा करने लगे। वे कहने लगे—देखो न यह पाखंडी मुसलमान एक भले मानस के वंश को पागल बना रहा है। इन लोगों के दिक करने से हरिदास सप्तग्राम छोड़कर शांतिपुर जाकर रहने लगे।

हरिदास ने सप्तग्राम छोड़ तो दिया, परंतु उससे रघुनाथ के व्यवहार में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ। वयोवृद्धि के साथ-साथ उसमें धर्मभाव भी प्रबल होता जाता था। बाल्यकाल से ही सांसारिक सुखों की ओर उसका झुकाव नहीं था।

इस समय चैतन्यदेव शांतिपुर में रहते थे। रघुनाथ भी वहां जाकर साधुसेवा और सहवास से दिन काटने लगे। रघुनाथ भगवान् से प्रार्थना करता था कि प्रभो, मैं किस प्रकार इस संसार से मुक्त होकर साधुसेवा में दिन बिताऊंगा। रघुनाथ के हृदय का भाव जानकर चैतन्यदेव ने शांतिपुर छोड़ने के समय रघुनाथ को उपदेश दिया।

रघुनाथ चैतन्यदेव से गूढ़ स्नेहपूर्ण उपदेश पाकर अपने-आपको भाग्यवान् समझने लगा और यत्नपूर्वक उनकी आज्ञा का पालन करने लगा। तदनंतर रघुनाथ घर जाकर घर का कामकाज करने लगा। एक दिन रघुनाथ ने सुना कि कलकत्ता से चार कोस पर नित्यानंद हरिनाम का प्रचार कर रहे हैं। रघुनाथ ने वहां जाने के लिए पिता से आज्ञा मांगी। पिता ने आज्ञा दे दी। रघुनाथ वहां गया और जाकर प्रणाम किया तथा अपनी इष्टसिद्धि के लिए प्रार्थना भी की। प्रसन्न होकर नित्यानंद ने आशीर्वाद दिया। रघुनाथ अपने घर चला आया।

वहां से आकर रघुनाथ ने भगवत्कीर्तन में मन लगाया। एक दिन आधी रात को घर से निकलकर अनेक कष्ट सहता हुआ वह श्रीक्षेत्र में चैतन्यदेव के समीप पहुंचा। वहां इसके सद्व्यवहार से चैतन्यदेव बड़े संतुष्ट हुए। चैतन्यदेव के तिरोधान के बाद रघुनाथ वृंदावन चला आया था। इन्होंने कई-एक ग्रंथ भी लिखे हैं जिनका वैष्णव समाज में बड़ा आदर है। वे पुस्तकें ये हैं—

(१) उपदेशामृत, (२) मनःशिक्षा, (३) श्री-

चैतन्यस्तवकल्पवृक्ष, (४) विलापकुसुमांजलि और (५) श्रीप्रेमाम्बुजमकरन्दाख्य स्तवराज।

रघुनाथशिरोमणि—ये नवद्वीप के विख्यात नैयायिक थे। ख्रीष्टीय १५वीं शताब्दी में नवद्वीप में इनका जन्म हुआ था। 'वैदिक संवदिनी' नामक एक ग्रंथ में लिखा है कि इनका जन्म श्रीहट्ट में हुआ था और इनके ज्येष्ठ भाई रघुपति का ब्याह उसी जिले के एक राजा की कन्या रत्नवती से हुआ था। इनकी माता का नाम सीतादेवी था। रघुनाथ के पिता अत्यंत दरिद्र थे। इनकी माता भीख मांगकर इनका पालन बड़े कष्ट से करती थी। पांच वर्ष की अवस्था में ये पढ़ने के लिए गुरुगृह में गए। दरिद्रता से व्याकुल होकर इनकी माता ने अपने ज्येष्ठ पुत्र का ब्याह राजा के यहां कर दिया। वह राजा कुल में न्यून था, इस कारण अन्यान्य ब्राह्मण पंडित उनकी निंदा करने लगे। यह देखकर सीतादेवी रघुनाथ को लेकर नवद्वीप चली गई। उस समय नवद्वीप सरस्वती का क्रीडाक्षेत्र था। नवद्वीप की प्रसिद्धि चारों ओर हो गई थी। अनेक स्थानों से आ-आकर, लोग वहां से अध्ययन करके, पंडित होकर जाते थे। वहां जाकर प्रसिद्ध वासुदेव सार्वभौम के यहां ठहरकर रघुनाथ उन्हींके आश्रम में पढ़ने लगे। सार्वभौम महाशय रघुनाथ की प्रतिभा देखकर विस्मित हो गए। थोड़े ही दिनों में रघुनाथ ने न्यायशास्त्र में प्रगाढ़ व्युत्पत्ति प्राप्त कर ली। इस समय रघुनाथ अपने अध्यापक वासुदेवकृत 'सार्वभौम निरुक्ति', और गंगेशोपाध्यायकृत 'चितामणि' पढ़ते थे। रघुनाथ इन ग्रंथों के अध्ययन के समय उनमें अनेक भूलें बतलाने लगे। वासुदेव अपने विद्यार्थी की बुद्धि की प्रखरता देखकर अवाक् रह गए। रघुनाथ उन ग्रंथों का भ्रम बताकर अपने सिद्धांत का छात्रावस्था में ही प्रचार करने लगे। इससे नवद्वीप के पंडित-समाज में हड़-बड़ी उपस्थित हुई। श्रीचैतन्य और रघुनाथ दोनों सहाध्यायी थे। वे दोनों बड़े बुद्धिमान् और आपस में मित्र थे। सब मिलाकर रघुनाथशिरोमणि ने ३८ ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें ये प्रसिद्ध हैं—

व्युत्पत्तिवाद, लीलावतीटीका, क्षणभंगुरवाद, तत्त्व-चिंतामणिदीधिति, पदार्थमंडल, प्रामाण वाद, ब्रह्म-सूत्रवृत्ति, अद्वैतेश्वरवाद, अवयवग्रंथ, आकांक्षावाद, केवलव्यतिरेकी, पक्षता, आख्यातवाद, न्यायकुसुमांजलि-टीका। ये षोडश शताब्दी के मध्यभाग में परलोक-वासी हुए।

रघुराजसिंह—ये बांधवगढ़ के महाराज बघेल क्षत्रिय थे। ये महाराज बड़े कवि थे। श्रीमद्भागवत का इन्होंने अनेक छंदों में अनुवाद किया है। (शिवसिंहसरोज)

रङ्गचार्लू—इनका पूरा नाम चेटिपनियम वीरवल्लि रंग-चार्लू सी० आई० ई० था। इनका जन्म मद्रास के चिंलेपट जिला में सन् १८३१ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम चेटिपनियम राघव चेटियाट था। ये चिंलेपट की कलक्टरी में एक क्लर्क थे। बाल्यकाल में इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी परंतु पढ़ने-लिखने में इनका मन बहुत कम लगता था। इसी कारण मद्रास में हाईस्कूल की पढ़ाई समाप्त करके ये नौकरी करने लगे। वहां बहुत दिनों तक काम करके ये रेलवे-विभाग में गए। तदनंतर सन् १८६४ ई० में कालि-कट की डिपुटी कलक्टर का पद इन्हें मिला। इसी समय महीशूर राज्य की दशा अत्यंत शोच्य थी। पदच्युत राजा कृष्णराय उदियाट ने एक पोष्य पुत्र ग्रहण किया था। भारत गवर्नमेंट ने इसी पोष्य पुत्र को राज्यगद्दी पर बैठाया और इसी समय यह निश्चित हुआ कि १८ वर्ष की अवस्था में इन्हें राज्य का भार दिया जाएगा। गवर्नमेंट की ओर से रंगचार्लू वहां के कंट्रोलर (प्रबंधकर्त्ता) बनाए गए। इस पद पर रह-कर इन्होंने अनेक राजकीय बातों में सुधार किया। राज्य के नाशकर्ता स्वार्थियों को इन्होंने निकाल बाहर कर दिया। सन् १८७४ ई० में इन्होंने 'महीशूर में अंग्रेजशासन' नामक एक छोटी-सी पुस्तक अंग्रेजी में लिखी और उसे इंग्लैंड में प्रकाशित कराया। इससे रंगचार्लू की बड़ी प्रसिद्धि हुई। राज्य के प्रबंध में अनेक सुधार करने के कारण सरकार से इन्हें सी० आई० ई० की उपाधि मिली। सन् १८८१ ई० में ये महीशूर के दीवान नियत हुए। सन् १८८२ ई० में कठिन रोग के कारण इनकी मृत्यु हुई।

रज—एक राजकुमार। ये भरतवंशी विराज के पुत्र थे।

रजनी—यह रैवत की पुत्री और वैवस्वत की पत्नी थी।

रजि—एक प्राचीन राजा। विष्णुपुराण में लिखा है कि एक समय देवासुर-संग्राम हुआ। देवों ने ब्रह्मा के पास जाकर पूछा कि इस देवासुर संग्राम में कौन पक्ष विजयी होगा। ब्रह्मा ने उत्तर दिया कि जिस पक्ष का नेता राजा रजि होगा। दैत्यगण राजा रजि के पास सहायता के लिए उपस्थित हुए। रजि ने कहा—मैं सहा-यता देने को प्रस्तुत हूं परंतु देवताओं के परास्त होने पर यदि मुझको इंद्र का पद देना तुम लोग स्वीकार

करो। दैत्यों ने कहा कि हम लोग सदा सत्य बोलते हैं। हमारे इंद्र प्रह्लाद हैं। उन्हींके लिए हम लोग उद्योग करते हैं। अतएव आपकी बातों को हम स्वीकार नहीं कर सकते। यह कहकर दैत्य चले गए। देवताओं ने आकर उनसे सहायता मांगी। रजि ने उन लोगों से भी वही कहा। युद्ध में जाकर रजि ने दैत्यों का विनाश किया। तदनंतर इंद्र आए और उनके पैरों पर पडकर उन्हें प्रसन्न किया। रजि उनकी बातों से प्रसन्न हो गए और इंद्र को ही इंद्र-पद पर रहने दिया। (विष्णुपुराण)

रणजीतसिंह—पंजाब के प्रसिद्ध भूतपूर्व महाराज। पंजाब-केसरी महाराज रणजीतसिंह का जन्म सन् १७८० ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम महासिंह और माता का नाम मलवाई था। बाल्यावस्था में ही चेचक निकलने के कारण रणजीतसिंह की एक आंख मारी गई थी। सन् १७८५ ई० में रणजीतसिंह का ब्याह महताबकुंवरि नाम की एक राजकुमारी के साथ हुआ। रणजीतसिंह के पिता महासिंह ने बड़े समारोह से राजकुमार का विवाह संपन्न किया। सन् १७९२ ई० में महासिंह का परलोकवास हुआ। बारह वर्ष की अवस्था में रणजीतसिंह अपने पिता के स्थान में सरदार के पद पर अभिषिक्त हुए। ये नाममात्र के ही लिए सरदार हुए। राज्य का शासन इनकी माता तथा मंत्री लखपतराय मिलकर करते थे। पिता के मरने पर माता के लाड़-चाव से रणजीतसिंह ने पढ़ने की ओर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया। मृगया आदि व्यसन में ही इनका समय जाता था। १७ वर्ष की अवस्था में रणजीतसिंह ने राज्यशासन का भार अपने हाथ में ले लिया और मंत्रिपद पर अपने मामा दलसिंह को रखा। इनकी माता का चरित्र भूतपूर्व मंत्री लखपतराय के संबंध से कलंकित हो गया था। नवीन मंत्री दलसिंह ने केतस के युद्ध में लखपतराय को मार डाला, परंतु इससे राजमाता का चरित्र शुद्ध नहीं हुआ। उसके मारे जाने पर राजमाता का कुत्सित संबंध लायक मिश्र के साथ हो गया। यह जानकर रणजीतसिंह ने माता का सिर काट डाला। पहले तो लायक मिश्र भाग गया था परंतु बाद में वह भी पकड़ा और मारा गया।

रणजीतसिंह का सौभाग्य-सूर्य दिनोदिन बढ़ने लगा। सन् १७९९ ई० में रणजीतसिंह ने लाहौर पर अधिकार कर लिया। सन् १८०० ई० में काश्मीर के अंतर्गत जम्मू को जीतने के लिए ये गए। रणजीतसिंह के जम्मू के समीप पहुंच जाने पर वहां के राजा ने २० हजार रुपये और हाथी रणजीतसिंह को उपहार में दिए। रणजीतसिंह जम्मूराज को खिल्लत देकर चले आए। तदनंतर इन्होंने स्यालकोट और दिलावर पर अधिकार कर लिया। सन् १८०१ ई० में रणजीतसिंह ने बड़े समारोह से दरबार किया और इन्होंने 'महाराज' की उपाधि ग्रहण की। इस दरबार में सभी सामंत, राजा तथा सरदार उपस्थित थे। शास्त्रानुसार रणजीतसिंह का महाराज-पद पर अभिषेक हुआ था। लाहौर में टकसाल खड़ा हुआ।

अभिषेक के दिन से रणजीतसिंह के नाम से रुपये ढलने लगे। उन्होंने एक सिख-सरदार की कन्या को ब्याहा था। इस ब्याह से रणजीतसिंह को सन् १८०२ में एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र के जन्मोपलक्ष्य में लाहौर में बहुत दिनों तक उत्सव हुआ था। दीन-दुखियों को प्रचुर धन दिया गया। प्रत्येक सिपाही को एकलड़ा सोने का हार दिया गया। तदनंतर महाराज रणजीतसिंह मोरान नाम की एक रूपवती मुसलमान युवती के प्रेम में फंस गए। इस प्रेम में फंसने के कारण वे कुछ दिनों के लिए राजकार्य भूल गए। पुनः उस मुसलमान स्त्री के साथ मुसलमानी रीति के अनुसार रणजीतसिंह का ब्याह हुआ। उस मुसलमान स्त्री ने बहुत शीघ्र ही महाराज पर अपना अधिकार जमा लिया। सिक्कों पर महाराज के नाम के साथ उसका भी नाम अंकित होता था। महाराज मोरान को लेकर हरिद्वार तीर्थ करने गए थे और अनेक प्रकार के धर्मकार्य में लाखों रुपये उन्होंने व्यय किए। तीर्थ से लौटकर महाराज ने क्रमशः मुलतान और अमृतसर को जीता। इसी समय अफगानिस्तान में तैमूरशाह के पुत्रों में सिंहासन के लिए विवाद प्रारंभ हुआ था। इस अवसर को पाकर सन् १८०३ ई० में सेना के साथ महाराज वहां उपस्थित हुए और झंग, साहिवाल आदि चार स्थानों पर अपना अधिकार कर लिया। सन् १८०५ ई० में महाराज ने विपाशा और चंद्रभागा नदियों के तीरवर्ती मुसलमान सरदारों के साथ संधि स्थापित कर ली। अभी तक पंजाब के मुसलमान सरदार काबुल के अधीन थे, परंतु उन लोगों ने अब से महाराज रणजीतसिंह को ही अपना प्रधान माना। इसी वर्ष में महाराज ने अंग्रेजी गवर्नमेंट से संधि कर ली। इसी समय यूरोप में नेपोलियन बोना-

पार्ट के साथ अंग्रेजों का भयानक युद्ध हो रहा था। उस समय के भारत के बड़े लाट लार्ड मिंटो फरासियों द्वारा भारताक्रमण की आशंका से सीमांतस्थित राजाओं से मैत्री-स्थापन की चेष्टा कर रहे थे। इसलिए उन्होंने सन् १८०८ ई० में एलफिंस्टन साहब को काबुल-दरबार में, सर जान म्यालकम को फारस के दरबार में और सर चार्ल्स मटकाफ को लाहौर के दरबार में रणजीतसिंह के निकट भेजा था।

सन् १८०९ ई० में रणजीतसिंह से अंग्रेज-गवर्नमेंट का कुछ मनमुटाव हो गया था, परंतु शीघ्र ही उसकी मीमांसा हो गई। उसी वर्ष की २५ अप्रैल को रणजीतसिंह के साथ अंग्रेज-गवर्नमेंट की पुनः संधि हुई। संधि तो हो गई, परंतु आपस में किसीका किसी पर विश्वास नहीं हुआ। १८१२ ई० में रणजीतसिंह ने अपने पुत्र खड़गसिंह के विवाह के समय बड़ी धूमधाम से उत्सव मनाया। इस उत्सव में अंग्रेज-सेनापति अक्टारलोनि निमंत्रित होकर आए थे। सन् १८३८ ई० में अंग्रेज गवर्नमेंट के साथ काबुल का विवाद उपस्थित हुआ। उसी वर्ष के नवंबर मास में बड़े लाट लार्ड अकलेंड ने एक सर्वसाधारण का दरबार किया और दूसरे अप्रैल मास में सिख और अंग्रेज सेना मिलकर दोनों ने कंधार पर अधिकार कर लिया तथा उसी साल के मई महीने में शाहशुजा कंधार के सिंहासन पर बैठाए गए। सन् १८३९ ई० में २७ जून को महाराज रणजीतसिंह का परलोक-वास हुआ।

(२) जयसलमेर के रावल। महारावल गजसिंह अपुत्रावस्था में ही परलोक सिधारे। तदनंतर उनकी विधवा रानी ने उनके छोटे भाई के पुत्र रणजीतसिंह को गोद लिया। रणजीतसिंह ने सिंहासन पर बैठकर बड़ी सावधानी से राज्य-शासन किया। इन्हींके शासन में सिपाही-विद्रोह हुआ था। उस समय रणजीतसिंह ने भारत गवर्नमेंट की सहायता करने में त्रुटि नहीं की। देशी रजवाड़ों को दत्तक लेने की सनद देने के समय भारत गवर्नमेंट से महारावल रणजीतसिंह को भी सनद मिली थी। इनके शासनकाल में राज्य में किसी प्रकार की राजनीतिक घटना नहीं हुई। सन् १८६४ ई० में महारावल रणजीतसिंह का परलोक-वास हुआ। (टाड्स राजस्थान)

रणादित्य—काश्मीर के एक राजा। ये राजा युधिष्ठिर के पुत्र और नरेन्द्रादित्य के अनुज थे। राजा नरेन्द्रादित्य के परलोकवास होने पर रणादित्य का काश्मीर के सिंहासन पर अभिषेक हुआ। राजा रणादित्य तुञ्जीन नाम से भी प्रसिद्ध थे। इनकी पत्नी रणारंभा स्वयं वैष्णवी शक्ति भूतल में अवतीर्ण हुई थी। राजा रणादित्य के पूर्वजन्म की कथा राजतरंगिणी में लिखी हुई है।

राजा रणादित्य पूर्वजन्म के जुआरी थे। वे किसी समय में जुए में अपना सर्वस्व हारकर विशेष दुःखी हुए। अनंतर वह धन-प्राप्ति की आशा से शरीर-त्याग करने पर उद्यत हुए। धूर्त मृत्यु के समय भी स्वार्थ-साधन करने से नहीं हिचकते। विंध्याचल की देवी भ्रमरवासिनी के दर्शन करने से इष्टसिद्धि होती है, इस कारण वे उनका दर्शन करने के लिए उद्यत हुए। परंतु भ्रमरवासिनी देवी का दर्शन करना बड़ा कठिन है, क्योंकि वहां का मार्ग बड़ा कठिन है। भंवरे और मधुमक्खियों के कारण पांच योजन मार्ग काटना बड़ा ही कठिन है। अतएव उसने लोहे का कवच, उसपर भैंसे का चमड़ा और उसपर गोबर-मिट्टी का लेप लगाकर अभेद्य कवच बनाया। वे उसी कवच को पहनकर बड़े वेग से चले। इस कवच से यद्यपि उनकी पूर्णतः रक्षा नहीं हुई, तथापि इससे उन्हें अधिक सहायता मिली, इसमें संदेह नहीं। वह भगवती के पास पहुंचे। उनके साहस से प्रसन्न होकर भगवती ने उन्हें दर्शन दिए। वह भगवती के रूप पर मोहित हुए और उन्होंने भगवती के साथ संगम की प्रार्थना की। भगवती ने उसे बहुत समझाया, परंतु समझे कौन? कामियों में समझने की बुद्धि नहीं होती। अंत में, उसका दृढ़ निश्चय देखकर भगवती ने कहा कि दूसरे जन्म में तुम्हारी यह अभिलाषा पूर्ण होगी। वह द्यूतकार वहां से चला आया और प्रयाग के अक्षयवट की शाखा से वही भावना करते हुए गिरकर मर गया। वैष्णवीदेवी रणरंभा रूप से उत्पन्न हुई और द्यूतकार रणादित्य के रूप में। (राजतरंगिणी)

रतन कवि—ये हिंदी के कवि श्रीनगर बुंदेलखंड के निवासी थे। सं० १७९८ वि० में इनका जन्म हुआ था। ये कवि राजा फतेशाह बुंदेला श्रीनगर के दरबार में थे। इन्होंने अपने आश्रयदाता राजा के नाम पर 'फतेशाह-भूषण' और 'फतेप्रकाश' नामक दो ग्रंथ लिखे हैं।

रतन राव—बूंदी के राव राजा। ये राव राजा भोज के प्रथम पुत्र थे। रतन राव के राज्यकाल में अकबर की मृत्यु हो गई थी। उस समय जहांगीर के सिर पर मुगलराज-छत्र शोभित हो रहा था। जहांगीर ने

अपने पुत्र परवेज को दक्षिण के शासनकर्ता का पद दिया। इससे उनके दूसरे पुत्र खुर्रम ने द्वेष के वशवर्ती होकर अपने सौतेले भाई परवेज को मार डाला। तदनंतर उसने अपने पिता को भी मारने के लिए आयोजन किया। खुर्रम राजपूत-नंदिनी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। अतएव उसे राजपूत राजाओं से सहायता मिली थी। इस अवस्था में बादशाह जहांगीर को गद्दी से उतारने के लिए यह कुचक्रियों का दल उद्योग कर रहा था, परंतु इस दुःख के समय भी रतन राव ने बादशाह जहांगीर का पक्ष ग्रहण किया था। इनके संबंध में हाड़ा कवि ने कहा है—

सरवर फूटा जल बहा, अब क्या करो यतन्न।
जाता घर जहांगीर का, राखा राव रतन्न॥

राव रतनसिंह ने अपने दोनों पुत्रों के साथ जहांगीर के उस महादुःख के समय बुरहानपुर में जाकर पितृद्रोही खुर्रम और उनके साथी राजाओं को युद्ध में एक ही बार में परास्त किया। यह युद्ध सन् १५७९ ई० में हुआ था। इसी विजय के उपलक्ष्य में जहांगीर ने राव रतन को बुरहानपुर का शासन-भार दे दिया। राव रतन ने बुरहानपुर के शासन करने के समय वहां 'रतनपुर' नामक एक गांव भी स्थापित किया था। बुरहानपुर के दूसरे युद्ध में ये मारे गए।
(टाड्स राजस्थान)

रति—कंदर्प की पत्नी। महादेव की नेत्राग्नि से कंदर्प के भस्म होने पर रति ने कंदर्प की रक्षा के लिए मर्त्यलोक में मायावती के रूप में जन्म ग्रहण किया था। (देखो मायावती, अनिरुद्ध, कंदर्प)

रतुल—एक राजकुमार। ये इक्ष्वाकुवंशी शुद्धोदन के पुत्र थे।

रत्नकुमारी—ये प्रसिद्ध सितारे-हिंद राजा शिवप्रसाद की दादी थीं। ये बड़ी विदुषी थीं। संस्कृत और फारसी साहित्य में इनका ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा हुआ था। संगीतशास्त्र तथा चिकित्साशास्त्र का भी इनको पूर्ण ज्ञान था। राजा शिवप्रसाद कहा करते थे—"हमारे पास जो कुछ ज्ञान है वह सब मेरी पूज्या दादी का दिया हुआ है।" इनकी कविता बहुत सुंदर और भक्तिपूर्ण हुआ करती थी। इन्होंने 'प्रेमरतन' नाम की एक पुस्तक लिखी। इनके लिखे कुछ दोहे यहां उद्धृत किए जाते हैं—

परम रम्य वे वन सघन, कुञ्ज पुञ्ज छविधाम।
वेई तृण तरु हरित अरु, लता सुललित ललाम॥
वेई बरही नटत वर, कूकत कोकिल कीर।
वे मराल कलरव करत, वे यमुना के तीर॥
वे खग मृग बोलत विविध, बहत त्रिविध सुसमीर।
प्रफुलित वे कैरव कमल, वे तरङ्ग वे नीर॥
वेई विपिन वसन्त नित, वेई गोपीचन्द।
वे रजनी रस रास वर, करत नवल व्रजचन्द॥

रत्नगर्भ—ये विष्णुपुराण के एक टीकाकार थे। इनके लिखे ग्रंथ का नाम 'वैष्णवाकूतचंद्रिका' है। इनके समय के विषय में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता।

रत्नगिरि—इसका ऐतिहासिक महत्त्व है। यहां पर स्तूप तथा अन्य पुरातात्त्विक सामग्री उपलब्ध हुई है। गोपालपुर के पूर्वोत्तर में एशिया पर्वतमाला की यह एक पहाड़ी है।

रत्नजी—ये चित्तौड़ के महाराणा थे। महाराणा संग्रामसिंह के ये तीसरे पुत्र थे। महाराणा संग्रामसिंह के मरने पर ये मेवाड़ के सिंहासन पर बैठे। इन्होंने सिंहासन पर बैठते ही अपने क्षत्रियोचित गुणों का परिचय दिया। यदि ये थोड़े दिन भी युवावस्था के वेग को रोक सकते तो इसमें संदेह नहीं कि इनसे राजपूताने का बड़ा उपकार होता। परंतु युवावस्था के वेग को न रोक सकने के कारण इनकी अकाल में मृत्यु हुई और राजपूताना ने इनसे जो आशा की थी वह सदा के लिए विलीन हो गई।

इन्होंने आमेर के राजा पृथ्वीराज की कन्या से गुप्त विवाह कर लिया था, इस बात की कानोंकान भी किसीको खबर नहीं थी। अतएव कन्या के विवाह योग्य अवस्था प्राप्त करने पर महाराज पृथ्वीराज ने उसका विवाह बूंदीनरेश सूरजमल से पक्का किया। वह कन्या भी मारे लाज के पहली बात नहीं कह सकी। विवाह हो जाने पर इसकी खबर महाराणा रत्नसिंह को लगी। इस संवाद को पाते ही वे बदला लेने के लिए अधीर हो गए। शिकार का समय उपस्थित हुआ। महाराणा ने अपने वैर का बदला लेने का उचित अवसर पाया। सूरजमल और रत्नजी दोनों शिकार खेलने के लिए आगे निकल गए। वहां इन दोनों के अतिरिक्त तीसरा कोई नहीं था। मौका देखकर महाराणा रत्नजी ने सूरजमल पर वार किया। सूरजमल घोड़े से गिर गया। परंतु थोड़ी ही देर में संभलकर उठने पर सूरजमल ने देखा कि रत्नजी भागा जा रहा है। सूरजमल ने कहा—"भाग

जा, भाग जा रे कायर ! तेरी इस कापुरुषता ने मेवाड़ के श्वेत यश में सदा के लिए कलंक लगा दिया।" रत्नजी ने समझा कि सूरजमल मर गया, इसीलिए वह भागा जाता था। परंतु जब उसे मालूम हुआ कि वह जिंदा है, तब वह लौटा। आकर वह सूरजमल पर वार करना चाहता ही था कि इतने में सूरजमल ने रत्नजी की छाती पर चढ़कर उसका काम तमाम कर डाला। (टाड्स राजस्थान)

रत्नसिंह—बीकानेर के एक महाराज। ये महाराज सूरतसिंह के पुत्र थे और उनका परलोकवास होने पर ये बीकानेर के सिंहासन पर आरूढ़ हुए। महाराज रत्नसिंह के अधिकारारूढ़ होते ही सामंत और प्रजाओं के मन का भाव सहसा बदल गया। उनके हृदय में नयी-नयी आकांक्षाएं उत्पन्न होने लगीं। उस समय बीकानेर का राजनीतिक आकाश अनेक बादलों से घिर गया। सिंहासन पर बैठने के थोड़े ही दिनों बाद इन्हें एक बड़े भारी युद्ध में फंसना पड़ा। जयसलमेर की प्रजा और कर्मचारियों ने बीकानेर की सीमा में लूट-खसोट करना प्रारंभ कर दिया। इससे रत्नसिंह ने अत्यंत कुपित होकर जयसलमेर के राजा को युद्ध के लिए निमंत्रणपत्र भेजा और जयपुर तथा मेवाड़ के महाराजाओं से सहायता मांगी। जयसलमेर के राजा युद्ध के लिए दुगुने उत्साह से तैयार हो गए। जयसलमेर की सीमा पर इनकी सेना एकत्र हुई। इसी समय अंग्रेजी गवर्नमेंट ने रत्नसिंह के पास एक पत्र भेजा तथा इस युद्ध को अपनी संधि का भंग करना बताया। इस पत्र से महाराज रत्नसिंह युद्ध से निवृत्त हो गए। गवर्नमेंट की सम्मति के अनुसार मेवाड़ के महाराणा ने इन दोनों राज्यों के बीच पड़कर झगड़ा खत्म करवा दिया।

इस विवाद के शांत होने पर महाराज रत्नसिंह सन् १८३० ई० में राज्य के भीतरी झगड़ों में फंसे। राज्य के सामंत विद्रोही हो गए। महाराज रत्नसिंह इससे बड़े भयभीत हुए और उन्होंने गवर्नमेंट से सेना की सहायता मांगी। रेजिडेंट सहायता देने के लिए प्रस्तुत भी हो गए थे परंतु बड़े लाट के रोकने से वे रुक गए।

गवर्नमेंट की सहायता से निराश होकर रत्नसिंह ने अपने ही बल से उस विद्रोह का दमन करने की ठानी। परंतु इसी समय जयसलमेर वाला झगड़ा पुनः खड़ा हो गया। इस झगड़े को शांत करने के लिए गवर्नमेंट ने एक अंग्रेज भेजा और दोनों का झगड़ा सुलझ गया।

इसी बीच महाराज रत्नसिंह ने अपने राज्य की सीमा बढ़ाने का भी प्रयत्न किया था, परंतु ब्रिटिशसिंह के निषेध करने से रुक गए। महाराज रत्नसिंह ने २५ वर्ष तक राज्य किया था। सन् १८५२ ई० में इनका शरीरांत हुआ। (टाड्स राजस्थान)

रथकृत—एक यक्ष का नाम।

रथचित्र—एक नदी का नाम। इस नदी का वर्णन पुराणों में हुआ है, परंतु यह नदी कहां है, इसका पता नहीं है।

रथन्तर—(१) ऋग्वेद के एक अध्यापक। ये सत्यश्री के शिष्य थे।

(२) सामवेद का एक नाम।

रथवीति दार्भ्य—हिमालय के सुदूर पर्वतों में गायों से परिपूर्ण प्रदेश का निवासी एक ऋषि। एक बार अंधियु श्यावाश्व आचार्य ने इसे तदन्त नामक राजा के यज्ञ में होमकर्म संपादित करने के लिए आमंत्रित किया था। यह अपनी कन्या को साथ लेकर उस यज्ञ में गया। श्यावाश्व के पिता अर्चनानस् आत्रेय ने इस कन्या को अपने पुत्र के लिए मांगा। किंतु रथवीति ने स्पष्ट इन्कार कर दिया। किंतु अंत में राजा तदन्त के कहने पर इसने अपनी कन्या को दे दिया। आधुनिक विद्वानों का अभिमत है कि रथवीति एक आचार्य तथा ऋषि न होकर एक राजा था और श्यावाश्व उसका पुत्र था। श्यावाश्व ने अपने पिता एवं मरुतों की सहायता से अपने लिए एक पत्नी प्राप्त की थी। इसका निर्देश ऋग्वेद के उक्त संदर्भ (५।६।१।१७-१९) में किया गया है।

रथस्या—'महाभारत' के अनेक स्थलों पर इसका उल्लेख गंगा, यमुना, सरस्वती, सरयू और गोमती के साथ हुआ है। इसका वर्तमान भौगोलिक अस्तित्व सर्वथा अस्पष्ट है।

रथीनर—अंगिरावंश के एक ऋषि का नाम।

रन्तिदेव—ये संकीर्ति के पुत्र थे। श्रीमद्भागवत में भी इनका उल्लेख हुआ है। ये बड़े धर्मिष्ठ तथा कर्मपरायण राजा थे। इनके यज्ञीय पशुओं की रुधिरधारा से एक नदी बह निकली थी, जिसका नाम चर्मण्वती है, जो आज चंबल के नाम से प्रसिद्ध है।

रन्तिनर—एक राजकुमार। पुरुवंशी ऋतेय के पुत्र थे।

रन्तिनार—एक पुरुवंशीय सम्राट्। यह ऋतेयु राजा का

पुत्र था। पुराणों में इसके अंतिनार या रंतिभार नाम दिए गए हैं। इसी प्रकार पुराणों में इसके पिता के औचेयु तथा रजेयु नाम उल्लिखित हैं। इसकी पत्नी का नाम सरस्वती या मनस्विनी था। इसके चार पुत्रों के नाम थे—तंसु, महान्, अतिरथ और द्रुहयु। पुराणों में इसके एक अन्य पुत्र अप्रतिरथ का नाम उल्लिखित है, जिसके पुत्र का नाम काण्व था और जिसे आंगिरस के अंतर्गत काण्व शाखा का प्रवर्तक माना गया है।

रमणक—आठ द्वीपों में एक द्वीप, जिसका उल्लेख श्रीमद्-भागवत में हुआ है। इस द्वीप में म्लेच्छ रहते हैं और वे हिंदू देवताओं की पूजा करते हैं।

रमेशचन्द्र दत्त—इनका जन्म बंगाल के एक प्रसिद्ध वंश में १३ अगस्त, १८४८ में कलकत्ते में हुआ था। इनके पिता डिप्टी कलेक्टर थे। बाल्यावस्था में यह अपने पिता के साथ रहते थे, जिससे इन्हें अनेक विषयों की शिक्षा अनायास ही प्राप्त हुई थी।

जब इनके माता-पिता का स्वर्गवास हुआ तब से ये अपने चाचा के साथ रहने लगे। इनके चाचा एक विद्याव्यसनी मनुष्य थे। उनके साथ से रमेशचंद्र दत्त जी बड़े मनोयोग से पढ़ने लगे। सन् १८६४ ई० में इन्होंने मेट्रीक्यूलेशन परीक्षा पास की। तदनंतर १८६६ ई० में एफ० ए० परीक्षा में यूनिवर्सिटी में द्वितीय रहे थे। ये बी० ए० परीक्षा देने वाले ही थे कि सहसा इन्हें विलायत जाने की सूझी। सुरेंद्रनाथ बनर्जी और बिहारीलाल गुप्त विलायत जाने के लिए तैयार हुए। सुरेंद्र बाबू को विलायत जाने के लिए इनके पिता ने आज्ञा दे दी थी, परंतु रमेश बाबू ने किसीसे पूछे बिना विलायत जाने के लिए प्रस्थान किया। विलायत जाकर रमेश बाबू ने सिविल सर्विस की परीक्षा पास की और वहां से कलेक्टरी के पद पर नियुक्त होकर भारत लौट आए।

सन् १८७१ ई० से १८९७ ई० तक रमेशचंद्र दत्त बंगाल के अनेक जिलों में काम करते रहे। बरीसाल, बाकरगंज, मैमनसिंह आदि जिलों में इन्होंने योग्यता-पूर्वक कलेक्टरी की। बंगाल टेनेंसी एक्ट के पास होने में लार्ड मेकडानल्ड को इन्होंने बड़ी सहायता दी थी। इनकी योग्यता देखकर सरकार ने इन्हें उड़ीसा का कमिश्नर बनाया। सन् १८८६ ई० में छुट्टी लेकर इन्होंने सकुटुंब यूरोप के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थानों की यात्रा की।

इन्होंने ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद किया था। भारत का इतिहास भी इन्होंने अंग्रेजी में लिखा है। इन्होंने अंग्रेजी और बंगभाषा में अनेक ग्रंथ लिखे हैं। ये अंग्रेजी भाषा के महान् विद्वान् होने पर भी मातृ-भाषा बंगला के परमभक्त थे। बाबू बंकिमचंद्र इनके मित्र थे।

सन् १८८७ ई० में इन्होंने पेंशन ले ली और तद-नंतर ये देशहित के कामों में अनवरत लगे रहे। सन् १८९७ ई० से १९०४ ई० तक ये इंग्लैंड में रहकर राजनीतिक विषयों पर लेख लिखा करते थे। उसी समय इन्होंने लंदन यूनिवर्सिटी में अध्यापक का भी काम किया था। सन् १८९९ ई० में ये लखनऊ की कांग्रेस में सभापति चुने गए थे। सन् १९०४ ई० में गुणग्राही गायकवाड़ ने इन्हें अपना मंत्री बनाया। सन् १९०५ ई० में ये बनारस इंडस्ट्रियल कानफ्रेंस के सभापति निर्वाचित हुए। इसी प्रकार ये देशहित के अनेक कामों में योग देते रहे। इनका देहांत नवंबर सन् १९१० ई० में हुआ।

रम्भ-करम्भ—ये दोनों दानव कश्यप तथा दनु के पुत्र थे। एक बार ये दोनों भाई पानी में बैठकर तप कर रहे थे। इसी समय इंद्र ने मगर का रूप धारण करके करंभ का वध कर डाला। भाई की मृत्यु से रंभ अत्यंत दुःखी हुआ और आत्महत्या करने के लिए उद्यत हुआ। इसी समय अग्नि प्रकट हुआ और उसने इसे धैर्य बंधाया तथा इसे अत्यंत विजयी पुत्र होने का वरदान दिया। इस वरदानस्वरूप रंभ का महिषासुर नामक पुत्र हुआ, जो कि बड़ा बलवान् और प्रख्यात हुआ। (देवी भागवत)

रम्भा—स्वर्ग की प्रसिद्ध अप्सरा। यह अप्सरा अपूर्व लावण्यवती और संगीतशास्त्रज्ञा थी। एक समय रंभा अभिसारिका के वेष में नलकूबर के पास जा रही थी। मार्ग में रावण ने इसपर आक्रमण किया। रंभा ने उसे शाप दिया कि यदि अब तू किसी स्त्री का बलात्कार करेगा तो तेरा सिर फट जाएगा।

रम्य—राजा अग्निधर के नौ पुत्रों में से एक पुत्र का नाम। ये रम्य बाद में नीलगिरि के राजा हुए थे।

रम्यक—उत्तर मेरु का एक जनपद।

रसखान कवि—इनका नाम सय्यद इब्राहीम था। ये पिहानी के रहने वाले थे। सं० १६३० वि० में इनका जन्म हुआ था। ये थे तो मुसलमान परंतु भगवान् में इनकी अनुपम भक्ति थी। ये वृंदावन में रहकर

भगवद्‌गुणगान किया करते थे। भक्तमाल में इनकी कथा लिखी हुई है। (शिवसिंहसरोज)

रसनिधि—इनका जन्म दतिया (मध्य प्रदेश) के एक जमींदार परिवार में हुआ था। इनका पैतृक नाम पृथ्वीसिंह था। इनकी कृतियों का रचनाकाल १६०३-१६४० ई० के बीच माना गया है। १६६० ई० तक ये वर्तमान थे। इनके द्वारा विरचित जितने ग्रंथ अब तक खोज में प्राप्त हो चुके हैं, उनके नाम हैं—'रतन हजारा', 'विष्णुपद कीर्तन', 'कवित्त', 'बारहमासी', 'रसनिधिसागर', 'गीतिसंग्रह' और 'अरिल्ला हिंडोला'। इनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'रतन हजारा' है। रसनिधि को बिहारी की परंपरा में रखा गया है।

रसलीन कवि—ये मुसलमान कवि थे। इनका नाम सय्यद गुलामनबी बिलग्रामी था। ये अरबी-फारसी के विद्वान् और निपुण कवि थे। 'रसप्रबोध' नामक अलंकार का एक ग्रंथ इन्होंने लिखा था, जिसका कवि-समाज में बड़ा आदर है। (शिवसिंहसरोज)

रसा—इसका अस्तित्व ऋग्वेदकालीन है। संभवतः यह सिंधु की पश्चिमी सहायक नदी थी। इसकी वर्तमान भौगोलिक स्थिति के संबंध में कोई प्रामाणिक जानकारी प्राप्त नहीं है।

रसायन—रसायनशास्त्र के नौ भागों में से एक भाग का नाम।

रहीम—इस नाम के हिंदी के दो कवि हुए थे। ये दोनों बड़े निपुण कवि थे। रहीम के दोहे प्रसिद्ध हैं। परंतु इसका पता लगाना अत्यंत कठिन है कि कौन-सी कविता किस रहीम की लिखी हुई है।

राक्षस—एक राक्षसविशेष। इसका जन्म कश्यप तथा स्वसा के द्वारा हुआ था। इसकी पत्नी का नाम ब्रह्मधना था, जिससे इसके नौ पुत्र और चार कन्याएं हुई थीं। 'ब्रह्मांड पुराण' (३।७।४७) में इसका विस्तृत वर्णन हुआ है। इसके तीन पैर, तीन हाथ और तीन शिर थे। इसकी आंखें काली, मूंछें पीली और बाल रूखे थे। यह छोटे कद वाला, किंतु बड़ा बलवान् था। इसके शरीर की बनावट अत्यंत विकृत थी। किसी भी शिला को यह मुष्टि-प्रहार से चूर-चूर कर सकता था। इसलिए इसे 'शीलासंहनन' उपाधि से संबोधित किया जाता था।

राजगृह—(१) रामायण में लिखा है कि केकय राज्य की राजधानी का नाम राजगृह अथवा गिरिव्रज था। यह राजगृह अथवा गिरिव्रज मगध के अंतर्गत गिरिव्रज से भिन्न है। इसमें तो कुछ संदेह ही नहीं। परंतु यह राजगृह अथवा गिरिव्रज इस समय कहां है, इसका पता लगाना कठिन है। अयोध्या से दूत राजगृह गया था और वहां से भरत अयोध्या आए थे। इनके आने-जाने के मार्ग का उल्लेख रामायण में किया गया है। केकय राज्य में जाने के समय राजदूत अयोध्या से पश्चिम की ओर चला था। रामायण में लिखा है कि पश्चिम की ओर अपरताल देश और उत्तर की ओर प्रलंब नामक जनपद के बीच बहने वाली मालिनी नदी की शोभा देखता हुआ वह दूत चला। हस्तिनापुर के सामने गंगा पार करके, पांचाल देश को लांघकर वह कुरुजांगल देश के बीच से होकर चला। तदनंतर शरदंड नाम्नी नदी को पार करके वह कुलिंग नाम की नगरी में प्रविष्ट हुआ। तदनंतर उसने अभिकाल और भोजाभिभव नामक जनपदों को लांघकर इक्ष्वाकुवंशियों के पितृपितामहादि से सेवित इक्षुमती नाम की नदी को पार किया। इसके पश्चात् वाल्हीक देश को पार करता हुआ वह सुदामा पर्वत पर पहुंचा। विपाशा, शाल्मली आदि नदियां अतिक्रम करके वह राजगृह पहुंचा। जाने के समय दूत जिस-जिस स्थान से होता हुआ गया था, लौटने के समय उन स्थानों में से एक-दो स्थानों को भरत ने देखा था। इससे यह बात निश्चित होती है कि दोनों भिन्न-भिन्न मार्ग से आए और गए।

कनिंहम कहते हैं कि वितस्ता (झेलम) नदी के उस पार स्थित जलालपुर तथा उसके समीप के स्थान प्राचीन केकय राज्य के अंतर्गत थे। अकबर के शासन-काल में उस प्राचीन नगरी का नाम जलालपुर रखा गया। जलालपुर के पास गिर्जाक नामक जो पर्वत-श्रेणी है, उसका पुराना नाम गिरिव्रज होना भी संभव है। जलालपुर पंजाब (अब पाकिस्तान) के झेलम जिला के अंतर्गत वितस्ता नदी के दक्षिण तीर पर स्थित है। पाश्चात्य पंडित उसीको केकय राज्य बतलाते हैं। किसी-किसीका मत है कि काश्मीर के प्रदेश-विशेष का नाम ही केकय राज्य है। महाभारत, हरिवंश तथा तंत्रशास्त्रों में अनेक बार काश्मीर का उल्लेख हुआ है परंतु रामायण में काश्मीर का नाम नहीं देखा जाता। अतः रामायण के समय वर्तमान काश्मीर राज्य का केकय राज्य आदि के नाम से परिचित होना संभव है। काश्मीर के इतिहास राजतरंगिणी

नामक ग्रंथ में राजपुरी नामक एक ग्रंथ का उल्लेख देखा जाता है। संग्रामपाल ने उसी नगर में जब अपनी स्वाधीनता की घोषणा की, तब काश्मीराधिपति हर्षदेव ने राजपुरी पर अधिकार करने के लिए दंडनायक नाम के सेनापति को सेना के साथ भेजा था। यह सेनापति अठारह महीने के बाद लौट आया। तदनंतर सेनापति कंदर्प ने उस नगरी पर काश्मीर राज्य का अधिकार जमाया। बहुत लोगों का यह विश्वास है कि वह रामायण-वर्णित राजगृह ही पीछे राजपुरी के नाम से परिचित हुआ।

(भारतवर्षीय इतिहास)

(२) मगध जनपद की इस प्राचीन राजधानी को गिरिव्रज तथा कुशाग्रपुर नामों से भी कहा गया है। इसे मांधाता द्वारा निर्मित बताया गया है और जरासंध ने इसे सर्वप्रथम राजधानी होने का सम्मान दिया। इसका एक प्रवेशद्वार था, जिसके बंद कर दिए जाने पर राजा तक भी नगर में प्रवेश नहीं कर सकता था। एक-एक बौद्ध केंद्र के रूप में नियुक्त रहा, जहां बुद्ध ने अपने अनेक शिष्यों को बौद्धधर्म में दीक्षित किया। उपालि और अनाथपिंडिक ने यहीं पर बौद्धधर्म की दीक्षा ली थी। बुद्ध ने यहां पर समस्त भिक्षुओं की एक परिषद् बुलाई थी और बौद्धसंघ की कल्याणकारी सात दशाओं के वर्ग निर्धारित किए थे। महाराज अजातशत्रु ने महाकस्सप की अध्यक्षता में पांच सौ स्थविरों की प्रथम बौद्ध संगीति का आयोजन राजगृह में ही किया था। इस संगीति में विनय और धम्म के पाठ निर्धारित किए गए थे। बिंबिसार और अजातशत्रु के समय इसका वैभव बना रहा। बेमार पर्वत पर स्थित सत्तपण्णि (सप्तपर्णि) गुहा में इसका आयोजन हुआ था। तत्पश्चात् उदायिभद्र द्वारा पाटलिपुत्र को राजधानी बनाए जाने के कारण इसका वैभव क्षीण हुआ। राजगृह जैन धर्म का भी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक केंद्र रहा है। यहां पर जैनों के बीसवें तीर्थंकर ने जन्म धारण किया। महावीर स्वामी ने यहां चतुर्दश चातुर्मास्य व्यतीत किए। बौद्ध तथा जैन ग्रंथों में इस नगर में आयोजित होने वाले उल्लासपूर्ण क्रीडा-कौतुकों एवं उत्सवों का वर्णन किया गया है।

राजधर्मन् - एक धर्मप्रवण बकराज। यह कश्यप ऋषि का पुत्र था। इसका नादिजंघ नाम भी था। यह ब्रह्मा का मित्र था। एक बार गौतम नामक एक कृतघ्न ब्राह्मण इसके पास आया। इसका राजधर्मन् बक ने समुचित आदर-सत्कार किया और अपने विरूपाक्ष नामक मित्र से इसे पर्याप्त धन दिलाया। किंतु गौतम ने इसका वध कर दिया। उसके मित्र राक्षसराज विरूपाक्ष ने सुरभि गाय के दूध से राजधर्मन् को जीवित किया और कृतघ्न गौतम का वध कर डाला। जीवित होकर इसने इंद्र से गौतम को जीवनदान करने का अनुरोध किया। इंद्र ने अमृत छिड़ककर उसको जीवित किया। तदनंतर इस पुण्यात्मा ने गौतम को विपुल धन देकर विदा किया।

राजशेखर—ये संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार थे। इनके लिखे विद्धशालभंजिका, बालभारत अथवा प्रचंडपांडव और बालरामायण आदि नाटकों का संस्कृत साहित्य में बड़ा आदर है। प्राकृत में भी 'कर्पूरमंजरी' नामक एक नाटक इन्होंने लिखा है। ये कवि भवभूति के पश्चात् हुए थे। इनका समय दशम शतक तक माना गया है।

राजा रणधीरसिंह—ये शिरमौर जाति के क्षत्रिय थे। ये सिंगरामऊ के रहने वाले थे। इनके यहां कवियों का बड़ा सम्मान होता था। 'भूषणकौमुदी' और 'काव्य रत्नाकर' नामक ग्रंथ भी इन्होंने लिखे हैं। ये सिंगरामऊ वाले के नाम से कवि-समाज में बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं।

राजेन्द्रलाल मित्र—इनका पूरा नाम राजा राजेंद्रलाल मित्र सी० आई० ई० था। ये बंगाल के प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता थे। इनका जन्म सन् १८२४ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम जनमेजय मित्र था। ये राजवंशज थे। जनमेजय के पितामह का नाम था, राजा पीतांबर मित्र। राजेंद्रलाल अपनी विधवा चाची के यत्न से लालित-पालित और शिक्षित हुए थे। बाल्यावस्था में ये गोविंद बैसाक के स्कूल में अंग्रेजी पढ़ने के लिए भर्ती हुए। १८४० ई० में ये कलकत्ता के मेडिकल कालेज में भर्ती हुए। सन् १८४१ ई० में ये द्वारकानाथ ठाकुर की सहायता से विलायत जाने को प्रस्तुत हुए थे। परंतु पिता के निषेध करने से रुक गए। मेडिकल कालेज की पढ़ाई न समाप्त होने पर भी इन्हें वह कॉलेज किसी कारणवश छोड़ना पड़ा। तदनंतर ये कानून पढ़ने लगे, परंतु कानून की परीक्षा में फेल हो गए। इस प्रकार डाक्टरी और कानून दोनों ओर से हतमनोरथ होने पर ये भिन्न-भिन्न भाषाएं सीखने लगे। इन्हें फारसी भाषा का पूर्ण,

परंतु संस्कृत भाषा का थोड़ा ज्ञान था। इस कारण संस्कृत भाषा सीखने के लिए परिश्रम करने लगे। थोड़े दिनों में इन्हें संस्कृत का पूरा ज्ञान हो गया। इसके बाद इन्होंने ग्रीक, लैटिन, जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया। ये हिंदी और उर्दू के पूर्ण विद्वान् थे। भाषातत्त्व-संबंधी किसी प्रश्न के उपस्थित होने पर इनके अगाध ज्ञान तथा अद्‌भुत विचार-शक्ति का परिचय मिलता था। तदनंतर ये १८४६ ई० में एशियाटिक सोसायटी के सहकारी संपादक के पद पर आसीन हुए। इस पद पर रहकर इन्होंने अपने ज्ञान को और भी बढ़ाया। सन् १८५० ई० से ये विविधार्थ-संग्रह नामक एक मासिक पत्रिका प्रकाशित करने लगे। सात वर्ष तक इस पत्रिका को इन्होंने नियमित रूप से चलाया। इसी समय से ये पुरातत्त्व की आलोचना में प्रवृत्त हुए। एशियाटिक सोसायटी से प्रकाशित मासिक पत्रिका में तथा अन्यान्य अंग्रेजी मासिक पत्रिकाओं में पुरातत्त्व-संबंधी गवेषणापूर्ण इनके लेख प्रकाशित होने लगे। इनके पुरातत्त्व-संबंधी लेखों में 'उड़ीसा का प्राचीन तत्त्व' और 'बुद्धगया' ये दोनों प्रधान हैं। बाद में इनके प्रबंध ग्रंथाकार में प्रकाशित हुए थे। वे प्रबंध संकलित होकर Indo Aryans नाम से दो खंडों में प्रकाशित हुए। ये कलकत्ता म्यूनिसिपैलिटी के कमिश्नर चुने गए। महात्मा कृष्णदास पाल की मृत्यु के अनंतर इन्होंने 'हिंदू पेट्रियट' का संपादन किया था। अनंतर ये एशियाटिक सोसायटी के सभापति हुए। कलकत्ता विश्वविद्यालय से इनकी विद्वत्ता के लिए इन्हें डी० एल० की उपाधि मिली। भारत गवर्नमेंट से सी० आई० ई०, राय बहादुर और राजा की उपाधि मिली। ६७ वर्ष की अवस्था में वातरोग से इनकी मृत्यु हुई।

राज्यवर्द्धन—एक राजकुमार। ये दाम के पुत्र थे, जो मरुत के वंशज थे।

रात्रि—रात्रि की इस अधिष्ठातृ देवी का ऋग्वेद में 'नक्ता' नाम से उल्लेख हुआ है। वहां इसे उषस् की छोटी बहन कहा गया है और अनेक स्थलों पर इनका युगल रूप में उल्लेख हुआ है। ये दोनों बहनें आकाश की पुत्री थीं। ऋग्वेद में इसका काव्यमय वर्णन हुआ है और इसे अंधकार को भगाने वाली कहा गया है। यह मूर्तिमान् रूप धारण करके स्कंद के अभिषेक के समय उपस्थित हुई थी। शची ने अपनी कामना की पूर्ति हेतु इसकी आराधना की थी। (महाभारत)

राधा—श्रीकृष्णप्रेमिका एक गोपी। भागवत में राधा का कहीं उल्लेख नहीं देखा जाता। इस ग्रंथ में श्रीकृष्ण-प्रेममत्ता एक गोपी का केवल निर्देशमात्र है। परंतु अन्य पुराणों में राधा का नाम देखा जाता है। ब्रह्म-वैवर्तपुराण के मतानुसार, राधा गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण के वाम अंग से उत्पन्न हुई हैं। ये श्रीकृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी हैं और उनके वाम अंग से उत्पन्न होने के कारण उनकी अत्यंत प्रियतमा हैं। श्रीराधा उत्पन्न होते ही सोलह वर्ष की युवती हो गईं। तदनंतर राधा श्रीकृष्ण से वार्ता करके रत्न-सिंहासन पर उनके वाम अंग में आसीन हुईं। इसी समय राधा के अंग से लक्षकोटि गोपांगना, गोप और कभी वृद्ध न होने वाली गौ उत्पन्न हुईं। गोलोक की राधा सुदामा के शाप से वृंदावन में उत्पन्न हुई थीं। एक समय इच्छामय श्रीकृष्ण ने रम्य वन में रमण करने की अभिलाषा की। इच्छा करते ही उनके अंग से राधा उत्पन्न हुईं।

सुदामा के शाप से गोकुल में वैश्य के घर राधा का जन्म हुआ। (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

राधाकृष्णदास—ये भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के फुफेरे भाई थे। बाबू राधाकृष्णदास भारतेंदु की फूफी गंगाबीबी के दूसरे पुत्र थे। इनके पिता का नाम कल्याणदास था और बड़े भाई का नाम जीवनदास।

इनका जन्म श्रावण सुदि पूर्णिमा सं० १९२२ वि० में हुआ था। जब इनकी केवल १० महीने की अवस्था थी तब इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। तदनंतर थोड़े दिनों के बाद इनके बड़े भाई भी चल बसे। अतः बाबू हरिश्चंद्र ने इन्हें अपने घर बुला लिया और वे ही उनका लालन-पालन करने लगे। इनकी शिक्षा का भी प्रबंध भारतेंदु ने किया। हिंदी और उर्दू की साधारण शिक्षा हो जाने पर ये स्कूल में अंग्रेजी पढ़ने के लिए बैठाए गए। सर्वदा रोगाक्रांत रहने के कारण इनकी अच्छी शिक्षा तो नहीं हो सकी, तथापि सत्रह वर्ष की अवस्था में इन्होंने इंट्रेंस क्लास तक का अभ्यास कर लिया। बंगला और गुजराती भाषाओं का भी ज्ञान इन्होंने प्राप्त कर लिया था। दुःखिनी बाला, निःसहाय हिंदू, महारानी पद्मावती, प्रताप नाटक आदि २५ पुस्तकें इन्होंने हिंदी में लिखी हैं। बाबू राधाकृष्णदास काशी नागरीप्रचारिणी सभा के मुख्य संचालकों में से थे। ये अपने एक मित्र के

साथ ठेकेदारी का काम करते थे। चौखंभा बनारस में इनकी एक दूकान भी थी। ४२ वर्ष की अवस्था में इनका देहांत हुआ।

राधाचरण गोस्वामी—ये गौड़ ब्राह्मण और वृंदावन के रहने वाले हैं। इनका जन्म सन् १८५६ ई० के फरवरी महीने में हुआ था। इनके पिता का नाम गोस्वामी लल्लू जी था।

इनकी माता बड़ी विदुषी थी, अतएव छोटी अवस्था से ही इनकी शिक्षा प्रारंभ हो गई थी। व्याकरण और कतिपय काव्यों के पढ़ने पर इन्होंने श्रीमद्भागवत तथा अपने संप्रदाय के धर्मग्रंथ पढ़े।

सन् १८७४ ई० में ये फर्रुखाबाद के पंडित उमादत्त से विद्याध्ययन करने लगे। उसी समय अंग्रेजी पढ़ने की भी इनकी इच्छा हुई थी, परंतु शिष्यों के डांट बताने पर इन्होंने अंग्रेजी पढ़ना छोड़ दिया। सन् १८७६ ई० में इन्होंने और गोस्वामी मधुसूदनलाल ने मिलकर 'कविकुलकौमुदी' नाम की सभा स्थापित की। इस समय भी इनके शिष्यों ने इस कार्य का विरोध किया था, परंतु इन्होंने उधर ध्यान ही नहीं दिया।

पहली पत्नी का देहांत होने पर इन्होंने अपना दूसरा ब्याह किया और उस पत्नी को पढ़ा-लिखाकर पंडिता बनाया। ये ब्राह्म धर्म के पक्षपाती लेख भी 'हिंदूबांधव' नामक पत्र में प्रकाशित कराते थे। इन्होंने दयानंदजी के ग्रंथों को पढ़कर कहा था—"स्वामी दयानंदजी के वाक्य मुझे वेदवाक्यवत् मान्य हैं और उनकी प्रत्येक बात मेरे लिए उदाहरणस्वरूप है।"

इनके लेख लगभग हिंदी के सभी पत्रों में छप चुके हैं। इन्होंने सन् १८८३ ई० में 'भारतेंदु' नाम का एक मासिक पत्र निकाला, परंतु सहायता के अभाव से वह थोड़े दिन चलकर बंद हो गया। सन् १८८४ में प्रयाग में जो हिंदी पत्र-संपादकों की सभा हुई थी उसके ये ही मंत्री थे। ये कलकत्ता में कांग्रेस के प्रतिनिधि होकर गए थे। वहां से लौटकर इन्होंने 'विदेश-यात्रा विचार' और 'विधवा-विवाह विवरण' नामक दो ग्रंथ विलायत-यात्रा और विधवा-विवाह के पक्ष में सामाजिक सुधार पर लिखे। सन् १८८५ ई० में ये वृंदावन के म्युनिसिपल कमिश्नर नियत हुए।

ये सनातनधर्मी थे। ब्राह्म धर्म के पक्षपाती और स्वामी दयानंद के वाक्यों को वेदवाक्यवत् मानने वाले और ये समाज-सुधारकों में से भी थे।

रानडे—इनका पूरा नाम था महादेव गोविंद रानडे एम० ए०, एल० एल० बी०, सी० आई० ई०। ये बंबई हाईकोर्ट में जज थे। इनका जन्म २० जनवरी, १८४२ ई० को महाराष्ट्र ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम अमृतगोविंद रानडे था। इनके पिता का देहांत सन् १८७७ ई० में बंबई में हुआ था। महादेव गोविंद ने बंबई के एलफिस्टन कॉलेज में शिक्षा पाई थी। इसी कालेज से इन्होंने सन् १८६२ ई० में बी० ए० परीक्षा में विश्वविद्यालय-भर में सर्वोच्च स्थान पाया था और सन् १८६५ ई० में एम० ए० परीक्षा पास की, तथा उसी उपलक्ष्य में इन्हें स्वर्णपदक भी मिला। सन् १८६६ ई० में ये एल० एल० बी० परीक्षा में प्रथम वर्ग में उत्तीर्ण हुए। विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने के कारण ये उपाधिधारियों के राजा (Prince of Graduates) कहे जाते थे। सन् १८६६ ई० में ये शिक्षा-विभाग में मराठी भाषा के अनुवादक बनाए गए। तदनंतर ये शोलापुर के अस्थायी जज नियत हुए। पुनः सन् १८६८ ई० में ये एलफिस्टन कॉलेज में अंग्रेजी साहित्य के अध्यापक नियत हुए। इस पद पर रानडे ने सन् १८७१ ई० तक काम किया। इसी वर्ष में ये हाईकोर्ट की 'एडवोकेट' परीक्षा के प्रथम वर्ग में उत्तीर्ण हुए। यह परीक्षा विलायत की बैरिस्टरी परीक्षा के समान समझी जाती है। इस परीक्षा के पास करने के अनंतर रानडे १० वर्ष तक अनेक स्थानों में सब-जज का काम करते रहे। सन् १८८४ ई० में इनकी पदोन्नति हो गई और ये छोटी अदालत में जज का काम करने लगे। सन् १८८६ ई० में ये 'भारतीय आय-व्यय-समिति' के मेंबर हुए। कई बार ये बंबई व्यवस्थापक सभा के सदस्य हुए थे। सन् १८९३ ई० में ये हाईकोर्ट के जज नियत हुए। ये मरने तक इसी पद पर काम करते रहे। सन् १९०१ ई० में इनकी मृत्यु हुई। इन्होंने अंग्रेजी में कई-एक ग्रंथ लिखे हैं।

(१) विधवा-विवाह की शास्त्रीयता। (२) महाराष्ट्रीय जाति का इतिहास। (३) खजाना कानून-संबंधी पुस्तिका। (४) राजा राममोहनराय की वक्तृता।

ये ब्राह्मधर्म के उत्साही मेंबर थे और बंबई विश्वविद्यालय की 'सिंडिकेट' सभा के मेंबर थे।

राम—अयोध्यापति महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र। पिता की आज्ञा से सीता और लक्ष्मण को साथ लेकर रामचंद्र जी १४ वर्ष के लिए वन गए। उस समय भरत अपने मामा के यहां गए थे। वहां से आकर उन्होंने अपने पिता का अंत्येष्टि संस्कार किया। अयोध्या आते ही भ्रातृ-वत्सल भरत ने सुना कि कैकयी के कारण ही रामचंद्र जी को वन जाना पड़ा है, अतएव उन्होंने अपनी माता को बहुत धिक्कारा। राज्य-शासन करने के लिए मंत्रियों ने भरत से कहा, परंतु उनके प्रस्ताव को उन्होंने अस्वीकार कर दिया। सेना लेकर रामचंद्र को लौटाने के लिए उन्होंने दक्षिण की यात्रा की। इधर जटा-वल्कल धारण करके रामचंद्र जी सीता और लक्ष्मण के साथ रथ पर चढ़कर अयोध्या के समीप गुह की राजधानी शृंगवेरपुर में उपस्थित हुए। राजा गुह ने रामचंद्र जी के आतिथ्य के लिए अपने यहां सामग्री तैयार की थी। रामचंद्र ने कुछ सामान्य जलपान करके वहीं वह रात्रि बिताई। प्रातःकाल होते ही सुमंत्र रोता हुआ लौट गया। लक्ष्मण के कहने से गुह ने नाव मंगवाई और वहीं रामचंद्र ने गंगा पार की। यहीं से रामचंद्र जी के दुःखमय वनवास का प्रारंभ हुआ। वन के कंटकाकीर्ण महादुःखदायी मार्ग पर चलकर उन लोगों ने बड़े कष्ट से पहला दिन और रात बिताई। वे चलते-चलते चित्रकूट पहुंचे। वहां पर्णशाला बनाकर रहने लगे।

एक दिन सेना का कोलाहल सुनकर लक्ष्मण ने एक पेड़ पर चढ़कर देखा कि भरत सेना लिए हमारी ओर आ रहे हैं। लक्ष्मण ने भरत से अमंगल की आशंका करके पहले से ही भरत का मार्ग रोकने के लिए रामचंद्र जी से कहा। परंतु रामचंद्र जी ने किसी प्रकार भरत का अनिष्ट करना नहीं चाहा। थोड़ी ही देर में भरत रामचंद्र जी के समीप जाकर उनके पैरों पर गिर गए। भरत ने अयोध्या लौट चलने के लिए रामचंद्र जी से बहुत कहा, परंतु प्रतिज्ञा भंग होने के भय से रामचंद्र जी ने अवधि के भीतर लौटना अस्वीकृत किया। राम ने अनेक प्रकार से समझाकर भरत को १४ वर्ष राज्यशासन करने के लिए कहा, परंतु भरत ने उसे उचित नहीं समझा। भरत तब निराश होकर रोने लगे। रामचंद्र जी ने भरत को अनेक प्रकार से समझाया। वसिष्ठ और जाबालि आदि ऋषियों ने भी अयोध्या लौट आने के लिए रामचंद्र जी से विशेष अनुरोध किया। जाबालि के नास्तिक उपदेशों को सुनकर रामचंद्र जी बड़े अप्रसन्न हुए। अनंतर बहुत वाद-विवाद होने पर स्थिर हुआ कि अवधि के भीतर रामचंद्र जी लौटकर नहीं जाएंगे; भरत रामचंद्र जी की पादुका सिंहासन पर रखकर प्रतिनिधि के रूप से १४ वर्ष तक राज्यशासन करें। भरत रामचंद्र जी की पादुका लेकर बड़े दुःख से अयोध्या लौट आए।

रामचंद्र जी ने सोचा, चित्रकूट अयोध्या से बहुत दूर नहीं है। यहां अयोध्या वाले आकर बीच में हमें चलने के लिए तंग करेंगे, इस कारण चित्रकूट छोड़कर वे दक्षिण की ओर चल दिए। रामायण के समय में चित्रकूट वनमय था। रामचंद्र जी के समय दक्षिण का अधिकांश भाग जंगलमय तथा वहां के आदिम अधिवासियों के अधिकार में था। वे आदिम अधिवासी रामायण में राक्षस, वानर, गोलांगूल, ऋक्ष आदि नाम से लिखे गए हैं। वाल्मीकि ने अयोध्या से चित्रकूट तक के मार्ग का सुंदर वर्णन किया है, परंतु चित्रकूट के दक्षिण के मार्गों का वर्णन वैसा नहीं किया। उधर के किसी जनपद का उन्होंने उल्लेख नहीं किया है। चित्रकूट छोड़कर रामचंद्र जी दंडकारण्य के अंतर्गत पंचवटी में पहुंचे और वहां कुटी बनाकर रहने लगे। राक्षस और भयंकर हिंस्रजंतु-समाकुल वन में होते हुए रामचंद्र पंचवटी में पहुंचे थे। यहीं लंकेश्वर रावण की बहन शूर्पनखा का नाक और कान काटे जाने पर रामचंद्र जी का राक्षसों से युद्ध हुआ। दंडकारण्य में रावण के सेनापति खर-दूषण १४ हजार सेना लेकर राज्यरक्षा के लिए रहते थे। वे सब रामचंद्र जी के द्वारा मारे गए। भगिनी की दुर्दशा तथा अपने सेनापतियों के मारे जाने की बात सुनकर संन्यासी के वेष में आकर रावण ने सीता का हरण किया। मारीच के मृत्युसमय की बातें सुनकर रामचंद्र जी के मन में संदेह उत्पन्न हुआ था। मार्ग में लक्ष्मण को अकेले आते देखकर रामचंद्र जी का संदेह और भी बढ़ गया। वे लक्ष्मण के साथ शीघ्रता से कुटी की ओर आए, परंतु कुटी में उन्होंने सीता को नहीं पाया। विलाप करते हुए दोनों भाई सीता को ढूंढ़ने के लिए वन में इधर-उधर घूमने लगे। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर उन लोगों ने मरते हुए जटायु को देखा। जटायु बोले, रावण सीता को हरण किए हुए जा रहा था। मैंने सीता की रक्षा के लिए उससे युद्ध किया, परंतु मैं सफल नहीं हो सका। रावण ने सीता और मेरे प्राण

दोनों को हर लिया। यह टूटा हुआ रथ, छत्र और दंड जो देखते हो, सो रावण के हैं। मैंने रावण के सारथी को मार डाला है। परंतु मेरे थक जाने पर उसने तलवार से मेरे पंख काट डाले। दुरात्मा रावण सीता को लेकर दक्षिण की ओर गया है। वह विश्रवा मुनि का पुत्र और कुबेर का भाई है—यह कहते कहते जटायु ने प्राण त्याग दिए। वहीं राम और लक्ष्मण ने जटायु की अंतिम क्रिया करके दक्षिण की ओर यात्रा की। अनंतर वे क्रौंचारण्य में गए और वहां राम ने कबंध नामक राक्षस का वध किया। कबंध को मारने से पहले रामचंद्र जी ने पंपा सरोवर के तीर पर ऋष्यमूक पर्वत पर उपस्थित होकर कपींद्र सुग्रीव के साथ मित्रता स्थापन करने का परामर्श स्थिर किया। अनंतर तापसी शबरी से रामचंद्र जी की भेंट हुई। चिराभिलषित रामचंद्र का दर्शन पाकर शबरी ने यथाशक्ति उनकी सेवा की और उन्हींके सामने ही उसने अग्नि में प्रवेश किया।

शबरी के आश्रम से राम-लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत पर उपस्थित हुए। दोनों भाइयों को आते देखकर सुग्रीव डर गए, और उन्होंने हनुमान् को उनका परिचय जानने के लिए भेजा। ब्राह्मण के वेष में हनुमान् उनके समीप उपस्थित हुए। हनुमान् ने उनके साथ विशुद्ध भाषा में बातें कीं। दोनों का परिचय पाकर हनुमान् उनको कंधे पर लेकर सुग्रीव के समीप ले गए। रामचंद्र जी ने सुग्रीव से सीता का अलंकार और उत्तरीय पाया। दोनों में मैत्री स्थापित हो जाने पर रामचंद्र जी ने बालिवध की प्रतिज्ञा की। राम ने अपने बल का परिचय देने के लिए एक बाण में सात ताल के वृक्षों का भेदन किया। राम और लक्ष्मण सुग्रीव के साथ किष्किधा गए। राम के कहने से सुग्रीव बालि के साथ युद्ध करने लगा। वृक्ष की ओट में बैठकर रामचंद्र जी बालि-सुग्रीव का मल्लयुद्ध देखने लगे। रामचंद्र जी ने जब देखा कि सुग्रीव बालि के साथ युद्ध में अब नहीं ठहर सकता, तब उन्होंने बाण मारकर बालि को गिरा दिया। छिपकर मारने के कारण बालि ने रामचंद्र को बहुत दुर्वाक्य कहे। राम ने बालि को इस प्रकार उत्तर दिया—मैंने तुमको मारकर अन्याय नहीं किया। यह मैंने बहुत ही उचित किया है। मैंने तुम्हारे योग्य दंड तुमको दिया है। शास्त्रों में छोटे भाइ की पत्नी, बहन और पुत्र की पत्नी ये कन्या के समान कही गई हैं। तुमने अपने छोटे भाई की पत्नी को रखकर धर्मशास्त्र-विरुद्ध काम किया है। धर्मशास्त्रों की रक्षा करना राजा का काम है। जो प्रजा धर्मशास्त्र के विरुद्ध काम करती है, राजा उसे दंड देता है। मैंने तुम्हें वही दंड दिया है। हम इक्ष्वाकुवंशी राजा हैं, हमारे छोटे भाई भरत अयोध्या में हैं और राज्य करते हैं। विचार की दृष्टि से देखा जाए तो तुम भरत की ही प्रजा माने जा सकते हो। मैं भरत की आज्ञा से पापियों को दंड देने के लिए नियत हूं। अतएव मेरा दिया हुआ दंड राजदंड ही है। अपराधी के प्रति क्षात्रधर्म का आचरण करना आवश्यक नहीं है। बालि मर गया और उसका अंतिम संस्कार समाप्त हुआ।

बालि के वध के अनंतर रामचंद्र जी ने सुग्रीव का किष्किधा के सिंहासन पर अभिषेक किया। राम-लक्ष्मण पास ही माल्यवान् पर्वत पर रहने लगे। राज्य पाकर सुग्रीव पहले की बात भूल गए। राज्य और पत्नी को पाकर सुग्रीव विलासिता में डूब गए। सीता के अन्वेषण करने की बात वे भूल गए। इधर रामचंद्र सीता के वियोग से व्याकुल हो गए थे। बरसात के चार महीने काटने रामचंद्र जी के लिए सौ वर्ष के समान हो गए। बरसात बीत गई शरद्ऋतु आई। इसी समय सीता के अन्वेषण करने का ठहराव था। परंतु सुग्रीव का कुछ पता न पाकर राम ने लक्ष्मण को किष्किधा में भेजा। लक्ष्मण किष्किधा में उपस्थित हुए। लक्ष्मण ने किष्किधा की अपूर्व शोभा देखी। यहां आकर उन्होंने हनुमान् आदि के घर देखे। सात खंड पार करके लक्ष्मण सुग्रीव के अंतःपुर में उपस्थित हुए। कोई बाधा नहीं दे सका। वहां अनेक रूपवती स्त्रियों से वेष्टित होकर सुग्रीव अनेक प्रकार के सुख-भोग में लिप्त थे। वहां अनेक प्रकार के बाजे बजते थे। स्त्रियां गाने में मस्त थीं। एकाएक लक्ष्मण के पहुंच जाने से सभी ठिठक गए। तारा लक्ष्मण के समीप आई और मधुर बातों से उनका क्रोध शांत किया। लक्ष्मण के शांत होने पर सुग्रीव उनके पास गए। सुग्रीव लक्ष्मण के साथ राम के समीप आए। रामचंद्र जी के साथ परामर्श होने पर सुग्रीव ने हनुमान् को दक्षिण दिशा में, सुषेण आदि को पश्चिम दिशा में, शतबलि को उत्तर दिशा में और विनत नामक वानरपति को पूर्व दिशा में भेजा। हनुमान् को छोड़कर और वानर सीता का अनुसंधान न पाकर लौट आए। हनुमान्, अंगद आदि वानरगण जटायु के भाई संपाति

से रावण के रहने का पता पाकर समुद्र के तीर गए। अगाध सागर को देखकर वानर भीत होकर आपस में विचार करने लगे। समुद्र के पार जाने के लिए हनुमान् ने महेंद्र पर्वत पर चढ़कर अपना शरीर बढ़ाया और वहां से कूदकर वे समुद्रस्थ मैनाक पर्वत पर गए और वहां से पुनः कूदकर लंका में उपस्थित हुए।

लंका में पहुंचकर हनुमान् ने अशोकवाटिका में सीता को देखा। राक्षस स्त्रियों का सौंदर्य देखकर हनुमान् विस्मित हो गए। पहले मंदोदरी को ही हनुमान् ने सीता समझा था। हनुमान् ने नंदनकानन-सदृश रावण के प्रमोदवन को उजाड़ डाला। प्रमोद-वन के उजाड़े जाने का संवाद पाकर रावण ने हनु-मान् को पकड़ने के लिए राक्षसों और सेनापतियों को आज्ञा दी। हनुमान् के हाथ से राक्षस सेना और जंबु-माली, विरूपाक्ष आदि सेनापति मारे गए। अंत में, रावण ने इंद्रजित् को भेजा। ब्रह्मास्त्र के द्वारा हनु-मान् को बांधकर इंद्रजित् ने रावण के सामने उप-स्थित किया। रावण ने पहले हनुमान् को मार डालने की आज्ञा दी थी परंतु विभीषण के कहने से उसने आज्ञा दी कि हनुमान् की पूंछ में कपड़े लपेटकर आग लगा दो। हनुमान् की पूंछ में आग लगा दी गई। हनुमान् ने उसी अग्नि से लंका भस्म करके सीता का दर्शन किया। सीता से विदा होकर हनु-मान् अरिष्ट पर्वत पर चढ़ गए। वहां से वानरों के साथ मिलकर रामचंद्र के समीप हनुमान् उपस्थित हुए। रामचंद्र जी उनसे बड़े प्रेम से मिले। हनुमान् ने लंकापुरी का जैसा ऐश्वर्य और वैभव होने का वर्णन किया है, उससे अमरावती का स्मरण होता है। राम-चंद्र जी ने सुग्रीव की सेना सजाकर समुद्रतीर की यात्रा की। रावण के गुप्तचरों ने शायद बनैले फलों में विष का योग न कर दिया हो, इस कारण रामचंद्र जी ने अपनी सेना में आज्ञा प्रचारित की कि बिना परीक्षा किए कोई वन्य फल न खाने पाए।

इसी समय रावण से अपमानित होकर विभीषण राम की शरण में आया। सुग्रीव आदि वानरों ने इस अज्ञातकुलशील राक्षस को शिविर में रखने की सम्मति नहीं दी, परंतु रामचंद्र जी ने शरणागत का त्याग करना उचित नहीं समझा। रामचंद्र जी समुद्र के तीर पर उपस्थित हुए। समुद्र की विशालता देखकर रामचंद्र जी सोचने लगे कि समुद्र को कैसे पार किया जाएगा।

रामचंद्र जी तीन दिन तक उपवास करके समुद्र की उपासना करने लगे। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि या तो मैं समुद्र पार होऊंगा या वहीं प्राणत्याग करूंगा। जब उन्होंने देखा कि उपासना से कुछ फल नहीं हुआ, समुद्र आया तक नहीं, तब क्रुद्ध होकर समुद्र शोषण के लिए बाण निक्षेप किया। उनके बाण से समुद्रस्थ प्राणी व्यथित हुए, इससे डरकर समुद्र उनके समीप उपस्थित हुआ। विश्वकर्मा-पुत्र कपि-सेनापति नल द्वारा सेतु निर्माण कराने के लिए उसने उनको सम्मति दी। नल ने समुद्र पर एक सेतु बनाया। नल की आज्ञा में रहकर वानरसेना ने शिला, वृक्षादि द्वारा सेतु निर्माण किया। सेतु के तैयार हो जाने पर रामचंद्र जी ने समुद्र पार होकर लंका पर आक्रमण किया। सुग्रीव और राम में विरोध करने के लिए रावण ने शुक नामक एक गुप्तचर को भेजा था। परंतु रावण कृतकार्य नहीं हो सका। इसी समय सीता को अपने वश में करने के लिए रावण ने राम के मारे जाने की खबर प्रचारित की और सीता को विश्वासित करने के लिए विद्युज्जिह्व नामक राक्षस की माया से बनाया गया राम का मस्तक उन्हें दिख-लाया। रामचंद्र जी की मृत्यु सुनकर सीता विलाप करने लगी। उसी समय विभीषण की पत्नी सरमा सीता के पास गई और उसने समझाया कि रामचंद्र जी के मरने की खबर झूठी है, वे मरे नहीं, जो मस्तक दिखलाया गया है वह उनका नहीं है। किंतु मायावियों की माया द्वारा वह बनाया गया है। तदनंतर दोनों ओर से युद्ध होने लगा।

एक दिन अंगद ने युद्ध में इंद्रजित् को परास्त कर दिया। तदनंतर इंद्रजित् ने राम-लक्ष्मण को नागपाश से बांध लिया। गरुड़ के स्पर्श से राम-लक्ष्मण नाग-पाश से मुक्त हुए। रणक्षेत्र में राक्षस सेना और सेना-पति कट-कटकर गिरने लगे। धूम्राक्ष, वज्रदंष्ट्र, अकंपन, प्रहस्त आदि सेनापति युद्ध में मारे गए। अनंतर स्वयं रावण युद्धक्षेत्र में अवतरित हुआ। रावण का सुग्रीव आदि के साथ पहले युद्ध आरंभ हुआ। तदनंतर राम के साथ उसका युद्ध होने लगा। उस युद्ध में पराजित होकर रावण घर लौट आया। कुंभकर्ण राम के साथ लड़ने आया, भयंकर युद्ध होने के बाद कुंभकरण मारा गया। तदनंतर इंद्रजित् ने माया की सीता का रामचंद्र के सामने वध किया। यह देख रामचंद्र व्याकुल होकर विलाप करने लगे।

विभीषण ने रामचंद्र को समझाया कि सीता के मारे जाने की बात बिलकुल माया है। अनंतर लक्ष्मण विभीषण के साथ निकुंभिला देवी के समीप गए, जहां इंद्रजित् यज्ञ करता था। लक्ष्मण ने उससे युद्ध किया और उसे मार डाला। पुत्र के मारे जाने का दारुण समाचार सुनकर रावण को बड़ा क्रोध आया और उसने पुत्रहंता लक्ष्मण को मारने की प्रतिज्ञा की और युद्धक्षेत्र में उतरा। उसने एक शक्ति के आघात से लक्ष्मण को मूर्च्छित किया। सुषेण नामक वानरसेनापति ने लक्ष्मण की चिकित्सा कराने के लिए हनुमान् को महोदय पर्वत से विशल्यकरणी नामक जड़ी लाने के लिए भेजा। हनुमान् महोदय पर्वत पर तो गए परंतु ये विशल्यकरणी औषधि को पहचान नहीं सके। अतएव उस पर्वत का शिखर उखाड़कर वे ले आए। इस औषध के सेवन से लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर हो गई। अनंतर राम-रावण में घोर युद्ध होने लगा, राम ने रावण को मार डाला। रावण का अंतिम संस्कार हो जाने पर रामचंद्र जी ने विभीषण को लंका का राज्य दे दिया।

तदनंतर राम की आज्ञा से हनुमान् ने अशोकवन में जाकर राम के विजयी होने का समाचार सुनाया। इस शुभ संवाद से सीता को बड़ा आनंद हुआ। थोड़ी देर तक तो सीता कुछ बोल भी न सकीं, अनंतर उन्होंने रामचंद्र जी को देखने की अपनी इच्छा प्रकट की। हनुमान् ने आकर सीता का अभिप्राय रामचंद्र जी से कहा। रामचंद्र जी ने कहा कि वेशभूषा से सज्जित होकर सीता आएं। स्वयं जाकर विभीषण ने रामचंद्र जी की आज्ञा सीता से कही। सीता उसी वेष में ही उनका दर्शन करना चाहती थी। परंतु विभीषण ने कहा, रामचंद्र जी ने जो कहा है वैसा करना ही उचित है।

अब नहा-धोकर, कपड़े पहनकर सीता रामचंद्र जी के सामने उपस्थित हुई। सीता को देखकर रामचंद्र ने कहा—आज मेरा सब परिश्रम सफल हुआ। मैं मानी हूं। रावण ने मेरे मान में आघात पहुंचाया था, मैंने उसका उत्तर दे दिया। पवित्र इक्ष्वाकुवंश के गौरव की रक्षा के लिए मैंने राक्षसकुल का नाश कर दिया। तुम राक्षस के घर में रही हो अतएव तुम्हारे चरित्र में मुझे संदेह है। मैंने तुम्हारे लिए नहीं, किंतु वैर चुकाने के लिए युद्ध किया है। तुमको रखने से हमारे कुल में भी कलंक लगेगा। अतएव अब तुम्हारी जहां इच्छा हो वहां तुम जा सकती हो। रामचंद्र जी की इन विषैली बातों से सीता को जो कष्ट हुआ, वह सीता ही जान सकती है। सीता ने चिता बनाने के लिए लक्ष्मण को आज्ञा दी। चिता तैयार हुई, सीता जलने के लिए चिता में बैठ गई। स्वयं अग्निदेव ने सीता की शुद्धता के लिए रामचंद्र जी के सामने साक्ष्य देकर सीता को ग्रहण करने के लिए राम से अनुरोध किया। रामचंद्र जी लक्ष्मण, सीता, सुग्रीव आदि के साथ पुष्पक विमान पर चढ़कर अयोध्या के लिए चल दिए। वन जाने के ठीक १४वें वर्ष रामचंद्र जी प्रयाग में भरद्वाज मुनि के आश्रम पर पहुंचे। रामचंद्र जी ने हनुमान् को भरत के पास उन लोगों के आने का संवाद देने के लिए भेजा। रामचंद्र यथासमय अयोध्या में पहुंचे और उनका राज्याभिषेक हुआ। राजा होकर श्रीरामचंद्र जी ने चाहा था कि लक्ष्मण को युवराज का पद दें, परंतु उन्होंने उक्त पद लेना अस्वीकार कर दिया। लक्ष्मण ने कहा, आप भरत को युवराज बनाएं, मुझे तो आपकी सेवा में ही बड़ी प्रसन्नता है।

राम कवि—इनका नाम रामबक्स था। ये राणा सिरमौर के दरबार में थे। इनका लिखा 'रससागर' नामक एक ग्रंथ हिंदी-साहित्य में उत्तम है। इन्होंने सतसई की टीका भी लिखी है।

रामकृष्ण परमहंस—बंगाल हुगली जिला के अंतर्गत एक गांव में इनका जन्म हुआ था। माता-पिता के स्नेह और यत्न से रामकृष्ण ने सब बाधा-विघ्नों को अतिक्रम करके आठवें मास में पैर रखा। इनकी माता ने इनका नाम गदाधर रखा, परंतु यह नाम परिवार के अन्य लोगों को अच्छा नहीं लगा। इस कारण इनका नाम बदलकर 'रामकृष्ण' रखा गया। पांच वर्ष की अवस्था में इनकी विद्या आरंभ कराई गई और गांव की एक पाठशाला में ये पढ़ने के लिए बैठाए गए। पढ़ने-लिखने में इनका मन नहीं लगता था, पाठ की ओर कुछ ध्यान न देकर ये सर्वदा खेल-कूद में लगे रहते थे। गाने-बजाने में इनका बड़ा अनुराग था। कहीं गाना या कथा हो, वहां ये अवश्य ही जाते थे। एक दिन इनके एक बाल-सहचर ने कहा था कि भाई, तुम्हारा गला बड़ा ही मधुर है, तुम कुछ गाओ। उस दिन से रामकृष्ण संगीत का अभ्यास करने लगे और किसीकी सहायता न लेकर ये संगीतविद्या में निपुण हो गए।

रामकृष्ण के पिता का नाम खुदिराम चट्टोपाध्याय था। चट्टोपाध्याय पंडित थे। संसार-निर्वाह

के लिए उन्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ा था। इनके तीन और दो कन्याएं थीं। ज्येष्ठ पुत्र का नाम रामकुमार, मध्यम का रामेश्वर और छोटे का नाम रामकृष्ण था। पिता के कार्य में योग देने के लिए रामकुमार कलकत्ता चले गए और झामापुकुर नामक स्थान में उन्होंने पाठशाला स्थापित की।

गांव में रहने के कारण रामकृष्ण का पढ़ना-लिखना ठीक तरह नहीं हो सका। इसलिए रामकुमार ने अपने छोटे भाई को कलकत्ता बुला लिया। इस समय रामकृष्ण की अवस्था १४ वर्ष की थी। कलकत्ता में आने पर भी रामकृष्ण का मन पढ़ने-लिखने में नहीं लगा। इन्होंने जो कुछ सीखा भी सो अपनी इच्छा से नहीं, किंतु भाई के डर से। यद्यपि इनका चित्त पढ़ने-लिखने में नहीं लगता था, तथापि इनकी मेधाशक्ति और इनका प्रत्युत्पन्नमतित्व विलक्षण था। पौराणिक पंडितों से रामायण, महाभारत आदि की कथा सुनकर इन्हें उन विषयों का पूर्ण ज्ञान हो गया था।

रामकृष्ण की अवस्था जिस समय प्राय: १८ वर्ष की थी उसी समय रामकुमार कलकत्ता से प्राय: तीन कोस उत्तर दक्षिणेश्वर नामक स्थान में काली जी के पुजारी नियत हुए। मारवाड़वंशी, रानी रासमणि ने भागीरथी के तीर पर काली का एक मंदिर बनवाया था, रामकुमार उसी मंदिर में पुजारी नियत हुए। इस मंदिर में पुजारी होने पर रामकुमार ने कलकत्ता की पाठशाला को तोड़ दिया और रामकृष्ण को लेकर वे वहीं रहने लगे। वहीं हुगली जिला के रहने वाले रामचंद्र मुखोपाध्याय की कन्या शारदा सुंदरी से रामकृष्ण का ब्याह हुआ। दक्षिणेश्वर में दो-तीन वर्ष रहने के पश्चात् रामकुमार का परलोकवास हो गया। रानी रासमणि और उनके दामाद रामकुमार को अपने पुत्र के समान समझते थे। अतएव उनकी मृत्यु से उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। उनके परिवार-पालन के लिए उन्होंने रामकृष्ण को उसी पद पर नियत किया। देवी की पूजा के विषय में रामकृष्ण को कुछ भी ज्ञान नहीं था। अत: वे पूजा की विधि पढ़कर बड़े उत्साह से भगवती की पूजा करने लगे।

इसी प्रकार कई वर्ष पूजा करने के अनंतर रामकृष्ण योगाभ्यास करने के लिए उत्कंठित हुए। अतएव इन्होंने उसी बाग में एक कुटी बनाई और वहां योगाभ्यास करने लगे। योगसाधन करने के पहले इन्होंने एक संन्यासी से संन्यास ग्रहण किया। उसी समय से इन्होंने कामिनी-कांचन का संबंध छोड़ दिया। लोगों ने इनकी अनेक प्रकार से परीक्षा भी ली, परंतु आग में पड़ने से स्वर्ण की द्युति ही बढ़ती है। ५२ वर्ष की अवस्था में इनकी मृत्यु हुई। मृत्यु के कुछ महीने पहले इनके गले में एक घाव हो गया था। उससे इनको बड़ा कष्ट हुआ और उसी रोग से इनकी मृत्यु हुई।

इनके अनेक शिष्य थे, जिनमें सर्वप्रधान शिष्य स्वामी विवेकानंद थे।

रामकृष्ण वर्मा—इनके पिता हीरालाल खत्री सन् १८४० ई० में पंजाब से पैदल काशी आए। यहां आकर उन्होंने परचून की दूकान खोली और ५० वर्ष की अवस्था में आजमगढ़ में उन्होंने अपना ब्याह किया। जिससे राधाकृष्ण, जयकृष्ण और रामकृष्ण नाम के तीन पुत्र उत्पन्न हुए।

बाबू रामकृष्ण वर्मा का जन्म सन् १८५९ में हुआ था। ७० वर्ष की अवस्था में इनके पिता का देहांत हुआ। उस समय इनके बड़े भाई की अवस्था १६ वर्ष की थी और इनकी अवस्था केवल एक वर्ष एक महीने की थी। अतएव इनकी माता पर इन तीनों पुत्रों के पालन-पोषण का भार पड़ा।

कुछ बड़े होने पर ये गुरु के यहां हिंदी पढ़ने लगे। जब इन्होंने हिंदी में पढ़ना-लिखना सीख लिया, तब ये जयनारायण कॉलेज में अंग्रेजी पढ़ने के लिए बैठाए गए। पढ़ने में इनका मन खूब लगता था। बाइबिल की परीक्षा में ये सदा प्रथम रहा करते थे। उक्त कॉलेज से एंट्रेंस पास कर लेने पर इन्होंने क्वींस कॉलेज में नाम लिखवाया। क्वींस कॉलेज में इन्होंने बी० ए० क्लास तक पढ़ा। ये बी० ए० की परीक्षा पास नहीं कर सके। ये घर पर एक पंडित से संस्कृत पढ़ा करते थे। बाइबिल पर इनकी अधिक श्रद्धा देखकर इनके अध्यापक ने अपने धर्म पर इनका अनुराग दृढ़ किया।

छात्रावस्था में ट्यूशन करके ये अपना निर्वाह करते थे। पढ़ना छोड़ने के बाद हरिश्चंद्र स्कूल में ये अध्यापक नियुक्त हुए, परंतु वहां थोड़े दिनों काम करने के पश्चात् इन्होंने उक्त पद को त्याग दिया। तदनंतर इन्होंने पुस्तकों की एक छोटी-सी दूकान कर ली। बाबू हरिश्चंद्र तथा गोपालमंदिर के महाराज की इनपर विशेष कृपा थी, क्योंकि ये कुशाग्रबुद्धि और हिंदी

भाषा के स्वाभाविक कवि थे। इनकी किताबों की दूकान अच्छी चली, उससे इन्हें लाभ हुआ। सन् १८८४ ई० में इन्होंने एक प्रेस खरीदा। इस प्रेस से पहले-पहले 'ईसाई मतखंडन' नाम की एक पुस्तक छपी। उस पुस्तक की बड़ी बिक्री हुई। शीघ्र ही इनका छापाखाना प्रसिद्ध हो गया। इसी साल के मार्च महीने से 'भारतजीवन' नामक पत्र निकालना इन्होंने प्रारंभ किया।

ये शतरंज खेलने में बड़े प्रवीण थे। अतएव इन्होंने पंडित अंबिकादत्त व्यास की सहायता से कचौरी गली में 'चेस क्लब' स्थापित किया था। ताश खेलने का भी इन्हें शौक था। सन् १८८१ ई० में इन्होंने ताशकौतुकपचीसी नाम की एक पुस्तक लिखी और छपवाई थी। लोगों ने उसे बहुत पसंद किया और उसकी बिक्री भी खूब हुई।

यों तो इन्होंने हिंदी गद्य में अनेक पुस्तकें लिखीं, परंतु इनका सबसे बड़ा काम 'कथासरित्सागर' का अनुवाद है। इसके दस भाग इन्होंने अनुवाद किए थे, परंतु अधिक अस्वस्थ होने के कारण ये उस कार्य को आगे नहीं कर सके। सन् १९०६ ई० में जलोदर रोग से इनका शरीरांत हुआ।

मनुष्य में कितनी शक्ति होती है, उसके उपयोग करने से मनुष्य क्या-क्या कर सकता है, बाबू रामकृष्ण इसके आदर्श थे।

रामगाम—बौद्धग्रंथों के उल्लेखानुसार कोलिय गणतंत्र के दो प्रमुख केंद्र थे—एक रामगाम में और दूसरा देवदह में। शाक्यों एवं कोलिय गणतंत्रों ने संयुक्त रूप से रोहिणी नामक नदी पर एक बांध बांधा था, जिसके लिए पारस्परिक अधिकार-संबंधी विवाद उठ खड़ा होने पर बुद्ध ने उसका निर्णय किया था। कनिंघम ने वर्तमान रोवाई या रोहवैनी नदी से उसको समीकृत किया है। उत्तरप्रदेश के बस्ती जिले में स्थित रामपुर देवरिया ही प्राचीन रामगाम है।

रामगिरि—एक प्राचीन पर्वत का नाम। यह नागपुर के पास है। यह इस समय 'रामटेक' नाम से प्रसिद्ध है।

रामचरण कवि—ये गणेशपुर जिला बाराबंकी के रहने वाले ब्राह्मण थे। संस्कृत और हिंदी के ये निपुण कवि थे। संस्कृत में इनका लिखा 'कायस्थकुलभास्कर' नामक ग्रंथ है। हिंदी में भी 'कायस्थधर्मदर्पण' नामक ग्रंथ इन्होंने लिखा है। इनकी रचना-शैली और विषय-प्रतिपादन के ढंग अनोखे होते थे। इनकी कविता में अनुप्रास खूब पाए जाते हैं।

रामदास स्वामी—महाराष्ट्रीय एक महात्मा। ये छत्रपति शिवाजी के गुरु थे। महाराष्ट्र देश में प्रसिद्धि है कि ये हनुमान् जी के अवतार थे। वे अपने मत को पुष्ट करने के लिए भविष्यपुराण का यह श्लोक प्रमाण में देते हैं—

कृते तु मारुताख्यश्च त्रेतायां पवनात्मजः।
द्वापरे भीमसंज्ञश्च रामदासः कलौ युगे।।

चारों युगों में हनुमान् जी का कौन अवतार हुआ, यही बात इस श्लोक में लिखी है। सत्ययुग में मारुत, त्रेता में पवनात्मज, द्वापर में भीम और कलियुग में रामदास नाम से हनुमान् के अवतार होंगे।

गोदावरी नदी के किनारे कृष्णाजी पंत ठोसर नामक एक देशस्थ ब्राह्मण रहते थे। उनके चार पुत्र थे। बड़े पुत्र दशरथ पंत अपने पिता के धन में भाग लेना उचित न समझकर वहां से कुछ दूर बड़गांव नामक गांव में चले गए। वह गांव उजाड़ हो गया था। केवल कुछ ग्वाल गाय चराने के लिए रहते थे। दशरथ पंत ने ग्वालों के मुखिया लखमा जी को वहां का जमींदार बनाया और ये वहां के पटवारी और पुरोहित का काम करने लगे। धीरे-धीरे उस प्रांत में अनेक गांव बस गए। उस इलाके के पटवारी और पुरोहित का काम दशरथ पंत को ही मिला। दशरथ पंत बड़े भगवद्भक्त थे। वे रामचंद्र जी के उपासक थे। उनके छः पुत्र थे। बड़े का नाम रामाजी पंत था। पिताजी की मृत्यु के पश्चात् रामाजी पंत को उस इलाके की पटवारगिरी और पुरोहिती का काम मिला। इन्हींके वंश में सूर्याजी पंत नामक भगवद्भक्त और ब्रह्मज्ञानी पुरुष उत्पन्न हुए। उनकी स्त्री का नाम राणूबाई था। सूर्याजी पंत सूर्यनारायण के एकांत उपासक थे। पटवारी के काम से जो अवसर इन्हें मिलता था उसमें ये सूर्यनारायण की उपासना किया करते थे। सूर्याजी पंत को सूर्य ने दो पुत्र होने का वर दिया था। सूर्याजी का दूसरा पुत्र सन् १६०८ ई० में उत्पन्न हुआ। उसका नाम नारायण रखा। बड़े होने पर इसी नारायण की समर्थ रामदास के नाम से प्रसिद्धि हुई। इनके जन्मदिन से ही सूर्याजी पंत की सुख-समृद्धि बढ़ने लगी। उस समय महाराष्ट्र देश में एकनाथ महाराज नाम के एक ब्रह्मज्ञानी साधु रहते थे। सूर्याजी पंत अपनी पत्नी के साथ प्रतिवर्ष उनके दर्शनों के लिए जाया करते थे। उनके आने

के समय एकनाथ महाराज कहते थे कि तुम्हारे घर में दो महात्मा अवतार लेने वाले हैं। इस साल नारायण का जन्म हुआ और सूर्याजी पंत उनके दर्शनों के लिए गए। आने के समय एकनाथ जी महाराज ने दोनों को संबोधन करके कहा—"तुम धन्य हो, तुम्हारा वंश भी धन्य है, तुम्हारी भक्ति और उपासना अनुपम है। इसीलिए हनुमान् जी के अंश से यह बालक तुम्हारे यहां उत्पन्न हुआ है। हमारे उठाए कार्य को यह पूर्ण करेगा। अब हम अपना अवतार समाप्त करने वाले हैं।" इस भविष्यवाणी के कुछ ही दिनों बाद महात्मा एकनाथ जी ने प्रस्थान किया।

नारायण बालपन में बड़े चंचल और नटखट थे। खेलकूद में वे सर्वदा लगे रहते थे। वे गांव के लड़कों को अपने साथ लेकर गोदावरी के किनारे चले जाते और बड़े-बड़े वृक्षों पर चढ़ते। एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर कूदकर चढ़ने का उन्हें पूरा अभ्यास था। जब वे गांव में रहते तब भी शांत नहीं रहते। गांव में भी एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर, इस भीत से उस छप्पर पर कूदा करते थे। बालकपन में इनका उपद्रव तथा खटपट देखकर यदि लोगों ने इन्हें हनुमान् का अवतार कहा तो इसमें आश्चर्य क्या है।

सूर्याजी पंत ने पांचवें वर्ष में इनका यज्ञोपवीत संस्कार बड़ी धूमधाम से किया। यज्ञोपवीत के बाद उनके पिता ने इनकी शिक्षा के लिए एक वैदिक ब्राह्मण नियत किया। नारायण ने उन्हींसे उत्तम अक्षर लिखना नित्य-नैमित्तिक कर्म तथा कुछ संस्कृत का अभ्यास किया। इसी समय इनके पिता सूर्याजी पंत का स्वर्गवास हो गया। दोनों भाइयों ने मिलकर पिता की उत्तरक्रिया संपन्न की। तब से नारायण के बड़े भाई गंगाधर उनके पढ़ाने-लिखाने पर ध्यान रखने लगे। यद्यपि नारायण संस्कृत के प्रकांड पंडित नहीं थे, तथापि उपनिषद् और भागवत आदि ग्रंथों का अर्थ ये समझ लेते थे।

समर्थ रामदास तो बालकपन से ही विरक्त थे, परंतु पिता की मृत्यु के अनंतर उनका वैराग्य बढ़ गया। रामदास के बड़े भाई का नाम गंगाधर था। लोग उन्हें श्रेष्ठ भी कहते थे। जिस प्रकार स्वामी रामदास हनुमान् के अवतार समझे जाते हैं, उसी प्रकार उनके बड़े भाई भी सूर्य के अवतार समझे जाते थे। वंशपरंपरा के अनुसार, श्रेष्ठ भी रामचंद्र के उपासक थे। श्रेष्ठ शिष्यों को मंत्रोपदेश भी दिया करते थे। एक दिन रामदास ने देखा कि इनके बड़े भाई श्रेष्ठ ने एक मनुष्य को मंत्रोपदेश भी दिया, यह देखकर रामदास को भी मंत्र ग्रहण करने की बड़ी अभिलाषा उत्पन्न हुई। उन्होंने अपने बड़े भाई से मंत्रोपदेश करने के लिए कहा। बड़े भाई ने उत्तर दिया—आपकी अवस्था अभी छोटी है। मंत्रोपदेश के लिए जो योग्यता चाहिए वह आपमें अभी नहीं है। इस प्रकार का उत्तर सुनकर रामदास हनुमान् जी के मंदिर में चले गए। उसी गांव के बाहर गोदावरी के किनारे एक राम जी का मंदिर था, उस मंदिर में जाकर रामदास हनुमान् जी की प्रार्थना करने लगे। उनकी भक्ति और निष्ठा से प्रसन्न होकर हनुमान् जी ने उन्हें दर्शन दिए। हनुमान् जी ने धीरज देकर उनसे कहा—आप मंत्रग्रहण करने की इतनी शीघ्रता क्यों कर रहे हैं। परंतु रामदास ने कुछ सुना ही नहीं। अंत में, हनुमान् जी ने दूसरी गति न देखकर उनको रामचंद्र का दर्शन कराया। रामचंद्र ने उन्हें त्रयोदशाक्षर मंत्र का उपदेश किया। कृष्णा नदी के तीर तपस्या करने की आज्ञा देकर श्रीरामचंद्र अंतर्हित हो गए।

संसार में जन्म और ब्याह दो ही उत्सव बड़े मंगल के समझे जाते हैं। नारायण की माता राणूबाई बहुत चाहती थी कि नारायण का ब्याह हो जाए। परंतु ब्याह की बात उठते ही नारायण बिगड़ उठते थे। इससे उनकी माता की चिंता बढ़ जाती थी। नारायण के बड़े भाई ने माता को समझाया भी, परंतु माता का चित्त कैसे माने।

एक दिन राणूबाई नारायण को एकांत में ले गई। और उन्होंने पूछा—बेटा, क्या तुम हमारा कहना न मानोगे। नारायण ने उत्तर दिया—मां, यदि तुम्हारा कहना नहीं मानेंगे, तो किसका कहना मानेंगे। माता ने कहा—बेटा, सप्तवेदी होने तक विवाह में 'ना' न करो। यह सुनकर रामदास घबड़ा गए। थोड़ी देर सोचकर उन्होंने उत्तर दिया। अच्छा सप्तवेदी होने तक मैं 'ना न करूंगा। माता ने नारायण की पेचीली बातों का अर्थ नहीं समझा। उन्होंने जाना कि पुत्र विवाह करने के लिए प्रस्तुत हो गया। उन्होंने अपने बड़े पुत्र से जाकर सभी बातें कहीं। उन्होंने हंसकर कहा—ठीक है।

राणूबाई ने एक कुलीन कन्या से ब्याह निश्चित

किया। बरात सजी, मंडप में वर गया, सब कृत्य होने लगा, देखते-देखते सप्तवेदी की बारी आई। उस समय पुरोहित ने कहा—सावधान। नारायण ने सोचा, मैं तो सर्वदा सावधान रहता हूं तो भी ये सावधान करते हैं। इनके सावधान करने में कुछ अर्थ अवश्य होगा, यही सोचते उन्हें माता की बात याद आई। उन्होंने सोचा, मैंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की, अब मैं दोषी भी नहीं हो सकता। यही सोचकर विवाह-मंडप से निकलकर भाग गए। उनके पीछे बहुत लोग दौड़े भी परंतु किसीने उनको पाया नहीं। यह संवाद सुनकर माता राणूबाई बड़ी दुःखिनी हुई। श्रेष्ठ ने उन्हें समझाया, आप नारायण के लिए कोई चिंता न करें, वह जहां रहेगा वहां आनंद में ही रहेगा। मैंने तो पहले ही कहा था कि उसके ब्याह करने का प्रयत्न ही निरर्थक है। अच्छा, जो हुआ सो अच्छा ही हुआ।

मंडप से भागकर नारायण कुछ दिनों तक तो अपने गांव के पास वन में छिपे रहे। अनंतर वहां से नासिक पंचवटी में चले गए, वहां से पूर्व की ओर दो-तीन मील पर टकाली गांव में गए। वे गांव के बाहर एक वृक्ष के नीचे कुटी बनाकर रहने लगे। अब उन्होंने तप करना प्रारंभ किया। प्रातःकाल वे गोदावरी स्नान करने जाते और वहां दोपहर तक कटि पर्यंत जल में खड़े रहकर जप किया करते थे। तदनंतर पंचवटी में जाकर वे भिक्षा मांग लिया करते और रामचंद्र को नैवेद्य लगाकर भोजन करते। भोजनोपरांत पुनः भजन-पूजन करने लगते। संध्या होने पर वे जप और ध्यान में मग्न हो जाते थे। इस प्रकार वे बड़ी कठिन तपस्या करने लगे। जल में रहने के कारण कमर के नीचे का चाम और मांस, मत्स्य आदि जलजंतुओं ने काट खाया था। स्वयं स्वामी रामदास ने अपने इस कठिन तप का वर्णन किया है—

कष्टें विण फल नाहीं कष्टें विण राज्य नाहीं।
आधीं कष्टाचें दुःख सोसिती ते पुढें सुखाचें भोगिती॥

अर्थात् बिना कष्ट के फल नहीं होता, कष्ट किए बिना राज्य नहीं मिलता। जो पहले कष्ट के (तप के) दुःख सहते हैं वे आगे सुख के फल भोगते हैं।

इस प्रकार समर्थ ने १२ वर्ष बड़ी दृढ़ता के साथ तपस्या की। इतने दिनों में इन्हें बड़े-बड़े विघ्नों का भी सामना करना पड़ा था। परंतु उन्होंने बड़ी दृढ़ता से उनका सामना किया और वे अपने उद्देश्य से विचलित नहीं हुए। बारह वर्ष बीतने पर उन्होंने तपस्या छोड़ दी और अपनी कुटी में हनुमान् जी की मूर्ति स्थापित की और उनकी पूजा के लिए उद्धव गोस्वामी को नियत करके वे तीर्थयात्रा के लिए निकले।

समर्थ ने तीर्थयात्रा और देशपर्यटन पैदल ही किया। नगरों, ग्रामों को देखते-देखते स्वामी रामदास काशी में पहुंचे। काशी में गंगास्नान करके विश्वनाथ के दर्शन के लिए उनके मंदिर में गए। उस समय कुछ ब्राह्मण रुद्राभिषेक कर रहे थे। ब्राह्मणों ने विश्वनाथ के पास जाने के लिए उन्हें रोका। समर्थ विश्वनाथ और ब्राह्मणों को प्रणाम करके लौट पड़े। परंतु उनके लौटते ही ब्राह्मणों को विश्वनाथ की मूर्ति ही नहीं दीख पड़ने लगी। इसका कारण ब्राह्मणों को समझते देर न लगी। वे दौड़े-दौड़े रामदास के पास जाकर उन्हें मंदिर ले गए। काशी से समर्थ अयोध्या जी गए। अयोध्या में उन्होंने कुछ दिनों तक वास भी किया था। वहां से वे मथुरा-वृंदावन आदि तीर्थों में गए। द्वारका में समर्थ ने श्रीराम की मूर्ति स्थापित की और प्रभासक्षेत्र में रामदासी संप्रदाय का मठ।

प्रभासक्षेत्र से ये काश्मीर श्रीनगर गए। वहां नानकपंथी साधु रहते थे। उनके यहां जब कोई जाता था तब वे उसका बड़ा आदर करते थे और वेदांत के कई प्रश्न भी पूछते थे। उन लोगों ने रामदास से भी कई प्रश्न पूछे। रामदास ने बड़ी सरलता से उन प्रश्नों के उत्तर दिए। रामदास पर उनकी बड़ी भक्ति हो गई। उन लोगों ने रामदास को एक महीने तक ठहराया। जब समर्थ जी वहां से चलने लगे तब उन साधुओं ने मंत्रग्रहण करने की प्रार्थना की। समर्थ ने उत्तर दिया—आपके गुरु नानक जी हैं, जिन्होंने मुसलमानों से भी राम नाम कहलवाया, वही उपदेश तुम्हारे लिए काफी है, आप लोग उसीकी सार्थकता करो। वहां से समर्थ चलकर उत्तर हिमालय की ओर चले। तदनंतर इन्होंने गोदावरी की प्रदक्षिणा की, गोदावरी की प्रदक्षिणा के समय में ये अपने घर भी गए थे। और वहां अपनी पूज्य माता के दर्शन किए थे। धर्मरक्षाव्रत में शिवाजी को इन्होंने ही दीक्षित किया। शिवाजी ने इनसे मंत्रग्रहण किया था। समर्थ रामदास स्वामी ने कई-एक ग्रंथ लिखे हैं। उनमें कुछ ग्रंथों के नाम लिखे जाते हैं—

(१) दासबोध, (२) रामायण, (३) मन के

श्लोक, (४) चौदाशतक, (५) जनस्वभावगोसावी, (६) पंचसमासी, (७) जुनाटपुरुष, (८) मानसपूजा, (९) जुनादासबोध, (१०) पंचीकरणयोग, (११) चतुर्थयोगमान, (१२) मानपंचक, (१३) पंचमान, (१४) रामगीता, (१५) कृतनिर्वाह, (१६) चतु:-समासी, (१७) अक्षरपदसंग्रह, (१८) सप्तसमासी, (१९) रामकृष्णस्तव, (२०) दासप्रबोध आदि-आदि।

इनके अतिरिक्त इन्होंने और भी अनेक स्फुट पद्य लिखे।

सन् १६८१ ई० में इन्होंने प्रयाण किया।

रामदीन त्रिपाठी—ये हिंदी के कवि थे। टिकमापुर जिला कानपुर के ये रहने वाले थे। ये कवि महाकवि मति-राम के वंशज थे। चरखारी के राजा रतनसिंह के यहां ये प्राय: रहते थे। एक बार राजा रतनसिंह की सभा में ये बैठे थे। उस समय और भी जागीरदार सरदार कवि आदि दरबार में उपस्थित थे। स्वयं राजा रतनसिंह भी दरबार में थे। उस समय इन्होंने अपनी ओर राजा की विरक्ति देखकर कहा—

जो बांधी छत्रशाल जू हृदयसाहि जगतेश।
परिपाटी छूटै नहीं महराजा रतनेश॥

रामसनेही—एक धर्मपंथ। रामचरण नामक एक मनुष्य इस पंथ का प्रवर्तक है। रामचरण मूर्तिपूजा का विरोधी था। इसी कारण उसके प्रवर्तित संप्रदाय में रामचंद्र देवता माने जाते हैं सही, परंतु उनकी मूर्ति की ये पूजा नहीं करते। राजपूताने के अंतर्गत शाह-पुर में इनका प्रधान मठ है। बूंदी, कोटा, जयपुर, जोधपुर, चित्तौड़ आदि स्थानों में इस मत के उपा-सनामंदिर हैं।

सन् १७१८ ई० में इस रामसनेही पंथ के प्रवर्तक रामचरण का जन्म जयपुर राज्य के अंतर्गत सूरसेन नामक गांव में हुआ था। इस संप्रदाय के उपासक विदेही और मोहिनी नामक दो भागों में विभक्त हैं। विदेही तो नंगे रहते हैं, और मोहिनीगण के साधु लाल रंग के दो कपड़े रखते हैं। ये मिट्टी के पात्र से पानी पीते हैं और पत्थर के बर्तन में खाते हैं।

रामसिंह—(१) कोटा के राजा। इनके पिता का नाम किशोरसिंह था। रामसिंह ने अपने पिता के साथ दक्षिण के युद्ध में बड़ी कीर्ति पाई थी। पिता किशोरसिंह के स्वर्गवास होने पर रामसिंह कोटा के राजा हुए। रामसिंह किशोरसिंह के द्वितीय पुत्र थे। न्याय से कोटा राज्य का अधिकार इनके बड़े भाई विशनसिंह को था, परंतु उन्होंने पिता की आज्ञा पालन नहीं की, इससे अप्रसन्न होकर पिता ने उनको राज्य से वंचित कर दिया। सम्राट् औरंगजेब के मरने के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों में गद्दी के लिए झगड़ा हुआ। उस समय रामसिंह ने दाक्षिणात्य के राजप्रतिनिधि कुमार आजिम का पक्ष लेकर बड़े शाहजादे मोआजिम के विरुद्ध यात्रा की। सं० १७६४ वि० में जाजब नामक स्थान के युद्ध में ये मारे गए।
(टाड्स राजस्थान)

(२) बूंदी के राजा। इनके पिता का नाम बिशन-सिंह था। सन् १८२१ ई० में ये ११ वर्ष की अवस्था में बूंदी के सिंहासन पर बैठे। ये बाल्यावस्था से ही शिकार खेलने के बड़े शौकीन थे। इन्होंने छोटी अवस्था में पहले-पहल सूअर का शिकार खेला था। इनकी माता कृष्णगढ़ की राजकुमारी थी। महाराव राजा बिशनसिंह अपने पुत्र का अभिभावक कर्नल टाड साहब को बना गए थे।

महाराव बिशनसिंह की मृत्यु के बाद कृष्णराम नामक एक बुद्धिमान् मनुष्य बूंदी राज्य के मंत्री-पद पर नियुक्त किया गया। जब तक कर्नल टाड रज-वाड़े के ब्रिटिश एजेंट रहे तब तक कृष्णराम राज-कीय मामलों में उनसे सलाह ले लिया करते थे। टाड साहब के अपने देश में चले जाने पर भी कृष्ण-राम ने अपनी स्वामीभक्ति का ही परिचय दिया। इनके सुप्रबंध से बूंदी राज्य की प्रजा अत्यंत सुखी हुई। कर्नल म्यालिसन ने लिखा है कि कृष्णराम के शासन से बूंदी राज्य का समस्त ऋण चुक गया, हिसाब-किताब नियमपूर्वक रखा गया। उन्होंने राज-कार्य के प्रत्येक विभाग की अवस्था संतोषजनक कर दी थी। और वे सेना का नियमित समय पर वेतन भी चुका देते थे। परंतु एक घटना से उन्हें अपने प्राण यों ही गंवाने पड़े। वह घटना इस प्रकार हुई थी—महाराव रामसिंह का ब्याह जोधपुर की राज-कन्या के साथ हुआ था। महाराव ने जोधपुर की राजकुमारी के साथ कुछ निष्ठुरता के व्यवहार किए थे। महाराव और महारानी के अनबनाव को दूर करने के लिए जोधपुर से कतिपय सामंत बूंदी आए। आने के तीसरे ही दिन उनमें से एक ने मंत्री कृष्ण-राम को मार डाला। इनसे वहां के महाराव बड़े क्रुद्ध हुए और उनको उचित दंड देने का दृढ़ रूप से निश्चय

किया। जिन लोगों ने यह कुकृत्य किया था, वे भागते समय पकड़े गए, और उन्हें प्राणदंड की आज्ञा मिली। और भी कई सामंत मारे गए।

इस कारण से बूंदी राज्य और जोधपुर राज्य में परस्पर युद्ध होने की संभावना थी। परंतु गवर्नमेंट ने अपने एजेंट को वहां भेजकर इस भावी युद्ध को दबा दिया।

वे एक योग्य और स्वाधीन शासक थे। उनके समय में बूंदी राज्य की सुख-संपत्ति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। (टाड्स राजस्थान)

(३) जयपुर के एक महाराज। महाराज रामसिंह का जन्म सन् १८३३ ई० में हुआ। इनके पिता महाराज जयसिंह की मृत्यु सत्रह वर्ष की अवस्था में हुई। अतः रामसिंह दो वर्ष की अवस्था में जयपुर की राजगद्दी पर बैठाए गए। उस समय जयपुर राज्य की अवस्था अत्यंत शोचनीय हो गई थी। आचिसन साहब लिखते हैं—जयपुर राज्य में दीर्घकालव्यापी अराजकता के कारण गवर्नमेंट का बहुत कर बाकी रह गया था और राज्य की आमदनी भी बहुत घट गई थी, इसी कारण गवर्नमेंट ने राज्य के अभ्यंतर शासन में हाथ डाला। कर्नल म्यालिसन साहब ने लिखा है—बालक महाराज रामसिंह ब्रिटिश पोलिटिकल एजेंट के अधीन रखे गए। उसी पोलिटिकल एजेंट के तत्त्वाधान में एक शासक मंडल भी स्थापित हुआ। पांच प्रधान सामंत उस मंडल के सदस्य हुए और राज्य की सभी भारी-भारी बातें उन्हींके विचार से निर्धारित होती थीं।

महाराज रामसिंह की बाल्यावस्था में जयपुर राज्य का शासन इसी प्रकार होता रहा। जयपुर राज्य की अराजकता इस समय दूर हो गई थी। महाराज की शिक्षा के लिए भी उचित प्रबंध किया गया। पंडित शिवधन महाराज के शिक्षक नियत हुए।

सन् १८५७ ई० में महाराज को अपने राज्य-शासन का संपूर्ण भार मिल गया। परंतु महाराज को अनुभव न होने के कारण उन्हें पोलिटिकल एजेंट की सम्मति लेकर काम करना पड़ता था। महाराज ने अपने खर्चालू पूर्वमंत्री को हटाकर उस पद पर अपने भाई लक्ष्मणसिंह को नियत किया और राजस्व विभाग के मंत्री पंडित शिवधन नियत हुए। परंतु महाराज ने मंत्रिमंडल को तोड़ा नहीं। उन्होंने उसी मंत्रिमंडल की सहायता से ही राज्य का शासन किया।

इसी समय गवर्नमेंट को एक बड़ी भारी विपद का सामना करना पड़ा था। जिस समय महाराज रामसिंह को शासन का भार मिला, उसी साल भारत में सिपाही-विद्रोह हुआ था। सिपाही-विद्रोह के समय महाराज रामसिंह ने गवर्नमेंट की बड़ी सहायता की। इसके पुरस्कार में इन्हें गवर्नमेंट से कोटा कासिम परगना मिला था।

महाराज रामसिंह के समय राजधानी की बड़ी उन्नति हुई। जयपुर का निर्माण तथा म्युनिसिपलिटी आदि के अनेक उपयोगी प्रबंध महाराज ने प्रजा के लिए किए। ये गवर्नमेंट के बड़े प्रीतिपात्र थे। इनकी योग्यता से जयपुर राज्य एक बार पुनः सुखी हो गया। सन् १८८० ई० में सुयोग्य महाराजा रामसिंह का स्वर्गवास हुआ। (टाड्स राजस्थान)

(४) जयपुर के महाराज। इनके पिता नाम था महाराज जयसिंह। महाराज जयसिंह मिर्जा राजा के नाम से प्रसिद्ध थे। अकबर के समय में जिस प्रकार मानसिंह ने प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, उसी प्रकार औरंगजेब के समय में महाराज जयसिंह की प्रतिष्ठा थी। महाराजा जयसिंह को छः हजारी मनसब प्राप्त था, परंतु उनके पुत्र रामसिंह को छः हजारी मनसब न मिला। ये बादशाह की आज्ञा से असम निवासियों के साथ युद्ध करने गए थे और वहीं मारे गए। महाराज रामसिंह की मृत्यु सन् १७४६ ई० में असम में हुई। महाराज मानसिंह का एक पुत्र था, जिसका नाम बिशनसिंह था। (टाड्स राजस्थान)

(५) ये जोधपुर के राजा थे। इनके पिता का नाम अभयसिंह था। रामसिंह बड़े क्रोधी और उग्र-स्वभाव के मनुष्य थे। अभयसिंह की मृत्यु के पश्चात् रामसिंह का जोधपुर के सिंहासन पर अभिषेक हुआ। इनके अभिषेकोत्सव में सभी सामंत उपस्थित हुए थे, परंतु न मालूम किस कारण इनके चचा बख्तसिंह नहीं आए। उन्होंने अपनी धाय को भेज दिया था। उस धाय को देखकर रामसिंह जल गए। उन्होंने कहा—क्या चाचा साहब ने हमें बंदर समझा है, जो उन्होंने हमारे अभिषेक में इस डाकिन को भेजा है। इस घटना से रामसिंह बड़े उत्तेजित हो गए। उन्होंने एक बड़ी कड़ी चिट्ठी बख्तसिंह को लिख भेजी, तथा सेना को भी तैयार हो जाने की आज्ञा दी।

इस समय रामसिंह ने किसीकी बात नहीं सुनी।

उनके प्रधान सामंत आकर उनको समझाने लगे, परंतु रामसिंह के कठोर वचन से विरक्त होकर वे चले गए। वे प्रधान कवि के गांव में गए, उसी समय बख्तसिंह आकर उनसे मिले और उन्हें अपने पक्ष में कर लिया। युद्ध में रामसिंह हार गए। इस समय सभीने रामसिंह का साथ छोड़ दिया था, परंतु राजपुरोहित ने रामसिंह का उग्रस्वभाव जानते हुए भी उनका साथ न छोड़ा। राजपुरोहित ने महाराष्ट्र सेना से मिलकर उसे अपने पक्ष में कर लिया था, परंतु उस समय राजनीतिज्ञ बख्तसिंह ने ऐसा प्रबंध कर लिया था जिससे महाराष्ट्र सेना का उत्साह टूट गया। परंतु आमेर की महारानी की चतुरता से बख्तसिंह का अंत हो गया। रामसिंह का पथ अपेक्षाकृत कुछ निष्कंटक हो गया सही, परंतु उनके सभी कंटक दूर नहीं हुए। बख्तसिंह के पुत्र विजयसिंह और रामसिंह के युद्ध ने मारवाड़ का विध्वंस कर दिया।

बख्तसिंह के मरने पर रामसिंह ने राज्यप्राप्ति का पुनः उद्योग किया। महाराष्ट्र सेना की सहायता से रामसिंह को जोधपुर की गद्दी कुछ दिनों के लिए मिल गई। परंतु उनके सहायक महाराष्ट्र सेनापति जयअप्पा वहीं मारे गए। इससे महाराष्ट्रों का संदेह राजपूतों पर बढ़ गया। उन लोगों ने रामसिंह का पक्ष छोड़ दिया।

तदनंतर विजयसिंह ने रामसिंह को मारवाड़ राज्य के अधीन सांभर प्रदेश का राज्य दे दिया और वे भी उसीसे संतुष्ट हुए।

रामानन्द—रामानंदी संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य (देखो रामानंदी)।

रामानन्दी—रामोपासक संप्रदाय। इस संप्रदाय में राम ही विष्णुस्वरूप माने जाते हैं। विष्णु के अन्य अवतार भी पूज्य अवश्य हैं, परंतु वे कहते हैं कि रामावतार सब अवतारों में श्रेष्ठ हैं। इस संप्रदाय में सीताराम और हनुमान् की पूजा विशेष रूप से प्रचलित है। श्रीवैष्णवों के समान ये भी शालग्राम और तुलसीपत्र को बड़ा पवित्र समझते हैं। जिस प्रकार दक्षिण देश में श्रीसंप्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ है, उसी प्रकार उत्तर भारत में इस संप्रदाय की प्रधानता है। इस संप्रदाय के प्रवर्तक रामानंद हैं, इस कारण यह रामानंदी संप्रदाय नाम से परिचित होता है। कुछ लोग कहते हैं कि रामानंद रामानुज स्वामी के शिष्य थे। परंतु मतांतर से जाना जाता है कि श्रीरामानुज के बाद पांचवीं पीढ़ी के समय रामानंद उत्पन्न हुए थे। कोई कहते हैं, रामानंद तेरहवीं शताब्दी में वर्तमान थे और किसीके मतानुसार १४वीं सदी के अंत और १५वीं सदी के प्रारंभ में रामानंद का अस्तित्व प्रमाणित होता है। रामानंदी संप्रदाय की सृष्टि का इतिहास इस प्रकार है—रामानंद एक समय तीर्थयात्रा करने के लिए बाहर गए हुए थे। भारत के अनेक स्थानों में घूमकर जब वे अपने मठ में आए, तब उनके साथियों ने उनके साथ भोजन करने में अपनी असहमति प्रकट की। उन लोगों ने कहा, दूसरों के सामने भोजन करना रामानुज संप्रदाय की रीति के विरुद्ध है। रामानंद ने परिभ्रमण के समय उस रीति का उल्लंघन किया है, अतः उनको अब से पृथक् खाना पड़ेगा। मठाधिकारी रामानंद ने भी शिष्यों की बात को पुष्ट किया और उन्होंने रामानंद को अन्यत्र भोजन करने के लिए कहा। इससे अपने को अपमानित समझकर रामानंद उस मठ को छोड़कर दूसरी जगह चले गए। रामानंद ने अपना नया मठ स्थापित किया और नये धर्म मत का प्रचार करना प्रारंभ कर दिया। थोड़े ही दिनों में इनके अनेक शिष्य हो गए। काशी में पंचगंगाघाट पर इन्होंने एक मठ स्थापित किया। कहते हैं, मुसलमान बादशाहों के समय रामानंद के मठसमूह नष्ट कर दिए गए थे। परंतु जिस स्थान पर रामानंद का आदि मठ था, वहां आज भी रामानंद का पदचिह्न वर्तमान है। इस संप्रदाय को शृंखलित रखने के लिए रामानंदियों की एक पंचायत है। उन्हीं पंचों के ठहराव के अनुसार रामानंदी संप्रदाय के काम होते हैं। रामानंदी संप्रदाय के इष्टदेवता श्रीरामचंद्र हैं। इस संप्रदाय में किसी कठोर नियम का पालन नहीं करना पड़ता। रामानुज-संप्रदाय के अनेक बंधनों को इन्होंने शिथिल कर दिया था। इस संप्रदाय से अनेक नूतन संप्रदायों की सृष्टि हुई है। इनके शिष्यों ने भिन्न-भिन्न धर्ममत चलाए हैं। भक्तमाल नामक ग्रंथ में रामानंदी संप्रदाय के विषय में यह बात लिखी हुई है कि रामानंद सभी जातियों के मनुष्यों को शिष्य बनाते थे, वे जातिभेद नष्ट करने के लिए प्रयत्न करते थे। उनके मत से भक्त और भगवान् में कोई भेद नहीं है। जब भगवान् ने ही मत्स्य, कूर्म, वराह आदि नीच योनियों में जन्म लिया है तब भक्त भी नीच योनियों में जन्म लें, इसमें संदेह ही क्या है। इसी कारण वे सभी जातियों के

मनुष्यों को शिष्य बनाते तथा मंत्रोपदेश दिया करते थे। परंतु रामानंद ने जो ग्रंथ अथवा टीका लिखे हैं उनमें कहीं भी ब्राह्मण से भिन्न अन्य जाति को धर्मोपदेशक का पद नहीं दिया गया है। उन्होंने संस्कृत भाषा में ग्रंथ लिखे थे। परंतु उनके परवर्ती शिष्यों ने नये-नये ग्रंथ बनाकर सब जातियों के लिए इस संप्रदाय का द्वार मुक्त कर दिया। अन्य धार्मिक संप्रदायों के समान इस संप्रदाय में भी गृहस्थ और विरक्त दो श्रेणियां होती हैं। इस संप्रदाय के अनेक मठ हैं। उन मठों के प्रधान अधिकारी महंत कहे जाते हैं। ये लोग बड़े धनी हैं। एक-एक मठ छोटा-मोटा राज्य कहा जा सकता है। रामानंद के शिष्यों की माहात्म्यकथा भक्तमाल नामक ग्रंथ में वर्णित है। रामानंदियों का प्रधान तीर्थस्थान अयोध्यापुरी है।

रामनुजाचार्य—भगवान् रामानुजाचार्य श्री संप्रदाय को पुष्ट करने वालों में प्रधान थे। उनका जन्म जिस स्थान पर हुआ था वह एक तीर्थक्षेत्र है। स्कंदपुराण में सत्यव्रतक्षेत्र भूतपुरी और उस स्थान पर अनंतसागर नाम के एक जलाशय का वर्णन पाया जाता है।

एक बार महर्षि अगत्स्य ने भगवान् स्कंद से सत्यव्रतक्षेत्र और अनंतसरोवर का इतिहास कहने के लिए अनुरोध किया। महर्षि के अनुरोध करने पर स्कंद ने जो इतिहास कहा था उससे मालूम होता है कि स्वायम्भुव मन्वंतर के प्रजापति ब्रह्मा ने जंबूद्वीप के अंतर्गत पुण्यक्षेत्र भारतवर्ष में, वेंकटाद्रि के दक्षिण भागस्थ पापनाशक क्षेत्र में एक बार अश्वमेध यज्ञ किया। तब से वह स्थान तीर्थ हो गया। एक बार भगवान् रुद्र नंगे होकर और जटा खोले हुए उन्मत्त की तरह नाच रहे थे। उनकी यह दशा देखकर उनके अनुचर, भूत-प्रेत हंस पड़े।

इस अपमान को न सहकर महादेव जी ने अपने अनुचरों को शाप देते हुए कहा कि तुमने हमारा अपमान किया है। इसलिए अब तुम हमारे पास न रहने पाओगे। क्योंकि जो बड़ों का अपमान करता है, उसको स्थानच्युत होना पड़ता है।

महादेव जी के भूतगण, उनके शाप से डरकर ब्रह्मा जी की शरण में गए। तब ब्रह्मा जी ने उनको आज्ञा दी कि तुम जाकर सत्यव्रतक्षेत्र में तपस्या करो। ब्रह्मा जी की आज्ञा को सिर पर रख, वे वहां गए और नारायण का ध्यान करते-करते उन्होंने एक हजार वर्ष बिता दिए।

एक दिन आकाश में अचानक देवताओं की दुंदुभि बजती हुई सुनाई पड़ी। देखते-देखते श्रीमन्नारायण उन भूतों के सामने प्रकट हुए। तपस्या छोड़कर भूतगण खड़े हो गए और भगवान् का स्तव करने लगे। तब भगवान् ने उनसे कहा कि वर मांगो। इसपर भूतों ने अपने दु:ख की सारी कथा कह सुनाई।

उनकी कथा सुनकर नारायण ने महादेव जी को स्मरण किया। स्मरण करते ही महादेव जी बैल पर चढ़कर वहां आ पहुंचे और हाथ जोड़कर भगवान् की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे।

भगवान् ने मुस्कराकर महादेव जी से कहा—देवदेव, आपने इन भूतों का अभिमान तोड़ने के लिए जो शाप दिया है वह न्यायसंगत ही है, किंतु अब आप इनपर प्रसन्न होइए। ये सब बहुत दिनों से सत्यव्रतक्षेत्र में तपस्या कर रहे हैं, अब आप फिर इनको अपने पास रहने की आज्ञा दीजिए। क्योंकि भूल सभी से हुआ करती है।

महादेव जी ने भगवान् का कहना मान लिया। तब भगवान् ने नागराज अनंत से कहा, नागराज, तुम यहां एक सरोवर बनाओ। आज्ञा पाते ही उस पुण्यक्षेत्र में नागराज ने एक सरोवर बनाया। उस सरोवर में बड़ा सुंदर जल उत्पन्न हुआ। कमल आदि जल में उत्पन्न होने वाले सभी पुष्पों से सरोवर सुशोभित हुआ। तब नारायण ने भूतों को लक्ष्य करके कहा—अरे भूतो! तुम श्रद्धाभक्ति सहित इस सरोवर में स्नान करो। हमारी आज्ञा से नागराज ने यह सरोवर तुम्हारे लिए ही बनाया है।

वे भूत भगवान् की आज्ञा से उस सरोवर के पवित्र जल में धंसे और उनके शरीर पवित्र हो गए। फिर उन्होंने भगवान् शंकर की परिक्रमा की और उनके चरणों पर अपना मस्तक रखा। तब प्रसन्न होकर महादेव जी ने उन्हें अपने पास रहने की पुन: आज्ञा दी।

इसके बाद भूतों ने हाथ जोड़कर और साष्टांग प्रणाम करके श्रीमन्नारायण की प्रार्थना करते हुए कहा—हे देवेश! आप सब प्राणियों के अभीष्ट फलों को देने के लिए आज से इसी क्षेत्र में रहिए।

यह सुनकर नारायण ने एक बार शंकर की ओर देखा। शंकर श्रीमन्नारायण का संकेत समझकर कहने लगे—हे चराचरस्वामिन्! जितने दिनों स्वारोचिष मनु को अधिकार रहा, उतने दिनों आप

इस क्षेत्र में विराजिए। श्रीमन्नारायण ने शंकर के इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। इसके बाद उन भूतों ने भगवान् का उत्सव करने के लिए वहां एक नगरी बनाई। वह नगरी तीन योजन में बसाई गई और उत्सव देखने के लिए आने वाले देवताओं के ठहरने के लिए बहुत सुंदर रंग-बिरंगे और चारों ओर चारदीवारी से घिरे हुए मनोहर हर्म्य और बड़े ऊंचे-ऊंचे प्रासाद बनाए। इसके बाद उन भूतों ने महादेव जी समेत वहां पहुंचकर वैशाखी शुक्ल द्वादशी से भगवान् का उत्सव मनाना आरंभ किया। जब दूर-दूर से आए हुए देवता, ऋषि और सिद्धगण उत्सव देखकर अपने-अपने निवास-स्थान को लौट गए, तब उस नगरी में ब्राह्मणादि सब वर्णों के मनुष्य बसाए गए।

इसके बाद श्रीमन्नारायण ने महादेव जी से कहा, "शंकर ! अब तुम अपने इन भूतों के साथ जाकर कैलास पर्वत पर सुख से रहो किंतु अपने गणों सहित प्रतिवर्ष वैशाखी शुक्ला द्वादशी के दिन हमारा उत्सव करने के लिए यहां आना न भूल जाना। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि देव, मनुष्य, यक्ष, किन्नर आदि जो कोई वैशाखी शुक्ला द्वादशी को उपवास करेगा और अनंत-सरोवर में स्नान करके हमारी पूजा करेगा हम उसके सारे अभीष्ट पूरे करेंगे।" इस प्रकार वर देकर श्रीमन्नारायण ने महादेव को उनके अनुचरों सहित वहां से विदा किया। यह पुरी भूतों ने बनाई थी, इसलिए इसका नाम भूतपुरी पड़ा। इसी पुण्यक्षेत्र के अनंत नामक सरोवर में स्नान करके और आदिकेशव की आराधना करके अनेक राजर्षियों ने मनोवांछित फल पाया था (देखो स्कंदपुराणान्तर्गत भूतपुरी-माहात्म्य)।

श्रीरामानुज स्वामी के जन्मस्थान का यह तो पुराना वृत्त हुआ। अब हम उस स्थान की वर्तमान अवस्था का दिग्दर्शन कराते हैं। ऊपर के पौराणिक इतिहास से जाना जाता है कि भगवान् रामानुजाचार्य जिस क्षेत्र में भूमिष्ठ हुए, वह ग्राम बड़ा प्राचीन है और उस पवित्र स्थान पर अश्वमेधादि विविध यज्ञानुष्ठान हो चुके हैं। इस समय वही स्थान श्रीपेरंबधूरम् नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान मदरास हाते के चेंगलपत जिले के अंतर्गत है और वर्तमान मदरास नगरी से छब्बीस मील के अंतर पर अवस्थित है। यह मदरास रेलवे के त्रिमेलोर स्टेशन से दस मील के अंतर पर अवस्थित है। वस्तुतः मदरास रेलवे के त्रिमेलोर स्टेशन से दस मील के अंतर पर श्रीपेरंबधूरम् ग्राम पूर्वदक्षिण के कोने में अवस्थित है। अब इस स्थान पर, इसके नगर होने के कोई भी चिह्न विद्यमान नहीं हैं। चारों ओर नयन-प्रसन्नकारी शस्य-श्यामला भूमि है। नारियल, ताल, खर्जूर, गुवाक, वट, अश्वत्थ, पुन्नाग, नागकेसर आदि अनेक प्रकार के वृक्षों से सुशोभित यह एक छोटा-सा ग्राम है। दूर से इस ग्राम को देखने से मन आनंद से परिपूर्ण हो जाता है। रेलवे स्टेशन से उतरकर इस ग्राम में प्रवेश करने के लिए एक चक्करदार सड़क पर चलकर वहां पहुंचना होता है। इसी सड़क से कुछ दूर आगे बढ़कर आचार्य का जन्मक्षेत्र है। पहले स्वामीजी महाराज का जन्मस्थान मिलता है। उसके बाद उनके उपास्य देव श्रीकेशवदेव जी के मंदिर में जाना होता है। उसके पास ही उनके भ्रातुष्पुत्र कूरेशस्वामी के रहने का घर है। उसके सामने बड़ा लंबा-चौड़ा एक तालाब है। उसीका नाम अनंतसरोवर है। उस विशाल पर्वत सदृश अत्युच्च मंदिर के सामने उस सरोवर के होने से उस स्थान का सौंदर्य और माधुर्य कितना बढ़ गया है, हम इस बात को लिखकर समझा नहीं सकते। इस ग्राम में इस मंदिर के अतिरिक्त और भी ऊंचे गृह और अनेक झोपड़ियां हैं। उनमें बहुतसे लोग भी रहते हैं। प्रधानतः उनकी दो श्रेणियां हैं। इनमें अधिसंख्यक श्रीरामानुज संप्रदायस्थ शुद्धाचारयुक्त श्रीवैष्णव हैं। शंकराचार्य के मतावलंबी स्मार्त ब्राह्मणों का यहां अभाव नहीं है, किंतु संख्या बहुत कम है। स्कंदपुराण में महादेव और उनके अनुचरों द्वारा वैशाखी शुक्ला दशमी के दिन जिस उत्सव की कथा लिखी है वह अब भी प्रतिवर्ष वहां बड़ी धूमधाम के साथ होता है। इसी उत्सव का नाम 'ब्रह्मोत्सव' है।

ब्रह्मोत्सव देखने के लिए अनेक यात्री वहां जाते हैं। इस उत्सव के अतिरिक्त प्रति अमावस को वहां एक छोटा उत्सव होता है। इस ग्राम में एक अन्न-क्षेत्र अथवा भोजनालय भी है। तीर्थयात्रियों को वहां ब्राह्मणों के हाथ के बने हुए सुंदर खाद्य पदार्थ मूल्य देने पर मिलते हैं। क्षेत्र में भोजन करने की प्रथा आधुनिक नहीं है। सुनते हैं, यह प्रथा वहां बहुत प्रचलित है।

भगवान् रामानुजाचार्य का जन्म हारीतगोत्रीय

ब्राह्मणवंश में हुआ। किंतु वैदिक श्रौतसूत्र में ब्राह्मणों के जो अष्टत्रिंशत् गोत्र बतलाए गए हैं और जिनका उल्लेख धनंजयकृत धर्मप्रदीप में पाया जाता है उनमें हारीतगोत्र का नाम नहीं पाया जाता है। किंतु स्वामी जी ब्राह्मणवंश में ही उत्पन्न हुए थे। इसमें संदेह करने का कारण नहीं है। इस संबंध में भूत-पुरीमाहात्म्य में एक रहस्यकथा लिखी है। उसे हम क्रमशः आगे लिखते हैं। हारीत-गोत्रीय ब्राह्मणों के पूर्वपुरुष क्षत्रिय थे। पश्चात् भगवान् का आराधन करके वे ब्राह्मण हुए।

प्राचीनकाल में युवनाश्व नाम का एक परम-धार्मिक राजा भारतवर्ष में राज्य करता था। उसीके पुत्र महाराज मांधाता हुए। मांधाता के विषय में ऋषियों का लिखा एक श्लोक है, जिसका भावार्थ यह है कि जहां से सूर्य उदय होता है और जहां अस्त होता है वह सारा स्थान महाराज मांधाता के राज्य में था।

राजा युवनाश्व जब बूढ़े हुए और उनके कोई संतान न हुई, तब संतान की कामना से उन्होंने एक यज्ञ किया, किंतु अनवधानता के कारण अध्वर्यु ब्रह्म-तेजोवर्द्धक मंत्र का जप करने लगा। जब राजा को यह बात मालूम हुई तब उन्होंने अध्वर्यु से पूछा—द्विजवर! यह आप क्या करते हैं? हमने तो क्षत्रिय संतान की कामना से यह यज्ञ किया है। क्या आप इस बात को भूल गए?

अध्वर्यु ने उत्तर दिया—देवताओं की इच्छा से मुझे यह भ्रांति हुई। क्या चिंता है! आपके घर में ब्राह्मणोचित प्रकृतिसंपन्न सत्त्वगुणप्रधान पुत्र उत्पन्न होगा। इसपर धार्मिक राजा ने कुछ न कहा और वे पुत्र के जन्म होने की प्रतीक्षा करने लगे। काल-क्रम से राजा युवनाश्व की महिषी के सर्वांगसुंदर एक पुत्र जन्मा। पुरोहित वशिष्ठ जी ने उसका नाम 'हरीत' रखा। राजकुमार 'हरीत' अल्प आयास से सब शास्त्रों के ज्ञाता हो गए। इनका विवाह काशी-राज की कन्या के साथ हुआ। कुछ दिनों के बाद राजा युवनाश्व वानप्रस्थ होकर और पुत्र हरीत को राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त करके अपनी महिषी सहित हिमालय पर्वत पर चले गए। राजा हरीत के राज्यशासन में सारी प्रजा बड़े आनंद से कालयापन करने लगी।

एक बार आखेट के लिए वन में गए हुए राजा हरीत ने पर्वत कंदरा के भीतर किसीकी कातर ध्वनि सुनी। उसे सुनकर उनके हृदय में करुणा का वेग उमड़ा। उन्होंने उस कंदरा के समीप पहुंचकर देखा कि एक भयंकर व्याघ्र ने एक गौ को पकड़ रखा है। राजा ने उस विपन्ना गौ की रक्षा करने के लिए तुरंत व्याघ्र को लक्ष्य करके एक तीर चलाया। व्याघ्र ने बाण के आघात से कुपित होकर गौ की गर्दन मरोड़ डाली और वह स्वयं भूतल पर गिर पड़ा। बाघ और गौ एकसाथ ही मर गए। इस घटना से राजा को बड़ा दुःख हुआ। वे सोचने लगे, हाय! मैंने कैसा दुष्कर्म किया बाघ को मारकर मैंने गौ की हत्या की। अब मैं इस पाप से कैसे छुटकारा पाऊं! मुझे गौहत्यारा कहकर लोग मेरी घोर निंदा करेंगे इसलिए मेरे जीवन को धिक्कार है।

जिस समय राजा इस प्रकार अपने को धिक्कार रहे थे, उस समय आकाशवाणी हुई—राजन्! तुम दुःखी मत हो, तुम तुरंत सत्यव्रतक्षेत्र को चल दो। वहां भूतपुरी में जो अनंतसरोवर है, उसमें स्नान करने से तुम्हारा सारा पाप छूट जाएगा और तुम्हारा कल्याण होगा।

इस देववाणी को सुनकर राजा हरीत अपनी राज-धानी में पहुंचे और सब पुरोहितों और मंत्रियों को बुलाकर उन्होंने उनसे सारा हाल कहा। फिर वसिष्ठ जी से पूछा—महर्षि! सत्यव्रतक्षेत्र, भूतपुरी और अनंतसरोवर कहां हैं और वहां जाकर कौन-सा मंत्र जप करना चाहिए। महर्षि ने उस पुण्यक्षेत्र का पता बतलाकर कहा—राजन्! आप वहां जाकर वासुदेव मंत्र का जप करो। इस मंत्र के जप करने से तुम्हें सिद्धि मिलेगी।

उन्होंने फिर क्षण-भर भी विलंब नहीं किया और मंत्रियों को राज्य-भार देकर वे दक्षिण की ओर चल दिए। उन्होंने वेंकटाचल, सत्यव्रतक्षेत्र, कांचीपुरी, अरुणारण्य और अनंतसरोवर के दर्शन करने से ही अपने को कृतकृत्य समझा। राजा ने देखा, उस समय भूतपुरी हीनदशा को प्राप्त है। उसके चारों ओर बड़ा भारी वन है। उस वन में रहने वाले अनेक सिंह, व्याघ्र आदि पशु-प्यास से व्याकुल होकर अनंतसरोवर का जल पीते हैं। वे उस जीर्ण नगरी के भग्न प्रासादों का दर्शन करके बहुत खिन्न हुए। इसके बाद राजा हरीत विशेष नियमों का पालन करते हुए अतिशय संतप्तचित्त होकर कठोर तपस्या करने लगे। पहले दस

वर्ष उन्होंने फल-मूल खाकर, फिर बीस वर्ष पत्र-पुष्प खाकर, चालीस वर्ष सूखे पत्ते खाकर और फिर ६० वर्ष जल और वायु खाकर बिताए। इसके बाद राजा निराहार रहकर गुरूपदिष्ट मंत्र का जप करने लगे। एक दिन सहसा दिग्मंडल निर्मल हो गया और सुख-स्पर्श पवन चलने लगा। फिर आकाश में नगाड़ों के बजने का शब्द सुनाई पड़ा। इसके बाद एक अपूर्व विमान में बैठकर भगवान् नारायण हरीत के आश्रम में पहुंचे। राजा आंखें बंद करके नारायण का ध्यान कर रहे थे। इतने में बड़ी मीठी ध्वनि से किसी ने कहा—राजन् ! एक बार आंखें तो खोलो। देखो, तुम्हारी तपस्या का फल तुम्हारे सामने है। भगवान् नारायण तुम्हें दर्शन देने के लिए आए हैं।

यह सुनकर राजा सचेत हुए। उनका हृदय आनंद से भर गया। इससे बढ़कर इस संसार में और कौनसी वस्तु है, जिसकी मनुष्य अपेक्षा कर सकता है। वे जगत् के सर्वस्व आज राजा के सामने खड़े हैं। इससे बढ़कर राजा का आनंद बढ़ाने वाला और उन्हें कृतकृत्य करने के लिए और कौन-सी वस्तु अपेक्षित है !

राजा ने विमान में कोटि सूर्यमंडल की तरह देदीप्यमान भगवान् नारायण को अपने सामने देखकर, भक्ति में भरकर, भूतल पर गिरकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर वे उनकी स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति सुन भगवान् राजा हरीत पर प्रसन्न हुए और उनसे कहने लगे—राजन् ! हम तुम्हारी कठोर तपस्या और स्तव से तुमपर अत्यंत प्रसन्न हैं। अब तुम वर मांगो।

राजा बोले—देव ! मैं आखेट खेलने के लिए वन में जाकर असावधानता प्रयुक्त गोवध पाप से लिप्त हूं। अब जिस उपाय से मैं उस महापाप से छूटूं, वह उपाय कृपा करके बतलाइए। नारायण ने कहा—राजन् ! तुमने विपन्ना गौ की रक्षा करने के लिए व्याघ्र को तीर मारा। तीर के आघात से व्याघ्र ने कुपित होकर गौ को मार डाला, इसलिए इस बात की तुम तिल-भर भी चिंता मत करो। हमारे दर्शन करने से ही तुम्हारा वह पाप नष्ट हो गया। तुमने जैसी कठोर तपस्या की है उसपर प्रसन्न होकर हम तुम्हें 'ब्राह्मण्य' प्रदान करते हैं। तुम इसी शरीर से ब्राह्मणत्व प्राप्त करो और तुम्हारे हृदय में ब्राह्मणोचित सकल मंत्र प्रकाशित हों। हमारे अंश से संभूत कोई महापुरुष जगत् के कल्याणार्थ तुम्हारे वंश में जन्म ग्रहण करेगा और उसके नीचे के लोग भक्तिमान और ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ होंगे। वेद-वेदांत का सारा तत्त्व उसकी जिह्वा पर विराजेगा। तुम्हारे वंशजों के प्रति अनुग्रह प्रदर्शनार्थ मैं वैवस्वत मनु के अधिकार काल तक यहीं रहूंगा। राजन् ! स्वारोचिष मन्वंतर में शंकर के अनुचर भूतों ने यह पुण्यमयी नगरी बनाई। अब इसका जीर्णोद्धार करके तुम फिर इसे पूर्ववत् बना दो। इस अनंतसरोवर के पूर्वभाग में रत्नखचित एक मंदिर हमारे लिए बनाओ। आज चैत्र मास की शुक्ला सप्तमी है। इससे आज ही से उत्सव आरंभ करो और पूर्णिमा के दिन यज्ञस्नान करके उत्सव समाप्त कर देना। तुमने हमको प्रसन्न करने के लिए जो स्तव पढ़ा है, उसे नित्य संध्यासमय शुद्धचित्त होकर जो मनुष्य पढ़ेगा, हमारी कृपा से उसके सारे अभीष्ट पूरे होंगे। आज से तुम हमारी आराधना में तत्पर होकर इसी पुरी में रहो और अपना वंश-विस्तार करो। तुम्हारे वंश वाले हमारे परम भक्त होंगे और अति सुख से यहां रहेंगे।

राजा हरीत ने भगवान् की अनुकंपा पर परम प्रीतिमान होकर, उस नगरी का जीर्णोद्धार किया। अनंतसरोवर के तीर पर बनाया हुआ मनोहर मंदिर मणि-माणिक्य की प्रभा से चारों ओर से प्रकाशमान हो गया। राजा ने यथाविधान उस मंदिर में भगवान् की शंखचक्रगदापद्मधारिणी चतुर्भुज मूर्ति की प्रतिष्ठा की। तभी से वहां उत्सव होने लगा। इस प्रकार प्रतिवर्ष भगवान् का उत्सव करते हुए राजा हरीत देहांतरित हुए और उन्हें सायुज्य मुक्ति मिली। उन्हीं हरीत के वंश वाले ब्राह्मणगण भूतपुरी में भगवान् की अर्चना करते हैं।

इसी सुप्रसिद्ध भूतपुरी या श्रीपेरंबधूरम् में पूर्वोक्त हारीतगोत्रीय ब्राह्मणवंश में यजुर्वेदोक्त आपस्तंब-शाखाध्यायी केशव याज्ञिक ने जन्म ग्रहण किया। केशव ज्ञानी और सदाचारी थे। इंद्रियसंयम क्षमा-शीलता और सत्यनिष्ठा के लिए जनसमाज में उनका विशेष आदर था। जैसे वे मिताहारी थे, वैसे ही मित-भाषी भी थे। कभी किसीने उन्हें प्रतिज्ञा भंग करते देखा-सुना नहीं था। इस विष्णुभक्त और हरिपरायण ब्राह्मण की अवस्था ढल चली, किंतु पुत्रमुखदर्शन का सौभाग्य उन्हें तब भी प्राप्त नहीं हुआ। तब वे पुत्र की कामना से भगवान् का आराधन करने लगे।

एक बार चंद्रग्रहण पड़ा। ग्रहण स्नान करने के लिए केशव अपनी सहधर्मिणी कांतिमती के साथ कैरविनी नदी के उस स्थान पर पहुंचे, जहां वह समुद्र से मिलती है। पवित्रतोया कैरविनी और महोदधि के संगम में स्नान करके केशव ने पार्थसारथि नाम की विष्णुमूर्ति की सन्निधि में पुत्रप्राप्ति की कामना से पुत्रेष्टि यज्ञ किया। कहा जाता है कि होम समाप्त होने पर श्रीमन्नारायण ने केशव से कहा—अरे भक्त केशव ! मैं तुझपर प्रसन्न हुआ। बहुत शीघ्र पुत्र के रूप में मैं तेरे यहां जन्मूंगा। केशव इस प्रकार के आश्वासनवाक्य से आशान्वित होकर घर लौट गए। कुछ दिनों बाद सुलक्षणा केशवपत्नी ने अतिसुलक्षण-युक्त गर्भ धारण किया। उसके मुख की प्रसन्नता और देह का लावण्य देखकर सब लोग अनुमान करने लगे कि उसके गर्भ में कोई महापुरुष वास कर रहा है। धीरे-धीरे दसवां महीना भी पूरा हुआ। बंधु-बांधव किसी अलौकिक चरित्रसंपन्न शिशु के जन्म की प्रतीक्षा करने लगे। चैत्र मास में वसंत समागम से प्रकृति अभिनव शोभा से सज्जित हुई। वृक्ष नवजात पल्लवों से द्विगुण शोभा को प्राप्त हुए। रसाल-मुकुल के अपूर्व रस से मुग्ध होकर कोकिल संगीत में मग्न हुई। भौंरे मधुपान की आशा से फलों पर मंडराने लगे। ऐसे ही सुखमय समय में और शकाब्द ९३८ से (सन् १०१७ में) चैत्रमास में बृहस्पतिवार को दोपहर के समय शुक्ल पक्ष की पंचमी को आर्द्रा नक्षत्र और कर्कट लग्न में केशव-पत्नी कांतिमती का एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। जननी नवोदित प्रभाकर की तरह पुत्र को देखकर हर्षोत्फुल्ल हो गई। बंधु-बांधव मिलकर आनंद प्रकट करने लगे। भूतपुरी के रहने वालों के घर-घर आनंद-बधाई बजने लगी। कांतिमती के भाई शैलपूर्ण स्वामी भगिनी की पुत्रोत्पत्ति का समाचार सुनकर तुरंत भूत-पुरी में पहुंचे। अपूर्व लक्षण-संपन्न नवजात शिशु को देखकर वे आनंद से विह्वल हो गए। ज्योतिषियों ने कहा—इस शिशु के उत्पत्तिकाल में ग्रहों की चाल देखकर कहना पड़ता है कि समय पाकर यह बालक अद्वितीय होगा।

अनंतर जातकर्म समाप्त करके केशव ने बारहवें दिन पुत्र का नाम रखा। उस दिन सारे भाईबंद और ग्रामवासी केशव के घर पर एकत्र हुए। बालक के मामा शैलपूर्ण स्वामी ने कौतूहलप्रयुक्त बालक के हाथ में शंख, चक्र, गदा और पद्म अर्पण करके उसका नाम 'श्रीरामानुज' रखा।

नवजात शिशु शुक्लपक्षीय शशधर की तरह धीरे-धीरे परिवर्द्धित होने लगा। पिता ने क्रमशः श्रीरामानुज के चूड़ा मौंजीबंधन संस्कार कराए। इसके बाद जब श्रीरामानुज आठ वर्ष के हुए तब उनका उपनयन संस्कार कराया गया और उनके पिता केशव स्वयं उन्हें वेदाध्ययन कराने लगे। धीरे-धीरे श्रीरामानुज १६ वर्ष के हुए और पिता ने उनका विवाह करके पुत्रवधू के मुखकमल को देखना चाहा। उनकी अभिलाषा पूरी हुई। उनके सांसारिक सुख की सीमा न रही। पतिव्रता भार्या, मेधावी पुत्र और नवपरिणीता पुत्रवधू को घर में लाकर वे परमानंद से समय काटने लगे।

यह संसार क्षणभंगुर है। स्त्री पुत्रादि के साथ संबंध मेघच्छाया की तरह अचिरस्थायी है। केशव का आयुष्काल शेष हुआ। वे कुछ दिनों बाद पति-प्राणा सहधर्मिणी, स्नेहमय पुत्र और नयनानंददायिनी पुत्रवधू के स्नेहपाश को काटकर विष्णुलोक को चल दिए। यदि कोई और व्यक्ति होता तो पितृविच्छेद से विकल होकर बहुत दिनों तक शोक प्रकाश करता। किंतु श्रीरामानुज पितृवियोग से अधीर न हुए। उन्होंने विवेक के साथ शोक को मन से दूर करके बड़ी श्रद्धा के साथ पितृदेव का और्ध्वदेहिक कृत्य पूरा किया और वे कुछ दिनों तक स्नेहमयी जननी और सहधर्मिणी के साथ भूतपुरी में रहे।

पितृवियोग होने पर भी श्रीरामानुज स्वामी को सांसारिक सुख-स्वच्छंदता के उपयोगी विभव का अभाव न था। वे अपनी पैतृक संपत्ति द्वारा अनायास बहुत दिनों तक समय बिता सकते थे, किंतु उनकी ज्ञानपिपासा अतिप्रबल थी। उसको चरितार्थ करने के लिए स्वामी जी बड़े उत्सुक थे। सब शास्त्रों का अध्ययन करके विपुल ज्ञान की प्राप्ति के लिए श्री-रामानुज स्वामी ने दृढ़ संकल्प किया। उस समय द्रविड़ प्रदेश की राजधानी कांचीनगरी विद्या और धर्मचर्चा के लिए दक्षिण प्रांत में बहुत प्रसिद्ध थी। यादवप्रकाश नाम का एक वेदांती संन्यासी उन दिनों वहां की पंडितमंडली में बड़ा श्रेष्ठ था। श्रीरामानुज स्वामी सपरिवार कांचीपुरी में जाकर यादवप्रकाश के पास अध्ययन करने लगे। श्रीरामानुज नित्य जब यादवप्रकाश के पास अध्ययन करने जाते, तब अध्यापक

उनके सौंदर्य, उनकी प्रतिभा और वाक्चातुरी देख-सुनकर मुग्ध हो जाते थे।

जिन दिनों श्रीरामानुज स्वामी यादवप्रकाश के पास पढ़ने जाते थे, उन्हीं दिनों वहां के राजा की कन्या पर एक ब्रह्मराक्षस ने अधिकार जमाया था। तब राजा ने राक्षस को हटाने के लिए यादव को बुलाया। यादव श्रीरामानुज प्रमुख अपने शिष्यों को लेकर वहां आए। उसके अनेक यत्न करने पर भी जब राक्षस नहीं हटा, तब श्रीरामानुज स्वामी ने कन्या के मस्तक पर अपना चरण छुआया और उसकी ब्रह्म-राक्षसबाधा दूर कर दी। राजा ने प्रसन्न होकर स्वामी जी को बहुत द्रव्य दिया। इसपर यादवप्रकाश को डाह उपजी। मन ही मन वह स्वामी जी से द्वेष करने लगा। इतने में स्वामी जी के मौसेरे भाई गोविंदाचार्य भी यादवप्रकाश की पाठशाला में स्वामी जी के साथ पढ़ने के लिए आए।

एक दिन यादवप्रकाश वेदांत पढ़ा रहा था। उसने 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म, नेह नानास्ति किञ्चन' की व्याख्या इस प्रकार की—यह जगत् ब्रह्म है, ब्रह्मभिन्न कुछ भी नहीं है। हम लोग जो भिन्न-भिन्न पदार्थ देखते हैं वे मायामात्र हैं। यह विलक्षण अर्थ सुनकर रामानुज स्वामी का मन विरक्त-सा हो गया और उनसे न रहा गया। उन्होंने कहा—महानुभाव! आप तो श्रुति की व्याख्या न करके अपव्याख्या करते हैं। वस्तुतः इस श्रुति की व्याख्या वह नहीं है जो आपने अभी की है। उसकी व्याख्या यह है—यह सारा जगत् ईश्वर द्वारा अधिष्ठित है। प्रत्येक पदार्थ में ईश्वर विराज-मान है। ईश्वर जगत् की आत्मा है। उससे पृथक् होकर कोई भी वस्तु ठहर नहीं सकती। यह अर्थ सुनकर यादवप्रकाश अग्निशर्मा बन गया। उसका सारा शरीर कांपने लगा। वह ऊंच-नीच बातें कहकर स्वामी जी से कहने लगा—अरे शठ! दुराशय! तू क्या मेरा शिक्षक या गुरु है जो मेरी व्याख्या को अपव्याख्या बताकर मेरी निंदा करता है! स्वामी जी ने इस अपमान को चुपचाप सह लिया, किंतु उन-के मन में बड़ा खेद उत्पन्न हुआ और यादवप्रकाश से पढ़ना बंद करके अपने घर पर ही वेदांततत्त्व की गंभीर आलोचना स्वयं करने लगे।

कई मास हो गए। गुरु-शिष्य का साक्षात्कार नहीं हुआ। दोनों शास्त्रालोचना में लगे रहते। श्रीरामा-नुज सदा संतुष्ट रहते। वे उस झगड़े को भी भूल गए, किंतु यादवप्रकाश निश्चित नहीं था। वह सदा वैर का बदला लेने का उपाय सोचा करता था। एक दिन उसने शिष्यों को बुलाकर कहा—वत्सगण! तुम लोग जानते हो कि कांची के पंडितों में मेरी कैसी प्रतिष्ठा है। बड़े-बड़े पंडित मेरे किए हुए अर्थों को निर्विवाद स्वीकार करते हैं। तब मैं क्योंकर श्रुति की अपव्याख्या करने लगा। तुम लोगों ने रामानुज की धृष्टता देखी, उस दिन राजा के सामने भी उसने मेरा जैसा अपमान किया वह भी तुम्हें मालूम ही है। रामानुज शिष्य होने पर भी मेरा शत्रु हो रहा है। उसकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है, यदि वह कुछ दिन और जीता रहा, तो अद्वैत मत का मूलोच्छेद करके द्वैत मत को पुष्ट कर देगा। अतएव इस शत्रु को किसी उपाय से मार डालना चाहिए। क्योंकि जब तक यह जीता रहेगा तब तक मेरे मन को शांति नहीं मिलेगी।

शिष्य सरलमति गुरु को प्रसन्न करने के लिए कहने लगे—गुरुदेव! आप दुःखित न हों, आपको हम जैसे प्रिय शिष्य के रहते चिंता नहीं करनी चाहिए। अवसर मिलते ही हम लोग रामानुज का प्राण-नाश करके आपको निष्कंटक बना देंगे, आप निश्चित रहें। यह सुनकर यादव कहने लगा—वत्सगण! तुम लोगों ने जो कहा है वह रत्ती-रत्ती सत्य है; तुम लोग गुरु के उपकार के लिए सब कुछ करोगे। पर मैंने उसके प्राणनाश का एक उपाय सोचा है। चलो, हम लोग उसे साथ लेकर त्रिवेणी स्नानार्थ प्रयाग को चलें। वहां हम सब मिलकर भागीरथी के प्रबल प्रवाह में उसे डुबो दें। ऐसा करने से उसकी सद्गति होगी और हम लोगों को भी ब्रह्महत्याजनित पाप में लिप्त न होना पड़ेगा। इस प्रकार षड्यंत्र रच-कर, श्रीरामानुज स्वामी को बातों में फांसकर यादव उनको साथ लेकर शिष्यमंडली सहित प्रयाग की ओर चल दिया। उसकी शिष्यमंडली में श्रीरामानुज स्वामी के मौसेरे भाई गोविंदाचार्य भी थे।

वे लोग चलते-चलते विंध्याचल की तराई के निकट वन में पहुंचे। यादवप्रकाश अपनी शिष्यमंडली को साथ लिए हुए आगे-आगे जा रहा था और श्रीरामा-नुज अपने मौसेरे भाई गोविंदाचार्य के साथ पीछे-पीछे जा रहे थे। अवसर देखकर गोविंदाचार्य ने सारा हाल श्रीरामानुज से कहा और उन्हें सावधान करके वह झट से जाकर शिष्यमंडली में मिल गया। गोविंदाचार्य से सारा हाल सुनकर श्रीरामानुज ने उसी

समय से उन दुष्टों का साथ छोड़ दिया और रास्ता छोड़कर वे उस विकट वन में घुसे। चलते-चलते जब वे थक गए तब एक वृक्ष के नीचे सुस्ताने के लिए बैठे। बादल तो आकाश पर छाये ही हुए थे, इतने में वर्षा भी होने लगी। यादवप्रकाश ने जब देखा कि रामानुज साथ में नहीं हैं तब उसने उन्हें बहुत ढुंढ़वाया, पर उनका कुछ भी पता न चला, तब उसने समझ लिया कि किसी बनैले जंतु ने उन्हें खा लिया। यह सोचकर वह मन ही मन बड़ा प्रसन्न हुआ।

उधर श्रीरामानुज स्वामी को भगवान् वरदराज और जगज्जननी लक्ष्मी जी ने बहेलिया और बहेलिन का रूप धरकर कांची पहुंचाया। कांची पहुंचकर स्वामी जी ने अपना सारा हाल अपनी माता से कहा। माता पुत्र के संकट को कटा देखकर बहुत प्रसन्न हुई और उन्हें एकांत में ले जाकर बोली—बेटा! इस नगरी में कांचीपूर्ण नामक एक भक्त हैं। वे वरदराज के कृपापात्र हैं। तुम उनके साथ मेल करो और उनसे जाकर यह सारा हाल कहो। श्रीरामानुज स्वामी ने माता के कथनानुसार कांचीपूर्ण के पास जाकर सारा हाल कहा, जिसे सुनकर उन्होंने कहा—सुधीवर रामानुज! तुमपर भगवान् वरदराज की बड़ी कृपा हुई, नहीं तो तुम्हारा बचना कठिन था। अब तुम भगवान् के लिए स्वर्णकुंभ में जल भरकर भगवान् को अर्पण किया करो। यह बात लौटकर स्वामी जी ने माता से कही। माता कांतिमती के आदेशानुसार स्वामी जी शालकूप से जल लाकर भगवान् वरदराज की सेवा करने लगे।

श्रीरंगनाथ के कृपाभाजन श्रीयामुनाचार्य बड़े पंडित थे। उनके पास अनेक शिष्य वेद-वेदांग की शिक्षा प्राप्त किया करते थे। एक दिन उन्होंने अपने शिष्यों से कहा—शिष्यगण! तुम घूम-फिरकर एक ऐसे व्यक्ति का पता लगाओ जो सुलक्षण कांतियुक्त नवयुवक हो, सर्वशास्त्रपारदर्शी, मधुरभाषी, सदाचारी और भगवद्भक्त हो। शिष्यगण गुरु की आज्ञानुसार वहां से चल दिए। अंत में, वे कांची में पहुंचे। वहां श्रीरामानुज स्वामी को देखकर और उनके संबंध की सारी घटनावली को सुनकर वे श्रीयामुनाचार्य के पास लौट गए और उनसे सारा हाल कहा। वे श्रीयामुनाचार्य स्वामी जी को देखने के लिए उत्सुक हुए। परंतु अचानक बीमार हो जाने के कारण वे स्वयं कांची न जा सके।

उधर यादवप्रकाश ने लौटकर जब स्वामी जी के सकुशल कांची लौट आने का समाचार सुना, तब वह दुष्ट मन ही मन लज्जित हुआ और लोगों को धोखा देने के लिए उसने फिर श्रीरामानुज स्वामी से मेल कर लिया। स्वामी जी भगवान् वरदराज की सेवा करते हुए फिर उसके पास विद्याध्ययन करने लगे।

श्रीयामुनाचार्य जब रोग से मुक्त हुए तब अपने शिष्यों समेत वे कांची में आए। कांचीपूर्ण अपने गुरु के आगमन का समाचार सुनकर नगरवासियों समेत उनके स्वागत के लिए आगे बढ़े। दोनों भक्तों का मिलन अपूर्व सुख का कारण हुआ। कांचीपूर्ण अपने गुरु को साथ लिए हुए भक्तवत्सल भगवान् वरदराज के मंदिर में गए। श्रीयामुनाचार्य ने प्रेमार्द्रचित्त होकर हस्तगिरिस्थ भगवान् वरदराज की भक्ति-गद्गद स्वर से स्तुति करनी आरंभ की। अनंतर स्तुति समाप्त करके जब वे श्रीरामानुज स्वामी से मिलने के लिए वहां से चले, तब उन्हें रास्ते में शिष्यमंडली समेत यादवप्रकाश आता हुआ दिखाई पड़ा। उसी मंडली में श्रीरामानुज स्वामी भी थे। श्रीयामुनाचार्य ने कांचीपूर्ण द्वारा उन सबका परिचय पाया। फिर कांचीपूर्ण ने विध्यारण्य वाली सारी घटना श्रीयामुनाचार्य को सुनाई। उसे सुनकर श्रीयामुनाचार्य के मन में श्रीरामानुज के प्रति स्नेह उत्पन्न हुआ। वे बार-बार उनकी ओर देखने लगे। श्रीयामुनाचार्य ने विचारा कि स्वामी जी को बुलाकर बातचीत करें, किंतु यादवप्रकाश के साथ उन्हें देखकर उस समय बुलाना उचित नहीं समझा। किंतु श्रीरामानुज स्वामी के अभ्युदय के लिए श्रीयामुनाचार्य बारंबार भगवान् वरदराज से प्रार्थना करने लगे और शिष्यों सहित वे श्रीरंगक्षेत्र को लौट गए।

एक दिन यादवप्रकाश अपने अन्य शिष्यों को पढ़ा रहा था। उस समय श्रीरामानुज स्वामी उसके शरीर में तेल लगा रहे थे। पढ़ाते-पढ़ाते वह एक श्रुति का अर्थ करने लगा। अर्थ न करके उसने अनर्थ कर डाला। श्रीरामानुज स्वामी यादवप्रकाश की अपव्याख्या सुनकर इतने व्याकुल हुए कि उनसे न रहा गया और उनके नेत्रों से अश्रु बहने लगे और यादवप्रकाश के शरीर पर अश्रु की उष्ण बूंदें गिरीं, तब यादवप्रकाश का ध्यान श्रीरामानुज स्वामी की ओर गया। अश्रुपात का कारण पूछने पर श्रीरामानुज स्वामी ने कहा—गुरुदेव! आपने श्रुति का जो अर्थ अभी किया है वह

असंगत है। अतएव आपकी की हुई अपव्याख्या सुनकर मेरे हृदय में दारुण दुःख उत्पन्न हुआ। इसीसे ये अश्रु बह रहे हैं। यह सुनकर यादवप्रकाश के क्रोध की सीमा न रही। उसका शरीर क्रोध से कांपने लगा। वह कहने लगा—रामानुज! मैंने तो उस श्रुति की अपव्याख्या की। अच्छा देखूं तो तुम उसकी कैसी स्वाभाविक सद्व्याख्या करते हो। इसपर रामानुज स्वामी ने कहा—महाशय! सुनिए, मैं श्रुति का यथार्थ अर्थ कहता हूं। यह कहकर उन्होंने श्रुति का ठीक-ठीक अर्थ कर दिया। तब यादवप्रकाश बोला—अरे द्विजाधम! तू मेरे पास रहने योग्य नहीं, तू शीघ्र मेरे सामने से चला जा! यादवप्रकाश ने कलि के प्रभाव से विवेकभ्रष्ट होकर श्रीरामानुज स्वामी को वहां से निकाल दिया। किंतु महात्मा श्रीरामानुज स्वामी चुपचाप वहां से चले आए और कांचीपूर्ण के आदेशानुसार भगवान् वरदराज की सेवा करने लगे।

उधर श्रीयामुनाचार्य ने श्रीरामानुज स्वामी से मिलने के लिए उत्सुक होकर उन्हें श्रीरंगक्षेत्र लिवाने के लिए अपने शिष्य पूर्णाचार्य को कांची भेजा। श्रीयामुनाचार्य ने जाते समय पूर्णाचार्य को अपना बनाया आलवन्दारस्तोत्र दिया और कहा—जाकर इसे श्रीरामानुज की उपस्थिति में वरदराज को सुनाना। पूर्णाचार्य ने ऐसा ही किया। इस स्तोत्र के अपूर्व छंद, मधुर पद-विन्यास, भक्तिपूर्ण भाव और सर्वोपरि अमृतनिष्यंदी स्वर से मंदिरस्थ सब जन मोहित हो गए। उसे सुनकर श्रीरामानुज स्वामी विमल आनंद में मग्न हो गए और उन्होंने पूर्णाचार्य से स्तोत्र के निर्माता का नाम सादर पूछा। तब पूर्णाचार्य ने श्रीयामुनाचार्य का परिचय देते हुए कहा—महानुभाव! श्रीरंगक्षेत्र में श्रीयामुनाचार्य नामक एक वेदवेदांगपारंगत ब्राह्मण रहते हैं। वे निखिल वैष्णव सिद्धांत के पारगामी एवं पंचसंस्कार द्वारा संस्कृत होकर संन्यासी हुए हैं। श्रीयामुनाचार्य आशैशव जितेंद्रिय हैं। उनके हृदय में ईर्ष्या-द्वेष का स्पर्श भी नहीं हुआ है। इसपर भी किसीने उन्हें आज तक किसी पर क्रोध करते नहीं देखा। वे ही परम भगवद्भक्त इस स्तोत्र के निर्माता हैं।

श्रीरामानुज स्वामी को तो ऐसे गुरु की आवश्यकता थी ही, वे तुरंत श्रीयामुनाचार्य के दर्शन करने के लिए श्रीरंग जी की ओर पूर्णाचार्य के साथ चल दिए। जब वे पुण्यतोया कावेरी के तट पर पहुंचे, तब उन्होंने श्रीयामुनाचार्य के परम पद प्राप्त होने का समाचार सुना। इस दुःखदायी समाचार को सुनकर वे दोनों बड़े दुःखी हुए। अंत में, वे दोनों वहां पहुंचे। जहां श्रीयामुनाचार्य मृत्यु-शय्या पर शयन कर रहे थे। उन्हें देखकर श्रीरामानुज स्वामी कहने लगे—हमारे भाग्य में यतिवर से वार्तालाप करना नहीं लिखा था, इसीसे वे हमारे यहां आने से पहले चल दिए। जो होनहार था सो हुआ। हे वैष्णवगण! अब तुम हमारी बात पर ध्यान दो, हम इन लोकवासियों के लिए ऐसी सोपान-परंपरा तैयार करेंगे जिसके सहारे जीवगण अनायास श्रीहरि के चरणों के समीप पहुच सकें। यह सुनकर उपस्थित श्रीवैष्णवमंडली बारंबार उनकी प्रशंसा करने लगी।

अनंतर श्रीयामुनाचार्य के हाथ की तीन अंगुलियां आकुंचित देखकर श्रीरामानुज स्वामी को बड़ा आश्चर्य हुआ और उपस्थित श्रीवैष्णवों से इसका कारण पूछा। श्रीवैष्णवों ने कहा—जन्मभर यतिवर की अंगुलियां स्वाभाविक अवस्था में रहीं। अभी ये आकुंचित हुई हैं। यह बड़े आश्चर्य की बात है। इसका कारण समझ में नहीं आता। तब श्रीरामानुज स्वामी ने श्रीयामुनाचार्य का अभिप्राय समझकर श्रीवैष्णवमंडली के बीच खड़े होकर ऊंचे स्वर से कहा—मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं सदा श्रीवैष्णव संप्रदाय में रहकर अज्ञानान्ध जनों को पंचसंस्कार-संपन्न और द्राविड़ संप्रदाय में पारदर्शी एवं धर्मनिरत करूंगा। आवश्यकता होने पर सब प्रकार की विपत्तियों को झेलकर श्रीवैष्णवों की रक्षा करूंगा। यह बात समाप्त होते ही श्रीयामुनाचार्य की एक अंगुली पूर्ववत् स्वाभाविक अवस्था में परिणत हो गई। तब श्रीरामानुज स्वामी ने कहा—मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं सर्वसाधारण श्रीवैष्णवों के हितार्थ तत्त्वाज्ञानसंक्रांत निखिल अर्थ-संग्रहपूर्वक ब्रह्मसूत्र पर श्रीभाष्य प्रणयन करूंगा। इसे सुनकर श्रीयामुनाचार्य की दूसरी अंगुली पूर्ववत् हो गई। तब श्रीरामानुज स्वामी ने फिर कहा—महामुनि पराशर ने मनुष्यों के हितार्थ जीव, ईश्वर एवं ईश्वर-प्राप्ति के उपाय प्रभृति प्रदर्शनपूर्वक श्रीवैष्णव मत के अनुकूल जो पुराण लिखे हैं उनके गूढ़ार्थ प्रदर्शन करने के लिए मैं एक अभिधान लिखूंगा। यह सुनते ही यामुनाचार्य की तीसरी अंगुली भी पूर्ववत् हो गई। अनंतर श्रीरामानुज स्वामी श्रीरंग मंदिर में न जाकर उल्टे पैरों कांची को लौट

आए। वहां पहुंचकर सारा हाल कांचीपूर्ण को कहा। कांचीपूर्ण गुरुदेव की वैकुंठयात्रा का हाल सुनकर दुःखी हुए।

कुछ दिनों बाद कांचीपूर्ण स्वामी के कथनानुसार दीक्षाग्रहणार्थ श्रीरामानुज स्वामी पूर्णाचार्य के पास श्रीरंगक्षेत्र को गए। उधर श्रीरंगक्षेत्रवासी श्रीवैष्णवों ने, श्रीरंगक्षेत्र के महाक्षेत्र का शून्य आसन देखकर, आग्रहपूर्वक पूर्णाचार्य को श्रीरामानुज स्वामी को साथ ले आने के लिए कांची भेजा। रास्ते में मदुरा के पास उन दोनों की भेंट हुई। दोनों ने एक-दूसरे से अपनी-अपनी यात्रा का कारण कहा। अंत में, श्रीरामानुजाचार्य ने पूर्णाचार्य स्वामी से संस्कार करने के लिए प्रार्थना की। पूर्णाचार्य की इच्छा थी कि वे उनके पंचसंस्कार कांची में श्रीवरदराज भगवान् की सन्निधि में करें। किंतु श्रीरामानुज स्वामी के बार-बार आग्रह करने पर पूर्णाचार्य ने उनके संस्कार वहीं किए। महापूर्ण स्वामी ने महापंडित श्रीरामानुज स्वामी को श्रीहरि के दास्यसाम्राज्य का नायक बनाया और कहा—इस लोक में श्रीयामुनाचार्य श्रीवैष्णव जगत् के गुरु थे। उनके तिरोभाव होने पर अब तुम उनके स्थानापन्न हो और प्रच्छन्न बौद्धों के संप्रदाय को समूल उन्मूलित करके श्रीवैष्णवों की रक्षा करो। तुम्हें इस कार्य के योग्य समझ मैं तुमसे यह कहता हूं। यह सुन श्रीरामानुज स्वामी ने नीचे माथा निवाकर 'मौनं सम्मतिलक्षणम्' की उक्ति चरितार्थ की और गुरुसमेत वे कांची लौट गए। श्रीरामानुज स्वामी ने अपने गुरु को अपने घर के पास ही ठहराया और उनके अनेक संप्रदाय-विषयक ग्रंथ पढ़े।

एक दिन कौशलपूर्वक श्रीरामानुज स्वामी ने अपनी पत्नी को उसके पित्रालय भेजा और वे स्वयं अपनी जन्मभूमि भूतपुरी को चल दिए। वहां घर-द्वार, वित्त आदि सब पार्थिव सम्पद् को छोड़कर श्रीरामानुज स्वामी ने कमंडलु और काषाय वस्त्र धारण करके अनंतसरोवर में स्नान किया और आदिकेशव की सन्निधि में संन्यास ग्रहण किया। फिर वे कांची लौटे। वहां उन्हें उस आश्रम में देखकर कांचीपूर्ण को बड़ा आनंद हुआ। उसी समय से उनका नाम 'यतिराज' पड़ा।

यतिराज के भानजे और अनंत भट्ट के पुत्र कूरेश सबसे प्रथम श्रीरामानुज स्वामी के शिष्य हुए। अनंतर स्वामी जी ने यादवप्रकाश के संशयों को दूर किया। तब अपनी माता की प्रेरणा से वह श्रीस्वामी जी की शरण में गया। श्रीस्वामी जी ने उसके पंचसंस्कार करके उसे शिष्य बनाया और उसका गोविंददास नाम रखा। फिर गोविंददास से कहा—अभी तक तुमने श्रीवैष्णव यतियों के मत पर अनेक प्रकार के दोषारोप किए हैं। उन दोषों के परिहारार्थ श्रीवैष्णवमत समर्थनपूर्वक तुम ग्रंथ रचो। उस समय गोविंददास का मन भगवद्भक्ति से परिपूर्ण था। अतः उसने किसी प्रकार की आपत्ति उपस्थित न करके 'यतिधर्मसमुच्चय' नामक श्रीवैष्णवमत समर्थक एक पुस्तक रची। इसके बाद थोड़े ही दिनों में गोविंददास का वैकुंठवास हुआ।

श्रीस्वामी जी सशिष्य रंगक्षेत्र में पहुंचे। पूर्णाचार्य उनके आगमन से बहुत प्रसन्न हुए। सारी श्रीवैष्णवमंडली समेत श्रीस्वामी जी श्रीरंगनाथ जी के दर्शन करने मंदिर में गए। दर्शन कर चुकने पर महापूर्ण स्वामी ने श्रीवैष्णवमंडली के मध्य में खड़े होकर उनसे कहा—यतिराज! भगवान् की इच्छा है कि तुम चिरकाल तक यहां रहो। इस संसार के मोहविमुग्ध जीवों का उद्धार करो। तुम असाधुओं को साधु बनाकर निखिल मानव-समाज की भक्ति-पुष्पांजलि ग्रहण करो। इसपर स्वामी जी ने कहा—महात्मन्! आप ही मेरे दीक्षादाता और सत्पथप्रदर्शक हैं। मेरा जो कुछ वैभव है, उसका आदिकारण आपकी कृपा है। मैं तो आपका दास हूं। आपकी आज्ञा पालन के अतिरिक्त मेरा और कौन-सा कर्तव्य हो सकता है। अतएव आपकी आज्ञानुसार यह शरीर जब तक है तब तक श्रीरंगनाथ की सेवा और उनके प्रिय कार्य में नियुक्त रहेगा। इसके अनंतर जब श्रीवैष्णवमंडली से वेष्टित यतिराज गरुडस्तंभ के पास विश्रामार्थ बैठे तब मंदिर के पूजक, पाचक, ज्योतिर्विद्, भांडारी, वाहक, त्रायक आदि सेवाधिकारियों को बुलाकर उन्होंने उनसे कहा—आज से तुम लोग बड़ी सावधानी से अपना-अपना कार्य करना। ऐसा न हो कि सेवा में कहीं कोई त्रुटि हो। इसपर सब सेवकों ने एक स्वर से यतिराज के आज्ञा-पालन की प्रतिज्ञा की। तब से बहुत दिनों तक यतिराज श्रीरंगनाथ की सेवा करते रहे।

एक दिन पूर्णाचार्य ने यतिराज से कहा—गोष्ठीपूर्ण नामक एक विद्वान् श्रीवैष्णव हैं। गुरुदेव श्रीयामुनाचार्य उन्हें मंत्रार्थ बता गए हैं। अतः तुम

जाकर उनसे मंत्रार्थ सीख आओ। यतिराज महात्मा गोष्ठीपूर्ण के पास गए और मंत्रार्थ उपदेश के लिए प्रार्थना की। किंतु गोष्ठीपूर्ण सरल मनुष्य नहीं थे, उन्होंने यतिराज की परीक्षा करने के लिए नाना प्रकार के आडंबर रचे। एक-दो बार नहीं, अठारह बार यतिराज ने गोष्ठीपूर्ण से मंत्रार्थोपदेश के लिए प्रार्थना की, परंतु प्रत्येक बार किसी न किसी बहाने से गोष्ठीपूर्ण ने उन्हें टाल दिया। अंतिम बार जब गोष्ठीपूर्ण ने कहा—जाओ, जाओ, तब यतिराज नितांत क्लांत हो गए और उनके दोनों नेत्रों से अजस्र अश्रुधारा बहने लगी। विवश होकर वे श्रीरंग जी को लौट गए। फिर एक श्रीवैष्णव के मुख से यतिराज के हताश होकर संतप्त होने का हाल सुनकर गोष्ठीपूर्ण को दया आई और उन्होंने एकांत में ले जाकर उन्हें मंत्रार्थ का उपदेश दिया। किंतु मंत्र देने के पूर्व गोष्ठीपूर्ण ने उनसे कहा—मंत्रार्थ अतिशय गोपनीय है। अतः अधिकारी को छोड़कर अन्य किसीको कभी मत बतलाना। इस प्रकार कई बार उन्हें समझाकर और उनसे प्रतिज्ञा कराकर गोष्ठीपूर्ण ने उन्हें मंत्रार्थ उपदेश किया। यतिराज महामहिमान्वित मंत्रार्थ प्राप्त करके कृतार्थ हुए।

उसी दिन गोष्ठीपुर में नृसिंह स्वामी के मंदिर में उत्सव था। उस उत्सव को देखने के लिए बड़ी-बड़ी दूर के श्रीवैष्णव एकत्र हुए थे। यतिराज को उनपर बड़ी दया आई और रात्रि रहते ही वे निद्रा को छोड़ उठ बैठे। फिर मंदिर के द्वार पर बैठकर वे ऊंचे स्वर से मंत्ररहस्य का बारंबार पाठ करने लगे। उसे सुन चौहत्तर विष्णुभक्त ब्राह्मण उस मंत्ररहस्य को पाकर कृतार्थ हुए। जब गोष्ठीपूर्ण ने यह हाल सुना, तब वे अपने मन में अत्यंत विरक्त हुए और दूसरे दिन शिष्यों द्वारा श्रीरामानुज स्वामी को बुलवाकर उनसे पूछा—हे यतिराज! मैंने तुमको अतिगोपनीय मंत्ररहस्य बताया था। बताने से पूर्व अधिकारी को छोड़कर अन्य किसीको न बताने की अनेक बार तुमसे शपथ भी ली थी। किंतु बड़े आश्चर्य की बात है कि तुमने तिसपर भी मेरी आज्ञा के सर्वथा विरुद्ध कार्य किया। अच्छा, बताओ तो गुरु के साथ द्रोह करने वाले को क्या फल मिलता है? श्रीरामानुज स्वामी ने कहा—प्रभो! गुरुद्रोह करने से नरक में पड़ना पड़ता है। तब गोष्ठीपूर्ण ने पूछा—तब जानबूझकर तुमने ऐसा घोर पाप क्यों किया? इसके उत्तर में श्रीरामानुज स्वामी ने कहा—गुरुदेव! गुरुद्रोह के कारण मैं अकेला भले ही नरक में पड़ूं, किंतु आपकी कृपा से और सब तो परमपद पाएंगे। इस उदारतापूर्ण उत्तर को सुनकर गोष्ठीपूर्ण स्वामी का सारा क्रोध दूर हो गया और प्रसन्न होकर यतिराज को गले लगाकर उपस्थित श्रीवैष्णवों को संबोधन करके कहा—आज से समस्त श्रीवैष्णवसिद्धांत 'श्रीरामानुज-सिद्धांत' के नाम से प्रसिद्ध होंगे। तभी से श्रीवैष्णव दर्शन का नाम 'श्रीरामानुजदर्शन' पड़ा।

कुछ दिनों बाद श्रीरामानुज स्वामी देशाटन को निकले और वेंकटगिरि होते हुए उत्तर को चले। दिल्ली, बदरिकाश्रम आदि स्थानों में श्रीसंप्रदाय का प्रचार करते हुए वे अष्टसहस्र नामक ग्राम में पहुंचे। वहां उन्होंने वरदाचार्य और यज्ञेश नामक अपने दो शिष्यों को मठाधिपति नियुक्त किया। फिर हस्तिगिरि में पूर्णाचार्यादि से मिलने के अनंतर वे कपिलतीर्थ को गए। वहां के राजा बिट्ठलदेव को उन्होंने अपना शिष्य बनाया। राजा ने तोंडीर मंडल आदि अनेक ग्राम उनको भेंट किए।

फिर बोधायन वृत्ति-संग्रह करने के लिए वे कूरेश सहित शारदापीठ गए और वहां के पंडितों को शास्त्रार्थ में परास्त किया। यतिराज ने भगवती वीणापाणि की स्तुति करके उन्हें प्रसन्न किया। फिर बोधायन वृत्ति को लेकर वे श्रीरंग जी की ओर चल दिए। किंतु काश्मीरी पंडितों को इस प्रदेश में आना अच्छा न मालूम पड़ा। अतः रास्ते में ही वे यतिराज से उस पुस्तक को छीनकर ले गए। इस घटना से स्वामी जी को बड़ा दुःख हुआ। उन्हें दुःखी देखकर कूरेश ने कहा—प्रभो! आप दुःखित न हों। मैंने उसे मनोयोगपूर्वक आद्यंत देख लिया है। आपकी कृपा से वह संपूर्ण ग्रंथ मेरे हृदयस्थ है—यह सुनकर स्वामी जी बहुत प्रसन्न हुए।

यतिराज स्वामी ने वेदांतसूत्र पर (१) श्रीभाष्य, (२) वेदांतप्रदीप, (३) वेदांतसार, (४) वेदांतसंग्रह, (५) गीतभाष्य, (६) गद्यत्रय आदि बहुतसे ग्रंथ लिखे।

यतिराज ने श्रीभाष्यादि ग्रंथों को लिखकर और बहुतसे शिष्यों को साथ लेकर चोलमंडल, पांड्यमंडल, कुरंग आदि देशों में जैनियों एवं मायावादियों को परास्त करके उन्हें अपना शिष्य बनाया। कुरंग देश के राजा को दीक्षित करके उन्होंने केरल देश के

कट्टर वैष्णवद्वेषी पंडितों को परास्त किया, वहां से वे क्रम से द्वारका, मथुरा, काशी, अयोध्या, बदरिकाश्रम, नैमिषारण्य आदि तीर्थों में होकर काश्मीर पहुंचे। वहां के पंडितों को भी शास्त्रार्थ में परास्त किया। काश्मीर के नरेश उनका नाम सुनकर उनके पास गए और उनके शिष्य हो गए। वहां के पंडितों को यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने स्वामी जी पर अभिचार प्रयोग किया। शिष्यों ने इसका समाचार श्री स्वामी जी को दिया। पर इसे सुनकर स्वामी जी जरा भी विचलित नहीं हुए। पंडितों का सारा परिश्रम व्यर्थ हो गया और वे पागल हो गए तथा सड़कों पर गालियां बकते हुए घूमने लगे। राजा को दया आई। उन्होंने स्वामीजी से निवेदन करके उनका पागलपन दूर कराया। फिर वे सब पंडित यतिराज के शिष्य हो गए। स्वयं विद्यादेवी सरस्वती ने उनके भाष्य की प्रशंसा करके उन्हें 'भाष्यकार' की उपाधि प्रदान की। राजा भाष्य के प्रति सम्मान-प्रदर्शनार्थ शूर-सामंतों की सेना सहित पहुंचाने के लिए दो योजन तक उनके पीछे-पीछे आया।

वहां से स्वामी जी द्वारका गए। फिर काशी होकर वे पुरुषोत्तमक्षेत्र पहुंचे। वहां बौद्ध पंडितों को परास्त करके वे श्रीरामानुज-मठ में रहने लगे। भाष्यकार ने चाहा कि वहां जगदीश के अर्चन-विधान में कुछ वैदिक रीति से हेर-फेर किया जाए, पर जगदीश की इच्छा न देखकर वे वेंकटगिरि पर पहुंचे। फिर चोल देश के कृमिकंट राजा ने उन्हें शास्त्रार्थ के लिए बुलाया। यतिराज उसके पास जा रहे थे कि मार्ग में चेला चलांबा और उसके पति को दीक्षित किया, फिर अनेक बौद्धों को उन्होंने परास्त किया। इस प्रकार कुछ दिन वे भक्तों के नगरों में रहे। वहां स्वप्न देखने से इन्होंने यादवाचल पर जाकर वहां की छिपी हुई भगवान् की मूर्ति को निकाला और शक सं० १०१२ वि० में उस मूर्ति की वहां प्रतिष्ठा की।

एक बार यतिराज ने दिल्ली में जाकर तत्कालीन मुसलमान सम्राट् के महल में एक विष्णुमूर्ति को निकाला था।

श्रीरामानुज स्वामी के ७४ शिष्य बड़े प्रसिद्ध हो गए हैं। इनमें अंध्रपूर्ण की बड़ी महिमा है।

इस प्रकार यतिराज भाष्यकार श्रीरामानुज स्वामी ने जीवधारियों के प्रति कृपा दिखाने के लिए इस धराधाम पर एक सौ बीस वर्ष तक वास किया। इस अवस्था का आधा समय अर्थात् साठ वर्ष तक तो उन्होंने भूतपुरी, कांची, वेंकटगिरि, यादवाचल आदि अनेक देशों में दिग्विजय करने के लिए पर्यटन किया। अनंतर उन्होंने अपनी आयु का शेष आधा भाग (अर्थात् साठ वर्ष) श्रीरंगनाथ जी की सेवा में व्यतीत किया। सेतुबंध से हिमालय तक और पश्चिम समुद्र से पूर्व समुद्र तक ऐसा कोई स्थान न था जहां पर यतिराज के शिष्य न हों। वैकुंठयात्रा के पूर्व यतिराज ने श्रीरंगनाथ भगवान् से प्रार्थना की थी—प्रभो ! प्रसन्न होकर मुझे यह वर दीजिए कि शैशवावस्था से लेकर अंतिम समय तक मेरे शिष्य, भक्त, अनुगत, आश्रित, शत्रु, मित्र अर्थात् जिस किसीसे मुझसे कुछ भी संबंध रहा हो वे सब शरीरांत होने पर आपकी कृपा से बैकुंठ को जाएं।

प्रार्थना के अनंतर वे अपने मठ में पहुंचे, जहां अनेक श्रीवैष्णवों का समुदाय उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। यतिराज ने उन्हें शास्त्रों के वाक्यों का सार-उपदेश किया। उनके ये महावाक्य उच्च नीति और भगवद्भक्ति से पूर्ण हैं। अनंतर उन्होंने दीन-दुखियों को दान देना प्रारंभ किया। दान देने के पश्चात् उन्होंने अपने प्रधान शिष्यों को बुलाया और उन्हें शास्त्रों के निगूढ़ार्थ-संबंधी अनेक उपदेश दिए। इस कार्य में उनके तीन दिन और तीन रातें व्यतीत हुईं। यह देखकर श्रीवैष्णवों को संदेह हुआ। उन्होंने समझा कि यतिराज जीवन के समस्त कर्त्तव्य पूरे कर चुके। तब वे अपने मानसिक भाव को छिपा न सके और पूछने लगे—प्रभो ! पहले तो आपने हमें ये सब बातें नहीं बताई थीं। आज इतनी शीघ्रता में बतलाने का क्या कारण है ? यतिराज ने कहा—हे श्रीवैष्णवगण ! आज से चौथे दिन पृथ्वी त्याग करने की हमारी इच्छा है। श्रीरंगनाथ स्वामी से निवेदन किया था। उन्होंने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली है। यह भीषण संवाद सुन श्रीवैष्णव कहने लगे—प्रभो ! आपकी सेवा बिना हम एक मुहूर्त भी जीवन धारण नहीं कर सकते। अतः गुरुदेव ! इसका तो कोई उपाय बताइए। यह सुनकर श्रीरामानुज स्वामी ने शिल्पियों को बुलवाकर अपनी प्रतिमा बनवाई। उस मूर्ति को निज शरीर से छुआकर उन्होंने उसकी प्रतिष्ठा की, उस मूर्ति को देख सबकर लोग प्रसन्न हुए। फिर दाशरथि के पुत्र श्रीरामानुजदास के कहने पर एक मूर्ति भूतपुरी के लिए भी बनवा दी। अनंतर

शिष्यों के आचार-संबंधी कई प्रश्नों के उत्तर दिए।

महायात्रा को जब एक दिन बाकी रह गया तब यतिराज ने कूरेशतनय पराशर भट्टाचार्य को बुलाकर उन्हें भगवान् श्रीरंगनाथ के दास्यसाम्राज्य के सम्राट् पद पर अभिषिक्त किया। अनंतर उनको उचित शिक्षा दी। तदनंतर रघुनाथ के पुत्र के सिर पर हाथ रखकर कहा—पश्चिम दिशा में वेदांती नामक एक महापंडित है। वह अभी तक इस संप्रदाय में नहीं आया। अतएव तुम बहुत शीघ्र जाकर उसे परास्त करके वहां श्रीसंप्रदाय का प्रचार करो। उन्होंने इस आज्ञा को शिरोधार्य किया।

इसके बाद महायात्रा का दिन उपस्थित हुआ। प्रभात होते ही शिष्य प्रातः स्नान करके जब लौटे, तब यतिराज ने उनको भोजन करने के लिए आदेश दिया। अनंतर उन्होंने स्वयं संयतचित्त होकर भगवदाराधना की। अनंतर श्रीरंगनाथ के अर्चकों को बुलाकर कहा—पूजकगण! तुम लोग हमारा अपराध क्षमा करो। सेवकों ने कहा—प्रभो! आप तो हमारे रक्षक हैं, भला आपका क्या अपराध है! आप तो जगत् के हितैषी बंधु हैं। इतने दिनों हमारा पुत्रवत् पालन किया। आपके बिना हम कैसे जीवित रहेंगे, हम इसीलिए व्याकुल हैं। यतिराज ने कहा—हमारे पश्चात् तुम बड़ी सावधानी से भगवान् का अर्चन करना। इसके बाद उन्होंने सब श्रीवैष्णवों को संबोधन करके कहा—हे प्रिय शिष्यगण एवं श्रीवैष्णववर्ग! आप लोग हमारे लिए शोक न कीजिएगा, आप लोग जीवन के इस अंतिम मुहूर्त में प्रसन्न होकर हमको विदा कीजिए। सब लोग शोकार्त और निश्चल भाव से खड़े रहे। यतिराज गोविंद की गोद में सिर और अंध्रपूर्ण की गोद में चरण रखकर लेट गए। शिष्यवर्ग उदात्त स्वर से भृगुवल्ली, ब्रह्मवल्ली और श्रीपरांकुश निर्मित प्रबंधों का पाठ करने लगे। भेरी-मृदंग बजने लगी। हरिनाम कीर्तन होने लगा। यतिराज पूर्णाचार्य की पादुकाओं की ओर नेत्र स्थिर करके हृदय में यामुनाचार्य का कुछ देर तक ध्यान करते रहे। देखते-देखते उनका प्राणवायु ब्रह्मरंध्र को भेदकर परब्रह्म में लीन हो गया। शून्य शरीर पड़ा रहा। माघ मास की शुक्ला दशमी को शनिवार के दिन मध्याह्न काल में यतिराज पृथ्वी को त्यागकर वैकुंठ सिधारे।

(आदर्श महात्मा)

रामेश्वरम्—इसे भगवान् राम द्वारा स्थापित बताया जाता है। यहीं से राम ने लंका पर चढ़ाई करके सीता का उद्धार और रावण का वध किया था। यहां पर रामनाथ स्वामी का एक भव्य एवं विशाल मंदिर है। "यह द्रविड स्थापत्य का एक सुंदर नमूना है, जिसमें बड़े बुर्ज, नक्काशी हुई दीवालें और विस्तीर्ण गलियारे हैं।" यह पवित्र धर्मस्थान बंगाल की खाड़ी के द्वीप में अवस्थित अपने दैनिक तथा प्राकृतिक दिव्यता एवं भव्यता को आज भी द्योतित कर रहा है।

रायचन्द्र कवि—ये गुजरात के रहने वाले और नागर ब्राह्मण थे। राजा डालचंद मुर्शिदाबाद के जगत्सेठ के यहां ये रहते थे। और वहीं गीतगोविंदादर्श नामक भाषा गीतगोविंद और लीलावती अनेक छंदों में इन्होंने लिखे हैं। वे ग्रंथ इनके पांडित्य के प्रमाण हैं।

रायमल—चित्तौड़ के महाराणा। ये महाराणा कुंभा के द्वितीय पुत्र थे। एक बार युवराज रायमल ने महाराणा से एक अनुचित प्रश्न पूछा। इससे अप्रसन्न होकर महाराणा ने उन्हें देश-निकाले का दंड दिया। पितृपरित्यक्त युवराज ने ईदर देश में जाकर आश्रय लिया। वहां एक चारण ने इनकी बड़ी सहायता की। वह चारण भी महाराणा द्वारा निर्वासित किया गया था। उसकी सहायता से युवराज बड़े प्रसन्न हुए।

महाराणा कुंभा अपने ज्येष्ठ पुत्र ऊदा के द्वारा मारे गए थे। ऊदा पिता को मारकर स्वयं चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठ गया था। परंतु उसे शीघ्र ही पितृहत्या का प्रायश्चित भोगना पड़ा। (देखो ऊदा) अपने विक्रम और सामर्थ्य के प्रभाव से महाराणा रायमल संवत् १५३० वि० (सन् १४७३ ई०) में चित्तौड़ के पूज्य और पवित्र सिंहासन पर बैठे। सिंहासन पर बैठने से पहले ही इन्होंने पितृघाती ऊदा के विरुद्ध खड्ग धारण किया था। इससे डरकर वह दिल्ली के बादशाह की शरण में गया और वहां बादशाह को कन्या देने की शर्त पर अपनी सहायता के लिए प्रस्तुत किया। परंतु ऊदा की आकस्मिक मृत्यु हो जाने से मेवाड़ के गौरव की रक्षा हो गई। ऊदा के सिंहेशमल्ल और सूरजमल्ल नामक दो पुत्र थे। ऊदा की मृत्यु के पीछे उन्हीं दोनों पुत्रों को लेकर बादशाह मेवाड़ पर चढ़ आए। मेवाड़ के सरदार सामंत भी राणा रायमल की ओर हो गए थे। दोनों ओर से शीघ्र ही भयंकर युद्ध प्रारंभ हो गया। पहले तो ऊदा

के पुत्रों ने बड़ा विक्रम प्रकट किया, परंतु पीछे वे रायमल के विक्रम को सह नहीं सके। अंत में, सिंहेश-मल्ल और सूरजमल्ल ने राणा की अधीनता स्वीकार कर ली। बादशाह भी इस युद्ध में ऐसा परास्त हुआ कि फिर उसने मेवाड़ पर चढ़ाई करने का नाम तक नहीं लिया।

राणा रायमल की दो कन्याएं और तीन पुत्र थे। राणा ने भली भांति अपने पूर्वजों के गौरव की रक्षा की थी। मालवा के स्वामी गयासुद्दीन के साथ राणा का प्रचंड वैर हो गया था। इस कारण कई युद्ध हुए, सभी युद्धों में राणा की ही जीत हुई। इन युद्धों में राणा के भतीजे सिंहेशमल्ल और सूरजमल्ल ने बड़ी वीरता दिखाई थी। अंत में, मालवपति गयासुद्दीन ने जीतने की कोई संभावना न देखकर राणा से संधि के लिए प्रार्थना की। राणा ने भी उदारतापूर्वक संधि कर ली। तब से निष्कंटक होकर राणा जी राज्य-शासन करने लगे। उस समय भारत में कोई भी राजा राणा जी का सामना करने वाला न था। अंत में, राणा ने पुत्रशोक से अपना प्राण-त्याग किया।

(टाड्स राजस्थान)

रायसिंह—(१) जयसलमेर के रावल मूलराज के बड़े पुत्र। इनके पिता अपने स्वरूपसिंह के वश में थे। स्वरूपसिंह विलक्षण प्रकृति का मनुष्य था। उसको उत्पीड़न करना बड़ा उत्तम मालूम पड़ता था। औरों के विषय में तो कहना ही क्या था, सरदार तथा राज-कुमार पर भी वह अपनी नीति का प्रयोग करने लगा। सरदारों ने इसका प्रतिकार करने के लिए राजकुमार से निवेदन किया। युवराज तथा सामंत मंडली ने मिलकर निश्चय किया कि स्वरूपसिंह को बिना मारे काम नहीं चलेगा।

एक समय राजसभा जुड़ी थी। राजा मूलराज उस सभा की शोभा बढ़ा रहे थे। समस्त सामंत सरदार बैठे थे। इसी समय राजकुमार रायसिंह म्यान से तलवार निकालकर स्वरूपसिंह की ओर बढ़े। स्वरूप-सिंह घबड़ाकर भागना ही चाहता था कि इतने में राजकुमार की तलवार ने उसका काम तमाम कर दिया। सामंतों ने मूलराज को भी उसी समय समाप्त करने का प्रस्ताव किया, परंतु रायसिंह के निषेध करने से वे मान गए।

तदनंतर सामंतों की सहायता से रायसिंह ने पिता को कैद करके स्वयं राज्य-भार ग्रहण किया। जब मूल-राज कैद से छूटे तब उन्होंने रायसिंह को देशनिकाले का दंड दिया। पिता द्वारा निर्वासित होकर रायसिंह जोधपुर में जाकर रहने लगे। परंतु ये अपने उद्दंड स्वभाव के कारण वहां भी न रह सके। जोधपुर से लौटकर ये पुनः जयसलमेर आए। इस समय ये पिता द्वारा कैद किए गए तथा उस मकान में आग लगने से ये जल गए।

(टाड्स राजस्थान)

(२) बीकानेर के महाराज। इनके पिता का नाम कल्याणमल था। पिता की मृत्यु के पश्चात् राय-सिंह के मस्तक पर बीकानेर का राजछत्र सुशोभित हुआ।

रायसिंह ने अपने शासन के समय में बीकानेर का गौरव बढ़ाया। आज तक बीकानेर की गिनती छोटे राज्यों में होती थी, परंतु साहसी देशकालज्ञ नीतिचतुर रायसिंह के प्रयत्न से बीकानेर की गणना बड़े राज्यों में होने लगी। इस समय दिल्ली के सिंहासन पर बादशाह अकबर सुशोभित थे। यह बात चतुर राय-सिंह से छिपी नहीं थी कि भारतवर्ष के राजपूत राजाओं ने बादशाह की अधीनता में रहकर अपने राज्य की सीमा और गौरव को बढ़ाया है। इन्हीं सब बातों को सोचकर रायसिंह ने स्थिर किया कि केवल बीकानेर के शासन से ही संतुष्ट होकर समय नहीं बिताना चाहिए, किंतु इस समय के बराबर वाले अन्यान्य राजाओं के समान यश और सम्मान पाने का प्रयत्न करना चाहिए। रायसिंह इस बात को भी जानते थे कि एक न एक दिन यह अवश्य ही होगा कि दिल्ली के बादशाह बीकानेर पर चढ़ आएंगे और हम-से अपनी अधीनता स्वीकार कराने के लिए प्रयत्न करेंगे। अतः जब भारत के प्रधान और बलशाली राजाओं ने ही अपनी स्वाधीनता को तिलांजलि दे दी है, तब हम अपनी स्वाधीनता की रक्षा कर सकेंगे, यह आशा करना भी निरर्थक और हानिकारी है। अतः पहले से ही बादशाह के साथ मित्रता कर लेना उचित है। रायसिंह के सिंहासनारूढ़ होने के समय तक इस देश के जाट अपने स्वत्वों की रक्षा करते आए थे। परंतु समय के क्रम से राठौरों की संख्या क्रमशः बढ़ती गई और जाटों के राजनीतिक अधिकार घटते गए। इसी प्रकार बीकानेर एक शक्तिशाली राज्य हो गया। परंतु जाटों की स्वाधीनता के अपहरण करने वाले उस राज्य को भी दिल्ली राज्य की परतंत्रता की बेड़ी से जकड़ना पड़ा।

पिता के परलोकवास होने पर स्वयं रायसिंह उनका अस्थिसंचय करने गंगा जी गए। जयसलमेर की जिस कन्या के साथ रायसिंह ब्याहे गए थे, उसकी दूसरी बहन को अकबर ने ब्याहा था। इस प्रकार सम्राट् अकबर और रायसिंह का संबंध पहले से ही था। वे गंगा जी में पिता का अस्थिसंचय करने यवनराज की राजधानी में चले आए। पहले का संबंध होने के कारण इनको बादशाह के निकट अपना परिचय देने में बड़ा सुभीता हुआ। इस समय आमेर के महाराज मानसिंह की अकबर के यहां बड़ी प्रतिष्ठा थी। राजा मानसिंह ने बीकानेर के राजा रायसिंह का सम्राट् अकबर से परिचय करा दिया। रायसिंह का भाग्य खुल गया। सम्राट् अकबर ने बड़े आदर से उनका स्वागत किया। सम्राट् ने रायसिंह को चार हजार सेना का सेनापति बनाकर हिसार देश के शासन का भार सौंपा। बीका ने सामंत राव की उपाधि धारण करके बीकानेर की स्थापना की थी, इस समय सबसे पहले रायसिंह को राजा की उपाधि मिली। सम्राट् का प्रसाद पाने के कारण बीकानेर राज्य और वहां के राजा की ख्याति पूरे भारतवर्ष में फैल गई। इसी समय बादशाह ने मारवाड़ पर आक्रमण किया था और नागौर प्रदेश को जीतकर बादशाह ने उसके शासन का भार भी रायसिंह को दे दिया। इससे रायसिंह की प्रतिपत्ति और भी बढ़ गई। भाग्यवान् रायसिंह इस प्रकार बादशाह से सम्मान पाकर अपने राज्य को लौट आए। महाराज रायसिंह ने बीकानेर में आकर अपने छोटे भाई रामसिंह को सेना के साथ भटनेर पर अधिकार करने के लिए भेजा। रामसिंह ने बड़ी सरलता से पराक्रमी राठौर सेना के साथ उन देशों पर अधिकार कर लिया।

इसी प्रकार इनकी प्रतिपत्ति दिनोंदिन बढ़ने लगी। बड़े-बड़े युद्धों में इनकी वीरता का परिचय लोगों को मिला था। अपने भाग्यसूर्य को और भी चमकाने के लिए इन्होंने अपनी कन्या अकबर-पुत्र सलीम को दी थी। सुनते हैं, विवाह की तैयारियां बड़ी धूमधाम से हुई थीं। सन् १६३२ ई० में इनका देहांत हुआ।

(टाड्स राजस्थान)

रावण—(१) त्रिलोकप्रसिद्ध लंकाधिपति। यह विश्रवा का पुत्र था और इसकी माता केकसी थी। पुराणों में महापराक्रमी कहकर इसका वर्णन किया गया है। कहते हैं, इसके दस सिर और बीस भुजाएं थीं। इसका चरित्र महानिंदित था। एक बार इसने रंभा नाम की अप्सरा पर कुदृष्टि डाली थी। वह नलकूबर के यहां अभिसारिका के वेष में जाती थी। रावण के अत्याचार से क्रुद्ध होकर रंभा ने उसे शाप दिया कि यदि तुम अब से किसी रमणी से बलात्कार करोगे तो तुम्हारा मस्तक फट जाएगा। रावण ने राम की स्त्री सीता को पंचवटी से हर लिया था। इस दुष्कर्म का फल भी उसे खूब मिला। इसी अपराध के कारण विभीषण को छोड़कर उसका समस्त वंश नष्ट हो गया।

यह रावण त्रिलोकविजयी था। परंतु कार्तवीर्य और बाली से उसे हार खानी पड़ी थी। रावण के पूर्वजन्म की कथा बड़ी अच्छी है। कहते हैं, एक बार सनक सनंदन आदि विष्णु के दर्शन के लिए बैकुंठ गए। परंतु द्वारपाल जय और विजय ने उन्हें अंदर जाने नहीं दिया। इससे अप्रसन्न होकर उन्होंने शाप दिया—तुम्हारी प्रकृति राक्षसों के समान है, अत: तुम दोनों शीघ्र ही राक्षस हो जाओ। इस प्रकार ब्रह्मर्षि की क्रोधाग्नि में पड़कर वे बड़े भयभीत तथा चिंतित हुए। परंतु पुन: विष्णु के बहुत प्रार्थना करने पर महर्षियों ने कहा—तीन जन्म के बाद तुम पुन: इस पद को पा सकोगे, परंतु यदि तुम भगवान् विष्णु के हाथ मारे जाओ तो। इस प्रकार शापानुग्रह करके महर्षि लोग चले गए। पहले जन्म में विष्णु के द्वारपाल जय-विजय, हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु हुए थे, दूसरे जन्म में रावण, कुंभकरण और तीसरे जन्म में शिशुपाल, दंतवक्त्र हुए थे।

(२) काश्मीर का राजा। इसके पिता का नाम इंद्रजित् था। रावण ने ३० वर्ष ६ महीने काश्मीर का राज्य किया था। यह काश्मीर में जिस शिवलिंग की पूजा करते थे, आज भी वह शिवलिंग वर्तमान है। राजा रावण ने उसी शिवलिंग को स्थापित करके समस्त काश्मीर का राज्यदान कर दिया था।

राव राना कवि—ये चरखारी के निवासी बंदीजन थे। सं० १७६१ वि० में ये उत्पन्न हुए थे। राजा रतनसिंह के दरबार में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी।

राहु—चंद्र और सूर्य को ग्रहण करने वाला असुर विशेष। विप्रचित्ति के औरस और सिंहिका के गर्भ से इसका जन्म हुआ था। समुद्र-मंथन से जब अमृत निकला, तब एक असुर देवताओं के दल में मिलकर अमृत पीने

लगा। चंद्रमा और सूर्य ने उसे देख लिया और इसका संवाद उन्होंने विष्णु को दिया। विष्णु ने चक्र द्वारा उसका सिर काट लिया। परंतु उसने अमृत पी लिया था इस कारण उसकी मृत्यु नहीं हुई। मस्तक भाग का नाम राहु और धड़ भाग का नाम केतु पड़ा। राहु इसी कारण चंद्रमा और सूर्य का ग्रास करता है। (भागवत)

राहुल—बुद्धदेव का पुत्र। गोपा के गर्भ से इसका जन्म हुआ था। इसके जन्म के सातवें दिन बुद्धदेव ने संसार-त्याग किया। सात वर्ष की अवस्था में राहुल बुद्धदेव के समीप जाकर बुद्धसंघ में सम्मिलित हुआ और बीस वर्ष की अवस्था में बौद्धभिक्षु बन गया।

रुक्मरथ—(१) विदर्भदेश के राजा भीष्मक का पुत्र। यह राजपुत्र द्रौपदी के स्वयंवर में उपस्थित था। (महाभारत)

(२) मद्रदेश के राजा शल्य का ज्येष्ठ पुत्र। यह राजपुत्र अपने पिता तथा भाई रुक्मांगद के साथ द्रौपदी स्वयंवर में सम्मिलित हुआ था। भारत-युद्ध में यह कौरवों के पक्ष से लड़ा था। इसका युद्ध श्वेत, अभिमन्यु तथा सहदेव से हुआ था। अभिमन्यु द्वारा इसका वध हुआ।

रुक्मिणी—विदर्भराज भीष्मक की कन्या और श्रीकृष्ण की पत्नी। ये लक्ष्मी की अवतार थीं। श्रीकृष्ण ने इनके साथ राक्षस-विवाह-विधि से ब्याह किया था। इनके भाई का नाम रुक्मी था। यौवन के प्रारंभ होते ही रुक्मिणी असाधारण सुंदरी हो गई। रुक्मिणी की सुंदरता आदि का वर्णन सुनकर श्रीकृष्ण उनपर मोहित हो गए थे और रुक्मिणी भी श्रीकृष्ण के गुणों को सुनकर उनपर मोहित हो गई थीं। रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण को पति बनाने की इच्छा जाहिर की, परंतु उनके भाई रुक्मी के विरोध करने के कारण पिता ने भी रुक्मिणी के प्रस्ताव पर अपनी सम्मति नहीं दी। रुक्मी श्रीकृष्ण को बहुत बुरा समझता था।

इधर मगधाधिपति प्रबल पराक्रमी राजा जरासंध ने दमघोष के पुत्र शिशुपाल के लिए राजा भीष्मक से रुक्मिणी प्रदान करने का प्रस्ताव कर भेजा। राजा भीष्मक ने जरासंध का प्रस्ताव स्वीकृत भी कर लिया। चेदिराज दमघोष और मगधाधिपति जरासंध दोनों ही एक ही वंश में उत्पन्न हुए थे। जरासंध ने दमघोष के पुत्र शिशुपाल को अपने पास रखकर पुत्रों के समान उनका लालन-पालन किया था। श्रीकृष्ण ने जरासंध के जामाता कंस को मार डाला था, इस कारण शिशुपाल भी श्रीकृष्ण से द्वेष करता था। कृष्णविद्वेषी रुक्मी के परामर्श से भीष्मक ने जरासंध के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। कुंडिन-नगर में विवाह की तैयारियां धूमधाम से होने लगीं। शिशुपाल श्रीकृष्ण की बुआ का लड़का था। अतएव श्रीकृष्ण अपनी बुआ को प्रसन्न करने के लिए बलराम तथा अन्य वृष्णिवंशियों को लेकर कुंडिनपुर उपस्थित हुए। विवाह के पहले दिन रुक्मिणी रथ पर चढ़कर देवपूजा के लिए मंदिर में जाती थीं। मार्ग में श्रीकृष्ण ने उन्हें देख लिया। दोनों ने परस्पर देखा। श्रीकृष्ण ने बलराम से परामर्श करके रुक्मिणी को हरण करने का संकल्प किया। देवता की पूजा करके रुक्मिणी जब घर लौट आ रही थी, तब श्रीकृष्ण ने वहां जाकर रुक्मिणी को अपने रथ पर बैठा लिया। श्रीकृष्ण रुक्मिणी को हरकर ले जा रहे हैं, यह देखकर शिशुपाल, जरासंध, रुक्मी आदि उनसे युद्ध करने के लिए उद्यत हुए। रुक्मी ने अपने पिता के सामने प्रतिज्ञा की थी कि बिना श्रीकृष्ण को मारे और बिना रुक्मिणी का उद्धार किए मैं घर में नहीं लौटूंगा। श्रीकृष्ण के साथ युद्ध में शिशुपाल, जरासंध, रुक्मी आदि वीरगण हार गए। श्रीकृष्ण के शर से मूर्च्छित होकर रुक्मी गिर गया। रुक्मिणी के कहने से श्रीकृष्ण ने उसका वध नहीं किया और छोड़ दिया। रुक्मी ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं किया, इस कारण वह पुनः अपने घर भी नहीं लौटा। विदर्भ-देश के पास ही एक नगरी बनाकर वह वहीं रहने लगा।

श्रीकृष्ण रुक्मिणी को द्वारका ले गए और वहां जाकर उन्होंने विधिवत् विवाह किया। रुक्मिणी ही श्रीकृष्ण की पटरानी थीं। रुक्मिणी के गर्भ से श्रीकृष्ण के प्रद्युम्न, चारुदेष्ण और सुषेण आदि दश पुत्र उत्पन्न हुए थे। रुक्मिणी के बड़े पुत्र प्रद्युम्न ने रुक्मी की कन्या शुभांगी को ब्याहा था। (हरिवंश)

रुक्मिन्—विदर्भराज भीष्मक के पुत्र का नाम। (देखो रुक्मिणी)

रुचि—(१) ब्रह्मा का मानसपुत्र। प्रजापति स्वायंभुव मनु की कन्या आकूति इसकी पत्नी थी। आकूति से इसकी यक्ष तथा दक्षिणा नामक युग्म (जुड़वां) संतानें पैदा हुई थीं। इसने अपनी इन दोनों संतानों को मनु को दे दिया था। (भगवत)

(२) एक प्रजापति। इसने पितरों के अनुरोध पर मालिनी अप्सरा से विवाह किया था। मालिनी के पिता का नाम पुष्कर तथा उसकी माता का नाम प्रम्लोचा था, जोकि एक अप्सरा थी। (गरुड पुराण)

(३) अलकापुरी की एक अप्सरा, जिसने अष्टावक्र के स्वागत समारोह में नृत्य किया था। (महाभारत)

(४) देवशर्मा नामक ऋषि की पत्नी। एक बार यह ऋषि घर का प्रबंधभार अपने शिष्य विपुल पर निर्भर करके यज्ञकार्य से बाहर गया। इसकी अनुपस्थिति में कामासक्त इंद्र इसके पास आया और संभोग की याचना करने लगा। विपुल ने इंद्र का प्रतिरोध करके इसके सतीत्व की रक्षा की। अंगराज चित्ररथ की पत्नी प्रभावती इसकी बहन थी, जिसके अनुरोध पर इसने प्रभावती को एक दिव्यपुष्प प्रदान किया। अपने पति के साथ इस सती को स्वर्ग प्राप्त हुआ। (महाभारत)

रुचिरधी—एक राजकुमार। इनके पिता का नाम संकृति था, जो भरत के वंश में थे।

रुद्र—एक देवता का नाम। इस देवता की उत्पत्ति के विषय में कूर्मपुराण में लिखा है कि सृष्टि करने की इच्छा से ब्रह्मा ने कठोर तपस्या की, परंतु फल कुछ भी नहीं हुआ, वे कुछ भी सृष्टि नहीं कर सके। इससे उन्हें बड़ा क्रोध हुआ और क्रोध के कारण उनके नेत्रों से दो बिंदु अश्रु टपक पड़े। उन्हीं अश्रुबिंदुओं से भूत-प्रेत उत्पन्न हुए। अनंतर ब्रह्मा के मुख से प्राणमय रुद्रदेव उत्पन्न हुए। इन रुद्रदेव का तेज कोटि सूर्य तथा प्रलयकाल की अग्नि के समान था। उत्पन्न होते ही रुद्रदेव रोदन करने लगे। ब्रह्मा ने कहा—तुम रोदन मत करो। जन्मते ही रोने के कारण इनका नाम रुद्र पड़ा (कूर्मपुराण)। पद्मपुराण के अनुसार, ब्रह्मा के भ्रूमध्य से रुद्रदेव की उत्पत्ति हुई। इस पुराण में लिखा है कि इरावती, दीक्षा, धृति आदि स्त्रियों के गर्भ से रुद्रदेव ने भूत-प्रेत आदि को उत्पन्न किया था। कूर्मपुराण में लिखा है कि यदि कोई विष्णु और रुद्र में भेदबुद्धि करता है तो वह नरक में जाता है और उक्त दोनों देवों को अभेदबुद्धि से देखने पर मुक्ति प्राप्त होती है। ऋग्वेद में रुद्र और अग्नि का अभेदरूप से वर्णन किया गया है।

रुद्रकाली—उमा का नामांतर। वीरभद्र के साथ मिलकर जब उमा ने दक्ष का यज्ञ नष्ट किया उसी समय इनका नाम रुद्रकाली पड़ा।

रुद्रलोक—शिव का लोक। कैलास का नामांतर।

रुमा—कपिराज सुग्रीव की पत्नी का नाम।

रुरु—महर्षि च्यवन के पौत्र और प्रमिति के पुत्र। प्रमिति के औरस और घृताची नाम की अप्सरा के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी। रुरु की पत्नी का नाम प्रमद्वरा था। प्रमद्वरा के गर्भ से शुनक नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। प्रमद्वरा की मृत्यु होने पर रुरु ने अपनी आधी आयु देकर उसे जीवित कर दिया था। महर्षि शुनक वेदाध्ययनसंपन्न, तपोनिरत, ब्रह्मज्ञानी, सत्यवादी और जितेंद्रिय थे। द्वादश वर्ष व्यापी यज्ञ करने वाले नैमिषारण्यस्थ विख्यात कुलपति शौनक इन्हीं शुनक के पुत्र थे।

रुरुका—एक राजकुमार का नाम। इनके पिता का नाम विजय था। ये राजा सगर के वंशज थे।

रुषद्र—स्वाही के पुत्र और शशबिंद के पितामह।

रूप—एक नदी का नाम। यह नदी शक्तिमत् पर्वत से निकली है।

रूपसाहि कायस्थ—ये हिंदी के कवि थे और बागमहल पटना के समीप के रहने वाले थे। ये हिंदूपति बुंदेला पन्ना महाराज के दरबार में रहते थे। इनके लिखे ग्रंथ का नाम 'रूपविलास' है। इस ग्रंथ का हिंदी कवियों में बड़ा आदर है।

रेणुका—परशुराम की माता का नाम।

रेभ—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा आचार्य। आचार्य अवत्सार काश्यप इसके पिता थे। यह अश्वियों का कृपापात्र था। एक बार यह असुरों के चंगुल में फंस गया था। उन्होंने इसे बांधकर कुएं में डाल दिया था, जहां यह भूखा-प्यासा नौ रात तथा दस दिनों तक पड़ा रहा। अंत में, अश्वियों ने इसका उद्धार करके इसे जीवनदान दिया। दूसरी बार भी एक गुफा में बंदी हुए इसका अश्वियों ने उद्धार किया। (ऋग्वेद)

रेवत—रोहिणीपुत्र बलराम के श्वशुर का नाम। ये एक राजा थे। कुशस्थली नाम की नगरी इनकी राजधानी थी। इनकी कन्या रेवती बड़ी ही सुंदर थी। कन्या के युवती होने पर रेवत उसके योग्य वर ढूंढ़ने लगे। बहुत दिनों तक कोई उपयुक्त वर न मिलने के कारण ये स्वर्ग में लोकपितामह ब्रह्मा के निकट गए। ब्रह्मा की आज्ञा के अनुसार पृथ्वी में आकर इन्होंने बलराम को कन्या दे दी। (हरिवंश)

रेवती—कुशस्थली के राजा रेवत की पुत्री। रेवती के गर्भ से बलराम के निशठ और उल्मूक नामक दो पुत्र

उत्पन्न हुए। यादवों के नाश होने पर बलराम ने देह-त्याग किया और रेवती भी उनके साथ सती हुई। सहमरण की प्रथा रामायण में नहीं देखी जाती, परंतु महाभारत के समय यह प्रथा चल पड़ी थी। राम की माता साध्वी कौशल्या मृतपति के साथ चिता में नहीं बैठी थी, परंतु पांडु के साथ पतिप्रिया माद्री ने प्राणत्याग किया था। रेवती भी पति के साथ मर-कर पतिप्रेम का उदाहरण बनी है।

रैदास—हिंदी साहित्य की संत-परंपरा में संत रविदास या रैदास का नाम उल्लेखनीय है। जाति के ये चमार थे। इनका स्थितिकाल १४४५-१५७५ वि० (१३८८-१५१८ ई०) माना जाता है। दक्षिण के महान् संत एवं आचार्य रामानंद इनके गुरु थे। चित्तौड़ के महा-राणा सांगा की पत्नी झालारानी इनकी शिष्या थी, जो मीराबाई ही थी। मीराबाई द्वारा रैदास का शिष्यत्व वरण करना इसलिए भी युक्ति-संगत जान पड़ता है कि स्वयं मीराबाई ने अपने अनेक पदों में रैदास की स्तुति की है। ये कबीरदास के समय वर्तमान थे। इनकी अवस्था १२० वर्ष की बतायी जाती है।

रैदास, कबीर की ही भांति अनपढ़ थे। इसलिए उन्होंने स्वतंत्र रूप से किसी ग्रंथ की रचना नहीं की। इनके पद अनेक संग्रहों में संकलित हैं। इनकी रचनाओं का एक स्वतंत्र संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है। इनकी भाषा पर अरबी-फारसी का प्रभाव है। अपने समय के प्रसिद्ध महात्माओं में इनकी गणना थी। कबीर, मीरा, नाभादास, पिपादास आदि ने इनका ससम्मान उल्लेख किया है (हिंदी विश्वकोश, भाग-२)।

रैवत—(१) राजा प्रियव्रत के पुत्रों में से एक पुत्र का नाम। ये पांचवें मन्वंतर के मनु थे।

(२) एक पर्वत का नाम।

(३) राजा रेवत के बड़े पुत्र का नाम। ये रेवती के बड़े भाई थे।

रैवतकः—गिरनार पर्वत जो जूनागढ़ में है।

रैवतक पर्वत—यह पर्वत द्वारका के पास था, जिसको पार्जिटर ने आधुनिक हलार के बरदा पहाड़ियों से समीकृत किया है। कुछ विद्वानों ने इसे गिरनार की दो पहाड़ियों से समीकृत किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि दक्षिण-पश्चिम संभाग में गिरनार पर्वत पर रेवत एवं ऊर्जयंत नामक दो पहाड़ियां थीं, जिन्हें बाद में एक ही माना गया। इस गिरनार पहाड़ी का महत्त्व नेमिनाथ तथा पार्श्वनाथ के मंदिर के कारण है (देखिए गिरनार)।

रोचमान—पांचालदेशीय या चेदिदेशीय एक राजा। इसका जन्म अश्वग्रीव नामक असुर के अंश से हुआ था। इसके पुत्र का नाम हेमवर्ण था। द्रौपदी के स्वयंवर में यह उपस्थित था। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय पश्चिम दिशा के अश्वरक्षक भीम ने इसपर विजय प्राप्त की थी। भारत-युद्ध में यह पांडव पक्ष से लड़ा था। इस पराक्रमी राजा का कर्ण द्वारा वध हुआ।

रोमपाद—अंगदेश के अधिपति। (देखो ऋष्यशृङ्ग)

रोशमा—ऋग्वेद की सूक्तद्रष्ट्री विदुषी। यह भावयव्य राजा की पत्नी थी। ऋग्वेद (१।१२६।७) के 'रोशमा-भावयव्य-संवाद' से ज्ञात होता है कि इसका वास्तविक नाम बालबाली था और रोशमा उसके विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

रोहिणी—(१) दक्ष की कन्या और चंद्र की पत्नी।

(२) वसुदेव की पत्नी और बलराम की माता। ये कंस के डर से बलराम को लेकर गोकुल में वसुदेव के मित्र नंद के घर में रहती थीं। यदुवंश के नाश होने पर वसुदेव ने शरीर त्याग किया और रोहिणी भी उनके साथ सती हुईं।

रोहित—(१) कतिपय पुराणों में इनका उल्लेख मनु के नाम से हुआ है। ये नवें मन्वंतर के मनु हैं।

(२) हरिश्चंद्र के पुत्र का नाम।

रोहिताश्व—इनको कुछ लोग रोहित भी कहते हैं। ये राजा हरिश्चंद्र के पुत्र थे। आज भी बिहार तथा पंजाब में इनका नाम वर्तमान है। भागवत में लिखा है कि इनके पिता ने इनको वरुणदेव की प्रसन्नता के लिए बलि देने की मानता की थी। क्योंकि उनका कोई पुत्र नहीं होता था। परंतु पुत्र होने पर उन्होंने पुत्र का बलिदान नहीं किया। इससे वरुण अप्रसन्न हो गए तथा वरुण की अप्रसन्नता से राजा हरिश्चंद्र को जलोदर का रोग हो गया। इसी समय इंद्र के उपदेश से रोहिताश्व वन में चला गया। कुछ दिनों के बाद पुनः रोहिताश्व घर लौटा आ रहा था। उस समय भी इंद्र ने उसे आने नहीं दिया। तदनंतर राजा हरिश्चंद्र ने यज्ञ किया और उनका जलोदर रोग छूट गया।

रोही—अफगानिस्तान की रोहा नदी।

रोहीतक—रोहतक जिला जो हरियाणा में है।

रौच्य—तेरहवें मन्वंतर के मनु का नाम। ये प्रजापति रुचि के औरस और मानिनी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। मत्स्य तथा पद्मपुराण में लिखा है कि रौच्य नवें मन्वंतर के मनु थे।

रौद्रश्व—एक राजकुमार का नाम। इनके पिता का नाम अहंयाति था। ये पुरु के वंश के थे।

ल

लकुलिन्—एक शिवावतार, जो वासुदेव कृष्ण और कृष्ण-द्वैपायन व्यास का समकालीन था। हाथ में डंडा या लकुड़ लेकर अवतार धारण करने के कारण इसको लकुलिन् नाम से कहा गया। श्मशान के एक प्रेत में कायप्रवेश करके यह कायावरोहण तीर्थ में अवतरित हुआ था। इसके कुशिक, गर्ग, मित्र और कौरुष्य नामक चार शिष्य थे। इन ब्राह्मण वेदवेत्ता शिष्यों ने पाशुपत शिवोपासना की प्रतिष्ठा की। उपलब्ध ऐतिहासिक शिलालेखों से विदित होता है कि देश-देशांतर में इसका प्रभाव व्याप्त था।

लक्ष्मण—अयोध्याधिपति दशरथ के पुत्र और श्रीरामचंद्र के सौतेले छोटे भाई। लक्ष्मण महारानी सुमित्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ये रामचंद्र के साथ वन गए थे और वहां स्वयं अनेक कष्ट सहकर इन्होंने रामचंद्र की सेवा की थी। लक्ष्मण बड़े भाई के प्रेम में इतने विभोर हो गए थे कि वे स्वयं को भूल गए थे। इन्होंने इंद्रजित् का वध किया था। श्रीराम के परित्याग करने पर इन्होंने सरयू में शरीर का त्याग करके स्वर्ग की यात्रा की थी।

लक्ष्मण भट्ट—प्रसिद्ध पुष्टिमार्ग संप्रदाय के प्रवर्तक श्रीवल्लभाचार्य के पिता का नाम। ये तैलंगी ब्राह्मण थे। १५वीं सदी के अंत में ये तैलंग देश से ब्रज की ओर आए थे।

लक्ष्मणसिंह (राणा)—मेवाड़ के महाराणा। ये सन् १२७५ ई० में मेवाड़ के राजसिंहासन पर बैठे थे। उस समय चित्तौड़ की अवस्था अत्यंत शोच्य थी। अलाउद्दीन के आक्रमण से चित्तौड़ क्षार-क्षार हो गया था। इस हिंदू वैरी ने चित्तौड़ पर दो बार आक्रमण किया था। पहली ही लड़ाई में चित्तौड़ के प्रधान-प्रधान वीर काम आ चुके थे और दूसरी लड़ाई में तो चित्तौड़ उजाड़ हो गया।

राजा लक्ष्मणसिंह छोटी अवस्था में मेवाड़ के सिंहासन पर बैठे। जब तक ये राजकार्य करने योग्य नहीं हुए तब तक इनके चाचा भीमसिंह ही राज्य का शासन करते थे। इन्हीं भीमसिंह की पत्नी का नाम पद्मिनी था। (देखो पद्मिनी और भीमसिंह)

अलाउद्दीन ने पुनः चित्तौड़ पर चढ़ाई की। दोनों ओर के वीर योद्धा प्रबल वेग से लड़ने लगे। एक दिन दिन-भर के घोर युद्ध करने के अनंतर आधी रात को महाराणा लक्ष्मणसिंह अपने शयनगृह में बैठे थे। ठीक आधी रात हो गई। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। महाराणा चित्तौड़ का भविष्य सोच रहे थे। इसी समय सहसा एक शब्द महाराणा को सुनाई पड़ा उस घोर निस्तब्धता को भेदन करता हुआ। यह शब्द महाराणा को सुनाई पड़ा—"मैं भूखी हूं।" महाराणा का चिंतास्रोत उलट गया। वे चकित होकर जिधर से शब्द आया था उधर की ओर देखने लगे। दीपक की क्षीण प्रभा में महाराणा ने देखा कि पत्थर के खंभों के बीच में चित्तौड़ की अधिष्ठात्री देवी विकटरूप से आविर्भूत हुई हैं। देवी को देखते ही महाराणा का हृदय विषादपूर्ण हो गया।

महाराणा ने कड़ककर कहा—अब तक तुम्हारी क्षुधा शांत नहीं हुई। अभी थोड़े ही दिन हुए, राजवंश के आठ हजार वीर पुरुषों ने संग्रामभूमि में प्राण त्याग दिए, परंतु तो भी तुम्हारा खप्पर पूरा नहीं हुआ, तुम्हारी पिपासा दूर नहीं हुई। देवी बोलीं—मैं राजबलि चाहती हूं। राजमुकुटधारी १२ राजकुमार चित्तौड़ की रक्षा करने के लिए संग्रामभूमि में यदि प्राणत्याग न करेंगे, तो मेवाड़ का राज्य शिशोदिया के हाथ से निकल जाएगा—यह कहकर देवी जी

अंतर्हित हो गईं।

महाराणा बड़ी विपद् में पड़े। रात-भर जागे। प्रातःकाल होते ही राज्य के सामंत सरदारों को बुलाकर उन्होंने सब हाल कहा। परंतु महाराणा की बातों पर किसीको विश्वास नहीं हुआ। तब महाराणा ने कहा—तुम लोग आज रात को यहीं रहो। फिर मेरी बात की सत्यता तुम लोगों को मालूम हो जाएगी।

सभी ने राणा की कही हुई बात की सत्यता की परीक्षा की। पुनः राजकुमार रणस्थल में भेजे जाने लगे। राजकुमार युद्ध में बड़ी वीरता दिखाकर प्राण-त्याग करने लगे। देखते-देखते महाराणा के ग्यारह राजकुमार रणदेवी के बलि हुए। अब केवल एक राजकुमार अजयसिंह बचे हुए थे। महाराणा ने उनको थोड़ी सेना लेकर वहां से चले जाने के लिए कहा। तदनंतर महाराणा स्वयं युद्धक्षेत्र में उपस्थित हुए और अनेक शत्रु वीरों को रणभूमि में गिराकर वे भी वहीं अनंत निद्रा में अभिभूत हुए।

(टाड्स राजस्थान)

लक्ष्मणसिंह—ये यदुवंशी क्षत्रिय थे। इनका जन्मस्थान आगरा था। सन् १८२६ ई० में इनका जन्म हुआ था। पांच वर्ष की अवस्था में विधिवत् इन्हें विद्यारंभ कराया गया था। नागरी अक्षरों के लिखने का पूर्ण अभ्यास हो जाने पर इन्हें संस्कृत और फारसी शिक्षा दी जाने लगी। ये तीव्रबुद्धि के थे, इसी कारण १२ वर्ष की अवस्था में इन्होंने अच्छी शिक्षा प्राप्त कर ली। बारह वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। तदनंतर अंग्रेजी पढ़ने के लिए वे आगरा कालेज में बैठाए गए। उस समय केवल सीनियर और जूनियर नाम की दो परीक्षाएं होती थीं। इन्होंने सीनियर परीक्षा पास की। कालेज में अंग्रेजी के साथ इनकी दूसरी भाषा संस्कृत थी और घर पर हिंदी, अरबी तथा फारसी पढ़ते थे। कालेज छोड़ने पर इन्होंने बंगला भाषा का भी अच्छा अभ्यास कर लिया था। इस प्रकार २४ वर्ष की अवस्था में कई-एक भाषाओं में इन्होंने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी।

राजा लक्ष्मणसिंह कालेज से निकलकर पश्चिमोत्तर प्रदेश के छोटे लाट के दफ्तर में १०० रुपये मासिक वेतन पर अनुवादक नियत हुए। तीन वर्ष के बाद इनका वेतन १५० रुपये हुआ। तब से ये सदर बोर्ड के दफ्तर में काम करने लगे। इसके दो वर्ष के पश्चात् इन्हें इटावा की तहसीलदारी मिली। उस समय ह्यूम साहब इटावा के कलक्टर थे। वे राजा साहब के गुणों से अत्यंत प्रसन्न रहा करते थे। ह्यूम साहब की सहायता से राजा साहब ने इटावा में ह्यूम हाई स्कूल स्थापित किया, जो अब तक विद्यमान है तथा उसमें अच्छे-अच्छे योग्य विद्यार्थी प्रतिवर्ष निकलते हैं। इनके कार्यों से प्रसन्न होकर ह्यूम साहब ने इनकी बड़ी तारीफ लिखकर गवर्नमेंट को भेजी। गवर्नमेंट ने इन्हें डिप्टी कलक्टर बना दिया और इटावा से बांदा भेज दिया।

राजा साहब बांदा से छुट्टी लेकर अपने घर आगरा जा रहे थे उसी समय बलवा हो गया। जब ये इटावा के पास पहुंचे तब सुना कि यहां भी बड़ा उपद्रव मचा हुआ है। ये शीघ्र ही ह्यूम साहब के पास पहुंचे और उनके कहने से अनेक अंग्रेज बालक तथा मेमों को सकुशल आगरा के किले में पहुंचा दिया। घर पर आकर इन्होंने कतिपय राजपूतों को एकत्रित किया और उन्हें लेकर ह्यूम साहब की रक्षा के लिए इटावा जाने ही वाले थे कि वे स्वयं इनके घर पहुंच गए। राजा साहब ने उनको अपनी ही रक्षा में रखा और जब दिल्ली पर अधिकार करके सरकारी फौज ने इटावा पर धावा किया, तब राजा साहब ने उसका साथ दिया और उस लड़ाई में सम्मिलित भी रहे।

इसके लिए सरकार ने इन्हें सरका का इलाका माफी में देना चाहा। परंतु इन्होंने नम्रतापूर्वक यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि मैंने जो कुछ किया सो जातीय धर्म के अनुसार किया, इसके लिए पुरस्कार की कोई आवश्यकता नहीं है। तब इन्हें पहले दरजे की डिप्टी कलक्टरी दी गई और ८०० रुपये मासिक वेतन करके ये बुलंदशहर बदल दिए गए। यहां इन्होंने बीस वर्ष काम किया और सन् १८८९ ई० में पेंशन लेकर ये अपनी जन्मभूमि आगरा में रहने लगे। सन् १८७० ई० के प्रथम दिल्ली दरबार के समय इन्हें गवर्नमेंट से 'राजा' की उपाधि मिली।

डिप्टी कलक्टरी के कामों से यद्यपि इन्हें बहुत कम समय मिलता था, तथापि जो कुछ भी समय इन्हें मिलता था, उस समय में ये हिंदी की सेवा किया करते थे। इन्होंने गवर्नमेंट की बहुतेरी पुस्तकों

का अंग्रेजी और फारसी से हिंदी में अनुवाद किया, जिनमें से 'ताजीरात हिंद' का अनुवाद 'दंड-संग्रह' है। इन्होंने बुलंदशहर का एक इतिहास भी लिखा है जो हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी तीनों भाषाओं में छपा है। हिंदी जगत् में इनका नाम अमर करने वाले शाकुंतल, रघुवंश और मेघदूत के भाषानुवाद हैं। इन पुस्तकों के अनुवाद में जो राजा साहब ने अपनी विद्वत्ता दिखलाई है वह प्रसिद्ध ही है। भारतवर्ष तथा यूरोप के विद्वानों ने भी आपको हिंदी का अच्छा ज्ञाता और कवि माना है। इनके लिखने में यह खूबी है कि गद्य की कौन कहे, पद्य में भी उर्दू या फारसी का एक भी शब्द नहीं आने पाता। इनका देहांत ६४ वर्ष की अवस्था में सन् १८९६ में हुआ।

लक्ष्मणसेन—बंगीय कौलीन्य प्रथा के प्रवर्तक प्रसिद्ध राजा बल्लालसेन के पुत्र। लक्ष्मणसेन भी एक प्रसिद्ध दिग्विजयी राजा थे। उन्होंने वाराणसी, प्रयाग तथा श्रीक्षेत्र में अपना विजय-स्तंभ स्थापित किया था। आज भी मिथिला में लक्ष्मणसेन का अब्द प्रचलित है। लक्ष्मणसेन के प्रधानमंत्री हलायुध ने 'ब्राह्मण-सर्वस्व' नामक स्मृतिग्रंथ की रचना की। बंग के विख्यात कवि जयदेव ने इन्हींकी सभा में रहकर अपने प्रसिद्ध गीतगोविंद काव्य का निर्माण किया था। उमापतिधर, शरण और गोवर्द्धनाचार्य ये तीन और भी लक्ष्मणसेन की सभा में वर्तमान थे। राजेंद्रलाल मित्र कहते हैं कि लक्ष्मण के पिता का नाम बल्लालसेन और पितामह का नाम विजयसेन था। इनके मत से लक्ष्मणसेन ११०१ ई० में राज्य करते थे। इन्हींके प्रपौत्र अशोकसेन अथवा शूरसेन बंग के शेष राजा थे। इनका दूसरा नाम लक्ष्मणीया था। ये १२०३ ई० में बख्तियार खिलजी के द्वारा परास्त हुए थे।

लक्ष्मी—सृष्टि के पहले रासमंडलस्थ परमात्मा श्रीकृष्ण के वाम भाग से लक्ष्मी की उत्पत्ति हुई थी। ये देवी बड़ी सुंदर थीं। ये उत्पन्न होते ही ईश्वर की इच्छा से दो रूपों में विभक्त हुईं। ये दोनों मूर्तियां—अवस्था, आकार, भूषण, सुंदरता आदि सभी बातों में समान थीं। एक मूर्ति का नाम लक्ष्मी पड़ा और दूसरी मूर्ति का नाम राधिका पड़ा। लक्ष्मी श्रीकृष्ण के वाम भाग से उत्पन्न हुई थीं और राधिका भगवान् के दक्षिण भाग से उत्पन्न हुई थीं। इन दोनों मूर्तियों की अभिलाषा-पूर्ति के लिए भगवान् ने भी दक्षिणांश से द्विभुज और वामांश से चतुर्भुज मूर्ति धारण की। द्विभुज मूर्ति राधाकांत और चतुर्भुज मूर्ति नारायण हुई। श्रीकृष्ण तो राधा तथा गोप-गोपियों को लेकर वहीं रह गए और नारायण लक्ष्मी को लेकर बैकुंठ चले गए। बैकुंठ में ही उनका रहना निश्चित हुआ। लक्ष्मी जी नारायण को अपने वश में करके सब रमणियों में प्रधान हो गईं। ये देवी लक्ष्मी, स्वर्ग में इंद्र की संपत्तिरूपिणी स्वर्गलक्ष्मी के रूप से, पाताल और मर्त्य के राजाओं के पास राजलक्ष्मी के रूप से, गृहस्थों के यहां गृहलक्ष्मी के रूप से, चंद्र, सूर्य, अलंकार, रत्न, फल, महारानी, अन्न, वस्त्र, देवप्रतिमा, मंगल, घर, हीरा, चंदन, नूतन, मेघ आदि में शोभारूप से वर्तमान रहती हैं। लक्ष्मीदेवी ही शोभा का आधार हैं। जिस स्थान पर लक्ष्मी नहीं है, वह स्थान शोभाशून्य है।

एक बार महर्षि दुर्वासा बैकुंठ से कैलास जा रहे थे। देवराज इंद्र ने इन्हें बड़े आदर के साथ प्रणाम किया। दुर्वासा ने प्रसन्न होकर देवराज को पारिजात पुष्प की भेंट की। इंद्र ने अहंकार के कारण उस माला को ऐरावत के सिर पर रख दिया। ऐरावत ने उस माला को भूमि पर फेंक दिया। यह देखकर दुर्वासा क्रुद्ध हो गए और उन्होंने इंद्र को शाप दिया कि तुम शीघ्र ही लक्ष्मीभ्रष्ट हो जाओ। मैं और भी कहता हूं कि जिसके मस्तक पर यह माला रखी गई है उसकी आज से सर्वप्रथम पूजा होगी। दुर्वासा के शाप से स्वर्ग-लक्ष्मी भ्रष्ट हो गई। तब इंद्र और देवगण ब्रह्मा की शरण में गए। इंद्र आदि देवों को लेकर ब्रह्मा बैकुंठ में श्रीनारायण के समीप गए। ब्रह्मा ने दुर्वासा के शाप से देवों की दुर्दशा का हाल विष्णु से कहा। विष्णु ने देवताओं को आश्वासन देते हुए कहा—देवगण! तुम कुछ भी चिंता मत करो। बहुत शीघ्र ही तुम लोगों को ऐश्वर्यशालिनी लक्ष्मी प्राप्त होगी। तदनंतर विष्णु ने कहां-कहां लक्ष्मी रहती हैं और कहां-कहां नहीं रहती हैं, इसका उपदेश दिया। देवताओं को यह कहकर विष्णु ने लक्ष्मी को समुद्र में जन्म ग्रहण करने की आज्ञा दी और ब्रह्मा से कहा—समुद्र-मंथन करके आप लोग लक्ष्मी का उद्धार करने का प्रयत्न करें। तदनंतर देवों ने समुद्र-मंथन किया और वहां से लक्ष्मी का उद्धार किया। (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

लक्ष्मीधर—भास्कराचार्य के पुत्र। ये सर्वशास्त्रज्ञ तथा ग्रहयोगविशारद थे। पाटन के राजा जैत्रपाल ने उनके पांडित्य का परिचय पाकर उन्हें अपने यहां बुला

लिया।

लक्ष्मीबाई—मध्यप्रदेश के अंतर्गत झांसी के अधिपति परलोकगत गंगाधरराव की विधवा रानी। राजा गंगाधर राव की मृत्यु होने पर उस समय के भारत के बड़े लाट डलहौजी ने इस राज्य को गवर्नमेंट के राज्य में मिला दिया। इससे लक्ष्मीबाई बहुत अप्रसन्न हुई और सिपाही-विद्रोह के समय इसने विद्रोही सैन्य के साथ मिलकर अंग्रेजी सेना के साथ घोर युद्ध किया। अंग्रेज सेनापति सर हिरोज इस वीर रमणी की वीरता देखकर आश्चर्यचकित हुए थे। सन् १८५८ ई० में यह वीर रमणी ग्वालियर से थोड़ी दूरी पर अंग्रेज सेना के साथ अत्यंत घोर युद्ध करके परास्त हुई। युद्धक्षेत्र से लौटने के समय एक अंग्रेज की गोली लग जाने के कारण इसने शरीर-त्याग किया।

लगध—ज्योतिर्विज्ञान का आद्य ग्रंथकार। इसके द्वारा विरचित ऋग्वेदीय 'वेदांग ज्योतिष' नामक ग्रंथ उपलब्ध है, जिसे षड्वेदांगों में सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। इसमें केवल ३६ श्लोक हैं। आचार्य लगध के संबंध में यह विवाद है कि ये भारतीय थे या विदेशी। इन्हें काश्मीर या अफगानिस्तान का निवासी बताया गया है और आधुनिक इतिहासकार विद्वानों ने इनका स्थितिकाल ईसा-पूर्व तीसरी शती से लेकर ईसा-पूर्व तेरहवीं शती के बीच विभिन्न तिथियों में निर्धारित किया है। आकाशीय ग्रहविज्ञान के संबंध में यह ग्रंथ महत्त्वपूर्ण बताया जाता है। भारतीय ज्योतिषशास्त्र का यह बीज है। इसके अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं (दीक्षित—भारतीय ज्योतिष)।

लटकन मिश्र—'भावप्रकाश' नामक वैद्यक ग्रंथ के संकलनकर्ता। भावमिश्र के ये पिता थे।

लम्बकाः (लम्पकाः)—लामकन देश, जो काबुल नदी के उत्तरी तट पर है।

ललनदास ब्राह्मण—ये डलमऊ के रहने वाले ब्राह्मण थे। सं० १८३१ वि० में ये उत्पन्न हुए थे। ये बड़े महात्मा थे। इनकी शांत रस की कविता उत्तम है।

ललितादित्य—काश्मीर के एक राजा का नाम। काश्मीरराज तारापीड की मृत्यु के अनंतर ये काश्मीर के सिंहासन पर विराजमान हुए थे। जिस समय राजा तारापीड का परलोकवास हुआ, उस समय ललितादित्य काश्मीर के अंतर्गत काश्मीर के एक शासक थे। ललितादित्य को स्वप्न में भी यह विश्वास नहीं था कि उन्हें समस्त काश्मीर के शासन का भार मिलेगा।

काश्मीर के सिंहासन पर बैठकर ललितादित्य ने समस्त जंबूद्वीप पर अधिकार कर लिया। दिग्विजय के लिए जब वे युद्ध-यात्रा करते थे तब भीत होकर शत्रुदल उनके अधीन हो जाता था।

ललितादित्य ने कान्यकुब्जराज यशोवर्मा पर आक्रमण किया था। अनगिनत सेना एकत्रित करके यशोवर्मा युद्धक्षेत्र में अवतीर्ण हुए। परंतु यशोवर्मा की अनगिनत सेना राजा ललितादित्य की प्रतापाग्नि में भस्म हो गई। अंत में, यशोवर्मा दूसरा कोई उपाय न देखकर रणक्षेत्र से भाग गए। इन्हीं कन्नौजपति राजा यशोवर्मा की सभा में भवभूति आदि महाकवि थे। कन्नौज पर अधिकार करके राजा ललितादित्य ने पूर्व की ओर की दिग्विजय-यात्रा की। इसी प्रकार इन्होंने दिग्विजय-यात्रा करके अपनी प्रभुता विस्तृत कर ली। दिग्विजय में इन्हें जो धन प्राप्त हुआ था, उससे इन्होंने कई मंदिर, अग्रहार आदि बनवाए थे। इन्होंने परिहासपुर नामक एक नगर बसाया था और उसमें इंद्रध्वज नाम का एक कीर्तिस्तंभ प्रतिष्ठित किया था। यह स्तंभ पत्थर का था और ५४ फुट ऊंचा था। इन्होंने ३६ वर्ष, ७ महीने, ११ दिन राज्य किया था। (राजतरंगिणी)

ललितापीड—काश्मीर के एक राजा का नाम। ये राजा जयापीड की रानी दुर्गा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ललितापीड बड़े ही इंद्रियपरायण थे। राजकार्य की ओर उनका कुछ भी ध्यान नहीं था। इनके शासन काल में राज्य में दुराचार की वृद्धि हुई थी और वेश्याओं की प्रधानता हो गई थी।

इनके नारकी पिता जयापीड ने पापकर्मों के द्वारा जो अर्थोपार्जन किया था, इस समय पुत्र ललितापीड उसका उचित व्यय करने लगा। धूर्त दुराचारियों ने राजा को वेश्या-विद्या में निपुण कर दिया। वीर अथवा पंडितों का आदर करना वह भूल गया। भंडुओं और मसखरों का ही उस दरबार में आदर होता था। ललितापीड इतना दुर्वृत्त हो गया कि एक मुहूर्त भी स्त्रियों को बिना देखे उसे चैन नहीं पड़ता था। जो राजा सर्वदा दिग्विजय में प्रवृत्त रहकर अपने राज्य बढ़ाने में लगे रहते थे, ललितापीड उन्हें मूर्ख कहकर हंसता था। उसके पिता राज्य को जीतकर जितेंद्रियतापूर्वक लौट आए थे, यह सुनकर वह अपने

पिता को मूर्ख कहा करता था। वह वेश्याओं को साथ लेकर सिंहासन पर बैठता था। यदि कोई मंत्री उसे सदुपदेश देता तो वह अपने सहचर गुंडों से उसकी हंसी कराता था। वह रंडियों के पैर पोंछे वस्त्र गुंडों के द्वारा माननीय मंत्रियों को पहनवा दिया करता था और स्वयं उससे प्रसन्न होता था। इससे दु:खित होकर स्वाभिमानी मंत्री मनोरथ ने मंत्रित्व-पद छोड़ दिया था। इस राजा ने ब्राह्मणों को दी हुई वृत्ति छीन ली थी। इस दुराचारी राजा का शासन काश्मीर में १२ वर्ष तक रहा। (राजतरंगिणी)

लल्लाचार्य—एक प्राचीन भारतीय ज्योतिषी। इनका सिद्धांत आर्य ज्योतिष में बड़े आदर से देखा जाता है।

लल्लूलाल—इनका जन्म गुजराती ब्राह्मण परिवार में आगरा में १७६३ ई० को हुआ था। इनके पिता का नाम चैनसुख था, जो कि पुरोहिती का कार्य करते थे। युवावस्था से आजीविकावश वे मुर्शिदाबाद आए और गोस्वामी गोपालदास के सत्संग से उनका परिचय नवाब मुबारक उद्दौला से हुआ। वहां लगभग सात वर्षों तक वे नवाब के आश्रय में जीवन-यापन करते रहे। तदनंतर वे कलकत्ता चले आए और वहां राजा रामकृष्ण के आश्रय में रहने लगे। वहां से वे जगन्नाथपुरी गए और वहां भी कुछ दिनों तक रहकर पुन: कलकत्ता लौट आए। वहां एक अंग्रेज द्वारा इनका संपर्क डाक्टर गिल क्राइस्ट से हुआ और उन्होंने १८०० ई० में इनकी नियुक्ति फोर्ट विलियम कालेज में की। वहां इन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की, जिनके नाम हैं—'सिंहासनबत्तीसी' (अनु०), 'बैतालपच्चीसी' (अनु०), 'शकुंतला नाटक' (मू०), 'माधोनल' (अनु०), 'प्रेमसागर' (मू०), 'राजनीति' (मू०), 'भाषा कायदा' (मू०), 'बिहारी बिहार' (मू०), 'सभाविलास' (मू०), 'माधवविलास'(मू०), 'लतायफे हिंदी या नकलयाते हिंदी' (मू०), 'लाल चंदिमा' (मू०) और 'ब्रजभाषा व्याकरण'। हिंदी की खड़ी बोली के निर्माताओं में लल्लूलाल का स्थान उल्लेखनीय है। इनका निधन १८३५ ई० में कलकत्ता में हुआ (हिंदी साहित्यकोश, भाग-२)।

लव—(१) अयोध्यापति राजा रामचंद्र के ज्येष्ठ पुत्र। रामचंद्र ने उत्तरकौशल के अंतर्गत श्रावस्ती नगरी का निर्माण करके इन्हें वहां का अधिपति बनाया था।

(२) काश्मीर के राजा। काश्मीर के इतिहास राजतरंगिणी में मध्यकालीन कतिपय राजाओं के नाम अज्ञात हैं। उन्हीं अज्ञातनामा राजाओं के राज्यकाल के अनंतर लव काश्मीर के सिंहासन पर बैठे। लव अत्यंत प्रतापी तथा जेता राजा थे। इन्होंने लोलोर नामक एक गांव बसाया था। उस गांव में ८४ लाख पत्थर की अटारियां बनवाई गई थीं। उन्हें लेवार नामक अग्रहार ब्राह्मण को देकर इन्होंने स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया। ये काश्मीरराज के वंश के नहीं थे।

लवणासुर—यह मधु राक्षस का पुत्र था। यह राक्षस रावण की मौसी कुंभीनसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। पितृदत्त शूल के प्रभाव से यह दानव, देव और मनुष्यों से अजेय हो गया था। प्रसिद्ध राजा मांधाता को इसने मार डाला था। महर्षिगण इसके अत्याचार से पीड़ित होकर अयोध्याधिपति महाराज रामचंद्र की शरण में गए। रामचंद्र ने लवणासुर को दमन करने के लिए महर्षियों के साथ शत्रुघ्न को भेजा। वीर शत्रुघ्न ने लवणासुर का वध किया।

लाखनसेन—जयसलमेर के राजा का नाम। इनके पिता का नाम कर्णसी था। पिता की मृत्यु होने पर लाखनसेन सन् १२७२ ई० में जयसलमेर के राज्य-सिंहासन पर विराजे। ये बड़े सीधे-सादे थे। इनको सर्वदा एक प्रकार का उन्माद रोग रहा करता था। एक दिन माघ के महीने में गीदड़ बहुत जोर से चिल्ला रहे थे। लाखनसेन ने सभासदों को बुलाकर कहा कि ये क्यों चिल्ला रहे हैं। एक सभासद् ने उत्तर दिया कि जाड़े से व्याकुल होकर ये चिल्लाते हैं। लाखनसेन ने उत्तर दिया कि इनके लिए वस्त्र बनवा दिए जाएं। कई दिनों के पीछे राजा ने पुन: उनका चिल्लाना सुना। तब राजा ने अपने उसी सभासद् को बुलाकर पूछा कि अब ये क्यों चिल्लाते हैं? क्या इनके कपड़े अभी तक नहीं बनवाए गए? सभासद् ने उत्तर दिया कि कपड़े तो बन गए अन्नदाता! लाखनसेन बोले—तब ये शोर क्यों मचा रहे हैं। अच्छा इनको रहने के लिए मकान बनवा दिए जाएं। इतिहास-लेखक लिखते हैं कि राजकर्मचारियों ने शीघ्र ही राजा की इस आज्ञा का पालन किया। सोढा-जाति की रानी इनपर अपनी विशेष प्रभुता रखती थी। रानी ने अपने पिता की राजधानी अमरकोट से बहुत-से अपने कुटुंबी बुलाए थे और उनके हाथ में राज्य का एक-एक काम सौंप दिया था। परंतु एक दिन बिना कारण ही लाखनसेन ने उन सभी को मार

डाला। इतिहास में लिखा है कि इस निर्बोध राजा ने चार वर्ष तक राज्य किया था। इसके पुत्र का नाम पुण्यपाल था। (टाड्स राजस्थान)

लाट—लाटदेश के संबंध में विद्वानों में मत-मतांतर है। उनमें तारतम्य स्थापित करने पर ज्ञात होता है कि मही तथा किम नदियों के बीच का क्षेत्र ही लाटदेश था, जिसका मुख्य नगर भड़ौंच था। गुजरात का यह प्राचीन राज्य था। गुप्त सम्राटों के समय में वह उनके अधीनस्थ था; किंतु उसकी शासन-व्यवस्था स्वतंत्र थी।

लाट्यायन—एक श्रोतकार आचार्य। आधुनिक इतिहासकारों ने इसे पश्चिम भारत का निवासी बताया है। इसके द्वारा विरचित 'लाट्यायन श्रौतसूत्र' सम्प्रति उपलब्ध है। यह सामवेद के 'पंचविंश ब्राह्मण' पर आधारित कौथुमीय शाखा का श्रौतसूत्र है। इसपर अनेक भाष्यों की रचना हुई, जिनमें आचार्य अग्निस्वामिन् का भाष्य अधिक प्रसिद्ध है। विषय की उपयोगिता की दृष्टि से इसका जितना महत्त्व माना गया है, उतना ही महत्त्व उसमें निर्दिष्ट पूर्वाचार्यों की नामावली की दृष्टि से है।

लाल कवि—(१) ये हिंदी के कवि प्राचीन लाल कवि नाम से प्रसिद्ध हैं। ये राजा छत्रसाल हाड़ा कोटे वाले के दरबार में थे। जिस समय दाराशिकोह और औरंगजेब बादशाही के लिए आपस में फतुहा में लड़ रहे थे और जिस युद्ध में राजा छत्रसाल मारे गए थे, उस युद्ध में ये कवि उपस्थित थे। इन्होंने नायिका-भेद का 'विष्णुविलास' नामक एक हिंदी में ग्रंथ भी लिखा है।

(२) इनका नाम बिहारीलाल था। ये ब्राह्मण थे और टिकमापुर के रहने वाले थे। इनका छाप नाम 'लाल कवि' था। ये सं० १८८५ वि० में उत्पन्न हुए थे। ये महाकवि मतिराम के वंशधरों में से थे। ये ही अपने वंश के अंतिम महाकवि कहे जा सकते हैं।

(३) ये कवि बंदी थे और बनारस के रहने वाले थे। ये काशीनरेश राजा चेतसिंह के दरबार में रहते थे। नायिकाभेद 'आनंदरस' और सतसई की टीका 'लालचंद्रिका' नाम के दो ग्रंथ इन्होंने लिखे हैं।

(४) ये हिंदी के कवि थे और संस्कृत भाषा भी जानते थे। इन्होंने चाणक्यनीति का हिंदी में अनुवाद किया है।

(५) इनका पूरा नाम लल्लूलाल जी था। ये गुजराती थे परंतु आगरे में रहते थे। सं० १८९२ वि० में ये उत्पन्न हुए थे। कहते हैं कि आधुनिक हिंदी के यही आचार्य थे। वे इस बात के प्रमाण में इनका लिखा हुआ 'प्रेमसागर' नामक ग्रंथ उपस्थित करते हैं। जो हो, इन्होंने 'सभाविलास', 'माधवविलास', 'प्रेमसागर' 'वार्तिक राजनीति' आदि कई ग्रंथ लिखे हैं। (शिवसिंहसरोज)

लालगिरिधर—ये हिंदी के कवि और बैसवारे के रहने वाले ब्राह्मण थे। सं० १८०७ वि० में ये उत्पन्न हुए थे। इन्होंने नायिक-भेद का एक ग्रंथ लिखा है, जिसे हिंदी के कवि उत्तम समझते हैं। (शिवसिंहसरोज)

लालचन्द कवि—ये हिंदी भाषा के कवि थे। कवित्त और कुंडलिया छंदों में इनकी कविता बहुत सुंदर हुई है। इनकी कविता प्रायः कूटमय होती थी।

लालमुकुंद कवि—ये हिंदी के कवि थे। सं० १७७४ वि० में ये उत्पन्न हुए थे। ये कवि सरस तथा मधुर कविता करते थे। इनकी कविता प्रायः श्रृंगार रस की ही पाई जाती है।

लाला पाठक—ये हिंदी भाषा के कवि थे और रुकुमनगर के रहने वाले थे। इनका जन्म सं० १८३१ वि० में हुआ था। इन्होंने 'शालिक्षेत्र' नामक हिंदी की एक उत्तम पुस्तक लिखी है।

लिखित—(१) एक स्मृतिकार आचार्य। इसकी माता का नाम एकपर्णा, इसके पिता का नाम जैगीष्यव्य तथा भाई का नाम शंख था। इन दोनों मुनि वृत्ति वाले भाइयों के आश्रम बाहुश नदी के तट पर आसपास स्थित थे। एक बार शंख की अनुपस्थिति में यह उसके आश्रम में गया और बिना अनुमति प्राप्त किए वहां के फल खाने लगा। इसी बीच शंख आ गया। उसने इसपर चोरी का दोषारोपण किया और उसकी सजा पाने के लिए राजा के समक्ष उपस्थित होने के लिए कहा। तदनुसार यह सुद्युम्न राजा के पास गया और उसे अपना अपराध बताकर इसने उसकी सजा पूछी। राजा ने निर्णय दिया—'तुमने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है। इसलिए तुम्हें निर्दोष घोषित किया जाता है।' अपराध की सजा न पाने की आत्मग्लानि से इसने अपने दोनों हाथों को काट डाला। तत्पश्चात् यह नदी पर स्नान के लिए गया। वहां इसकी अपने भाई शंख से भेंट हुई। शंख ने अपने तपोबल से इसके दोनों हाथों को पुनर्जीवित किया। इन दोनों भाइयों की संयुक्त कृति 'शंखस्मृति' संप्रति

उपलब्ध है। (महाभारत)

(२) चंपानगरी के हंसध्वज नामक राजा का पुरोहित। इसके भाई का नाम शंख था। यह भी इसी राजा का पुरोहित था। ये दोनों भाई प्रकृति के बड़े दुष्ट थे। युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ के समय अश्वसंरक्षक अर्जुन के साथ हंसध्वज का युद्ध हुआ था। इस युद्ध के लिए राजा हंसध्वज ने अपनी सेना को यह आदेश दिया था कि जो भी सैनिक सूर्योदय से पूर्व सज्जित होकर युद्ध के लिए तैयार न होगा उसे उबलते हुए तेल में डाल दिया जाएगा। दूसरे दिन हंसध्वज राजा का पुत्र सुधन्वन् इस आज्ञा का पालन न कर सका। राजाज्ञा के अनुसार उसको उक्त दंड मिलना चाहिए था; किंतु इतनी बड़ी सजा देने के लिए राजा विचलित हो गया। उसके दुष्ट-बुद्धि क्रूर पुरोहित के कहने पर राजा को अपना पुत्र उबलते हुए तेल में डालना पड़ा; किंतु उसका कुछ न बिगड़ा। तेल ने उबलना बंद कर दिया। पुरोहित ने उस तेल में एक नारियल डाल दिया। उस नारियल के दो टुकड़े हो गए और उन्होंने दोनों पुरोहित भाइयों के सिर तोड़ डाले। (जैमिनि अश्वमेध)

लिखितसंहिता—एक स्मृति ग्रंथ। महर्षि लिखित इस संहिता के कर्त्ता हैं। इस संहिता में ९२ श्लोक हैं। लिखितसंहिता के मत से पोखरा खुदवाना और ब्राह्मणों के लिए अग्निहोत्र करना बड़े पुण्य के कार्य हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जो कोई जलदान करेगा, उसे मुक्ति अवश्य मिलेगी यह महर्षि लिखित का उपदेश है। इस संहिता के मत से काशी में वास करना तथा गया में पिंडदान करना बड़ा उत्तम है। महर्षि लिखित कहते हैं कि जो-जो कार्य अपने को बुरे मालूम पड़ें उनके प्रायश्चित्त के लिए एक सौ आठ बार गायत्री का जप करने से उसका कल्याण होगा।

लिङ्गपुराण—यह पुराण अष्टादश पुराणों में पांचवां पुराण है। शिवमाहात्म्य तथा लिंगपूजा का प्रचार करना ही इस पुराण का उद्देश्य है। इस पुराण के दो भाग हैं—पूर्व और उत्तर। पूर्व भाग में सृष्टिविवरण, लिंग की उत्पत्ति और पूजाप्रसंग, दक्षयज्ञ, मदनभस्म, शिव-विवाह, वराहचरित्र, नृसिंहचरित्र, सूर्य और सोमवंश का विवरण है। उत्तर भाग में विष्णुमाहात्म्य, शिव-माहात्म्य, स्नान-दानादिमाहात्म्य और गायत्रीमाहात्म्य आदि विषय लिखे गए हैं। इस पुराण में अष्टा-विंशति अवतारों की कथा और श्रीकृष्ण के अवतार पर्यंत राजवंश का वर्णन लिखा है। इस पुराण के मत से प्रलय के पश्चात् अग्निमय शिवलिंग की उत्पत्ति होती है और उसी शिवलिंग से वेदादि शास्त्र उत्पन्न होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु आदि देवगण इसी शिवलिंग के तेज से ही तेजस्वी हुए हैं। बहुत लोगों का विश्वास है कि इसी पुराण के अनुसार ही इस देश में लिंगपूजा और मूर्तिपूजा की पद्धति प्रचलित है।

लिङ्गायत—शैवसंप्रदाय की एक शाखा का नाम। इस संप्रदाय के लोग लिंगावत, लिंगावंत, लिंगधारी तथा जंगम नाम से परिचित हैं। ख्रीष्टीय ग्यारहवीं सदी में दक्षिण भारत में वासव नामक एक शैव उत्पन्न हुआ था और उसीने यह संप्रदाय चलाया है। वासव ने लिंगायत संप्रदाय को प्रतिष्ठित करने के लिए बड़ा परिश्रम किया था। मदुरा के जैनमंदिर की चारदिवारी पर जैनों ने जो मूर्तियां स्थापित की थीं, वासव ने उनको तुड़वा डाला। मुसलमानों के भारत आक्रमण करने से पहले यहां लिंगायत संप्रदाय की प्रतिष्ठा हो गई थी, इसके प्रमाण पाए जाते हैं। मह-मूद गजनी ने जिस समय भारत पर आक्रमण किया था, उस समय भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों में बारह शिवलिंगों की प्रतिष्ठा हो गई थी। तैलंग भाषा में वासवेश्वर पुराण तथा प्रभुलिंगलीला आदि ग्रंथ इस संप्रदाय के बने हैं। लिंगायत संन्यासी 'वेदार' अथवा प्रभु कहे जाते हैं। (भारतवर्षीय इतिहास)

लुम्बिनी—कपिलवस्तु से १० मील पूर्व में स्थित लुंबिनी ग्राम या रुक्मिनिदेई में सम्राट् अशोक ने एक स्तंभ निर्मित कराया था और एक अभिलेख खुदवाया था। फाह्यान और ह्वेनत्सांग, दोनों चीनी यात्री वहां गए थे। यह बुद्ध का जन्मस्थान है। यहां पर रुक्मिनिदेई का एक मंदिर है।

लूनकरण—बीकानेर राज्य के प्रतिष्ठाता बीका जी के ये पुत्र थे। बीका जी के दो पुत्र थे। बड़े लूनकरण थे। महाराज बीका जी के परलोकवास होने पर राजाओं की रीति के अनुसार उनके बड़े पुत्र सिंहासन पर बैठे। राजा लूनकरण ने अपने राज्य की सीमा बढ़ाने के लिए भाटियों के अधिकृत कितने ही देशों पर अपना अधिकार कर लिया था। इनके बड़े पुत्र ने एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की और वह पिता की आज्ञा से वहीं जाकर रहने लगा। लूनकरण की मृत्यु सं० १५६६ वि० में हुई। (टाड्स राजस्थान)

लेखराज कवि—ये हिंदी के कवि थे। ये गंधौली जिला

सीतापुर के रहने वाले थे। 'रसरत्नाकर', 'लघुभूषण अलंकार', 'गंगाभूषण' ये तीन ग्रंथ इन्होंने लिखे हैं।

लोकनाथ ब्रह्मचारी—इन ब्रह्मचारी जी का जन्म पश्चिम बंग में ब्राह्मण कुल में हुआ था। ये दस वर्ष की अवस्था तक गांव की पाठशाला में पढ़कर संस्कृत पढ़ने के लिए गुरुगृह में गए। इसी समय इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ था। इनके दीक्षा और शिक्षा गुरु का नाम भगवान्चंद्र गांगुली था। भगवान्चंद्र षड्दर्शन के अद्वितीय पंडित थे।

यज्ञोपवीत होने के कई वर्षों के बाद लोकनाथ ने गुरु के साथ अपनी जन्मभूमि का त्याग किया। वेणीमाधव वंद्योपाध्याय नामक एक और व्यक्ति उनके साथी हो गए थे। भगवान् दोनों शिष्यों को साथ लेकर कालीघाट पहुंचे। उस समय वहां जंगल था। अनेक साधु-संन्यासी उस वन में योगसाधन करते थे। कालीघाट में रहकर भगवान्चंद्र अपने दोनों शिष्यों द्वारा कठिन ब्रह्मचर्य-व्रत का अनुष्ठान कराने लगे।

कहा जाता है कि लोकनाथ ब्रह्मचर्य की अवस्था में अपनी किसी सहचरी को स्मरण करके ब्रह्मचर्य का फल नष्ट करता था—यह जानकर भगवान्चंद्र दोनों शिष्यों को साथ लेकर घर लौट आए। जहां लोकनाथ की सहचरी रहती थी, वहां रहने लगे। भगवान्चंद्र ने पता लगा लिया कि लोकनाथ की सहचरी बालविधवा है और उसने अपना चरित्र कलंकित कर लिया है। भगवान्चंद्र ने उस बालविधवा से लोकनाथ का मनोरथ पूर्ण करने के लिए कहा। उसने भगवान्चंद्र का कहना मान लिया। जब लोकनाथ की पत्नी से तृप्ति हो गई। तब उन दोनों शिष्यों को लेकर भगवान्चंद्र वहां से चले गए।

गुरु ने अनेक प्रकार के व्रत करके अनेक शिष्यों का मनःसंयम कराया था। बहुत दिनों तक इस प्रकार व्रत करने से दोनों ब्रह्मचारी जातिस्मर हो गए थे। उन्होंने कहा था, मैं पूर्वजन्म में वर्द्धमान जिला के बेडु नामक गांव में 'सीतानाथ वन्द्योपाध्याय' नाम का मनुष्य था। जांच करने पर उनकी बातें सत्य मालूम हुई थीं।

भगवान्चंद्र लोकनाथ और वेणीमाधव को साथ लेकर अनेक स्थानों में घूमते हुए अंत में काशी आए। काशी में मणिकर्णिका घाट पर भगवान्चंद्र ने योगसाधन द्वारा शरीर त्याग किया। शरीर त्याग करने से पहले भगवान्चंद्र ने अपने दोनों शिष्यों को तैलंग स्वामी को सौंप दिया था।

लोकनाथ और वेणीमाधव स्वामी जी के निकट कुछ दिनों तक योगसाधन सीखकर हिमालय के किसी निर्जन स्थान में योगसाधन करने के लिए चले गए। वहां बहुत दिनों तक योगसाधन करके ये सिद्ध हो गए। दोनों महापुरुष पर्वतश्रृंग से पहले चंद्रनाथ गए। वेणीमाधव चंद्रनाथ से कामाख्या की ओर चले गए और लोकनाथ बारदी गांव में उतरे।

ढाका जिला के नारायणगंज के अंतर्गत मेघना नदी के तीर पर बारदी गांव है। बारदी में आकर वे रहे थे, इस कारण लोग उन्हें 'बारदीर ब्रह्मचारी जी' कहते हैं।

पहले ही कहा गया है कि लोकनाथ ब्रह्मचारी जातिस्मर थे और इसके अतिरिक्त वे अपने शरीर से जीवात्मा को बाहर निकाल सकते थे। प्राणियों के भाव वे समझ जाते थे। अंत में क्षयरोग से इनकी मृत्यु हुई।

लोकायत दर्शन—चार्वाक दर्शन का दूसरा नाम। यह दर्शन ईश्वर नहीं मानता। इस कारण इसका नाम लोकायत दर्शन है।

लोने कवि—ये बुंदेलखंड के रहने वाले बंदीजन थे। ये कवि सं० १८७६ वि० में उत्पन्न हुए थे। शृंगार रस में इनकी कविता सुंदर है।

लोनेंसिंह—ये हिंदी के कवि थे और बाछिल मितौली जिला खीरी के रहने वाले थे। ये बड़े कवि और साहसी क्षत्रिय थे। इन्होंने भागवत के दशम स्कंध का छंदोबद्ध अनुवाद किया है। ये एक लड़ाई में मारे गए। (शिवसिंहसरोज)

लोपामुद्रा—महर्षि अगस्त्य की पत्नी। (देखो अगस्त्य)

लोमश—विख्यात ब्रह्मर्षि। एक समय इस ब्रह्मर्षि ने इंद्र की सभा में जाकर देखा कि अर्जुन इंद्र के आसन पर बैठा है। यह देखकर उनके मन में शंका हुई। देवराज इंद्र ने ब्रह्मर्षि के हृदय का भाव जानकर कहा—महाराज! आपके मन में जो प्रश्न उठा है उसका उत्तर सुनिए। यह अर्जुन केवल मनुष्य ही नहीं है, इसमें देवत्व भी है। यह हमारे औरस और कुंती के गर्भ से उत्पन्न हुआ है। आश्चर्य है कि आप इस पुरातन ऋषि को नहीं जानते। हृषीकेश और नारायण ये दोनों नर-नारायण के नाम से त्रिलोक में प्रसिद्ध हैं। कार्य के लिए ये पृथिवी पर अवतीर्ण हुए

हैं। बदरी आश्रम में इनका निवास स्थान है। यह कहकर अर्जुन का समाचार युधिष्ठिर से कहने के लिए इंद्र ने ब्रह्मर्षि को युधिष्ठिर के पास काम्यक वन में भेजा।

लोमहर्षण—प्रसिद्ध प्राचीन ऋषि। इनके पिता का नाम सूत था। सूत वेदव्यास के शिष्य थे। कल्किपुराण में लिखा है कि परशुराम ने इन्हें मार डाला था।

लौगाक्षि—शतशाखाध्यायी एक सामवेदी आचार्य। यह व्यास की साथ शिष्य-परंपरा में आचार्य पौष्पंजि का शिष्य था। मिताक्षराकार और अपरार्क ने इस स्मृतिकार आचार्य के अशौच एवं प्रायश्चित्त-संबंधी मत को प्रामाणिक मानकर उद्धृत किया है। इसके द्वारा विरचित ग्रंथों के नाम हैं—'आर्षाध्याय', 'उपनयनतंत्र', 'काठक गृह्यसूत्र', 'प्रवराध्याय'।

लौहित्य—लोहितवंशज होने के कारण इनका यह पैतृक नाम पड़ा। यह पैतृक नाम कृष्णदत्त, कृष्णरात, जयक और त्रिवेद आदि अनेक आचार्यों के लिए प्रयुक्त किया गया है (जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण)।

व

वंश गुल्मतीर्थ—यह एक पवित्र कुंड अमरकंटक की उपत्यका में नर्बदा के मुहाने से साढ़े चार मील पर है।

वक—काश्मीर के एक राजा का नाम। इनके पिता का नाम मिहिरकुल था। मिहिरकुल के परलोकवास होने पर काश्मीर के सिंहासन पर वक का अभिषेक हुआ। राज्य पाने के थोड़े ही दिनों के बाद वक ने प्रजाओं का चित्त प्रसन्न कर लिया। इनके पिता के राज्यकाल में प्रजा को जो दुःख हुआ था, उस दुःख को प्रजा इनको पाकर भूल गई। इनका राज्य धर्म और न्याय पर स्थापित हुआ। इन्होंने वकेश्वर नामक शिव की प्रतिष्ठा की थी। वकवती नामक एक नदी और लवणोत्तंस नाम का एक नगर बनवाया था। इन्होंने ६३ वर्ष १३ दिन काश्मीर का राज्य किया था। एक दिन संध्या के समय भट्टा नाम की एक योगिनी सुंदर वेष धारण करके राजा के पास पहुंची और उन्हें अपने वचनों से मोहित करने के लिए उसने यागोत्सव देखने का निमंत्रण दिया। राजा अपने पुत्र-पौत्रों को साथ लेकर दूसरे दिन प्रातःकाल उस योगिनी के आश्रम में गए। योगिनी ने उन सभी का बलिदान किया। (रारंजतगिणी)

वकदाल्भ्य—एक महातपा मुनि। इन्होंने जिस स्थान पर तपस्या की थी वह स्थान बड़ा ही पवित्र तथा शांतिप्रद है। वहां जाने से अन्य जाति के भी लोग ब्राह्मण हो जाते हैं। उनका आश्रम धृतराष्ट्र के राज्य में था।

एक समय मुनियों ने राजा विश्वजित् के लिए बारह वर्ष में समाप्त होने वाला यज्ञ किया था। उस यज्ञ में पांचाल देश के मुनि वकदाल्भ्य भी गए हुए थे। मुनि को उस यज्ञ में बड़े बलिष्ठ २१ बैल दक्षिणा में मिले। मुनि ने अन्य मुनियों से कहा—तुम लोग इन बैलों को ले लो। मैं जाकर राजा धृतराष्ट्र से दूसरे बैल ले लूंगा। मुनि ने राजा धृतराष्ट्र के पास जाकर बैल मांगे। राजा ने क्रोध करके कहा—ब्राह्मणाधम ! देखो, हमारी गायें मरी पड़ी हैं, चाहो तो इन्हीं में से ले जाओ। इससे वकदाल्भ्य बड़े बिगड़े। उन्होंने कहा—देखो तो इस मूर्ख राजा को, मुझे गाली देता है। अच्छा, अब मैं इसका राज्य नष्ट किए देता हूं।

वकदाल्भ्य उन्हीं मरी गायों को ले गए और उन्हीं का मांस काट-काटकर हवन करने लगे। यथासमय यह भयंकर यज्ञ समाप्त हुआ। उधर धृतराष्ट्र का राज्य नष्ट होने लगा। तब राजा धृतराष्ट्र मुनि की शरण में गए। मुनि ने क्षमा कर दिया। (महाभारत)

वक्राङ्घ्रि संग्रामदेव—ये काश्मीरराज यशस्कर के पुत्र थे। राजा यशस्कर जब बहुत बीमार पड़े तब उन्होंने पहले अपने पुत्र को छोड़कर अपने चाचा के नाती वर्णट को राज्य दिया था। परंतु यशस्कर के जीते जी जब

वर्णट मनमाना करने लगा तब मंत्रियों की सलाह से यशस्कर ने वर्णट को अलग करके अपने पुत्र को राज्य दिया।

राजा यशस्कर के मर जाने पर संग्रामदेव की अवस्था कम होने के कारण उनकी पितामही अभिभाविका हो गई। पर्वगुप्त उन दिनों राज्य लेने के लिए बहुत व्याकुल हो रहा था। उसने एक दिन अवसर देखकर राजभवन पर चढ़ाई की और संग्रामदेव को मार डाला तथा उनके गले में पत्थर बंधवाकर उन्हें किसी नदी में फिंकवा दिया। इनके पैर टेढ़े थे, इस कारण इनका नाम वक्राङ्घ्रि पड़ गया था। इन्होंने ६ महीने, १ दिन राज्य किया था।

(राजतरंगिणी)

वख्तसिंह—जोधपुर के राजा अभयसिंह के ये छोटे भाई थे। अभयसिंह के स्वर्गवासी होने पर उनके पुत्र रामसिंह पिता की गद्दी पर बैठे। वख्तसिंह नागौर के जागीरदार थे। रामसिंह के अभिषेक समय वख्तसिंह को आना आवश्यक था, क्योंकि वे कुल में बड़े थे। परंतु न मालूम किस कारण से उस समय न तो वख्तसिंह आए और न किसी अपने प्रतिनिधि को ही भेजा। रामसिंह के अभिषेक में नागौर के ठाकुर के यहां से केवल उनकी एक धाय आई थी। यह देखकर राजा रामसिंह बड़े अप्रसन्न हुए। उन्होंने उस धाय का बड़ा अपमान किया और अभिषेक होने के बाद ही उन्होंने नागौर पर चढ़ाई करने की सेना को आज्ञा दी। अपने चाचा वख्तसिंह को सेना एकत्रित करने का भी अवकाश नहीं दिया। दोनों ओर से घोर युद्ध होने लगा। छः स्थानों में बड़े भयंकर युद्ध हुए, अंत में युवक रामसिंह ने अपनी मूर्खता का फल पाया। वे हार गए। वख्तसिंह को मारवाड़ का सिंहासन मिला। अंत में वख्तसिंह को आमेर की महारानी ने मार डाला। (देखो रामसिंह)

(टाड्स राजस्थान)

वङ्ग—(१) एक राजा। इसके पिता का नाम बलि आनव था। इसके अन्य चार भाई थे। इस राजा के नाम से इसके द्वारा शासित प्रदेश का नाम वंग पड़ा।

(२) पूर्वी भारत का एक लोकसमूह, जिसका उल्लेख महाभारत तथा पुराणों में हुआ है। राजसूय यज्ञ के समय भीम ने और अश्वमेध यज्ञ के समय अर्जुन ने इसपर विजय प्राप्त की थी।

वङ्गाः—बंगाल।

वज्रदत्त—प्राग्ज्योतिषपुर का एक राजा, जिसका यज्ञदत्त नामांतर भी प्राप्त होता है। यह राजा भगदत्त का पुत्र था। इसने पांडवों के अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा रोक लिया था, जिससे कि अर्जुन के साथ तीन दिनों तक युद्ध करने के बाद यह पराजित हुआ।

(महाभारत)

वज्रनाभ—सुमेरु पर्वत के शिखर पर रहने वाला एक महा असुर। लोकपितामह ब्रह्मा के वर से यह असुर देवों से अवध्य हुआ था। ब्रह्मा के वर से ही इसे वज्रपुर नाम की नगरी भी मिली थी। तब से वज्रनाभ सुमेरु शिखर पर रहना छोड़कर वज्रपुर में रहने लगा। थोड़े दिनों के बाद यह मस्त होकर चारों ओर अत्याचार करने लगा और इंद्र से स्वर्ग से चले जाने के लिए भी इसने कहलाया। इंद्र ने इस विषय में बृहस्पति से परामर्श किया और वे बृहस्पति तथा वज्रनाभ को साथ लेकर महर्षि कश्यप के समीप गए। महर्षि कश्यप ने वज्रनाभ से कहा—बेटा! मैं बहुत शीघ्र ही बारह वर्ष का एक यज्ञ करने वाला हूं—तब तक तुम शांतिपूर्वक वज्रपुर में ही रहो। पीछे जैसी तुम्हारी इच्छा हो सो करना।

वज्राङ्ग—कश्यप और दिति से उत्पन्न एक दैत्य। एक बार इसकी माता दिति ने इसको इंद्र पर आक्रमण करने के लिए कहा। किंतु ब्रह्मा के विरोध के कारण यह सफलता न प्राप्त कर सका। इसकी पत्नी ने इससे इंद्र को पराजित करने वाला अपना तारकासुर मांग लिया। (मत्स्यपुराण)

वज्रादित्य—काश्मीर के राजा का नाम। इनके पिता का नाम ललितादित्य था। ये कुवलयादित्य के छोटे भाई थे। कुवलयादित्य के मरने पर ये काश्मीर के राजा हुए। वज्रादित्य को वाप्पियक और ललितादित्य भी कहते हैं। यह राजा बड़ा ही दुराचारी और क्रूर था। इसने परिहासपुर नामक गांव से अपने पिता का बहुत-सा अमूल्य धन हरण किया था। इसके राज्य में सर्वत्र म्लेच्छाचार हो गया था। म्लेच्छों के हाथ इसने अनेक मनुष्यों को बेचा था। यह पापी राजा सर्वदा रानियों के साथ रहकर अपना समय बिताता था। इसने ७ वर्ष तक राज्य किया था। अंत में, क्षयरोग से इसकी मृत्यु हुई।

वडवा—(१) सूर्य की पत्नी संज्ञा का नामांतर। यह नाम इसे अश्विनी (वडवा) का रूप धारण करने के कारण

प्राप्त हुआ था। एक बार सूर्य ने अश्व का रूप धारण करके इससे संभोग किया था, जिससे इसको अश्विनीकुमार नामक युग्म (जुड़वां) पुत्र उत्पन्न हुए। (भागवत)

(२) समुद्र में निवास करने वाली एक अग्नि। एक बार और्व नामक अग्नि जब सारे विश्व को जलाने लगी तो पितरों ने आकर उसे समझाया और क्रोधाग्नि को समुद्र में डाल देने के लिए कहा। तब उसने अपनी प्रचंड एवं भयंकर क्रोधाग्नि को समुद्र में डाल दिया। वह आज भी अश्व का मुख बनाए हुए निवास करती है और समुद्र का जल पीकर स्वयं को शांत करती है। (वायुपुराण)

वत्सनाभ—एक महर्षि। एक बार भैंस का रूप धारण कर इंद्र ने वर्षा से इसकी रक्षा की। किंतु इसके मन में पाप का उदय हुआ और इसने उस भैंस का भक्षण करने का निश्चय किया। एकाएक इसने अपने इन पापाचार विचारों का दमन किया और इतना लज्जित हुआ कि पश्चात्ताप में अपने प्राण-त्याग को उद्यत हो गया। किंतु धर्म नामक ऋषि ने इसे रोका और मन: शांति के लिए इसे शंखतीर्थ में स्नान करने के लिए कहा। इसने वैसा ही किया। (स्कंदपुराण)

वनवीर—यह सिसोदिया वीरवर पृथ्वीराज की उपपत्नी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। राणा विक्रमाजीत और सरदारों में कुछ मनमुटाव हो गया। अतएव सरदारों ने मेवाड़ के सिंहासन से राणा विक्रमाजीत को उतारकर उसपर वनवीर का अभिषेक किया।

राज्य में कौनसी मोहिनी शक्ति है? इस बात का उत्तर तो राजा ही दे सकते हैं। परंतु हमको इतना तो अवश्य मालूम पड़ता है कि राज्य में कोई न कोई मोहिनी शक्ति है अवश्य। इसीसे जो वनवीर पहले मेवाड़ के सिंहासन पर बैठना नहीं चाहता था, अब वही वनवीर सिंहासन पर बैठते ही निष्कंटक होने के लिए प्रयत्न करने लगा। राणा विक्रमाजीत तो उसकी आंखों में गड़ते ही थे। दूसरा संग्रामसिंह का छोटा लड़का उदयसिंह भी शुक्ल पक्ष के चंद्रमा के समान बढ़ रहा था। वह भी वनवीर का एक बहुत दृढ़ कंटक था। वनवीर ने अंत में अपने कंटकों को निकाल देना ही निश्चित किया। एक दिन वनवीर अपना विचार पक्का करके रात के आने की बाट देखने लगा। धीरे-धीरे रात आ गई। इस समय कुमार उदयसिंह भोजन करके सोए हैं। उनकी धाय बिस्तरे पर बैठी सेवा कर रही है। उसी समय रनिवास में रोने-पीटने का शब्द सुनाई पड़ने लगा। धाय उठना ही चाहती थी कि उसी समय बारी राजकुमार की जूठन उठाने के लिए वहां आया। उसने कहा—बहुत बुरा हुआ, वनवीर ने राणा विक्रमाजीत को मार डाला। धाय का हृदय कांपने लगा, वह समझ गई कि वह दुष्ट राणा को मारकर ही चुप नहीं रहेगा। राजकुमार को मारने भी इधर आएगा। उसे एक उपाय सूझ पड़ा। उसने एक टोकरे में राजकुमार को लेटाकर और ऊपर पत्तों आदि से ढांपकर बारी के द्वारा राजकुमार को स्थानांतरित कर दिया। उसी समय वनवीर रुधिर से सनी तलवार लेकर वहां आ गया। उसने पूछा—राजकुमार कहां है? धाय ने अपने पुत्र को राजकुमार बतला दिया। बिचारा बालक छटपटाकर वहीं रह गया। वनवीर ने अपने को निष्कंटक समझ लिया।

उस धाय का पवित्र नाम पन्ना था। वह उस बारी को ढूंढ़ते हुए राजमहल से बाहर निकली। पूर्वनिश्चित स्थान पर उसने राजकुमार और बारी को पाया। धाय ने कमलभीर नामक स्थान में पहुंचकर राजकुमार को आशासाह नामक एक जैनी के घर में रख दिया। राजकुमार वहीं बढ़ने लगे। सामंत सरदारों ने राजकुमार को अपना राजा स्वीकार किया। जब वनवीर को इसकी खबर लगी तब वह चिंतित हुआ परंतु इस समय वह चिंता करके कर ही क्या सकता था! सरदारों ने कौशल द्वारा राजकुमार उदयसिंह का अभिषेक किया और वनवीर भागकर दक्षिण की ओर चला गया। नागपुर के भोंसले उसी की संतान हैं। (टाड्स राजस्थान)

वन्ध्यश्व—एक यज्ञकर्त्ता राजा। यह मुद्गल राजा का पुत्र था। सरस्वती से इसे दिवोदास नामक पुत्र प्राप्त हुआ था। पुराणों में इसके वध्यश्व, वघ्रश्व, वंध्याश्व तथा विंध्याश्व आदि नामांतर प्राप्त होते हैं। कहीं इसे इंद्रसेन तो कहीं ब्रह्मिष्ठ राजा का पुत्र बताया गया है। पुराणों के अनुसार, इसकी पत्नी का नाम मेनका था, जिससे इसको दिवोदास नामक पुत्र और अहल्या नामक कन्या प्राप्त हुई थी।

(मत्स्यपुराण तथा वायुपुराण)

वररुचि—प्राकृत का आद्य वैयाकरण आचार्य। पाणिनि व्याकरण के वार्तिककार वररुचि कात्यायन से यह भिन्न था। यह सम्राट् विक्रमादित्य का सभा-विद्वान्

और उसका धर्माधिकारी था। इसका श्रुतिधर नामांतर भी प्राप्त होता है। यह भी कात्यायन गोत्र का था। इसके द्वारा विरचित ग्रंथों के नाम हैं—'तैत्तिरीयप्रातिशाख्य व्याख्या', 'निरुक्तसमुच्चय', 'लिङ्गानुशासन' (लिङ्गविशेषविधि), 'प्रयोगविधि', 'कातंत्र उत्तरार्ध', प्राकृतप्रकाश', 'उपसर्गसूत्र', 'पत्र-कौमुदी', 'विद्यासुंदरकाव्य' और 'यंत्रकौमुदी'।

इनके ग्रंथों से इनकी बहुमुखी प्रतिभा का सहज ही पता चलता है। इनका 'प्राकृत प्रकाश' प्राकृत भाषा के व्याकरण ग्रंथों में सर्वाधिक प्राचीन और सर्वांगीण है। इसपर अनेक टीकाएं लिखी गई। उनके नाम हैं—कात्यायन कृत 'प्राकृतमंजरी', भामह कृत 'मनोरमा', वसंतराज कृत 'प्राकृत संजीवनी' और सदानंद कृत 'सदानंदा'। भामह की टीका सहित इसका एक अंग्रेजी अनुवाद भी उपलब्ध है (देखिए कात्यायन)।

वरुण—एक देवताविशेष। वैदिक साहित्य में इसे आकाश का और पुराण साहित्य में समुद्र का अधिष्ठाता माना गया है। ऋग्वेद में इसे अग्नि के समान तेजस्वी और सहस्र नेत्रों वाला कहा गया है। यह सुंदर परिधानों से युक्त सौम्य हाथों वाला और प्रकाशमान है। यह इंद्र और सूर्य की कोटि का देवता है और नैतिक तथा भौतिक नियमों का संचालक है। यह स्वर्णनिर्मित गृह में द्युलोक में निवास करता है। यहीं से यह सृष्टि का अवलोकन करता है। यह द्युलोक और पृथ्वीलोक का स्वामी है। इन दोनों लोकों के नियमों का संचालन भी यही करता है। इसीके कारण रात और दिन का नियम स्थिर है। मायावी (आसुरी शक्तियुक्त) होने के कारण यह देवताओं और मनुष्यों का सम्राट् बना। वह नदियों का अधिपति और जल का नियामक है। इसकी ज्येष्ठा पत्नी देवी शुक्राचार्य की कन्या थी, जिससे बल, अधर्म और पुष्कर नामक तीन पुत्र तथा सुरा नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। इसकी दूसरी पत्नी वारुणी (गौरी) से गो नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसकी तीसरी पत्नी शीततोया से श्रुतायुध नामक पुत्र पैदा हुआ। इनके अतिरिक्त ऋषि वंदिन् और महर्षि भृगु को भी वरुण ने पुत्ररूप में स्वीकार किया था।

वर्णट—ये कुछ दिनों के लिए काश्मीर के राजा हुए थे। राजा यशस्कर का रोग जब अधिक बढ़ गया, जब उन्हें अपने जीवन की आशा जाती रही, तब उन्होंने अपने पितृव्य पौत्र और रामदेव के पुत्र वर्णट को काश्मीर के सिंहासन पर अभिषिक्त किया। राजा यशस्कर ने अपने पुत्र संग्रामदेव को इस कारण राज्य नहीं दिया कि इसे बालक जानकर विरोधी वर्ग षड्-यंत्र रचेगा और अनायास ही इसे राज्यच्युत करके राज्य अपने हस्तगत कर लेगा। वर्णट के राजा होने से विरोधियों की आशा पर एक बार ही पानी फिर गया। सभी निराश हो गए परंतु वर्णट राज्य पाते ही उद्धत हो गए। राज्यदाता यशस्कर की ओर से उनका ध्यान बिलकुल ही जाता रहा, यहां तक कि उन्होंने राज्य पाने के पश्चात् राजा से आरोग्य प्रश्न भी नहीं पुछवाया। इससे राजा भीतर ही भीतर दुःखित होने लगे। मंत्रियों ने राजा के हृदय की बात जान ली। उन लोगों ने संग्रामदेव को राज्य देने के लिए राजा यशस्कर को उत्तेजित किया। अंत में हुआ भी वही। वर्णट एक दिन सभा में बैठे थे, मंत्रियों ने वहीं उन्हें कैद कर लिया, तदनंतर वे निर्वासित किए गए। (राजतरंगिणी)

वल्लभाचार्य—पुष्टिमार्ग नामक संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य। इस संप्रदाय को रुद्रसंप्रदाय या वल्लभा-चारी संप्रदाय भी कहते हैं। इस संप्रदाय के आराध्य देवता बालगोपाल जी हैं। इस संप्रदाय के गुरु जो वल्लभाचार्य के वंशज हैं, वे गुसाईं भी कहे जाते हैं। इस संप्रदाय के ग्रंथों में लिखा है कि वेदभाष्यकार विष्णुस्वामी ने बहुत पहले इस संप्रदाय के निगूढ़ धर्म-तत्त्व प्रकाशित किए थे। विष्णुस्वामी के अनंतर ज्ञान-देव, नामदेव और त्रिलोचनदेव ने यथाक्रम इस संप्रदाय के रहस्यों को प्रकाशित किया। ब्राह्मण से भिन्न अन्य जाति के व्यक्ति इस संप्रदाय में दीक्षित नहीं होते थे। ब्राह्मण संन्यासी ने ही इस संप्रदाय को चलाया था। अंत में, वल्लभाचार्य ने इस संप्रदाय की पताका उड़ाई। इनके पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट था। ये तैलंग ब्राह्मण थे। ख्रीष्टीय सोलहवीं सदी में वल्ल-भाचार्य उत्पन्न हुए थे। मथुरा से तीन कोस पूर्व यमुना नदी के उस पार गोकुल नामक एक ग्राम है, वल्लभाचार्य पहले वहीं रहते थे। गोकुल में कुछ दिनों तक रहकर वल्लभाचार्य तीर्थयात्रा के लिए बाहर निकले। भक्तमाल नामक ग्रंथ में लिखा है—तीर्थयात्रा के लिए निकलकर वल्लभाचार्य विजयनगर के राजा कृष्णराय की राजसभा में उपस्थित हुए। कृष्णराय सन् १५२० ई० में विजयनगर के सिंहासन

पर बैठे थे। वहां स्मार्त पंडितों के साथ वल्लभाचार्य का शास्त्रार्थ हुआ। उस शास्त्रार्थ में जय प्राप्त करने के कारण इनकी गणना वैष्णव आचार्यों में होने लगी। तभी से इनका नाम वल्लभाचार्य पड़ा। विजयनगर से चलकर वल्लभाचार्य उज्जयिनी में पहुंचे और वहां सिप्रा नदी के किनारे एक पीपल के वृक्ष के नीचे कुछ दिनों तक ठहरे रहे। कहते हैं, वह स्थान आज भी वर्तमान है और महाप्रभु की बैठक के नाम से प्रसिद्ध है। महाप्रभु की और भी अनेक बैठकें हैं। मथुरा में यमुना के तीर पर वल्लभाचार्य की एक बैठक है। चुनार के किले से दो मील उत्तर आचार्य कुआं नामक एक स्थान है। इस प्रकार अनेक स्थानों में घूमकर अंत में वल्लभाचार्य वृंदावन गए। कहते हैं, वहां श्रीकृष्ण का उन्हें साक्षात्कार हुआ। उस समय श्रीकृष्ण ने बालगोपाल की उपासना तथा उपासना की विधि उन्हें बतलाई। तभी से वल्लभाचार्य के संप्रदाय में बालगोपाल की पूजा-पद्धति प्रचारित हुई। वृद्धावस्था में वल्लभाचार्य काशी में आकर रहने लगे। इस समय भी उनका वासस्थान काशी में वर्तमान है। काशी में ही वल्लभाचार्य की मृत्यु हुई। इनके मृत्युकाल की एक अद्भुत कथा प्रचलित है। एक दिन वल्लभाचार्य हनुमान्घाट पर स्नान करने गए थे। वहां सब लोगों के देखते-देखते ही वे अदृश्य हो गए। जहां वे स्नान कर रहे थे वहीं से एक उज्ज्वल ज्योति उत्पन्न हुई। असंख्य देखने वालों ने देखा कि सशरीर वल्लाभाचार्य आकाश की ओर जा रहे हैं।

वल्लभाचार्य के संप्रदाय में श्रीकृष्ण ही जगत् के सार हैं। उनका गोपाल रूप ही सब रूपों में श्रेष्ठ है। गोपाल से ही इस विश्व की उत्पत्ति हुई है, अतएव गोपाल की उपासना से ही प्राणियों की मुक्ति होती है। दिन-प्रतिदिन सृष्टि को लय की ओर जाते देखकर गोलोकबिहारी श्रीकृष्ण ने त्रिगुण-समन्वित माया या प्रकृति की सृष्टि की। उसी माया अथवा प्रकृति से ही संसार की उत्पत्ति हुई है। श्रीवल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत पर सुबोधिनी, व्याससूत्र पर भाष्य, सिद्धांत-रहस्य, भागवतलीलारहस्य, एकांतरहस्य आदि ग्रंथ लिखे हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक ग्रंथ इन्होंने हिंदी में लिखे हैं। वल्लभाचार्य जीव और ब्रह्म का अभेद मानते थे। (भारतवर्षीय इतिहास)

वल्लालसेन—गौड़ीय सेनवंशी राजाओं में एक प्रसिद्ध राजा। कोई कहते हैं कि वल्लालसेन विष्वक्सेन के क्षेत्रज पुत्र थे और आदिशूर के वंशध्वंस होने पर इनका जन्म हुआ था। ढाका जिला के विक्रमपुर में यह किंवदंती प्रसिद्ध है कि वल्लाल वैद्यवंश में उत्पन्न हुए थे। परंतु वल्लाल ने दानसागर और अद्भुत-सागर नामक दो ग्रंथ लिखे हैं, उनमें क्षौर आनंद भट्ट रचित बल्लालचरित में लिखा हुआ है कि ये चंद्रवंशी क्षत्रिय थे और इनके पिता का नाम विजयसेन, पितामह का नाम हेमंतसेन और प्रपितामह का नाम सामंतसेन था। कोई-कोई तो यह कहते हैं कि वल्लाल कायस्थ थे। वे अपने इस मत में प्रमाण यह देते हैं कि यदि वे कायस्थ नहीं होते तो कायस्थ को कन्या किस प्रकार देते। वे और भी अपने मत में प्रमाण देते हैं कि यदि वल्लाल क्षत्रिय होते तो वे अवश्य ही ब्राह्मणों के अनुसार क्षत्रियों में भी कुलानुसार श्रेणि-विभाग करते, परंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि न तो वे क्षत्रिय थे और न क्षत्रियों से उनका कोई संबंध था। जो वल्लाल को वैद्यवंशोत्पन्न बतलाते हैं उनका करना है कि कुलजि नामक ग्रंथ में 'अंबष्ठकुलनंदन', 'वैद्यकुलोद्भूतः' आदि विशेषण वल्लालसेन के लिए दिए गए हैं। इससे उनका वैद्यवंशोत्पन्न होना स्वतः सिद्ध है। दूसरी बात यह है कि सेनवंशी राजाओं के राज्यकाल में वैद्य-जाति की बड़ी उन्नति हुई थी। उस समय चिकित्साशास्त्र, काव्य-अलंकार आदि शास्त्रीय ग्रंथों के प्रणेता वैद्य-वंश में उत्पन्न हुए थे। उनका मत है कि वल्लालसेन आदिशूर के दौहित्रवंशी थे।

राजा राजेंद्रलाल मित्र के मत से, वल्लालसेन विजयसेन के पुत्र थे। वे सन् १०६६ ई० ख्रीष्टाब्द में बंगाल में राज्य करते थे। उन्होंने दानसागर और अद्भुतसागर नामक दो ग्रंथ लिखे थे। आईन-ए-अकबरी के मत से राजा वल्लालसेन का राज्यकाल सन् ११०० ई० से है। राजा बल्लालसेन ने बंगाल में ब्राह्मणादि जातियों के सामाजिक सम्मान की व्यवस्था कर दी है। आईन-ए-अकबरी में लिखा है कि वल्लालसेन ने पचास वर्ष राज्य किया।

वसिष्ठ—ब्रह्मा के मानस। ये महर्षि सप्तर्षियों में से हैं। कर्दमकन्या अरुंधती इनको ब्याही गई थी। राक्षस-भावापन्न अयोध्यापति कल्माषपाद ने इनके सौ पुत्रों को खा डाला था। पुत्रशोक से व्याकुल होकर ये एक नदी में डूबकर मर जाना चाहते थे। उन्होंने रस्सी

से अपने को बांधा। तदनंतर वे एक नदी में कूद पड़े। परंतु नदी की धारा में पड़ने से उनका बंधन टूट गया और वे एक रेत पर चले गए। उस नदी में महर्षि के बंधन-पाश टूट गए थे, इस कारण महर्षि ने उस नदी का नाम विपाशा रखा। तदनंतर हेमवती नाम की नदी में भी वे मरने के लिए कूदे, परंतु वहां भी उनकी मृत्यु नहीं हुई। महर्षि के तेज से उस नदी की धारा शतधा द्रुत हुई, इस कारण उसका नाम शतद्रु पड़ा। महर्षि आत्महत्या न कर सकने के कारण अपने आश्रम में लौटे आ रहे थे। पीछे-पीछे उनकी पुत्रवधू अदृश्यंती आ रही थी। वेदाध्ययन का शब्द सुनकर महर्षि ने उसका परिचय पूछा। अदृश्यंती बोली—मैं आपकी पुत्रवधू हूं। मेरे गर्भ से आपके बड़े पुत्र शक्ति का एक पुत्र उत्पन्न हुआ है। बारह वर्ष हमारे साथ रहकर उसने षडंग वेदों का अध्ययन किया है। आपने उसीके उच्चरित वेदमंत्र सुने हैं। अदृश्यंती के यह कहने पर महर्षि ने मरने की इच्छा छोड़ दी। वंश-रक्षा होने की संभावना है यह देखकर महर्षि को बड़ा आनंद हुआ। इस पुत्र का नाम वसिष्ठ ने पराशर रखा।

वसिष्ठ आश्रम—ऐसा प्रतीत होता है कि महर्षि वसिष्ठ के दो आश्रम थे। एक उत्तरी हिमालय पर और दूसरा अमरावती पर्वतमाला के आबू पर्वत पर। 'रामायण' (५१।२२-२३) और 'रघुवंश' (११।२६) में जिस ऋषि-संकुल एवं विभिन्न पुष्पलताओं से परिवेष्टित आश्रम का उल्लेख किया गया है, वह हिमालय पर था। यहीं पर ऋषि विश्वामित्र ने उनकी कामधेनु को चुराने का प्रयत्न किया था। यहीं पर पुत्रकाम दिलीप और उनकी पत्नी ने कामधेनु की सेवा की थी। ऋषि विश्वामित्र से बदला लेने के लिए वसिष्ठ हिमालय से चलकर आबू पर्वत पर आए और वहां उन्होंने एक अग्निकुंड से परमार नामक एक योद्धा को उत्पन्न किया, जिससे राजपूतों के परमारवंश की उत्पत्ति हुई।

वसु—(१) गणदेवता विशेष। वसु नाम से आठ देवता प्रसिद्ध हैं। उनके नाम ये हैं—धर, ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास। ये आठ देवता अष्टवसु नाम से प्रसिद्ध हैं। महाभारत में एक स्थान पर विष्णु के स्थान पर सावित्र लिखा हुआ देखा जाता है। अग्निपुराण में धर के स्थान पर आप नामक वसु का उल्लेख है। महर्षि वसिष्ठ की धेनु नंदिनी को एक बार वसुओं ने हर लिया था। इस कारण महर्षि ने मर्त्यलोक में वास करने का शाप दिया था। वसुओं के कहने से भगवती गंगा महाराज शंतनु की पत्नी हुई और उनके गर्भ से वसुओं की उत्पत्ति हुई। संतान के उत्पन्न होते ही गंगादेवी उसको जल में डाल दिया करती थी। इस प्रकार एक-एक वसु शाप-मुक्त होने लगे। इस प्रकार सात पुत्रों को गंगा ने जलमग्न कर दिया। आठवें पुत्र को भी वह नदी में जलमग्न करने के लिए जा रही थी, परंतु पुत्रशोक-कातर राजा शंतनु ने पत्नी को बहुत ही भर्त्सित किया। उस समय गंगा अपना परिचय देकर अंतर्हित हो गई। अष्टम संतान बहुत दिनों तक पृथिवी पर वास करके भीष्म नाम से प्रसिद्ध हुआ। वसिष्ठ के शाप देने के अनंतर वसुओं ने उनकी बड़ी स्तुति की। उससे प्रसन्न होकर वसिष्ठ ने कहा—जिस वसु ने हमारी गौ चुराई थी उसे मर्त्यलोक में वास करना पड़ेगा। औरों को केवल एक-एक वर्ष ही वास करना पड़ेगा। (महाभारत)

(२) चेदिदेश के एक राजा का नाम। यह पुरु-वंश में उत्पन्न हुआ था। इंद्र की कृपा से चेदिदेश पाकर वे उसका शासन करते थे। कुछ दिनों के बाद वसु ने राज्य छोड़कर कठोर तपस्या करना प्रारंभ किया। तपस्या से डरकर इंद्र उनके समीप उपस्थित हुए और अनेक प्रकार के मधुर वचनों से उन्हें समझाकर उन्हें राज्य करने का परामर्श दिया। इंद्र के कहने से इन्होंने तपस्या छोड़ दी और पुनः राज्यशासन करने लगे। इंद्र ने इनसे मित्रत्व स्थापित किया था। भूलोक में रहकर ही ये इंद्र के मित्र हो गए थे। देवराज इंद्र ने इन्हें आकाशचारी विमान दिया था। उसपर चढ़कर ये आकाश में घूमा करते थे, इस कारण इनका दूसरा नाम 'उपरिचर' पड़ा था। (महाभारत)

वसुकुल—काश्मीर के एक राजा का नाम। इन्होंने साठ वर्ष तक राज्य किया था। इनके विषय में इतना ही मालूम है। (राजतरंगिणी)

वसुदेव—एक यादव राजा। इसके पिता का नाम शूर और इसकी माता का नाम मारिषा था। इसके जन्म के समय देवताओं ने दुन्दुभीवादन किया था, जिसके कारण इसका आनकदुन्दुभि नामांतर प्राप्त होता है। यह मथुरा के राजा उग्रसेन की मंत्री और पांडु की पत्नी कुंती का भाई था। उग्रसेन के भाई देवक की

सात कन्याओं से इसका विवाह हुआ था, जिनमें देवकी प्रमुख थी। उग्रसेन के पुत्र एवं देवकी के चचेरे भाई कंस ने इस विवाह में रथ का सारथ्य किया था। ठीक इसी समय उसने एक आकाशवाणी सुनी कि देवकी के आठवें पुत्र से उसका वध होगा। इस अनिष्ट की आशंका से भयभीत होकर इसने वसुदेव और देवकी को कारागृह में बंद कर दिया। इसी कारागार में देवकी के आठवें गर्भ से श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। जन्मरात्रि में ही वसुदेव बालक कृष्ण को लेकर ब्रज गए और उसको नंद गोप तथा यशोदा को देकर उनकी नवजात कन्या को लेकर लौट आए। कंस द्वारा उस कन्या का वध किए जाने के बाद वसुदेव-देवकी को कारावास से मुक्ति मिली। नारद मुनि से वसुदेव को भागवत धर्म का उपदेश प्राप्त हुआ। इसने स्यमंत-पंचक्षेत्र में अश्वमेध यज्ञ संपन्न किया था। इस यज्ञ की समाप्ति पर वसुदेव ने नंद-यशोदा को विपुल भेंट-वस्तुएं प्रदान की थीं।

विभिन्न पुराणों में वसुदेव की पत्नियों और पुत्र-पुत्रियों की संख्या मतांतर से दी गई है। उनमें देवकी, भद्रा, रोहिणी और मदिरा प्रमुख थीं। श्रीकृष्ण की मृत्यु का दुःखद समाचार सुनकर वसुदेव अत्यंत उद्विग्न हुआ। इसने जाकर प्रभास क्षेत्र में देहत्याग किया। अर्जुन के नेतृत्व में इसकी शवयात्रा निकली और श्मशान पर इसका विधिवत् दाहकर्म किया गया। इसकी पत्नियां शव के साथ सती हुईं।

(महाभारत)

वसुनन्द—काश्मीर के राजा का नाम। इनके पिता का नाम क्षितिनंद था। इन्होंने कामशास्त्र-संबंधी एक ग्रंथ भी लिखा था। इन्होंने ५२ वर्ष, २ महीने तक काश्मीर का शासन किया था। (राजतरंगिणी)

वसोर्धारा—यह तीर्थ अलकनंदा नदी के मुहाने पर बदरी-नारायण से चार मील उत्तर की ओर है।

वाण—यह दैत्यराज बलि का ज्येष्ठ पुत्र था। इसकी राज-धानी का नाम शोणितपुर था। श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध ने इसकी कन्या उषा को ब्याहा था।

वात्स्या—गंगा-यमुना के बीच का दुआब प्रदेश, जो प्रयाग से पश्चिम की ओर है और जहां किसी समय उदयन का राज्य था। इसकी राजधानी कौसांबी थी।

वात्स्यायन—एक कामशास्त्रकार के आचार्य। वात्स्यायन इनका गोत्र नाम था। इनका वास्तविक नाम मल्ल-नाग था। इनके प्रामाणिक टीकाकार यशोधर ने भी इनका उल्लेख इसी नाम से किया है। विभिन्न ग्रंथों में उल्लिखित एतत्संबंधी विवरणों से ज्ञात होता है कि ये अश्वशास्त्रज्ञ तथा आयुर्वेदशास्त्रज्ञ भी थे। ऐसा प्रतीत होता है कि वात्स्यायन महान् योगी और आजीवन ब्रह्मचारी था। 'कामसूत्र' में उल्लिखित दाक्षिणात्य देशों के आचारों एवं कामाचारों के विशेष वर्णन के कारण कुछ विद्वानों ने इन्हें दक्षिण भारत का निवासी बताया है। यशोधर ने कामसूत्र में उल्लिखित 'नागर' शब्द का अर्थ पाटलिपुत्र किया है। इस आधार पर यह पूर्वी भारत का निवासी सिद्ध होता है। आधुनिक इतिहासकार विद्वानों ने वात्स्यायन का स्थितिकाल ई० पूर्व प्रथम शती से ईसा की तीसरी शती के बीच विभिन्न तिथियों में रखा है। 'कामसूत्र' वात्स्यायन की एकमात्र रचना उपलब्ध है। इसकी तीन प्रसिद्ध टीकाओं के नाम हैं– वीरभद्र कृत 'कंदर्पचूडामणि', भास्कर नृसिंह कृत 'कामसूत्रटीका' और यशोधर कृत 'जयमंगला'।

वाप्पा रावल—मेवाड़ राज्य के स्थापनकर्त्ता। वल्लभी राज्य के ध्वंस होने के समय राजा कनकसेन के वंश-धर इधर-उधर मारे-मारे फिरते थे। राजा शिला-दित्य के वंशधर ग्रहादित्य ने ईडर प्रदेश में एक छोटा-सा राज्य स्थापित कर लिया था। परंतु यह देखिए तो समय का परिवर्तन! आज ग्रहादित्य के वंश में तीन वर्ष का एक बालक वाप्पा ही शेष रह गया है। इसके पिता नागादित्य को स्वाधीनताप्रिय भीलों ने मार डाला। आज इस प्राचीन वंश का लोप हुआ चाहता है। भला उस तीन वर्ष के बालक की रक्षा कौन करेगा! आज विदेश में एक प्रसिद्ध और पवित्र राजवंश के एकमात्र अंकुर का यह अवसाद!

वाप्पा के पूर्वपुरुष शिलादित्य की प्राणरक्षा कमला नाम की एक ब्राह्मणी ने की थी, यह बात इतिहास के पाठकों से छिपी नहीं है। ब्राह्मण-क्षत्रियों का संबंध भारत में जब तक चिरस्थायी रहेगा तब तक क्षत्रिय राजाओं का कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता है। आज भी उस पवित्रचरित्रा ब्राह्मणरमणी कमला के वंशधर वर्तमान हैं। कमला के ही वंशधर इस राजवंश के पुरोहित थे। आज पुरोहितों ने निश्चित कर लिया है कि चाहे जो हो, परंतु इस राजवंश की रक्षा हम लोग अवश्य करेंगे। राजकुमार को लेकर ब्राह्मणों ने भांडेर नामक किले में आश्रय लिया। यहां के यदुवंशी भील ने उन लोगों को

आश्रय दिया। जब ब्राह्मणों को वहां रहने में भी शंका उत्पन्न हुई तब वे वहां से बालक को लेकर पराशर नामक स्थान में गए। यह स्थान त्रिकूट पर्वत के सघन वन में था। उसी त्रिकूट पर्वत की तलहटी में नागेंद्र नामक एक गांव बसा हुआ था। वहां शिवोपासक ब्राह्मण रहते थे, उन्हींके हाथ में वाप्पा सौंपा गया। वहां ब्राह्मणों द्वारा सुरक्षित राजकुमार निर्भय होकर वन में विचरने लगा।

यह एक साधारण बात है कि महापुरुषों का जीवन अद्भुत तथा कटीला होता है। कभी वह बिल्कुल अंधकार-सा प्रतीत होता है, परंतु उसकी यह अवस्था चिरस्थायिनी नहीं रहती। बीच-बीच में उसमें प्रकाश भी दिखाई पड़ जाता है। वाप्पा रावल आज उन ब्राह्मणों के यहां गौ चराता है। उस प्रदेश का राजा एक सोलंकी क्षत्रिय था। वहां सावन का झूलनोत्सव उत्साह से मनाया जाता है। आज झूलने के लिए अपनी सखियों को लिए राजकुमारी वन में आई हैं। परंतु भूल से उनके पास रस्सी नहीं है, वे झूला डालें तो कैसे ?

उसी समय अचानक वाप्पा रावल वहां चला गया। उन लोगों ने उससे रस्सी मांगी। वाप्पा बड़ा ही चंचल तथा हंसोड़ था। उसने कहा—हम से ब्याह करो तो हम रस्सी ला दें। एक और तमाशा प्रारंभ हुआ। उन कन्याओं के साथ राजकुमार के ब्याह की विधि बरती जाने लगी। ग्रंथीबंधन हुआ। क्या उस समय किसीने यह समझा था कि यह नकली ब्याह ही किसी समय असली ब्याह होगा। परंतु इसमें संदेह नहीं। उसी दिन से वाप्पा के भाग्य के कटीले मार्ग साफ होने लगे।

सोलंकी राजकुमारी की अवस्था ब्याह के योग्य हो गई है। सोलंकीराज कन्यादाय से चिंतित हैं। उन्होंने वर ढूंढ़ने को देश-विदेश मनुष्य भेजे हैं। परंतु इसी समय एक ऐसी घटना हुई जिससे सबको चकित होना पड़ा। एक ज्योतिषी ने राजकुमारी का जन्म-पत्र देखकर कहा कि इस राजकुमारी का ब्याह हो गया है। सोलंकीराज के आश्चर्य का ठिकाना नहीं। इसकी खबर कुमार वाप्पा को भी लगी। अतएव डरकर वालीय और देव नामक दो भील बालकों को साथ लेकर कुमार विजन वन में चले गए।

भट्टग्रंथों में कुमार के नगेंद्रनगर के छोड़ने का एक दूसरा ही कारण लिखा है। वाप्पा जिस ब्राह्मण के यहां रहते थे, उसी ब्राह्मण की गायों के चराने का वे काम करते थे। उनमें से एक गाय घर आकर कुछ भी दूध नहीं देती थी, इससे ब्राह्मण को वाप्पा पर संदेह हुआ। वाप्पा को भी यह बात मालूम हो गई। उस दिन से वह उस गाय पर कड़ी दृष्टि रखने लगा। दोपहर के समय में वाप्पा ने देखा कि वह गाय एक कुंज में गई और वहां उसके थनों से अनायास ही दूध की धारा पड़ने लगी। उस स्थान को ध्यान से देखने पर वाप्पा को मालूम हुआ कि वहां एक शिवलिंग है। वहीं एक योगी भी ध्यानमग्न दीख पड़े। उस दिन से वाप्पा प्रतिदिन वहां जाते और उन योगी की सेवा करते। योगिराज उनपर बड़े ही प्रसन्न हुए। कैलास जाने के दिन योगिराज हारीत ने अपने शिष्य को प्रातःकाल ही बुलाया था। परंतु उस दिन वाप्पा को निद्रा आ गई। अतएव वह समय से नहीं पहुंच सके।

योगिराज का विमान आकाश की ओर जा रहा था, उस समय वाप्पा दौड़े-दौड़े उस स्थान पर पहुंचे। गुरु ने अपने शिष्य को देखकर रथ रोका और शिष्य को ऊपर उठने के लिए कहा। शिष्य ऊपर उठा सही, परंतु गुरु जी के पास तक वह नहीं पहुंच सका। तब गुरु जी ने उसे मुंह खोलने के लिए कहा। गुरु ने शिष्य के मुख में थूक दिया। उस समय वाप्पा ने घृणा से मुंह बंद कर लिया। अतएव गुरु का प्रसाद उसके पैर पर पड़ा। अभाग्यवश गुरु शिष्य को जो देना चाहते थे वह शिष्य नहीं ले सका तथापि उसका शरीर दृढ़ हो गया।

उन दिनों चित्तौड़ में मौर्य कुल के राजा मान राज्य करते थे। वाप्पा उनका भानजा था। यह बात वाप्पा को मालूम थी। अतएव अपने साथियों को साथ लेकर वाप्पा वहां पहुंचे। राजा ने बड़े आदर से उनको रखा और अपना सामंत बनाया। इससे पहले के सामंतों को बड़ी ईर्ष्या हुई। यहां तक कि एक समय जब शत्रुओं ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की तब उन सामंतों ने साफ ही कह दिया कि जिसका आदर करते हो उसीको लड़ने के लिए भेजो। वाप्पा ने उस लड़ाई में जय प्राप्त की।

राजा मान से तिरस्कृत सामंत इसी चिंता में लगे थे कि कोई अच्छा सरदार मिले तो उसे चित्तौड़ की गद्दी दे दें और राजा मान को पदच्युत कर दें। अंत में, सामंतों ने वाप्पा को ही इस काम के लिए स्थिर

किया। वाप्पा ने भी इस कार्य में अपनी सम्मति दे दी। यही स्वार्थ है। आज वाप्पा ने अपने आश्रय-दाता मामा के उपकार का कैसा सुंदर बदला चुकाया! संसार के नियम कैसे अनोखे हैं? यदि पहले ही पहल वाप्पा ने ऐसे काम किए होते तो अवश्य ही उसका नाम इतिहास के पृष्ठों पर कालिमा से लिखा जाता, परंतु न मालूम कितने राजा, कितने महात्मा इस प्रकार के स्वार्थ के जघन्य उदाहरण दिखा चुके हैं। अतएव कहना पड़ता है कि यह भी स्वार्थ की ही महिमा है!

पचास वर्ष से अधिक अवस्था होने पर बाप्पा रावल चित्तौड़ का राज्य अपने पुत्रों को देकर खुरासान चले गए। वहां इन्होंने बहुत सी मुसलमान स्त्रियों से ब्याह किया था।

वीरकेसरी महाराजा वाप्पा रावल ने एक सौ वर्ष की पूरी आयु पाई थी। इन्होंने काश्मीर, इराक, ईरान, तुरान और काफरिस्तान आदि देशों को जीता था और उन-उन देशों के राजाओं की कन्याओं को ब्याहा था। इन्हें ३० पुत्र उत्पन्न हुए थे।

(टाड्स राजस्थान)

वामदेव गौतम—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा आचार्य। यह गौतम ऋषि का पुत्र था। इसने अपनी माता के गर्भ में ही आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया था। इसने अपने असाधारण रूप से जन्म धारण करने का निश्चय किया और माता का उदर-भेदन करके बाहर आने का विचार किया। यह बात इसकी माता को विदित हो गई। अतः उसने अदिति का ध्यान किया। इंद्र सहित अदिति वहां उपस्थित हुई। इसने इंद्र के साथ गर्भ से ही तत्त्वज्ञान की चर्चा की। इसने योग-सामर्थ्य से श्येन पक्षी का रूप धारण किया और यह माता के उदर से बाहर निकला। ऋग्वेद के प्रायः समस्त चतुर्थ मंडल का यह प्रणेता या द्रष्टा है।

पुनर्जन्म-संबंधी विचारकों में वामदेव को सर्वश्रेष्ठ तत्त्वज्ञ माना जाता है। इसे अपने दो पूर्वजन्म विदित थे। एक जन्म में यह मनु बना और दूसरे जन्म में सूर्य। इसी प्रकार इसे समस्त देवताओं के पूर्वजन्म भी ज्ञात थे।

वामन—विष्णु का पांचवां अवतार वामनावतार के नाम से प्रसिद्ध है, जबकि भागवत में इसे पंद्रहवां अवतार कहा गया है। राजा बलि के शासनकाल को वामन-रूप विष्णु भगवान् ने तीन पगों में पृथ्वी को नाप लिया था। पुराणों में वामन को कश्यप तथा अदिति का पुत्र कहा गया है। इनकी पत्नी का नाम कीर्ति तथा इनके पुत्र का नाम बृहत् श्योक बताया गया है। इनका जन्म भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को हुआ था, जिसे 'वामन द्वादशी' के नाम से कहा जाता है।

आधुनिक विद्वानों की स्थापना है कि वामन अवतार बिहार में हुआ था। वामन ने बलि वैरोचन को समुद्र में धकेल दिया था, जिसकी स्मृति का परिचायक बंगाल की खाड़ी का 'बलिद्वीप' और आधुनिक 'बाली' देश है। 'वामनपुराण' में वामन के एक सौ इक्कीस वामन आश्रयों का उल्लेख हुआ है, जिससे प्रतीत होता है कि वामन की पूजा-प्रतिष्ठा समस्त भारत में व्याप्त थी। बिहार के शाहबाद जिले के बक्सार गांव में वामन का आश्रम बताया जाता है, जोकि सिद्धाश्रम के नाम से प्रसिद्ध था। यह वामन का प्रथम आश्रम था। कुरुक्षेत्र में भी वामन का एक मंदिर आज भी विद्यमान है।

वारणावत—मेरठ जिले में बारणव के नाम से प्रसिद्ध स्थान। यह मेरठ से उत्तर-पश्चिम की ओर उन्नीस मील के फासले पर है।

वालादित्य—काश्मीर के राजा का नाम। इनके पिता का नाम विक्रमादित्य था। पिता के परलोकवास होने पर प्रतापी वालादित्य का काश्मीर के सिंहासन पर अभिषेक हुआ था। ये बड़े प्रतापी महावीर थे। आज भी उनके अनेक जयस्तंभ पूर्व समुद्र के किनारे वर्तमान हैं। इन्होंने बंगाल देश को जीतकर वहां काश्मीरियों को रहने के लिए कालंब नामक एक उपनिवेश स्थापित किया था। इनकी पत्नी बिंबा ने प्रजाओं के अमंगल दूर करने के लिए बिंबेश्वर नाम के एक शिव की प्रतिष्ठा की थी। शंख, शत्रुघ्न और मालव नामक तीन मंत्री थे। इन मंत्रियों ने भी अपने-अपने नाम बिहार, मठ, सेतु आदि बनवाए थे।

राजा वालादित्य की कन्या का नाम अनंगलेखा था। वह बड़ी सुंदरी तथा गुणवती थी। एक दिन ज्योतिषी ने उसका हाथ देखकर कहा—"महाराज! अब इसी कन्या का पति काश्मीर का राजा होगा।" इस बात से राजा बड़े चिंतित हुए। उन्होंने सोचा कि यदि राजा से हम कन्या को ब्याहेंगे तो वह हमारा राज्य ले सकता है और राजा से नहीं ब्याहें तो चिंता काहे की! यही सोचकर राजा ने अनंग-लेखा का ब्याह दुर्लभवर्द्धन नामक एक व्यक्ति से

किया। (देखो प्रज्ञावर्द्धन और दुर्लभवर्द्धन)

(राजतरंगिणी)

वालि—कपिराज। इनकी राजधानी का नाम किष्किधा है।

एक समय ब्रह्मा मेरु पर्वत पर योगासन से बैठे थे। उस समय सहसा उनके नेत्रों से अश्रुबिंदु पतित हुए। उन्हींसे एक वानर उत्पन्न हुआ। एक समय उसी वानर ने एक सुंदर स्त्री का रूप धारण किया। देवराज इंद्र और सूर्य दोनों उस स्त्री को देखकर उसपर मोहित हो गए। इंद्र का वीर्य उस स्त्री के सिर पर गिरा और सूर्य का वीर्य उसके गले पर। उसी सिर पर के वीर्य से बालि और ग्रीवा के वीर्य से सुग्रीव की उत्पत्ति हुई। थोड़े दिनों के बाद उस स्त्री ने पुनः बंदर का रूप धारण किया। एक दिन वह अपने पुत्रों को लेकर ब्रह्मा के समीप गया। ब्रह्मा ने आज्ञा दी कि किष्किधा में जाकर राज्य करो। वालि की पत्नी का नाम तारा और सुग्रीव की पत्नी का नाम रुमा था।

एक समय मायावी दैत्य का वध करने के लिए वालि पाताल गया था। उसके आने में विलंब होते देखकर सुग्रीव ने समझ लिया कि वालि मर गया और यह समझकर पाताल-द्वार को पत्थर से बंद करके वह किष्किधा लौट आया। मंत्रियों ने मिलकर सुग्रीव को राजा बनाया। राजासन पाकर सुग्रीव वालि की पत्नी के साथ सुख-विलास करने लगा। कुछ दिनों के बाद दैत्य का विनाश करके वालि लौटा और पैर से मारकर उसने द्वार के पत्थर को हटा दिया। तदनंतर वह राजधानी में लौट आया। यहां की लीला देखकर वालि चुप। उसने सुग्रीव को मारना चाहा। सुग्रीव प्राणभय से राजधानी छोड़कर भाग गया। वालि को अपना राज्य और अपनी पत्नी तो मिली ही, साथ ही सुग्रीव की पत्नी रुमा भी वालि ने हथिया ली। पुनः सुग्रीव ने रामचंद्र जी से मैत्री करके अपने भाई वालि का वध कराया। (रामायण)

वाल्मीकि—विख्यात रामायण रचयिता महामुनि। ये महर्षि अयोध्यापति महाराज रामचंद्र जी के समकालिक थे परंतु अवस्था में उनसे बड़े थे। रामचंद्र जी के पिता दशरथ इनके हमजोली थे। अयोध्या से दक्षिण की ओर गंगा बहती है, गंगा के दक्षिण तीर पर अर्नोया की बस्ती है, वहां वन भी है। उसी वन में से होकर तमसा नदी निकली है। इसी तमसा नदी के तीर पर महर्षि वाल्मीकि का आश्रम है। उसी आश्रम में बैठकर महर्षि वाल्मीकि ने अपने विश्वविदित काव्य की रचना की थी। कोई-कोई वाल्मीकि के आश्रम को अयोध्या और मथुरा के बीच में बतलाते हैं। रामायण में भी लिखा है कि लवणासुर को मारने के लिए मथुरा जाते समय शत्रुघ्न वाल्मीकि के आश्रम में ठहरे थे। जो हो, वाल्मीकि ही भारत के आदि-कवि हैं और उनकी रामायण ही आदिकाव्य है।

वाल्मीकि के डाकू होने की कथा प्रसिद्ध है, परंतु उसका मूल कहीं नहीं मिलता।

वाल्मीकि आश्रम—'रामायण' में उल्लिखित संदर्भों से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि आश्रम चित्रकूट पर्वत के निकट था। राम, लक्ष्मण और सीता अयोध्या से गंगा-यमुना के संगम होते हुए यमुना नदी को पार करके चित्रकूट पर्वत पर आए थे। वहां उन्होंने वाल्मीकि आश्रम को देखा था। यह आश्रम गंगा और तमसा (टोंस) के तट पर स्थित था। सीता जी का निर्वासन करते समय लक्ष्मण गंगा पार करके इस आश्रम की ओर आए थे। यहां पर सीता जी ने लव-कुश को जन्म दिया था। मथुरा से लौटकर शत्रुघ्न भी इस स्थान पर आए थे। आधुनिक विद्वानों का मत है कि कानपुर से १४ मील दूर आधुनिक विठूर ही पुरातन वाल्मीकि आश्रम है। किंतु यह मंतव्य अभी संदिग्ध है।

वासुकि—सर्पराज। ये प्रजापति कश्यप के औरस और कद्रू के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इनकी बहन का नाम जरत्कारु था। सर्पकुल की रक्षा के लिए इन्होंने अपनी भगिनी जरत्कारु एक मुनि से ब्याही थी। उन्हें मालूम हुआ था कि इससे जो संतान उत्पन्न होगी उसीसे सर्पकुल की रक्षा होगी। यथासमय जरत्कारु के गर्भ से आस्तीक का जन्म हुआ था। सर्पयज्ञ के समय आस्तीक ने राजा जनमेजय से कहकर सर्पकुल की रक्षा की। समुद्रमंथन के समय में वासुकि मंथन-रज्जु बने थे।

विक्रमपुर—इसका ऐसा नामकरण संभवतः किसी विक्रम-नामक राजा द्वारा स्थापित तथा शासित होने के कारण पड़ा। इसकी प्राचीन राजधानी मुंशीगंज से तीन मील पश्चिम में रामपाल थी। रामपाल में बौद्ध आचार्य शीलभद्र का जन्म हुआ और वह बंगाल के पाल तथा सेनराजाओं ने इसकी प्रसिद्धि को बढ़ाया। रामपाल के दक्षिण-पश्चिम स्थित वज्र-

योगिनी नामक गांव में आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान का जन्म हुआ था। विक्रमपुर का उल्लेख अनेक राजाओं के ताम्रपत्रों तथा दानपत्रों में हुआ है। वहां से हिंदू और बौद्ध धर्मों से संबद्ध अनेक सामग्री भी प्राप्त हुई है। विक्रमपुर संप्रति अपने इसी नाम से ढाका (बंगला देश) के मुंशीगंज तहसील में स्थित है।

विक्रमशिला—मध्ययुगीन भारत में यह बौद्ध विहार एक विश्रुत विद्याकेंद्र के रूप में विद्यमान था। भारत में ही नहीं, अपितु सुदूर एशिया के देशों में भी इस विश्वविद्यालय की ख्याति थी। यहां का कुलपति कोई विश्रुत विद्वान् ही हुआ करता था। जो विद्वान् विशेष ख्याति अर्जित करते थे, उनके चित्र वहां टांक दिए जाते थे। यहां पर समस्त वेद-वेदांग और दर्शन-विद्या की विभिन्न शाखाओं का आमूल अध्ययन होता था। विश्वविद्यालय के छह द्वार थे, जिन्हें कि सूरपीठ के नाम से कहा जाता था और जिनका अधिष्ठाता एक-एक विद्वान् हुआ करता था। इसकी विशालता का अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि उसमें ८००० व्यक्तियों के बैठने का स्थान था। विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने वाले अंतेवासी की जिस विषय में अधिक अभिरुचि होती थी वह उसी पीठ के अधिष्ठाता के समक्ष उपस्थित होकर अपनी प्रवेश-योग्यता का परिचय प्रस्तुत करता था। इस विश्वविद्यालय के ध्वंस का श्रेय मुसलमान आक्रांताओं को है जिन्होंने इसे जला दिया था। यह महान् विद्याकेंद्र आज शिलाओं नामक गांव के रूप में बिहार तहसील में स्थित है। पाथरघाटी की पहाड़ी पर स्थित एक बौद्ध विहार से भी कुछ विद्वानों ने इसे समीकृत किया है।

विक्रमाजीत—मेवाड़ के एक महाराणा। ये संग्रामसिंह के मध्यम पुत्र थे। अपने बड़े भाई राणा रत्नसिंह के मारे जाने पर ये सन् १५३५ ई० में चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठे। इनके बड़े भाई राणा रत्नसिंह में जो गुण थे उनके विपरीत विक्रमाजीत में दुर्गुण थे। ये पहले दरजे के क्षमाहीन और प्रतिहिंसा-परायण थे। इनका यह दोष इतना बढ़ा कि जिससे मेवाड़ के सभी सरदार विक्रमाजीत से अप्रसन्न हो गए।

सरदारों के अप्रसन्न होने का एक और भी कारण था, वह यह कि राणा उनके साथ एक क्षण भी नहीं बैठते थे। वे सर्वदा पहलवानों की कुश्ती और तरह-तरह की कसरतें देखा करते थे। विशेषकर राजपूत-सरदारों ने जिस सम्मान को बहुत दिनों से पा रखा था उनसे उस सम्मान को छीनकर राणा ने उन पहलवानों तथा नीचे पद वालों को दे दिया। इस अपमान से दुःखित होकर सरदार लोग बड़े दीनभाव से अपना समय बिताते थे।

इस प्रकार सरदारों का हृदय राणा की ओर से फिर गया। परंतु राणा की आंखें अभी भी नहीं खुलीं। उन्होंने अपने भावी की ओर एक बार भी आंखें उठाकर नहीं देखा। राणा की इस अविचारिता से राज्य में चारों ओर पूर्ण अराजकता छा गई। दिन-दोपहर प्रजा लूटी जाने लगी, चारों ओर हाहाकार मच गया। एक दिन राणा ने सरदारों को बुलाकर उनसे कहा—"देश में लुटेरे बढ़ गए हैं, आप लोग उनका दमन करें।" सरदारों ने एकस्वर से उत्तर दिया—"आप अपने सम्मानित नायकों को भेजें।"

इसी प्रकार मेवाड़ में दिनोदिन अराजकता बढ़ने लगी। अच्छा मौका देखकर गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह ने मेवाड़ पर चढ़ाई की। उस समय राणा विक्रमाजीत बूंदी राज्य के अंतर्गत लचा नामक स्थान में थे। बदादुर ने वहीं सेना के साथ जाकर उन्हें घेरा। यद्यपि राणा अयोग्य थे परंतु वे मेवाड़ के राणा थे, वाप्पा रावल के वंशधर थे, वीरवर संग्रामसिंह के पुत्र थे। वे बहादुर की सेना को देखकर कुछ भी भयभीत नहीं हुए। दोनों दलों में युद्ध होने लगा। परंतु महाराणा की किराये की सेना नहीं ठहर सकी। सरदार लोग भी महाराणा को उनकी निर्बुद्धिता का फल चखाने के लिए छोड़कर चित्तौड़ की रक्षा करने के लिए चले आए।

बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की। सरदारों ने बड़ी वीरता दिखाई, परंतु अनगिनत सेना में वे थे ही कितने, जिनकी जीत की आशा की जाती?

महाराणा संग्रामसिंह की महारानी कर्णवती से बादशाह हुमायूं का 'धर्म भाई' और बहन का नाता था। इस विपत्ति से रक्षा पाने के लिए महारानी ने अपने धर्म भाई को स्मरण किया। बादशाह हुमायूं बंगाल-विजय को छोड़ धर्मभगिनी की रक्षा के लिए चित्तौड़ पहुंचे। उनके आने की खबर पाते ही बहादुर घबड़ा गया। हुमायूं ने उसे मेवाड़ की सरहद से निकालकर बाहर कर दिया और मालवे की राजधानी मांडू नगर को भी छोड़ दिया। इस प्रकार चित्तौड़ का उद्धार करके हुमायूं ने वहां के सिंहासन पर

महाराणा विक्रमाजीत को पुनः बैठाया ।

अनेक कष्ट भोगने के बाद राणा विक्रमाजीत पुनः चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा । परंतु इनका चाल-चलन नहीं बदला । कहते हैं, ठोकर लगने से आदमी सावधान हो जाता है परंतु राणा ने अपने आचरणों से उसे झूठा बना दिया । पुनः इन्होंने अपना कठोर अत्याचार प्रारंभ कर दिया । राणा अपनी पद-मर्यादा को भी भूल गए और पशुओं के समान व्यवहार करने लगे ।

एक दिन राणा ने करमचंद परमार को भरी सभा में मारा । इस व्यवहार को देखकर सभी सामंत अपने-अपने आसन से उठकर चले गए ।

सरदारों ने सम्मति करके राणा को गद्दी से उतार दिया और वनवीर नामक एक व्यक्ति को गद्दी पर तब तक के लिए बैठाया, जब तक महाराणा संग्राम-सिंह का कनिष्ठ पुत्र उदयसिंह राज्य करने योग्य न हो जाए । यह वनवीर पृथ्वीराज की उपपत्नी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । अंत में, महाराणा विक्रमाजीत वनवीर के हाथ से मारे गए । (टाड्स राजस्थान)

विक्रमादित्य—(१) उज्जयिनी के विख्यात विद्यानुरागी राजा । विक्रमादित्य स्वयं पंडित थे । इनकी सभा में अनेक पंडित वर्तमान थे । कहते हैं कि उनकी सभा में नौ विख्यात पंडित थे, जो नवरत्न के नाम से प्रसिद्ध थे । वे नवरत्न ये हैं—कालिदास, वररुचि, अमरसिंह, धन्वंतरि, क्षपणक, वेताल भट्ट, घटकर्पर, शंकु और वराहमिहिर ।

परंतु पुरातत्त्ववेत्ताओं का कहना है कि या तो यह नवरत्न की कल्पना ही मिथ्या है या नवरत्न के रत्नों का नाम मिथ्या है । क्योंकि आज यह बात प्रमाणित हो गई है कि वराहमिहिर और अमरसिंह, कालिदास और धन्वंतरि इनके समय में बहुत अंतर है । फिर इनका एकसाथ विक्रमादित्य की सभा में रहना और नवरत्न की उपाधि से भूषित होना नितांत असंगत लगता है । (देखो कालिदास)

(२) काश्मीर के एक राजा का नाम । इनके पिता का नाम रणादित्य था । पिता के परलोक सिधारने पर विक्रमादित्य काश्मीर के सिंहासन पर अभिषिक्त हुए । इन्होंने ४२ वर्ष राज्य किया था । (राजतरंगिणी)

विचित्रवीर्य—महाराज शंतनु के पुत्र । काशीराज की कन्या अम्बालिका और अम्बिका इनको ब्याही गई थीं । अम्बालिका के गर्भ से पांडु और अम्बिका के गर्भ से धृतराष्ट्र उत्पन्न हुए थे ।

विजय—काश्मीर के एक राजा का नाम । दयालु राजा तुञ्जीन के परलोकवास होने पर विजय को काश्मीर का सिंहासन मिला । ये अन्यवंशीय थे । इन्होंने आठ वर्ष काश्मीर का राज्य किया । इन्होंने विजयेश्वर महादेव के चारों ओर नगर बसाए थे ।

विजयनगर—अपने अतीत के वैभवकाल के किसी समय विजयनगर राजधानी के रूप में विश्रुत था । सुदूर क्षेत्र इसके अंतर्गत थे । इसकी प्रसिद्धि इसके धर्म-प्राण एवं कलानुरागी शासकों द्वारा बनाए गए विशाल प्रासादों तथा कलापूर्ण भव्य मंदिरों के रूप में थी । विजयनगर के शासकों के संरक्षण में पल्लवित चित्र-शैली अपना पृथक् स्थान रखती है ।

विजयसिंह—मारवाड़ जोधपुर का एक राजा । ये महा-राज बख्तसिंह के पुत्र थे । जब महाराज बख्तसिंह ने विषमय वस्त्र पहनकर प्राण-त्याग किया, उस समय उनके पुत्र विजयसिंह बीस वर्ष की अवस्था में मार-वाड़ के राजा हो गए । उस समय यद्यपि दिल्ली के बादशाह की प्रभुता दुर्बल हो गई थी, तथापि विजय-सिंह ने प्रचलित रीति के अनुसार दिल्ली के बादशाह के समीप अपने अभिषेक का संवाद भिजवाया । दिल्ली के बादशाह ने उससे अपना आनंद प्रकाशित किया । इसी प्रकार भारत के सभी प्रधान-प्रधान राजाओं ने उन्हें मारवाड़ का अधिपति सहर्ष स्वीकार किया । मारवाड़ के मारोठ नामक स्थान में विजय-सिंह का अभिषेक हुआ था । महाराज विजयसिंह वहां से जाकर मेड़ता में अशौच निवृत्ति होने तक रहे ।

इनको रामसिंह से बहुत दिनों तक युद्ध में लिप्त रहना पड़ा था । अंत में, बहुत परिश्रम के बाद राम-सिंह की आशा व्यर्थ हुई और विजयसिंह मारवाड़ के सर्वसम्मत अधीश्वर हुए । (टाड्स राजस्थान)

विजिताश्व—एक राजा । पृथु, वैन्य और अर्चि के पौत्र-पुत्रों में से एक । इसने निन्यानवे अश्वमेध यज्ञ किए थे । सौवें यज्ञ की समाप्ति से पूर्व इंद्र ने इसका यज्ञीय अश्व चुरा लिया था । इसने इंद्र से युद्ध करके अपना अश्व प्राप्त किया । इसी कारण इसका 'विजि-ताश्व' नामकरण हुआ । इंद्र से इसने अंतर्धान होने की विद्या सीखी, जिससे इसको 'अंतर्धान' नाम से भी कहा गया । इसकी दो पत्नियों के नाम शिखंडिनी

और नमस्वती थे। शिखंडिनी से इसके पावक, पवमान तथा शुचि नामक तीन पुत्र और नमस्वती से हविर्धान नामक एक पुत्र हुआ।

विट्ठलनाथ—ये वैष्णव संप्रदाय में पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक बल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म १५७२ वि० (१५१५ ई०) को काशी के निकट चरणाट नामक गांव में हुआ था। काशीवासी माधव सरस्वती से इन्होंने वेद-वेदांत और शास्त्र-पुराण की विधिवत् शिक्षा प्राप्त की। चाचा हरिवंश से भी इन्होंने अध्ययन किया। 'भागवत' के ये विशेष विद्वान् थे। पुष्टिमार्गीय संप्रदाय की लोकशास्त्रसिद्धि के लिए इन्होंने पर्याप्त प्रयत्न किया। इनके दो विवाह हुए और लगभग ग्यारह संतानें हुईं। इन्होंने लगभग पचास ग्रंथों का प्रणयन किया, जिनमें से कुछ के नाम हैं—'विद्वन्मंडन', 'अणुभाष्य' (अंतिम डेढ़ अध्याय), 'भक्तिहंस', 'भक्तिनिर्णय', 'विज्ञप्ति', 'निर्णय ग्रंथ', 'निबंध प्रकाश टीका', 'सुबोधिनी टिप्पणी', 'भक्तिहेतु', 'षोडश ग्रंथ टीका', 'शृंगार रस मंडन', 'संस्कृत आभाएं और पद'। इन्होंने अनेक स्फुट ग्रंथ भी लिखे (प्रभुदयाल मीतल—अष्टछाप परिचय)।

वितस्ता—झेलम नदी।

विदग्ध शाकल्य—एक तत्त्ववेत्ता आचार्य। विदेह जनक की राजसभा में याज्ञवल्क्य के साथ इसका शास्त्रार्थ हुआ था, जिसमें यह पराजित हुआ। पूर्व शर्त के अनुसार पराजय के कारण इसको मृत्यु वरण करनी पड़ी।

विदर्भ—संस्कृत के विभिन्न ग्रंथों में इस देश का उल्लेख हुआ है। 'महाभारत' के एक उपाख्यान के आधार पर महाकवि श्रीहर्ष ने अपने 'नैषधचरित' महाकाव्य में विदर्भ के राजा नल और उसकी रानी दमयंती की कथा का विस्तार से वर्णन किया है। विदर्भ के भोज राजवंश के राजा पुण्यवर्मन के उदात्त चरित का महाभारत में विस्तार से उल्लेख हुआ है। किसी समय विदर्भ पर शुंगों का अधिकार था। वृहद्रथ मौर्य के शासनकाल में मगध-साम्राज्य दो भागों में विभक्त था। उस समय यज्ञसेन विदर्भ का राज्यपाल था। शुंग अग्निमित्र के समय वहां की शासन-व्यवस्था दो भागों में विभक्त हो चुकी थी। आधुनिक बरार ही प्राचीन विदर्भ है।

विदर्भाः—विंध्या से दक्षिण, दशार्ण से पश्चिम। गोदावरी से उत्तर और सौराष्ट्र से पूर्व का देश, बरार।

विदिशा—इसको वैदिश, वेदिस या वेसनगर अथवा वैश्य-नगर भी कहा गया है। इस नगर का ऐतिहासिक महत्त्व है। कालिदास ने अपने 'मेघदूत' में इसके प्रकृत सौंदर्य के सजीव चित्र उतारे हैं। रामायण (उत्त० अ० १२१) के अनुसार, श्रीराम ने शत्रुघ्न को यह नगर प्रदान किया था। उसके धन-वैभव और और शोभा-संपन्नता का पुराणों में भी उल्लेख हुआ है। इसकी सुख-समृद्धि तथा प्रसिद्धि का विशेष श्रेय शुंगों को है। पुष्यमित्र और अग्निमित्र ने उसको अपनी राजधानी बनाया। बाद में यह पूर्वी मालवा की राजधानी थी। बाण की 'कादंबरी' में विदिशा के शूद्रक नामक एक पराक्रमी राजा का वर्णन हुआ है। यह नगर किसी समय हाथीदांत की कलाकारी और तीक्ष्ण धारवाली तलवारों के लिए प्रसिद्ध था। यहां के अठारह दाताओं ने बौद्धस्तूपों के निर्माण के लिए प्रचुर दान दिया था। वेदिसगिरिमहाविहार संभवतः वहां का प्रथम बौद्ध-विहार था। उसके बाद विदिशा के लगभग साढ़े पांच मील दक्षिण-पश्चिम में सांची के स्तूपों का निर्माण हुआ। विदिशा अपने स्तूपों के लिए इतिहास में प्रसिद्ध है। उसके आसपास बहुसंख्यक स्तूपों का निर्माण हुआ है। विदिशा के राजा भागभद्र के दरबार में यूनानी शासक अंतियालसिडास ने अपना राजदूत हेलियोडोरस को भेजा था, जिसने स्वयं भागवत धर्म को वरण किया था और एक गरुडमंडित स्तंभ का निर्माण कराया था। यहां से विभिन्न प्रकार की पुरातत्त्व-सामग्री प्राप्त हुई है। प्राचीन विदिशा आधुनिक भिलसा नाम से कही जाती है। विदिशा नदी के कोठे पर स्थित प्राचीन वेसनगर संप्रति भग्नप्राय अवस्था में है (डॉ० बि० च० लाहा—प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल, पृ० ५५९-५६८)।

विदुर—कृष्ण द्वैपायन व्यास के औरस और विचित्रवीर्य की महारानी अम्बिका की दासी के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी। ये यद्यपि अंधराज धृतराष्ट्र के मंत्री थे, तथापि पांडवों की सर्वदा भलाई चाहते थे। ये अत्यंत न्यायपरायण तथा सत्यवादी थे। दुर्योधन आदि जब पांडवों को वारणावत नगर में भेजने तथा वहां जतुगृह में आग लगाकर उन्हें मार डालने का विचार कर रहे थे, उस समय विदुर की मंत्रणा से ही उनकी रक्षा हुई। पांडवों के ब्याह होने के अनंतर

धृतराष्ट्र की आज्ञा से विदुर पांचाल राज्य में गए थे और वहां से पांडवों को हस्तिनापुर ले आए। महाभारत का युद्ध समाप्त होने पर जब पांडव राजा हुए तब विदुर हस्तिनापुर में पंद्रह वर्ष तक रहे थे। तदनंतर ये धृतराष्ट्र के साथ वन गए और वहीं इन्होंने योग से शरीर त्याग किया। कहते हैं, ये पहले जन्म के धर्मराज थे। शापवश से इन्हें शूद्रयोनि में उत्पन्न होना पड़ा था।

विदुला—महाराज सौवीर की महारानी का नाम। यह वीर तथा गुणवती थी। इसके स्वामी की मृत्यु होने पर सिंधुराज ने इसके राज्य पर आक्रमण किया था। प्रबल शत्रु के आक्रमण से इसका पुत्र संजय बड़ा भीत हुआ था। परंतु माता विदुला के प्रोत्साहन से उत्साहित होकर संजय ने युद्ध किया और अपने पिता के राज्य का उद्धार किया। विदुला के उपदेश प्रत्येक सत्पुत्र कहलाने के अभिलाषियों को सर्वदा स्मरण रखने चाहिए। (महाभारत)

विदूरथ—(१) एक यादव राजा। इसके पिता का नाम राजा भजमान था।

(२) एक यादव राजा। यह चित्ररथ राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम शूर था।

(३) एक वृष्णिवंश का क्षत्रिय। इसके पिता का नाम बृहद्दशर्मन् था। वासुदेव की बहन श्रुतदेवा इसकी माता थी। दंतवक्र इसका भाई था। यह रुक्मिणी तथा द्रौपदी के स्वयंवर में उपस्थित था। श्रीकृष्ण द्वारा इसके भाई दंतवक्र का वध किए जाने के कारण इसने श्रीकृष्ण पर आक्रमण किया था। श्रीकृष्ण के ही हाथों इसका भी शिरच्छेद हुआ। (भागवत)

(४) एक राजा। यह भलंदन ऋषि का मित्र था। इसके दो पुत्रों के नाम सुनीति तथा सुमति और एक कन्या का नाम मुदावती था। एक बार यह मृगया हेतु जंगल में गया। वहां इसने कुजृंभ राक्षस की जमुहाई से बनी एक दरार देखी। उस दरार के निकट बैठ सुव्रत मुनि ने उसे बताया कि इस राक्षस के पास एक दैवी मूसल है, जिससे वह समस्त प्राणियों को त्रसित करता है। इस राक्षस ने इसकी कन्या मुदावती का अपहरण किया और इसके दोनों पुत्रों को बंदी बना दिया। इसके कहने पर भलंदन ऋषि के पुत्र ने कुजृंभ का वध किया और मुदावती को मुक्त करके उससे विवाह किया। (मार्कण्डेयपुराण)

विदेघ माथव (विदेह माधव)—एक विदेघ या विदेह राजा। मथु या मधुवंश का होने के कारण यह इस नाम से कहा गया। 'शतपथ ब्राह्मण' की एक कथा में कहा गया है कि एक बार इसने अपने मुख में अग्नि को बंद कर लिया था, जिससे कि यह किसीसे बात नहीं करता था। इसके पुरोहित राहूगण गौतम ने इसके मुख से अग्नि की मुक्ति के लिए अनेक प्रयत्न किए किंतु उसका कोई फल नहीं हुआ। एक बार गौतम ने 'घृत' शब्द का उच्चारण किया, जिसे सुनकर अग्नि अपनी सहस्र जिह्वाओं को फैलाकर बाहर निकल आया। बाहर आकर अग्नि ने नदियों को सुखा दिया और सृष्टि को भस्म करने लगा। अग्निदाह से पीड़ित विदेघ माथव ने स्वयं को निकट में बहने वाली सदानीरा नदी में डुबो दिया। तब उसको अग्निदाह से मुक्ति मिली।

विदेहाः—तिरहुत प्रांत।

विद्या—एक वैदिक देवता और त्रयी (तीनों वेदों) का अधिष्ठाता। सायणाचार्य ने 'ऋग्वेदभाष्यभूमिका' में लिखा है कि एक बार यह ब्राह्मण के पास गई और उससे कहा कि 'मेरी रक्षा करो। मैं तुम्हारी अमानत (शेवधि) हूं। परिनिष्ठित ब्रह्मचारी को ही मुझे देना। असूया करने वाले शिष्यों से मैं घृणा करती हूं।'

विद्यापति—विख्यात मैथिल कवि। इन्होंने 'पुरुषपरीक्षा' नामक संस्कृत-ग्रंथ बनाया है। इनके पिता का नाम गणपति और पितामह का नाम जयदत्त था। ये मिथिला के राजा शिवसिंह के आश्रित और उनके सभापंडित थे। इनको राजा और रानी दोनों ही बहुत मानते थे। राजा ने प्रसन्न होकर इन्हें विपसी नामक गांव दिया था। इनके वंशधरों के पास उसका दानपत्र अभी भी वर्तमान है। निश्चित प्रकार से इनके समय का निरूपण नहीं किया जा सकता। परंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ये चैतन्यदेव के पूर्ववर्ती चंडीदास के समसामयिक थे। किसी-किसी का कहना है कि इनका सन् १३१८ ई० में जन्म हुआ था। इनकी बनाई पदावली का समाज में बड़ा आदर है। 'पुरुषपरीक्षा' और 'पदावली' के अतिरिक्त इन्होंने 'दुर्गाभक्तितरंगिणी', 'दानवाक्यावली', 'विवादसार', 'गयापतन' आदि संस्कृत ग्रंथ बनाए थे। ये ग्रंथ मिथिला में आज भी प्रचलित हैं। इनकी मनोहर पदावली नीचे उद्धृत की जाती है—

कत चतुरानन मरि मरि जावत,
नतु या आदि अवसाना ।
तोहे जनमि पुनि तोहे समावत,
सागर लहरी समाना ।
अरुण पुरव दिस, वहल सगर निश,
गगन मगन भेल चन्दा ।
मुनि गेल कुमुदिनि तइओ तोहर धनि,
मूनल मुख अरविन्दा ।
कमर वदन कुवलय दुइ लोचन,
अधर मधुर निरमाणे ।
सकल शरीर कुसुम तुअ सिरजिल,
किअ दई हृदय परवाने ।
जनम अवधि हम रूप निहारब,
नयन न तिरपित भेल ।
सेई मधुर बोल श्रवणहि सूनब,
श्रुतिपथ परसि न गेलो ।

चैतन्यदेव के संप्रदाय में विद्यापति की पदावली का बड़ा आदर है । चैतन्यदेव भी इन पदावलियों का बड़ा आदर करते थे । विद्यापति के मैथिल होने के प्रमाणों को मानते हुए भी न मालूम क्यों बंगाली लोग इन्हें बंगाली बनाने का निरर्थक परिश्रम करते हैं । विद्यापति के वंशधरगण आज भी मिथिला के बिपसी ग्राम में वर्तमान हैं । विद्यापति बिहार प्रदेश के कवि-कुल-गौरव हैं । परंतु बिहार के गौरवमय रत्न को बंगाली अपनाना चाहते हैं ।

विनता—प्रजापति कश्यप की पत्नी और पक्षियों की माता । अरुण और गरुड़ नामक इसके दो पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए थे । रण में हार जाने के कारण इनको अपनी सौत कद्रू की ५० वर्ष तक दासी बनकर रहना पड़ा था । परंतु गरुड़ ने अपने प्रयत्न से माता को दासीबंधन से मुक्त किया था ।

विन्दुसरोवर—यह दिव्य सरोवर उत्तरापथ में गंगोत्री से दो मील दक्षिण की ओर रुद्रहिमालय (कैलाश) पर अवस्थित है । इसी पावन स्थान पर बैठकर पुण्यात्मा राजा भगीरथ ने गंगा भागीरथी को भूलोक पर अवतरित करने के लिए प्रार्थना की थी ।

विन्ध्यपर्वत—पुराणों तथा अभिलेखों में इसका व्यापक वर्णन हुआ है । पश्चिमी गुजरात से पूरब में बिहार तक लगभग ७०० मील विस्तृत यह विंध्यपर्वत अनेक पहाड़ियों से अलंकृत है । यह पर्वत उत्तर तथा दक्षिण का विभाजक है । विंध्याटवी इसी पर्वत का अंग है, जिसका वर्णन कालिदास, बाण तथा दंडी की कृतियों में हुआ है ।

विन्ध्याचल—इस तीर्थस्थान का उल्लेख अनेक पुराणों तथा अन्यान्य ग्रंथों में हुआ है । इसके समीप ही विंध्याचल (पंपापुर) गांव है । यहां पर विंध्यवासिनी देवी का सिद्धपीठ है । यह स्थान मीरजापुर से पांच मील पश्चिम में स्थित है । समस्त उत्तर भारत और देश के सुदूर अंचलों में स्थित शाक्तमतानुयायी जनता प्रतिवर्ष चैत्र के नवरात्र में इस शक्तिपीठ में आकर अपना श्रद्धाभाव समर्पित करते हैं ।

विपाशा – व्यास, पंजाब की एक नदी ।

विप्रचित्ति—एक दानव राजा, जो कि कश्यप और दनु का पुत्र था । वृत्रासुर तथा हिरण्यकशिपु से इंद्र के युद्ध के समय यह असुर पक्ष में सम्मिलित हुआ था । वलि-इंद्र के युद्ध में भी इसने भाग लिया था । देवासुरों के अमृतमंथन के समय भी यह उपस्थित था । इसकी पत्नी का नाम सिंहिका था, जिससे इसके सौ पुत्र हुए ।

विभीषण—(१) लंकेश्वर रावण के छोटे भाई । रावण से अपमानित होकर अपने कुलध्वंसाभिलाषी ये भगवान् रामचंद्रजी की शरण गए थे । इन्हींके परामर्श से रामचंद्रजी रावण का वध कर सके थे । रावण को मारकर रामचंद्रजी ने इन्हें लंका का राज्य दिया था ।

(२) ये काश्मीर के राजा थे । ये तृतीय गोनर्द के पुत्र थे । इन्होंने ५३ वर्ष ६ महीना काश्मीर का शासन किया था । (राजतरंगिणी)

(३) ये काश्मीर के राजा थे । ये द्वितीय विभीषण कहे जाते थे । इनका राज्यकाल ३५ वर्ष ६ महीने था ।

विम्बिसार—मगध के प्राचीन राजा । ये बुद्धदेव के समसामयिक थे । बुद्धदेव ने इन्हें बौद्धधर्म में दीक्षित किया था । इनके पुत्र का नाम अजातशत्रु था ।

विराट—मत्स्यदेशाधिपति । पांडवगण इन्हींके यहां अज्ञातवास में रहे थे । ये ऐश्वर्यशाली और पराक्रमी राजा थे । इनके साले का नाम कीचक था और वही इनका प्रधान सेनापति भी था । कीचक बड़ा भारी योद्धा था । उसने त्रिगर्तदेश के राजा सुशर्मा को परास्त करके उनका राज्य ले लिया था । राज्यभ्रष्ट होकर सुशर्मा दुर्योधन के आश्रय में हस्तिनापुर में रहते थे । भीम ने कीचक को मार डाला । कीचक

के मारे जाने का वृत्तांत चारों ओर फैल गया। सुशर्मा ने कौरव सेना के साथ विराट के दक्षिण गोगृह पर आक्रमण किया। विराट उसके सामने ठहर नहीं सका। सुशर्मा विराट को कैद करने के लिए जा रहा था परंतु युधिष्ठिर के कहने से भीम ने उन्हें छुड़ा दिया। उसी समय दुर्योधन एक बड़ी सेना लेकर विराट के उत्तर गोगृह पर चढ़ आया। अपने पराक्रम से अर्जुन ने कुरुसेना को मथ डाला और विराट की गौओं का उद्धार किया। अज्ञातवास की अवधि समाप्त होने पर विराट का पांडवों से परिचय हुआ। कुरुक्षेत्र के युद्ध में विराट ने सेना के साथ पांडवों की ओर से युद्ध किया था। ये युद्ध के १५वें दिन द्रोण के हाथ से मारे गए। (महाभारत)

विराट देश—मत्स्यदेश की राजधानी, जो जयपुर से उत्तर ४१ मील और दिल्ली से दक्षिण-पश्चिम १०५ मील पर स्थित थी।

विराध—राक्षसविशेष। श्रीरामचंद्र ने वनवास के समय शरभंग के आश्रम में जाते हुए इसको मारा था।

विरोचन—एक असुरराज। प्रह्लाद के तीन पुत्रों में से ज्येष्ठ। असुरराज बलि वैरोचन इसका पुत्र था। यह पांचवें पाताललोक का स्वामी था। दैत्यों के द्वारा पृथ्वीदोहन के समय यह बछड़ा बना था। एक बार अंगिरस ऋषि का पुत्र सुधन्वन् और विरोचन का केशनी नामक सुंदर राजकन्या से प्रेम हो गया था। केशनी ने दोनों से यह शर्त रखी कि जो अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करेगा उसीको वह वरण करेगी। इस शर्त की पूर्ति के लिए दोनों अपने-आपको श्रेष्ठ सिद्ध करने में लग गए। इस विवाद को लेकर दोनों अपने पितामह प्रह्लाद के पास गए। इन दोनों के बीच यह भी निश्चय हुआ कि जो श्रेष्ठ सिद्ध होगा, उसका विजित के प्राणों पर भी अधिकार होगा। प्रह्लाद ने स्वयं कोई निर्णय न करके कश्यप ऋषि से परामर्श किया। उसके परामर्श से प्रह्लाद ने सुधन्वन् को श्रेष्ठ घोषित किया। प्रह्लाद के इस न्याय से सुधन्वन् अत्यधिक प्रभावित हुआ और उसने विरोचन का जीवन उसे वापस कर दिया और विरोचन को शतायु जीवित रहने का आशीर्वाद दिया।

एक बार देवों तथा असुरों को ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने की इच्छा हुई। वे प्रजापति के पास गए। प्रजापति ने उन्हें आत्मज्ञान का उपदेश दिया। आत्मज्ञान की गंभीरता को दृष्टि में रखकर देवों तथा असुरों ने यह निश्चय किया कि वे अपना-अपना प्रतिनिधि प्रजापति के पास भेजें। इस प्रकार देवों की ओर से इंद्र और असुरों की ओर से विरोचन प्रजापति के सान्निध्य में गए। वे बत्तीस वर्षों तक प्रजापति के पास ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करते रहे। फिर भी प्रजापति ने उनको तत्त्वज्ञान न दिया, अपितु वे दोनों असत्य के जंजाल में भटकते रहे। एक बार प्रजापति ने इन दोनों से कहा कि 'आंखों में, पानी में और दर्पण में अपनी जो छाया दिखाई देती है वही आत्मा है।'

विरोचन ने प्रजापति के इसी अनृत कथन को सत्य मानकर अपनी परछाईं को ही आत्मा स्वीकार किया और अपने अनुयायी असुरों को उसीका उपदेश दिया। इस प्रकार देह को आत्मा समझने वाले असुरों का एक 'आसुरी संप्रदाय' स्थापित हुआ। इस भौतिकवादी संप्रदाय ने देवों के अध्यात्मवादी संप्रदाय से पृथक् अपना निरंतर विकास किया।

इस भौतिकवादी विचारक की दो पत्नियां थीं, जिनके नाम थे विशालाक्षी और देवी। देवी से इसके बलि नामक पुत्र और यशोधरा नामक कन्या उत्पन्न हुए। कुंभ, निकुंभ, आयुष्मत्, शिवि और वाष्कलि नामक इनके पांच भाई थे। विरोचना इसकी बहन थी। देवासुरसंग्राम में इंद्र के द्वारा इसका वध हुआ।

विवस्वत्—एक देवताविशेष। ऋग्वेद में विवस्वत्, आदित्य, पूषन्, सूर्य, अर्यमन्, मित्र और भग आदि देवताओं का अलग-अलग उल्लेख हुआ। किंतु ये स्वतंत्र देवता न होकर एक ही आदित्य या सूर्य के विभिन्न नामरूप थे। त्वष्टृ की कन्या सरयू इसकी पत्नी थी। समस्त देवता इसकी संतान बताए गए हैं। मातरिश्वन् तथा अग्नि इसके दूत थे। यह उस सदन में निवास करता है जिसमें इंद्र आदि देवता आनंद करते हैं और गायक-गण इसका स्तुतिगान करते हैं। इंद्र इसका सबसे बड़ा मित्र है, जिसकी इसने बार-बार स्तुति की है। सोम इसका दूसरा निकटतम मित्र है। अश्विनीकुमार भी इसके साथ रहते हैं।

यह प्रकाशमान विवस्वत् उदय होने वाले सूर्य का का ही प्रतिरूप है। वेदों तथा वैदिक साहित्य में इसका प्रभाव व्याप्त है। किंतु वैदिकोत्तर साहित्य में इसका अस्तित्व क्षीणोन्मुख होकर और आदित्य देवता में पर्यवसित हो गया।

विवेकानन्द—कलकत्ता के सिभूलिया नामक स्थान में

स्वामी विवेकानंद उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम विश्वनाथ दत्त था। वे कलकत्ता में हाई कोर्ट के एटार्नी थे। विश्वनाथ के तीन पुत्र थे। सबसे बड़े का नाम नरेंद्र, मध्यम का नाम महेंद्र और छोटे का नाम भूपेंद्र था। विश्वनाथ दत्त का ज्येष्ठ पुत्र नरेंद्र ही स्वामी विवेकानंद हुए।

नरेंद्र बाल्यकाल में बड़ा खिलाड़ी थे परंतु दुष्ट नहीं थे। बालकपने में ही स्मरणशक्ति की अधिकता, प्रत्युत्पन्नमतित्व, सरलहृदयता आदि को देखकर लोग चकित हो जाया करते थे। नरेंद्र को यह बात मालूम नहीं थी कि कुटिलता और स्वार्थपरता आदि किसका नाम है। अपने बंधु-बांधव अथवा किसी पड़ोसी के किसी कष्ट को देखकर शीघ्र ही उसे उस कष्ट से उबारने का प्रयत्न करने लग जाते थे।

यद्यपि नरेंद्र खेल, तमाशा, परोपकार आदि कार्यों में लगे रहते थे तथापि इससे वे अपना काम कभी नहीं भूलते थे। बीस वर्ष की अवस्था में वे एफ० ए० पास करके बी० ए० में पढ़ने लगे। इसी समय इनकी चित्तवृत्ति धर्म की ओर झुकी। धर्म किसको कहते हैं और कौन धर्म सत्य है, इस बात को ढूंढ़ने के लिए उनका हृदय व्याकुल हो गया। हेष्टि साहब नामक एक पादरी थे। वे जनरल एसम्ब्ली कॉलेज के अध्यापक थे। नरेंद्र उन्हींके पास प्रतिदिन घंटों बैठकर धर्मसंबंधी कथोपकथन करते थे। परंतु इससे उनकी शंका नहीं मिटी। चारों ओर धार्मिकों की वंचकता देखकर वे नितांत संशयात्मा हो गए। अंत में, हृदय का संशय दूर करके वे साधारण ब्रह्मसमाज में भर्ती हुए।

जिस समय नरेंद्र धर्मानुसंधान के चक्कर में पड़कर इधर-उधर भटकते फिरते थे उसी समय रामकृष्ण परमहंस का उन्हें दर्शन हुआ। नरेंद्र के एक मित्र परमहंस देव के शिष्य थे। वे ही नरेंद्र को एक दिन दक्षिणेश्वर की काली बाड़ी में परमहंस देव के पास ले गए और परिचय कराकर बोले—प्रभो! यह छोकरा नास्तिक होता जा रहा है।

परमहंस देव श्यामा विषयक और देहतत्त्वसंबंधी गीत बड़े प्रेम से सुनते थे। बहुत देर तक आलाप होने के अनंतर गुरु की आज्ञा से नरेंद्र के मित्र ने उन्हें गीत गाने के लिए कहा। नरेंद्र का कंठ बड़ा ही मधुर और हृदयग्राही था। वे अपने मित्र के कहने से परमहंस देव के सामने गाने लगे। नरेंद्र का गाना सुनकर परमहंस देव बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने नरेंद्र से कहा—नरेंद्र, तुम आया करो। परमहंस देव के कहने के अनुसार प्रायः नरेंद्र उनके यहां आते-जाते थे और परमहंस देव से शंका-समाधान करते थे। परमहंस देव जो कहते थे, नरेंद्र उसका युक्तियों से खंडन कर दिया करता था। एक दिन परमहंस देव ने नरेंद्र से कहा था कि नारायण, यदि तुम हमारी बातें मानते ही नहीं हो तो फिर हमारे यहां आते क्यों हो। नरेंद्र ने उत्तर दिया—मैं आपको देखने आता हूं, आपकी बातें सुनने के लिए मैं नहीं आता।

परमहंस देव के पास आने-जाने से नरेंद्र का संदेह कुछ-कुछ दूर होने लगा। इसी समय बी० ए० परीक्षा पास करके वे कानून पढ़ने लगे। थोड़े दिनों के बाद नरेंद्र के पिता का स्वर्गवास हो गया। पिता के मरने पर नरेंद्र का स्वभाव बिलकुल बदल गया। वे परमहंस देव के समीप जाकर बोले—महाराज! मुझे योग सिखाओ। मैं समाधिस्थ होकर रहना चाहता हूं, आप मुझे उसकी शिक्षा दें। परमहंस देव ने कहा—नरेंद्र, इसके लिए चिंता क्या है। सांख्य, वेदांत, उपनिषद् आदि धर्मग्रंथों को पढ़ो, अपने आप ही सब सीख जाओगे। तुम तो बुद्धिमान् हो। तुम्हारे जैसे बुद्धिमानों से धर्मसमाज का बड़ा उपकार हो सकता है। उसी दिन से परमहंस देव के कहने के अनुसार नरेंद्र धर्मग्रंथ पढ़ने लगे और योग सीखने लगे।

नरेंद्र की माता अपने पुत्र को उदास देखकर उनका ब्याह कर देना चाहती थी, परंतु नरेंद्र ने किसी प्रकार स्वीकार न किया। सुना जाता है कि परमहंस देव ने नरेंद्र के ब्याह की बात सुनकर काली जी से कहा था—"मां! इन उपद्रवों को दूर करो, नरेंद्र को बचाओ।"

परमहंस देव की कृपा से नरेंद्र महाज्ञानी संन्यासी हो गए। परमहंस देव के परलोकवास होने पर गुरु की आज्ञा से नरेंद्र ने अपना नाम विवेकानंद स्वामी रखा।

परमहंस देव के देह-त्याग करने के अनंतर विवेकानंद स्वामी हिमालय के मायावती प्रदेश में जाकर योग-साधना करने लगे। दो वर्ष के बाद तिब्बत और हिमालय के अनेक प्रदेशों में घूमे। वहां से पुनः स्वामी जी राजपूताने के आबू पहाड़ पर आए। वहीं खेतड़ी महाराज के मंत्री मुंशी जगमोहनलाल स्वामी जी के किसी भक्त के साथ उनके दर्शन के लिए आए।

मुंशी जी ने जाकर खेतड़ी महाराज से स्वामी जी की विद्या-बुद्धि आदि की प्रशंसा की। स्वामी जी की प्रशंसा सुनकर खेतड़ी के महाराज ने स्वामी जी के दर्शन करने की इच्छा की। मुंशी जी ने खेतड़ी महाराज की इच्छा स्वामी जी को बतायी, इससे महाराज के सम्मान की रक्षा करने के लिए स्वयं स्वामी जी खेतड़ी गए। स्वामी जी से मुलाकात होने पर महाराज ने स्वामी जी से पूछा—स्वामी जी! जीवन क्या है? स्वामी जी ने उत्तर दिया—मानव अपना स्वरूप प्रकाशित करना चाहता है। और कतिपय शक्तियां उसको दबाने की कोशिश कर रही हैं। इन प्रतिद्वंद्वी शक्तियों को परास्त करने के लिए ही प्रयत्न करना जीवन है। महाराज ने स्वामी जी से इसी प्रकार अनेक प्रश्न पूछे और स्वामी जी से यथार्थ उत्तर पाकर बड़े ही प्रसन्न हुए। स्वामी जी के वे एकांतभक्त हो गए। महाराज के कोई पुत्र नहीं था। उसी समय महाराज के हृदय में यह भाव उत्पन्न हुआ कि यदि स्वामी जी आशीर्वाद दें तो अवश्य ही वे पुत्रवान होंगे, यही विचार करके स्वामी जी के जाने के समय महाराज ने बड़े विनय से कहा—"स्वामी जी! यदि आप आशीर्वाद दें तो हमको एक पुत्र हो।" स्वामी जी ने अंतःकरण से आशीर्वाद दिया। इसके दो वर्ष के बाद स्वामी जी के आशीर्वाद से महाराज के घर में एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

महाराज चाहते थे कि स्वामी जी के आशीर्वाद से पुत्र उत्पन्न हुआ है अतः स्वामी जी ही आकर उसका जन्मोत्सव करें। महाराज ने स्वामी जी को ले आने के लिए मुंशी जगमोहनलाल को भेजा। उस समय स्वामी जी मद्रास में थे, परंतु मद्रास में इस बात का पता किसी को नहीं था। अस्तु, बहुत खोज करने पर मुंशी जी ने स्वामी जी का दर्शन पाया। उन्होंने खेतड़ी महाराज की अभिलाषा स्वामी जी से कही। उस समय सन् १८९३ ई० में अमेरिका में एक महाधर्म सम्मेलन होने वाला था। उस सभा में संसार-भर के धर्म के प्रतिनिधि निमंत्रित किए गए थे, परंतु हिंदू धर्म का कोई प्रतिनिधि उस सभा में नहीं बुलाया गया था। उस सभा का शायद यह उद्देश्य था कि संसार के धर्मों की तुलना करके ईसाई धर्म की श्रेष्ठता स्थिर की जाए। उस सभा के सभापति थे रेवरंड ब्यारो। ब्यारो साहब ने शायद समझा था कि हिंदू मूर्ख-बर्बर हैं। उनको निमंत्रण देना व्यर्थ है। इस अपमान को न सहकर कतिपय भारत-संतानों ने स्वामी विवेकानंद को वहां भेजना स्थिर किया और वे इसके लिए प्रबंध भी करने लगे।

स्वामी जी ने मुंशी जगमोहनलाल से कहा कि इस समय तो मैं अमेरिका जाने का प्रबंध कर रहा हूं, अतएव महाराज के अनुरोध की रक्षा करने में मैं असमर्थ हूं। मुंशी जी ने कहा—आपके जाने का सब प्रबंध महाराज कर देंगे, आप निश्चित रहें। अगत्या स्वामी जी ने जगमोहनलाल का कहना मान लिया। मद्रास के मित्रों से विदा लेकर स्वामी जी खेतड़ी आए। खेतड़ी के महाराज ने स्वामी जी का बड़ा आदर-सत्कार किया। स्वामी जी चिकागो के धर्म-महामंडल में धार्मिक गूढ़ रहस्यों को समझाने जाने वाले हैं, इससे महाराज बड़े प्रसन्न हुए।

स्वामी जी कुछ दिनों तक खेतड़ी में रहे। तदनंतर वे अमेरिका जाने के लिए प्रस्तुत हुए। महाराज ने उनके अमेरिका जाने के आवश्यक प्रबंध कर दिए। महाराज की आज्ञा से मुंशी जगमोहनलाल जी बंबई तक स्वामी जी को पहुंचाने के लिए गए और स्वामी जी का सब प्रबंध उनके अधीन हुआ।

बंबई में जाकर मुंशी जगमोहनलाल ने सभी सामग्रियों का प्रबंध करके स्वामी जी को जहाज पर बैठा दिया। स्वामी जी को विदा करने के लिए जो लोग जहाज पर गए थे वे लौट आए। जहाज भी समुद्र को चीरता-फाड़ता चला गया।

स्वामी विवेकानंद चिकागो की धर्मसभा में हिंदू-धर्म के प्रतिनिधि बनकर गए, परंतु उन्हें उस सभा से निमंत्रण नहीं मिला था। अमेरिका में उनका कोई परिचित नहीं था, जहां जाकर स्वामी जी ठहरते, तथापि स्वामी जी अमेरिका के लिए उद्यत हुए।

यथासमय जहाज जापान होता हुआ अमेरिका के बंदरगाह में पहुंचा। अन्यान्य यात्रियों के समान स्वामी जी भी जहाज से उतरकर चिकागो शहर की ओर चले। स्वामी जी की वेशभूषा देखकर वहां के लोगों को आश्चर्य हुआ। कौतुक-वश कई लोग स्वामी जी की ओर देखने लगे और उनका परिचय पूछने लगे। स्वामी जी ने भी अपने आने का पूरा-पूरा वृत्तांत उनसे कह सुनाया। उन पूछने वालों में सभी बटोही ही नहीं थे, कतिपय गण्यमान्य व्यक्तियों ने स्वामी जी की विद्वत्ता और गुणों से आकृष्ट होकर उन्हें अपने यहां ठहराया और उन लोगों ने धर्मसभा

में स्वामी जी को भी निमंत्रण देने के लिए उक्त सभा के सभापति ब्यारो साहब से अनुरोध किया। पहले तो ब्यारो साहब हीला-हवाला करने लगे परंतु पीछे उन लोगों के विशेष दबाव डालने पर ब्यारो साहब ने स्वामी जी को निमंत्रण दिया।

देखते-देखते धर्मसभा के अधिवेशन का समय उपस्थित हुआ। इंगलैंड और अमेरिका के प्रसिद्ध पंडित विख्यात धार्मिक और धर्मयाजकों ने उस सभा में अपने धर्म की महिमा गाई। बंगाल के ब्राह्म समाज के प्रसिद्ध प्रचारक प्रतापचंद्र मजूमदार इस सभा में निमंत्रित होकर गए थे। उन्होंने भी इस सभा में व्याख्यान दिया।

ब्राह्मधर्म की वक्तृता समाप्त होते ही स्वामी विवेकानंद व्याख्यान-मंच पर खड़े हुए। एक अपरिचित अज्ञातनामा संन्यासी इस समारोह में हिंदूधर्म की विशेषता बतलाने के लिए खड़ा हुआ, यह देखकर अन्यान्य विद्वान् चकित हो गए। औरों की बात क्या कही जाए, स्वयं प्रतापचंद्र मजूमदार भी इससे विस्मित हो गए।

स्वामी जी ने धीरे-धीरे व्याख्यान देना प्रारंभ किया और हिंदूधर्म की विशेषता लोगों को समझा दी। उन कट्टर युवकों की धारणा शीघ्र ही बदल गई, जो हिंदूधर्म को बर्बर धर्म और पौत्तलिक धर्म समझे हुए थे।

स्वामी जी की वक्तृताशक्ति, शास्त्रज्ञान, अकाट्य युक्ति और तर्कप्रणाली को देखकर विद्वन्मंडली और साधुसमाज को चकित होना पड़ा था। चारों ओर से धन्य-धन्य की बौछार होने लगी। समस्त अमेरिका में स्वामी जी की वक्तृता की प्रशंसा होने लगी। सब लोगों ने जान लिया कि स्वामी जी सत्य ही ज्ञानी पुरुष हैं। अमेरिका के सभी पत्रों ने स्वामी जी की प्रशंसा की।

स्वामी जी की कीर्ति चारों ओर फैल गई। अमेरिका के अन्यान्य स्थानों से वक्तृता देने के लिए स्वामी जी के पास निमंत्रण आने लगे। लगभग दो वर्ष अमेरिका के अनेक स्थानों में व्याख्यान देकर और धर्म की सार्वजनीनता समझाकर, 'हिंदूधर्म ही आदि और सत्य है' यह बात अमेरिका वालों के हृदय में दृढ़रूप से अंकित कर, अमेरिकावासी स्त्री-पुरुषों को ब्रह्मचर्य अवलंबन द्वारा वेदांत-शिक्षा देकर, उनको धर्म-प्रचार कार्य में नियुक्त करके स्वामी जी अमेरिका से इंगलैंड गए।

स्वामी जी ने अमेरिका जाकर पहले ही वर्ष अमेरिकावासी मैडम लूईस और मिस्टर सैंडेस वार्ग को ब्रह्मचर्य ग्रहण करवाकर वेदांत की शिक्षा दी। वे स्वामी अभयानंद और स्वामी कृपानंद नाम धारण करके अमेरिका और यूरोप में वेदांत का प्रचार कर रहे हैं।

स्वामी विवेकानंद अपने कतिपय यूरोपीय शिष्यों के साथ सन् १८९६ ई० में इंगलैंड से भारत आने के लिए प्रस्थित हुए। भारत आने के समय सिंहलवासियों की ओर से उन्हें कोलंबों में आने के लिए निमंत्रण-पत्र मिला। अतएव स्वामी जी सिंहल की ओर रवाना हुए।

सिंहल की राजधानी का नाम कोलंबो है। स्वामी विवेकानंद जी कोलंबो जाकर उपस्थित हुए। उस देश के बड़े-बड़े विद्वान् और धनियों ने स्वामी जी का अभिवादन किया। सभी लोग स्वामी जी की वक्तृता सुनने के लिए लालायित हो रहे थे। कोलंबो में वक्तृता देकर स्वामी जी कांदी नामक स्थान में गए। कांदी-निवासियों ने स्वामी जी को एक अभिनंदन-पत्र दिया। स्वामी जी ने भी उसका उचित उत्तर दिया। तदनंतर वहां के दर्शनीय स्थानों का दर्शन करके स्वामी दांबूल नामक स्थान में गए। इसी प्रकार सिंहल के अनेक स्थानों में जाकर स्वामी जी ने व्याख्यान दिया। वहां से स्वामी जी मद्रास सेतुबंध रामेश्वर होते हुए कलकत्ता आए। कलकत्ता में उनकी अभ्यर्थना के लिए बड़ी सभा हुई। कलकत्ता में कुछ दिनों रहकर वे तदनंतर ढाका चट्टग्राम और कामरूप गए।

सन् १९०० ई० में स्वामी जी पेरिस धर्म सभा में निमंत्रित होकर वहां गए। वहां तीन महीने रहकर वहां से जापान होते हुए स्वामी जी कलकत्ता लौट आए। इसी समय से उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। सन् १९०२ ई० में कलकत्ता के पास वेलूड मठ में स्वामी जी ने नश्वर शरीर त्याग दिया।

विशनसिंह—जयपुर के एक महाराजा। इनके पिता का नाम महाराज रामसिंह था। रामसिंह की मृत्यु होने पर विशनसिंह आमेर के राजा हुए। इन दिनों आमेर का गौरव प्रतिदिन क्षीण होता जाता था। अब दिल्ली के बादशाह के यहां इनका वह सम्मान नहीं रहा। इसी कारण विशनसिंह को 'तीन हजारी मनसब'

मिला था। परंतु अभाग्यवश विशनसिंह ने बहुत दिनों तक राज्यसुख नहीं भोगा। महाराज विशनसिंह सं० १७५६ वि० में बहादुरशाह के साथ काबुलियों को दमन करने के लिए काबुल गए और वहीं इनकी मृत्यु हुई। (टाड्स राजस्थान)

विशुद्धानन्द स्वामी—सन् १८०५ ई० में दक्षिण के कल्याणी ग्राम में स्वामी विशुद्धानंद का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम संगमलाल और माता का नाम यमुना था। संगमलाल ब्राह्मण थे। आर्यावर्त के बौड़ी नामक गांव में इनके पितृ-पितामह आदि का वास था। छोटी अवस्था में ही संगमलाल के पिता मर गए। इस कारण गांव छोड़कर संगमलाल दक्षिण के कल्याणी नामक गांव में सबसुख नामक एक ब्राह्मण के यहां जाकर रहने लगे। सबसुखराम नवाब मोहन-शाह के सेनापति के यहां नौकर थे। सबसुख की एक बहन थी जिसका नाम यमुना था। यमुना का अभी तक ब्याह नहीं हुआ था। अतएव सबसुख चाहते थे कि संगमलाल से यमुना को ब्याह दें। परंतु इसके लिए संगमलाल के कुल आदि का परिचय मिल जाना आवश्यक है। सबसुखराम ने गुप्त रूप से अनुसंधान करके यमुना को संगमलाल से ब्याह दिया। इसी ब्याह से स्वामी विशुद्धानंद उत्पन्न हुए थे।

ब्याह के बाद दो वर्ष के भीतर ही यमुना के दो लड़के हुए, परंतु थोड़े दिन जीकर वे दोनों मर गए। स्वामी जी यमुना के तीसरे पुत्र हुए। इनकी एक वर्ष की अवस्था होने पर हवन, यज्ञ आदि करवाकर संगमलाल ने इनका नाम वंशीधर रखा। वंशीधर को मिरगी का रोग था। अतएव पुत्र के जीवन से निराश होकर यमुनादेवी सर्वदा चिंतित रहा करती थी।

इसी प्रकार कुछ दिन बीत गए। एक दिन कल्याणी में एक क्षत्रिय पत्नी पति के साथ सती हो रही थी। कहते हैं, सती स्त्री का अंतिम आशीर्वाद मिथ्या नहीं होता। इसी कारण हजारों स्त्री-पुरुष अपने पुत्र-कन्याओं के लिए आशीर्वाद प्राप्त करने के उद्देश्य से वहां गए। यहां भी वही हुआ था। यमुना देवी अन्यान्य स्त्रियों के साथ वंशीधर को लेकर वहां गई। वंशीधर को देखकर सती ने यमुना से कहा—बहन! तुम बड़ी भाग्यवती हो। तुम्हारा पुत्र एक प्रसिद्ध योगी है। अकाल मृत्यु इसे स्पर्श भी नहीं करेगी। सती के आशीर्वाद से वंशीधर का मिरगी रोग कुछ दिनों के लिए छूट गया। परंतु पुनः वह ज्यों का त्यों हो गया।

जिस समय वंशीधर की अवस्था चार वर्ष की थी, उस समय उसने एक दिन अपनी माता से कहा था—मां, मुझे पोथी दो। बालक बार-बार यही कहने लगा। यमुना ने लाकर उसे एक पुस्तक दी, परंतु बालक ने 'यह हमारी नहीं है' कहकर उसे फेंक दिया और चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा। सबसुख ने अनेक खिलौने आदि देकर बालक को चुप कराया और एकांत में उन्होंने उस बालक से पूछा—वंशी, तुम पोथी क्या करोगे? वंशी ने कहा—पोथी लेने से हमारा रोग छूट जाएगा और वह पोथी झोंपड़ी में है। बालक के मुख से यह अद्भुत वाक्य सुनकर सबसुख ने पूछा—किसकी झोंपड़ी में? वंशीधर ने इसका उत्तर कुछ भी नहीं दिया।

कल्याणी से १०-११ कोस उत्तर की ओर कीर्णा नदी के संगमस्थान पर प्रतिवर्ष चैत के महीने में एक मेला होता है। बहुत यात्री स्नान करने के लिए वहां प्रतिवर्ष जाते हैं। वहीं संगम के पास ही एक झोंपड़ी में एक योगी रहते थे। सबसुखराम तथा उसके परि-वार के समस्त लोग इस साल स्नान करने वहां गए थे। बालक वंशीधर उस झोंपड़ी को देखते ही बोल उठा, 'इसी झोंपड़ी में हमारी पोथी है।' बालक की बात सुनकर सभीको आश्चर्य हुआ और सभी बालक को लेकर उस झोंपड़ी में आए और सबसुख ने योगी से कहा—महाराज! यह बालक क्या कहता है, सो सुनिए। बालक थोड़ी देर तक उस योगी की ओर देखता रहा और बोला—हमारी पोथी इसी झोंपड़ी में है। योगी बालक ने कुतूहल से पुस्तक ढूंढ़ने के लिए कहा। बहुत खोज करने पर सबसुखराम ने छांद से एक हस्तलिखित पुरानी पुस्तक निकाली। उस पुस्तक को पाकर वंशीधर बड़ा ही आनंदित हुआ।

अत्यंत विस्मित होकर उस कुटी में रहने वाले योगी ने कहा था—भाई! ये हमारे गुरु हैं। जब हमारे गुरु जी बीमार पड़े थे तब उन्होंने हमसे यही पुस्तक मांगी थी। उनका विश्वास था कि इस पुस्तक के पाते ही हमारा रोग दूर हो जाएगा। परंतु हमारे अभाग्य से बहुत ढूंढ़ने पर भी यह पुस्तक हमें नहीं मिली। इस समय इस बालक के कार्य और गुरु जी का अंतिम हाल दोनों बातों को मिलाने से यही बात निश्चित होती है कि ये हमारे गुरु हैं। देखना, ये एक बड़े भारी योगी होंगे। आश्चर्य तो यह है कि इस

पुस्तक को पाते ही वंशीधर का रोग दूर हो गया।

वंशीधर को पांच वर्ष की अवस्था में एक भट्ट जी के यहां विद्याभ्यास करने के लिए बैठाया गया और इनको फारसी पढ़ाने के लिए एक मौलवी साहब भी नियत किए गए। वंशीधर एक बार जो सुनते थे उसे याद कर लेते थे। इसी कारण भट्ट जी इनको श्रुतिधर कहा करते थे। वंशीधर की सात वर्ष की अवस्था में इनके पिता की मृत्यु हुई। उसके थोड़े ही दिनों के बाद इनकी माता भी परलोकगामिनी हुई। १३ वर्ष की अवस्था में मराठी और फारसी पढ़कर ये शास्त्र पढ़ने लगे। १६ वर्ष की अवस्था में अस्त्रविद्या और घुड़सवारी करना इन्होंने सीखा। इसी समय नवाब को किसी व्यापारी ने एक घोड़ा भेंट किया। वह घोड़ा बड़ा ही बदमाश था। सवार उसको अपने वश में नहीं कर सकता था। अतएव उसने स्वामी जी से उसे ठीक करने के लिए कहा। स्वामी जी ने घोड़े को ठीक तो कर दिया, परंतु अधिक मार पड़ने और परिश्रम होने के कारण घोड़ा मर गया। नवाब साहब ने घोड़े के मरने का कारण वंशीधर को ही समझा और उन्होंने वंशीधर को कैद कर दिया। थोड़े दिनों तक जेल में रहने के बाद स्वामी जी का भाव बिलकुल बदल गया। वे संसार की असारता का अनुभव करने लगे। उनका हृदय वैराग्यपूर्ण हो गया।

जेल से छूटने के बाद वंशीधर पुनः अपने मामा के यहां सुख से रहने लगे। एक दिन इन्होंने अपने मामा के नाम एक पत्र लिखकर रख दिया। उस पत्र में इन्होंने संसार की नाश्वरता और अपने को न ढूंढ़ने का अनुरोध किया था। वंशीधर कल्याणी छोड़कर नासिक आए। वहां एक नैष्ठिक ब्राह्मण से ब्रह्मचर्य ग्रहण करके ये वेदाध्ययन करने लगे। उस समय इनकी अवस्था १७ वर्ष की थी। कई वर्ष तक रहकर ये नासिक परित्यागकर पैदल ओंकारनाथ आए। वहां से ये उज्जयिनी में जाकर महाकालेश्वर के मंदिर में पंचाक्षर मंत्र का जप करने लगे। कहते हैं, पंचाक्षर मंत्र जपने से लोगों की अभिलाषा पूर्ण होती है। महाकालेश्वर के मंदिर में अपने व्रत का उद्यापन करके ये ग्वालियर आए। उस समय ग्वालियर राज्य में बड़ा उपद्रव मचा हुआ था। संदेह में स्वामी जी पकड़े गए, परंतु विचार होने पर इन्हें छुटकारा मिल गया।

पुनः वंशीधर बिठूर आए और वहां कई वर्ष रहकर हरिद्वार और वहां से कनखल गए। कनखल में कुछ दिन रहकर वंशीधर बदरिकाश्रम गए। वहां विष्णुप्रयाग के किसी एकांत स्थान में एक योगी रहते थे। वंशीधर ने उन्हीं योगी के पास रहकर योग सीखा। इस समय इनकी योगसाधन की इच्छा बलवती हुई। ये हृषिकेश चले आए। वहां गोविंदस्वामी नामक एक योगी रहते थे। उनके निकट १५ वर्ष रहकर वंशीधर ने योग सीखा। वहां से ये काशी आए। उस समय काशी में गौड़स्वामी नामक एक असाधारण महापुरुष काशी में दशाश्वमेध घाट पर रहते थे। वंशीधर ने उन्हींसे संन्यास ग्रहण किया। तब से इनका नाम 'विशुद्धानंद सरस्वती' पड़ा।

वंशीधर अतिरिक्त गौड़स्वामी के और भी तीन शिष्य थे। उनमें विश्वरूप स्वामी सर्वप्रधान और योग्य शिष्य थे। एक दिन विश्वरूप और विशुद्धानंद में तर्क-वितर्क होने लगा। यद्यपि उस शास्त्रार्थ में विशुद्धानंद ही विजयी हुए, तथापि इन्होंने उस समय उग्रमूर्ति धारण की। यह देखकर गौड़स्वामी बड़े दुःखित हुए और उन्होंने विशुद्धानंद को समझाया। तब से विशुद्धानंद विश्वरूप स्वामी को अपने बड़े भाई के समान समझने लगे और उनकी बड़ी भक्ति करते थे।

गौड़स्वामी का परलोकवास होने पर गुरु की आज्ञा से विशुद्धानंद ही गद्दी पर बैठे। इनके समय में इनके समान पंडित दूसरा नहीं था। दूर-दूर देशों के दार्शनिक इनके यहां विचार करने के लिए आते थे। सन् १८९८ ई० में स्वामी जी का परलोकवास हुआ।

विश्रवस्—कुबेर और रावण के पिता। इनके पिता का नाम महर्षि पुलस्त्य था।

विश्वकर्मा—(१) स्वायम्भुव मन्वंतर का शिल्पप्रजापति। भारतीय साहित्य में इसकी प्रसिद्धि एक शिल्पशास्त्रज्ञ के रूप में है। कहीं-कहीं इसका त्वष्टृ या त्वष्टा के नाम से भी उल्लेख हुआ है। वेदों में इसे एक देवता के रूप में मान्यता प्राप्त है और वैदिक साहित्य में इसको सर्वद्रष्टा कहा गया है। ब्राह्मण-ग्रंथों में इसे प्राणिसृष्टि का जनक और विधाता कहा गया है। देवों के समस्त अस्त्र-शस्त्रों, विमानों और आभूषणों को इसीने बनाया। इंद्रप्रस्थ, द्वारका, इंद्रलोक, वृंदावन और हस्तिनापुर जैसे महान् नगरों का निर्माण भी इसीने किया।

इसकी चार पत्नियों के नाम हैं—कृति (आकृति),

रति, प्राप्ति और नन्दी। रति से मनु चाक्षुष, प्राप्ति से शम और नन्दी से काम तथा हर्ष नामक पुत्र उत्पन्न हुए। इसकी चार पुत्रियों के नाम थे—वर्हिष्मती, संज्ञा, छाया और तिलोत्तमा। इसने शिल्प-शास्त्र पर संहिता का तथा अन्य लक्षणग्रंथों का निर्माण किया था, जिनमें से केवल 'विश्वकर्माशिल्प-शास्त्र' ही सम्प्रति उपलब्ध है।

(२) विश्वकर्मन् का एक ब्राह्मण अवतार। अपने पूर्वजन्म में इसने घृतस्वि अप्सरा को शूद्रकुल में जन्म लेने का शाप दिया था, जिसके अनुसार वह एक ग्वाले की कन्या बनी। इसे भी एक ब्राह्मण वंश में जन्म प्राप्त हुआ। इस जन्म में ये दोनों पति-पत्नी बने। इन दोनों असवर्णों के संयोग से दर्जी, कुम्हार, स्वर्णकार, बढ़ई आदि शिल्प, स्थापत्य तथा तंत्रविद्या की ज्ञाता जातियों की उत्पत्ति हुई। यही कारण है कि ये जातियां आज भी स्वयं को विश्व-कर्मा की वंशज बताती हैं।

विश्वनाथसिंह जू देव—रीवां नरेश महाराजा विश्वनाथ-सिंह जू देव का जन्म १७८६ ई० में हुआ। इनके पिता का नाम महाराज जयसिंह था, जो कि कवि होने के साथ-साथ बड़े साहित्यानुरागी थे। इनके पुत्र महाराज रघुराजसिंह जी कवि एवं साहित्यप्रेमी थे। विश्वनाथसिंह रामभक्ति संप्रदाय के रासिकशाखा के कवि थे। प्रियादास और स्वामी रामचरणदास इनकी काव्य-साधना के प्रेरणा-स्रोत थे। रामभक्ति की सगुण और निर्गुण दोनों धाराओं पर इन्होंने काव्य-रचना की। इनके द्वारा विरचित छयालीस ग्रंथों का अब तक पता लग चुका है, जो कि मौलिक और टीका, दोनों रूप में विद्यमान हैं। उनमें 'व्यंग्यार्थ-चंद्रिका', 'संगीत रघुनंदन', 'विश्वनाथप्रकाश', 'आनंद रघुनंदन नाटक', 'आनंद रामायण' और 'उत्तम काव्यप्रकाश' आदि नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी रच-नाओं से ज्ञात होता है कि ये संगीतशास्त्र, काव्य-शास्त्र, काव्य, नाटक, वेदांत और धनुर्विद्या आदि अनेक विषयों के पारंगत विद्वान् थे। रामभक्ति शाखा के प्रवर्तन के लिए इनकी कृतियां अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुईं (डॉ० भगवतीप्रसादसिंह—राम-भक्ति में रसिक संप्रदाय)।

विश्वम्भरनाथ—पंडित विश्वंभरनाथ जी का जन्म सन् १८३८ ई० की ७वीं नवंबर को दिल्ली में हुआ था। दिल्ली के काश्मीरी ब्राह्मणों में आपके पिता पंडित बदरीनाथ जी बड़े प्रतिष्ठित और धनाढ्य थे। ब्राह्मण होकर भी उस समय की प्रथा के अनुसार पंडित विश्वंभरनाथ जी ने प्रारंभिक शिक्षा फारसी में पाई। सबसे पहले पं० विश्वंभरनाथ जी ने एक मकतब में पढ़ा और विद्याध्ययन की ओर बड़ी अभिरुचि दिखाई। थोड़े ही समय के बीच में आपने फारसी के अनेक अच्छे-अच्छे ग्रंथ पढ़ डाले। इस समय नयी दिल्ली कॉलेज की ओर नवयुवकों का ध्यान आकर्षित हो रहा था। कुछ लोग उसमें शिक्षा भी पा चुके थे। परंतु कॉलेज खैराती था, इस कारण अनेक लोग पहले उसमें पढ़ने के लिए अपने बालक को भेजने में हिचकते थे, तो भी सन् १८४३ ई० में विश्वंभरनाथ जी के पिता ने इनको उक्त कॉलेज में भर्ती कराया। इस कॉलेज में उन दिनों दो विभाग थे। एक विभाग में फारसी और दूसरे विभाग में अंग्रेजी की शिक्षा दी जाती थी। पंडित जी ने पहले चार वर्ष तक कॉलेज में फारसी और अरबी की शिक्षा प्राप्त की। इनके अध्यापक इनकी योग्यता से बहुत प्रसन्न रहा करते थे। इस विभाग में कई पुरस्कार पाकर सन् १८४७ ई० में इन्होंने अंग्रेजी विभाग में प्रवेश किया। इस विभाग में भी आपने प्रशंसनीय उन्नति की। ६ वर्षों में विश्वंभरनाथ जी ने अंग्रेजी साहित्य, विज्ञान और इति-हास का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। शेक्सपियर, मिल्टन, पोप, ड्राइडन, बेकन, एडिसन, ह्यूम, एडम-स्मिथ, अवरक्रांबी, पैले, मेकाले और एलफिस्टर आदि के अनेक ग्रंथ इन्होंने पढ़ डाले।

सन् १८५३ ई० में इन्होंने कॉलेज छोड़ा। जिला आरा की जजी में उस समय एक अनुवादक की जरू-रत पड़ी। दिल्ली कॉलेज के प्रधानाध्यापक ने इस पद के लिए विश्वंभरनाथ जी को नामजद किया।

पंडित जी दिल्ली में कितने ही प्रकार के प्रलोभनों के रहते, संसारयात्रा निबाहने के लिए इच्छा न रहने पर भी दुःखसहित दिल्ली छोड़ने पर विवश हुए। जजी में अनुवादक का काम आपने बड़ी योग्यता से संपादन किया और शीघ्र ही जज के प्रियपात्र बन गए। जज साहब उनके पढ़ने-लिखने की योग्यता देखकर बहुत प्रसन्न हुए। जज के साथ बैठकर ये प्रायः शेक्सपियर की रचनाएं पढ़ा करते थे। एक दिन संध्या के समय बैठे-बैठे उस उदारमना जज ने कहा—आप इंगलैंड जाकर विशेष शिक्षा प्राप्त करें, मैं आपको विलायत आने-जाने और पढ़ाई का खर्च

दूंगा। परंतु आपने बड़े नम्र भाव से इंग्लैंड जाना अस्वीकार कर दिया। सन् १८५६ ई० में आपके पिता का शरीरांत हुआ। आपको आगरा छोड़कर पुनः दिल्ली आना पड़ा। इसके थोड़े ही दिनों बाद आगरा की जजी में भाषांतरकर्ता नियुक्त हुए। इसी बीच में सन् १८५७ ई० का बलवा हुआ। बलवे के समय आप पुलिस-विभाग में लक्सी के पद पर थे। परंतु यह पद आपको पसंद नहीं था। ज्योंही देश में पुनः शांति स्थापित हुई, त्योंही आप सदर-दिवानी अदालत में बेंच रीडर नियुक्त हुए। सन् १८५६ ई० में आप कानून की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और पुनः अनुवाद विभाग में काम करने लगे।

अनंतर जिस दिन से संयुक्त प्रदेश की अदालत खुली उसी दिन से आपने वकालत प्रारंभ की। अंग्रेजी और कानून में आपको पूर्ण ज्ञान तो था ही, आपने अपनी स्वाभाविक प्रतिभा के प्रभाव से इस कार्य में बहुत जल्दी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। २० वर्ष तक आपने वकालत की। आपके समकालीन वकील सुप्रसिद्ध पं० अयोध्यानाथ और हनुमान्प्रसाद थे। संयुक्त प्रांत में देशी जज नियुक्त करने की चर्चा चलने पर उस समय उस पद के लिए आपका भी नाम लिया गया था। सन् १८६३ ई० से शरीर की गड़बड़ी के कारण वकालत का काम आपने बहुत ही कम कर दिया था।

पंडित जी लोकहित के कामों में योग दिया करते थे। आपने शांति एवं गंभीरता के साथ देश की बहुत सेवा की। पं० अयोध्यानाथ जी से पहले आप कांग्रेस में शामिल हुए थे। सन् १८८२ ई० की कांग्रेस जो प्रयाग में हुई थी, उसकी स्वागतकारिणी कमेटी के आप सभापति थे। शारीरिक निर्बलता रहते हुए भी उस समय आपकी स्पीच बड़े मार्के की हुई थी। इसके अनंतर आप प्रांतीय छोटे लाट की आईन सभा के सदस्य चुने गए। पश्चात् छह वर्ष तक आप भारत के बड़े लाट की सुप्रीम कौंसिल में इस प्रांत की ओर से प्रतिनिधि होकर रहे। बड़े लाट की सभा में आपने जो व्याख्यान दिए वे आपके पक्के स्वाधीन तथा बुद्धिमत्तापूर्ण विचारों के ज्वलंत दृष्टांत हैं। जिस समय 'राजद्रोह' संबंधी पांडुलिपि सुप्रीम कौंसिल के सामने स्वीकृति के लिए रखी गई, उस समय आपने ऐसे व्याख्यान दिए जिनकी सर्वत्र सराहना हुई।

बड़े लाट की कौंसिल से लौटने के पश्चात् आपने नेत्रों की रुग्णता के कारण एकांत सेवन करना आरंभ किया। परंतु अत्यंत आवश्यकता पड़ने पर और लोगों के विशेष अनुरोध करने से आपको समय-समय पर कुछ कहना भी पड़ता था। कलकत्ता यूनिवर्सिटी की कॉन्वेंशन वाली लार्ड कर्जन की अशांतिकारिणी स्पीच का प्रतिवाद करने के लिए प्रयाग में जो सभा हुई थी, उसके सभापति आप बनाए गए थे। काशी की कांग्रेस में भी आप उपस्थित थे और एक छोटी-सी वक्तृता भी आपने वहां दी थी।

पंडित विश्वंभरनाथ जी का स्वभाव अत्यंत सरल और भला था। प्रभाव डालने वाली कहावतें, छोटे-छोटे किस्से, हंसी के निर्दोष चुटकुले तथा साहित्यालंकारों से युक्त शुद्ध उर्दू बोलने में आप अद्वितीय थे। इतिहास पर आपका प्रगाढ़ प्रेम था और दिल्ली की पुरानी बातों के तो आप मानो अटूट भंडार थे। दिल्ली के प्रसिद्ध उर्दू शायर जौक, गालिब और मौमिन आदि आपके समकालीन थे और आप छात्रावस्था में इन लोगों के मुशायरे में सम्मिलित होकर वहां का आनंद लेते थे। पंडित जी ने अपने जीवन-काल में अंग्रेजी और उर्दू के असंख्य ग्रंथ पढ़ डाले थे और पुस्तकावलोकन का व्यसन आपका अंत तक कम नहीं हुआ था। आप समाचारपत्रों को निरंतर पढ़ा करते थे। मान और नाम पाने की आपने कभी इच्छा नहीं की, परंतु संयुक्त प्रांत में जितना मान और नाम आपका हुआ उतना और किसीका नहीं। क्या नवयुवक, क्या वृद्ध, क्या हिंदू, क्या मुसलमान—सब आपका अत्यंत सम्मान करते थे। विलायत जाने से प्रथम संयुक्त प्रांत के प्रजाप्रिय छोटे लाट सर जेम्स डिगिस लाटूस पंडित जी के घर पर मिलने के लिए गए थे। स्वभाव और रहन-सहन की सरलता, विविध विषयों के विशाल ज्ञान तथा अनुभव, चरित्र की शुद्धता तथा सत्यप्रियता के कारण पं० विश्वंभरनाथ जी सबके आदरणीय थे। चाहे उनके जीवन में कोई विचित्र घटना न हो, परंतु ज्ञानार्जन के लिए उनका निरंतर प्रयत्न, उनकी सत्यप्रियता, उनके चरित्र की पवित्रता और उनका पक्का स्वदेश-प्रेम दूसरों के लिए आदर्श हैं।

विश्वामित्र—विख्यात महर्षि। विश्वामित्र का जन्म राजकुल में हुआ था। वे गाधिराज के पुत्र थे। राजवंश में जन्म लेकर भी वे बड़ी कठोर तपस्या करके महर्षि हो गए थे।

एक बार राजा विश्वामित्र बहुतसी सेना लेकर वसिष्ठ के आश्रम में गए थे। वसिष्ठ ने अपनी धेनु की सहायता से राजा विश्वामित्र तथा उनके साथियों को खूब खिलाया-पिलाया। राजा विश्वामित्र ने धेनु का यह प्रभाव देखकर वसिष्ठ से उस धेनु की याचना की। परंतु वसिष्ठ ने धेनुदान करने के लिए अपने को असमर्थ बताया। तब राजा विश्वामित्र बलपूर्वक उसे ले जाने लगे। वसिष्ठ की आज्ञा से कामधेनु ने असंख्य सेना की सृष्टि की जिससे विश्वामित्र परास्त हो गए। तदनंतर विश्वामित्र के पुत्रों ने ऋषि पर आक्रमण किया, परंतु वे भी ऋषि के शाप से नष्ट हो गए। तब विश्वामित्र ने समझा कि ब्राह्म और क्षात्र बल में कौन श्रेष्ठ है। अतएव वे अपने एक पुत्र को राज्य देकर दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिए वन गए। वहां जाकर उन्होंने महादेव की आराधना की और उनसे धनुर्वेद प्राप्त किया। धनुर्वेद प्राप्त करके विश्वामित्र ने पुन: वसिष्ठ पर आक्रमण किया, परंतु वसिष्ठ के ब्रह्मदंड के सामने विश्वामित्र को हार खानी पड़ी। तब विश्वामित्र ने समझा कि योगबल के सामने अस्त्रबल कोई चीज नहीं है। अत: राज्य छोड़कर वे ब्राह्मणत्व लाभ के लिए तपस्या करने लगे। दक्षिण दिशा की ओर जाकर वे कठोर तपस्या करने लगे। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उन्हें राजर्षि का पद दिया। इसी समय राजा त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग जाने की इच्छा से एक यज्ञ करना चाहते थे। अत: वे वसिष्ठ के यहां गए। वसिष्ठ ने यज्ञ कराना अस्वीकार किया। तब राजा त्रिशंकु अपने गुरुपुत्रों के यहां गए, परंतु गुरुपुत्रों ने भी इस कार्य में अपने को असमर्थ बतलाया। अगत्या राजा त्रिशंकु को राजर्षि विश्वामित्र के यहां जाना पड़ा। विश्वामित्र त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग में भेजने के लिए तैयार हुए। इसलिए विश्वामित्र और देवताओं में विवाद उत्पन्न हुआ। इस विवाद में विश्वामित्र को नीचा देखना पड़ा। आधे मार्ग में नक्षत्रमंडल में ही त्रिशंकु को ठहरना पड़ा। इस प्रकार दक्षिण दिशा में तपस्या में विघ्न होने के कारण विश्वामित्र पश्चिम की ओर जाकर तपस्या करने लगे। परंतु वहां भी विश्वामित्र को शुन:शेप के कारण अपने पुत्रों को शाप देना पड़ा। तदनंतर ब्रह्मा के वर से ऋषित्व प्राप्त करके विश्वामित्र ब्रह्मऋषि बनने के लिए कठिन तपस्या करने लगे। इसी बीच विश्वामित्र के औरस और मेनका नाम की अप्सरा के गर्भ से शकुंतला का जन्म हुआ। इंद्रियलोलुपता के कारण तपस्या भंग होने से विश्वामित्र बड़े दु:खी हुए और उन्होंने उस दिशा को भी छोड़ दिया। वहां से उत्तर दिशा में आकर हिमालय पर्वत के समीप कौशिकी नदी के तीर पर तपस्या करने लगे। वहां ब्रह्मा के वर से वे ब्रह्मर्षि हो गए। उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिए देवराज इंद्र ने रंभा नाम की अप्सरा को भेजा। विश्वामित्र ने उसे शाप देकर पत्थर बना दिया। परंतु उस स्थान पर भी विश्वामित्र जी महाराज नहीं ठहर सके। शाप देने के हेतु इनकी तपस्या में हानि हुई। अतएव पूर्व दिशा में जाकर वहां तपस्या करने लगे। वहां उन्हें तप:सिद्धि प्राप्त हुई। देवताओं सहित आकर ब्रह्मा ने उन्हें ब्राह्मण बनाया। अनंतर वसिष्ठ के साथ भी उनकी मित्रता हो गई। अयोध्या के राजा हरिश्चंद्र की परीक्षा लेने के लिए इन्होंने उसे बड़ा कष्ट दिया। विश्वामित्र अपने यज्ञ-विघ्नों के नाश के लिए दशरथ से रामचंद्र को मांग लाए थे। दशरथ की आज्ञा से राम-लक्ष्मण को लेकर ताड़का के वन में आए। महर्षि ने राम को बला और अतिबला अस्त्रविद्या की शिक्षा दी। इसी मंत्रबल से राम ने ताड़का का नाश किया था। ताड़कावध होने के अनंतर विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को लेकर मिथिलाधिपति जनक के यहां गए थे।

(रामायण)

विष्णु—हिंदुओं के प्रधान तीन देवताओं में से एक देवता। इनके ऊपर सृष्टि की रक्षा का भार है। प्रजापति कश्यप के औरस और अदिति के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई है। इनकी पत्नी का नाम लक्ष्मी है। ये सृष्टि के कल्याण के लिए युग-युग में उत्पन्न होते हैं। पुराणों में इनके दस अवतारों की बात लिखी है।

विष्णुपुर—लंबे समय तक यह नगर मल्लों द्वारा शासित मल्लभूमि (पहलवानों का देश) की राजधानी है। इसका नामकरण मल्लों के सर्वोच्च देवता विष्णु के नाम पर हुआ है। रघुनाथमल्ल ने प्रद्युम्नपुर को अपनी राजाधानी बनाया था। किंतु जगतमल्ल ने उसे विष्णुपुर में स्थापित किया। विष्णुपुर नगर वहां निर्मित विशाल दुर्ग मल्लराजाओं के वैभव का परिचायक आज भी विद्यमान है। विशाल बंगाल पर हिंदू राज्य के संस्थापक के रूप में मल्लों का इतिहास अत्यंत ही उज्ज्वल एवं ओजस्वी है। ये शैव धर्मानु-

यायी थे। इनके द्वारा अनेक भव्य एवं विशाल मंदिरों का निर्माण हुआ। इनमें मल्लेश्वर महादेव का मंदिर सर्वाधिक प्राचीन है। अपने आकार-प्रकार की दृष्टि से विष्णुपुर के ये मंदिर शिल्प एवं स्थापत्य की दृष्टि से सर्वथा अनुपम हैं। श्यामराय का मंदिर बंगदेशीय पंचरत्न शैली का एक विशिष्ट मंदिर है। मंदिरों की भित्तियों पर अंकित महाकाव्यों के दृश्य अत्यंत भव्य एवं कला के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। वीर हम्मीर ने विष्णुपुर के दुर्ग के विशाल पाषाण-तोरण, दलमर्दन नामक एक बहुत बड़ी तोप और रासमंच के मंदिर का निर्माण कराया था। यह विष्णुपुर संप्रति बंगाल के बांकुड़ा जिले में स्थित है।

विष्णुशर्मा—पंचतंत्र' नामक ग्रंथ के रचयिता।

विष्णुसिंह—बूंदी के राजा। इनको लोग प्रायः विशनसिंह कहा करते थे। इनके पिता का नाम अजितसिंह था। पिता के मारे जाने के समय ये बालक थे। अतएव इनके पितामह उमेदसिंह ने, जो उस समय तीर्थयात्रा के लिए गए हुए थे, एक धाभाई को राज्य-शासन की सुव्यवस्था का उपदेश देकर बालक राजा का अभिभावक नियत किया।

बालक राजा को लोग अपने-अपने मत में ढालने के लिए विशेष प्रयत्न किया करते हैं। यह एक स्वाभाविक नियम-सा हो गया है। राज्य के शुभचिंतक राजा को सदुपदेश देते हैं और वे उसे प्रजारंजन में लगाकर लोक-कल्याण करना चाहते हैं। मतलबी लोग राजा को अपने ढंग से ढालने का प्रयत्न करते हैं। इस द्वंद्वयुद्ध में अंत में विजय मतलबियों की ही होती है। विशनसिंह को भी यारों ने अपने फंदे में फांस लिया। उन लोगों ने समझ लिया था कि उमेदसिंह के समान चतुर राजनीतिज्ञ की देख-रेख में रहने से अवश्य ही विशनसिंह से हम लोगों का स्वार्थ सिद्ध नहीं हो सकेगा। अतएव जिस प्रकार हो, इन पितामह और पौत्र में कलह उत्पन्न करा देने से ही अपनी इष्टसिद्धि हो सकेगी। इसी प्रकार के विचार वालों ने षड्यंत्र करके और विशनसिंह को समझा-बुझाकर अपने स्वार्थसाधन का मार्ग साफ कर लिया। विशनसिंह कुछ पढ़े-लिखे तो थे ही नहीं, अतएव वे उनके कहने में आ गए और अपने पितामह से एक सेवक द्वारा कहला भेजा कि आप बूंदी छोड़कर काशी में जाकर रहिए। उमेदसिंह के साथ विशनसिंह ने जो यह दुर्व्यवहार किया था इसका संवाद शीघ्र राजपूताने में फैल गया। इधर उमेदसिंह जाने की तैयारी करने लगे। उसी समय आमेरराज प्रतापसिंह का दूत उनकी सेवा में पहुंचा और उसने निवेदन किया कि जयपुर के राजा ने पुत्रभाव से प्रार्थना की है कि आप राजधानी में पधारकर हम लोगों को पवित्र करें। उमेदसिंह जी जयपुर गए।

महाराज प्रतापसिंह ने उमेदसिंह जी का जयपुर में बड़ा आदर किया। प्रतापसिंह को विशनसिंह पर बड़ा क्रोध आया था। उन्होंने श्री उमेदसिंह जी को कहा—यदि आप अब भी राज्य-शासन करना चाहते हों तो हमें आज्ञा दें, हम इसी समय अपने बाहुबल और आमेर की समस्त सेना की सहायता से कोटा और बूंदी दोनों राज्यों को जीतकर आपके चरणों में अर्पित कर दें। पवित्रात्मा उमेदसिंह जी ने उत्तर दिया कि ये दोनों राज्य तो हमारे ही हैं। एक में हमारा भतीजा राज्य करता है और दूसरे में हमारा पोता।

उमेदसिंह के बूंदी से चले जाने के थोड़े ही दिनों के बाद प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मंत्री जालिमसिंह कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए। उन्होंने विशनसिंह को समझाया और अपने पितामह से क्षमा-याचना करने के लिए उद्यत किया। जालिमसिंह ने उमेदसिंह जी को आमेर से बूंदी ले आने के लिए लाला जी पंडित को भेजा।

महात्मा उमेदसिंह जी शीघ्र ही बूंदी चले आए। दोनों के सम्मिलन से जैसे दृश्य देखने की संभावना की गई थी उसे लोगों ने प्रत्यक्ष देखा। उमेदसिंह ने अपने पोते का आलिंगन करके और उसके हाथ में तलवार देकर कहा—यह तलवार लो। मैं तुम्हारा अनिष्ट चाहने वाला नहीं हूं। यदि तुम्हारा विश्वास है कि मैं तुम्हारा अशुभचिंतक हूं तो इसी तलवार से मेरे जीवन को समाप्त कर दो। मुझे वृथा कलंकित न करना। विशनसिंह चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे और उन्होंने क्षमा प्रार्थना की। उमेदसिंह ने शीघ्र ही उसे क्षमा कर दिया। श्री उमेदसिंह जी के परलोकवास करने पर विशनसिंह राज्यशासन करने लगे।

अंग्रेजी गवर्नमेंट की सहायता करने के कारण इन्हें होलकर का कोपभाजन भी बनना पड़ा। सबसे प्रथम इन्होंने ही अंग्रेजी गवर्नमेंट से संधिबंधन किया

था। १७ वर्ष तक इन्होंने राज्य किया था। सन् १८२१ ई० के जुलाई महीने में इनका परलोकवास हुआ। (टाड्स राजस्थान)

वीजलदेव—ये यदुवंशी शालिवाहन के प्रथम पुत्र थे। एक समय सिरोही देवरा मानसिंह ने रावल शालिवाहन को अपनी कन्या देने का प्रस्ताव करके उनके पास नारियल भेजा। शालिवाहन अपने ज्येष्ठ कुमार वीजलदेव को राज्य-भार अर्पण करके आप ब्याह करने के लिए सिरोही चले गए। उस समय वीजलदेव के धाभाई ने राज्य में यह संवाद प्रचारित करा दिया कि शालिवाहन बाघ का शिकार करते मारे गए। इस संवाद के प्रचारित होने पर उस धाभाई ने वीजलदेव को विधिवत् राज्य पर अभिषिक्त किया। वीजलदेव भी अपने धाभाई के कथनानुसार ही काम करता था। रावल शालिवाहन ने सिरोही से आकर देखा कि उनका पुत्र राजशक्ति धारण करके दृढ़ भाव से सिंहासन पर बैठा है। पुत्र वीजलदेव ने पिता की कुछ भी भक्ति नहीं दिखाई। उसने कहला दिया कि जयसलमेर के सिंहासन पर आपका अब कोई अधिकार नहीं है, अतः जहां आपकी इच्छा हो, आप जा सकते हैं। रावल शालिवाहन ने अपनी प्रजा को भी उसी राजा में जब अनुरक्त देखा तब वे वहां से चल दिए। वीजलदेव अपने पिता को निकालकर बहुत दिनों तक राज्य-सुख नहीं भोग सके। एक समय किसी द्वेष के कारण इन्होंने अपने धाभाई पर तलवार चला दी, धाभाई ने उसी प्रकार का उत्तर दिया। इससे वीजलदेव बहुत लज्जित हुआ और उसने आत्महत्या कर ली। (टाड्स राजस्थान)

वीतहव्य—एक राजा, जो हैहयवंशीय राजा तालजंघ का पुत्र, राजा जयध्वज का पौत्र और राजा कार्तवीर्य अर्जुन का प्रपौत्र था। इसके सौ भाई थे। महर्षि परशुराम द्वारा क्षत्रिय-संहार के समय यह अपने राज्य को त्यागकर चला गया था। रास्ते में इसको परशुराम के बाणों से आहत अपना पिता तालजंघ मिला। उसे भी साथ लेकर यह हिमालय प्रदेश में जाकर छिप गया। कालांतर में यह वहां से लौटा और तब उसने महिष्मती नगरी की स्थापना की। अयोध्या को भी इसने विजित किया। काशी राजाओं से इसका लंबे समय तक युद्ध चलता रहा। भृगु ऋषि की कृपा से यह ब्रह्मर्षि बना। इसकी दस पत्नियां बताई गई हैं तथा एक-एक से दस पुत्रों का जन्म होना कहा गया है। गृत्समद इसीका पुत्र था। यह भृगुवंशीय था और वीतहव्य आंगिरस से इसकी अमित्रता बताई गई है।

वीरकेतु—पांचालराज के पुत्र। ये महाभारत के युद्ध में पांडवों की ओर से युद्ध करते थे। इन्होंने उस युद्ध में बड़ी वीरता दिखाई थी। परंतु अंत में द्रोणाचार्य के हाथ से मारे गए।

बुधसिंह (नामान्तर : बुधसिंह)—बूंदी के एक राजा का नाम। ये अनिरुद्धसिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे। पिता की मृत्यु के अनंतर बुधसिंह को बूंदी का सिंहासन प्राप्त हुआ। उसी समय बादशाह औरंगजेब का जीवनांत हो गया। यद्यपि बादशाह औरंगजेब शाहआलम को ही अपना अधिकारी बना गए थे, तथापि आजिमशाह भी दक्षिणी सेना की सहायता से राज्य पाने के लिए प्रयत्न करने लगा। धौलपुर के रणक्षेत्र में दोनों ने अपने भाग्य की परीक्षा करना निश्चित किया। बुधसिंह इस युद्ध में शाहआलम के साथ थे। यह कहना कुछ अनुचित नहीं है कि बुधसिंह की वीरता ने ही शाहआलम के भाग्य को चमका दिया था। उस युद्ध में बुधसिंह ने प्रधान नेता के पद पर रहकर बड़ी वीरता प्रदर्शित की थी।

जाजौ के युद्ध में भी हाड़ा वीर बुधसिंह ने असीम वीरता प्रदर्शित की थी, इससे प्रसन्न होकर शाहआलम ने इन्हें राव राजा की उपाधि दी थी। शाहआलम के स्वर्गवासी होने पर फर्रुखसियर और दो सैयदों से युद्ध छिड़ा। जब बुधसिंह ने जान लिया कि अब फर्रुखसियर का उद्धार होना कठिन है तब वे आत्मरक्षा के लिए राजधानी छोड़कर भाग गए।

महाराव बुधसिंह ने आमेर के महाराज जयसिंह की भगिनी को ब्याहा था। महाराज जयसिंह की यह बहन इस शर्त के साथ बुधसिंह को ब्याही गई थी कि उसके गर्भ से जो पुत्र होगा वही सिंहासन पाएगा। परंतु उसके कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। अतः रानी ने महाराज बुधसिंह की अनुपस्थिति में अपने गर्भवती होने का संवाद प्रचारित किया और यथासमय दूसरे के पुत्र को लेकर अपने पुत्र होने का भी संवाद प्रचारित करा दिया। बुधसिंह जब लौटकर राजधानी में आए तब वह लड़का उनकी गोद में दिया गया। महाराज को इस चक्र को समझने में देर नहीं लगी। उन्होंने यह वृत्तांत महारानी के भाई जयपुर के महाराज जयसिंह को लिख भेजा। बूंदी जाकर जयसिंह

ने इस बात की पूछताछ की। रानी इससे बहुत बिगड़ीं और उन्होंने जयसिंह पर तलवार उठाकर वार करना चाहा। जयसिंह बच गए। उसी दिन से जयसिंह ने महाराज बुधसिंह को गद्दी से उतारने की ठान ली। इसके लिए जयसिंह ने चक्र भी रचा, जिसका फल भी हुआ। महाराज बुधसिंह ने पैतृक राज्य का उद्धार करने के लिए अनेक बार प्रयत्न भी किए थे। परंतु वे बराबर असफल होते गए। इससे राजधानी छोड़कर वे अपने ससुराल में रहने लगे और वहीं इनका शरीरांत हुआ। महाराज बुधसिंह उमेदसिंह और दीपसिंह नामक दो पुत्र छोड़ गए थे।

(टाड्स राजस्थान)

बुद्धदेव (नामान्तर : बुद्धदेव)—विख्यात धर्मप्रचारक और भगवान् का दसवां अवतार। प्राचीन समय से हिमालय पर्वत की तराई में कपिलवस्तु नामक एक नगर था। उस नगर में शाक्यवंशीय राजा शुद्धोदन की राजधानी थी। इस समय कपिलवस्तु 'कोहना' नाम से प्रसिद्ध है।

महाराज शुद्धोदन की पांच महारानियां थीं, उनमें मायादेवी सर्वप्रधान थी। मायादेवी के समान रूपवती और गुणवती दूसरी रानी नहीं थी। महाराज शुद्धोदन उसके अलौकिक रूप पर इतने मुग्ध थे, कि एक क्षण के लिए भी उसको अपनी आंखों की ओट में नहीं रहने देते थे। महाराज केवल उसकी सुंदरता पर ही लट्टू थे, यह बात नहीं है। उसकी कर्त्तव्यप्रियता और आत्मसंयम, धर्मनिष्ठा आदि सद्गुणों को देखकर भी महाराज स्वर्गीय सुख का अनुभव करते थे। यद्यपि महाराज शुद्धोदन अपनी सुगृहिणी के सद्गुणों से अत्यंत सुखी थे, तथापि एक मनोहर आशा उनकी आंखों के सामने नाचा करती थी। इसी कारण उनके इतने सुखी होने पर भी उन्हें शांति नहीं थी। बीच-बीच में उनके सभी सुख फीके पड़ जाते थे। सती स्त्रियां कभी भी, यहां तक कि एक क्षण भी अपने पति का दुःख नहीं देख सकतीं, स्वामी की निंदा नहीं सुन सकतीं। स्वामी को सुखी करने के लिए ही वे सदा प्रयत्न किया करती थीं।

एक दिन मायादेवी ने महाराज को दुःखी देखकर पूछा—नाथ! आजकल आपको बहुत दुःखी देखती हूं। शरीर तो अच्छा है? महाराज ने मायादेवी को उत्तर दिया—प्रिये! यद्यपि मैं शरीर से अच्छा हूं, परंतु एक मानसिक कष्ट से मैं व्याकुल हो रहा हूं। यदि पुन्नामक नरक से मेरा उद्धार नहीं हो सका, तो इस वैभव और राज्य से क्या लाभ? मायादेवी ने स्वामी से उत्तर सुनकर जब देखा कि इस दुःख को दूर करना मेरी शक्ति से बाहर है, तब उन्होंने पति से कहा—महाराज! जो वाक्य के द्वारा प्रकाशित नहीं किया जाता है किंतु जिसके द्वारा वाक्य प्रकाशित होता है आप उसकी आराधना करें। मन के द्वारा जिसका चिंतन नहीं हो सकता परंतु जिससे मन चिंतन करता है आप उसकी आराधना करें। जो चक्षु के द्वारा नहीं देखा जा सकता किंतु जिसके द्वारा चक्षु देखते हैं आप उसकी आराधना करें। जो कानों द्वारा नहीं सुना जा सकता किंतु जिसकी सहायता से कान सुनते हैं आप उसकी आराधना करें। आपकी कामना सिद्ध होगी। मायादेवी के उपदेश से राजा को ज्ञान हुआ और उसी समय से वे परब्रह्म की उपासना करने लगे।

भगवान् भक्तों की अभिलाषा सर्वदा पूर्ण करते हैं। एक दिन मायादेवी अपने प्रमोदगृह की छत पर सखी के साथ बातचीत करती हुई सो गईं। वहीं उन्होंने एक विलक्षण स्वप्न देखा। एक श्वेत छः दांत का सुंदर हाथी सूंड़ में एक श्वेत कमल लिए आया और शनैः-शनैः रानी के पेट में घुस गया। रानी की निद्रा खुली, बहुत प्रसन्न होकर उन्होंने अपने स्वप्न का वृत्तांत राजा से कहा। महाराज ने उसी समय शकुनज्ञ ज्योतिषियों को बुलवाया। ज्योतिषियों ने स्वप्न सुनकर कहा—महाराज! एक महापुरुष मायादेवी के गर्भ से उत्पन्न होने वाला है। वृद्धावस्था में पुत्र होने की संभावना देखकर महाराज और महारानी दोनों बहुत प्रसन्न हुए।

यथासमय मायादेवी का गर्भ पूर्ण हुआ। उसी समय उन्होंने एक दिन अपने पिता के घर जाने की पति से आज्ञा मांगी। राजा अपनी गर्भवती पत्नी का मनोरथ पूर्ण करने के लिए सर्वदा प्रस्तुत रहा करते थे। इसी कारण उनकी इच्छा न रहने पर भी उन्होंने महारानी का कहना मान लिया। शुभ दिन और शुभ मुहूर्त में यात्रा हो इसलिए राजा ने ज्योतिषियों से मुहूर्त निकलवाया। उसी दिन पिता के घर जाने के लिए मायादेवी प्रस्थित हुईं। महारानी प्राकृतिक सौंदर्य को देखना बहुत अधिक पसंद करती थीं। जिस समय लुंबिनी नामक उपवन के पास से उनकी सवारी जा रही थी उस समय उन्होंने वन की शोभा

देखने के लिए रथ रुकवाया और वे वहां उतर पड़ीं। उस वन में बहुत देर तक इधर-उधर घूमने से थककर महारानी एक वृक्ष के नीचे बैठकर विश्राम करने लगीं। उसी समय उन्हें प्रसव-वेदना होने लगी। वहीं महारानी ने एक सुलक्षण पुत्र उत्पन्न किया। महाराज इस सुसंवाद को सुनते ही प्रसूति को राजमहल में ले आए। राजभवन में एक स्वर्गीय आनंद की तरंगें लहराने लगीं।

महाराज शुद्धोदन पुत्र को देखकर बहुत प्रसन्न हुए थे, परंतु वह प्रसन्नता एक विशेष घटना से किरकिरी हो गई। पुत्रजन्म के सातवें दिन मायादेवी का स्वर्गवास हो गया।

नवजात शिशु दिनोंदिन बढ़ने लगा। महाराज ने अपने पुत्र का नामकरण और अन्नप्राशन संस्कार बड़े समारोह से किया। पुत्र के उत्पन्न होने से राजा और रानी की सब कामनाएं सिद्ध हुई थीं, इस कारण शुद्धोदन ने अपने पुत्र का नाम 'स्वार्थसिद्ध' रखा।

सिद्धार्थ अलौकिक बुद्धि के बल से थोड़े ही दिनों में समस्त विद्याओं के ज्ञाता हो गए। अन्यान्य बालकों के समान वे खेल-तमाशे में लगे रहना पसंद नहीं करते थे। समय पाते ही एकांत में जाकर वे ईश्वर-चिंतन में निमग्न हो जाते थे। एक दिन अपने कतिपय साथियों के साथ सिद्धार्थ गांव देखने गए। मार्ग में उन्होंने एक निर्जन वन देखा। साथियों को छोड़कर वे वहीं घूमने लगे। बहुत देर तक घूमने के कारण श्रांत होकर राजकुमार एक वृक्ष के नीचे बैठ गए। उपयुक्त॰ स्थान देखकर उनका चित्त ईश्वर-प्रेम में मग्न हो गया। राजा शुद्धोदन ने कुमार को नहीं देखा तब वे चारों ओर कुमार को ढुंढ़वाने लगे। उसी समय एक मनुष्य ने आकर कुमार का पता बतलाया। राजा स्वयं उस वन में आए और कुमार को उस अवस्था में देखकर चकित हो गए। बहुत आदमियों के आने के कोलाहल से राजकुमार का ध्यान भंग हो गया। पिता को पास खड़े देखकर वे लज्जित हुए और उन्हींके साथ घर लौट आए।

यौवनावस्था के प्रारंभ में पुत्र की ऐसा दशा देखकर शुद्धोदन ने शीघ्र ही कुमार का ब्याह कर देना निश्चित किया। विवाह के विषय में कुमार की सम्मति जानने के लिए राजा ने प्रधानमंत्री को आज्ञा दी। सिद्धार्थ ने सातवें दिन उत्तर देने के लिए कहकर मंत्री को विदा किया। 'विवाह करना चाहिए कि नहीं ?' इस विषय को लेकर छः दिनों तक विचार किया। अंत में यह हुआ कि वन में रहकर धर्मपालन करना कुछ कठिन नहीं है। परंतु संसाराश्रम में रहकर अनेक पापमय प्रलोभनों से अपनी रक्षा करके धर्मपालन करना अत्यंत कठिन है, तथापि गृही होकर हमें धर्म पालन करना ही पड़ेगा इसलिए विवाह करना ही उचित है। सातवें दिन सिद्धार्थ ने मंत्री से कहा—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र चाहे किसी की कन्या क्यों न हो, परंतु जो गुणवती होगी, उसीसे मैं अपना ब्याह करूंगा। जो कन्या गुण, सत्य और धर्म में बड़ी है वही हमारे लिए श्रेष्ठ है। जिस कन्या में ईर्ष्या नहीं है, जो सर्वदा सत्यवादिनी है, रूपवती और यौवनवती होने पर भी जिसे अपने रूपयौवन का अभिमान न हो, इसी प्रकार की कन्या से मैं ब्याह करूंगा।

मंत्री ने राजकुमार का अभिप्राय महाराज से कहा। राजकुमार ब्याह करना चाहते हैं, यह सुनकर महाराज शुद्धोदन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कुमार की अभिमत कन्या ढूंढ़ने के लिए ब्राह्मणों को नियत किया। एक ब्राह्मण ने आकर कहा—मैं कुमार के योग्य कन्या देख आया हूं। वह दंडपाणि शाक्य की कन्या है। अन्य ब्राह्मणों ने भी इसी प्रकार के संवाद दिए। किसीने एक, किसीने दो, किसीने तीन; इसी प्रकार कई कन्याओं का संवाद राजा ने पाया। सभी अपनी देखी कन्याओं की प्रशंसा करने लगे। यह देखकर मंत्री ने ब्राह्मणों से कहा—मैं चाहता हूं कि स्वयं कुमार ही गुणवती कन्या को पसंद कर लें, इसके लिए एक उपाय किया जाना चाहिए। सोना, चांदी, मूंगा आदि विविध रत्नों का अशोकभांड कुमार आमंत्रित कन्याओं को देंगे, उस समय जिस कन्या पर कुमार की दृष्टि पड़ेगी उसीका वरण किया जाएगा। इस बात को उचित जानकर महाराज शुद्धोदन ने राज्य में घोषणा करा दी कि आज के सातवें दिन कुमार सिद्धार्थ आमंत्रित कुमारियों को अशोकभांड देंगे। उस समय कुमारियों को उपस्थित होना चाहिए।

नियत दिन आ पहुंचा। कुमार रत्नसिंहासन पर बैठकर अशोकभांड बांटने लगे। इस समय कुमार के मानसिक भाव जानने के लिए महाराज ने वहां गुप्तचर नियुक्त किया। अशोकभांड बांटा जाने लगा। एक-एक कुमारी सिद्धार्थ के सामने खड़ी होती और उसकी सहचरी उसका गुणवंश आदि का वर्णन करती।

वर्णन के अंत में अशोकभांड दिया जाता ।

अशोकभांड का बांटा जाना समाप्त हो गया। इसी समय दंडपाणि की कन्या गोपा ने कुमार के समीप आकर अशोकभांड की प्रार्थना की। उस समय अशोकभांड समाप्त हो गया था। कुमार ने गोपा से कहा—सुंदरी ! तुम सबसे अंत में क्यों आई हो, यह कहकर उन्होंने अपनी अंगूठी दे दी।

सिद्धार्थ ने गोपा की पवित्र मूर्ति देखकर उसके साथ विवाह करने की इच्छा प्रकाशित की। पुत्र ने गोपा का वरण किया है, यह सुनकर महाराज शुद्धोदन अत्यंत प्रसन्न हुए। महाराज ने दंडपाणि के निकट दूत भेजकर संबंध स्थिर करवाया। अनंतर दोनों पक्षों के मत स्थिर हो जाने पर १६ वर्ष की अवस्था में बड़े समारोह के साथ गोपा के साथ राजकुमार का ब्याह संपन्न हुआ।

विवाह को हुए कई वर्ष बीत गए। गोपा ने सोचा था कि स्वर्गीय मधुर प्रेम और सेवा-यत्न से स्वामी को प्रसन्न करके शांति और सुख से दोनों की जीवन-नौका को संसार समुद्र से पार करूंगी। महाराज शुद्धोदन ने सोचा था कि पुत्र को राज्य देकर निश्चिंत होकर अंतिम जीवन भगवान् की चिंता में बिताऊंगा। परंतु इस संसार में किसकी इच्छा पूर्ण हुई है ! एक दिन कामिनीकंठ-निःसृत गान सुनकर सिद्धार्थ की निद्रा भंग हुई। निद्रा भंग होने पर बड़ी सावधानी से वे उस ज्ञानपूर्ण गान को सुनने लगे। उस गान के सुनने से उनका हृदय पिघल गया। वे जीवन की अनित्यता पर विचार करने लगे। इस अनित्य संसार में निश्चय ही कोई नित्य पदार्थ है, जिसको पाने से मनुष्य को शांति प्राप्त होती है। इस प्रकार की चिंता से दिन-रात उनका हृदय डांवाडोल रहा करता था।

एक दिन राजकुमार सिद्धार्थ गाड़ी पर चढ़कर उत्तर द्वार से निकलकर घूमने जा रहे थे। उस समय उन्होंने देखा कि एक वृद्ध चला जा रहा है। उसके केश पक गए हैं, शरीर पर सिकुड़न पड़ गई है। हाथ-पैर कांपते हैं, दांत गिर गए हैं और कमर झुकी हुई है। उसको देखते ही युवराज का चित्त व्याकुल हो गया। युवराज ने सारथि से पूछा—छंदक ! यह कौन जंतु है, मैंने तो ऐसा कभी नहीं देखा था। सारथि ने विनीत भाव से उत्तर दिया—युवराज ! यह वृद्ध मनुष्य है। वृद्धावस्था आने पर सभी की यही दशा होती है। वृद्धावस्था में शरीर की शक्ति जाती रहती है, इंद्रियां अपने-अपने कामों में असमर्थ हो जाती हैं। प्राणिमात्र की यही दशा होती है। यह सुनकर राजकुमार का चित्त चंचल हो उठा। उन्होंने कहा—ओह, हम लोग कैसे मूर्ख हैं ! यौवन-मद से उन्मत्त होकर शरीर की भावी अवस्था की ओर एक बार भी नहीं देखते। अब मैं घूमना नहीं चाहता, लौट चलो। घर आने पर सिद्धार्थ की चिंता और भी बढ़ गई।

इस घटना के कुछ दिनों बाद सिद्धार्थ ने प्रमोदवन जाने की इच्छा व्यक्त की। छंदक पहले ही कुमार का अभिप्राय जानता था। अतः उसने पहले ही दक्षिण तोरण द्वार पर उस दिन रथ खड़ा किया था। दक्षिण तोरण द्वार से प्रमोदवन जाते समय रास्ते में कुमार ने देखा कि एक मनुष्य वमन कर रहा है तथा मारे यंत्रणा के छटपटा रहा है। उस मनुष्य की अवस्था को देखकर कुमार ने सारथि से पूछा—छंदक ! यह मनुष्य ऐसा क्यों करता है। छंदक ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया—प्रभो ! यह मनुष्य रोगी है। रोग के कष्ट को न सह सकने के कारण इसकी यह दुर्दशा हो रही है। प्राणी का जीवन सर्वदा एक रूप में नहीं रहता। हम लोगों की भी कभी न कभी यही अवस्था होने वाली है। सारथि की बातें सुनकर सिद्धार्थ घर लौट आए।

एक दिन पश्चिम तोरणद्वार से घूमने के लिए सिद्धार्थ बाहर निकले। भाग्यवश उन्होंने मार्ग में देखा कि कतिपय मनुष्य एक मनुष्य के मृत शरीर को वस्त्र में लपेटे ले जा रहे हैं और कुछ लोग उसके पीछे रोते-चिल्लाते चले जा रहे हैं। इस शोकमय दृश्य को देखकर सिद्धार्थ की आंखें पानी से भर गईं। उन्होंने पूछा छंदक ! यह मनुष्य कपड़े में क्यों लपेटा गया है, और उसके साथी इस प्रकार चिल्ला क्यों रहे हैं ?

सारथि ने उत्तर दिया—कुमार ! इसके प्राणवायु निकल गए हैं। इस निर्जीव शरीर को अग्नि में जलाने के लिए वे ले जा रहे हैं। इस संसार में वह अब देखा नहीं जाएगा, इसी कारण इसके साथी रोते हैं। कुमार ने फिर पूछा—छंदक ! क्या सभी की मृत्यु होती है ? और सभी क्या इसी प्रकार रोते हैं ? सारथि ने पुनः उत्तर दिया—हां, इस पांचभौतिक शरीर का यही परिणाम है। जिस प्रकार वृक्ष का फल अवश्य ही एक दिन गिरता है, उसी प्रकार जन्म ग्रहण करने पर एक न एक दिन मृत्यु भी अवश्य ही होगी। जिस प्रकार नदियां सर्वदा समुद्र की ओर

दौड़ी जा रही हैं, उसी प्रकार यह जीव भी सर्वदा काल-समुद्र की ओर अग्रसर हो रहा है। आप इस संसार में जिधर देखें उधर केवल क्रंदन ही क्रंदन दिखाई और सुनाई पड़ेगा। महाराज की अटारी से लेकर दरिद्र के झोंपड़े तक, तापस के आश्रम से लेकर विलासी के सुसज्जित विलास-भवन तक, विचारकर देखने से केवल हाहाकार ही सुनाई पड़ता है। मालूम पड़ता है कि रोने के लिए ही हम लोगों का जन्म हुआ है। कुमार सारथि की बातें सुनकर लौट आए। उसी दिन शय्या पर पड़े-पड़े वे सोचने लगे। काल! तुमने यह महाशक्ति कहां से पाई, जिधर देखो, उधर तुम ही दीख पड़ते हो। जो तुम्हारे चपेटे में पड़ा उसी-को तुमने धर दबाया। कौन कह सकता है कि जो आज हंस रहा है, जिसकी आंखें आनंद-छटा से पूर्ण हैं, उसीको तुम कल नहीं रुला दोगे, उसकी आंखें विषाक्त जल से पूर्ण न होंगी। काल! क्या इस संसार में तुम्हारे शासन से कोई छुटकारा पा सकता है?

एक दिन और सिद्धार्थ घूमने के लिए पूर्व तोरण-द्वार से बाहर गए। थोड़ी दूर जाने पर उन्होंने एक संन्यासी को देखा। उसकी सौम्यमूर्ति, सर्वांगविभूति-भूषित, हाथ में कमंडलु तथा धर्मचिंता में आसक्ति देखकर राजकुमार ने सारथि से पूछा—छंदक! ये कौन हैं? छंदक ने उत्तर दिया—कुमार! ये संन्यासी हैं, इन्होंने बंधु-बांधव, गृहविषयवासना आदि को छोड़-कर जीवन उत्सर्ग किया है। संसार के सभी मनुष्य इनके आत्मीय हैं, और भिक्षा ही इनकी जीविका है।

सारथि की बात सुनकर कुमार बड़े आनंद से बोले—इतने दिनों पर मैंने जाना है कि इस संन्यासी के समान होने पर इस संसार में मनुष्य सुखी हो सकता है। छंदक! रथ लौटाओ, अब घूमने की आवश्यकता नहीं है। रथ लौट आया। घर आकर सिद्धार्थ सो गए। उनके चित्त में अनेक प्रकार की चिंता उत्पन्न होने लगी।

अनेक प्रकार की चिंता करने के अनंतर सिद्धार्थ ने संसाराश्रम का त्याग करना ही निश्चित किया। किंतु पिता और पत्नी से छिपकर चले जाने पर उनको बहुत कष्ट होगा, यह सोचकर उन्होंने अपना मत पत्नी और पिता से कहलाया। पुत्रवत्सल महाराज शुद्धोदन पुत्र के इस प्रस्ताव को सुनते ही अवाक् रह गए। उन्हें बोलने तक की शक्ति नहीं रही। बहुत देर के बाद उन्होंने कहा—बेटा! संसार छोड़ने से तुम्हें क्या लाभ है? तुम्हें कष्ट क्या है? तुम्हारे पास क्या नहीं है? तुम अतुल ऐश्वर्य के अधिकारी हो। कितने दास-दासी तुम्हारी आज्ञा पालने के निमित्त उत्कंठित हैं। गुणवती और रूपवती गोपा तुम्हारे जीवन की सहचरी है, फिर तुम किस दुःख से संसार को छोड़कर वन जाने के लिए प्रस्तुत हो। तुमको पाकर मैंने स्वर्ग पाया है, तुम्हारे पाने से ही मैं अपनी प्राणसमा पत्नी को भूल गया हूं, तुम्हीं हमारे सर्वस्व हो। यदि तुम हमको छोड़कर जाओगे तो हमारा जीना कठिन है। यह कहते-कहते महाराज मूर्च्छित होकर गिर गए। सिद्धार्थ भी कुछ क्षण तक पिता के दुःख से दुःखित हुए। पुनः उन्होंने पिता को इस प्रकार समझाया—पिताजी! यदि आप व्याधि और मृत्यु से हमारी रक्षा कर सकें तो मैं कभी संसार नहीं छोड़ूंगा। पुत्र की बातें सुनकर महाराज अचकचाकर बोले—बेटा! प्रकृति के नियम को लंघन करने की किसमें शक्ति है! बड़े-बड़े योगी कठिन तपस्या करके व्याधि और मृत्यु से अपनी रक्षा नहीं कर पाए। वे भी प्रलोभनमय संसार को धर्मसाधन का विरोधी मानकर निर्जन गिरिकंदरा में अथवा वृक्षराजिसमाकुल वन में साधन करते थे। परंतु क्या वे मृत्यु से बच गए। बेटा! मेरी बात मान लो। मुझे छोड़ना नहीं।

सिद्धार्थ ने कहा—इस अनित्य संसार की घटना-वलियों पर जब हम निविष्टचित्त से विचार करते हैं तब स्वभावतः यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इस अनित्य संसार में नित्य कौन है? हमारा सदा का साथी हमारा पदार्थ कौन है? इन प्रश्नों के उदय होते ही बंधु-बांधवों की प्रीति नष्ट हो जाती है। सांसारिक माया शिथिल हो जाती है। संसार की अनित्यता पर विचार करना ही धर्मांकुर है। मकान को गिरते देखकर जिस प्रकार मकान में रहने वाले उसे छोड़कर निरापद स्थान ढूंढ़ते हैं, उसी प्रकार जरा-मरण-संकुल इस संसार की अनित्यता देखकर बुद्धिमान् मनुष्य उसे छोड़ देते हैं। आप मुझे आज्ञा दें, मैं सदानंदमय शोक-ताप-जरा-मरण-शून्य निर्वि-कल्प अमृतधाम की ओर जाऊं। गोपा ने भी बहुत समझाया, परंतु सिद्धार्थ ने कुछ भी नहीं सुना।

इस घटना के कुछ दिनों के बाद सिद्धार्थ का एक पुत्र हुआ, जिसका नाम राहुल रखा गया। पुत्र पर अधिक प्रीति उत्पन्न होने के कारण और उद्देश्यभ्रष्ट

होने के भय से उन्होंने उसी रात को घर छोड़ने का निश्चय किया। आधी रात बीत जाने पर सिद्धार्थ शय्या त्यागकर धीरे-धीरे गोपा के घर में गए। उन्होंने देखा, दुग्धफेन सदृश शय्या पर गोपा सो रही है, उसके वाम भाग में कुमार राहुल सो रहा है। सिद्धार्थ कुछ देर तक टकटकी लगाए पत्नी-पुत्र को देखते रहे। पुनः वे बोले—यह बालक जिस अलौकिक माधुर्य का प्रतिबिंब है, न मालूम उसकी मधुरता कितनी है ! इसी प्रकार गोपा के विषय में भी कुछ देर तक वे सोचते रहे। अंत में, मन ही मन माता-पिता को उद्देश्य करके प्रणाम किया और छंदक के अतिरिक्त और सबसे छिपकर २८ वर्ष की अवस्था में सिद्धार्थ नित्य वस्तु को ढूंढ़ निकालने के लिए निकले। ये कई घंटों तक लगातार चलने पर सूर्योदय के पहले 'अनोमा' नदी के तीर पर उपस्थित हुए। वहां घोड़े से उतरकर रत्नजटित अपने वस्त्र, आभूषण आदि उतारकर उन्होंने छंदक को दे दिए। तुम हमारे वृद्ध पिता को समझाना, यह कहकर सिद्धार्थ ने उसे लौटा दिया।

छंदक के लौट आने पर सिद्धार्थ निष्कंटक हो गए। उन्होंने अपनी तलवार से सुंदर केशों को काट डाला। इसी प्रकार कुछ दूर और जाने पर उन्होंने एक व्याध को देखा। उस व्याध को उन्होंने अपना वस्त्र दे दिया और बदले में उसके वस्त्र स्वयं ले लिए। ओह, कैसा विलक्षण परिवर्तन है ! सूर्योदय के पहले जो राजराजेश्वर था, वही मनुष्यों के मंगल के लिए आज वनवासी भिक्षुक हुआ। पिता का अतुल वैभव, राज्य, धन, ऐश्वर्य, रूपवती और गुणवती भार्या तथा बालक शिशु सबको एक ओर रखकर संसार के मनुष्यों को मुक्त करने के लिए राजकुमार ने संन्यास ग्रहण किया।

कुमार सिद्धार्थ दरिद्र के वेश में इधर-उधर घूमते हुए वैशाली नामक नगर में आए। वहां उन्होंने एक पंडित से हिंदू-शास्त्रों का अध्ययन किया। वहां मनोरथ पूर्ण न होने के कारण वे राजगृह आए और वहां रुद्रक नाम के एक ऋषि के शिष्य हुए। इस समय राजगृह में मगधेश्वर बिंबिसार राज्य करते थे।

अपने गुरुओं से शास्त्र और योगप्रणाली सीखकर कौंडिन्य, वाया, भद्राय, महानाम और अश्वजित् नामक अपने पांच शिष्यों के साथ सिद्धार्थ गया प्रांतवर्ती ऊरुबिल्व नामक ग्राम में आए। उस स्थान की प्राकृतिक शोभा देखकर सिद्धार्थ बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उस शांतिपूर्ण स्थान को तपस्या के लिए ठीक समझा। वहीं निरंजन नदी के तीर पर वे घोर तपस्या करने लगे। इस स्थान पर छह वर्ष तक उन्होंने तपस्या की। कहते हैं कि इन छह वर्षों में वे कभी तिल कभी तंडुल खा लिया करते थे। इस कठिन तपस्या के कारण उनका सुंदर शरीर कंकालमात्रावशिष्ट हो गया। इस प्रकार कठोर व्रत करने पर भी इष्टसिद्धि नहीं हुई। यदि इस प्रकार थोड़े दिन और रहें तब प्राणांत होना निश्चित है और ऐसी स्थिति में अभिलषित की प्राप्ति नितांत असंभव है—यह सोचकर वे कुछ-कुछ आहार करने लगे। ऊरुबिल्व गांव की रहने वाली सभी स्त्रियां प्रायः ही उनके दर्शन के लिए आश्रम में आती थीं। उनमें कतिपय वृद्धा स्त्रियां सिद्धार्थ के भोजन का जुगाड़ किया करती थीं। पुनः भोजन के कारण सिद्धार्थ का शरीर सबल हो गया। इस प्रकार गुरु को भोजन करते तथा सबल होते देखकर उनके पांचों शिष्य वहां से चले गए। उन मूर्खों ने गुरु को भ्रष्टयोग समझ लिया।

पांचों शिष्यों के चले जाने पर सिद्धार्थ बड़े दुःखित हुए। इस समय अनेक प्रकार की चिंता उनके हृदय को डावांडोल करने लगी। राज्य, ऐश्वर्य, धन, गौरव, संसार, सुख, आत्मीय-स्वजन आदि की स्मृति उनके सामने आने लगी। चलने के समय का पिता का कष्ट, गोपा के विरहमुख आदि की स्मृति ने उन्हें अधीर कर डाला। यद्यपि इस समय वे अधीर हो गए तथापि वे अपनी प्रतिज्ञा से पश्चात्पद नहीं हुए। इन विघ्नों को दूर करके वे ऊरुबिल्वग्राम से कुछ दूर एक वट वृक्ष के नीचे आसन जमाकर बैठ गए और पुनः बड़े उत्साह से कठोर तपस्या करने लने। भक्तवत्सल दयामय ने भक्त की परीक्षा करके जब देखा कि यह भक्त अपने निश्चय से हटने वाला नहीं है, तब उन्होंने हृदय के अंधकार को दूर करके ज्ञान प्रकाशित कर दिया। उनके सुख का निर्वाण, दुःख का निर्वाण, इंद्रियों का निर्वाण और इच्छा का भी निर्वाण हो गया। उन्होंने बौद्धत्व प्राप्त कर लिया। जिस वृक्ष के नीचे उन्होंने सिद्धि प्राप्त की थी वह बोधिद्रुम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस समय वह स्थान बोधगया के नाम से प्रसिद्ध है। सिद्धार्थ ने शाक्यवंश में सबसे श्रेष्ठ स्थान पर अधिकार किया था। इस कारण वे शाक्यसिंह कहे जाने लगे। बौद्धत्व प्राप्त करने के कारण वे बुद्ध भी

कहे जाने लगे ।

स्वयं मुक्त होकर बुद्धदेव जीवन के दूसरे उद्देश्य-साधन के लिए उद्यत हुए । अज्ञानी मनुष्यों को मुक्ति का मार्ग बतलाना ही उनके जीवन का दूसरा उद्देश्य था । इस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए वे मृगदाव नामक स्थान में आए । यह स्थान काशी से तीन मील उत्तर की ओर है । इस समय यह स्थान 'सारनाथ' नाम से प्रसिद्ध है । वहां उन्होंने पूर्व पांच शिष्यों को नूतन धर्म में दीक्षित किया । उनको नये धर्म में दीक्षित होते देखकर और भी सात आदमियों ने इस नये धर्म को ग्रहण किया । प्रथम ही शिष्यों की अधिक संख्या देखकर बुद्धदेव बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने अपने शिष्यों को बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए कहा । धर्म-प्रचार करने के समय इनके शिष्य कहा करते थे कि अपनी उन्नति करना ही बौद्ध धर्म का उद्देश्य है । उस उद्देश्य का साधन करने के लिए दयावृत्ति का परिचालन करना आवश्यक है । सद्दृष्टि, सत्संकल्प, सद्वाक्य, सद्व्यवहार और सदुपाय से जीविका अर्जन करना आदि धर्मार्जन के उपाय हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि सभी जातियों को अपनी उन्नति करने के लिए एक जाति होना आवश्यक है ।

अपने शिष्यों को बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए कहकर स्वयं बुद्धदेव राजा बिंबिसार की सभा में आए और तर्क तथा युक्ति द्वारा उनको समझाकर नये धर्म में दीक्षित किया । राजा को नया धर्म ग्रहण करता देखकर उनकी प्रजाओं ने भी उस धर्म को ग्रहण किया । बुद्धदेव कितनों से ही निंदा और कितनों से ही स्तुति सुनते हुए बड़े उत्साह से अपने नये धर्म का उपदेश करने लगे । शनैः-शनैः उनका नया नाम चारों ओर व्याप्त हो गया । महाराज शुद्धोदन ने अपने पुत्र को दिव्य ज्ञानी हुआ जानकर उसको कपिलवस्तु में ले आने के लिए आठ दूत भेजे । परंतु वे उनके उपदेश की मोहिनी शक्ति से मुग्ध होकर उसी नये धर्म में दीक्षित हो गए । इन दूतों में से सिद्धार्थ का संवाद लेकर कुछ देश को लौट आए और कुछ उन्हीं के साथ रहने लगे । उन दूतों में एक चरक नामक राज्यमंत्री था । वह मगध से देश को लौट गया और उसने इस प्रकार महाराज को संवाद दिया—महाराज ! सिद्धार्थ अब राजमहल में नहीं रहेंगे । आप उनके रहने के लिए एक मठ बनवा दें । वे तीन-चार महीने के मध्य में ही यहां आएंगे । मंत्री के कहने से महाराज ने न्यग्रोध नामक स्थान में एक मठ बनवा दिया ।

सिद्धार्थ मगध में अपना उद्देश्य पूर्ण करके पिता की अभिलाषा पूर्ण करने के लिए कपिलवस्तु में आए । उनके देश में आने पर हजार-हजार आदमी उनके दर्शनों के लिए आने लगे । महाराज शुद्धोदन बहुत दिनों के बाद पुत्र को देखकर बड़े आनंदित हुए । उन्होंने राजभवन में पुत्र से रहने के लिए कहा, परंतु सिद्धार्थ ने वहां रहना स्वीकृत नहीं किया । कपिलवस्तु में जाकर सिद्धार्थ ने पिता के बनाए मठ में वास किया और अनायास प्राप्त अन्न के द्वारा जीविका-निर्वाह करने लगे ।

बहुत दिनों बाद स्वामी देश में आए हैं, यह सुनकर गोपा चार दासियों को संग लेकर पतिदर्शन करने के लिए न्यग्रोध मठ में गई । गोपा की संगनियों में से एक ने कहा—देव ! जिस दिन से आपने इस नगरी को छोड़ा उसी दिन से आपकी पत्नी इस यौवनावस्था में कठोर ब्रह्मचर्य का अवलंबन करके अनाहार और अनिद्रा से दिन काट रही है । इनके कष्टों को देखकर पाषाण भी गल जाता है । इस कार्य से इनको विरत करने की अनेकों ने चेष्टा की परंतु फल कुछ भी नहीं हुआ । बुद्धदेव चुप होकर उसकी कथा सुनते रहे । अंत में उन्होंने धर्मोपदेश द्वारा अपनी पत्नी को शांत किया । गोपा के आत्मसंयम करने पर बुद्धदेव ने उसे भी अपने धर्म में दीक्षित कर लिया ।

एक दिन अपने पुत्र राहुल को कपड़े-लत्ते पहनाकर गोपा ने कहा—बेटा राहुल ! तुम अपने पिता के पास जाकर अपनी पैतृक संपत्ति के विषय की बातें पूछ लो । राहुल माता के कहने से एक दासी के साथ पिता के पास न्यग्रोध मठ में गया । उसने प्रणाम करके पिता से कहा—पिताजी ! आज हम आपके दर्शन से धन्य हुए । आप हमें हमारी पैतृक संपत्ति की बात बतला दें । मेरी माता ने ऐसा ही कहा है । बुद्धदेव पुत्र की बातें सुनकर उसके साथ इधर-उधर की बातें करने लगे जिससे वह पैतृक संपत्ति की बात भूल जाए । परंतु पुत्र के बार-बार अनुरोध करने पर बुद्धदेव ने अपने शिष्य सरीपुत्र को बुलाकर कहा—सरीपुत्र ! राहुल अभी बालक है । साधन द्वारा हमने जो धन एकत्र किया है उसको प्राप्त करके इसने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया । इस समय इसको उपदेश देना चाहिए, पीछे अवस्था प्राप्त होने पर इसे बौद्ध धर्म की दीक्षा

दी जाएगी। सरीपुत्र ने गुरुदेव की बातें सुनकर कहा —हां, यही उत्तम होगा। राहुल अपने पिता से उपदेश प्राप्त करके घर लौट आया। सिद्धार्थ प्राय: डेढ़ महीने तक कपिलवस्तु में रहे और पिता तथा अन्यान्य मनुष्यों के साथ धर्मचर्चा करते रहे। तदनंतर धर्म-प्रचार के लिए पुन: बाहर घूमने चले। इसी समय आनंद, देवदत्त, कपाली और अनिरुद्ध को सिद्धार्थ ने बौद्ध धर्म में दीक्षित किया।

बुद्धदेव वर्ष में आठ महीने देश-विदेश में घूम-घूमकर धर्म-प्रचार करते और चार महीने अर्थात् वर्षाकाल में मठ में रहकर शिष्यों को उपदेश देते। जिस समय वे श्रावस्ती के निकट पूर्वीराम नामक स्थान में रहते थे उसी समय किसी धनी की कृष्णा नाम की पतोहू का पुत्र मर गया। संतान के प्रति माता का प्रेम अत्यंत प्रबल होता है। माता अपने पुत्रवियोग से कातर होकर सिर पटक-पटककर रो रही थी। उसी समय एक भिक्षु द्वार पर आकर खड़ा हुआ।

कृष्णा ने द्वार पर आए हुए संन्यासी को खिड़की से देखा। लज्जा और भय को छोड़कर वह बाहर निकल आई और साधु के पैर पकड़कर कहने लगी—महाराज ! आप लोगों में दैवी शक्ति होती है। हमारा एकमात्र पुत्र इसी समय मर गया है। आप उसे मंत्रबल से जीवित कर दें। साधु ने उत्तर दिया—मृत मनुष्य को जिला देने की शक्ति मुझे अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। यदि आप अपने मृत पुत्र को लेकर हमारे गुरु के निकट जा सकती हों तो वहां आपको संजीविनी औषधि मिलेगी। कृष्णा साधु के कहने से बुद्धदेव के समीप गई और अपना सब हाल कहकर उसने अपने मृत पुत्र के लिए संजीविनी औषधि की प्रार्थना की। बुद्धदेव ने कहा—वत्स ! मैं इसकी उत्तम औषधि जानता हूं। परंतु एक वस्तु की आवश्यकता है जो हमारे पास नहीं है, यदि तुम उसे ला दो तो तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हो जाएगी। कृष्णा ने बड़ी व्याग्रता से पूछा—प्रभो ! वह कौनसी वस्तु है ? हमारे घर में किसी वस्तु का अभाव नहीं है, सोना, रूपा, हीरा आदि जो आप कहें वही मैं ला दूं।

बुद्धदेव ने कहा—हमें उन वस्तुओं की आवश्यकता नहीं है। एक मुट्ठी सरसों यदि तुम ला सको तो तुम्हारा पुत्र अभी जी उठे। परंतु बात यह है कि जिस घर में कभी कोई मरा न हो उसी घर से सरसों लाना। कृष्णा सरसों लाने के लिए चली। पुत्र के पुनर्जीवन की आशा से उसने लोकलज्जा छोड़कर पगली के समान घर-घर एक मुट्ठी सरसों मांगी। वह जिस घर में जाकर सरसों मांगती, वहीं उसे बहुत सर्षप मिलता। परंतु जब वह पूछती कि आपके यहां किसीकी मृत्यु तो नहीं हुई, तब कोई तो अपने पुत्र की, कोई पिता की—इसी प्रकार किसी न किसीकी मृत्यु की बात कहता। इससे वह दूसरे द्वार पर चली जाती। सब घरों में इसी प्रकार शोक-वार्ता सुनकर और बुद्धदेव के अभीप्सित सर्षपों को न पाकर कृष्णा दु:खित होकर बुद्धदेव के समीप आई। बुद्धदेव ने पूछा—सर्षप ले आई हो ? कृष्णा ने उत्तर दिया—नहीं प्रभु, वैसे सर्षप कहीं नहीं मिलते। तब बुद्धदेव ने कृष्णा से कहा—काल ने केवल तुम्हारे पुत्र का ही हरण नहीं किया है। इस प्रकार के अनेक माता-पिता हैं जो तुम्हारे समान कष्टसमुद्र में निमग्न हैं। पुत्रि ! तुम शोक छोड़ो, और जरा-व्याधि के हाथ से मुक्ति प्राप्त करो। बुद्ध के उपदेश से कृष्णा पुत्र-शोक भूल गई। उसने कहा—प्रभो! मैं आपके शरणागत हुई हूं। बुद्धदेव ने उसको अपने नवीन धर्म में दीक्षित कर लिया।

एक दिन बुद्धदेव खप्पर हाथ में लिए भिक्षा करते-करते भारद्वाज नामक वणिक् के द्वार पर उपस्थित हुए। भारद्वाज ने बुद्धदेव को भिक्षाटन करते देखकर कहा—ऐ श्रमण ! तुम देखने में तो बड़े हृष्ट-पुष्ट मालूम पड़ते हो, फिर भिक्षा क्यों मांगते हो। तुम स्वयं परिश्रम न करके दूसरे के परिश्रम से उपार्जित धन अनायास ही प्राप्त करना चाहते हो। क्या तुम जानते नहीं कि अन्न कितने कष्ट से उत्पन्न होता है ? हम लोग कड़ी धूप और वृष्टि में अनेक कष्ट उठाकर खेत बोते हैं और अन्न उत्पन्न करते हैं, तुम बिना काम किए ही उसमें भाग बंटाना चाहते हो। तुम्हें उचित है कि तुम भी हम लोगों की तरह परिश्रम करो। तुम्हारे समान जब हृष्ट-पुष्ट मनुष्य भीख मांगेगा, तब अंधे-लंगड़ों की क्या गति होगी ? मैं तुम्हें भूमि देता हूं, तुम उसे जोत-बोकर उसीसे जीविका करो।

बनिये की बातें सुनकर बुद्धदेव बोले—तुम्हारा कहना ठीक है, मैं भी भूमि जोतता हूं, परंतु मेरा जोतना किसी दूसरे प्रकार का है। हमारी भूमि और शस्य भी विलक्षण है। मानव-हृदय ही हमारी

भूमि है, ज्ञान हमारा हल है, विनय उसका फाल है और उद्यम तथा उत्साह ये दोनों बैल हैं। हृदयरूपी भूमि को जोतकर विश्वासरूपी बीज बो दिया जाता है। इस बीज के अंकुरित होने पर निर्वाणरूपी अन्न उत्पन्न होता है। इसी अन्न से हमारी तृप्ति होती है।

बुद्धदेव की महदर्थसूचक बातें सुनकर भारद्वाज अपने निष्ठुर वाक्य के लिए पश्चात्ताप करने लगा। उसने क्षमा-प्रार्थना करके दीक्षा ग्रहण की।

बुद्धदेव धर्म-प्रचार के लिए जब बाहर गए हुए थे तब उन्होंने सुना कि महाराज शुद्धोदन बहुत बीमार हैं। इस संवाद को सुनकर वे अपने शिष्यों के साथ पिता के दर्शन के लिए गए। जिस समय वे राजभवन में उपस्थित हुए, उस समय महाराज शुद्धोदन की अवस्था शोचनीय थी। वे मृत्युशय्या पर सोए हुए थे। पुत्र के मुख से धर्मोपदेश सुनते-सुनते उन्होंने शरीर-त्याग किया। बुद्धदेव ने पिता की अंत्येष्टि क्रिया की। वहां उन्होंने औरों को भी अपने धर्म में दीक्षित किया।

४८ वर्ष धर्म-प्रचार करने के अनंतर अस्सी वर्ष की अवस्था में ५३४ ख्री० के पूर्व कुशीनगर में किसी शाल वृक्ष के नीचे उदरामय रोग से बुद्धदेव का शरीर पात हुआ। एक समय शिष्यों के साथ वे राजगृह से कुशीनगर जा रहे थे, अकस्मात् मार्ग में उन्हें उदरामय हो गया। बुद्धदेव ने उसी समय समझ लिया कि इस रोग से छुटकारा पाना कठिन है। इसलिए उन्होंने अपने शिष्यों को आगे चलने के लिए निषेध किया। शिष्यों ने शाल वृक्ष के नीचे गुरुदेव की शय्या तैयार कर दी और वे शुश्रूषा करने लगे। बुद्धदेव क्रमशः दुर्बल होते गए। अंत में, वहीं उनका शरीरांत हुआ। मृत्यु के समय उन्होंने अपने शिष्यों को चार उपदेश दिए—

(क) वत्स ! चक्षु, कर्ण, नासिका और जिह्वा को सर्वदा वश में रखना। इंद्रियों को वश में रखने से शीघ्र ही निर्वाण राज्य की प्राप्ति होती है।

(ख) हे भिक्षुगण ! तुम अपने को स्वयं ही जागृत करना। अपनी परीक्षा स्वयं करना। इसी प्रकार सावधान और अपने द्वारा रक्षित होने पर तुम लोग सुखी हो सकोगे। पाप नहीं करना। सत्कार्य में सर्वदा तत्पर रहना। दूसरों का हृदय संशोधन करना।

(ग) जिस प्रकार जल से कीचड़ उत्पन्न होता है, और जल द्वारा ही वह धो भी दिया जाता है उसी प्रकार मन से ही पाप उत्पन्न होते हैं और मन के ही द्वारा उनका नाश भी होता है।

(घ) जिस प्रकार छाया मनुष्यों का त्याग नहीं करती उसी प्रकार जिनके चिंतन, वाक्य और कार्य पवित्र हैं उनका त्याग सुख और शांति कभी नहीं करते।

बुद्धदेव ने शिष्यों को ये चार उपदेश देकर योगावलंबन से शरीरत्याग किया। उनके निर्वाण प्राप्त होने पर शिष्यों ने चंदन काष्ठ से उनकी चिता बनाई। भिक्षु उनकी चिता भस्म सुवर्ण पात्र में रखकर राजगृह, वैशाली, कपिलवस्तु, अलकासुर, रायग्राम, उत्थद्वीप, पावया और कुशीनगर इन आठ स्थानों में ले आए और भूमि में गाड़कर वहां एक चैत्य बनवाया।

वृत्रासुर—प्रबल पराक्रांत असुर। इसने स्वर्ग से इंद्र को हटाकर उसपर अपना अधिकार कर लिया था। महर्षि दधीचि की अस्थि से निर्मित वज्र द्वारा इंद्र ने इसका नाश किया था। (महाभारत)

वृन्दावन—श्रीकृष्ण की यह लीलाभूमि मथुरा से लगभग १० मील उत्तर की ओर स्थित है। यमुना नदी के तट पर अवस्थित यह एक सुरम्य वन था, जहां विभिन्न फल-फूलों और कदंब वृक्षों की अधिकता थी। यहां बिहारी जी का एक मंदिर है, जिसके दर्शनों के लिए देश के सुदूर अंचलों से चलकर लोग यहां आते हैं। भक्तकवि हरिदास और अन्य अनेक पुण्यात्मा महात्माओं ने इस भूमि का आश्रय लिया।

वृन्दावनदास—शेखावटी के अंतर्गत खंडेला राज्य के अधीश्वर। जिस समय वृंदावनदास खंडेला राज्य के अधीश्वर हुए उस समय आमेर के सिंहासन के लिए ईश्वरीसिंह और माधवसिंह में प्रबल युद्ध की अग्नि प्रज्वलित हो गई थी। वृंदावनदास पहले से ही माधवसिंह का पक्ष-समर्थन करते थे और सामर्थ्य के अनुसार उनकी सहायता भी करते थे। जिस समय माधवसिंह को आमेर का सिंहासन मिला उस समय उन्होंने वृंदावनदास के पूर्व उपकारों को स्मरण करके उनका भी उपकार करना चाहा। वृंदावनदास ने प्रार्थना की कि खंडेला राज्य दो अधीश्वरों के अधीन है। अतएव उनमें सर्वदा झगड़ा होता ही रहता है। यदि वह समस्त प्रदेश एक के अधीन हो जाए, तो यह रोज का झगड़ा भी मिट जाए। इस समय खंडेला के

अन्यान्य अंशों के अधीश्वर इंद्रसिंह थे। माधवसिंह ने वृंदावनदास जी की प्रार्थना के अनुसार उनको इंद्रसिंह को भगाने के लिए पांच हजार सेना दी। उस सेना ने इंद्रसिंह पर आक्रमण किया। इंद्रसिंह भी कई महीने तक प्रबल पराक्रम के साथ लड़ते रहे, परंतु अंत में जब उन्होंने प्रबल शत्रुओं के ग्रास से रक्षा कर पाना कठिन समझा तब वे किला छोड़कर पारासोली नामक स्थान को चले गए। वृंदावनदास ने वहां भी उनपर आक्रमण किया। अब इंद्रसिंह ने दूसरी गति न देखकर आत्मसमर्पण कर दिया। परंतु उसी समय एक ऐसी विचित्र घटना हुई जिससे इंद्रसिंह ने अपना और अपने राज्य का भी उद्धार कर लिया। आमेरराज की पांच हजार सेना को वेतन देने का भार वृंदावनदास पर ही था। परंतु वृंदावनदास के पूर्वपुरुष खजाने की रक्षा नहीं कर सके, इस कारण वृंदावनदास को सेना का वेतन चुकाने के लिए किसी दूसरे उपाय का अवलंबन करना पड़ा। वृंदावनदास ने सर्वसाधारण प्रजा से और विशेषतया देवालयों से दंड लेना प्रारंभ किया। अन्यायपूर्वक उसने ब्राह्मणों से दंड लिया, इस कारण वे क्रुद्ध होकर उसको धिक्कारने लगे। परंतु वृंदावनदास ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया क्योंकि इस समय किसी उपाय से धन ग्रहण करना ही उसने निश्चित किया था। बलपूर्वक कर ग्रहण करते देखकर चिरप्रचलित रीति के अनुसार ब्राह्मण लोग आत्मघात करने के लिए उद्यत हुए। परंतु तो भी उसने ध्यान नहीं दिया। अब क्या था! धड़ाधड़ उसके सामने ब्राह्मणों के मस्तक कटने लगे। वृंदावनदास ब्रह्महत्या के दोष से दूषित हुए और जातिच्युत हुए। आमेरपति ने इस बात को सुनते ही अपनी सेना बुला ली और उन्होंने ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हें बीस हजार रुपये दिए। इस प्रकार वृंदावनदास हीनबल हो गए। इंद्रसिंह का छुटकारा अनायास ही हो गया। उसी समय माचेड़ी के राव ने आमेर के विरुद्ध सिर उठाया था। उसको दमन करने के लिए खुशाली बोहरा की अध्यक्षता में आमेर की सेना जा रही थी। इंद्रसिंह बिना निमंत्रण के ही उस सेना के साथ हो गए। आमेरपति को पचास हजार रुपये भेंट देकर इंद्रसिंह ने अपना पैतृक राज्य पा लिया।

वृंदावनदास जिस प्रकार सैनिक बल से तथा अपनी वीरता से बलवान् थे, उसी प्रकार इंद्रसिंह भी प्रजा के ऊपर असीम प्रेम दिखाकर बलवान् हो गए थे। एक समय इंद्रसिंह अपनी सेना लेकर वृंदावनदास के उदयगढ़ नामक किले पर अधिकार करने के लिए चले। उसी समय वृंदावनदास के पुत्र रघुनाथसिंह ने अपने पिता के शत्रु इंद्रसिंह का साथ दिया। वृंदावनदास ने अपने पुत्र रघुनाथ को कुचोर नामक देश का अधिकार दिया था। परंतु पुत्र ने पिता की आज्ञा के बिना तीन और क्षेत्र अपने अधिकार में कर लिए थे। इससे पिता-पुत्र में ठन गई थी। अब पुत्र रघुनाथ ने इंद्रसिंह का साथ दिया था। इंद्रसिंह के बल को घटाने की इच्छा से वृंदावनदास ने गुप्त रूप से कुचोर पर आक्रमण करने का विचार किया। उस समय रघुनाथ इंद्रसिंह का साथ छोड़कर उनके भानजे पृथ्वीसिंह को साथ लेकर कुचोर की ओर चला। वृंदावनदास पहले ही असफल-मनोरथ हो चुके थे। वे खंडेला की ओर जा रहे थे कि रघुनाथ और इंद्रसिंह ने जाकर उनका मार्ग रोक लिया। उसी समय उधर उदयगढ़ पर चढ़ाई हो गई। इस प्रकार बहुत दिनों तक युद्ध चलने के कारण दोनों पक्ष तेजहीन हो गए। अंत में, वृंदावनदास को भी इंद्रसिंह का उचित अधिकार देना पड़ा।

अब खंडेला राज्य में शांति तो हो गई, परंतु धनलोभी ब्राह्मण प्रतिदिन वृंदावनदास को अनेक पापों का भय दिखाकर प्रायश्चित्त के बहाने धन लूटने लगे। प्रतिदिन एक न एक प्रायश्चित्त होता ही था और प्रत्येक प्रायश्चित्त में बिना एक गांव दान किए बनता ही नहीं था। इसका विरोध उनके पुत्र ने किया। अंत में, वृंदावनदास पुत्र को राज्य देकर राज्य से अलग हो गए। (टाड्स राजस्थान)

वृषपर्वा—कश्यप का दनु में उत्पन्न एक दानवराज। दीर्घप्रज्ञ राजा के रूप में यह पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ। शुक्राचार्य इसके पुरोहित थे, जिनसे इसने 'संजीवनी विद्या' प्राप्त करके दानव वंश का विकास किया। यह देवासुर-संग्राम में भी सम्मिलित हुआ था। इसकी कन्या शर्मिष्ठा द्वारा शुक्राचार्य की कन्या देवयानी का अपमान होने के कारण शुक्राचार्य इसके राज्य का परित्याग करने के लिए प्रस्तुत हुआ; किंतु इसके अनुरोध पर और इस शर्त पर कि शर्मिष्ठा हमेशा देवयानी की दासी बनकर रहेगी, इसने अपने विचार को स्थगित कर दिया। शर्मिष्ठा के अतिरिक्त इसकी दो कन्याएं और थीं, जिनका नाम था—सुंदरी और

चंद्रा।

वृषसेन—श्रंगराज कर्ण के पुत्र का नाम। महाभारत के युद्ध में जिस समय कर्ण और अर्जुन का युद्ध हो रहा था उसी समय भीम के हाथ से यह मारा गया। (महाभारत)

वेङ्कटाध्वरी—ये श्रीरामानुजसंप्रदायावलंबी एक दाक्षिणात्य विद्वान् थे। इन्होंने अपने लिखे 'विश्वगुणादर्श' नामक चंपू में अपना परिचय इस प्रकार दिया है—इनके पिता का नाम रघुनाथ दीक्षित था। अप्यय गुरु इनके मातामह थे। परंतु वे अप्यय गुरु कुवलयानंद चित्र मीमांसा आदि के कर्त्ता अप्पय दीक्षित से भिन्न हैं। क्योंकि वे द्राविड ब्राह्मण थे। ये अप्यय गुरु ताताचार्य के भानजे थे। ये ताताचार्य कर्णाट देशी राजा कृष्णराय के गुरु थे। इन्होंने 'सात्त्विक ब्रह्मविद्यालास' नामक वेदांत का प्रसिद्ध ग्रंथ लिखा है।

ये नीलकंठ दीक्षित के समकालीन तथा सहाध्यायी थे। ये नीलकंठ दीक्षित अप्पय दीक्षित के पौत्र और नारायण दीक्षित के पुत्र थे। नीलकंठ ने नीलकंठविजय नामक एक ग्रंथ लिखा है। उसमें इन्होंने उसका निर्माणकाल इस प्रकार लिखा है—

अष्टात्रिंशदुपस्कृत-
सप्तशताधिकचतुःसहस्रेषु।
कलिवर्षेषु गतेषु
ग्रथितः किल नीलकण्ठ विजयोऽयम्॥

इससे निश्चित होता है कि सन् १६३७ ई० में नीलकंठ विजय लिखा गया था। उन्हींके समकालीन वेंकटाध्वरी थे। अतः आज से अढ़ाई सौ वर्ष से भी अधिक इस ग्रंथ के कर्ता कवि को हुए, हो गए। इस ग्रंथ का ठीक-ठीक निर्माणकाल बतलाना कठिन है।

ये कांची के पास अर्शनफल नामक अग्रहार में रहते थे। ये बड़हल संप्रदाय के थे। इस महाकवि ने विश्वगुणादर्श, हस्तिगिरि चंपू और लक्ष्मीसहस्र नामक काव्य लिखा था। ये भी दाक्षिणात्य कवियों के समान शब्दालंकार की ओर झुके हुए हैं। प्रलयकावेरी नामक किसी राजा की सभा के ये प्रधान पंडित थे। कहते हैं कि विश्वगुणादर्श चंपू लिखने के कारण ये अंधे हो गए थे, अतः इन्होंने लक्ष्मीसहस्र से लक्ष्मी की स्तुति की। पुनः लक्ष्मी के प्रसाद से इनकी आंखें ठीक हो गई।

वेगवती (बेतवा)—इस नदी का उद्गम पारियाम से बताया गया है। यह आधुनिक बेतवा ही है, जो भोपाल के निकट से निकलती है और विदिशा होकर यमुना में विलयित हो जाती है। इसी नदी के कारण विदिशा या भिलसा नामकरण हुआ है। कालिदास के 'मेघदूत' में इसका मनोरम वर्णन हुआ है।

वेत्रवती—बेतवा नदी, जो बुंदेलखंड में है।

वेदवती—राजा कुशध्वज की कन्या का नाम। राजा ने सोचा था कि मैं अपनी कन्या को भगवान् से ब्याहूंगा, परंतु उनका मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ। दैत्यपति शुंभ के द्वारा महाराज कुशध्वज मारे गए। रानी ने भी उनका साथ दिया। मातृ-पितृहीना बालिका वेदवती दुःखसागर में निमग्न हुई, परंतु अपने पिता का मनोरथ पूर्ण करने की इच्छा से कठोर तपस्या करने के लिए उसने दृढ़ संकल्प कर लिया था। इसी प्रकार बहुत दिन बीतने पर एक दिन लंकेश्वर रावण वहां आया और उसकी सुंदरता पर मुग्ध होकर उसे पत्नी बनाने की इच्छा व्यक्त की। वेदवती ने अपना अभिप्राय व्यक्त करके रावण का प्रस्ताव अस्वीकृत किया। परंतु रावण पर उसका कुछ भी फल नहीं हुआ। वह बलपूर्वक वेदवती को पकड़ने के लिए आगे बढ़ा। वेदवती ने सामने विपत्ति को देखकर प्रज्वलित चिता में प्रवेश किया। चिता में प्रवेश करने के समय वेदवती ने रावण से कहा कि दूसरे जन्म में मैं राक्षस वंश के नाश का कारण होऊंगी। यही वेदवती दूसरे जन्म में सीता के रूप में मिथिलेश जनक के यहां उत्पन्न हुई थी।

किसी-किसी पुराण में लिखा है कि वेदवती बृहस्पतिपुत्र कच की कन्या थी।

वेदव्यास—(देखो कृष्णद्वैपायन)।

वेनराज—एक प्राचीन राजा। इनके पिता का नाम अंगराज था। इन्होंने अपने राज्य में बलि और देवार्चन का निषेध किया था। इससे क्रुद्ध होकर ब्राह्मणों ने उस आज्ञा को प्रत्याहार करने के लिए राजा से कहा परंतु राजा ने उनकी एक भी नहीं सुनी। अंत में, ब्राह्मणों ने मंत्रपूत कुश द्वारा राजा का विनाश किया। अनंतर उन ब्राह्मणों ने राजा वेन के मृत देह पर कुशघर्षण किया। उस घर्षण से पृथुराज की उत्पत्ति हुई। ब्राह्मणों ने वेन के सिंहासन पर पृथु का अभिषेक किया। (विष्णुपुराण)

वैतरणी—(१) उड़ीसा में कटक नगर के पास की एक नदी।

(२) लंकापति रावण से सीता का उद्धार करते समय

लक्ष्मण सहित श्रीराम क्योंझर सीमा पर स्थित इस नदी-तट पर रुके थे, जिसकी स्मृति को सुरक्षित बनाए रखने के लिए अतीत से आज तक इस स्थान पर प्रतिवर्ष जनवरी में एक मेला लगता है। पुराणों के उल्लेखानुसार, महर्षि परशुराम इस पुण्य सलिला को धरती पर लाए थे। बौद्ध ग्रंथों में इसका 'यम नदी' के नाम से उल्लेख हुआ है। इस नदी का उद्गम क्योंझर के उत्तर-पश्चिम पहाड़ियों से हुआ है। आगे चलकर यह नदी ब्राह्मणी नदी में मिल जाती है और आगे चलकर धर्मा नदी के नाम से समुद्र में गिरती है।

वैदूर्य पर्वत—बहुमूल्य लाजावर्द पत्थर के प्राप्त होने के कारण ही संभवतः इसका ऐसा नाम पड़ा। सह्य पर्वतमाला पर स्थित इस छोटी-सी पहाड़ी को टॉलेमी ने औरुंडियान पर्वत कहा है। यह पर्वत पश्चिमी घाट पर स्थित है और उसमें दक्षिणी विंध्य तथा सतपुड़ा पर्वतमाला (गुजरात) का एक भाग सम्मिलित था। इस पहाड़ी पर अगस्त्य ऋषि का आश्रम था।

वैभारागिरि—यह मगध जनपद के अंतर्गत गिरिव्रज को परिवेष्टित करने वाली पांच पहाड़ियों में से एक पहाड़ी है। 'महाभारत' में इसका विपुल शैल के रूप में उल्लेख हुआ है। बुद्धघोष ने इसे वैभार पर्वत के नाम से कहा है, जहां पर तप्त और शीतल जल के स्रोत थे। इस पहाड़ी के निकट अनेक रोगनाशक नदियां बहती थीं। यह पहाड़ी बौद्धविहारों और जैन मंदिरों से समलंकृत थी। यहां पर अनेक पर्वत गुफाएं स्थित थीं। राजगृह का बैभ्राज पर्वत ही वैभारागिरि है।

वैरीशाल—जयसलमेर के महारावल। महारावल रणजीतसिंह ने जब अपुत्रावस्था में प्राणत्याग किया उस समय इनकी महारानी ने अपने देवर वैरीशाल को गोद ले लिया। उस समय महारावल वैरीशाल १५ वर्ष के थे।

परंतु उस समय वैरीशाल ने जयसलमेर के सिंहासन पर बैठना किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया। इससे वहां की प्रजा को बड़ा कष्ट हुआ और जब उन लोगों ने वैरीशाल पर बहुत जोर दिया तब महारावल ने यह कहकर सब लोगों को शांत कर दिया कि मुझे विश्वास है कि जयसलमेर के सिंहासन पर बैठकर मैं सुखी नहीं हो सकूंगा। महारावल वैरीशाल के ऐसा कहने में कारण यही था कि उन्होंने दो राजाओं को उस सिंहासन पर बैठते और शीघ्र ही मरते देखा था। परंतु इस बात से सभी अप्रसन्न हुए। अंत में, गवर्नमेंट से पूछने पर उत्तर मिला कि महारावल अभी लड़के हैं, थोड़े दिन बाद वे अपने-आप स्वीकार कर लेंगे। अतः इस समय इस प्रस्ताव को छोड़ देना ही उचित है। गवर्नमेंट के कहने से उस समय यह स्थगित कर दिया गया और महारावल के पिता केसरीसिंह पुत्र के नाम से राज्यशासन करने लगे।

महारावल वैरीशाल की बुद्धि के पलटने में अधिक देर नहीं लगी। दूसरे ही वर्ष अर्थात् सन् १८६५ ई० में उन्होंने कह दिया कि मैं सिंहासन पर बैठने को तैयार हूं। इससे राजधानी में बड़ा आनंद हुआ। वैरीशाल का बड़े धूमधाम से अभिषेक हुआ।

(टाड्स राजस्थान)

वैशम्पायन—कृष्ण द्वैपायन व्यास का प्रिय शिष्य। इन्होंने जनमेजय के सर्पयज्ञ के समय सभा में महाभारत का पाठ किया था। इनके शिष्य का नाम महर्षि याज्ञवल्क्य था।

(महाभारत)

वैशाली—बुद्धयुगीन महाजनपदों में परिगणित वैशाली ऐतिहासिक महत्त्व की प्राचीन राजनगरी के रूप में विश्रुत थी। रामायण, पुराणों, बौद्ध-जैन ग्रंथों और प्राप्त अभिलेखों में उसके महत्त्व एवं गौरव का व्यापक वर्णन हुआ है। प्रभावशाली लिच्छवी गणतंत्र की यह राजधानी थी। रामायण (४७।११, १२) के अनुसार, इस नगर की स्थापना इक्ष्वाकु तथा अलम्बुजा नामक एक अप्सरा के पुत्र ने की थी। विष्णुपुराण में उसका नाम विशाल उल्लिखित है। अतः बहुत संभव है कि उसीके नाम से इस नगर का वैशाली नामकरण हुआ। चीनी यात्री फाह्यान (५वीं शती) ने यहां पर एक विहार तथा एक स्तूप देखा था। ह्वेनत्सांग (७वीं शती) ने इसका विस्तृत भौगोलिक इतिवृत्त दिया है। अपने मूल रूप में यह नगर अनेक मीनारों तथा विशाल अट्टालिकाओं से युक्त तीन प्राचीरों से परिवृत था। यह बौद्ध धर्म का ही नहीं, जैन धर्म का भी महान् तीर्थ था। बुद्ध वहां स्वयं गए थे और उन्होंने वहां अपना प्रवचन किया था। महावीर स्वामी को वैशालीवासी कहा जाता है। वैशाली के कुंडग्राम में उनका जन्म हुआ था। उन्होंने वहां लंबा समय व्यतीत किया था। अजातशत्रु के वंशज कालाशोक ने बुद्ध परिनिर्वाण के १०० वर्ष बाद वैशाली में ७०० भिक्षुओं की द्वितीय बौद्ध

संगीति का आयोजन किया था। कनिंघम ने मुजफ्फर जिले के बसाट नामक वर्तमान गांव से वैशाली को समीकृत किया है।

बौद्ध सम्प्रदाय (नामांतर: बौद्ध सम्प्रदाय)—गौतमबुद्ध द्वारा प्रवर्तित एक धर्मसंप्रदाय। यद्यपि बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा गौतम बुद्ध ने की, तथापि इस संप्रदाय की प्राचीनता के प्रमाण शास्त्रों में देखे जाते हैं। बुद्ध नामक भगवान् का अवतार प्रत्येक युग में अवतीर्ण होता है। इस बात का शास्त्रों में उल्लेख पाया जाता है। बौद्धों के धर्मशास्त्रों में २४ अवतारों की कथा लिखी है। उसमें लिखा है कि कपिलवस्तु के बुद्ध अंतिम बुद्ध थे। बुद्धदेव ने चार प्रधान सत्यों का आविष्कार किया था। वे ये हैं—(१) जीवनधारण ही दु:ख है। (२) जीवनधारण की कामना दु:ख का आदिकारण है। (३) जीवनधारण की कामना के नाश होने पर ही दु:ख का नाश होता है। (४) आठ प्रकार के उपायों से दु:खों का नाश किया जा सकता है। वे आठ उपाय हैं—सत्‌विश्वास, सत्‌प्रतिज्ञा, सत्‌वाक्य, सत्‌कर्म, सत्‌जीवन, सत्‌चेष्टा, सत्‌चिंता और सत्‌उपासना। जीवनधारण करना ही दु:ख का कारण है। इसी कारण धर्मविश्वासी बौद्धगण माला जपने के समय—अनित्य, दु:ख और असत्य कहा करते हैं। अर्थात् जीवन अनित्य है, सभी दु:खमय है और संसार असत्य है। शाप के कारण ही मनुष्यों को जीवन धारण करना पड़ता है। अत: निर्वाण अथवा लय की कामना करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है। बौद्धों की कोई उपासना-प्रणाली नहीं है। बौद्ध सृष्टिकर्ता का अस्तित्व नहीं मानते हैं। वे कहते हैं कि कर्म ही सर्वनियंता है, मनुष्य कर्मवश ही जन्म, जरा और मृत्यु के पथ पर अग्रसर होते हैं। बुद्धदेव ने किसीकी उपासना सुनी ही नहीं क्योंकि उन्होंने निर्वाण प्राप्त कर लिया था।

व्याडि—एक विख्यात वैयाकरण। परवर्ती व्याकरण-ग्रंथों में इन्हें दाक्षायण एवं दाक्षि नाम से कहा गया है। प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि का दाक्षीपुत्र कहकर उल्लेख हुआ है। इस दृष्टि से दाक्षायण व्याडि तथा दाक्षीपुत्र पाणिनि का मातृवंशीय संबंध स्थापित किया गया है। व्याडि की बहन का नाम व्याडचा था। कुछ विद्वानों का मत है कि व्याडचा और दाक्षी एक ही थीं। इस आधार पर व्याडि पाणिनि के मामा ठहरते हैं। किंतु यह अभिमत इतिहास-सम्मत नहीं है। व्याडि के पिता का नाम संभवत: व्यड था। इसी प्रकार उसके दाक्षायण नाम से ज्ञात होता है कि उसके मूल पुरुष का नाम दक्ष था। किंतु इस संबंध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों का कहना है कि दाक्षायण देशवासी होने के कारण व्याडि को इस नाम से कहा गया। यह अंगिराकुलोत्पन्न ब्राह्मण था। इसने वैदिक व्याकरण तथा पाणिनि व्याकरण दोनों पर ग्रंथ रचना की थी। इनके द्वारा विरचित ग्रंथों में 'संग्रह' सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ था, जो उपलब्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त 'विकृतवल्ली', 'व्याडिव्याकरण', 'बालरामचरित', 'व्याडिपरिभाषा' और 'व्याडिशिक्षा' आदि ग्रंथों का रचयिता भी इन्हें माना जाता है।

व्युषिताश्व—कुरुवंशी एक प्राचीन राजा। ये बड़े प्रतापी और पुण्यात्मा राजा थे। इन्होंने सोम नामक यज्ञ में देवताओं को प्रसन्न किया था। ये बड़े बलवान् थे। कहते हैं कि इनके शरीर में दस हाथियों के समान बल था। इन्होंने अपने अश्वमेध यज्ञ में चारों दिशाओं के राजाओं को जीत लिया था। इन्होंने समुद्र पर्यंत पृथ्वी को अपने वश में कर लिया था। कक्षीवान् की कन्या भद्रा इनको ब्याही गई थी। थोड़े ही दिनों के बाद क्षयरोग हो जाने के कारण इनका शरीरांत हो गया। महाभारत में लिखा है कि इनकी मृत्यु के समय तक भद्रा को कोई पुत्र या कन्या उत्पन्न नहीं हुई थी, अत: वह फूट-फूटकर अपने पति के शव के पास रोने लगी। बहुत रोने-पीटने पर आकाशवाणी हुई कि तुम चिंता मत करो, हमारे ही औरस से तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होंगे। अष्टमी और चतुर्दशी का ऋतुस्नान करके तुम हमारी प्रतीक्षा करना। कहते हैं कि उसी शव के वीर्य से भद्रा के तीन शाल्व, चार भद्र इस प्रकार सब मिलाकर सात संतानें उत्पन्न हुईं। कहते हैं कि यह मानसी सृष्टि है। (महाभारत)

श

शंयु—एक वैदिकयुगीन आचार्य, जिसे अग्नि का प्रतिरूप माना गया है। यह यज्ञ की विशिष्ट पद्धति का ज्ञाता था। इसके बाद इसके यज्ञवैशिष्ट्य का ज्ञान विलुप्त न हो जाए, इस आशंका से इसके अनुयायियों ने इससे ज्ञान प्राप्त किया।

शंयु बार्हस्पत्य—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा ऋषि। बृहस्पति का यह ज्येष्ठ पुत्र था। इसका संग्यू नामांतर भी प्राप्त होता है। पुराणों में इसे अग्नि और इसकी माता का नाम तारा तथा पत्नी का नाम सत्या कहा गया है। धर्मकन्या सत्या से इसकी तीन कन्याएं और भरत तथा भारद्वाज नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए।

शक—एक प्राचीन जाति। इस जाति की उत्पत्ति का विषय पुराणों में इस प्रकार लिखा गया है। सूर्यवंशी राजा नरिष्यंत से इस जाति की उत्पत्ति हुई थी यह बात वंशलता की आलोचना करने से प्रतीत होती है। राजा सगर ने जिनको राज्यच्युत तथा देश से निर्वासित किया था, शक भी उन्हींमें से हैं। क्रियापालन न करने के कारण तथा ब्राह्मणों के दर्शनाभाव से वे म्लेच्छ हो गए। शास्त्रों में यह बात लिखी हुई है। आधुनिक पंडितों का मत है कि पहले एशिया शकद्वीप के रूप में प्रसिद्ध था। ग्रीकगण इस देश को सीदिया कहते थे। उसी मध्य एशिया के रहने वाले शक कहे जाते हैं। किसी समय शक जाति बड़ी प्रतापशालिनी हो गई थी। ख्रीष्ट जन्म के दो सौ वर्ष पहले शकों ने मथुरा और महाराष्ट्र तक अपना अधिकार फैलाया था। कनिष्क, हविष्क आदि प्रतापशाली शकवंशी राजा भारत का भी शासन कर चुके हैं। १९० वर्ष तक इस वंश ने यहां राज्य किया था। ये लोग अपने को 'देवपुत्र' कहते थे।

शकुनि—गांधारराज सुबल के पुत्र और दुर्योधन के मामा। यही कुरुवंश के नाश का कारण हैं। (देखो दुर्योधन)

शकुन्तला—पौरववंशी विख्यात राजा दुष्यंत की महारानी। यह विश्वामित्र के औरस और मेनका नाम की अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। इसके जन्मते ही मेनका इसको मालिनी के तीर पर छोड़कर स्वर्ग चली गई। तब से महर्षि कण्व ने इसका पालन किया। इसीके गर्भ से प्रसिद्ध राजा भरत की उत्पत्ति हुई जिनके नाम से यह देश भारतवर्ष के नाम से प्रसिद्ध हुआ। महर्षि दुर्वासा के शाप से राजा दुष्यंत शकुंतला को भूल गए थे, परंतु पीछे खोई हुई अंगूठी के मिलने से उन्हें स्मरण आया।

शक्ति—महर्षि वसिष्ठ के ज्येष्ठ पुत्र। इन्होंने राजा कलमाषपाद को राक्षस होने का शाप दिया था। उसी राक्षसभावापन्न राजा कलमाषपाद ने शक्ति को मार डाला। इन्हींके पुत्र पराशर थे।

शक्तिसेन—एक यादव राजा। पुराणों में इसके 'समाजित्' एवं 'शक्रजित्' नाम आए हैं। इसे निघ्न राजा का पुत्र बताया गया है। यह परम सूर्यभक्त था। इसकी भक्ति से प्रसन्न होकर सूर्य ने इसे स्यमंतक मणि प्रदान की थी। इस मणि को लेकर श्रीकृष्ण से इसका संघर्ष हुआ था। इसकी दस पत्नियां तथा सौ पुत्र थे।

शंकरवर्मा—काश्मीर के राजा का नाम। इनके पिता का नाम अवंतिवर्मा था। अवंतिवर्मा के परलोकवासी होने पर राज्य के लिए बड़ी गड़बड़ी मची। परंतु प्रतीहार रत्नवर्द्धन के प्रयत्न से शंकरवर्मा को अपने पिता का सिंहासन मिला। इस समय मंत्रियों ने ईर्ष्यावश होकर राज्य को नष्ट-भ्रष्ट करने का निश्चय कर लिया था। दीवान ने शूरवर्मा के पुत्र सुखवर्मा को युवराज बना दिया। राजा और युवराज दोनों में झगड़ा चलने लगा। अंत में, शंकरवर्मा किसी न किसी प्रकार सबको परास्त कर निष्कंटक हुए।

इस प्रकार स्वस्थचित्त होकर शंकरवर्मा दिग्विजय के लिए निकले। उस समय काल के प्रभाव से देश की जनसंख्या अल्प हो गई थी। अतएव उसके साथ ९ लाख पैदल सेना चली। जाने के समय रणकर्म में अनिपुण सैनिकों को शंकरवर्मा ने शिक्षित कर लिया था। जिस प्रकार छोटी-छोटी नदियों के मिलने से एक बड़ी नदी तैयार हो जाती है उसी प्रकार अन्यान्य राजाओं की सेना आ-आकर शंकरवर्मा की

सेना को पुष्ट करने लगी। इस प्रकार शंकरवर्मा की सैन्य संख्या ३०० हाथी, १ लाख घोड़े, ६ लाख पैदल हुई। गुर्जरराज को जीतने के लिए वे इस समय व्यस्त हुए। इसी समय त्रिगर्तराज पृथ्वीराज ने निर्बुद्धि के कारण अपने पराजय होने के डर से एक विलक्षण उपाय किया। उन्होंने अपने पुत्र भुवनचंद्र को शंकरवर्मा के निकट बंधक करके भेजा। अनंतर वह भी उनकी अधीनता स्वीकार करने के लिए चला। परंतु जब उसने उस बड़ी सेना को आते देखा तब तो वह मारे डर के कायरों के समान भाग गया।

यद्यपि शंकरवर्मा अपनी सुंदरता के लिए प्रसिद्ध थे, तथापि शत्रु उनको यमराज के समान देखते थे। उन्होंने एक सामान्य युद्ध से गुजरात के राजा अलखान को हरा दिया। अलखान ने ढक्क प्रदेश देकर अपने राज्य की रक्षा की। थक्किय वंशियों का राज्य भोजराज ने छीन लिया था। इस कारण वे शंकरवर्मा की शरण गए थे और उनकी बड़ी सेवा की थी। शंकरवर्मा ने भोजराज से उनका राज्य दिलवा दिया।

इस प्रकार दिग्विजय करके महाराज शंकरवर्मा अपने देश में लौट आए और पंचसत्र प्रदेश में अपने नाम से एक गांव बनवाया। उनकी पत्नी का नाम सुगंधा था। शंकरवर्मा अपनी पत्नी सुगंधा के साथ उसी नये नगर में रहते थे और उसी नगर में शिव गौरीश्वर तथा सुगंधेश्वर नामक महादेव की प्रतिष्ठा की थी। इन दोनों मंदिरों के मध्य में नायक नामक एक चतुर्वेदज्ञ ब्राह्मण द्वारा राजा ने सरस्वती की प्रतिष्ठा करवाई थी। राजा ने इस नगर को बनवाने के लिए परिहासपुर नामक एक नगर उजाड़ दिया था। परिहास की सामग्री से ही उन्होंने अपने नये नगर का निर्माण कराया था।

अनंतर राजा शंकरवर्मा लोभ में पड़कर प्रजा-पीडन करने लगे। अनेक प्रकार के व्यसनों में आसक्ति होने के कारण उनका खजाना खाली पड़ा हुआ था। अनेक प्रकार की युक्तियों से वे देवता का धन अपहरण करने लगे। मंदिरों के धूप, चंदन, तेल आदि बिकवाकर वे पैसा पैदा करने लगे। देवताओं के लिए जो ग्राम दिए गए थे उन सब ग्रामों को उन्होंने अपने राज्य में कर लिया। यद्यपि उस समय काश्मीर राज्य में सभी वस्तुओं का दाम अधिक हो गया था तथापि शंकरवर्मा ने अपने कर्मचारियों का वेतन घटा दिया। राजा के इस प्रकार अत्याचारी होने पर कायस्थों की खूब चल गई।

प्रजा को इस प्रकार पीड़ित देखकर दयालु राजपुत्र गोपालवर्मा ने अपने पिता से कहा—पिता! आप सत्यवादी हैं। आपने पहले हमको एक वर देने के लिए कहा था। उस समय हमने वर नहीं लिया। आज मैं वही वर चाहता हूं। आपने कायस्थों के परामर्श से जो प्रजाओं को कष्ट पहुंचाया है उससे हमारा सत्यानाश हो गया। आज केवल उनका जीवनमात्र ही अवशिष्ट है। महाराज! इस प्रकार प्रजापीडन करने से क्या इस लोक में और क्या परलोक में—कहीं भी आपका कल्याण नहीं होगा। परलोक की बात कौन कह सकता है! वह दुर्ज्ञेय है। परंतु जो बात मालूम पड़ती है उससे भी यह बात स्पष्ट है कि इससे आपका कल्याण नहीं हो सकता। इधर तो दुर्भिक्ष-महामारी आदि से प्रजा पीड़ित हो रही है उसपर राजा का लोभ, भला इससे उनकी रक्षा की क्या संभावना है! दान और मधुर वाक्य के द्वारा ही राजा जगत् को अपने वश में कर सकता है। प्रजानाथ! कृपा करके इस अन्यायाचरण से प्रजा की रक्षा कीजिए।

राजा शंकरवर्मा अपने पुत्र का सौजन्यपूर्ण वचन सुनकर थोड़ा हंसकर बोले—बेटा! तुम्हारे अत्याचारविरोधी इन मधुर वाक्यों को सुनकर हमें अपनी पुरानी बात स्मरण आती है। बाल्यावस्था में हमारा भी हृदय तुम्हारे ही समान दयालु था। हमारे पिता गरमी के दिनों में ठंडा और शीत के दिनों में गरम कपड़ा नहीं देते थे। मैं जूते भी तो नहीं पहन सकता था, पिता इसी प्रकार हमको लेकर घूमते थे। घोड़े के साथ घूमने से हमारे पैर कट जाते थे। यदि इसका कारण कोई पिता से पूछता तो वे कहते कि—मैंने छोटी अवस्था से राज्य पाया है इसी कारण हम भृत्यों के परिश्रम का अनुभव कर सकते हैं। यदि यह बालक इस प्रकार दुःख-भोग नहीं करेगा तो कभी भृत्यों का दुःख नहीं समझ सकता। पिता ने यद्यपि हमको इस प्रकार की शिक्षा दी है तथापि मैं प्रजापीडन करता हूं। जन्म प्राप्त करके मनुष्य जिस गर्भवास के कष्टों को भूल जाता है उसी प्रकार राज्य पाने पर पहले की बातें भूल जाती हैं। अतएव, बेटा! मैं ही तुमसे एक वर मांगता हूं कि तुम राजा होकर हमसे अधिक प्रजा पर अत्याचार नहीं करना।

अंत में, एक चांडाल के बाण द्वारा इनकी मृत्यु हुई। इन्होंने १८ वर्ष, ७ महीने, १६ दिन राज्य किया था। (राजतरंगिणी)

शंकराचार्य—विख्यात अद्वैतमतप्रवर्तक आचार्य। केरल राज्य में विद्याधिराज नामक एक ब्राह्मण रहा करते थे। उनके पुत्र का नाम शिवगुरु था। शिवगुरु की पत्नी का नाम सुभद्रा था। एक दिन सुभद्रा ने अपने पति से कहा—नाथ! अब हम लोगों का यौवन ढल चला। परंतु अभी तक पुत्र का मुख देखने का सौभाग्य नहीं है। जिस पत्नी के गर्भ से पुत्र उत्पन्न नहीं होता वह वंध्या समझी जाती है तथा लोग उससे घृणा करते हैं। शास्त्रों में लिखा है कि भगवान् शंकर की आराधना करने से किसीका मनोरथ निष्फल नहीं होता, अतः हम लोगों को भी शिव की आराधना करनी चाहिए। शिवगुरु अपनी पत्नी की बातें सुनकर बड़े दुःखी हुए और उन्होंने अपना अभीष्ट पूर्ण होने के लिए सपत्नीक शिव की आराधना करने का संकल्प किया। बहुत दिनों तक आराधना करने के अनंतर एक दिन शिवगुरु ने स्वप्न देखा कि एक वृद्ध ब्राह्मण उनके सिरहाने खड़े होकर कहते हैं—बेटा! तुम्हारी आराधना से हम प्रसन्न हुए हैं, इस समय वर मांगो। शिवगुरु ने स्वप्न में ही यह वर मांगा—देवादिदेव! आपके समान गुणी एक पुत्र मेरे उत्पन्न हो। 'तथास्तु' कहकर ब्राह्मण अंतर्हित हो गए। यथासमय उनकी पत्नी ने एक पुत्र उत्पन्न किया। सुभद्रा ने शंकर की आराधना से पुत्र पाया था, इस कारण उस पुत्र का नाम शंकर रखा गया।

शंकर शुक्लपक्ष के चंद्रमा के समान दिन-दिन बढ़ने लगा। एक वर्ष की अवस्था में उसने मातृभाषा सीख ली। दूसरे वर्ष में माता की गोद में बैठे-बैठे उसने स्मरणशक्ति के प्रभाव से माता की कही हुई समस्त पौराणिक कथाओं को स्मरण कर लिया। तीसरे वर्ष में इनके पिता का परलोकवास हुआ। चौथे वर्ष में इनको आप ही आप समस्त विद्याओं का ज्ञान हो गया। पांचवें वर्ष में इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और ये गुरुगृह में पढ़ने के लिए बैठाए गए। छठे वर्ष में महात्मा शंकराचार्य एक प्रकांड पंडित हो गए।

एक दिन गुरुगृह में वास के समय शंकराचार्य भिक्षा के लिए निकले। इधर-उधर घूमकर अंत में वे एक ब्राह्मण के द्वार पर उपस्थित हुए। उस समय उस मकान का मालिक ब्राह्मण घर में नहीं था। आपने उसी दरिद्र ब्राह्मण के घर भिक्षा की प्रार्थना की। वह ब्राह्मण भी अत्यंत दरिद्रता के कारण भिक्षा के लिए बाहर गया हुआ था। ब्राह्मण-पत्नी अपने द्वार पर भिक्षुक को देखकर बहुत घबराई और बड़े कष्ट से बोली—बेटा! हम लोग बड़े अभागे हैं। भिक्षा देने की भी शक्ति परमेश्वर ने हम लोगों को नहीं दी है। अतिथि को विमुख नहीं फेरना, इस कारण मैं तुम्हें यह आंवला देती हूं। वृद्धा ब्राह्मण-पत्नी का विलाप सुनकर शंकराचार्य को बड़ा कष्ट हुआ और उसी समय वे लक्ष्मी की स्तुति करने लगे। शंकर के स्तव से प्रसन्न होकर लक्ष्मी शंकराचार्य के समीप आई और उनसे वर मांगने के लिए कहा। महात्मा शंकराचार्य ने लक्ष्मी को प्रसन्न करके यही वर मांगा कि यह दरिद्र ब्राह्मण अतुल धन के अधिपति हों। लक्ष्मी भी 'तथास्तु' कहकर अंतर्हित हो गई। देखते ही देखते ब्राह्मण का घर महल बन गया। इससे शंकराचार्य की विभूति की चारों ओर प्रसिद्धि हो गई। उस देश के राजा राजशेखर अपुत्रक थे। वे शंकर के महत्त्व की बातें सुनकर दस हजार रुपये लेकर उनसे मिलने आए और उनके चरणों पर रुपये रखकर उन्होंने प्रणाम किया। शंकर ने उन्हें आशीर्वाद दिया और उन रुपयों को दरिद्रों में बांट देने के लिए कहा। शंकराचार्य के आशीर्वाद से राजा को पुत्र उत्पन्न हुआ।

आठ वर्ष की अवस्था में शंकराचार्य ने संन्यास ग्रहण करने के लिए माता से आज्ञा मांगी। एकमात्र पुत्र को छोड़कर माता किस प्रकार अपना जीवन पालन करेगी यही सोचकर वे व्याकुल हो गई। उन्होंने संन्यास ग्रहण करने के पहले पुत्र से गृहस्थ आश्रम ग्रहण करने का अनुरोध किया। जब शंकर ने देखा कि माता संन्यास ग्रहण करने की आज्ञा नहीं देंगी, तब उन्होंने युक्ति से काम लिया।

एक दिन शंकराचार्य अपनी माता के साथ नदी पार करके किसी आत्मीय के घर गए हुए थे। जाने के समय वे अनायास ही नदी पार हो गए थे। आने के समय शंकर नदी पार होने के लिए नदी में घुसे। गले भर जल में आकर उन्होंने अपनी माता को पुकारकर कहा—माता! यदि तुम अब हमें संन्यासी होने की आज्ञा न दोगी तो मैं इसी जल में डूब मरूंगा। यह सुन शंकरजननी ने प्रत्यक्ष भय को देखकर

तुरंत संन्यास ग्रहण करने की अपने पुत्र को आज्ञा दे दी ।

शंकराचार्य जननी से आज्ञा लेकर पहले गोविंद स्वामी के शिष्य हुए। फिर वहां ब्राह्मत्व लाभ करके गुरु की आज्ञानुसार, वे काशी गए। वहां पर चोलदेश-वासी सनंदन उपनाम पद्मपाद को सबसे प्रथम अपना शिष्य बनाया ।

एक दिन शंकराचार्य मणिकर्णिका घाट पर स्नान करके निदिध्यासन करते थे। इतने में एक वृद्ध ब्राह्मण उनके सामने जा खड़ा हुआ और बोला—"सुना है, तुमने ब्रह्मसूत्रों पर व्याख्या की है। किसी-किसी सूत्र की व्याख्या करने में तो तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ होगा।" इसके उत्तर में शंकराचार्य ने कहा—"यदि आप उस भाष्य का कोई स्थल न समझे हों तो बतलाएं, हम उसका स्पष्टीकरण करके समझा देंगे।" इसपर उस वृद्ध ब्राह्मण ने एक सूत्र पढ़ा। तदनंतर उसका अर्थ पूछा। शंकराचार्य जब उसका अर्थ कर चुके, तब उनके अर्थ से भिन्न उस ब्राह्मण ने उसका अर्थ किया। इसपर शंकराचार्य आपे से बाहर हो गए और काशी के शास्त्रार्थ की प्रथानुसार शास्त्रार्थ करने को उद्यत हुए और अपने शिष्य पद्मपाद को आज्ञा दी कि वह उस बूढ़े को वहां से हटा दे। इसपर पद्मपाद ने गुरु को नमस्कार किया और कहा—

शङ्करः शङ्करः साक्षात् व्यासो नारायणः स्वयम् ।
तयोर्विवादे सम्प्राप्ते न जाने किं करोम्यहम् ॥

यह सुनकर शंकराचार्य को बोध हुआ और उन्होंने अपने किए के लिए व्यासजी से क्षमाप्रार्थना की और स्तुति की। तब व्यासदेव ने प्रसन्न होकर उनको वर दिया—"तुम ब्रह्मसूत्र के तात्पर्य के सहारे जगत् में अद्वैतवाद का प्रचार करने में समर्थ हो।" इसपर शंकराचार्य ने कहा था—"मैं अल्पायु होकर जन्मा हूं। मेरी आयु अब केवल सोलह वर्ष और है। अतः इतने कम समय में मैं क्या-क्या कर सकता हूं!" इसके उत्तर में व्यासदेव जी ने कहा—"हम तुम्हें ऐसे कार्यों के करने के लिए सोलह वर्ष की अतिरिक्त आयु और देते हैं, क्योंकि हमने जो कार्य करने की तुम्हें आज्ञा दी है, वह कार्य इस समय तुम्हें छोड़कर दूसरा कर नहीं सकता।' आयु वृद्धि होने के कारण शंकराचार्य ने दशोपनिषद्, गीता और वेदांतसूत्रों का भाष्य लिखा। तदनंतर नृसिंहतापिनी की व्याख्या और उपदेशसाहस्री आदि ग्रंथ लिखकर ये दिग्विजय के लिए बाहर निकले ।

काशी में रहने के समय शंकराचार्य ने कर्मवादी, चंद्रोपासक, ग्रहोपासक, त्रिपुरसेवी, गरुडोपासक आदि उपासक संप्रदायों को परास्त करके अपने मत में दीक्षित किया। वे काशी से बदरिकाश्रम गए। वहां बदरिनारायण का दर्शन करके वे कुछ दिनों तक रहे। वहां उन्होंने एक मठ स्थापित किया और अथर्ववेद के प्रचार के लिए अथर्ववेदज्ञ नंद नामक एक शिष्य को वहां रख दिया। यह मठ ज्योतिर्मठ के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

बदरिकाश्रम में मठ स्थापित करके हस्तिनापुर के अग्निकोण में विद्यालय नामक एक प्रदेश में शंकराचार्य आए। विद्यालय का दूसरा नाम विजिलबिंदु है। इसी विजिलबिंदु के तालवन में मंडन मिश्र नामक एक महापंडित रहते थे। वे ज्ञानकांडावलंबियों के घोर विरोधी थे। जिस समय शंकराचार्य मंडन मिश्र के यहां आए उस समय मंडन मिश्र घर का द्वार बंद करके श्राद्ध कर रहे थे और स्वयं व्यासदेव श्राद्धकार्य देख रहे थे।

द्वार बंद देखकर शंकराचार्य योगबल से घर के भीतर पहुंचे। संन्यासी को देखते ही मंडन मिश्र को बड़ा क्रोध हुआ। कुछ देर तक व्यंग्योक्तिपूर्ण बातें होने पर और व्यासदेव के कहने पर स्थिर हुआ कि भोजन करने के उपरांत शास्त्रार्थ होगा और जो परास्त होगा, वह जेता का मत ग्रहण करेगा। मंडन मिश्र की पत्नी मध्यस्थ होंगी। दोनों का शास्त्रार्थ हुआ। मंडन और संन्यासी दोनों प्रबल युक्तियों का प्रयोग करने लगे। अंत में, मंडन की समाधि लग गई और मंडन संन्यासी हो गए। पति के संन्यास ग्रहण करने पर शारदा परलोक जाने को उद्यत हुईं। इस समय शंकराचार्य ने कहा—शारदा! तुमको भी हमसे पराजय स्वीकार करनी पड़ेगी। यह सुनकर शारदा भी शास्त्रार्थ करने के लिए प्रस्तुत हो गईं। शारदा ने कामशास्त्र-संबंधी प्रश्न पूछे। शंकराचार्य इन प्रश्नों को सुनकर घबरा गए, और उन्होंने शारदा से कहा—माता! आप मुझे छः महीने का अवकाश दें तो मैं कामशास्त्र का अध्ययन कर आऊं।—यह कहकर कामशास्त्र का अध्ययन करने शंकराचार्य चले गए ।

शंकराचार्य ने रास्ता चलते मार्ग में देखा कि एक राजा की मृत देह श्मशान में जा रही है। यह देख-

कर मृतसंजीवनी विद्या के प्रभाव से शंकराचार्य ने उस मृत शरीर में प्रवेश किया और अपने शरीर की रक्षा के लिए चार शिष्यों को नियत किया। राजा के शरीर में प्रविष्ट होकर शंकराचार्य ने रानी से कामशास्त्र के तत्त्व सीखे। रानी बड़ी चतुरा थी। उसे राजा का आचार-व्यवहार अच्छा नहीं लगता था। उसके हृदय में एक प्रकार का संदेह हो गया। एक दिन रानी ने कर्मचारियों को आज्ञा दी कि तुम लोग चारों तरफ ढूंढ़ो, कहीं किसीका मृत शरीर तो नहीं पड़ा है, यदि पड़ा है तो उसे जला डालो। कर्मचारियों ने शंकर का शरीर पाया और शिष्यों से छीनकर उसका दाह करने के लिए उद्योग करने लगे।

शिष्यों ने आकर छद्मवेशी शंकर को खबर दी। शंकर ने देखा, उसका शरीर चिता में जल रहा है। शीघ्र ही राजदेह छोड़कर शंकर अपने शरीर में प्रवेश करके चिता पर से उठ भागे। अपने शरीर को दग्ध देखकर वे लक्ष्मीनृसिंह की स्तुति करने लगे। लक्ष्मीनृसिंह के प्रसाद से शरीर अच्छा होने पर वे शारदा के समीप आए। अश्लील विचार होने की संभावना देखकर शारदा बिना विचार ही पराजय स्वीकार करके ब्रह्मलोक जाने को प्रस्तुत हुईं। परंतु शंकराचार्य ने उनकी गति रोक दी। शंकर शारदा को इस प्रकार अपने अधीन करके श्रृंगगिरि नामक स्थान पर गए। श्रृंगगिरि तुंगभद्रा नदी के किनारे है। शंकराचार्य ने वहां मठ स्थापित करके शारदा से कहा—तुम चिरकाल के लिए यहां स्थित रहो। इस मठ का नाम विद्यामठ रखा गया और इस मठ की शिष्यमंडली का नाम भारतीय संप्रदाय हुआ।

तदनंतर शंकराचार्य कुछ दिनों तक वहीं रहे। पुनः उस मठ की देख-रेख का भार सुरेश्वर नामक अपने एक शिष्य को देकर वे धर्म-प्रचार के लिए चले। विधर्मियों को अपने धर्म में दीक्षित करते हुए वे प्रयाग पहुंचे। प्रयाग से शंकराचार्य उज्जयिनी आए। यहां आकर वे कापालिक और भैरवोपासकों के हाथ में पड़ गए। कापालिक उनपर अत्याचार करने लगे। उस समय उन्होंने सुधन्वा नामक राजा से प्रार्थना की। सुधन्वा की सेना के सामने कापालिक हार गए और उन्होंने शंकराचार्य का मत ग्रहण किया। वहां से सौराष्ट्र में धर्म-प्रचार करते हुए वे द्वारका पहुंचे। द्वारका में उन्होंने शारदा नामक एक मठ स्थापित किया। उस मठ के आचार्य-पद पर उन्होंने सामवेदज्ञ विश्वरूप नामक अपने शिष्य को बैठाया। वहां से आप पुरुषोत्तम तीर्थ में गए।

इस समय बौद्ध धर्म की प्रभा से हिंदू धर्म निष्प्रभ हो गया था। महात्मा शंकराचार्य हिंदू धर्म की ऐसी दशा देखकर 'बौद्ध धर्म मिथ्या' का प्रचार करने लगे। इससे क्रुद्ध होकर बौद्ध राजा के यहां शंकराचार्य को ले गए। शंकराचार्य ने वहां बौद्ध धर्म का मिथ्यात्व प्रमाणित करने के लिए विचार की प्रार्थना की। सभा हुई, उस सभा में शंकराचार्य ने युक्तिबल से बौद्धों के तर्क को छिन्नभिन्न करके उनको परास्त कर दिया। परास्त होकर बौद्ध पंडित और पुरोहितों ने शंकराचार्य का मत ग्रहण किया। इस प्रकार बौद्ध धर्म धीरे-धीरे निस्तेज होने लगा और हिंदू धर्म पुष्ट होने लगा।

एक दिन शंकराचार्य ने समाधि से अपनी माता का अभिप्राय जाना। योगशक्ति के प्रभाव से वे शीघ्र ही माता के समीप उपस्थित हुए। माता ने बहुत दिनों पर अपने पुत्र को देखा, और उनका पुत्र ईश्वरी शक्ति संपन्न हुआ है, इससे वे बहुत प्रसन्न हुईं। माता ने कहा—"मैं बहुत वृद्धा हो गई हूं, अब मुझे इस शरीर को धारण करने की इच्छा नहीं है। अतः तुम हमारी गति करा दो।" माता की बात सुनकर शंकर ने महादेव की स्तुति करना प्रारंभ कर दिया। महादेव ने प्रसन्न होकर शंकर की माता को अपने लोक में ले आने के लिए जटाजूटधारी प्रमथ को भेजा। शंकर की माता ने कहा—पुत्र ! शिवलोक में हमारी जाने की इच्छा नहीं है। मैं नारायण का दर्शन करके शिवलोक में जाना चाहती हूं। शंकराचार्य माता की भक्तिपूर्ण बात सुनकर नारायण की स्तुति करने लगे। तब शंकर की माता ने विष्णुलोक में प्रस्थान किया। तदनंतर माता की अंत्येष्टि क्रिया करके वे पुनः पुरुषोत्तम क्षेत्र को आए। वहां ऋग्वेद के प्रचार के लिए गोवर्द्धन नामक एक मठ स्थापित किया, पादपद्म नामक एक ऋग्वेदज्ञ आचार्य को वहां रखकर वे मध्वार्जुन नामक स्थान पर आए। जाने के समय एक प्रभाकर नामक ब्राह्मण के यहां उन्होंने विश्राम किया। वह ब्राह्मण शंकर को साक्षात् भगवान् मानता था। अतः अपने पुत्र को शंकर के सामने ले जाकर उसने रोग की बात उन्हें आद्योपांत कह सुनाई। शंकराचार्य ने उस लड़के को रोगमुक्त करके संन्यासी बना

लिया। उस बालक का नाम हस्तामलक रखा गया।

कांचीदेश का अधिपति हिमशीतल नामक राजा बौद्ध धर्म का नितांत पक्षपाती था। उसकी सभा में बड़े-बड़े बौद्ध पंडित वर्तमान थे। शंकराचार्य राजा के समीप जाकर बौद्ध धर्म का मिथ्यात्व प्रमाणित करन लगे। इससे क्रुद्ध होकर बौद्ध पंडित बड़े क्रुद्ध हुए और उन लोगों ने शंकराचार्य को दंड देना चाहा। शंकराचार्य ने शास्त्रार्थ की प्रार्थना की और यह स्वीकार किया कि शास्त्रार्थ में परास्त होने पर दंड भोगने के लिए प्रस्तुत होंगे। राजा ने अनेक स्थानों से बड़े-बड़े पंडितों को बुलाया। उनके साथ शंकराचार्य का शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ में बौद्ध पंडित परास्त हो गए। राजा ने बौद्ध पंडितों को उचित दंड देकर शंकर का मत ग्रहण किया। इस प्रकार घूमते-घामते शंकराचार्य कामरूप तीर्थ में गए। कामरूप में अभिनव गुप्त नामक एक प्रसिद्ध पंडित रहते थे। शंकर ने उनको शास्त्रार्थ में परास्त किया। अभिनव गुप्त ने इससे अपने को अपमानित समझा और शंकराचार्य को मारने का विचार करने लगे।

इस घटना के थोड़े ही दिनों के बाद शंकराचार्य भगंदर रोग से पीड़ित हुए। कहते हैं कि अभिनव गुप्त ने प्रतिहिंसा चरितार्थ करने के लिए अभिचार किया था, उसी अभिचार के फल से शंकराचार्य को रोग हो गया। उस समय शंकराचार्य के प्रधान शिष्य ने जप करके गुरु का रोग दूर कर दिया।

तदनंतर शंकराचार्य काश्मीर जाने के लिए प्रस्तुत हुए। मार्ग में गौडपाद स्वामी के साथ उनकी भेंट हुई। उन्होंने शंकराचार्य से कहा—शंकर ! तुम्हारी भाष्य-रचना की बात सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं। इससे पहले मैंने मांडूक्योपनिषद् पर वार्तिक लिखा है। मैंने सुना है कि तुमने उसपर भाष्य लिखा है। उस भाष्य को सुनने के लिए मैं तुम्हारे यहां जा रहा था। गौडपाद स्वामी की बातें सुनकर शंकराचार्य ने अपना भाष्य उन्हें अर्पण किया। गौडपाद ने भाष्य पढ़कर बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की और वे अपने घर चले गए। शंकराचार्य भी काश्मीर में उपस्थित हुए।

एक दिन वे विद्या-भद्रासन पर आरोहण करने जा रह थे। उसी समय शारदा ने आकाशवाणी से कहा—शंकर ! तुम्हारा शरीर अशुद्ध है। इस पीठ पर आरोहण करने के लिए शरीर-शुद्धि की आवश्यकता है। स्त्रीसंभोग करके तुमने कामशास्त्र सीखा है। इसी कारण तुम्हारा शरीर अशुद्ध हो गया है। दैवी वाणी सुनकर शंकराचार्य ने कहा—देवी ! आजन्म इस शरीर से मैंने कुछ भी पाप नहीं किया है। दूसरे शरीर से मैंने जो किया है उससे यह शरीर अशुद्ध नहीं हो सकता। देवी ! पहले जन्म में जो शूद्र है और वही दूसरे जन्म में ब्राह्मण हुआ तो क्या वह वेद के लिए अनधिकारी समझा जा सकता है ? केदारनाथ पर्वत के समीप शंकराचार्य का शरीरपात हुआ।

शङ्कु—(१) उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के नवरत्न नामक पंडितों में से एक।

(२) ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णखंड के तीसवें अध्याय में लिखा है कि पितामह ब्रह्मा ने ब्रह्मज्ञान बल से ब्रह्मतेजप्रदीप्त वेदवेदांगविद् तपस्यानिरत पुत्रों की सृष्टि की। उन्हींमें एक शंकु भी हैं।

शङ्ख—(१) एक प्रभूत पराक्रमी राक्षस। यह समुद्र-पुत्र होने के कारण समुद्र में ही निवास करता था। इसके भय से समस्त देवता तथा लोकपाल भागकर पर्वत-गुफाओं में छिप गए थे। देवों की शक्ति को सर्वदा के लिए समाप्त कर देने की इच्छा से एक बार इसने विष्णु की निद्रावस्था में वेदों पर आक्रमण किया, जिससे कि वेद समुद्र में जाकर छिप गए। वेदों के विलुप्त हो जाने से क्षुब्ध ब्रह्मादि देवता विष्णु के पास गए और उन्हें जगाकर उनसे शंख का वध करने की प्रार्थना की। विष्णु ने मत्स्यरूप धारण करके समुद्र में प्रवेश किया और उसका वध किया।

(२) एक ऋषि। इसके पिता का नाम जैगीषव्य, माता का नाम एकपर्णा और भाई का नाम लिखित था। महाभारत में इन दोनों भाइयों की कथा विस्तार से उल्लिखित है। ये दोनों धर्मशास्त्र के ज्ञाता थे। शंख विरचित 'लघुशंखस्मृति', 'बृहत्शंखस्मृति' और 'शंख-लिखित-स्मृति' उपलब्ध हैं। अंतिम स्मृति दोनों भाइयों की संयुक्त कृति है।

शङ्खचूड—असुरविशेष। यह असुर महादेव के हाथों मारा गया था। इसकी पत्नी का नाम तुलसी था।

शची—देवराज इंद्र की पत्नी का नाम। यह दानवराज पुलोमा की कन्या थी।

शतद्रु—पंजाब की सतलुज नदी का नाम।

शतधन्वा—मिथिला का एक भोजवंशीय राजा। इसके पिता का नाम हृदीक और भाई का नाम कृतवर्मन् था। कलिंगराज चित्रांगद की कन्या के स्वयंवर में

यह उपस्थित था। एक बार यादवराजा समाजित् या शक्तिसेन से स्यमंतक मणि लेकर यह भाग गया था। श्रीकृष्ण ने इसका वध करके इससे मणि प्राप्त की थी। (भागवत)

शतानन्द—महर्षि गौतम के ज्येष्ठ पुत्र। ये अहल्या के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। जिस समय रामचंद्र धनुर्भङ्ग के लिए मिथिला में सीरध्वज जनक के यहां गए थे, उस समय शतानंद जनकराज के पुरोहित थे।

शतानीक—(१) मत्स्यदेशाधिपति विराट का छोटा भाई।

(२) चतुर्थ पांडव नकुल का पुत्र। यह द्रौपदी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। भारत युद्ध के अंतिम दिन रात्रि को अश्वत्थामा ने पांडव शिविर में घुसकर इसकी हत्या की थी।

शत्रुघ्न—अयोध्याधिपति राजा दशरथ के सबसे छोटे पुत्र। सुमित्रा के गर्भ से इनका जन्म हुआ था। ये लक्ष्मण के सहोदर भाई थे और रामचंद्र के वैमात्रेय भाई थे। कुशध्वज जनक की कन्या श्रुतिकीर्ति को इन्होंने ब्याहा था। शत्रुघ्न ने मधु नामक राक्षस का विनाश करके मथुरा को नये सिरे से बसाया था। नवनिर्मित पुरी में अपने दोनों पुत्रों को रखकर आप अयोध्या लौट आए। इन्होंने राम के साथ सरयू में देहविसर्जन किया।

शनि—सूर्य के पुत्र। सूर्य की पत्नी छाया के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी।

शबरी आश्रम—'रामायण' में इसका उल्लेख हुआ था। यहां मातंग ऋषि का आश्रम था। यहीं पर तपस्विनी शबरी रहती थी, जिसको राम-लक्ष्मण का आतिथ्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

शमीक—एक क्षमाशील तपःप्रभावसंपन्न ऋषि। महाराज परीक्षित् एक दिन अहेर खेलने वन में गए, वहां एक मृग का पीछा करते-करते वे एक ऋषि के निकट उपस्थित हुए और इन्होंने ऋषि से मृग के विषय में पूछा। मौनी ऋषि ने राजा के प्रश्न का कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इससे क्रुद्ध होकर राजा ने एक मृत सर्प ऋषि के गले में डाल दिया। इस प्रकार अपमानित होने पर भी क्षमाशील महर्षि कुछ भी नहीं बोले। इसी समय शमीक के पुत्र शृंगी ने अपने साथी बालकों से पिता की दुर्दशा सुनी। शृंगी ने क्रुद्ध होकर शाप दिया। जिसने हमारे पिता के गले में मृत सर्प लपेटा है उसकी आज के सातवें दिन, तक्षक के काटने से मृत्यु होगी। इस बात को सुनकर शमीक ने पुत्र का बहुत तिरस्कार किया और अनेक प्रकार के उपदेश देकर शाप प्रत्याहार करने के लिए कहा। परंतु पुत्र ने किसी भी प्रकार शाप प्रत्याहार नहीं किया।

शम्बर—असुर विशेष। श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के हाथ यह मारा गया था। (देखो प्रद्युम्न)

शम्बुक—त्रेतायुग के शूद्रजातीय एक तपस्वी। शूद्र को तपस्या करने का अधिकार नहीं है। यह शास्त्रमर्यादा लंघन करके तपस्या करता था। इस कारण राम के राज्य के समय एक ब्राह्मण का पुत्र मर गया था। अकाल मृत्यु से मृत उस ब्राह्मण बालक को जीवित करने के लिए रामचंद्र घर से निकले। उन्होंने शंबुक को तपस्या करते देख उसका सिर काट लिया।

शम्भु जी—छत्रपति शिवाजी के ज्येष्ठ पुत्र। ये सन् १६५८ ई० में उत्पन्न हुए थे। दिल्ली के बादशाह औरंगजेब की चालाकी से शिवाजी जब दिल्ली में कैद हुए उस समय पिता के साथ ये भी भाग गए थे। शिवाजी की मृत्यु होने पर सन् १६८० ई० से सन् १६८९ ई० तक इन्होंने राज्य किया था। तदनंतर मुगल सेना इनको कैद करके दिल्ली ले आई और दिल्ली में औरंगजेब ने बड़ी निर्दयता से इन्हें मार डाला। ये विषयासक्त और मद्यप थे।

शम्भुनाथ कवि—ये हिंदी के कवि बंदीजन थे। ये सं० १७९८ वि० में उत्पन्न हुए थे। 'रामविलास' नामक एक बहुत सुंदर ग्रंथ इन्होंने लिखा है। इस ग्रंथ में अनेक छंद हैं।

शम्भुनाथ त्रिपाठी—ये हिंदी के कवि डौड़ियाखेरा के रहने वाले थे। इनका जन्म सं० १८०९ वि० में हुआ था। ये राजा अचलसिंह के दरबारी कवि थे। इन्होंने राव रघुनाथसिंह के नाम से वैतालपचीसी को संस्कृत से हिंदी में अनूदित किया है। मुहूर्तचिंतामणि का भी नाना छंदों में इन्होंने हिंदी में अनुवाद किया है।

शम्भुनाथ पण्डित—कलकत्ता हाईकोर्ट के सर्वप्रथम देशी जज। शंभुनाथ कश्मीरी ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम सदाशिव पंडित था। सन् १८२० ई० में कलकत्ता में शंभुनाथ का जन्म हुआ। इनके चाचा कलकत्ता की सदर अदालत में पेशकार का काम करते थे। चाचा अपुत्र थे। इस कारण उन्होंने बड़े भाई की सम्मति से शंभुनाथ को दत्तक ग्रहण किया। कलकत्ता में शंभुनाथ का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता

था। इस कारण ये लखनऊ पढ़ने के लिए भेज दिए गए। वहां कुछ उर्दू और फारसी पढ़कर अंग्रेजी पढ़ने के लिए ये काशी आए। काशी से कलकत्ता जाकर ये ओरियेंटल सेमिनरी में भर्ती हुए। इस समय इनकी अवस्था १४ वर्ष की थी। वहां इन्होंने अंग्रेजी साहित्य में विशेष ज्ञान प्राप्त कर लिया। इन्हें सन् १८४१ ई० में सदर अदालत में २० रुपये मासिक का एक क्लर्क का पद मिला। सन् १८४६ ई० में ये डिगरी जारी कराने के मुहर्रिर हुए। इसी समय इन्होंने डिगरी जारी कराने के संबंध में एक ग्रंथ लिखा, जिसके कारण जजों ने इनकी बड़ी प्रशंसा की। सन् १८४८ ई० में इन्होंने वकालत की परीक्षा दी और ये उसमें उत्तीर्ण हुए। इसी वर्ष नवंबर महीने से ये वकालत करने लगे। थोड़े ही दिनों में फौजदारी मुकदमे में इनकी बड़ी प्रसिद्धि हुई। सन् १८५५ ई० में ये जूनियर सरकारी वकील नियत हुए। इसी समय ४०० रुपये मासिक वेतन पर ये प्रेसिडेंसी कालेज में कानून के अध्यापक हुए। इसके थोड़े दिनों के बाद ये हाईकोर्ट के जज हो गए। सन् १८६७ ई० में पिड़की रोग से इनकी मृत्यु हुई। ये स्त्रीशिक्षा के पक्षपाती थे। सबसे पहले इन्होंने ही अपनी कन्या को वेथून कालेज में पढ़ने के लिए भेजा था। इन्होंने भवानीपुर में एक अस्पताल बनवाया था, जो शंभुनाथ हास्पिटल के नाम से प्रसिद्ध है।

शम्भुनाथ मिश्र—(१) ये हिंदी के कवि थे और इनका जन्म सं० १८०३ वि० में हुआ था। ये भगवंतराय खीची के यहां असोथर में रहते थे। इन्होंने अनेक शिष्यों को कवि बना दिया है। 'रसकल्लोल', 'रसतरंगिणी' और 'अलंकारदीपक' नामक तीन ग्रंथ इन्होंने लिखे हैं।

(२) ये बैसवारे के रहने वाले और हिंदी के कवि थे। सं० १६०१ वि० में इनका जन्म हुआ था। ये राणा यदुनार्थसिंह खजूर गांव के यहां रहते थे। ये छोटी ही अवस्था में मरे थे। बैशवंशावली और शिवपुराण के चतुर्थ खंड का इन्होंने हिंदी अनुवाद किया है।

शम्भुनाथसिंह—ये सोलंकी क्षत्रिय थे। ये सीतारागढ़ के रहने वाले थे। सं० १७३८ वि० में इनका जन्म हुआ था। ये मतिराय त्रिपाठी के मित्र थे। ये कवियों का बड़ा आदर करते थे। इन्होंने नायिका-भेद का कोई ग्रंथ भी लिखा है। (शिवसिंहसरोज)

शम्भुप्रसाद कवि—ये भी हिंदी के कवि थे। इनकी शृंगाररस-संबंधी कविता उत्तम होती थी। (शिवसिंहसरोज)

शम्भुसिंह—मेवाड़ के महाराणा। इनके पिता का नाम शार्दूलसिंह था। महाराणा स्वरूपसिंह की मृत्यु होने पर उनके भतीजे शंभुसिंह मेवाड़ की राजगद्दी पर बैठे। सन् १८६१ ई० में इनका राज्याभिषेक हुआ था। उस समय ये बालक थे, इस कारण एक शासक समिति स्थापित की गई और वही शासन करने लगी। परंतु उस शासक समिति के सदस्य मनमाना व्यवहार करने लगे। इस कारण गवर्नमेंट को दूसरी व्यवस्था करनी पड़ी। अबकी बार तीन आदमियों की एक समिति बनी। इसके सभापति हुए स्वयं पोलिटिकल एजेंट साहब।

महाराणा शंभुसिंह को १८६५ ई० के नवंबर महीने में शासन का अधिकार प्राप्त हुआ। परंतु दुःख की बात है कि महाराणा शंभुसिंह का अधिकार मेवाड़ पर बहुत दिनों तक नहीं रहा। बहुत थोड़े ही दिनों में सन् १८७४ ई० के अक्तूबर महीने की सात तारीख को २७ वर्ष की अवस्था में इनका परलोकवास हो गया। प्रजा ने सोचा था कि महाराणा शंभुसिंह के शासन में सुख से समय बीतेगा। किंतु उनकी वह मधुर आशा ज्यों की त्यों रह गई। (टाड्स राजस्थान)

शरभङ्ग—एक महर्षि। ये दक्षिण में रहते थे। वनवास के समय रामचंद्र इनका दर्शन करने गए थे। ये उन महर्षियों में से एक हैं जिन लोगों ने अरण्यानी परिवृत्त दक्षिण देश में आर्यसभ्यता का विस्तार किया था। (रामायण)

शरावती—गुजरात की सांभरमती नदी।

शर्मिन्—अगस्त्य कुल का एक ब्राह्मण, जो गंगा-यमुना नदियों के बीच यामुन पर्वत की तलहटी स्थित पर्णशाला नामक गांव में रहता था। इस गांव में इसी नाम के दो ब्राह्मण और रहते थे। एक बार यम की आज्ञा से उसके दूत इसी नाम के दूसरे ब्राह्मण को ले आए; किंतु यम ने अपने दूतों की भूल का प्रायश्चित्त किया और लाए गए ब्राह्मण का सम्मान करके उसे विदा किया। तदनंतर यमदूत इसे पकड़कर ले गए; किंतु मृत्युयोग बीत जाने पर यम ने इसे भी छोड़ दिया और इसे भी ससम्मान विदा किया।

शर्मिष्ठा—दैत्यपति वृषपर्वा की कन्या। (देखो देवयानी)

शर्याति—एक राजा का नाम। इन्हींकी कन्या महर्षि

च्यवन को ब्याही गई थी।

शल—(१) अयोध्या का एक राजा। इसके माता-पिता का नाम क्रमशः परीक्षित् एवं सुशोभना था। इनके दो भाई थे, जिनके नाम दल और बल थे। एक बार जंगल में मृगया से थककर वह वामदेव ऋषि के आश्रम में गया। इसने कुछ समय के लिए वामदेव ऋषि के अश्व मांगे। उन्हें थोड़े समय में ही ऋषि को लौटाना था। किंतु इसने उन अश्वों को लौटाने से सर्वथा इनकार कर दिया। उनपर इसने अपना अधिकार प्रचारित किया। इसपर क्रुद्ध होकर ऋषि ने चार राक्षसों को उत्पन्न किया और उन्हींके द्वारा शल का वध करा दिया।

(२) कुरुवंश का एक राजा। इसके पिता का नाम सोमदत्त और भाई का नाम भूरिश्रवस् था। इसका पैतृक नाम सांयमनि था। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में यह सम्मिलित हुआ था। भारत-युद्ध में यह कौरवपक्षीय था। श्रुतकर्मन् ने इसका वध किया था। (महाभारत)

शल्य—भद्र देश के अधिपति। द्रौपदी के स्वयंवर के समय ये भीमसेन के साथ मल्लयुद्ध में हार गए थे। कुरुक्षेत्र के युद्ध में इन्होंने दुर्योधन का पक्ष ग्रहण किया था। युद्ध के १६वें और १७वें दिन महावीर कर्ण के ये सारथि हुए थे। कर्ण की मृत्यु होने पर युद्ध के १८वें दिन ये सेनापति बनाए गए और युधिष्ठिर के हाथ से मारे गए।

शवरी—एक शवर तपस्विनी। सीताजी को ढूंढ़ने के लिए रामचंद्रजी जब वन-वन घूमते थे उस समय वे इस तपसी के आश्रम में गए थे। इन्होंने रामचंद्र की अभ्यर्थना की और उन्हींकी अनुमति से उन्हींके सामने चिता में देह विसर्जन की।

शशबिन्दु—एक महान् तपस्वी एवं यादववंशीय चक्रवर्ती राजा। इनके पिता का नाम राजा चित्ररथ था। महाभारत में महर्षि नारद द्वारा संजय को जिन सोलह सुव्यवस्थित राजाओं के आख्यान सुनाए गए थे, उनमें से इसका भी एक आख्यान था। यह महान् पुण्यशाली राजा महेश्वर भगवान् का परम उपासक था। इसके आख्यान में बताया गया है कि इसकी दस हजार रानियां थीं, जिनमें से प्रत्येक के दस हजार पुत्र हुए। इसकी कन्या बिंदुमती का विवाह राजा मांधाता से हुआ था। (महाभारत, भागवत)

शशाद—एक यादववंशीय राजा, जिसका 'विकुक्षि' नामांतर भी प्राप्त होता है। यह अपने पिता के सौ पुत्रों में से ज्येष्ठ था। एक बार इसके पिता ने इसे मांस लाने के लिए जंगल में भेजा। इसने दस हजार प्राणियों का वध किया। क्षुधावश इसने खरगोश का मांस खा लिया। यह जानकर इसके पिता ने इसे राज्य से निष्कासित कर दिया और इसका 'शशाद' नाम रख दिया। पिता की मृत्यु के बाद इसने इसी नाम से अयोध्या में राज्य किया। पुराणों में इसके सौ या एक सौ त्रेसठ पुत्रों का उल्लेख मिलता है। (भागवत)

शाकटायन—एक प्राचीन व्याकरण-प्रणेता ऋषि। इनके ग्रंथ इस समय दुर्लभ हैं। किंतु इस समय के प्रचलित व्याकरणों में इनका सिद्धांत उद्धृत किया हुआ मिलता है।

शाकपूणि—एक पुरातन वैयाकरण, जिसके मत का यास्क ने अपने 'निरुक्त' में एकाधिक बार उल्लेख किया है। यास्क ने लिखा है कि एक बार वैदिक देवता-ज्ञान के जिज्ञासु शाकपूणि के समक्ष देवता स्वयं उपस्थित हुए और उन्होंने इसे ऋग्वेद की ऋचा का अर्थ बताया। ऋग्वेद के मंत्रद्रष्टा आचार्य के रूप में इसकी ख्याति हुई।

शाकल—वेदमित्र शाकल्य की शिष्य-परंपरा का सामूहिक नाम। इस परंपरा द्वारा संकलित ऋग्वेद की संहिता शाकल शाखा के अंतर्गत मानी जाती है। वैयाकरण पाणिनि ने भी 'शाकल' शब्द से 'शाकल्य का शिष्य' अर्थ लिया है। यद्यपि मैक्समूलर आदि आधुनिक वेद-भाष्य के अनुवादक विद्वानों ने शाकल को एक आचार्य माना है; किंतु यह भ्रममूलक धारणा है। ऋग्वेद की संहिता का नाम शाकल कहा गया है, जिसके प्रवर्तक थे—मुद्गल, गालव, शालीय, वात्स्य और शैशिरेय। ये पांचों शाकल के शिष्य थे। इस शाखा का एक 'प्रातिशाख्य' ग्रंथ भी उपलब्ध है, जिसे शौनक द्वारा विरचित बताया जाता है। इस प्रातिशाख्य में वेदमित्र शाकल का 'शाकल्यपिता' या 'शाकल्यस्थविर' के नाम से उल्लेख हुआ है। शौनक, शैशिरेय शाखा का आचार्य था। शौनक द्वारा विरचित 'अथर्व प्रातिशाख्य' भी उपलब्ध है जो 'चतुराध्यायिका' के नाम से प्रसिद्ध है।

शाकल्य—ऋग्वेद का शाखा-प्रवर्तक आचार्य और वेदव्यास के प्रमुख शिष्यों में से एक। इसे 'शतपथ ब्राह्मण' में विदग्ध शाकल्य, 'ऐतरेय आरण्यक' में स्थविर शाकल्य और पुराणों में वेदमित्र (या देवमित्र) शाकल्य नाम

से अभिहित किया गया है। व्यास द्वारा इसे जो ऋग्वेद की संहिता उपलब्ध हुई थी, वह 'शाकल संहिता' के नाम से संप्रति प्रसिद्ध है। इसने ऋग्वेद की 'शाकल संहिता' पदपाठ व्यवस्थित किया था और स्वयं तथा अपने अनेक शिष्यों द्वारा उसका प्रवचन तथा प्रवर्तन किया था। ऋग्वेद की पांच शाखाओं में से केवल 'शाकल शाखा' ही उपलब्ध है। वैदिक तथा लौकिक व्याकरण ग्रंथों से शाकल्य को एक वैयाकरण भी कहा गया है। याज्ञवल्क्य वाजसनेय से इसका वाद-विवाद हुआ था। 'महाभारत' में कहा गया है कि इसे शिव द्वारा, इसे ख्यातनाम सूत्रकार या ग्रंथकार होने का वरदान प्राप्त हुआ था। इसके द्वारा निश्चित 'शाकल्यसंहिता' तथा 'शाकल्यमत' नामक ग्रंथ उपलब्ध हैं।

शाक्त—एक संप्रदाय का नाम। शक्ति के उपासक भी 'शाक्त' कहे जाते हैं। इस संप्रदाय का मत है कि चाहे कोई मनुष्य भगवान् की जिस किसी रूप में पूजा क्यों न करें, परंतु उन्हें भी शक्ति का सहारा लेना पड़ता है। अर्थात् वे भी भगवान् की शक्ति की ही उपासना करते हैं। वेद, पुराण आदि समस्त शास्त्रों में शक्ति की प्रधानता कीर्तित है। शक्ति की उपासना सृष्टि के आदिकाल से प्रचलित है। तंत्रशास्त्रों में लिखा है कि शक्ति के उपासक ही प्रधानतः ब्राह्मण हैं। शक्ति को उद्देश्य करके ही गायत्री मंत्र का विधान है। शास्त्रों में शक्ति और परब्रह्म का अभेद बताया गया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण के प्रकृतिखंड में नारद और नारायण के कथोपकथन में इसी तत्त्व का उपदेश किया गया है। नारद ने पूछा—सृष्टिकार्य में दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री इन पांच प्रकृतियों की उपयोगिता बतलाई गई है, परंतु ज्ञानी लोग प्रकृति को ही सर्वश्रेष्ठ बतलाते हैं। उनका लक्षण क्या है? और उनमें पांच भेद क्यों हुए? नारायण ने उत्तर दिया—'प्र' उपसर्ग का अर्थ प्रकृष्ट है और 'कृति' शब्द का अर्थ सृष्टि है। अतएव सृष्टिकार्य में जो प्रधान है उसे 'प्रकृति' कहते हैं। श्रुतियों में 'प्र' का अर्थ सत्त्वगुण, 'कृ' का अर्थ रजोगुण और 'ति' का अर्थ तमोगुण है। अतः त्रिगुणात्मिका सर्वशक्तिसंपन्ना देवी को 'प्रकृति' कहते हैं। 'प्र' उपसर्ग का अर्थ प्रथम और 'कृति' शब्द का अर्थ सृष्टि है, सृष्टि की आदिभूत देवी को 'प्रकृति' कहते हैं। पूर्वोक्त प्रश्नोत्तर से मालूम पड़ता है कि परब्रह्म ही मूल प्रकृति के नाम से अभिहित होते हैं और वे ही दुर्गा आदि पांच भागों में विभक्त हुई हैं। नारायण के उत्तर में यह बात भी देखी जाती है कि प्रधान पुरुष परमात्मा योग के द्वारा दो भागों में विभक्त हुए। उनके दक्षिण भाग से पुरुष और वाम भाग से स्त्री उत्पन्न हुई। सामवेद में भी प्रकृति-पुरुष का यही स्वरूप लिखा है—वे (परमात्मा) सृष्टि करने की इच्छा से प्रकृति और पुरुष के रूप में विभक्त हुए। ऋग्वेद के दशम मंडल में इसी प्रकार का एक सूक्त देखा जाता है, जिससे मालूम पड़ता है कि केवल नाम-रूप का ही भेद है। तंत्रशास्त्रों में शक्ति-उपासना की पद्धति बड़े विस्तार से लिखी है। अधिकारिभेद के अनुसार, जिसके लिए जैसी उपासना कल्याणप्रद है उस उपासना का वर्णन है। आचारतत्त्व और भावतत्त्व का ज्ञान होने से शक्ति-उपासना के तत्त्व जाने जा सकते हैं। तंत्रों में नव प्रकार के आचार लिखे गए हैं। कौलाचार सब आचारों में श्रेष्ठ समझा जाता है। कौलाचार नामक ग्रंथ में शिव ने पार्वती के प्रति कौल का लक्षण इस प्रकार बतलाया है—जिनको दिक् काल का नियम नहीं है, तीर्थ आदि का भी नियम नहीं है और न ही महामंत्र-साधन का कोई नियम है, जो कभी उत्तम, कभी भ्रष्ट, कभी भूत-प्रेत के समान रूप धारण करके विचरण करते हैं, जिन्हें कीचड़ और चंदन में भेद का ज्ञान नहीं, शत्रु-मित्र, श्मशान-भवन, स्वर्ण-तृण आदि को जो समान दृष्टि से देखते हैं वे ही कौलाचारी हैं। तंत्रशास्त्रों में वर्णित भाव तीन प्रकार के हैं—दिव्यभाव, वीरभाव और पशुभाव।

(भारतवर्षीय इतिहास)

शाङ्खायन—ऋग्वेद का एक प्रभावशाली शाखाप्रवर्तक आचार्य, जिसने संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और श्रौत गृह्य सूत्रों की रचना की। कुषीतक ऋषि का पुत्र होने के कारण इसके द्वारा विरचित वैदिक साहित्य 'कौषीतकि' या 'शाङ्खायन' नाम से प्रचलित है। इसका एक 'सुयज्ञ' नामांतर भी प्राप्त है। ऋग्वेद संहिता की पांच शाखाओं—शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, शांखायन और मांडुकेय में शांखायन शाखा का प्रणेता आचार्य शांखायन है। ऋग्वेद संहिता के दो ब्राह्मण ग्रंथ उपलब्ध हैं—'ऐतरेय' और 'शांखायन' (कौषीतकि)। इसी प्रकार इस शाखा के ब्राह्मण, आरण्यक और सूत्र-ग्रंथ भी उपलब्ध हैं। आचार्य शांखायन की परंपरा अत्यंत

समृद्ध एवं सर्वांगीण रूप में निरंतर प्रवर्तित होती गई और ऋग्वेद संहिता के अतिरिक्त वैदिक साहित्य की उत्तरोत्तर उन्नति में उसका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

शाटचायनि—एक शाखा प्रवर्तक आचार्य के रूप में इसका ब्राह्मण-ग्रंथों में विशेष रूप से उल्लेख हुआ है। इसके द्वारा विरचित 'शाटचायन ब्राह्मण' संप्रति उपलब्ध है। शाटचवंशीय होने के कारण इसका ऐसा नामकरण हुआ। इसका अंग नाम भी प्राप्त होता है। इसे ज्वालायन तथा बादरायण का शिष्य बताया गया है। 'जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण' का रचयिता भी इसे ही माना जाता है। यह ग्रंथ इंद्र ने ज्वालायन आचार्य को प्रदान किया और उसका ज्ञान शाटचायनि को प्राप्त हुआ। इसकी परंपरा शिष्य-क्रम से ऋातुजातेय वैयाघ्रपद्य को प्राप्त हुई।

शाण्डिल्य—पाक्षिक क्रियाओं में परिनिष्ठित एक आचार्य। शांडिलवंशीय होने के कारण इसका ऐसा नामकरण हुआ। वात्स्य नामक आचार्य इसके गुरु थे। यज्ञ-क्रियाओं में श्रेष्ठता प्राप्त करने के कारण शांडिल्य को 'यज्ञाग्नि' नाम से कहा गया है। 'शतपथ ब्राह्मण' के छह से नौ तक के चार अग्नियन-संबंधी कांडों का प्रमुख आचार्य शांडिल्य ही है। यज्ञ-वेदि की रचना करने वाले प्रसंगों में इसका मत अनेक बार उद्धृत किया गया है। 'बृहदारण्य उपनिषद्' में इसके गुरुओं के नाम दिए गए हैं, जो कि इस प्रकार हैं—कैशोर्य, काप्य, वैष्ठपुरेय, कौशिक, गौतम, बैजवाप, आनभिम्लात और काण्व। इसके इसी ग्रंथ में इसके शिष्यों के नाम दिए गए हैं—कौण्डिन्य, आग्निवेश्य, वात्स्य, वामदक्षायण, वैष्ठपूरेय और भारद्वाज। यह महान् तत्त्वज्ञानी विद्वान् था और आत्मा के 'महत्तम' तथा 'लघुतम' स्वरूपों का इसने विनिश्चय किया था। एक गोत्रकार आचार्य के रूप में भी इसका उल्लेख हुआ है। इसके नाम से उपलब्ध ग्रंथ इस प्रकार हैं—'शांडिल्यस्मृति', शांडिल्यधर्मसूत्र' और 'शांडिल्य-तत्त्वदीपिका'।

शातातप—एक प्रसिद्ध स्मृतिकार आचार्य। इसके द्वारा विरचित षडध्यायी गद्यपद्यात्मक स्मृति 'स्मृतिसंहिता' में प्रकाशित है। इसके द्वारा विरचित अन्य स्मृति-ग्रंथों के नाम हैं—'शातातपस्मृति', 'लघु शातातप-स्मृति' और 'बुद्ध शातातपस्मृति'। इसकी स्मृति को मिताक्षराकार तथा विश्वरूप ने उद्धृत किया है। इसके अपनी स्मृति में शुक्ल यजुर्वेदीय ब्राह्मणों में प्रचलित मातृगोत्र का पालन करने का निर्देश दिया है।

शान्तनव—एक वैदिक वैयाकरण। इसका पितृनाम शंतनु था। तद्धित प्रत्ययान्त होने से इसे शांतनव कहा जाने लगा। इसने वैदिक स्वरप्रक्रिया पर अपने प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ 'फिट् सूत्रों' का निर्माण किया। इन सूत्रों की संख्या ८७ है, जो चार पादों में विभक्त हैं। इन सूत्रों को पतंजलि, काशिकाकार, कैयट, महोजि दीक्षित और नागेश भट्ट आदि सभी प्रख्यात वैयाकरणों ने उद्धृत किया है। ये फिट् सूत्र वैदिक व्याकरण के ही नहीं, पाणिनीय व्याकरण के भी महत्त्वपूर्ण अंग माने जाते हैं। इनके द्वारा पाणिनीय व्याकरण की परंपरा को बड़ा बल मिला है।

शान्तनु—महाभारत युद्ध के प्रख्यात योद्धा महावीर भीष्म-पितामह के पिता का नाम। शान्तनु के पिता का नाम प्रतीप था। गंगादेवी ने शान्तनु की पत्नी होना स्वीकार किया और उनके गर्भ से भीष्म नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ (देखो वसु)। वसुराज की कन्या सत्यबती के रूप से मोहित होकर शान्तनु ने उसे ब्याहने की इच्छा प्रकट की, परंतु सत्यवती का पिता उनसे सहमत नहीं हुआ। परंतु बाद में उसने कहा—यदि शान्तनु सत्यवती के पुत्र को राज्य देना स्वीकार करें तो मैं अपनी लड़की ब्याह दूं। वृद्ध राजा शान्तनु दासराज की इस बात को सुनकर अंतस्तप्त होने लगे। यह सुनकर भीष्म अपने पिता से ब्याह कर लेने के लिए दृढ़ता से अनुरोध करने लगे और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं राज्य नहीं लूंगा और अपना ब्याह भी नहीं करूंगा। इसी सत्यवती के गर्भ से शान्तनु को विचित्रवीर्य और चित्रांगद उत्पन्न हुए थे।

शान्ता—अयोध्याधिपति दशरथ की कन्या और महर्षि ऋष्यश्रृंग की पत्नी। दशरथ ने अपने मित्र अंगदेशाधिपति लोमपाद को अपनी कन्या शांता पोष्यपुत्रिकारूप में दी थी। (देखो ऋष्यश्रृंग)

शाम्ब—श्रीकृष्ण के पुत्र। ये जाम्बवती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। दुर्योधन की कन्या लक्ष्मणा को इन्होंने ब्याहा था।

शाङ्र्गदेव—एक प्राचीन कलापारंगत विद्वान्। इन्होंने 'संगीतरत्नाकर' नाम की एक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में संगीतशास्त्र के नियमों तथा तत्त्वों का सन्निवेश है।

शार्ङ्गधर—एक वैद्य का नाम। इन्होंने वैद्यक की एक पुस्तक अपने नाम से लिखी है।

शालग्राम क्षेत्र—नेपाल में गंडकी नदी के मोहाने के समीप। मैसूर राज्य में भी इस नाम का एक स्थान है।

शालिवाहन—वर्षप्रवर्तक शकजातीय राजा। इन्होंने जिस अब्द को चलाया था उसका नाम शक है। ये गजनी के राजा महाराज गज के पुत्र थे। महाराज गज के मारे जाने पर कुमार शालिवाहन पंजाब चले आए। पंजाब पर इन्होंने अपना अधिकार कर लिया। वहां शालिवाहनपुर नाम का एक गांव इन्होंने बसाया। राजा शालिवाहन ने विक्रम संवत् ७२ के भादो में शालिवाहनपुर नामक नगर बसाया। इनके १५ पुत्र थे। (टाड्स राजस्थान)

शालिहोम—एक प्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञ। प्राचीन भारतीय वैद्यक परंपरा में इसे अश्वविद्या का आद्य आचार्य माना जाता है। पंचतंत्रकार और वात्स्यायन ने इसका उल्लेख अश्वशास्त्रज्ञ एवं आयुर्वेदाचार्य के रूप में किया है। महाभारत के अनुसार, शालिहोम घोड़ों की विभिन्न जातियों से संबद्ध अश्वविद्या का प्रवीण आचार्य था। इसने आचार्य सुश्रुत को अश्व आयुर्वेद का ज्ञान दिया था। महाभारत में इसका उल्लेख एक श्रेष्ठ ऋषि के रूप में हुआ है, जिसके आश्रम में व्यास तथा पांडव भेंट लेने के लिए गए थे। इसके आश्रम के निकट एक सरोवर एवं पवित्र वृक्ष था। इनका निर्माण इसने अपनी तपस्या के बल पर किया था। इस सरोवर का जल पी लेने से भूख-प्यास दूर हो जाती थी। इसके नाम से शालिशूर्प या शालिसूर्प नामक एक तीर्थस्थान प्रसिद्ध हुआ, जिसमें स्नान करने मात्र से सहस्र गोदान का फल प्राप्त होता था। इसके द्वारा विरचित 'शालिहोम' या 'शाल्यहोम' नामक ग्रंथ उपलब्ध है। इसका एक अनुवाद अरबी भाषा में १३६१ ई० में हुआ था।

शाल्मली द्वीप—प्लक्षद्वीप के अनंतर शाल्मली द्वीप है। यहां के राजा वपुष्मान् थे। इस द्वीप में भी उनके सात पुत्रों के नामानुसार सात विभाग हैं। उन विभागों के नाम श्वेत, हारीत, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ आदि हैं। यह प्लक्षद्वीप से द्विगुणा बड़ा है। यह द्वीप इक्षुसमुद्र और सुरासमुद्र द्वारा वेष्टित है।

शाल्व—प्रबल नरपति विशेष। काशीराज की तीन कन्याओं के हरण के समय भीष्म के साथ इनका युद्ध हुआ था। भीष्म ने इन्हें पराजित करके तीनों कन्याओं का हरण किया। उन कन्याओं में सबसे बड़ी अम्बा ने शाल्व को मन ही मन पति बनाया था। अतः भीष्म ने अम्बा को छोड़ दिया। अम्बा शाल्व के पास गई, परंतु शाल्व ने उसे स्वीकार नहीं किया।

शिखण्डी—द्रुपदराज का एक नपुंसक पुत्र। इस नपुंसक शिखंडी को आगे रखकर महाभारत के युद्ध में अर्जुन ने युद्ध के दसवें दिन भीष्म का वध किया था। भीष्म की प्रतिज्ञा थी कि वे किसी स्त्री पर बाण नहीं चलाएंगे। भीष्म का वध करने के लिए अर्जुन ने इस कुटनीति का अवलंबन किया था। भीष्म का वध करने के लिए दूसरी कोई गति ही नहीं थी।

शिखंडी पूर्वजन्म में अम्बा नाम की काशीराज की बड़ी कन्या था। अम्बा ने शाल्व को पति बनाना चाहा था, परंतु भीष्म के द्वारा स्वयंवर सभा से हरी जाने के कारण शाल्व ने उसे ग्रहण नहीं किया। इससे अम्बा को बड़ा कष्ट हुआ। वह भीष्म से प्रतिशोध लेने के लिए वन में जाकर कठोर तपस्या करने लगी। अंत में, उसे इष्ट देवता से यह वर मिला कि तुम दूसरे जन्म में भीष्म को मार सकोगी। वर प्राप्त करके उसने प्राणत्याग किया और द्रुपद के घर में शिखंडी के रूप में जन्म लिया। द्रुपदराज ने अपने इस नपुंसक पुत्र का ब्याह दशार्ण देश की राजकन्या के साथ किया था। विवाह के अनंतर शिखंडी की नपुंसकता जब प्रकाशित हुई, तब वह मारे लज्जा के वन में चला गया। वन में कुबेर के अनुचर से उसकी भेंट हुई और उसने अपना समस्त वृत्तांत उस कुबेर के अनुचर से कहा। कुबेर के अनुचर ने जीवन-पर्यंत अपना पुरुषत्व उसे दिया और उसका स्त्रीत्व ग्रहण किया। शिखंडी बड़ी प्रसन्नता से घर लौट आया। महाभारत युद्ध के अंतिम दिन अश्वत्थामा ने जिस समय पांडवों के शिविर में प्रवेश किया था, उसी समय अश्वत्थामा के हाथों शिखंडी मारा गया था।

शिनि—यदुवंशी प्रसिद्ध वीर। इन्होंने वसुदेव के लिए देवक की कन्या देवकी का बलपूर्वक हरण किया था। इसी कारण सोमदत्त के साथ शिनि का भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध में सोमदत हार गया। इनके पुत्र का नाम सत्यक था और पौत्र का नाम महावीर सात्यकि था।

शिफा—यह ऋग्वेदकालीन नदी संभवतः उत्तर-पश्चिम में कहीं बहती थी।

शिलादित्य—प्राचीन वल्लभीपुर के एक राजा का नाम। जिस समय म्लेच्छों ने वल्लभीपुर को विध्वंस किया, उस समय शिलादित्य का परिवार सौराष्ट्र में भाग आया था। अंतिम बार शिलादित्य का परिवार सौराष्ट्र से गायनी नामक नगर को जा रहा था, उस समय म्लेच्छों ने इनपर आक्रमण किया और सबको मार डाला। कहते हैं, यही शिलादित्य वर्तमान मेवाड़ के महाराणा के पूर्वपुरुष हैं। (टाड्स राजस्थान)

शिलूण—प्राचीन कलानिपुण एक विद्वान् का नाम। इन्होंने संगीतशास्त्र-संबंधी एक ग्रंथ लिखा है। उस ग्रंथ का नाम है 'राग-सर्वस्वसार'।

शिव—पौराणिक एक देवता का नाम। इनकी पत्नी का नाम पार्वती है। कार्तिकेय और गणेश नाम के इनके दो पुत्र हैं। महादेव की लिंगरूप से पूजा होती है। इसका कारण पद्मपुराण के उत्तरखंड में इस प्रकार लिखा है—

'देवादिदेव महादेव ने इस प्रकार निंदित रूप क्यों धारण किया ?' दिलीप ने एक समय वसिष्ठ से यही पूछा था। भगवान् वसिष्ठ ने उत्तर दिया—पुरा-काल में मंदर पर्वत पर ऋषियों ने एक बड़े यज्ञ का अनुष्ठान किया। उस यज्ञ में सभी ऋषि-मुनि एकत्रित हुए थे, वहां इस बात पर विचार होने लगा कि ब्राह्मणों को किस देवता की पूजा करनी चाहिए। परंतु उस विचार में कोई निश्चय नहीं हो सका। अतः सभी ने निश्चय किया कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव के समीप चलना चाहिए। वे ही इस संशय का निवारण करेंगे। सबसे पहले ऋषिगण महादेव के समीप गए। द्वार पर जाकर ऋषियों ने देखा कि द्वार बंद है और नंदी द्वार पर बैठा है। ऋषियों ने नंदी से कहा कि तुम शीघ्र ही महादेव के समीप जाकर हम लोगों के आने का संवाद दो। हम लोग महादेव को प्रणाम करने आए हैं। नंदी ने कड़ाई से उत्तर दिया—यदि तुम लोगों को अपने प्राणों का भय हो तो शीघ्र ही यहां से चले जाओ। इस समय महादेव का दर्शन नहीं होगा, क्योंकि इस समय वे पार्वती के साथ क्रीडा कर रहे हैं। यह सुनकर महर्षिगण क्षुब्ध हो गए और तेजस्वी भृगु ने कहा—महादेव ! तुमने स्त्रीसंगम में मुग्ध होकर हम लोगों का अपमान किया है, इस कारण योनि-लिंगरूप तुम्हारी मूर्ति होगी। तुम्हारे यहां ब्राह्मण उपस्थित हुए हैं, यह बात तुम्हें मालूम नहीं है। अस्तु, इसी कारण तुम्हारा निवेदित अन्न-जल आदि कोई नहीं ग्रहण करेगा। आज से ब्राह्मण तुम्हारी पूजा भी नहीं करेंगे। और जो कोई ब्राह्मण तुम्हारी पूजा करेगा, वह अब्राह्मण तथा पाखंडी हो जाएगा। इस प्रकार महादेव को शाप देकर भृगु मुनि ऋषियों को साथ लेकर ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के निकट चले गए।

शिव कवि—(१) ये हिंदी के कवि देउतहा जिला गोंडा के निवासी थे। इनका जन्म सं० १७९६ वि० में हुआ था। ये बंदीजन थे। असोथर के शंभु कवि से इन्होंने काव्यशास्त्र का अध्ययन किया था। ये जगत्सिंह बिसेन के यहां रहते थे। इन्होंने जगत्सिंह को काव्य में प्रवीण बनाया था। इनके लिखे तीन उत्तम ग्रंथ हिंदी साहित्य में हैं। उनके नाम ये हैं—'रसिकविलास', 'अलंकारभूषण' और 'पिंगल'।

(२) ये भी बंदीजन थे और बिलग्राम के रहने वाले थे। सं० १७९५ वि० में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने शृंगारविषयक 'रसनिधि' नामक एक ग्रंथ लिखा है।

शिवदीन कवि—ये कवि भिनगा जिला बहरायच के रहने वाले थे। ये कवि भिनगा के राजा कृष्णदत्तसिंह बिसेन के दरबार में रहते थे। इन्होंने हिंदी भाषा में 'कृष्णदत्तभूषण' नामक एक उत्तम ग्रंथ लिखा है।

शिवनाथ कवि—ये हिंदी भाषा के कवि थे और बुंदेलखंड के निवासी थे। छत्रसाल के पुत्र जगत्सिंह बुंदेला की सभा में ये वर्तमान थे। 'रसरंजन' नामक एक ग्रंथ इन्होंने लिखा है।

शिवनारायण—हिंदी साहित्य के इन प्रसिद्ध संत का जन्म बलिया जिला (उत्तरप्रदेश) के चंदवार गांव में हुआ था। इतिहासकारों ने इनका रचनाकाल १७००-१७८० ई० के बीच स्थिर किया है अतः उनका संभावित स्थितिकाल १५वीं शती के उत्तरार्द्ध से १८वीं शती के उत्तरार्द्ध के मध्य निश्चित किया जा सकता है। इनके गुरु का नाम दुःखहरणदास था, जिनको कि दुःखहर्ता भगवान् के रूप में माना जाता है। संत शिवनारायण जाति के नारौनी क्षत्रिय थे। मुहम्मदशाह और अहमदशाह इनसे अत्यंत प्रभावित थे। इन्हें अनेक ग्रंथों का रचयिता माना जाता है, जिनमें 'गुरु अन्यास', 'संत उपदेश', 'संत आखरी', 'संत सुंदर', 'संत विलास', 'संत परवाना' और 'शब्दावली' इनकी प्रामाणिक कृतियां मानी जाती हैं। इनकी रचनाओं में ज्ञान, भक्ति और योग का सुंदर समन्वय हुआ

है। इनकी भाषा सरल और भाव सुगम हैं। हिंदी साहित्य में इन्हें शिवनारायणी संप्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है। आज भी इनके मतानुयायी संतों की परंपरा विद्यमान है (डॉ० रामचंद्र तिवारी—शिव-नारायणी संप्रदाय और उनका हिंदी काव्य; आचार्य परशुराम चतुर्वेदी—उत्तरी भारत की संत-परंपरा)।

शिवप्रकाशसिंह—ये डुमरांव के महाराज जयप्रकाशसिंह के भाई थे। 'रामतत्त्वबोधिनी' नामक विनयपत्रिका की एक सुंदर टीका इन्होंने लिखी थी।

शिवप्रसाद सितारेहिन्द—ये प्रमारवंशी क्षत्रिय थे। इनके पूर्वज दिल्ली में जौहरी का काम करते थे। जैन धर्म इनका पुरुषानुक्रम का धर्म है। नादिरशाही के समय इनके पूर्वज दिल्ली से मुर्शिदाबाद भाग आए थे। नव्वाब कासिमअली खां के अत्याचार से पीड़ित होकर राजा शिवप्रसाद के पितामह डालचंद जी काशी आ बसे।

इनका जन्म माघ शुक्ल द्वितीया सं० १८८० वि० में हुआ था। इनके पिता का नाम बाबू गोपीचंद था। पांच वर्ष की अवस्था में ही इनकी शिक्षा का प्रबंध हो गया। पहले घर पर उर्दू और हिंदी का अध्ययन किया। तदनंतर ये बीबीहरिया के स्कूल में फारसी पढ़ने लगे। इसके पीछे इन्होंने संस्कृत का भी अभ्यास किया। जब राजा साहब की अवस्था १३-१४ वर्ष की थी उसी समय फोर्ट विलियम कालेज के प्रोफेसर तारणीचरण मित्र वास के निमित्त काशी आए। उनके पुत्रों से राजा साहब की मित्रता हो गई। राजा साहब ने उन्हींसे अंग्रेजी और बंगला भाषाएं सीखीं और १९ वर्ष की अवस्था में संस्कृत, हिंदी, अरबी, फारसी, अंगरेजी और बंगला में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।

इस प्रकार शिक्षा समाप्त कर चुकने पर अपने मामा की सहायता से बाबू शिवप्रसाद भरतपुर दरबार में नौकर हुए। वहां जाकर इन्होंने राज्य के दीवान को ८० कायस्थों सहित जेल भिजवाया, क्योंकि वह दीवान महाराज को दबाकर राज्य में मनमानी करता था। इससे प्रसन्न होकर भरतपुर के महाराज ने इन्हें अपना वकील बनाया।

कुछ काल के बाद भरतपुर की नौकरी छोड़कर ये घर चले आए और फिर भरतपुर न गए। सन् १८४५ ई० में इन्होंने अंग्रेज सरकार की सेवा स्वीकार की। उसी समय पंजाब में सिक्ख-युद्ध प्रारंभ हुआ था। राजा साहब अंग्रेजी सेना के साथ सरहद पर गए और वहां गवर्नर जनरल की आज्ञा से ये अपने साहस और वीरता पर भरोसा रखकर शत्रुसेना में घुस गए और वहां की तोपें गिन आए तथा और भी उनके भेद ले आए। फिर महाराज दिलीपसिंह को बंबई तक पहुंचाकर जहाज पर सवार करा आए।

सिक्खों से संधि हो जाने पर गवर्नर जनरल के साथ ये शिमला गए थे। वहां एक विशेष पद पर ये नियत किए गए। इन्होंने अंग्रेज सरकार की बड़ी सेवा की थी।

शिमला से आकर राजा साहब कुछ दिनों तक कमिश्नर साहब के मीर मुंशी रहे। परंतु इनकी विद्या की अभिरुचि देखकर सरकार ने इन्हें स्कूलों का इंस्पेक्टर नियत किया। अपनी इंस्पेक्टरी के समय राजा साहब ने हिंदी का बड़ा उपकार किया था। इन्होंने साहित्य, भूगोल, इतिहास आदि विषयों की लगभग ३५ पुस्तकें लिखी हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र इनके शिष्य थे।

सन् १८७२ ई० में इन्हें सी० एस० आई० अर्थात् सितारेहिंद की उपाधि सरकार से मिली थी और सन् १८८७ ई० में इन्हें वंशपरंपरा के लिए राजा की उपाधि मिली। सन् १८९५ ई० में आपका शरीरांत हो गया।

शिवसागर—यह प्राचीन कामरूप देश का अंग था। संप्रति शिवसागर जिला असम का अंग है। ब्रह्मपुत्र तथा धनसिरि इसकी दो प्रमुख नदियां हैं। यहां पर अहोम राजाओं द्वारा निर्मित अनेक मंदिर हैं, जो कि कलापूर्ण हैं और तालाबों के तटों पर बने हैं।

शिवसिंह—'शिवसिंहसरोज' के कर्त्ता। इन्होंने अपने सरोज में अपना परिचय इस प्रकार दिया है—अपना नाम लिखना इस ग्रंथ में बड़े अचंभे की बात है। कारण यह है कि हमको इस मार्ग में कुछ ज्ञान नहीं है। सो हमारी ढिठाई को विद्वज्जन माफ करेंगे। हमने बृहच्छिवपुराण को हिंदी और उर्दू दोनों बोलियों में उल्था करके छपाया है। हमने ब्रह्मोत्तरखंड को भी हिंदी में किया है। काव्य करने की मुझमें शक्ति नहीं। ग्रंथों को एकत्रित करने की हमें बड़ी अभिलाषा है। अरबी, फारसी, संस्कृत के सैकड़ों अद्‌भुत ग्रंथ हमने संग्रह किए हैं। इन भाषाओं का थोड़ा बहुत ज्ञान हमको भी है।

शिवाजी—राजा शाहजी भोंसला के पुत्र। राजा शाहजी

उस समय महाराष्ट्र देश में एक प्रधान वीर तथा उदारचित्त समझे जाते थे। उस समय दक्षिण देश में उनका सामना करने वाला कोई नहीं था। शिवाजी के जन्म से पहले राजा शाहजी अहमदनगर के सुलतान की नौकरी करते थे। उसी सुलतान की ओर से मुगलों से युद्ध करने के निमित्त जाने के समय राजा शाहजी ने अपनी गर्भवती पत्नी जीजाबाई को शिवनेरी नाम के दृढ़ दुर्ग में रख दिया। शिवनेरी पूना से ५० मील उत्तर की ओर है। राजा शाहजी की दो पत्नियां थीं, पहली का नाम जीजाबाई और दूसरी का नाम तुकाबाई था। जीजाबाई के गर्भ से शिवनेरी दुर्ग में सन् १६२७ ई० में शिवाजी का जन्म हुआ। शिवाजी के बड़े भाई का नाम शंभुजी था। जीजाबाई ने शिवनेरी दुर्ग की अधिष्ठात्री देवी के नामानुसार अपने पुत्र का नाम शिवाजी रखा। सन् १६३७ ई० में अहमदनगर का राज्य नष्ट होने पर राजा शाहजी ने बीजापुर के सुलतान का आश्रय ग्रहण किया। सुलतान ने शाहजी की कार्यपटुता देखकर उन्हें उच्चपद पर नियत किया। थोड़े दिनों के बाद उन्हें 'राजा' उपाधि भी मिली। इसी समय जीजाबाई और शिवाजी को भी वे बीजापुर ले गए। वहां सन् १८३७ ई० में बाई नाम की एक उच्चवंशीया कन्या से शिवाजी का ब्याह हुआ। इसके गर्भ से शिवाजी को को एक पुत्र हुआ जिसका नाम शंभुजी रखा गया। शिवाजी बाल्यावस्था से ही आततायी मुसलिम शासकों से घृणा करते थे। इसी कारण पिता के कहने पर भी पहले वे बीजापुर के सुलतान से भेंट करने नहीं गए। परंतु अंत में पिता के बहुत कहने-सुनने पर उन्हें जाना ही पड़ा।

सुलतान ने अल्पवयस्क शिवाजी का साहस और तेजस्विता देखकर एक बहुमूल्य शिरोपांवा देकर उन्हें सम्मानित किया। पुत्र को बीजापुर में रखना अनुचित समझकर शाहजी ने शिवाजी को पूना भेज दिया। जीजाबाई भी पुत्र के साथ ही पूना गईं। राजा शाहजी ने पत्नी और पुत्र की देख-रेख करने के लिए कई कर्मचारी पूना भेज दिए। राजा शाहजी धनी थे। बीजापुर के सुलतान के यहां से उन्हें बहुतसे गांव जागीर में मिले थे। उनको सर्वदा बीजापुर में रहना पड़ता था। इस कारण अपनी जमींदारी का प्रबंध करने के लिए दादोजी कोंडदेव को उन्होंने नियत किया था। शिवाजी पूना जाकर दादोजी कोंडदेव की अधीनता में रहकर व्यायाम तथा अस्त्रविद्या सीखने लगे।

शिवाजी कुछ विशेष पढ़े-लिखे नहीं थे। उस समय पढ़ना-लिखना कुछ विशेष महत्त्व का नहीं समझा जाता था। शारीरिक शिक्षा के साथ-साथ शिवाजी की स्वतंत्र हिंदू-राज्य स्थापन करने की इच्छा बढ़ने लगी। शिवाजी ने जो संकल्प किया था उसे कार्य में परिणत करने के लिए धन की आवश्यकता थी। यद्यपि शिवाजी के पास बहुत धन था, परंतु पिता शिवाजी के मत से सहमत नहीं थे। इस कारण शिवाजी ने एक डाकुओं का दल तैयार किया और खुद उसके नेता बने। वे प्रायः आततायी शत्रुओं का धन ही लूटा करते थे। वे गौ, ब्राह्मण, अनाथ, फकीर, कृषकों और स्त्रियों पर अत्याचार नहीं करते थे। एक मुसलमान सूबेदार सेना के साथ बीजापुर जा रहा था। शिवाजी के सैनिकों ने उसपर आक्रमण किया और उसका समस्त धन लूट लिया। सूबेदार की एक सुंदर पत्नी भी शिवाजी के सैनिकों ने लूट ली थी, परंतु शिवाजी ने बड़े सम्मान से उस स्त्री को बीजापुर पहुंचवा दिया। शिवाजी बीजापुर के अधिकृत क्षेत्रों में उपद्रव करने लगे। कहीं शत्रुओं से घिर न जाएं इसलिए सह्यपर्वत के दुर्गम प्रदेश में सिंहगढ़, पुरंदर आदि दृढ़ किलों पर अधिकार कर लिया और वे वहीं से अपनी सेना परिचालित करने लगे। बीजापुर के सुलतान ने शिवाजी को अपने पक्ष में करने के लिए उनके पिता को कैद कर लिया। शिवाजी उस समय के दिल्ली के बादशाह शाहजहां के यहां गए। शाहजहां की आज्ञा से राजा शाहजी छोड़ दिए गए। सन् १६५९ ई० में बीजापुर के सुलतान ने शिवाजी का दमन करने के लिए अफजलखां की अध्यक्षता में एक सेना भेजी। शिवाजी ने पहले तो अफजलखां के साथ संधि करने का प्रस्ताव किया, परंतु पीछे सहसा उसपर आक्रमण करके उसे मार डाला। सेनापति के मारे जाने से उनकी सेना भी तितर-बितर हो गई। इसी समय शाहजहां की वृद्धावस्था के कारण उसके पुत्रों में सिंहासन के लिए बड़ा उपद्रव प्रारंभ हुआ। इसी समय सुयोग पाकर शिवाजी अपना राज्य बढ़ाने के लिए उद्योग करने लगे। मुगल बादशाह के अनेक अधिकृत क्षेत्रों को उन्होंने अपने अधिकार में कर लिया। शिवाजी का दमन करने के लिए दिल्ली के बादशाह औरंगजेब ने दक्षिण के सूबेदार और अपने मामा शाइस्ताखां से कहा।

शिवाजी ने अकस्मात् शाइस्ताखां पर आक्रमण किया। शाइस्ताखां ने किसी प्रकार भागकर अपने प्राणों की रक्षा की और उसकी सेना भी सेनापति के साथ ही भाग गई।

सन् १६६४ ई० में शिवाजी ने 'राजा' की उपाधि धारण करके अपने नाम के सिक्के चलाए। उनका दमन करने के लिए दिल्ली के बादशाह औरंगजेब ने जयपुर के राजा जयसिंह को दक्षिण देश में भेजा। जयसिंह की कूटनीति के कारण उनके कहने से शिवाजी दिल्ली में औरंगजेब के पास गए। औरंगजेब ने उनकी अप्रतिष्ठा की तथा एक प्रकार से उन्हें कैद कर लिया।

छत्रपति शिवाजी दिल्ली से कुशलतापूर्वक निकल भागे और अपने राज्य में चले आए। राज्य में आकर उन्होंने दिल्ली के बादशाह के अनेक नगर लूट लिए। सन् १६७४ ई० में रायगढ़ में शिवाजी ने 'छत्रपति' की उपाधि धारण की। शिवाजी का राज्य बहुत विस्तृत हो गया था। उनका खजाना भरा था। उनकी सेना सुसज्जित हो गई थी। सन् १६८० ई० में शिवाजी की मृत्यु हुई। शिवाजी ने एक महापराक्रमी जाति की सृष्टि की थी और महाराज्य स्थापित किया था।

शिवि—राजा उशीनर के पुत्र तथा महाराज ययाति के दौहित्र। ये अपनी दयालुता के कारण पुराणों में प्रसिद्ध हैं। पुराणों में लिखा है कि इनकी दयालुता की परीक्षा लेने के लिए इंद्र और अग्नि दोनों यथाक्रम बाज और कबूतर बनकर इनकी सभा में आए। बाज ने कबूतर पर आक्रमण किया। कबूतर राजा शिवि की गोद में जाकर छिप गया। यह देखकर बाज ने राजा से कहा—महाराज ! दीनों पर दया करना राजधर्म है। मैं भूखा हूं, मेरे भक्ष्य को आपने छिपा लिया है। यह आपका धर्म नहीं है, आप इसे छोड़ दें। राजा ने कहा—शरणागत की रक्षा करना प्रधान धर्म है। तुम इसके अतिरिक्त जो वस्तु मांगो मैं दूंगा। बाज ने कहा—इसी कबूतर के बराबर आप अपने शरीर का मांस दें। राजा ने तराजू के एक पलड़े पर कबूतर को रखवाया और वे अपने शरीर से मांस काटकर दूसरे पलड़े पर रखने लगे। उन्होंने अपने समस्त शरीर का मांस काटकर रख दिया तो भी उस कबूतर के बराबर मांस नहीं हुआ। यह देखकर राजा स्वयं पलड़े में बैठ गए। इसी समय आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी। इंद्र और अग्नि भी अपना-अपना रूप धारण करके प्रकट हुए। इंद्र और अग्नि ने कहा—महाराज ! आप धन्य हैं। आपकी दयालुता की परीक्षा लेने के लिए हम लोग आए थे। आप वर मांगो। शिवि ने वर मांगा, उन लोगों ने 'तथास्तु' कहा।

शिवि औशीनर—शिवि लोगों का सर्वाधिक ख्यातिनाम राजा। यह बड़ा दानी था। उशीनर का पुत्र होने के कारण इसका ऐसा नामकरण हुआ। इसकी राजधानी शिवपुर थी। इंद्र का यह परम मित्र था, जिसने इसके लिए यज्ञ किया था और विदेशियों के युद्ध में इसकी रक्षा की थी। एक वैदिक मंत्रद्रष्टा के रूप में भी इसका उल्लेख हुआ है। महाभारत में इसे राजा उशीनर तथा माधवी का पुत्र कहा गया है और पुराणों में इसकी माता का नाम दृष्टद्वती उल्लिखित है। 'महाभारत' और 'पुराणों' में इसके औदार्य एवं दानी स्वभाव की अनेक रोचक कथाएं दी गई हैं। इसके चार पुत्रों के नाम थे—वृषादर्भ, सुवीर, मद्र और केकय। इन्होंने पश्चिम भारत में अपने नामों से चार पृथक् जनपदों की स्थापना की। एक समय समस्त पश्चिम भारत पर इनका एकाधिपत्य था। महाभारत में इनके गोपाल और बृहद्गर्भ नामक दो अन्य पुत्रों का भी उल्लेख हुआ है।

शिशुनाग—यह बड़ा शूरवीर और प्रभावशाली राजा था। इसने मगध में प्रद्योतवंशीय राजा नंदिवर्धन को पराजित करके वहां अपने नाम से शिशुनागवंश की स्थापना की। यह मूलतः काशिदेश का निवासी था, किंतु अपने पराक्रम से मगध का स्वामी बना। इसके पुत्र का नाम काकवर्ण था। पुराणों में इसके उत्तराधिकारी दस राजाओं द्वारा ३६० वर्षों तक मगध पर राज्य करने का उल्लेख हुआ है। (मत्स्यपुराण तथा वायुपुराण)

शिशुपाल—चेदि देश के एक राजा का नाम। ये चेदिराज दमघोष के पुत्र थे। शिशुपाल श्रीकृष्ण का मौसेरा भाई था। इसके छोटे भाई का नाम दंतवक्त्र था। शिशुपाल की माता सुप्रभा को मालूम हुआ था कि श्रीकृष्ण के हाथ से उसके पुत्र की मृत्यु होगी। इस कारण उन्होंने अपने पुत्र के एक सौ अपराध क्षमा करने के लिए श्रीकृष्ण से अनुरोध किया था। श्रीकृष्ण ने अपनी मौसी की बात मानने के लिए प्रतिज्ञा की थी। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण को

बहुत गाली देने के अपराध में वह श्रीकृष्ण के हाथ से ही मारा गया था। (देखो रुक्मिणी)

शिशुपालगढ़—ऐतिहासिक महत्त्व का यह स्थल उड़ीसा में भुवनेश्वर के निकट पुरी जिले में है। यह मध्ययुगीन किला गंधवती नामक एक सरिता से परिवेष्टित है। इस गढ़ में और उसके आसपास उत्खनन में मृत्तिका कला के अनेक उपकरण प्राप्त हुए हैं। इसके दक्षिण-पूर्व में तीन मील की दूरी पर अशोक का अभिलेख प्राप्त हुआ है।

शिशुमार (सिसुमार)—एक ऋषि, जो पानी में ग्राह का रूप धारण करके रहता था। इसका वास्तविक नाम शर्कर था। एक बार सृष्टि के समस्त ऋषियों द्वारा इंद्र की स्तुति करने पर भी यह मौन रहा। इंद्र की आज्ञा से इसने क्षण-भर मात्र उसकी स्तुति की। किंतु उससे इसने यह अनुभव किया कि इंद्र की जितनी भी स्तुति की जाए, कम है। तब इसने तपस्या करके सामविद्या को प्राप्त किया और इंद्र की स्तुति में साम की रचना की, जो कि इसीके नाम से 'शार्कर साम' से प्रसिद्ध हुआ।

शीलमणि—इनका पैतृक नाम हर्ष पंत था। इनका जन्म कुमायूं के बीहड़ नामक गांव में १८२० ई० को हुआ था। इनके पिता का नाम सुधी पंत और माता का नाम सुभद्रादेवी था। जब ये बालक थे, तभी इनके पिता का स्वर्गवास हो गया था और उनके साथ ही माता भी सती हो गई थी। इस प्रकार अनाथ होकर ये एक साधु के साथ घूमते हुए अयोध्या पहुंचे। वहां ये पयहारी जी के शिष्य बन गए। इसी समय इनका शीलमणि नया नामकरण हुआ। ये सख्यरस भक्ति और शृंगारी साधना के भक्त कवि थे। इनके द्वारा विरचित १६ ग्रंथों का अब तक पता लगा है, जिनमें से 'संबंधप्रकाश', 'अवधप्रकाश' और 'पदावली संग्रह' का नाम उल्लेखनीय है। इनकी रचनाओं में अवधी, ब्रज और खड़ी बोली तीनों का समावेश देखने को मिलता है। १८७८ ई० में ये दिवंगत हुए (डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह—रामभक्ति में रसिक संप्रदाय)।

शुकदेव—वेदविभागकर्त्ता महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास के पुत्र। एक समय वेदव्यास हवन के निमित्त अग्नि प्रज्वलित करने की इच्छा से अरणि घर्षण कर रहे थे, उसी समय घृताची नाम की एक अप्सरा उनकी आंखों के सामने गई। महर्षि वेदव्यास बड़ी धीरता से अपनी इंद्रिय-चपलता रोकने के लिए प्रयत्न करने लगे। परंतु हृदय के वेग के कारण उनका चित्त स्थिर नहीं रह सका। अरणि मध्य में उनका वीर्य गिर ही गया। व्यासदेव को उस अवस्था में देखकर घृताची डर गई और उसने शुक पक्षी का रूप धारण करके वहां से प्रस्थान किया। व्यासदेव पहले के समान अरणि-मंथन करने लगे। उसी यज्ञकाष्ठ से प्रज्वलित अग्नि के समान शुकदेव उत्पन्न हुए। पुत्रजन्म के समय व्यासदेव ने शुक पक्षिणी को देखा था, इस कारण उन्होंने पुत्र का नाम शुकदेव रखा। शुकदेव का उपनयन संस्कार महादेव ने किया था। देवराज इंद्र ने उन्हें कमंडलु और आसन दिया था। उसी स्थान पर समाधिस्थ होकर शुकदेव रहने लगे। ब्रह्मचर्यपूर्वक शुकदेव पिता से मोक्षशास्त्र का अध्ययन करने लगे। थोड़े दिनों के बाद व्यासदेव ने कहा—यदि तुम्हें मोक्षशास्त्र-विषयक किसी प्रकार का संदेह हो तो मिथिलेश जनक के पास जाकर संदेह दूर करो। पिता की आज्ञा से शुकदेव जनकराज के पास मिथिला गए और वहां उन्होंने मोक्षशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया। तदनंतर वे हिमालय प्रदेश में व्यासाश्रम में उपस्थित हुए। ब्रह्मर्षि, महर्षि और देवर्षियों के साथ ब्रह्मतत्त्वसंबंधी कथावार्ता करते हुए शुकदेव ने बहुत समय व्यतीत किया। अनंतर व्यासदेव ने अपने पुत्र को ब्रह्मतत्त्व का प्रचार करने के लिए आज्ञा दी। इसके बहुत दिनों के बाद त्रिगुणमय नश्वर देह का त्याग करके शुकदेव परब्रह्म में लीन हुए। महापुरुष के शरीरत्याग के समय जो प्राकृतिक उपद्रव होते हैं वे सब इनके शरीरत्याग के समय में भी हुए थे।

(महाभारत)

शुक व्यासकि—एक ऋषि। व्यास पाराशर्य का पुत्र एवं शिष्य। एक बार घृताची नामक अप्सरा को देखकर कामासक्त महर्षि व्यास का स्खलन हुआ, जिससे शुक का जन्म हुआ। अन्यत्र अरणीकाष्ठ से इसका जन्म होना बताया गया है। अपने ज्ञान तथा नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के कारण इसकी ख्याति व्याप्त हो गई थी, जिसके कारण पुराणों में इसे 'महातप' एवं 'महायोगी' नाम से कहा गया। अपने पिता से वेद-वेदांगों, 'महाभारत' और पुराणों का अध्ययन करने के उपरांत उन्हींकी आज्ञा से इसने बृहस्पति से मोक्षतत्त्व का ज्ञान प्राप्त किया। शिव द्वारा इसका उपनयन संस्कार हुआ। इसने जनक से भी ब्रह्मज्ञान को प्राप्त किया।

व्यास से इसने 'भागवत' का विशेष अध्ययन किया। तदनंतर इसने यह पुराण-ज्ञान राजा परीक्षित् को दिया। 'महाभारत' के 'शुकानुप्रश्न' नामक उपाख्यान में शुक द्वारा व्यास से पूछे गए प्रश्न और व्यास द्वारा दिया गया उनका समाधान वर्णित है। शुक सदा नग्नावस्था में रहता था। वह इतना विरक्त एवं उच्चस्थिति को प्राप्त हो गया था कि उसकी दृष्टि में स्त्री-पुरुषों का भेद तिरोहित हो गया था। अंत में, वह अपने पिता व्यास को अभिवादन करके कैलाश-पर्वत गया और वहीं ध्यानस्थ होकर सूर्यलोक को प्रविष्ट हुआ। इनकी इस निर्वाण-प्राप्ति पर व्यास द्वारा शोक-संताप का अत्यंत कारुणिक वर्णन 'महाभारत' में सुरक्षित है।

शुक्राचार्य—दैत्यगुरु। ये महर्षि भृगु के पुत्र थे। इनकी कन्या का नाम देवयानी था और पुत्रों का नाम षंड-अमर्क था। देवगुरु बृहस्पति के पुत्र कच ने इनसे संजीवनी विद्या सीखी थी।

शुद्धोदन—कपिलवस्तु के राजा और जगत्प्रसिद्ध बुद्धदेव के पिता। (देखो बुद्धदेव)

शुनःशेप—महर्षि ऋचीक का मंझला बेटा। ये महाराज अंबरीष के यज्ञ में बलि के लिए लाए गए थे। महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में ये पहले उपस्थित हुए थे। विश्वामित्र ने दयावश होकर इन्हें अग्नि की स्तुति बतला दी थी। इनकी स्तुति से अग्निदेव प्रसन्न हुए और ये अक्षतशरीर अग्नि से बाहर निकल आए। तदनंतर महर्षि विश्वामित्र ने इन्हें अपने पोष्य पुत्र की तरह रखा। (देखो विश्वामित्र)

शुम्भ—दानवराज। इसके छोटे भाई का नाम निशुंभ था। यह युद्ध में दुर्गा के हाथ से मारा गया।

शुषेण (नामान्तर : सुषेण)—वानरराज। कपिपति बालि ने इनकी कन्या तारा को ब्याहा था। शुषेण के परामर्श से हनुमान् विशल्यकरणी नाम की औषधि लाए थे और उसी औषधि के प्रयोग से लक्ष्मण जी उठे थे। (रामायण)

शूद्रक—ये राजा और महाकवि स्कंदपुराण के कुमारिका-खंड के अनुसार, कलियुग के ३२९० में अर्थात् १११ शक में राज्यशासन करते थे। मार्सम्यान साहब के भारतवर्ष के इतिहास में लिखा है—मगध राज्य के सिंहासन पर सिप्रुक नामक एक राजमंत्री सन् १५१ ई० में बैठा था, उसने ४० वर्ष तक राज्य किया था। यह भारतवर्ष के प्रसिद्ध राजा शूद्रक के द्वारा मारा गया। इन दोनों बातों में परस्पर मेल है, क्योंकि दोनों का समय मिलता है। ये मृच्छिकटिक के कर्त्ता बतलाए जाते हैं। परंतु मृच्छिकटिक की प्रस्तावना में जो बातें लिखी हैं उनसे उसके कर्त्ता शूद्रक नहीं समझे जा सकते हैं। प्रस्तावना में लिखा है—

द्विरदेन्द्रगतिश्चकोरनेत्रः परिपूर्णेन्दुमुखः सुविग्रहश्च।
द्विजमुख्यतमः कविर्बभूव प्रथितः शूद्रक इत्यगाधसत्त्वः॥
राजानं वीक्ष्य पुत्रं परमसमुदयेनाश्वमेधेन यष्ट्वा।
लब्ध्वा चायुःशताब्दं दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः॥

अर्थात् गजेन्द्रगति, चकोरनेत्र, पूर्णचंद्रवदन, अगाध-बुद्धिशाली शूद्रक नामक प्रसिद्ध कवि थे। अपने पुत्र को सिंहासन पर बैठा देखकर बड़े समारोह से अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करके और एक सौ वर्ष दस दिन की आयु भोगकर शूद्रक ने अग्नि में प्रवेश किया। इस प्रकार आत्मप्रशंसा तथा अग्निप्रवेश के लिए भूतकाल का प्रयोग देखकर संदेह होता है कि मृच्छिकटिक के कर्त्ता शूद्रक कैसे हो सकते हैं। इसका यह उत्तर हो सकता है कि प्रस्तावना पीछे से लिखी गई और मूल नाटक के साथ शूद्रक की मृत्यु के अनंतर जोड़ दी गई। यदि हमारा यह अनुमान ठीक हो तो पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर हो सकता है, अन्यथा कोई गति नहीं।

शूद्रदेश—मार्कंडेय पुराण में इसे अपरांतक (पश्चिम) क्षेत्र में बताया गया है। महाभारत (९।३७।१) में कहा गया है कि शूद्रजन उस क्षेत्र के निवासी थे जहां सरस्वती मरुभूमि में अदृष्ट हो जाती है। सरस्वती को विनशन (बीकानेर) में अदृष्ट हुआ बताया गया है।

शूर—श्रीकृष्ण के पितामह और वसुदेव के पिता।

शूरवर्मा—काश्मीर के राजा का नाम। यह पंगु के औरस और मृगावती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। नौ वर्ष में मंत्रियों ने चक्रवर्मा को पदच्युत करके शूरवर्मा को राजा बनाया। परंतु ये बहुत दिनों तक राजा नहीं रह सके। एक वर्ष के बाद ये पदच्युत कर दिए गए। (राजतरंगिणी)

शूरसिंह—जोधपुर के एक राजा का नाम। ये महाराज उदयसिंह के पुत्र थे। उदयसिंह के मरने पर सन् १५९५ ई० में उनका पुत्र शूरसिंह मारवाड़ के सिंहासन पर विराजा। शूरसिंह बादशाह अकबर की सेना को लिए लाहौर में भारत की सीमा का रक्षक रहा था। सिंधु के जीतने के समय से शूरसिंह वहीं थे। शूरसिंह एक पराक्रमी और रणकुशल राजा थे। पिता

के जीवित समय में ही इन्होंने रणकौशल तथा वीरता का परिचय दिया था जिससे प्रसन्न होकर बादशाह ने इन्हें एक ऊंचा पद और 'सवाई राजा' की उपाधि दी।

बादशाह अकबर शूरसिंह के गुणों से परिचित हो गया था। अतएव उसने इन्हें एक कठोर काम पूरा करने के लिए कहा। उस समय सिरोही का अधिपति राव सुरतान बड़ा गर्वित हो उठा था। वह अपने दुर्भेद्य किले में रहकर अपने को अजेय समझे हुए था। बादशाह ने राव सुरतान के शासन का भार शूरसिंह को सौंपा। शूरसिंह की वीरता के सामने राव सुरतान को सिर नवाना ही पड़ा था। शूरसिंह की वीरता ने राव सुरतान से बादशाह की अधीनता स्वीकार करा ली। दिल्ली से आए हुए फरमान को राव सुरतान ने स्वीकृत किया और अपनी सेना के साथ बादशाह की सेवा के लिए वह प्रस्थित हुआ।

इसी समय बादशाह की आज्ञा से गुजरात के शाह मुजफ्फर के विरुद्ध शूरसिंह ने युद्धयात्रा की। राव सुरतान की भी सेनाएं उनकी सेना में सम्मिलित हुईं। दोनों ओर की सेनाएं लड़ने लगीं। विजयी शूरसिंह ही हुए। शूरसिंह के हाथ बहुत धन आया। इन्होंने सारा धन दिल्ली भेज दिया, उसमें से कुछ जोधपुर भिजवा दिया। इस विजय से शूरसिंह का यश चारों ओर फैल गया। उसी समय नर्मदा के किनारे का अमर-बलेचा नामक एक तेजस्वी राजपूत वास करता था। उसने अभी तक अपनी स्वाधीनता की रक्षा की थी। बादशाह की आज्ञा से शूरसिंह ने उसके विरुद्ध यात्रा की। उस युद्ध में अमरबलेचा मारा गया। वह राज्य शूरसिंह के हाथ में आया। इस संवाद को सुनकर बादशाह बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कई और प्रदेश मिलाकर उस राज्य का अधिपति उनको बनाया। इसी समय अकबर परलोकवासी हुए। राजा शूरसिंह अपने पुत्र गजसिंह को साथ लेकर जहांगीर के दरबार में उपस्थित हुए। जहांगीर ने गजसिंह के हाथ में तलवार रख दी। सन् १६२० ई० में राठौर राजा शूरसिंह ने दक्षिण देश में प्राणत्याग किया।

(टाड्स राजस्थान)

शूरसेना—मथुरा नगरी जिस राज्य की राजधानी थी उस राज्य का नाम।

शूर्पणखा—लंकेश्वर रावण की छोटी बहन। यही लंका के युद्ध का मूल कारण है। रामचंद्र के वनवास के समय पंचवटी में यह गई थी और रामचंद्र से अपने ब्याह का प्रस्ताव किया, परंतु रामचंद्र ने सीता को दिखाकर कहा कि मेरी तो पत्नी है ही, तुम मेरे छोटे भाई लक्ष्मण के पास जाओ। लक्ष्मण ने उसकी नाक काट ली। (रामायण)

शूर्पारक—बंबई हाते में बीजापुर जिले में जमखंडी के समीप का स्थान। यहां जामदग्न्य परशुराम जी रहते थे। इसे शूरपल्य भी कहते हैं।

शूलपाणि—विख्यात स्मार्त पंडित। इन्होंने मनुसंहिता का भाष्य लिखा है और 'प्रायश्चित्तशूलपाणि' नामक एक धर्मशास्त्र का ग्रंथ लिखा है।

शृङ्गवेरपुर—सिगनौर (गुह की राजधानी का नाम) प्रयाग से उत्तर-पश्चिम की ओर १८ मील पर गंगा के तट पर है।

शेख—शेख के व्यक्तित्व के संबंध में विद्वानों के परस्पर विरोधी मंतव्य देखने को मिलते हैं। शेख, प्रसिद्ध प्रेमाख्यानककार आलम की पत्नी थी। आलम जाति के ब्राह्मण थे; किंतु रंगरेजिन शेख पर आसक्त होकर वे मुसलमान हो गए थे। इन दोनों से एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम जहान था। आलम के कवित्त संग्रह 'आलमकेलि' में शेख के भी कतिपय छंद उपलब्ध होते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने शेख को स्वतंत्र कविपितृ माना है। किंतु उनके उत्तरवर्ती कतिपय विद्वानों ने शेख-विषयक इस प्रकार का समस्त विवरण निराधार बताया है और आलम के अतिरिक्त उसका स्वतंत्र कवि-व्यक्तित्व स्वीकार नहीं किया है (आचार्य रामचंद्र शुक्ल—हिंदी साहित्य का इतिहास; भवानीशंकर याज्ञिक—आलम और रसखान : लेख, पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ)।

शेष—(१) एक वैदिक आचार्य। इसके द्वारा विरचित यजुर्वेदीय 'ज्योतिष वेदांग' उपलब्ध है, जो कि एक श्लोकबद्ध रचना है और जिसमें कुल ४३ श्लोक हैं। उसमें ३० श्लोक आचार्य लगभ या लगध कृत ऋग्वेदीय 'ज्योतिषवेदांग' के हैं। इस ग्रंथ पर आचार्य सोमक की टीका उपलब्ध है।

(२) नागराज अनंत का अवतार। इसे भगवान् नारायण का अंशावतार माना जाता है। इसने शय्या-रूप होकर भगवान नारायण को धारण किया हुआ है। 'भागवत' में इसे कश्यप तथा कद्रू का पुत्र बताया गया है और इसका निवास पाताललोक कहा गया है। इसके एक हजार सिर बताए गए हैं। गंगा ने

ने इसकी तपस्या की थी, जिसके फलस्वरूप गंगा को ज्योतिषशास्त्र एवं खगोलविद्या का ज्ञान प्राप्त हुआ था। यह नागों की कामरूपधरत्व की कला में निष्णात था। बालकृष्ण को वसुदेव जब गोकुल ले जा रहे थे उस समय इसने अपना फण फैलाकर उनकी रक्षा की थी। अपने शीष पर यह पृथ्वी को धारण किए हुए है। (महाभारत)

शेषाद्रि आयर—इनका पूरा नाम सर शेषाद्रि आयर के० सी० एस० आई० था। ये मैसूर राज्य के प्रसिद्ध दीवान थे। इनका जन्म सन् १८४५ ई० में दक्षिण के मालाबार जिले के कुमारपुरम् नामक गांव में हुआ था। पहले-पहल कालीकट में इन्होंने पढ़ना आरंभ किया। तदनंतर ये मद्रास के प्रेसीडेंसी कालेज में पढ़ने के लिए भर्ती हुए। यहीं से इन्होंने सन् १८६६ ई० में बी० ए० की परीक्षा पास की। मद्रास के विश्वविद्यालय में ये सबसे पहले बी० ए० हुए। इसके कुछ दिनों के पश्चात् ये कानून की परीक्षा में पास होकर कलक्टर के आफिस में अनुवादक के काम पर नियत हुए। इस स्थान पर इन्हें बहुत दिनों तक रहना नहीं पड़ा। मद्रास में रहने के कारण रंगचार्लू से इनका परिचय हो गया था। सन् १८६८ ई० में रंगचार्लू मैसूर के दीवान हुए। उन्होंने ही शेषाद्रि को सरिश्तेदार बनाया। १८७९ ई० में शेषाद्रि डिपुटी कमिश्नर और मजिस्ट्रेट हुए। तदनंतर दीवान रंगचार्लू ने मैसूर राज्य के कानून बनाने का भार इन्हें सौंपा। इसके दो वर्ष के बाद रंगचार्लू का शरीरांत हुआ। उस समय मैसूर राज्य में शेषाद्रि के अतिरिक्त इस पद के योग्य दूसरा नहीं था। परंतु उस समय इनकी अवस्था केवल ३८ वर्ष की थी। इस कारण बहुतों ने यह संदेह किया कि इस बड़े काम का प्रबंध ये नहीं कर सकते। सन् १८८३ ई० में शेषाद्रि मैसूर के दीवान हुए। सन् १८७७ ई० में मैसूर राज्य में दुर्भिक्ष पड़ा था, इस कारण तीस लाख रुपये ऋण लेने पड़े थे। फिर इस प्रकार की की विपद् न हो इस कारण रंगचार्लू ने रेलवे बनाना प्रारंभ किया था। रंगचार्लू की मृत्यु के अनंतर शेषाद्रि ने उनके पथ का अवलंबन किया। दो वर्ष में इन्होंने १४० मील रेल पथ बनवाया था। इस काम के लिए बीस लाख रुपये और भी ऋण लेने पड़े थे। सन् १८९५ ई० में मैसूर राज्य में ३१५ मील तक का रेल-पथ बन गया। सन् १९०१ ई० में शेषाद्रि के कार्य त्याग करने के समय मैसूर राज्य में ४०० मील तक रेलवे का विस्तार हो गया था। अपने शासन के १२ वर्षों में कृषि की सुविधा के लिए इन्होंने ३५५ वर्गमील में तालाब खुदवाया था। इस कार्य में इन्हें एक करोड़ रुपये खर्च करने पड़े थे परंतु इससे राज्य की आय में ८,२५,००० की वृद्धि हुई। जिस समय इन्होंने इस पद को ग्रहण किया था उस समय राज्य पर तीस लाख रुपये ऋण के थे, उसे इन्होंने बिलकुल चुका दिया। इन्होंने एक करोड़ छिहत्तर लाख रुपये राजकोष में जमा किए थे। राज्य की आय की भी इन्होंने वृद्धि की। प्रजा की सुख-शांति के लिए इन्होंने राज्य में अनेक विभाग स्थापित किए थे। पहले इन्हें सरकार से सी० एस० आई० की उपाधि मिली। तदनंतर के० सी० एस० आई० की उपाधि मिली। ये मद्रास विश्वविद्यालय के फेलो भी नियत हुए थे। इन्होंने ३२ वर्ष राज्य-कार्य करके सन् १९०१ ई० में कार्य त्याग किया। इसमें १७ वर्ष तक इन्होंने दीवानी की। उसी वर्ष इनका शरीरांत भी हुआ।

शैलालि—शिलालिन् वंशज होने के कारण इसको इस नाम से कहा गया। पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में इसे 'नटसूत्रों' का रचयिता कहा गया है। इसने 'नटवर्ग' के नाम से एक संप्रदाय का निर्माण किया था। इसके द्वारा रचित 'शैलालि ब्राह्मण' यद्यपि संप्रति उपलब्ध नहीं है, तथापि अनेक ग्रंथों में उसके उद्धरण सुरक्षित होने से उसके अस्तित्व का पता चलता है। आहुति प्रदान करने संबंधी विधि के संदर्भ में 'शतपथ ब्राह्मण' में इसके मत का उल्लेख हुआ है।

शैव्या—महाराज हरिश्चंद्र की महारानी। महर्षि विश्वामित्र ने महाराज हरिश्चंद्र की धर्मबुद्धि, आत्मत्याग और कष्टसहिष्णुता आदि की परीक्षा के लिए उन्हें अनेक कष्ट दिए थे। महारानी शैव्या एक ब्राह्मण के निकट बिकी थी। उसी समय उनका पुत्र रोहिताश्व मर गया। पुत्र का मृत शरीर श्मशान में ले जाकर शैव्या विलाप करने लगी। इसी श्मशान में महाराज हरिश्चंद्र डोम का काम करते थे। शीघ्र ही पति-पत्नी में मिलन हुआ। विश्वामित्र उनके प्रति संतुष्ट हुए। रोहिताश्व पुनः जी उठा। इन्हें पुनः राज्य प्राप्त हुआ।

शोणाः—सोन नद का नाम।

शौनक—एक तपस्वी ऋषि। इन्हींने द्वादशवर्षव्यापी एक

यज्ञ का अनुष्ठान किया था।

श्यामबिहारी मिश्र—इनका जन्म भद्रकृष्ण चतुर्थी, सं० १९३० वि० को लखनऊ के समीप इटौंजे नामक गांव में हुआ। सात वर्ष की अवस्था में इन्हें पढ़ना आरंभ कराया गया। पहले इन्हें उर्दू की शिक्षा दी गई। इन्होंने नियमित रूप से हिंदी कभी नहीं पढ़ी थी। साथियों की देखा-देखी तथा वंश-परंपरा के अनुसार हिंदी इन्हें अपने-आप आ गई। हिंदी में इनकी विशेष रुचि थी, इस कारण इन्होंने उसमें कुछ-कुछ योग्यता प्राप्त कर ली। १५-१६ वर्ष की अवस्था में इन्हें हिंदी की कविता करनी आ गई थी। १२ वर्ष की अवस्था में इन्होंने अंग्रेजी पढ़ना प्रारंभ किया। पहले ये बड़े चाव से पढ़ने लगे। परंतु पीछे से इनको चौसर का व्यसन पड़ गया। इस व्यसन से इनके पढ़ने में बाधा पड़ने लगी और इनके सहपाठी इनसे आगे निकल गए। इससे इन्हें ग्लानि हुई और चौसर का व्यसन छोड़कर ये मन से पढ़ने लगे। सन् १८९१ ई० में इन्होंने एंट्रेंस परीक्षा पास की। तदनंतर क्रमशः एफ० ए० और बी० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। बी० ए० की परीक्षा में अवध में इनका पहला नंबर था और अंग्रेजी में 'ऑनर्स' हुए। यह प्रतिष्ठा इनके पहले कैनिंग कालेज के किसी विद्यार्थी को नहीं प्राप्त हुई थी। इसके उपलक्ष्य में इन्हें दो स्वर्णपदक प्राप्त हुए थे। सन् १८९६ ई० में इन्होंने एम० ए० की परीक्षा पास की। इस बार भी अपने कालेज में इनका पहला नंबर था और यूनिवर्सिटी में चौथा।

विद्याध्ययन समाप्त करके सन् १८९७ ई० में ये डिपुटी कलक्टर नियत हुए और सन् १९०६ ई० में डिपुटी सुपरिंटेंडेंट ऑफ पुलिस हुए। इस पद पर रहकर इन्होंने सुपरिंटेंडेंट का काम भी बड़ी योग्यता से संपादित किया। तदनंतर ये स्पेशल ड्यूटी पर नियत हुए। फिर ये छत्रपुर के दीवान हुए। सरकारी सेवा में इन्होंने बड़ी प्रतिष्ठा पाई है। एक बार इटावा के कई दुष्टों ने इन्हें सरकारविद्वेषी प्रमाणित करना चाहा था, परंतु उनकी पोल खुल गई और ये निष्कलंक प्रमाणित हुए।

इनका ब्याह ११ वर्ष की अवस्था में हुआ था। इनकी पत्नी की पहले एक कन्या हुई थी जो दूसरे दिन मर गई। तदनंतर पांच कन्याएं और दो पुत्र हुए। ज्येष्ठ पुत्र का भी परलोकवास हो गया। इन्होंने हिंदी में १३ ग्रंथ लिखे और संपादित किए। ये दो-तीन भाई मिलकर लिखा करते थे। हिंदी समाज में ये 'मिश्रबंधु' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

श्येनजित्—इक्ष्वाकुवंश का एक राजा। इसके पिता का नाम दल और चाचा का नाम शल था। इनके चाचा शल ने एक बार वामदेव ऋषि से थोड़े समय के लिए उनके अश्व उधार मांगे थे और फिर उन्हें लौटाने से इनकार कर दिया। इसने वामदेव ऋषि का वध करने के लिए विषयुक्त बाण का प्रहार किया। किंतु वामदेव ऋषि ने उसी बाण से पहले राजकुमार श्येनजित् का वध किया और तदुपरांत उसके पिता दल को भी अचेतन किया। इस दुःख से दुःखित इसकी माता वामदेव ऋषि के पास गई और उसने क्षमा-याचना करके अपने पति तथा पुत्र को पुनर्जीवित किया।

श्रद्धा—(१) स्वायंभुव मन्वंतर में दक्ष प्रजापति की कन्या और धर्म ऋषि की दस पत्नियों में से एक। इसकी माता का नाम प्रसूति था। इसके दो पुत्र थे, जिनके नाम थे शुभ और काम।

(२) स्वायंभुव मन्वंतर में कर्दम प्रजापति और देवाहूति की कन्या, जो अंगिरस ऋषि की पत्नी थी। इसके दो पुत्रों के नाम थे उतथ्य और बृहस्पति। इसकी चार कन्याएं हुईं, जिनके नाम थे—सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति। (भागवत)

(३) वैवस्वत मनु की पत्नी।

(४) सूर्यकन्या, जिसके सावित्री, प्रसावित्री और वैवस्वती आदि नामांतर थे।

श्रवण मुनि—वैश्य तपस्वी अंध मुनि के पुत्र का नाम। (देखो अंध)

श्रावस्ती—एक प्राचीन नगरी। पुराने समय में इस नगरी में उत्तरकोशल की राजधानी थी। विष्णुपुराण में लिखा है कि युवनाश्व के पुत्र श्रावस्त ने श्रावस्ती नाम की नगरी बसाई थी। इससे मालूम पड़ता है कि रामचंद्र के राज्यकाल के बहुत पहले श्रावस्ती नगरी विद्यमान थी। श्रावस्ती के विषय में पुराणों में अनेक प्रकार के मत देखे जाते हैं। रामायण और वायुपुराण में लिखा है कि श्रावस्ती उत्तरकोशल की राजधानी थी। परंतु मत्स्यपुराण में श्रावस्ती नगरी का पता बतलाया गया है। गौड़ देश में श्रावस्त ने श्रावस्ती नगरी बसाई थी। लिंगपुराण और कूर्मपुराण में भी इसी प्रकार लिखा है। इससे परवर्ती समय में श्रावस्ती के अवस्थान के विषय में बड़ा गोलमाल उप-

स्थित हुआ। इन समस्त मतों की आलोचना करने पर यह बात प्रतिपन्न होती है कि सरयू नदी के उत्तर-पार का प्रदेश उत्तर कोशल है तथा उसके बीच की नगरी ही श्रावस्ती नगरी है। कनिंहम कहते हैं कि सरयू नदी ने अयोध्या राज्य को दो भागों में बांट दिया है। सरयू के उत्तर प्रदेश का नाम उत्तरकोशल और दक्षिण प्रदेश का नाम दक्षिण कोशल है। इनमें भी छोटे-छोटे दो भाग हैं। दक्षिण कोशल के दो भागों के नाम प्राच्यराट् और पूर्वराट् हैं। उत्तर कोशल में भी कोशल और गौड़ दो भाग हैं। राप्ती नदी का दक्षिण प्रदेश गौड़ देश और उसके उत्तर का प्रदेश उत्तर कोशल कहा जाता है। गौड़ देश के मध्य में श्रावस्ती और कोशल के मध्य में अयोध्या नगरी विद्यमान है। उसी गौड़ प्रदेश में आज भी श्रावस्ती नगरी का ध्वंसावशेष पाया जाता है। वही गौड़ प्रदेश आज गोंडा के नाम से प्रसिद्ध है। बौद्धधर्म के प्रादुर्भाव के समय श्रावस्ती नगरी में बौद्धधर्म का प्रभाव विस्तृत हुआ था। (भारतवर्षीय इतिहास)

श्रीधर कवि—इनका नाम था राजा सुब्बासिंह चौहान। ये ओयेल जिला खीरी के रहने वाले थे। सन् १८७४ ई० में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने हिंदी भाषा में 'विद्वन्मोदतरंगिणी' नाम की एक पुस्तक लिखी है। इस ग्रंथ में इन्होंने अन्य सत्कवियों के लिखे कितने ही अच्छे-अच्छे उदाहरण दिए हैं। (शिवसिंहसरोज)

श्रीधर पाठक—ये सारस्वत ब्राह्मण हैं। इनके पूर्वपुरुष हजार वर्ष से भी ऊपर हुए, जब पंजाब छोड़कर जिला आगरे परगना फिरोजाबाद के जोंधरी नामक गांव में आ बसे थे। इनके पिता का नाम लीलाधर पाठक था। ये एक सामान्य पंडित थे। परंतु सच्चरित्रता, पवित्रता और भगवद्भक्ति में ये अद्वितीय थे।

पाठक जी का जन्म सं० १९१६ वि० की माघ कृष्ण चतुर्दशी को हुआ। प्रारंभ में आपने संस्कृत पढ़ना आरंभ किया था और उसमें आपने अच्छी योग्यता भी प्राप्त कर ली। परंतु कई कारणों से आपको संस्कृत पढ़ना छोड़ना पड़ा। १२ वर्ष की अवस्था में आपका संस्कृत पढ़ना छूट गया।

अब पाठक जी की रुचि चित्र तथा मिट्टी की सुंदर मूर्तियां बनाने की ओर गई। १४ वर्ष की अवस्था से आपका फिर पढ़ना आरंभ हुआ। पहले फारसी पढ़कर आप तहसीली स्कूल से हिंदी की प्रवेशिका परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। इस परीक्षा में आप प्रांत-भर में प्रथम रहे। सन् १८८० ई० में आपने प्रथम श्रेणी में एंट्रेंस परीक्षा पास की।

परीक्षा पास करने के छः महीने के बाद आप कलकत्ता गए और ६० रुपये मासिक वेतन पर सेशंस कमिश्नर के स्थायी दफ्तर में नौकर हुए। इसी पद पर से आप शिमला गए और हिमालय की उदग्र मूर्ति का आपने दर्शन किया। वहां से लौटने पर कुछ दिनों के बाद आप प्रयाग में लाट साहब के दफ्तर में ३० रुपये मासिक पर नियत हुए। इस दफ्तर के साथ आपको कई बार नैनीताल जाने का अवसर प्राप्त हुआ। सन् १८९८ ई० में जब आपका वेतन दो सौ रुपये मासिक था आपकी बदली आगरा हुई और वहां से सन् १९०१ में ३०० रुपये मासिक पर आप इरिगेशन कमीशन के सुपरिंटेंडेंट नियत हुए। कमीशन के अंत तक आप इस पद पर रहे। तदनंतर आप भारत गवर्नमेंट के दफ्तर से सुपरिंटेंडेंट के पद पर रहे। एक वर्ष के बाद आपने तीन महीने की छुट्टी ली और काश्मीर गए। वहां से लौटने पर 'काश्मीर-सुषमा' नाम का एक उत्तम काव्य आपने रचा। आपने सरकारी काम बड़ी योग्यता से किया और अंग्रेजी लिखने के लिए आप भी प्रसिद्ध थे। सन् १८९८-९९ की प्रांतीय इरीगेशन रिपोर्ट में आपकी प्रशंसा छपी है। उस समय आप युक्त प्रांत के लाट साहब के दफ्तर में ३०० रुपये मासिक की सुपरिंटेंडेंटी के पद से पेंशन लेकर लूकरगंज में रहते थे।

पंडित श्रीधर पाठक अपने समय के हिंदी भाषा के एक प्रसिद्ध कवि समझे जाते हैं। खड़ी बोली और ब्रजभाषा के आप समान कवि हैं। परंतु खड़ी बोली की कविता के आप आचार्य माने जाते हैं।

पंडित श्रीधर पाठक ने स्कूल में पढ़ते समय सबसे पहले अपने ग्राम जौधरी की प्रशंसा में कविता रची थी। परंतु वह कविता प्रकाशित नहीं हुई। आपकी फुटकर कविताओं का संग्रह 'मनोविनोद' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुआ है। गोल्डस्मिथ के तीन ग्रंथों का आपने पद्यानुवाद किया है। वे 'एकांतवासी योगी' 'ऊजड़ गांव' और 'श्रांत पथिक' के नाम से प्रकाशित हुए हैं। आप प्राकृतिक दृश्यों का चित्र उत्तमता से खींचते हैं।

आपने प्रयाग में 'पद्मकुटीर' नामक एक निवास-स्थान बनाया। आप वहीं रहते थे।

श्रीनगर—काश्मीर की राजधानी का नाम। यह राजधानी बहुत पुरानी है। इस नगरी को गोनर्दवंशी राजा अशोक ने स्थापित किया था। और कल्हण पंडित की गणना के अनुसार, इसका समय खृ० के १५६४ वर्ष पूर्व निश्चित होता है। कनिंहम ने अशोक का राज्यकाल २६३ ई० के पूर्व बतलाया है।

(भारतवर्षीय इतिहास)

श्रीनिवासदास—ये जाति के वैश्य थे। इनके पिता का नाम मंगीलाल जी था और वे मथुरा के सेठ लक्ष्मीचंद जी के प्रधान मुनीम थे। वे दिल्ली की कोठी में रहते थे।

लाला श्रीनिवासदास का जन्म सन् १६०८ ई० में हुआ था। ये बाल्यावस्था से ही सदाचारी और चतुर थे। इन्होंने हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी, फारसी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

लाला श्रीनिवासदास छोटी अवस्था में ही बड़े योग्य हो गए थे। महाजनी कारोबार में ये इतने दक्ष हो गए थे कि १८ वर्ष की अवस्था में इन्होंने दिल्ली की कोठी का काम संभाल लिया। ये अपनी योग्यता के कारण म्युनिसिपल कमिश्नर और आनरेरी मजिस्ट्रेट हुए थे। राजा और प्रजा दोनों में इनका बड़ा आदर था।

लाला श्रीनिवासदास को दिल्ली की कोठी का भी काम संभालना पड़ता था और साथ ही अन्य नगरों की कोठियों की भी देखभाल करनी पड़ती थी, अतः इनको अपनी बुद्धि को परिमार्जित करने का अच्छा अवसर हाथ लगा था। मातृभाषा हिंदी से इनका स्वाभाविक प्रेम था। आप बाहर जहां कहीं जाते, वहां के हिंदी रसिकों अथवा लेखकों से अवश्य मिलते थे। अपने यहां आए हुए हिंदी प्रेमी का ये सब काम छोड़कर आदर-सत्कार करते थे।

इन्होंने हिंदी के चार ग्रंथ लिखे हैं। 'तप्तसंवरण', 'संयोगितास्वयंवर', 'रणधीरप्रेममोहिनी' और 'परीक्षागुरु'। परीक्षागुरु में इन्होंने एक साहूकार के पुत्र के जीवन का दृश्य चित्रित किया है। उसे देखने से इनके सांसारिक ज्ञान का परिचय मिलता है।

इन्हें बड़ी आयु नहीं मिली थी, केवल ३६ वर्ष की अवस्था में इन्हें अपनी जीवनलीला संवरण करनी पड़ी।

श्रीपति कवि ये प्रयागपुर जिला बहरायच के रहने वाले थे। सं० १७०० वि० में इनका जन्म हुआ था। ये हिंदी साहित्य के आचार्यों में गिने जाते हैं। 'काव्यकल्पद्रुम', 'काव्यसरोज' और 'श्रीपतिसरोज' नामक हिंदी साहित्य के तीन ग्रंथ इन्होंने लिखे थे। इनके जन्मस्थान का ठीक पता नहीं बताया जा सकता।

(शिवसिंहसरोज)

श्रीपर्वत—पुराणों में इस पर्वत की महिमा का वर्णन हुआ है। देवी श्री की तपस्या से प्रसन्न होकर विष्णु ने इस पर्वत को उन्हें समर्पित किया था। इसीलिए इसका ऐसा नामकरण हुआ। यहां पर द्वादश ज्योतिर्लिंगों में एक मल्लिकार्जुन भगवान् का मंदिर है। यह पर्वत कुर्नूल जिले की कृष्णा नदी के अंचल में स्थित है।

श्रीरङ्गम्—'ब्रह्मांडपुराण' (भागवत का निर्माण) के श्रीरंगमाहात्म्य' में इस पवित्र वैष्णव प्रतिष्ठान की महिमा का व्यापक रूप में वर्णन हुआ है। लंका जाते हुए श्रीराम और लक्ष्मण यहां रुके थे। प्राचीन धर्मस्थल का उद्धार दक्षिण के शासक चोलों और पांडवों ने किया था। अनेक शासकों ने यहां अपने अभिलेख खुदवाए। यहां पर रंगनाथ जी का विशाल एवं भव्य मंदिर है। 'भागवत' की रचना यहीं पर बताई जाती है। रामानुज, मणवाल आदि वैष्णव भक्तों का यह केंद्र था। मध्ययुगीन भक्ति के उदय में इस स्थान का ऐतिहासिक महत्त्व रहा है। त्रिचिनापल्ली के निकट एक द्वीप के रूप में श्रीरंगम आज भी अपनी धार्मिक गरिमा को अक्षुण्ण बनाए हुए है।

श्रीहर्ष—(१) सरस्वती नदी के किनारे कुरुक्षेत्र प्रदेश में स्थानेश्वर नामक प्रसिद्ध नगर है। वहां पुष्पभूति नामक एक परमशैव राजा राज्य करते थे। वे दक्षिणदेशनिवासी भैरवाचार्य के शिष्य थे। भैरवाचार्य तांत्रिक थे, उन्होंने राजा को भी तांत्रिक बनाया। एक समय विद्याधर बनने की कामना से राजगुरु मंत्रसाधन में प्रवृत्त हुए। उन्होंने राजा पुष्पभूति को अपनी रखवाली के लिए खड़ा किया। एक तो महाश्मशान का भयानक स्थान, दूसरे कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की अंधेरी रात और फिर मंत्रसिद्धि का भयंकर समय, एक से एक सब भयानक था। तथापि गुरुरक्षा में राजा निर्भय खड़े रहे।

अचानक एक भयंकर शब्द के साथ पृथ्वी फटी। चकित होकर राजा ने देखा कि पृथ्वी से [illegible] सूरत का एक मनुष्य निकलकर लपका चला [illegible] है। उसने अपना नाम श्रीकंठ नाग बतला

जब देखा कि उसकी पूजा का कुछ भी प्रबंध नहीं है, तब क्रोध में भरकर उसने राजा और भैरवाचार्य का प्राण लेना चाहा। उसने देर तक राजा से बाहुयुद्ध किया। अंत में श्रीकंठ नाग पराजित हुआ। श्रीकंठ की हार से प्रसन्न होकर लक्ष्मी जी ने भैरवाचार्य को विद्याधर बनाया और राजा को वरदान दिया—'तुम्हारे कुल में श्रीहर्ष नामक महापराक्रमी और चक्रवर्ती राजा होगा।' कालक्रम से उसके वंश में प्रभाकरवर्द्धन का जन्म हुआ। यह सूर्यनारायण का भक्त था। प्रभाकर ने निज बाहुबल से 'हूण' जाति को परास्त किया और बात ही बात में गांधार, सिंधु, लाट और मालदे को अपने अधीन कर लिया। राजमहिषी यशोमती के गर्भ से राजा के दो पुत्र हुए और एक कन्या। बड़े पुत्र का नाम राज्यवर्द्धन, छोटे का श्रीहर्षवर्द्धन और कन्या का नाम राज्यश्री हुआ।

मौखरीवंश के कान्यकुब्जपति अवंती वर्मा के पुत्र ग्रहवर्मा के साथ राजकुमारी राज्यश्री का ब्याह हुआ। उसी समय उत्तर देश में हूण जाति ने फिर सिर उठाया और उपद्रव किया। उनके शासनार्थ राज्यवर्द्धन सेनासहित उत्तर दिशा में भेजे गए। छोटा भाई श्रीहर्षवर्द्धन बड़े भाई को पहुंचाने हिमालय तक गए। उनके साथ घुड़सवार सेना भी थी। बड़े भाई को विदा करके कुछ दिनों तक श्रीहर्षवर्द्धन वहीं शिकार खेलते रहे। एक दिन राजधानी स्थानेश्वर से कुरंगक नामक दूत ने आकर संदेश दिया कि महाराज प्रबल दाह-ज्वर से पीड़ित हैं। इस दुःखदायी संवाद से व्याकुल होकर श्रीहर्ष राजधानी की ओर चले और अपने बड़े भाई के पास यह दुःसंवाद पहुंचाया। राजधानी में उनके आगमन के बाद उनके पिता महाराज प्रभाकरवर्द्धन का स्वर्गवास हुआ। माता यशोमती पतिवियोग से प्रथम ही अग्नि में प्रवेश करके इनको मातृहीन कर गई थी। प्रभाकरवर्द्धन के लोकांतरित होने का संवाद सुनकर दुर्वृत्त मालवराज ने कान्यकुब्जपति ग्रहवर्मा का प्राण संहार कर दिया और उसकी पत्नी राज्यश्री को बंदी बनाकर वह बलपूर्वक स्वयं कान्यकुब्जपति बन बैठा।

शोकसंतप्त राज्यवर्द्धन ने शीघ्र ही ससैन्य मालवराज पर चढ़ाई की और श्रीहर्षवर्द्धन अकेले राजधानी में रहे। मालवराज राज्यवर्द्धन से युद्ध में पराजित होकर मारा गया। परंतु उसका मित्र गौडेश्वर शंकरदेव गुप्त डेरे में आया। उसने विश्वासघात करके राज्यवर्द्धन को मारकर अपने मित्र की मृत्यु का बदला ले लिया। इस संवाद को सुन श्रीहर्षवर्द्धन घबराए नहीं, प्रत्युत तत्क्षण उन्होंने कान्यकुब्ज देश की यात्रा की। मार्ग में उनके साथ राज्यवर्द्धन का सहचर भांडी भी ससैन्य आ मिला। यहां भांडी के मुख से उसने सुना कि भगिनी राज्यश्री कारागार से निकलकर विंध्यारण्य में भाग गई। तब उसने भांडी को सेनासहित कान्यकुब्ज की ओर बढ़ने को कहा और स्वयं बहन की खोज में विंध्यारण्य में गया। भांडी ने सेनासहित अग्रसर होकर श्रीहर्षवर्द्धन की आज्ञानुसार गंगा के किनारे अपना शिविर स्थापित किया। विंध्यारण्य के बौद्धपति 'दिवाकरमित्र' के साथ श्रीहर्षवर्द्धन का परिचय हुआ। बौद्ध यतिवर के आश्रम में उसने सुना कि एक रूपवती स्त्री चितानल में प्रवेश करना चाहती है। वहां पहुंचकर उसने भगिनी राज्यश्री का उद्धार किया। उसे ज्ञात हुआ कि अब राज्यश्री बौद्ध तपस्वी के आश्रम में शेष जीवन बिताएगी। यह दिवाकर मित्र राज्यश्री के पति का परम बंधु था। अब राज्यश्री उसके आश्रम में तपस्विनी और ब्रह्मचारिणी होकर रहे—यह जब स्थिर हो गया, तब श्रीहर्षवर्द्धन गंगा-तीर पर अपनी सेना से जा मिला।
(श्रीहर्षचरित)

(२) ये श्रीहर्ष संस्कृत के पंडित और कवि थे। इन्होंने 'नागानंद', 'प्रियदर्शिका' और 'रत्नावली' नाम की तीन नाटिकाएं लिखी हैं। इन नाटिकाओं की प्रस्तावना में उदार कवि श्रीहर्ष ने अपने 'श्रीहर्ष' नाममात्र का परिचय दिया है। अपने हाथ से अपने जीवनचरित को उन्होंने नाटिका के साथ जोड़ना उचित नहीं समझा। पर अब देखा जाता है कि श्रेष्ठ कवि की इस उदारता का फल विपरीत हुआ। अब ऐसे भी लोग हैं जो श्रीहर्ष की कविता को धावक की ठहराते हैं। अभागे भारतवर्ष में उदारता का मूल्य चिरकाल से नहीं है। पर दुःख यह है कि विलायती पंडितों ने भी, जो भारत के मृत कवियों की कीर्ति को खंडहरों से निकाल रहे हैं, श्रीहर्ष के साथ अन्याय किया है। खेद है कि हिंदी के सत्कवि विचारशील बाबू हरिश्चंद्र ने भी 'काश्मीरकुसुम' में उसी अन्यायपथ का अनुसरण किया है। वे लिखते हैं कि संवत् ६०० वि० के लगभग जो श्रीहर्ष नामक कान्यकुब्ज का राजा था, उसीके हेतु रत्नावली आदि ग्रंथ बने हैं। अब देखना चाहिए कि इस अनर्थ-भरे विचार

की उत्पत्ति कहां से हुई।

विचार करने पर साहित्य के प्रसिद्ध कवि मम्मट भट्ट का 'काव्यप्रकाश' ही इस अनर्थ की जड़ है। पर सच पूछिए तो काव्यप्रकाश का उतना दोष नहीं है, जितना उसके निरंकुश टीकाकारों का। काव्यप्रकाश की दूसरी कारिका 'काव्यं यशसेऽर्थकृते' पर मम्मट भट्ट ने केवल यही व्याख्या की है कि 'काव्य कालिदास के समान यश को करता है और श्रीहर्षादि से धावक आदि के तुल्य धन भी दिलाता है'। मम्मट के इस कथन का तात्पर्य केवल इतना ही है कि धावक के काव्य पर प्रसन्न होकर श्रीहर्ष ने उसको धन दिया था। वह काव्य 'रत्नावली' था कि क्या था, इस विषय में मम्मट चुप हैं। संभव है कि कोई काव्य धावक ने श्रीहर्ष को दिखाया हो और सत्कवि श्रीहर्ष ने उनकी कविता का आदर किया हो तथा धावक का वह काव्य संस्कृत-साहित्य के असंख्य ग्रंथों के समान लुप्त हो गया हो। यह सब हो सकता है परंतु 'रत्नावली' धावक की नहीं हो सकती। यदि धावक आदि किसी अन्य कवि की लिखी हुई 'रत्नावली' होती, तो उसकी प्रस्तावना में श्रीहर्ष की बड़ाई और जीवन की कोई विशेष घटना अवश्य मिलती, क्योंकि कवि जितनी प्रशंसा करता है उतना ही उसे द्रव्य मिलता है। कवि राजा के नाम से ग्रंथ बना तो सकता है, पर मूर्ख राजा ग्रंथ का कवि नहीं बनता। यदि ऐसा होता तो श्रीहर्ष का 'निपुण कवि' के नाम से साभिमान प्रसिद्ध होना लज्जाजनक और मरण से बढ़कर गर्हित होता। ऐसा अनुचित कार्य करके कोई भी समझदार अपनी हंसी नहीं करा सकता।

'काव्यप्रकाश' के टीकाकार महेश्वर, नागेश भट्ट, वैद्यनाथ और जयराम प्रभृति पंडितों ने मम्मट की पूर्वोक्त कथन की निःसंकोच होकर यही व्याख्या की है कि रत्नावली नाटिका श्रीहर्ष को समर्पण करके धावक कवि ने बहुत धन पाया था। इस प्रकार इस भ्रांति ने संसार में प्रचलित होकर श्रीहर्ष के चरित्र में कलंक लगाया। जब श्रीहर्ष के समय धावक कवि था ही नहीं तब 'रत्नावली' को समर्पण करके श्रीहर्ष से उसने पारितोषिक कैसे पाया? देखते हैं कि इस प्रश्न पर पूर्ववर्ती लेखकों में से किसीने भी विचार नहीं किया है। अपनी कूटकल्पना को चरितार्थ करने के लिए पूर्वापर के कवियों को उन लोगों ने श्रीहर्ष के पास ही ला पटका है। सुबंधुकृत 'वासवदत्ता' के ढंग पर बाणभट्ट ने 'कादंबरी' और 'श्रीहर्षचरित' नामक दो गद्यकाव्य लिखे हैं। सुबंधु ईसा की छठी सदी के अंत भाग में वर्तमान था और बाण ईसा की सप्तम शताब्दी के प्रारंभ में। बाण ने श्रीहर्ष के आरंभ में अपनी अपेक्षा कालिदास को प्राचीन कहा है। कालिदास का ठीक समय आज भी एक प्रकार से अनिश्चित है। सप्तम शताब्दी के बाणभट्ट ने उनका नाम 'श्रीहर्षचरित' में लिखा है। इससे कालिदास का होना छठी शताब्दी के आदि में निश्चित होता है। बहुतसे संस्कृत भाषा के इतिहासवेत्ता कालिदास को छठी शताब्दी का ग्रंथकार मानते हैं। 'मालविकाग्निमित्र' नाटक की प्रस्तावना में कालिदास ने अपने से प्राचीन कवि शूद्रक, धावक, भासकराभिल और सौभिल आदि का स्मरण किया है। 'श्रीहर्षचरित' में बाणभट्ट ने 'भास' नामधारी कवि को कालिदास से प्राचीन लिखा है। इस भास कवि का समसामयिक धावक कवि (अंग्रेजों के ही मत से) कम से कम ईसा की पांचवीं शताब्दी में रहा होगा। वह ईसा की सातवीं शताब्दी में कन्नौज के महाराज श्रीहर्ष की सभा में कैसे आ सकता है? इसलिए काव्यप्रकाश के टीकाकार तथा उनके अनुयायी विलायती विद्वानों का मत नितांत निर्मूल है। महाराज श्रीहर्ष सुकवि थे। मधुबन के ताम्रशासन में उसके लिखे हुए श्लोक भी उनकी कवित्वशक्ति के द्योतक हैं। हमारे विचार में बिना किसीकी सहायता के स्वयं महाराज श्रीहर्षदेव ने 'रत्नावली', 'नागानंद' और 'प्रियदर्शिका' नाटिका की रचना की है।

काव्यप्रकाश की निदर्शन टीका में धावक के स्थान में बाण का नाम मिलता है। हाल साहब ने इसीको मूल बनाकर अपनी छपाई 'वासवदत्ता' की अंग्रेजी भूमिका में कई युक्तियों को दिखाकर यह निश्चय किया है कि 'रत्नावली' बाणभट्ट ने लिखी है। वस्तुतः हाल साहब की युक्तियां संदेह उत्पन्न कर सकती हैं, निर्णय नहीं। उनकी सबसे बड़ी युक्ति यह है कि 'रत्नावली' का एक श्लोक 'श्रीहर्षचरित' में भी मिलता है। यदि एक कवि का एक श्लोक किसी ग्रंथ में मिलने से वह ग्रंथ ही दूसरे कवि का हो जाए, तब तो साहित्यशास्त्र ही चौपट हो सकता है। मनुस्मृति के ज्यों के त्यों श्लोक जिन स्मृतियों में मिलते हैं वे मनुजी की मानी जाएंगी और राजतरंगिणी भी एक-दो श्लोकों के कारण कल्हण के अधिकार से

निकल जाएगी और शिवपुराण का एक श्लोक अविकल उद्धृत करने से कविवर कालिदास का कुमारसंभव व्यास जी का काव्य समझा जाएगा। इस विषय में हम अनेक उदाहरण दे सकते हैं कि एक कवि दूसरे कवि के श्लोक को कभी-कभी अपने ग्रंथ में भी संग्रह कर लिया करते हैं। इसलिए दोनों ग्रंथों का निर्माता एक ही समझ लेना कुछ बुद्धिमत्ता का प्रकाशक नहीं है। फिर न जाने क्या समझकर, डाक्टर व्यूलर और बंबई के सुयोग्य माननीय काशीनाथ त्र्यंबक तैलंग अपने लेख में हाल साहब के भ्रांत मत का आग्रह कर रहे हैं। यदि काव्यप्रकाश के मूल में धावक के स्थान पर बाण का नाम हो तो भी इससे इतना ही सिद्ध होगा कि बाण के काव्य से संतुष्ट होकर श्रीहर्ष ने उन्हें बहुतसा धन दिया था और हमारी समझ में (यदि उक्त पाठ ठीक हो) यह आता है कि 'श्रीहर्षचरित' ही बाण का वह काव्य है जिसके स्थान में हाल साहब आदि बड़े-बड़े विद्वान्, छानबीन करनेवाले विज्ञ पुरुष, भ्रांतिवश 'रत्नावली' को समझ रहे हैं। यह तो पहले ही कह चुके हैं कि धावक, बाण से बहुत पुराना कवि है। श्रीहर्ष की सभा में इस नाम का कोई कवि न था। बाणभट्ट, मयूरभट्ट और जैन पंडित मानतुंग सूरि के समान यदि धावक भी श्रीहर्ष का सभासद् होता, तो अवश्य तद्रचित कोई न कोई ग्रंथ मिलता। काव्यप्रकाश की टीकाओं को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी श्रीहर्ष के सभासद् धावक का उल्लेख नहीं है। विलसन साहब ने कल्हणकृत 'राजतरंगिणी' में महाराज हर्षदेव का इतना वर्णन देखने से कि वह सब भाषाओं का पंडित एवं सत्कवि और सब विद्याओं की खान था। जिसने देश-देशांतरों में भी प्रसिद्धिलाभ की थी—

सोऽशेषदेशभाषाज्ञः सर्वभाषासु सत्कविः ।
कृत्स्नविद्यानिधिः प्राप ख्यातिं देशान्तरेष्वपि ॥

यह मान लिया है कि 'रत्नावली' काश्मीराधिपति हर्षदेव की रचना है और यह निर्णय भी कर डाला कि काश्मीर का इतिहास देखने से सन् १११३ ई० में काश्मीर के राजसिंहासन पर हर्षदेव बैठे थे। परंतु रत्नावली काश्मीर के राजा हर्षदेव के बहुत पहले की है, यह हम अभी दिखलाएंगे। फिर वे इसके कर्त्ता कैसे हो सकते हैं! मालवदेश के प्रसिद्ध महाराजा भोजदेव ने साहित्य के प्रसिद्ध ग्रंथ 'सरस्वती कंठाभरण' में 'रत्नावली' के कई जगह उदाहरण दिए हैं। भोज ने ५५ वर्ष, ७ मास और ३ दिन तक राज्यशासन किया। जब हर्ष के पितामह अनंतदेव काश्मीर का राज्य करते थे, उसी समय मालवे में भोजदेव थे। अनंतदेव ईसा के १०६५ के आसपास हो चुके हैं, वही समय भोजदेव का समझना चाहिए। विलायत के सभी पंडितों ने इस काल के आसपास ही भोजदेव का समय ठहराया है। 'दशकुमारचरित' के विज्ञापन में स्वयं विलसन साहब ने भी सन् १००० ई० से प्रथम ही भोज का राज्यकाल ठहराकर दंडी का समय-निर्णय किया है। अब विलसन साहब सोचें कि हर्षदेव के राज्यकाल से, जिसको उन्होंने स्वयं सन् १११३ ई० ठहराया है, 'रत्नावली' प्राचीन है कि नहीं?

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। धनंजय कवि ने, जिसका दूसरा नाम धनिक भी था, अपने 'दशरूपक' ग्रंथ में 'रत्नावली के उदाहरण कई जगह दिए हैं। धनंजय महाराज मुंज का सभासद् था। और मुंज भोजदेव से पहले मालवे के राजसिंहासन पर विराजमान थे, इसीलिए इतिहासविज्ञों ने सन् १०३० ई० से पहले ही मुंज के राज्यकाल का निर्णय किया है। अब विचारकर देखिए कि महाराज मुंज के राज्यकाल में काश्मीर के महाराज हर्षदेव का जन्म भी नहीं हुआ था। किंतु उनकी लिखी नाटिका विद्यमान थी, यह आश्चर्य की बात है कि नहीं?

यदि 'श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्' ऐसा ही काव्यप्रकाश में पाठ हो और उसका 'श्रीहर्षाख्यस्य राज्ञो नाम्ना रत्नावलीं कृत्वा धावकाख्यकविर्बहुधनं लेभे' ऐसा ही अर्थ हो और कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' नाटक की प्रस्तावना में 'प्रथितयशसां धावकसौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य कृतौ किङ्कृतो बहुमानः' ऐसा ही पाठ हो और पूर्वोक्त धावक ही रत्नावली का लिखने वाला भी हो तो हर्षदेव की बात दूर रहे, कालिदास, विक्रमादित्यादि से भी 'रत्नावली' पहले की है—यह बात हम निःसंकोच होकर कह सकते हैं। विलसन साहब ने काश्मीर का इतिहास देखकर, जो यह निर्णय कर लिया है कि सन् १११३ ई० में हर्षदेव काश्मीर के राज्यसिंहासन पर बैठे, सो भी भ्रांति से खाली नहीं है।

एक बात और है। यदि कालिदास और मम्मट

भट्ट की दृष्टि में सचमुच कोई धावक पुरुष रहा होता तो उसके समान वास्तव में प्रथितयशा कोई दूसरा कवि न होता। संसार-भर जिस कालिदास की कविता पर मोहित हो रहा है, वह स्वयं जिसको 'प्रथितयशा' कहकर आदर दे, उसके समान और कौन यशस्वी हो सकता है? पर दुःख की बात है, परीक्षा के स्थान में धावक इस यश का पात्र नहीं ठहरता। यदि धावक के अस्तित्व का ठौर-ठिकाना किसी तीसरी जगह मिल जाए तो यह सारी यशोराशि उसीके भाग की है। नहीं तो धावक का होना वैसा ही है जैसा बालकों का 'हाऊ' जानवर।

कलकत्ते के प्रसिद्ध पंडित महेशचंद्र न्यायरत्न काव्यप्रकाश विवरण के विज्ञापन में लिखते हैं कि हमने कई पुरानी पुस्तकों में धावक के स्थान में भास या भासक का नाम देखा। उनके इस लेख से कई प्रतिभाशाली लेखकों ने यह निगमन निकाला कि वास्तव में धावक नाम का कोई कवि ही नहीं हुआ। 'भासक' अपने समय में एक विख्यात कवि हो चुका है, जिसके यश का कीर्तन कितने ही प्राचीन कवि कर रहे हैं। लिपि-प्रमाद से भासक के स्थान में धावक की धूम मच गई। असल में धावक कोई व्यक्त नहीं है। जब हमने स्वयं दो-चार पुरानी पुस्तकों में धावक का नाम नहीं पाया तब इस पूर्व समय के संदेहास्पद विषय को संदेहरहित समझ लिया। केवल इसी बात से नहीं कि कालिदास के मालविकाग्नि में धावक का नाम भ्रम से सन्निविष्ट हो गया। प्रत्युत यह देखकर कि काव्यप्रकाश में भी धावक का नाम उसी प्रकार भ्रम से लिखा गया है।

'रत्नावली' कश्मीरनरेश हर्षदेवकृत नहीं है, यह तो हम ऊपर सिद्ध कर ही चुके, परंतु यहां यह कह देना भी आवश्यक है कि 'रत्नावली' नाटिका प्रसिद्ध नैषधकार श्रीहर्षकृत भी नहीं है। डाक्टर ब्यूलर आदि विद्वानों के अनुमान में दार्शनिक कवि नैषधकार का स्थितिकाल ईसा की १२वीं शताब्दी है।

अतएव जिन युक्तियों से 'रत्नावली' कश्मीर वाले हर्ष की नहीं हो सकती, उन्हीं युक्तियों से इनकी भी नहीं हो सकती।

दूसरी बात और है। श्रीहर्षकृत 'रत्नावली' आदि नाटकों की प्रस्तावना देखने से यह भलीभांति सिद्ध होता है कि वे एक प्रबल पराक्रमी सम्राट् थे, जिनके पादपद्म का स्पर्श करके देश-देशांतर के राजा कृतार्थ होते थे। अतएव वह कान्यकुब्जनरेश महाराज श्री-हर्ष के सिवाय और कौन हो सकता है!

नैषधचरित का कर्ता इस बात पर फूल रहा है कि उसे कान्यकुब्ज के महाराज दो पान के बीड़े और आसन देकर सम्मानित करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि जिसने 'नैषधचरित' और 'खंडन खंड खाद्य' आदि ग्रंथ लिखे वह राजा कभी नहीं हो सकता। 'नैषधचरित' के देखने से उसका कर्ता राजसम्मानित एक ब्राह्मण प्रतीत होता है, जिसके पिता का नाम श्रीहीर और माता का नाम मामल्लदेवी था। उसने अपने लिखे ग्रंथों का नाम 'नैषधचरित' के अंत में लिखा है, उसमें रत्नावली का नाम तो नाम, उसका कहीं संकेत तक नहीं है और न इसकी कविता के साथ रत्नावली की कविता का कुछ मेल ही है।

जो लोग रत्नावली को बाणभट्ट की लिखी कहकर डॉक्टर हाल साहब के अनुचर हो रहे हैं, वे भ्रांत हैं कि दुराग्रही, इस विषय का निर्णय नहीं हो सकता। परंतु जब देखते हैं कि वे श्रीहर्षकृत 'रत्नावली' को बिना किसी प्रमाण के आधार पर बाणभट्ट की बताने में आग्रह दिखा रहे हैं तब यही निश्चय होता है कि कल्पक की पदवी पाने के लिए ही वे ऐसा कर रहे हैं। नहीं तो भला जब 'रत्नावली' और 'नागानंद' में सूत्रधार के रूप से 'निपुण कवि' श्रीहर्ष ही निज-निपुणता का प्रबल प्रमाण दे रहे हैं तब इस विषय में अन्य प्रमाण की आवश्यकता ही क्या है? तथापि लोग इस विषय में प्रमाणांतर मांगा करते हैं— 'किमाश्चर्यमतःपरम्'।

विलायती पंडितों के श्रद्धालु द्विवेदिकुलनंदन पंडित महावीरप्रसाद ने भी 'नैषधचरित' की चर्चा में लिखा है कि 'रत्नावली' धावक ने नहीं लिखी, काश्मीरनरेश श्रीहर्ष ने नहीं लिखी, तो लिखी किस-ने? यदि कान्यकुब्जाधीश श्रीहर्षकृत मानते हैं तो उसका कवि होना कहीं नहीं लिखा है। धन्य, आप तो सब कुछ देख गए पर श्रीहर्ष का दुर्भाग्य—उनका कवि होना कहीं नहीं लिखा।

श्रीहर्ष का केवल कवि होना ही नहीं, प्रत्युत 'निपुण कवि' होना 'रत्नावली', 'नागानंद' और 'प्रियदर्शिका' में लिखा है। तथापि आपने लिखा है कि उसका कवि होना कहीं नहीं लिखा है। जब हमारे देशी पढ़े-लिखे लोगों का यह हाल है तब हाल साहब को कोई क्या कह सकता है! हर्षचरित में

महाकवि बाणभट्ट ने 'रत्नावली' के रचयिता श्रीहर्ष को कवि ही नहीं, किंतु सर्वविद्या और कलाशास्त्र में पारदर्शी बतलाया है। बाणभट्ट के लिखे हुए श्रीहर्ष के दो-चार विशेषण नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

सर्वविद्यासंगीतगृहमिव सरस्वत्याः······बलदर्शनमिव वैदग्धस्य······कन्यान्तःपुरमिव कलानाम्, ······चक्रवर्त्तिनं हर्षमद्राक्षीत्।

(हर्षचरित, द्वितीय उच्छ्वास)

इसके अतिरिक्त और भी इस विषय में अनेक प्रमाण हैं। बंगदेश के विख्यात लेखक बाबू राजकृष्ण जी ने लिखा है कि 'मयूरशतक' पर मधुसूदनकृत भावबोधिनी नाम्नी टीका है। उसमें उन्होंने लिखा है कि बाणभट्ट जिस श्रीहर्ष के सभापंडित थे वही श्रीहर्ष 'रत्नावली' के कर्त्ता हैं। मधुसूदन का ग्रंथ सं० १७११ वि० अर्थात् सन् १६५४ ईसवी में लिखा गया है। सुतरां हम लोग जिस मत का समर्थन करने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं वह इस देश की पंडितमंडली में अढ़ाई सौ वर्ष से भी पहले ग्राह्य था। ख्रीष्ट १८७८ वर्षीय प्राचीन वृत्तप्रदर्शक पुस्तक के देखने से यही सिद्ध नहीं होता कि श्रीहर्ष केवल कविता में ही निपुण थे किंतु यह भी सिद्ध होता है कि वे महावैयाकरण भी थे और ग्रंथरचना में सिद्धहस्त थे। उन्होंने व्याडी, शंकर, चंद्र, वररुचि और पाणिनि के विचार की पर्यालोचना करके एक बड़ा सुंदर और सुगम 'लिंगानुशासन' लिखा था। इसकी शवर स्वामीकृत टीका भी प्रसिद्ध है। यह शवर स्वामी प्रसिद्ध मीमांसा के भाष्यकार शबराचार्य से भिन्न हैं कि अभिन्न, यह स्वतंत्र समालोच्य है। तथापि इतना कह देना आवश्यक है कि टीकाकार भी लिंगानुशासन को हर्षकृत ही नहीं—हर्षवर्द्धनकृत कहकर स्वीकार कर रहे हैं। लिंगानुशासन का अंतिम श्लोक यह है—

व्याडेः शङ्करचन्द्रयोर्वररुचेर्विद्यानिधेः पाणिनेः
सूक्तालिङ्गविधीन् विचार्य सुगमं श्रीवर्द्धनस्यात्मजः।
अव्यं व्यापि च हर्षवर्द्धन इव स्पष्टीकृतप्रत्ययं
लिङ्गानामनुशासनं रचितवानर्थ्यर्थसंसिद्धये॥

इस उल्लिखित श्लोक को ही देखकर विचारशील पाठक स्थाली पुलाक न्याय से श्रीहर्ष की कविता-निपुणता और विद्वत्ता का परिचय पा लेंगे और जो परमतदास बनकर इस बात की शपथ कर बैठे हैं कि 'रत्नावली' को श्रीहर्षकृत मानना और उनको कवि समझना महापाप है, उनकी तो बात ही निराली है। उनके लिए सचमुच 'श्रीहर्ष का कवि होना कहीं नहीं लिखा।'

अब हम उन कतिपय आपत्तियों पर विचार करना उचित समझते हैं, जो श्रीहर्ष के विरुद्ध भिन्न-भिन्न पुरुषों द्वारा उठाई गई हैं या उठाई जा सकती हैं। बाबू राजकृष्ण ने 'भावबोधिनी' के कर्त्ता का उल्लेख करके भी श्रीहर्ष को 'रत्नावली' का कर्त्ता नहीं स्वीकार किया है। वे कहते हैं कि श्रीहर्ष एक दिग्विजयी राजा था, वह नाटकादि लिखने बैठा हो, यह संभव नहीं। किंतु राज्यविस्तार द्वारा उसने जिस प्रकार यशोलाभ किया था, उसी प्रकार उसने यदि अपने नाम से ग्रंथप्रचार द्वारा यशस्वी होने की चेष्टा की हो और उसके लिए लेखकों को मधुर अर्थ देकर उन्हें संतुष्ट किया हो तो कुछ आश्चर्य नहीं। राजकृष्ण बाबू जिस कारण श्रीहर्ष को 'रत्नावली' का कर्त्ता ठहराने में पश्चात्पद हो रहे हैं, वह किसी प्रकार विश्वासयोग्य और युक्तिसिद्ध नहीं हो सकता। दिग्विजयी राजा होने से श्रीहर्ष नाटकादि की रचना नहीं कर सकते, इस प्रकार के अनुमान का मूल ही क्या है?

बाणभट्ट हर्षदेव के जीवनचरित को लिखकर उनके यश को बढ़ा सकते हैं। इस आशंका पर प्रमाणस्वरूप इसके संबंध में 'हर्षचरित' की किसी उक्ति का उल्लेख नहीं करेंगे, नहीं तो हर्षवर्द्धन सब विद्या और कलाशास्त्र में पारदर्शी थे। हर्षचरित से ही इस विषय के अनेक प्रमाण दिए जा सकते हैं। हर्षवर्द्धन नितांत धार्मिक और जितेन्द्रिय राजा थे। इनकी गुणराशि और उदारता का वर्णन न केवल बाणभट्ट ने ही किया है किंतु प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनत्संग ने भी अपनी यात्रा-पुस्तक में इनका गुणगान किया है। ऐसा गुणाग्रही धर्मात्मा राजा झूठे यश की आशा में पड़कर अपने नाम का काव्य-प्रचार करा ले, यह कहां तक संभव हो सकता है! इस बात का निर्णय सहृदय महानुभावों के विचाराधीन ही है। किंतु हम जिज्ञासा करते हैं कि क्या इतने बड़े संस्कृत साहित्य के इतिहास में हमें इस प्रकार के कोई दो-चार भी पक्के प्रमाण दिखा सकता है? विक्रमादित्य, शालिवाहन, जयापीड, मुंज, भोज, लक्ष्मणसेन प्रभृति विद्योत्साही नृपति बहुतेरे कवि और पंडितों का प्रतिपालन कर गए हैं, किंतु उन्होंने अपने नाम पर और किसीसे कोई ग्रंथ लिखवाया है क्या? वस्तुतः यह विषय इतना अभूत-

पूर्व, अस्वाभाविक तथा सच्चे गुणग्राही के अयोग्य है कि हम संतोष के साथ कहते हैं कि प्राचीन संस्कृत-साहित्य के इतिहास में इस प्रकार के दृष्टांत मिलने की बात हम जानते ही नहीं।

हाल साहब के मतावलंबियों में से कोई-कोई कह सकते हैं कि व्यूलहट साहब का आविष्कृत और विलायती पंडितों का अनुमोदित जब 'काव्यप्रकाश' का 'श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्' यही पाठ ठीक है, तब जाना जाता है कि श्रीहर्ष आदि राजाओं से बाण प्रभृति कवियों ने धन-लाभ किया था। इसके उत्तर में हम कहते हैं कि केवल 'काव्यप्रकाश' के मत से क्यों, स्वयं बाणभट्ट ने ही 'हर्षचरित' में सविस्तर लिखा है कि उनको हर्षवर्द्धन या श्रीहर्ष ने सादर-ग्रहण कर पुरस्कृत किया, किंतु उन्होंने 'रत्नावली' की रचना की थी, यह अर्थ निकलता है क्या? विद्योत्साही राजागण चिरकाल से कवि और पंडितों को आदरपूर्वक धन देते आए हैं। इस विषय में प्राचीन भारत के सैकड़ों ऐतिहासिक प्रमाण दिए जा सकते हैं।

राजतरंगिणी के चतुर्थ तरंग में लिखा है कि जयापीड नृपति ने प्रतिदिन लक्ष दीनार (मुद्रा विशेष) वेतन देकर पंडित उद्भटभट्ट को सभापति किया था। उन्होंने तो राजा जयापीड के नाम से कोई ग्रंथ बनाकर प्रचलित नहीं किया। सुतरां हमारी विवेचनाएं प्रमाणांतर के बिना 'काव्यप्रकाश' के इस प्रकार के संदिग्ध पाठ से 'रत्नावली' को बाणभट्ट रचित समझने में आग्रह और कुत्सित कल्पना के अतिरिक्त अन्य कोई भी प्रमाण नहीं है।

यद्यपि रत्नावली के हर-पार्वती-विषयक मंगलाचरण और हर्षचरित के देखने से उनका माहेश्वर वा हिंदू होना ही प्रमाणित होता है, तथापि कई एक विलायती और देशी पंडितों ने इस विचार के प्रतिकूल अपना सिद्धांत प्रकट करके यह निश्चय किया है कि श्रीहर्ष बौद्धधर्मावलंबी थे, हिंदू न थे। श्रीहर्ष चाहे हिंदू हों, चाहे बौद्ध हों इसमें हमारी कुछ भी हानि या हमारा कुछ भी लाभ नहीं है। बौद्ध होने पर भी सरस और मनोरंजक रचना के कारण श्रीहर्ष हमारे श्रद्धाभाजन हो सकते हैं; किंतु किसी हिंदू ग्रंथकार को बलात् बौद्ध या मुसलमान कहा जाए और मुसलमान को किरस्तान कहा जाए तो निःसंदेह यह परिताप का विषय है।

इसलिए जो लोग हिंदू श्रीहर्ष को बौद्ध धर्मावलंबी ठहरा रहे हैं उनकी युक्तियां कहां तक यथार्थ हैं, एक बार इसकी भी परीक्षा करनी चाहिए। हमें जहां तक ज्ञात है, इस विषय में उनका जो वक्तव्य है वह इस प्रकार है—

१. बौद्ध यति दिवाकर मित्र के उपदेश से श्रीहर्ष ने बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया था। इस कारण बौद्धद्वेषी ब्राह्मण बाणभट्ट ने द्वेष से श्रीहर्ष की जीवनी अधूरी छोड़ दी। 'हर्षचरित' की अपूर्णता जिस प्रकार श्रीहर्ष के बौद्ध होने के प्रमाणस्वरूप हो सकती है, उसी प्रकार बाणभट्ट के बौद्धविद्वेष को भी सिद्ध करती है। बौद्ध नरेशों का जीवनवृत्तांत न लिखना और लिखना तो घृणा के साथ बिगाड़कर लिखना, यह ब्राह्मणों का एक कुलक्रमागत स्वभाव है। इस विषय में प्रमाण यही है कि अशोक जैसे महाप्रतापी महाराज का किसी पुराण में इतिवृत्त नहीं मिलता।

२, 'नागानंद' के आरंभ में श्रीहर्ष ने बुद्धदेव का मंगलाचरण किया है। यदि श्रीहर्ष हिंदू होते तो बुद्धदेव के प्रति सम्मान क्यों दिखाते? इससे सिद्ध होता है कि 'नागानंद' श्रीहर्ष की पिछली रचना है। 'रत्नावली' इन्होंने बौद्धधर्म ग्रहण करने के पूर्व लिखी थी। अतः उसमें उन्होंने हर-पार्वती का मंगलाचरण किया है।

ईसा की सातवीं सदी के आरंभ में चीन देश से 'ह्वेनत्सांग' नामक जो विख्यात यात्री आया था उसने अपनी यात्रापुस्तक में महाराज श्रीहर्षवर्द्धन को बौद्ध लिखा है। उसी यात्रा-पुस्तक से जाना जाता है कि अवलोकितेश्वर बोधिसत्त्व को प्रत्यक्ष करके श्रीहर्ष ने राज्य-भार ग्रहण किया था और वे प्रयाग के संतोष-क्षेत्र में एक महोत्सव पर बुद्धदेव की धूमधाम से पूजा भी करते थे।

श्रीहर्ष के प्रतिकूल जितनी भी आपत्तियां आजकल के समालोचकों ने उठाई हैं उनमें ये ही प्रधान हैं और सब इन्हींके अवांतर भेद व शाखा-प्रशाखा-मात्र हैं। ये आपत्तियां ऊपर से देखने पर रमणीय और विश्वासयोग्य होने पर भी विचार करके देखने से अंतःसारशून्य प्रतीत होती हैं। अब इन आपत्तियों का क्रमशः उत्तर दिया जाता है।

हर्षचरित के अष्टम उच्छ्वास को देखने से अवश्य ही यह जाना जाता है कि हर्षदेव के राज्यकाल में दिवाकर मित्र नामक प्रसिद्ध बौद्ध संन्यासी थे, जिनसे

श्रीहर्ष ने यह भी कहा था कि अपने राज्य को निष्कंटक करके इस शांत आश्रम में आकर हम बौद्ध-धर्म की दीक्षा व शांति ग्रहण करेंगे। किंतु इससे श्रीहर्ष का बौद्ध होना सिद्ध नहीं होता। दिवाकर मित्र ने श्रीहर्ष की भगिनी राज्यश्री की रक्षा की थी। इस उपकार के बदले श्रीहर्ष ने विनयपूर्वक केवल नम्रता दिखाई है। जो भगवद्भक्त शांत और शिष्ट हैं, वे दूसरे के धर्म और धार्मिक पुरुषों का भी सदैव सत्कार किया करते हैं और उनके उपदेश की अवज्ञा नहीं करते, यह सर्वविदित है।

'हर्षचरित' अवश्य अधूरा काव्य है, पर यह पूरा बना ही नहीं या अन्यान्य पुस्तकों की तरह मिलता ही नहीं, यह कौन कह सकता है ? संभव है, बाणभट्ट ने पूरा ग्रंथ लिखा हो और किसी कारण से वह नष्ट हो गया हो।

भला यहां तो हमारे सत्समालोचक यही कह बैठे कि जब श्रीहर्ष ने वैदिक धर्म का परित्याग किया, तब स्वधर्मप्रिय बाणभट्ट इनको छोड़कर चल दिए, पर यों तो महाकवि कालिदास का 'रघुवंश' भी तो अधूरा है। वहां क्या कल्पना की जाएगी ! क्या पवित्र 'रघुवंश' में भी कोई क्षत्रिय महाराज बौद्ध हो गया था ? फिर किस कारण महाकवि ने इन रघुवंशीय नृपों की शेष वृत्तांतमाला प्रकाशित न की ?

बौद्धद्वेषी ब्राह्मण बाणभट्ट ने द्वेष से श्रीहर्ष की जीवनी अधूरी छोड़ दी, यह धारणा भ्रांतिमूलक और अन्यायपरिवर्धित है। तथापि दुःख के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि इस कुसंस्कार के पक्षपाती केवल यूरोपीय ही नहीं, एतद्देशीय अनेक कृतविद्य ब्राह्मणसंतान भी होती चली जा रही है। और तो और, बंगाल के सुप्रसिद्ध सुलेखक बाबू त्रैलोक्यनाथ भट्टाचार्य महाशय को भी क्या सूझा, जो ब्राह्मण बाणभट्ट को 'बौद्धद्वेषी' समझकर उन्होंने उक्त भ्रांत मत का अकुंठित भाव से अनुमोदन कर दिया है। क्या 'हर्षचरित' से कोई बाणभट्ट को बौद्धद्वेषी ठहरा सकता है ? 'हर्षचरित' में सहृदय बाणभट्ट ने कहीं भी बौद्ध-द्वेष का परिचय नहीं दिया है, वरंच अनेक स्थलों पर बौद्धों के साथ अपनी सहानुभूति और एक प्रकार का मैत्रीभाव प्रकट किया है। बाणभट्ट यदि बौद्धद्वेषी होते तो अष्टम उच्छ्वास में बौद्ध भिक्षु दिवाकर मित्र का वर्णन अपने महर्षियों के समान न करते। उनके शांत निकेतन आश्रम की इतनी अधिक प्रशंसा नहीं लिखते। तथापि उन्नीसवीं शताब्दी के सभ्यताभिमानी और उदार समालोचक बाणभट्ट को केवल ब्राह्मण जानकर ही बौद्धद्वेषी का पद प्रदान कर रहे हैं।

भिन्नधर्मा बौद्धनरेशों का जीवनवृत्त न लिखना, और लिखना तो घृणा के साथ बिगाड़कर लिखना—यह ब्राह्मणों का एक कुलक्रमागत स्वभाव है। इस विषय में प्रमाण यही है कि अशोक जैसे महाप्रतापी बौद्ध महाराज का किसी पुराण में इतिवृत्त नहीं मिलता। इस आक्षेप का समाधान करने के पूर्व यह प्रकाश कर देना अनुचित न होगा कि इस शताब्दी के सभ्य लेखकों का यह कुलपरंपरागत स्वभाव अस्थिमज्जागत हो गया है कि येन-केन उपाय से दुर्भाग्य-निष्पीडित ब्राह्मणजाति पर कलंक आरोपित कर देना चाहिए। बस, इसी आधार व सिद्धांत पर इस आक्षेप की सृष्टि हुई है। नहीं तो क्या कभी संभव है जो ब्राह्मण ब्रह्म-हत्यारे राक्षसों तक का चरित्र लिखने में न चूके, जिन्होंने यवन सम्राट् अकबर को 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा' कहकर अपने गुणग्राही उदार स्वभाव का परिचय दिया और जो ब्राह्मण अपनी अमृतमयी लेखनी से उस अत्याचारी यवनकुल के नरेशों के चित्र भी चित्रित करके उनके नाम को अमर कर गए हैं जो ब्रह्मवंश का सर्वनाश करने के लिए कालस्वरूप थे, उन उदारचरित ब्राह्मणों पर भी भिन्न-धर्मा बौद्ध लोगों के चरित्र न लिखने अथवा बिगाड़कर लिखने का अपराध लगाया जाए ? सच तो यह है कि ब्राह्मणजाति के अदृष्ट दोष अथवा कालचक्र के परिवर्तन से वर्तमान समय के लेखक इसी परमपूज्य जाति पर कुठारहस्त हो रहे हैं।

ब्राह्मण कवि कल्हणादिकृत 'राजतरंगिणी' यदि ऐतिहासिक ग्रंथों के अवलोकन से विचारशील पुरुष इस बात को भली भांति जान सकते हैं कि बौद्धधर्म के साथ प्रतिद्वंद्विता होने पर भी बौद्धों के गुणवर्णन के समय ब्राह्मण चुप ही नहीं रहे। केवल चुप ही नहीं रहे हों, यह बात नहीं है, प्रत्युत भिन्न-धर्मी बौद्ध भूपालों का ऐसा सुंदर चरित्र लिखा है, जिसका सौभाग्य अनेक समानधर्मा हिंदूनरेशों को भी प्राप्त नहीं हुआ है। इस विषय में जिन्हें संदेह हो, वह 'राजतरंगिणी' के तृतीय सर्ग में बौद्धमहाराज 'मेघवाहन' आदि के पवित्र चरित्रों को पढ़ें और तब बतलाएं कि ब्राह्मण जाति ने बौद्धों के चरित्र

कहां तक विकृत किए हैं और कहां तक वे इनके गुण-वर्णन में पराङ्मुख रहे हैं। भारतवर्ष के अकृतज्ञ नवीन इतिहास-लेखक या समालोचक ब्राह्मणों को हीनचरित्र लिखकर चाहे जितना अपनी लेखनी को कलंकित और अपवित्र कर लें किंतु जिस समय कोई इस विषय में अन्वेषण करेगा उस समय उसे ब्राह्मणों की उदारता के असंख्य प्रमाण मिलेंगे और उसे देखकर चकित होना पड़ेगा कि जगत् में ब्राह्मणजाति ही एक ऐसी जाति है, जिसने केवल उपदेश से ही नहीं वरन् कार्य से भी यह सिद्ध कर दिया है कि 'शत्रोरपि गुणा वाच्या:' गुण शत्रु के भी कहने चाहिए। हर्ष-चरित की अपूर्णता से बाणभट्ट के बौद्धद्वेष का निगमन वे ही निकाल सकते हैं जो आंखों देखी बात को मिथ्या समझें और जिन्हें अकारण परनिंदा में अनुराग हो।

अशोक जैसे प्रतापी बौद्ध महाराज का पुराणों में इतिहास न मिलने पर, विपक्षियों को तब कुछ कहना चाहिए था, जब पुराणों में तत्कालीन हिंदू नरेशों का भी इतिवृत्त मिलता। जिस प्रतापी विक्रमादित्य के नाम पर आज हिंदुओं के घरों में संकल्प हो रहे हैं, जिस पुण्यश्लोक का प्रातःकाल हिंदू लोग नाम लेते हैं, उस ब्रह्मण्य उज्जयिनीनाथ का चरित्र पुराणकर्त्ताओं ने कितने पुराणों में लिखा है ? इतने बड़े हिंदू धर्म-रक्षक शकारि महाराज का जब कोई जीवनवृत्तांत पुराणों में लिखा नहीं मिलता, तब किस प्रकार कहा जा सकता है कि बौद्धराज अशोक का चरित्र पुराणों में द्वेष से नहीं लिखा गया। ब्राह्मणों की लिखी पुस्तकें यदि वर्षों तक नवाबों के हम्माम गरम किए जाने के काम में न लाई गई होतीं तो आज ब्राह्मणों को अनेक लोगों के कटाक्षों का लक्ष्य न बनना पड़ता। तथापि ब्राह्मण इस कलंक के पात्र नहीं हैं, यह इन्हीं अल्पमात्र बची हुई पुस्तकों से अच्छी तरह सिद्ध होता है।

दूसरी आपत्ति उन लोगों की उठाई हुई प्रतीत होती है जो या तो हिंदू नहीं हैं, अथवा हिंदू होने पर भी हिंदू धर्म के मर्म से नितांत अनभिज्ञ हैं। भगवान् बुद्धदेव का मंगलाचरण करना किंवा उनमें पूज्य बुद्धि रखना हिंदूधर्म के प्रतिकूल नहीं है। यदि 'नागानंद' में बुद्धदेव के मंगलाचरण से श्रीहर्ष हिंदुओं से अलग किए जा सकते हैं तो गीतगोविंदकार जयदेव-जी को वैष्णवमंडली में कौन रख सकता है ? जयदेव-जी ने भी तो अष्टपदी में बुद्धदेव के नाम से मंगलाचरण किया है। इसमें और उसमें भेद है तो इतना ही है कि वहां विष्णु के अन्य अवतार भी साथ हैं और यहां अकेले बुद्धदेव। पर यह भेद कोई भेद नहीं, यह वक्ता की इच्छा पर निर्भर है। अनन्य श्रीवैष्णव का वैसा मंगलाचरण भी अमूल्य समझना चाहिए।

हिंदूशास्त्रों में हिंदुओं की दृष्टि में भगवान् बुद्धदेव भी उसी प्रकार पूजार्ह हैं जिस प्रकार जगदीश्वर के अन्य अवतार हैं। भगवान् के अवतारों का जहां वर्णन है वहीं बुद्धदेव का प्रसंग भी अनिवार्य है। औरों से उनका भेद इतना ही है कि अन्य अवतारों का उपदेश भी मान्य है। क्योंकि यह वेदमूलक है और इनका केवल विग्रह ही पूज्य है, वाक्य नहीं, क्योंकि वह वेदविरुद्ध है। कदाचित् हमारी इस मीमांसा पर शास्त्रानभिज्ञ लोग उपहास करेंगे कि यह कैसी बात है जो परम पूज्य ईश्वरावतार बुद्धदेव को मानकर भी उनके उपदेश को नहीं ग्रहण किया जाता है। पर शास्त्र के तत्त्व जानने वाले विद्वान् अवश्य इन बातों को स्वीकार करेंगे कि हिंदूधर्म ईश्वर पर निर्भर नहीं है, केवल अपौरुषेय वेद पर निर्भर है। सनातनधर्म में ईश्वर के न मानने वाले का नाम नास्तिक नहीं है। जो वेद को न माने उसका नाम नास्तिक है, 'नास्तिको वेदनिन्दक:'।

जब कारण का अभाव है, तब कार्य का अभाव भी अनिवार्य है। सुतरां जिस कारण 'नागानंद', श्री-हर्ष की पिछली रचना समझी जाती है उसकी असारता हम दिखा चुके हैं। इसलिए श्रीहर्ष की प्रथम रचना 'रत्नावली' है कि 'नागानंद' यह एक स्वतंत्र बात है। इससे प्राकृत विषय का संबंध नहीं है। हमारी समझ में 'नागानंद' प्रथम है, 'रत्नावली' पश्चात्। 'रत्नावली' में जो मार्मिकता पाई जाती है वह 'नागानंद' में नहीं। बाल्यकाल और परिणत वय का भेद स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। आगे जो हो।

यह तीसरी आपत्ति ही श्रीहर्ष के हिंदुत्व में प्रधान आपत्ति है। क्योंकि और सब आपत्तियां सुनी-सुनाई बातों पर निर्भर हैं, पर इसके मूल में आंखों देखी एक घटना संयुक्त है। अतएव इस आपत्ति पर विचार करना आवश्यक है। किसी पुरुष के वचन का प्रमाण स्वीकार करने के पहले यह देख लेना चाहिए कि वह आप्त है या अनाप्त ? लिखने वाला सुनी हुई बातों को लिख रहा है अथवा आंखों देखी हुई बातों को ? वह भ्रांत है या अभ्रांत ? वह किसीके प्रति निंदा-

द्वेष तो नहीं रखता ? ह्व`नत्संग की प्रामाणिकता स्वीकार करने के प्रथम हमें उसके चरित्र की विशेष आलोचना कर लेनी चाहिए। पर दुःख की बात है कि स्थानाभाव से हम उनके चरित्र की पूर्ण आलोचना करने में असमर्थ हैं। तथापि हम संक्षेप में इस विषय में दो-चार बातें कहना आवश्यक समझते हैं।

ह्व`नत्संग के भ्रमणवृत्तांत से भारत के इतिहास की अनेक बातें जानी जाती हैं। ह्व`नत्संग ने इस देश में जो बातें देखी थीं, पूर्वापर वृत्तांत के साथ उनका मिलान करने पर भारतवर्ष के इतिहास के एक लुप्त अध्याय का उद्धार हो सकता है। कार्य श्रमसाध्य होने पर भी असाध्य नहीं है। किंतु इसमें विशेष सावधानता की आवश्यकता है। क्योंकि ह्व`नत्संग की सभी बातें विश्वासयोग्य नहीं हैं। उन्होंने आंखों से ही नहीं, अपितु अपनी कल्पना और धर्मविश्वास से भी काम लिया है। वस्तुतः कई विषयों में उनका मिथ्या-लेख पकड़ा गया है।

ह्व`नत्संग ने कान्यकुब्जाधीश्वर महाराज श्रीहर्षवर्द्धन को अवश्य ही बौद्धधर्मानुयायी के नाम से प्रसिद्ध किया है, पर उनका यह कार्य चाहे भ्रममूलक हो, चाहे अपने मत की मिथ्या-प्रशंसा के लिए हो—अवश्य गर्हित है—इसे हम प्रमाणित करेंगे।

ह्व`नत्संग उत्तरदेशीय या महायन शाखा का बौद्ध था। साधारण रीति से कह सकते हैं कि उत्तरापथ में महायन और दक्षिणापथ में हीनायन बौद्धधर्म की श्रीवृद्धि हुई थी। नागार्जुन ने महायन-धर्म की प्रधानता स्थापित की थी। बुद्ध के जीवनकाल में ही 'बौद्धसंघ' में मतभेद हो गया था, पर उनकी मृत्यु के पश्चात् वैशाली में जो बौद्धसंघ हुआ था उसमें बौद्धधर्म प्रकाश्यरीति से दो शाखाओं में बंट गया था। प्रियदर्शी अशोक महाराज ने हीनायन-शाखा की सहायता अवश्य की थी, किंतु महायन-शाखा की श्रीवृद्धि रोकने में वे समर्थ नहीं हुए। काश्मीरराज कनिष्क महायन-शाखा के पृष्ठपोषक थे।

महायन बौद्धधर्म तांत्रिक-धर्म के अनुकूल है। बुद्ध ने मोक्षलाभ में ईश्वर तक की सहायता नहीं मानी थी। अंत में, उन्हींकी महायन शाखा के बौद्ध शिष्य आदिबुद्ध, बोधिसत्त्व, अमिताभ प्रभृति प्रत्येक बौद्ध और अवलोकितेश्वर प्रभृति बुद्धदेवताओं की पूजा करने लगे। इन्हीं लोगों ने कठिन योगाचार की उद्भावना की और शेष में ये ही लोग हिंदूसमाज में मिलकर बौद्धधर्म को हिंदूधर्म का रूपांतर कहकर भ्रांत लोगों को ठगने लगे थे। जो ब्राह्मण पंडित बौद्धधर्म को हिंदूधर्म की शाखा समझे हुए हैं, ज्ञात होता है उन्होंने हीनायन बौद्धधर्म की आलोचना नहीं की। महायन बौद्धधर्म के, धर्मविश्वास और भोगपद्धति के साथ हिंदूधर्म की किसी-किसी विषय में अभिन्नता देखकर, उनकी ऐसी धारणा हुई है। अविश्वास जिस प्रकार हीनायन बौद्ध का लक्षण है, अतिविश्वास उसी प्रकार महायन बौद्धों का लक्षण है। ह्व`नत्संग महायन बौद्ध था। मालूम होता है उसके जन्म से पांच सौ वर्ष पहले महायन बौद्ध महर्षि पतंजलि के योगसूत्रों के अनुकरण पर नवीन किंतु अनतिभिन्न योगसूत्रों की रचना कर चुके थे। ह्व`नत्संग ने जब इस समाचार को चीन देश में सुना, तब योगशिक्षा प्राप्त करने के लिए उसने भारतवर्ष में आना उचित समझा। यही उसकी भारतयात्रा का मुख्य उद्देश्य था।

कन्नौजपति श्रीहर्षवर्द्धन को बौद्ध कहकर ह्व`नत्संग ने अपने बौद्धधर्म के अतिविश्वास का परिचय दिया है। क्योंकि ताम्रशासन के प्रबल प्रमाणों से, जिनके सामने और सब प्रमाण तुच्छ और दुर्बल हैं, यह भली भांति सिद्ध होता है कि श्रीहर्ष बौद्ध नहीं थे, शैव थे। प्रथम ताम्रशासन, जो दिल्ली के पास सुनपत के एक खेत से निकला है, खंडित होने पर भी हमारे मत को पुष्ट करने में यथेष्ट है और दूसरा (१८१० शकाब्द में) आजमगढ़ से २३ मील दूर मधुवन ग्राम में जो एक कृषक को खेत बोते समय मिला था और जो अब लखनऊ की चित्रशाला में सुरक्षित है, उससे हमारा मत सर्वथा परिपुष्ट होता है। सुतरां उसके और अन्यान्य कारणों के अनुसार हमारा जो अभिप्राय है उसे हम यहां प्रकाशित करते हैं।

श्रीहर्ष के पिता प्रभाकरवर्द्धन जाति के क्षत्रिय धर्म के 'वर्णाश्रमव्यवस्थापनप्रवृत्त, परमादित्यभक्त' हिंदू थे। इनके ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्द्धन 'परहितैकरत' 'परमसौगत' वा बौद्ध थे। महाराज हर्ष शैव थे। इनकी मुद्रा में नंदी की मूर्ति अंकित है और शासन में इनको 'परम माहेश्वर' वा 'शैव' कहा गया है। इनके पूर्वपुरुषों ने अपने को 'पितृपादानुध्यात' वा 'परम पितृभक्त' कहकर गौरवान्वित किया है। किंतु श्रीहर्ष इस दृष्टांत के रहने पर भी अपने को 'भ्रातृ-

भक्त' के नाम से प्रसिद्ध करते हैं। यह कुछ सामान्य भ्रातृभक्ति की बात नहीं है, असाधारण भ्रातृभक्ति का उदाहरण है। जो भाई अपने को 'परमसौगत' बता चुका है, उसपर परम माहेश्वर श्रीहर्ष की भक्ति ज्यों की त्यों बनी हुई है। क्या इससे यह निगमन नहीं निकल सकता कि श्रीहर्ष भाई की प्रसन्नता के लिए ही बुद्ध और बौद्ध लोगों की पूजा करते थे।

ह्वेनत्संग के भ्रमणवृत्तांत से यह सिद्ध होता है कि महाराज हर्षवर्द्धन, चिरप्रसिद्ध गंगा-यमुना संगम-स्थित प्रयाग क्षेत्र में एक 'पंचपरिषद्' और 'महामोक्ष-परिषद्' का अनुष्ठान करते थे, जिसमें लाखों हिंदू, बौद्ध आदि मनुष्यों का समारोह होता था। इसमें वे सब लोगों के समक्ष न केवल बुद्धदेव का ही पूजन करते थे, प्रत्युत साथ ही सूर्य और महादेव की भी भक्तिभाव से पूजा किया करते थे। बौद्धधर्म के इतिहास में इस प्रकार की घटना अतिविरल और अति शिक्षाप्रद है। सूर्य श्रीहर्ष के कुलदेव थे और बुद्ध उनके परमोपास्य थे। यह श्रीहर्ष के ताम्रशासन से भी सिद्ध हो चुका है और अब इसी बात को प्रकारांतर से ह्वेनत्संग भी कह रहा है। सुतरां ऐसे राजा को बौद्ध कहना और समझना कदापि न्याय-संगत नहीं है, विशेषतः इस बात से भी कि हिंदू अपने धर्म के अनुसार बुद्धदेव की पूजा कर सकते हैं, किंतु बौद्ध लोग निज धर्मानुसार सूर्य किंवा महादेव आदि हिंदू देवताओं की पूजा नहीं कर सकते। और एक बात है। ह्वेनत्संग ने श्रीहर्ष को तो बौद्ध लिख मारा, किंतु जो राज्यवर्द्धन बौद्ध था उसका नाम तक नहीं लिया। यह नहीं हो सकता कि ह्वेनत्संग को राज्यवर्द्धन का बौद्ध होना विदित न हुआ हो, क्योंकि वह अनेक दिनों तक हर्षवर्द्धन की राजधानी में रहा है और महाराज का प्रिय सहचर था। सुतरां यह बात उसे ज्ञात न हुई हो, यह संभव नहीं। मालूम होता है कि राज्यवर्द्धन हीनायन था। इसलिए ह्वेनत्संग ने उसका उल्लेख नहीं किया। उसके निकट हीनायन बौद्ध हिंदू की अपेक्षा भी निकृष्ट समझा गया है और हर्षचरित में बाणभट्ट ने इसका उल्लेख नहीं किया इसमें कुछ विस्मय की बात नहीं है। राजा-महाराजाओं के धर्मविश्वास को लेकर परस्पर के मनोमालिन्य के लिए राजकवि प्रस्तुत नहीं होते। सुतरां हमारी विवेचना में श्रीहर्षवर्द्धन एक सर्वप्रिय, महाविद्वान्, महाकवि, भ्रातृभक्त और परम माहेश्वर महाराज थे। (नाटकीय कथा की भूमिका)

(२) यद्यपि काव्य की लघुत्रयी और 'अभिज्ञान-शाकुंतल' तथा 'विक्रमोर्वशी' के कर्त्ता महाकवि कालिदास प्रसादगुण और लोकोत्तर उपमा के लिए निःसंदेह प्रशंसनीय हैं, तो भी ओज और लालित्य के लिए श्रीहर्ष ही अद्वितीय समझे जाते हैं। कविता के जिस पथ का अनुसरण इन्होंने किया है वह भारवि और माघ के ढंग से बिलकुल निराला है। इनकी काव्यमयी सरस्वती का क्या निराला ढंग है, इनकी लोकोत्तर प्रतिभा कहां तक पैनी, और कितना समावेश उसमें है, इसे वे ही पहचान सकते हैं जो काव्य-कलापूर्ण सरसहृदय हैं। इनकी रचना, 'नैषध-चरित' निःसंदेह भारवि प्रभृति कई-एक महाकवियों के काव्य के उपरांत प्रकट की गई है इसलिए संभव है कि श्रीहर्ष ने उन कवियों की छाया का सहारा अपने काव्य में लिया हो, किंतु कालिदास को छोड़कर जो कवि सम्प्रदायमात्र के दादागुरु हैं और जिनकी कविता के भंडार से कुछ न कुछ लिए बिना कोई बढ़ ही नहीं सकता अन्य किसी कवि का अनुहर्ष श्रीहर्ष ने नहीं किया, बल्कि कविता के अंश में जो कुछ इन्हें सूझा वह न इनके पहले के कवियों को सूझा था और न इनके उपरांत के कवियों से बन पड़ा। अतएव नैषध जैसे संस्कृत के षट्काव्यों में अंतिम है उसी प्रकार काव्यों की पूर्णाहुति भी इससे होती है। ऐसा जान पड़ता है कि माघ और भारवि ये दोनों कवि परस्पर श्रद्धालु थे। क्योंकि इन दोनों के काव्य की इबारत इस प्रकार मिल जाती है कि उनमें यह देख लेना कि यह किसकी कविता है, असंभव-सा है या वही परख सकता है जिसने आद्योपांत किरात और माघ कई बार पढ़ा और पढ़ाया है, पर नैषध के श्लोकों का ढंग ही निराला है। पढ़ते ही मालूम हो जाता है कि श्रीहर्ष कालिदास, भारवि और माघ तीनों से पृथक् है। यद्यपि अन्य कवियों ने चित्रकाव्य को अपने काव्यों में प्रश्रय दिया है तथापि श्रीहर्ष ने जान-बूझकर उस निकृष्ट काव्य को अपने काव्य में स्थान देना उचित नहीं समझा। अर्थगंभीरता और पदलालित्य पर ही श्रीहर्ष का लक्ष्य था। इन्होंने अपने काव्य में श्लेषालंकार का आदर आदि से अंत तक किया है।

अब यह किस समय में हुए, निर्णय करने के पहले यह कहना उचित मालूम होता है कि यह श्रीहर्ष वह नहीं हैं, जिनकी चर्चा 'रत्नावली' नाटिका में की गई

है और न यह वही श्रीहर्ष हैं जिनके लिए बाणभट्ट ने श्रीहर्षचरित बनाया है। ये श्रीहर्ष भारवि और माघ के बहुत दिनों बाद कन्नौज के राजा जयचंद के समय के लगभग विक्रमाब्द की ९वीं शताब्दी में हुए हैं। काव्यप्रकाशकार मम्मटभट्ट ने, जिनको लोग पतंजलि महाभाष्य के तिलककार कैयट के भाई मानते हैं, अपने काव्यप्रकाश में सब कवियों के उदाहरण दिए हैं और उस समय तक भारवि आदि जो-जो कवि हो चुके थे उनके गुणदोषनिरूपण द्वारा उन सबकी साधारण समालोचना की है, पर श्रीहर्ष के नैषध का एक श्लोक भी कहीं उदाहरण में नहीं दिया। इससे निश्चित होता है कि मम्मटभट्ट के उपरांत श्रीहर्ष ने नैषधचरित निर्माण किया। किंवदंती है कि मम्मट जब 'काव्यप्रकाश' लिख चुके, तब श्रीहर्ष की भेंट उनसे हुई और उन्होंने 'नैषधचरित' उन्हें दिखलाया और कहा कि हमारे काव्य की भी आप समालोचना कर दीजिए। तब मम्मटभट्ट ने नैषध के इस श्लोक की भूल दिखलाई।

तव वर्त्मनि वर्ततां शिवं पुनरस्तु त्वरितं समागमः।
अपि साधय साधयेप्सितं स्मरणीयाः समये वयं वयः॥

इसका अर्थ यह है कि राजा नल हंस को विदा करने के समय कहते हैं—जाओ, मार्ग में तुम्हारा शुभ हो, जल्दी फिर लौटकर आना, हमारे मनोरथ को साधो और समय पर स्मरण रखना। यहां 'वर्त्मनि, वर्ततां' यहां 'वर्त्मनि' सप्तमी है और 'वर्ततां' क्रिया है। किंतु वर्त्मनि का नि अलग कर वर्ततां इस क्रिया में लगा दो तो 'निवर्ततां' होता है। तात्पर्य यह कि तुम्हारे मार्ग में शुभ की निवृत्ति हो अर्थात् मार्ग में तुम्हारा अशुभ हो। श्रीहर्ष लज्जित हो चुप हो गए और समालोचना के लिए फिर न कहा। यह कन्नौज के राजा के सभापति पंडित थे। नैषध के अंत में इन्होंने लिखा है, 'ताम्बूलद्वयमासनञ्च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्' अर्थात् कान्यकुब्जेश्वर से जो दो बीड़ा पान और आसन पाने का अधिकारी था। ये श्रीहरि पंडित के पुत्र थे और मामल्लदेवी इनकी माता का नाम था। कहते हैं, जब इनके पिता श्रीहरि ने बाद में परास्त होकर प्राण भी त्याग दिए, तब इनकी माता मामल्लदेवी ने इनसे शवसाधन कराया और सरस्वती के चिंतामणि मंत्र का मुर्दे की छाती पर श्रीहर्ष को बैठाकर जप कराया। तब ये श्रीहर्ष केवल ५ वर्ष के थे। चिंतामणि मंत्र के प्रभाव से ये ऐसे उद्भट पंडित हुए कि लड़कपन में ही इन्होंने अपने पिता को परास्त करने वाले पंडित को बाद में जीत लिया। 'खंडन खंड खाद्य' आदि कई ग्रंथ इनके लिखे हुए हैं। नैषध के प्रतिसर्ग के अंत में इन्होंने ऐसे श्लोक से सर्ग की समाप्ति की है जिससे इनके माता-पिता का नाम तथा इनका सूक्ष्म वृत्तांत और इनके लिखे ग्रंथों के नाम प्रकट होते हैं। 'अर्णव-वर्णन, गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति, साहसांकचरित' आदि कितने ही ग्रंथ इन्होंने लिखे हैं।

श्रुतकीर्ति—शत्रुघ्न की पत्नी। यह सांकल्य के राजा कुशध्वज जनक की कन्या थी। इसके दो पुत्र थे सुबाहु और श्रुतघाती।

श्रुतश्रवस्—(१) एक राजा। विभिन्न पुराणों में इसके पिता के सोमाधि, मार्जारि और सोमापि नाम प्राप्त होते हैं। इसके पुत्र का नाम अयुतायु था।

(२) यम की सभा में उपस्थित एक राजा, जिसका उल्लेख 'महाभारत' में हुआ है।

(३) सिद्धिप्राप्त एक ऋषि। इसके पुत्र का नाम सोमश्रवस् था, जिसका जन्म एक सर्पिणी से हुआ था। जनमेजय के सर्पसत्र में उसके पुरोहित देवशुनी ने उसे शाप देकर उसके यज्ञ का त्याग कर दिया था। तब जनमेजय श्रुतश्रवस् के पास आया। उसने इसके पुत्र सोमश्रवस् को पुरोहित बनने के लिए कहा। उसने अपने पिता के कहने पर जनमेजय का पुरोहित होना स्वीकार कर लिया और इस प्रकार जनमेजय का यज्ञ सम्पन्न हुआ।

श्रुतायुध—कलिंग देश का राजा। इसके पिता का नाम वरुण तथा इसकी माता का नाम शीततोया (पर्णाशा) था। वरुण ने इसे एक अभिमंत्रित गदा दी थी और इसे यह उद्बोधन दिया था कि किसी भी युद्ध में सदैव उसे विजय प्राप्त होगी; किंतु साथ ही यह भी निर्देश किया था कि युद्ध न करने वाले पर वह इस गदा का प्रहार न करे, अन्यथा उसकी मृत्यु निश्चित है। भारत-युद्ध में एक अक्षौहिणी सेना का इसने नेतृत्व किया। युद्धभूमि में भीम के साथ इसका युद्ध हुआ और इसने उक्त गदा का प्रयोग भीम पर न करके श्रीकृष्ण पर किया, जिससे कि वह अपनी गदा से ही मारा गया। (महाभारत)

श्रेष्ठसेन—काश्मीर के राजा का नाम। इनके पिता का नाम मेघवाहन था। ये बड़े न्यायी तथा प्रजाप्रिय राजा थे। इन्होंने ३० वर्ष तक राज्य किया था।

इनका प्रवरसेन और तुज्जीन नाम था। (राजतरंगिणी)

श्वेतकि—धर्मपरायण और त्यागशील राजा। इन्होंने सौ वर्ष में समाप्त होने वाले एक यज्ञ का अनुष्ठान किया था। इस यज्ञ में महर्षि दुर्वासा पुरोहित थे। इसी यज्ञ में अधिक हवि खा जाने के कारण अग्निदेव को रोग हो गया था।

श्वेतकेतु—महर्षि उद्दालक के पुत्र का नाम। (देखो उद्दालक)

श्वेताश्वतर—एक शाखा प्रवर्तक आचार्य। इसने स्वायम्भुव ऋषि से ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्राप्त किया था। इसके नाम से कृष्णयजुर्वेदीय शाखा उपलब्ध है। इसके द्वारा विरचित 'श्वेताश्वतर ब्राह्मण' का भी अन्य ग्रंथों में उल्लेख हुआ है। इसकी प्रसिद्ध रचना 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' है, जिसका कि उपनिषद् वाङ्मय में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। दर्शन की अनेक शाखाओं पर इस उपनिषद् का पर्याप्त प्रभाव है। इसमें अद्वैत शैवमत का गंभीर विवेचन किया गया है।

श्वेत्या—इस वेदकालीन नदी का संबंध डेरा इस्माइलखां की 'अर्जुनी' या काश्मीर की 'गिलास्ति' नदी से जोड़ा जाता है; किंतु उसकी वर्तमान स्थिति सर्वथा संदिग्ध है।

ष

षण्ड—दैत्यगुरु शुक्राचार्य के पुत्र का नाम।

स

संज्ञा—सूर्य की पत्नी और विश्वकर्मा की कन्या। (देखो छाया)

संयुक्ता—पृथ्वीराज चौहान की महारानी और कन्नौज के राजा जयचंद की कन्या। इसका जन्म सन् ११७० ई० में हुआ था। सन् ११९० ई० में पृथ्वीराज ने इसे ब्याहा। सन् ११९३ ई० में मुहम्मद गोरी के साथ युद्ध में पृथ्वीराज पराजित हुए और संयुक्ता धधकती चिता में प्रविष्ट हुई।

सगर—सूर्यवंशी एक राजा का नाम। सगर अयोध्या के राजा थे। वे धर्मात्मा तथा प्रजारंजक राजा थे। उन्होंने विदर्भराजकन्या केशिनी को ब्याहा था। उनकी दूसरी पत्नी का नाम सुमति था। इन दोनों स्त्रियों के साथ हिमालय पर्वत पर सगर ने कठोर तपस्या की थी। सगर की तपस्या से संतुष्ट होकर महर्षि भृगु ने उन्हें वर दिया—तुम्हारी पत्नी के गर्भ से वंश चलाने वाला पुत्र होगा और दूसरी पत्नी के गर्भ से बड़े पराक्रमी साठ हजार पुत्र होंगे। पहली पत्नी केशिनी की प्रार्थना से उसके गर्भ से असमंजस नामक एक पुत्र हुआ। वह पुत्र बड़ा उद्धत हुआ। वह पुरवासियों को पीड़ा देने लगा, अत: सगर ने उसे अपने राज्य से निकाल दिया। असमंजस के पुत्र का नाम अंशुमान् था। सगर की दूसरी पत्नी सुमति ने एक तुंबे के आकार का फल प्रसव किया। वह घी के घड़े में रख दिया गया और उससे साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए।

एक बार राजा सगर एक अश्वमेध यज्ञ का अनु-

ष्ठान करने लगे। इंद्र ने राक्षसमूर्ति धारण करके उस यज्ञाश्व को चुरा लिया। सगर के साठ हजार पुत्रों ने अश्व को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते समस्त पृथ्वी की परिक्रमा की, तदनंतर वे पाताल में उपस्थित हुए। वहां उन लोगों ने एक तपस्वी मुनि के पास यज्ञीय अश्व को बंधा हुआ देखा। मुनि थे महर्षि कपिल। मुनि को ही घोड़े का चोर समझकर सगर के पुत्रों ने उनका अपमान किया। मुनि क्रुद्ध हुए और उन्होंने शाप दिया—तुम लोग भस्म हो जाओ! और वे भस्म हो गए। राजा सगर ने पुत्रों के आने में विलंब देखकर अपने पौत्र अंशुमान् को उन लोगों को ढूंढ़ने के लिए भेजा। घूमते-घूमते अंशुमान् पाताल पहुंचा और स्तुति के द्वारा उसने मुनि को प्रसन्न किया। मुनि ने घोड़ा ले जाने के लिए अंशुमान् को आज्ञा दे दी। अंशुमान् घोड़ा लेकर अयोध्या में लौट आए। अश्वमेध यज्ञ समाप्त करके और तीस हजार वर्ष राज्य करके राजा सगर स्वर्ग गए। इसी वंश में भगीरथ ने जन्म लिया था और गंगा को लाकर उन्होंने अपने पितृपुरुषों का उद्धार किया था।

सङ्कर वर्मा—काश्मीर के एक राजा। ये गोपाल वर्मा के भाई थे। अभिचार के द्वारा गोपाल वर्मा के परलोकवास करने पर मंत्रियों ने संकर वर्मा को राजा बनाया। परंतु ये राज्य न कर सके। राज्यारोहण के दसवें दिन इनकी मृत्यु हो गई। (राजतरंगिणी)

सङ्कृति—(१) एक क्षत्रिय कुलोत्पन्न व्यक्ति, जो अपनी तपश्चर्या के कारण ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुआ और अंगिरस कुल का गोत्रकार तथा मंत्रकार बना।

(२) एक पुरुवंशीय राजा, जो नर राजा का पुत्र था। इसकी पत्नी का नाम सत्कृति था। इसके दो पुत्रों के नाम थे रंतिदेव और गुरु। सत्कृति भी इसका नामांतर मिलता है।

सङ्ग्रामराज—काश्मीर के राजा का नाम। काश्मीर की महारानी दिद्दा की मृत्यु के अनंतर ये वहां के राजा हुए। यद्यपि ये प्रजापीडक स्वार्थी दिद्दा के पक्षीय लोगों से असंतुष्ट थे, तथापि दुर्भाग्यवश इन्हें उसी पक्ष के तुंग नामक एक व्यक्ति को मंत्री नियत करना पड़ा। राजा संग्रामराज प्रजापालन का भार मंत्री को सौंपकर खुद सुखभोग में मत्त होकर आलस्य से दिन काटने लगे। ये बड़े भीरु थे। अतएव सहाय्यप्राप्ति की अभिलाषा से दिद्दामठ के अध्यक्ष की कन्या को इन्होंने ब्याहा। अनंतर ब्राह्मण-मंत्रियों ने तुंग को मंत्रिपद से अलग करने के लिए परिहासपुरवासी ब्राह्मणों को विद्रोह करने के लिए उत्तेजित किया। ब्राह्मणों का एक दल तैयार हुआ। उन लोगों ने राजा को भी पदच्युत करने का विचार किया था, परंतु तुंग का नाश किए बिना राजा का कुछ भी नहीं हो सकता, यह विचारकर उन लोगों ने प्रथम तुंग का विनाश करने का विचार स्थिर किया। एक बार ब्राह्मणों ने राजा के समीप किसी बात के लिए प्रार्थना की। राजा और तुंग आदि ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की। तदनंतर उन दुष्टों ने एक और प्रार्थना की। उन लोगों ने कहा कि तुंग ने एक ब्राह्मण को मार डाला है, अतः हम लोग तुंग के घर में उस ब्राह्मण को जलाएंगे। अनंतर कुएं से एक मुर्दा निकालकर वे तुंग के घर की ओर चले। ब्राह्मणों ने केश हवन करके कृत्या की सृष्टि करनी चाही, परंतु उनकी अपवित्रता के कारण कुछ भी नहीं हो सका। इसी समय राजपक्षियों ने उनपर आक्रमण किया और वे भागकर अपने परामर्शदाता के घर में गए। अंत में, युद्ध हुआ। उसमें कितने मरे और सब तितर-बितर हो गए।

राजा संग्रामराज ने २४ वर्ष, नौ महीना, आठ दिन तक काश्मीर का राज्य किया था।

(राजतरंगिणी)

सङ्ग्रामसिंह—(१) मेवाड़ चित्तौड़ के महाराणा। ये महाराणा रायमल्ल के पुत्र थे। सन् १५०९ में राणा संग्रामसिंह चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठे। महाराणा संग्रामसिंह ने चित्तौड़ का गौरव उद्दीपित किया था। उस समय ये सम्राट् समझे जाते थे। मारवाड़ अंबर आदि के राजाओं ने भेंट-पूजा देकर उनका मान और पद बढ़ाया था। महाराणा संग्रामसिंह को विपत्ति के समय जिन लोगों ने सहायता दी थी, वे इस समय उनको भूले नहीं थे। श्रीनगर के करमचंद को उन्होंने अजमेर की एक राज्यवृत्ति दान में दी थी।

घरेलू झगड़े के समय राज्य में जो अशांति मची थी, वह सब संग्रामसिंह के सिंहासनारूढ़ होते ही मिट गई। संग्रामसिंह युद्ध-निपुण महाराणा थे। उन्होंने श्रेष्ठ रणनीति के अनुसार अपनी सेना को शिक्षित किया था। इसी सेना को साथ लेकर तैमूर के खानदान वालों के साथ संग्राम करने से पहले दिल्ली और मालवा के बादशाहों से इन्होंने अट्ठारह बार लड़ाई की थी। उन सब युद्धों में ये ही विजयी हुए

थे। दिल्ली का इब्राहीम लोदी ही दो बार महाराणा से भिड़ गया था, परंतु दोनों बार उसे मुंह की खानी पड़ी थी। विशेषत: घरौली के पिछले संग्राम में यवन-दल पर ऐसी मार पड़ी कि उस रण से दो-एक ही योधा भाग सके थे। बादशाह के किसी रिश्तेदार को भी महाराणा इस युद्ध में से पकड़ ले गए थे। इन्होंने अनेक युद्ध किए। सभी में इन्होंने विजय पाई थी। अंत में, पृथ्वीराज की ओर से मुहम्मद के साथ दूसरे युद्ध में लड़ते हुए ये मारे गए। (टाड्स राजस्थान)

(२) मेवाड़ के एक महाराणा का नाम। महाराणा अमरसिंह द्वितीय के मरने पर ये मेवाड़ के सिंहासन पर बैठे। इन्होंने अट्ठारह वर्ष तक राज्य किया था। इनके समय में मेवाड़ का सम्मान अचल रहा। और शत्रुओं ने इनके जिस देश पर अधिकार कर लिया था, पीछे से इन्होंने उसपर भी अपना अधिकार जमा लिया था, बिहारीदास पांचोली को दीवान बनाकर महाराणा ने बड़ी दूरदर्शिता का काम किया था। राजनीतिज्ञ पांचोली बिहारीदास ने जिस बुद्धिमत्ता, साहस और दूरदर्शिता का परिचय दिया है यह उस समय के राजाओं के पत्रों से भली भांति प्रमाणित होता है। महाराणा संग्रामसिंह के चरित्र के विषय में बहुतसी बातें प्रसिद्ध हैं। उनसे निश्चय होता है कि प्रजापालन, गृहपालन आदि सभी विषयों में वे निपुण थे। राणाजी विज्ञ, न्यायी, दृढ़प्रतिज्ञ राजा थे। वे जिस काम को आरंभ करते उसको समाप्त किए बिना नहीं छोड़ते थे। कहते हैं, एक बार कोटरिया के चौहान सरदार ने राणाजी से यह प्रार्थना की कि आप अपने वस्त्रों को और भी मूल्यवान् बनाएं। महाराणा ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की। इससे वे बड़े प्रसन्न हुए। तदनंतर राणाजी ने अपने दीवान को बुलाकर आज्ञा दी कि कोटरिया के सरदार की जागीर से दो गांव जब्त कर लो। जब कोटरिया के सरदार ने यह संवाद सुना, तब उन्होंने महाराणा से प्रार्थना की कि दास ने कौनसा ऐसा अपराध किया है, जिससे यह दंड दिया गया है। महाराणा ने हंसकर कहा—कुछ नहीं, मुझे अपने कपड़ों को मूल्यवान् बनाने के लिए रुपयों की जरूरत है। क्योंकि और सब आमदनी का खर्च तो निश्चित हो चुका है। इसके लिए खर्च निकालना चाहिए, और इसके लिए आपने ही प्रस्ताव किया है। अत: आपसे ही इस खर्च का लिया जाना निश्चित हुआ है। यह सुनकर सरदार साहब चुप हो गए और अपना प्रस्ताव फेर लिया।

स्मरण न रहने के कारण अथवा भ्रांति से एक बार राणाजी ने स्वयं ही अपनी प्रतिष्ठित विधि का उल्लंघन किया। भोजनभवन, तोशाखाना, रनिवास आदि के खर्च के लिए अलग-अलग भूमि नियत थी। इस भूमि का नाम थुआ था। प्रत्येक थुआ एक-एक कर्मचारी के अधीन था। राणाजी ने एक थुआ जब्त कर लिया था। परंतु इस बात को वे भूल गए। एक दिन राणा अपने सरदारों के साथ भोजन पर बैठे थे। क्रमानुसार परोसनेवाला सब पदार्थों को परोसने लगा। नियमानुसार दही भी परोसा गया, परंतु बूरा नहीं आया। राणाजी के पूछने पर उसने उत्तर दिया—अन्नदाताजी, मंत्री साहब कहते थे कि बूरा के लिए जो गांव नियत था उसे महाराज ने जब्त कर लिया है। महाराणा ने 'ठीक' कहकर भोजन कर लिया।

महाराणा ने किसी कारणवश दरियावद सरदार की जागीर जब्त कर ली थी। राणाजी का यह नियम था कि दोषी के अतिरिक्त वे और किसीको दंड नहीं देते थे। साथ ही साथ दंड देने पर वे किसीको क्षमा नहीं करते थे। इसी कारण दरियावद सरदार के लिए कोई भी महाराणा से क्षमा-प्रार्थना नहीं कर सका। दरियावद सरदार ने किसी प्रकार दो वर्ष तो बिताए, तीसरे वर्ष के आरंभ में ही उन्होंने बंदरों के द्वारा राजमाता के निकट आवेदनपत्र भेजा। उसने उस आवेदनपत्र में दो लाख के तमस्सुक भी भेजे थे और दासियों को भी बहुतसा धन दिया था। राणाजी प्रतिदिन भोजन करने से पहले माता के दर्शन के लिए उनके महल में जाया करते थे। एक दिन राणाजी नियमानुसार माता के भवन में गए। उस दिन माता ने उस सरदार का आवेदनपत्र देकर विशेष अनुरोध किया कि उसकी संपत्ति राज्य से लौटा दी जाए। राणा ने उसी समय मंत्री को आज्ञा दी कि उस सरदार की जागीर लौटा दी जाए। परंतु तब से महाराणा ने माता का दर्शन करना बंद कर दिया। इसके लिए माता ने बहुत कहलाया भी परंतु राणाजी कह दिया करते थे कि मुझे फुरसत नहीं। अंत में, इससे विशेष खिन्न होकर राजमाता ने तीर्थयात्रा करनी निश्चित की। उस समय भी राणा माता के दर्शनों के लिए नहीं गए। राजमाता आंबेर होती हुई मथुरा गईं। आंबेर के राजा इनके जामाता थे।

राजमाता के लौटने के समय आंबेर नरेश भी साथ आए। राणाजी ने उनके आने का कारण समझ लिया, और वे माता की चरणवंदना करने के लिए गए, तदनंतर उन्होंने आंबेर नरेश का स्वागत किया। (टाड्स राजस्थान)

सङ्ग्रामपीड—काश्मीर के राजा का नाम। ललितादित्य की पद्मा नाम की पत्नी के गर्भ से यह उत्पन्न हुआ था। इसने अपने बड़े भाई पृथिव्यापीड को राज्यच्युत करके काश्मीर का सिंहासन पाया था, परंतु अभाग्यवश वह राज्यभोग न कर सका। राज्यारोहण के सातवें दिन उसकी मृत्यु हुई। (राजतरंगिणी)

सज्जनसिंह—उदयपुर के एक महाराणा का नाम। महाराणा शंभुसिंह की मृत्यु के पीछे उनके भतीजे सज्जनसिंह १६ वर्ष की अवस्था में मेवाड़ के महाराणा हुए। उस समय इनके वयस्क न होने के कारण एक 'शासक-समिति' बनी, जिसने बड़ी योग्यता से राज्य-प्रबंध किया। इन्होंने अंग्रेजी, उर्दू आदि की शिक्षा प्राप्त की थी। लार्ड लिटन इन्हें दिल्ली दरबार में ले गए थे और इन्हें जी० सी० एस० आई० की उपाधि मिली। इन्हींके समय में उदयपुर में स्कूल, अस्पताल आदि बनाए गए। उदयपुर के पास ही इन्होंने सज्जनगढ़ नामक एक किला बनवाया था। इन्होंने अपने नाम से एक हिंदी साप्ताहिक-पत्र भी निकलवाया था। (टाड्स राजस्थान)

सञ्जय—ये गवल्गन नामक मुनि के पुत्र थे और अंधराज धृतराष्ट्र के परामर्शदाता थे। व्यासदेव की कृपा से दिव्यदृष्टि पाकर इन्होंने धृतराष्ट्र के सामने कुरुक्षेत्र युद्ध का वर्णन किया था। यह भारत के युद्ध के समाप्त होने पर युधिष्ठिर के राज्यकाल में हस्तिनापुर में रहते थे। तदनंतर धृतराष्ट्र, गांधारी और कुंती के साथ वन को चले गए थे। वन में जाने के थोड़े दिनों के बाद उस वन में आग लगी। धृतराष्ट्र, गांधारी और कुंती इन तीनों ने वहीं प्राण त्याग दिए। परंतु भागकर संजय ने अपने प्राणों की रक्षा की। अनंतर हिमालय प्रदेश की ओर जाकर इन्होंने अपना बाकी जीवन बिताया।

सत्यक—एक यादव राजा, जिसके पिता का नाम शिनि और पुत्र का नाम सात्यकि (युयुधान) था। इसकी पत्नी काशिराज की पुत्री थी, जिससे इसके ककुद, भजमान, शमी और कंबलबर्हिष नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। श्रीकृष्ण द्वारा रैवतक पर्वत पर आयोजित उत्सव में यह उपस्थित था। अभिमन्यु का श्राद्धकर्म इसीके द्वारा संपन्न हुआ था।

सत्यजित्—श्रीकृष्ण के श्वशुर और सत्यभामा के पिता का नाम। (देखो प्रसेन)

सत्यतपस्—इसके उतथ्य तथा सत्यव्रत नामांतर भी प्राप्त होते हैं। नितांत सत्यवादी होने के कारण इसके ये नाम पड़े। सत्य की सापेक्षता पर इसकी कथा 'देवी भागवत' (३।११) में वर्णित है। आरंभ में यह सर्वथा आधारहीन एवं विद्याशून्य था। एक बार एकाएक इसके मुख से 'ऐ' यह सारस्वत बीजमंत्र उच्चरित हुआ। तब से यह आचारपरायण, विद्यावान् और सत्यवादी बन गया। एक बार वराह का पीछा करते हुए एक व्याध इसके पास आया और इससे वराह का पता पूछने लगा। इसने व्याध के हाथ वराह की मृत्यु हो जाने के दुःख से सर्वथा मौन-व्रत धारण कर लिया।

(२) एक ऋषि। एक बार इसके तप को भंग करने के लिए कोई अप्सरा उपस्थित हुई। इसने उसे बेर का वृक्ष बनने का शाप दे दिया। भरत मुनि ने इस अप्सरा का उद्धार किया।

सत्यभामा—इसका सत्या नामांतर भी प्राप्त होता है। यह अत्यंत रूपवती थी। अक्रूर आदि अनेक यादव राजा इससे विवाह करना चाहते थे; किंतु इसके पिता राजा सत्राजित् ने श्रीकृष्ण के साथ इसका विवाह कर दिया और दक्षिणा में स्यमंतक मणि भी देनी चाही, जिसे कृष्ण ने लौटा दिया। श्रीकृष्ण ने द्वारका में इसके रहने के लिए भव्य प्रासाद बनाया था। श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर गमन के समय यादव-राजा शतधन्वन् ने इसका अपमान कर दिया था। इसके कहने पर श्रीकृष्ण ने शतधन्वन् का वध किया। श्रीकृष्ण जब इंद्रलोक गए तो सत्यभामा भी उनके साथ थीं। वहां इसने पारिजात वृक्ष को देखा। इसने श्रीकृष्ण को पारिजात वृक्ष की प्राप्ति के लिए इंद्र के साथ युद्ध करने के लिए उकसाया और श्रीकृष्ण ने तदनुसार पारिजात वृक्ष को प्राप्त किया। पांडव जब वनवास अवस्था में थे तब इसकी भेंट द्रौपदी से हुई। इसने द्रौपदी से पति को वश में करने की युक्ति पूछी। तब द्रौपदी ने बताया कि अहंकार का परित्यागकर सर्वथा निर्दोष वृत्ति से पति की सेवा करने पर ही पति का प्रेम प्राप्त किया जा सकता है। नारद से इसने प्रश्न किया था कि अगले जन्म में भी

इसे श्रीकृष्ण पतिरूप में किस तरह प्राप्त हो सकते हैं। इसपर नारद ने हंसी में इससे कहा था कि यदि यह पारिजात वृक्ष और श्रीकृष्ण को उन्हें दान कर दे तो उसकी कामना पूरी हो सकती है। तब इसने दोनों को नारद को दान कर दिया। किंतु बाद में अपनी भूल का पता चल जाने के कारण इसने विपुल धनदान करके नारद मुनि से क्षमा मांगी और दोनों को पुनः प्राप्त किया। विभिन्न पुराणों में इसकी संतति का विभिन्नता से उल्लेख हुआ है। उनके नाम थे—भैमरिक, सुभानु, स्वमनि, प्रभानु, बृहद्भानु, भानुमत्, चंद्रभानु, अतिभानु, श्रीभानु, प्रतिभानु, सानु, अक्ष, रोहित, मंत्रय, जरांधक, ताम्रवक्ष, भौमरि और जरंधम नामक पुत्र और भानु, भौमरिका, ताम्रपर्णी जरंधमा नामक कन्याएं। श्रीकृष्ण का निर्वाण हो जाने के बाद स्वर्गप्राप्ति के लिए यह तप करने के लिए वन में चली गई थी।

सत्यवती—महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास की माता और वसुराज की कन्या। (देखो शांतनु)

सत्यवान्—शाल्व देश के राजा द्युमत्सेन का पुत्र। इनकी माता का नाम शैव्या था। अभाग्यवश द्युमत्सेन अंधे हो गए और कूटचक्री मंत्रियों ने षड्यंत्र करके उनको राज्यच्युत कर दिया। अंध राजा द्युमत्सेन अपनी पत्नी और पुत्र को लेकर वन में चले गए। एक बार मद्रदेश के अधिपति अपनी कन्या सावित्री को लेकर उस वन में आए। रूपयौवनसंपन्ना सावित्री ने पितृमातृभक्त सत्यवान् को पति बनाना निश्चित किया। सत्यवान् अल्पायु थे। शीघ्र ही उनकी आयु पूरी हो गई। सावित्री ने अपने पातिव्रत्य के प्रभाव से यमराज को मोहित करके कितने ही वर प्राप्त किए। उन्हीं वरों के प्रभाव से सत्यवान् पुनः जीवित हो उठे। श्वशुर द्युमत्सेन ने राज्य और आंखें पाईं। अनंतर द्युमत्सेन सत्यवान् को राज्य देकर स्वयं पत्नीसहित वन में चले गए।

सत्यव्रत—(१) अयोध्या का राजा, जिसका त्रिशंकु नामांतर भी प्राप्त होता है। यह त्रिबंधन राजा का पुत्र था।

(२) द्रविड देश का राजा, जो कि मत्स्यावतार विष्णु की कृपा से वैवस्वत मनु बन गया था। पुराणों में वर्णित वैवस्वत मनु और इसकी कथा में पर्याप्त साम्य है। अपनी उत्तरावस्था में यह राज्यभार अपने पुत्रों को सौंपकर स्वयं कृतमाला नदी के तट पर तपस्या करने के लिए चला गया था। आधुनिक मदुरा की वैणा नदी से प्राचीन कृतमाला नदी का समीकरण किया गया है। इसकी तपस्या से प्रसन्न होकर विष्णु ने इसे पृथ्वीपति बनने का वरदान दिया।

एक बार हयग्रीव असुर ने ब्रह्मा से वेद को चुरा लिया था। तब विष्णु ने सत्यव्रत की कराञ्जलि में एक छोटी-सी मछली बनकर मत्स्यावतार धारण किया और सत्यव्रत को सन्निकट महाप्रलय की सूचना दी। मत्स्यावतार विष्णु ने कहा कि प्रलयकाल में एक नौका सत्यव्रत को लेने आएगी। उसमें वह सपरिवार बैठ जाए। तब प्रचंड मत्स्य का रूप धारण करके विष्णु उस नौका को सुरक्षित स्थान पर ले जाएंगे। प्रलय की समाप्ति के बाद मत्स्यावतार विष्णु सत्यव्रत को उपदेश देंगे। तदनुसार मत्स्य ने सत्यव्रत को कर्म, ज्ञान और योग का उपदेश दिया और उसे 'मत्स्यपुराण' सुनाया। इस प्रकार सत्यव्रत (वैवस्वत मनु) ने आत्मज्ञान प्राप्त किया। (मत्स्यपुराण)

सत्या—(१) भागवत के अनुसार, राजा मन्यु की पत्नी और राजा भौवन की माता।

(२) महाभारत के अनुसार, धर्म की कन्या और शंयु अग्नि की पत्नी, जिससे तीन कन्याएं और भरद्वाज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।

(३) मगधाधिपति ब्रहद्रथ की पत्नी और जरासंध की माता।

(४) कोसलनरेश नग्नजित् की कन्या और श्रीकृष्ण की पटरानी। इसके स्वयंवर के समय राजा नग्नजित् ने यह शर्त रखी थी कि जो सात मस्त बैलों के साथ लड़ाई करके विजयी होगा उसके साथ इसका विवाह किया जाएगा। श्रीकृष्ण ने इस शर्त को पूरा करके इसे वरण किया था। पूर्वजन्म की विष्णुभक्ति के कारण इसे पतिरूप में श्रीकृष्ण प्राप्त हुए थे। (भागवत)

(५) राजा शैव्य की कन्या और राजा बृहन्मनस् की पत्नी। इसके पुत्र का नाम विजय था। (मत्स्यपुराण)

(६) विष्णुपुराण के अनुसार, उत्तम मन्वंतर में सत्यावतार की माता।

सत्याषाढ—कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा की हिरण्यकेशिन् शाखा के प्रवर्तक आचार्य। इसे हिरण्यकेशिन्

भी कहा गया है।

सदल मिश्र—शाहबाद जिले (बिहार) के ध्रुवडीहा नामक गांव में इनका जन्म १७६७-६८ ई० के लगभग हुआ। ये शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे और इनके पिता का नाम नंदमणि मिश्र था। फोर्ड विलियम कालेज, कलकत्ता में ये अनेक वर्षों तक हिंदी के अध्यापक रहे। इनकी दो गद्य कृतियां 'नासिकेतोपाख्यान' (या चंद्रावती) और 'रामचरित' (अध्यात्मरामायण का रूपांतर) प्रकाशित हुई हैं। इन कृतियों का खड़ीबोली गद्य-साहित्य की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। इनमें व्यवहारोपयोगी खड़ीबोली का प्रयोग किया गया है, जिसपर ब्रजभाषा, पूर्वी बोली और बंगला का प्रभाव है। यद्यपि व्याकरण की दृष्टि से इसमें अनेक त्रुटियां हैं, तथापि हिंदी गद्य के विकास में उसका अपना ऐतिहासिक महत्त्व है। १८४७-४८ ई० के लगभग इनका निधन हुआ। (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना—सदल मिश्र ग्रंथावली)।

सदानीरा—करतोया नदी, जो अवध में है और जो रंगपुर और दीनाजपुर के पास से होकर बही है।

सदा सुखलाल—इनका उपनाम 'निमाज' था। इनका १७४६ ई० में दिल्ली में जन्म हुआ था। इन्होंने खड़ीबोली गद्य को परंपरागत उर्दू-फारसी प्रभाव से मुक्त कर परिमार्जित, व्याकरणनिष्ठ हिंदी के विकास को सर्वथा नया मोड़ दिया। हिंदी, उर्दू और फारसी के ये अच्छे विद्वान्, कवि एवं शायर थे। 'मुन्तरबबुत्त तारीख' नाम से इन्होंने एक आत्मवृत्त लिखा है। १७९३ ई० में ये कंपनी की राजकीय सेवा में तहसीलदार के पद पर नियुक्त हुए और ३५ वर्ष की अवस्था में सेवा से निवृत्त हुए। ये बड़े निर्भीक और भक्तहृदय व्यक्ति थे। सेवा-निवृत्त होने के बाद ये प्रयाग में रहे और वहीं पर रहकर इन्होंने 'सुखसागर' (विष्णुपुराण का रूपांतर) नामक ग्रंथ का प्रणयन किया। इसमें इन्होंने संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है। यद्यपि इनके गद्य में भी पंडिताऊपन है, तथापि इनके द्वारा हिंदी की सरल एवं सुबोध शैली का सर्वग्राही रूप प्रकाश में आया। ७८ वर्ष की अवस्था में १८२४ ई० में इनका निधन हुआ। (आचार्य रामचंद्र शुक्ल—हिंदी साहित्य का इतिहास)।

सनक—ब्रह्मा के चार मानसपुत्रों (सनक, सनत्कुमार, सनंद और सनातन) में से एक। इसे विष्णु का अवतार माना जाता है। अपनी वैराग्य-वृत्ति के कारण चारों पुत्र सृष्टि-सर्जन में उदासीन रहे। एक बार ये चारों भाई बैकुंठलोक गए; किंतु वहां जय तथा विजय द्वारपालों ने सनक को प्रवेश नहीं करने दिया, जिससे क्रुद्ध होकर इसने उन्हें शाप दिया। इसके गुरु का नाम कंक था। यह बड़ा तत्त्वज्ञानी था। नारद मुनि से एक बार इसका शास्त्रार्थ हुआ था। इसके नाम से 'सनकसंहिता' उपलब्ध है, जिसमें इसे मृगकुलोत्पन्न कहा गया है। विद्वानों का मत है कि यह संहिताग्रंथ इसके द्वारा विरचित न होकर इसके अनुयायी किसी मृगकुलोत्पन्न ऋषि का है। वैष्णवाचार्य निम्बार्क ने राधा-कृष्ण की उपासना-पूजा व्यवहित 'सनक संप्रदाय' के नाम से एक नये मत की स्थापना की थी।

सनत्कुमार—ब्रह्मज्ञ महातपा ऋषि। ये ब्रह्मा के मानसपुत्र हैं।

सनातन—ब्रह्मा के एक मानसपुत्र का नाम।

सन्ध्या—ब्रह्मा की मानसपुत्री। पुरातन वैदिक-पौराणिक कथाओं के अनुसार, ब्रह्मा की इसके प्रति कामवासना उत्पन्न हुई, जिसके कारण इसने शरीरत्याग किया। अपर जन्म में यह महर्षि वसिष्ठ की पत्नी अरुंधती बनी।

सप्तर्षि—सात ऋषियों के समुदाय को वेदों तथा पुराणों में सप्तर्षि कहा गया है। इन कथाओं के अनुसार, प्रत्येक मन्वंतर में एक-एक सप्तर्षिमंडल बना। इस प्रकार पुराणों में चौदह मन्वंतरों के ९८ सप्तर्षियों की नामावली दी गई है। महाभारत में सप्तर्षियों को दिशाओं का स्वामी कहा गया है। चारों दिशाओं के सात-सात ऋषियों की गणना की गई है। ऋग्वेद की 'सर्वानुक्रमणी' में सप्तर्षियों की गणना इस प्रकार की गई है—बृहस्पति, कश्यप, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि और वसिष्ठ। 'महाभारत' के दो स्थलों पर सप्तर्षियों की नामावली विभिन्नता से इस प्रकार दी गई है—

(क) कश्यप, अत्रि, भारद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वसिष्ठ।

(ख) मरीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, प्रलह, क्रतु और वसिष्ठ।

सबलसिंह चौहान—ये चौहानवंशी क्षत्रिय हैं। महाभारत के २४ हजार श्लोकों का अनुवाद दोहे-चौपाइयों में बहुत ही संक्षेप में किया है। कोई-कोई कहते हैं कि ये कवि चंदगढ़ के राजा थे। कोई सबलगढ़ का राजा

इन्हें बतलाता है। इनके वंश वाले जिला हरदोई में रहते हैं। परंतु शिवसिंह कहते हैं कि ये कवि जिला इटावे के किसी गांव के जमींदार थे। (शिवसिंहसरोज)

समरसिंह—उदयपुर के महाराणा। इनका जन्म सं० १२०६ वि० में हुआ था। जिस समय महाराणा समरसिंह अपनी असीम वीरता से मेवाड़ की प्रजा का शासन कर रहे थे, उन्हीं दिनों दिल्लीश्वर पृथ्वीराज को अधिकारच्युत करने के लिए देशद्रोही जयचंद उद्योग कर रहा था। जयचंद ने पृथ्वीराज को नीचा दिखाने के लिए शाहबुद्दीन गोरी से सहायता चाही, पृथ्वीराज उसकी इस सर्वनाशकारी कल्पना को सुनते ही अधीर हो गए। पृथ्वीराज ने चंडपुंडीर नामक अपने सामंत को दूत बनाकर समरसिंह के पास भेजा। समरसिंह ने चंडपुंडीर का बड़ा आदर किया।

समरसिंह अपने मित्र पृथ्वीराज के यहां दलबल सहित आ गए। दोनों में परामर्श हुआ और निश्चय हुआ कि पट्टनराज को दंड देना होगा और मुसलमानों का सामना करना होगा। पृथ्वीराज पट्टनराज को दंड देने के लिए पट्टन गए, वहां से विजय-आनंद से आनंदित हो लौट आए। पुन: दोनों वीरों ने मुसलमान सेना का सामना किया। राजपूत वीरों ने तिनके के समान मुसलमानों को मार गिराया। शाहबुद्दीन गोरी ने भागकर अपने प्राण बचाए। परंतु उनका एक सेनापति कैद कर लिया गया।

इस घटना के कुछ दिनों के बाद पुन: शाहबुद्दीन गोरी ने चढ़ाई की। पृथ्वीराज ने अपने सहायक समरसिंह को निमंत्रण भेजा। मित्र की विपत्ति सुनकर महाराणा संग्रामसिंह कब ठहरने वाले थे! वे शीघ्र ही वहां से दिल्ली के लिए प्रस्थित हुए। इसी युद्ध में ये मारे गए। (टाड्स राजस्थान)

सम्पाति—अरुण के पुत्र और जटायु के बड़े भाई का नाम। ये दोनों भाई सूर्य को जीतने की इच्छा से उनपर दौड़े थे। सूर्य के तेज से जटायु के पक्ष जलने लगे। उस समय सम्पाति ने जटायु को अपने पक्षों से छिपा लिया। छोटे भाई की रक्षा करने के कारण सम्पाति स्वयं जलकर विंध्यपर्वत पर गिर गया। मूर्च्छा से नष्ट होने पर वे निशाकर मुनि के उपदेश से उसी पर्वत पर रहने लगे। सीता को ढूंढ़ने के समय वानरों से इनकी भेंट हुई थी। (रामायण)

संवरण—चंद्रवंशी प्रसिद्ध राजा। इन्होंने सूर्य की कन्या तपती को ब्याहा था। तपती के गर्भ से इनका एक पुत्र हुआ था, जिसका नाम पुरु था। (महाभारत)

संवर्त—महर्षि अंगिरा के पुत्र और देवगुरु बृहस्पति के छोटे भाई। ये महाराजा मरुत के यज्ञ में पुरोहित बने थे।

संवर्त आङ्गिरस—एक ऋषि, जिनका वीतहव्य नामांतर था। ऋषि आंगिरस के पुत्र; इनके अन्य दो भाइयों के नाम थे बृहस्पति और उतथ्य। 'महाभारत' में इनके पांच अन्य भाइयों के नाम पयस्य, शांति, घोर, विरूप और सुधन्वन् दिए गए हैं। वैदिक साहित्य में इन्हें एक सूक्तद्रष्टा तथा आविक्षित राजा का पुरोहित कहा गया है। अपने भाई बृहस्पति से इनका द्वेष था, जिसके फलस्वरूप इन्होंने मरुत्त-बृहस्पति-युद्ध में मरुत्त का साथ दिया था। यह महान् तपस्वी था और इस कारण देवताओं पर भी इनका प्रभाव था। बृहस्पति द्वारा अधूरे छोड़े गए मरुत्त के यज्ञ को इन्होंने पूरा किया और उसके लिए हिमालय के मुंजवत पर्वत से सुवर्ण प्राप्त किया था। (महाभारत)

संह्लाद—इस असुर के पिता का नाम हिरण्यकशिपु, माता का नाम कयाधु और पत्नी का नाम कृति था। इसके भाइयों के नाम थे—प्रह्लाद, अनुह्लाद और बाष्कल। 'महाभारत' में मद्र देश का राजा शल्य इसीके अंश से उत्पन्न कहा गया है। विभिन्न पुराणों में इसके पुत्रों का विभिन्नता से उल्लेख हुआ है। उनमें जम्भ, बाष्कल, कालनेमि, शंभु, आयुष्मत्, शिवि और पञ्चजन आदि नाम का उल्लिखित है। इन सह्लाद पुत्रों को देव, गंधर्व तथा उरग के लिए अवध्य बताया गया है।

सयुग्वा रैक्व—एक उपनिषत्कालीन तत्त्ववेत्ता आचार्य। इसके संबंध में कहा गया है कि यह सदैव बैलों की गाड़ी के नीचे निवास करता था। इसलिए इसको लोगों ने सयुग्वा (गाड़ी के नीचे निवास करने वाला) नाम से कहा। एक बार राजा जानश्रुति मृगया के लिए जंगल में घूम रहा था कि इसी समय उसे दो हंसों द्वारा एक संवाद सुनने को मिला। एक हंस दूसरे से कह रहा था कि जिस प्रकार पांसों के खेल में अंतिम बाजी जीतने वाले को सारा धन प्राप्त होता है, उसी प्रकार प्रत्येक पुण्यशील व्यक्ति द्वारा किया पुण्यसंचय सयुग्वा रैक्व को पहुंचता है। जानश्रुति इस संवाद को सुनकर आश्चर्यचकित हुआ और वह खोजते-खोजते वहां पहुंच गया जहां खुजली से

खुजलाते हुए रैक्व गाड़ी के नीचे बैठा हुआ था। राजा ने उसे धन-संपत्ति और गायें देने के लिए प्रार्थना की, किंतु इस त्यागी-तपस्वी एवं विरक्त तत्त्ववेत्ता ने अपनी गाड़ी को ही राजा को दान कर दिया। किंतु जानश्रुति ने उसके अनुग्रह को प्राप्त करने की अपनी प्रबल इच्छा का परित्याग नहीं किया। उसने रैक्व को समझा-बुझाकर अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दिया और उससे तत्त्व-ज्ञान उपलब्धि कर ली। जानश्रुति ने उसे एक गांव भी दिया, जो कि महावृष देश में 'रैक्वपर्ण' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। (पद्मपुराण)

सरदार कवि—(१) ये बंदीजन और हिंदी के कवि थे। सं० १७३५ वि० में इनका जन्म हुआ था। राणा राजसिंह की सभा में ये रहा करते थे। इन्होंने राणा-जी का जीवनचरित्र बनाया है, जिसका नाम 'राज-रत्नगढ़' है। (शिवसिंहसरोज)

(२) ये बंदीजन बनारस के रहने वाले थे। ये महाराज ईश्वरीनारायणसिंह काशीनरेश के दरबार में रहते थे। ये शिवसिंह जी के समय में जीवित थे। ये बड़े उत्तम कवि थे। इन्होंने ये ग्रंथ लिखे हैं—(१) 'साहित्यसरसी', (२) हनुमत्भूषण', (३) 'तुलसीभूषण', (४) 'मानसभूषण', (५) 'कविप्रिया की टीका', (६) 'रसिकप्रिया की टीका', (७) 'सत-सई की टीका', (८)'तीन सौ अस्सी'(३८०)सूरदास के कूटों की टीका'। नारायण राय आदि बड़े-बड़े कवि इनके शिष्य थे। (शिवसिंहसरोज)

सरदारसिंह—(१) मेवाड़ के एक महाराणा का नाम। ये भीमसिंह के पुत्र जवानसिंह के दत्तक पुत्र थे। ये बड़े कड़े स्वभाव के थे। अतएव सामंतों से इनका मन-मुटाव सदा ही रहा करता था। सामंतों को शांत करने के लिए इन्होंने गवर्नमेंट से प्रार्थना की, तद-नुसार गवर्नमेंट ने संधि भी करा दी। परंतु वह संधि कब तक स्थिर रह सकती थी! अंत में महाराणा ने गवर्नमेंट के निकट यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि गोरी पल्टन यहां कुछ दिनों तक रहे। परंतु गवर्नमेंट ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। इनके राज्य-काल में मेवाड़ राज्य में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। इनका राज्यकाल इधर-उधर से सहायता मांगने में ही गया। सन् १८४२ ई० में इनका देहांत हो गया। (टाड्स राजस्थान)

(२) बीकानेर के महाराजा। इनके पिता का नाम महाराज रत्नसिंहजी था। महाराज रत्नसिंहजी का परलोकवास होने पर, सन् १८५२ ई० में सरदारसिंह बीकानेर की राजगद्दी पर बैठे। उस समय भारत के राजपूत गृहविवाद के कारण अपनी वीरता तथा अपना साहस आदि सभी खो चुके थे और ब्रिटिश-सिंह उस समय अपनी विशाल मूर्ति प्रकट कर रहा था। यह सब देखकर सरदारसिंह ने यही निश्चित किया कि जिस प्रकार हो, ब्रिटिश-सिंह को प्रसन्न रखने में कल्याण है। महाराज सरदारसिंह के राज्य के पांचवें वर्ष १८५७ ई० में सिपाही विद्रोह की अग्नि भड़क उठी। सरदारसिंह ने बड़े प्रयत्न से उस समय भीत अंग्रेजों को शरण दी। युद्ध में धन तथा सेना की सहा-यता दी। सिपाही विद्रोह की अग्नि के बुझ जाने पर सरकार ने इन्हें ४१ गांव उपहार में दिए जिनकी आय १४,२६१ रुपये प्रतिवर्ष थी। इन्होंने सामंतों के विद्रोह को गवर्नमेंट की सहायता से दूर किया। (टाड्स राजस्थान)

सरभा—रामायण-प्रसिद्ध विभीषण की पत्नी। पतिव्रता और धार्मिक होने के कारण लोग इसे श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। राक्षसियों से आवृत अशोकवन-स्थित सीता की हितैषिणी सरभा ही थी। यह गंधर्व-राज शैलपू की कन्या थी। रावण की मृत्यु के अनंतर रामचंद्र ने विभीषण को लंका का राजा बनाया। तब से महारानी होकर सरभा ने अपना जीवन अति-वाहित किया था। (रामायण)

सरमा देवशुनी—देवलोक की यह कुतिया इंद्र की दूती के रूप में प्रसिद्ध है। इससे यम के श्याम एवं शबल नामक दो कुत्ते उत्पन्न हुए और इन्हींके द्वारा विश्व में कुत्ता जाति की उत्पत्ति हुई। ऋग्वेद के अनुसार, वपण पणियों का धन खोज निकालने के लिए इंद्र ने अपनी गुप्तचर के रूप में सरमा को भेजा था। पणियों ने वैदिक ऋत्विजों की गायें चुराकर उन्हें रसा नदी के तट पर गुफाओं में छिपा रखा था। सरमा ने उनका पता लगाया और उन्हें मुक्त करने के लिए कहा। किंतु पणियों ने उसे बंदी बना दिया। इंद्र ने पणियों से संघर्ष करके सरमा तथा गायों को मुक्त किया। ऋग्वेद(१०८।२, ४, ६, ८, १०, ११) में इस संदर्भ की चर्चा 'सरमा-पणि-संवाद' के अंतर्गत की गई है।

पुराणों में देवशुनी को कश्यप तथा क्रोधा की पुत्री कहा गया है और इंद्रदूती के रूप में इसका उल्लेख

हुआ है । एक बार जनमेजय के नागयज्ञ में इसके पुत्र का अपमान होने के कारण इसने जनमेजय को शाप दिया कि उसके यज्ञ विपत्तियों से ग्रसित हों । यह शापवाणी चरितार्थ हुई और आगे चलकर आस्तोक ऋषि द्वारा वह बंद कर दिया गया ।

सरयू—ऋग्वेद में इसका अनेक बार उल्लेख हुआ है । अयोध्या के निकट बहनेवाली वर्तमान सरयू से वैदिक सरयू भिन्न थी । कुछ विद्वानों का मत है कि 'अवेस्ता' में उल्लिखित 'हरीयू', जिसको आजकल 'हरीसद्' या 'हरीरुद्र' कहा जाता है, वही पुरातन सरयू है ।

सरस्वती—इस पुण्यतोया नदी का ऋग्वेद में लगभग चालीस बार उल्लेख हुआ है । कुछ विद्वानों के मत से उसका उद्‌गम मीरपुर पर्वत से हुआ और बीकानेर में वह विलुप्त हुई । कुछ विद्वान् उसको कुरुक्षेत्र में बहकर पटियाला में विलुप्त हुआ मानते हैं । पटियाला की वर्तमान 'सुरसुति' ही अदृश्य होकर प्रयाग में आकर गंगा-यमुना से मिल गई—यह भी एक धारणा है । कुछ विद्वानों ने बदरी क्षेत्र से निकलनेवाली और आज भी सरस्वती नाम से कही जानेवाली नदी से इसकी एकता स्थापित की है ।

सर्वकर्मा—अयोध्याधिपति राजा सौदास के क्षेत्रज पुत्र का नाम ।

सलीमसिंह—जैसलमेर के एक प्रधानमंत्री का नाम । इसके पिता का नाम स्वरूपसिंह था । स्वरूपसिंह अपनी क्रूरता से जब मारा गया, तब उसका पुत्र सलीमसिंह ११ वर्ष का था । पुनः वयस्क होने पर यह प्रधानमंत्री के पद पर नियुक्त हुआ । प्रधानमंत्री का पद मिलने पर यह पितृहत्या का बदला लेने के लिए उद्यत हुआ । एक बार यह जोधपुर भेजा गया था । उस समय निर्वासित सामंतों ने इसे घेरकर मारना निश्चित किया । परंतु इसके गिड़गिड़ाकर प्राणभिक्षा मांगने पर सामंतों ने इसे छोड़ दिया । अब इसने संहारमूर्ति धारण की । पहले तो बड़े-बड़े सामंतों को इसने विष द्वारा मरवा डाला । फिर राजवंश पर भी इसने हाथ साफ किया था । रावल मूलराज और गजसिंह दोनों के समय में यह था । अंत में यह मारा गया । (टाड्स राजस्थान)

सविता—एक वैदिक देवता । अदिति का पुत्र होने के कारण इसे आदित्य या आदितेय भी कहा गया है । ऋग्वेद में यद्यपि आदित्य सर्प, विवस्वन्, पूषन्, अर्यमन्, वरुण, मित्र और भग आदि देवताओं का विभिन्नता से उल्लेख हुआ है, तथापि वे सूर्य या सविता के ही नामांतर प्रतीत होते हैं । मनुष्य जाति की व्याधियां दूरकर उन्हें यह आयुष्य देने वाला है । सृष्टि का सर्जक होने के कारण इसे 'विश्वकर्मन्' भी कहा गया है । यह देवों का पुरोहित तथा मित्र है और इसके माध्यम से अन्य देवताओं को, उनके लिए की गई प्रार्थना का प्रसार होता है । यह स्वर्णमय शरीर वाला है और इसके केश पीतवर्ण हैं । दो प्रकाशमान अश्वों द्वारा इसका स्वर्णिम रथ वहन होता है । यह वैभव-संपन्न और प्राणियों का रक्षक है । पुराणों में इसे कश्यप प्रजापति तथा आदिति रहित कहा गया है । इसके कारण इसकी मार्तंडादिति ख्याति हुई । विष्टृकन्या संज्ञा, रैवतकन्या राज्ञी, प्रभा, द्यौ, पृथ्वी तथा विक्षुभा आदि इसकी पत्नियां हैं । संज्ञा से इसे मनु, यम नामक दो पुत्र और यमी नामक एक कन्या हुई ।

सहजोबाई—हिंदी साहित्य के संतकवियों में सहजोबाई का अपना विशिष्ट स्थान है । इनका जन्म मेवात (राजस्थान) के डेहरा नामक स्थान में हुआ था । ये वैश्यवंशीया थीं । प्रसिद्ध संत चरणदास इनके गुरु थे । इन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया और स्वयं को भगवत्प्रेम में समर्पित कर दिया । प्रायः अपने गुरु के साथ ही ये रहीं । इनकी तीन रचनाएं उपलब्ध हैं, जिनके नाम हैं—'सहजप्रकाशिका', 'शब्द' और 'सोलह तत्त्व निर्णय' । अपनी तीनों रचनाओं में इन्होंने गुरु-महिमा का हृदयग्राही वर्णन किया है । इनकी कृतियों में एक ओर तो निर्गुण ब्रह्मतत्त्व का अद्वैतपरक निरूपण हुआ है और दूसरी ओर सगुण कृष्णभक्ति की रस-भाव-समन्वित विचारों का अभिव्यंजन । इनके महिलाहृदय की सहज सरलता और भाव-तरलता इनकी रचनाओं में सर्वत्र समाविष्ट है । १६८३-१७६३ ई० इनका स्थितिकाल माना गया है । (आचार्य परशुराम चतुर्वेदी : उत्तरी भारत की संत-परंपरा) ।

सहदेव—(१) पांडु के क्षेत्रज पुत्र । माद्री के गर्भ और अश्विनीकुमारों के औरस से इनका जन्म हुआ था । द्रौपदी के गर्भ से इन्हें श्रुतसेन नामक एक पुत्र हुआ था । युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में दक्षिण के राजाओं से कर लेने के लिए ये भेजे गए थे । विराट्राज के भवन में ये अज्ञातवास के समय तंत्रीपाल नाम धारण करके गोपालक का काम करते थे । महाप्रस्थान के

समय सुमेरु शिखर पर गिरकर इन्होंने प्राण त्याग किए थे।

(२) जरासंध का पुत्र। महाभारत के युद्ध में यह कौरवपक्ष की ओर था और अभिमन्यु के हाथ से मारा गया। (महाभारत)

सह्याद्रि—पुराणों तथा काव्यों में इस पर्वत का प्रचुर उल्लेख हुआ है। यह पर्वत दक्कन के पश्चिम में खानदेश जिले के कुंडैबारी दर्रे से कन्याकुमारी तक फैला हुआ है। इसे तमिल में 'शैयम' कहा गया है।

साकेत—बौद्ध ग्रंथों में साकेत महानगरी का महत्त्व विस्तार से वर्णित है। वह उत्तर कोसल की राजधानी थी और भारत की छह महानगरियों में गिनी जाती थी। बुद्ध से पूर्व ही इसका अस्तित्व प्रकाश में आ गया था। बुद्ध स्वयं वहां गए थे। साकेत से यमुना पार करके श्रावस्ती पहुंचा जा सकता था; किंतु इन दोनों नगरियों के बीच का मार्ग डाकुओं से आतंकग्रस्त था। वे भिक्षुओं तक को लूट लेते थे और कभी-कभी उन्हें मार भी देते थे। टालेमी ने इसे सोगेड (Sogeda) और फाह्यान ने शा-ची (Sha-Chi) नाम से कहा है। गुप्तशासकों के समय साकेत का वैभव पुनः प्रकाश में आया।

सागरध्वज—पांडवदेश का एक राजा; जो अस्त्रविद्या में बड़ा निपुण था और जिसने परशुराम, भीष्म, द्रोण तथा कृप आदि प्रसिद्ध आचार्यों का शिष्यत्व प्राप्त किया था। इसके पिता तथा भाई का श्रीकृष्ण ने वध किया था, जिसका बदला लेने के लिए इसने द्वारका पर चढ़ाई की थी। किंतु अपने मित्रों के अनुरोध पर इसने अपना विचार स्थगित कर दिया। भारत-युद्ध में यह पांडवों के पक्ष से लड़ा था। इसकी विशाल सेना में एक लाख, चालीस हजार रथ थे, जिनमें श्वेत वर्ण के अश्व जुड़े थे।

सागल (शाकल)—मद्रों की इस राजधानी का बौद्ध ग्रंथों में वर्णन हुआ है। यह नगर एक सुरम्य पर्वतीय प्रदेश में स्थित था, जिसमें दृढ़ अट्टालक (बुर्ज) और प्राकार (परकोटे) बने हुए थे। यहां विशाल भवन और सुंदर सड़कें थीं। इसपर सिकंदर, क्षत्रपों तथा यूनानियों का अधिकार रहा। शक्तिशाली मेनांडर (मिलिंद) के शासनकाल में इस नगर की प्रसिद्धि हुई। छठी शती में यह नगर मिहिरकुल की राजधानी बना। कुछ विद्वानों ने इसे रावी के पश्चिम में स्थित आधुनिक सांगलवाला टिबा से और कुछ विद्वानों ने स्यालकोट या मद्रशासक शल्य के किले से समीकृत किया है।

सात्यकि—यदुवंशी विख्यात वीर। इनका दूसरा नाम युयुधान भी था। इनके पिता का नाम सत्यक था और पुत्र का नाम अंगद था। कुरुक्षेत्र के युद्ध में इन्होंने पांडवों का पक्ष ग्रहण किया था। इन्होंने कौरवपक्षीय भूरिश्रवा को मारा था। श्रीकृष्ण और अर्जुन से इन्होंने अस्त्रविद्या सीखी थी। यदुकुल के नाश के समय इनका भी नाश हुआ। (महाभारत)

सात्वत—एक यादव राजा। विभिन्न पुराणों में इसके पिता के आयु, सत्त्व, जंतु एवं अंश नाम दिए गए हैं। इसे सात्वत राजवंश का प्रवर्तक माना गया है। प्रसिद्ध यादव सात्यकि इसी वंश में उत्पन्न हुआ था। इसके सात पुत्रों के नाम थे—भजमान, भाजि, दिव्य, वृष्णि, देवावृध, अंधक और महाभोज। 'हरिगीता' में सात्वत धर्म की श्रेष्ठता का विस्तार से उल्लेख हुआ है। (महाभारत)

सान्दीपन—ये एक ब्राह्मण विद्वान् थे। श्रीकृष्ण और बलराम ने इन्हींसे कला और शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी। श्रीकृष्ण ने इन्हें गुरुदक्षिणा दी थी।

साम्ब—श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम। ये जाम्बवती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। दुर्योधन की कन्या को इन्होंने बलपूर्वक हरण किया था और इसी उपलक्ष्य में कर्ण आदि महारथियों ने साम्ब को पकड़ा था। तब बलदेव गए और उन्होंने कहला भेजा कि राजा उग्रसेन की आज्ञा है कि साम्ब को लौटा दो। इससे कुरुकुल के वीर महा अप्रसन्न हुए। अंततः बलदेव ने बलपूर्वक साम्ब को छुड़ा लिया। (विष्णुपुराण)

सारनाथ—सारनाथ का प्राचीन काल से ही धार्मिक तथा ऐतिहासिक महत्त्व है। इसका प्राचीन नाम इसिपतनमिगदाय (ऋषिपत्तन मृगदाव) था। यहां पर बुद्ध ने धर्मचक्र-प्रवर्तन किया था। ईस्वीपूर्व दूसरी शती में यहां बौद्ध भिक्षुओं का विशाल समुदाय निवास करता था। ह्वेनत्सांग ने भी इसका इसी रूप में उल्लेख किया है। यहां पर सम्प्रति बौद्ध अवशेषों का एक विशाल संग्रहालय है। यह स्थान वाराणसी से लगभग सात मील की दूरी पर स्थित है। कनिंघम ने उत्तर में धमेख स्तूप से लेकर दक्षिण में चौकुंडी टीले तक लगभग आधे मील विस्तृत क्षेत्र को सारनाथ से समीकृत किया है।

सारस्वत—(१) सरस्वती के तटवासी एक ऋषि। इनके

पिता का नाम दधीचि ऋषि था। एक बार दधीचि ऋषि की तपस्या को भंग करने के लिए इंद्र ने अलम्बुषा नामक अप्सरा को भेजा, जिसे देखकर ऋषि का वीर्य स्खलित होकर सरस्वती नदी के तट पर गिरा। इसी वीर्य से सरस्वती नदी को जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उसे ही सारस्वत कहा गया। इसी बीच भारत में बारह वर्षों का भयंकर अकाल पड़ा, जिससे पीड़ित होकर सरस्वती-तटवासी ऋषि तपश्चर्या को छोड़कर उदरपूर्ति के लिए इधर-उधर भटकने लगे। किंतु सारस्वत नदीतट पर बैठकर वेदाभ्यास करता रहा। अकाल समाप्त होने पर इधर-उधर बिखरे हुए ऋषियों के मन में वेदाभ्यास की पुनः इच्छा उदित हुई। तब वे सब सारस्वत के 'सारस्वत तीर्थ' में बैठकर वेदाभ्यास करने लगे। इस प्रकार ऋषि सारस्वत ने साठ हजार ऋषियों को वेदाभ्यास कराके अपना शिष्यत्व प्रदान किया।

(२) स्वायम्भुव मन्वंतर का एक व्यास, जो कि ब्रह्मा का पौत्र तथा सरस्वती का पुत्र था। इसके अपान्तरतम वेदाचार्य या प्राचीनगर्भ नामांतर भी प्राप्त होते हैं। इसके द्वारा ही वेद-विभाजन का कार्य संपन्न हुआ।

सावर्णि—(१) आठवें मन्वंतर के स्वामी। मनु का पैतृक नाम। सूर्यपत्नी सरण्यू या सवर्णा का पुत्र होने के कारण मनु वैवस्वत को 'सावर्णि' कहा गया। पुराणों में भी मनु के इस मातृपरक नाम का उल्लेख हुआ है। अन्य पुराणों में इसकी माता को छाया या मृण्मयी बताया गया है। इसके अग्रज श्राद्धदेव सातवें मन्वंतर के मनु थे। अपने पूर्वजन्म में मनु सावर्णि चैत्रवंशीय सुरथ नामक राजा था।

(२) एक सत्ययुगीन ऋषि, जिसने छह हजार वर्षों तक शिव की उपासना की थी। इस सुदीर्घ तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने इन्हें अजरता तथा अमरता का वरदान दिया और साथ ही इन्हें असामान्य ग्रंथकार होने का आशीष दिया। (महाभारत)

सावित्री—प्रसिद्ध सती और सत्यवान् की पत्नी। यह मद्रदेशाधिपति राजा अश्वपति की कन्या थी। विवाह के योग्य अवस्था होने पर पिता ने इसे योग्य वर ढूंढ़ने के लिए आज्ञा दी। यह पिता और वृद्ध मंत्रियों के साथ बहुत स्थानों में घूमने पर भी कोई योग्य पति नहीं पा सकी। अनंतर जिस वन में सत्यवान् रहते थे उस वन में आकर यह उपस्थित हुई और उनको ही पति वरण किया। नारद से सत्यवान् के अल्पायु होने की बात सुनकर राजा अश्वपति ने कन्या को दूसरा पति ढूंढ़ने के लिए आज्ञा दी। परंतु सावित्री ने कहा —एक को मन से मैंने पति बना लिया है। अब दूसरा पति ढूंढ़ने पर द्विचारिणी होना पड़ेगा। द्विचारिणी होने की अपेक्षा अकाल में विधवा होना उत्तम है—यह समझकर सावित्री ने पिता की आज्ञा को विनय के साथ अस्वीकृत किया। सावित्री हिंदू सती स्त्रियों में प्रधान और शिरोमणि समझी जाती है।

(महाभारत)

सिंहिका—(१) प्रजापति ऋषि कश्यप की स्त्री और दक्ष की कन्या। इसके गर्भ से गंधर्वगण उत्पन्न हुए थे।

(२) राहु की माता। यह राक्षसी लंका के समीप समुद्र में रहा करती थी। सीता को ढूंढ़ने जाने के समय हनुमान् ने इसका वध किया था।

सितनवासल—ये गुफाएं तंजोर के पुदुकोट्टा नामक स्थान में अवस्थित हैं। इन गुफाओं तथा यहां के गुफाचित्रों के निर्माण में पल्लवनरेश महेन्द्रवर्मन तथा उसके पुत्र नरसिंहवर्मन का योगदान रहा है। यहां के गुफाचित्र अधिकतर ब्राह्मणधर्म के देवी-देवताओं और कुछ जैन तीर्थंकरों से संबद्ध हैं। उनपर अजंता की शैली का प्रभाव है। चित्रों में फूल, फल, पेड़, पौधे, तालाब और पर्वत आदि प्राकृतिक दृश्य बड़ी भव्यता से उतारे गए हैं। वहां के नृत्य-गानरत आभूषण-अलंकृता नृत्यांगनाओं की चित्राकृतियां विशेष रूप से दर्शनीय हैं।

सिद्ध—काश्मीर के राजा का नाम। ये काश्मीरराज राजा नर के पुत्र थे। राजा नर की मृत्यु के पश्चात् काश्मीर के सिंहासन पर सिद्ध का अभिषेक हुआ। राजा नर के अत्याचार से श्मशानवत् बनी हुई काश्मीर की भूमि पुनः सुख-समृद्धि से पूर्ण हुई। शुद्ध-चित्त राजा सिद्ध संसार की अनित्यता जानकर पुण्य-कार्य करने में उद्यत रहा करते थे। यौवनावस्था में भी उनका चित्त विषयवासना से कलुषित नहीं हो सका था। उन्हें नाममात्र का भी अहंकार नहीं था। उन्हें भूषण बिलकुल पसंद नहीं थे। केवल शिवपूजन करना ही वे भूषण समझते थे। इन्होंने राजलक्ष्मी को धर्म के साथ मिला दिया था। राजा सिद्ध ने ६० वर्ष राज्य किया था। तदनंतर इनका स्वर्गवास हुआ।

(राजतरंगिणी)

सिद्धाचल (शत्रुञ्जय)—जैनियों का यह तीर्थस्थान एक सिद्धक्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है, जो काठियावाड़ की पांच पवित्र पहाड़ियों में से एक है। जैन तीर्थंकर ऋषभदेव जैसे अनेक संत यहां आए थे। यहां पर कुंती सहित पांच पांडव आए थे। पांडवों द्वारा स्थापित एक गुफा वहां आज भी विद्यमान है। यहां पर शत्रुञ्जय का प्रसिद्ध मंदिर है, जिसका पुनरुद्धार गुजरात के कुमारपाल के अधिकारी बाघमहदेव ने किया था। यहां पर अनेक जैन मंदिर हैं। यह पर्वत सूरत से ७० मील पश्चिमोत्तर में है।

सिनीबाली—एक ऋग्वैदिक देवी, जो कि देवताओं की बहन थी। इसे बहुप्रसवा एवं विशाल परिवार वाली कहा गया है और इसीलिए संतान प्रदान करने के लिए इसका स्तवन किया गया है। पुराणों में इसका उल्लेख आंगिरस् एवं श्रद्धा की कन्या के रूप में हुआ है। इसका विवाह धातृ आदित्य से हुआ था, जिससे इसका दर्श नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

सिन्धु—(१) अंध मुनि का पुत्र। महाराज दशरथ ने इसको हाथी के धोखे में शब्दवेधी बाण से मारा था। (देखो अंध मुनि)

(२) देश जो सिंधु और झेलम नदी के बीच में बसा हुआ है।

सिन्धु-सौवीर—इसका उल्लेख अनेक प्राचीन ग्रंथों तथा अभिलेखों में हुआ है। इन उल्लेखों से ज्ञात होता है कि ये दोनों जन, जिन्हें कालांतर में एक ही माना गया, सिंधु तथा झेलम के तट पर स्थित थे। इन्होंने कुरुक्षेत्र के युद्ध में भाग लिया था। सौवीर देश के शासक उदयन ने अपने पुत्र अभि को अपना उत्तराधिकारी न बनाकर अपने भानजे केशी को अभिषिक्त किया था। रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि सिंधु-सौवीर देश पर क्षत्रपों ने विजय प्राप्त की थी। उन्होंने कुषाणों से सत्ता छीनी थी। क्षत्रपों के बाद संभवतः वह गुप्तों के अधिकार में रहा और उसके बाद बलभी के मैत्रकों के अधीन हुआ। कनिंघम ने सौवीरदेश को एडर नामक स्थान से समीकृत किया है, जो कि गुजरात में खंभात की खाड़ी पर स्थित है। रौरुक उसकी राजधानी थी। रौरुक-नरेश रुद्रायन मगधनरेश बिंबिसार के मित्र थे (बि० च० लाही—ट्राइब्स इन एंश्येंट इंडिया, पृ० ८३)।

सियाजी—राठौर वीर। जिस दिन यवनवीर शाहबुद्दीन गोरी के प्रचंड पराक्रमाग्नि में कन्नौज राज्य भस्म हुआ, जिस दिन देशद्रोही नरपिशाच जयचंद ने अपने कर्मों का फल पाया, जिस दिन पवित्र हिंदू स्वाधीनता के सिर पर वज्रपात हुआ और जिस दिन अभागे हिंदुओं के भाग्य में चिरकाल के लिए दासता का विधानपत्र लिखा गया, उस दिन से अठारह वर्ष के बाद सन् १८१२ ई० में जयचंद के पौत्र सियाजी ने अपने साथ दो सौ वीरों को लेकर जन्मभूमि से प्रस्थान किया। इसके अनेक कारण बताए जाते हैं। कोई कहता है—सियाजी तीर्थयात्रा के लिए निकले थे। दूसरे पक्ष का सिद्धांत है कि सियाजी अपने भाग्य की समीक्षा के लिए निकले थे। मैं इसका निर्णय करना नहीं चाहता। क्या क्षत्रिय वीर भी संसार में बिना अपनी वीरता की धाक जमाए तीर्थयात्रा के लिए निकलते हैं?

आज एक बड़े राज्य का उत्तराधिकारी इस प्रकार रेतीले मैदान में धर्मभाव से प्रेरित होकर जा रहा है। क्या जले हुए क्षत्रियों के हृदय में धर्मभाव जागृत नहीं रह सकता है? क्या वन-वन और तीर्थों में घूमना ही क्षत्रियों के लिए धर्म नहीं है। अपमानित पराजित क्षत्रिय का प्रधान धर्म उच्चाकांक्षा और राज्य-विस्तार है, इसी धर्मभाव से प्रेरित होकर सियाजी, प्रिय जन्मभूमि को छोड़कर मारवाड़ के कोलूगढ़ नामक स्थान में पहुंचा। यह स्थान बीकानेर से २० मील पश्चिम की ओर है। उस समय वहां सोलंकी राजा राज्य करता था। उसने सियाजी का आदर-सम्मान किया।

सोलंकी राजा के आदर-सत्कार से प्रसन्न होकर सियाजी ने उनके उपकार का बदला देना निश्चित किया। उन दिनों लाखा फूलाणी नामक एक वीर राजपूत उन प्रदेशों में बड़ा ऊधम मचाए हुए था। इसका जन्म प्रसिद्ध जड़िचा कुल में हुआ था। सोलंकी राजा की आज्ञा से उसके दमन का भार इनपर सौंपा गया। सियाजी ने लाखा फूलाणी के विरुद्ध शस्त्र उठाया। बड़ा विकट युद्ध हुआ। इस युद्ध में सियाजी की जीत हुई। इस जीत से सोलंकी राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपनी बहन सियाजी को ब्याहकर उन्हें एक दृढ़ सूत्र में बांध लिया। वहां से सियाजी द्वारका की ओर बढ़ा। मार्ग में इन्हें अनहल बाडा पत्तन दीख पड़ा। मार्ग की थकावट दूर करने की इच्छा से सियाजी ने वहीं विश्राम किया। वहां के राजा ने इनका बड़ा आदर-सत्कार किया। जिस समय

सियाजी अनहल बाड़ा ही में थे, उसी समय संवाद आया कि लाखा फूलाणी ने उस नगर पर आक्रमण किया है। इससे वहां का राजा भयभीत हो गया। परंतु सियाजी उसे धैर्य बंधाकर स्वयं युद्ध के लिए उद्यत हुए।

दोनों वीरों में द्वंद्वयुद्ध होने लगा। दोनों ओर की सेना अलग खड़ी होकर दोनों का वीर-अभिनय देख रही थी। उस समय दर्शकों के हृदय का भाव देखते ही बनता था। अंत में लाखा फूलाणी राठौर वीर का तेज नहीं सह सका। वह मारा गया। सियाजी की जयध्वनि से आकाश गूंज उठा। अत्याचारी लाखा फूलाणी के मारे जाने से सतलुज से लेकर समुद्र-तट के वासियों तक ने राठौरवीर को आशीर्वाद दिया। अनंतर सियाजी की तीर्थयात्रा शेष रह गई। परंतु इसका पता नहीं चलता कि उन्होंने अपनी तीर्थयात्रा अपनी इच्छा से पूरी की कि नहीं। अनंतर इन्होंने लूनी नदी के किनारे अपने राज्य की पताका फहराई।

(टाड्स राजस्थान)

सीता—विदेहराज सीरध्वज की कन्या और अयोध्याधिपति राम की पत्नी। सीता ने राज्यभोग परित्याग कर पति के साथ चौदह वर्ष तक वनवास किया था। वनवास के १३वें वर्ष लंकाधिपति रावण ने उन्हें हर लिया। छः महीने के कठोर युद्ध के उपरांत रावण को मारकर राम ने सीता का उद्धार किया। राम ने पहले सीता के चरित्र में संदेह कर उन्हें ग्रहण करना नहीं चाहा। इससे खिन्न होकर सीता ने धधकती चिता में प्रविष्ट होकर देह त्यागना निश्चित किया। परंतु अग्नि ने शुद्धचरित्रा सती सीता की शुद्धता स्वीकार की। तब राम सीता को लेकर अयोध्या आए। तदनंतर सीता गर्भवती हुई। यद्यपि रामचंद्र सीता के चरित्र के विषय में संदेहरहित हो गए थे तथापि उनकी प्रजा सीता के चरित्र के विषय में संदिग्ध थी। रामचंद्र ने इस बात को जान लिया। सीता को शुद्ध जानते हुए भी राम ने प्रजारंजन के लिए सीता का त्याग किया। तमसा नदी के तीर पर वालमीकि के आश्रम के पास लक्ष्मण ने राम की आज्ञा से सीता को छोड़ दिया। सीता को रोता देख महर्षि वालमीकि उसे अपने आश्रम में ले गए। वहां सीता के दो यमज पुत्र उत्पन्न हुए। वालमीकि ने उनका लव और कुश नाम रखा। वालमीकि ने इनका संस्कार करके अपनी बनाई रामायण इन्हें कंठस्थ करा दी।

इसी समय श्री रामचंद्र ने एक अश्वमेध यज्ञ करना निश्चित किया। वालमीकि के साथ इस यज्ञ में जाकर लव-कुश ने रामायण का गान किया। वालमीकि मुनि से लव और कुश का परिचय पाकर रामचंद्र ने सीता को ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की। वालमीकि ने शिष्य भेजकर सीता को वहां बुलाया। सभा के सामने आकर सीता ने कहा—यदि हमने मन-वचन-कर्म से पति के अतिरिक्त अन्य किसीका चिंतन न किया हो तो, माता धरणि ! तुम अपने गर्भ में हमें स्थान दो। यह कहते-कहते पृथ्वी फट गई और सिंहासनस्थ पृथिवी निकली और सीता को लेकर अदृश्य हो गई। सीता के निर्वासन से लेकर समस्त घटनाओं का वर्णन उत्तरकांड में लिपिबद्ध है।

(रामायण)

सीताराम—इनका पूरा नाम लाला सीताराम बी० ए० था। ये श्रीवास्तव कायस्थ थे। इनके वंश के लोग पहले जौनपुर में रहते थे। इनके पिता प्रसिद्ध बाबा रघुनाथदास के शिष्य हुए और वे जौनपुर छोड़ अयोध्या में जा बसे। यहीं २० जनवरी, सन् १८५८ ई० को लाला सीताराम का जन्म हुआ। बाबा रघुनाथदास ही से इन्होंने विद्यारंभ किया था। तदनंतर एक मौलवी साहब इनको उर्दू और फारसी पढ़ाने के लिए नियत किए गए। मौलवी साहब कुछ हिंदी भी जानते थे, इस कारण उर्दू-फारसी के साथ इन्होंने कुछ हिंदी भी पढ़ी। इनके पिता वैष्णव थे, इस कारण इन्हें हिंदी के धर्मग्रंथों से बड़ा प्रेम था। अत: इन्हें हिंदी का अच्छा ज्ञान प्राप्त हो गया।

सन् १८७९ ई० में इन्होंने बी० ए० परीक्षा पास की। इस परीक्षा में आप प्रथम आए थे। तदनंतर इन्होंने वकालत की भी परीक्षा पास की। पहले आप अवध अखबार के संपादक हुए। तदनंतर स्कूल विभाग में गए, और वहीं असिस्टेंट इंस्पेक्टर हुए। उसपर से आप डिप्टी कलक्टर हुए।

इन्होंने हिंदी के बहुत ग्रंथ लिखे हैं। रघुवंश, कुमारसंभव, उत्तररामचरित, मालविकाग्निमित्र, मृच्छकटिक, नागानंद, ऋतुसंहार आदि ग्रंथों का इन्होंने हिंदी में अनुवाद किया। आप प्राचीन गणित का अनुशीलन करते रहे तथा उसी विषय के ग्रंथ भी छापते रहे। आप सरकारी काम से पेंशन लेने के उपरांत भी सरकार के कामों में सहायता देते थे।

आप हिंदी और संस्कृत भाषाओं के परीक्षक भी थे।

सुकन्या—महाराज शर्याति की कन्या और महर्षि च्यवन की पत्नी। (देखो च्यवन)

सुकृष—एक ऋषि जो कि विपुलस्वत् ऋषि का पुत्र था। इसके चार पुत्र थे। एक बार इसकी परीक्षा लेने के लिए पक्षीरूप धारण कर इंद्र इसके पास आया और उसने नरमांस-भक्षण की इच्छा प्रकट की। इसने अपने पुत्रों को मांस प्रदान करने की आज्ञा दी, जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया। इसपर इसने अपने पुत्रों को तिर्यक (पक्षी) योनि में पतित हो जाने का शाप दिया। उनकी प्रार्थना करने पर इसने उन्हें पक्षीयोनि में रहकर ही ज्ञान प्राप्त करने की छूट दे दी। तदनंतर यह इंद्र को अपना मांस देने के लिए उद्यत हुआ। इसकी भक्ति से प्रसन्न होकर इंद्र अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुआ और उसने इसे महाज्ञानी बनने तथा निर्बाध तपस्यारत रहने का आशीष दिया।

सुकेश—राक्षस विशेष। लंकेश्वर रावण के मातामह। सुमाली इनका पुत्र था।

सुखदेव मिश्र—इनका जन्म कम्पिला (फर्रुखाबाद, उत्तर-प्रदेश) के एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ था। काशी के प्रसिद्ध विद्वान् कवींद्राचार्य सरस्वती इनके गुरु थे। ये अनेक राजाओं तथा नवाबों के आश्रम में रहे और उनसे इन्होंने सम्मानजनक उपाधियां तथा जागीरें प्राप्त कीं। मुरारमऊ के राजा देवीसिंह से इन्हें दौलतपुर के मामक नामक गांव की एक जागीर उपहारस्वरूप प्राप्त हुई थी, जो कि आज भी इनके वंशजों के पास है। हिंदी साहित्य में इनका व्यक्तित्व एक छंदशास्त्री के रूप में विश्रुत हैं। इनकी अधिकतर रचनाएं पिंगलशास्त्र पर ही है। इनके ग्रंथों के नाम हैं—'अध्यात्मप्रकाश', 'फाजिल अली प्रकाश', 'नखशिख', 'मर्दानिरसार्णव', 'ज्ञानप्रकाश', 'रसरत्नाकर', 'पिंगलछंदविचार', 'पिंगलवृत्तविचार' और 'छंदनिवाससार'। इनका स्थितिकाल १६३३-१७०३ ई० है (आचार्य रामचंद्र शुक्ल—हिंदी साहित्य का इतिहास)।

सुगन्धा—काश्मीरराज शंकर वर्मा की प्रधान महारानी। मृत्यु के समय अपने पुत्र गोपाल वर्मा की देख-रेख का भार राजा ने सुगंधा को सौंपा था। सुगंधा के तत्त्वावधान में रहकर गोपाल वर्मा काश्मीर के सिंहासन पर बैठे। राजमाता सुगंधा यद्यपि विधवा थी, तथापि उसकी भोगलालसा शांत नहीं हो पाई थी। अतएव प्रभाकरदेव मंत्री के साथ राजमाता ने अनुचित संबंध स्थापित किया। वह खजाने का मालिक था। राजमाता का प्रेम पाकर वह इच्छानुसार धन लूटने लगा।

एक बार राजा गोपाल वर्मा ने खजाने की जांच करनी चाही। ऐसी स्थिति में प्रभाकर एक बार घबराया और उसने कहा—इस समय खजाने में जितने रुपये चाहिए उतने नहीं हैं, क्योंकि युद्ध में विशेष व्यय हुआ है। यद्यपि प्रभाकर ने उस समय राजा को शांत कर दिया, तथापि भावी अनर्थ की संभावना देख, उसने एक तांत्रिक के द्वारा राजा गोपाल वर्मा को मरवा डाला। तदनंतर गोपाल वर्मा के भाई संकर राजा बनाए गए, परंतु शीघ्र ही उनकी मृत्यु हो गई। अतएव कर्मचारियों की प्रार्थना से सुगंधा ने ही राज्यभार अपने हाथ में ले लिया। उस समय काश्मीर राज्य का कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण सुगंधा ने अपने किसी कुल के मनुष्य को राजा बनाने का प्रस्ताव किया। इस प्रस्ताव से काश्मीर के राजनीतिज्ञों के दो दल हो गए। प्रभाकर के अत्याचार से उत्तेजित व्यक्तियों ने सुगंधा को राज्यच्युत कर दिया। सुगंधा काश्मीर छोड़कर चली गई। तदनंतर सुगंधा के पक्षपातियों ने उसको पुनः काश्मीर में बुलाया। दोनों पक्षों में घोर युद्ध हुआ। इसी युद्ध में सुगंधा कैद हो गई, और वहीं उसका शरीरांत हुआ। (राजतरंगिणी)

सुग्रीव—कपिराज। पर्वतपरिवृता किष्किन्धा नगरी इनकी राजधानी थी। इनके बड़े भाई बाली ने इनको राज्य से निकालकर राज्य तथा उनकी पत्नी को ग्रहण कर लिया था। रामचंद्र ने बाली को मारकर इनको किष्किन्धा का राज्य दे दिया था। इनकी ही सहायता से राम ने रावण का नाश करके सीता का उद्धार किया था। वृद्धावस्था में अपने भतीजे अंगद को राज्य देकर सुग्रीव ने रामचंद्र के साथ सरयू तीर पर शरीर का त्याग किया। ये सूर्य के औरस से उत्पन्न हुए थे। (देखो बाली)

सुजानसिंह—बीकानेर के एक राजा। ये अनूपसिंह के पुत्र थे। अपने बड़े भाई स्वरूपसिंह के युद्ध में हत होने के अनंतर ये बीकानेर की गद्दी पर बैठे। टाड साहब कहते हैं कि इनके राज्यकाल में कोई विशेष घटना नहीं हुई। (टाड्स राजस्थान)

सुदर्शन—एक राजपुत्र । महाभारत के युद्ध में इसने युद्ध किया था । यह दुर्योधन की ओर से लड़ता था । सात्यकि के साथ इसका घोर युद्ध हुआ था । अंत में सात्यकि ने इसे मार डाला था । (महाभारत)

सुदास—इसका बृहद्रथ नामांतर भी प्राप्त होता है । विभिन्न पुराणों में इसे एक राजा बताया गया है; किंतु मतांतर से इसके पिता का नाम च्यवन राजा, सहदेव राजा या चैद्य राजा उल्लिखित है । उत्तर पांचाल के पैजवन राजा और यह एक ही थे । इसने ऋग्वेदकालीन प्रसिद्ध 'दाशराज्ञ युद्ध' में दस राजाओं पर विजय प्राप्त की थी । 'पैजवन' इसकी उपाधि या पैतृक नाम था । निरुक्तकार यास्क ने इसे पिजवन राजा का पुत्र कहा है । आधुनिक विद्वान् इसे पिजवन राजा का पुत्र और दिवोदास का पौत्र मानते हैं । महर्षि विश्वामित्र इसके पुरोहित थे और महर्षि वसिष्ठ द्वारा इसका राज्याभिषेक हुआ था । विपाशा (व्यास) और शुतुद्री (सतलुज) नदियों के तट पर अपनी विजय के उपलक्ष्य में इसने अश्वमेध यज्ञ किया था । इसकी पत्नी का नाम सुदेवी था । इसके वंश का 'सौदास' नाम से प्रवर्तन हुआ ।

सुधन्वा—कौरव पक्षी त्रिगर्त सेना का एक वीर । यह अर्जुन के हाथ मारा गया । (महाभारत)

सुधाकर द्विवेदी—इनका पूरा नाम 'महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी' था । बहुत दिन हुए कि चैनसुख नामक एक सरयूपारी ब्राह्मण काशी में संस्कृत पढ़ने आए । शिवपुर के पास मंडलाई नामक गांव में एक विद्वान् के पास वे पढ़ने लगे । उन पंडितजी के कोई पुत्र नहीं था, इस कारण चैनसुख ही उनकी संपत्ति के अधिकारी हुए । इसी वंश में कुछ दिनों के बाद शार्ङ्गधर और शिवराज नामक दो भाई हुए । शारंगधर ने खजुरी सारनाथ आदि कई गांवों की जमींदारी लेकर खजुरी में अपना निवासस्थान बनाया । शिवराज उपाध्याय के तीन पुत्र थे, जिनमें रामप्रसाद सबसे छोटे थे । इनके समय में केवल खजुरी की जमींदारी ही शेष रह गई थी । रामप्रसाद के पांच पुत्र हुए, जिनमें सबसे छोटे कृपालुदत्त थे । पं० कृपालुदत्त जी ज्योतिष-विद्या में बड़े निपुण थे । इनके लिखे अक्षर भी अच्छे होते थे । क्वींस कालेज की भीतों पर इन्हींके लिखे अक्षर वर्तमान हैं । इन्हीं पं० कृपालुदत्तजी के पं० सुधाकरजी पुत्र थे । पं० कृपालुदत्त हिंदी काव्य के प्रेमी और स्वयं कवि भी थे ।

जिस समय सुधाकरजी का जन्म हुआ उस समय इनके पिता मिर्जापुर गए हुए थे और इनके चाचा दरवाजे पर बैठे हुए थे । उसी समय 'सुधाकर' नामक एक पत्र आया, अत: चाचा ने नवजात शिशु का वही नाम रख दिया । इनका जन्म सं० १९१७ वि० की चैत्र शुक्ल चतुर्थी सोमवार को हुआ था । द्विवेदीजी की नौ महीने की अवस्था होते ही इनकी माता का स्वर्गवास हो गया । अत: इनके लालन-पालन का भार इनकी दादी पर पड़ा । इनके पिता अधिकतर बाहर ही रहा करते थे और घर-भर का उनपर विशेष अनुराग था । इसी कारण आठ वर्ष की अवस्था तक इनकी शिक्षा की ओर किसीने भी कुछ ध्यान नहीं दिया । तदनंतर इनके तायाजी ने इन्हें पढ़ने के लिए बिठाया । इसका फल बड़ा अच्छा हुआ । इन्होंने थोड़े ही दिनों में बड़ी उन्नति कर ली । यज्ञोपवीत संस्कार होते ही इनकी विचित्र धारणा-शक्ति का परिचय लोगों को मिलने लगा । किसी पद्य को एक ही बार देखने या सुनने से ये उसे कंठस्थ कर लिया करते थे ।

इनका स्वभावत: गणित ज्योतिष की ओर झुकाव था । लीलावती पढ़ने के बाद से ही ये गणित के बड़े-बड़े प्रश्नों को हल कर लिया करते थे । इनकी तीव्र बुद्धि को देखकर उस समय के कालेज के प्रोफेसर बापूदेव शास्त्री जी बड़े प्रसन्न रहा करते थे । उन्होंने इनकी प्रिंसिपल साहब से प्रशंसा भी की थी । परंतु अंत में किसी कारण से गुरु-चेले में झगड़ा हो गया ।

ये ज्योतिष के विद्वान् थे, यह बात सभी को मालूम है । परंतु इनका हिंदी भाषा से प्रेम भी अनुकरणीय और प्रशंसनीय था । इनका हिंदी के काव्यों में अच्छा प्रवेश था । ये सरल भाषा के पक्षपाती थे । इनकी अपनी भाषा भी बहुत सरल होती थी । परंतु वह सरलता केवल काशी के क्षेत्र वालों के लिए थी । आपने कोई १७ पुस्तकें लिखी और संपादित की हैं । बाबू हरिश्चंद्र इनके मित्र थे । ये क्वींस कालेज में गणित के प्रोफेसर रहे और नागरी प्रचारिणी सभा काशी के सभापति ।

सुनाभ—अंधराज धृतराष्ट्र के पुत्र और दुर्योधन के भाई । महाभारत के युद्ध में यह भीमसेन के हाथों मारा गया । इसने पहले तो घोर युद्ध किया परंतु अंत में असफल हुआ । (महाभारत)

सुन्द—निकुम्भ दैत्य का पुत्र । इसके छोटे भाई का नाम

उपसुंद था। (देखो उपसुन्द)

सुन्दर—ग्वालियर निवासी ब्राह्मण परिवार में इनका जन्म हुआ था। ये मुगल बादशाह शाहजहां के दरबारी कवि थे और १६३१ ई० तक विद्यमान थे। बादशाह ने इन्हें 'महाकविराय' की उपाधि से सम्मानित किया था। अपने समय के काव्यशास्त्रियों और कवियों में इनका स्थान था। इनका काव्यशास्त्रीय ग्रंथ 'सुंदर-शृंगार' संप्रति प्रकाशितावस्था में प्राप्त है। इसके अतिरिक्त विभिन्न ग्रंथों एवं खोज-रिपोर्टों में इनके नाम से 'बारहमासी', 'ध्रुवलीला' और 'सिंहासन-बत्तीसी' का उल्लेख हुआ मिलता है। इनका उपलब्ध ग्रंथ 'सुंदर-शृंगार' विशुद्ध ब्रजभाषा में विरचित है, जिसमें रस, अलंकार और नायिकाभेद का निरूपण किया गया है।

सुन्दरदास—हिंदी साहित्य के संत कवियों में इनका श्रेष्ठ स्थान है। इनका जन्म जयपुर राज्य की प्राचीन राजधानी धौसा नगर के एक खंडेलवाल वैश्य परिवार में १५९६ ई० को हुआ था। रामनंदी परंपरा के प्रसिद्ध संत दादूदयाल इनके गुरु थे। इनकी सुंदरता के कारण गुरु ने ही इनको यह नाम दिया। इनके संबंध में कहा जाता है कि जब ये केवल छह वर्ष के थे, तभी इन्होंने शिष्यत्व ग्रहण कर लिया था। ११ वर्ष की अवस्था में ये काशी आए और सात वर्षों के निरंतर अध्ययन से वेद-वेदांत, काव्य, काव्यशास्त्र और व्याकरण आदि विभिन्न विद्या-शाखाओं में निपुणता प्राप्त कर ली थी। फतेहपुर में रहकर १२ वर्षों तक इन्होंने कठोर योगाभ्यास किया। इसी बीच नवाब अलिफखां से इनका परिचय हुआ। इनके द्वारा विरचित लगभग ४२ रचनाओं का इतिहास-ग्रंथों में उल्लेख हुआ है। उनमें 'ज्ञानसमुद्र', 'सुंदरविलास', सर्वांगयोगप्रदीपिका', 'पंचेन्द्रियचरित्र', 'सुखसमाधि', 'अद्भुत उपदेश' और 'ज्ञान झूलना' आदि प्रमुख हैं। इनकी संतकाव्य-संबंधी रचनाओं में शास्त्रज्ञान की अपेक्षा अनुभवज्ञान का विशेष निरूपण हुआ है। १६८९ ई० में इनका निधन हुआ। (पुरोहित हरिनारायण शर्मा (सं०)—सुंदर ग्रंथावली की भूमिका; डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित—सुंदर दर्शन)।

सुपर्ण—(१) एक ऋषि, जो अत्यंत मनोनिग्रही एवं संयमी था। उसकी कठोर तपश्चर्या से प्रसन्न होकर स्वयं भगवान् पुरुषोत्तम ने उसे सात्वत (राधा-कृष्ण-भक्ति) धर्म का उपदेश दिया था। इसने इस धर्म का तीन बार पठन किया, जिससे सात्वत धर्म को 'त्रिसौवर्ण' नाम प्राप्त हुआ।

(२) एक पक्षिराज गरुड़; वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में सुपर्ण तथा गरुड को क्रमश: सोम तथा अमृत प्राप्त हुआ था।

सुपर्णी—गरुड की माता; अपर नाम विनता। विनता एवं गरुड की सापत्न माता कद्रू को पृथ्वी पर सोम लाने के लिए भेजा गया था। ये दोनों पारस्परिक ईर्ष्या रखती थीं। (शतपथ ब्राह्मण)

सुप्रभा—यह सुरथ राजा की कन्या और नाभाग राजा की पत्नी थीं। इसका अपर नाम कृपावती भी था। एक बार इसने ऋषि अगस्त्य को त्रसित किया, जिससे ऋषि ने इसे वैश्ययोनि में पतित होने का शाप दिया। इसके पुत्र का नाम भलंदन था, जिसको इसने क्षत्रियोचित राजधर्म का उपदेश दिया था। (मार्कण्डेय पुराण)

सुबल—गान्धार देश का एक राजा। इसका जन्म प्रह्लाद के शिष्य नग्नजित् के अंश से हुआ था। इसलिए इसकी संतति धर्मविरोधी थी। इसकी कन्या का नाम गांधारी और पुत्र का नाम शकुनि था। ये दोनों राजनयशास्त्र में प्रवीण थे। गांधारी का विवाह हस्तिनापुर के राजा धृतराष्ट्र से हुआ था। सुबल ने अपनी अन्य दस पुत्रियों का विवाह भी धृतराष्ट्र से ही किया था। यह युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भी सम्मिलित हुआ था। (महाभारत)

सुबलसिंह—जयसलमेर के एक राजा। इनके पिता का नाम दयादास था। इनके चचेरे पितामह मनोहरदास ने चाहा था कि अपने पुत्र रामचंद्र को राजा बनाएं, परंतु सुबलसिंह की योग्यता तथा वीरता से वहां की प्रजा प्रसन्न थी। इसके अतिरिक्त इनके भाग्योदय का और भी एक कारण था। सुबलसिंह महाराज आमेर के भानजे थे। वह आमेरनरेश की अधीनता में यवनों की राजधानी पेशावर के राज्य-प्रबंध में एक ऊंचे पद पर नियुक्त थे। एक बार अफगान लुटेरों ने यवन सम्राट् का खजाना लूटना चाहा था, परंतु सुबलसिंह की वीरता से वे सफल न हो सके। इस कारण बादशाह भी उनपर प्रसन्न रहते थे। सुबलसिंह ने अपनी योग्यता से सभी राजाओं में अच्छा मान पा लिया था। मनोहरदास के मरने पर यवन सम्राट् ने जोधपुर के राजा यशवंतसिंह को आज्ञा दी कि तुम रामचंद्र को हटाकर शीघ्र सुबलसिंह को गद्दी पर बैठा

दो। यशवंतसिंह ने नाहरखां की सेना से संयुक्त एक सेना भेजकर सुबलसिंह को जयसलमेर की गद्दी पर बैठाया। सुबलसिंह ने वह कर्ण का प्रदेश नाहरखां को सदा के लिए दे दिया। सुबलसिंह ने जयसलमेर की गद्दी पर बैठकर बड़ी प्रशंसा के साथ राज्य चलाया। इनकी राज्यशासन-व्यवस्था से प्रजा बहुत प्रसन्न रहती थी। राजा और प्रजा दोनों से प्रशंसा पाकर सुबलसिंह ने बहुत दिनों तक राज्य किया, तदनंतर इनका स्वर्गवास हुआ। (टाड्स राजस्थान)

सुभद्रा——श्रीकृष्ण की वैमात्रेय भगिनी और अर्जुन की पत्नी। सुभद्रा वासुदेव के औरस और रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। श्रीकृष्ण की इच्छा से अर्जुन इसे हर ले गए थे। अभिमन्यु इसीके पुत्र थे। वे महाभारत के अन्याय-युद्ध में मारे गए।

सुमन्त्र—राजा दशरथ के एक मंत्री का नाम।

सुमाली—लंकेश्वर रावण का मातामह।

सुमित्रा—अयोध्याधिपति राजा दशरथ की पत्नी। इन्हींके गर्भ से लक्ष्मण और शत्रुघ्न उत्पन्न हुए थे।

सुमुख—नागविशेष। इंद्र के सारथि मातली ने अपनी कन्या गुणकेशी को इनके साथ ब्याहा था। गरुडराज ने सोचा था कि सुमुख को मैं खाऊंगा, परंतु इस ब्याह से उनका मनोरथ नष्ट-भ्रष्ट हो गया। इससे अप्रसन्न होकर गरुड बड़े बिगड़े और इंद्र तथा विष्णु के समीप जाकर अपने बल की प्रशंसा करने लगे। यह सुनकर विष्णु ने अपना हाथ गरुड की पीठ पर रखा। उसके भार से गरुड दबने लगे। तभी से गरुड और सुमुख में मित्रता हो गई।

सुरजनसिंह—बूंदी के राजा अर्जुन के सबसे बड़े पुत्र। ये सन् १५५५ ई० में बूंदी की राजगद्दी पर बैठे। सुरजनसिंह के राजा होते ही बूंदी की राजनीतिक अवस्था बदल गई। बूंदी के राजा आज तक स्वाधीन थे। केवल उदयपुर के महाराणा को स्वजातीय जानकर और अधीनता स्वीकार कर वे सम्मान दिखाते थे और महाराणा के सुख-दुःख में शामिल होते थे। परंतु सुरजन ने यवन सम्राट् की अधीनता स्वीकार कर धीरे-धीरे अपने वंश की ऐश्वर्यवृद्धि कर ली।

बूंदी-राजवंश की छोटी शाखा में उत्पन्न सामंतसिंह नामक एक सामंत बूंदी राज्य में इस समय एक विख्यात पुरुष था। शेरशाह के शासन के लुप्त होने के बाद इसने बेदला के सामंत चौहान से मिलकर अफगान शासनकर्ता को रणथंभोर का किला छोड़ देने के लिए लिखा। अफगान शासनकर्ता ने उक्त किले का भार सामंतसिंह को सौंप दिया। सामंतसिंह ने उक्त किला राव सुरजन को दे दिया। बूंदी के राजा के अधीन वैसा दुर्भेद्य किला दूसरा नहीं था। अतः सामंतसिंह से उस किले को पाकर राव सुरजन ने उन्हें बूंदी के निकट भूवृत्ति दी।

बेदला के जिन चौहान सामंत ने उक्त किले को लेने में विशेष सहायता दी थी, उन लोगों ने राव सुरजन के समीप यह प्रस्ताव किया कि मेवाड़ के अधीन रहकर किले की रक्षा करनी होगी। राव सुरजन ने इसे स्वीकार कर लिया।

सम्राट् अकबर भारत के सिंहासन पर विराजकर रणथंभोर के किले पर अधिकार करने के लिए लालायित हुआ। उसने सेना लेकर उक्त किले पर आक्रमण किया। बहुत दिनों तक सम्राट् अकबर किले की दीवार तोड़ता रहा, परंतु किसी प्रकार वह किले में घुस न सका। इसी समय आमेर के महाराज भगवान्दास तथा उनके भतीजे मानसिंह ने अकबर की अधीनता स्वीकार की थी और भगवान्दास ने तो अकबर को अपनी कन्या देकर क्षत्रियकुल को ही नहीं, किंतु एक प्रकार से समस्त हिंदू-जाति को कलंकित किया था।

बादशाह अकबर जब किसी प्रकार रणथंभोर के किले पर अधिकार नहीं कर सका, तब मानसिंह ने दूसरे उपाय से काम लेना निश्चित किया। मानसिंह इस बात को जानते थे कि प्रत्येक राजपूत अतिथि-सत्कार के लिए प्राण तक देने के लिए शीघ्र ही तैयार हो सकता है। यही सोचकर मानसिंह ने राव सुरजन से आश्रय देने की प्रार्थना की। राव सुरजन मानसिंह को राजवंशी और क्षत्रिय मानता था। अतः उसने उन्हें आश्रय देना स्वीकार किया। बादशाह अकबर भी कपटवेश धरकर मानसिंह का अनुचर बनकर किले में चला गया। राव सुरजन मानसिंह से बातचीत कर रहे थे, उस समय सुरजन के चाचा ने कपटवेशधारी अकबर को पहचान लिया, और उनके हाथ से सोटा छीनकर उन्हें सिंहासन पर बैठा दिया। उसी समय अकबर ने सुरजन को बुलाकर कहा—राव सुरजन! इस समय क्या करना उचित है। मानसिंह ने राव सुरजन से कहा—आप चित्तौड़पति राणा की अधीनता छोड़कर रणथंभोर का किला बादशाह को अर्पित कीजिए। आपको बड़ा ऊंचा पद मिलेगा।

आपको कुछ देशों के शासन करने का अधिकार मिलेगा और जो आप बादशाह से प्रार्थना करेंगे, सो भी मिलेगा। वहीं संधिपत्र लिखकर तैयार हुआ। बादशाह ने उसपर दस्तखत कर दिए। इसके अतिरिक्त काशी में मकान बनाने की आज्ञा भी बादशाह ने दी। बादशाह ने उसी दिन उन्हें 'रावराजा' की उपाधि दी। गोड़वाने के युद्ध में राव सुरजन ने विजय प्राप्त की। इस कारण काशी, चुनार तथा और भी पांच देशों का शासनभार बादशाह ने इन्हें दे दिया। इनके तीन पुत्र थे। (टाड्स राजस्थान)

सुरतानसिंह—बूंदी के महाराज सूर्यमल के पुत्र। ये सन् १५३५ ई० में बूंदी की गद्दी पर बैठे। मेवाड़ के शक्तावत संप्रदाय के आदिपुरुष शक्तसिंह की कन्या से इनका ब्याह हुआ था। इसी समय बूंदी राज्य में तांत्रिकों का दल जोर पकड़ता जाता था। बहुतसे राजपूत उन तांत्रिकों के दल में मिलते जाते थे। राजा सुरतानसिंह भी इस दल में सम्मिलित हुए। ये राजा तांत्रिकों के साथ मिलकर नरबलि के मिष अपनी प्रजा की हत्या करने लगे। इससे वहां के सामंत तथा उच्च कर्मचारी असंतुष्ट हुए जिसका फल यह हुआ कि सुरतानसिंह गद्दी से अलग कर दिए गए। तबसे चम्बल नदी के किनारे एक छोटे-से गांव में रहकर सुरतान ने अपना जीवन बिताया। (टाड्स राजस्थान)

सुरति मिश्र—इनका जन्म आगरा के कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में १६८३ ई० को हुआ। इनके पिता का नाम सिंहमनि था। 'गंगेश' इनके गुरु थे और जयपुर के शिवदास तथा 'खटमलबाईसी' के रचयिता अलीमुहीमखां 'प्रीतम' इनके प्रमुख शिष्यों में से थे। ये दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह, जोधपुर के दीवान अमरसिंह, बीकानेर के राजा जोरावरसिंह और नसरुल्लाखां आदि अनेक महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के आश्रय में रहकर सम्मानित जीवन व्यतीत करते रहे। इन्होंने मौलिक और अनूदित, दोनों रूपों में हिंदी साहित्य को महत्त्वपूर्ण कृतियां दीं। इनकी मौलिक कृतियों में 'काव्यसिद्धांत', 'अलंकारमाला', 'रसमाला', 'सरस रस', 'रसग्राहमचंद्रिका', 'रसरत्नाकर', 'श्रृंगारसार', 'रसरत्नमाल', 'नखशिख', 'प्रबोधचंद्रोदय नाटक', 'भक्तविनोद', 'वैताल पच्चीसी', 'रासलीला', 'दानलीला' का नाम उल्लेखनीय है। इसी प्रकार इनके टीका-ग्रंथों के नाम हैं—'अमरचंद्रिका' (बिहारी सतसई की टीका), 'कविप्रियाटीका' और 'रसिकप्रियाटीका'। रीतिकालीन काव्यशास्त्रियों में इनका शीर्ष स्थान है। १८वीं शती के उत्तरार्ध तक ये जीवित थे (हिंदी साहित्य कोश, भाग-२)।

सुरथ—त्रिगर्त देश का एक राजा। इसके पिता का नाम जयद्रथ और माता का नाम दुःशला था। युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ के अश्व-संरक्षक के रूप में जब अर्जुन इसके देश में पहुंचा तो उसके द्वारा किए गए अपने पिता के वध का स्मरण होते ही इसने भयवश प्राण त्याग कर दिए। किंतु तदनंतर कृष्ण के अनुग्रह से यह पुनर्जीवित हुआ और इसने अश्वमेध यज्ञ में भाग लिया।

सुरभि—महर्षि काश्यप की पत्नी और दक्षप्रजापति की कन्या। गो, महिष आदि इसीकी संतान हैं।

सुराष्ट्र—भारतीय साहित्य में सुराष्ट्रजनों और उनके सुराष्ट्र देश का व्यापक वर्णन हुआ। विभिन्न शासकों के अभिलेखों और चीनी-यूनानी लेखकों ने भी उसकी बहुविध चर्चाएं की हैं। जातकों में उसे सुरठ कहा गया है। कौटिल्य ने सुराष्ट्र के हाथियों को उत्तम बताया है। मौर्यों के समय इस गणतंत्र का शासक पिंगल था, जो कि मौर्यों का सामंत था। महाभारतकाल में उसपर यादवों का अधिकार था। शकों और गुप्तों ने भी उसपर शासन किया। यह पश्चिमी संभाग में स्थित था और आधुनिक काठियावाड़ गुजरात, सूरत उसमें सम्मिलित थे। उसका विस्तार कच्छ की खाड़ी तक था। अपनी समृद्धि और व्यापारिक महत्ता के कारण उसकी प्रसिद्धि थी।

सुलभा—प्रधान नामक राजा की पुत्री। इस संन्यास व्रतधारिणी कुमारी का मिथिलानरेश जनक से वादविवाद हुआ था, 'महाभारत' में जिसे 'सुलभा-जनकसंवाद' के नाम से कहा गया है। जनक ने कर्मयोग एवं गृहस्थाश्रम की प्रशंसा करते हुए स्वयं को विषयोपभोगों से अलिप्त सिद्ध किया। साथ ही इन्हें एक स्त्री के रूप में तत्त्वज्ञान का अनधिकारी बताते हुए अनेक प्रकार के व्यंग्यात्मक वचन कहे। इसने अत्यंत गंभीरता और शांतिपूर्वक जनक का संभाषण सुना और आत्मज्ञान पर प्रकाश डालते हुए कहा कि राजधर्म का निर्वाह करनेवाले व्यक्ति को मोक्षज्ञान होना असंभव है। उसने जनक की अनभिज्ञता के प्रति तीखा प्रहार किया। उसकी तत्त्वज्ञान-संबंधी युक्तियों

को सुनकर जनक का आत्मज्ञान बढ़ा।

सुवर्चस्—ऋषि दधीचि की पत्नी। देवताओं एवं इंद्र ने इसके मृत पति की अस्थियों को धोखे में प्राप्त किया, जिससे दुःखी होकर इसने उन्हें पशुयोनि धारण करने तथा निर्वंश होने का शाप दिया। फिर ज्यों ही पति के साथ सती होने के लिए उद्यत हुई, तभी यह आकाशवाणी हुई कि वह गर्भवती है। उसने अपने उदर को पत्थर से विदीर्ण करके गर्भ को बाहर निकाला और उसे पीपल के वृक्ष के पास रखकर स्वयं सती हो गई। सुवर्चस् एवं दधीचि के इस पुत्र का नाम पिप्पलाद पड़ा।

सुवर्ण—काश्मीर के एक राजा का नाम। इनके पिता का नाम गोधा था। ये बड़े दाता थे। (राजतरंगिणी)

सुवास्तु (स्वात)—इसका अस्तित्व ऋग्वेदकालीन है। यह नदी सिंधु की सहायिका कुम्भा (काबुल) में मिलती थी। अफगानिस्तान में यह 'स्वात' नाम से आज भी प्रसिद्ध है। यूनानियों ने इसे 'सोआस्तस्' नाम से कहा है। इस नदी के तट पर संस्कृत के अनेक अभिलेख प्राप्त हुए हैं।

सुषेण वानर—एक वानर प्रमुख। यह धर्म नामक वानर का पुत्र और वानरराज बालि का श्वसुर था। यह रणकुशल और सत्युग का सुविख्यात वैद्य था। राम-रावण युद्ध में यह एक सेनापति था। रावण की अमोघ शक्ति के प्रहार से सहस्त्रों वानर तथा लक्ष्मण मूच्छित हो गए थे। उस समय इसने संजीवनी संधानी ओषधियों से लक्ष्मण को पुनर्जीवित किया और युद्धाहत सहस्त्रों वानरों की प्राणरक्षा की। राम के राज्याभिषेक के समय यह उपस्थित था। इसकी पुत्री का नाम नाभतारा और दो पुत्रों के नाम मैंद तथा द्विविद थे। (रामायण)

सुषोमा (सोहन)—सिंधु की पूर्वी सहायक नदी। अटक जिले में बहने वाली वर्तमान 'सोहन' (सुअन) नदी ही पुरातन सुषोमा है।

सुशर्मा—त्रिगर्तराज। मत्स्य देश के अधिपति विराट् ने इनके राज्य पर अधिकार कर लिया। राज्यच्युत होकर ये राजा दुर्योधन के आश्रय में रहने लगे। इस समय कीचक विराट् राजा का सेनापति था। उसी के भय से दुर्योधन विराट् पर आक्रमण नहीं करते थे। कीचक की मृत्यु हो जाने पर दुर्योधन ने सुशर्मा को विराट् के दक्षिण गोगृह पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। जब सुशर्मा ने विराट् के दक्षिण गोगृह पर आक्रमण किया तब गौओं की रक्षा के लिए विराट् युद्ध करने लगे। सुशर्मा ने विराट् को कैद कर लिया और वह अपने देश की ओर लौटा। पांडवगण इस समय विराट्भवन में अज्ञातरूप से वास करते थे। युधिष्ठिर की आज्ञा से भीम ने युद्ध में सुशर्मा को परास्त किया और विराट् का उद्धार भी किया। कुरुक्षेत्र के युद्ध के १८वें दिन यह अर्जुन के हाथ मारा गया। (महाभारत)

सुश्रुत—(देखो चरक)

सुसर्तु—सिंधु की पश्चिमी सहायक नदी। वर्तमान 'सुरु' ही पुरातन सुसर्तु है।

सुस्मल—लाहौर का राजा। जिस समय ये लाहौर का शासन करते थे उसी समय इनका भाई उच्चल काश्मीर का राजा था। यद्यपि सुस्मल राजा थे, तथापि राज्य को और अधिक बढ़ाने की इनकी इच्छा सदा प्रबल रहा करती थी। इसी इच्छा से प्रेरित होकर सुस्मल ने अपने भाई उच्चल के राज्य काश्मीर पर आक्रमण किया। इसकी खबर पाते ही उच्चल सामना करने के लिए राजधानी से प्रस्थित हुए। इनके सुस्मल के शिविर तक पहुंचते न पहुंचते वह सब सामान छोड़कर भाग गया। इसके अनंतर कुछ दिनों के बीत जाने पर सुस्मल ने पुनः काश्मीर राज्य पर चढ़ाई की। इसका संवाद पाते ही उच्चल ने एक सेनापति की अधीनता में एक सेना भेजी। दोनों में खूब युद्ध हुआ। अंत में सुस्मल लौट गया।

अनंतर उच्चल अपनी कड़ाई के कारण मारे गए। इस घटना के दूसरे दिन सुस्मल को यह बात विदित हुई। तदनंतर सुस्मल सेना लेकर काश्मीर की ओर चले। मार्ग में उन्हें एक दूत मिला। उसने राजा सुस्मल से कहा—अब आपके जाने की आवश्यकता नहीं है। शत्रु मारे गए और आपकी अनुपस्थिति के कारण, आपके छोटे भाई सल्हण को राज्य दे दिया गया।

अपने अनुचरों को काश्मीर जाने के लिए अनिच्छुक देखकर हंसते-हंसते सुस्मल ने कहा—"छोटा भाई कायम है सही परंतु काश्मीर राज्य तो हमारी पैतृक संपत्ति नहीं है। मैं और मेरे बड़े भाई—दोनों ने बाहुबल से उसे पाया है। जिस समय हम लोगों ने काश्मीर राज्य पर अधिकार किया था, उस समय किसीने नहीं कहा था कि यह राज्य तुमको नहीं मिलेगा। वह हमारा बाहुबल आज भी वर्तमान है।"

यह कहकर अनुचरों को साथ लेकर सुस्मल आगे

बढ़ा। सुस्मल ने अपने आने का वृत्तांत बताने के लिए दूतों को गर्गचंद्र के निकट भेजा। उस समय गर्गचंद्र सल्हण की हितचेष्टा के लिए उद्यत थे और वे हुष्क-पुर में रहते थे। दोनों ओर से दूत आने-जाने लगे। यद्यपि गर्गचंद्र शांति के पक्षपाती थे तथापि दूतों ने सुस्मल के निकट उन्हें विपक्षी प्रमाणित कर दिया। दोनों ओर से प्रबल युद्ध होने लगा। अंत में सुस्मल को पुन: लौट जाना पड़ा। तदनंतर गर्गचंद्र ने किसी कारण से सुस्मल से संधि कर ली, तथापि सुस्मल ने काश्मीर राज्य की आशा नहीं छोड़ी। काश्मीर राज्य को हस्तगत करने का उपयुक्त समय ढूंढ़ने के लिए उन्होंने अपने सेनापति संज्ञापाल को नियुक्त किया।

सल्हण इस समय अपने राज्य में मनमाना व्य-वहार करते थे। पुराने कर्मचारियों के स्थान पर नए कर्मचारी नियुक्त करते थे। इस कारण राज्य में गड़बड़ी मची हुई थी। इसी समय सल्हण ने किलेदार लब्धक को पदच्युत कर दिया था। गर्गचंद्र ने कुछ स्मरण करके किलेदार लब्धक का पीछा किया। उसी समय सुस्मल का सेनापति संज्ञापाल चला आ रहा था। उसने लब्धक को आश्वासन दिया। लब्धक इस समय निराश्रय था। वह सुस्मल की शरण में गया। शत्रुसेना पर आक्रमण करके संज्ञापाल के चले जाने पर पुर-वासी और अनुचरों ने जाकर सुस्मल को उत्तेजित किया। सुस्मल ने भी काश्मीर में प्रवेश किया।

सुस्मल के आने की बात सुनकर सहेल ने सल्हण से कहा कि मैं सुस्मल से आपकी संधि करा दूंगा। यह कहकर वह सुस्मल के समीप चला गया। उस समय समस्त पुरवासी यही चाहते थे कि सुस्मल काश्मीर का राजा हो। गर्ग की पत्नी दो कन्याएं लेकर सुस्मल के समीप गई। सुस्मल ने बड़ी कन्या को स्वयं ब्याहा, और छोटी को अपने पुत्र को दिया।

तदनंतर संज्ञापाल ने जाकर भाई के साथ सल्हण को मिला दिया। सुस्मल राजसभा के द्वार पर आकर खड़े हुए। उसी समय किसीने आकर सुस्मल के सामने एक तख्ता फेंक दिया, परंतु उसके दूर गिरने के कारण सुस्मल की उससे कोई हानि नहीं हुई। शत्रुसेना को सामने खड़ा देखकर भी सुस्मल की सेना ने उनपर आक्रमण नहीं किया, क्योंकि वे गर्ग के आक्रमण से डरते थे। गर्ग ने यद्यपि सुस्मल को कन्या ब्याही थी तथापि उसपर किसीका विश्वास नहीं था।

उस समय संध्या हो रही थी। संज्ञापाल ने देखा कि सैनिक गर्ग के भय से आक्रमण नहीं कर रहे हैं। शत्रु सुरक्षित स्थान में बैठे हैं। यह सब देखकर वह द्वार तोड़कर भीतर घुसा, और शत्रुसेना के साथ लड़ने लगा। उसके साथ एक और वीर घुसा था। उसने बड़े परिश्रम और कष्ट सहकर द्वार खोल दिया। उसी ओर से राजा सुस्मल सेना के साथ घुस गए। दोनों पक्षों में घोर युद्ध होने लगा। अंत में काश्मीरराज सल्हण को सुस्मल ने कैद कर लिया।

सुस्मल के सिंहासन पर बैठ जाने पर काश्मीर में एक प्रकार से शांति हो गई। सुस्मल ने भ्रातृद्रोहियों का ढूंढ़-ढूंढ़कर विनाश कर दिया। सुस्मल ने आठ वर्ष काश्मीर का राज्य किया था। (राजतरंगिणी)

सुह्मदेश—सुह्मों का यह देश सुब्भभूमि में गंगातट पर स्थित था। इसे बाद में 'राढ़' कहा गया। रघु के प्रति सुह्मों ने आत्मसमर्पण किया था। यहां के तुंगधन्वा नामक राजा ने संतान-प्राप्ति के लिए पार्वती की उपासना की थी। उस पुण्यात्मा राजा ने उपवास-पूर्वक गंगा में अपना प्राणोत्सर्ग किया था। सुह्मदेश की राजधानी ताम्रलिप्ति थी।

सूदन कवि—अपने 'सुजानचरित' की पुष्पिका में इन्होंने अपने संबंध में जो उल्लेख किया है, तदनुसार ये मथुरा-वासी माथुर चौबे थे। इनके पिता का नाम वसंत था। भरतपुरनरेश महाराज सुजानसिंह इनके आश्रय-दाता थे और उन्हींकी जीवनी पर इन्होंने अपने उक्त काव्यग्रंथ का प्रणयन किया। इस कृति में सुजानसिंह-संबंधी प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्य विद्य-मान हैं। हिंदी साहित्य में इस काव्य का अपनी वीर-भावना की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। रीतिकालीन कवियों में भूषण और सूदन ही एकमात्र ऐसे हुए जिन्होंने वीर रस की रचनाओं का सृजन किया। सूदन के इस काव्य का ऐतिहासिक और साहित्यिक, दोनों दृष्टियों से अपना विशिष्ट स्थान है (हिंदी साहित्य कोश, भाग-२)।

सूरत मिश्र—ये हिंदी भाषा के कवि थे और आगरा के रहने वाले थे। सं० १७६६ वि० में ये वर्तमान थे। इन्होंने बिहारीसतसई की एक सुंदर टीका लिखी है। इसके अतिरिक्त 'सरस रस', 'नखशिख', 'रसिकप्रिया की टीका' और 'अलंकारमाला' नाम की चार पुस्तकें और भी इन्होंने लिखी हैं।

सूरतसिंह—बीकानेर के एक राजा का नाम। ये गजसिंह

के पांचवें पुत्र थे। इन्होंने अपनी माता की सहायता से अपने बड़े भाई बीकानेर के राजा राजसिंह को मारकर बीकानेर का राज्य पाया था। इकतालीस वर्ष तक राज्य करके गजसिंह के परलोकवास करने के उपरांत सन् १७८७ ई० में राजसिंह बीकानेर के राजा हुए। परंतु सूरतसिंह की माता ने अपने हाथ से विष देकर राजसिंह को मार डाला।

महाराज राजसिंह के प्रतापसिंह और जयसिंह नामक दो पुत्र थे। यद्यपि सूरतसिंह की माता की इच्छा थी कि राजसिंह को मारकर अपने पुत्र को राजा बनाऊंगी, तथापि बुद्धिमान सूरतसिंह ने इस काम को तब करना आपत्तिरहित नहीं समझा। अतएव बीकानेर के सामंत तथा कर्मचारियों को अपने वश में रखने की इच्छा से सूरतसिंह ने राजसिंह के पुत्र को राजा बनाया और स्वयं राजप्रतिनिधि होकर काम करने लगे। अट्ठारह वर्ष तक इन्होंने बड़ी चतुरता और सावधानी से राज्य किया और साथ ही साथ सामंत तथा मंत्रियों को उपहार आदि से संतुष्ट करके अपनी ओर मिला लिया। इस प्रकार अपनी अभिलाषा पूर्ण होने की आशा से वे कपटजाल का विस्तार करते थे। परंतु अट्ठारह वर्ष तक उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट नहीं की। अट्ठारह वर्ष बीत जाने के अनंतर अपने विशेष अनुगत महाजन और भादरों के दोनों सामंतों से सूरतसिंह ने अपना अभिप्राय प्रकट किया। वे दोनों सामंत सूरतसिंह के विशेष अनुगत थे, इसमें संदेह नहीं। तथापि वे इनके प्रस्ताव को सुनकर विचलित हो गए। परंतु चतुर सूरतसिंह ने उन्हें समझाकर ठीक कर लिया। यद्यपि महाजन और राजद्रोही दोनों सामंतों ने सूरतसिंह के अभिप्राय पूर्ण करने में सहमति और सहायता देने की प्रतिज्ञा की, तथापि उनका वह षड्यंत्र गुप्त नहीं रह सका। राजमंत्री बख्तावरसिंह को इस गुप्त षड्यंत्र का समाचार विदित हो गया। उन्होंने राजा के प्राण बचाने के लिए संकल्प किया। परंतु सूरतसिंह के कुचक्र के दृढ़ हो जाने पर बख्तावरसिंह को उसका संवाद मिला अतएव वे उस कुचक्री दल को छिन्न-भिन्न नहीं कर सके और उनको इसका विपरीत फल भी भोगना पड़ा था। सूरतसिंह ने बख्तावरसिंह को अपना प्रधान शत्रु समझा और उन्हें कैद कर लिया। तदनंतर बटिंटा आदि देशों से उन्होंने सेना संग्रह कर ली। वे जानते थे कि बिना बल प्रयोग किए राज्य प्राप्त करना हमारे लिए कठिन है। इस कारण वे बड़ी सावधानी और शीघ्रता से काम करते थे। उधर बालक महाराज की भी गुप्त रूप से, सावधानी के साथ, रक्षा होने लगी। इसी समय सूरतसिंह ने सामंतों के नाम एक आज्ञापत्र प्रचारित किया। परंतु भादरों के दो सामंतों के अतिरिक्त और किसी भी सामंत ने उस आज्ञा का पालन नहीं किया।

इस घटना से अपने अभीष्ट में हानि होने की संभावना देखकर सूरतसिंह ने सामंतों को दमन करने का विचार निश्चित किया। सबसे पहले उन्होंने नौहर नामक स्थान में जाकर भूकरका देश के सामंतों को छल-बल सहित अपने सम्मुख बुलाया और उन्हें नौहर के किले में कैद कर लिया। सांखू के सामंत दुर्जनसिंह ने पहले तो बड़ी वीरता से अपनी रक्षा की, परंतु अंत में अपने प्रयत्न को सफल होते न देखकर उन्होंने आत्महत्या कर ली। तदनंतर सूरतसिंह ने दुर्जनसिंह के लड़के को हाथ-पैर बांधकर कैद कर लिया और वहां के सरदारों से दंड में १२ हजार रुपये लिए। तदनंतर बीकानेर के प्रधान वाणिज्य स्थान चूरू पर सूरतसिंह ने आक्रमण किया। सूरतसिंह छः महीने तक उस स्थान को घेरे रहे। परंतु उनकी अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई। परंतु एक दूसरे उपाय से उनकी अभिलाषा पूर्ण हुई। बंदी सामंतों ने सूरतसिंह को गद्दी पर बैठाना निश्चित कर लिया और उन लोगों ने इसका प्रस्ताव भी सूरतसिंह से किया। इस प्रस्ताव पर सूरतसिंह सहमत हो गए और उन्होंने सामंतों को छोड़ भी दिया। तदनंतर चूरू से दो लाख रुपये लेकर वे चले आए।

इस प्रकार सूरतसिंह बीकानेर लौट आए। यहां आकर बालक महाराज के नाश का उपाय ढूंढ़ने लगे। परंतु इस कार्य को करने के लिए उन्हें बड़ी बाधाओं का सामना करना पड़ा। यद्यपि सूरतसिंह की बुद्धि राक्षसी थी, तथापि उसकी भगिनी राजा के प्राणों की रक्षा करने के लिए व्याकुल थी। एक क्षण भी वह बालक राजा से अलग नहीं होती थी। सूरतसिंह ने इसके लिए भी उपाय सोच लिया। उन्होंने अपनी भगिनी का शीघ्र ही विवाह कर देना निश्चित किया। तदनुसार उन्होंने नरवर के राजा के साथ अपनी बहन का ब्याह कर ही दिया। अब सूरतसिंह अपनी अभिलाषा पूरी करने के लिए समर्थ हो गए। पहले तो उन्होंने महाजन के सामंतों को राजहत्या का काम

सौंपा, परंतु उन सामंतों को इस काम में असमर्थ देखकर उन्होंने स्वयं ही अपने भतीजे राजा का नाश कर दिया। तदनंतर सूरतसिंह बीकानेर के राजा हुए। परंतु इनका राज्य निष्कंटक नहीं हो सका। कभी भाटियों के साथ लड़ाई है तो कभी सामंतों के साथ मनमुटाव। इसी प्रकार लड़ते-झगड़ते इनका समय बीता।

सूरतसिंह ने मारवाड़ के महाराज मानसिंह के विरुद्ध धौंकलसिंह को युद्ध करने में सहायता दी थी। इस कारण मानसिंह ने बीकानेर पर चढ़ाई की। उस समय सूरतसिंह बहुत भयभीत हुए। उन्होंने अंग्रेजी सरकार से संधि करनी चाही, परंतु अंग्रेजों ने ऐसा करना स्वीकार न किया।

पुनः सूरतसिंह ने खाली खजाने को पूर्ण करने के लिए प्रजापीडन तथा लूट-खसोट करना आरंभ कर दिया। नये कर बैठाए जाने लगे। परंतु कोई भी सूरतसिंह के विरुद्ध खड़ा नहीं हुआ।

इस प्रकार सूरतसिंह का अत्याचार बढ़ता गया। सहने की भी सीमा होती है। उतना ही अत्याचार सहा जा सकता है जो सहने लायक हो। सामंतों ने भी उसी समय विद्रोहाचरण कर दिया।

इसी समय अंग्रेजी सरकार राजपूताने के राजाओं से संधि कर रही थी। बीकानेर के महाराज ने भी बड़ी प्रसन्नता से संधि की। इस संधि का बीकानेर के उत्तेजित सामंतों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। बीकानेर में सरकार की सहायता से शांति स्थापित हो गई। सन् १८२४ ई० में इनका शरीरत्याग हुआ।

(टाड्स राजस्थान)

सूरदास—इनकी गणना अष्टछाप अर्थात् ब्रज के आठ कवियों में है। उन आठ कवियों के नाम ये थे—सूरदास, कुम्भनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास। इनमें से प्रथम चार महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के और अंतिम चार श्रीस्वामी विट्ठलनाथजी के सेवक थे। ब्रज भाषा के ये आठों कवि बड़े प्रसिद्ध हो गए हैं, और इन लोगों ने श्रीकृष्णचंद्र का यशकीर्तन किया है। सूरदास कृत 'सूरसागर' नामक ग्रंथ वेंकटेश्वर प्रेस बंबई से प्रकाशित हुआ। उसका संपादन बाबू राधाकृष्णदास ने किया। उसकी भूमिका में उन्होंने सूरदासजी की जीवनी भी लिखी है। उसीकी सहायता से सूरदास की जीवन-घटनाओं की कुछ पंक्तियां लिखी जाती हैं—सूरदासजी का जन्म अनुमान से सं० १५४० वि० (सन् १४८३ ई०) में हुआ था। उनकी मृत्यु सं० १६२० वि० में होनी बतलाई जाती है। इनकी मृत्यु का समय केवल अनुमान पर ही निर्भर है। क्योंकि उन्होंने ६७ वर्ष की अवस्था में 'सूरसारावली' लिखी थी। इससे ८० वर्ष की अवस्था तक उनके जीवित रहने का अनुमान किया जा सकता है। बाबू राधाकृष्णदास ने लिखा है—मुझे उनकी अवस्था का लगभग ८० वर्ष के होने का पक्का प्रमाण मिला है। परंतु उन्होंने उस पक्के प्रमाण का उल्लेख कहीं नहीं किया। सूरदासजी के जन्म के विषय में 'सूरसारावली' का एक पद्य दिया जा सकता है—

गुरूप्रसाद होत यह दरशन, सरसठ वर्ष प्रवीन।
शिव विधान तप करेउ बहुत दिन, तऊ पार नहिं लीन॥

'सूरसारावली' सूरसागर की एक प्रकार की सूची कही जा सकती है और सूरसागर के लिखने के थोड़े ही दिनों के बाद यह लिखी गई है, क्योंकि ग्रंथ की सूची ग्रंथ समाप्त होते ही लिखी जाती है। सूरदासजी ने 'साहित्यलहरी' नाम की एक और पुस्तक लिखी है, उसमें 'सूरसागर' के कूट पदों का संग्रह है। यह भी 'सूरसागर' के लिखने के कुछ ही दिनों बाद की लिखी मालूम होती है। उसमें सूरदासजी ने संवत् यों लिखा है—

मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरीनन्द को लिखी सुबल संवत पेख॥
नन्दनन्दन मास छै ते हीन तृतीया बार।
नन्दनन्दन जनम ते हैं बाण सुख आगार॥
तृतीय ऋक्ष सुकर्म योग विचारि सूर नवीन।
नन्दनन्दनदास हित साहित्यलहरी कीन॥

इससे यह विदित होता है कि संवत् १६०७ वि० में 'साहित्यलहरी' लिखी गई। अतः इस ग्रंथ के लिखने के समय सूरदासजी की अवस्था ६७ वर्ष की थी। परंतु इस हिसाब में यह मान लेना पड़ेगा कि 'सूरसारावली' और 'साहित्यलहरी' दोनों एक ही समय में लिखी गई हैं। परंतु इसमें कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है। संभव है, ये दोनों ग्रंथ बहुत आगे-पीछे के बने हुए हों। परंतु इतना निश्चय अवश्य है कि ये दोनों ग्रंथ सूरसागर के पश्चात् लिखे हैं, क्योंकि एक तो उसकी सूची है और दूसरी बहुत करके उसका संग्रह है। यह भी जान पड़ता है कि सूरदासजी ने सूरसागर वृद्ध अवस्था में समाप्त किया होगा, क्योंकि वे एक लाख पद लिख चुकने पर 'सूर-

सरावली' लिखने लगे थे और वह सब पद सूरसागर में ही सन्निविष्ट थे, क्योंकि इन तीन ग्रंथों के सिवाय इनका कोई चौथा ग्रंथ दिखाई नहीं पड़ता है। तब वृद्ध अवस्था में सूरसागर लिखकर ये महाशय बहुत दिनों तक तो जीवित रहे ही न होंगे। अतः सूर-सारावली और साहित्यलहरी के समयों में चाहे जितना भी अंतर क्यों न हो, वह संभवतः दस वर्ष से अधिक न होगा। अतः सं० १५४० वि० के दो-चार वर्ष इधर-उधर इनका जन्म समय अवश्य होगा।

सूरदासजी लिखते हैं कि इनके गुरु महाप्रभु श्री-वल्लभाचार्य थे। गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने सूरदास-जी को अष्टछाप कवियों में रखा। यथा—

श्रीवल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो, लीलाभेद बतायो।
तदपि गोसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप।

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने लिखा है—आचार्यजी का जन्म और मरणकाल सं० १५३५ और १५८७ वि० और गोसाईं जी का सं० १५७२ और १६४२ वि० था। जब सूरदासजी आचार्य के शिष्य थे तब निश्चित है कि वे अवस्था में भी उनसे छोटे होंगे, अतः सूरदास जी का जन्म सं० १५३५ वि० के पीछे का होगा। उनका मरणकाल भी सं० १५७१ वि० से बहुत पीछे का होगा। क्योंकि उस संवत् में जन्म लेकर गोस्वामीजी ने बहुत दिनों में प्रतिष्ठा प्राप्त की होगी और तब अपने चार शिष्यों के साथ सूरदास को अष्टछाप में लिया होगा। अतः इस हिसाब से भी सूरदासजी का जन्म-मरणकाल यथा-क्रम सं० १५४० और १६२० वि० के लगभग ठह-रता है।

गोस्वामी विट्ठलनाथजी के पुत्र गोकुलनाथजी ने 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' नाम की एक पुस्तक लिखी है। भक्तमाल में भी बहुत भक्तों की जीवनी लिखी गई है। इन दोनों पुस्तकों में सूरदासजी का वृत्तांत लिखा है, परंतु वह कई कारणों से असंपूर्ण है। सूरदासजी की वंश-विषयक गड़बड़ी उसमें भारी दोष है। सरदार कवि कृत 'सूरदास के दृष्टकूट' नामक ग्रंथ से विदित होता है कि इनका पूर्व-पुरुष जगात वंश वाला ब्रह्मराव नामक भद्र पुरुष था। इन्हींके वंश में पृथ्वीराज के राजकवि चंद्र उत्पन्न हुए, जिनको पृथ्वीराज ने ज्वाला देश दिया। उनके चार पुत्र हुए, जिनमें प्रथम राजा हुआ। उसके द्वितीय पुत्र का नाम गुणचंद था। उसका पुत्र शीलचंद और शीलचंद का पुत्र वीरचंद हुआ। वीरचंद रणथंभोर के राजा हम्मीरदेव का मित्र था। उसके वंश में हरिचंद बड़ा विख्यात हुआ। उसका पुत्र आगरा में रहा, जिसके सात पुत्र हुए। उनके नाम कृतचंद, उदारचंद, रूपचंद, बुद्धिचंद, देवचंद, प्रबोधचंद और सूरजचंद थे। सातवां पुत्र सूरजचंद ही विख्यात कवि सूरदास था। इनके सब भाई शाह से युद्ध करके परम-गति को सिधारे। सूरजचंद अंधा था, अतः वह एक कुएं में जा पड़ा और छः दिन तक वहीं पड़ा रहा। छः दिन तक जब किसीने पुकार नहीं सुनी तब सातवें दिन स्वयं आकर यदुपति ने उसे बचाया।

परो कूप पुकार काहू सुनी ना संसार।
सातवें दिन आय यदुपति कियो आपु उधार॥
दिव्य चख दैं कही सिसु सुनु जोग वर जो चाइ।
हौं कही प्रभु भगति चाहत सत्रु नास स्वभाइ॥
दूसरो ना रूप देखौं देखि राधा श्याम।
सुनत करुणासिन्धु भाखी एवमस्तु सुधाम॥
प्रबल दच्छिन विप्र कुल तें शत्रु ह्वै हैं नास।
अखिल बुद्धि विचार विद्या मान मानै मास॥

इससे सूरदासजी का भाट होना प्रमाणित होता है। क्योंकि एक तो जगात कोई ब्राह्मण नहीं हैं और भाट को 'जगातिया' कहते भी हैं। दूसरे पृथ्वीराज के चंद भाट ही थे, यह बात निश्चित है। ऊपर के पद्य में शत्रु से मुसलमानों का अभिप्राय है। क्योंकि मुसलमानों से ही लड़कर सूरदास के सब भाई मारे गए थे। वरदान यह हुआ कि दक्षिण के पेशवा राजा शत्रुओं का नाश करेंगे। उस समय तक मरहठों का कुछ भी बल नहीं था। और तो और, क्षत्रिय राजा शिवा-जी तब तक उत्पन्न भी नहीं हुए थे। अतः उस समय यह अनुमान करना कि पेशवा राजा द्वारा शत्रुओं का नाश होगा, असंभव था। इसीसे यह भी मानना पड़ेगा कि उक्त छंद सूरदास का नहीं है, पीछे से बाला जी बाजीराव पेशवा के समय किसी भाट ने लिखा होगा। श्रीगोकुलनाथजी ने अपने 'चौरासीचरित्र' में और मियांसिंह ने भक्तविनोद में सूरदास को ब्राह्मण लिखा है। ये गोकुलनाथजी गोस्वामी बिट्ठलनाथजी के पुत्र थे। और गोस्वामीजी सूरदासजी के मरने के समय ४८ वर्ष के थे। अतः समझ आता है कि गोकुलनाथ जी भी उस समय २०-२५ वर्ष के होंगे। फिर गोस्वामी जी और सूरदासजी में घनिष्ठ प्रेम था। अतः यह बात असंभव है कि गोस्वामीजी अथवा उनके पुत्र सूरदासजी का कुल तक न जानते हों। पूर्वोक्त दोनों ग्रंथों में शत्रु-नाश वाले वरदान का भी कोई

उल्लेख नहीं है किंतु केवल कुएं में गिरने का वहां उल्लेख है ।

इससे यह सिद्ध होता है कि चौरासी वार्ता और भक्तमाल के अनुसार, सूरदासजी सारस्वत ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम रामदास था। इनका जन्म दिल्ली के पास सीही ग्रामनिवासी दरिद्र माता-पिता के यहां हुआ था। अब प्रश्न यह है कि सूरदासजी जन्मांध थे या नहीं, इस विषय में भक्तमाल के अतिरिक्त और कोई प्रमाण नहीं मिलता। परंतु रीवां-नरेश महाराज रघुराजसिंह कृत रामरसिकावली में भक्तमाल के आधार पर लिखा है—'जनम ही ते है नैनविहीना' चौरासी वार्ता में इनके जन्मांध होने का वर्णन नहीं है। एक किंवदंती है कि जब सूरदास अंधे न थे तब वे एक युवती को देखकर उसपर आसक्त हो गए और यह दोष नेत्रों का जान सूइयों से अपनी दोनों आंखें फोड़ डालीं। यह किंवदंती असत्य नहीं कही जा सकती। संभव है कि इस किंवदंती के साथ स्त्री से संबंध होने के कारण यह घटना चौरासी वार्ता में न लिखी गई हो।

भक्तमाल में लिखा है कि सूरदास के माता-पिता ने आठ वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत किया था। कुछ काल में इनके माता-पिता मथुरा-दर्शन को गए। उस समय सूरदास भी उनके साथ थे। जब वे घर लौटने लगे तब सूरदास ने उनसे विनती की कि अब मुझे यहीं रहने दो। इसपर इनके माता-पिता रोने लगे और बोले कि तुम्हें अकेले किसके सहारे छोड़ जाएं। तब सूर ने कहा कि क्या कृष्णचंद्र का सहारा कम है। इसपर एक साधु ने कहा कि मैं इस बालक को अपने साथ रखूंगा। तब सूर के माता-पिता रोते-कलपते घर चले गए और सूर ब्रज में ही रहे। अंधा होने के कारण सूरदास एक बार कुएं में गिर पड़े। छः दिन तक तो इन्हें किसीने नहीं निकाला, सातवें दिन किसीने निकाला। सूर ने समझा, स्वयं कृष्ण भगवान् ने निकाला है। अतः उन्होंने निकालने वाले की बांह पकड ली, पर वह बांह छुड़ाकर भाग गया। इसपर उन्होंने यह दोहा पढ़ा—

बांह छुड़ाये जात हौ, निबल जानिकै मोंहि ।
हिरदै से जब जाइ हौ, मर्द बदौंगो तोहि ।।

इस घटना के उपरांत गऊघाट नामक स्थान पर, जो आगरा और मथुरा के बीच में है, रहते रहे। वहीं ये महाराज वल्लभाचार्य महाप्रभु के शिष्य हुए और उन्हींके साथ गोकुल में श्रीनाथजी के मंदिर में गए तथा बहुत काल पर्यंत वहीं रहे। इसी स्थान पर इनसे गोस्वामी बिट्ठलनाथजी से बहुधा मुलाकात हुआ करती थी और गोस्वामीजी इनके पद सुना करते थे।

यहीं रहते-रहते ये महाराज वृद्धावस्था को प्राप्त हुए और जब इन्होंने अपनी मृत्यु का समय निकट आया जान लिया, तब ये पारासोली को चले गए। जब गोस्वामीजी को यह संवाद मिला तब वे भी पारासोली पहुंचे। उसी समय किसीने सूरदासजी से पूछा कि क्या आपने अपने गुरुजी के लिए कोई छंद नहीं लिखा है। इसपर सूरदासजी ने कहा कि मैंने सभी छंद गुरुजी के लिए ही लिखे हैं क्योंकि श्रीकृष्णचंद्र और गुरुजी में मैं कोई भेद नहीं देखता, तथापि उन्होंने एक छंद भी कहा—

भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो ।
श्रीवल्लभ नखचंद छटा बिनु सब जग मांझ अँधेरो ।।
साधन और नहीं हो कलि में जासों होत निबेरो ।
सूर कहा कहि दुबिध आंधरो बिना मोल को चेरो ।।

इस प्रकार सूरदासजी ने गुरु की स्तुति करके अंत में एक श्रीराधाकृष्ण की स्तुति का एक छंद और पढ़ा। तदनंतर बिट्ठलनाथजी से कुछ कथोपकथन करने के अनंतर इन्होंने शरीरत्याग किया।

(हिंदी नवरत्न)

सूर्य—प्रजापति ऋषि कश्यप के पुत्र। अदिति के गर्भ से इनका जन्म हुआ था। विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा को इन्होंने ब्याहा था। संज्ञा के गर्भ से वैवस्वत मनु और यम नामक दो पुत्र और यमुना नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई थी। इनकी दूसरी पत्नी का नाम छाया था। छाया के गर्भ से शनि नाम का पुत्र और तपती नाम की कन्या उत्पन्न हुए थे। कपिराज सुग्रीव और वीरवर कर्ण इन्हींके औरस से उत्पन्न हुए थे। पक्षि-राज गरुड के बड़े भाई अरुण इनके सारथि हैं।

सूर्यमल—ये बूंदी के राजा नारायणदास के पुत्र थे। नारायणदास के स्वर्गवास होने पर सन् १५३० ई० में सूर्यमल बूंदी के सिंहासन पर विराजमान हुए। सूर्यमल बलिष्ठ और असीम साहसी थे। सूर्यमल के सिंहासनारूढ़ होते ही मेवाड़ के राणा और बूंदी के राजा परस्पर वैवाहिक संबंध में बंध गए। राव सूर्यमल ने अपनी सूजाबाई नाम की बहन को राणा से ब्याह दिया और राणा रत्नसिंह ने अपनी

बहन को सूर्यमल से ब्याह दिया। परंतु दुःख की बात है कि इस संबंध का फल दोनों राजवंशों के लिए बड़ा भयानक हुआ। कवि लिखते हैं कि राव सूर्यमल अपने पिता नारायणदास के समान नामी अफीमची थे। एक समय राव सूर्यमल चित्तौड़ में जाकर अफीम की पिनक में आंख बंद किए बैठे थे। मेवाड़ के पूर्वदेश के एक सामंत ने सूर्यमल को सोया हुआ जानकर एक तिनके से उनके कान खोद दिए। सूर्यमल ने आंख खोलकर उस सामंत को देखा। शीघ्र ही तलवार से उन्होंने उसके दो टुकड़े कर डाले। उस सामंत के पुत्र के हृदय में तत्क्षण बदला लेने का भाव उठा, परंतु वहां समय न रहने के कारण कुछ भी नहीं कर सका। तदनंतर वह सामंतपुत्र महाराणा के हृदय में सूर्यमल के प्रति विजातीय द्वेष उत्पन्न करने लगा। आगे की घटना से सामंतपुत्र की इच्छा पूरी हुई।

सुंदरी सूजाबाई ने अपने स्वामी और भ्राता को अपने यहां भोजन कराने के लिए निमंत्रित किया। दोनों के भोजन कर लेने पर सूजाबाई ने कहा—हमारे भाई ने सिंह के समान भोजन किया है, और स्वामी ने मानो बालकों के समान अन्न और व्यंजन से खेल किया है। इस वचन को सुनते ही राणा के क्रोध का ठिकाना न रहा। उन्होंने समझा कि हमारे अपमान के लिए सूजाबाई ने ऐसा किया है। परंतु अतिथि के प्रति राजपूतधर्म का विचार करके राणा उस समय चुप रहे। परंतु इसीका फल हुआ कि पीछे राणा और सूर्यमल दोनों मारे गए।

(टाड्स राजस्थान)

सृञ्जय—महाराज शिवत्य के पुत्र का नाम। महर्षि पर्वत और देवर्षि नारद के साथ उनकी मित्रता थी। एक दिन दोनों मुनि राजा सृञ्जय के यहां उपस्थित हुए। राजा सृञ्जय की एक अविवाहिता कन्या उनके सामने आकर खड़ी हुई। नारद की प्रार्थना से राजा ने उस सुंदर कन्या को नारद को दे दिया। महर्षि पर्वत भी उस कन्या को चाहते थे, अतः पर्वत ने नारद को शाप दिया और नारद ने पर्वत को। दोनों के शाप का यह फल हुआ कि एक को छोड़कर दूसरा स्वर्ग को नहीं जा सकता है। सृञ्जय की प्रतिज्ञा के अनुसार कन्या नारद को सौंपी गई।

राजा सृञ्जय की रानी का बहुत दिनों तक कोई पुत्र नहीं हुआ। नारद के वर से सृञ्जय की रानी का एक सुवर्णष्ठीवी नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। यह पुत्र असाधारण तेजःसंपन्न था। इसका मूत्र, थूक आदि सभी सुवर्णमय होता था। एक बार सुवर्ण के लोभ से चोर राजभवन में घुसे और राजकुमार सुवर्णष्ठीवी को उठाकर ले गए। वन में ले जाकर उन लोगों ने राजकुमार को टुकड़े-टुकड़े कर डाला। परंतु उन लोगों को लाभ कुछ भी नहीं हुआ। इससे क्रुद्ध होकर वे आपस में मर-कट करके मर गए। देवर्षि नारद ने राजा सृञ्जय को बहुत समझाया तथापि उन्हें किसी प्रकार की शांति नहीं हुई। अंत में, नारद ने राजकुमार को जीवित कर दिया। (महाभारत)

सेकाः—उस देश का नाम जो चम्बल से दक्षिण और उज्जैन से उत्तर की ओर है।

सेतराम—ये कन्नौज के अंतिम राजा जयचंद के पौत्र थे। अपने भाई सियाजी के साथ भाग्य की परीक्षा करने के लिए मारवाड़ की भूमि में गए थे। वहां लाखा फूलाणी के साथ युद्ध में ये उसीके हाथ मारे गए।

(टाड्स राजस्थान)

सेनापति कवि—ये वृंदावन के रहने वाले थे और इनका जन्म सं० १६८० वि० में हुआ था। इन्होंने तीर्थ-संन्यास लेकर अपनी समस्त अवस्था वहीं व्यतीत की थी। ये उस समय के महान् कवियों में से थे। 'काव्य-कल्पद्रुम' नामक ग्रंथ इन्होंने बड़ा ही सुंदर लिखा है। इनके लिखे कवित्त हजारा में पाए जाते हैं।

सेवक कवि—ये हिंदी भाषा के कवि बनारस के रहने वाले थे। ये काशीनरेश के भाई बाबू देवकीनंदन जी के साथ रहते थे। शृंगाररस संबंधी इनके काव्य बहुत सुंदर हैं। शिवसिंह जी के समय में ये कवि जीवित थे।

सोम—चंद्रमा का नामांतर। यह मेरु पर्वत के उत्तर में स्थित निमारी नगरी का स्वामी था। स्वायम्भुव मन्वंतर के प्रजापति अत्रि ऋषि इसके पिता थे। दक्ष प्रजापति की सत्ताईस कन्याएं इसकी पत्नियां थीं। सप्तर्षियों द्वारा पृथ्वीदोहन के समय यह बछड़ा बना था।

सोमक साहदेव्य—सहदेव का वंशज होने के कारण इसका पैतृक नाम 'साहदेव्य' और संजयों का वंशज तथा राजा होने के कारण 'साञ्जय' नाम पड़ा। पर्वत और नारद इसके पुरोहित थे। पुराणों में इसे पांचाल देश का राजा कहा गया है और इसके पिता का नाम सहदेव बताया गया है। इसने अपने पुत्र का नरमेध किया था। इसकी सौ पत्नियां तथा एकमात्र पुत्र था, जिस-

का नाम जंतु या जन्हु था। एक बार इसे चींटी ने काट डाला, जिससे सभी रानियां दुःख-संतप्त हो गईं। इसलिए इसने अनुभव किया कि एकमात्र पुत्र दुःख-मूलक होता है। अधिक पुत्रों की प्राप्ति के उद्देश्य से इसने अपने इकलौते पुत्र की बलि देकर नरमेध किया, जिसके फलस्वरूप इसे सौ पुत्रों की प्राप्ति हुई। मृत्यु के पश्चात् इसको स्वर्ग प्राप्त हुआ, किंतु नरमेध की सलाह देने वाले इसके पुरोहित को नरक प्राप्त हुआ। इसने स्वर्ग की अपेक्षा अपने पुरोहित के साथ नरक में जाना ही स्वीकार किया। इसकी इस पुरोहित-निष्ठा से प्रसन्न होकर यज्ञधर्म ने दोनों को स्वर्ग भेज दिया। (महाभारत)

सोमदत्त—कौरवपक्षीय एक वीर योधा। भारत युद्ध के १४वें दिन ये सात्यकि के हाथों मारे गए। देवकराज की कन्या देवकी के स्वयंवर के समय जब यदुवंशी वीर शिनि वसुदेव के ब्याह के निमित्त देवकी का हरण किया था, उस समय सोमदत्त ने उनका विरोध किया था। सबके सामने शिनि ने सोमदत्त को लात से मारा था। दोनों में खूब युद्ध हुआ। शिनि देवकी को लेकर चले गए। इनके पुत्र का नाम भूरिश्रवा था।

सोमनाथ—इनका दूसरा नाम शशिनाथ था। छिरोरा के माथुर ब्राह्मण वंश में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम नीलकंठ मिश्र और अग्रज का नाम गंगाधर मिश्र था। ये जयपुरनरेश महाराज रामसिंह के राजगुरु बताए जाते हैं। इनके कविताकाल के आधार पर इनका स्थितिकाल १७३३-१८५३ ई० निश्चित है। ये भरतपुरनरेश बदनसिंह के छोटे पुत्र प्रतापसिंह के आश्रय में रहे। उन्हींके आग्रह पर इन्होंने 'रसपीयूषनिधि' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ का प्रणयन किया। इस बृहत् ग्रंथ में इन्होंने काव्य के समस्त पक्षों का विस्तृत निरूपण किया है। इनके अन्य ग्रंथों के नाम हैं—'श्रृंगारविलास', 'कृष्णलीला पंचाध्यायी', 'सुजानविलास' और 'माधवविनोद नाटक'। दो अंतिम कृतियों के द्वारा सोमनाथ का हिंदी प्रबंध रचनाकार की दृष्टि से हिंदी में अपना अनन्य स्थान रखता है। इस प्रकार रीतिकालीन काव्यशास्त्रियों और कवियों में मतिराम तथा देव की भांति इनका विशिष्ट स्थान है। इनकी कविता में मतिराम की सरसता और भूषण की ओजस्विता निहित है (हिंदी साहित्य कोश, भाग-२)।

सौदास—इनका दूसरा नाम कल्मषपाद था। (देखो कल्मषपाद)

सौभरि—तपोबलसंपन्न ऋषि। संसारी होने की इनकी वासना हुई। अतः तपोबल से सुंदर मूर्ति धारण करके मान्धाता की कन्याओं को ब्याहकर ये अपने तपोवन में लौट आए। उन स्त्रियों के साथ बहुत दिनों तक इन्होंने गृहस्थ धर्म का पालन किया था। उन स्त्रियों के गर्भ से सौभरि के बहुत पुत्र उत्पन्न हुए थे। तदनंतर विषय त्यागकर मुनि पुनः तपस्या में लीन हुए।

सौर—एक धार्मिक संप्रदाय का नाम। इस संप्रदाय के लोग सूर्य की उपासना करते हैं। भारत में सूर्य की उपासना प्रत्येक हिंदू किसी न किसी प्रकार करता है। अतः इस समय इस संप्रदाय की स्वतंत्र सत्ता नहीं है। सूर्यदेव को जगत्पति मानकर उनकी पूजा की पद्धति भारत में बहुत दिनों से प्रचलित है। वेदों में सूर्य, आदित्य, अर्यमा, सूर आदि नामों से इनकी पूजा हुई है। शंकराचार्य के समय में सौर संप्रदाय के लोगों का (जो विभिन्न शाखाओं में विभक्त थे) उल्लेख शंकरदिग्विजय नामक ग्रंथ में पाया जाता है। उस समय सौर संप्रदाय में छः शाखाएं वर्तमान थीं। उनमें एक संप्रदाय के सौरगण प्रातः सूर्य की, 'ब्रह्मा' या सृष्टिकर्ता के नाम से उपासना करते थे। दूसरे संप्रदाय के सौर मध्याह्न सूर्य को 'ईश्वर' कहकर (अर्थात् ध्वंसकर्ता और पुनः-पुनः सृष्टिकर्ता के रूप में) उपासना करते थे। तीसरे संप्रदाय के सौरगण अस्तगामी सूर्य को 'रक्षाकर्ता' के रूप में मान, उनकी उपासना करते थे। चौथे संप्रदाय के सौरगण प्रातः, मध्याह्न और सायं तीनों काल के सूर्य को 'सृष्टि-स्थिति-लयकर्ता' समझकर उपासना करते थे। पांचवें संप्रदाय के सौरगण सूर्य की मूर्ति बनाकर उसकी पूजा में रत रहते थे। छठवें संप्रदाय के सौरगण सूर्य की मानसिक मूर्ति की कल्पना करके, उसकी मानसिक पूजा करते थे। इस छठी शाखा के सौरगण अपना मस्तक, दोनों बाहु तथा वक्षस्थल पर तप्त लौहयंत्र से गोलाकार अंकित कराते थे। आज षड्विध सौर संप्रदाय की कोई भी शाखा वर्तमान नहीं है। परंतु इस समय जो अपने को 'सौर' कहकर परिचित कराते हैं वे मस्तक पर रक्त चंदन का तिलक लगाते हैं और गले में स्फटिक की माला पहनते हैं। उनकी एक और भी विशेषता है—वे रविवार के दिन नमक नहीं खाते। वे संक्रांति के दिन व्रत करते हैं और

दूसरे दिन सूर्य का दर्शन करके भोजन करते हैं।
(भारतवर्षीय इतिहास)

सौवीर—एक प्राचीन राजा का नाम। ये एक बार कपिल मुनि के यहां ब्रह्मज्ञान का उपदेश प्राप्त करने के लिए जा रहे थे। मार्ग में इनका एक कहार बीमार पड़ा। अतः उसके स्थान पर सिपाहियों ने एक मोटा-ताजा आदमी लाकर लगा दिया। वह आदमी धीरे-धीरे चलने लगा, इससे राजा की पालकी बीच-बीच में डोलने लगी। राजा ने कहा—'बाधति स्कन्ध एष ते' अर्थात् तुम्हारा कंधा दर्द करता है। राजा के वाक्य में 'बाधति' प्रयोग अशुद्ध है। अतः उस ब्राह्मण ने कहा—'स्कन्धो न बाधते राजन् यथा बाधति बाधते' अर्थात्, राजा ! कंधे में वैसा दर्द नहीं है, जैसा कि तुम्हारे 'बाधति' ने दर्द उत्पन्न किया है। इससे राजा ने समझा कि ये कोई विद्वान् ब्राह्मण हैं। अतः राजा ने विनयपूर्वक उनका आदर किया तथा उनसे उपदेश लेकर प्रसन्न हुए। ये ब्राह्मण और कोई नहीं थे, किंतु प्रसिद्ध जडभरत थे। (विष्णुपुराण)

स्कन्द—देवों का सेनापति, जिसका जन्म शिव तथा पार्वती से हुआ था। इसे अग्निपुत्र भी कहा जाता है। षाण्मातुर, कार्तिकेय, विशाख, षण्मुख, सेनानी या देव-सेनापति, स्वाहेय और सनत्कुमार आदि इसके नामांतर थे। विभिन्न देवताओं से इसे अस्त्र प्राप्त हुए। विष्णु से गरुड आदि वाहन, वायु से पताका, सरस्वती से वीणा, ब्रह्मा से अज, शम्भु से मेंढक और जृम्भ दैत्य सज्जित होकर इसने अवतार धारण किया और सात दिन की अवस्था में ही तारकासुर, महिषासुर और बाणासुर आदि राक्षसों का बध किया। पार्वती के लाड-प्यार और विजय के उल्लास में यह इतना उद्दंड हो गया था कि देवस्त्रियों पर बलात्कार करने लगा। वे दुःखी होकर पार्वती के पास आईं। पार्वती ने उसे सन्मार्ग पर लाने के लिए सृष्टि की समस्त स्त्रियों में अपने रूप का आधान किया, जिससे कि समस्त स्त्रियों में स्कंद को पार्वती ही दिखाई देने लगी। तब उसने प्रतिज्ञा की कि समस्त स्त्रियां उसकी माता के समान हैं। ऐसी अनुश्रुति है कि स्त्रियों के प्रति इस निरतिशय विरक्ति के कारण स्त्रियों ने इसका दर्शन करना भी वर्जित कर दिया और यह माना जाने लगा कि इसकी प्रतिमा का दर्शन करने से स्त्रियों को सात जन्म तक वैधव्य प्राप्त होगा।

इसकी पत्नी का नाम देवसेना था, जिससे इसके शाख, विशाख और नैगमेय नामक तीन पुत्र हुए। कुछ पुराणों में ये तीनों स्कंद के पुत्र नहीं, अपितु भाई बताए गए हैं। इसके सेनापति-अभिषेक के समय देवताओं ने पार्षद एवं महापार्षद से इसे सम्मानित किया। स्कंद की सात माताओं को 'सप्तमातृका, कहा गया है, जिनके नाम हैं—काकी, हलिमा, माता, हली, आर्या, बाला और धातृ। भारतीय कला में इन सप्त मातृकाओं का व्यापक रूप से चित्रण एवं मूर्तन हुआ है। (महाभारत)

स्थानेश्वर—प्राचीन भारत के प्रमुख स्थानों में इसकी गणना की गई है। बाण के 'हर्षचरित' (तृतीय उच्छ्-वास)के अनुसार, यह श्रीकंठ जनपद की राजधानी थी। इसमें एक प्राचीन किला था। इसकी दूरी अम्बाला से दक्षिण की ओर ३० मील और पानीपत से उत्तर की ओर ४० मील है। कुरुक्षेत्र से यह दक्षिण दिशा में है।

स्वरूपसिंह—(१) उदयपुर के महाराणा। ये महाराणा सरदारसिंह के छोटे भाई थे। महाराणा सरदारसिंह ने अपुत्रावस्था में प्राणत्याग किया, परंतु मरने से पहले उन्होंने अपने छोटे भाई स्वरूपसिंह को अपना उत्तराधिकारी नियत किया। सन् १८४३ ई० में स्वरूपसिंह मेवाड़ के सिंहासन पर बिराजे। उस समय राज्य में एक प्रकार की अराजकता-सी फैली हुई थी, परंतु सुशासन से उस अराजकता को निर्मूल करने के बदले नये महाराणा ने कठोर रूप धारण किया। इसका फल बड़ा अनिष्टकर हुआ। महाराणा और सामंतों के बीच का मनोमालिन्य और भी बढ़ गया। उस समय अंग्रेजी सरकार के दूत ने दोनों पक्षों में संधि करा देना निश्चित किया। तदनुसार दोनों में एक संधिपत्र लिखा गया। परंतु इस संधिबंधन से राज्य की स्थिति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। इस विशृंखलता के कारण राज्य की आमदनी बहुत घट गई। अतः राणा ने गवर्नमेंट से नियत कर को घटा देने की प्रार्थना की। इस प्रार्थना से गवर्न-मेंट ने तीन लाख नियत कर को घटाकर दो लाख कर दिया।

यद्यपि मेवाड़ में शांति स्थापित करने के लिए अंग्रेजी राजदूत ने संधि करा दी तथापि उस सधि की किसी धारा का सामंतों ने पालन नहीं किया। उनका परस्पर का मनोमालिन्य और भी बढ़ गया।

यहां तक कि कईएक सामंत महाराणा के विरुद्ध युद्ध करने के लिए खड़े हो गए। इस भयानक अवस्था को दूर करने के लिए अंग्रेजी सरकार ने एक और संधि-पत्र लिखवाया, जिसमें महाराणा का अधिकार बिलकुल घटा दिया गया। सन् १८६१ ई० में इन नये महाराणा का स्वर्गवास हुआ। (टाड्स राजस्थान)

(२) बीकानेर के महाराज अनूपसिंह के ये पुत्र थे। अनूपसिंह का परलोकवास होने पर सन् १७०९ ई० में स्वरूपसिंह पिता के सिंहासन पर बैठे। परंतु इन्होंने बहुत दिनों तक राज्य नहीं किया। अनूपसिंह ने अपने जीवन की शेष दशा में बादशाह की सेना से संबंध त्याग दिया था। इसी कारण बादशाह ने ओड़नी देश, जो पहले अनूपसिंह को दिया था, लौटा लिया। स्वरूपसिंह ने अपनी सेना को साथ लेकर उस ओड़नी देश पर अधिकार करने के लिए धावा किया। इसी युद्ध में ये मारे भी गए। (टाड्स राजस्थान)

स्वामीनारायण—एक वैष्णव संप्रदाय। इस संप्रदाय की उत्पत्ति उन्नीसवीं सदी में हुई है। वल्लभाचारी संप्रदाय का संस्कार करके यह संप्रदाय उत्पन्न हुआ है। इस संप्रदाय के प्रवर्तक ने गोस्वामियों से विरुद्धाचरण करके अपना दल पुष्ट किया था। स्वामीनारायण संप्रदाय में जो शिष्य होता है उसे छः और आदमी उस संप्रदाय में शिष्य कराने पड़ते हैं। सुतरां इस संप्रदाय की दिनोंदिन उन्नति हुई। वैसे लखनऊ से १२० मील उत्तर-पूर्व की ओर चयाई नामक गांव में सन् १७८० ई० में स्वामीनारायण उत्पन्न हुए थे। इनका असली नाम सहजानंद था। ये ब्राह्मण थे। रामानंद स्वामी नामक गुरु के निकट इन्होंने जूनागढ़ में मंत्रदीक्षा ग्रहण की थी। अहमदाबाद से १२ मील दक्षिण की ओर बड़ताल में इनकी प्रधान गद्दी है। इस मत का प्रचार गुजरात में बहुत है। (भारतवर्षीय इतिहास)

स्वाहा—अग्निदेव की भार्या का नाम। वैदिक मंत्रों के साथ इनका नाम उच्चारण करके यज्ञ में किसी देवता के लिए हवि देने पर वह हवि उसी देवता को प्राप्त होती है।

ह

हंस—हिबक के भाई का नाम।

हंसध्वज—'जैमिनी अश्वमेध' पुराण के अनुसार, चंपक नगरी का एक विष्णुभक्त राजा, जिसके पांच पुत्रों के नाम थे—सुरथ, सुधन्वन्, सुदर्शन, सुबल और सम। विदूरथ, चंद्रकेतु और चंद्रसेन आदि इसके भाई थे। शंख और लिखित दोनों सहोदर इसके पुरोहित थे। युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ के समय इसने अर्जुन द्वारा संरक्षित यज्ञ अश्व पकड़ लिया था। इस कारण युद्ध करते हुए अर्जुन ने इसके सुधन्वन् तथा सुरथ नामक दो पुत्रों को मार डाला था। तदनंतर अर्जुन के साथ इसका घोर संग्राम हुआ। संग्राम में अर्जुन की मृत्यु हो जाने की आशंका से कृष्ण ने मध्यस्थता की और किसी प्रकार राजा हंसध्वज को शांत कर उसे अश्वरक्षण के लिए अर्जुन की सहायता करने के लिए राजी किया।

हनुमान्—रामचंद्र के परम भक्त कपिवीर। ये पवनदेव के औरस और अंजना के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। रामचंद्र और सुग्रीव की मित्रता इनके द्वारा ही हुई थी। सीता का अनुसंधान करने के लिए ये ही समुद्र पार करके सबसे पहले लंका गए थे। सीता से इन्होंने बातें कीं और उनसे चिह्न लेकर रावण के प्रमोदवन का नाश करने लगे। इस कारण इनका राक्षसों से युद्ध हुआ। बहुत राक्षस मारे गए। अंत में, मेघनाद ने इन्हें ब्रह्मपाश में बांध लिया। तदनंतर लंका को जलाकर ये राम के समीप लौट आए।

लंका के युद्ध में रावण ने जब लक्ष्मण को शक्ति मारी और लक्ष्मण मूर्च्छित हो गए तब हनुमान् संजीवन बूटी लाए थे। रामचंद्र के अयोध्या लौट आने की सूचना इन्होंने ही भरत को दी थी। ये रामचंद्र के बड़े भक्त थे। भीमसेन इनके छोटे भाई

थे। लंका के युद्ध में इन्होंने बड़ी वीरता दिखलाई थी।

हयग्रीव—अश्वमुखी होने के कारण इनका ऐसा नामकरण हुआ। इन्हें 'हयशिरस्' 'अश्वसिरस्' या भी कहा गया है। इन्हें विष्णु अवतार के रूप में शंख, चक्र, अक्षवलय और पुस्तक धारण करने वाला बताया गया है। वैदिक और पौराणिक साहित्य में इनकी कथाएं उल्लिखित हैं, जिनमें समानता है। इनकी वैदिक कथा में कहा गया है कि एक बार यक्ष ने अपने देव-शक्तिसंपन्न धनुष से समस्त देवताओं को पराजित कर दिया था। तब देवों ने एक दीमक से यक्ष के धनुष की प्रत्यंचा कटवा दी और तदनंतर निरस्त्र यक्ष का भी शिरच्छेद कर दिया। पश्चात्तापवश यक्ष ने देवताओं से क्षमा-याचना की और तब देवों ने यक्ष को एक अश्वमुख लगाकर पुनःस्थापित किया। पुराणों की कथाओं में कहा गया है कि हयग्रीव तथा मधुकैटभ असुरों का नाश करने के लिए विष्णु ने हयग्रीव अवतार धारण किया था। कथा में यह भी कहा गया है कि हयग्रीव को देवी का यह वरदान था कि उसका नाम धारण करने वाला व्यक्ति ही उसका वध कर सकेगा। इस कारण भी विष्णु ने हयग्रीव अवतार धारण किया।

(२) एक असुर, जो कि कश्यप तथा दिति का पुत्र था। पृथ्वीप्रलय के समय इसने वेदों का हरण किया था, जिसके कारण इसका वध करने के लिए विष्णु ने अवतार धारण किया।

हरहा—बाराबंकी जिले में स्थित इस स्थान पर मौखरि-वंशी ईशाननवर्मन् का एक अभिलेख प्राप्त हुआ था।

हरि कवि—ये हिंदी के महाकवि थे। इन्होंने 'भाषाभूषण', 'चमत्कारचंद्रिका' और 'कविप्रिया' की टीका तथा 'कविप्रियाभरण' नामक ग्रंथ विस्तारपूर्वक लिखे हैं। इन्होंने 'अमरकोष' का हिंदी में अनुवाद किया है।

हरिचन्द कवि—ये बरसाने के रहनेवाले थे और हिंदी के कवि थे। इन्होंने छंदों में पिंगल ग्रंथ लिखा है। परंतु इनका समय नहीं बताया जा सकता, क्योंकि इन्होंने अपनी पुस्तक में सन्-संवत् कुछ भी नहीं लिखा है।

हरिचरणदास—ये हिंदी के कवि थे। इन्होंने हिंदी साहित्य में एक सुंदर ग्रंथ लिखा है। उस ग्रंथ का नाम 'बृहत्-कविवल्लभ' है। परंतु इन्होंने इस ग्रंथ में अपना कुछ भी पता नहीं बताया है। अतः इनके विषय में और कुछ नहीं लिखा जा सकता है।

हरिदास कवि—(१) ये जाति के कायस्थ और पटना के निवासी थे। इन्होंने हिंदी साहित्य में 'रसकौमुदी' नामक बहुत उत्तम ग्रंथ लिखा है। इसके अतिरिक्त हिंदी साहित्य के १२ ग्रंथ और भी इन्होंने लिखे हैं। वे ग्रंथ अलंकार, छंद आदि विषय के हैं। ये कवि एकाक्ष थे।

(२) ये बंदीजन हिंदी के कवि थे और बांदा के रहने वाले थे। इन्हींके पुत्र नोने कवि थे। इन्होंने 'राधाभूषण' नामक एक शृंगाररस का सुंदर ग्रंथ लिखा है।

हरिदास स्वामी—ये महाराज वृंदावन के निवासी थे और सं० १६४० वि० में उत्पन्न हुए थे। इनका ग्रंथ भक्तमाल ग्रंथ में लिखा है। ये संस्कृत में जयदेव कवि के समान कविता करते थे। हिंदी की भी इनकी कविता सूर और तुलसी के समान होती थी। 'राग-सागर' तथा 'रागकल्पद्रुम' में इनकी कविता देखी जाती है। इन्होंने तानसेन को काव्य और संगीत की शिक्षा दी थी।

हरिद्वार—उत्तरी भारत का एक प्रसिद्ध तीर्थ, जिसे गंगा-द्वार तथा मायापुरी नामक अपर नामों से भी कहा गया है। यहीं पर मैत्रेय ऋषि से विदुर ने 'श्रीमद्-भागवत' श्रवण किया था। यह सहारनपुर जिले में स्थित है।

हरिनाथ कवि—ये कवि असनी के रहने वाले महापात्र बंदी थे। सं० १६४४ वि० में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम नरहरिजू था। और ये बड़े ऐश्वर्यशाली थे। इनको अनेकों राजाओं से कई लाख रुपये मिले थे। बांधवनरेश नेजाराय की प्रशंसा में इन्होंने यह दोहा पढ़ा था—

लंका लौ दिल्ली दई, साहि विभीषण काम।
भयो बघेले रामणे, राजा राजाराम॥

इस दोहे को सुनकर बांधव नरेश बड़े प्रसन्न हुए और कवि हरिनाथजी को उन्होंने एक लाख रुपये दे-कर विदा किया। तदनंतर ये कवि आमेर के राजा मानसिंह के यहां पहुंचे और उनकी प्रशंसा में दो दोहे पढ़े—

बलि बोई कीरति लता, कर्ण करी द्वै पात।
सींची मान महीप ने, जब देखी कुँभिलात॥
जाति जाति तें गुण अधिक, सुन्यों न अबहूं कान।
सेतु बांधि रघुवर तरे, हेला दै नृप मान॥

इन दोनों दोहों से महाराज मानसिंह बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने दो लाख रुपये तथा हाथी आदि देकर इनको विदा किया। आमेर दरबार से विदा होकर जब कवि हरिनाथजी घर को लौट रहे थे, तब मार्ग में एक नागा पुत्र उनसे मिला और उनकी प्रशंसा में एक दोहा उसने पढ़ा—

दान पाय दोनों बढ़े, कै हरि कै हरिनाथ।
उन बढ़ी ऊंचो पग कियो, इन बढ़ि ऊंचो हाथ॥

इस दोहे को सुनकर कवि हरिनाथ ने आमेर दरबार से प्राप्त धन दे दिया और आप खाली हाथ घर लौट आए। (शिवसिंहसरोज)

हरिराज—काश्मीर के राजा। ये काश्मीरराज संग्रामराम के पुत्र थे। इनके राजा होने पर काश्मीर की प्रजा बहुत प्रसन्न हुई थी। यद्यपि इन्होंने थोड़े ही दिनों तक राज्य किया था, तथापि उतने ही दिनों में इन्होंने प्रजा का हृदय अपने वश में कर लिया था। यशस्वी हरिराज ने २२ दिन राज्य करके आषाढ़ शुक्ल अष्टमी को शरीरत्याग किया। (राजतरंगिणी)

हरिराम व्यास—वृंदावन के रसिक भक्तों में इनका अग्रणी स्थान है। ये ओरछानरेश मधुकरशाह के राजगुरु थे। नाभादास के 'भक्तमाल', भगवत् मुदित के 'रसिक अनन्यमाल' और उत्तमदास के 'रसिकमाला' में इनका विस्तार से वर्णन किया गया है। इन जीवनचरित्रों से ज्ञात होता है कि व्यासजी का जन्म टीकमगढ़ में सं० १५५० वि० (सन् १४९२ ई०) में हुआ था। इनके पिता का नाम समोरवन शुक्ल था। इनके तीन पुत्र और एक पुत्री थी। इनके नाम के साथ योजित 'व्यास' शब्द उनके बहुमुखी पांडित्य का परिचायक है। ये संस्कृत और हिंदी के पारंगत विद्वान् थे। दर्शन के ये असाधारण ज्ञाता थे। अनेक विद्वानों से इनका शास्त्रार्थ भी हुआ। इन्होंने अपनी 'वाणी' में लिखा है कि समस्त शास्त्रों का अध्ययन करने के बाद भी जब उनकी शंकाओं का समाधान न हुआ तो वे हितहरिवंश जी के पास आए और उनसे अपना समाधान पाकर विधिवत् दीक्षा ली और राधावल्लभ संप्रदाय के अनुयायी बन गए। प्रेम, दया, वात्सल्य और ममता से परिपूर्ण व्यास जी को वैष्णव संप्रदाय में विशाखा सखी का अवतार माना जाता है। इनके द्वारा विरचित ग्रंथों के नाम हैं—'व्यासवाणी', 'रागमाला', 'नवरत्न' और 'स्वधर्मपद्धति'। इनका निधन १६५५ वि० (१५९८ ई०) में हुआ था (वासुदेव—गोस्वामी भक्तकवि व्यास जी; डॉ० विजयेंद्र स्नातक—राधावल्लभ-संप्रदाय और सिद्धांत)।

हरिराय—इनका जन्म सं० १६४७ वि० में हुआ। इनके पिता का नाम गोबिंदराय था। वार्ता-साहित्य के संपादक और प्रचारक के रूप में इनकी विशेष ख्याति है। परंपरागत मौखिक रूप में सुरक्षित वार्ता साहित्य को सर्वप्रथम इन्होंने ही प्रामाणिकता के साथ लिपिबद्ध किया। ये वार्ताएं दो भागों में संकलित हैं—'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' और 'दो सौ वैष्णवों की वार्ता'।

ये संस्कृत, गुजराती और ब्रजभाषा के पारंगत विद्वान् थे। इनकी ख्याति इनके निपुण वक्तृता के कारण है। हिंदी में टीका साहित्य का आरंभ इनके द्वारा विरचित 'भावप्रकाश' नामक ग्रंथ से हुआ। इनके शिष्य बिट्ठलनाथ भी इन्हींकी भांति विद्वान् और अच्छे वक्ता थे। हरिराय जी ने पुष्टिमार्ग के प्रचार-प्रसार के लिए अपूर्व कार्य किया। इनका आरंभिक जीवन गोकुल में व्यतीत हुआ; किंतु औरंगजेब के धार्मिक द्रोह के कारण ये श्रीनाथजी के स्वरूप के साथ ही नाथद्वारा चले आए। वहीं १२५ वर्ष की आयु व्यतीत करके इन्होंने १७७२ ई० में परम धाम को प्राप्त किया (डॉ० दीनदयाल गुप्त—अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय)।

हरिवंश मिश्र—ये हिंदी के कवि थे और बिलग्राम में रहते थे। सं० १७२९ वि० में इनका जन्म हुआ था। अमेठी के राजा हनुमंतसिंह के यहां ये बहुत दिनों तक रहे थे। इन्होंने अब्दुल जलील बिलग्रामी को हिंदी काव्य पढ़ाया था। (शिवसिंहसरोज)

हरिश्चन्द्र—(१) सूर्यवंशी राजा। इनकी राजधानी अयोध्या थी। इनके पिता का नाम महाराज सत्यव्रत था। ये बड़ी सावधानी से राजकाज करते थे। इनकी अवस्था ढल गई, तथापि इनको पुत्रमुखदर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। इस कारण चिंतित होकर ये महारानी के साथ अपने कुलगुरु वसिष्ठ के समीप गए। कुलगुरु से इन्होंने अपने हृदय की व्यथा कह सुनाई। वसिष्ठ ने इन्हें वरुणदेव की आराधना करने के लिए कहा। ये राजा वरुणदेव की उपासना करने लगे। वरुणदेव ने प्रसन्न होकर वर मांगने के लिए कहा—राजा ने पुत्र मांगा। तब वरुणदेव बोले कि यदि तुम उस पुत्र को ही पशु बनाकर यज्ञ करना

स्वीकार करो तो अवश्य तुम्हारा पुत्र होगा। राजा हरिश्चंद्र ने स्वीकार किया। इसके दसवें महीने राजा के एक पुत्र हुआ।

इसी समय वरुण ने राजा को यज्ञ का स्मरण दिलाया। राजा ने कहा—देव ! दस दिन का बालक अशुद्ध रहता है। यह सुनकर वरुण चले गए और दस दिन बाद फिर आए। तब राजा ने कहा—बिना दांतों का पशु पवित्र नहीं होता, तब फिर वरुण चले गए और जब उस लड़के के दांत निकल आए तब फिर आकर यज्ञ का स्मरण कराया। राजा ने कहा—"गर्भ के बाल अशुद्ध कहे जाते हैं।" वरुण चले गए। जब उस बालक का मुंडन होने लगा तब वरुण देवता स्वयं आकर बैठे और बोले—"बहुत अच्छा, सब काम कीजिए।" यह सुनते ही राजा अचेत होकर गिर गए। पुनः वरुणदेव का पूजन करके बोले—"महाराज ! मैं यज्ञ करने के लिए प्रस्तुत हूं। परंतु क्षत्रिय का जब तक उपनयन संस्कार न हो, तब तक वह शूद्र के समान है, अतः आपसे प्रार्थना है कि उपनयन तक आप ठहरें, तदनंतर मैं यज्ञ करूंगा।" वरुण चले गए।

जब ग्यारहवें वर्ष में राजकुमार का उपनयन हो चुका और यज्ञ का कुछ ढंग नहीं दीख पड़ा तब वरुण आए। राजा ने उनका स्वागत किया और कहा—"महाराज ! आपकी कृपा से राजकुमार का उपनयन संस्कार तो हो चुका है। परंतु उसीका एक अंग समावर्तन अभी बाकी है, अतः आप कुछ दिनों के लिए और क्षमा कीजिए।" यह सुनकर वरुण देवता बोले—"राजा ! तुम पुत्र-स्नेह में पड़कर बार-बार हमें टाल रहे हो, परंतु इसका फल अच्छा नहीं होगा। अच्छा, अब की बार तो मैं लौट जाता हूं, समावर्तन के समय फिर आऊंगा।"

जब समावर्तन का समय आया तब यज्ञ की भी तैयारी होने लगी। इससे राजा हरिश्चंद्र बड़े उदास हुए। जब राजकुमार को इसकी खबर लगी तब वह वन में भाग गया। इसी समय वरुणदेव भी पहुंच गए परंतु इस घटना से अप्रसन्न होकर उन्होंने राजा को शाप दिया कि तुम्हें जलोदर रोग होगा। जलोदर रोग से पीड़ित होकर राजा हरिश्चंद्र ने अपने कुलगुरु वसिष्ठ से इसके प्रतीकार का उपाय पूछा। वसिष्ठ ने कहा कि एक लड़के को खरीदकर यज्ञ कर डालो।

उसी राजा के राज्य में अजीगर्त नामक एक महालोभी ब्राह्मण रहता था। उसके तीन लड़के थे। राजा ने उसके मंझले लड़के शुनःशेप को खरीद लिया। यज्ञ की तैयारी हुई। शुनःशेप को वध्यस्थान में लाया गया। परंतु शमिता ने, जो पशु-वध करता है, साफ कह दिया कि मेरा पशु मारने का काम है, मनुष्य मारने का नहीं; यह कहकर वह चला गया। अब राजा बड़ी विपदा में फंसे। उसी समय अजीगर्त दर्शकों के बीच में खड़ा होकर बोल उठा—"मुझे यदि शमिता से दूना धन मिले तो मैं इसे मारने को तैयार हूं।"

इसी समय महर्षि विश्वामित्र राजा के समीप गए और उन्होंने राजा को बहुत समझाया कि आप इस दीन ब्राह्मणकुमार को छोड़ दें। परंतु राजा ने विश्वामित्र का कहना नहीं सुना। तब विश्वामित्रजी वहां गए, जहां शुनःशेप बंधा पड़ा हुआ था और रो रहा था। विश्वामित्र ने कहा—"मैं तुझे एक मंत्र बताता हूं, उसे जप।" शुनःशेप ने उस मंत्र का जप किया। वरुणदेव प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष हुए। उन्होंने कहा—"राजा, तुम्हारा यज्ञ पूरा हुआ। इस ब्राह्मण कुमार को छोड़ दो। अब तुम्हारा रोग भी छूट जाएगा।" तदनंतर वरुणदेव वहां से चले गए। शुनःशेप महर्षि विश्वामित्र का सर्वसम्मति से पुत्र निश्चित हुआ। वे उसे लेकर अपने आश्रम में गए। यज्ञ की समाप्ति सुनकर राजकुमार भी वन से लौट आया।

(२) हिंदी साहित्य की चर्चा करते ही, हिंदी गद्य-पद्य को परिष्कृत रूप में परिवर्तित करने वाले भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र का नाम लेना ही पड़ेगा। बाबू हरिश्चंद्र का जन्म सन् १८५० ई० की ९वीं सितंबर को हुआ था। आप काशी के इतिहासप्रसिद्ध प्राचीन वैश्य वंश में उत्पन्न हुए थे। बाबू साहब के पिता का नाम बाबू गोपालचंद्र उपनाम गिरिधरदास था। आप स्वयं एक प्रसिद्ध कवि थे। आपने वाल्मीकि रामायण का छंदोबद्ध अनुवाद तेरह वर्ष की अवस्था में किया था। बाबू गोपालचंद्र ने कुल मिलाकर चालीस ग्रंथ लिखे। इन ग्रंथों में से गर्गसंहिता, दशावतारकथामृत, नहुष नाटक, भारतीभूषण, जरासंधवध महाकाव्य आदि ग्रंथ उत्कृष्ट श्रेणी के हैं। बाबू हरिश्चंद्र की नौ वर्ष की अवस्था में इनके पिता बाबू गोपालचंद्रजी का सत्ताईस वर्ष की छोटी अवस्था में परलोकवास हुआ। सुयोग्य पिता के सुयोग्य पुत्र बालक हरिश्चंद्र ने पांच-छः वर्ष की अवस्था में ही

अपनी चमत्कारिणी बुद्धि से कविचूडामणि पिता को चमत्कृत कर दिया था। पिता के सामने नौ वर्ष के भीतर ही बाबू हरिश्चंद्र ने कविता की परीक्षा में पिता के मुख से कई बार वाहवाही पाई थी।

नौ वर्ष की अवस्था में पितृहीन होकर भारतेंदु एक प्रकार से स्वतंत्र हो गए। अंग्रेजी पढ़ने के लिए आप बनारस कालेज में भरती कराए गए। कालेज तो आप प्रतिदिन जाते ही थे, परंतु जैसा चाहिए वैसा चित्त पढ़ने में नहीं लगाते थे। परंतु ऐसा कभी न हुआ कि ये परीक्षा में अनुत्तीर्ण हुए हों। आपने अंग्रेजी की शिक्षा कुछ दिनों राजा शिवप्रसाद से भी पाई थी। तीन-चार वर्ष तक भारतेंदु कालेज की पढ़ाई करते रहे, पर उस समय भी उनका झुकाव कविता की ओर ही था। आपका लिखा 'प्रवास-नाटक' दुर्भाग्यवश अपूर्ण और अप्रकाशित ही रह गया। आप देशहित की ओर से निश्चित नहीं थे। इनका निश्चय था कि बिना पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार और मातृभाषा के उद्धार के इस देश का सुधार होना कठिन है। आपने फीस देकर न पढ़ सकने वाले साधारण लोगों के लड़कों को पढ़ाने के लिए अपने घर पर स्कूल खोला था। आप विद्यार्थियों को बिना मूल्य स्लेट-पुस्तकें आदि देते थे। सन् १८६८ ई० में आपने चौखंभा स्कूल खोला और उसका सारा भार अपने ऊपर लिया। यहां तक कि इस स्कूल में पढ़ने वाले अनाथ बालकों को खाना-कपड़ा तक मिल जाया करता था। काशी में अंग्रेजी का प्रचार आपके ही इस स्कूल के द्वारा हुआ। इसके अतिरिक्त क्वींस कालेज, जयनारायण स्कूल आदि के पारितोषिक वितरण के समय भी आप पुस्तकें, घड़ी तथा नकद रुपये देकर बालकों का उत्साह बढ़ाते थे।

सन् १८६८ ई० में आपने 'कविवचनसुधा' फिर मासिक पत्र के रूप में निकाला। पीछे से यह 'सुधा' क्रमशः पाक्षिक और साप्ताहिक भी कर दी गई थी। इस पत्र में साहित्य के अतिरिक्त राजनीतिक और सामाजिक भी आंदोलन किए जाते थे। जिस समय 'विद्यासुंदर' नामक नाटक आपने लिखा था उस समय हिंदी साहित्य को नये आकार-प्रकार में देखने वाले इस प्रांत में कम थे, इससे ग्राहकों की कमी से आपको इन कामों में गांठ का बहुतसा धन लगाना पड़ा। इन्होंने लाखों रुपये पुस्तकों की छपाई में व्यय करके, लाखों रुपयों के मूल्य की पुस्तकें बिना मूल्य बांट दीं और इस प्रकार हिंदी प्रेमियों की सृष्टि की। सन् १८७० ई० में आप बनारस के आनरेरी मजिस्ट्रेट चुने गए। महारानी विक्टोरिया के पुत्र ड्यूक ऑफ एडिनबरा जब काशी देखने आए तब उनको नगर दिखाने का भार बाबू साहब को अर्पित किया गया था। आपने काशी के सब पंडितों से कविता लिखवा और उसे 'सुमनाञ्जलि' नामक पुस्तक में छपवाकर उन्हें समर्पण की थी। इस समय ये गवर्नमेंट के भी कृपापात्र बन गए थे। 'कविवचनसुधा', 'हरिश्चंद्र-चंद्रिका' और 'बालाबोधिनी' की सौ-सौ प्रतियां शिक्षा विभाग में ली जाती थीं। उसी समय ये पंजाब यूनिवर्सिटी के परीक्षक नियत हुए। सन् १८७४ ई० में आपने स्त्रीशिक्षा के निमित्त 'बालाबोधिनी' नाम की एक मासिक पत्रिका भी निकाली थी। इसके लेख स्त्रियों के लिए उपयोगी होते थे। यही समय मानो हिंदी की नवीन सृष्टि का था। आपने अपने 'काल-चक्र' नामक ग्रंथ में स्वयं लिखा है—"हिंदी नये सांचे में ढली।" आपने काशी में 'पेनी रीडिंग' नामक एक समाज भी स्थापित किया था। इसमें स्थानीय विद्वान् अच्छे-अच्छे लेख लिखकर लाते और स्वयं पढ़ते थे। इस समाज के प्रोत्साहन से भी बहुतसे अच्छे-अच्छे लेख लिखे गए। 'कर्पूरमंजरी', 'सत्यहरिश्चंद्र' और चंद्रावली', सच पूछिए तो ये ग्रंथ हिंदी के टकसाल हैं। आपका जैसा स्नेह अपने ग्रंथों पर था उससे कहीं बढ़कर आपका प्रेम दूसरों के उपयुक्त ग्रंथों पर था। उनको, उदारता से साहित्य-सेवा और दीन-दुखियों की सहायता में धन को शतधार बहाते देखकर स्वयं काशीराज महाराज ईश्वरीनारायणप्रसाद सिंह ने कहा था—बबुआ! घर को देखकर काम करना अच्छा होता है। इसके उत्तर में उन्होंने कहा—हुजूर! इस धन ने मेरे पूर्वजों को खाया है, अब मैं इसे खाऊंगा। इनके पास कभी कोई गुणी आता तो वह विमुख कभी नहीं जाता था।

बाबू हरिश्चंद्र में यह एक असामान्य गुण था कि वे अपनी प्रतिज्ञा पर सदा दृढ़ रहते थे। सत्यवक्ता और दृढ़प्रतिज्ञ होने से आपको कई बार आर्थिक कठिनाइयां झेलनी पड़ीं। सर विलीयम पूर की लाट-गिरी के समय में हिंदी को राजभाषा बनाने के लिए बहुत-कुछ उद्योग किया गया, परंतु सफलता न हुई। राजा शिवप्रसाद और बाबू हरिश्चंद्र इन दोनों में भाषा-संबंधी मतभेद होने के कारण परस्पर मनो-

मालिन्य रहता था। राजा साहब खिचड़ी हिंदी के पक्षपाती थे और बाबू साहब शुद्ध हिंदी लिखने का मार्ग चलाते थे। राजा साहब ने कई-एक कारणों से बाबू साहब को गवर्नमेंट का अप्रिय बना दिया। आपने भारतवर्ष में प्रिंस ऑफ वेल्स के पधारने पर भारतीय भाषाओं में कविता लिखवाकर 'मानसोपायन' पुस्तक भेंट की। इंग्लैंड की रानी ने जब भारत की सम्राज्ञी का पद ग्रहण किया तब इन्होंने 'मनोमुकुलमाला' नाम की पुस्तक अर्पण की। काबुल-विजय पर 'विजयवल्लरी' लिखी। मिश्र-विजय पर 'विजयिनीविजयवैजयंती' उड्डीयमाना की। जब महारानी एक दुष्ट की गोली से बचीं तब इन्होंने महामहोत्सव मनाया, जिसकी सराहना स्वयं भारतेश्वरी ने की। प्रतिवर्ष महारानी की वर्षगांठ पर ये अपने स्कूल का वार्षिकोत्सव करते थे।

बाबू हरिश्चंद्र वल्लभ संप्रदाय के पूरे अनुयायी थे। जाति-भेद को मानकर अपनी वैश्य जाति पर ये पूर्ण प्रेम रखते थे। इन्होंने सबसे पहले अपने पिता का लिखा 'भारतीभूषण' नामक ग्रंथ छपवाया। इनका सबसे पहला लिखा हुआ 'विद्यासुंदर' नामक नाटक है।

बाबू हरिश्चंद्र एक स्वतंत्रचेता मनुष्य थे। काशी में सबसे पहले होमियोपैथिक चिकित्सा का आरंभ आपने ही किया। सन् १८६८ ई० में आपने 'होमियोपैथिक दातव्य चिकित्सालय' स्थापित किया, जिसमें आप बराबर तन-मन-धन से सहायता देते रहे। सं० १९२७ वि० में 'कवितावर्द्धिनी सभा' का जन्म हुआ था जिससे कितने ही गुणियों का मान बढ़ाया जाता था और कितने ही कवियों को प्रशंसापत्र दिए जाते थे। आप गुणग्राही थे और गुण ग्रहण करने में शत्रु-मित्र का विचार नहीं करते थे। उर्दू कवियों के प्रोत्साहन के लिए सन् १८६६ ई० में इन्होंने मुशायरा स्थापित किया था, जिसमें उस समय के शायर एकत्र होते और समस्यापूर्ति करते थे। काशीराज की धर्मसभा के आप संपादक और कोषाध्यक्ष थे। सं० १९३० वि० में इन्होंने 'तदीय समाज' स्थापित किया था। इसी समाज के उद्योग से दिल्ली दरबार के समय गवर्नमेंट की सेवा में सारे भारतवर्ष की ओर से कई लाख हस्ताक्षर कराकर गोवध बंद करने की अर्जी दी गई थी। गोरक्षा के लिए गोमहिमा आदि ग्रंथ लिखकर खूब आंदोलन चलाया था। इस समाज ने हजारों मनुष्यों से प्रतिज्ञा कराकर मद्य और मांस का व्यवहार बंद कराया। इस समाज ने यह भी प्रतिज्ञा करवाई थी कि जहां तक संभव होगा, वे देशी वस्तुओं का प्रयोग करेंगे। इस समाज से 'भगवद्-भक्तितोषिणी' मासिक पत्रिका भी निकली थी। इस समाज के अतिरिक्त 'हिंदी डिबेटिंग क्लब', 'यंगमैन एसोसियेशन', 'काशी सार्वजनिक सभा', 'वैश्यहितैषिणी सभा' आदि कितनी ही सभा-सोसाइटियां इन्होंने स्थापित की थीं। ये 'बनारस इंस्टीट्यूट' के प्रधान सभासद् थे। काशी की प्रसिद्ध 'कारमाइकेल लायब्रेरी' तथा 'बालसरस्वती भवन' के ये प्रधान सहायक थे और उनमें हजारों ही ग्रंथ दिए थे।

खानदेश के अकाल में सहायता देने के लिए इन्होंने बाजार में खप्पर लेकर भीख मांगी थी और हजारों रुपये उगाहकर भेजे थे। काशी में बहुतसे सर्वसाधारण-संबंधी उपयोगी कार्य आपने किए। देशहितकर तथा लोकहितकर प्रत्येक काम में आप सहायक होते थे। आपको अपने लिखे ग्रंथों में 'प्रेमफुलवारी', 'सत्य-हरिश्चंद्र', 'चंद्रावली', 'काश्मीरकुसुम', 'भारतदुर्दशा' आदि ग्रंथ विशेष रुचते थे। दुर्भाग्यवश इनके लिखे कितने ही उत्तमोत्तम ग्रंथ अधूरे रह गए। आपने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्य-संबंधी कितने ही उत्तमोत्तम ग्रंथ लिखे। आपके गुणों पर मोहित होकर तथा 'सारसुधानिधि' के प्रस्ताव करने पर आपको 'भारतेंदु' की पदवी देना एक स्वर से समस्त देश ने स्वीकार किया था।

भारतेंदु जी का स्वभाव अत्यंत कोमल था। ये किसीका दुःख न देख सकते थे। सदा प्रसन्न रहा करते थे। आपका स्वभाव नम्र था, अभिमान करना आप जानते ही नहीं थे। शील भी इनका बहुत बढ़ा-चढ़ा था। कोई चाहे कितनी ही हानि क्यों न करे, ये उसे कुछ भी नहीं कहते थे। सन् १८८५ की ६वीं जनवरी को रात्रि के पौने दस बजे भारत का इंदु सदा के लिए अस्त हो गया। इनकी मृत्यु से देश और विदेश में शोक छा गया। इनके मित्र-अनुयायियों ने इनका स्मारक स्थापित किया।

हर्यश्व—(१) ये अयोध्या के राजा थे। इनका महाराज ययाति की कन्या माधवी के गर्भ से वसुमान् नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था।

(२) पांचाल के अधिपति। इनके पांच पुत्रों ने मिलकर राज्यशासित किया था, इस कारण उस

राज्य का नाम 'पांचाल' पड़ा।

हर्षवर्द्धन—काश्मीर के अधिपति। (देखो श्रीहर्ष)

हलायुध—'ब्राह्मणसर्वस्व', 'कविरहस्य' आदि ग्रंथों के प्रणेता प्राचीन पंडित। ये गीतगोविंद प्रणेता जयदेव कवि के समकालीन थे। ये गौडेश्वर लक्ष्मणसेन के सभापंडित थे।

हस्तिनापुर—भारत का प्राचीन नगर। यह नगर बहुत दिनों तक कौरव राजाओं की राजधानी था। कुरु-पांडव-युद्ध से पहले इस नगर की समृद्धि अनुपम थी। इसका परिचय महाभारत तथा अन्य पुराणों में पाया जाता है। कौरवों के साथ पांडवों का विवाद आरंभ होने पर कौरव राज्य दो भागों में विभक्त हो गया था। कौरवों की राजधानी हस्तिनापुर में ही रही, और पांडवों ने खांडव वन को जलाकर वहां इंद्रप्रस्थ नगरी बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। महाभारत के युद्ध में उन्हीं दोनों नगरों से युद्ध की तैयारियां की गई थीं। इंद्रप्रस्थ और हस्तिनापुर के पास ही कुरुक्षेत्र नगर वर्तमान है। हस्तिनापुर आज वर्तमान नहीं है। इंद्रप्रस्थ के उत्तर में थानेश्वर के निकट यह नगर स्थित था—ऐसा विद्वानों का मत है। कुरुक्षेत्र के युद्ध में विजय प्राप्त करके भाइयों के सहित युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर में वास किया। युद्ध में जय प्राप्त करके पांडवों ने हस्तिनापुर को ही अपनी राजधानी बनाया। जिस समय युधिष्ठिर का भारत में एकछत्र आधिपत्य था, उस समय हस्तिनापुर एक समृद्धिसंपन्न नगर था। अंत में, यह नगर गंगा में ढहकर गिर गया। (भारतवर्षीय इतिहास)

(२) कौरवों की राजधानी, जो दिल्ली से उत्तर-पूर्व की ओर थी और जिसका गंगा ने नामोनिशान तक नहीं रखा। यह मेरठ से बाईस मील उत्तर-पूर्व गंगा के तट पर बसी थी।

हारीत—विख्यात हिंदूधर्मशास्त्रप्रणेता। इन्होंने 'हारीत-संहिता' नामक एक स्मृति ग्रंथ लिखा था।

हारीतसंहिता—प्राचीनकाल में हारीत मुनि ने इस संहिता के विषयों का वर्णन किया है। वही मार्कंडेय ने मुनियों के निकट वर्णन किया। उन्हीं ऋषियों से राजा अम्बरीष ने सुना। पहले मुख ही मुख इस संहिता का तत्त्व प्रचारित था। बाद में वह ग्रंथरूप में परिणत हुआ। बौधायन, वसिष्ठ, आपस्तंब आदि ग्रंथों से महर्षि हारीत के मत सूत्ररूप में उद्धृत देखे जाते हैं। इससे मालूम होता है कि यह ग्रंथ भी पहले सूत्र रूप में था और धीरे-धीरे श्लोकों के रूप में परिणत हुआ। इसमें सात अध्याय हैं। इस समय इस संहिता में १९४ श्लोक हैं। इस संहिता के पहले अध्याय में सृष्टि का क्रम-वर्णन है। दूसरे अध्याय में चतुर्वर्ण के कर्मों का निर्देश करके नृसिंह की पूजा-पद्धति लिखी गई है। तीसरे अध्याय में ब्रह्मचर्य का वर्णन, चौथे और पांचवें अध्याय में गार्हस्थ्यवर्णन और नृसिंह देवता की प्रधानता, छठवें और सातवें अध्याय में आश्रम धर्म तथा योगशास्त्र का विषय वर्णित है। इस संहिता के मत से नृसिंह देवता के प्रसाद से मनुष्य नारसिंह पद प्राप्त कर सकता है। नृसिंहपूजापद्धति पर इस संहिताकार का विशेष ध्यान था।

हिडम्ब—यह एक राक्षस का नाम है जो वारणावत के दक्षिण वाले वन में रहता था। इसका रूप बड़ा भयंकर था। यह बड़ा बलवान् था और इसके नेत्र पीले थे। इसने पांडवों को मार डालना चाहा था, किंतु भीम ने इसे स्वयं मार डाला।

हिडिम्बी—यह हिडिम्ब की बहन थी, जो बड़ी सुंदर थी। यह भीम के रूप और पराक्रम पर मुग्ध हो गई थी और इसने भीम के साथ ही विवाह किया। इसीके गर्भ से घटोत्कच की उत्पत्ति हुई। इसी घटोत्कच ने महाभारत के युद्ध में पांडवों की ओर से कौरवों से युद्ध किया था और बड़ी वीरता से युद्धक्षेत्र में इसने प्राण विसर्जन किए थे। इसके मरने का पांडवों को बड़ा दुःख हुआ था।

हितनन्द—यह हिंदी के कवि थे। शिवसिंहसरोज में इनकी जीवनी का पता नहीं चलता। न तो ग्रियरसन साहब को इनका कुछ पता चला और न अन्य किसी को। शिवसिंहसरोज में इनकी रचना की एक बानगी दी गई है। वह यह है—

दारिदकतन गजवदन रदन एक,
सदन दहन बुधि सादन सुधा के सर।
धूमकेतु धीर के धुरंधर धवल धाम,
हम के मरन सरनाम ना निधन कर॥
लम्बोदर हेमवती हितनन्द भालचंद्र,
कन्द आनन्द विबुध वन्दनीय वर।
सदा शुभदायक सकल गुणनायक
सुजय-जय नायक विनायक विघनहर॥
(शि० स०)

हित वृन्दावनदास—वैष्णव समाज में ये 'चाचाजी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। समस्त हिंदी साहित्य में और

विशेष रूप से अपने संप्रदाय के कवियों में इनका अनन्य स्थान है। कविता की जिस समग्रता का दर्शन इनकी रचनाओं में होता है, उसकी तुलना एकमात्र गोस्वामी तुलसीदास से की जा सकती है। इनके जन्मस्थान के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं होता। इनकी कृतियों के आधार पर इनका स्थितिकाल १७५०-१७६५ वि० (१६६५-१७१० ई०) के बीच निर्धारित किया है। हिंदी साहित्य में हित वृंदावन-दास की रचनाओं की संख्या सर्वाधिक है। 'साहित्य-रत्नावली' में इनके ग्रंथों की संख्या १५८ उल्लिखित है। इन्हें सवा लाख पदों का रचयिता बताया जाता है। इनके कुछ ग्रंथों के नाम हैं—'लाड़सागर', 'व्रज प्रेमानंद सागर', 'वृंदावन जसप्रकाश वेली', 'विवेक पत्रिका वेली', 'कृपा अभिलाषा वेली', 'रसिकपथ-चंद्रिका', 'जुगल स्नेह पत्रिका' और 'हित हरिवंश सहस्रनाम'। इन्होंने अपने 'हरिकला केली' नामक ग्रंथ में मुगलों के आक्रमणों एवं धार्मिक असहिष्णुता के कारण उनके द्वारा विध्वंसक कार्यों का स्वानुभूत वर्णन किया है।

अपनी कृतियों में इन्होंने राधावल्लभीय प्रेमभक्ति का सरस वर्णन किया है। स्थानीय लोकव्यवहार में प्रयुक्त भाषा का इन्होंने प्रयोग किया है। इन्होंने श्रृंगार, वात्सल्य, हास्य और करुण आदि रसों में समान रूप से रचनाओं का प्रणयन किया है। इन्हें व्रजभाषा काव्य का व्यास कहा गया है। "उनके साहित्य के परिणामों को देखकर कहा जा सकता है कि यदि व्रजभाषा के आदिकवि के रूप में सूरदास-रूपी वाल्मीकि हैं, तो व्रजभाषा को व्यापक विशद विस्तार देने का श्रेय महाकवि व्यास के रूप में चाचा वृंदावनदास को प्राप्त है।" इनका निधन १८५० वि० (१७९३ ई०) में हुआ (हिंदी साहित्य कोश भाग-२; डॉ० विजयेंद्र स्नातक—राधावल्लभ संप्रदाय-सिद्धांत और साहित्य)।

हित हरिवंश—इनके पूर्वज सहारनपुर (उत्तर प्रदेश) जिले के देवबंद (या देवबन) नामक कस्बे के निवासी थे। राधावल्लभ संप्रदाय साहित्य में गोस्वामी हित हरि-वंश जी के संबंध में परंपरागत अनुश्रुति है कि सर्व-संपन्न होने पर भी हरिवंश के पिता व्यास मिश्र का कोई पुत्र नहीं था। उनके दुःख को देखकर एक दिन उनके अग्रज केशव मिश्र (नृसिंहाश्रम) ने भविष्य-वाणी की कि निकट भविष्य में ही उन्हें पुत्रलाभ होगा। अपने इस भाग्योदय का समाचार सुनकर व्यास मिश्र अपनी पत्नी-सहित ब्रजयात्रा के लिए निकले। ब्रज से मथुरा पहुंचकर उनकी पत्नी तारा-रानी को एकाएक प्रसव-पीड़ा हुई और बादगांव में उन्होंने १५५९ ई० (१५०२ वि०) में एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम रखा गया हरिवंश। हित हरिवंश की इस जन्मभूमि बादगांव में राधावल्लभीय भक्तों ने एक मंदिर का निर्माण करके पवित्र स्मृति को सुरक्षित बनाया। इनके भक्तों ने इन्हें श्रीकृष्ण की वंशी का अवतार माना है।

सोलह वर्ष की अवस्था में इनका पाणिग्रहण रुक्मिणी देवी से हुआ, जिससे उनके तीन पुत्र और एक पुत्री हुई। इस गृहस्थाश्रम में ही वे पुत्र एकाकी ब्रजयात्रा पर गए। उन्होंने गृहस्थाश्रम में रहकर यह निश्चय किया कि गृहत्याग और वैराग्य धारण किए बिना भी ईश्वरप्राप्ति संभव है। उन्होंने यह मत प्रतिपादित किया कि प्रत्येक विवेकशील गृहस्थ भगवत्-प्रेम को प्राप्त कर सकता है। वे अपने सदुपदेशों से जनता को प्रभावित करते हुए वृंदावन पहुंचे। वहां उन्होंने मानसरोवर, वंशीवट, सेवाकुंज और रासमंडल नामक चार सिद्ध केलिस्थलों का प्राकट्य किया, जो कि आज भी वृंदावन में वर्तमान हैं। मानसरोवर में आज भी प्रतिवर्ष मेला लगता है। सेवाकुंज में उन्होंने अपने उपास्य इष्टदेव राधा-कृष्ण का विग्रह स्थापित किया, जहां पर दिल्ली-निवासी सुंदरलाल भटनागर कायस्थ ने लाल पत्थरों का एक विशाल मंदिर बनाया, जो कि आज भी विद्यमान है। किंतु इसमें स्थापित प्राचीन विग्रह औरंगजेब के ध्वंसकार्यों से भयभीत होकर कामवन ले जाया गया।

वृंदावन में माधुर्य भक्ति की स्थापना तथा उसके प्रचार-प्रसार के लिए रासलीला और रासमंडल को पुनरुज्जीवित करने का श्रेय भी हित हरिवंशजी को ही है। उन्होंने राधावल्लभीय सेना-पूजा के उद्देश्य से 'खिचड़ी प्रथा' और 'व्याहुलो' का भी प्रचलन किया। सैद्धांतिक दृष्टि से राधा-कृष्ण भक्ति के रूप में सर्वथा नये 'राधावल्लभ संप्रदाय' की स्थापना की। अपने ग्रंथों में प्रेम (हित) को ही समस्त चराचर में व्याप्त और जीव का आराध्य सिद्ध किया है। इस प्रेम का पूर्ण परिपाक 'जुगल प्रेम' में है। इस जुगल (राधा-कृष्ण) प्रेम को उन्होंने संसारातीत बताया। प्रेमतत्त्व में 'तत्सुखी' भाव की स्थापना करके उसे अलौकिक

सिद्ध किया। अपनी रसोपासना की परिपूर्णता उन्होंने 'रसो वै सः' में बताई। उसमें राधातत्त्व को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। उन्होंने स्थापित किया कि राधा, कृष्ण, वृंदावन और सहचरी नित्य विहार के स्वरूप हैं। राधा वह अनादि तत्त्व है, जो ब्राह्मण में भक्त होकर अपने नित्य-क्रीडा के आनंद की अभिव्यक्ति करता है। उसके बाद श्रीकृष्ण हैं। वृंदावन उनका क्रीडा-स्थल है। सहचरी, अर्थात् जीवात्मा, जिसका ध्येय नित्य बिहार, राधा-कृष्ण की निकुंज लीलाओं का दर्शन-सुख पाने का है।

हित हरिवंश के चार ग्रंथ उपलब्ध हैं, जिनमें से दो संस्कृत और दो हिंदी के हैं। संस्कृत ग्रंथों के नाम हैं—'राधासुधानिधि' और 'यमुनाष्टक'। हिंदी ग्रंथों के नाम हैं—'हित चौरासी' और 'स्फुटवाणी'। इनमें भाषा का लालित्य सर्वत्र विद्यमान है। इनका निधन १६०६ वि०(१५५२ ई०) में वृंदावन में हुआ (डॉ० विजयेन्द्र स्नातक—राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य; ललिताचरण गोस्वामी—गोस्वामी हित हरिवंश और उनका संप्रदाय)।

हिन्ता—मेवाड़ के अंतर्गत एक स्थान का नाम है। यहां के सामंतों का कुछ हाल कर्नल टाड ने राजस्थान नामक ग्रंथ में लिखा है।

हिम्मतबहादुर (नवाब)—यह हिंदी के कवि थे और सं० १७६५ वि० में हुए हैं। बलदेव कवि ने 'शत-कवि-गिराविलास' में इनके कवित्त उद्धृत किए हैं। ग्रियरसन साहब ने लिखा है कि इनका पूरा नाम था —गोसाइँ नवाब हिम्मतबहादुर। ये सन् १८०० ई० में थे। इनके दरबार में कवियों को आश्रय मिलता था। इसीसे इनके पास अनेक कवि रहा करते थे। ठाकुर कवि जिन्होंने एक बार उनका जीवन बचाया था, इन्हींके पास रहते थे। उस घटना के विषय में लिखा है कि एक बार हिम्मतबहादुर को मारने के लिए बुंदेले छत्रपुर में एकत्र हुए। इसका समाचार ठाकुर कवि को मिला। उसने हिम्मतबहादुर के शत्रुओं के पास एक पत्र लिखकर भेजा, जिसके आरंभ का पाद यह था—

कहिबे सुनबे कि कछू न हियां।

इस पद्य को पाते ही बुंदेले छत्रपुर से भाग गए और हिम्मतबहादुर के प्राण बच गए।

हिम्मतबहादुर दसनामी गुसाइयों की सेना का अधिपति था और सिंधिया की सेना में था। उसने अलीबहादुर को उकसाया था कि वह बुंदेलखंड को हस्तगत करे, पर अंत में द्वितीय मरहट्टा युद्ध के समय हिम्मतबहादुर अंग्रेजों से मिल गया।

हिमरथ—अग्निपुराणांतर्गत चंद्रवंश के राजाओं में से एक राजा का नाम। यह केतुमान् का पुत्र था और दिलोदास के नाम से प्रसिद्ध था।

हिमवर्ष—यह एक प्रदेश का नाम है। विष्णुपुराण में लिखा है कि नाभि को हिमालय के दक्षिण की ओर का देश दिया गया था। इसीका नाम हिमवर्ष था।

हिमाचलराम—हिंदी के कवि। यह शाकद्वीपी ब्राह्मण थे और इनका जन्म फैजाबाद के अंतर्गत भटौली ग्राम में सं० १६०४ वि० में हुआ था। इनकी कविता सीधी-सादी हुआ करती थी। यथा—

एक समय प्रभु खेलहि गेंद,
गिरी यमुनाजल मध्यहि माहीं।
कूद पर्‌यो हरि ताही के हेतु,
गयो धँसि पैठि पतालहि जाहीं॥
बालसखा बहु रोदन कै हिय,
सोच बढ़ो गये माहरि पाहीं।
कृष्ण तुम्हारो डुबो यमुना बिच
ढूंढ़ि थके हम पावत नाहीं॥

(शिवसिंहसरोज)

हिमावत—पर्वतराज हिमालय। पुराणों के मतानुसार यह पर्वत मेरु के दक्षिण की ओर है। पर्वतराज बनाए जाने के पूर्व महाराज पृथु की तरह इसका भी अभिषेक हुआ था। हिमावत की पत्नी का नाम मेना है। मेना की उत्पत्ति पितृ और वैरजसों के मन से बतलाई जाती है।

हिरण्मय—उस पार्वत्य प्रदेश का नाम जो सेवत और शृङ्गि पर्वतमालाओं के बीच और मेरु के उत्तर में है।

हिरण्य—काश्मीर के राजा का नाम था। इन्होंने ३० वर्ष, दो मास राज्य करके, निःसंतान अवस्था में मृत्यु को आलिंगन किया था। (राजतरंगिणी)

हिरण्यकशिपु—यह असुर था। इसके पिता का नाम कश्यप और माता का नाम दिति था। तपोबल द्वारा वरलाभ करके यह स्वर्ग का अधीश्वर हो गया था और इसने देवताओं को निकालकर बाहर किया था। त्रैलोक्यविजयी होकर इसे बड़ा अभिमान उत्पन्न हुआ। इसीके औरस से भक्तशिरोमणि प्रह्लाद का जन्म हुआ था। प्रह्लाद भगवान् विष्णु के परम भक्त थे।

हिरण्यकशिपु उन्हें अपना परम शत्रु समझता था। अतः पुत्र को शत्रु का अनन्य भक्त देखकर उससे न रहा गया और उसने अपने पुत्र प्रह्लाद का वध करना चाहा। पर भक्तवत्सल भगवान् ने अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा की और नृसिंह रूप धरकर हिरण्यकशिपु का संहार किया।

हिरण्यकेशिन्—इनका अपर नाम सत्याषाढ़ भी था। कृष्ण-यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा की हिरण्यकेशिन् खांडवीया शाखा के प्रवर्तक आचार्य; आद्यकल्प में ये ब्रह्मदत्त के नाम से विश्रुत थे। इन्होंने सह्यादि पर्वत के मूल में प्रवाहित होनेवाली हरणकाशि नदी के तट पर कठोर तपश्चर्या करके वाग्देवी को सिद्ध किया और अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया। इनके द्वारा विरचित ग्रंथों के नाम हैं—'सत्याषाढ औतसूत्र', 'सत्याषाढ धर्मसूत्र', 'सत्याषाढ गृह्यसूत्र' और 'शुल्व-सूत्र'। इनके 'सत्याषाढ औतसूत्र' पर महादेव दीक्षित ने 'वैजयंती' नाम से एक भाष्य लिखा है। इस शाखा के लोग सह्याद्रि के पश्चिम में स्थित चिपलून आदि गांवों में आज भी निवास करते हैं।

हिरण्यगर्भ—भगवान् विष्णु का नाम है। हिरण्यम् नाम है परम धाम का। वहां जो नित्य बसे, उसे हिरण्यगर्भ कहते हैं। हिरण्मय लोक है, इसका प्रमाण श्रुतियों में पाया जाता है। यथा—

"हिरण्मये परे लोके विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः॥
न तत्र सूर्यो भाति, इत्यादि।"

हिरण्यनाभ—सूर्यवंशी एक राजा, जैमिनि के शिष्य और सामवेद के आचार्य। हिरण्यनाभ के बहुतसे शिष्य भी थे।

हिरण्यपर्वत (सुवर्णपर्वत)—इस पहाड़ी को मोदागिरी, मुद्गलगिरि या मुनगिरि अथवा हिरण्यप्रभात के नाम से भी कहा जाता था। इसे बिहार प्रदेश के आधुनिक मुंगेर से समीकृत किया गया है। कनिंघम ने इसकी सीमाएं उत्तर में गंगातट और दक्षिण में पार्श्वनाथ पहाड़ी तक निर्धारित की हैं।

हिरण्यरेतस्—प्रियव्रत के दस पुत्रों में से एक प्रमुख पुत्र का नाम।

हिरण्यरोमन्—पर्जन्य और मरीचि के पुत्र। उत्तर दिशा के दिक्पाल।

हिरण्यस्तूप—वैदिक काल के एक ऋषि का नाम। ये महर्षि अंगिरा के पुत्र थे। ऋग्वेदसंहिता के प्रथम मंडल के ३२वें सूक्त में लिखा है कि हिरण्यस्तूप ने इंद्र से प्रार्थना की थी। (पु॰ ई॰)

हिरण्यहस्त—अश्विनीकुमारों का दिया हुआ पुत्र, जिसे उन्होंने वध्रिमती के स्तव पर प्रसन्न होकर दिया था।

हिरण्याक्ष—हिरण्यकशिपु का भाई। इसको मारने के लिए भगवान् ने वाराह का रूप धारण किया था। किंतु पद्मपुराण के मतानुसार मत्स्यरूपी भगवान् ने इसका संहार किया था।

हिरण्वत्—श्वेत के राजा। इन्हें इनके पिता राजर्षि अग्नीध्र से राज्य मिला था। राजर्षि अग्नीध्र इन्हीं-को राजपाट सौंपकर तप करने वन में चले गए थे।

हिरश्वान्—विष्णुपुराण में दी हुई स्वायम्भुव मनु के वंश की तालिका में इस नाम का एक व्यक्ति पाया जाता है। स्वायम्भुव मनु के दो पुत्र प्रियव्रत और उत्तान-पाद थे। प्रियव्रत के ९ पुत्र हुए। इन नौ में केवल अग्नीध्र पुत्रवान् हुए और उनके भी नौ पुत्र हुए। इन नौ में हिरश्वान् छठे हैं। (पु॰ ई॰)

हीरामणि—हिंदी के कवि का नाम। इनका जन्म संवत् १६८० वि॰ में हुआ था। इनके कवित्त हजारा में पाए जाते हैं। (शिवसिंहसरोज)

हीराराम—हिंदी के कवि। इनका जन्म संवत् १६८० वि॰ में हुआ था। इनका नखशिख पढ़ने योग्य है। (शिवसिंहसरोज)

हीरालाल—इनका जन्मकाल, जाति, जन्मस्थान आदि का कुछ भी पता नहीं चलता। पर इनके लिखे श्रृंगार-रस के पद्य पाए जाते हैं। यह श्रृंगाररस के अच्छे कवि थे। (शिवसिंहसरोज)

हुण्ड—इसके पिता का नाम विप्रचित्ति दानव और पुत्र का नाम विहुंड था। पार्वती-पुत्री अशोकसुंदरी से यह प्रणय करता था; किंतु इसके विवाह-प्रस्ताव को उसने अस्वीकार कर दिया। तदनंतर इसने स्त्रीरूप धारण करके उसका अपहरण किया। इस अपहरण के समय अशोकसुंदरी ने हुंड को, अपने भावी पति नहुष द्वारा मारे जाने का शाप दिया। इस आशंका से यह नहुष के वध की तलाश में रहा; किंतु इसके विपरीत नहुष ने ही इसका वध कर दिया। (पद्मपुराण)

हुताशन—अग्नि का नाम।

हुलास कवि—हिंदी के अज्ञात कवि। इनका कुछ भी पता नहीं चलता। पर इनके लिखे पद्य मिलते हैं। (शिवसिंहसरोज)

हुलासराम—हिंदी के कवि, जिन्होंने हिंदी में 'शालिहोत्र' रचा है। इनका भी परिचय उपलब्ध नहीं है। (शिवसिंहसरोज)

हुसेन कवि—इनका जन्म संवत् १७०८ में हुआ था और इनके पद्य हजारा में पाए जाते हैं। (शिवसिंहसरोज)

हूहू—कश्यप द्वारा प्रधा से उत्पन्न एक गंधर्व। कुबेर तथा इंद्र की सभा का यह सदस्य था। देवल ऋषि के शापवश इसे वक्रयोनि प्राप्त हुई थी, और गजेन्द्र के साथ इसकी शापमुक्ति हुई। आषाढ़ मास के सूर्य के साथ यह भ्रमण करता है।

हृदयराम—हिंदी साहित्य में नई नाटकीय शैली के प्रवर्तक के रूप में इनका अपना अलग स्थान है। इनका जन्म पंजाब में हुआ था। इनके पिता का नाम कृष्णदास था। इन्होंने १७२३ ई० में कवित्त तथा सवैया छंदों में 'हनुमन्नाटक' की रचना की थी। इसका आधार संस्कृत का 'हनुमन्नाटक' है। काव्यशास्त्रीय नियमों के अनुसार यह नाटक नहीं है। इस कृति में पद्यबद्ध रूप में आबद्ध संवादात्मक शैली वस्तुतः एक नई प्रबंधात्मक कल्पना है, जो कि संस्कृत में भी देखने को नहीं मिलती है। इसका आधार संभवतः जन-नाट्य है और कदाचित् असंभव नहीं कि हृदयराम ने अपनी इस कृति को लोक-व्यवहार की दृष्टि से ही लिखा है। इनकी अन्य रचनाओं के नाम हैं—'सुदामाचरित्र' और 'रुक्मिणी मंगल'। इनका स्थिति-काल १७वीं शती का उत्तरार्ध है।

हृषीकेश—भगवान् विष्णु का नाम। हरिवंश में लिखा है कि—

हृषीकाणीन्द्रिण्याहुस्तेषामीशो यतो भवान्।
हृषीकेशस्ततो विष्णुः ख्याले देवेषु केशवः॥

अर्थात् भगवान् इंद्रिय-समूह के ईश होने के कारण, देवों में भगवान् विष्णु का हृषीकेश नाम पड़ा।

हेति—एक राक्षस का नाम जो चैत्र मास में सूर्य के रथ की रक्षा हेतु, सात अन्य साथियों के साथ रहता है।

हेमकान्त—बंगदेश के राजा कुशकेतु का पुत्र। इसने शतर्चीं नामक ऋषि का वध किया था, जिसके कारण इसको ब्रह्महत्या का पातक लगा। आगे चलकर त्रित नामक ब्राह्मण की तृषा तृप्त करने के कारण यह ब्रह्म-हत्या के पातक से मुक्त हुआ। (स्कंदपुराण)

हेमकेतु—पृथ्वी की सीमा का समीपवर्ती एक पर्वत जो मेरुपर्वत के दक्षिण में है।

हेमगोपाल—हिंदी के कवि का नाम, जो शृंगाररस की कविता के लिए प्रसिद्ध हैं। पर इनका अधिक परिचय नहीं मिलता। (शिवसिंहसरोज)

हेमचन्द्र—(१) वैशाली के नरेन्द्र का नाम। ये राजा बौद्धधर्मानुयायी थे।

(२) बारहवीं शताब्दी के एक जैनधर्मप्रचारक का नाम। इसीने अभिधानचिंतामणि नामक ग्रंथ रचा था। 'महावीरचरित' का लेखक भी यही व्यक्ति है।

हेमा—(१) उषद्रथ का पुत्र और ययाति का वंशधर।

(२) विष्णुपुराण में एक नदी का नाम भी हेमा पाया जाता है।

हैहय, हय—(१) यादवों के दो राजाओं के नाम। ये सत्राजित् के पुत्र थे।

(२) यदु के वंशधरों का नाम। इन लोगों ने बाहु को जीत लिया था और उसके राज्य पर अपना अधिकार कर लिया था। इनके डर के मारे बाहु को अपनी रानियों के साथ वन में भाग जाना पड़ा। किंतु सागर ने हैहयवंशीय क्षत्रियों को समूल नष्ट किया। हैहयवंशी क्षत्रियों में भी पांच प्रकार के क्षत्रिय होते हैं, पर यदु की संतान होने से वे कहाते यदुवंशी ही हैं। अंग्रेज लोगों का विश्वास है कि हैहयवंश सीदियन जाति के सम्मिश्रण से उत्पन्न हुआ है।

होलराम बन्दीजन—हिंदी के कवि। यह होलपुर जिला बाराबंकी के रहनेवाले थे और इनका जन्म सं० १६४० वि० है। यह एक बड़े भारी कवि थे और राजा हरिवंशराय कायस्थ दीवान बदरकावासी के द्वारा अकबर के दरबार तक पहुंचे थे। अकबर ने इन्हें एक चक दिया, जिसमें इन्होंने होलपुर नामक एक ग्राम बसाया था। एक बार तुलसीदास जी अयोध्या से लौटते समय होलपुर ग्राम में गए। गुसाईं-जी के लोटे को देखकर होलरामजी ने उसकी प्रशंसा में कहा—

दोहा

लोटा तुलसीदास को,
लाख टका को मोल।

इसके उत्तर में गुसाईंजी ने कहा—

दोहा

मोल तोल कछु है नहीं,
लेहु राम कवि होल।

होलराम ने उस लोटे को मूर्ति की तरह स्थापित किया और उसपर एक चबूतरा बनवाकर उसका

पूजन करने लगे। उस लोटे की आज तक पूजा होती है। इस होलपुर में गिरिधर और नीलकण्ठ भी नामी कवि हो चुके हैं। यह ग्राम बंदीजनों के अधिकार में रहा है। (शिवसिंहसरोज)

ह्रस्ववर्मन्—मिथिलानरेशों में से एक नरेश का नाम। यह सुवर्णमन राजा के पुत्र थे। इनको हर्यश्ववर्मन् भी कोई-कोई कहते हैं।

ह्लाद—हिरण्यकशिपु के चार पुत्र थे। उनमें से एक का नाम ह्लाद था।

ह्लादिनी—प्रसन्न करने वाली। रामायण में सात नदियों के नाम पाए जाते हैं, उनमें से एक नदी का नाम ह्लादिनी है। आधुनिक भूगोलविद्या वालों को, इन सात नदियों में से गंगा और सिंध को छोड़कर, अन्य पांच नदियों का पता नहीं लगा।

ह्रिदिक—एक यादव युवराज, जो स्वयंभोज का पुत्र और सूर का पिता था। इन्हींके वंश में भगवान् विष्णु अवतीर्ण हुए थे।

ह्री—(१) लज्जा, धर्म की पत्नी और दक्ष की पुत्री।

(२) ब्रह्मलोक की एक देवी; जिस समय अर्जुन ने इन्द्रलोक को प्रस्थान किया था, उसकी यात्रा की मंगलकामना के लिए तब द्रौपदी ने इस देवी का स्मरण किया था। (महाभारत)

□

परिशिष्ट–१

महाभारत में व्यवहृत अप्रचलित भौगोलिक नामों की व्याख्यासहित सूची

अ

अगस्त्याश्रम—इगतपुरी। नासिक के आगे बंबई के समीप मध्य रेलवे का एक स्टेशन।

अङ्ग—बिहार प्रदेश का भागलपुर क्षेत्र।

अधिराजः—दतिया—यहां के राजा दन्तवक्र को दिग्विजय यात्रा के समय सहदेव ने मारा था।

अपरान्ताः—कोंकण और मालाबार प्रदेश।

अवन्ती—उज्जैन का नाम है। किसी समय अवन्ती नाम का राज्य था जिसकी राजधानी उज्जैन थी। अब अवन्ती से केवल उज्जैन नगरी ही का बोध होता है।

अश्वतीर्थ—कान्यकुब्ज देश के समीप का एक तीर्थ विशेष। यहां पर ऋचीक नाम के ऋषि ने एक सहस्र श्यामकर्ण घोड़े वरुण से पाए थे।

असिकी नदी—चन्द्रभागा अथवा चनाब नदी जो पंजाब में है।

अहिच्छत्र—अहिछत्र, उत्तर पाञ्चाल देश जिसे द्रोणाचार्य ने पाण्डवों की सहायता से द्रुपद से छीना था। इसकी राजधानी रामनगर (रूहेलखण्ड) थी। इस नाम के गांव से बहुमूल्य सामग्री मिली है। खंडहर के रूप में यह गांव उत्तरप्रदेश के बरेली जिले में है।

इ

इक्षुमती—उत्तरप्रदेश के उत्तरीय भाग में बहने वाली काली नदी का नाम।

उ

उज्जयन्तः—सौराष्ट्र काठियावाड़ के जूनागढ़ के समीप के गिरनार पर्वत का दूसरा नाम।

उज्जानकः—कश्मीर के पश्चिम सिन्धु नदी के तट का एक पवित्र क्षेत्र-विशेष।

उत्कलाः—कलिंग देश के उत्तर का देश जो आजकल उड़ीसा प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध है।

उरगापुरी—दक्षिण भारत के समुद्रतटवर्ती एक बंदरगाह का नाम जो आजकल तंजोर जिले में नीगापट्टम के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान किसी समय पांड्य देश की राजधानी था।

ऋ

ऋक्षवान्—विंध्य पर्वतमाला का पूर्वीय भाग।

ऋष्यमूकः—तमिलनाडु के अनागुंडी स्थान से आठ मील दूरी पर और तुंगभद्रा नदी के तट पर जो पहाड़ है वह ऋष्यमूक कहलाता है।

ऋष्यशृंगाश्रमः—भागलपुर जिले में सिंहेश्वर में कुशी नदी के तट पर शृंगी ऋषि का आश्रम था।

ऋषभः (वृषभः)—पाण्ड्य देश के एक पर्वत का नाम, जहां महाराज युधिष्ठिर तीर्थयात्रार्थ गए थे। यह पर्वत दक्षिण भारत के मदुरा नगर में अलगिरी नाम से प्रसिद्ध है।

ऋषिकाः—उत्तर दिशा में काम्भोज देश के समीप का देश अर्थात् रूस देश ।

ऋषिकुल्या—कलिंग देश की एक नदी का नाम । यह नदी गंजाम जिले में होकर बहती है और महेन्द्र पर्वत से निकलती है ।

औ

औदुम्बराः—कच्छ देश का नाम । इसकी प्राचीन राजधानी का नाम कोटेश्वर या कच्छेश्वर कहा जाता है ।

क

कच्छाः—खेड़ा, जो गुजरात के अहमदाबाद और खंभात के बीच में है ।

कटदेशः—यहां के राजा का नाम, जिसे अर्जुन ने दिग्विजय-यात्रा के समय परास्त किया था, सुनाभ था । यह बर्दवान जिले के कटवा का नामांतर है ।

कण्वाश्रमः—रूहेलखण्ड का वह स्थान जहां आजकल बिजनौर की बस्ती है ।

कनखल—हरिद्वार से २ मील पूर्व के एक ग्राम का नाम ।

कन्यातीर्थ—तमिलनाडु के अंतर्गत कन्याकुमारी नामक प्रसिद्ध स्थान ।

करतोया—नदी । यह उस नदी का नाम है जो बंगाल के रंगपुर दीनाजपुर आदि नगरों में होकर बहती है और किसी समय बंगाल और कामरूप देश की सीमा समझी जाती थी ।

करीषकाः (कारूषः)—महाभारत में यहां के राजा का नाम दन्तवक्र बतलाया गया है । बिहार प्रांत के अंतर्गत शाहाबाद जिले का पूर्वीय भाग ।

कर्णाटकाः—दक्षिण भारत का एक प्रदेश जो महाराष्ट्र और तमिलनाडु से लगा है । पुराना मैसूर राज्य, और तमिलनाडु का दक्षिण कनारा तथा महाराष्ट्र के उत्तरी कनारा, बेलगांव और धारवाड़ जिले कर्णाटक प्रदेश कहलाते हैं ।

कलिंग—इसका दूसरा नाम आंध्रदेश भी है । यहां के श्रुतायु, शक्रदेव, सत्यकेतुमान आदि को भीमसेन ने मारा था । यह उस प्रदेश का नाम है, जो उड़ीसा की वैतरणी नदी के दक्षिण तट पर और कृष्णा नदी के उत्तरी तट पर राजमहन्द्री विजगापट्टन और गंजाम जिले तक चला गया है । इसकी राजधानी का नाम राजपुर था और यहां का राजा चित्रांगद दुर्योधन का ससुर था ।

कान्यकुब्जः—कालीनदी या इक्षुमती तथा गंगा के संगम पर यह राज्य बताया जाता है । वर्तमान में कन्नौज एक कस्बा है जो फर्रुखाबाद जिले के अंतर्गत है । यह राजा गाधि की राजधानी थी ।

काम्पिल्य—यह दक्षिण पांचाल की राजधानी थी । अब भी कम्पिला के नाम से प्रसिद्ध है और फर्रुखाबाद जिले का एक कस्बा है । द्रौपदी का जन्म यहीं हुआ था ।

काम्भोजाः—यह देश निषध पर्वत के दक्षिण में बतलाया जाता है । यहां अर्जुन राजसूय यज्ञ के अवसर पर दिग्विजय करने गए थे । वर्तमान में इस देश की स्थिति अफगानिस्तान, जो अश्वस्थान का अपभ्रंश है, बतलायी जाती है । वहां घोड़े अधिक होते हैं । मसल भी है "क्या काबुल में घोड़े ही घोड़े होते हैं, गधे नहीं होते !" काम्भोज ही से 'काबुल' की उत्पत्ति जान पड़ती है ।

कारुषः—देखो करीषकाः ।

किम्पुरुष—हिमालय पर्वत के उत्तर भाग का नाम ।

किराताः—टिपराहिल और कुम्मिला (जो बंग क्षेत्र में हैं) ।

किष्किन्धा—बालि और सुग्रीव की राजधानी । यह स्थान तमिलनाडु के बिलारी जिले के हम्पी ग्राम के समीप, तुंगभद्रा नदी के उत्तरी तट पर बतलाया जाता है ।

कुण्डिन—विदर्भ देश की राजधानी, जहां का प्रसिद्ध राजा भीष्मक था । यह स्थान बरार प्रांत में अमरावती नगर से चालीस मील पूर्व की ओर है ।

कुन्तयः—कुन्ती के जन्मस्थान का नाम । यह मालवा में अश्व नदी के तट पर बसा हुआ था ।

कुन्तलाः—तमिलनाडु के बिलारी जिले के कुछ भाग जिसमें 'कुरुगोड' है।

कुरुक्षेत्रं—पंजाब के करनाल जिले का एक कसबा।

कुरुजांगलाः—कुरुदेश के पश्चिम में जो बड़ा भारी जंगल था उसको कुरुजांगल कहते थे। यह कौरवों की राजधानी हस्तिनापुर से उत्तर-पश्चिम की ओर तथा दिल्ली से उत्तरपूर्व की ओर अवस्थित था। अब इसका नामो-निशान तक नहीं है। गंगा द्वारा यह बहा दिया गया।

कुलिन्दाः—कुरुक्षेत्र के उत्तरवाला देश जहां अब सहारनपुर जिला है।

कुशस्थली—द्वारका जो काठियावाड़ में है।

कृष्णवेणा/कृष्णवेणी/कृष्णा—कृष्णा नदी के नाम हैं।

केकयाः—पंजाब प्रांत के उस भूखंड का नाम जो वहां की व्यास और सतलुज नदियों के बीच में है। भरत की माता कैकेयी यहीं की थी।

कोटितीर्थ—इस नाम के तीर्थ जिला बांदा में कालिञ्जर में, गोकर्ण में और मथुरा में हैं।

कोलाहलः—मालवा और बुंदेलखंड को अलग करनेवाली एक पर्वतमाला का नाम, जो चंदेरी के पास है।

कोसला—अयोध्या। यह राज्य दो भागों में विभक्त था। दोनों के बीच में सरयू है। एक का नाम उत्तर कोसल, दूसरे का दक्षिण कोसल।

कौशिकी—यह गंगा की सहायक नदियों में से बहुत बड़ी सहायक नदी है और इसका गंगा के साथ संगम बंगाल में हुआ है और वह स्थान कौशिकी तीर्थ के नाम से अब तक प्रसिद्ध है। यह विश्वामित्र की प्रिय नदी होकर बही है।

क्रथकैशिकाः—किसी समय यह विदर्भ देश की राजधानी थी। यह बरार में था।

ग

गन्धमादन—रुद्र हिमालय का अंश-विशेष जो बदरिकाश्रम से उत्तरपूर्व की ओर कुछ ही हटकर आरंभ होता है।

गान्धाराः—यह देश काबुल नदी के किनारे-किनारे कुनार और सिंधु के बीच में है। इसकी राजधानी का नाम पुरुषपुर (जिसे अब पेशावर कहते हैं) था।

गिरिव्रजः—मगध देश की राजधानी। यह अब बिहार में राजगिर के नाम से प्रसिद्ध है।

गोकर्ण—एक क्षेत्र है जो गोवा से ३० मील उत्तरी कनारा में है।

गोप्रतारं—अयोध्या में गुप्तारघाट नाम से प्रसिद्ध है।

गोमन्त—द्वारका के समीप वाले एक पहाड़ का नाम।

च

चेदयः—यह राज्य शिशुपाल के अधीनस्थ था और इसमें बुंदेलखंड का दक्षिणी भाग और जबलपुर का उत्तरी भाग था।

ज

जनस्थान—जहां अब औरंगाबाद है वहां किसी समय विकट वन था और यहां राक्षसों की चौकी थी।

त

तक्षशिला—झेलम नदी के तट का एक नगर, जो अटक और रावलपिंडी के बीच में बसा था।

तमसा—टोंस नदी, जो उत्तर प्रदेश में गंगा में गिरती है।

ताम्रपर्णी—तमिलनाडु का तिरुनेलवली नगर इसी नाम की नदी के तट पर बसा हुआ है।

त्रिगर्ताः—पंजाब का जालंधर जिला।

द

दरदाः—दर्दस्तान, जो कश्मीर से उत्तर सिंधु के चढ़ाव की ओर है।

वेत्रवती—बेतवा नदी, जो बुंदेलखंड में है।

वैतरणी—उड़ीसा में कटक के पास की एक नदी।

श

शतद्रुः—पंजाब की सतलुज नदी का नाम।

शरावती—गुजरात की सांभरमती (साबरमती) नदी।

शालग्रामक्षेत्रः—नेपाल में गंडकी नदी के मुहाने के समीप। मैसूर राज्य में भी इस नाम का एक स्थान है।

शुद्धमती—उड़ीसा की सुवर्णरेखा या बुंदेलखंड की बेतवा नदी।

शुद्धिमान—उज्जैन के समीप की पश्चिमीय विंध्य पर्वतमाला।

शूरसेन—मथुरा नगरी, जिस राज्य की राजधानी थी उस राज्य का नाम।

शूर्पारकः—महाराष्ट्र में बीजापुर जिले में जमखंडी के समीप का स्थान। यहां जामदग्न्य-परशुरामजी रहते थे। इस स्थान का नाम शूरपल्य भी है।

शृंगवेरपुर—सिगनौर (गुह की राजधानी का नाम) यह प्रयाग से उत्तर-पश्चिम की ओर १८ मील पर गंगा के तट पर है।

शोण—सोन नदी का नाम।

स

सदानीरा—करतोया नदी।

सिन्धुः—देश, जो भारत के पश्चिम समुद्र के उत्तर में और पंजाब के दक्षिण का प्रदेश है। इसमें होकर सिन्धु नदी बहती और इसीमें समुद्र में मिलती है। इसी नदी के नाम पर इस प्रदेश का नाम पड़ा।

सेकाः—उस देश का नाम, जो चंबल से दक्षिण और उज्जैन से उत्तर की ओर है।

सौवीराः—सिंधु देश के समीप का प्रदेश।

ह

हस्तिनापुर—कौरवों की राजधानी, जो दिल्ली से उत्तर-पूर्व की ओर थी और जिसका गंगा ने नामोनिशान तक नहीं रखा। यह मेरठ से २२ मील उत्तर-पूर्व गंगा के दाहिने तट पर बसी थी।

हिमवान्—हिमालय पर्वत।

उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी पुस्तकालय ग्रन्थ आ० सं० 3303 लखनऊ

परिशिष्ट–२

सहायक पुस्तकों की नामावली

१. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण
२. महाभारत
३. श्रीमद्भागवत
४. हरिवंशपुराण
५. विष्णुपुराण
६. लिंगपुराण
७. मार्कंडेयपुराण
८. ब्रह्मवैवर्तपुराण
९. नारदपुराण
१०. कल्किपुराण
११. स्कंदपुराण
१२. वायुपुराण
१३. पद्मपुराण
१४. भविष्यपुराण
१५. गरुडपुराण
१६. देवीभागवत
१७. वामनपुराण
१८. ऐतरेयब्राह्मण
१९. शतपथब्राह्मण
२०. मनुस्मृति
२१. रघुवंश
२२. कुमारसंभव
२३. राजतरंगिणी
२४. टाड्स राजस्थान
२५. भारतवर्षीय इतिहास
२६. भारतवर्षीय कविदिगेर समय विरूपण (बंगला)
२७. बुद्धचरित
२८. आदर्श महात्मागण
२९. शिवसिंहसरोज
३०. हिंदी कोविदरत्नमाला
३१. हिंदी नवरत्न
३२. Grierson's The Modern Vernacular Literature of Hindustan
३३. मुगलवंश
३४. इतिहास तिमिरनाशक
३५. Maleson's The Trends in India
३६. Text Book of Indian History by Dr. G. U. Pope
३७. Ormie's Indosthan
३८. History of Indian People by W. W. Hunter
३९. Beatson's Dictionary of Universal Information
४०. Garret's Classical Dictionary of Ind a (1871)
४१. महाभारतस्थानां मुख्यनाम्नां वर्णानुक्रमणिका by T. R. Krishnacharya
४२. A History of the Classical Sanskrit Literature by M. Krishnamacharya